आधुनिक शासन-तन्त्र

[सिद्धान्त एव व्यवहार]

MODERN GOVERNMENTS

[THEORY AND PRACTICE]

लेखक

भद्रदत्त शर्मा

एम ए (इति एव राज शास्त्र), पी एच डी

अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग

एस आर के महाविद्यालय, फीरोजाबाद (उ प्र)

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा-3

स्वर्गीय

परम पूज्य पिताजी

की

पुण्य स्मृति

मे

सादर समर्पित

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक एम ए कक्षाओ के विद्यार्थियो के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखकर लिखी गयी है। हिन्दी में आधुनिक शासन व्यवस्था पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं किन्तु यह पुस्तक उस क्रम में सर्वथा एक नवीन प्रयास है। लेखक ने शासन एव उसके विभिन्न अगो के सैद्धान्तिक पक्ष का उल्लेख करते हुए यह प्रयास किया है कि विद्यार्थी शासन-तन्त्र के विभिन्न पहलुओ एव समस्याओ का ज्ञान प्राप्त करे और स्वय म स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता विकसित करे। लेखक किसी मौलिकता का दावा नही करता, किन्तु विषय को यथासाध्य स्पष्ट करने एव क्रमबद्ध रूप म प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। स्थान स्थान पर तुलनात्मक अध्ययन भी दिये गय हैं। भाषा सरल एव सुबोध है।

पुस्तक की रचना मे लेखक ने जिन प्रख्यात विद्वानो की रचनाओ एव पुस्तको का सहारा लिया है, उनके प्रति वह हृदय से आभारी है। इसके अतिरिक्त लेखक गुरु वर पूज्य डॉ सत्यनारायण दुबे (प्राचार्य, आगरा कॉलेज) तथा डॉ इकबाल नारायन (विभागाध्यक्ष, राजनीति शास्त्र, राजस्थान विश्वविद्यालय), डॉ रामप्रकाश पाण्डे (प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, नरसिंहपुर, म प्र), प्रो महेशदत्त मिश्र (अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र, जबलपुर विश्वविद्यालय), डॉ टी जी दुगवेकर (राजनीति शास्त्र विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय), डॉ श्रीराम महेश्वरी (विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन, भारतीय लोक प्रशासन सस्थान, नई दिल्ली), प्रो रामचन्द्र शर्मा (नारायण महाविद्यालय, शिकोहाबाद) एव प्राचार्य श्री अमरनाथ शर्मा का उनके निरन्तर प्रोत्साहन एव सहयोग के लिए अत्यन्त आभारी है। अपने महाविद्यालय के भूतपूर्व प्राचार्य एव वर्तमान सह-सचिव श्री कृष्णसहाय गर्ग का भी मै विशेष रूप से ऋणी एव आभारी हूँ, जो प्रारम्भ से ही प्रेरणा-स्रोत रहे और जिन्होने प्रत्येक पग पर पुस्तक लेखन मे मेरा मार्गदर्शन किया। विभागीय सहयोगी डॉ टी के अग्रवाल एव श्री ओम पाल सिंह जी ने भी समय समय पर अनेक उपयोगी सुझाव देकर मेरी विशेष सहायता की है। मैं उनका भी आभारी हूँ। अन्त में, मैं अपनी पुत्री श्रीमती वैदेही विधौलिया (प्रवक्ता, बी डी एम डिग्री कॉलेज, शिकोहाबाद) एव अपने पुत्र चि अजनिकुमार को उनके सहयोग के लिए शुभाशीष देता हूँ। उनके सहयोग के अभाव म मैं सम्भवत पुस्तक लिख ही न पाता।

मै अपने प्रकाशक श्री प्रकाशनारायण जी का भी आभारी हूँ जिन्होने बडे धैय के साथ अत्यन्त आकर्षित साज सज्जा मे पुस्तक का प्रकाशन किया और मुद्रण के बीच आने वाली कठिनाइयो के बावजूद भी मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे।

यदि विद्यार्थी समुदाय इस पुस्तक से लाभान्वित होता है, तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूगा। पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने हेतु सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

कार्तिक पूर्णिमा
18-11-1975

—भद्रदत्त शर्मा

विषय-सूची

अध्याय

राज्य, शासन एव सविधान

पृष्ठ

अध्याय

व्यवस्थापिका

कार्यपालिका

न्यायपालिका

1

राज्य एव शासन

[STATE AND GOVERNMENT]

'राज्य' नामक सामाजिक सगठन राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का प्रधान विपय है ।[1] गानर के अनुसार "सक्षेप म राजनीतिशास्त्र राज्य से प्रारम्भ होता है और राज्य म ही उसकी परिसमाप्ति होती है ।"[2] राजनीतिशास्त्र की परिभापा विभिन्न विद्वानो ने भिन्न भिन्न दृष्टिकोणा से की है । सामान्यत चार दृष्टिकोण है । प्रथम दृष्टिकोण के समथको ने परिभापा मे राज्य को ही अधिक महत्व दिया है । **गानर** के अतिरिक्त **ब्लुटश्ली** (Bluntschli) एव **गेराइस** (Gareis) आदि विद्वान इस श्रेणी मे आते हैं । **सीले** (Seeley) की परिभापा म शासन पर बल दिया गया है । तृतीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व **गिलक्राइस्ट** करता है। उसके अनुसार "राजनीतिशास्त्र के अन्तगत राज्य तथा सरकार का अध्ययन किया जाता है।"[3] फ्रेंच विद्वान **पॉल जाने** (Paul Janet) के अनुसार राजनीतिशास्त्र राज्य के आधारो तथा शासन के सिद्धान्तो की समीक्षा करता है । **गेटिल** चतुथ दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है "राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के मुख्य विपय राज्य, सरकार तथा विधि है ।"[4] उपर्युक्त दृष्टिकोणो मे गेटिल की परिभापा अधिक ग्राह्य है । राज्य और सरकार का एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध है । सरकार के विना राज्य का कोई अथ हो ही नही सकता । सच तो यह है कि 'राज्य' शब्द मे सरकार का भाव निहित है । अत राजनीतिशास्त्र के अन्तगत राज्य व सरकार दोनो का अध्ययन सम्मिलित है । राज्य की इच्छा की अभिव्यक्ति एव क्रियान्वयन विधि द्वारा ही सम्भव है । उपयुक्त सभी परिभापाओ म राज्य नाम की सस्था को अधिक महत्व दिया गया है तथा मनुष्यो की अपेक्षा राजनीतिशास्त्र समाज मे मानवीय आचरण के नैतिक प्रश्न से सम्बन्धित है । राज्य क्या है ?, हम उसकी आज्ञा क्यो मानते हैं एव हम कब उसकी आज्ञा मानने से इन्कार कर सकते हैं ?, राज्य की सत्ता एव व्यक्ति की स्वतन्त्रता मे समन्वय कैसे स्थापित किया जाये ?, आदि प्रश्न राजनीतिशास्त्र

---

1 'Political Science may be defined as the science of State' —Gettell, R G *Political Science* 1956 (Indian edn) p 3
2 "In short Political Science begins and ends with the 'State —Garner, J W *Political Science and Governments*, 1951 (Indian edn), p 8
3 Political Science deals with State and Government ' —Gilchrist R N *Principles of Political Science*, 1930, p 1
4 Political Science is mainly interested in "State, Government and Law ' —Gettell *Political Science*, 1956, pp 3 4

के शाश्वत प्रश्न हैं, जिनके विभिन्न कालो मे भि न मिन्न विद्वानो ने भिन्न भिन्न उत्तर दिये हैं। राजनीतिक जीवन के उद्देश्य जीवन-उद्देश्यो से भिन्न नही होते, अत राज्य से सम्बन्धित उपर्युक्त प्रश्नो के उत्तर हमारी औचित्य एव अनौचित्य की धारणा पर निभर करते हैं।

राज्य यूनानियो के लिए एक नतिक अवयवी था क्योकि राज्य की सदस्यता से ही सदगुणी जीवन की प्राप्ति सम्भव थी। राज्य को अवयवी मानने का अथ है कि व्यक्ति राज्य के अग हैं। लेकिन यूनानिया ने राज्य को साधन माना था। प्रत्ययवादियो (Idealists) की दृष्टि मे भी राज्य नैतिक सस्था है। हेगेल (Hegel) जैसे प्रत्ययवादिया के लिए राज्य 'भूतल पर ईश्वरीय यात्रा'[5] एव नैतिकता का मूर्तिमान रूप है। उदार प्रत्ययवादी ग्रीन (Green) उसे साध्य न मानकर साधन मानता है—लेकिन, फिर भी, राज्य नैतिक सस्था है। राज्य को नैतिक महत्व देने वाले विचारक उसे अवयवी एव विकासवादी मानते हैं। इसके विपरीत, कुछ विचारक राज्य को यन्त्र (machine) मानते हैं जो मनुष्यो द्वारा निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित किया गया है। उनके अनुसार व्यक्ति सत्य (real) है जबकि राज्य व्यक्तियो के द्वारा निर्मित है अत कृत्रिम (artificial) है एव राज्य केवल साधन मात्र है। यूनानियो की राज्य की अवयवी धारणा को स्टाईकवादियो द्वारा सम्पूण मानवता के सन्दम मे प्रयोग किया गया था। मध्य-युग मे ईसाई विचारको मे भी अवयवी धारणा का प्राधान्य रहा। 17वी सदी के प्रारम्भ मे यान्त्रिक धारणा का प्रभाव बढा। हॉब्स (Hobbes) एव लॉक (Locke) इसके प्रतिनिधि विचारक हैं। परन्तु रूसो (Rousseau) एव प्रत्ययवादियो (Idealists) ने इस धारणा को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद यान्त्रिक धारणा पुन बलवती हो गयी थी। राज्य के स्वरूप की एक अन्य धारणा ऐतिहासिक सम्बद्धता या अनुरूपता (historical coherence)[6] की परम्परा है। इस धारणा के समथक ऐतिहासिक विकास पर बल देते हैं तथा निरपेक्ष मापदण्डो को अस्वीकार करते हैं। वे राज्य को प्राकृतिक जगत की नकल नही मानते। लेकिन एक सीमा तक राज्य को प्राकृतिक माना जा सकता है क्योकि यह *ऐतिहासिक विकास का परिणाम है जो स्वय प्रकृति का अग है।* साथ ही एक सीमा तक यह कृत्रिम भी है क्योकि यह ऐसे मनुष्यो का परिणाम है जो प्रकृति का अनुगमन नही करते अपितु उसे परिवर्तित करते हैं। राज्य के अवयवी विचारक विवेकवादी थे। यान्त्रिक विचारक इच्छा (will) को प्रधानता देते थे। राज्य अवयवी विचारको के लिए स्वाभाविक या प्राकृतिक (natural) है तो यान्त्रिक विचारको के लिए कृत्रिम। राजनीतिशास्त्र के सभी विचारको ने समाज म नतिक जीवन का दायित्व राज्य को सौंपा है। राज्य एक धारणा है। शासन वह यन्त्र है जिससे राज्य के उद्देश्यो को प्राप्त किया जाता है। अत राज्य के अध्ययन म शासन का विश्लेषण एव उसकी

---

5 The state is 'march of God on Earth —Hegel
6 Wayper C L *Political Thought* (1954) Introduction p xi

काय-पद्धति का अध्ययन निहित है। शासन का स्वरूप एव कार्य-पद्धति हर युग मे एकसी नही रही है। समय-समय पर उनमे परिवतन होते रहे हैं। प्राचीन यूनान और रोम मे सबसे पहले राजतन्त्र था, उसके बाद कुलीनतन्त्र एव अन्त मे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई थी। आधुनिक जगत मे शासन के विभिन्न स्वरूप हैं।

सामान्य बोलचाल की भाषा मे राज्य, राष्ट्र, समाज एव शासन का प्रयोग समानार्थी शब्दो के रूप मे किया जाता है। परन्तु इन शब्दो मे महत्वपूण अन्तर है। अत इनका विश्लेषण अपेक्षित है।

राज्य
(STATE)

सभी सामाजिक सस्थाओ मे राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली एव शाश्वत सस्था है। जहा मनुष्य रहते हैं वहा सगठन एव सत्ता स्वाभाविक है तथा जहा सत्ता एव सगठन हैं वहा बीज रूप मे राज्य विद्यमान है। राज्य मानवीय विकास एव समृद्धि के लिए आवश्यक है। यूनानी विचारक इसे प्राकृतिक एव आवश्यक (natural and necessary) सस्था मानते थे। अरस्तू (Aristotle) के अनुसार राज्य का उदय व्यवस्था एव शान्ति के लिए हुआ था परन्तु सदजीवन की प्राप्ति के लिए वह कायम है। राज्य सभ्यता का सृजनकर्ता है। सामाजिक सहयोग एव सामूहिक पयत्न विकास की एक अवस्था मे राज्य के रूप मे अभिव्यक्त होते है। राज्य स्वाभाविक, अनिवाय एव शक्तिशाली तथा शाश्वत सस्था है। इस अथ मे यह अन्य अनेक मानवीय समुदायो से भिन्न है।

राज्य की विभिन्न परिभाषाएँ दी गयी है। प्रत्येक विद्वान राज्य को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखता है एव उसी के अनुसार उसकी परिभाषा करता है। यूनानी विचारक अरस्तू के अनुसार "राज्य कुलो एव ग्रामो के उस समुदाय का नाम है जिसका उद्देश्य पूण एव स्वावलम्बी अर्थात सुखी एव सम्मानयुक्त जीवन की प्राप्ति हो।" सिसेरो (Cicero), जाँ बोदा (Jean Bodin) एव ग्रोशियस (Grotius) ने भी राज्य की परिभाषाएँ दी हैं परन्तु वे आधुनिक समाज पर लागू नही होती। हॉलण्ड ने अपनी परिभाषा मे प्रभुत्व के तत्व को स्थान नही दिया है। उसके अनुसार "राज्य ऐसे मनुष्यो का बहुसख्यक समूह है जो *साधारणतया किसी निश्चित भू-भाग पर निवास करता* हो और जिनसे बहुसख्या की अपेक्षा किसी निश्चित वग के लोगो की इच्छा उस बहुसख्या तथा वग की शक्ति के कारण उन सब पर चलती हो जो उसका विरोध करते हो।"[7] इस परिभाषा म एक दोष यह है कि राज्य को समूह माना गया है।

---

7 The State ' is a numerous assemblage of human beings, generally occupying a certain territory, among whom the will of the majority or of an ascertainable class of persons is by the strength of such a majority or class made to prevail against any of their number who oppose it ' —Holland Sir T E *The Elements of Jurisprudence* 13th edn p 46 quoted by M P Tandon *Public International Law*, 1971 p 80

फिलिमोर (Phillimore) ने अन्तराष्ट्रीय विधि की दृष्टि से परिभाषा की है। डॉ वुडरो विलसन के अनुसार एक निश्चित भू भाग पर विधि के लिए सगठित जनता राज्य है।[8] बर्गेस के अनुसार राज्य "एक इकाई के रूप मे सगठित मनुष्य जाति का एक विशिष्ट भाग है।"[9] इसी से मिलती जुलती परिभाषा ब्लुटश्ली की है। उनके अनुसार एक निश्चित क्षेत्र के राजनीतिक रूप मे सगठित व्यक्ति राज्य हैं।[10] सबसे अधिक वैज्ञानिक परिभाषाएँ गानर और गेटिल की प्रतीत होती हैं। डॉ गानर के अनुसार 'राज्य मनुष्यो के उस समुदाय का नाम है जो किसी निश्चित क्षत्र पर स्थायी रूप से निवास करता हो, जो बाह्य नियन्त्रण से स्वतन्त्र अथवा लगभग स्वतन्त्र हो, जिसकी एसी सुगठित सरकार हो जिसके आदेशो का उसके बहुसख्यक निवासी आदतवश पालन करते हो।[11] गानर की इस परिभाषा मे चारो तत्वो—भूमि, जनता, शासन एव प्रभुत्व—का उल्लेख है। डॉ आशीर्वादम ने मकाइवर की राज्य की निम्न परिभाषा को सवश्रेष्ठ माना है क्योकि उक्त परिभाषा मे विधि, शासन, दमनकारी शक्ति (coercive power), सामाजिक एकता, स्पष्ट भू खण्ड एव सामाजिक व्यवस्था के हेतु शाश्वत बाह्य स्थिति का उल्लेख किया गया है।[12] डॉ आशीर्वादम् इन तत्वो को श्रेष्ठ एव राज्य के लिए आवश्यक मानते है। मैकाइवर के अनुसार "राज्य शासन द्वारा विज्ञापित विधि के अधीन काय करने वाला समुदाय है जो (शासन) दमनकारी शक्ति के माध्यम से स्पष्टत अकित भू खण्ड पर वसने वाले समाज मे सामाजिक व्यवस्था की शाश्वत वाह्य स्थिति कायम रखता है।"[13] मैकाइवर की इस परिभाषा मे बहुलवाद का गुण है। लास्की (Laski) के अनुसार ' राज्य वह प्रादेशिक समाज है जो सरकार एव शासितो मे विभक्त हो और जो अपने भौगोलिक क्षेत्र के भीतर अन्य सभी सस्थाओ पर सर्वोच्चता

---

8 The State ' is a people organized for law within a definite terri tory ' —Woodrow Wilson quoted by Asirvatham, p 26

9 The State "is a particular portion of mankind viewed as an or ganized unit —Burgess , quoted by Garner *op cit* , p 48

10 "The State is the politically organized people of a definite terri tory —Bluntschli quoted by Garner *op cit* , p 48

11 The State is a community of persons more or less numerous permanently occupying a definite portion of territory, indepen dent or nearly so of external control and possessing an organized government to which the great body of inhabitants render habi tual obedience "—Garner *Political Science and Government*, 1951, p 49

12 Asirvatham E *Political Theory* 1965, p 26

13 The State is an association which, acting through law as promulgated by a government endowed to this end with coercive power, maintains within a community territorially demarcated, the universal external conditions of social order '—MacIver , quoted by Asirvatham *Political Theory* 1965 p 26

का दावा करता हो।"[14] यह परिभाषा विशद न होते हुए भी स्पष्ट व सही है। गेटिल के अनुसार "राज्य व्यक्तियो का वह समुदाय है जो स्थायी रूप से निश्चित भूभाग पर वसा हुआ हो, विधिक दृष्टि से बाह्य नियन्त्रण से मुक्त हो और जिसकी सगठित सरकार हो, जो उसके क्षेत्राधिकार के अन्तगत निवास करने वाले सभी व्यक्तियो एव समूहो के लिए कानून बनाती हो और लागू करती हो।"[15]

अत आधुनिक राज्य एक राजनीतिक सगठन है जो एक निश्चित क्षेत्र मे निवास करने वाले व्यक्तियो के ऊपर नियन्त्रण रखता है तथा व्यवस्था एव शान्ति स्थापित करके उन बाह्य परिस्थितियो का निर्माण करता है जो मनुष्यो के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं। राज्य के चार अनिवाय तत्व हैं—भूमि, जनसख्या, सरकार एव प्रभुत्व।

राज्य व समाज
(STATE AND SOCIETY)

राज्य व समाज एक नही हैं। दोनो मे अन्तर है। बाकर के अनुसार समाज से तात्पय उन विभिन्न उद्देश्यो एव सस्थाओ वाले ऐच्छिक निकायो और समुदायो के योग से है जो राष्ट्र के अन्तगत देखने को मिलते है (बल्कि जो उन सम्बन्धो के कारण राष्ट्र के बाहर भी फैल जाते हैं जिन्हे वे अन्य राष्ट्रो मे स्थित सस्थाओ के साथ स्थापित करते हैं)। सामूहिक दृष्टि से तथा समाज के रूप मे ये सब समुदाय सामाजिक तत्व का निर्माण करते हैं जो सामान्य एव व्यापक अथ मे समाज कहलाता है।[16] अत परिवार, जाति, धार्मिक, राजनीतिक एव आर्थिक सम्बन्धो, विभिन्न रीति रिवाजों, रूढियो, परम्पराओ आदि के जटिल सम्बन्धो का नाम ही समाज है। प्राचीन यूनानियो के लिए समाज ही राज्य था। परन्तु आज यह सत्य नही है। राज्य केवल राजनीतिक सगठन है जबकि समाज राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र पर नियन्त्रण स्थापित करता है। प्रत्ययवादी विचारक हेगेल एव हिटलर, मुसोलिनी आदि फासीवादी नेताओ का यही दृष्टिकोण था। इनकी दृष्टि मे राज्य सर्वोपरि था तथा जीवन का कोई पहलू ऐसा नही था जो राज्य के कायक्षेत्र से बाहर हो। सोवियत रूस का राज्य भी समग्रवादी है लेकिन वहा राज्य व समाज मे भेद है। सभ्यता के विकास के साथ सामाजिक जीवन मे राज्य का महत्व बढता जा रहा है।

---

14 The State ' is a territorial society divided into government and subjects claiming, within its allotted physical area, supremacy over all other institutions '—Laski *A Grammar of Politics* 1941, p 21

15 A State is "a community of persons permanently occupying a definite territory, legally independent of external control and possessing an organized government which creates and administers law over all persons and groups within its jurisdiction ' — Gettell *Political Science*, 1956 (Indian edn), p 20

16 Barker, E *Principles of Social and Political Theory*, 1956, p 3

राज्य एव अन्य समुदाय
(STATE AND OTHER ASSOCIATIONS)

राज्य भी एक समुदाय है परन्तु अन्य समुदायो से भिन्न है। मकाइवर के अनुसार समुदाय से अर्थ सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर सम्बद्ध एव सगठित सदस्यो के समूह से है।[17] समुदाय की परिभाषा मे समुदाय के सदस्यो के सामान्य उद्देश्य एव समान कार्य प्रणाली पर बल दिया गया है। समुदाय मनुष्यो के लिए आवश्यक है। हर व्यक्ति की अनेक आवश्यकताएँ, हित रुचिया, आदर्श एव लक्ष्य होते हैं। अत इनकी पूर्ति के लिए समान उद्देश्यो मे विश्वास करने वाले व्यक्तियो द्वारा मिलकर कार्य करना स्वाभाविक है। फलत समुदायो का जन्म होता है। समाज मे नाना प्रकार के समुदाय पाये जाते हैं। बहुलवादी विचारक राज्य को मनुष्यो का नही अपितु समुदायो का समुदाय मानते हैं। लेकिन राज्य अन्य समुदायो की भाति समुदाय नही है। उनमे निम्न अन्तर हैं

(अ) राज्य की भाति समुदायो के निश्चित भू भाग नही होते।

(आ) समुदायो की सदस्यता ऐच्छिक और राज्य की अनिवार्य है। एक व्यक्ति एक समुदाय की सदस्यता त्यागकर दूसरे की ग्रहण कर सकता है परन्तु राज्य की सदस्यता स्वेच्छापूर्वक ग्रहण या त्यागी नही जा सकती।

(इ) राज्य के उद्देश्य समुदाय की तुलना मे व्यापक होते हैं।

(ई) समुदाय राज्य की भाति प्रभुत्व से युक्त नही होता। समुदायो का अस्तित्व राज्य की इच्छा पर निर्भर होता है। राज्य समुदायो को सरक्षण देता है तथा अवाछनीय समुदायो को भग कर अवैध घोषित कर सकता है।

(उ) राज्य समुदाय की तुलना मे अधिक स्थायी है। समाज स्वाभाविक सस्था है और राज्य से पहले का है। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। समाज मे मनुष्य जन्म लेता है, उसी मे बढता है तथा वही उसका लालन-पालन होता है।

समाज का आधार नैतिक बल है जबकि राज्य का आधार शक्ति है। बार्कर के अनुसार "समाज का क्षेत्र ऐच्छिक सहयोग है, उसकी शक्ति सदिच्छा है एव पद्धति नमनीय है। इसके विपरीत, राज्य का क्षेत्र यान्त्रिक क्रिया है, उसकी शक्ति बल है एव पद्धति जटिल है।"[18]

समाज राज्य से बडा अथवा छोटा भी हो सकता है। अपने बडे रूप मे समाज राष्ट्रीय सीमा का अतिक्रमण कर सकता है, जैसे—मुसलिम भ्रातृत्व, ईसाई समाज।

---

17 "An association denotes a group of persons or members who are associated and organized into a unity of will for a common end " —MacIver R M *The Modern State* p 6

18 But roughly we may say that the area of the one is voluntary co-operation its energy that of goodwill its method that of elasticity while the area of the other is rather that of mechanical action —Barker quoted by Asirvatham *op cit*, (1964), p 28

राज्य का उद्देश्य सीमित और समाज का व्यापक होता है। राज्य का सम्बन्ध केवल उन सामाजिक सम्बन्धो से होता है जो शासन द्वारा अपने को अभिव्यक्त करते हैं जबकि समाज मनुष्यो के सभी उद्देश्यो को पूर्ण करता है। राज्य का मुख्य उद्देश्य समाज मे व्यवस्था की स्थापना करना मात्र है जिससे व्यक्ति शान्तिपूर्वक एव सम्मानपूर्वक रह सके।

यद्यपि राज्य और समाज मे सुस्पष्ट एव आधारभूत अन्तर है परन्तु राज्य एक महत्वपूर्ण सामाजिक सस्था है। राज्य समाज मे व्यवस्था स्थापित करता है, समाज को विघटित एव विशृखलित होने से रोकता है तथा व्यक्तियो के आचरण को नियमित एव मर्यादित करता है। बार्कर ने समाज के लिए राज्य के महत्व को बताते हुए लिखा है कि "समाज राज्य द्वारा सगठित रखा जाता है। यदि राज्य समाज को सगठित न रखे तो वह नष्ट हो जायेगा।"[19]

राज्य व समाज के अन्तर को समझना आवश्यक है। इसके अभाव मे व्यक्ति द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति सम्भव नही है। राज्य व समाज को एक मानना भयकर भूल होगी। इससे राज्य को व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। समग्रवादी विचारको (Totalitarian thinkers) ने राज्य व समाज मे भेद नही किया है तथा राज्य के कार्यक्षेत्र की सीमाएँ निश्चित नही की है। इसका यह परिणाम हुआ कि राज्य अमर है। परन्तु यह मत सत्य नही है। राज्य भी बनते व नष्ट होते हैं और अनेक समुदाय राज्य की तुलना मे अधिक स्थायी है। उदाहरण के लिए, रोमन कैथोलिक चर्च। सामान्य रूप मे परिवार एक स्थायी समुदाय है।

मनुष्य एक समय मे एक राज्य का ही सदस्य हो सकता है लेकिन कई समुदायो की सदस्यता एक साथ ग्रहण कर सकता है। राज्य एव समुदायो की सदस्यता मे कोई अन्तर्विरोध नही होता। परन्तु आधुनिक समुदायो द्वारा राज्य की नीतियो को अपने सहयोग एव असहयोग से प्रभावित किया जाता है।

राज्य एव राष्ट्र
(STATE AND NATION)

राज्य एव राष्ट्र कभी-कभी समानार्थी शब्दो के रूप मे प्रयोग किये जाते है। परन्तु इनमे अन्तर है। एक राज्य राष्ट्र हो भी सकता है और नही भी। 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रीयता' का अर्थ भली प्रकार स्पष्ट हो जाना चाहिए। राष्ट्रीयता एक मनोभावना है जो प्राय किसी जनसमुदाय मे समान भाषा, सस्कृति, धर्म, रीति रिवाज, भौगोलिक सामीप्य, समान इतिहास, समान आर्थिक हितो तथा राजनीतिक सहचय से उत्पन्न होती है। यह आवश्यक नही है कि उपर्युक्त एकानुभूति को उत्पन्न करने वाले सभी तत्व इसमे पाये जाते हो। अत राष्ट्रीयता आध्यात्मिक एकता की एक भावना या सिद्धान्त है[20] जो किसी जनसमुदाय मे यह भाव उत्पन्न करता है कि हम

---

19 *Ibid* p 28
20 Gilchrist, R N *Principles of Political Science*, 1930, p 26

एक साथ रहे। वे पृथक होने पर कष्ट का अनुभव करते हैं। लास्की के शब्दों में राष्ट्रीयता का अर्थ "उस विशेष एकता से है जो किसी जनसमुदाय को शेष मानवता से पृथक कर देती है। समान इतिहास, विजयों एवं परम्पराओं के सामूहिक प्रयास के परिणामस्वरूप इस एकता का सृजन होता है। उनमें ऐसी सजातीयता का विकास होता है जो उन्हें एकता में आबद्ध कर देती है। उनका अपना साहित्य और कला होती है जो अन्य राष्ट्रों से निस्सन्देह पृथक होती है।"[21]

विचारकों में 'Nation' और 'Nationality' शब्दों के अर्थ में मतभेद है और उनका भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। कुछ राष्ट्र (Nation) का अर्थ एक विशेष जाति की जनसंख्या से लगाते हैं और उसके राजनीतिक सम्पर्क को महत्व नहीं देते, जबकि दूसरे राष्ट्र के अर्थ में राजनीतिक शासन का महत्व देते हैं अर्थात राष्ट्र का अर्थ एकानुभूतियुक्त जनसमुदाय + राज्य से है। राष्ट्रीयता को कुछ विद्वान भावना या सिद्धान्त मानते हैं तो अन्य विद्वान राष्ट्रीयता का प्रयोग किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले अल्पसंख्यक जातीय जनसमुदाय के लिए करते हैं।"[22] हम 'Nationality' के लिए इस अर्थ में राष्ट्र-जाति शब्द का प्रयोग कर सकते हैं।

राष्ट्र की विभिन्न दृष्टियों से परिभाषा की गयी है। बर्गेस एवं लीकॉक ने राष्ट्र की परिभाषा वंश एवं जातीय अर्थों (racial and ethnographical sense) में की है। बर्गेस के अनुसार राष्ट्र से अर्थ जातीय एकता युक्त जनसमुदाय से है जो किसी एक ही भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता हो। लीकॉक के अनुसार राष्ट्र से अर्थ ऐसे व्यक्तियों से है जो स्थान, वंश परम्परा एवं भाषा से एकता में आबद्ध हों। 19वीं सदी में यह धारणा बहुत बलवती हो गयी थी कि एक राष्ट्र-जाति का अपना राजनीतिक संगठन होना चाहिए। इसे ही राष्ट्रीय आत्मनिर्णय या 'एक राष्ट्र एक राज्य' का सिद्धान्त कहा जाता है। ब्राइस, रेम्से म्योर, गिलक्राइस्ट तथा हेस की परिभाषाओं में इस राजनीतिक पहलू की अभिव्यक्ति पायी जाती है।

ब्राइस के अनुसार—

"राष्ट्र एक राष्ट्र जाति है जिसने अपने को राजनीतिक निकाय के रूप में संगठित कर लिया है या स्वतन्त्र होना चाहता है।"[23]

हेस के अनुसार—

"एक राष्ट्र जाति एकता एवं स्वतन्त्र सम्प्रभुता को प्राप्त करके ही राष्ट्र बनती है।"[24]

---

21 Laski *A Grammar of Politics*, 1941, pp 219 20
22 Garner *op cit* p 102
23 Nation is a nationality which has organized itself into a political body either independent or desiring to be independent' —Bryce *Impressions of South America* 1913 p, 424 quoted by Garner *op cit* p 105
24 A nationality by acquiring unity and sovereign independence becomes a nation' —Hayes, C J H *Essays on Nationalism*, p 5, quoted by Garner *op cit*, p 107

रेम्से म्योर के श॒दो मे—

"राष्ट्र वह जनसमुदाय है जिसके सदस्य अपने को स्वाभाविक रूप से एकता के कुछ ऐसे सूत्रो मे बँधा हुआ अनुभव करते हे जो इतने दृढ और वास्तविक होते है कि उनके कारण प्रसन्नतापूवक साथ साथ रह सकते हैं, पृथक हो जाने पर दु खी होते है और ऐसे लोगो की अधीनता सहन नही कर सकते जो उन ब धनो के अ तगत नही हैं।"[5]

गिलक्राइस्ट के कथनानुसार—

"राष्ट्र अथ की दृष्टि से राज्य के समीप है , लेकिन राष्ट्र का व्यापक महत्व है। राष्ट्र राज्य+कुछ अ य है। राष्ट्र का अथ है राज्य म सगठित एकानुभूतियुक्त समाज।"[6]

अत राष्ट्र एव राज्य मे अ तर है। राज्य के लिए एकानुभूति की भावना आवश्यक नही है जबकि राष्ट्र के लिए अनिवाय है। एक राज्य मे अनेक राष्ट्र-जातिया हो सकती हैं, उनमे एकता का अभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, प्रथम विश्वयुद्ध से पूव आस्ट्रिया हगरी के राज्य मे अनेक राष्ट्र-जातिया निवास करती थी। अत आस्ट्रिया-हगरी का साम्राज्य राज्य था परन्तु राष्ट्र नही। इनमे से कई राष्ट्र-जातिया प्रथम विश्वयुद्ध के बाद स्वत त्र राज्य बन गये थे। राज्य प्रभुत्व सम्पन्न होता है। पर तु राष्ट्र के लिए यह आवश्यक तत्व नही है। कोई जनसमुदाय यदि स्वत त्र होने के लिए सघपरत है तो उसे भी राष्ट्र कहा जायेगा।

राज्य व सरकार
(STATE AND GOVERNMENT)

सामा यत राज्य व सरकार मे भेद नही किया जाता है। सामा य-जन बहुधा 'राज्य' व 'सरकार' शब्दो का प्रयोग एक ही अथ मे करते हैं। हॉब्स ने तो राज्य व शासन का प्रयोग समान अथ मे किया है। निरकुश शासक राज्य व शासन मे अन्तर नही करते। राजत त्रीय व्यवस्था मे अधिकाश शासक अपने व्यक्तित्व को ही राज्य मानते थे। फ्रास का राजा लुई १४वा कहा करता था कि 'मैं ही राज्य हूँ।' पर तु राज्य व शासन मे आधारभूत अ तर है। सरकार राज्य का केवल एक तत्व है। विधिया को क्रिया वित करने के लिए राज्य के पास सर्वोच्च सत्ता होनी चाहिए। स्ट्राग के अनुसार यही सरकार या शासन कहलाती है। सरकार राज्य का य त्र (machinery) है। बिना उसके राज्य कायम नही रह सकता क्योकि शासन सगठित शक्ति है। अत शासन वह सगठन है जो सप्रभु की शक्तिया का उपभोग करता है।[27] रूसो के अनुसार सरकार जीवित उपकरण (living tool) है। लास्की सरकार को राज्य का अभिकर्ता

25 Ramsay Muir *Nationalism and Internationalism*, 1917, p 31

26 "Nation is very near in meaning to State, the former has broader significance It is the state plus something else that of the unity of the people organized in one state christ *Principles of Political Science*, 1930 p 26

27 Strong, C F *Modern Political Constitutions* 1963 p

रे विभिन्न प्रकार होते हैं, जसे राजत त्र, कुलीनतन्त्र, प्रजातन्त्र । प्रजातन्त्र म भी अध्यक्षात्मक एव ससदीय सरकारे होती हैं । इन सब के लक्षणा म अन्तर है जबकि भूभाग, जनसख्या, शासन एव प्रभुत्व राज्य के चार अनिवाय तत्व हैं ।

(vi) सरकार के अभाव म राज्य की कल्पना नही की जा सकती है तथा सरकार राज्य पर आधारित है ।

हमन फाइनर के अनुसार 'शासन मानवीय सहयोग, सत्ता के प्रदत्तीकरण, स्वरूप एव पद्धतिया के विभिन्न प्रकारा से बना है । यह शासन की शरीर-रचना है । शासन की सस्थाओ का व्यक्तिया द्वारा निर्माण एव सचाघन आनन्द प्राप्ति और अपने मान्य या स्वीकृत कतव्यो की पूर्ति के लिए किया जाता है।"[34] मानव-सभ्यता के विकास म शासन की महत्वपूण भूमिका है । शासन के अभाव की कल्पना या विचार एक छल मात्र है । फाइनर शासन के दो माटे भाग मानता है (1) राजनीति की प्रक्रिया (Process of Politics) एव (2) प्रशासन प्रक्रिया (Process of Administration) । राजनीति की प्रक्रिया का तात्पय सामाजिक इच्छा (social will) के उदय, विकास एव उसके परिष्कृत होने की प्रक्रिया से है जिससे समाज द्वारा स्वीकृत नियम या विधि का निर्माण हो सके । इस प्रक्रिया के साथ-साथ समाज के सदस्य सामाजिक इच्छा के निर्माण के लिए आवश्यक समय, शक्ति एव धन का बलिदान करते हैं तथा सामाजिक इच्छा को सहयोग देने एव उसे पुष्ट करने के लिए वाछनीय आत्म नियन्त्रण भी रखते हैं । इसका परिणाम होता है सामाजिक इच्छा एव शक्ति का भण्डार । उपयुक्त व्यक्तिया एव यान्त्रिक, क्षेत्रीय तथा पद्धतिमूलक तरीको द्वारा आवश्यक शासकीय सेवाओ को सम्पादित करने एव अकतव्यपरायण व्यक्तियो से दायित्व एव कतव्य कराने के लिए सामाजिक इच्छा व शक्ति के प्रयोग को प्रशासन कहते हैं । राजनीति एव प्रशासन म राजनीति का स्थान प्रथम है । प्रशासन शासन के राजनीतिक पहलू के अधीन है एव ऐसा होना भी ठीक है । अत फाइनर के अनुसार राजनीति+प्रशासन=शासन है ।[35]

आधुनिक समाज के व्यक्तिया की आर्थिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि अत्यधिक जटिल है । बडे आकार एव अधिक जनसख्या वाले राज्या के कारण समस्याएँ जटिलतर होती जाती है । कल्याणकारी राज्य की धारणा ने शासन के दायित्वो मे असाधारण वृद्धि की है । मुक्त व्यापार नीति का युग समाप्त हो चुका है। समाजवाद का शखनाद हो रहा है। अविकसित एव विकासवादी अथव्यवस्था वाले देशा मे आर्थिक और सामाजिक विषमता का उन्मूलन शासन का प्रधान दायित्व है । आर्थिक नियोजन द्वारा इस देशव्यापी सामाजिक विषमता एव अभाव को मिटाना चाहते है । अत शासन को अब उत्पादक एव वितरक के दायित्वो को भी निभाना है । प्रश्न हैं, क्या शासन इन वहद् बहुद्देशीय दायित्वा को निभा सकता है ?, क्या शासन की शक्तियो

34 Finer H *Theory and Practice of Modern Government*, 1956, p 6
35 'Government is politics plus administration "—*Ibid*, p 7

2

राज्यो एव सविधानो का वर्गीकरण
[CLASSIFICATION OF STATES AND CONSTITUTIONS]

राज्य एक सावभौम सत्य है । राज्य के अनेक प्रकार हैं । राज्य की प्रकृति एव उत्पत्ति के सम्बन्ध म जिस प्रकार विभिन्न मत प्रचलित हैं उसी प्रकार राज्य के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे भी तीव्र विवाद है । राज्य के वर्गीकरण सम्बन्धी दो मुख्य प्रश्न हैं

(1) राज्य के विभिन्न स्वरूपो को व्यक्त करने के लिए 'राज्य का वर्गीकरण' या 'शासन का वर्गीकरण' पदो म से किसका प्रयोग उचित है ?

(2) राज्यो के वर्गीकरण का सन्तोषजनक एव वैज्ञानिक आधार क्या हो सकता है ?

राज्य या शासन के वर्गीकरण मे से किस पद का सम्बोधन राज्य के वर्गीकरण के लिए उपयुक्त होगा ? इस प्रश्न के सम्बन्ध मे विद्वानो म पर्याप्त मतभेद है । विलोबी, गार्नर, गिलक्राइस्ट 'सरकारो का वर्गीकरण' पद का प्रयोग उचित मानते हैं । विलोबी का मत था कि 'राज्यो का वर्गीकरण' नामक कोई वस्तु सम्भव ही नही है । अपने मूल तत्वो मे सभी राज्य समान होते हैं । प्रत्येक राज्य के लिए प्रभुता अनिवायत आवश्यक है । लीकॉक आदि विद्वान विलोबी की उपर्युक्त धारणा से सहमत नही हैं । वे 'सरकारो के वर्गीकरण' की अपेक्षा 'राज्यो के वर्गीकरण' या 'सविधानों का वर्गीकरण' पद का प्रयोग करना उचित मानते हैं । विलोबी एव गार्नर आदि विद्वानो के इस तर्क से लीकॉक सहमत नही हैं कि शासन के सगठन एव स्वरूप तथा उद्देश्य द्वारा ही राज्य को जाना जा सकता है । डॉ आशीर्वादम ने लीकॉक से सहमति व्यक्त की है । उनका तर्क है कि शासन राज्य का अभिकर्ता या यन्त्र है । बिना राज्य के शासन की कल्पना ही नही की जा सकती ।[1] सी एफ स्ट्राग ने भी 'सविधानो का वर्गीकरण' पद का प्रयोग किया है । प्रसिद्ध यूनानी विद्वान अरस्तू ने भी अपनी रचना 'पॉलिटिक्स' मे सविधानो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । इसी परम्परा का अनुगमन करते हुए इस पुस्तक मे 'राज्यो एव सविधानो का वर्गीकरण' पद का प्रयोग किया गया है । सविधान के स्वरूप म परिवतन आने पर राज्य के स्वरूप मे स्वत ही परिवतन आ जाता है ।

द्वितीय प्रश्न यह है कि राज्यो के वर्गीकरण का सन्तोषजनक आधार क्या हो सकता है ? सभी राज्य अपनी प्रकृति, विधिक विशेषता एव मूल उद्देश्यो की दृष्टि से

1 Asirvatham E *Political Theory* (1965), p 342

समान होते हैं। जनसख्या, भूमि, सरकार एव प्रभुत्व सभी राज्यो के तत्व हैं तथा अनिवायत पाय जाते हैं। अत राज्यो का वर्गीकरण असम्भव है। जनसख्या एव भूमि राज्य की बाह्य विशेषताओ को अभिव्यक्त करते हैं। इनके आधार पर सन्तोषजनक एव वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत करना सम्भव नही है। गेटिल बाह्य तत्वों के आधार पर राज्यो के वर्गीकरण को विवरणात्मक मानता है तथा उन्हें वर्गीकरण के कम महत्व के आधार मानता है। जनसख्या एव भूमि के आधार पर राज्य क्रमश कम एव अधिक जनसख्या वाले राज्यो तथा छोटे एव बडे राज्यो मे वर्गीकृत किये जा सकते हैं। कुछ विचारको ने आकार (size) की दृष्टि से राज्यो को नगर-राज्य, राष्ट्र-राज्य एव विश्व राज्य तथा साम्राज्यो मे वर्गीकृत किया है। परन्तु यह केवल राज्यो के ऐतिहासिक रूपो का विवरण है न कि *राज्यो का तकसगत वर्गीकरण*। राज्यो को कमजोर एव शक्तिशाली राज्यो मे भी वर्गीकृत किया जाता है। सप्रभुता के आधार पर भी राज्यो का वर्गीकरण किया गया है—पूण प्रभुसत्तायुक्त राज्य, आशिक प्रभुसत्तायुक्त राज्य सरक्षित राज्य, तटस्थ राज्य एव अधीनस्थ राज्य। सैनिक, असैनिक, असभ्य सभ्य कजदार एव साहूकार राज्य का भी वर्गीकरण उपलब्ध है। इस प्रकार के वर्गीकरणो का राजनीतिशास्त्री के लिए कोई महत्व नही है क्योंकि ये तकसगत एव वैज्ञानिक वर्गीकरण नही हैं।

जलिनिक एव बर्गेस के मतानुसार राज्या के वर्गीकरण का श्रेष्ठतम आधार यह सिद्धान्त है कि राज्य की इच्छा किस प्रकार निर्मित एव अभिव्यक्त होती है अथात प्रभुसत्ता राज्य मे कहा अधिष्ठित है? इस सिद्धान्त के आधार पर ही अरस्तू का परम्परागत वर्गीकरण—राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र एव लोकतन्त्र—आधारित है। गेटिल इस वर्गीकरण को राज्य के सगठन पर आधारित मानता है। अरस्तू के वर्गीकरण का आधार सिद्धान्त न होकर सख्या एव मात्रा है। कुलीनतन्त्र एव लोकतन्त्र एक-दूसरे मे *इस प्रकार तिरोहित हो जाते है कि उनमे अन्तर करना कठिन है।* अनेक राज्यो म विभिन्न तत्वो का मिश्रण पाया जाता है अत अरस्तू के वर्गीकरण को आधुनिक राज्यो पर लागू करना भ्रामक है। अरस्तू का वर्गीकरण भी यथाथ म केवल सरकारो का ही वर्गीकरण है क्योकि यह राज्य के सगठन की प्रकृति (या शासन) पर आधारित है।[3] शासन द्वारा राज्य का सचालन किया जाता है। राज्य की सर्वोच्च शक्ति एव

2 Gettell R G *Political Science* 1956 p 191

3 'To (Aristotle s) classification several objections may be urged The basis is quantitative and numerical rather than one of principle Aristocracy and democracy shade off into one another in such a way that a clear distinction between them is hard to make Many states combine elements of various forms and any attempt to apply this classification to existing states would lead to wide difference of opinions Finally, this classification also is in reality based upon the nature of the state s organization and is actually a classification of governmental forms —*Ibid* p 193

इच्छा इसके द्वारा अभिव्यक्त होती है । शासन के स्वरूप म थोडा सा परिवतन व्यापक रूप से राज्य के स्वरूप को प्रभावित करता है ।

गेटिल ने इस सत्य को व्यक्त करते हुए कहा है कि "राज्य की प्रमुख विशेषता उसकी राजनीतिक एव विधिक प्रकृति है। यह उसके शासन-सगठन मे अभिव्यक्त होती है । अत राज्यो का पूण सन्तोषजनक वर्गीकरण शासन के स्वरूपा के अन्तर एव समानताओ पर आधारित होता है । अत यह राज्यो का नही अपितु सरकारो का वर्गीकरण है । यह कहा जाता है कि राज्यो का अस्तित्व सरकारो के द्वारा अभिव्यक्त होता है और अन्य किसी उचित आधार को ढूढना कठिन है। अत सरकारो का वर्गीकरण ही राज्यो का वर्गीकरण है ।"[4]

राज्य वर्गीकरण की विभिन्न योजनाएँ

राज्यो के वर्गीकरण का सबसे प्राचीन उल्लेख यूनानी इतिहासकार **हिरोडोटस** की रचना मे मिलता है । वह राज्य के तीन प्रकार मानता है—एकतन्त्र या निरकुशतन्त्र, कुलीनतन्त्र एव लोकतन्त्र । **हिरोडोटस** के अनुसार निरकुश शासक के आततायी एव अत्याचारी शासन के फलस्वरूप उसका पतन हो जाता है तथा लोकतन्त्र की स्थापना होती है जिसमे विधि के समक्ष सभी समान होते हैं । लेकिन लोकतन्त्र शीघ्र ही भीडतन्त्र या समूह के शासन मे परिवर्तित हो जाता है । अत **हिरोडोटस** के अनुसार कुछ निर्वाचित व्यक्तियो का शासन सदा अच्छा होता है परन्तु एक योग्य एव श्रेष्ठ व्यक्ति के शासन से कोई शासन श्रेष्ठ नही होता ।[5]

सुकरात का वर्गीकरण

सुकरात लोकतन्त्र का घोर निन्दक था । वह शासन को कला मानता था । कला के लिए ज्ञान अपक्षित है । लोकतन्त्र म ऐसा ज्ञान प्राप्त नही हो सकता क्योकि विधानमण्डल एव अधिकारी अयोग्य हाते हैं । सुकरात के अनुसार शासक मे प्रजा के प्रति कल्याण की नि स्वाथ भावना होनी चाहिए जो एक निरकुश शासक म सम्भव नही है । सुकरात ने राज्यो को दो भागो मे बाटा है—एक, जिसम शासक नि स्वार्थी एव बुद्धिमान होते हैं, और दूसरे, जो स्वार्थी एव मूख होते हैं । उसने शासन के तीन मुख्य रूप माने हैं एकतन्त्र, कुलीनतन्त्र व लोकतन्त्र। उसने पुन एकतन्त्र व कुलीनतन्त्र के उपविभाग अच्छे एव बुरे शासनो के रूप मे किये हैं । इस प्रकार शासन के पाच मुख्य भाग है ।

एकतन्त्र (Monarchy) मे राजा प्रजा की अनुमति से शासन करता है एव विधि का सम्मान करता है । यदि राजा उत्पीडक एव अत्याचारी हो जाता है तो वह एकतन्त्र का विकृत रूप होता है । उसे अत्याचारतन्त्र (Tyranny) कहते हैं । यदि किसी राज्य का शासन एक वग विशेष के योग्य एव सक्षम व्यक्तियो के हाथो मे होता है

---

4 'It may be urged that since states manifest their existence only through their governments and since on no other basis can they be properly distinguished, a classification of governments is in essence a classification of states "—Gettell *Ibid*, pp 191 92

5 Herodotus *History*, Book III, Chaps 80 82

तो वह शासन कुलीनतन्त्र (Aristocracy) होता है। यदि इसके विपरीत शासन स्वार्थी धनिक वर्ग के हाथो मे है तो वह अल्पतन्त्र (Oligarchy) कहलाता है। सुकरात लोकतन्त्र (Democracy) को अयोग्य एव क्षमताहीन व्यक्तियो का शासन मानता था। उसने एकतन्त्र व कुलीनतन्त्र को श्रेष्ठ शासन बताया है और शेष तीन को निकृष्ट शासन।

प्लेटो का वर्गीकरण

प्लेटो ने राज्य के वर्गीकरण की दो योजनाएँ प्रस्तुत की—एक 'आदर्श राज्य'—रिपब्लिक *(The Republic)* मे और दूसरी 'राजपुत्र'—स्टेटसमैन *(The Statesman)* मे। रिपब्लिक म प्लेटो सर्वोच्च प्रत्यय (Idea) या विवेक की प्रभुता स्थापित करता है। इसे वह विवेकतन्त्र (Ideocracy) की सज्ञा देता है। यह पूर्ण ज्ञान (perfect knowledge) का राज्य है। ज्ञान ही इसमे सप्रभु है। प्लेटो के अनुसार ऐसा आदर्श राज्य भूतल पर असम्भव है। फिर भी वह उसे ऐसा आदर्श मानता है जिसका परित्याग नही किया जाना चाहिए। रिपब्लिक' मे वर्णित आदर्श राज्य मे वह दर्शन का शासन मानता है। दर्शन विशुद्ध ज्ञान है अत वह दार्शनिक शासक का विधान करता है। इसे हम आदर्श राजतन्त्र या कुलीनतन्त्र की सज्ञा दे सकते हैं। प्लेटो ने इस आदर्श राज्य के आधार पर यथार्थ राज्य के निम्न रूपो मे क्रमश परिवर्तन का उल्लेख किया है। आदर्श राज्य का सैनिक राज्य (Timocracy) एव सैनिक राज्य का धनिक अल्पतन्त्र (Oligarchy) मे पतन हो जाता है। *धनिक अल्पतन्त्र का भी पतन होता है और उसका* स्थान लोकतन्त्र ले लेता है जो स्वय मे पतित होकर भीडतन्त्र मे परिवर्तित हो जाता है।

'स्टेट्समैन' (राजपुत्र) नामक अपनी रचना मे प्लेटो ने राज्य का वर्गीकरण विशद रूप मे उपस्थित किया है। इस वर्गीकरण मे दो बातें स्पष्ट हैं। यथार्थ राज्यो को आदर्श राज्यो से पृथक कर दिया गया है और लोकतन्त्र को 'रिपब्लिक' ग्रन्थ की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। 'रिपब्लिक' मे आदर्श राज्य शीर्ष पर था एव यथार्थ राज्यो को क्रमश पतित रूपो मे व्यक्त किया गया था। 'रिपब्लिक म वर्णित दार्शनिक राजा द्वारा शासित आदर्श राज्य पारलौकिक राज्य बन जाता है एव वह मानवीय क्षमता के परे होता है। मानवीय अनुगमन के लिए आदर्श राज्य एक नमूना बन जाता है। वह आदर्श म है, यथार्थ मे उसकी उपलब्धि सम्भव नही है। स्टेटसमैन म प्लेटो यथार्थ राज्यो को दो भागो मे वर्गीकृत करता है (1) विधिपालक राज्य (Law abiding States) अर्थात् अच्छे राज्य एव (2) वे राज्य जिनम विधि का पालन नही किया जाता (Arbitrary States) अर्थात बुरे राज्य। प्लेटो इन दोना प्रकार के राज्यो के दो-दो उपविभाग करता है। अत प्लेटो ने छ प्रकार के राज्या का उल्लेख किया है जिनमे तीन विधिपालक राज्य हैं और तीन विधिहीन भ्रष्ट राज्य हैं।[6] इसी वर्गीकरण का अरस्तू ने अपने ग्रन्थ 'पालिटिक्स मे अनुगमन किया है। गिलक्राइस्ट ने प्लेटो के राज्य वर्गीकरण सम्बन्धी विचारो को निम्न तालिका[7] द्वारा व्यक्त किया है

6 Sabine *A History of Political Theory* 1957 p 76
7 Gilchrist *Principles of Political Science* 1930, p 227

राज्यसत्ता धारण करने वालो की सख्या	विधिपालक राज्य	राज्य जिनमे विधियो का पालन नहीं होता
एक व्यक्ति का शासन (Rule by One)	राजतन्त्र (Monarchy)	अत्याचारतन्त्र (Tyranny)
कुछ व्यक्तियो का शासन (Rule by Few)	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	अल्पतन्त्र (Oligarchy)
बहुतो का शासन (Rule by Many)	उदार लोकतन्त्र (Moderate Democracy)	उग्र लोकतन्त्र (Extreme Democracy)

प्लेटो कृत 'दि लॉज' (*The Laws*) नामक ग्रन्थ मे वर्णित राज्य विधि प्रधान राज्य है। प्लेटो लॉज' वर्णित राज्य म कानून की सप्रभुता को मानवीय कमजोरी के रूप मे स्वीकार करता है । प्लेटो ने 'रिपब्लिक' मे वर्णित आदश राज्य मे विधि को बहिष्कृत कर दिया था, लेकिन 'लॉज' म ज्ञान के मूर्तिमान रूप दाशनिक राजा का स्थान वह विधि को दे देता है । यही उसका उप आदश राज्य है । विधिपालक राज्यो मे प्लेटो लोकतन्त्र को सर्वोत्तम समझता है यद्यपि विधि का पालन करने वाले राज्यो मे वह निम्न श्रेणी मे है । लोकतन्त्र के दोनो रूप धनिक अल्पतन्त्र की तुलना मे अच्छे हैं।

अरस्तू का वर्गीकरण

राज्यो के वर्गीकरण की प्राचीन योजनाओ मे अरस्तू का वर्गीकरण सबसे अधिक प्रसिद्ध है । अरस्तू प्लेटो के उपर्युक्त वर्णित वर्गीकरण से काफी प्रभावित था । अरस्तू का वर्गीकरण प्लेटो की भाति दो सिद्धान्तो पर आधारित है—प्रथम, सख्या का सिद्धान्त अर्थात प्रभुसत्ता को धारण करने वाले शासक वग की सख्या , एव द्वितीय, उद्देश्य का सिद्धान्त अर्थात उद्देश्य जिसके लिए शासक-वग प्रभुसत्ता का प्रयोग करता है । इसमे अरस्तू अपना तीसरा सिद्धान्त—समय-चक्र का सिद्धान्त—जोड देता है ।[8] स्मरणीय है कि अरस्तू इतिहास का विद्यार्थी था और उसके कथन एव निष्कप पयवेक्षण पर आधारित थे ।

राज्यसत्ता को धारण करने वाले एक व्यक्ति, कुछ व्यक्ति एव बहुत-से व्यक्ति हो सकते हैं । उद्देश्य की दृष्टि से उसने राज्य को दो वर्गो—अच्छे एव बुरे या सामान्य एव विकृत राज्य—मे वर्गीकृत किया है । सामान्य राज्य वह है जिसमे शासक वग द्वारा सत्ता का प्रयोग स्वाथ रहित होकर सामान्य कल्याण के लिए किया जाता है । इसके विपरीत, शासक वग जब निजी स्वाथ के लिए ही सत्ता का प्रयोग करते हैं तब वह राज्य का पतित या विकृत रूप होता है । शासक-वग जब सवहिताय शासन करते हैं तो अरस्तू एक व्यक्ति के शासन को एकतन्त्र, कुछ व्यक्तियो के शासन को कुलीन तन्त्र एव बहुत से व्यक्तियो के शासन को मर्यादित लोकतन्त्र की सज्ञा देता है । लेकिन जब शासक द्वारा सत्ता का दुरुपयोग किया जाता है और केवल शासको के

8 Wilson *The State* (1898), Sec 1397, pp 577 78

स्वार्थों की पूर्ति की जाती है तो सामान्य शासन क्रमश अत्याचारतन्त्र, अल्पतन्त्र एव भीडतन्त्र मे परिणत हो जाते हैं। यह राज्य के विकृत रूप है। अरस्तू के उपयुक्त वर्गीकरण की तालिका निम्नवत है

संविधान का स्वरूप / शासक वर्ग की संख्या	शासन का सामान्य रूप (Normal, Good or True form) सामान्य हित मे शासन	शासन का विकृत रूप (Bad or Perverted form) केवल शासक-वर्ग के निजी हित मे शासन
एक व्यक्ति का शासन	राजतन्त्र (Monarchy)	अत्याचारतन्त्र (Tyranny or Despotism)
कुछ व्यक्तियो का शासन	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	अल्पतन्त्र (Oligarchy)
बहुसंख्यका का शासन	सवैधानिक लोकतन्त्र (Polity)	लोकतन्त्र (Democracy)

अरस्तू का यह वर्गीकरण व्यापक अध्ययन पर आधारित है। उसने अपने समय के 158 यूनानी एव अन्य सविधानो का अध्ययन किया था। उसका मत था कि सरकार के स्वरूपो मे परिवतन एक क्रम मे आते है। वास्तव मे, इस वर्गीकरण के द्वारा उसने सरकारो के स्वाभाविक विकास क्रम को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। अरस्तू का कथन है कि सवप्रथम शासन का स्वरूप राजतन्त्र था। सम्भवत इसका कारण यह था कि पहले नगर छोटे थे और उनमे गुण सम्पन्न व्यक्ति कम थे, अत वे ही राजा नियुक्त किये जाते थे। वे परोपकारी भी होते थे और सज्जन पुरुषो द्वारा ही कल्याण सम्भव है। लेकिन जब समान गुण सम्पन्न व्यक्तियो की सख्या म वृद्धि हुई और प्रत्येक के द्वारा दूसरे की श्रेष्ठता को अस्वीकार किया जान लगा तो उनमे राज्य की स्थापना की इच्छा उत्पन्न हुई और उन्होने सविधान का निर्माण किया। सत्तारूढ वग शीघ्र ही पतित हो गया और सावजनिक धन से अपने को धनी बनाने लगा। धन सम्मान का कारण बना अत अल्पतन्त्र का उदय हुआ। अल्पतन्त्र अत्याचारतन्त्र मे और अत्याचारतन्त्र लोकतन्त्र म परिणत होते गये क्योकि शासक वग की सख्या म लोभ की भावना के कारण निरन्तर कमी होती चली गयी। अन्त मे जनता ने सगठित होकर शासको पर आक्रमण करके उन्हे अपदस्थ कर लोकतन्त्र की स्थापना की।[9]

अरस्तू के सरकारो के परिवतन चक्र द्वारा तत्कालीन यूनानी नगर राज्यो की राजनीतिक दशा को प्रतिबिम्बित किया गया है। अरस्तू के राजनीतिक परिवतनो के क्रम के अनुसार एक व्यक्ति का शासन जब भ्रष्ट होकर अत्याचारतन्त्र मे परिणत हो जाता है तो थोडे-से व्यक्ति सामान्य कल्याण के भाव से प्रेरित होते है और शासन पर स्वत्व स्थापित कर लेते हैं। यह कुछ व्यक्तियो का सामान्य कल्याण म

9 Aristotle *The Politics* Bk III Chaps VII and XV, Edited by J A Sinclair, 1962, pp 101 149

कुलीनतन्त्रीय शासन है। लेकिन यह भी दीर्घजीवी नही रहता। कुछ व्यक्तियो के शासन का भी भ्रष्ट होना अस्वाभाविक नही है। कुलीनतन्त्र शक्ति एव भ्रष्ट तरीको से सत्ता का निजी स्वार्थ म प्रयोग करते हुए अपनी सत्ता कायम रखता है। इसे अरस्तू अल्पतन्त्र कहता है। अन्त म इस घृणित शासन के विरुद्ध जन विद्रोह होता है और अल्पतन्त्र का स्थान बहुसख्यको का शासन या सवैधानिक लोकतन्त्र ले लेता है। अरस्तू के अनुसार सवैधानिक लोकतन्त्र का भी शीघ्र पतन हो जाता है। वह सवजन हिताय शासन न रहकर बहुसख्यको का शासन हो जाता है। सवत्र अराजकता एव स्वच्छन्दता का साम्राज्य छा जाता है। इसे भीडतन्त्र की सज्ञा दी जा सकती है। अरस्तू इसे लोकतन्त्र की सज्ञा देता है। पुन अव्यवस्था-जनित स्थिति से क्षुब्ध होकर कोई गुण-सम्पन्न व्यक्ति व्यवस्था व शान्ति की स्थापना करता है। इस प्रकार परिवतन चक्र पूण होता है तथा नवीन चक्र पुन आरम्भ हो जाता है। स्मरणीय है कि अरस्तू का कुछ व्यक्तियो के शासन से अथ वास्तव मे धनिको के शासन से है एव बहुसख्यको के शासन से अथ निधनो के शासन से है।

आलोचना—अरस्तू के वर्गीकरण की निम्न प्रमुख आलोचनाएँ की जाती है

(1) प्रो सीले के अनुसार अरस्तू का वर्गीकरण आधुनिक राज्यो के लिए अनुपयुक्त है।[10] गिलक्राइस्ट ने इस विचार को निम्न शब्दो मे व्यक्त किया है—"आधुनिक सरकारो के लिए अरस्तू का वर्गीकरण अपर्याप्त है लेकिन परवर्ती सभी वर्गीकरणो को यह ऐतिहासिक आधार प्रदान करता है।"[11]

(2) अरस्तू का वर्गीकरण गानर के अनुसार "सरकारो के वर्गीकरण के रूप मे भी उपयुक्त नही है क्योकि इसका आधार कोई वैज्ञानिक सिद्धान्त नही है, जिसके अनुसार सरकार की मूल विशेषताओ एव सगठन के रूपो मे स्पष्ट अन्तर किया जा सके।' गानर के अनुसार यह राज्यो का वर्गीकरण है, न कि सरकारो का वर्गीकरण।[1]

(3) जर्मन विचारक वॉन मोल के अनुसार इस वर्गीकरण का आधारभूत सिद्धान्त सावयवी न होकर गणितीय और गुणमूलक न होकर सख्यामूलक है।[13] उदाहरण के लिए कुलीनतन्त्र व लोकतन्त्र मे केवल सख्या का अन्तर है।

---

10 "He knew only city states and they were 'marvellously unlike' the country states of modern times and therefore any classification which would put them in the same category would be of little value '—Seeley *Introduction to Political Science*, p 49, as referred by Garner *Political Science and Government*, p 225

11 Gilchrist *Principles of Political Science*, 1930, p 228

12 Garner *op cit*, p 225

13 Von Mohl *Encyclopedia of Political Science*, p 111, quoted by Garner *op cit* p 225

(4) विलसन का मत है कि कुलीनतन्त्र अब विकास-चक्र से हट गया है और एकतन्त्रीय व्यवस्था के बाद ही लोकतन्त्र की स्थापना हो जाती है।[14]

(5) लीकॉक[15] के अनुसार अरस्तू के वर्गीकरण का प्रयोग संवधानिक एवं सीमित एकतन्त्रीय राज्यों में नहीं किया जा सकता। यदि लोकतन्त्र से अर्थ ऐसे शासन से है जिसमें सत्ता जनता के हाथों में होती है और यदि दो देशों के शासनों के संगठन पर ध्यान न दिया जाये तो ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका लोकतन्त्र की श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत, ब्रिटेन में राजतन्त्र है अतः अरस्तू के वर्गीकरण के अनुसार वह एकतन्त्र के अन्तर्गत आता है। ऐसा करना केवल औपचारिक दृष्टि से ही ठीक होगा, व्यावहारिक रूप में कदापि नहीं।

(6) अरस्तू के वर्गीकरण में संघीय एवं असंघीय राज्यों का भेद नहीं रखा गया है और न विधानमण्डल एवं कार्यपालिका के वैधानिक सम्बन्धों पर आधारित शासन व्यवस्थाओं के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

(7) अरस्तू का वर्गीकरण मिश्रित शासन व्यवस्था वाले देशों पर लागू नहीं होता है। प्रो सीले के अनुसार इंगलैण्ड का संविधान तीनों शासन-तन्त्रों का सुन्दर मिश्रण है। इंगलैण्ड के संविधान में राजा है, लॉर्डसभा कुलीनतन्त्र का प्रतीक है तथा लोकसभा लोकतन्त्र का प्रतिनिधित्व करती है। अरस्तू का वर्गीकरण ऐसे राज्य पर लागू नहीं हो सकता।

समीक्षा—वॉन मोल की उपर्युक्त आलोचना का प्रत्युत्तर बर्गेस ने दिया है। वह वॉन मोल की आलोचना को अनुचित, अशुद्ध एवं असावधानीयुक्त मानता है। बर्गेस के अनुसार अरस्तू का वर्गीकरण जहाँ तक राज्यों के वर्गीकरण का आधार है, उचित व तर्कयुक्त है। बर्गेस इस आलोचना को स्वीकार नहीं करता कि अरस्तू का वर्गीकरण केवल संख्यामूलक है, या वह सावयवी या गुणात्मक नहीं है। उसका तर्क है कि संख्या एवं अनुपातों (proportions) का प्रयोग तो केवल यह सिद्ध करने के लिए किया गया है कि जनता में राज्य सम्बन्धी जागरूकता शनैः शनैः कैसे व्यापक होती है एवं कितनी मात्रा में उसका विकास होता है। अतः राजनीतिक चेतना से युक्त व्यक्तियों की संख्या तथा उनके द्वारा राज्य एवं शासन के कार्यों[16] में भाग लेने के कारण राज्य का सावयवी स्वरूप निश्चित होता है।

अरस्तू द्वारा शासन के उद्देश्य के आधार पर सामान्य व विकृत राज्यों में भेद शासन के गुणात्मक पहलू पर बल देता है।

अरस्तू की मुख्य समस्या यह थी कि इसमें राज्य के स्वरूप की खोज की जाय

---

14 Wilson *op cit*, p 578
15 Leacock *Elements of Political Science* 1929 pp 112 13
16 Burgess as quoted by Garner *op cit*, p 225 (Burgess *Political Science and Constitutional Law* p 72)

जिससे परिवर्तन-चक्र का अन्त हो जाय। मध्यम वर्ग का शासन, जिसे वह सवैधानिक लोकतन्त्र (Polity) कहता है, ऐसा ही शासन था। इसे वह मिश्रित सविधान (Mixed Constitution) की सज्ञा देता है।

अरस्तू के पश्चात लगभग 1500 वर्षों तक उसी के सिद्धान्तो के आधार पर विद्वान राज्यो का वर्गीकरण करते रहे हैं। सिसेरो पोलिबियस मैकियावेली, बोदा, जान लाक, रूसो आदि सभी विचारक इस सम्बन्ध म अरस्तू से प्रेरणा लेते रहे हैं। आधुनिक विद्वानो के वर्गीकरण म भी अरस्तू के सिद्धान्तो की स्पष्ट झलक दिखायी देती है। अरस्तू के बाद भी अनेक विचारको ने राज्यो को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।

अन्य विचारको के वर्गीकरण

पोलिबियस ने राज्यो के परम्परागत वर्गीकरण को ही स्वीकार किया है। वह प्लेटो एव अरस्तू से इस सम्बन्ध मे प्रभावित है। राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र एव प्रजातन्त्र को वह राज्यो का शुद्ध या सामान्य स्वरूप मानता था तथा अत्याचारतन्त्र अल्पतन्त्र एव भीडतन्त्र इनके विकृत रूप थे। उसके अनुसार शुद्ध या सामान्य रूपो के बाद राज्य के विकृत रूप परिवर्तन-चक्रक्रम म आते रहते हैं। अत राज्यो के परिवर्तन का क्रम राजतन्त्र, अत्याचारतन्त्र, कुलीनतन्त्र, अल्पतन्त्र, लोकतन्त्र एव भीडतन्त्र है। लेकिन शीघ्र ही भीडतन्त्र के अन्याय एव अत्याचारो का विरोध करने के लिए एक साहसी नेता का आविर्भाव होता है। जनता के समर्थन से वह शासन पर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। एक चक्र के पूर्ण होने पर दूसरा चक्र चलने लगता है।

शासन मे स्थिरता लाने एव परिवर्तन चक्र को रोकने के लिए पोलिबियस ने मिश्रित सविधान की धारणा को उपस्थित किया है अर्थात विभिन्न शासन प्रणालियो के श्रेष्ठ तत्वो का मिश्रण किया है। उसके अनुसार शासन म अवरोध एव सन्तुलन (checks and balances) की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे शासन प्रणाली को नष्ट करने वाले तत्वो का विरोध दूसरे तत्व करते रहे एव उसे विनाश से बचाते रहे। पोलिबियस के अनुसार यूनानी विधिवेत्ता लाइकूरगस (Lucurgus) ने स्पार्टा के शासन मे यह व्यवस्था सफलतापूर्वक की थी। गणतन्त्रीय रोम के मिश्रित सविधान की पोलिबियस ने भूरि भूरि प्रशसा की है क्योकि इससे रोम म स्थिरता स्थापित हो सकी थी। रोम के मिश्रित सविधान मे तीनो प्रकार की सरकारो का सम्मिश्रण था। कॉसल (Consuls) राजतन्त्र के सिद्धान्त का, सीनेट कुलीनतन्त्र का तथा असेम्बली लोकतन्त्र के सिद्धान्तो का प्रतिनिधित्व करती थी और एक अग दूसरे पर अवरोध का कार्य करता था। परिणामस्वरूप स्थायित्व सम्भव हो सका था।

यद्यपि प्लेटो एव अरस्तू ने मिश्रित सविधान की चर्चा की है परन्तु पोलिबियस ने सर्वप्रथम रोमन साम्राज्य के अनुभव के आधार पर उसके गुणो की विशद व्याख्या की और अवरोध एव सन्तुलन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। डनिंग के अनुसार शासन की अस्थिरता दूर करने के लिए प्लेटो एव अरस्तू न विभिन्न शासन प्रणालियो

न तत्वो का सम्मिश्रण करने का सुझाव दिया है किन्तु पोलिबियस स्थायित्व के लिए शासन के तीनो अगो में परस्पर विरोध को आवश्यक मानता था।[17]

स्मरणीय है कि पोलिबियस के उपर्युक्त निष्कर्षों का सम्बन्ध रोम के गण राज्य की विशेष शासन व्यवस्था से ही है।

सिसेरो ने भी मिश्रित सविधान तथा अवरोध एव सन्तुलन के सिद्धान्त की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। रोमन विचारक सिसरो की पोलिबियस की भाँति इस क्षेत्र म कोई मौलिक देन नही है। सिसेरो के काल म पोलिबियस द्वारा प्रशासित रोमन *गणराज्य पतनोन्मुख था। पोलिबियस के मिश्रित सविधान एव शासन* प्रणालियो के परिवतन-चक्र के सम्बन्ध म सिसेरो ने उसका सामान्यत अनुसरण किया है। उसने एक अतिरिक्त मत भी प्रस्तावित किया है। उसने शासन के तीन अगो को तीन सिद्धान्तो का प्रतीक माना है। कासल (राजतन्त्र) सत्ता के सिद्धात का, सीनेट (कुलीनतन्त्र) सम्मान एव प्रभाव का, असेम्बली (लोकप्रिय जनसभा) स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का प्रतीक है। जब इन तीनो सिद्धान्तो म समन्वय होता है तभी व्यवस्था एव स्थायित्व सम्भव है। सिसेरो गेटिल के अनुसार राजतन्त्र को श्रेष्ठतम, कुलीनतन्त्र को उसके पश्चात एव लोकतन्त्र को निकृष्टतम स्थान देता है।[18]

आधुनिक युग के कुछ मुख्य वर्गीकरण

आधुनिक युग के प्रारम्भ मे फ्रासीसी विद्वान जाँ बोदा मुख्य विचारक है जिसने राज्यो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उसके वर्गीकरण का आधार राज्य के प्रभुत्व को धारण करने वालो की सख्या है। जब प्रभुसत्ता एक व्यक्ति के हाथो मे होती है तो उसे एकतन्त्र, जब नागरिको के बहुमत से कम व्यक्तियो के हाथो मे होती है तो उसे कुलीनतन्त्र और जब प्रभुसत्ता बहुसख्यक व्यक्तियो के हाथो मे होती है तो उसे लोकतन्त्र कहते हैं।

बोदा ने राजतन्त्र को तीन वर्गों मे विभक्त किया है—शाही या शुद्ध राजतन्त्र, निरकुश राजतन्त्र एव अत्याचारी राजतन्त्र। शाही राजतन्त्र मे बोदा के अनुसार *प्रजा स्वेच्छा से राजा के द्वारा निर्मित नियमो का पालन करती है*, शासक ईश्वर एव प्रकृति के नियमो के अनुसार शासन करता है तथा प्रजा के अधिकार व सम्पत्ति सुरक्षित रहते हैं। बोदा इसे राजतन्त्र का श्रेष्ठतम रूप मानता है।

निरकुश राजतन्त्र मे राजा प्रजा पर उसी प्रकार शासन करता है जिस प्रकार प्राचीनकाल मे कुलपिता दासो पर शासन करता था। अत्याचारी राजतन्त्र मे राजा प्रजा के ऊपर मनमाने ढग से शासन करता है तथा वह प्रकृति एव समाज के कानूनो की अवहेलना करता है।[19]

---

17 Dunning, W A *History of Political Theories* (Indian edn, 1966), pp 117-118

18 Gettell *History of Political Thought*, (Hindi version, 1960), p 106

19 Sabine *op cit*, p 346

थॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes) के वर्गीकरण में कोई नवीनता नहीं है। अरस्तू के वर्गीकरण की तुलना में हॉब्स का वर्गीकरण घटिया है। अरस्तू की भाँति राज्य के लक्ष्य या उद्देश्य को हॉब्स महत्व नहीं देता। हॉब्स के वर्गीकरण का आधार एक, कुछ या बहुत व्यक्तियों के हाथों में सम्प्रभुता का होना है। हॉब्स के अनुसार यदि प्रभुत्व का प्रतिनिधित्व एक व्यक्ति करता है तो वह राजतन्त्र है। यदि सभी व्यक्तियों की सभा के हाथों में प्रभुत्व है तो उसे लोकतन्त्र (Popular Commonwealth) और यदि सभी व्यक्तियों के एक अंग के हाथों में प्रभुत्व है तो उसे कुलीनतन्त्र कहेंगे। हॉब्स अत्याचारतन्त्र (Tyranny), अल्पतन्त्र (Oligarchy) एवं अराजकता की अवस्था से अपरिचित नहीं था, लेकिन वह इन्हें पृथक राज्य के स्वरूपों के रूप में स्वीकार नहीं करता।

जॉन लॉक (John Locke) के अनुसार शासन का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि विधायी शक्ति किस अंग में निहित है। जॉन लॉक विधायी शक्ति को ही प्रमुख मानता था। यदि समाज के बहुसंख्यकों द्वारा विधि निर्माण की शक्ति का प्रयोग स्वयं किया जाता है और विधि को अपने द्वारा नियुक्त अधिकारियों से क्रियान्वित कराया जाता है तो यह शुद्ध लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली है। यदि विधि-निर्माण की शक्ति समाज के थोड़े से व्यक्तियों अथवा उनके उत्तराधिकारियों के हाथों में है तो वह अल्पतन्त्र है। यदि शक्ति एक व्यक्ति के हाथ में है तो वह राजतन्त्र है। अतः लॉक ने राज्यों को राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र एवं लोकतन्त्र में वर्गीकृत किया है। राजतन्त्र को उसने वंशानुगत एवं निर्वाचित दो वर्गों में विभाजित किया है।

मोन्टेस्क्यू (Montesquieu) ने राज्य को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है: गणराज्य (Republic), राजतन्त्र (Monarchy), एवं निरंकुशतन्त्र (Despotism)। गणतन्त्रीय व्यवस्था के उसने दो उपविभाग किये हैं: लोकतन्त्रीय (Democratic) एवं कुलीनतन्त्रीय (Aristocratic)।

गणतन्त्रीय व्यवस्था में सम्प्रभुत्व शक्ति सम्पूर्ण व्यक्तियों के निकाय में या उनके एक भाग में निहित होती है। राजतन्त्रीय व्यवस्था में एक व्यक्ति स्थापित विधि के अनुसार शासन करता है। निरंकुशतन्त्र में एक व्यक्ति बिना किसी विधि या नियम के अपनी इच्छा के अनुसार शासन करता है। मोन्टेस्क्यू के अनुसार प्रत्येक शासन का एक विशेष सिद्धान्त से सम्बन्ध है। सार्वजनिक सेवा (civil virtue) का भाव लोकतन्त्र का, सम्मान (honour) राजतन्त्र का एवं भय (slavishness) निरंकुशतन्त्र का आधारभूत सिद्धान्त है।[20] मोन्टेस्क्यू ने एकात्मक एवं संघात्मक तथा संसदीय एवं असंसदीय सरकारों का भेद नहीं किया है। सेबाइन के अनुसार मोन्टेस्क्यू का उपर्युक्त वर्गीकरण निरीक्षण पर आधारित नहीं है और न तुलनात्मक ही है और न [illegible] हैरिंगटन के वर्गीकरण से ही तुलना की जा सकती है जिसमें कि राज्यों का भू-स्वामित्व (land tenure) के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। मोन्टेस्क्यू ने भी समस्त [illegible]

---

20 Montesquieu *Spirit of Laws* Book II Ch I Refer to G. H. Sabine *A History of Political Theory*, 1957, p. 469

फ्रांस की राजनीतिक समस्याओं से प्रभावित होकर अपना वर्गीकरण का केवल कल्पना पर आधारित किया है।[1]

रूसो ने राज्यों को राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र एवं लोकतन्त्र में वर्गीकृत किया है। कुलीनतन्त्र को उसके द्वारा प्राकृतिक (natural), निर्वाचित (elective) एवं वंशानुगत (hereditary) में वर्गीकृत किया है। रूसो प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का समर्थक था।

जर्मन विचारक ब्लुटश्ली (Bluntschli)[22] ने अरस्तू के वर्गीकरण को स्वीकार किया है। किन्तु वह उसमें धर्मतन्त्र या देवतन्त्र (Theocracy) के एक और वर्ग को बढ़ा देता है। देवतन्त्र का पतित रूप मूर्तितन्त्र (Idolocracy) है। ब्लुट्श्ली के अनुसार देवतन्त्र में किसी मानवीय सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता, अपितु सर्वोच्च सत्ता ईश्वर या किसी देवता (God) या किसी अन्य देवपुरुष या प्रत्यय (Idea) में निहित होती है। शासक वर्ग सम्प्रभुता को धारण नहीं करते अपितु वे अदृश्य सत्ता के सेवक या उपाधिकारी (Viceregent) होते हैं। यूरोप में मध्य युग में पोप का शासन इसका एक उदाहरण है। ब्लुटश्ली के वर्गीकरण को गार्नर ने अवैज्ञानिक[23] एवं लीकॉक[24] ने भ्रामक बताया है।

19वीं सदी के जर्मन विचारक रॉबर्ट वान मोल (Robert Von Mohl) ने राज्यों को पितृसत्तात्मक (Patriarchal), धर्मतन्त्र (Theocratic), निरंकुशतन्त्र (Despotic), प्राचीन राज्य (Classic), सामन्ती (Feudal) एवं संवैधानिक (Constitutional) वर्गों में विभाजित किया है। वान मोल के वर्गीकरण[25] का आधार ऐतिहासिक है।

इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि शासन के विभिन्न वर्ग एक दूसरे का अतिक्रमण करते हैं। इसमें राज्य व सरकार के बीच भेद करने का प्रयत्न भी नहीं किया गया है। गार्नर के अनुसार यह किसी वैधानिक आधार पर आधारित नहीं है और न ही इसका व्यावहारिक मूल्य है।[26]

मेरियट का वर्गीकरण

वर्तमान लेखकों में सर जे ए आर मेरियट का वर्गीकरण[27] उसके समय तक के सभी वर्गीकरणों में श्रेष्ठ माना जाता है। उसने आधुनिक राज्यों का निम्नलिखित तीन पृथक् आधारों पर वर्गीकरण किया है

(1) क्या राज्य एकात्मक है या संघात्मक ?

---

21 Sabine *Ibid*, p 469
22 Bluntschli *Theory of the State*, Book VI quoted by Garner *op cit* pp 230 31
23 Garner *Political Science* (1951) p 231
24 Leacock *Elements of Political Science*, 1929 p 114
25 Von Mohl *Encyclopedia of Political Sciences*, Sec 15 43 44, 47, 48, 50 cited by Garner *op cit*, p 230
26 Garner *op cit* p 230
27 Marriot J A R *English Political Institutions*, (Fourth edn, 1955), pp 15 25

(2) क्या राज्य का संविधान दुष्परिवर्तनीय (rigid) है या सुपरिवर्तनीय (flexible) ?

(3) क्या शासन का स्वरूप संसदीय (parliamentary) अर्थात उत्तरदायी है या असंसदीय (non parliamentary) अर्थात राजतन्त्रीय (monarchial) या अध्यक्षात्मक (presidential) है ?

एकात्मक एवं संघात्मक का अन्तर शक्तियों के विभाजन (division of power) पर आधारित है। दुष्परिवर्तनीय एवं सुपरिवर्तनीय वर्गीकरण संविधान में संशोधन की प्रणाली पर आधारित है। तीसरे वर्गीकरण का आधार कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के पारस्परिक सम्बन्ध हैं। कार्यपालिका यदि व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है तो उसे संसदीय प्रणाली या मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली या उत्तरदायी शासन की संज्ञा दी जाती है। जहाँ कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका एक दूसरे से स्वतन्त्र और पृथक होते हैं अर्थात शासन के अंगों के पारस्परिक सम्बन्ध शक्ति पृथक्ककरण पर आधारित होते हैं उसे अध्यक्षात्मक प्रणाली कहते हैं। राजतन्त्र में एक व्यक्ति का शासन होता है परन्तु वह वंशानुगत आधार पर नियुक्त होता है। फ्रांस एकात्मक राज्य और संयुक्त राज्य अमेरिका संघात्मक राज्य के उदाहरण हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान कठोर है तो इंगलैण्ड व न्यूजीलैण्ड के संविधान सुपरिवर्तनीय या लचीले हैं। इंगलैण्ड, भारत कनाडा आदि देश संसदीय व्यवस्था के तथा संयुक्त राज्य अमेरिका अध्यक्षात्मक व्यवस्था के उदाहरण हैं। अफगानिस्तान[28] एवं नेपाल में राजतन्त्र है। इंगलैण्ड में संसदीय व्यवस्था होते हुए भी वहाँ संवैधानिक राजतन्त्र है।

अमेरिका में राष्ट्रपति है। भारत में भी राष्ट्रपति है परन्तु उसकी स्थिति ब्रिटिश राजा के समकक्ष है। संसदीय व्यवस्था में दो कार्यपालिकाएं—नाममात्र की एवं वास्तविक—होती हैं। नाममात्र की कार्यपालिका राज्याध्यक्ष का कार्य सम्पादित करती है। अमरिकी राष्ट्रपति जो अध्याक्षात्मक कार्यपालिका है, राज्य व शासन दोनों का ही अध्यक्ष होता है।

स्टीफेन लीकाक का वर्गीकरण

प्रो० स्टीफेन लीकॉक[29] ने मैरियट से मिलता जुलता परन्तु उससे कहीं व्यापक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उसने आधुनिक राज्यों को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया है—निरंकुश (Despotic) एवं लोकतन्त्रीय (Democratic)। लोकतन्त्रीय राज्यों के उसने दो भेद किये हैं—संवैधानिक राजतन्त्र एवं गणराज्य। संवैधानिक राजतन्त्र में प्रभुसत्ता जनता में निवास करती है। वंशानुगत आधार पर राज्य का अध्यक्ष होने पर भी राजा नाममात्र का शासक होता है। उसकी शक्तियों का प्रयोग अन्य लोकतन्त्रीय संस्थाओं द्वारा किया जाता है। संवैधानिक राजतन्त्र का इंगलैण्ड सर्वोत्तम उदाहरण है। गणराज्य में राज्य का अध्यक्ष जनता द्वारा निश्चित काल के

---

28 अफगानिस्तान में जुलाई 1973 में क्रान्ति द्वारा राजतन्त्रीय व्यवस्था का अन्त कर दिया है और गणराज्य की स्थापना की घोषणा की गयी है।

29 Leacock, Stephen *Elements of Political Science*, 1929, p 117

लिए चुना जाता है। उपरोक्त दोनो प्रकार के पुन दो भेद किये गये हैं—एकात्मक एव सघात्मक। एकात्मक एव सघात्मक प्रत्येक को पुन ससदीय एव असंसदीय वर्गो मे विभाजित किया गया है। क्रिनग्राइस्ट ने लीकाक के वर्गीकरण को निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया है
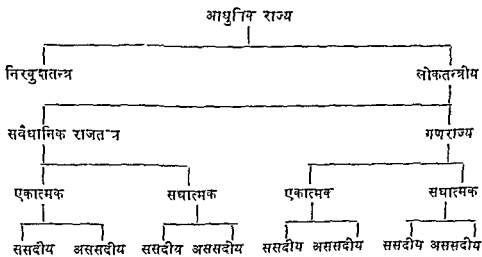
यह वर्गीकरण भी व्यापक नही है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नवीन प्रकार के राज्यो का यूरोप मे उदय हुआ। यह सर्वाधिकारवादी राज्य लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्त पर आधारित थे। इटली का फासीवादी शासन, जर्मनी का नाजीवादी शासन एव रूस मे साम्यवादी सरकारे इस प्रकार के राज्यो के उदाहरण है। जर्मनी एव रूस गणतन्त्रीय देश थे तथा इटली मे राजतन्त्र था। सभी मे एकदलीय प्रणाली थी। इन देशो मे कार्यपालिका उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर गठित नही थी। व्यक्ति का अस्तित्व राज्य मे विलीन हो जाता है। राज्य का अध्यक्ष अधिनायक या अधिनायक की तरह का होता है। वह सम्पूर्ण समाज के जीवन को नियमित एव निर्देशित करता है। इन राज्यो मे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का निषेध होता है और व्यक्तियो को लोकतन्त्रीय देशो की भाति मौलिक अधिकार प्राप्त नही होते हैं। प्रो० लीकाक के वर्गीकरण म इन राज्यो का उल्लेख नही है। इन राज्यो को वर्गीकरण मे शामिल करने के लिए यह आवश्यक है कि आधुनिक राज्यो मे निरकुशतन्त्रीय एव लोकतन्त्रीय वर्गो के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग और जोडा जाय जिससे अलोकतन्त्रीय राज्यो को स्थान दिया जा सके। लेकिन इस वर्गीकरण म भी एक दोष रह जाता है। लोकतन्त्रीय शासन के दो रूप हैं—प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष। प्राचीन यूनान मे नगर राज्यो का सगठन प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के आधार पर था। आज प्राय सभी लोकतन्त्रीय देशो मे अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधिमूलक लोकतन्त्र पाया जाता है। अत व्यावहारिक दृष्टि से लोकतन्त्रीय सरकारो को प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष मे विभाजित न करने से कोई हानि नही है। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र आधुनिक काल मे केवल ऐतिहासिक महत्व रखता है।

सी एफ स्ट्राग का वर्गीकरण

आधुनिक राज्यो के वर्गीकरण के लिए स्ट्राग के अनुसार एस आधार ढढने की आवश्यकता है जो सभी राज्यो म पाये जाते हो तथा जिनसे राज्यो को उनके सगठन की विभिनता के अनुसार वर्गीकृत किया जा सके । दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक आधार या विशेषता की जाँच करके राज्यो को उनके भेद के अनुरूप विभिन्न वर्गों मे वर्गीकृत कर देना चाहिए । स्ट्राग के अनुसार वर्गीकरण के पाच आधार है [30]

(1) राज्य की प्रकृति अर्थात एकात्मक या सघात्मक ।
(2) सविधान की प्रकृति अर्थात दुष्परिवतनीय या सुपरिवतनीय ।
(3) व्यवस्थापिका की प्रकृति ।
(4) कायपालिका की प्रकृति ।
(5) न्यायपालिका की प्रकृति ।

स्ट्राग ने उपर्युक्त वर्गीकरण को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत की है [31]

विभाजन या वर्गीकरण के आधार	प्रथम प्रकार	द्वितीय प्रकार
1 राज्य की प्रकृति	एकात्मक	सघात्मक या अर्द्धसघात्मक
2 सविधान की प्रकृति	सुपरिवतनीय (आवश्यक नही कि अलिखित हो)	दुष्परिवतनीय (आवश्यक नही कि पूणत लिखित हो)
3 व्यवस्थापिका की प्रकृति	(i) (अ) व्यस्क मताधिकार (ब) एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र (ii) अनिर्वाचित द्वितीय सदन (iii) प्रत्यक्ष लोक नियत्रण	(i) (अ) सीमित वयस्क मताधिकार (ब) बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र (ii) निर्वाचित या आशिक रूप मे निर्वाचित द्वितीय सदन (iii) इस प्रकार के नियत्रण का अभाव
4 कायपालिका की प्रकृति	ससदीय	अससदीय
5 न्यायपालिका की प्रकृति	विधि के शासन के आधीन (सामान्य विधि वाले देशो म)	प्रशासकीय विधि क आधीन

30 Strong C F *op cit*, (1963), pp 62 63
31 *Ibid*, p 77

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधारों का विश्लेषण निम्नवत् है

राज्य की प्रकृति का आधार शक्ति का विभाजन है अर्थात् राज्य एकात्मक है अथवा सघात्मक।[32] सविधानो का विभाजन उनकी सशोधन प्रक्रिया पर आधारित है। लिखित एव अलिखित मे सविधानो का वर्गीकरण भ्रामक है। सशोधन प्रक्रिया के अनुसार सविधान सुपरिवर्तनीय एव दुष्परिवर्तनीय मे वर्गीकृत किये जाते हैं। उपरोक्त दोनो वर्गीकरण के उपयुक्त आधार हैं।[33]

व्यवस्थापिका की प्रकृति के सम्बन्ध मे स्ट्राग का मत है कि आधुनिक व्यवस्थापिकाओ को एकसदनीय एव द्विसदनीय व्यवस्थापिका मे विभाजित करना उपयोगी आधार नही माना जा सकता। न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क आदि देशो मे एकसदनीय व्यवस्थापिका है। वे इस व्यवस्था द्वारा अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ति कर लेते हैं जबकि कुछ देशो मे सघीय व्यवस्था के कारण द्विसदनीय व्यवस्थापिकाएँ स्थापित की गयी हैं। स्ट्राग ने व्यवस्थापिका को वर्गीकृत करने के तीन आधार प्रस्तुत किये हैं

(1) **मतदान प्रणाली**—इस सम्बन्ध म निर्वाचन एव क्षेत्र सम्बन्धी दो प्रश्न विचारणीय हैं।

(2) **व्यवस्थापिका या विधानमण्डल के द्वितीय सदन की प्रकृति**—द्वितीय सदन को निर्वाचित (आशिक रूप से निर्वाचित) तथा अनिर्वाचित के आधार पर विभाजित कर सकते हैं। यह केवल द्विसदनीय व्यवस्थापिकाओ के सन्दर्भ मे ही सम्भव है।

(3) कुछ आधुनिक सविधानो मे व्यवस्थापिकाओ पर मतदाताओ को प्रत्यक्ष लोक नियन्त्रण की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं लेकिन यह व्यवस्था बहुत से सविधानो मे नही है।

कार्यपालिका को उसकी प्रकृति की दृष्टि से ससदीय एव असंसदीय मे वर्गीकृत किया गया है।[34] न्यायपालिका की प्रकृति के अनुसार वर्गीकरण का आधार विधि का शासन (Rule of Law) एव प्रशासकीय विधि (Droit Administratif) है।[35]

प्रत्येक राज्य का उपयुक्त आधारो पर परीक्षण करने पर उनके अलग-अलग परिणाम होगे। एक राज्य एक ही प्रकार का नही होगा। यदि एक राज्य एकात्मक हो सकता है तो उसका सविधान लचीला न होकर कठोर भी हो सकता है। स्ट्राग ने उपर्युक्त तालिका के आधार पर इगलैण्ड और अमेरिका के सविधानो को वर्गीकृत किया है।

अध्ययन की सुविधा हेतु इसे निम्नलिखित तालिका द्वारा व्यक्त कर सकते हैं

---

32 देखिए छठा अध्याय
33 देखिए तीसरा अध्याय।
34 देखिए नवाँ अध्याय।
35 देखिए पन्द्रहवाँ अध्याय।

आधार	इगलण्ड का सविधान	सयुक्त राज्य अमेरिका का सविधान
1 राज्य की प्रकृति	एकात्मक	सघात्मक
2 सविधान की प्रकृति	लचीला	कठोर
3 व्यवस्थापिका की प्रकृति	(1) (अ) सावभौम वयस्क मताधिकार	सावभौम वयस्क मताधिकार
	(व) एकसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र	एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र
	(II) अनिर्वाचित द्विसदनीय व्यवस्थापिका (वशानुगत)	निर्वाचित द्विसदनीय व्यवस्थापिका
	(III) कोई प्रत्यक्ष लोक नियन्त्रण नही	कोई लोक नियन्त्रण नही
4 कार्यपालिका की प्रकृति	ससदीय	असंसदीय (अध्यक्षात्मक)
5 न्यायपालिका की प्रकृति	विधि का शासन	विधि का शासन

स्ट्राग के अनुसार उपर्युक्त वर्गीकरण विभिन्न आधुनिक सविधान शास्त्रियो द्वारा प्रस्तुत सुझावो पर आधारित है। लेकिन किसी ने भी अपने सुझावो को क्रियान्वित नही किया था।[37] स्ट्राग यह दावा नही करता कि यह वर्गीकरण पूर्ण है क्योकि वर्तमान सवैधानिक राजनीति को तुलनात्मक दृष्टि से वर्गीकृत करना कठिन है लेकिन उसका मत है कि यह वर्गीकरण पर्याप्त व्यापक है।

डॉ० आशीर्वादम ने ब्राइस, जेंक्स (Jenks) एव मैरियट द्वारा प्रस्तावित विचारो के आधार पर शासन के वर्गीकरण की एक तालिका प्रस्तुत की है। यह वर्गीकरण दो प्रमुख विचारो पर आधारित है[38] (1) राज्य का कार्य-क्षेत्र, एव (2) राजनीतिक सगठन की प्रकृति।

उपर्युक्त विभाजन के दोनो आधारो पर राज्यो को उदार एव सर्वाधिकारवादी (साम्यवादी एव फासीवादी) म विभाजित किया गया है। राजनीतिक सगठन की प्रकृति के छ उपभाग किये गये हैं, अर्थात् राज्य, सविधान, निर्वाचकगण, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, एव न्यायपालिका की प्रकृति। डॉ० आशीर्वादम द्वारा प्रस्तुत विचार स्ट्राग द्वारा स्वीकृत वर्गीकरण पर आधारित हैं।

आधुनिक काल म राजतन्त्रीय एव कुलीनतन्त्रीय शासन-व्यवस्थाएँ प्राय समाप्त हो चुकी हैं। राजतन्त्र भी अब सवैधानिक राजतन्त्रो म परिवर्तित हो गये हैं। इसके कुछ ही अपवाद हैं। अधिकाश देशो मे लोकतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था प्रचलित है। वर्तमान युग लोकतन्त्र का युग है। कुछ राज्यो म अधिनायकतन्त्र के विभिन्न रूप भी पाये जाते है। आगामी पृष्ठ में शासनतन्त्र का विश्लेषण प्रस्तुत है।

37 Strong *op cit*, p 63
38 Asirvatham *op cit*, 1965 pp 347 348

सल्यको के हाथो मे होता है क्योकि जिस समाज के लोग एकमत नही होते उसमे सम्पूण समाज की इच्छा का वैध एव शान्तिमय तरीको से पता लगाने का कोई उपाय नही किया जा सका है।"[46]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओ से यह स्पष्ट होता है कि लोकत त्र जनता का या उसके बहुसख्यक भाग का शासन है परन्तु न तो जनता और न उसका बहुसख्यक वग शासन करता है। वास्तव मे, जनता की तरफ से या जनता का समथन प्राप्त शासन लोकतन्त्र है। मैकाइवर की परिभाषा मे यह भाव या विचार स्पष्ट है "लोकतन्त्र बहुसख्यको द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से शासन करने की प्रणाली है। मूलत लोकत त्र यह निणय करने का तरीका है कि शासन कौन करेगा और शासन का उद्देश्य क्या होगा।"[47] लास्की के विचार भी कुछ कुछ इसी से मिलते हैं। उनके अनुसार "लोकतन्त्र शासन का वह रूप है जिसके अन्तगत मनुष्यो को उस शासन के निर्माण का अवसर मिलता है जिसके आधीन उन्हे रहना पडता है तथा शासन द्वारा निर्मित विधिया सब पर समान रूप से लागू होती है।"[48]

कुछ विद्वान लोकतन्त्र को शासन के स्वरूप के अतिरिक्त उसे कुछ अधिक और आगे मानते हैं। लोकतन्त्र न केवल शासन तन्त्र ही है अपितु राज्य व समाज का स्वरूप भी है। लोकतन्त्रीय शासन मे लोकतन्त्रीय राज्य निहित है लेकिन यह आवश्यक नही है कि लोकतन्त्रीय राज्य का शासन अनिवार्यत लोकतन्त्रीय ही हो। लोकतन्त्रीय राज्य किसी भी शासन से सगति रख सकता है। सर्वोच्च सत्ता लोकतन्त्रीय राज्य मे एक अधिनायक को प्रदान की जा सकती है जैसे कि सकटकाल मे अमेरिकी राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान कर दी जाती हैं।[49] हेरेनशा ने लिखा है कि 'लोकतन्त्र शासन व्यवस्था का एक स्वरूप मात्र नही है लोकतन्त्र म दो वस्तुएँ हैं जो तक की दृष्टि से अन्योन्याश्रित हैं तथा व्यवहार मे भी अधिक महत्वपूण हैं। वे वस्तुएँ हैं राज्य का विशेष स्वरूप एव समाज का स्वरूप।" ब्रास के अनुसार "लोकतन्त्रवाद मे समाज का एक विशिष्ट रूप भी सनिहित है।" कुमारी फालेट ने "लोकतन्त्रवाद को एक आध्यात्मिक आदश माना है।"

अत लोकतन्त्र सकीण अथ मे केवल एक शासन पद्धति है। परन्तु अपने व्यापक अथ मे वह समाज का सिद्धान्त एव जीवन-आदश है। मैक्सी के अनुसार "यह ऐसी जीवन पद्धति की खोज है जिसमे व्यक्ति की इच्छा एव क्रियाओ को बिना किसी दबाव के ही समन्वित किया जा सके। एसा माना जाता है कि सम्पूण मानवता के लिए ऐसा ही जीवन श्रेष्ठ है क्योकि मानव एव सृष्टि की प्रकृति के यह सवथा अनुकूल है।"[50]

---

46 Bryce *Modern Democracies* Vol I (1921) p 23 quoted by Coker, F W *Recent Political Thought*, 1934 p 291
47 MacIver *The Web of Government*, p 198
48 Laski *Liberty in the Modern State*, (1961), p 56
49 Asirvatham *Political Theory* 1965 p 453
50 Maxey *Political Philosophies*, 1959, p 690

लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था मे समानता एव भ्रातृत्व सामाजिक जीवन के आधार होते हैं। यह आवश्यक नही है कि लोकतान्त्रिक समाज मे लोकतन्त्रीय शासन एव राज्य भी हो। मुसलिम समाज अत्यधिक लोकतान्त्रिक है लेकिन वे लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था एव राज्य को स्वीकार नही करते। पाकिस्तान एक इस्लामी गणतन्त्र है। इसके विपरीत, अमेरिका मे लोकतन्त्रीय शासन होते हुए भी लोकतन्त्रीय समाज नही है। वहा समाज मे गरीब व अमीर की असमानताएँ है और काले व गोरे का भेद उग्र रूप मे विद्यमान है।

लोकतन्त्र जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है। इस रूप मे जीवन के प्रति लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण विनय सुविधा, क्षमता, सहिष्णुता, मानवीय व्यक्तित्व के प्रति सम्मान आदि गुणो को महत्व देता है। अन्त मे, लोकतन्त्र को एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप मे भी स्वीकार किया गया है। लोकतन्त्र को धार्मिक सिद्धान्तो की सी मान्यता प्राप्त है।

लोकतन्त्र का सक्षिप्त इतिहास

प्राचीन चीन व भारतवर्ष मे सर्वप्रथम स्वशासित नगर-राज्यो का उदय हुआ था। प्राचीन भारत मे स्वशासित गणराज्यो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। लेकिन लोकतन्त्र के स्पष्ट स्वरूप के विकास का श्रेय यूनानियो को ही प्राप्त है। यूनान के लोकतन्त्रीय नगर राज्यो मे केवल अल्पसख्यक नागरिको को ही राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे। विदेशियो एव दासो को नागरिकता के अधिकार प्राप्त नही थे। हेरेनशा के अनुसार आधुनिक लोकतन्त्र एव यूनानी गणराज्यो के लोकतन्त्रीय स्वरूप मे निम्न अन्तर थे

(1) यूनानी लोकतन्त्र का स्वरूप प्रत्यक्ष था। उसका स्वरूप आधुनिक लोकतन्त्र की तरह अप्रत्यक्ष नही था।

(2) यूनानी लोकतन्त्र दासता एव शोषण पर आधारित था न कि आधुनिक प्रमुख तीन सिद्धान्तो—स्वतन्त्रता, समानता एव भ्रातृत्व—पर।

(3) यूनान मे लोकतन्त्र नगर-राज्यो तक सीमित था अत राष्ट्रीयता का सिद्धान्त वहाँ मान्य नही था।

(4) यूनान मे लोकतन्त्र वर्ग-सघर्ष मे रत था। वह निधनो द्वारा धनिको की सम्पत्ति के अपहरण के लिए लुटेरो का सगठन था।[51] प्लेटो इसी यूनानी लोकतन्त्र का विरोधी था।

रोम मे कभी लोकतन्त्र नही रहा था। वहाँ गणतन्त्र-काल मे भी लोकतन्त्र नहीं था। रोम मे दासता की प्रथा कायम रही थी। नागरिक केवल औपचारिक रीति से ही राज्य-कार्य मे भाग लिया करते थे। वास्तव मे रोम का गणराज्य अभिजाततन्त्रीय था।

मध्य-युग मे सामन्ती व्यवस्था का जोर था परन्तु मध्य-युग मे ही प्रतिनिधित्व

---

51 Hearnshaw *Democracy at the Crossways*, p 89

की धारणा का जन्म हुआ था । इससे अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया । सविदा सिद्धान्त का विकास हो चुका था । सामन्तवाद विकेन्द्रीकरण एव परस्पर सविदा या समझौते के सिद्धान्तो पर आधारित है । उस युग मे केन्द्रीय सत्ता का विकास सम्भव ही नही था । धार्मिक क्षेत्रो मे चर्च एव चर्च की अन्य प्रबन्धकारी समितियो की रचना हुई । आर्थिक क्षेत्र मे कारीगरो के सघो तथा व्यापारिक मण्डलो के सगठनो की रचना हुई थी । इस काल मे सामाजिक क्षेत्र मे भ्रातृत्व सस्थाओ एव दलो की स्थापना तथा छोटे-छोटे ग्राम सगठनो, व्यापारिक नगरो एव राष्ट्रीय राज्यो के विकास ने प्रजातन्त्रीय रूप को बहुत कुछ कायम रखा था ।

सुधार आन्दोलन ने राजनैतिक लोकतन्त्रवाद के सिद्धान्त निश्चित किये थे तथा लोकतन्त्र के वर्तमान स्वरूप के निर्माण एव विकास मे आधुनिक युग की चार क्रान्तियों से सहायता मिली है

(1) 1688 ई० की इगलण्ड की रक्तहीन क्रान्ति ने ब्रिटिश ससद की सर्वोच्चता स्थापित की ।

(2) अमेरिकी स्वातन्त्र्य सग्राम के फलस्वरूप अमेरिका के 13 ब्रिटिश उपनिवेशो ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया तथा मोन्टेस्क्यू एव लॉक के व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्तो को अपनाया ।

(3) फ्रास की राज्यक्रान्ति (1789 ई०) ने समानता, स्वतन्त्रता एव भ्रातृत्व के सिद्धान्तो की स्थापना की ।

(4) औद्योगिक क्रान्ति ने आधुनिक पूजीवाद की समस्त रूपरेखा को स्थिर करके लोकतन्त्र की दृढतापूर्वक स्थापना की ।

लोकतन्त्र का वर्गीकरण

लोकतन्त्र के निम्न दो मुख्य वर्गीकरण किये जाते हैं

(1) प्रत्यक्ष (शुद्ध) एव अप्रत्यक्ष (प्रतिनिधिमूलक) प्रजातन्त्र [Direct (Pure) and Indirect (Representative) Democracy] ।

(2) सवैधानिक राजतन्त्र एव गणतन्त्र (Constitutional Monarchy and Republic) ।

(1) **प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र**—प्रत्यक्ष लोकतन्त्र मे जनता स्वय प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक मामलो मे अपना मत प्रकट करती है । प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र यूनान के नगर राज्यो मे प्रचलित था । सभी स्वतन्त्र यूनानी नगर सभा मे एकत्रित होते, विधि का निर्माण करते शासकीय अधिकारियो की नियुक्ति करते, राजदूतो का स्वागत करते एव स्वय न्याय करते थे । मध्य युग मे इटली के नगर-राज्यो म भी ऐसी ही व्यवस्था थी । स्विटजरलैण्ड के केण्टनो म भी प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की व्यवस्था थी जो अब तक चली

रही है । रूसो प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का तीव्र समर्थक था । लेकिन प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र छोटे राज्यों मे ही सफल हो सकते हैं जिनमे कि राजनीतिक मामलो पर विचार-विनिमय हेतु सरलतापूर्वक एकत्रित होने की सुविधा हो । इसके अतिरिक्त, समाज मे पर्याप्त समानता एव सम्पन्नता होनी चाहिए तथा लोगो के पास सार्वजनिक कार्यों के लिए पर्याप्त समय भी होना चाहिए ।

आधुनिक विशाल एव बडी जनसख्या वाले देशो मे प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र सम्भव नही है अतएव प्रतिनिधि लोकतन्त्र का विकास हुआ है । जनता हर नवीन निर्वाचन म अपने प्रतिनिधियो को चुन कर उन्हे कुछ वर्षों के लिए शासन-कार्य सौप देती है । प्रत्यक्ष लोकतन्त्र तो अब स्विटजरलैण्ड एव कुछ अमेरिकी राज्यो मे जनमत सग्रह (Referendum), उपक्रम (Initiative) एव प्रत्याह्वान (Recall) के रूप मे ही शेष है । प्रतिनिधि लोकतन्त्र मे सैद्धान्तिक रूप मे राज्य की शक्ति सम्पूर्ण जनता के हाथो म होती है । उसका प्रयोग जनता अपने प्रतिनिधियो के माध्यम से करती है । वर्तमान समय म समस्त राज्यो मे प्रतिनिधि लोकतन्त्र पाया जाता है । प्रतिनिधिमूलक प्रजातन्त्र के दो प्रधान रूप अध्यक्षात्मक एव ससदीय लोकतन्त्र हैं ।

(2) **सवैधानिक राजतन्त्र एव गणराज्य**—सवैधानिक राजतन्त्र मे राज्य का अध्यक्ष वशानुगत होता है । उदाहरण के लिए, इग्लैण्ड के राजा की शक्ति नाम मात्र की है । वह राज्य का प्रमुख है शासन का नही । शासन की शक्ति मन्त्रिमण्डल म निहित है । मन्त्रिमण्डल वास्तविक शासक होता है । मन्त्रिमण्डल राजा के प्रति उत्तरदायी न होकर ससद—जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो—के प्रति उत्तरदायी होता है ।

गणतन्त्र वह शासन-पद्धति है जिसमे राज्य का अध्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित होता है । भारत, फ्रास एव सयुक्त राज्य अमेरिका गणतन्त्र के उदाहरण हैं ।

लोकतन्त्र के मूल सिद्धात

लोकतन्त्र के विकास के साथ-साथ विगत दो तीन हजार वर्षों मे उसके निम्न बुनियादी सिद्धान्तो का विकास हुआ है

(1) *सार्वभौम सुख का सिद्धान्त । लोकतन्त्र के सभी समर्थक यह मानते हैं कि सुख जीवन का अन्तिम उद्देश्य है ।*

(2) व्यक्ति साध्य और शेष समस्त वस्तुएँ साधन मात्र हैं ।

(3) व्यक्ति की गरिमा अर्थात मनुष्य का व्यक्तित्व पवित्र एव सम्माननीय है । मनुष्य स्वभावत अच्छा है और उसमे विवेक, बुद्धि एव नैतिकता की स्वाभाविक क्षमता है ।

(4) समानता एव स्वतन्त्रता के सिद्धान्त ।

(5) जन प्रभुता का सिद्धान्त अर्थात् जनता प्रभु है । लोकतन्त्र का यह सिद्धान्त

है कि समाज की सामूहिक शक्ति सम्पूर्ण समाज मे निहित है, किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह म नही। यही लोक प्रभुत्व का सिद्धान्त कहा जाता है।[52]

व्यावहारिक दृष्टि से लोकतन्त्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(1) सविधान लिखित होना चाहिए।

(2) व्यस्क मताधिकार की व्यवस्था होनी चाहिए।

(3) विधानमण्डल निश्चित काल के लिए चुना जाना चाहिए। अध्यक्षात्मक देशो म राष्ट्रपति निश्चित काल के लिए चुना जाना चाहिए, न कि जीवन भर के लिए।

(4) प्रत्येक नागरिक को निर्वाचन म खडे होने एव योग्यतानुसार शासकीय पद प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए।

(5) शासन को सवैधानिक तरीके से निर्वाचन द्वारा बदलने का अधिकार होना चाहिए, हिंसा द्वारा परिवतन अवाछनीय है। राजनतिक दलो के निर्माण एव शासन की नीतियो की आलोचना का अधिकार होना चाहिए अर्थात विचार एव अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।[53]

लोकतन्त्र का समर्थन

प्राचीन काल मे अरस्तू और आधुनिक काल मे जॉन लाक से लेकर अनेक विद्वानो ने लोकतन्त्र का समर्थन निम्न आधारो पर किया है—

(1) अरस्तू का मत था कि एकतन्त्र व अल्पतन्त्र से लोकतन्त्र श्रेष्ठ शासन है, क्योकि बहुत से व्यक्तियो की बुद्धि एव अनुभव अन्य लोगो की अपेक्षा अधिक होता है चाहे वे थोडे से व्यक्ति बुद्धि मे कितने ही श्रेष्ठ क्यो न हो। इसके अतिरिक्त, शासन म भाग लेने स लोगो म सम्मान की भावना उत्पन्न होती है। शासन से वंचित होने पर व्यक्ति अपमानित अनुभव कर सकता है। फलस्वरूप असन्तोष फैल सकता है और क्रान्ति का कारण बन सकता है।

52 सलता (Soltau) के अनुसार लोकतन्त्र के चार अनिवार्य आधार हैं—(१) विश्वास एव धर्म की एकता न तो आवश्यक है और न वाछनीय। (२) निरपेक्ष राजनीतिक सिद्धान्त एव व्यवहार असाध्य है। (३) राजनीतिक अधिकार सभी को बिना किसी वश परम्परा, जन्म, सम्पत्ति या शिक्षा के भेद भाव के प्राप्त होने चाहिए। (४) शान्तिपूर्वक समझाने बुझाने के तरीके का उपयोग। Refer to *An Introduction to Politics* pp 161-162

सी ई मेरियम के अनुसार लोकतन्त्र के मुख्य आधार निम्न हैं—(1) व्यक्ति की गरिमा, अत विशेषाधिकारजनित व्यवस्था का अन्त। (2) मानव की पूर्णता मे विश्वास। (3) समाज के लाभो म सभी का साझा होना चाहिए। (4) सामाजिक नीति के प्रश्नो पर जनता द्वारा निर्णय। (5) सहमति, न कि हिंसा द्वारा सामाजिक परिवर्तन। Refer to *Political Theories in Recent Times* pp 199 200

53 जोड (C E M Joad) ने लोकतन्त्र के लिए निम्न आवश्यक सिद्धान्तो का उल्लेख किया है—(1) व्यक्ति साध्य एव राज्य साधन है। (2) व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक सामाजिक परिस्थितियो का निर्माण होना चाहिए। (3) जनता के प्रतिनिधि ही शासन के स्वरूप एव राज्य की विधियो के बारे म अन्तिम निर्णय करें। (4) विचार एव अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा विरोधी दलो के निर्माण की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। (5) सभी परिवर्तन सविधान सम्मत होने चाहिए हिंसा द्वारा कोई परिवर्तन नही होना चाहिए। (6) शक्ति विभाजन। Refer to *The Principle of Parliamentary Democracy*, (1949), pp 7 8

(2) जॉन लॉक एव उसके अनुयायियो का मत था कि स्वतन्त्रता व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है अत यह उचित नही है कि दूसरे व्यक्ति उस पर शासन करें। चूंकि सभी व्यक्ति समान हैं अत उन्हे शासन मे भाग लेने का अधिकार है। राज्य, लाक के अनुसार, सविदा का परिणाम है। सविदा की शत यह है कि सब लोग बहुसख्यको की राय को माने। इस प्रकार लॉक ने सविदा के आधार पर लोकतन्त्र का समथन किया है।

(3) उपयोगितावादी विचारक बेन्थम ने उपयोगिता के आधार पर लोकतन्त्र का समथन किया है। उसके अनुसार सभी लोग स्वभाव से स्वार्थी हैं और सुख चाहते हैं। राज्य का शासन थोडे से लोगो अथवा एक व्यक्ति के हाथ मे होने पर वे उसका प्रयोग अपने वग या निजी हित के लिए स्वभावत करेंगे। चूंकि लोकतन्त्र मे शासन मे सभी का हिस्सा होता है अत सभी के हितो की पूर्ति हो सकेगी और सभी के स्वाथ भी पूण हो सकेंगे।

(4) लोकतन्त्र का मनोवैज्ञानिक मूल्य है। शासन मे केवल दक्षता एव क्षमता ही काफी नही है। दक्ष एव योग्य शासको की स्थिति विशेषज्ञो जैसी होती है जो सिद्धान्तवादी होते हैं। अच्छा शासन वह है जिसमे शासको व शासितो मे सहयोग हो तथा शासको मे जनता के प्रति सहानुभूति हो। यह लोकतन्त्र मे ही सम्भव है। अपना शासन दूसरे के श्रेष्ठ शासन से निश्चय ही अच्छा होता है। लोकतन्त्र मे जनता अनुभव एव भूलो से शिक्षा ग्रहण करती है, सामान्यजन को शासन मे भाग लेने का अवसर मिलता है तथा उसकी इच्छाओ का सरलतापूवक पता चलता है।[54]

(5) लोकतन्त्र सावजनिक शिक्षा एव चरित्र के उत्थान का महत्वपूण माध्यम है और सावजनिक शिक्षा की पाठशाला है। निर्वाचनो मे विभिन्न दलो द्वारा सामाजिक एव राजनैतिक समस्याओ पर भाषणो तथा पत्र पत्रिकाओ मे लेखो आदि के माध्यम से विचार प्रकट किये जाते हैं और उनके विभिन्न विकल्प प्रस्तावित किये जाते हैं। इससे सामान्य व्यक्तियो को राजनतिक समस्याओ का ज्ञान होता है, सामान्य सूझ-बूझ बढती है तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। सी डी बन्स के अनुसार सभी शासनतन्त्र शिक्षा की पद्धतियाँ हैं परन्तु स्वशिक्षा सवश्रेष्ठ शिक्षा है अत श्रेष्ठ शासन लोकतन्त्र है जो स्वशासन है।[55]

(6) जे एस मिल[56] के अनुसार अन्य किसी शासन की अपेक्षा लोकतन्त्र उच्च प्रकार के राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करता है। ब्राइस का कथन था कि राजनीतिक मताधिकार से व्यक्तियो के सम्मान मे वृद्धि होती है।[57] डॉ आशीर्वादम के अनुसार

54 Gettell *Political Science*, 1956 p 201
55 Burns quoted by Dr E Asirvatham p 459
56 Mill J S *Utilitarianism Liberty and Representative Government*, (Everyman s Edition 1948) Ch III, pp 211 215
57 Bryce *Modern Democracies* Vol I, p 60

श्रेष्ठ शासन वह है जो व्यक्तियो को नैतिक दृष्टि से शक्तिशाली, ईमानदार, परिश्रमी, आत्मनिभर तथा साहसी बनाता है। ऐसा केवल लोकतन्त्र मे ही सम्भव है।[58]

(7) लोकतन्त्र के अन्तगत देशभक्ति की भावना प्रबल होती है।[59] साहित्य, कला एव विज्ञान की उन्नति निरकुशतन्त्रो की अपेक्षा लोकतन्त्र म अधिक हुई है। मोन्टेस्क्यू ने प्रेम को गणराज्य का एक अनिवाय लक्षण माना है।[60] लोकतन्त्र मे क्रान्ति एव हिंसात्मक परिवतन के लिए बहुत कम गुजाइश होती है तथा सवैधानिक रीति से वाछित परिवतन सम्भव होते हैं।[61] जनता का विचार एव भाषण तथा समाज और सम्मेलन आदि करने की पूण स्वतन्त्रता होती है। गानर का कथन है कि लोकतन्त्रीय शासन अन्य शासनो की अपेक्षा अधिक क्षमतावान शासन है क्योकि लोकप्रिय निर्वाचन, लोकप्रिय नियन्त्रण एव उत्तरदायित्व द्वारा ही अधिक सक्षम शासन सम्भव है।[6] लोकतन्त्र मे व्यक्ति के अधिकार एव हित सुरक्षित रहते हैं। लोकतन्त्र निरकुशतन्त्रीय एव अधिनायकतन्त्रीय शासनो की अपेक्षा अधिक स्थायी एव प्रगतिशील है क्योकि इसमे निणय जनता करती है। यह व्यवस्था सर्वोत्तम है और जनता का निणय ही ईश्वर का निणय है।

लोकतन्त्र की आलोचना

लोकतन्त्र की तीव्र आलोचना प्राचीन काल से ही की जाती रही है। निरकुशतन्त्र, अधिनायकतन्त्र एव कुलीनतन्त्र के समथको और साम्यवादियो ने लोकतन्त्र की तीव्र निन्दा की है। मुख्य आलोचनाएँ निम्नवत हैं

(1) लोकतन्त्र के आलोचको मे प्लेटो प्रमुख था। प्लेटो के अनुसार शासन के काय के लिए विशेष ज्ञान एव चरित्र की आवश्यकता है। हर व्यक्ति उसके लिए योग्य नही होता। वह शासन का काय केवल विवेक सम्पन्न अभिजात्य वग को सौपन का समथक था। उसका तक था कि हम जीवन की छोटी छोटी आवश्यकताओ के लिए विशेष ज्ञान एव अनुभव की आवश्यकता स्वीकार करते ह तो शासन जैसे महत्वपूण काय को अनुभवहीन एव अविवेकी व्यक्तियो को कसे सौप सकते है ? लोकतन्त्र इसके विपरीत आदश को मानता है। प्लेटो लोकतन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त समानता को नही मानता था। उसका मत था कि लोकतन्त्र मे वास्तविक सुख नही मिल सकता। वह तो उसी व्यवस्था मे प्राप्त हो सकता है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति वह काय करता है जिसके लिए वह प्रकृति से सर्वाधिक योग्य होता है।

(2) लोकतन्त्र को 'अनुत्तरदायी भीड का शासन' कहकर तीव्र आलाचना की जाती है। अरस्तू इसे सवैधानिक शासनो का विकृत रूप मानता है। मिल लोकतन्त्र

58 Asirvatham *op cit*, p 459
59 Laveleye *Le Governnment dans la democratie*, Vol I, p 273, quoted by Garner *op cit*, p 358
60 ' The virtue of the Republic is love "—Montesquieu *The Spirit of the Laws*, Book III and also Book V, Sabine *op cit*, p 469
61 Sidgwick *Elements of Politics* p 615
62 Garner *Political Science and Government* p 357

म वहुमत व अत्याचार से आतकित था। लेकी (Lecky) व अनुसार लोकतन्त्र स्वतन्त्रता विरोधी शासन है। "लोकतन्त्र मे गुणा की अपेक्षा मता की अर्थात् सख्या को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। मत गिने जाते है, ताने नहीं जाते। विशेष प्रशिक्षण, विशिष्ट निणय एव विशिष्ट ज्ञान को कम महत्व दिया जाता है लोकतन्त्र म शासन अज्ञानियो, अशिक्षितो एव अयोग्य व्यक्तिया के हाथो मे होता है। लोकतन्त्र मे सख्या का महत्व दिया जाता है। वह भीड का शासन है तथा मध्यम एव निम्न योग्यता को इसमे प्रश्रय दिया जाता है।"[63] लोकत त्र मे बहुमत सवश्रेष्ठ होता है और अपेक्षाकृत अधिक विवेक एव श्रेष्ठ निणययुक्त अल्पमत की उपेक्षा की जाती है। लोकप्रिय निर्वाचन तथा अल्प कायकाल उत्तरदायित्व के लिए हितकर नही हैं। लोकतन्त्र सकीण दृष्टिकोण के व्यक्तियो का शासन है। सक्षेप मे लोकतन्त्र अज्ञानावस्था है।[64]

(3) लोकतन्त्र म शासनाधिकार पशेवर राजनीतिज्ञा एव नेताओ के हाथा म होता है अत व्यवहार मे लोकतन्त्र एक प्रकार का निकृष्ट अल्पतन्त्र है। तेलिरा लोकतन्त्र को काले रक्षको का कुलीनतन्त्र कहता था। एच जी वेल्स के कथनानुसार लोकतन्त्र पाच मिनट म समाप्त हो सकता है। कार्लाइल लोकतन्त्र को मूर्खों का शासन मानता है।[65] लोकतन्त्र मे सीधे, ईमानदार एव शान्त व्यक्ति चुनावो मे नही चुने जाते अपितु वाचाल, बढ-बढकर गाल बजाने वाले, वाक्पटु, जनता के रुख को देखकर भाषण देने वाले एव भले को बुरा और बुरे को भला बता सकने मे समथ लोग सफल होते हैं। हटमान के अनुसार "शोर मचाने वालो, गप्पियो, बात मे से बात निकालने वालो, चापलूसो एव अमीरो के प्रशसको के लिए लोकतन्त्र स्वग है।"[66]

लोकतन्त्र मे श्रेष्ठ व्यक्तियो से घणा की जाती है। सामान्य मतदाता को राज्य के कार्यों मे कोई रुचि नही होती। फलस्वरूप चतुर एव चालाक लोग शासन हथियाने मे सफल होते हैं।

(4) लोकतन्त्र म दलीय व्यवस्था के कारण अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। देश मे वगगत एव दलगत स्वाथ का बोलबाला होता है। चुनावो मे छल कपट से काम लिया जाता है। गन्दा एव दूषित प्रचार किया जाता है। राजनीतिक विरोधियो की हत्या तक कर दी जाती है। दलीय अनुशासन एव नियन्त्रण द्वारा जन प्रतिनिधि के व्यक्तिगत विवेक को समाप्त कर दिया जाता है। ब्राइस के अनुसार दलीय प्रणाली के फलस्वरूप लोकतन्त्र मे राष्ट्रीय दलगत विभेद एव भ्रष्टाचार स्थानीय निर्वाचना तक

---

63 Lecky *Democracy and Liberty* quoted by Garner *op, cit*, pp 363 64 and also see Forsyth, P T *Socialism Church and Poor* p 21

64 Asirvatham, E *op cit* p 462

65 Talleyrand defined democracy as 'an aristocracy of black guards and Carlyle referred to it as government of 'mostly fools H G Wells said it could be knocked to pieces in five minutes (Quoted by Garner *op cit* p 356)

66 'Democracy is the paradise of the shrieker babbler, word spinner, flatterer and tuft hunter "—Hartmann *Tagesfragen*, p 36

मे फैल जाता है। नैतिक स्तर गिर जाता है और जनता मे शासन के प्रति निष्ठा समाप्त हो जाती है।[67] बहुदलीय पद्धति अस्थिर शासन का जन्म देता है।

दलीय व्यवस्था के कारण मतदाताओ की निर्वाचन की स्वतन्त्रता भी सीमित हो जाती है, केवल दो-तीन उम्मीदवारा में से ही उसे अपने प्रतिनिधि का चयन करना पडता है।

(5) फागेट (Faguet) लोकतन्त्र को 'अयोग्यो का शासन' कहता है। लोकतन्त्र अयोग्यो का ही नही मूर्खो का भी शासन है क्योकि बहुसख्यक व्यक्ति मूख हैं। यही नही लोकतन्त्र अनुत्तरदायी शासन है एव दृढ नीति निर्धारित करने मे असफल रहता है। लोकतन्त्र वैदेशिक मामलो, सुरक्षा एव राजनय (diplomacy) की दृष्टि से कमजोर शासन प्रमाणित हुआ है। यह नौसिखिया का भी शासन है। ऐसे व्यक्ति शासन के पदो पर नियुक्त हो जाते हैं जिन्हे शासन काय का कोई ज्ञान नही होता।[68]

(6) लोकतन्त्र खर्चीली व्यवस्था है। इसमे धन व समय दोनो का ही अपव्यय होता है।

(7) लोकतन्त्र शिक्षा का नही अपितु कुशिक्षा का माध्यम है। लोगो मे झूठे अहकार की वृद्धि होती है। विनम्रता समाप्त हो जाती है, कुटिलता चारित्रिक विशेषता बन जाती है। राजनैतिक जीवन मे भ्रष्टाचार, बेईमानी एव कुचक्र का साम्राज्य होता है। सामान्य शिष्टाचार भी समाप्त हो जाता है। लोगो मे खुशामद की प्रवृत्ति बढ जाती है। साहित्य, कला, विज्ञान, सभ्यता एव सस्कृति सभी का स्तर गिर जाता है। बर्न्स के अनुसार लोकतन्त्र जिस सभ्यता को जन्म देता है वह साधारण, सामान्य एव निष्क्रिय है।[69]

(8) लोकतन्त्र व्यवहार मे धनी लोगो का शासन है। साम्यवादियों के अनुसार लोकतन्त्र मे वास्तविक सत्ता धनिको के हाथ में होती है। वे अनुचित तरीको से धन खच करके मतदाताओ को प्रभावित करते हैं। लेनिन का मत था कि पूजीवादी देशा का लोकतन्त्र सीमित, निधन एव झूठा है।[70] आर्थिक समानता के अभाव म राजनीतिक लोकतन्त्र केवल ढोंग है।

(9) हेरेनशा के अनुसार अनतिकता, अश्रद्धा, उद्दण्डता, असहिष्णुता, स्वाथ एव कृपणता लोकतन्त्र के कुछ अन्य दोष हैं।[71] लॉर्ड ब्राइस ने जो लोकतन्त्र के वडे प्रशसक हैं, उसमे निम्न दोप बताये हैं

---

67 Bryce *Modern Democracies* refer to Garner *op cit* pp 367 369
68 Low *Government of England* pp 210 214
69 'The civilization which democracy produces is banal, mediocre or dull' —Burns cited by Asirvatham *op cit*, p 466
70 "The democracy in capitalistic society is curtailed, poor and false' —Lenin
71 "Immorality irreverence, unmoderation intolerance selfishness, and greed are other vices of democracy"—Hearnshaw *op cit* pp 60-62

(1) लोकतन्त्र मे धन से प्रशासन एव विधानमण्डल का भ्रष्ट कर दिया जाता है।

(2) राजनीति लोकतन्त्र मे एक लाभदायक पेशा है।

(3) प्रशासन अधिक खर्चीला होता है।

(4) समानता के सिद्धान्त का दुरुपयोग किया जाता है तथा प्रशासनिक कुशलता को महत्व नही दिया जाता।

(5) दलीय सगठनो की शक्ति अत्यधिक बढ जाती है जिसके फलस्वरूप भ्रष्टाचार फैलता है।

(6) विधायक एव राजनीतिक अधिकारी विधि का निर्माण करते समय मता का पूण ध्यान रखते हैं एव विधि तथा व्यवस्था का उल्लघन करने वालो के प्रति भी सहिष्णुता का बर्ताव किया जाता है।

समीक्षा

क्या प्रजातन्त्र की उपरोक्त आलोचना मे सार है ? आशीर्वादम् का मत है कि कुछ आलोचनाएँ परस्पर विरोधी हैं, जसे कुछ लेखको के अनुसार लोकतन्त्र का अथ वीर पूजा या उपासना है[73] तो दूसरो की दृष्टि मे लोकतन्त्र दासता एव अराजकता का पर्यायवाची है। कुछ कहते हैं कि लोकतन्त्र आदशवादी है एव उसमे अमूत आदर्शों की पूजा की जाती है[74] तो दूसरो का कहना है कि लोकतन्त्र मे भावनाओ और सिद्धान्तो को कोई स्थान नही है। इन आलोचनाओ का परस्पर विरोध इनको खण्डित कर देता है।[75] लोकतन्त्र की समीक्षा करते समय निम्न तक ध्यान मे रखने चाहिए

(1) लोकतन्त्र से श्रेष्ठ अन्य कोई शासन पद्धति नही हैं। राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र एव अधिनायकतन्त्र की अपेक्षा यह श्रेष्ठ पद्धति है क्योकि इसमे व्यक्तित्व के विकास के लिए अनेकानेक अवसर हैं।

(2) विगत दो विश्व युद्धो, विश्वव्यापी मन्दी (1930) आदि जसे सकटो के दोपा के लिए केवल लोकतन्त्र को ही उत्तरदायी नही ठहराया जाना चाहिए।

(3) फागेट ने लोकतन्त्र को अयोग्यो का शासन कहा है। यह तथ्यो के विपरीत है। लोकतन्त्र का अथ यह नही है कि विशेपज्ञो को शासन-काय से सम्बन्धित न किया जाये। सामान्य जनता प्रशासन की बारीकियो को भले ही न समझती हो परन्तु सामान्य नीति एव सत्तारूढ शासन की नीतियो एव काय-पद्धति के बारे मे उसका निणय सही रहता है। लोकतन्त्र किसी विशेष जाति या वग के लोगा के लिए ही उपयुक्त शासन-पद्धति नही है।

(4) दलीय पद्धति लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। इसके फलस्वरूप अराज

---

72 Bryce *Modern Democracies*, (1929), Vol II, p 504
73 Hearnshaw *op cit*, p 59
74 Smith, A L *The Empire and the Future*, p 81
75 Asirvatham *op cit* p 468

करता व स्थान पर व्यवस्था उत्पन्न होती है। दलीय समस्याओं के प्रति राष्ट्र सजग रहता है, एवं दलीय अनुशासन सदस्यों के व्यक्तिगत स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण लगा देता है।

(5) सत्य तो यह है कि लोकतन्त्र के परीक्षण का सही अवसर ही नहीं मिला है। उसके दोषों को बढ़ा चढ़ा कर दिखाया गया है जबकि उसकी सफलताओं की उपेक्षा की गई है। लोकतन्त्र पर एक आरोप यह है कि वह कुशिक्षा के लिए उत्तरदायी है। यदि हम इस आरोप को मान लें तो भी हम यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अन्य शासन पद्धतियों में इससे भी कम शिक्षा के अवसर हैं। लोकतन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के लिए राष्ट्रीय चरित्र उत्तरदायी है न कि लोकतन्त्र।

निष्कर्ष

लोकतन्त्र अब तक मानवता को ज्ञात शासन की सर्वश्रेष्ठ पद्धति है। परन्तु यह सर्वथा निर्दोष नहीं है। लोकतन्त्र के दोषों को दूर करने के लिए और अधिक लोकतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना एवं संस्थाओं के विकास की आवश्यकता है। सभी देशों के अनुभव हमें यह बताते हैं कि लोकतन्त्र से जो आशाएँ थी वे पूर्ण नहीं हुई है। कई देशों में लोकतन्त्र असफल रहा है और वहाँ सैनिक तानाशाही की स्थापना हुई है। लोकतन्त्र की निरन्तर प्रशंसा करने वाले देशों—अमेरिका, इंगलैण्ड आदि—में स्वतन्त्रता, समानता, व्यक्ति की उच्च गरिमा के आदर्शों का केवल उद्घोष किया जाता है वहाँ के सामाजिक जीवन में नस्लगत घृणा एवं रंग भेद अत्यन्त गहरा है। यही नहीं यूरोपीय लोकतान्त्रिक देशों ने एशिया व अफ्रीका के देशों का निर्मम शोषण किया है।

लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक विशेष वातावरण, चरित्र एवं कुछ अवस्थाओं की विशेष रूप से आवश्यकता है। वे निम्न हैं

"आर्थिक एवं सामाजिक समानता, शिक्षा, नागरिकों की देश की राजनीति में रुचि, आधारभूत एकता की भावना, स्वतन्त्र एवं ईमानदार प्रेस तथा उच्चकोटि का [illegible] एवं व्यक्तिगत चरित्र।"[76] भारत जैसे देशों में लोकतन्त्र की सफलता राजनैतिक [illegible] की शुद्धता पर निर्भर करती है। डॉ० आशीर्वादम का मत है कि लोकतन्त्र की [illegible]ता के लिए वांछित नेताओं का चुनाव होना चाहिए एवं बहुत अधिक सार्वजनिक [illegible]न भी नहीं होने चाहिए।[77] उपरोक्त सभी बातों का उस समय तक कोई मूल्य [न]होगा जब तक कि समाज का नैतिक स्तर उच्चकोटि का न हो तथा ईमानदारी, [illegible]गुता, उदारता एवं लोक-कल्याण की भावना जनमानस में व्याप्त न हो। जब [त]क अन्य किसी श्रेष्ठ शासन पद्धति का विकास नहीं होता तब तक लोकतन्त्र अपनी [कमिय]ों सहित ज्ञात शासन प्रणालियों में सर्वश्रेष्ठ शासन-पद्धति है। परन्तु लोकतन्त्र [का] भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस सीमा तक समाज में [illegible]ता एवं दुःख को दूर कर सकेगा।

Hearnshaw *Democracy at the Crossways* J W Garner, *Political Science and Government* 1951, pp 370 372

Asirvatham *op cit*, p 482

3

सविधान

[CONSTITUTION]

हमन फाइनर के अनुसार मौलिक राजनैतिक सस्थाओ की प्रणाली या शक्ति-सम्बन्धो की आत्मकथा ही सविधान है।"[1]

परिभाषा

विभिन्न विद्वानो ने विभिन्न कालो म सविधान की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी है। अरस्तू के अनुसार सविधान किसी राज्य की शक्ति अर्थात् सर्वोच्च शक्ति की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा राज्य के काय सम्पादित किये जाते हैं। शासको एव शासितो पर सविधान के माध्यम से नियन्त्रण रखा जाता है। शासको की निरकुशता या मन माने ढग से अनियन्त्रित शासन का सविधान निषेध करता है। सवधानिक शासन व्यवस्था का मौलिक एव आधारभूत सिद्धान्त यह है कि विधि सर्वोच्च है। चूकि विधि वासना रहित विवेक है अत उसका पालन सभी को करना चाहिए। यदि शासन एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो की क्षणिक इच्छा पर आधारित है तो ऐसी स्थिति मे व्यवस्था एव सुरक्षा का अभाव होना स्वाभाविक है। अरस्तू का यह कथन है कि 'इच्छा या आकाक्षा (desire) जगली पशु है एव वासना श्रेष्ठतम शासक के मस्तिष्क को भी पतित कर देती है।'

आधुनिक विचारक गिलक्राइस्ट के अनुसार "किसी राज्य का सविधान उन लिखित या अलिखित नियमो अथवा कानूनो का निकाय है जो शासन के सगठन एव उसके विभिन्न अगो के बीच शक्तियो के वितरण एव उन सामान्य सिद्धान्तो का निर्धारण करता है जिनके द्वारा इन शक्तियो का प्रयोग किया जाना चाहिए।"

---

1 A constitution is 'the system of fundamental political institutions or 'the autobiography of a power relationship'—Herman Finer *The Theory and Practice of Modern Government* Methuen 1954 p 116

2 'The constitution is that body of rules or laws, written or unwritten, which determines the organisation of the government, the distribution of power to the various organs of government and the general principles on which these powers are to be exercised" —Gilchrist *Principles of Political Science*, 1930, p 211

डायसी के श दो म "सविधान के विधायी तत्व वे सार नियम हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज्य के प्रभुत्व के विभाजन अथवा प्रयाग को प्रभावित करते हैं।"[3]

गेटिल के अनुसार "किसी राज्य के उन आधारभूत सिद्धान्तो का नाम ही सविधान है जो उसके स्वरूप को निश्चित करते ह। इन सिद्धान्तो का सम्बन्ध राज्य के सगठन की पद्धति, सरकार के विभिन्न अगो के बीच राज्य की प्रभुशक्ति के वितरण, शासकीय कायक्षेत्र एव उनके सम्पादन की पणाली तथा शासन एव जनता के मध्य सम्बन्धो से होता है।"[4]

जलिनिक सविधान को उन कानूनो का सग्रह मानते है जिनके द्वारा राज्य के सर्वोच्च अगो का निर्धारण एव सगठन होता है तथा उसके पारस्परिक सम्बन्धो, काय-क्षेत्रो एव राज्य के सन्दर्भ म उनके मौलिक स्थान का निश्चय होता है।'[5]

बोवियर (Bouvier) के अनुसार "सविधान दश की मौलिक विधि है। इसमे शासन के आधारभूत सिद्धान्तो, प्रभुसत्ता के प्रयोग के नियमो एव प्रभुसत्ता किन व्यक्तियो तक सीमित होगी आदि का उल्लेख किया जाता है।"[6]

जॉर्ज कानवाल लेविस के अनुसार "समाज मे प्रभुशक्ति की व्यवस्था एव वितरण अथवा शासन के स्वरूप का नाम ही सविधान है।"[7]

---

3 "The constitution of a State consists of all rules which directly or indirectly affect the distribution or the exercise of sovereign power in the state '—Dicey , quoted by Majumdar B B *Principles of Political Science and Government*, 9th edn , p 135

4 "The fundamental principles that determine the form of a state are called its Constitution These include the method by which the state is organised the distribution of its sovereign powers among various organs of government, the scope and manner of exercise of governmental functions and the relations of the government to the people over whom its authority is exercised ' —Gettell *Political Science*, (1956 edn), p 244

5 The constitution 'is the body of the juridical rules which determines the supreme organs of the state, prescribes their mode of creation, their mutual relation, their sphere of action and finally the fundamental place of each of them in relation to the state '—Jellinek , quoted by Garner *op cit* , p 457

6 A constitution is 'the fundamental law of the state directing the principles upon which the government is founded, and regulating the exercise of the sovereign powers directing to what bodies and persons these powers shall be confined and the manner of their exercise '—Bouvier *Legal Dictionary* , quoted by E Asirvatham *op cit* , p 349

7 'The term constitution signifies the arrangement and distribution of sovereign power in the community or the form of the government "—George Cornwall Lewis , quoted by Garner *Political Science and Government*, 1951, p 456

स्विस विद्वान चार्ल्स बोर्गोड के अनुसार "संविधान मौलिक विधि है जिसके अनुसार राज्य के शासन का संगठन किया जाता है तथा समाज के प्रति व्यक्तियों एवं नैतिक पुरुषों के सम्बन्धों को निश्चित किया जाता है।' संविधान लिखित अभिलेख के रूप में भी हो सकता है जो सम्प्रभु सत्ता द्वारा एक या अनेक विधियों के रूप में पारित किया गया हो अथवा न्यायिक निर्णयों एवं अध्यादेशों या परम्पराओं पर आश्रित हो सकता है।[8]

अमेरिकन न्यायाधीश कूले के अनुसार "राज्य की मौलिक विधि को संविधान कहते हैं जिसके सिद्धान्तों द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि शासनतन्त्र किस प्रकार स्थापित किया जाये तथा किन व्यक्तियों को कितने अधिकार दिये जायें और वे उसका किस प्रकार प्रयोग करें।'[9]

न्यायधीश मिलर के अनुसार ' संविधान उस अभिलेख को कहते हैं जिसके आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार शासनतन्त्र की मौलिक शक्तियाँ निश्चित, सीमित एवं पारिभाषित की जाती हैं।"[10]

ब्रिटिश न्यायशास्त्री आस्टिन ने संविधान की संक्षिप्त परिभाषा करते हुए कहा है कि "संविधान वह व्यवस्था है जिसके द्वारा सर्वोच्च शासन के संगठन को निश्चित किया जाता है।"

सर जेम्स मॅकिंटाश के अनुसार "संविधान उन समस्त लिखित व अलिखित आधारभूत कानूनों का संग्रह है जो उच्च शासनाधिकारियों के सर्वाधिक

---

8 ' A constitution is the fundamental law according to which the government of a state is organised and agreeably to which the relations of individuals or moral persons to the community are determined It may be a written instrument, a precise text or series of texts enacted at a given time by a sovereign power or it may be the more or less definite result of a series of legislative acts, ordinances, judicial decisions, precedents and customs of diverse origin and of unequal value and importance "—Charles Borgeaud quoted by Dr E Asirvatham *op cit*, p 349, and Garner *op cit*, p 457

9 Constitution is the fundamental law of state containing the principles upon which goverment is founded regulating the division of the sovereign power and directing to what persons each of these powers is to be confined and the manner in which it is to be executed —Justice Cooley quoted by Garner *op cit*, p 456

10 "A constitution in the American sense of the word is a written instrument by which the fundamental powers of government are established limited and defined and by which these powers are distributed among several departments for their more safe and useful exercise for the benefit of the body politic"—Justice Miller, quoted by Garner *op cit*, p 457

महत्त्वपूर्ण अधिकारों एवं जनता के अनिवार्य विशेषाधिकारों का नियमन करता है।'[11]

संविधान शब्द का प्रयोग सामान्यतः व्यापक एवं संकीर्ण अर्थों में किया जाता है। व्यापक अर्थ में किसी देश की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था से सम्बन्धित सभी नियमादि को जो शासन को स्थापित, व्यवस्थित एवं नियमित करते हैं, संविधान कहते हैं।

बोलिंगब्रुक ने इसी अर्थ में निम्न शब्दों में संविधान की परिभाषा प्रस्तुत की है—'संविधान से अर्थ उन विधियों, संस्थाओं एवं परम्पराओं के समूह से है जो सुनिश्चित विवेक के कुछ सिद्धान्तों का परिणाम हैं तथा जिसके अनुसार किसी समाज ने अपनी शासन व्यवस्था को स्वीकार किया है।'[12]

व्यापक अर्थ में संविधान सभी विधिक (legal) एवं अविधिक (non legal) नियमों का संग्रह है। विधिक नियमों से अर्थ ऐसे नियमों से है जो न्यायालय द्वारा मान्य होते हैं एवं उनके द्वारा क्रियान्वित किये जाते हैं। अविधिक नियमों के अन्तर्गत परम्पराएँ (customs) अभिसमय (conventions) आदि आते हैं। इन्हें संसदीय विधियों की भाँति न्यायालयों द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जाता। संकीर्ण अर्थ में संविधान ऐसे विधिक एवं लिखित नियमों का संग्रह है जो किसी देश के शासन का संचालन करते हैं। प्रायः सभी देशों में, ब्रिटेन को छोड़कर, संविधान का संकीर्ण अर्थ प्रचलित एवं मान्य है। ब्रिटेन में शासन के संचालन में आधारभूत विधिक एवं अविधिक सभी नियमों को संविधान का अंग माना जाता है। परन्तु वर्तमान समय में लिखित संविधानों की सुनिश्चित परिपाटी पड़ चुकी है। अतः संविधान का सर्वमान्य स्वीकृत अर्थ उन विधिक नियमों के लेखबद्ध संग्रह से है जिनके अनुसार देश का शासन चलता है। ग्रेट ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान क्रमशः व्यापक एवं संकीर्ण अर्थ वाले संविधानों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। संविधान की उपरोक्त सभी परिभाषाओं में एक ही सार है। संविधान से अर्थ उन समस्त लिखित एवं अलिखित नियमों या कानूनों के समूह से है जिनके अनुसार देश का शासन चलता है। शासन के स्वरूप, उसके अंगों के बीच शक्तियों का विभाजन, उनकी कार्य प्रणाली, सरकार एवं नागरिकों के कर्तव्य एवं अधिकार संविधान द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

---

11 "The constitution is a body of those written or unwritten fundamental laws which regulate the most important rights of the higher magistrates and the most essential privileges of the subjects"—Sir James McIntosh, quoted by Garner op cit, p 455

12 'By constitution, we mean, whenever we speak with propriety and exactness that assemblage of laws, institutions and customs derived from certain fixed principles of reason that compose the general system, according to which the community has agreed to be governed'—Henry St. John, Viscount Bolingbroke quoted by H Finer op cit, p 116

डा० आशीर्वादम के अनुसार "सविधान राज्य के सामान्य ढाँचे का निर्धारण करता है अत उसे राज्य का ढाचा कह सकते हैं।"[13]

सी एफ स्ट्राग के अनुसार "श्रेष्ठ सविधान मे निम्न तत्त्व आवश्यक हैं प्रथम, सरकार के विभिन्न अग किस प्रकार सगठित किये गये हैं। द्वितीय, इन अगो को कितनी शक्ति प्रदान की गयी है। तृतीय, किस प्रकार शासन के विभिन्न अग शक्ति का प्रयोग करते हैं। मानव शरीर को स्वरूप (constitution) कहा जाता है एव जिस प्रकार विभिन्न अग शरीर के स्वस्थ रहने पर ठीक प्रकार से कार्य करते हैं और शरीर के अस्वस्थ होने पर ठीक प्रकार से काय नही कर पाते हैं वही स्थिति सविधान की है। सविधान राज्य रूपी शरीर का स्वरूप है जिसके अग एव काय निश्चित होते हैं एव जो किसी निरकुश शासक की इच्छा के आधीन नही होते।"[14]

गानर का कथन है कि जिस प्रकार सविधान की भावना की चर्चा की जाती है उसी प्रकार कभी कभी सावजनिक नैतिकता एव न्याय के उदात्त तथा उच्च सिद्धान्तो सम्बन्धी आदश को सविधान की सज्ञा दी जाती है। सविधान की भावना (spirit of the constitution) से तात्पय किसी अनुमानित ऐसे नियम एव सिद्धान्त से है जिसके अनुरूप सविधान का सामान्य स्वरूप होना चाहिए। जॉन स्टुअट मिल के भी विचारो मे इस कथन की झलक मिलती है। मिल ने सवैधानिक नैतिकता का उल्लेख किया है जिसका व्यावहारिक महत्त्व सविधान से किसी भी प्रकार कम नही होता।

सक्षेप मे, सविधान का उद्देश्य शासन के निरकुश कार्यों को मर्यादित करना, शासितो के अधिकारो की प्रतिभूति देना एव प्रभुसत्ता के कायक्षेत्र की सीमा निर्धारित करना है।

सविधान की आवश्यकता

प्राचीन काल से ही यह स्वीकार किया गया है कि शासन के उन मौलिक सिद्धान्तो को लेखबद्ध कर देना चाहिए जिनके अनुसार भावी शासन सचालित एव आधारित हो। आधुनिक यूरोपीय इतिहास मे 1579 ई का नीदरलैण्डस के सयुक्त प्रान्त का सघ अधिनियम इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। स्मरणीय है कि अमेरिकी एव फ्रेंच क्रान्तिया तक इस प्रकार के मौलिक सिद्धान्तो को सविधान की सज्ञा नही दी जाती थी। 1787 ई मे सवप्रथम अमेरिकावासियो ने घोषणा की कि "हम सयुक्त राज्यो की जनता अमेरिकी सयुक्त राज्य की स्थापना करते है।" उस समय से लिखित सविधान की परिपाटी पूरी तरह स्वीकृत हो चुकी है। सविधानो मे शासन के सगठन के सिद्धान्तो का उल्लेख होता है। यही सविधान का यथाथ अथ है।

19वी सदी मे क्रमश यह धारणा बलवती होती गयी कि प्रत्येक राज्य की

---

13 'A constitution fixes the general structure of the state it is so to speak, the skeleton of the state' —E Asirvatham *Political Theory* 1965 p 349

14 Strong C F *Modern Political Constitutions* 1963 p 12

जनता द्वारा अनुमोदित अपना सविधान होना चाहिए। ऐसा सविधान वतमान काल म लोकतन्त्र की आधारशिला माना जाता है। सविधान की आवश्यकता के निम्न कारण है—

(1) शासन की शक्तियो को सविधान जैसे मौलिक कानून द्वारा ही सीमित करना सम्भव है। राजतन्त्रीय एव कुलीनतन्त्रीय युगो के अत्याचारो ने शासको की निरकुशता पर अकुश लगाना अनिवाय कर दिया था।

(2) व्यक्ति के अधिकारो की रक्षा सविधान द्वारा ही सम्भव होती है।

(3) जॉन आदम, जेम्स मेडीसन एव सयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक न्याया धीशा ने इस बात पर बल दिया है कि वतमान एव भावी सततियो की स्वेच्छा पर नियन्त्रण आवश्यक है। सविधान इस दायित्व को भली भाति निभाता है। इसके विपरीत, जेफरसन का मत था कि प्रत्येक सविधान का काल निश्चित होना च जिससे बदलती हुई परिस्थितियो के अनुरूप जनता को उसे परिवर्तित करने सरलता हो।

सविधान-हीन राज्य की आज कल्पना नही की जा सकती। प्रत्येक राजनीति समाज का अपना सविधान होना चाहिए।

आदर्श सविधान के लक्षण

गेटिल के अनुसार अच्छे सविधान के अनिवाय तत्व सुनिश्चितता (definiteness), पूणता (comprehensiveness) सक्षिप्तता (brevity) तथा कठोरता एव सुपरिवतनशीलता का सम्मिश्रण (blending of flexibility and rigidity) हैं।[15] सुनिश्चितता से अथ है कि सविधान की भाषा यथासम्भव स्पष्ट होनी चाहिए। इस दृष्टि से सविधान को लिखित होना चाहिए। लेकिन हर्मन फाइनर लिखित सविधान को अलिखित सविधान से अधिक महत्व नही देते। उसका कथन है कि लिखित सविधान अपनी स्पष्टता तथा व्याख्याओ (interpretations) के द्वारा परिवर्तित न होने के अनुपात म ही एक सन्दभ मापक का काय कर सकता है। लेकिन प्राय हर सविधान मे प्रति दस वर्षों म सशोधन एव परिवधन होते रहते हैं। अत अलिखित लिखित सविधान प्राय इस दृष्टि स समान हैं।[16] यही तक पूणता के सम्बन्ध मे सत्य है। सविधान निर्माताओ द्वारा अनन्त काल तक प्रत्यक बात की व्यवस्था करना सम्भव नही है। फिर भी, जहाँ तक सम्भव हो, सविधान म सम्पूण शासनतन्त्र के सचालन एव शासन की शक्ति के प्रयोग से सम्बन्धित बातो का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए और अनावश्यक विषया का विस्तृत उल्लेख नही होना चाहिए। सविधान मे केवल शासन क सगठन क मौलिक सिद्धान्ता का ही उल्लेख होना चाहिए, प्रशासनिक विषया का विस्तार से उल्लेख नही किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका का सविधान सक्षिप्तता का श्रेष्ठ उदाहरण है। उसम केवल शासनतन्त्र एव उसके

---

15 Gettell R G *op cit*, pp 246-249
16 Finer, H *op cit*, p 127

सचालन सम्ब धी मौलिक सिद्धान्तो का ही उल्लेख है। इसके विपरीत, क्यूबा का सवि धान (1940 ई) एक लम्बा सविधान है जिसमे 286 अनुच्छेद हैं। भारत के वत मान गणतन्त्रीय सविधान (1951 ई) म उससे भी अधिक 395 अनुच्छेद एव आठ परिशिष्ठ है। प्रशासकीय विषया या सावजनिक नियमो एव कार्यों से सम्बन्धित वातो का उल्लेख सविधान मे नही होना चाहिए। इनकी व्यवस्था ससदीय विधिया से की जानी चाहिए जिससे समाज की परिवर्तित परिस्थितिया के अनुसार उनमे सरलता से परिवतन किया जा सके।

सविधान न तो इतना कठोर होना चाहिए कि परिवर्तित परिस्थितियो के अनु सार उसमे परिवतन या सशोधन न किया जा सके। साथ साथ वह इतना सुपरिवतन शील या लचीला भी नही होना चाहिए कि उसकी स्थिरता ही समाप्त हो जाय। अत सविधान म कठोरता एव लचीलेपन का उचित मात्रा मे सम्मिश्रण होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, 20वी सदी मे अच्छे सविधान म निम्न गुणो का होना भी आवश्यक माना गया है

(1) सविधान मे नागरिको के मौलिक अधिकारो का उल्लेख होना चाहिए।

(2) स्वतन्त्र एव निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा हो सके।

(3) सविधान द्वारा अल्पसख्यक वर्गों की सुरक्षा की पूण गारण्टी होनी चाहिए।

(4) सविधान मे सामाजिक नीति का स्पष्टतापूवक उल्लेख किया जाना चाहिए। 20वी शताब्दी के मध्य से इसकी आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा है। रूस, आयरलैण्ड एव फ्रा स के सविधानो मे सामाजिक नीति का उल्लेख किया गया है। भारत ने भी इन सविधाना से प्रेरणा प्राप्त करते हुए सविधान की प्रस्ता वना मे भावी सन्ततिया के लिए विधि निर्माण सम्बन्धी आदश निर्धारित किये हैं। यह आदश है सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय, अभिव्यक्ति विश्वास, धम एव उपासना की स्वतन्त्रता, स्थिति एव अवसर की समानता तथा भ्रातत्व जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व एव राष्ट्र की एकता की रक्षा हो सके।

(5) जापान के नवीन सविधान मे जिसका निर्माण अमेरिकी प्रेरणा से हुआ है, युद्ध को हमेशा के लिए त्याग देने की घाषणा की गयी है। विश्व शान्ति की दिशा मे यह एक महत्वपूण कदम है। यदि प्रत्येक देश के सविधान म इस प्रकार का प्राविधान हो और उसका दृढतापूवक पालन किया जाये तो युद्ध की विभीषिका से बचा जा सकता है। लेकिन इसकी आशा प्राय नगण्य है।

के सी ह्वीयरे (K C Wheare) ने इस बात की विस्तार से चर्चा की है।[17] उनके अनुसार एक आदश सविधान को अत्यन्त छोटा होना चाहिए। सत्य तो यह है कि सविधान का कोई एक स्वरूप सभी समुदायो के लिए न तो व्यावहारिक ही हो सकता है और न उचित एव वाछनीय ही। परन्तु वतमान एव भविष्य को ध्यान म

17 Wheare K C *Modern Constitutions* 1966, Ch III, pp 32 51

रखते हुए प्रत्येक समुदाय के लिए व्यावहारिक एव आदश सविधान की रूपरेखा निश्चित की जा सकती है । उदाहरण के लिए, एकात्मक शासन के सविधानो मे केवल शासन के सगठन और उसके विभिन्न अगो के पारस्परिक सम्बन्धो की रूपरेखा सामान्य शब्दो मे व्यक्त की जानी चाहिए । सघीय सविधान का एकात्मक सविधान की अपेक्षा बडा होना स्वाभाविक ही है । उसमे केन्द्रीय एव राज्यो की सरकारो के क्षेत्राधिकार के स्पष्ट उल्लेख के साथ साथ व्यवस्थापिका की सीमा का भी उल्लेख होना चाहिए तथा व्यवस्थापिका की विधियो से सविधान को श्रेष्ठ एव ऊँचा माना जाना चाहिए । प्रत्येक सविधान मे सशाधन की प्रणाली भी होनी चाहिए । स्मरणीय है कि सघीय देशो मे सशाधन के पूण अधिकार सघीय व्यवस्थापिकाओ को नही दिये जा सकते । एकात्मक शासन की तुलना मे सघीय देशो म न्यायपालिका की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख भी होना चाहिए । ह्वीयरे के अनुसार सघीय सविधानो मे शासन सम्बन्धी विषयो की केवल एक ही सूची होनी चाहिए तथा इस एक सूची के द्वारा ही केन्द्रीय सरकार या राज्यो की सरकारो की शक्तियो का उल्लेख किया जाना चाहिए । इस व्यवस्था का लाभ यह है कि केन्द्र एव राज्यो मे परस्पर विवाद के कम अवसर उत्पन्न होते हैं ।

एकात्मक सविधान की अपनी कुछ समस्याएँ हैं जो सघात्मक सविधान के निर्माताओ को भी कष्टप्रद हाती है । एकात्मक सरकार की स्थापना करते समय जनता शासन की शक्ति को सीमित करना आवश्यक समझती है । फलस्वरूप सविधान मे नागरिको के मौलिक अधिकारो का उल्लेख किया जाता ह और शासन से यह आशा की जाती है कि वह मौलिक अधिकारो को लागू करे । शासन को उनमे हस्तक्षेप तो करना ही नही चाहिए । सविधान मे मौलिक अधिकारो को लिपिबद्ध करने सम्बन्धी अनेक समस्याएँ हैं । कौन मे अधिकार लिखे जायँ ?, उन पर कौन से और कितने अर्थात् किस सीमा तक प्रतिबन्ध होने चाहिए ? सोवियत रूस के सविधान ने अपने नागरिको को अनियन्त्रित अधिकार प्रदान किये है (अनुच्छेद 125) लेकिन वहा भी अधिकारो पर कुछ सीमाएँ ह । इन सीमाओ से निरकुशता के लिए पर्याप्त गुजाइश रह जाती है । अधिकार यदि अस्पष्ट शब्दावली मे होते है तो उनका क्रियान्वित करना कठिन होता है । ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि सविधान, न्यायालय एव व्यवस्थापिका मे भाषा की अस्पष्टता के कारण विवाद उत्पन्न हो जाय । सविधान के बदनाम होने की हर सम्भावना हो जाती है क्योकि उसमे उल्लिखित अधिकारो की पवित्रता नष्ट होने लगती है । अत ह्वीयरे के मतानुसार सयुक्त राज्य अमेरिका का अनुगमन करते हुए स्पष्ट एव असदिग्ध शब्दावली मे अधिकारो की गारण्टी दी जानी चाहिए । लेकिन वहा भी सविधान मे 15वा सशोधन अधिकारो सम्बन्धी भाषा की अस्पष्टता को दूर करन क लिए पारित किया गया था । ह्वीयरे के अनुसार आदश सविधान मे थोडे स ही मौलिक अधिकारो का उल्लेख होना चाहिए । उसके अनुसार यदि उनका भी उल्लेख न हो तो और भी अच्छा है । अधिकारो को सामान्य विधि द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त आदश सविधान मे प्रस्तावना भी होनी

चाहिए। सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान निर्माताओ ने इस सम्बन्ध मे पहल की है तथा सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान मे अत्यन्त प्रभावकारी शब्दो मे प्रस्तावना दी है। अनेक देशो जैसे पचम फ्रेंच गणराज्य स्विटजरलैण्ड, भारत आदि के सविधानो मे भी प्रस्तावना है। रूस का सविधान इसका अपवाद है। ह्वीयरे का मत है कि "सविधान प्रधानत विधिक लेख्य है। सर्वोच्च विधि नियमो का इसमे उल्लेख नही होना चाहिए। उसमे केवल विधिक नियमो का ही उल्लेख होना चाहिए। विधिक नियम भले ही थोडे अथवा सामान्य हो लेकिन मौलिक अवश्य होने चाहिए। सविधान की भाषा सामान्य होते हुए भी निस्सन्देह भावुकता से दूर होनी चाहिए।"[18]

सविधानो का वर्गीकरण

सविधानो के दो मुख्य प्रकार हैं। प्रथम, लिखित एव अलिखित सविधान,[19] द्वितीय, सुपरिवर्तनीय (Flexible) एव दुष्परिवर्तनीय (Rigid) सविधान। ह्वीयरे[20] ने इन दो प्रकारो के अतिरिक्त निम्न प्रकार के सविधानो का और उल्लेख किया है

(1) सविधान जो व्यवस्थापिका से ऊपर हैं एव वे जो व्यवस्थापिका से ऊपर नही हैं।

(2) सघीय एव एकात्मक सविधान (Federal and Unitary Constitutions)।

(3) अध्यक्षात्मक एव ससदीय कार्यपालिका वाले सविधान (Presidential and Parliamentary Executive type Constitutions)।

(4) गणतन्त्रीय एव राजतन्त्रीय सविधान (Republican and Monarchial Constitutions)।

लिखित एव अलिखित सविधानो के अन्तर का आधार सविधान का लिखित या अलिखित होना है। सुपरिवर्तनीय एव दुष्परिवर्तनीय सविधानो का वर्गीकरण लॉर्ड ब्राइस की देन है तथा सविधान मे सशोधन की रीति पर आधारित है। **के सी ह्वीयरे** द्वारा दिये गये सविधानो के अन्य प्रकारो की यदि समीक्षा की जाय तो यह स्वीकार करना पडेगा कि सविधानो के उपर्युक्त वर्णित दो प्रकार ही मुख्य हैं। ह्वीयरे द्वारा उल्लिखित यह वर्गीकरण कि सविधान व्यवस्थापिका से उच्च है अथवा नही, सविधान के सुपरिवर्तनीय एव दुष्परिवर्तनीय वर्गीकरण के पर्याप्त निकट है। ह्वीयरे के वर्गीकरण का केवल यही अर्थ है कि सविधान मे व्यवस्थापिका द्वारा सशोधन किया जाना सम्भव है या नही। अत यह कोई नवीन एव महत्वपूर्ण वर्गीकरण नही है।

सघीय एव एकात्मक सविधानो का वर्गीकरण केन्द्रीय सरकार एव प्रान्तीय या क्षेत्रीय सरकारो के मध्य शासन की शक्ति के विभाजन पर आधारित है। यह

---

18 Wheare, K C *op cit* p 51

19 स्ट्राग ने लिखित एव अलिखित सविधानो के लिए written और unwritten के स्थान पर documentary और non documentary शब्दो का प्रयोग किया है।—Strong, C F *op cit* p 135

20 Wheare, K C *op cit*, Ch 2, pp 14 32

राज्यो का वर्गीकरण माना जाना चाहिए न कि सविधानो का क्योकि शासन प्रणाली ही राज्यो के वर्गीकरण का स्वीकृत आधार होती है । अध्यक्षात्मक एव ससदीय कार्यपालिका वाले सविधानो का आधार शक्ति पृथक्करण (seperation of powers) है । स्मरणीय है कि सविधानो मे शासन के केवल कार्यपालिका अग का ही उल्लेख नही होता । इसी प्रकार, गणतन्त्रीय एव राजतन्त्रीय वर्गीकरण भी शासन के दो प्रकारो की विशेषताओ का ही उल्लेख करते है । गणतन्त्रीय से तात्पर्य लोकतन्त्रीय व्यवस्था है तथा राजतन्त्रीय शासन निरकुशतन्त्र का प्रतीक है । यह शासन के प्रकार है न कि सविधान के ।

फाइनर के अनुसार सविधानो के स्वरूप से सम्बन्धित तीन मुख्य समस्याएँ है (1) सविधान लिखित है या अलिखित ? (2) सविधान सुपरिवर्तनीय है अथवा दुष्परिवर्तनीय ? (3) क्या सविधान की सर्वोच्चता सम्बन्धी व्यवस्था उसमे है ? इनमे भी मुख्य प्रश्न यह है कि सविधान के विभिन्न स्वरूपो के अन्तर का देश के राजनैतिक विचार एव व्यवहार पर क्या प्रभाव पडता है ?[21]

लिखित सविधान निर्मित (enacted) होते है जब कि अलिखित सविधान ऐतिहासिक विकास का परिणाम होते है । इन्हे 'cumulative' की सज्ञा दी जाती है । अलिखित सविधान का एकमात्र उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन का सविधान है । सयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, रूस आदि के सविधान लिखित सविधान के उदाहरण हैं । अलिखित सविधान का अधिकाश अश लिखित रूप मे नही होता है और न उसका निर्माण किसी निश्चित समय मे योजनाबद्ध रीति से किसी सविधान सभा या इस हेतु आहूत सम्मेलन द्वारा ही होता है । अलिखित सविधान प्राय प्राचीन परम्पराओ, रीति रिवाजो, रूढियो, न्यायिक निर्णयो एव समय समय पर निर्मित ससदीय विधियो का पुज होता है । वह राज्य के ऐतिहासिक विकासक्रम के साथ विकसित होता रहता है । ग्रेट ब्रिटेन के सविधान का इसी प्रकार विकास हुआ है । अलिखित सविधान कोई विधिवत् लिपिबद्ध लेख्य नही है । अत अलिखित सविधान के ज्ञान के लिए राज्य के ऐतिहासिक विकास से परिचित होना आवश्यक होता है । गानर के अनुसार "अलिखित सविधान की सभी नही वरन अधिकाश बातें कभी किसी लेख्य या लेख्यो के सग्रह के रूप मे लिपिबद्ध नही की जाती ।"[22] अलिखित सविधान **सर जान मकिटाश** के इस कथन को सवथा चरिताथ करता है कि "सविधान जन्म लेते हैं, बनाये नही जाते ।"[23]

लिखित सविधान एव उनका विकास

फाइनर के अनुसार लिखित सविधानो के विकास के दो प्रमुख कारण होते हैं—प्रथम, समाज के प्राचीन शक्ति सम्बन्धो (power relationship) के पतन के पश्चात

21 Finer, H *op cit* p 118
22 Garner *Political Science and Government*, Indian edn , 1951, p 464
23 McIntosh, Sir John , quoted by Garner *op cit* , p 464

नवीन शक्ति सम्बन्धो का उदय होता है। इन सम्बन्धो को सुनिश्चित एव स्पष्ट करने के लिए उन्हे लिपिबद्ध कर दिया जाता है। द्वितीय, अनेक राज्यो द्वारा एक इकाई के रूप मे सगठित होकर अप्राप्य उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु एव राजनीतिक व प्रशासनिक अपव्यय को रोकने तथा आपसी मतभेदो का दूर करने के लिए सभी से सम्बन्धित कार्यों एव तत्सम्बन्धी परिस्थितियो को सविधान मे लिपिबद्ध कर देना श्रेयस्कर समझा जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका एव स्विटजरलैण्ड के परिसघ तथा आस्ट्रेलिया के कॉमनवैल्थ के सविधान इसके उदाहरण हैं।[24]

1919 ई के जर्मनी के वीमर सविधान (Weimar Constitution) के उदय के भी उपरोक्त कारण थे। स्मरणीय है कि जर्मनी म प्रचलित एकतन्त्रीय व्यवस्था के स्थान पर उससे श्रेष्ठ परन्तु नवीन सघीय व्यवस्था का निर्माण किया गया था। भारत के नवीन सविधान (1950 ई) के उदय मे भी उपरोक्त दोनो कारण काय कर रहे थे। प्रथम, स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ नवीन सामाजिक सम्बन्धो का उदय हुआ था। यह सम्बन्ध ब्रिटिशकालीन शक्ति सम्बन्धो से सवथा भिन्न थे। द्वितीय, ब्रिटिश भारत के प्रान्त एकात्मक शासन व्यवस्था के आधीन थे जबकि देशी रियासतें 15 अगस्त 1947 के बाद पूण स्वतन्त्र हो गई थी। इस स्थिति को समाप्त करने के लिए भारतीय सविधान निर्माताओ ने सघीय व्यवस्था की स्थापना की थी। यह नवीन शक्ति सम्बन्ध पुराने सम्बन्धो की अपेक्षा निश्चय ही श्रेष्ठ थे। *1936 ई का सोवियत रूस का 'स्टालिन सविधान'* समाज के नवीन शक्ति सम्बन्धो की स्थापना का स्वाभाविक परिणाम था। 1925 ई तथा 1936 ई के रूसी सविधान मे स्पष्ट अन्तर है। 1925 ई के रूसी सविधान की भाषा म सघष की स्पष्ट झलक दिखायी देती है जबकि 1936 ई के सविधान मे यथास्थिति को स्वीकारने की ध्वनि निकलती है। 1936 ई के रूसी सविधान के निर्माण के समय तक रूसी क्रान्ति एक वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य बन चुकी थी।[25]

लिखित सविधान का प्रथम प्रयत्न 1649 ई मे इगलैण्ड मे किया गया था यद्यपि इस सविधान (The Agreement of the People) का निर्माण अक्टूबर 1647 ई मे हुआ था। ससदीय सेना के अधिकारियो की समिति (The Council of the Parliamentary Army) द्वारा 1649 ई मे इस सविधान को स्वीकृत किया गया था लेकिन यह क्रियान्वित नही हो सका। 1653 ई मे शासन का लेख (The Instrument of Government) नामक एक अन्य सविधान तयार किया गया था। यह लिखित सविधान का दूसरा उदाहरण है। यह भी अल्पकालीन सिद्ध हुआ और 1660 ई मे इगलैण्ड मे राजतन्त्र की पुनस्थापना के साथ इसका अन्त हो गया। इगलैण्ड जा

---

24 Finer, H *op cit* p 119

25 *सविधान अनुच्छेद 4। इस अनुच्छेद के आधीन सोवियत रूस म पूंजीवाद का अन्त कर दिया गया* है और निजी स्वामित्व के स्थान पर सामूहिक स्वामित्व की स्थापना की गई है तथा व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा शोषण समाप्त कर दिया गया है।

आज अलिखित सविधान का एकमात्र उदाहरण है, वास्तव मे, 'लिखित सविधानो की जननी भी है।'' [6]

आधुनिक लिखित सविधाना के प्रथम उदाहरण अमरिकी उपनिवेशो के विभिन्न सविधान हैं। इनका निर्माण ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्ति पाने के पश्चात किया गया था। 1776 ई मे फिलाडेलफिया का फ्रेंस ने न्यू इगलैण्ड के प्रतिनिधि श्री जॉन आदम (John Adams) के प्रस्ताव को स्वीकार किया था जिसके द्वारा उपस्थित प्रतिनिधियो को अमेरिका एव विभिन्न घटक इकाइयो की जनता की सुरक्षा एव सुख को ध्यान म रखते हुए शासन के निर्माण का आह्वान किया गया था। जून 1776 ई मे अमेरिका के वर्जीनिया (Virginia) नामक राज्य ने न्यू हैम्पशायर (New Hampshire) एव दक्षिणी कैरोलिना (South Carolina) का अनुगमन करते हुए सविधान का निर्माण किया था। इस सविधान की अपनी विशेषता यह थी कि इसमे अधिकारो की घोषणा (The Declaration of Rights) की गयी थी जो परवर्ती अमेरिका एव यूरोपीय सविधाना के लिए उदाहरण बन गयी।

फ्रास को अमेरिकी स्वातन्त्र्य घोषणा एव विभिन्न राज्यो के सविधानो से प्रेरणा मिली थी। जलिनिक [27] के अनुसार अधिकारो की घोषणा की प्रेरणा फ्रास को अमेरिकी घटनाओ से प्राप्त हुई थी। 1789 ई मे फ्रास मे सामन्तवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति हुई जिसके फलस्वरूप नवीन सामाजिक सम्बन्धो का उदय एव नवीन सविधान का निर्माण हुआ। फ्रासीसी क्रान्तिकारियो की भाषा मे अमेरिकी क्रान्तिकारियो के शब्द प्रतिध्वनित होते थे। 2 अक्टूबर, 1789 ई को फ्रेंच सविधान सभा ने नागरिको के अधिकारो की घोषणा की। इस सविधान की प्रस्तावना मे लिखित सविधाना के सभी अनिवाय लक्षणा का उल्लेख था। फ्रास मे 1789 ई मे पूणत लिखित सविधान लागू हुआ था। 1875 ई मे तृतीय गणराज्य का उदय हुआ था और यह फ्रास का 13वा लिखित सविधान था। [28]

लिखित सविधान एक पवित्र लेख होता है जिसमे अधिकाश आधारभूत सिद्धान्त औपचारिक रूप से लिपिबद्ध कर दिये जाते ह। लिखित सविधान मे शासन के विभिन्न अगो—व्यवस्थापिका, कायपालिका, न्यायपालिका—के सगठन, शक्तियो एव कतव्यो व कायप्रणाली, नागरिका के अधिकार आदि को भली प्रकार लिपिबद्ध कर दिया जाता है। जेम्सन के अनुसार 'लिखित सविधान एक ऐसा निश्चित प्रयास है जिसके द्वारा शासन को सगठित एव सचालित करने वाले आधारभूत सिद्धान्तो का सृजन किया जाता है।'' [29]

---

26 Finer, H *op cit*, p 120
27 Jellinek, George, quoted by Finer *op cit*, p 121
28 फाइनर के अनुसार फ्रास द्वारा सवप्रथम यूरोप म लिखित सविधाना का उदाहरण प्रस्तुत किया गया था।—*op cit*, p 122
29 A written constitution "is a work of conscious art and the result of a deliberate effort to lay down a body of fundamental principles under which government shall be organised and conducted —Jameson quoted by Garner *op cit*, p 464

लिखित सविधान वाले देशो मे सामान्यत सवैधानिक एव ससदीय दोनो प्रकार की विधिया पायी जाती हैं ।

क्या सविधानो का लिखित एव अलिखित का भेद उचित है ?

लिखित एव अलिखित सविधानो का अन्तर सी एफ स्ट्राग के अनुसार भ्रामक तथा मिथ्या है क्योकि कोई भी सविधान न तो पूणतया लिखित होता है और न अलिखित ही । लिखित सविधान सामान्यत उसे कहते हैं जो एक लेख्य के रूप मे उपलब्ध होता है और जिसे अपेक्षाकृत अधिक महत्ता प्राप्त होती है । अलिखित सविधान का लिखित सविधान की अपेक्षा परम्पराओ द्वारा विकास होता है । लिखित सविधानो को *सविधान-निर्माताओ द्वारा प्रत्येक स्थिति के अनुरूप अधिकाधिक पूण* बनाने का प्रयत्न किया जाता है । कुछ लिखित सविधान ऐसे भी होते हैं जो सविधान-निर्माताओ द्वारा निर्मित अथवा स्वीकृत अनेक मौलिक विधियो मे निहित होते हैं ।[30]

इगलैण्ड के अलिखित सविधान मे अनेक अश लिखित हैं, जैसे—मैग्ना कार्टा (1215 ई), 1689 ई का अधिकार पत्र (Bill of Rights), 1701 ई का उत्तराधिकार अधिनियम, 19वी सदी के विभिन्न मताधिकार अधिनियम, 1911 एव 1949 ई *के ससदीय अधिनियम इत्यादि* । इनके *कारण इगलण्ड के सविधान मे काफी अन्तर* पडा है । इसके विपरीत, सयुक्त राज्य अमेरिका का सविधान पूणरूपेण लिखित होते हुए भी अलिखित अभिसमयो एव परम्पराओ द्वारा विकसित हुआ है । उदाहरण के लिए *सविधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन* एक निर्वाचक मण्डल के सदस्यो के बहुमत द्वारा होना चाहिए जो कि जनता द्वारा चुने जाते हैं । व्यवहार मे स्थिति इससे भिन्न है । प्रत्येक राजनैतिक दल राष्ट्रपति पद के लिए अपना उम्मीदवार खडा करता है और दल द्वारा उसी के पक्ष मे प्रचार भी किया जाता है । जनता द्वारा निर्वाचक-मण्डल के सदस्यो को दलीय आधार पर चुना जाता है और सदस्य अपने दल के प्रत्याशी को ही मत देते है । फलस्वरूप राष्ट्रपति का निर्वाचन व्यवहार मे परम्परा के कारण जिसका सविधान मे कही उल्लेख नही है, प्रत्यक्ष रीति से होने लगा है ।

हमन फाइनर इस मत से सहमत प्रतीत नही होते । उनके अनुसार इगलैण्ड का सविधान स्वीकृत लेख्य के रूप मे मान्य नही है । इगलण्ड की राजनैतिक सस्थाएं न्यायिक निणयो एव ससदीय विधियो द्वारा व्यवस्थित की जाती हैं । इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के अभिसमय हैं जिनके द्वारा सविधान के अनेक महत्वपूण भागो को व्यवस्थित किया जाता है । ससद की सप्रभुता एव मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त भी अभिसमयो पर ही आधारित हैं । स्मरणीय है कि अभिसमयो के विपरीत न्यायिक निणय एव ससदीय विधियां लिखित होते हैं । ब्रिटिश सविधान अनेक लिखित सविधानो से *कही अधिक स्पष्ट एव मान्य* है । *अभिसमय* अलिखित होते हुए भी सुस्पष्ट हैं । इन अभिसमयो का स्पष्ट उल्लेख मन्त्रियो ने अपने पत्र-व्यवहार अथवा भाषणो म किया है । इसके अतिरिक्त, अनक सविधान शास्त्रियो एव विद्वानो—जसे,

30 Strong, C F *op cit*, pp 66-67

हैं तो अमेरिका के लिखित सविधान मे अनेक परम्पराओ का विकास हुआ है एव हो रहा है ।

(2) लिखित एव अलिखित भेद को मानने का अर्थ है कि लिखित रूप मे सविधान न होने पर सविधान के अस्तित्व को स्वीकार नही किया जा सकता । यही डी टाक्विले (de Tocqueville) का 1834 ई मे मत था । इसके विपरीत, इगलण्ड का सविधान अशत लिखित एव अशत अलिखित है ।

(3) इस अन्तर का एक अन्य निष्कर्ष यह है कि विधि का लिखित रूप मे होना अनिवार्य है एव विधि का अलिखित होना उचित नही है । स्मरणीय है कि विधि परम्परा पर भी आधारित हो सकती है, विधान (legislation) ही विधि का एकमात्र स्रोत नही है ।

सुपरिवर्तनीय एव दुष्परिवर्तनीय सविधान

सशोधन प्रणाली के आधार पर सविधानो को सुपरिवर्तनीय एव दुष्परिवर्तनीय मे भी वर्गीकृत किया जाता है । लॉर्ड ब्राइस[34] ने सर्वप्रथम सविधानो को सशोधन प्रणाली के आधार पर वर्गीकृत किया था । जिन सविधानो मे सामान्य विधि प्रक्रिया के द्वारा सशोधन सम्भव होता है उन्हे लचीला या सुपरिवर्तनीय सविधान की सज्ञा दी जाती है । इसके विपरीत, जिन सविधानो मे सशोधन की विशिष्ट प्रणाली होती है जो सामान्य विधि प्रक्रिया से भिन्न होती है उन्हे कठोर या दुष्परिवर्तनीय सविधान कहा जाता है ।

सुपरिवर्तनीय या लचीले सविधानो मे सवैधानिक विधि (Constitutional law) एव ससदीय विधि (Statutory law) मे विधानमण्डल द्वारा साधारण तरीके से परिवर्तन किया जा सकता है । लेकिन कठोर सविधानो मे सशोधन की विधि साधारण विधि प्रणाली की अपेक्षा जटिल तथा पृथक होती है । दुष्परिवर्तनीय सविधान सामान्य कानूनो की अपेक्षा अधिक पवित्र माने जाते है । उदाहरण के लिए, इगलण्ड मे विधि निर्माण के लिए एक ही विधि प्रक्रिया का अनुगमन किया जाता है, भले ही वह विधि किसी सामान्य प्रशासनिक समस्या से सम्बन्धित हो या हाउस आफ लॉर्ड्स की शक्तियो मे परिवर्तन से सम्बन्धित हो । स्ट्राग के अनुसार "इगलैण्ड मे पृथक सवैधानिक विधि जैसी कोई चीज नही है । अत इगलण्ड का सविधान सुपरिवर्तनीय है ।[35] लचीले सविधान का दूसरा उदाहरण न्यूजीलण्ड का है । न्यूजीलैण्ड का सविधान लिखित है लेकिन सशोधन प्रणाली सरल है । इसी प्रकार, इटली का पुराना सविधान भी लचीला है । राजतन्त्रीय इटली का सविधान लिखित था लेकिन उसमे सशोधन या परिवर्तन की कोई पृथक प्रणाली नही थी । यह सविधान इतना अधिक लचीला था कि मुसोलिनी सविधान की भावना की उपेक्षा किये बिना ही उसका उल्लघन करता रहा । अत यह निष्कर्ष निकलता है कि सविधान लिखित होने पर भी लचीला हो सकता है ।

34 Bryce *Flexible and Rigid Constitutions*, p 11 , quoted by Garner *op cit*, p 470

35 Strong *Modern Political Constitutions* (1963) p 68

इसके विपरीत, सविधान के बहुत कम लिखित हाने पर भी उसम सशोधन करना जटिल हो सकता है जसा कि तृतीय फ्रासीसी गणराज्य का सविधान। यह बहुत कम लिखित होते हुए भी कठोर था क्याकि सवैधानिक सशोधन के लिए इसम विशेष प्रणाली का उल्लेख किया गया था। यह आवश्यक नही है कि लिखित सविधान दुष्परिवतनीय ही हो। लिखित सविधान दोना ही प्रकार के हा सकते है।

दुष्परिवतनीय सविधानो के कुछ अ य उदाहरण निम्नवत ह सयुक्त राज्य अमेरिका, चतुथ एव पचम फ्रा सीसी गणराज्य, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, रूस एव नेपाल के सविधान। रूस के सविधान मे सशोधन सुप्रीम सोवियत के दोना सदनो के दो तिहाई बहुमत से किया जा सकता है। सयुक्त राज्य अमेरिका, स्विटजरलण्ड एव आस्ट्रलिया के सविधान मे सशावन की विशेप प्रणाली है जो साधारण विधि प्रक्रिया की अपेक्षा जटिल है। उपरोक्त तीना देशा म सघीय विधानमण्डल द्वारा ही केवल सवैधानिक सशोधन नही किय जा सकते अपितु इसके लिए अ य निकायो एव व्यक्तिया का सहयोग अपेक्षित हाता है। चतुथ फ्रासीसी गणराज्य का सविधान (1946 ई) भी तृतीय गणराज्य की भाति ही कठोर था। पचम फ्रासीसी गणराज्य का सविधान भी कठोर है यद्यपि इसमे सवधानिक सशोधन सम्ब धी कुछ शक्ति राष्ट्रपति को भी प्रदान की गई है।

यह वर्गीकरण अपक्षाकृत अधिक तकसगत एव वैज्ञानिक है। **सी एफ स्ट्राग** इस सविधान का सही वर्गीकरण मानता है।[36] **ह्वीयरे** ने भी इस वर्गीकरण को उचित एव वाछनीय भेद पर आधारित माना है। सुपरिवतनीय एव दुष्परिवतनीय सविधानो का भेद मात्रा का न होकर प्रकार का है।[37]

लिखित सविधान सामा यत कठोर एव दुष्परिवतनीय हाते है। न्यूजीलैण्ड का सविधान इसका एकमात्र अपवाद है। शेप सभी लिखित सविधान कठोर ह। इसी प्रकार, अलिखित सविधान सुपरिवतनीय होते है। अत लिखित एव दुष्परिवतनीय तथा अलिखित एव सुपरिवतनीय सविधाना के गुण दोप समान है। लिखित एव अलिखित सविधानो के गुण दोप की समीक्षा करके हम सुपरिवतनीय एव दुष्परिवतनीय सविधाना के गुण दोप की भी समीक्षा कर सकते है।

अलिखित एव सुपरिवतनीय सविधान के गुण—(1) समाज की बदलती हुइ सामाजिक परिस्थितियो के अनुसार इन सविधाना मे परिवतन सरलतापूवक एव शीघ्रतापूवक सम्भव हाता है। फलस्वरूप क्रान्ति की सम्भावना नही रहती।

(2) ब्राइस के अनुसार "अलिखित सविधान का सक्रमण-काल म बिना उसका ढाँचा तोडे परिवर्तित या सशोधित किया जा सकता है। सकट-काल क बीत जान पर व पुन अपने पूव आकार को ठीक उसी प्रकार प्राप्त कर लेत ह जैसे किसी गाडी को

---

36 Strong *op cit* p 67
37 Wheare *op cit* p 16

गुजरने के लिए किसी पेड की टहनी को एक तरफ हटाने के बाद गाडी के गुजर जाने पर टहनी पुन अपना स्थान ले लेती है ।[38]

(3) सुपरिवर्तनीय होने के कारण सविधान की उपेक्षा करने का भाव साधारणत जनता मे जागृत नही होता ।

(4) गिलक्राइस्ट के अनुसार ' वे राष्ट्रीय मस्तिष्क को भली प्रकार प्रतिबिम्बित करते है । ये सविधान अतीत पर आधारित होते हैं, वर्तमान मे सक्रिय रहते हुए एव भविष्य पर दृष्टि रखते हुए शासन सम्बन्धी वर्तमान धारणाओ तथा सामाजिक एव राजनीतिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्तो को अभिव्यक्त करते हैं ।[39]

दोष—(1) यह निरन्तर परिवर्तित होते रहते है अत अस्थायी एव अनिश्चित होते है ।

(2) राजनीतिज्ञो एव दलो की इच्छा पर इनमे सरलतापूवक परिवर्तन होते रहते हैं । सिजविक के शब्दो मे इन सविधानो मे "जन विरोध के क्षणिक झोको से महत्वपूर्ण सिद्धान्तो एव सस्थाओ का उन्मूलन हो सकता है तथा प्राचीनता एव परम्परा द्वारा प्रदत्त स्थिरता का सहज ही अन्त हो जाता है ।"[40]

(3) अलिखित सविधान लोकतन्त्रीय समाज की अपेक्षा कुलीनतन्त्रीय समाज के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं ।

(4) अलिखित सविधान परम्पराओ एव रूढियो पर आधारित होता है । इगलण्ड के अलिखित सविधान का विगत 200 वर्षों मे काफी भाग लिखा गया है । **टेम्परले** के शब्दो मे "किसी देश का अलिखित सविधान दो कारणो से अत्यधिक खतरनाक होता है । प्रथम, रूढियो के दो अर्थ सम्भव होते हैं जबकि कानून का केवल एक ही अर्थ होता है । सिद्धान्तहीन एव दुस्साहसी राजनीतिज्ञो को सवैधानिक रूढियो की इच्छानुसार व्याख्या करने का अवसर सहज ही मिल जाता है । इगलैण्ड की ससद मे साधारण कानून एव सवैधानिक कानूनो मे सशोधन करने की एक ही प्रक्रिया है ।'

(5) अलिखित सविधानो मे जनता को अधिकारो का आश्वासन नही दिया जाता है तथा सार्वजनिक कर्मचारियो को निर्णय करने की अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है । ब्राइस के अनुसार ये सविधान न्यायाधीशो के हाथ का खिलौना होते हैं ।[41]

लिखित एव दुष्परिवर्तनीय सविधानो के गुण—(1) यह स्पष्ट एव सुनिश्चित होते हैं तथा उदात्त राजनीति[illegible] का परिणाम होते हैं ।

38 Flexible constitutions [illegible] bent so as to meet emergencies without [illegible] and when the emergency has passed [illegible] form like a tree whose [illegible] let a vehicle [illegible] E [illegible] 479

39 Gilchri[illegible]

40 Sidgwi[illegible]

41 Bryce, [illegible]

(2) इनम सावजनिक भावावेश या ससदीय निरकुशता के फलस्वरुप शीघ्रता-पूवक उग्र परिवतन या सशोधन नही किये जा सकते ।[4]

(3) यह अधिक स्थायी व स्थिर होते है ।

(4) लिखित सविधान का निर्माण किसी सभा या समिति द्वारा बहुत सोच-समझ कर एव वाद विवाद के पश्चात किया जाता है अत उनके अथ के सम्बन्ध मे अधिक मतभेद की गुजाइश नही होती ।

(5) लिखित सविधानो म सामान्यतया नागरिको के मौलिक अधिकारो का उल्लेख होता है । अत इन सविधानो द्वारा नागरिक अधिकारो की सुरक्षा की कही अधिक गारण्टी दी जाती है जिससे शासन निरकुश एव अत्याचारी नही हो सकता ।

(6) सघीय राज्यो के लिए लिखित सविधान ही अधिक उपयुक्त है । सघीय सविधान मे शासन के विभिन्न अगो के अधिकारो मे सरलतापूवक परिवतन सम्भव नही होते हैं और न एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र का उल्लघन ही सरल होता है ।[43]

(7) लिखित सविधान मे सभी व्यवस्थाएँ लिपिबद्ध होती है । अत किसी विषय के सन्दभ मे विवाद की स्थिति म सर्वोच्च न्यायपालिका का निणय अन्तिम होता है ।

दोष—(1) लिखित सविधानो का सबसे बडा दोष यह है कि वे प्राय जटिल होते हैं । समय की गति के साथ उनम परिवतन नही हो पाते । यह दोष एकात्मक राज्यो की अपेक्षा सघात्मक राज्यो मे अधिक पाया जाता है क्योकि केन्द्र एव राज्यो के मध्य शक्ति विभाजन के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं । मकाले के अनुसार "क्रान्तियो का एक बडा कारण यह है कि जब राष्ट्र आगे बढते जाते है तो सविधान स्थिर बने रहते है ।"[44] **गानर** के अनुसार "लिखित सविधान ऐसी पोशाक की भाति है जो व्यक्ति के आकार, विकास एव परिवतन को ध्यान मे रखे बिना बनायी गयी हो ।[45]

(2) लिखित सविधान की व्याख्या सरल काय नही है । यह दायित्व सामान्यत न्यायपालिका को सौंपा गया है । न्यायाधीशो का दृष्टिकोण साधारणतया रूढिवादी होता है । फलस्वरूप न्यायपालिका एक तृतीय सदन बन जाता है ।" **लास्की**[46] का मत है कि न्यायाधीश परिवर्तित युग की भावना का प्रतिनिधित्व करने मे असफल रहे हैं । वे अपेक्षाकृत सविधानो के निर्माण के युग की ही भावना को अभिव्यक्त करते हैं और यदि परिवर्तित परिस्थितियो के अनुरूप उनके द्वारा सविधान की व्याख्या

---

42 Garner *op cit* p 478

43 Laski *Grammar of Politics* (1941), p 306

44 "The great cause of revolutions is this that while nations move onwards constitutions stand still '—Lord Macaulay, quoted by Garner *op cit* (1951), p 478

45 Written constitution "is like an attempt to fit a garment to an individual without taking into consideration its growth and size "—Garner *op cit*, (1951) p 480

46 Laski *A Grammar of Politics*, (1941), p 304

गुजरने के लिए किसी पेड की टहनी को एक तरफ हटाने व बाद गाडी के गुजर जाने पर टहनी पुन अपना स्थान ले लेती है।[38]

(3) सुपरिवर्तनीय होने के कारण सविधान की उपेक्षा करने का भाव साधारणत जनता मे जाग्रत नही होता।

(4) गिलक्राइस्ट के अनुसार "वे राष्ट्रीय मस्तिष्क को भली प्रकार प्रतिबिम्बित करते हैं। ये सविधान अतीत पर आधारित होते हैं, वर्तमान मे सक्रिय रहते हुए एव भविष्य पर दृष्टि रखते हुए शासन सम्बन्धी वर्तमान धारणाओ तथा सामाजिक एव राजनीतिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्तो को अभिव्यक्त करते हैं।[39]

दोष—(1) यह निरन्तर परिवर्तित होते रहते है अत अस्थायी एव अनिश्चित होते हैं।

(2) राजनीतिज्ञो एव दलो की इच्छा पर इनमे सरलतापूर्वक परिवर्तन होते रहते हैं। सिजविक के शब्दो मे इन सविधानो मे "जन विरोध के क्षणिक झोको से महत्वपूर्ण सिद्धान्तो एव सस्थाओ का उन्मूलन हो सकता है तथा प्राचीनता एव परम्परा द्वारा प्रदत्त स्थिरता का सहज ही अन्त हो जाता है।"[40]

(3) अलिखित सविधान लोकतन्त्रीय समाज की अपेक्षा कुलीनतन्त्रीय समाज के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं।

(4) अलिखित सविधान परम्पराओ एव रूढियो पर आधारित होता है। इगलैण्ड के अलिखित सविधान का विगत 200 वर्षों मे काफी भाग लिखा गया है। टेम्परले के शब्दो मे 'किसी देश का अलिखित सविधान दो कारणो से अत्यधिक खतरनाक होता है। प्रथम, रूढियो के दो अर्थ सम्भव होते हैं जबकि कानून का केवल एक ही अर्थ होता है। सिद्धान्तहीन एव दुस्साहसी राजनीतिज्ञो को सवैधानिक रूढियो की इच्छानुसार व्याख्या करने का अवसर सहज ही मिल जाता है। इगलैण्ड की ससद मे साधारण कानून एव सवैधानिक कानूनो मे सशोधन करने की एक ही प्रक्रिया है।"

(5) अलिखित सविधानो मे जनता को अधिकारो का आश्वासन नही दिया जाता है तथा सार्वजनिक कर्मचारियो को निर्णय करने की अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। ब्राइस के अनुसार ये सविधान न्यायाधीशो के हाथ का खिलौना होते है।[41]

लिखित एव दुष्परिवर्तनीय सविधानो के गुण—(1) यह स्पष्ट एव सुनिश्चित होते हैं तथा उदात्त राजनीतिक चेतना का परिणाम होते है।

---

38 Flexible constitutions "can be stretched or bent so as to meet emergencies without breaking their framework and when the emergency has passed, they slip back into their old form like a tree whose outer branches have been pulled on one side to let a vehicle pass —Lord Bryce quoted by Garner *op cit*, p 479

39 Gilchrist *Principles of Political Science*, (1930), p 217

40 Sidgwick *The Elements of Politics*, pp 561 562

41 Bryce, quoted by Garner *op cit*, p 480

(2) इनमे सावजनिक भावावेश या ससदीय निरकुशता के फलस्वरूप शीघ्रता-पूवक उग्र परिवतन या सशोधन नही किये जा सकते ।[4]

(3) यह अधिक स्थायी व स्थिर होते है ।

(4) लिखित सविधान का निर्माण किसी सभा या समिति द्वारा बहुत सोच-समझ कर एव वाद विवाद के पश्चात किया जाता है अत उनके अथ के सम्ब-ध मे अधिक मतभेद की गुजाइश नही होती ।

(5) लिखित सविधानो मे सामा-यतया नागरिका के मौलिक अधिकारो का उल्लेख होता है । अत इन सविधानो द्वारा नागरिक अधिकारो की सुरक्षा की कही अधिक गारण्टी दी जाती है जिससे शासन निरकुश एव अत्याचारी नही हो सकता ।

(6) सघीय राज्या के लिए लिखित सविधान ही अधिक उपयुक्त है । सघीय सविधान मे शासन के विभिन्न अगो के अधिकारा मे सरलतापूवक परिवर्तन सम्भव नहीं होते है और न एक दूसरे के अधिकार क्षेत्रा का उल्लघन ही सरल होता है ।[43]

(7) लिखित सविधान म सभी व्यवस्थाएँ लिपिबद्ध होती ह । अत किसी विषय के स-दम म विवाद की स्थिति म सर्वाच्च न्यायपालिका का निणय अन्तिम होता है ।

दोष—(1) लिखित सविधाना का सवसे वडा दोष यह है कि वे प्राय जटिल होते है । समय की गति के साथ उनम परिवतन नही हो पाते । यह दोष एकात्मक राज्यो की अपेक्षा सघात्मक राज्यो म अधिक पाया जाता है क्योकि केन्द्र एव राज्या के मध्य शक्ति-विभाजन के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं । मैकाले के अनुसार "क्रान्तिया का एक वडा कारण यह है कि जब राष्ट्र आगे वढते जाते है तो सविधान स्थिर बने रहते है ।"[44] गानर के अनुसार 'लिखित सविधान ऐसी पोशाक की भाति है जो व्यक्ति के आकार, विकास एव परिवतन को ध्यान मे रखे विना बनायी गयी हो ।[45]

(2) लिखित सविधान की व्याख्या सरल काय नही है । यह दायित्व सामा-न्यत न्यायपालिका का सौपा गया है । न्यायाधीशो का दृष्टिकोण साधारणतया रूढिवादी होता है । फलस्वरूप न्यायपालिका एक तृतीय सदन बन जाता है ।" लास्की[46] का मत है कि न्यायाधीश परिवर्तित युग की भावना का प्रतिनिधित्व करने मे असफल रहे है । वे अपेक्षाकृत सविधानो के निर्माण के युग की ही भावना को अभिव्यक्त करते हैं और यदि परिवर्तित परिस्थितिया के अनुरूप उनके द्वारा सविधान की व्याख्या

---

42 Garner *op cit* p 478

43 Laski *Grammar of Politics*, (1941), p 306

44 "The great cause of revolutions is this, that while nations move onwards constitutions stand still '—Lord Macaulay, quoted by Garner *op cit*, (1951), p 478

45 Written constitution "is like an attempt to fit a garment to an individual without taking into consideration its growth and size "—Garner *op cit*, (1951), p 480

46 Laski *A Grammar of Politics*, (1941), p 304

की जाती है तो उनकी निष्पक्षता क प्रति स देह व्यक्त किया जाता है और उनके दलीय विवाद म फँस जान की आशका उत्पन्न हा जाती है।

(3) लिखित सविधान की व्याख्या का अधिकार यायपालिका का दन का एक और दोष भी है। यायाधीशा को प्रभावित करने के लिए उनकी नियुक्ति एव पदच्युति करन की शक्ति का विधानमण्डल अथवा कायपालिका कभी कभी अनुचित प्रयोग करने लगते हैं। इससे यायपालिका उनकी आधीनता म काय करन लगती है। इसके विपरीत, यदि सभी निय त्रण हटा लिय जात हैं तो न्यायाधीशा क पूण स्वत त्र हा जान का भय हाता है।[47]

सविधान का विकास

प्रत्यक सविधान अपन युग की परिस्थितिया का प्रतिबिम्ब होता है। सामाजिक अवस्था म परिवतन होते रहते हैं अत सविधाना म भी परिवतन अपक्षित है। इस सम्ब ध म अनेक प्रश्न सहज ही उत्प न होत है। उदाहरण के लिए, क्या सामाजिक परिवतन के साथ साथ सविधान भी परिवर्तित होत हैं एव वे कितनी शीघ्रता स परिवर्तित होते है ?, परिवतन की क्या प्रणाली होनी चाहिए ?, क्या सविधान और समाज के दृष्टिकोणा मे गम्भीर मतभेद उत्पन्न हाते हैं ? अत सविधान के विकास से सम्बन्धित दो प्रश्न महत्वपूण है—(1) सविधान के विकास या परिवतन के लिए कौन-सी शक्तिया उत्तरदायी होती है, और (2) सविधानो मे परिवतन कसे होते हैं तथा सशोधन या परिवतन की प्रणाली क्या है ?

सविधान के परिवतन तथा विकास के लिए मुख्य उत्तरदायी तत्व, जि ह् ह्वीयरे प्राथमिक शक्तियो (primary forces) की सज्ञा देते है, दो प्रकार से काय करते है। प्रथम, इन शक्तियो के फलस्वरूप परिस्थितियो म ऐसे परिवतन होते हैं कि सविधान मे विधिवत् कोई सशोधन या परिवतन न होने पर भी उसके अथ मे गम्भीर अ तर पड जाता है। द्वितीय, इन शक्तियो द्वारा ऐसी परिस्थितिया उत्प न कर दी जाती है कि सामा य सशोधन प्रणाली या यायिक निणय अथवा सवधानिक परम्परा या अभिसमय क विकास के कारण सविधान म परिवतन हो जाता है।

ह्वीयरे ने उपरोक्त कथन के समथन मे निम्न उदाहरण दिये हैं

(1) औद्योगिक क्रा ति के फलस्वरूप सयुक्त राज्य अमेरिका के घटक राज्यो के मध्य व्यापार म अत्यधिक वृद्धि हुई थी। सविधान मे परिवतन या सशोधन के बिना ही सघीय काग्रेस को अ तर्राज्यीय व्यापार को नियन्त्रित करने की व्यापक शक्तिया प्राप्त हो गयी। यह शक्ति काग्रस न राज्यो स प्राप्त नही की अपितु उसे प्रारम्भ से ही प्राप्त थी पर तु उसके उपयोग का उसे उचित अवसर नही मिला था। अ त राज्यीय व्यापार की वृद्धि क फलस्वरूप सघ तथा राज्या के शक्ति स तुलन परिवर्तित हो गये थे। ऐसे ही परिवतन आस्ट्रेलिया एव कनाडा मे भी हुए थे।

(2) युद्ध या युद्ध की सम्भावना, आर्थिक सकट एव लोक-कल्याणकारी राज्य

---

47 Sidgwick *The Elements of Politics*, p 564

है और उसके विचारो को सही एव उचित आदर दिया जाता है तो शीघ्र एव सहसा परिवतन की सम्भावना कम हो जाती है तथा परिवतन के एसे प्रयत्नो का विरोध किया जाता है। उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान को वहाँ की जनता श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। दूसरा उदाहरण स्विस जनता का है जो अमेरिकी जनता के समान ही अपने सविधान म श्रद्धा रखती है। सघात्मक राज्यो म सविधान के प्रति विशेष श्रद्धा होती है, यद्यपि एकात्मक राज्यो मे सविधान के प्रति पर्याप्त श्रद्धा होती है परन्तु सघात्मक राज्यो के सदृश नही। सविधानो म परिवतन के निम्न तीन साधन हैं—

(1) सशोधन प्रणाली
(2) न्यायिक निणय, और
(3) परम्पराए एव अभिसमय।

सशोधन प्रणाली द्वारा सविधानो मे सशोधन

लिखित सविधानो म सशोधन-प्रणाली का उल्लेख होता है। सघीय एव लिखित सविधानो की सशोधन प्रणाली कठोर होती है। उदाहरणाथ, सयुक्त राज्य अमेरिका, स्विटजरलैण्ड, भारत आदि। आधुनिक सविधानो म सशोधन-प्रणाली के उल्लेख के चार मुख्य उद्देश्य निम्नवत हैं

(1) सविधान म विचारपूवक ही परिवतन किये जाने चाहिए, शीघ्रता एव क्षणिक आवेश म परिवतन वाछनीय नही है।

(2) सविधान मे परिवतन किये जाने के पूव जनता को अपना मत व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

(3) सघीय सविधानो म शक्तियो के विभाजन म कोई परिवतन केन्द्र तथा इकाइयो के परामश के अभाव मे नही किया जाना चाहिए।

(4) व्यक्तिगत या सम्प्रदाय विशेष के हितो के रक्षाथ भाषायी, सास्कृतिक एव धार्मिक अल्पसख्यको के हितो की रक्षा होनी चाहिए।

कभी तो सशोधन के पीछे उपयुक्त सभी कारण अथवा केवल दो या तीन कारण ही सक्रिय होते हैं। सविधान शासन का आधार है और उसका सम्मान अपेक्षित है। सशोधन के सम्बन्ध मे जनता का मत ही निर्णायक होना चाहिए। यह जनप्रभुत्व के सिद्धान्त के अनुकूल है। जनता की इच्छा को अनेक तरीको से ज्ञात किया जाता है। कई देशो मे विधानमण्डल द्वारा पारित सशोधन जनता के समक्ष विचार के लिए रखा जाता है, जसे—आयर गणराज्य, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड, एव सभी अमेरिकी राज्यो मे। विधानमण्डल को भी सशोधन करने की शक्ति प्रदान को जा सकती है परन्तु कई देशो मे सशोधन को अन्तिम स्वीकृति देने से पूव सामान्य निर्वाचन द्वारा जनता का मत जान लेना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, बेलजियम मे सशोधन प्रस्तावित करने के बाद विधानमण्डल के दोनो सदन विघटित हो जाते है तथा नवीन निर्वाचन के बाद प्रस्तावित सशोधन दोनो सदनो के [illegible] उपस्थिति म दो तिहाई

बहुमत द्वारा पारित होना चाहिए। डेनमार्क, हॉलण्ड, स्वीडन, नार्वे म भी कम वढ यही व्यवस्था है। कोलम्बिया एव इक्वेडर मे प्रस्तावित सशोधन दो क्रमिक काग्रेसा द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक होता है।

स्विटजरलैण्ड म अनिवाय जनमत-सग्रह की व्यवस्था है तथा फ्रास के पाँचवे गणराज्य के सविधान के अन्तगत वैकल्पिक जनमत सग्रह की व्यवस्था है। फ्रास मे कोई सशोधन जनमत-सग्रह के लिए तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब वह दोना सदनो—सीनेट तथा राष्ट्रीय सभा—की सयुक्त बठक मे तीन चौथाई बहुमत से पारित होता है। 13 अमरीकी राज्यो मे सशोधन के सम्बन्ध मे उपक्रम (initiative) की व्यवस्था है।

सघीय सविधाना म शासन की शक्ति केन्द्र एव राज्यो मे विभाजित होती है अत दोना की स्वीकृति सशोधन को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है। आस्ट्रेलिया, सयुक्त राज्य अमरिका एव भारत म केन्द्रीय शासन के अतिरिक्त सशोधन म राज्यो की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। सभी सघीय देशो मे समान सशोधन प्रणाली नही है। आस्ट्रेलिया एव स्विटजरलण्ड मे सशोधन से केन्द्रीय एव प्रान्तीय शासन ही सम्बन्धित नही होते वरन जनता की भी स्वीकृति आवश्यक होती है। भारत मे जनता का मत ज्ञात करने सम्बन्धी कोई व्यवस्था नही है और न ऐसे किसी अभिसमय का अभी तक विकास ही हुआ है। कनाडा म 1950 ई तक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासनो को एकाकी या सयुक्त रूप मे सविधान मे सशोधन का अधिकार नही था। कनाडा के सविधान म सशोधन की शक्ति 1949 ई के पूव तक ब्रिटिश ससद मे निहित थी।[49] विभिन्न देशो मे मौलिक अधिकारो की रक्षा के लिए भी अनेक तरीको को अपनाया गया है। उदाहरण के लिए, स्विटजरलैण्ड की सशोधन प्रणाली जनप्रभुत्व को स्वीकार करती है। स्विटजरलैण्ड म जमन, फ्रेंच एव इतालवी राजकीय भाषाएँ है। इन्हे सवैधानिक प्रत्याभूति दी गयी है। सशोधन के अभाव मे इस व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही हो सकता। इसी प्रकार की प्रत्याभूति कनाडा के सविधान द्वारा अग्रेजी व फ्रासीसी भाषाओ के प्रयोग के सन्दभ मे दी गयी है।

विभिन्न सविधानो की सशोधन प्रणालिया

प्रमुख देशो के सविधानो की सशोधन प्रणाली का विवरण निम्नवत् है

ग्रेट ब्रिटेन—ग्रेट ब्रिटेन मे ससदीय सप्रभुता का सिद्धान्त मान्य है। ससद को सविधान म साधारण विधि प्रक्रिया के द्वारा सशोधन करने का अधिकार है। सवधानिक विधि एव साधारण विधि-प्रक्रिया मे इगलण्ड मे कोई अन्तर नही है। जगली पक्षियो की सुरक्षा एव सरक्षण से सम्बन्धित विधि और लॉडसभा के अधिकारो को सीमित अथवा कम करने वाली विधि को पारित करने के लिए एक ही विधि-प्रक्रिया का अनुगमन किया जाता है। इगलण्ड की ससद द्वारा पारित सवधानिक सशो-

---

49 ब्रिटिश नाथ अमेरिका अधिनियम (1949) पारित करके धारा 91 म परिवतन किया गया है। अब ब्रिटिश ससद की कनाडा के सविधान म सशोधन की शक्ति औपचारिक मात्र रह गई है।

धन राजा के हस्ताक्षरो के पश्चात ही प्रभावी होता है। न्यायपालिका म ससदीय विधि को चुनौती नही दी जा सकती। स्पष्ट है कि इगलण्ड का सविधान लचीला है। 1936 ई का सिंहासन-त्याग अधिनियम (The Abdication Act) ब्रिटिश ससद म प्रस्तुत किये जाने के आधा घण्टे के भीतर पारित हो गया था।

ग्रेट ब्रिटेन म न्यायालय द्वारा किसी विधि को अवैधानिक घोषित नही किया जा सकता। वहाँ न्यायिक पुनरीक्षण (judicial review) की पद्धति का अभाव है। ब्रिटेन म जो विधियाँ परम्पराओ के विरुद्ध होती हैं, उन्हे ही असवधानिक (unconstitutional) कहा जाता है। असवधानिक का अर्थ परम्परा विरुद्ध होना है। अभिसमय म परिवतन होते है अथवा न्यायालय के किसी निर्णय द्वारा भी सवधानिक व्यवस्था म परिवतन हो सकता है लेकिन ऐसे सभी परिवतन अनौपचारिक परिवतन होते हैं।

सयुक्त राज्य अमेरिका—अमरिकी सविधान निर्माता एक कठोर सविधान के निर्माण के लिए इच्छुक थे। सविधान के अनुच्छेद 5 म सशोधन की व्यवस्था का उल्लेख है जो साधारण विधि प्रक्रिया से सवथा भिन्न है। सयुक्त राज्य अमेरिका म सघात्मक शासन है। अत सघीय व्यवस्था के अनुरूप वहाँ विशिष्ट एव कठोर सशोधन-प्रणाली का होना भी आवश्यक है।

अनुच्छेद 5 के अनुसार "काग्रेस के दानो सदन सशोधन प्रस्तावित करने की आवश्यकता अनुभव करने पर अपने दो तिहाई बहुमत से सशोधन प्रस्तुत कर सकेंगे या विभिन्न राज्यो के दो तिहाई विधायको के आवेदन करने पर सशोधन प्रस्ताव प्रस्तावित करने के लिए उसके द्वारा एक महासभा (Convention) बुलाई जायगी। ऐसे सभी सशोधन प्रस्तावो की विभिन्न तीन चौथाई राज्यो द्वारा पुष्टि या इस हेतु आहूत राष्ट्रीय महासभाओ के तीन चौथाई बहुमत द्वारा सम्पुष्टि किये जाने पर ही वे प्रभावी होंगे। लेकिन 1808 ई के पूर्व प्रस्तावित किये जाने वाले सशोधनो से प्रथम अनुच्छेद के नवे वर्ग की प्रथम एव चतुर्थ धारा मे कोई परिवतन नही किया जा सकेगा और किसी राज्य को उसकी अनुमति के बिना सीनेट मे प्राप्त समान मताधिकार से वचित नही किया जा सकता।"

उपरोक्त अनुच्छेद की भाषा से यह स्पष्ट है कि सशोधन प्रस्तावित करने एव उसके पुष्टिकरण के दो तरीके है

सशोधन के प्रस्ताव काग्रेस के दोनो सदनो के द्वारा पृथक पृथक रूप मे दो-तिहाई बहुमत से या दो तिहाई राज्यो की व्यवस्थापिकाओ की प्रार्थना पर काग्रेस द्वारा आहूत महासभा द्वारा प्रस्तावित किये जा सकते हैं।

प्रस्तावित सशोधन को तीन चौथाई राज्यो की व्यवस्थापिकाओ या तीन चौथाई राज्यो की महासभाओ (Conventions) द्वारा सम्पुष्ट (ratify) किया जाना चाहिए। सम्पुष्टि के इन दो तरीको म से कौन सा तरीका प्रयोग म लाया जाय, इसका निर्णय करने का अधिकार काग्रेस को है। अत [illegible] के लिए काग्रेस द्वारा निर्धारित रीति का ही प्रयोग किया

उपर्युक्त दो तरीको मे से अमेरिकी सविधान के सभी सशोधनो के लिए कांग्रेस के दोनो सदनो के दो तिहाई बहुमत द्वारा प्रस्तावित एव तीन-चौथाई राज्यो की व्यवस्थापिकाओ द्वारा सम्पुष्टिकरण की रीति को ही मुख्यत अपनाया गया है। इसका केवल एक ही अपवाद है। मद्य निषेध की व्यवस्था को समाप्त करने वाला 21वां सशोधन राज्यो की महासभाओ द्वारा सम्पुष्ट किया गया था।[50]

सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान मे अभी तक 25 सशोधन हो चुके हैं। प्रथम 10 सशोधनो की 1791 ई म सम्पुष्टि की गयी थी। 18वे तथा 21वें सशोधनो का सम्बन्ध मद्य निषेध से है। 18वे सशोधन के द्वारा मद्य निषेध लागू किया गया और 21वे सशोधन के द्वारा उसे समाप्त किया गया था।

अमरिकी सविधान की सशोधन-प्रणाली की सामान्य आलोचना निम्नवत है

(1) सशोधन प्रणाली जटिल एव कठोर है।

(2) सशोधन से सम्बन्धित अनुच्छेद म निम्नलिखित बातो को स्पष्ट नही किया गया है —

(i) दानो सदनो क दो तिहाई बहुमत का क्या अथ है?—ससद के कुल सदस्यो का दो तिहाई बहुमत या उपस्थित सदस्यो का दो तिहाई बहुमत। व्यवहार म उपस्थित सदस्या के दो तिहाई बहुमत को ही मान्यता दी गयी है।

(ii) सविधान इस सम्बन्ध मे मौन है कि सशोधन प्रस्तावित करने के लिए राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता है या नही? सर्वोच्च न्यायालय ने इस सम्बन्ध म निणय देते हुए कहा है कि सशोधन विधायी प्रक्रिया है अत उसे राज्यो क पास अनुसमथन क लिए भेजने स पूव उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर की आवश्यकता नही है।[51]

(iii) सविधान ने राज्यो द्वारा सवैधानिक सशोधन की पुष्टि के लिए निश्चित समय निर्धारित नही किया है। परन्तु कांग्रेस को अनुसमथन का समय निर्धारित करने का अधिकार है। कांग्रस ने 18वे, 20वे तथा 21वे सशोधनो के अनुसमथन या सम्पुष्टि के लिए अधिकतम 7 वष का समय निश्चित किया था।

(iv) अनुच्छेद 5 की भाषा से यह भी स्पष्ट नही है कि किसी राज्य की व्यवस्थापिका एक बार सशोधन की पुष्टि करने के पश्चात लेकिन तीन चौथाई राज्यो की व्यवस्थापिकाओ द्वारा पुष्टि के पूव अपने सम्पुष्टि (ratification) सम्बन्धी निणय को वापस ले सकती है या नही? कांग्रस ने प्रस्ताव पारित करके यह घोषित किया है कि राज्य ऐसा नही कर सकते। लेकिन सशोधन को एक बार सम्पुष्ट न करने पर उस बाद म फिर सम्पुष्ट करने का अधिकार राज्यो को है।

(v) एक विवादास्पद प्रश्न यह भी है कि क्या किसी राज्य की व्यवस्थापिका

---

50 Refer to Ogg and Ray *Essentials of American Government*, (9th edn, 1964), pp 31 33

51 Ogg and Ray *op cit*, p 31

अनुसमर्थन के हेतु प्रस्तावित संशोधन को [illegible] की [illegible] हेतु उपस्थित कर सकता है या नहीं? इस सम्बन्ध में न्यायालय का मत यह है कि न्यायपालिका अपनी शक्ति का परित्याग नहीं कर सकती। उसे संशोधन पर [illegible] का अधिकार है परन्तु वह अन्तिम निर्णय [illegible] संशोधन [illegible] नहीं कर सकती।[52]

संविधान के अनुसार संशोधनों की पुष्टि राज्यों द्वारा की जानी चाहिए न कि जनता के द्वारा। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के 13 राज्य मिल जायें तो वे बहुमत की इच्छा का निषेध कर सकते हैं। अतः संशोधन प्रणाली प्रतिक्रियावादी है।

कांग्रेस के दो तिहाई बहुमत एवं तीन चौथाई राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा सम्पुष्टि सम्बन्धी व्यवस्थाएँ बहुमत के शासन के सिद्धान्त से असंगति रखती हैं। कांग्रेस में दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना कठिन होता है। हजारों संशोधन कांग्रेस में अभी तक प्रस्तावित किये जा चुके हैं लेकिन केवल 29 पारित हुए हैं और उनमें से 25 संशोधन ही राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा अनुसमर्थन के पश्चात प्रभावकारी हो सके हैं।

राज्यों द्वारा सवैधानिक सशोधन के अनुसमर्थन के लिए कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं है। उदाहरण के लिए, जार्जिया, मेसेच्यूसटस एव ओहियो राज्यों ने प्रथम दस सशोधनों को 1934 ई में सम्पुष्ट किया था। एक अन्य सशोधन को सम्पुष्ट करने में ओहियो राज्य ने 80 वर्ष का समय लिया। 1924 ई में बाल-श्रम सम्बन्धी सशोधन काग्रेस ने पारित किया था। 1936 ई तक उसे केवल 28 राज्यों ने सम्पुष्ट किया था।

सवैधानिक सशोधनों को महासभाओं (Conventions) की अपेक्षा विधानमण्डल के समक्ष अनुसमर्थन हेतु प्रस्तुत करना कुछ आलोचकों की दृष्टि में अलोकतान्त्रिक है। उनका तर्क है कि व्यवस्थापिकाओं में प्रतिनिधियों की सख्या अपेक्षाकृत कम होती है और वे सशोधनों की स्वीकृति या सम्पुष्टि के लिए जनता द्वारा नहीं चुने जाते हैं। 21वें सशोधन की महासभाओं द्वारा सम्पुष्टि की गयी थी। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ था कि नवीन परम्परा की स्थापना हो रही है लेकिन 22वें सशोधन को, जो राष्ट्रपति के पदावधि-काल से सम्बन्धित था, राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा ही सम्पुष्ट किया गया था। प्रथम दस सशोधन तो अमेरिकी सविधान का मूल भाग है। वर्जीनिया, न्यूयाक एव मेसच्यूसट्स राज्यों ने सविधान को तभी स्वीकार किया था जब उन्हें यह आश्वासन दे दिया गया था कि अमेरिकी सविधान में अधिकारों को शीघ्र जोड दिया जायेगा।[53] तीन सशोधन अमेरिकी गृह-युद्ध के कारण किये गये थे। दो सशोधन मद्य निषेध से सम्बन्धित हैं। अत 181 वर्षों में अमेरिकी सविधान में व्यावहारिक रूप से केवल 10 सशोधन हुए हैं। निर्धारित सशोधन पद्धति से होने वाले सशोधनों की यह सख्या नगण्य है लेकिन अनौपचारिक रूप में—न्यायिक प्रक्रिया तथा अभिसमयों द्वारा—सविधान में प्रति वर्ष परिवर्तन होते रहे हैं।

---

52 Ogg and Ray *op cit*, p 33
53 *Ibid*, pp 33 34

स्विटजरलण्ड—स्विटजरलण्ड का सविधान कठोर या दुष्परिवर्तनीय है। 1874 ई के सविधान के तृतीय अध्याय म सवधानिक सशोधन प्रणाली का उल्लेख है। सविधान म पूण एव आशिक सशोधन की व्यवस्था है। पूण सशोधन 1874 ई मे हुआ था। स्विटजरलण्ड का सविधान अमेरिकी सविधान से कम कठोर है। 1848 ई से 1974 ई तक स्विटजरलैंण्ड के सविधान मे 57 आशिक सशोधन हो चुके है।

स्विटजरलैण्ड मे फेडरल असेम्बली के दोनो सदना द्वारा सशोधन स्वीकृत होने और केन्टनो के बहुमत अथवा नागरिका के बहुमत द्वारा स्वीकृत होने पर स्विस सविधान मे पूण एव आशिक सशोधन किया जा सकता है। फेडरल असेम्बली का यदि एक सदन सशोधन को स्वीकृत और दूसरा सदन अस्वीकृत करता है तो सशोधन प्रस्ताव जनता के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। जनता के बहुमत द्वारा सशोधन के पक्ष म मत दिये जाने पर फेडरल असेम्वली के नये चुनाव होते है। नव निवाचित फेडरल असेम्वली के दोना सदनो के समक्ष सशोधन प्रस्ताव पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत किया जाता है। दोना सदनो द्वारा स्वीकृत कर लिये जाने पर सशोधन-प्रस्ताव केन्टनो तथा जनता के समक्ष जनमत के लिए प्रस्तुत किया जाता है और केन्टनो एव जनता के बहुमत द्वारा स्वीकृत किये जाने पर सशोधन पारित माना जाता है तथा सविधान का अग बन जाता है।

स्विस जनता को सशाधन प्रस्तावित करने का भी अधिकार दिया गया है। 50,000 स्विस नागरिक हस्ताक्षरो सहित सशोधन प्रस्तावित कर सकते हैं। प्रस्तावित सशाधन पर जनमत लिया जाता है और बहुमत द्वारा समर्थित होने पर नवीन चुनाव होते है। प्रस्तावित सशोधन नवनिर्वाचित फेडरल असेम्वली के समक्ष स्वीकृति हेतु रखा जाता है। फेडरल असेम्वली के द्वारा स्वीकृत होने पर केन्टनो एव जनता का मत ज्ञात करने हेतु जनमत सग्रह होता है। दोना के द्वारा बहुमत से स्वीकृत होने पर सशोधन मान्य होता है।

आशिक सवैधानिक सशोधन को प्रस्तावित करने के लिए उपक्रम (Initiative) की भी व्यवस्था है। इसकी दो प्रणालियाँ है—(1) मतदाता सशोधन की माँग का प्रस्ताव कर सकते हैं, और (2) वे सशोधन का प्रस्ताव करते समय उसका प्रारूप भी प्रस्तुत कर सकते है। प्रथम प्रकार को अनिर्मित उपक्रम (Unformulated Initiative) कहते है। दूसरे प्रकार अर्थात् मतदाताओ द्वारा सशोधन के प्रारूप को प्रस्तुत करने की रीति को निर्मित उपक्रम (Formulated Initiative) कहते हैं। सशोधन के अनिर्मित उपक्रम को फेडरल असेम्बली द्वारा स्वीकार कर लेन पर सशोधन प्रस्ताव का निर्माण करके उसे जनता एव केन्टना के समक्ष जनमत-सग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यदि फेडरल असेम्वली अनिर्मित सशोधन का अस्वीकृत कर देती है ता जनता की राय इस प्रश्न पर लिये जाने का विधान है कि आशिक सशोधन हो अथवा नही। यदि जनता द्वारा आशिक सशोधन की स्वीकृति दी जाती है तो सशोधन का प्रारूप फेडरल असेम्वली द्वारा केन्टना एव जनता के समक्ष स्वीकृति हेतु रखा जाता है।

निर्मित सशोधन प्रस्ताव (Formulated proposals for amendments) को फेडरल असम्बली पहले स्वीकृति प्रदान करती है और उसके बाद व करना तथा जनता के समक्ष जनमत सग्रह के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं। फेडरल असम्बली यदि निर्मित सशोधन के प्रारूप को स्वीकार नही करती तो उसे जनता के समक्ष प्रस्तुत करके अस्वीकृत करने की माँग करने या सशोधन प्रस्ताव के साथ नवीन प्रस्ताव का निर्मित करके जनता के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने का अधिकार है।

स्विस सशोधन प्रणाली से यह स्पष्ट है कि सशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार तीनो—जनता, सघ की परिषद (कार्यपालिका) एव फेडरल असम्बली—को है लेकिन प्रत्येक अवस्था म सशोधन प्रस्ताव अन्ततोगत्वा जनता द्वारा ही स्वीकृत होना चाहिए। फाइनर[54] के अनुसार इस प्रकार की सशोधन प्रणाली के निम्न प्रभाव होते हैं

प्रथम, स्विस सविधान म सामान्य विधि प्रक्रिया की तुलना म सशोधन प्रणाली को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। स्विस सविधान म सामान्य विधि-निर्माण के सम्बन्ध म जनमत-सग्रह की केवल वैकल्पिक व्यवस्था है जबकि सवैधानिक सशोधन के लिए अनिवार्य जनमत सग्रह की व्यवस्था की गयी है। द्वितीय, स्विस सविधान म जनता को सविधान प्रस्तावित करने का भी *अधिकार प्रदान किया गया* है। 50 हजार नागरिक स्विस जनता का 80वाँ हिस्सा हैं। यातायात के आधुनिक साधनो को देखते हुए इस सख्या को सगठित करना कठिन नही है। अत सविधान की विशेष स्थिति के बारे म जनता को विचार विमर्श का अवसर दिया गया है। इस व्यवस्था से सविधान म परिवर्तन सरलतापूर्वक सम्भव है। 1874 ई के बाद 14 बार जनता द्वारा सविधान मे सशोधन प्रस्तावित किये गये है। इनमे से केवल 5 स्वीकार किये गये हैं। इसी काल म फेडरल असेम्बली द्वारा 30 सशोधन स्वीकृति हेतु जनता के सामने रखे गये थे, जिनमे से 24 स्वीकृत हुए हैं। सशोधन की यह पद्धति स्विट्जरलण्ड म सफल रही है।

सयुक्त राज्य अमेरिका एव आस्ट्रेलिया की तुलना मे स्विस सविधान की सशोधन व्यवस्था कठोर नही है। 1874 से 1944 ई तक स्विटजरलण्ड म 83 सवैधानिक जनमत सग्रह हुए है। फेडरल असम्बली द्वारा 41 प्रस्ताव जनता के समक्ष स्वीकृति हेतु रखे गये जिनमे से 34 स्वीकृत हुए हैं। जनता द्वारा 35 प्रस्ताव उपस्थित किये गये थे जिनमे से केवल 7 प्रस्ताव जनमत सग्रह के बाद स्वीकृत हुए है।

विभिन्न आशिक सशोधनो द्वारा स्विस सवैधानिक व्यवस्था म बहुत कम परिवर्तन हुए हैं। इनम से अधिकाश सशोधनो ने व्यापार एव वाणिज्य सम्बन्धी स्वतन्त्रता को सीमित करके केन्द्रीय शासन की शक्तियो मे वृद्धि की है।

स्विस सविधान की एक अनिवार्य विशेषता यह है कि सविधान म परिवर्तन सशोधन प्रणाली द्वारा ही सम्भव है। न्यायिक निर्णयो एव नजीरो (Precedents) ·

54 Finer H *op cit*, pp 133 134

द्वारा सविधान का विकास नही हुआ है। स्विस प्रणाली म न्यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था का पूण अभाव है। स्विस फेडरल ट्रिब्यूनल फेडरल असेम्बली द्वारा पारित किसी भी विधि को अवध घोषित नही कर सकता। स्विस जनता इस सिद्धान्त म विश्वास करती हे कि सप्रभुत्व शक्ति जनता या व्यवस्थापिका या उसके प्रतिनिधियो के हाथा म रहनी चाहिए। हास हूवर का कथन है कि "स्विस जनता का यह विश्वास है कि सवधानिक विधि की न्यायिक व्याख्या का अथ लोकत त्रीय सिद्धा तो का अति क्रमण है।[55]

सोवियत रूस (The Union of Socialist Soviet Republic)—सोवियत रूस के 1936 ई के स्टालिन सविधान के अनुच्छेद 146 मे सशोधन प्रणाली का उल्लेख है। सुप्रीम सोवियत के दोना सदनो अर्थात सोवियत ऑफ यूनियन एव सोवियत ऑफ नेशनलिटीज द्वारा पृथक पृथक रूप से अपने दो तिहाई बहुमत से सशोधन पारित होने पर सविधान म परिवतन किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, प्रेसीडियम, मन्त्रि परिषद (Council of Ministers) और यहा तक कि श्रम एव सुरक्षा समिति (Council of Labour and Defence) के द्वारा भी सविधान मे महत्वपूण परिवतन किये जाते है। उदाहरण के लिए, 1946 ई म प्रेसीडियम के एक आदश के द्वारा सुरक्षा क जन कमीसार (Peoples' Commissariat for Defence of U S S R) को सघ की सशस्त्र सेनाओ के मन्त्रालय म बदल दिया गया था तथा नभ, जल एव स्थल सेना का एकीकरण कर दिया गया था।

1936 ई म सविधान के लागू होन के पश्चात 20 वर्षों मे 23 सशोधन पारित हो चुके ह। 1944 ई मे सघ की मुख्य इकाइयो—सघीय गणराज्यो (Union Republics)—को सुरक्षा एव वैदेशिक मामलो म पृथक अधिकार दिये गये हैं एव काउंसिल ऑफ पीपुल्स कमीसार को मन्त्रिमण्डल (Council of Ministers) की सज्ञा दी गयी है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सघ म नये राज्यो को भी शामिल किया गया है।

रूस के सविधान की सशोधन प्रणाली सामान्य विधि प्रक्रिया से भिन्न है। अत उसको कठोर सविधान की सज्ञा दी जानी चाहिए। लेकिन अमेरिका, स्विटजरलण्ड आदि सघीय देशा की सशोधन प्रणाली की तुलना मे वह कम कठोर है परन्तु इगलण्ड की सशोधन प्रणाली से कठोर है। सोवियत रूस मे सशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव सुप्रीम सोवियत के किसी भी सदन मे प्रस्तुत किया जा सकता है। सोवियत रूस म सघ की इकाइया को अमरिकी राज्या की तरह सशोधन प्रस्तावित करन का अधिकार नहीं हैं। स्मरणीय है कि रूस की भाँति ही स्विटजरलण्ड म केन्टनो को भी सशोधन प्रस्तावित करन का अधिकार नही है। न रूस मे अमेरिकी राज्या की तरह सघ की इकाइया द्वारा सशोधन की पुष्टि की आवश्यकता है। सोवियत रूस की सशोधन प्रणाली एकात्मक राज्या स

55 Hans Huber *How Switzerland is Governed*, (1946), p 10

मिलती है क्योंकि सशोधन प्रस्तावित करने एव उन्हे सम्पुष्ट करने के बारे मे सघ की इकाइयो को कोई अधिकार नही है।

सुप्रीम सोवियत मे साम्यवादी दल का एकाधिकार होने के कारण सशोधन के लिए आवश्यक दो तिहाई बहुमत सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

भारत—भारतीय गणराज्य का सविधान सशोधन प्रणाली की दृष्टि से कठोर एव लचीला दोनो ही है। इगलण्ड के सविधान की भाँति भारतीय ससद सामान्य विधि की प्रक्रिया के अनुसार सरलतापूर्वक सशोधन नही कर सकती और न सयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति सशोधन की प्रणाली जटिल ही है। सविधान निर्माताओ ने मध्य-मार्ग का अनुसरण किया है।

अनुच्छेद 368 के अनुसार सशोधन विधेयक ससद के दोनो सदनो द्वारा पृथक पृथक रूप मे अपनी कुल सदस्य सख्या के बहुमत एव उपस्थित सदस्यो के दो तिहाई बहुमत से यदि पारित किया जाता है और राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर देता है तो सशोधन मान्य होता है।

यदि सशोधन का प्रयोजन सविधान के निम्नलिखित उपबन्धो मे परिवर्तन करना है तो ससद द्वारा उपरोक्त रीति से प्रस्ताव के पारित होने और राष्ट्रपति के समक्ष हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत किये जाने से पूर्व कम से कम आधे राज्यो की व्यवस्थापिकाओ द्वारा उसका अनुमोदन आवश्यक होता है

(1) राष्ट्रपति का निर्वाचन एव निर्वाचन-पद्धति (अनुच्छेद 54 एव 55)।
(2) सघ की कार्यपालिका शक्ति (अनुच्छेद 73)।
(3) राज्यो की कार्यपालिका शक्ति (अनुच्छेद 162)।
(4) सघीय क्षेत्रो मे उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 241)।
(5) सघीय न्यायपालिका (अध्याय 4, भाग 5)।
(6) राज्यो के उच्च न्यायालय (अध्याय 5, भाग 6)।
(7) विधायी सम्बन्ध (भाग 11 का प्रथम अध्याय)।
(8) विधायी सूचियाँ।
(9) राज्यो को ससद मे प्राप्त प्रतिनिधित्व।
(10) अनुच्छेद 368—सशोधन-प्रणाली।

भारतीय सविधान की उपरोक्त सशोधन पद्धति सघीय सिद्धान्त के अनुरूप है। सघीय ससद को सविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियो मे परिवर्तन का अधिकार नही है। ऐसा वह भारतीय सघ की 1/2 घटक इकाइयो—राज्यो—की व्यवस्थापिकाओ की सहमति से ही कर सकती है। श्री अमर नन्दी का मत है कि यदि केन्द्र को बिना राज्यो की सहमति के शक्तियो की सूची मे परिवर्तन का अधिकार होता है तो वह सघीय सिद्धान्त के अनुरूप नही है। ऐसी स्थिति मे केन्द्र शक्तिशाली हो जाता और सरलतापूर्वक राज्यो की स्वायत्तता को भग कर सकता था। सविधान द्वारा केन्द्र को प्रदत्त सकटकालीन शक्तियाँ एव कुछ अन्य उपबन्ध सघीय स्वरूप के अनुरूप नही है और भारतीय सघ

विश्व के अन्य संघीय संविधानों जैसे आस्ट्रेलिया एवं संयुक्त राज्य अमेरिका से भिन्न बना देते हैं।[56]

उपरोक्त अनुच्छेद में संविधान के संशोधन की दो विधियों का उल्लेख है। प्रथम, संसद को अपने कुल सदस्यों के दो तिहाई बहुमत एवं उपस्थित सदस्यों के स्पष्ट बहुमत से संशोधन का अधिकार है। द्वितीय, अनुच्छेद में उल्लिखित विषयों में संशोधन के लिए ½ राज्यों की व्यवस्थापिकाओं का समर्थन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक तीसरा तरीका भी है। कुछ मामलों में संसद संविधान में साधारण विधि प्रक्रिया की भांति सरलतापूर्वक संशोधन कर सकती है, यथा—राज्यों के क्षेत्रफल, सीमा एवं नाम में परिवर्तन [अनुच्छेद 4 (2)], राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के उच्च सदन—विधान परिषद्—का निर्माण या विघटन [अनुच्छेद 169 (3)] एवं परिगणित जातियां व क्षेत्रों सम्बन्धी *उपबन्धों [5वां एवं 6ठा परिशिष्ट] में संसद साधारण विधि द्वारा संशोधन* कर सकती है।

डॉ० के वी राव[57] एक चौथे प्रकार का और उल्लेख किया है। संविधान में कुछ ऐसे निम्नलिखित उपबन्ध हैं जो संवैधानिक महत्व के हैं और जिन्हें फ्रान्सीसी सावयवी या आधारभूत विधि (organic law) की संज्ञा देते हैं। यथा—

निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन (अनु० 81),
निर्वाचन सम्बन्धी विधियाँ (अनु० 327),
केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों का गठन (अनु० 240),
परिगणित क्षेत्रों एवं जातियों का प्रशासन (5वां एवं 6ठवां परिशिष्ट)।

स्मरणीय है कि संवैधानिक संशोधन प्रणाली पर संविधान सभा ने अन्त में विचार *किया था और अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक सदन ने इसे निबटा दिया था। सभी* सदस्य जल्दी में थे। अतः डॉ० राव का मत है कि संशोधन-प्रणाली में अनेक कमियां रह गयी हैं जिन्हें न्यायपालिका को दूर करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए—

(1) राज्यों की इच्छा जानने की पद्धति या रीति क्या है? भारतीय संविधान में संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति राज्यों को अपनी इच्छा व्यक्त करने के सम्बन्ध में एक *निश्चित अवधि का प्रावधान नहीं है। एक प्रश्न यह भी है कि क्या संशोधन सभी* राज्यों के विधायकों को भेजना आवश्यक है या कुछ राज्यों के विधायकों को भेजना ही पर्याप्त होगा? स्मरणीय है कि तृतीय संवैधानिक संशोधन आधे राज्यों द्वारा स्वीकृत होने पर ही पारित घोषित कर दिया गया था जब कि उस समय कुछ राज्यों में उस पर विचार विमर्श ही चल रहा था। मैसूर सरकार ने इस पद्धति पर बड़ी आपत्ति भी की थी। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों के विधानमण्डल की भांति भारतीय राज्यों के विधानमण्डल स्थायी नहीं हैं। वे

---

56 Amar Nandi *The Constitution of India*, 1962, p 291
57 Rao, K V *Parliamentary Democracy of India* (1961), pp 298-300

कभी भी स्थगित या विघटित हो सकते हैं। यह भी सम्भव है कि राज्य व्यवस्थापिका के उच्च सदन द्वारा पारित या अस्वीकृत संशोधन प्रस्ताव राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित प्रस्ताव मान लिया जाये।

(2) एक प्रश्न यह भी है कि क्या केन्द्र को संशोधन विधेयक को किसी भी समय वापस लेने का अधिकार है ? यह शंका इसलिए उठती है कि राज्यों द्वारा स्वीकृति प्रदान करने के लिए संयुक्त राज्य अमरिका की भांति यहां कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं है। यह सम्भव है कि इसी बीच परिस्थितियां बदल जायें अथवा केन्द्रीय शासन विधेयक को वापस लेना चाहे।

(3) क्या कोई राज्य एक बार व्यक्त अपने मत को बदल सकता है ? संयुक्त राज्य अमेरिका में तो राज्य द्वारा एक बार अभिव्यक्त मत को बदला नहीं जा सकता। हां, यह व्यवस्था अवश्य है कि यदि राज्य ने संशोधन-प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान नहीं की है तो वह उसे पुनः स्वीकृत कर सकता है (*Chandler* v *Wise*, 1939)[58]।

(4) संविधान को किस तिथि से प्रभावी माना जाना चाहिए ? जिस क्षण से राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर प्रदान करता है या संशोधन गजट में प्रकाशित होता है या राष्ट्रपति जिस तिथि से उसे लागू करने की घोषणा करता है।

(5) क्या राष्ट्रपति संशोधन विधेयक पर हस्ताक्षर करना अस्वीकृत कर सकता है ?

सर्वोच्च न्यायालय ने शंकरीप्रसाद बनाम भारतीय संघ (1951) नामक विवाद में संविधान में संशोधन-विधेयक के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें निश्चित की हैं

(अ) संवैधानिक संशोधन-पद्धति विधायी प्रक्रिया है।

(आ) संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में जहां तक सम्भव हो, अनुच्छेद 118 के आधीन संसदीय नियमों का पालन होना चाहिए।

(इ) संवैधानिक संशोधन विधेयक साधारण विधि की भांति संसद द्वारा पारित किया जा सकता है।

(ई) अनुच्छेद 368 एक पूर्ण संहिता नहीं है।

(उ) भारतीय संविधान में संशोधन का अधिकार किसी संविधान सभा को न देकर संसद को दिया गया है एवं विशेष बहुमत का प्रावधान केवल प्रक्रिया सम्बन्धी व्यवस्था है।

(ऊ) भाग तीन (मौलिक अधिकारों) में भी संशोधन किया जा सकता है।

के वी राव के अनुसार भारतीय संविधान भले ही कठोर प्रतीत होता हो परन्तु जिस दृष्टि से वह निर्मित है उस दृष्टि से कठोर नहीं है। उदाहरण के लिए, मौलिक अधिकारों में संशोधन सरलतापूर्वक सम्भव है। लचीला संविधान एवं अल्पसंख्यकों के लिए मौलिक अधिकारों की व्यवस्था एक साथ नहीं चल सकते। यदि अल्पसंख्यकों को निरन्तर बहुसंख्यकों की कृपा पर रहना है तो लिखित संविधान एवं

58 (1939) 307 U S 474, cited by K V Rao *op cit* p 300

रद्दी कागज के टुकडे से अधिक नही है। डा० राव के अनुसार मौलिक अधिकारो म सशोधन का अधिकार तब तक नही होना चाहिए जब तक सभी के द्वारा उसकी सहमति न दी गयी हो।[9]

सघीय दृष्टि से देखा जाय तो अनेक सवैधानिक महत्व के विषयो मे भारतीय ससद साधारण बहुमत स सशोधन कर सकती है, जैसे—निर्वाचन क्षेत्रो का सीमाकन, केन्द्र प्रशासित क्षेत्रो को ससद म प्रतिनिधित्व एव सघ की इकाई के रूप म राज्यो का अस्तित्व केन्द्र की इच्छा पर निभर है। केन्द्र राज्यो की सीमा, आकार आदि मे स्वेच्छा से परिवतन कर सकता है। स्पष्ट है कि सयुक्त राज्य अमेरिका की भाति राज्यो की स्थिति स्थायी एव सुनिश्चित नही है।

के वी राव ने सविधान की सशाधन प्रणाली के सम्बन्ध मे असतोप व्यक्त करते हुए सुझाव दिया है कि सवैधानिक सशोधन की व्यवस्था यदि प्रत्यक्ष रूप से सम्भव न हो तो अप्रत्यक्ष रीति से ही किसी न किसी प्रकार जनता से सम्बन्धित होनी चाहिए। वे जनमत सग्रह की व्यवस्था का समथन नही करते और उसे व्यथ एव हानिकारक भी मानत है। वे इगलैण्ड म प्रचलित व्यवस्था को स्वीकार करन के पक्षपाती है अर्थात जब कभी कोई गम्भीर सशोधन प्रस्तावित किया जाय तो लाकसभा को विघटित करके नवीन निर्वाचन कराये जायें। इस सम्बन्ध मे एक अभिसमय की स्थापना की जा सकती है। राष्ट्रपति को प्रत्येक महत्वपूण सवैधानिक सशोधन को अपनी स्वीकृति तभी प्रदान करनी चाहिए जब उसे यह विश्वास हो जाय कि राष्ट्र उसके पक्ष म है एव इस सम्बन्ध म निवाचन के माध्यम से राष्ट्र अपनी सम्मति अभिव्यक्त कर चुका है।

भारतीय सविधान के सम्बन्ध मे यह भी कहा जाता है कि अति शीघ्रतापूवक उसमे परिवतन हुए हे। विगत 23 वर्षो म 32 सशोधन हो चुके है। इसका कारण यह तथ्य है कि इन वर्षों मे केन्द्र म काग्रेस दल का स्पष्ट बहुमत रहा है और अधिकतर राज्या मे अधिकाश समय मे काग्रेस ही सत्तारूढ रही है। परन्तु सविधान म सशोधनो को जिन परिस्थितियो म पारित किया गया है उनकी समीक्षा करने पर हमारे समक्ष एक भिन्न चित्र उपस्थित होता है।

मौलिक अधिकारो से सम्बन्धित पाच सशोधन है—प्रथम (1951), चतुथ (1955), 16वा (1963), 17वा (1964) एव 25वा (1971)। यह विशेष परिस्थितियो मे पारित किय गये थे। जमीदारी उन्मूलन की विधिया की वैधानिकता को चुनौती दिये जाने पर प्रथम सशोधन द्वारा सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार म 31 (अ) तथा 31 (ब) दो अन्य अनुच्छेद जोडकर इन विधियो को मान्यता प्रदान की गयी। अनुच्छेद 15 एव 16 (6) मे भी सशोधन किये गय। 16वे सशोधन द्वारा राज्या को अनुच्छेद 19 के अतगत विचार एव अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर उचित प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया। 17वें सशोधन द्वारा अनुच्छेद 31 (अ) मे उल्लिखित 'estate' शब्द की पुनर्व्याख्या की गयी। स्मरणीय है कि विभिन्न राज्यो ने इस शब्द

59 K. V Rao *op cit*, pp 301 302

की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की थी और न्यायालय द्वारा भूमि सुधार सम्बन्धी अनुच्छेद 31 (अ) के आधीन निर्मित राज्यो की अनेक विधियो को अनुच्छेद 14, 19 एव 31 का अतिक्रमण करने वाली विधिया मानकर अवैधानिक घोषित कर दिया गया था। इस सशोधन द्वारा अनुच्छेद 31 (अ) म उल्लिखित 'estate' शब्द के अन्तगत रयत बाडी बन्दोवस्त एव अन्य प्रकार की भूमि को भी शामिल कर दिया गया। यह सशो धन 26 जनवरी, 1950 से प्रभावकारी ठहराया गया। इस सशोधन द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी थी कि निर्धारित सीमा मे भूमि या उस पर निर्मित भवन आदि को शासन उस समय तक हस्तगत नही कर सकता जब तक कि सम्बन्धित विधि द्वारा बाजार-मूल्य पर क्षति पूर्ति की व्यवस्था न हो। इस सशाधन अधिनियम द्वारा भूमि सुधार सम्बन्धी राज्या की 44 अन्य विधिया को नवे परिशिष्ट म शामिल कर दिया गया। इस प्रकार, इन विधिया को किसी सन्देह या अनिश्चितता के आधार पर न्याया लय मे चुनौती नही दी जा सकती।

24वे सशोधन (1971) के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ससद को मौलिक अधिकारो सहित सविधान के सभी भागो को सशोधित करने का अधिकार है एव यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति के लिए ऐसे विधेयक को स्वीकृति देना अनिवाय है। इस सशोधन को पारित करने की आवश्यकता **गोलकनाथ विवाद** (1967) मे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निणय से उत्पन्न हुई थी। इस निणय के परिणाम-स्वरूप ससद को मौलिक अधिकारा को सशोधित करने का अधिकार समाप्त हो गया था। इस विवाद म सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूव दृष्टिकोण के विपरीत अल्पवहुमत से उपरोक्त निणय किया था। स्मरणीय है कि राज्य के नीति निर्देशक तत्वा के क्रिया-न्वयन एव सविधान की प्रस्तावना म निहित उद्देश्यो की पूर्ति के लिए मौलिक अधि-कारा को सामाजिक हित मे सीमित करना आवश्यक हो सकता है।

सन् 1971 का 25वा सशोधन भी मौलिक अधिकारा से सम्बधित है। इस सशोधन के द्वारा (i) सावजनिक उद्देश्य के लिए हस्तगत की गयी सम्पत्ति की क्षति-पूर्ति निर्धारित करने का अधिकार ससद का दिया गया, तथा (ii) अनुच्छेद 39 (व) एव (स) म निहित निर्देशक तत्वा के क्रियान्वयन हेतु निर्मित विधिया को सरक्षण प्रदान किया गया। इस दृष्टि से सविधान म एक नया अनुच्छेद—अनु 31 (स)—जोडा गया और राज्य के नीति निर्देशक तत्वा को क्रियान्वित करने हेतु निर्मित विधिया को न्याया लय के क्षेत्राधिकार स मुक्त कर दिया गया। ऐसी विधिया को सम्पत्ति सम्बन्धी अधि कार के अतिक्रमण के आधार पर न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकती। 32वें सशोधन के द्वारा केरल राज्य के दो भूमि सुधार सम्बन्धी अधिनियमा को न्यायालय क क्षेत्राधिकार से सरक्षण प्रदान किया गया।

कुछ सशोधन व्यावहारिक कठिनाइया का दूर करने क लिए किये गये ह, जस—द्वितीय सशोधन (1952) द्वारा लोकसभा म प्रतिनिधित्व को राज्य विधान-सभाओ क समान करन के लिए अनुच्छेद 81 (1) (व) म सशोधन किया गया। छठवें सशो-

धन (1956) द्वारा बिक्री-कर से उत्पन्न विधिक विवादो एव व्यावहारिक कठिनाइया को दूर करने हेतु सघ-सूची म नये विषय—92 (अ) अन्त प्रान्तीय विक्रय एव क्रय—को जोडा गया। ग्यारहवें सशोधन द्वारा राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति मे सशोधन की व्यवस्था की गयी है। नवीन व्यवस्था के द्वारा उपराष्ट्रपति का सदन के दोनो सदनो की सयुक्त बैठक मे चुना जाना आवश्यक नही रह गया है। 15वे सशोधन द्वारा न्याय-पालिका सम्बन्धी सशोधन किये गये है एव उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो के अवकाश की उम्र बढाकर 60 से 62 वर्ष कर दी गयी है। एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय मे न्यायाधीशो के हस्तान्तरण की व्यवस्था भी की गयी है। 18वे सशोधन द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अनुच्छेद तीन के अन्तर्गत उल्लिखित 'राज्य' शब्द के अर्थ मे सघीय क्षेत्र भी शामिल है। 19वे सशोधन के द्वारा निर्वाचन आयोग की सिफारिश पर निर्वाचन न्यायाधिकरणो (Election Tribunals) को समाप्त करके निर्वाचन सम्बन्धी याचिकाओ की सुनवाई का अधिकार उच्च न्यायालयों को प्रदान कर दिया गया है। फलस्वरूप अनुच्छेद 324 को सशोधित किया गया है।

20वा सशोधन उत्तर प्रदेश के जिला जजो से सम्बन्धित है। सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि उनकी नियुक्ति अनुच्छेद 233 के आधीन नही की गयी है अत जिला जजो के हस्तान्तरण का अधिकार सरकार को न होकर उच्च न्यायालय को है। इस निर्णय से सभी पूर्व एव वर्तमान नियुक्तिया निरस्त हो जाती थी और उनके द्वारा दिये गये निर्णयो पर भी विपरीत प्रभाव पडता था। अत इन नियुक्तियो, पदोन्नतिया एव हस्तान्तरणो को वैध बनाने हेतु सविधान म अनुच्छेद 233 (अ) जोडा गया।

26वे सशोधन द्वारा प्रीवी पर्स एव अन्य राजवशीय विशेषाधिकारो का अन्त किया गया है। यह सामाजिक विकास की माँग है। 27वें सशोधन द्वारा मीजारम नामक सघीय क्षेत्र के लिए विधानमण्डल एव मन्त्रि-परिषद् की व्यवस्था की गयी है। 28वें सशोधन का सम्बन्ध अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति का देश के किसी भाग में सकटकालीन घोषणा के अधिकार से है। यह सशोधन विरोधी दलो की भावना का आदर करते हुए सरकार ने वापस ले लिया था। 31वें सशोधन द्वारा आई सी एस के अधिकारियो को प्राप्त सुविधाओ एव सेवा की शर्तों म सशोधन किया गया। 30वा सशोधन (अगस्त 1972) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार म सशोधन किया गया है। सशोधित व्यवस्था के अनुसार अब विधि सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण मामलो की अपील सर्वोच्च न्यायालय मे की जा सकती है। अभी तक अपील के लिए विशेष अनुमति प्राप्त करना आवश्यक था या 20 हजार रुपय या उससे अधिक की सम्पत्ति या मूल्य से सम्बन्धित विवाद पर ही अपील की सुविधा प्राप्त थी।

निम्नलिखित सशोधन ऐतिहासिक परिस्थितियो के परिणाम हैं 1956 ई म 7वें सशोधन द्वारा भाषायी आधार पर राज्यो का पुन वर्गीकृत किया गया है। 8वें सशोधन द्वारा परिगणित जातिया एव जनजातिया के लिए विधानमण्डलो म 26 जनवरी

1950 ई के पश्चात 10 वर्षों की बजाय 20 वर्षों के लिए स्थान सुरक्षित कर दिये हैं। 9वां सशोधन 10 सितम्बर, 1958 ई एव 23 सितम्बर, 1958 ई के भारत-पाक सीमान्त विवादो सम्बन्धी समझौते के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। 10वें तथा 12वें सशोधन पुर्तगाली साम्राज्यवाद के विनाश के परिणाम थे। दादर तथा नगरहवेली 10वे सशोधन के द्वारा भारतीय सघ म केन्द्र प्रशासित प्रदेश के रूप म शामिल किये गये हैं। 12वें सशोधन द्वारा दमन एव दीव की पुर्तगाली बस्तियो पर अधिकार करके उन्हे भारत म केन्द्र प्रशासित प्रदेश के रूप मे शामिल कर लिया गया है। 13वे सशोधन का सम्बन्ध नागालैण्ड राज्य के जन्म से है। 14वें सशोधन द्वारा फ्रेंच औपनिवेशिक क्षेत्रों—पाण्डुचेरी, कारीकल, माही एव यनम—को केन्द्र प्रशासित क्षेत्र के रूप म भारत मे मिला लिया गया। 21वे सशोधन के द्वारा सिन्धी को राष्ट्रीय भाषा की सूची मे स्थान दिया गया। 22वे सशोधन (1969 ई) के द्वारा ससद को विधि बनाकर असम राज्य के अन्तगत जनजातीय क्षेत्रो को मिलाकर एक स्वशासित राज्य के निर्माण का अधिकार दिया गया। यह सशोधन सामाजिक शक्तियो का परिणाम था। 23वें सशोधन द्वारा परिगणित एव अनुसूचित जातियो के लिए सन 1970 के पश्चात आगामी 10 वर्षों के लिए व्यवस्थापिकाओ मे स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था को कायम रखा गया है।

उपरोक्त विश्लेषण के निम्न निष्कष हैं

(1) मौलिक अधिकार सम्बन्धी सशोधन सर्वोच्च न्यायालय के निणया के परिणाम हैं। गोलकनाथ विवाद के पूव न्यायालय द्वारा दिये गये निणयो के फलस्वरूप सम्पत्ति के अधिकार म केवल आशिक सशोधन ही हुए थे परन्तु इस निणय ने नीति निर्देशक तत्वो बनाम मौलिक अधिकारा के प्रश्न पर मौलिक अधिकारो म सशोधन का अधिकार ससद से छीन लिया था। फलस्वरूप सविधान म सशोधन अनिवाय हो गया था।

(2) व्यावहारिक कठिनाइयो को दूर करने के उद्देश्य से 11 सशोधन पारित किये गये हैं।

(3) एतिहासिक एव सामाजिक परिस्थितियो के कारण सविधान मे 11 सशोधन हुए हैं।

इनमे से व्यावहारिक कठिनाइयो के निवारण एव ऐतिहासिक व सामाजिक परिस्थितिया क कारण हुए सशोधनो का होना स्वाभाविक है। इन्हे सविधान मे सशोधन नही माना जाना चाहिए। यदि सविधान म विस्तारपूवक अनेक प्रशासकीय एव शासन की सामान्य बाता का स्थान न दिया गया होता तो इनम से अनेक सशोधना की आवश्यकता ही न पडती। सविधान म केवल आठ सशोधन हुए ह जिनका मौलिक अधिकारा स सम्बन्ध है। अत भारतीय सविधान म अधिक सशोधना का आरोप सत्य नही है।

ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधाना की तुलना

ब्रिटन का सविधान अलिखित विकसित एव नमनीय है जबकि अमेरिकी सवि

धान लिखित निर्मित एव कठोर है। इसमे सशोधन की स्पष्ट प्रणाली है। ब्रिटेन मे एकात्मक शासन प्रणाली है जबकि सयुक्त राज्य अमरिका सघीय राज्य है। अमेरिकी सवधानिक विकास सघीय सिद्धान्त के विकास की कहानी है। ग्रेट ब्रिटेन के सविधान के अलिखित होने के कारण इसके विकास एव सम्पादन म अभिसमया ने महत्वपूण भूमिका निभायी है। अमेरिकी सविधान मे अभिसमयो का सिद्धान्तत कोई अस्तित्व नही है यद्यपि कुछ अभिसमयो का वहा भी विकास हुआ है। अमेरिका म राष्ट्रपति का निर्वाचन, सीनेट सम्बन्धी सौजन्य तथा दलीय व्यवस्था का विकास अभिसमया पर ही आधारित है।

ब्रिटिश सविधान ससदीय व्यवस्था प्रधान है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे शक्ति-पृथक्करण पर आधारित अध्यक्षात्मक व्यवस्था है। ब्रिटेन म ससद की सप्रभुता है और न्यायिक पुनरीक्षण का पूण अभाव है। इसके विपरीत, सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान म न्यायिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है और सविधान के लिखित एव सघीय होने के कारण सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गयी है तथा न्यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था है। ब्रिटेन के सविधान मे मौलिक अधिकारा का स्पष्ट उल्लेख नही है परन्तु विधि के शासन का एक अथ यह है कि अधिकारा की रक्षा के लिए ही सविधान है न कि सविधान अधिकारा का स्रोत है। सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान म प्रथम दस सशोधनो के माध्यम से मौलिक अधिकारो की स्पष्ट व्यवस्था की गयी है।

उक्त भेदा के होते हुए भी अमेरिकी सविधान ब्रिटिश सविधान से प्रभावित है। अमेरिकी काग्रेस ब्रिटिश ससद की भाति द्विसदनात्मक है। अमेरिकी काग्रस को भी वित्त पर ब्रिटिश ससद की भाँति ही पूण नियत्रण प्राप्त है। ब्रिटिश उदारवाद ही अमेरिकी सविधानवाद का आधार है। दोना सविधानो म जनता की प्रभुत्व सम्पनता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। काग्रेस द्वारा विधिया ब्रिटिश सस की भाँति तीन वाचना म ही पारित होती है। मोटे तौर पर ब्रिटिश ससद की भाँति अमेरिकी काँग्रस म समिति व्यवस्था भी है। ब्रिटिश कामन्स सभा की भाँति काग्रेस का प्रतिनिधि सदन जनता द्वारा निर्वाचित सदन है। प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष कॉमन्स सभा के अध्यक्ष की भाँति ही स्पीकर कहा जाता है।

अमेरिका क सम्बन्ध म यह कथन पूणरूपण लागू होता है कि ब्रिटिश सविधान समस्त सविधानो का स्रोत है और ब्रिटिश ससद समस्त ससदा की जननी है।

न्यायिक निर्णयो द्वारा सविधानो मे सशोधन

कभी-कभी देश की न्यायपालिका द्वारा एस निणय दिय जात हैं जो सविधान के स्वरूप म मौलिक परिवतन कर देते हैं। स्मरणीय है कि सवधानिक सशोधन-प्रणाली एव न्यायिक निणया द्वारा सविधान का विकास सामान्यत उन देशा म भली प्रकार सम्भव होता है जहाँ सवधानिक शासन की व्यवस्था सुस्थापित एव दीघकाल न प्रभावपूण ढग से सक्रिय एव क्रियाशील हो। के सी ह्वीयरे का मत है कि

किसी देश मे सविधान को निलम्बित या नष्ट किया जाता है तो इसके लिए कठोर सशोधन प्रणाली को उत्तरदायी ठहराना कठिन है लेकिन हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अधिकाश देशा मे सशोधन प्रणाली की सफलता का एकमात्र कारण अन्य तत्वो का भी सक्रिय होना है। सविधान के सशोधन मे अनेक शक्तिया सक्रिय होती हैं। इनमे अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व न्यायिक व्याख्या है।[60]

कुछेक सविधानो मे सविधान की व्याख्या (interpretation) का दायित्व स्पष्ट रूप से न्यायालय को दिया गया है, जसे—आयर गणराज्य के सविधान की धारा 34 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को सविधान की व्याख्या का अधिकार है। कुछ देशो मे—जैसे सयुक्त राज्य अमेरिका म—यह अधिकार न्यायपालिका को न्यायिक दायित्व एव सविधान की प्रकृति के अधिकार से प्राप्त है। न्यायालयो को विधि की व्याख्या का अधिकार होता है। सविधान सर्वोच्च विधि है अत न्यायालयो को उसकी व्याख्या करने का अधिकार है। यह मत अधिकाशत उन देशो म स्वीकृत है जहाँ पर आंग्ल सक्सन विधि का सिद्धान्त मान्य है। सविधान की न्यायिक व्याख्या के औचित्य का प्रतिपादन प्रसिद्ध अमेरिकी न्यायाधीश मार्शल ने 1803 ई [illegible] ।म मेडीसन (*Marbury* v *Madison*) नामक विवाद मे निर्णय देते [illegible] को सविधान विरोधी विधि को निष्प्रभावी घोषित करने का [illegible]

फ्रासीसी गणराज्य मे भी मान्य है। यद्यपि पाँचवें गणराज्य के द्वारा न्यायालयों को कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनका तृतीय गणराज्य में सर्वथा अभाव था और ये अधिकार ससद द्वारा सीमित नहीं किये जा सकते। पाँचवें गणराज्य मे अनुच्छेद 56 63 के अन्तर्गत सविधान की व्याख्या का दायित्व नौ सदस्यी सवधानिक समिति को सौंपा गया है जिसमे उपराष्ट्रपति, सीनेट एव राष्ट्रीय सभा द्वारा नियुक्त तीन-तीन सदस्य होते हैं। इस समिति द्वारा यदि किसी विधि को असवधानिक घोषित कर दिया जाता है तो वह विधि निष्प्रभावी हो जाती है। फ्रास के चतुर्थ गणराज्य के अनुच्छेद 91 93 के अन्तर्गत सवधानिक समिति की व्यवस्था थी परन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था की तुलना मे फ्रेंच व्यवस्था निस्सन्देह हेय थी। न्यायाधीशों के कार्यों के सम्बन्ध में फ्रासीसियों की इस धारणा को अनेक देशो के न्यायाधीशों ने स्वीकार किया है, जैसे—नीदरलैण्ड, बेलजियम, स्वीडन एव डेनमार्क। परन्तु जिन देशो मे न्यायिक पुनरीक्षण का अभाव है, उनके सन्दर्भ मे यह सोचना गलत है कि वहाँ सविधान सर्वोच्च नहीं है। के सी ह्वीयरे का मत है कि कुछ मामलों मे सविधान द्वारा विधानमण्डल एव कार्यपालिका की शक्तियों पर अकुश नहीं लगाया जा सकता। ऐसी स्थिति में न्यायिक पुनरीक्षण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। जिन देशो मे ऐसे प्रतिबन्धों की व्यवस्था की गयी है वहाँ केवल यह धारणा बलवती है कि उन निकायों (bodies) पर ही विश्वास किया जाय जिन पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। विधायक एव प्रशासक से न्यायाधीश को क्या अधिक विश्वासपात्र माना जाय या न्यायाधीशों को ही सवधानिक प्रश्नों का निर्णय करने के लिए शासन के अन्य निकायों की अपेक्षा अधिक योग्य क्या माना जाय ? जनता को ही जो सप्रभु सत्ता को धारण करती है, व्यवस्थापिका एव कार्यपालिका की अपेक्षा सविधान की व्याख्या का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए ? स्विटजरलैण्ड मे जनमत सग्रह के माध्यम से जनता को सवैधानिक प्रश्नों के निर्णय करने की अन्तिम शक्ति प्राप्त है।[61] परन्तु स्विटजरलण्ड मे सवधानिक जनमत सग्रह एक वाछित अवरोध एव सफल व्यवस्था सिद्ध नहीं हुई है। अत न्यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था को स्वीकार करने के सम्बन्ध मे विभिन्न यूरोपीय देशो मे चर्चा होती रही है यद्यपि उसे सभी देशो ने पूरी तरह से अभी स्वीकार नहीं किया है।

न्यायिक व्याख्या के व्यावहारिक क्रियान्वयन का अध्ययन प्रधान रूप मे सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आयर गणराज्य एव भारत के सविधानों की समीक्षा से ही सम्भव है। सविधान की न्यायालय द्वारा न्यायिक व्याख्या (judicial interpretation) से क्या तात्पर्य है ? स्मरणीय है कि न्यायालयों द्वारा सविधान में सशोधन नहीं किया जा सकता और न वे उसकी भाषा को ही बदल सकते हैं। वे केवल सविधान के शब्दों की व्याख्या कर सकते हैं और उसके द्वारा वे परिवर्तन भी ला सकते

61 Wheare, K. C *op cit*, p 104

किसी देश म सविधान को निलम्बित या नष्ट किया जाता है तो इसके लिए कठोर सशोधन प्रणाली को उत्तरदायी ठहराना कठिन है लेकिन हम यह निश्चित रूप स कह सकते हैं कि अधिकाश देशा म सशोधन प्रणाली की सफलता का एकमात्र कारण अन्य तत्वा का भी सक्रिय होना है। सविधान के सशोधन मे अनक शक्तियाँ सक्रिय होती हैं। इनम अत्यधिक महत्वपूण तत्व न्यायिक व्याख्या है।[60]

कुछेक सविधाना म सविधान की व्याख्या (interpretation) का दायित्व स्पष्ट रूप से न्यायालय को दिया गया है, जसे—आयर गणराज्य के सविधान की धारा 34 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का सविधान की व्याख्या का अधिकार है। कुछ देशो मे—जैसे सयुक्त राज्य अमेरिका मे—यह अधिकार न्यायपालिका को न्यायिक दायित्व एव सविधान की प्रकृति के अधिकार से प्राप्त है। न्यायालया को विधि की व्याख्या का अधिकार होता है। सविधान सर्वोच्च विधि है अत न्यायालया को उसकी व्याख्या करने का अधिकार है। यह मत अधिकाशत उन देशा म स्वीकृत है जहाँ पर आँग्ल सैक्सन विधि का सिद्धान्त मान्य है। सविधान की न्यायिक व्याख्या के औचित्य का प्रतिपादन प्रसिद्ध अमेरिकी न्यायाधीश मार्शल ने 1803 ई म मारबरी बनाम मेडीसन (*Marbury v Madison*) नामक विवाद मे निणय देते हुए किया है। न्यायालय को सविधान विरोधी विधि को निष्प्रभावी घोषित करने का अधिकार है। यही व्यवस्था न्यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था कहलाती है। यह व्यवस्था अमरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, भारत एव अनेक मध्य एव लेटिन अमेरिका के देशो मे प्रचलित है। लेकिन सभी देशा के न्यायालयो को यह अधिकार प्राप्त नही है। कुछ देशो मे सविधान के कुछ अश न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार के पर होत हैं। यथा—आयरलैण्ड तथा भारत के सविधान मे न्यायालय को ससद की ऐसी विधियो को अवैध घोषित करने का अधिकार नही है जो सविधान म उल्लिखित सामाजिक नीति के अनुरूप हो। स्विस सविधान के अनुसार सघीय न्यायालय को केन्टनो की विधिया को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है परन्तु सघीय सविधान की व्याख्या का अधिकार फेडरल असम्बली को ही है। स्विस सघीय न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त नही है।

कुछ देशो के सविधान इस प्रश्न पर मौन ह कि न्यायालयो को सविधान की व्याख्या करने का अधिकार है अथवा नही। इन देशो मे यह विश्वास मान्य है कि न्यायालया को एसे प्रश्ना के निणय नही करन चाहिए। फ्रास के तृतीय गणराज्य के न्यायाधीशो ने इस दायित्व का कभी भी निर्वाह नही किया यद्यपि सविधान क आधीन एसे अवसरा का अभाव नही था जब न्यायालय सविधान की व्याख्या कर सकते थे। वास्तविकता तो यह है कि फ्रास के न्यायवादियो की दृष्टि मे सवधानिक आधार पर ससदीय विधि का न्यायपालिका द्वारा परीक्षण उचित नही है। वे इसे न्यायाधीशो का दायित्व नही मानते थे। फ्रास के न्यायालया को सामान्य विधि की व्याख्या करने का तो अधिकार है परन्तु व सविधान की व्याख्या नही कर सकत। यही सिद्धान्त पचम

60 Wheare, K C *Modern Constitutions* (1966), p 99

फ्रासीसी गणराज्य मे भी मा य है। यद्यपि पाचवे गणराज्य के द्वारा यायालयो को कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनका तृतीय गणराज्य म सवथा अभाव था और ये अधिकार ससद द्वारा सीमित नही किय जा सकते। पाचवें गणराज्य मे अनुच्छेद 56 63 के अ तगत सविधान की व्याख्या का दायित्व नौ सदस्यी सवैधानिक समिति को सौपा गया है जिसमे उपराष्ट्रपति, सीनेट एव राष्ट्रीय सभा द्वारा नियुक्त तीन-तीन सदस्य होते है। इस समिति द्वारा यदि किसी विधि को असवैधानिक घोषित कर दिया जाता है तो वह विधि निष्प्रभावी हो जाती है। फ्रास के चतुथ गणराज्य के अनुच्छेद 91 93 के अन्तगत सवैधानिक समिति की व्यवस्था थी पर तु सयुक्त राज्य अमेरिका के यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था की तुलना मे फ्रेंच व्यवस्था निस्स देह हेय थी। यायाधीशो के कार्यों के सम्ब ध मे फ्रासीसियो की इस धारणा को अनेक देशा के यायाधीशा ने स्वीकार किया है, जैसे—नीदरलैण्ड, बेलजियम, स्वीडन एव डेनमाक। पर तु जिन देशो म यायिक पुनरीक्षण का अभाव है, उनके स दभ मे यह सोचना गलत है कि वहाँ सविधान सर्वोच्च नही है। के सी व्हीयरे का मत है कि कुछ मामला मे सविधान द्वारा विधानमण्डल एव कायपालिका की शक्तिया पर अकुश नही लगाया जा सकता। ऐसी स्थिति मे यायिक पुनरीक्षण का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। जिन देशा म ऐसे प्रतिब धो की व्यवस्था की गयी है वहा केवल यह धारणा बलवती है कि उन निकायो (bodies) पर ही विश्वास किया जाय जिन पर ऐसे प्रतिब ध लगाये गये है। विधायक एव प्रशासक से यायाधीश को क्या अधिक विश्वासपात्र माना जाय या याया धीशो को ही सवैधानिक प्रश्ना का निणय करने के लिए शासन के अ य निकाया की अपेक्षा अधिक योग्य क्या माना जाय ? जनता को ही जो सप्रभु सत्ता को धारणा करती है, व्यवस्थापिका एव कायपालिका की अपेक्षा सविधान की व्याख्या का अधिकार क्यो नही होना चाहिए ? स्विटजरलण्ड म जनमत सग्रह के माध्यम से जनता को सवैधानिक प्रश्ना के निणय करने की अन्तिम शक्ति प्राप्त है।[61] परन्तु स्विटजरलैण्ड मे सवैधानिक जनमत सग्रह एक वाछित अवरोध एव सफल व्यवस्था सिद्ध नही हुई है। अत यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था को स्वीकार करने के सम्ब ध म विभिन्न यूरोपीय देशो म चर्चा होती रही है यद्यपि उसे सभी देशा ने पूरी तरह से अभी स्वीकार नही किया है।

यायिक व्याख्या के व्यावहारिक क्रिया वयन का अध्ययन प्रधान रूप से सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आयर गणराज्य एव भारत के सविधाना की समीक्षा से ही सम्भव है। सविधान की न्यायालय द्वारा यायिक व्याख्या (judicial interpretation) से क्या तात्पय है ? स्मरणीय है कि यायालया द्वारा सविधान म सशोधन नही किया जा सकता और न वे उसकी भाषा को ही बदल सकते हैं। वे केवल सविधान के शब्दा की व्याख्या कर सकते हैं और उसके द्वारा वे परिवतन भी ला सकते

61 Wheare, K. C *op cit*, p 104

हैं । न्यायालय अपने निर्णयों के द्वारा किसी संवैधानिक शब्द या वाक्यांश की विस्तृत व्याख्या कर सकते हैं तथा अपने पूर्व निर्णयों को संशोधित, परिवर्तित या स्पष्ट कर सकते हैं । यही नहीं, अपने पूर्व निर्णय को व रद्द या निरस्त भी कर सकते हैं। संविधान की भाषा अस्पष्ट हो सकती है और ऐसी स्थिति में न्यायाधीशों को उसकी व्याख्या के लिए पर्याप्त अवसर होते हैं । यह भी सम्भव है कि न्यायाधीशों के निर्णय निभ्रान्त न हों, तर्कहीन हों एवं परिवर्तनशील हों, प्रचलित सामान्य धारणा एवं रीति रिवाजों के विपरीत हों, तथा न्यायाधीशों द्वारा अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण भी किया गया हो । ऐसी अवस्था में न्यायाधीशों की आलोचना तो होती ही है, न्यायिक व्याख्या की प्रणाली की भी निन्दा की जाती है । मुख्य बात यह है कि न्यायाधीश का मुख्य कार्य संविधान की व्याख्या करना है न कि संशोधन करना । अतः संविधान में जो परिवर्तन न्यायालय द्वारा होते हैं वे व्याख्या सम्बन्धी दायित्व के फलस्वरूप होते हैं न कि विधि निर्माण सम्बन्धी दायित्व के द्वारा जो कि न्यायालयों का गौण कार्य है ।

न्यायिक व्याख्या के फलस्वरूप आधुनिक संविधानों में केन्द्रीकरण का विकास हुआ है । केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में न्यायिक व्याख्या से पर्याप्त वृद्धि भी हुई है । संयुक्त राज्य अमरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने अमेरिकी कांग्रेस को संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अतिरिक्त अन्त राज्यीय व्यापार के नियमन का भी अधिकार प्रदान किया है। गिब्बन बनाम ओगडन (1824 ई) नामक विवाद से ही संविधान के शब्दों को न्यायालय द्वारा व्यापक अर्थ प्रदान किया जाता रहा है । संविधान द्वारा विभिन्न राज्यों के मध्य व्यापार के नियमन का अधिकार कांग्रेस को प्रदान किया गया है । मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने इस वाक्यांश के प्रत्येक शब्द की व्यापक परिभाषा दी है । फलस्वरूप केन्द्रीय शासन की शक्तियों में वृद्धि हुई । उपरोक्त निर्णय के बाद के दशकों में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनेक ऐसे मामले आये जिनका सम्बन्ध अन्त राज्यीय एवं राज्यान्तर्गत व्यापार के सीमा निर्धारण से था। इन सभी विवादों में दिये गये निर्णयों के फलस्वरूप केन्द्रीय शासन की शक्ति में वृद्धि हुई है । यह महत्वपूर्ण है कि 150 वर्ष पूर्व जो शक्तियां आर्थिक मामलों में कांग्रेस को प्रदान की गयी थीं वे आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं यद्यपि वहां की जनसंख्या पहले से तिगुनी हो चुकी है और जो कृषि प्रधान देश के स्थान पर अब प्रमुख औद्योगिक देश बन चुका है । अमेरिकी संविधान को नवीन समाज के अनुरूप बनाने का श्रेय वहां सर्वोच्च न्यायालय को है । सर्वोच्च न्यायालय के लिए यह इसीलिए सम्भव हो सका अमेरिका के संविधान की भाषा की ऐसी व्याख्या सम्भव थी । इसके अतिरिक्त, राज्यों के मध्य अन्त राज्यीय व्यापार चालू था । फलस्वरूप न्यायालयों ने संयुक्त राज्य अमरिका के एकीकरण को प्रभावित किया । स्मरणीय है कि कनाडा में न्यायालयों के निर्णयों के फलस्वरूप केन्द्र की अपेक्षा प्रान्तों की शक्ति बढ़ी है । आस्ट्रेलिया में अन्त राज्यीय व्यापार बहुत अधिक नहीं था फिर भी केन्द्रीय शक्ति में न्यायिक के फलस्वरूप वृद्धि हुई है । देश के औद्योगिक जीवन पर संयुक्त राज्य अमेरिका

कनाडा की अपक्षा आस्ट्रेलिया के केन्द्रीय शासन का अधिक नियन्त्रण है। 1942 ई मे आस्ट्रेलिया के उच्च यायालय द्वारा इनकम टैक्स अधिनियम को, जिसके द्वारा राज्यो ने केन्द्रीय अनुदान के बदले आय-कर लगाने के अपने अधिकार का परित्याग कर दिया था, वैध ठहराया था।[62] इस निणय के फलस्वरूप राज्यो की राजनीतिक स्वतन्त्रता बहुत कुछ नष्ट हो गयी है। युद्ध एव सुरक्षा सम्बन्धी शक्ति के प्रयोग मे यायिक निणयो के फलस्वरूप केन्द्रीकरण हुआ है। तीना सघीय राज्यो—आस्ट्रेलिया, कनाडा एव सयुक्त राज्य अमेरिका—के न्यायालया ने इस बात पर बल दिया है कि केन्द्रीय विधानमण्डल को ही युद्ध एव सुरक्षा विपयक समस्त शक्तिया प्राप्त होनी चाहिए।

कभी-कभी न्यायिक निणया के फलस्वरूप सविधान मे औपचारिक सशोधन की आवश्यकता पडती है। सयुक्त राज्य अमेरिका का 16वा सशोधन (1913) इसी प्रकार के न्यायिक निणया का परिणाम था। इस सशोधन के द्वारा अमेरिकी काग्रेस की आय कर लगाने की शक्ति पर जा सीमाएँ थी, उन्हे समाप्त किया गया था। भारत का पहला चौथा, 16वा, 24वाँ तथा 25वा सशोधन न्यायिक निणया के फलस्वरूप आवश्यक हो गय थे।

कायपालिका की शक्ति म वृद्धि आधुनिक सविधानो की एक विशेषता है। न्यायिक निणयो के फलस्वरूप कायपालिका की शक्ति मे वृद्धि हुई है। आस्ट्रेलिया एव कनाडा के न्यायालयो ने अपनी ससदा को विधि निर्माण की शक्ति कायपालिका को प्रदान करन की स्वीकृति दी है। सयुक्त राज्य अमेरिका म इसके विपरीत सर्वोच्च न्यायालय ने काग्रेस द्वारा विधि निर्माण की शक्ति किसी अन्य सस्था को प्रदान करने का समथन नही किया। हा, काग्रेस नियम बनाने (rule making) की शक्ति प्रदान कर सकती है। सविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारो के विकास म यायिक व्याख्या की भूमिका महत्वपूण रही है। अनेक अवसरो पर सर्वोच्च न्यायालय ने कायपालिका के कार्यो एव विधानमण्डल की विधिया को मौलिक अधिकारो का अतिक्रमण करने के कारण अवधानिक घोपित किया है।

निष्कप के रूप मे यह विचारणीय है कि सविधान की व्याख्या का दायित्व यायालयो को सौपा जाना चाहिए अथवा नही एव इसका क्या विकल्प हो सकता है? प्रथम प्रश्न का यह उत्तर दिया जा सकता है कि यह न्यायालय एव सविधान पर निभर है। अस्पष्ट भाषा वाले सविधान की व्याख्या कठिन होती है और क्षमताहीन न्यायालयो को यह दायित्व नही सौपा जाना चाहिए। सविधान के सन्दभ म न्यायिक निणया की सम्भावना से इकार नही किया जा सकता। न्यायिक व्याख्या का विकल्प स्विटजरलण्ड की भाति जनमत सग्रह ही हो सकता है। परन्तु प्रत्येक राष्ट्र की जनता म इस प्रकार के दायित्व के निवाह की क्षमता नही हाती। अत सविधान की व्याख्या का दायित्व न्यायालयो को तभी दिया जा सकता है जब सविधान सुस्पष्ट (well drafted)

---

62 *South Australia* v *The Commonwealth* 65 C I R 373

हो तथा न्यायाधीश विधिक एव चारित्रिक दृष्टि स इस दायित्व क सम्पादन की योग्यता रखते हो ।

परम्पराएँ एव अभिसमय
(USAGES AND CONVENTIONS)

औपचारिक सवैधानिक सशोधना (formal amendments) एव न्यायिक व्याख्याओ (judicial interpretations) द्वारा होने वाले परिवतन स्वीकृत परिवतन होत हैं तथा इन्हे न्यायालयो द्वारा लागू किया जाता है । व विधिक दृष्टि स मान्य परिवतन होते हैं । लेकिन परम्पराओ एव अभिसमयो द्वारा सविधान म होने वाले परिवतन सविधान के अग न होते हुए भी उसी की भाति बन्धनकारी होते हैं । कभी-कभी सविधान के शब्दो मे बिना परिवतन के ही उनकी व्याख्या एव क्रियान्वयन इस प्रकार किया जाता है कि वे अपने मूल अथ से बिल्कुल भिन्न होते हैं यद्यपि न्यायालय के लिए मूल पाठ और अथ अपरिवर्तित ही बना रहता है । कभी-कभी सविधान की किसी धारा का व्यवहार म बिल्कुल प्रयोग नही होता और दीघकाल तक प्रयोग म न आने के कारण वह अश मृतप्राय हो जाता है । परम्पराएँ एव अभिसमय प्रत्येक सविधान—लिखित अथवा अलिखित—म पाये जाते हैं । परन्तु वे अलिखित सविधानो के विकास म अधिक महत्वपूण भूमिका निभाते है । ग्रेट ब्रिटेन के सविधान म अभिसमयो का विशेष महत्व है । ब्रिटेन के सविधान म अभिसमयो के महत्व का प्रामाणिक एव शास्त्रीय विश्लेषण सवप्रथम **डायसी** ने 1885 ई मे प्रकाशित अपनी पुस्तक *An Introduction to the Law of the Constitution* मे किया है । डायसी का मत है कि सयुक्त राज्य अमरिका का सविधान लिखित है परन्तु वहाँ भी अलिखित नियमो का विकास हुआ है जो विधि के समान ही प्रभावकारी हैं ।[63]

अभिसमय का अथ

'परम्परा' एव 'अभिसमय' शब्दो का समानार्थी शब्दो के रूप म प्रयोग किया जाता है लेकिन दोनो शब्दो के अथ म बडा अन्तर है । अभिसमय (convention) का अथ बन्धनकारी नियम से है जिन्हे व्यवहार अथवा आचरण के नियम के रूप मे सविधान के क्रियान्वयन से सम्बन्धित व्यक्तियो द्वारा बन्धनकारी (obligatory) माना जाता है । लेकिन परम्पराएँ (usages) इसके विपरीत, सामान्य व्यवहार से अधिक मान्य नही होती है । स्मरणीय है कि एक परम्परा अभिसमय बन सकती है। यह कहना कठिन है कि सवधानिक आचरण का कोई नियम बन्धनकारी है अथवा नही । ऐसी स्थिति म ज्यादा अच्छा यह है कि सविधान से सम्बन्धित नियम को निश्चित रूप से परम्परा ही माने । वह अभिसमय भी हो सकता है ।

ग्रेट ब्रिटेन का सविधान अभिसमय प्रधान है तथा वहाँ का राजनतिक जीवन अधिकाशत अभिसमयो पर आधारित है । डायसी के अनुसार अभिसमय सवधानिक

63 Dicey *Introduction to the Study of the Law of the Constitution*, 1959, p 29

नैतिकता की आचार सहिता है।[64] दूसरे शब्दो मे, अभिसमय उस रीति या ढग का निर्देश करते है जिसके अनुसार विभिन्न राज्याधिकारियो द्वारा अपने स्वविवेकीय (discretionary) अधिकारो का प्रयोग किया जाना चाहिए। विधिया मोटे तौर पर ही अधिकारियो की सत्ता का उल्लेख करती है, विस्तार की बाते अधिकारियो के विवेक एव बुद्धि पर छोड दी जाती है। अधिकारी को यदि पूरी तरह विधि के द्वारा जकड दिया जाय तो परिस्थितियो के अनुसार काय करने की उसकी क्षमता नष्ट हो जाती है और उसके हाथ पैर बँध जाते है। अत सामान्यत अधिकार देकर विस्तार के मामलो मे अधिकारियो को स्वविवेकानुसार काय करने की स्वत त्रता प्रदान की जाती है। अभिसमय इससे बढकर यह बताते है कि अधिकारी को स्वविवेकीय शक्तियो का उचित उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। **डायसी** ने अभिसमय की परिभाषा निम्न शब्दो म दी है सविधान के अभिसमय वे 'रीति रिवाज' या 'समझदारी' (under *standings) है जिनके अनुसार सप्रभु विधानमण्डल (ससद) के विभिन्न सदस्यो को* अपने स्वविवेकीय अधिकारो का प्रयोग करना चाहिए, चाहे उ हे सम्राट के परमा*धिकार अथवा ससद के विशेषाधिकार ही कहा जाय।*[65] ***जॉन स्टुअर्ट मिल*** *ने डायसी* द्वारा उल्लिखित अभिसमयो को सविधान के अलिखित सिद्धा त' की सज्ञा दी है।[66]

एन्सन (Anson) इन्हे सविधान के रीति रिवाज कहता है।[67] **डॉ० आग** के अनुसार अभिसमय स तात्पय "समझदारी, प्रचलन एव आदतो से है जो सावजनिक अधिकारियो के एक बडे भाग के वास्तविक सम्ब धो एव कार्यो को नियमित करते हैं।' [68] **कीथ** के अनुसार अभिसमयो का विस्तार सभी सवैधानिक सम्ब धो से है एव वे विधिक अधिनियमो के व्यावहारिक अथ को स्पष्ट करते है।[69] अभिसमय अलिखित हैं। **फ्रीमन** के शब्दो मे यह राजनीतिक नतिकता की सम्पूण प्रणाली है और सावजनिक जीवन से

---

64 'Code or rules of 'constitutional morality'"—Dicey *op cit*, p 424

65 The conventions of the constitution are 'customs or 'understandings' as to the mode in which the various members of the sovereign legislative body should exercise their discretionary authority, whether it be termed the prerogative of the Crown or privileges of the Parliament —Dicey *op cit*, p clu and p 423

66 Conventions are 'unwritten maxims of the Constitution —J S Mill, cited by Jennings *The Law and the Constitution*, 1954, p 80

67 Anson defines conventions as "the customs of the Constitution" —Cited by Sir Ivor Jennings *The Law and the Constitution*, 1954, p 80

68 Conventions 'consist of understandings, practices and habits which although only rules of political morality, alone regulate a large portion of the actual day-to day relations and activities of the public authorities '—Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1956, p 29

69 Keith, A B *The Constitutional Administration and Laws of the Empire* p 5

सम्बन्धित व्यक्तियों की निर्देश संहिता है जो किसी विधि अथवा सामान्य विधि का अंश तो नहीं है किन्तु व्यवहार में अत्यधिक पवित्र मानी जाती है। ब्रिटिश संविधान के लिखित अंश के साथ अलिखित अंश का विकास हुआ है जिसे हम अलिखित या अभिसमयात्मक संविधान की संज्ञा दे सकते हैं।[70] डा० जेनिंग्स के अनुसार अभिसमय विधिक संविधान को क्रियाशील, विकसित एवं परिवर्तित विचारों के अनुरूप बनाते हैं। "संविधान स्वयं कार्य नहीं करता, उसे मनुष्य संचालित करते हैं। संविधान राष्ट्रीय सहयोग का यन्त्र है और सहयोग की भावना यन्त्र की भांति ही आवश्यक है। संवैधानिक अभिसमय इस सहयोग को सम्भव बनाने के नियम हैं।" संविधान का राष्ट्रीय जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार बदलना आवश्यक होता है। अतः पुरानी विधियों को नवीन व्यवस्था एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुरूप रहना आवश्यक है। संवैधानिक अभिसमय ऐसे नियम हैं जो व्यक्तियों द्वारा इसी उद्देश्य के लिए विकसित किये जाते हैं।[71] ह्वीयरे के अनुसार अभिसमय संविधान के गैर विधिक नियम हैं।[72]

लेकिन अभिसमय उल्लिखित विधि नहीं है। विधि एवं अभिसमयों में तात्विक भेद है। विधि विधानमण्डल द्वारा पारित की जाती है। अभिसमयों को पारित नहीं किया जाता अपितु व्यवहार के फलस्वरूप उनका विकास होता है। यह सम्भव है कि आज का अभिसमय कल विधि का रूप धारण कर ले। विधि के उल्लंघन पर दण्ड दिया जाता है, अभिसमयों के उल्लंघन पर दण्ड देना सम्भव नहीं है और न न्यायालय विधि की भांति अभिसमयों का पालन ही करा सकते हैं। किसी अभिसमय के भंग होने पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, जैसा कि विधि के भंग करने वालों के विरुद्ध होता है। विधि अभिसमयों की अपेक्षा अधिक मान्य होता है। अभिसमयों का पालन विधि की भांति निश्चित कर्तव्य नहीं माना जाता। विधि स्थायी (static) है, अभिसमय

---

70 'We now have a whole system of political morality a whole code of precepts for the guidance of public men which will not be found in any page of either the statute or the common law, but which are in practice held hardly less sacred than any principle In short by the side of our written law there has grown up an unwritten or conventional constitution '—Freeman, cited by Dicey *op cit*, p 418

71 'Constitution make the legal constitution work they keep it in touch with the growth of ideas The constitution does not work itself, it has to be worked by men It is an instrument of national *cooperation* and the *spirit* of cooperation is as necessary as the instrument The constitutional conventions are the rules elaborated for effecting that cooperation"—Dr Jennings *The Law and the Constitution* 1954 p 81

72 Conventions are the 'non legal rules in their relation to a constitution' —Wheare, K C *op cit*, p 121

निरन्तर बदलते रहते हैं। विधि मे यदि परिवर्तन होता है तो वह एकदम होता है। इसके विपरीत, अभिसमयो का क्रमिक विकास होता है। नये अभिसमय समय समय पर उत्पन्न होते रहते हैं और पुराने समाप्त होते रहते है। उदाहरण के लिए, डिजरायली द्वारा इस अभिसमय की स्थापना हुई थी कि निर्वाचनो मे मन्त्रि परिषद् के पराजित होने पर उसे तुरन्त त्यागपत्र दे देना चाहिए। ससदीय अधिनियम (1911 ई) के द्वारा इस अभिसमय को विधिक आधार प्रदान किया गया। नवीन अभिसमय के विकसित होने का एक अन्य उदाहरण है कि 1923 ई मे बाल्डविन को लार्डसभा मे अनुदार दल के नेता कर्जन के स्थान पर पचम जॉर्ज ने इस आधार पर प्रधानमन्त्री चुना था कि वह अनुदार दल का कॉमन्स सभा मे नेता था और कॉमन्स सभा (जो जनता का निर्वाचित सदन है) के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त करना अपेक्षाकृत लोकतन्त्रीय भावना के अधिक अनुकूल है।

ब्रिटेन के वैधानिक अभिसमयो को कई वर्गों मे वर्गीकृत किया जाता है, यथा—राजा, मन्त्रिमण्डल, ससद एव राष्ट्रमण्डल से सम्बन्धित अभिसमय। ब्रिटेन के कुछ महत्वपूर्ण अभिसमय निम्नवत् है

(1) राजा मन्त्रियो के परामर्श से कार्य करता है।

(2) राजा द्वारा कॉमन्स सभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है एव मन्त्रियो की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की सलाह से की जाती है। राजा को प्रधानमन्त्री के द्वारा प्रस्तावित मन्त्रिमण्डल के सदस्यो के नामो मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है।

(3) राजा मन्त्रिमण्डल की बैठको मे भाग नही लेता।

(4) प्रधानमन्त्री के परामर्श पर राजा ससद को भग करता है।

(5) सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था अभिसमयो पर आधारित है। मन्त्रिमण्डल कॉमन्स सभा के विश्वासपर्यन्त ही पदारूढ रहता है। मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर या मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित विधेयक के विरुद्ध मत आने पर मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडता है। ऐसी स्थिति मे प्रधानमन्त्री ससद को भग करके नवीन निर्वाचनो की माग कर सकता है जो अनिवार्यत राजा द्वारा स्वीकार की जाती है। यदि नवीन निर्वाचनो मे मन्त्रिमण्डल हार जाता है तो वह नवीन कामन्स सभा के अधिवेशन के पूर्व ही पदत्याग कर देता है। ऐसी स्थिति मे प्रधानमन्त्री पुन कामन्स सभा के विघटन की माग नही कर सकता।

(6) मन्त्री कामन्स सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते है। नीति सम्बन्धी किसी प्रश्न पर यदि कोई एक मन्त्री पराजित होता है तो पूरे मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडता है। लेकिन व्यक्तिगत आचरण अथवा दुराचार के लिए केवल सम्बन्धित मन्त्री ही उत्तरदायी होता है।

(7) कॉमन्स सभा का अध्यक्ष अर्थात् स्पीकर दलीय आधार पर चुना जाता

है परन्तु अपने निर्वाचन के पश्चात वह दलीय सदस्यता का परित्याग कर देता है और निर्दलीय एव निष्पक्ष रूप से आचरण करता है ।

(8) लॉर्ड सभा सर्वोच्च पुनरावेदनीय न्यायालय है परन्तु *अभिसमय* के अनुसार केवल 9 विधि लॉर्ड ही पुनरावेदनीय न्यायालय के अधिवेशन म भाग लेते हैं।

(9) अभिसमय के अनुसार राजा निषेपाधिकार का प्रयोग नही करता।

(10) विधि बनने के पूव प्रत्येक विधेयक का तीन वाचनो म पारित होना आवश्यक है ।

(11) ससद का वष म कम स कम एक अधिवेशन अनिवायत होना चाहिए।

(12) 1923 ई के पूव प्रधानमन्त्री कॉमन्स सभा या लाडसभा दोना म से किसी भी सदन का सदस्य हो सकता था । 19वी सदी मे अनेक प्रधानमन्त्री—यथा, पामस्टन, सेलिसबरी आदि—लॉडसभा के सदस्य थे । परन्तु 1923 ई म राजा जाज पचम ने नवीन अभिसमय की स्थापना की और उन्होने कॉमन्स सभा के अनुदारदलीय वहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री चुना । तब से कॉमन्स सभा म बहुमत दल नेता का ही प्रधानमन्त्री होता है ।

(13) ससदीय विधि द्वारा सधियो की स्वीकृति आवश्यक नही है ।

(14) यदि लॉडसभा कॉमन्स सभा द्वारा पारित किसी विधेयक का विरोध करने पर दृढ है तो राजा का यह कतव्य है कि लाडसभा के विरोध को निष्प्रभावी करने के लिए जितनी सख्या मे पीयस (लॉडसभा के सदस्य) नियुक्त करने का प्रधानमन्त्री परामश दे नियुक्त करे ।

(15) राष्ट्रमण्डलीय विषयो म राजा राष्ट्रमण्डल विभाग के मन्त्री के परामश से ही काय करता है ।

(16) औपनिवेशिक व्यवस्था स्वय अभिसमय पर आधारित है यद्यपि अनेक सम्बन्धित अभिसमय 1931 ई के वेस्टमिनिस्टर अधिनियम के रूप मे विधि का रूप धारण कर चुके हैं । परन्तु अभी भी कुछ अभिसमय हैं—जसे, शाही उत्तराधिकार—जिनके सम्बन्ध मे उपनिवेशो की ससदो की स्वीकृति आवश्यक है ।

(17) सावजनिक अधिनियम का निर्माण करते समय शासन को सम्बन्धित हितो से परामश करना चाहिए ।

सयुक्त राज्य अमेरिका म भी कुछ अभिसमयो का विकास हुआ है । यथा—

(1) राष्ट्रपति का निर्वाचन दो बार स अधिक नही होना चाहिए । राष्ट्रपति वाशिगटन ने तीसरी बार राष्ट्रपति चुने जाने से इकार कर दिया था । तभी से यह परम्परा पडी है । परन्तु राष्ट्रपति रूजवेल्ट इस परम्परा का उल्लघन करके चौथी बार राष्ट्रपति चुने गये थे । फलस्वरूप 1953 ई म राष्ट्रपति का कायकाल सम्बन्धी अधिनियम कांग्रेस द्वारा पारित किया गया एव दो बार की अवधि राष्ट्रपति के लिए अधिकतम अवधि निर्धारित की गयी है ।

(2) राष्ट्रपति सविधान के अनुसार निर्वाचक मण्डल द्वारा चुना जाना चाहिए।

परन्तु व्यवहार म वडा अन्तर है। राष्ट्रपति पद के लिए विभिन्न दलो द्वारा उम्मीदवार पहले से ही निश्चित कर लिये जाते हैं तथा निर्वाचक मण्डल के सदस्य अपने दलीय उम्मीदवार का दी मत देत है।

(3) प्रतिनिधि सभा की सदस्यता के लिए केवल उसी निर्वाचन क्षेत्र से उम्मीदवार खडा हो सकता है जिसकी सूची म उसका नाम है।

(4) अमेरिकी प्रतिनिधि सभा का स्पीकर निदलीय एव निष्पक्ष नही होता। वह प्रमुख दलीय नेता होता है।

(5) उच्च पदो की नियुक्तियो के सम्बन्ध मे राष्ट्रपति सम्बन्धित सीनेटर से पहले ही परामश कर लेता है। इसे सीनेट सम्बन्धी सौजन्य कहते हैं। इसकी उपेक्षा को सीनेट के सदस्य वर्दाश्त नही करते।

(6) कांग्रेस के दोना सदना की काय-विधि प्रथाओ एव परम्पराओ पर आधारित हैं। सविधान इस सम्बन्ध मे मौन है।

अमेरिकी राजनैतिक जीवन की परम्पराएँ एव रीति रिवाज सविधान के शीप पर स्थित एक पिरामिड की भांति है। इनका आधार दीघकालीन प्रचलन है। अमेरिकी राजनतिक व्यवस्था मे सशोधना एव अभिसमयो ने इतना योगदान नही दिया है जितना कि प्रथाआ एव रीति-रिवाजा ने प्रदान किया है और जिसके कारण राजनतिक दल शासन यन्त्र का सचालन कर रहे है।[73] प्रो० मुनरो ने[74] इस कथन का पूण समथन किया है। उनका कथन है कि अमेरिकी सविधान भी रीति रिवाजो एव परम्पराओ पर बहुत कुछ निभर है। सम्भवत मुख्य परम्पराएँ राजनैतिक दला के प्रभाव एव महत्व से सम्बन्धित है जिनका सघीय सविधान म कही उल्लेख नही है परन्तु आज वे सविधान के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय महत्व की है। भारत का नवीन सविधान लिखित है परन्तु यहा भी कुछ अभिसमयो की स्थापना हुई है, जसे राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष है। यद्यपि राष्ट्रपति को समस्त कायपालिका शक्ति सविधान द्वारा प्रदान की गयी है परन्तु उसका प्रयोग मन्त्रिमण्डल ही करता है। निपेधाधिकार का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार ही किया जाता है। केन्द्र एव राज्यो के मध्य अनेक सम्मेलनो की व्यवस्था का विकास हुआ है, जसे—मुख्यमन्त्री सम्मेलन, गवनरो का सम्मेलन, आदि। स्पीकर की स्थिति ब्रिटेन व अमेरिका के स्पीकरो के मध्य की है। प्रधानमन्त्री द्वारा ससद के विघटन की माग को राष्ट्रपति अस्वीकार नही कर सकता।

अभिसमयो के पालन का आधार

अभिसमय विधि नही हैं और उनके उल्लघन के लिए दण्ड नही दिया जा सकता, तो प्रश्न यह है कि उनका पालन क्या होता है? क्या अभिसमय प्रभावहीन नही हैं? उनके पीछे कौन सी शक्ति है?

---

73 See Beard, C A *American Government and Politics*, 1955, p 23
74 Munro, W B *The Government of the United States*, p 69

डायसी [5] ने इस सम्ब ध म अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि अभिसमयों का पालन महाभियोग के भय एव जनमत के कारण किया जाता है तथा महत्वपूर्ण अभिसमयो के पीछे विधि की शक्ति निहित है। अभिसमया का उल्लघन करन वाला किमी न किसी विधि के उल्लघन का दोषी होता है। ऐसी स्थिति म वह यायालय द्वारा दण्डनीय होगा। मान लीजिए, काम स सभा म पराजित कोई प्रधानम त्री प त्याग नही करता तथा सम्राट के सहयोग स पदारूढ बना रहता है। कुछ महीने तो वह ऐसा कर सकेगा। उसके इस असवैधानिक काय को भले ही किसी यायालय म चुनौती न दी जा सके पर तु नये वप के प्रारम्भ म उसे आगामी वप के शासकीय व्यय के लिए ससद से धन की स्वीकृति अवश्य लेनी पडेगी। यदि प्रधानम त्री विना ससद की स्वीकृति के धन व्यय करता है अथवा कर लगाता है तो उसके ये काय विधि के विरुद्ध होगे और वह अपराधी होगा तथा उचित दण्ड का भागी होगा। अस तुष्ट ससद से वह सहयोग प्राप्त नही कर सकेगा। अत अभिसमया का उल्लघन अ त मे विधि के उल्लघन म परिणत हो जायेगा। लेकिन डायसी का यह तक पूणत सत्य नही है और केवल थोडे से अभिसमयो से ही सम्ब धित है। सभी अभिसमया के सम्ब ध मे यह सत्य नही है। अनेक अभिसमय ऐसे है जिनका उल्लघन होने से कोई कानून भग नही होता। अत उनके सम्ब ध मे दण्ड का कोई प्रश्न उत्पन्न ही नही होता। उदाहरण के लिए, 1862 ई मे प्रधानम त्री ग्लेडरटोन ने प्रत्येक कर प्रस्ताव को ससद द्वारा पृथक पृथक रूप से स्वीकृत कराने के स्थान पर एक ही अथ विधेयक म एकत्रित करके पारित करा लिया था। इससे किसी विधि का कोई उल्लघन नही हुआ। इसी प्रकार, प्रधानम त्री लायड जाज न प्रथम युद्ध-काल म युद्ध म त्रिमण्डल की स्थापना की थी। इससे किसी स्थापित विधि का उल्लघन नही हुआ। इसी प्रकार, किसी विधि को यदि ससद तीन वाचनो के स्थान पर दो वाचनो मे ही पारित कर देती है तो किसी भी विधि का उल्लघन नही होता। किसी अभिसमय के उल्लघन के कारण किसी विधि से तत्क्षण सघप की भी सम्भावना नही हो सकती। उदाहरण के लिए, यदि मन्त्रि मण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव बजट अथवा आर्मी एक्ट के पश्चात पारित किया जाता है तो म त्रिमण्डल आगामी बजट के पारित होने के समय तक पदारूढ रह सकता है। 1931 ई म प्रधानम त्री रेमजे मक्डोनल्ड ने सयुक्त उत्तरदायित्व सम्ब धी अभिसमय की उपक्षा की थी पर तु उसे किसी भी विधिक अपराध का दोषी नही ठहराया गया था। लावेल ने इसी स दभ मे कहा है कि ब्रिटिश ससद प्रति वप वित्त एव सेना अधिनियम पारित करन के लिए वाध्य नही है। वह स्थायी सेना अधिनियम पारित कर सकती है एव वतमान करा का कुछ समय के लिए स्थायी बना सकती है तथा शासन क सामा य व्यया को स्थायी व्यय-भार घोपित कर सकती है। [6]

---

75 Dicey *op cit*, Ch XV pp 439 473

76 Lowell, A L *Government of England*, Vol I, (1908), p 114, cited by Ogg and Zink *op cit*, p 31

डायसी के इस तर्क की भी आलोचना की जाती है कि महाभियोग के कारण अभिसमयों का पालन होता है। ग्रेट ब्रिटेन मे महाभियोग का नियम दीर्घकाल तक प्रयोग न किये जाने के कारण मृतप्राय हो चुका है। उसको पुनर्जीवित नही किया जा सकता। डायसी ने स्वय इसे अपर्याप्त कारण माना था।

डॉ० ऑग[77] का मत है कि अभिसमयो के पीछे लोकमत की वास्तविक शक्ति है। अभिसमय का पालन जनमत या लोकमत के कारण किया जाता है। लोकमत चाहता है कि उनका पालन किया जाय एव उनके उल्लघन को स्वीकार नही किया जायेगा। पराजित मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना ही चाहिए क्योकि (ब्रिटिश) लोकमत ऐसे मन्त्रिमण्डल का पदारूढ रहना स्वीकार नही करेगा। इसी प्रकार, ससद का प्रति वर्ष वार्षिक अधिवेशन आहूत किया जाना अनिवार्य है जिससे कि राज्य के विभिन्न विषयो पर विचार किया जा सके। इसी प्रकार, जनता यह बर्दाश्त नही करेगी कि लार्ड-सभा के सभी सदस्य लॉर्डसभा की न्यायिक बठको मे भाग ले। यही अन्य अभि-समयो के बारे म भी सत्य है। जनता की यह इच्छा है कि उसके प्रतिनिधियो द्वारा स्वीकृत विधि के विरुद्ध राजा निषेधाधिकार का प्रयोग न करे। स्पष्ट है कि अभि समयो के पीछे लोकमत की शक्ति है। परन्तु डायसी इसको उचित नही मानते थे। उनका कथन है कि लोकमत के अनुरूप कार्य करना स्वय एक अभिसमय मात्र है और किसी अभिसमय को शेष अभिसमयो का आधार मानना युक्तिसगत नही है।[78]

डॉ० जेनिंग्स[79] के अनुसार अभिसमयो का पालन सामान्य स्वीकृति के कारण होता है, न कि शक्ति के कारण। यदि जनता उनका पालन नही करना चाहती तो उनका पालन शक्ति से नही कराया जा सकता। लावेल का कथन है कि अभिसमयो का पालन इसलिए होता है क्योकि वे आदरसूचक नियम होते है और उन्हे लोकमत का परम्परा से समर्थन प्राप्त होता है।[80] अग्रेज स्वभाव से ही रूढिवादी है अत उन्हे अपने अभिसमयो से प्रेम है। चूकि जनता अभिसमयो का आदर करती है अत उनके प्रतिनिधियो की सरकार भी उनका पालन करती है। लावेल का उक्त मत डायसी के मत से अधिक ग्राह्य है। परन्तु लोकमत के समर्थन का आधार केवल रूढि नही है। व्यक्तियो द्वारा किसी पुरातन बात या नियम का समर्थन केवल इसलिए नही किया जाता कि वह प्राचीन काल से चली आ रही है अपितु इसलिए किया जाता है कि सम्बन्धित नियम या व्यवस्था प्राचीन काल की भाँति ही उपयोगी होती हैं। लावेल ने उपयोगिता के तत्व को मान्यता नही दी है अत उसका मत पूर्णत स्वीकार्य नही है। ग्रीव्स के अनुसार अभिसमयो के पीछे राजनीतिक स्वीकृति है।[81]

---

77 Ogg and Zink *op cit*, p 31
78 Dicey *op cit*, pp 444 445
79 Jennings *The Law and the Constitution*, (1954), p 98
80 "The conventions are observed because they are a code of honour'—Lowell, A L, cited by Ogg and Zink *op cit*, p 31
81 Greaves *The British Constitution*, (1956), pp 16 and 18

एक मत यह भी है कि अभिसमयों के पीछे निहित शक्ति उपयोगिता है। इससे संविधान को परिवर्तित परिस्थितियों में सुचारु रूप से चलाने में सुविधा होती है। उपयोगिता की दृष्टि से कुछ पुरानी प्रथाएं लुप्त हो जाती हैं और कुछ नवीन प्रथाओं का उदय होता है।

लास्की[82] के अनुसार अभिसमयों के आदर के दो कारण हैं—प्रथम, अभिसमय प्रचलित सामाजिक संवैधानिक सिद्धान्तों के अनुरूप होने के साथ साथ उनके क्रियान्वयन में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए, मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता प्रधानमन्त्री करता है। यह अभिसमय है। पहले राजा मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता था। कतिपय कारणों से राजा का स्थान प्रधानमन्त्री ने ले लिया। जार्ज तृतीय ने पुनः इस अधिकार को पाने की चेष्टा की थी परन्तु उसे तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। स्पष्ट है कि प्रधानमन्त्री के द्वारा मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता की रीति स्वीकृत एवं विकसित लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल होने के कारण स्थायी हो गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटिश अभिसमय लोकतन्त्र की आवश्यकताओं के अधिक अनुकूल हैं। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण ब्रिटिश लोकतन्त्र का आधार ही अभिसमय है।

लास्की की दृष्टि में अभिसमय की मान्यता का द्वितीय कारण यह है कि ग्रेट ब्रिटेन के सभी राजनीतिक दल देश के राजनैतिक एवं सामाजिक ढांचे की आधारभूत बातों के सम्बन्ध में एकमत हैं। फलस्वरूप उनसे सम्बन्धित समान अभिसमय भी उन्हें समान रूप से मान्य हैं।

अभिसमयों की मान्यता विषयक उपरोक्त समीक्षा से यह स्पष्ट है कि उनकी मान्यता का आधार लोकमत का समर्थन एवं उनकी उपयोगिता है। लास्की का मत भी बड़ा सबल है।

समीक्षा—अभिसमयों का संवैधानिक महत्व है। डायसी का कथन है कि अभिसमय द्वारा क्राउन की स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग का निर्धारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त, संसद एवं मन्त्रिमण्डल को जनता की इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। "ये संवैधानिक नैतिकता की आचार-संहिता हैं (और ये) जनप्रभुत्व की उपलब्धि कराते हैं।" विधि द्वारा संसद पर कोई प्रतिबन्ध लगाना सम्भव नहीं है। इसके लिए दूसरे प्रकार का प्रतिबन्ध आवश्यक है। अभिसमय संसद द्वारा निर्मित नहीं हैं और उन्हें तोड़ना भी उसके लिए सरल नहीं है। अभिसमयों का जन्म जनता की औचित्य-बुद्धि से हुआ है अतः संसद उनके उल्लंघन का साहस नहीं कर सकती।

डा० जेनिंग्स के अनुसार अभिसमय दो महत्वपूर्ण कर्तव्य सम्पादित करते हैं। प्रथम, परिवर्तित सामाजिक आवश्यकताओं एवं राजनीतिक विचारों के अनुकूल शासन

82 Laski H J *Parliamentary Government in England*, Ch I, 1939 pp 52 70

व्यवस्था को ढालने म सहायता प्रदान करत है। द्वितीय, शासको को शासनयन्त्र के सचालन में सहयाग प्रदान करते हैं। मन्त्रिमण्डलीय शासन प्रणाली के काय म अभिसमय सहयोग को सम्भव बनाते है। इसके अतिरिक्त, ग्रेट ब्रिटेन एव उसके उपनिवेशा का सहयोगपूवक काय करने मे ये सहायता करते है। जेनिंग्स के अनुसार 'वे विधि की शुष्क हड्डिया को मास से ढकने का काय करते हैं'[83] तथा विधिक सविधान को क्रियाशील एव समाज के विकसित विचारो के अनुरूप बनाते हैं। उनके द्वारा मन्त्रिमण्डल एव कॉमन्स सभा मे सहयोग स्थापित होता है तथा राजनतिक सप्रभु के प्रति कानूनी सप्रभु (ससद) को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अभिसमयो के द्वारा ही निरकुश राजतन्त्रीय व्यवस्था का लोकतन्त्रीयकरण सम्भव हो सका है। उन्ह अलिखित नियमो की सज्ञा देना ठीक नही है। अनेक अभिसमय लिखित रूप म पाये जाते है। उदाहरण के लिए, विधानमण्डल के दोनो सदना से सम्बन्धित स्थायी नियम (standing rules) लिखित होते हैं। कुछ देशो मे ये नियम विधानमण्डल द्वारा पारित किये जाते हैं एव देश की विधि का अग होते है। स्वीडन एव फिनलण्ड म ये नियम सर्वोच्च सावयवी या आधारभूत विधि (organic law) के नियम है जो सविधान का अग नही कहे जाते है। लेकिन अनेक देशो मे इन नियमो को स्थायी प्रस्तावो के रूप मे विधानमण्डलो द्वारा पारित किया जाता है, अत ये विधि का अग होते है। अपनी काय पद्धति को नियमित करने के लिए प्रस्ताव के रूप मे इन नियमो को भले ही विधानमण्डल द्वारा पारित किया गया हो, लेकिन अनेक विचारक उन्हें विधि की सज्ञा न देकर अधिक से अधिक लिखित अभिसमय मानते हैं।

ह्वीयर[84] के अनुसार अभिसमय सविधान को निम्न प्रकार से प्रभावित करते है

(1) अभिसमयो के कारण सविधान की कुछ धारा या धाराएँ निरथक हो जाती हैं। उसके शब्दो म "अभिसमय विधि की भुजाओ को निष्क्रिय बना देते हैं।" स्मरणीय है कि वे उन्ह सशोधित या समाप्त नही करते अपितु विधि का उपयोग असम्भव बना देते है। उदाहरण के लिए, विभिन्न राज्याध्यक्षो की विधानमण्डल द्वारा पारित विधि को अस्वीकार करने या निषेधाधिकार की शक्ति अभिसमय के फलस्वरूप निरथक बन गयी है। स्वीडन, डेनमाक, नार्वे एव ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलीय देशो के राज्याध्यक्षो द्वारा निषेधाधिकार का प्रयोग नही किया जाता है। राष्ट्रमण्डलीय देशो मे गवनर जनरलो द्वारा निषेधाधिकार के प्रयोग सम्बन्धी अभिसमय इगलण्ड की परम्परा या रीतिरिवाज पर आश्रित है।

अमेरिकी राष्ट्रपति पर तीसरी बार चुने जाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। यह इसका प्रमाण है कि अभिसमय सविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति को निरथक बना देते हैं। अमेरिकी सविधान मे तीसरी बार राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन का कोई प्रति-

---

83 They 'provide the flesh which clothes the dry bones of the law'"—Dr Jennings *The Law and the Constitution* (1954), p 80

84 Wheare, K C *Modern Constitutions*, (1966), pp 123 133

वन्ध नही था। 1940 ई तक इस अभिसमय का पालन हुआ था। तृतीय फ्रेंच गण राज्य के सविधान मे राष्ट्रपति को सीनेट और चेम्बर ऑफ डिप्टीज के सयुक्त अधिवेशन म चुनने की व्यवस्था थी। उसका पुन निर्वाचन हो सकता था। परतु फ्रान्स म यह अभिसमय विकसित हो गया था कि राष्ट्रपति को पुन निर्वाचन के लिए उम्मीदवार नही होना चाहिए यद्यपि *1939* ई म श्री लिबरन (*Mr Lebrun*) दूसरा अवधि के लिए भी चुने गये थे। स्मरणीय है कि पचम फ्रेंच गणराज्य म राष्ट्रपति क पुन निर्वाचन पर कोई प्रतिवन्ध नही है। यह भविष्य पर निभर है कि इस सम्बन्ध म वहाँ किस अभिसमय का विकास होता है।

अभिसमयो का एक और प्रभाव भी होता है। अभिसमय के कारण सविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग उन व्यक्तियो द्वारा नही किया जाता जिन्हे वह शक्ति प्रदान की जाती है। उसे अन्य व्यक्ति या व्यक्तिया द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, इगलैण्ड के राजा को विधिक रूप मे सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु वह उनका प्रयोग प्रधानमन्त्री एव मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही करता है। भारत के सविधान म राष्ट्रपति कायपालिका का अध्यक्ष है परतु वह अपनी इस शक्ति का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामश से ही करता है। कनाडा के सविधान म गवनर जनरल को परामश देने के लिए एक परिपद है जिसके सदस्य उसके ही द्वारा नियुक्त किय जाते हैं एव उसे उनको अपदस्थ करन का भी अधिकार होता है। लेकिन व्यवहार म यह अभिसमय वहाँ विकसित हुआ है कि गवनर जनरल प्रधानमन्त्री क परामश से प्रीवी कौसिल को नियुक्त करता है। इसी अभिसमय का विकास थोडे बहुत परिवतन से आस्ट्रेलिया, न्यूजीलण्ड, दक्षिण अफ्रीका स्वीडन, नार्वे हॉलण्ड एव वेलजियम म भी हुआ है। अधिकाश ससदीय कायपालिका प्रधान देशा म इस अभिसमय क फलस्वरूप राज्याध्यक्ष की विधिक शक्ति शासन का सचालन करन वाले अन्य व्यक्तियो को हस्तान्तरित हो गयी है। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के सन्दम म यह अभिसमय विकसित हुआ है कि उस बहुमत दल का नता होना चाहिए। प्रधान मन्त्री क परामश पर विधानमण्डल को राज्याध्यक्ष द्वारा विघटित किया जाता है यद्यपि यह उसका विधिक विशेपाधिकार है। यही नही कायपालिका शक्ति के प्रयोग युद्ध की घोषणा, नियुक्तिया वदशिक सम्बन्धा क सचालन म सविधान द्वारा राज्याध्यक्षा को प्रदत्त विधिक शक्तिया का प्रयोग अभिसमय क अनुसार अन्य व्यक्ति (प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिमण्डल) द्वारा किया जाता है और व ही इन कार्यों क लिए विधानमण्डल क प्रति उत्तरदायी हात हं। स्पष्ट है कि अभिसमया के फलस्वरूप विधिक शक्ति अन्य हाथा म हस्तान्तरित हा जाती है। इन शक्तिया क प्रयोग की पद्धति प्रत्यक सविधान म पृथक्-पृथक् हाती है। प्रत्यक देश म विधिक शक्तिया क हस्तान्तरण म परम्परा एव अभिसमय भिन्न-भिन्न मात्रा म क्रियाशील हात हैं। इसी प्रकार का एक उदाहरण अमरिकी सविधान म भी उपलब्ध है। अमरिकी राष्ट्रपति का निर्वाचन करन की विधिक शक्ति राज्य विधानमण्डला द्वारा निधारित रीति के अनुसार निर्वा

निर्वाचक-मण्डल के सदस्यो मे निहित होती है। परन्तु अभिसमय के फलस्वरूप निर्वाचक मण्डल के सदस्यो की अब अपनी कोई इच्छा नही होती। वे अपने दल के राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी को मत देने के लिए बाध्य होते है। इस स्थिति के लिए अनेक विधिक व्यवस्थाएँ भी उत्तरदायी है परन्तु इसमे अभिसमयो का महत्वपूर्ण भाग है। एक अन्य उदाहरण राष्ट्रपति द्वारा नियुक्तिया करने की शक्ति से सम्बन्धित है। सीनेटरो के सौजन्य के विकास के फलस्वरूप नियुक्तियो के सन्दर्भ म व्यावहारिक रूप मे सीनेटरो के द्वारा राष्ट्रपति को परामर्श दिया जाता है जिसकी उपेक्षा करना राष्ट्रपति के लिए कठिन होता है।

(2) परम्पराएँ एव अभिसमय सविधान को एक दूसरे तरीके से भी परिवर्तित करते है। अभिसमयो के द्वारा विधि के अभाव को पूरा किया जाता है। विधि के अनुसार अधिकार या शक्ति किसी व्यक्ति या सस्था को प्रदान की जाती है। वही सस्था उनका प्रयोग भी करती है। अभिसमय उस शक्ति को न तो समाप्त करते है और न हस्तान्तरित ही करत है वरन् वे उसके उचित प्रयोग की रीति निर्धारित कर देत है। उदाहरणत, विधानमण्डलो को सविधान द्वारा विधि बनाने की शक्ति प्रदान की जाती है। विधानमण्टल के द्वारा इस सम्बन्ध मे जो स्थायी आदेश (Standing Orders) बनाये जाते है वे सविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अभाव को केवल पूर्ण करते है। फ्रान्स के चतुर्थ गणराज्य की ससद मे समिति व्यवस्था का विकास स्थायी आदेशो सम्बन्धी अभिसमय का परिणाम है। स्मरणीय है कि फ्रान्सीसी शासन व्यवस्था म इस समिति व्यवस्था का विशेष महत्व था क्योकि फ्रान्सीसी मन्त्रिमण्डल की कमजोरी के लिए इस व्यवस्था को काफी हद तक उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। कुछ देशो मे मन्त्रिमण्डलो के निर्माण पर भी परम्पराओ एव अभिसमयो का प्रभाव पडा है। अमेरिकी राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की नियुक्ति सम्बन्धी अनियन्त्रित शक्ति प्राप्त है। परन्तु व्यवहार मे वह नियुक्तिया करते समय प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक हित को प्रतिनिधित्व देने का प्रयत्न करता है। ह्वीयरे का मत है कि "इस प्रकार इस अभिसमय के द्वारा वह मन्त्रिमण्डल के निर्माण मे सघीय तत्व को मान्यता दता है।"[85] यह अभिसमय आस्ट्रेलिया, कनाडा एव भारत म अधिक मान्य है। आस्ट्रेलिया मे मन्त्रिमण्डल मे प्रत्येक राज्य को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। कनाडा के मन्त्रिमण्डल मे फ्रेंच एव अग्रेजी भाषाभाषी मन्त्रियो के अतिरिक्त क्यूबेक प्रान्त का प्रतिनिधि होना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, मन्त्रिमण्डल म दूसरे प्रान्तो का एक एक प्रतिनिधि होता है। क्यूबेक एव ओन्टरियो प्रान्तो का करीब करीब समान प्रतिनिधित्व होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अभिसमय सविधान की कमी को पूर्ण करत हैं। कनाडा के स्पीकर की शक्तियो की कमी को अभिसमयो द्वारा ही पूरा किया गया है।

ह्वीयरे के अनुसार परम्पराओ एव अभिसमयो का हम सविधान से पृथक नही समझ सकते हैं। उनका एक दूसरे पर प्रभाव पडता है। एक के अभाव म दूसरे का

85 Wheare, K C *Modern Constitutions*, p 131

प्रभाव नही होता है । दोना के मध्य केवल पतली रेखा खीचना ही सम्भव है और कभी कभी किसी विशिष्ट मामले के सम्बन्ध म यह निणय करना कठिन हो जाता है कि उसे सविधान के क्षेत्र म रखा जाये अथवा परम्पराओ या अभिसमयो द्वारा उसकी व्यवस्था की जाय । स्मरणीय है कि जिन बातो की व्यवस्था एक देश म अभिसमयो द्वारा की जाती है उन्ही के सम्बन्ध म दूसरे देश म विधियो की व्यवस्था की गयी है। कभी कभी अभिसमयो को विधिक मान्यता देकर सविधान म सशोधन करके उसका अग बना दिया जाता है । न्यायालयो द्वारा मान्यता दिय जान पर भी अभिसमय विधि बन जाते हैं । किसी परम्परा या रीति रिवाज को विशेष कारणा से विधि के रूप म मान्यता देना विशुद्ध रूप से न्यायालयो का अधिकार है । जब किसी अभिसमय को इस प्रकार की मान्यता प्राप्त हो जाती है तो वह अभिसमय नही रहता । ह्वीयरे के अनुसार इस प्रकार की मान्यताएँ प्राय कम ही प्राप्त होती हैं एव खतरो से युक्त होती हैं। इस सम्बन्ध म दो प्रश्न विवादास्पद हैं (i) किसी परम्परा या अभिसमय को मान्यता किन आधारो पर देनी चाहिए ?, (ii) अभिसमय के रूप या प्राचीनता एव शक्ति की प्रामाणिकता के बारे मे (न्यायालय को) किन साक्ष्यो को स्वीकार करना चाहिए ?[86]

अन्त म, ह्वीयरे के शब्दो म अभिसमयो के सन्दभ म एक प्रश्न यह है कि सवैधानिक देशो म परम्पराओ एव अभिसमयो के क्रियान्वयन से सम्बन्धित क्या कोई सामान्य प्रवृति दृष्टिगोचर होती है ? इस प्रश्न का उत्तर सरल नही है । एक विशेषता प्राय सभी देशो मे अभिसमय के क्रियान्वयन के सम्बन्ध मे परिलक्षित होती है । डायसी ने इसका ब्रिटिश शासन सम्बन्धी अभिसमयो का उल्लेख करते हुए निम्न शब्दो मे उल्लेख किया था । 'अभिसमयो का उद्देश्य निर्वाचक गणो की जो राज्य के वास्तविक राजनतिक सप्रभु है, अन्तिम सप्रभुता स्थापित करना है ।''[87] यह कथन अन्य देशो म अभिसमयो के सन्दभ म सही है । राज्याध्यक्षा के विशेषाधिकार की समाप्ति या सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के निर्वाचन म निर्वाचक मण्डल के सदस्यो को राष्ट्रपति को निर्वाचित करने मे किसी अधिकार का न होने का अथ केवल जन-इच्छा के माग म आने वाली बाधाओ को हटाना मात्र है । इसी सत्य को दूसरे उदाहरण से भी प्रमाणित कर सकते ह । कुछ यूरोपीय देशो मे निषेधाधिकार का प्रयोग समाप्त कर दिया गया है । परन्तु अमेरिकी राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है। क्या ? इसका उत्तर यह है कि अमेरिकी राष्ट्रपति व्यवहार म प्रत्यक्ष रीति से ही जनता द्वारा कांग्रेस की तरह चुना जाता है । कांग्रेस की भाति राष्ट्रपति भी जन इच्छा को अभिव्यक्त करने का दावा कर सकता है । अमरिकी राष्ट्रपति यदि सविधान की धाराओ के अनुसार अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होता रहता तो एसी स्थिति म उस प्राप्त निषेधाधिकार शक्ति को यदि समाप्त नही किया जाता तो उसे सीमित अवश्य कर दिया गया होता। राष्ट्रपति द्वारा निषेधाधिकार के अधिक प्रयोग के कई कारण हो सकते हैं परन्तु

86 Wheare, K C *op cit*, p 135
87 Dicey *Law of the Constitution*, (1959), p clii and p 429

प्रत्यक्ष रीति से राष्ट्रपति का निर्वाचन भी इस सन्दर्भ मे एक महत्वपूर्ण कारण है। *यही नही, अभिसमयो का क्षेत्र भी व्यापक होता है। वे अल्पसख्यको के अधिकारो की* रक्षा करते है, स्विटजरलैण्ड एव कनाडा मे दोनो सदनो के मध्य सम्बन्धो को नियमित करते है, विधानमण्डल के आन्तरिक सगठन को व्यवस्थित करते है एव कार्यपालिका की स्थिति तथा कार्यपालिका एव व्यवस्थापिका के सम्बन्धो को भी पर्याप्त प्रभावित करते हैं। वे शासन की विधिक सस्थाओ को दलीय शक्ति से सम्बन्धित करके शासन के स्वरूप को परिवर्तित करते हैं। इससे शासन शक्ति का सन्तुलन ही बदल जाता है। अभिसमयों के कारण ऐसे समय मे लचीलापन एव परिवर्तन *सम्भव होता है जबकि शासनतन्त्र मे औपचारिक सशोधन असामयिक, अनुपयुक्त एव* घातक प्रमाणित हो सकता है, और विधि म ऐसे परिवर्तन अभिसमय के कारण सम्भव होते हैं जिनकी कल्पना भी नही की जाती। लेकिन अभिसमयो की भी अपनी सीमाएँ हैं। वे सभी बातो को पूर्ण नही कर सकते। वे कुछ समय के लिए ही कठिनाइयो को टाल या कम कर सकते हैं परन्तु कठिनाइयो को पूरी तरह से समाप्त नही कर सकते। यह तो केवल औपचारिक सवैधानिक सशोधन या न्यायिक निर्णयो द्वारा ही सम्भव है।[88]

88 Wheare K C *op cit*, p 136

4

सविधानवाद

[CONSTITUTIONALISM]

सविधानवाद आधुनिक युग की एक महान् उपलब्धि है। राष्ट्रीय एव अन्तर राष्ट्रीय स्तर पर मानवता के समक्ष अनक समस्याएँ मुह बाय खडी हैं। यदि इनका उचित समाधान नही हुआ तो विनाश का भय है। सविधानवाद इनम से कुछ को यदि सुलझाने म सफल रहा है तो अनक के सन्दभ म असफल भी रहा है। सविधान वाद समथक एव विरोधी दाना ही सवधानिक परिवतना से सन्तुष्ट नही हैं और सविधानवाद को उन्हाने खोखला एव दिवालिया घोषित किया है। अनक बार निरकुश तन्त्र की स्थापना का प्रयत्न किया गया है और उनके यह प्रयत्न असफल रहे हैं। इन असफलताओ से सविधानवाद के महत्व की पुष्टि होती है। आज विज्ञान एव कला ही नही, मानवीय मूल्या के विनाश का भी खतरा है। अत सविधानवाद का अध्ययन केवल अपक्षित ही नही अपितु अनिवाय है।

सविधानवाद सवधानिक शासन एव सवधानिक राज्य का पर्यायवाची है अमेरिकी विचारक सी जे फ्रेडरिक के अनुसार "शक्तियो का विभाजन सभ्य सरकार का आधार है। यही सविधानवाद है। सविधानवाद राजतन्त्रीय एव लोकतन्त्रीय दोनो ही हो सकते हैं।"[1] अमरिका मे गणतन्त्रीय लोकतन्त्र है तो इगलण्ड मे राजतन्त्रीय लोकतन्त्र या सवधानिक लोकतन्त्र। निरकुशतन्त्र का विलोम ही सविधानवाद है। सविधानवाद निरकुशतन्त्र के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम है। इगलैंड म सविधान वाद विधि के शासन (Rule of Law) का पर्यायवाची है। शासन के अधिकारियो द्वारा शक्ति का मनमाने ढग से प्रयाग न करना और सत्ता का एक केन्द्र मे केन्द्रित न होना सविधानवाद के प्रमुख सिद्धान्त है। निरकुश, अनुत्तरदायी तथा केन्द्रीकृत सत्ता की मध्ययुगीन व्यवस्था एव प्रयोग की पद्धति का सविधानवाद घोर विरोधी है। लोकतन्त्र जनता की सहमति पर आधारित शासन है। प्रश्न यह है कि जनता की सहमति किस प्रकार प्राप्त की जाय तथा किस प्रकार और किन सस्थाओ के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति हो। जनशक्ति का लोक हित म जन सहमति से निर्मित विधि

1 Division of power is the basis of civilized government It is what is meant by Constitutionalism Constitutionalism can be monarchial or it can be democratic and it has been both"— Frederick C J *Constitutional Government and Democracy* (Revised edn 1964), p 5

अनुसार प्रयोग एव अभिव्यक्ति ही सविधानवाद है। सविधान द्वारा शासन की सीमा एव उसकी शक्ति को नियमित एव निर्धारित किया जाता है। उसकी निरकुशता पर अवरोध (hindrances) की व्यवस्था की जाती है। अत शासन की शक्ति के निरकुश प्रयोग पर प्रतिब ध लगाने वाले नियमा एव सस्थाआ को सामूहिक रूप से सविधानवाद की सज्ञा दे सकते है। सविधानवाद शान्तिपूण परिवतन मे विश्वास करता है यद्यपि परिवतन की यह रीति कुछ पेचीदा अवश्य होती है। स्मरणीय है कि निरकुशत त्र का दीघकाल से विरोध होता रहा है परन्तु सविधानवाद आधुनिक युग की ही उपलब्धि है। सविधानवाद के विकास की सक्षिप्त रूपरेखा निम्नवत है

प्राचीन सविधानवाद

प्रसिद्ध यूनानी विद्वान अरस्तू न सवप्रथम सवधानिक शासन की परिभाषा दी थी। उसके अनुसार सविधानवाद के मुरय तत्व है—सावजनिक हित, सामान्य कानूनो का शासन एव सहमति का आधार। अरस्तू ने प्लेटो से मिश्रित शासन के विचार को ग्रहण किया था। प्लेटो कृत 'लॉज' म मिश्रित शासन की धारणा पायी जाती है। अरस्तू इससे प्रभावित हुआ था और यही धारणा ग्रीक इतिहासकार पोलिबियस म व्यापक रूप से मुखरित हुई थी। पोलिबियस ने मिश्रित शासन की धारणा को एक नया रूप प्रदान किया था। स्मरणीय है कि रोमनो द्वारा ब दी बनाये जाने पर पोलिबियस ने रोम म अनेक वप व्यतीत किये थे। उसने रोमन साम्राज्य की सुदृढता एव स्थायित्व के लिए मिश्रित सविधान को ही उत्तरदायी ठहराया था। रोमन गणराज्य मे पोलिबियस के अनुसार काउ सल, सीनेट और लोकप्रिय सभा क्रमश राजत त्रीय, अभिजात्य-तन्त्रीय एव लोकत त्रीय व्यवस्था के प्रतीक थे। सिसेरो ने भी मिश्रित शासन की धारणा को स्वीकार किया है।

रोमन विधि का सविधानवाद के विकास मे योग

रामन विचारका की सबसे महत्वपूण दन रोमन विधि एव प्रशासन के सिद्धान्त हैं। रोमन विधि ने ही साम्राज्य मे एकता एव केन्द्रीकरण को अधिकाधिक सम्भव बनाया था। इसका मुरय कारण यह था कि सम्पूण मध्य युग एव आधुनिक युग के प्रारम्भ तक राजाओ द्वारा नियुक्त न्यायाधीशो ने रोमन विधि को ही क्रियान्वित किया था। प्रश्न यह है कि इस काल मे रामन विधि का पालन क्यो किया जाता रहा ? इसका मुख्य कारण यह था कि दीघकालीन परम्पराओ एव रीति रिवाजो के रूप मे स्थानीय विधिया का अधिकाधिक प्रचलन था। इनसे उत्पन्न गतिरोधो को दूर करने म रोमन विधि सहज रूप मे सहायक हुई थी। कालान्तर मे रोमन विधिया की सवथा भिन्न व्याख्याएँ होती रही है जिसस उसके मूल मन्तव्या मे गम्भीर अन्तर पड गये। लेकिन रोमन विधि मे अनेक ऐसे सिद्धान्त थे जो नवोदित व्यावसायिक समाज के अधिक उपयुक्त एव अनुकूल थे। स्मरणीय है कि रोमन विधि विकसित व्यावसायिक समाज को विधि-सहिता थी। स्थानीय विधिया अपक्षाकृत कृषि प्रधान एव कम सुसस्कृत समाज की विधिया थी।

4

सविधानवाद

[CONSTITUTIONALISM]

सविधानवाद आधुनिक युग की एक महान् उपलब्धि है। राष्ट्रीय एव अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मानवता क समक्ष अनेक समस्याएँ मुह बाये खडी हैं। यदि इनका उचित समाधान नही हुआ तो विनाश का भय है। सविधानवाद इनमे से कुछ को यदि सुलझाने म सफल रहा है तो अनेक के सन्दभ म असफल भी रहा है। सविधानवाद समथक एव विरोधी दोनो ही सवैधानिक परिवतना से सन्तुष्ट नही हैं और सविधानवाद को उन्होने खोखला एव दिवालिया घोषित किया है। अनेक बार निरकुश तन्त्र की स्थापना का प्रयत्न किया गया है और उनके यह प्रयत्न असफल रह हैं। इन असफलताओ से सविधानवाद के महत्व की पुष्टि होती है। आज विज्ञान एव कला ही नही, मानवीय मूल्यो के विनाश का भी खतरा है। अत सविधानवाद का अध्ययन केवल अपक्षित ही नही अपितु अनिवाय है।

सविधानवाद सवधानिक शासन एव सवधानिक राज्य का पर्यायवाची है। अमेरिकी विचारक सी जे फ्रेडरिक के अनुसार "शक्तियो का विभाजन सभ्य सरकार का आधार है। यही सविधानवाद है। सविधानवाद राजतन्त्रीय एव लोकतन्त्रीय दोनो ही हो सकते हैं।'[1] अमेरिका म गणतन्त्रीय लोकतन्त्र है तो इगलण्ड म राजतन्त्रीय लोकतन्त्र या सवधानिक लोकतन्त्र। निरकुशतन्त्र का विलोम ही सविधानवाद है। सविधानवाद निरकुशतन्त्र के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम है। इगलैण्ड मे सविधानवाद विधि के शासन (Rule of Law) का पर्यायवाची है। शासन के अधिकारियो द्वारा शक्ति का मनमाने ढग से प्रयोग न करना और सत्ता का एक केन्द्र म केन्द्रित न होना सविधानवाद के प्रमुख सिद्धान्त हैं। निरकुश, अनुत्तरदायी तथा केन्द्रीकृत सत्ता की मध्ययुगीन व्यवस्था एव प्रयोग की पद्धति का सविधानवाद घोर विरोधी है। लोकतन्त्र जनता की सहमति पर आधारित शासन है। प्रश्न यह है कि जनता की सहमति किस प्रकार प्राप्त की जाय तथा किस प्रकार और किन सस्थाओ के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति हो। जनशक्ति का लोक हित म जन-सहमति से निर्मित विधि के

---

1 ' Division of power is the basis of civilized government It is what is meant by Constitutionalism Constitutionalism can be monarchial or it can be democratic and it has been both "— Frederick C J *Constitutional Government and Democracy* (Revised edn, 1964) p 5

अनुसार प्रयोग एव अभिव्यक्ति ही सविधानवाद है। सविधान द्वारा शासन की सीमा एव उसकी शक्ति को नियमित एव निर्धारित किया जाता है। उसकी निरकुशता पर अवरोध (hindrances) की व्यवस्था की जाती है। अत शासन की शक्ति के निरकुश प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने वाले नियमो एव सस्थाओ को सामूहिक रूप से सविधानवाद की सज्ञा दे सकते हैं। सविधानवाद शान्तिपूर्ण परिवतन मे विश्वास करता है यद्यपि परिवतन की यह रीति कुछ पेचीदा अवश्य होती है। स्मरणीय है कि निरकुशतन्त्र का दीघकाल से विरोध होता रहा है परन्तु सविधानवाद आधुनिक युग की ही उपलब्धि है। सविधानवाद के विकास की सक्षिप्त रूपरेखा निम्नवत है

प्राचीन सविधानवाद

प्रसिद्ध यूनानी विद्वान अरस्तू ने सवप्रथम सवैधानिक शासन की परिभाषा दी थी। उसके अनुसार सविधानवाद के मुख्य तत्व है—सावजनिक हित, सामान्य कानूनो का शासन एव सहमति का आधार। अरस्तू न प्लेटो से मिश्रित शासन के विचार को ग्रहण किया था। प्लेटो कृत 'लॉज' म मिश्रित शासन की धारणा पायी जाती है। अरस्तू इससे प्रभावित हुआ था और यही धारणा ग्रीक इतिहासकार पोलिबियस मे व्यापक रूप से मुखरित हुई थी। पोलिबियस न मिश्रित शासन की धारणा को एक नया रूप प्रदान किया था। स्मरणीय है कि रोमनो द्वारा बन्दी बनाये जाने पर पोलिबियस ने रोम मे अनेक वष व्यतीत किये थे। उसने रोमन साम्राज्य की सुदृढता एव स्थायित्व के लिए मिश्रित सविधान को ही उत्तरदायी ठहराया था। रोमन गणराज्य मे पालिबियस के अनुसार काउन्सल, सीनेट और लोकप्रिय सभा क्रमश राजतन्त्रीय, अभिजातन्त्रीय एव लोकतन्त्रीय व्यवस्था के प्रतीक थे। सिसेरो ने भी मिश्रित शासन की धारणा को स्वीकार किया है।

रोमन विधि का सविधानवाद के विकास मे योग

रोमन विचारको की सबसे महत्वपूर्ण देन रोमन विधि एव प्रशासन के सिद्धान्त है। रोमन विधि ने ही साम्राज्य म एकता एव केन्द्रीकरण को अधिकाधिक सम्भव बनाया था। इसका मुख्य कारण यह था कि सम्पूण मध्य युग एव आधुनिक युग के प्रारम्भ तक राजाओ द्वारा नियुक्त न्यायाधीशो न रोमन विधि को ही क्रियान्वित किया था। प्रश्न यह है कि इस काल म रोमन विधि का पालन क्यो किया जाता रहा? इसका मुख्य कारण यह था कि दीघकालीन परम्पराओ एव रीति रिवाजो के रूप म स्थानीय विधियो का अधिकाधिक प्रचलन था। इनसे उत्पन्न गतिरोधो को दूर करने म रोमन विधि सहज रूप म सहायक हुई थी। कालान्तर म रोमन विधियो की सवथा भिन्न व्याख्याएँ होती रही है जिससे उसके मूल मन्तव्यो म गम्भीर अन्तर पड गये। लेकिन रोमन विधि मे अनेक ऐसे सिद्धान्त थे जो नवोदित व्यावसायिक समाज के अधिक उपयुक्त एव अनुकूल थे। स्मरणीय है कि रोमन विधि विकसित व्यावसायिक समाज की विधि-सहिता थी। स्थानीय विधियाँ अपेक्षाकृत कृषि प्रधान एव कम सुसस्कृत समाज की विधियाँ थी।

रोमन काल मे शासन सस्थाओ का विकाम तीन अवस्थाआ म हुआ है। रोम का उदय राजत न्त्रीय नगर-राज्य के रूप मे हुआ था। इस समय शासन के मुख्य अग थे—निर्वाचित राजा, सीनेट (परामशदात्री समिति) और जनसभा या असेम्बली। 510 ई पू म रोम मे गणत त्र का उदय हुआ। गणतन्त्र के अ तगत राजा की सभी शक्तिया काउ सल नामक दो अधिकारियो मे अधिष्ठित हो गयी जो प्रति वप निर्वाचित किये जाते थे। काला तर मे अ य कुलीनवर्गीय अधिकारी (Patricians) भी शासन सत्ता के प्रयोग से सम्बन्धित हो गये थे। जनसभा (Concilium Plebis) के निणय इन सदस्यो पर ब धनकारी होते थे। यही जनसभा—असेम्बली—काला तर म रोमन सविधान की एक नियमित विशेषता बन गयी थी। पोलिबियस जिस काल मे रोम म ब दी जीवन व्यतीत कर रहा था, उस समय यथाथ मे रोमन गणराज्य म सीनेट का शासन था यद्यपि उसने रोम गणराज्य के स्थायित्व का कारण मिश्रित सविधान को माना है। स्मरणीय है कि रोम म यह विचार मा य था कि सिद्धा तत सभी शक्तिया अ तत जनता से प्राप्त हुई है। सकटकाल म अस्थायी अधिनायकत्व की स्थापना का विधान था और अ तिम सदी ई पू म इटली मे व्याप्त गृहयुद्ध काल मे अनेक अवसरो पर विजयी सेनापतियो के निरकुश कार्यों को इसी व्यवस्था के आधीन सवधानिक ठहराया गया था। 48 ई पू मे जुलियस सीजर के द्वारा पोम्प (Pompey) का दमन करने पर सीनेट ने अपनी निष्क्रियता को स्वय अनुभव करते हुए जुलियस सीजर को जीवन भर के लिए अधिनायक बना दिया था। इस प्रकार रोमन साम्राज्य का उदय हुआ था।

स्ट्राग के अनुसार रोमन सविधान न प्राचीन काल मे वही भूमिका निभाई थी जो ब्रिटिश सविधान ने आधुनिक युग मे निभायी है।[2] **जेम्स ब्राइस** के अनुसार रोमन साम्राज्य का सगठन उन सभी सस्थाओ पर आधारित था जिनका विकास लघु गणराज्य काल मे हुआ था। रोमन सविधान की कुछ मौलिक विशेषताएँ निम्नवत है

1 रोमन सविधान ब्रिटिश सविधान की भाति परम्पराओ, स्मृतियो, रीति रिवाजो, अभिसमयो, विश्वासो एव वकीलो तथा राजनीतिज्ञो के लेखो मे उपलब्ध था। इनका स्पष्ट शब्दो म कोई उल्लेख नही था।

2 रोमन गणराज्य मे शासन के तीन तत्व विद्यमान थ (1) दो काउ सलो के द्वारा राजत न्त्रीय तत्व (2) सीनेट के माध्यम से कुलीनत न्त्रीय तत्व, एव (3) जन सभा के रूप म लोकत न्त्रीय तत्व की अभिव्यक्ति होती थी। शासन के इन तीन अगो—काउ सल, सीनेट एव असेम्बली—को एक दूसरे की शक्तियो पर अवरोधक माना जाता था। शक्तियो का यह त्रिवर्गीय विभाजन रोमन साम्राज्य के पतन तक कायम रहा।

3 रोमन राज्य का काल करीब 2200 वप (753 ई पू स 1453 ई)

2 The importance of Rome in the history of Constitutionalism lies in the fact that its constitution played in the ancient world a part comparable to that played by the British Constitution in the modern world '— Strong *op cit*, p 18

है। इस काल म रोमन सविधान म अनक परिवतन हुए थे। रोम प्रारम्भ म नगर-राज्य, फिर गणराज्य एव अत म साम्राज्य बना था। रोम के विस्तार के साथ उसका गणराज्यीय सविधान उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर सका। रोम मे यूनानी नगर-राज्यो की भाँति प्रत्यक्ष लोकतन्त्र था और प्रतिनिधित्व की धारणा का वहाँ सवथा अभाव था।

4 रोमन साम्राजीय शक्ति का सिद्धात सम्राट जस्टीनियन के द्वारा सगृहीत सहिताओ (Institutes एव Digest) पर आधारित था। इस सहिता के अनुसार सर्वोच्च विधि निर्माण शक्ति जनता मे अधिष्ठित थी। राजा को जनता द्वारा अधिकार प्रदान किय गये थे। लेकिन जनता द्वारा हर राजा को विधिवत् अधिकार प्रदान नही किये जाते थे अपितु यह माना जाता था कि हर नय राजा को पद ग्रहण करने पर अधिकार जनता द्वारा ही प्रदत्त किय जात है। जनता की शक्ति को इतिहास म विधिवत कभी भी समाप्त घोषित नही किया गया अपितु दीघकाल तक प्रयोग न किय जाने के कारण यह शक्ति निष्प्रभावी हो गयी थी। सभी सम्राट इस धारणा के कारण केवल दण्डाधिकारी थे। कालातर मे सम्राट म ही सभी शक्तिया सगठित हो गयी थी। सीनेट (गणत त्रीय तत्व की अभिव्यक्ति करने वाला अग) साम्राज्य के अतिम काल मे कमजोर हो गयी थी और सम्राट की इच्छा को स्वीकृत करने वाली सस्था मात्र रह गयी थी।

स्ट्राग के अनुसार रोमन सविधानवाद के स्थायी प्रभाव निम्नवत है [3]

1 रोमन विधि का महाद्वीपीय यूरोप के विधिक इतिहास पर गम्भीर एव व्यापक प्रभाव पडा है। रोमन साम्राज्य के अत के बाद पश्चिम के ट्यूटोनिक आक्रमणकारियो की प्रथाएँ एव विधिया रोमन सहिता के साथ एकाकार हो गयी थी। फलस्वरूप यूरोपीय महाद्वीप म विधिक पद्धतियो का विकास हुआ।

2 व्यवस्था एव एकता की सुदृढ भावना के प्रति रोमनो मे विशेष अनुराग था। फलस्वरूप मध्य युग की विघटनकारी स्थिति म भी राजनीतिक एकता की भावना दृढ बनी रही। रोमनो की इस व्यवस्था एव एकता की भावना मे युद्ध को रोकने हेतु अतर्राष्ट्रीय सत्ता की स्थापना सम्बधी आधुनिक उदारवादियो के स्वप्न निहित है।

3 सम्राट की विधिक सप्रभुता सम्ब धी दुहरी सकल्पना कई शताब्दियो तक जारी रही जो शासक तथा शासितो के मध्य दो मध्ययुगीन धारणाओ के लिए उत्तरदायी है। प्रथम, सम्राट की इच्छाएँ ही विधिया थी। द्वितीय सम्राट की शक्तिया जनता मे निहित हैं और अतत जनता से ही वे सम्राट को प्राप्त है। मध्य युग के प्रारम्भ मे पहली धारणा जनता द्वारा राजाज्ञा के पूणरूपेण पालन का आधार बनी एव मध्य युग के अत मे इस द्वितीय धारणा ने इस सिद्धात का जन्म दिया कि जनता को सम्राट की शक्तिया प्राप्त करने का अधिकार है, क्योकि वह उसी के द्वारा प्रदत्त है। आधुनिक काल मे यही धारणा लोकत त्र का दाशनिक आधार है।

3 Strong, C F *Modern Political Constitutions*, p 21

मध्य युग मे सविधानवाद

मध्य युग का प्रारम्भ 410 ई म रोम म रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात आरम्भ होता है। रोमन साम्राज्य इसके बाद पूर्वी यूरोपीय प्रदेशो मे बना रहा और पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुतुनिया थी। इसे बाईजेन्टाईन साम्राज्य की सज्ञा भी दी जाती है। पश्चिम की बबर जातियो न रोम साम्राज्य पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। विसीगोथो (Visigoths) ने रोम को 410 ई म ध्वस्त कर दिया था, फलस्वरूप पश्चिम मे रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया। पूर्वी रोमन साम्राज्य का 1453 ई म तुर्क आक्रमणकारियो द्वारा अन्त कर दिया गया। यह एक हजार वष का काल मध्य युग कहलाता है। बबर जातियो के आक्रमण के कारण रोमन राज्य की एकता एव रोमन विधि की सावभौमिकता खण्डित हो गयी। परन्तु विश्व राज्य की विधिक धारणा यथावत बनी रही और इसी पर पवित्र रोमन साम्राज्य का विकास हुआ।

पवित्र रोमन साम्राज्य की स्थापना 800 ई मे चार्लिमेन ने की थी। यह रोमन साम्राज्य से सवथा भिन्न सगठन था। इसम रोमन सविधान का पूण अभाव था। 9वी एव 10वी सदी के आक्रमणो तथा चार्लिमेन की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारियो के मध्य साम्राज्य के विभाजित हो जाने के कारण यह साम्राज्य विघटित हो गया और पुन उस गौरव को वह कभी प्राप्त न कर सका जो चार्लिमेन के समय मे उसे प्राप्त था।

सामन्तवाद मध्य युग की अनिवाय विशेषता थी। स्ट्राग ने सामन्तवाद को प्रारम्भिक मध्य युग की अराजक स्थिति एव आधुनिक राज्य की व्यवस्था के मध्य सेतु की सज्ञा दी है। सामन्तवाद के अन्तगत सभी भूमि इकाइयो म विभाजित थी। राजा और प्रजा क मध्य मे सामन्त वग था। सामन्तो को अपनी जागीर मे निवास करने वाली प्रजा पर पूण अधिकार थे। सामन्त एव प्रजाजनो के सम्बन्ध स्वामी व दास के सम्बन्ध थे। इन सम्बन्धो की प्रकृति अनुबन्धात्मक थी। इससे सामन्तो को प्रजाजनो पर असाधारण शक्ति प्राप्त हो गयी थी। सामन्तवादी समाज केन्द्रीकृत समाज की अपेक्षा विकेन्द्रित समाज था। स्ट्राग ने सामन्तवाद को मध्ययुगीन सविधानवाद की सज्ञा दी है क्योकि यह एक सीमा तक व्यवस्थित तथा सामान्यत स्वीकृत सामाजिक एव राजनतिक सगठन था।[4] रोमन परम्परा ने राजा को निरकुश सत्ता प्रदान की थी लेकिन मध्य युग म राजा क अधिकार एव शक्तिया सीमित थी। सामन्तवाद इसका एक प्रमुख कारण था किन्तु अन्य कारण निम्नवत थे

(1) शक्तिशाली चच का विकास। चच एव राजसत्ता के मध्य सघष मध्य युग

4 "Feudalism seems to have been an inevitable growth to bridge the gulf between the chaos of early medieval times and the order of the modern state He further says that Feudalism "was a kind of medieval constitutionalism since it was to some extent systematised into a generally accepted form of social and political organisation "
—Strong, C F *op cit* p 24

की महत्वपूर्ण घटना है। दृढ धार्मिक विश्वासो ने चर्च की सत्ता की वृद्धि म योग दिया था और चर्च ने लौकिक एव पारलौकिक दोनो ही क्षेत्रो म सत्ता का दावा किया था।

(2) अनक स्वत त्र राज्यो और स्वतन्त्र गणराज्या का मध्य युग म विकास हुआ था।

उपयक्त कारणा के परिणामस्वरूप मध्य युग म राजनतिक एकीकरण की प्रवृत्ति मुखरित न हो सकी और न ही उसका जन्म हो सका। परन्तु मध्ययुगीन विचारो म आधुनिक सविधानवाद के निम्नलिखित बीज अवश्य अकुरित हुए थे

(1) **सवव्यापी विधि की धारणा।**

(2) **लोकप्रिय प्रभुत्व का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या मध्य-युग म नहीं हुई थी परन्तु इसे इस युग म महत्व अवश्य प्राप्त हुआ था। रोमन विधि म लोकप्रिय सप्रभुता की धारणा स्पष्ट रूप म समाविष्ट थी। मध्य युग मे एकिक निकाय (Corporate body) की धारणा और उसके स्पष्ट अधिकार एव कर्तव्य की धारणा का पूणतया विकास हुआ। पेडुआ निवासी मार्सीलियो न घोषणा की थी कि "जनता की आवाज ही ईश्वर की आवाज है।"

(3) **प्रतिनिधि शासन की धारणा** का प्रारम्भ भी मध्य युग म हुआ था। मार्सीलियो ने राजनैतिक समुदायो के अतिरिक्त मध्ययुगीन चर्च के सगठन के लिए भी प्रतिनिधि शासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का विकास सवप्रथम पश्चिमी यूरोप के देशो, विशेषकर इगलैण्ड, फ्रास और एक सीमा तक स्पेन म 11वी सदी म प्रारम्भ हुआ था जिसके परिणामस्वरूप सामन्तो की शक्ति को अन्तत नष्ट कर दिया गया था। राष्ट्रवाद एव प्रतिनिधि लोकतन्त्र की धारणा का भी सवप्रथम विकास इन्ही देशो म हुआ था। स्ट्राग राष्ट्रवाद एव प्रतिनिधि शासन को आधुनिक सविधानवाद के प्रधान लक्षण मानता है। इगलण्ड एव फ्रास म पोपशाही विरोधी धारणा का विकास हुआ था। दोनो देशो मे राष्ट्रीय चर्च की स्थापना हुई एव दोनो ही देशो म समाज की विभिन्न जागीरो (estates) के प्रतिनिधियो की सभाएँ आयोजित की गयी थी। इगलण्ड म इस प्रकार की प्रतिनिधि सभा का उदाहरण 1265 ई की प्रथम ससद (Long Parliament) थी जिसमे शाइरो (shires) के साम तगण एव नगरो के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। फ्रास म प्रथम ससद का अधिवेशन 1302 ई मे आयोजित किया गया था। 100 वर्षीय युद्ध (1337-1453) न इन दोनो देशो—इगलैण्ड एव फ्रास—म राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक विकसित किया था। स्पेन म राष्ट्रीयता के उदय के लिए विशेष परिस्थितिया उत्तरदायी थी। 8वी सदी म स्पेन के अधिकाश भाग पर मुसल-मान मूरो ने अधिकार कर लिया था। अल्पसख्यक ईसाई समाज ने इन विधर्मियो का एक होकर मुकाबला एव विरोध किया। 14वी सदी म स्पेन मे दो मुख्य राज्य—आरगान (Aragon) एव सेस्टील (Castile)—थे। इन दोनो राज्यो म गावो एव शहरो के प्रतिनिधियो की प्रतिनिधि सभाएँ थी जिन्हे कारटीस (Cortes) कहा जाता

था। इन दोनो राज्यो म ववाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के कारण 15वी सदी के अन्त मे दोनो राज्य एक हो गय। जमनी एव इटली म इन राज्यो की अपक्षा अधिक समय तक साम तवाद का बोलबाला बना रहा। चच एव साम्राज्य के अधिकारियो के मध्य होने वाले सघष ने स्थिति को और अधिक बिगाड दिया था। मध्य-युग की दो मुख्य सस्थाएँ—चच तथा पवित्र रोमन साम्राज्य—13वी सदी तक इतनी कमजोर हो चुकी थी कि उनके पुनर्जीवित होने की कोई आशा शेष नही रही थी। इस अराजक स्थिति से बचने का उपाय चच की प्राचीन सस्था—सामान्य परिषद (General Council)—के पुनरुद्धार के प्रयत्न द्वारा किया गया था और पोप को इस सामान्य परिषद के प्रति उत्तरदायी बनाया गया था। यह प्रयत्न परिषदीय आन्दोलन (Conciliar movement) कहलाता है। 1409 ई म पीसा की परिषद (Council of Pisa) एव 1414-18 ई मे कान्स्टेन्स की परिषद (Council of Constance) आयोजित की गयी थी। कान्स्टेन्स की परिषद मे पादरी एव गर पादरी दोना ही प्रतिनिधियो ने भाग लिया था और पोप पर परिषद के स्थायी नियन्त्रण का विधान किया था। यह व्यवस्था असफल रही। 1431-39 ई की बासील की परिषद (Council of Basel) के बाद से चच की परिषदीय व्यवस्था यद्यपि लुप्त हो गयी थी परन्तु चच के परिषदीय आन्दोलन का सविधानवाद की दृष्टि से विशेष महत्व है।

स्ट्राग ने इसके निम्नलिखित दो महत्वो का उल्लेख किया है[5]

(1) विभिन्न परिषदो मे स्वीकृत काय पद्धति एव सगठन से यह स्पष्ट हो गया था कि यूरोप मे होने वाले राष्ट्रीय विभाजनो को स्वीकार कर लिया गया है। कान्स्टेन्स की परिषद मे राष्ट्रो के लिए मतदान का आधार अपनाया गया था और पाच राष्ट्रीय समूहो—इटालियन, फ्रेंच जमन अग्रेज एव स्पेनिश—को मान्यता दी गयी थी।

(2) इस आन्दोलन ने इस सम्बन्ध म प्रस्तावित अनेक उपायो पर विचार किया कि चच की सामान्य परिषद मे पादरियो के अतिरिक्त समस्त ईसाई मतावलम्बियो को किस प्रकार प्रभावशाली ढग से प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाये। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप 15वी सदी म मार्सालियो, ओकम निवासी विलियम, जॉज जसन एव कूसा निवासी निकोलस के राजनतिक विचारो का उदय हुआ जिन्होने व्यापक रूप से अनेक राजनैतिक समस्याओ—जैसे सप्रभुता, राष्ट्रीयता, प्रतिनिधित्व एव राजतन्त्र—आदि प्रश्नो पर अपने मत व्यक्त किय और आधुनिक युग के भावी सवधानिक विकास की कल्पना की।

आधुनिक सविधानवाद

मध्य-युग के बाद विकास की दृष्टि से सविधानवाद की निम्न अवस्थाएँ मानी जा सकती है —(1) पुनर्जागरणकालीन राज्य, (2) इगलैण्ड म सविधानवाद, (3) अमेरिका एव फ्रेंच क्रान्तियो का सविधानवाद पर प्रभाव, और (4) राष्ट्रीय सविधानवाद।

---

5 Strong C F *op cit*, p 26

पुनर्जागरणकालीन राज्य

15वी शताब्दी पुनजागरण काल की शताब्दी है। यूनानी विचारो के पुनरुत्थान के फलस्वरूप मध्ययुगीन मा यताओ एव विश्वासो के आ ार को जडे हिलने लगी थी। प्रमाणवाद (Authoritarianism) को शका की दृष्टि से देखा जाने लगा था। बुद्धिवाद (Rationalism) का उदय हुआ था। धम सुधार आन्दोलन इसका पहला परिणाम था। यूनानी ज्ञान के पुनरुत्थान के दो सामान्य राजनतिक परिणाम हुए थे प्रथम, मध्ययुगीन सावभौमिकतावाद के विपरीत आणुविक पृथकता की प्रवृत्ति का विकास, एव द्वितीय, पृथक पृथक राज्यो का एकीकरण। राष्ट्रीय दृष्टि से इगलण्ड, फ्रास एव स्पेन अब एकीकृत राज्यो म सगठित हुए। जमनी एव इटली मे भी एकीकरण की प्रवृत्ति सक्रिय हुई थी परन्तु सीमित क्षेत्रो के फलस्वरूप इन देशो म अनेक राज्यो का उदय हुआ। स्ट्राग का मत है कि अनेक अर्थो मे पुनर्जागरण न उस अच्छे काय को समाप्त कर दिया जो कि तीन पश्चिमी राज्यो मे प्रारम्भ हुआ था। पुनर्जागरणकालीन राज्य सच्चे अर्थों मे सवैधानिक राज्य नही थे, उ हृ प्रजातन्त्रात्मक राज्य तो कहना ही नही चाहिए। उनकी मुख्य विशेषता बाह्य सप्रभुता थी जिसका अथ एक सुदृढ केन्द्रीय सत्ता की स्थापना थी जिससे कि राज्य हर प्रकार अपनी रक्षा विशेषत अपने पडोसियो से कर सके। अत मुख्य उद्देश्य राज्य को शक्तिशाली बनाना था।[6] स्मरणीय है कि इस युग म यूनानी स्वायत्तता या स्वतन्त्रता की धारणा लोकप्रिय न हो सकी। राज्य सत्ता व्यक्तियो के अधिकारो के बारे मे चिन्तित नही थी। स्ट्राग के अनुसार पुनर्जागरणकालीन सम्राट नीतिशास्त्र (ethics) या नतिक बातो की अपेक्षा राजनीति से अधिक सम्बन्धित थे। स्मरणीय है कि मैकियावली द्वारा 1513 ई मे रचित पुस्तक 'प्रिन्स' (*The Prince*) इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करती है। मकियावली पुनर्जागरण का शिशु था। सक्षेप मे, इस काल म राज्य पर किसी नतिक अविब धन की व्यवस्था का समथन नही किया गया था क्योकि उससे राज्य की सत्ता के कमजोर होने की आशका थी।

16वी सदी के धम सुधार आन्दोलन ने पुनर्जागरणकालीन राज्य को दवीय मान्यता प्रदान की। मार्टिन लूथर धम सुधार आन्दोलन का नेता था। वह धार्मिक मामलो म पूण सहिष्णुता एव स्वतन्त्रता का समथक था। लेकिन पाप से अपनी एव अपने समथको की रक्षा के लिए उसे किसी राजा की सहायता की अपेक्षा थी। यह सहायता उसे सेक्सनी के इलेक्टर' से प्राप्त हुई थी। सेक्सनी के शासक न रोमन चच से पृथक अपना चच स्थापित किया। यह चच रोमन चच की भाति ही असहिष्णु था।

---

6 "But in many respects the Renaissance undid the good work that had been going on in the three western states The Renaissance state was not truely constitutional, much less a democratic state Its essential equality was external sovereignty, which implied a strong central authority maintaining itself at any cost, chiefly with a view to strengthening the state against all its neighbours —Strong *op cit*, p 27

लूथर द्वारा पोपशाही के विरुद्ध प्रस्तुत सैद्धान्तिक तर्कों के परिणामस्वरूप सम्राट या राजाओ की शक्ति मे वृद्धि हुई और उन्हे अपनी जनता के धार्मिक मामला का नियमित करने की शक्ति प्राप्त हो गयी। यह प्रवृत्ति इगलण्ड म भी परिलक्षित होती है। हनरी अष्टम, ऐलिजावेथ प्रथम एव जेम्स प्रथम को धार्मिक मामला म भी सर्वोच्चता प्राप्त थी।

अत स्ट्राग का मत है कि पुनर्जागरण-काल म राज्य की सप्रभुता की धारणा ने मध्य युग के अत म पश्चिमी यूरोप म रोप गय सवैधानिकता के बीज को पल्लवित एव पुष्पित होने म बडी बाधा डाली थी। यूरोपीय महाद्वीप पर प्रबुद्ध निरकुशतन्त्रीय राजतन्त्र (Enlightened Despotism) विकसित हुआ। इसका काल 1600 ई से 1789 ई तक है। फ्रास, प्रशा (Prussia) एव आस्ट्रिया म यह निरकुशतन्त्र पूणता को प्राप्त हुआ था। सामन्तवाद के पतन के बाद सम्राट या राजा ही सत्ता का केन्द्र था। सम्राटो द्वारा प्रतिनिधि सस्थाओ का सहयोग सत्ता क प्रयोग म नही लिया गया था। इसके परिणामस्वरूप महाद्वीपीय देशो म सविधानवाद का विकास 19वी शताब्दी तक रुका रहा। केवल इगलैण्ड म ही पुनर्जागरणकालीन राजतन्त्र निरकुशतन्त्र म परिवर्तित नही हो सका था।[7]

इगलण्ड मे सविधानवाद

स्ट्राग के अनुसार इगलण्ड म सविधानवाद का अविरल विकास हुआ है। इगलैण्ड मे भी निरकुशतन्त्र था परन्तु पुनर्जागरणकालीन इगलण्ड के राजा अनियन्त्रित एव निरकुश न रह सके थे। इसका कारण इगलण्ड की अपनी विचित्र कठिनाइया थी। फ्रास से दीघकालीन युद्ध के कारण इगलण्ड की आर्थिक स्थिति खराब हो गयी थी और गृह युद्ध के कारण देश का विघटन हो गया था।

इगलण्ड मे प्रतिनिधि सस्था के रूप मे ससद की सवप्रथम स्थापना 1265 ई म हुई थी। 1295 ई के बाद निरन्तर कुछ अन्तर से ससद के अधिवेशन आहूत होते रहे थे। इस समय ससद का मुख्य काय राजा के लिए धन स्वीकृत करना था। 14वी शताब्दी के अन्त म ससद की महत्ता मे एक अन्य कारण से भी वृद्धि हुई थी। 1339 ई म लेकेस्टर वशीय एडवड तृतीय ने रिचड तृतीय स बरबस सिंहासन हस्तगत कर लिया था। परिणामस्वरूप हेनरी चतुथ एव उसके उत्तराधिकारियो ने अपने काय को औचित्यता प्रदान करने के लिए ससद पर निभर रहना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन हेनरी पष्ठम् की अयोग्यता एव गुलाबो के युद्ध म उसकी असफलता के कारण लेकेस्टर वशीय शासको की स्थिति और भी कमजोर हो गयी। नये शासक एडवड चतुथ को युद्ध कायम रखना पडा। 1485 ई मे हेनरी ट्यूडर द्वारा रिचड तृतीय को पराजित कर देने पर ही गुलाबो के युद्ध का अन्त हुआ और ट्यूडर वश के शासन की स्थापना हुई जिसे ट्यूडर निरकुशतन्त्र कहा जाता है। लेकिन ट्यूडर-वश के शासको की स्वेच्छाचारिता यूरोप के तत्कालीन निरकुश शासनो की अपेक्षा बहुत कुछ सीमित

7 Strong C F *op cit*, pp 28 29

थी। राजा की कायपालिका शक्ति का प्रयोग एक समिति (council) द्वारा किया जाता था जिसकी स्वेच्छाचारिता पर ससद एव यायाधीशा (Justices of Peace) का अकुश था। स्मरणीय है कि ट्यूडर काल के शासको न विभिन्न ससदो के समक्ष विभिन्न विधायी एव कर प्रस्तावो को स्वीकृति के हेतु उपस्थित किया था, यह दूसरी बात है कि ससदो के द्वारा उ ह बिना किसी बाधा के ही स्वीकार कर लिया हो। ट्यूडरकालीन ब्रिटिश ससदे अधिकाशत राजा के आधीन थी। एक महत्वपूण तथ्य यह है कि ससदो के निर तर अधिवेशन होते रहते थे एव उनके द्वारा प्रस्तावो को स्वीकृत किया जाता था। जब ट्यूडर शासको द्वारा राष्ट्र की इच्छा का प्रति निधित्व करना ब द कर दिया गया तो ब्रिटिश ससद ने उनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। स्टुअट वशीय चाल्स प्रथम न ससद की उपेक्षा करत हुए ससद की सत्ता का स्वय प्रयोग किया था। फलस्वरूप इगलण्ड म 1642 ई स 1649 ई तक गृह युद्ध हुआ। इस गृह युद्ध ने प्रवुद्ध निरकुशत त्र की स्थापना मे बाधा उत्पन्न की थी। 1649 ई मे चाल्स प्रथम का शीश काट दिया गया और क्रामवेल के नेतृत्व मे गण-राज्य—कॉमनवेल्थ—की स्थापना हुई। 1660 ई मे पुन राजत त्र की स्थापना हुई और चाल्स द्वितीय एव जेम्स द्वितीय, जो राजत त्र की पुनस्थापना के पश्चात क्रमश सत्तारूढ हुए थे, ने एक बार फिर मिर उठाया था पर तु 1688 ई की रक्तहीन क्रा ति ने जिसे Glorious Revolution की सज्ञा दी जाती है, स्वेच्छाचारी राजत त्र को उखाड फका। इस क्रा ति से दो महत्वपूण तथ्य स्पष्ट हो गये। प्रथम, शासन सम्ब धी मामलो पर निय त्रण राजा के हाथो से निकलकर राजा सहित ससद (The King in Parliament) के हाथो मे पहुँच गया। द्वितीय, क्रा ति के कारण हुए परिवतन को सवै धानिक आधार प्राप्त हुआ। स्मरणीय ह कि इसके पूव इगलण्ड म कोई सवैधानिक सविधि (Statutory law of the constitution) नही थी और ब्रिटिश सविधान केवल प्रथाओ एव अभिसमयो पर ही आधारित था। मेगना कार्टा (Magna Carta) भी सविधि नही था और साम ती युग के समाप्त होने के पश्चात उसकी व्यवस्थाएँ अव्यावहारिक बन चुकी थी। इसके विपरीत, 1628 ई की पिटीशन ऑफ राइट्स (The Petition of Rights) राजा द्वारा स्वीकृत किये जाने के फलस्वरूप सविधि बन गयी थी यद्यपि उसकी व्यवस्थाओ का पालन नही किया गया था। कॉमनवेल्थ के अन्तगत लिखित सविधान का निर्माण हुआ था लेकिन राजत त्र की स्थापना के पश्चात इन लिखित सविधानो का स्वत ही अ त हो गया था।

सन् 1688 89 ई की क्रान्ति के समय पारित अनेक सविधियो के परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश राज्य की सप्रभुता ब्रिटिश ससद म निर्विवाद रूप से अधिष्ठित हो चुकी थी। बिल ऑफ राइटस, अधिकार-पत्र एव विद्रोह अधिनियम (Mutiny Act) ने ब्रिटिश ससद को सेना पर निय त्रण प्रदान किया तथा वार्षिक व्यय की स्वीकृति की प्रणाली द्वारा निरकुशत त्र पर प्रभावकारी निय त्रण स्थापित कर दिया था। लेकिन कायपालक दायित्व अभी भी राजा एव उसके म त्रियो के हाथो मे ही थे। 18वी सदी म अभिसमयो

के विशुद्ध विकास के फलस्वरूप दलीय व्यवस्था पर आधारित मन्त्रिमण्डलीय पद्धति का विकास हुआ जो सदी के अन्त तक पूरी तरह सुदृढ हो चुकी थी। इससे ससद की शक्तियो म वृद्धि हुई और उसका कायपालिका पर नियन्त्रण स्थापित हो गया।

इगलैण्ड म निरकुशतन्त्र के विकास म उसकी भौगोलिक स्थिति भी एक बाधा है। द्वीप होने के कारण निरन्तर बाह्य आक्रमण की कोई सम्भावना नही थी। इस सम्भावना ने अन्य यूरोपीय देशो म निरकुशतन्त्र के विकास म काफी योग दिया था। इगलण्ड मे इसके विपरीत निरकुश राजतन्त्र एव स्थानीय स्वशासन की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियो के मध्य समन्वय हुआ है। महाद्वीप से पृथक होने के कारण इगलैण्ड म राष्ट्रीयता की भावना सशक्त हुई। इसे दो घटनाओ न अत्यधिक शक्ति प्रदान की थी। प्रथम, धम सुधार आन्दोलन के कारण इगलैण्ड मे चच की अध्यक्षता पोप से ब्रिटिश सम्राट को हस्तान्तरित कर दी गयी थी। इससे इगलण्ड म पोपशाही के हस्तक्षेप का अन्त हो गया। द्वितीय, स्पेनिश आर्मेडा (जहाजी बेडा) की पराजय के कारण ब्रिटिश ससद देश पर बाह्य आक्रमण की सम्भावना से पूणतया मुक्त हो गयी थी।

इसी काल मे इगलण्ड मे विधि के शासन (Rule of Law) का भी विकास हुआ जो ब्रिटिश विधि व्यवस्था का प्रमुख सिद्धान्त बन गया। बाद म यह सिद्धान्त उपनिवेशो, स्वशासित उपनिवेशो एव सयुक्त राज्य अमेरिका की विधि-व्यवस्था का भी आधार बना। विधि के शासन का अथ विधि के समक्ष बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिको की समानता से है। समय समय पर पारित सविधियो एव न्यायिक निणयो से इस सिद्धान्त की स्थापना हुई है। उदाहरणाथ, बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus, 1679) एव एक्ट ऑफ सेटिलमेन्ट (Act of Settlement, 1701) द्वारा जहा एक तरफ नागरिको को गलत ढग से बन्दी बनाये जाने से मुक्ति प्रदान की थी वहा न्यायाधीशो को भी शाही हस्तक्षेप से मुक्ति प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार, न्यायिक निणयो—जैसे जान विल्क्स विवाद (1763)—द्वारा नागरिको को अनुचित रीति स बन्दी न बनाने एव मन्त्रियो को सामान्य विधि व्यवस्था के आधीन होने की व्यवस्था का निधारण किया गया था।

स्ट्राग के अनुसार 18वी सदी के मध्य तक इगलण्ड मे सवधानिक शासन की स्थापना हो चुकी थी। उस समय यह विश्व का एकमात्र सवैधानिक राज्य था परन्तु पूण प्रजातन्त्रात्मक राज्य नही था। 19वी सदी मे ब्रिटिश ससद द्वारा प्रतिनिधित्व सम्बन्धी विभिन्न विधियो—यथा, 1832, 1867 एव 1884 ई के सुधार-अधिनियमो—के पारित होने पर ही प्रजातन्त्र की स्थापना हुई थी। 1918 एव 1928 ई म स्त्रियो को भी मताधिकार प्रदान किया गया। ब्रिटेन का सवधानिक विकास अन्य देशो के लिए उदाहरण है। ब्रिटिश सविधान की अपनी प्रमुख विशेषता उसका अभिसमयो एव परम्पराओ पर आधारित होना है। यह विकास का परिणाम है। ब्रिटिश सविधान पूव निश्चय के अनुसार निर्मित लेख्य नही है। नवीन सविधान

यार दास भिन्न है। नवीन सविधान लिखित होते हैं। ब्रिटिश सविधान विकास का परिणाम है। इस कारण अस I वा नवीन परिस्थितियो के अनुरूप सहज ही ढाल सका है और अपनी मौलिकता को परिवर्तित किये बिना लिखित सविधानो के नवीन तत्वो को सफलतापूर्वक अगीकार कर सका है।[8]

अमेरिकी एव फ्रेंच क्रान्तियाँ तथा उनका सवधानिक प्रभाव

धार्मिक असहिष्णुता म एक प्रकार के स्थायी भावना का प्राबल्य होता था। धर्म सुधार के विचारक इन धार्मिक कट्टरता तथा उन्माद का कोई उपचार नही कर सके थे। पुनर्जागरण-काल म राजनतिक अत्याचार भी बढ़े थे। इन परिस्थितियो के कारण विचारको न राज्य की उत्पत्ति पर विचार किया और सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसका 19वी सदी के उदय तक प्राधान्य बना रहा। सामाजिक अनुबन्धवादी विचारक राज्य को अनुबन्ध का परिणाम मानत हैं। यह अनुबन्ध प्राकृतिक अवस्था की असहाय परिस्थितियो के कारण तत्कालीन व्यक्तियो न किया था। अनुबन्ध के द्वारा व्यक्तियो न प्राकृतिक अवस्था के अधिकारो का परित्याग कर दिया और सभ्य समाज के लिए आवश्यक सामान्य सत्ता का निर्माण किया। अत राजनतिक समाज या राज्य का उद्देश्य व्यक्तियो के शेष अधिकारो की रक्षा करना एव उनकी रक्षा की प्रतिभू बनना था। सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त के अनुसार राज्य मानव निर्मित सस्था है एव अनुबन्ध का परिणाम है। अत राज्य द्वारा अत्याचारी होन पर वह अनुबन्ध के भग करन का अपराधी हो जाता है और एस राज्यो के सदस्यो को शासन का पदच्युत करन का अधिकार स्वत ही प्राप्त हो जाता है।

सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्त प्रधानत 18वी सदी म सर्वाधिक लोकप्रिय था। इसके बीज यूनानी चिन्तन म भी है। प्लेटो द्वारा रचित 'रिपब्लिक' म भी इसका प्रतिपादन हुआ है। मध्य युग म भी इस सिद्धान्त का चर्च एव राज्य के विवाद के मध्य प्रतिपादन हुआ था। आधुनिक युग म इसके प्रथम समर्थक फ्रास के ह्यूगोनाटस एव स्पेन के आधीन नीदरलण्ड के निवासी थे जो उपर्युक्त वर्णित राजनीतिक अराजकता एव धार्मिक असहिष्णुता के अत्याचारो के शिकार थे। अनुबन्ध सिद्धान्तवादियो न निरकुशतन्त्र के खण्डन को उचित माना और पीडित व्यक्तियो द्वारा विद्रोह करना उचित ठहराया।

हॉब्स, लाक एव रूसो अनुबन्ध सिद्धान्त के प्रतिनिधि विचारक माने जाते है। तीनो के निष्कर्ष एक दूसरे से भिन्न है यद्यपि तीनो ही राज्य को अनुबन्ध का परिणाम मानत थे। हॉब्स का राज्य निरकुश था क्योकि शासन अनुबन्ध का एक पक्ष नही था। लाक सीमित राजतन्त्र या जनता द्वारा समर्थित शासन का समर्थक था। उसन व्यक्तियो के प्राकृतिक अर्थात अनुल्लघनीय अधिकारो पर बल दिया है। लॉक ने 1688 ई म अग्रेजी क्रान्ति का समर्थन किया था। वह ह्विग दल का दार्शनिक विचारक था। रूसो ने लोकतन्त्र एव सप्रभुता मे अपन अनुबन्ध के द्वारा समन्वय स्थापित किया है। हॉब्स

8 Strong, C F *op cit*, p 33

ने स्वत न्त्रता एव सत्ता के मध्य समन्वय करते हुए जनता को विद्रोह का अधिकार नही दिया। लाक ने 'सप्रभुता' शब्द का प्रयोग ही नही किया। प्रश्न यह है कि यदि 1688 ई की क्रान्ति उचित थी तो उसे नियान्वित करने का निणय किसने और किस अधिकार से लिया था ? लॉक न स्पष्ट रूप से इसका कोई उत्तर नही दिया है। वह परोक्ष मे जनता (people) को ही सत्ता का सर्वोच्च अधिष्ठाता मानता है। रूसो न अपने ग्रन्थ 'सामाजिक अनुब ध' (*Social Contract*) म इस प्रश्न के समाधान का सफल प्रयत्न किया है। वह अनुब ध द्वारा रचित राज्य की प्रभुसत्ता को सामान्य इच्छा म अधिष्ठित कर देता है और इस प्रकार उसने लोकप्रिय प्रभुत्व (Popular Sover eignty) का समथन किया। रूसो के अनुसार अनुबन्ध व्यक्तियो के दो पक्षो म हुआ है। एक पक्ष मे व्यक्ति अकेला है और दूसरे पक्ष मे व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप मे है। व्यक्ति के रूप म वह जिन अधिकारो का परित्याग करता है, समाज के सदस्य के रूप मे वह उ ह प्राप्त कर लेता है। रूसो के लोकप्रिय प्रभुत्व के सिद्धान्त ने प्राचीन निरकुशतन्त्रीय व्यवस्था को उखाड फेकने म महत्वपूण भूमिका निभायी थी। स्मरणीय है कि रूसो का आदश प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र था, न कि प्रतिनिधि प्रजातन्त्र। लेकिन उसके अनुयायियो के हाथो मे अनजाने ही उसका सिद्धान्त व्यावहारिक एव प्रतिनिधि प्रजातन्त्रात्मक सस्थाओ की स्थापना म सहायक हुआ है।

18वी सदी मे फ्रा स एव अमरिका मे क्रान्तिया हुई थी। रूसो की रचना *Social Contract* इन क्रान्तियो से पूव प्रकाशित हो चुकी थी। लाक के विचारो ने जहा अमेरिकी स्वत न्त्रता के युद्ध एव सविधान के निर्माण को प्रभावित किया था वहाँ रूसो का अपक्षाकृत फ्रा स की क्रान्ति पर अधिक प्रभाव पडा था। अमेरिकी क्रान्ति 13 उपनिवेशो के सविधानो मे अनेक लोकतान्त्रिक परिवतनो के लिए उत्तरदायी है। इन सभी सविधानो को एकत्रित करके फ्रेंच एव अग्रेजी भाषा मे 1781 ई म प्रकाशित किया गया था। इसने फ्रा स के क्रान्ति काल के सविधान निर्माण को प्रभावित किया। अमेरिकी स्वातन्त्र्य सग्राम का अपना इतिहास है। अमेरिकी उपनिवेशो ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी आर्थिक नीति के विरुद्ध विद्रोह किया था। अमेरिकी औपनिवेशिक जनता ने ब्रिटिश ससद म प्रतिनिधित्व की माग करते हुए और बिना प्रतिनिधित्व के कर न देन (No taxation without representation) की घाषणा की थी। ब्रिटिश शासन ने प्रतिनिधित्व की इस माग को स्वीकार नही किया। फलस्वरूप उपनिवेशो ने अपने को ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक करके नवीन राज्य—सयुक्त राज्य अमेरिका—की नीव डाली और एक नवीन सविधान को 1787 ई म स्वीकार किया जो 1789 ई म लागू हुआ। स्ट्राग के अनुसार सयुक्त राज्य अमरिका का यह सविधान आधुनिक लिखित सविधानवाद का यथाथ प्रारम्भ है। इस सविधान म 1776 ई की अमेरिकी स्वातन्त्र्य घोषणा के सिद्धान्तो को पूणरूपेण स्वीकार किया गया है तथा सर्वोच्च सत्ता भी इसम अधिष्ठित है। अमेरिकी सविधान मे सघवाद को स्वीकार किया गया है जिससे विभिन्न समूहो को पूण सन्तुष्टि हो सके।

रूसो या अमरीकिया की अपक्षा फ्रा जनता पर अधिर एव प्रत्यक्ष प्रभाव पडा है। वह फ्रेंच क्रान्तिकारियो का अग्रदूत था। फ्रेंच क्रान्ति के प्रारम्भिक काल के क्रान्तिकारियो पर उसका विशेष प्रभाव था। हमारे लिए इस क्रान्ति की घटनाओ म सर्वाधिक महत्व की घटना 1789 ई म स्टेट्स जनरल (National Assembly) द्वारा मनुष्यो एव नागरिको क अधिकारो की घोषणा (Declaration of Rights of Man and Citizen) को स्वीकार करना है। 1791 ई म इसी सभा न फ्रेंच गणराज्य का सविधान स्वीकार किया जो अल्पकालिक सिद्ध हुआ। यह सविधान लोकप्रिय प्रभुत्व के सिद्धान्त पर आधारित था और इसम अधिकारो का समावेश था। स्ट्राग ने इसे आधुनिक लिखित सविधानवाद के विकास की दिशा म द्वितीय महत्वपूर्ण पग माना है। स्मरणीय है कि फ्रेंच क्रान्ति ने राजनीतिक स्वतन्त्रता की ज्वाला को स्थायी रूप से प्रज्ज्वलित कर दिया था। 1791 ई का प्रथम फ्रेंच गणराज्य का सविधान अस्थायी प्रमाणित हुआ लेकिन परवर्ती सभी फ्रेंच सविधान इस प्रथम सविधान के आधारभूत सिद्धान्त पर ही निर्मित हुए थे।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे राष्ट्रीय सविधानवाद

19वी सदी म इटली एव जमनी म एकीकरण के आन्दोलनो के फलस्वरूप सविधानवाद को विशेष गति प्राप्त हुई थी और अनेक सविधानो का निर्माण हुआ था। सत्य तो यह है कि ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमरिका के अतिरिक्त सभी सविधान 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ही उपज हैं। कुछ सविधान तो इस सदी के पूर्वार्द्ध काल के भी है, लेकिन उनम भी इतन आमूलचूल परिवतन हुए है कि इन्हे भी एक प्रकार से नय सविधान ही माना जायगा। इटली एव जमनी के एकीकरण के आन्दोलन 1870 ई के युद्ध के उपरान्त फ्रास मे गणतन्त्रीय सविधान की स्थापना के प्रेरणा स्रोत बन गये थे। 1848 ई क पश्चात इटली सात राज्यो म विभक्त था। इनमे से सार्डीनिया का सविधान ही बाद म इटली के राज्य का सविधान बना। 1859 70 ई के मध्य होन वाले अनेक विद्रोहो एव युद्धो के फलस्वरूप इटली के अनेक राज्य सार्डीनिया म मिलते गये तथा इटली के वतमान राज्य का उदय हुआ। 1848 ई की क्रान्ति के बाद जमनी म पूवकालीन व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया। प्रशा के प्रधानमन्त्री बिस्माक के नेतृत्व मे जमनी के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 1864 71 ई के मध्य म तीन युद्ध लडे गये थे। इनके फलस्वरूप जमनी ने डेनमाक को पराजित किया, आस्ट्रिया को जमन सघ से पृथक कर दिया तथा फ्रास के द्वितीय साम्राज्य को भी पराजित किया था। फलस्वरूप पराजित राज्यो के स्थान पर नवीन सवैधानिक राज्यो का उदय हुआ। डेनमाक म 1864 ई मे ससदीय प्रणाली की स्थापना हुइ। आस्ट्रिया एव हगरी म 1869 ई मे नवीन सविधान बना। 1871 ई मे जमन सघ के स्थान पर जमन साम्राज्य की स्थापना हुई। इन सभी देशो के सविधानो मे ब्रिटिश नमूने की ससदीय प्रणाली को अपनाया गया था। यह राष्ट्रीयता की सफलता के प्रमाण थे। इसी राष्ट्रीयता की भावना के कारण बाल्कन प्रदेश की विभिन्न जा।

ने तुर्क शासन से मुक्ति पाने के लिए युद्ध का मार्ग अपनाया था। पश्चिमी उदारवादी विचारधारा के प्रभाव एव सहयोग के फलस्वरूप 20वी सदी के प्रथम दशक मे सव धानिक शासन का इस प्रदेश के अधिकाश देशो ने स्वीकार किया था। इन देशा म 'एक राष्ट्र-जाति एव एक राज्य' की भावना अत्यधिक प्रबल थी। 1912 ई एव 1913 ई के बाल्कन युद्ध इसी राष्ट्रीयता के प्रतीक थे। उग्र राष्ट्रीयता ने इस प्रदेश म ही नही, विभिन्न साम्राज्यो के उपनिवेशो म भी स्वतन्त्रता आन्दोलनो का सूत्रपात किया था। 20वी सदी के प्रथम दशक मे भारतीय राष्ट्रीय जीवन मे भी उग्रवादी एव क्रान्तिकारी आन्दोलनो का प्रारम्भ हुआ था। ये सभी स्वतन्त्रता सग्राम स्वतन्त्र एव सवैधानिक शासन के लिए सघर्ष थे।

प्रथम विश्व युद्ध (1914 ई) की घटनाओ के परिणामस्वरूप सविधानवाद के प्रसार को और अधिक गति मिली थी। रूस के अतिरिक्त अन्य सभी देशो मे राजनीतिक सविधानो की स्थापना की गयी और प्राय सभी देशो मे लोकतन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाया गया। पेरिस की शान्ति सन्धियो के परिणामस्वरूप फिनलण्ड, एस्टोनिया, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया आदि कई नवीन राज्यो का जन्म हुआ एव प्रत्येक देश म लोकतन्त्रीय सिद्धान्तो पर आधारित लिखित सविधानो की रचना हुई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रसघ (League of Nations) की स्थापना स्ट्राग के शब्दो म सविधानवाद की दिशा मे एक विशेष प्रगति थी। राष्ट्रसघ वार्साई (Versailles) एव अन्य सन्धियो का अभिन्न अग था। लेकिन राष्ट्रसघ व्यावहारिक रूप म एक सवैधानिक प्रयोग था जो सप्रभुत्व राज्यो से सम्बन्धित विवादो को रोकने या शान्तिपूर्ण ढग से निबटाने के लिए एक सराहनीय प्रयत्न था। अत राष्ट्रसघ की स्थापना उस समय तक के पश्चिमी यूरोप के सवैधानिक विकास की दिशा मे निश्चय ही एक क्रान्ति थी।

प्रथम एव द्वितीय विश्व युद्धो के मध्य सविधानवाद को तीव्र धक्का भी लगा था। पहले तो ऐसा लगा कि राष्ट्रीयता एव प्रतिनिधि लोकतन्त्र सयुक्त रूप से मानव अधिकारो एव विधि के शासन की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील हैं परन्तु रूस मे साम्यवादी शासन और इटली व जर्मनी मे फासीवाद एव नाजीवाद के उदय ने लोकतान्त्रिक शासन एव सविधानवाद के विकास की धारा को अवरुद्ध कर दिया। साम्यवादी एव फासीवादी शासनो की स्थापना के फलस्वरूप सर्वाधिकारवाद (Totalitarianism) एव अधिनायकवाद (Dictatorship) मूर्त रूप हो उठे थे। जापान म सैनिक अधिनायकवाद की स्थापना हुई। फासीवाद एव नाजीवाद ने ससदीय व्यवस्था पर घातक प्रहार किये और इटली व जर्मनी म उसका अन्त करके निरकुश अत्याचारी शासन की स्थापना की तथा देश की जनता को उन मौलिक अधिकारो के उपभोग से वचित कर दिया जिनका व फासीवाद की स्थापना के पूर्व निर्बाध रूप म उपभोग करते रहे थे। 1939 ई म हिटलर ने अनेक देशो पर खुले रूप म आक्रमण कर दिये थे। फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ था।

द्वितीय विश्व युद्ध म जर्मनी एव इटली की पराजय के बाद अनेक देशो म

लोकतन्त्रीय सरकारों की स्थापना की गयी। जर्मनी को मित्रराष्ट्रों ने दो भागों में विभक्त कर दिया। पूर्वी जर्मनी के अतिरिक्त अन्य देशों—पोलण्ड, हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, रूमानिया, बल्गारिया—में रूसी प्रभाव के अन्तर्गत सोवियत नमूने की जन-लोकतन्त्रीय (People Democracies) सरकारों की स्थापना की गयी थी। यह साम्यवादी अधिनायकवाद था। यूगोस्लाविया भी साम्यवादी देश है परन्तु वह सोवियत प्रभुत्व के बाहर है। अल्बानिया में भी साम्यवादी शासन है। इटली व जापान में ससदीय प्रणाली को अपनाया गया। 1949 ई में चीन में साम्यवाद की स्थापना हुई। एशिया के अधिकांश नवोदित राज्यों में पश्चिमी ढंग की लोकतन्त्रीय सरकारों की स्थापना हुई है। अफ्रीका के नये स्वतन्त्र राज्यों में लोकतन्त्र की स्थापना हुई थी परन्तु बाद में कुछ देशों ने अधिनायकवादी शासनों को स्वीकार कर लिया है। साम्राज्यवाद का अन्त हो गया है। केवल अफ्रीका के महाद्वीप में उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद के कुछेक अवशेष आज भी शेष हैं।

सविधानवाद का लोकतन्त्र एव समाजवाद से सम्बन्ध

सविधानवाद का लोकतन्त्र एव समाजवाद से सम्बन्ध ऐसा विषय है जिसका विश्लेषण पुनरुक्ति-दोष के बावजूद भी वाछनीय है।

प्रारम्भ में सविधानवाद का स्वरूप इगलैण्ड एव अन्य देशों में लोकतान्त्रिक नहीं था। दूसरे शब्दों में, प्रारम्भ से ही सवैधानिक शासन लोकतान्त्रिक न थे। फ्रेंच क्रांतिकारियों ने स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) एव मानव अधिकारों (Rights of Man) के अनुसार व्यक्ति की समानता के सिद्धान्त को सन्देह की दृष्टि से देखा था। सयुक्त राज्य अमेरिकी गणराज्य के प्रारम्भिक विचारकों में भी सामान्य जनता के लिए उत्साह नहीं था। 19वीं सदी में इगलण्ड एव अन्य देशों के विचारक लोकतन्त्र के प्रति सन्देहशील थे। सभी स्त्री पुरुषों को सार्वभौमिक मताधिकार, राजनैतिक जीवन में श्रमिकों सहित सभी वर्गों को समान प्रतिनिधित्व, जातीय एव धार्मिक विभेद का अभाव लोकतन्त्र की पूर्णता के लक्षण हैं। कुछ देशों में इस व्यापक रूप में लोकतन्त्र का आज भी अभाव है।

सविधानवाद के लोकतन्त्रीकरण की दिशा में सहायक 19वीं सदी की महत्व-पूर्ण घटनाएँ निम्नवत है—अमेरिकी राष्ट्रपति जैक्सन का कार्यकाल, इगलण्ड का 1832 ई का सुधार विधेयक, 1848 ई की फ्रांस की राज्यक्रांति एव अमेरिकी गृह युद्ध। इन घटनाओं में से किसी ने भी प्रत्यक्षत लोकतन्त्र की स्थापना नहीं की लेकिन लोकतन्त्र को अग्रसर करने में प्रत्येक ने सराहनीय योग दिया है। जैक्सन के राष्ट्रपतित्व काल में विशिष्ट लोगों के शासन की कटु आलोचना की गयी। इगलण्ड के 1832 ई के सुधार बिल एव परवर्ती सुधार विधेयकों ने समाज में विशिष्ट वर्गों के शासन में दरार डाल दी थी। 1848 ई की फ्रेंच क्रान्ति ने पूजीवादियों को चुनौती दी एव अनेक समाजवादी कार्यों ने फ्रांस में पुन राजतन्त्र के समर्थक बोन वशियों के उदय को सम्भव बना दिया था। इस फ्रेंच क्रान्ति ने मेटरनिख के

पश्चात जमन एकता के लिए जमन जनता को प्रोत्साहित किया परन्तु उनका यह प्रयत्न असफल रहा । इटली म भी इसी प्रकार का असफल प्रयत्न किया गया। भले ही ये स्वतन्त्र राष्ट्र एकता के सूत्र म आबद्ध न हो सके थे परन्तु उनम आत्मनिणय की भावना जड पकड गयी थी। सयुक्त राज्य अमरिका क चारवर्षीय गृह युद्ध ने दासता का समूलोच्छेदन कर दिया । राष्ट्रपति लिकन ने इस गृहयुद्ध-काल म ही उत्तेजक एव प्रेरणाप्रद शब्दा मे लोकतन्त्र का उद्घोष करते हुए कहा था कि लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा स्थापित शासन है और विश्व से इसका कभी विनाश नही होगा ।

इगलैण्ड म 1832 ई के सुधार बिल के बाद 1867 व 1884 ई के सुधारो के द्वारा लोकतन्त्र को अग्रसर किया गया था । 20वी सदी म स्त्रिया को भी मताधिकार प्रदान किया गया है। अमेरिका म थियोडोर रूजवल्ट, वुडरा विल्सन एव फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के राष्ट्रपतित्व-काल म लोकतन्त्रीकरण को और अधिक गति प्राप्त हुई और आर्थिक शक्ति एव एकाधिकार पर लोकप्रिय नियन्त्रण स्थापित किया गया। फ्रास मे तृतीय गणराज्य के अन्तगत 1848 ई के क्रान्तिकारिया के कायक्रम को क्रमश क्रियान्वित किया गया था । जमनी म वीमर गणराज्य की स्थापना से लोकतन्त्र का आरम्भ हुआ था परन्तु फासिस्ट शक्तिया के उदय ने लोकतन्त्र की प्रगति को एक बार पुन रोक दिया , किन्तु जमनी मे लोकतन्त्रीकरण द्विगुणित वग से द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त गतिशील है। आज लोकतन्त्र एकमात्र स्वीकृत सवश्रेष्ठ शासन है। अधिनायकवादी भी इस सत्य को स्वीकार करने लगे हैं। राजतन्त्र के दिन तो अब पूरी तरह लद चुके है ।

समाजवाद एव लोकतन्त्रवाद

1848 ई की क्रान्ति ने समाजवाद का प्रश्न उपस्थित किया था एव समाजवाद श्रमिक वग का प्रभावशाली नारा बन गया । 1848 ई मे प्रकाशित कार्ल माक्स का साम्यवादी घोषणापत्र (Communist Manifesto) शोषण से बचने के लिए वग सघष का प्रतिपादन करता है । माक्सवादी हिंसा व सघष को क्रान्ति के दौरान म एव क्रान्ति के बाद अनिवाय व आवश्यक मानते है । क्रान्ति के बाद स्थापित समाज मे सवहारा वग का अधिनायकत्व कायम होगा जो उनके अनुसार पूजीवादी लोकतन्त्र से किन्ही अर्थो मे श्रेष्ठ है। इसके विपरीत, समाजवादियो का एक वग पूजीवादी समाज के विनाश एव पतन के लिए क्रान्ति को आवश्यक नही मानता है। वे क्रमश धीरे धीरे विकासवादी ढग से लोकतन्त्रीय पद्धति द्वारा समाजवाद की स्थापना करना चाहते है। ये विकासवादी या राज्य समाजवादी या लोकतन्त्रीय समाजवादी कहलाते है । इगलण्ड के फेबियनवादी एव श्रम दल और जमनी के सोशल डेमोक्रेटस (Social Democrats) इस श्रेणी मे आते है। इगलण्ड व अमेरिका के अधिकाश श्रमिको ने साम्यवाद एव उसके हिंसात्मक रूप को अस्वीकार किया है। यूरोप के जिन देशो म साम्यवाद का जोर है वहा के समाजवादी दला मे वास्तविकता

के कारण क्रान्ति एव हिंसा के प्रति उत्साह मे कमी आयी है। 1936 ई मे साम्यवाद के गढ सोवियतरूस म लिखित सविधान का निर्माण किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात अनेक देशो मे समाजवादियो ने अपने कायक्रम एव नीतियो की उपलब्धियो के लिए सवैधानिक माग का अनुसरण प्रारम्भ किया था। लेकिन समाजवाद एव सविधानवाद के समन्वय के ये प्रयास असफल रहे थे और विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न हुई थी। जमनी, इटली, स्वीडन, चैकोस्लोवाकिया, फ्रान्स एव अन्य देशो में गम्भीर राजनीतिक सकट उत्पन्न हुए। 1920 ई के दशक म ब्रिटिश श्रमिक दल के सत्तारूढ होने पर इगलैण्ड मे सविधान के प्रति सन्देह उत्पन्न होने लगा था लेकिन वह शका-मात्र प्रमाणित हुआ। इसी काल मे न्यूजीलण्ड एव आस्ट्रेलिया मे समाजवादी सत्तारूढ हुए थे और उन्होने सविधान के अधीन ही शासन चलाया था।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप के प्रमुख देशो म लोकतन्त्रीय समाजवादी आन्दोलनो के कारण सविधानशास्त्रियो के समक्ष अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई है। फ्रान्स, इटली एव जमनी के नवीन सविधानो मे व्यवस्थित नियन्त्रण की अधिक आवश्यकता अनुभव की गयी है। 1946 ई के फ्रान्स के सविधान के अन्तगत जिसे मतदाताओ ने अस्वीकार किया था, ससदीय बहुमत के हाथो मे अनियन्त्रित सत्ता को केन्द्रित कर दिया गया था। सोवियत क्षेत्र के जमन सविधान एव जमन साम्यवादियो के द्वारा प्रस्तावित सविधान के प्रारूप के बारे मे भी यही कथन सत्य है। लेकिन जमनी के लोकतन्त्र समाजवादी (Social Democrats) एव फ्रान्स के समाजवादी एक सीमा तक इस राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरोधी है। प्राय सभी नरमदलीय (Moderates) मौलिक अधिकारो एव नागरिको की स्वतन्त्रता की रक्षा को अधिकाधिक अनुभव करते है। ब्रिटेन के श्रमिक दल के सत्तारूढ होने पर ब्रिटिश सविधानवाद का अन्त नही हुआ, जैसा कि कुछ आलोचको का विचार था। लोकतान्त्रिक समाजवादियो की मान्यता है कि विकासवादी एव न्यायिक ढग व सवधानिक लोकतन्त्र की पद्धति से पूण समन्वय करते हुए समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। इस समन्वय के सन्दभ मे निश्चित रूप से अन्तिम निणय नही किया जा सकता परन्तु उपलब्ध प्रमाणो एव अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न आर्थिक पद्धतियो से सवधानिक शासन का समन्वय सम्भव है। काल जे फ्रेडरिक का मत है कि सविधानवाद समाज के सभी वर्गो के सन्तुलन पर आधारित होता है।[9]

समीक्षा की दृष्टि से एक अन्य प्रश्न पर विचार करना महत्वपूर्ण है। साम्यवादी देशो म भी सविधानो की स्थापना की गयी है ? क्या इन साम्यवादी देशो को सवैधानिक राज्य की सज्ञा दी जा सकती है। सवधानिक राज्य के विकास का चित्रण उपरोक्त पृष्ठो म किया गया है। स्ट्राग का मत है कि रूस ने सवप्रथम इसका उल्लघन

---

9 "Constitutionalism rests upon a balance of classes in society" — Carl J Frederich *op cit*, p 35

किया है ।[10] 1917 ई म लाल क्रान्ति हुई । इस क्रान्ति की दो अवस्थाएँ थी । प्रथम अवस्था मार्च की उदार क्रान्ति थी । इसम गणतन्त्रीय सविधान की स्थापना की गयी थी । फ्रेंच नमूने के आधार पर ससद (Duma) एव मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया गया । लेकिन नवम्बर 1917 ई म लेनिन के नतत्व म बोलशेविकों न रूस को सोवियत गणतन्त्र घोषित कर दिया । यह क्रान्ति की द्वितीय अवस्था थी । 1918 ई मे लेनिन ने एक सविधान प्रस्तुत किया । स्ट्राग के अनुसार इस सविधान न पश्चिमी सविधानवाद मे दरार उत्पन्न कर दी । मार्क्स के सिद्धान्तो पर नवीन राज्य का निर्माण किया गया । यह बहुमत पर आधारित सवैधानिक शासन नही था अपितु सर्वहारा का अधिनायकत्व था । लेनिन के हाथो म सर्वहारा का अधिनायकत्व साम्यवादी दल के अधिनायकत्व मे एव स्टालिन के हाथो म उसके व्यक्तिगत अधिनायकत्व म परिणत हो गया था । इस नवीन साम्यवादी राज्य म सम्पत्ति का सामूहिक स्वामित्व स्थापित कर दिया गया । सोवियत रूस के शासन म दो एसे तत्व ह जो उसे सवधानिक राज्य से पृथक करते है । प्रथम, एक ही राजनीतिक दल के प्राधान्य के फलस्वरूप राजनीतिक दलीय अधिनायकत्व की स्थापना एव द्वितीय, राज्य का सर्वाधिकारवादी स्वरूप । राज्य शासनतन्त्र द्वारा व्यक्ति के जीवन के प्रत्यक क्षेत्र—आर्थिक, सामाजिक एव धार्मिक—को नियमित एव निर्देशित करता है । इसम दो मत नही हैं कि रूस की शासन-पद्धति लोकतान्त्रिक नही कही जा सकती । एकदलीय व्यवस्था ने लोकतन्त्र की हत्या कर दी है ।

समीक्षा—उपरोक्त समीक्षा के स्ट्राग के अनुसार दो निष्कर्ष है ।[11] प्रथम, सवैधानिक राजनीति को उसके इतिहास के सन्दर्भ म ही समझा जा सकता है । एव सवैधानिक राज्य के विकास मे हर युग की अपनी देन है । उदाहरणार्थ, यूनानी सविधानवाद ने राजनीतिक दर्शन की प्रेरणा एव राजनीतिक सगठन का स्वरूप प्रदान किया है । रोमन सविधानवाद का प्रमुखतम अनुदेय विधि एव एकता का आदर्श है । मध्ययुगीन विकेन्द्रित सामन्तवादी समाज के विरुद्ध केन्द्रीकरण की प्रवत्ति इगलण्ड, फ्रांस एव स्पेन के शासको की देन है । पुनर्जागरण-काल मे केन्द्रीकरण की प्रवत्ति को और अधिक बल मिला । ब्रिटिश सविधानवाद ने उदार सस्थाओ को जन्म दिया तथा उन्ह गति एव निरन्तरता प्रदान की । अमेरिकी एव फ्रेंच क्रान्तियो ने सवप्रथम लिखित सविधान प्रदान किये और इस प्रकार स्वतन्त्रता एव सत्ता म समन्वय का प्रयास किया । सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान ने सघवाद का जन्म दिया । 19वीं सदी सुधारो एव राष्ट्रवाद का युग था । उसका प्रभाव सवधानिक राज्य पर स्पष्ट है । औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप मध्यम वर्ग को मताधिकार प्राप्त हुआ और आधुनिक लोकतन्त्र के भवन का निर्माण हुआ । औद्योगिक क्रान्ति ने राष्ट्रवाद एव सवधानिक सुधारो को और अधिक अग्रसर किया है । प्रथम विश्व-युद्ध के फलस्वरूप अनुदार

10 *Modern Political Constitutions* p 47
11 *Ibid* pp 53 55

5

शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त

THE THEORY OF THE SEPERATION OF POWERS

राज्य के प्रारम्भिक काल मे शासन के काय एव दायित्व बहुत कम थे। उस समय शासन का सम्ब ध केवल कर एकत्रित करने तथा युद्ध एव सुरक्षा मात्र से था। विधि या नियमो का निर्माण या याय के सम्पादन का काय धार्मिक सस्थाओ, परिवारो के प्रमुखो, साम तो या राजा द्वारा सम्पादित किया जाता था। प्राय यह सभी काय प्रचलित रीति रिवाजो एव परम्पराओ के अनुसार या निरकुश ढग से सम्पादित किये जाते थे। राज्यो के विकास के साथ-साथ उनके कार्यों मे भी वद्धि हुई। शासन त त्र सुगठित होने लगा तथा उसके कायक्षेत्र की स्पष्ट सीमा निर्धारित की जाने लगी। आधुनिक राज्यो मे शासन का काय मोटे रूप म तीन वर्गों—विधायी, प्रशासकीय एव यायिक—म विभाजित किया जाता है और इनका तीन पृथक अगो—व्यवस्थापिका, कायपालिका एव यायपालिका—द्वारा सम्पादन होता है। शासन के यही तीन अग है। शासन के कार्यों के वर्गीकरण का प्रमुख आधार कार्यों की प्रकृति का सिद्धा त है। एक से काय एक वग मे रखे जाते हैं। राज्य की इच्छा आदेशो एव विधियो के माध्यम स अभिव्यक्त होती है। अत राज्य की इच्छा को व्यवस्थित करके आदेशो एव विधियो के रूप मे प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यही विधि निर्माण है। इन विधियो को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासकीय अभिकर्ताओ की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप कायपालिका की स्थापना की गयी। यायपालिका द्वारा विधियो की व्यवस्या एव विधियो के क्रिया वयन सम्ब धी विवादो का निणय किया जाता है। विधि निर्माता एव प्रशासक के काय एक दूसरे स भिन्न हैं। इसी प्रकार, प्रशासक एव यायाधीश के काय म अ तर है। एक मत यह है कि शासन के इन तीनो अगो को एक दूसरे स स्वत त्र होना चाहिए तथा पृथक पृथक व्यक्तियो द्वारा प्रत्येक अग के कार्यों का सम्पादित किया जाना चाहिए। उ हे एक दूसरे के कार्यों म हस्तक्षेप नही करना चाहिए। इस ही शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त कहते हैं। गेटेल के अनुसार 'यह सिद्धान्त कि (शासन के) कार्यों को पृथक पृथक व्यक्तियो द्वारा सम्पादित किया जाय और प्रत्येक विभाग का अपने क्षेत्र के कार्यों स ही सम्ब ध हो तथा एक दूसरे के

क्षेत्र म बाद हस्तक्षेप न कर एव अपन क्षेत्र म स्वतन्त्र हो, शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त कहलाता है।'[1]

राज्य क कार्यों का तीन भागा म वर्गीकरण सार्वभौमिक रूप म मान्य नहीं है। एक मत यह है कि शासन की शक्तिया का सम्बन्ध (i) राज्य की इच्छा क निर्माण एव अभिव्यक्ति तथा (ii) व्यक्त इच्छा क क्रियान्वयन म होता है। प्रथम का सम्बन्ध सविधान एव साधारण विधि क निर्माण म है और द्वितीय का सम्बन्ध इन विधिया का क्रियान्वित करन म है। इस दृष्टि स कार्य का सम्पादन कार्यपालिका शक्ति का ही एक भाग है। अत कार्यपालिका शक्ति के निम्न कार्य होन चाहिए

(1) व्यापक अर्थ म कार्यपालिका क कार्य हैं निरीक्षण, निर्देशन एव नियन्त्रण।

(2) प्रशासकीय कार्य अर्थात् शासन क कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन।

(3) न्यायिक कार्य अर्थात विधि की व्याख्या एव वैयक्तिक मामलो म विधि का क्रियान्वयन।

फ्रेंच लेखक न्यायिक शक्ति का सामान्यत कार्यपालिका शक्ति का एक अग मानत हैं। अत फ्रांस म शक्ति-पृथक्करण क सिद्धान्त का इगलैण्ड एव सयुक्त राज्य अमरिका स भिन्न महत्त्व है।

कुछ विचारक यह मानत हैं कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एव न्यायपालिका क वर्गीकरण म शासन की सभी शक्तिया का उल्लेख नही होता है। प्रो डीले (Dealey)[2] के अनुसार शासन की शक्तियाँ पाँच भागा म वर्गीकृत होनी चाहिए (1) विचारात्मक (Deliberative), (2) विधायी (Legislative), (3) कार्य-पालक (Executive), (4) प्रशासकीय (Administrative), एव (5) न्यायिक (Judicial)।

प्रो विलोबी (Prof Willoughby) न मतदाता-वर्ग (electorate) को शासन के पृथक् अग के रूप म मान्यता दी है। उनका मत है कि सयुक्त राज्य अमेरिका जस देशा म जहाँ लोकतन्त्र विकसित रूप म है तथा जिन देशा म सार्वजनिक नीति के निर्धारण म उपक्रम (initiative) एव जनमत सग्रह (referendum) महत्वपूर्ण भूमिका निभात हैं, मतदाताओ का शासनतन्त्र के एक अनिवार्य अग या एक पृथक शाखा के रूप म स्वीकार करना चाहिए। विलोबी प्रशासकीय शक्ति को कार्यपालिका से पृथक मानता है। प्रथम का कार्य केवल कार्यपालिका के आदेशा को क्रियान्वित करना होता है जब कि कार्यपालिका को निर्णय लेन के साथ साथ नीति निर्धारित करनी पडती है और सामान्य निरीक्षण, निर्देशन एव नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य भी सम्पादित करने पडत हैं।[3]

---

1 Gettell *Political Science*, 1956, p 209
2 Dealey *The Development of State* pp 144–145
3 Willoughby, quoted by H N Sinha *Outlines of Political Science*, p 131

लेकिन विलाबी के विचार भ्रामक हैं। मतदाताओं को शासन का पृथक अंग नहीं माना जा सकता क्योंकि इनसे राजनीतिक एवं विधिक सम्प्रभुता का अन्तर समाप्त हो जायेगा। मतदाता राजनीतिक प्रभु हैं और वह शासन या विधिक सम्प्रभु का निर्माता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में यह सम्भव है कि मतदाता सीधे उपक्रम या जनमत संग्रह के माध्यम से अपनी राय व्यक्त कर दें लेकिन वे शासन के अंग के रूप में राज्य की नीतियों का निर्माण एवं प्रशासन नहीं कर सकते। द्वितीय, प्रशासकीय एवं कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों में भेद उचित एवं तर्कसंगत माना जा सकता है लेकिन दोनों को शासन की दो पृथक शाखाएँ स्वीकारना तो अंध तर्क का दुरुपयोग है। प्रत्येक सरकार में प्रशासकीय एवं कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य एक ही अंग को सौंपे जाते हैं। इनको पृथक करने से कार्यों में दुगणन (duplication) एवं अतिक्रमण (overlap) की सम्भावना उत्पन्न हो जायेगी। अतः शासन की शक्तियों के परम्परागत वर्गीकरण—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका—को मानना ही श्रेयष्कर है।

शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का विकास

शासन के कार्यों को तीन वर्गों में अत्यन्त प्राचीन काल से ही विभक्त किया जा रहा है। अरस्तू ने कार्यों के आधार पर शासन को तीन अंगों में विभक्त किया था—सार्वजनिक सभा, दण्डाधीश एवं न्यायपालिका। इन तीनों अंगों के कार्यों को उसने क्रमशः विचारात्मक (deliberative), दण्डाधीश सम्बन्धी (magisterial) और न्यायिक (judicial) की संज्ञा दी थी।[4] लेकिन एथेन्स के नगर राज्य में शक्तियों का पृथक्करण नहीं था। सार्वजनिक सभा (Ecetessia) विधायी कर्तव्यों के अतिरिक्त कार्यपालक एवं न्यायिक कार्यों को भी सम्पादित करती थी। रोमन विचारक पोलिबियस एवं सिसेरो की रचनाओं में भी इसी प्रकार के विचार प्रतिपादित किये गये हैं। इन विचारकों ने रोमन गणराज्य की सफलता का रहस्य उसके संगठन में व्याप्त अवरोध एवं सन्तुलन की व्यवस्था को माना है। पोलिबियस ने *'रोम का इतिहास'* (छटवाँ अध्याय) नामक अपनी रचना में सीनेट (Senate), काउन्सिल (Consuls) एवं ट्रिब्यून (Tribunes) में शासन शक्ति को सन्तुलित रूप में विभाजित करने का उल्लेख किया है। लेकिन व्यवहार में रोमन सीनेट सर्वोच्च थी और शासन के अन्य अंग उसके अधीन थे। रोमन साम्राज्य एवं सामन्ती मध्य युग में शक्तियों के पृथक्करण का अन्त हो गया था। 14वीं सदी में पेडुआ निवासी मार्सीलियो (Marsilio of Padua) की रचनाओं में यह धारणा पुनर्जीवित हुई। मार्सीलियो ने शासन के विधायी एवं कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों में स्पष्ट विभाजन किया है।[5] 16वीं सदी में फ्रांसीसी विचारक जीं बोदां (Jean Bodin)[6] ने न्याय सम्बन्धी कार्यों को स्वतन्त्र अधिकारियों

4 *Politics* Bk IV, Chap XIV
5 Marsilio of Padua *In the Defensor Paeis* (1324)
6 *De la republique*, Bk I Chap X

को सापने पर वल दिया। बोदा ने राजा द्वारा न्यायिक कतव्यो को सम्पादित करन से उत्पन्न होने वाले खतरा की विस्तृत चर्चा की है। 17वी शताब्दी मे इगलैण्ड मे प्यूरिटन क्रा ति के फलस्वरूप शक्ति पृथक्करण पर विशेष वल दिया गया और विधायी एव कायपालिका के कार्या के भेद को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया। जान लाक ने शासन की शक्तियो को तीन अगा मे विभक्त किया है—विधायी, कायपालिका एव फेडरेटिव (Federative)। फेडरेटिव अग से लॉक का तात्पय राज्य के राजनयिक अभिकरणो (diplomatic agencies) से है।[7]

राजनीति शास्त्र मे शक्तियो के पृथक्करण के सिद्धा त के महत्व म वृद्धि राजनीतिक स्वत त्रता के महत्व के साथ-साथ हुई है। 17वी शताब्दी मे यह सिद्धा त निश्चित रूप धारण करने लगा था और 18वी सदी मे यह राजनीति शास्त्र म चर्चा का मुख्य विषय वन गया था।

फ्रेंच विचारक मो टेस्क्यू न सवप्रथम शक्तियो के पृथक्करण के सिद्धान्त की अपनी रचना *Spirit of the Laws* (1848) मे अधिकृत व्याख्या की है वह इसे राजनीति शास्त्र का आधारभूत सिद्धा त वताता है।[8]

मो टेस्क्यू के द्वारा शक्तियो के पृथक्करण के सिद्धा त का विकास विशेष ऐतिहासिक वातावरण म हुआ था। मो टेस्क्यू के समय मे फ्रा स म निरकुश राजत त्र का बोलवाला था। शासन की शक्तियो का प्रयोग वशानुगत राजाओ एव पार्लियामेण्टो के द्वारा किया जाता था। फ्रा सीसी पार्लियामेण्ट या ससद जन प्रतिनिधि सभाएँ नही थी। इगलैण्ड की ससद की भाति उ ह विधि निर्माण की शक्ति भी प्राप्त न थी और न उनका कायपालिका व राष्ट्रीय धन पर निय त्रण ही था। वे प्रमुख रूप मे न्यायालय थे तथा उ ह कुछेक प्रशासनिक मामलो को नियन्त्रित करने की शक्ति प्राप्त थी। म त्रिगण फ्रेंच पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी नही होते थे। इनके सदस्य अधिकाशतया न्यायाधीश, नोटेरी (Notaries) एव अ य अधिकारी हुआ करते थे जो अपने पद क्रय करके प्राप्त करते थे। इनको जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि नही कहा जा सकता था। इनके हित भी सामा य हिता से सम्बन्धित नही थे क्योकि यह सभी सदस्य समाज के उच्च वग से ही सम्बन्धित हुआ करते थे। शासन म उनका प्रभाव भी विशेष नही था। अत तत्कालीन फ्रा स मे शासन की सम्पूण शक्तिया राजा के हाथो मे केन्द्रित थी और वह अपनी इच्छानुसार ही विधियो के निर्माण के साथ-साथ शासन और न्याय करता था। फलस्वरूप फ्रा स मे निरकुश व्यवस्था प्रचलित थी और नागरिक स्वत त्रता का पूण अभाव था। मा टेस्क्यू व्यक्ति की स्वत त्रता का प्रबल समथक था। अपनी रचना म वह इसी प्रश्न पर मनन करता है। उसन व्यक्ति की स्वत त्रता के हेतु निरकुश सत्ता को सीमित करने की आवश्यकता का अनुभव किया था।

---

7 *Two Treatises of Government*, Chap XII
8 Montesquieu *L' Esprit des Lois* (The Spirit of the Laws), Bk XI Ch IV

मोन्टेस्क्यू की दृष्टि म स्वतन्त्रता श्रेष्ठ मानवीय गुण ह । शक्ति पृथक्करण क सिद्धान्त का समझने के लिए यह आवश्यक है कि यह भी ज्ञात कर लिया जाय कि मोन्टस्क्यू की दृष्टि म राजनीतिक स्वतन्त्रता (Political Liberty) स क्या अथ है। मोन्टेस्क्यू के अनुसार स्वतन्त्रता विधि सम्मत आचरण है । 'स्वतन्त्रता विधि-सम्मत कार्यों को करने का अधिकार है । यदि काइ नागरिक विधि द्वारा निषिद्ध कार्यों को करता है तो वह स्वतन्त्र नही है क्याकि इससे उसके अन्य साथिया को भी समान शक्ति प्राप्त हो जायगी ।[9] इसका अथ है कि सभी नागरिका को विधि द्वारा निर्धारित सीमा में औचित्य को स्वीकार करना चाहिए । मोन्टस्क्यू के लिए विधि से तात्पय लिखित या अलिखित कानून या परम्परागत विधिया एव परम्पराओ स ही नही था । उसके अनुसार विधि एक सिद्धान्त है अथात् एक विशेष प्रकार के शासन का सिद्धान्त है। इसे हम वाछित (desirable) सभ्यता की भावना की भी सज्ञा दे सकते हैं। स्मरणीय है कि विधि, परम्परा, अलिखित कानून, यहाँ तक कि शासन के स्वरूप का निर्धारण भी भावना द्वारा ही होता है । शासन के किसी विशेष सगठन के फलस्वरूप शासन म मनुष्या को स्वतन्त्रता प्राप्त नही हो सकती । लोकतन्त्रीय एव कुलीनतन्त्रीय व्यवस्थाए अपने आप म स्वतन्त्र नही होती । तो प्रश्न यह है कि स्वतन्त्रता फिर कहाँ सम्भव है ? मोन्टेस्क्यू के अनुसार राजनीतिक स्वतन्त्रता मध्यम (moderate) सरकारा म ही सम्भव है लेकिन हमेशा इनमे भी स्वतन्त्रता सम्भव नही होती । राजनीतिक स्वतन्त्रता तभी सम्भव होती है जब कि उनमे शक्ति का दुरुपयोग नही होता । मोन्टेस्क्यू का कथन था कि यह अनुभव सिद्ध है कि 'प्रत्येक सत्ताधारी व्यक्ति ने उस हद तक सत्ता का दुरुपयोग किया है जब तक कि उस पर प्रतिबन्ध निर्धारित नही किये जाते हैं।' इस बुराई को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि सत्ता द्वारा सत्ता (power) पर उचित ढग से प्रतिबन्ध लगाकर सत्ता के दुरुपयोग को रोका जाय ।

मोन्टेस्क्यू इसको सम्भव मानता था । उसके अनुसार सविधान ऐसा होना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति को विधि के विपरीत काय करने एव विधि-सम्मत काय करने के लिए बाध्य न होना पडे । मोन्टेस्क्यू का इसमे यह तात्पय था कि व्यक्तियो के एसे निकायो की स्थापना की जाय जो एक दूसरे के समकक्ष हो । यदि कोई निकाय अपने क्षेत्र का अतिक्रमण करता है तो दूसरे निकाय के द्वारा उसका प्रतिवाद होना चाहिए । प्रत्येक निकाय (body) को कुछ शक्तिया प्राप्त होनी चाहिए जिसकी वे स्वय अतिक्रमण से रक्षा करे । प्रतिस्पर्धी अधिकारियो म शक्ति का विभाजन इस प्रणाली की विशेषता है ।

मोन्टेस्क्यू की यह धारणा थी कि इस व्यवस्था के फलस्वरूप इगलण्ड म

---

9 'Liberty is a right of doing whatever the laws permit and if a citizen could do what they forbid, he would be no longer possessed of liberty, because all his fellow citizens would have the same power '
—Montesquieu

व्याप्त राजनीतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त किया जा सकता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता मन की ऐसी निश्चिन्तता की स्थिति है जो प्रत्येक व्यक्ति म सुरक्षा की भावना पर आधारित होती है। इस स्थिति के लिए यह आवश्यक है कि शासन ऐसा हो कि किसी को किसी से भयभीत न होना पड़े। मोन्टेस्क्यू के शब्दों म स्वतन्त्रता सुरक्षा मे या सुरक्षा सम्बन्धी जन भावना में निहित है।[10] जब प्रजा को अपनी निर्दोषिता के रक्षाथ सरक्षण प्राप्त नही होता तो स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

मोन्टेस्क्यू अन्य उदारवादी विचारकों की भाति यह स्वीकार करता था कि राज्य के द्वारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अतिक्रमण किया जाता है। अत उसने स्वतन्त्रता को राज्य के नियन्त्रण से मुक्त करने का आदश अपने समक्ष रखा था। मोन्टेस्क्यू तत्कालीन फ्रान्स की निरकुश राजतन्त्रीय व्यवस्था को राजनीतिक स्वतन्त्रता का शत्रु मानता था। वह उसे सीमित करन के साधनो की खोज म था जिससे कि निरकुशतन्त्रीय व्यवस्था पर अवरोध लगाकर उसे सन्तुलित कर दिया जाय। तत्कालीन ससद उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक महत्त्वपूण साधन प्रतीत हुई। अत उसने इस सस्था का समथन किया।

मोन्टेस्क्यू ने इगलण्ड की भी यात्रा की थी और उसन वहा की शासन प्रणाली का निकट से अध्ययन भी किया था। उसके अनुसार इगलण्ड मे पायी जाने वाली राजनीतिक स्वतन्त्रता का रहस्य यह तथ्य था कि शासन की शक्तिया एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह मे केन्द्रित न होकर पृथक पृथक व्यक्तियो के हाथो म थी। उसने इस व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण करते हुए शक्तियो के पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

मान्टेस्क्यू के अनुसार प्रत्यक शासन मे तीन प्रकार की शक्तिया होती है। य हैं क्रमश विधायी शक्ति, कायपालक शक्ति जो अन्तर्राष्ट्रीय विधि सम्बन्धी मामलो से सम्बन्धित होती है तथा वह कायपालक शक्ति जो देश की विधि सम्बन्धी मामलो से सम्बन्धित होती है। प्रथम शक्ति के अन्तगत राजा या शासक स्थायी एव अस्थायी विधिया का निर्माण करता है तथा पुरानी विधिया को सशोधित या रद्द करता है। कायपालक शक्ति के अन्तगत युद्ध या सन्धि के अलावा राजदूतो की दूसरे देशो मे नियुक्ति और दूसरे देशो के राजदूतो का स्वागत किया जाता है तथा सावजनिक सुरक्षा की स्थापना एव देश की आक्रमणो से रक्षा की जाती है। तृतीय के अन्तगत शासन अपराधियो को दण्डित करता है तथा व्यक्तियो के मध्य उत्पन्न विवादो का निवटारा करता है।

जब विधायी एव कायपालिका शक्तिया एक ही व्यक्ति या शासको के एक ही निकाय मे केन्द्रित हो जाती है तो स्वतन्त्रता का अस्तित्व नही रहता क्योंकि ऐसी

---

10 "It (political liberty) consists in security, or in the opinion people have of this security '—Montesquieu *L Esprit des Lois*, Bk XII, Ch II

अवस्था म इस बात का भय हो जाता है कि कहीं राजा व सीनेट अत्याचारी विधियां का निर्माण करके उन्हे अत्याचारपूर्ण ढग स क्रियान्वित न करन लग।

"इसी प्रकार यदि न्यायिक शक्ति को विधायी या कार्यपालिका शक्ति स पृथक नही किया जाता तो स्वतन्त्रता की स्थापना नहीं हो सकती। यदि इस (न्यायिक शक्ति) का विधायी शक्ति के साथ सयुक्त कर दिया जाय तो प्रजा क जीवन व स्वतन्त्रता को स्वेच्छाचारी नियन्त्रण का शिकार होना पडेगा क्योंकि एसी स्थिति म न्यायाधीश ही विधि निर्माता होगा। यदि न्यायिक शक्ति का कार्यपालिका शक्ति के साथ सयुक्त कर दिया जाय तो न्यायाधीश का व्यवहार हिंसायुक्त एव अत्याचार पूर्ण हो सकता है। यदि एक ही व्यक्ति या व्यक्तियो के समूह म चाहे व अभिजात्य वर्ग या साधारण जनता म से ही क्यो न हो, तीनो शक्तिया अर्थात विधि निर्माण, सार्वजनिक प्रस्तावो का क्रियान्वयन एव व्यक्तियो के विवादो को तय करने के कार्य केन्द्रित कर दिये जायें तो प्रत्येक चीज का अन्त निश्चित है।"[11]

प्रसिद्ध विधिवेत्ता ब्लेकस्टोन ने भी शक्तियो के पृथक्करण का समर्थन किया है। उसके अनुसार "जब कभी विधि निर्माण एव क्रियान्वयन के अधिकार एक व्यक्ति या एक ही व्यक्ति समूह को प्राप्त होते हैं तो सार्वजनिक स्वतन्त्रता नही हो सकती। शासन के द्वारा अत्याचारी विधियां का निर्माण किया जा सकता है एव उन्हे अत्याचारी ढग से क्रियान्वित भी किया जा सकता है क्योंकि उसके पास वे सब शक्तियाँ होती है जो विधि निर्माता के रूप में उसे प्राप्त होनी चाहिए। यदि न्यायिक शक्ति विधि निर्माण शक्ति म सयुक्त हो तो प्रजा का जीवन, सम्पत्ति एव सुरक्षा ऐसे स्वेच्छाचारी न्यायाधीशो के हाथ मे होगी जिनके निर्णय उनके विचारो द्वारा ही निर्देशित होंगे, न कि किसी मौलिक विधि सिद्धान्त द्वारा जिनका पालन न्यायाधीशो द्वारा किया जाना अनिवार्य हो। यदि न्यायिक शक्ति कार्यपालिका से सयुक्त हो तो इस एकता के कारण वे व्यवस्थापिका से कहीं अधिक शक्तिशाली सिद्ध होगी।"[12] स्मरणीय है कि बर्क ने भी गम्भीरता से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचना नही की है।

मान्टेस्क्यू के इस सिद्धान्त का उन समाजो पर विशेष प्रभाव पडा जो अत्याचारी शासनो से पीडित थे। 18वी शताब्दी के लेखको पर इस सिद्धान्त का विशेष प्रभाव था तथा परवर्ती सदियो के राजनीतिक चिन्तन एव व्यावहारिक राजनीति दोनो को इस सिद्धान्त ने प्रभावित किया है। अमेरिका एव फ्रास की क्रान्तियो को इस सिद्धान्त से विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

आलोचना—इस सिद्धान्त की अनेक आधारो पर निम्न आलोचना की गयी है

(1) मोन्टेस्क्यू को इस सिद्धान्त के सम्बन्ध मे ग्रेट ब्रिटेन स प्रेरणा मिली थी। उसकी धारणा थी कि ग्रेट ब्रिटेन मे व्यक्तियो को जो स्वतन्त्रता प्राप्त है उसका कारण

---

11 *L Esprit des Lois*, Bk XI, Ch VI
12 Blackstone *Commentaries on the Laws of England*, Vol I, pp 146 and 269

वहाँ के शासन म शक्तिया का पृथक्करण है परन्तु यह मान्टेस्क्यू का भ्रम था। इगलण्ड म उस समय ससदीय प्रणाली का प्रारम्भ ही हुआ था तथा दलीय व्यवस्था का भी वतमान रूप पूरी तरह उभर कर सामने नही आया था। उस समय इगलण्ड म राजा और ससद के दोनो सदनो की शक्तियो म सन्तुलन था तथा न्यायपालिका पर्याप्तत स्वतन्त्र थी। स्पष्ट ह कि मोन्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति-पृथक्करण का आधार ही गलत था।

(2) यह कथन भी सत्य नही है कि शक्ति पृथक्करण के बिना स्वतन्त्रता की रक्षा सम्भव नही है। ससदीय शासन-प्रणालियो म शक्ति पृथक्करण नही होता लेकिन यह कहना गलत ह कि वहाँ स्वतन्त्रता नहीं है।

(3) शासन के कार्यों म सावयवी एकता होती है। उन्ह पूणरूपेण पृथक करने का अथ शासन-व्यवस्था का पगु बना देना है। अत इस सिद्धान्त की भी सीमाएँ हैं। इसे सावभौमिक रूप से लागू नही किया जा सकता है। ऐसा करना अविवेकी एव अव्यावहारिक होगा। शक्तियो के पृथक्करण का अथ है कि शासन के विधायी, कायपालक एव न्यायिक काय शासन के विभिन्न विभागो द्वारा पृथक्-पृथक रूप से सम्पादित किये जायें। इसका अथ निरपेक्ष पृथकता नही है। शासन के विभिन्न अग जब एक दूसरे के साथ मिलकर काय करते ह तभी उनके द्वारा वाछित लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव ह।

(4) अनेक विद्वान शासन के कार्यों को विधायी, कायपालक एव न्यायिक कार्यों म वर्गीकृत करना स्वीकार नही करते। वे मोन्टेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को स्वीकार नही करते।

(5) शक्तियो के पृथक्करण का एक स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि शासन के सभी अगो का समान महत्व है। लेकिन यह सत्य नही है। व्यवस्थापिका का शासन के दो अन्य अगो से अधिक महत्व ह। व्यवस्थापिका जनता का प्रतिनिधित्व करती ह और जनता की इच्छा को विधियो के रूप म अभिव्यक्त करती है। शेष दोनो विभाग विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधियो को सुचारु रूप स क्रियान्वित करत है। शक्तियो के पृथक्करण के आधार पर कायपालिका के व्यवस्थापिका से पृथक होने के फलस्वरूप यह सम्भव है कि विधियो सही अर्थो म क्रियान्वित न की जायें।

(6) लोकतन्त्र मे शक्तियो के पृथक्करण की कोई आवश्यकता नही है और न उसकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता ही ह। मान्टेस्क्यू ने फ्रास की तत्कालीन निरकुशतन्त्रीय व्यवस्था के प्रभाव म शक्तियो की पृथकता का सुझाव दिया था। लोकतन्त्र म तो शासन की शक्ति जनता के प्रतिनिधियो के हाथ म होती ही है अत अत्याचार की सम्भावना कम होती है।

सयुक्त राज्य अमेरिका एव शक्तियो का पृथक्करण

फाइनर के अनुसार "यह कभी ज्ञात नही होगा कि अमेरिकी सविधान निर्माताओ ने मोन्टेस्क्यू के सिद्धान्त से अथवा स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की रक्षा की माग स

प्रेरित होकर शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को अमरिकी संविधान में स्थान दिया है। लेकिन यह स्पष्ट है कि वे मान्टेस्क्यू द्वारा व्यक्त एवं परिभाषित राजनीतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करना चाहते थे तथा निरंकुशतन्त्र को सीमित करने के इच्छुक थे। इससे स्पष्ट है कि वे मोन्टेस्क्यू के सिद्धान्त से प्रभावित थे। अमरिकी संविधान निर्माताओं ने जानबूझकर विस्तृत रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया है।"[13]

वर्तमान युग में संयुक्त राज्य अमेरिका ही शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को स्वीकार करने वाला सबसे महत्वपूर्ण देश है।

मसेच्यूसेट्स राज्य के संविधान (1780) में शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त की छाप स्पष्ट है। इस संविधान में घोषणा की गयी है कि "इस राज्य में व्यवस्थापिका कभी भी न तो कार्यपालक एवं न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करेगी और न ही न्यायपालिका विधायी एवं कार्यपालिका शक्ति का या उनमें से किसी एक का प्रयोग करेगी, जिससे शासन व्यक्तियों की स्वेच्छा पर निर्भर न होकर विधि पर आधारित हो।" सात वर्ष पश्चात 1787 ई में संयुक्त राज्य अमरिका के संघीय संविधान का निर्माण करने वाले सम्मेलन के सदस्यों पर इस सिद्धान्त का प्रभाव स्पष्ट था लेकिन उनके द्वारा इस सिद्धान्त को कुछ संशोधित रूप में ही मान्यता दी गयी है।

हैमिल्टन, मेडिसन एवं जय (जो सभी बाद में संयुक्त राज्य अमरिका के राष्ट्रपति बने) ने 'फेडरलिस्ट' नामक रचना में कहा है कि "एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के हाथों में विधायी, कार्यपालक एवं न्यायिक शक्ति के एकीकरण को ही अत्याचार तन्त्र की संज्ञा दी जानी चाहिए, भले ही वह व्यक्ति एवं व्यक्ति-समूह वंशानुगत आधार पर नियुक्त हो या मनोनीत हो या जनता द्वारा निर्वाचित हो।" जेम्स मेडीसन[14] ने 'फेडरलिस्ट' में ही अपने मत की पुष्टि में मोन्टेस्क्यू से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। एक दूसरे सदस्य जॉन आदम का कथन था कि "यदि एक ही प्रतिनिधि सभा को सभी शक्तियाँ—विधायी कार्यपालक एवं न्यायिक—दे दी जाती है तो ऐसी व्यवस्था निरंकुश शासन से भी अधिक है और देरअबेर में अल्पसंख्यकों के अधिकार का अतिक्रमण होगा।"

केलीफोर्निया राज्य के संविधान में घोषणा की गयी थी कि शासन की शक्तियाँ तीन विभागों—विधानमण्डल, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका—में विभाजित होंगी और कोई व्यक्ति जिसे इनमें से एक भी शक्ति के प्रयोग का अधिकार प्राप्त नहीं होगा किसी भी शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा।

संयुक्त राज्य अमरिका का वर्तमान संविधान भी शक्ति पृथक्करण पर आधारित है। विधायी शक्ति कांग्रेस में,[15] कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में[16] और न्यायिक

13 Finer H *The Theory and Practice of Modern Government*, 1956, p 99
14 Madison *The Federalist*, Essay XLVII
15 Article I
16 Article II

शक्ति सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य सघीय न्यायालयो मे, जो समय समय पर काग्रेस द्वारा स्थापित किये जायँ, अधिष्ठित है।[17] यद्यपि सविधान म शक्ति पृथक्करण का कोई स्पष्ट उल्लेख नही है पर तु शासन के तीनो अगो को पृथक पृथक अनुच्छेदो के द्वारा पृथक शक्ति प्रदान की गयी है। इस व्यवस्था से अमेरिकी सविधान म शक्तियो के पृथक्करण की स्थापना हुई है। अधिकाश अमेरिकी नागरिक शक्तियो के पृथक्करण को प्राकृतिक विधि की भाति विवाद के परे मानते थे। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने भी अमेरिकी सविधान मे शक्ति पृथक्करण के अस्तित्व को स्वीकार किया है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार अमेरिकी सविधान का यह एक प्रमुख गुण है कि राज्यो एव राष्ट्रीय सरकार को जो शासन की शक्तिया प्रदान की गयी ह वे तीन—कायपालक, विधायी एव न्यायपालिका—विभागो के मध्य विभाजित हैं।

इस प्रणाली के सफल सम्पादन के लिए यह आवश्यक है कि जिन व्यक्तियो को एक शाखा की शक्तिया प्रदान की गयी हो उन्हे दूसरे विभाग को प्रदत्त शक्तियो मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए अपितु प्रत्येक को विधि के अधीन अपने विभाग तक ही सीमित होना चाहिए।[18]

अमेरिकी सघीय सविधान मे शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को काफी सशोधित कर दिया गया है। सघीय विधानमण्डल—काग्रेस—द्विसदनात्मक है। दोनो सदनो के सदस्यो को भिन्न-भिन्न कालो के लिए भिन्न तरीको से निर्वाचित किया जाता है। सीनेट के सदस्य छ वष के लिए निर्वाचित किये जाते है तथा एक तिहाई सदस्य प्रति दो वष पश्चात अवकाश ग्रहण करते है। प्रतिनिधि सभा का काय काल दो वष है और उसके सदस्य प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा चुने जाते है। दोनो सदन एक दूसरे पर अवरोध (check) के रूप म काय करते ह। कायपालिका न तो व्यवस्थापिका पर निभर है और न ही जनता पर। सविधान निर्माता कायपालिका को प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित करके अत्यधिक शक्तिशाली बनाने के इच्छुक नहीं थे। अत कायपालिका (राष्ट्रपति) के निर्वाचन के लिए विशेष निवाचक मण्डल की व्यवस्था की गयी है। राष्ट्रपति को भी निर्वाध क्षेत्राधिकार प्राप्त नही है।

सयुक्त राज्य अमेरिका म कायपालिका को विधि निर्माण मे अधिकार प्रदान किया गया है। उसे काग्रेस द्वारा पारित विधियो पर आशिक निषेधाधिकार (partial-veto) प्राप्त है। काग्रेस के नाम राष्ट्रपति सन्देश भेजकर विधियो का प्रस्ताव कर सकता है। इसी प्रकार, व्यवस्थापिका अर्थात काग्रेस को कायपालिका शक्तिया प्राप्त है। सीनेट—काग्रेस का द्वितीय सदन—को राष्ट्रपति द्वारा की गयी सन्धिया एव नियुक्तिया को दो तिहाई बहुमत से अनुमोदित करने का अधिकार प्राप्त है। युद्ध करने एव शान्ति स्थापित करने की शक्तियाँ काग्रेस को प्राप्त हैं। सघीय सरकार के पदाधिकारियो को काग्रेस की सदस्यता प्राप्त नही हो सकती। कायपालिका अर्थात् राष्ट्र

---

17 Article III
18 *Kilbourn* vs *Thompson* (S C)

पति और उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस म उपस्थित नहीं हो सकते । अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के अनुमोदन से की जाती है । लेकिन अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय का कांग्रेस द्वारा पारित विधियों की वैधानिकता की परीक्षा करने का अधिकार प्राप्त है । दलीय पद्धति के कारण शक्ति-पृथक्करण की कठोरता और भी कम हुई है । राजनीतिक दल व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के मध्य एक कड़ी का कार्य करते हैं । राष्ट्रपति एवं कांग्रेस म जब एक ही दल के सदस्य होते हैं, जैसा 1895 से 1911 ई तक था, तो वे एक ही दलीय समिति के निर्देश के अधीन समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं ।

अमेरिकी राज्यों की सरकारों म शक्ति-पृथक्करण अधिक पूर्ण रूप म पाया जाता है । व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के सदस्य तथा राज्यपाल एवं अन्य अधिकारी जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं । राज्यों के संविधान म दो व्यवस्थाएँ शक्ति-पृथक्करण का अपवाद है । प्रथम, प्राय सभी राज्यों म गवर्नरों का आंशिक निषेधाधिकार तथा व्यवस्थापिका को सन्देश भेजने का अधिकार प्राप्त है । द्वितीय, सभी राज्यों के न्यायालयों म शासन के कार्यों की वैधता को चुनौती दी जा सकती है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका के संघीय संविधान निर्माताओं ने संविधान म शक्तियों के पृथक्करण की घोषणा नहीं की है । संविधान मे फाइनर के अनुसार "वितरणात्मक अनुच्छेद (distributing clause) नहीं था और पूर्ण पृथक्ता की भी व्यवस्था नहीं थी क्योंकि ऐसी अवस्था मे शासन चलाना ही असम्भव हो जाता ।"[19] संविधान म अवरोध एवं सन्तुलन (checks and balances) की व्यवस्था द्वारा शासन का व्यवस्थित रूप मे संचालन सम्भव हो सका है ।

अमेरिकी संघीय संविधान के आलोचकों को संविधान की व्यवस्था से नवीन प्रकार के अधिनायकतन्त्र के उदय का भय था । जेम्स मेडीसन ने इस आलोचना का उत्तर दिया है और उत्तर मे उसने मोन्टेस्क्यू के तर्कों को मुक्तहस्त रूप म प्रयोग किया है । मोन्टेस्क्यू के विचारों के अनुसार "इगलैण्ड की सरकार के विभागों मे पूरी तरह पृथक्करण नहीं है । इनमें आंशिक सम्बन्ध है जो स्वतन्त्रता के लिए हानिकारक नहीं है । शासन की प्रकृति अतिक्रमणात्मक (encroaching nature) है और इसे स्वीकार भी किया गया है ।" मेडीसन को व्यवस्थापिका की विस्तारवादी शक्ति से विशेष भय था क्योंकि विधायी शक्ति की व्याख्या कठिन है । व्यवस्थापिका वित्त पर नियन्त्रण के माध्यम से कार्यपालिका के अधिकारों पर नियन्त्रण कर सकती है । अत मेडीसन की दृष्टि म व्यवस्थापिका की शक्ति के विस्तार को रोकने की आवश्यकता है । उसने जेफरसन के इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया कि शासन के तीन म से दो अंग जब संविधान के अतिक्रमण के कारण संशोधन की मांग करें तो जनता से अपील की जाय । मेडीसन का तर्क था कि इससे संविधान की

19 Finer, H *op cit*, pp 99–100

पवित्रता एव स्थिरता मे से जनता का विश्वास उठ जायेगा । उसने यह सुझाव दिया था कि शासन के आन्तरिक ढाचे म ऐसी व्यवस्था की जाय कि "उसके विभिन्न घटक अगा म स्वाभाविक सम्बन्ध बने रह और सभी अग यथास्थान रहकर अपने काय कर सके ।'[20] अत सघीय अमेरिकी सविधान म पूण शक्ति-पृथक्करण से उत्पन्न दोषो को दूर करने के लिए अवरोध एव सन्तुलन की व्यवस्था की गयी है । एक अग की शक्ति पर दूसरे अग द्वारा रोक (check) लगाकर शासन की शक्तिया को सन्तुलित किया गया है । अत अवरोध एव सन्तुलन का सिद्धान्त (The principle of checks and balances) शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का पूरक है और उसे व्यावहारिक बनाता है ।

अत्याचार से रक्षा एव स्वतन्त्रता की स्थापना के अतिरिक्त सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान निर्माताओ ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को एक अन्य कारण से भी अपनाया था । सम्पत्तिशाली, कुलीनतन्त्रीय एव मध्यम वग को विधान मण्डला मे गैर-सम्पत्तिशाली वर्गों के प्रतिनिधिया के बहुमत का भय था । प्रो एफ ए केव (Prof F A Cave) के अनुसार सम्पत्तिशाली वग ने अपनी सम्पत्ति एव सुविधा की रक्षा की व्यवस्था शासन को इस प्रकार सगठित करके प्राप्त की है कि अल्प सख्यक सम्पत्तिशाली वग शासन के एक या अधिक अगा का अवरोध एव सन्तुलन प्रणाली के अनुसार प्रयोग करके जनता के ऐसे प्रत्येक काय को जो शक्तिशाली वग के लिए अहितकार हो, रोक सक्त है ।

स्मरणीय है कि डॉ चार्ल्स ए बीयड[21] ने *'सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान की आर्थिक व्याख्या'* नामक अपने लेख मे यह सिद्ध किया है कि सघीय सविधान ऐसे व्यक्तियो के प्रयत्नो का परिणाम है जिनके आर्थिक हितो को 1777 ई के परिसघ (Confederation of 1777) द्वारा स्थापित शासन प्रणाली से क्षति पहुँची थी । अत वे ऐसे सविधान के निर्माण के लिए कृतसकल्प थे जिसके अन्तगत उनके हितो की रक्षा एव सवधन हो सके ।

फाइनर के अनुसार अमेरिकी सविधान निमाताओ के उपरोक्त सभी उद्देश्या की पूर्ति तो न हो सकी लेकिन मुख्य उद्देश्य अवश्य पूण हो सका । वे शासन की शक्तियो को सफलतापूवक पृथक कर सके थे । उन्होने कायपालिका को व्यवस्था-पिका से पृथक कर दिया । व्यवस्थापिका को दो सदनो मे विभाजित करन से उनमे निरन्तर प्रतिस्पर्द्धा की सम्भावना हो गयी तथा व्यवस्थापिका को कायपालिका एव उसके दायित्वा से पूणरूपेण पृथक कर दिया । ब्रिटेन एव फ्रास की विधि निर्माण-प्रक्रिया से भिन्न विधि प्रक्रिया एव वित्त विधेयक प्रक्रिया की स्थापना की । सयुक्त राज्य अमेरिका मे मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का पूण अभाव है । प्रत्येक विभाग का अपना पृथक दायित्व है ।

---

20 *The Federalist*, Essay LI, para 1
21 Beard, C A *An Economic Interpretation of the Constitution of the United States*, 1913, quoted by K C Wheare *op cit*, pp 67-68

शक्ति पृथक्करण के कारण सयुक्त राज्य अमेरिका म अनेको समस्याएँ उत्प हुई है जिनके ममाधान की आवश्यकता पडी है । समाज को अनक बार निराश भी होन पडा है । शासन की अथ व्यवस्था को नियमित करन के प्रयत्नो के कारण व्यवस्था पिका एव कायपालिका के मध्य क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर तीव्र विवाद उत्पन्न हो गये थे । काग्रेस ने कायपालिका की नीतियो पर सदव ही नियन्त्रण रखा है, यहा तक कि रूजवेल्ट का प्रथम राष्ट्रपतित्व-काल भी इसका अपवाद न था । राष्ट्रपति एक दल का और कांग्रेस मे बहुमत दूसरे दल का होता है तब दोनो के मध्य गतिरोध के प्राय अधिक अवसर होते है। ऐसी अवस्था मे प्राय राष्ट्रपति निषेधाधिकार (veto) के अस्त्र का खुलकर प्रयोग करता है तथा काग्रेस राष्ट्रपति द्वारा समर्थित नीतिया पर विधि निर्माण को अस्वीकार कर देती है ।

काग्रेस द्वारा अपनी विधियो के उचित क्रियान्वयन के लिए स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की नियुक्ति की जाती है जो कायपालिका के नियन्त्रण से मुक्त होते हैं। काग्रेस ने इन आयोगा की स्थापना करके कायपालिका से पृथक एव स्वतन्त्र अद्ध विधायी सत्ता का निर्माण किया है । व्यवहार मे आयोगा की स्थापना से अनेक कठि नाइया उत्पन्न हुई है । यदि आयोग राष्ट्रपति से भिन्न एव विपरीत दृष्टिकोण रखता है तो वह राष्ट्रपति की योजना को समाप्त कर सकता है और आयोग के क्षेत्र एव शासन की नीति के समन्वय स सम्बन्धित राष्ट्रपति के सभी प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं।

आयोगो को अपने क्षेत्र म विधि निर्माण के अधिकार भी प्राप्त है। काग्रस द्वारा आयोगा को विधि निर्माण के अधिकार के प्रदत्तीकरण को सर्वोच्च न्यायालय ने अवैधानिक ठहराते हुए पेट्रोलियम कोड एव इण्डस्ट्रियल रिकवरी एक्ट को अवध घापित किया था। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने वाद मे प्रशासकीय विधि-निर्माण को इस शत पर वध माना कि ऐसी विधिया सुस्पष्ट होनी चाहिए ।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे अवरोध एव सन्तुलन

शक्ति पृथक्करण म अटूट विश्वास रखने वाले विद्वानो की भी यह धारणा है कि शक्तियो के विशुद्ध या निरपक्ष (absolute) पृथक्करण के फलस्वरूप शासन का चलना असम्भव ही है । इस सिद्धान्त के कट्टर समथक मेडीसन की भी यही धारणा थी । इस सिद्धान्त का यह अथ कदापि नही है कि विधायी, काय पालिका एव न्यायपालिका विभागा म परस्पर कोई सम्बन्ध ही न हो । मेडीसन का मत था कि "तीना विभागा द्वारा सम्बन्धित हाकर जव तक एक दूसर पर नियन्त्रण नही रखा जाता शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त व्यवहार म असम्भव है । शक्ति पृथक्करण का यह अथ नही है कि तीना विभागा का एक दूसरे पर नियन्त्रण न हो । [22] अनियन्त्रित शक्ति हमशा खतरनाक होती है । इसी को अत्याचारतन्त्र कहत हैं। शक्ति क प्रतिरोध के लिए शक्ति आवश्यक हाती है । अत अमरिकी सविधान

22 Madison *The Federalist* Essay XIVII

ाओ ने सविधान मे शक्ति पृथक्करण को स्वीकार करते हुए अवरोध एव न (checks and balances) की पद्धति को भी मान्यता दी है। अवरोध एव न का अथ यह है कि शासन के प्रत्येक अग को दूसरे अगो की शक्तिया म अधि-ादान किया गया है। अमेरिकी सविधान म कायपालिका एव विधानमण्डल शेषकर एक दूसरे की शक्तिया मे हिस्सा प्रदान किया गया है। उनकी दृष्टि रोध एव सन्तुलन की व्यवस्था का मात्र उद्देश्य शासन की शक्ति के प्रयोग को ा, नियन्त्रित एव विकेन्द्रित (diffused) करना था। अवराध एव सन्तुलन के शासन के प्रत्येक अग की स्वेच्छाचारिता को सीमित एव शक्ति के दुरुपयोग को गया है। तीना अग परस्पर एक दूसरे पर नियन्त्रण रखते हैं जिसके फलस्वरूप -सन्तुलन बना रहता है। अमेरिकी सविधान मे यह शक्ति सन्तुलन निम्नलिखित रणा से स्पष्ट है

(1) अमरिकी काग्रेस द्वारा पारित विधयका पर राष्ट्रपति की स्वीकृति अनि-है। राष्ट्रपति को दो प्रकार का निषेधाधिकार—वधानिक निषेधाधिकार utory veto) एव परम्परागत निषेधाधिकार (conventional veto)—प्राप्त रम्परागत निषेधाधिकार को जेबी निषेधाधिकार (pocket veto) भी कहते है। राष्ट्रपति किसी विधेयक को स्वीकृति प्रदान नही करता तो काग्रेस द्वारा उसे हाई वहुमत से पुन पारित करन पर वह बिना राष्ट्रपति की स्वीकृति के ही नियम बन जाता है। काग्रेस को राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अधिकार थ ही राष्ट्रपति को भी काग्रेस के नाम सन्देश भेजन का अधिकार है।

(2) राष्ट्रपति को नियुक्तिया सन्धियाँ एव समझौते करने का अधिकार है काग्रेस के द्वितीय सदन सीनेट के दो तिहाई बहुमत द्वारा इनका अनुमोदन भी यक है। स्मरणीय है कि काग्रेस न राष्ट्रपति विल्सन द्वारा की गयी वार्साई की को अस्वीकृत कर दिया था।

(3) राष्ट्रपति देश का सर्वोच्च सेनापति होने के साथ साथ देश की परराष्ट्र-का सचालक भी ह। अत वह अपनी इच्छा से यदि चाहे तो देश को युद्ध म सकता है। राष्ट्रपति बिना उचित कारण के ऐसा न करे इसलिए काग्रेस को धिकार दिया गया है कि वह युद्ध की घोषणा की पुष्टि करें।

(4) सविधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का कायपालिका एव विधान-ल (काग्रेस) से पूरी तरह स्वतन्त्र रखा गया है किन्तु उसके न्यायाधीशा की क्त राष्ट्रपति करता है और काँग्रेस का द्वितीय सदन अपने दो तिहाई बहुमत से अनुमोदित करता है। कांग्रेस को न्यायाधीशा पर महाभियोग लगाने एव पदच्युत का भी अधिकार है।

(5) राष्ट्रपति को क्षमा प्रदान करने, दण्ड को कम करने या स्थगित करने धिकार है।

(6) सविधान लागू होने के कुछ समय बाद ही सर्वोच्च न्यायालय ने कांग्रेस

द्वारा निर्मित एव राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित विधियों को सविधान के विपरीत होने पर अवैधानिक घोषित करना शुरू कर दिया था । इसे ही न्यायिक पुनरीक्षा (judicial review) की सज्ञा दी जाती है ।

(7) काग्रेस के दोनो सदन—सीनेट एव प्रतिनिधि सभा—एक दूसरे की शक्तियो को सन्तुलित करते है । प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित वित्त विधेयको म सीनेट को आमूलचूल सशोधन का अधिकार है यद्यपि वित्त विधेयक सवप्रथम प्रतिनिधि सभा म ही प्रस्तुत किय जाते है । दोना सदनो की विधायी शक्ति समान है परन्तु सीनेट को कायपालक अधिकार प्राप्त है । सीनेट को प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रस्तावित महाभियोगा के प्रस्तावा के परीक्षण का भी अधिकार है । इसके अतिरिक्त सघीय व्यवस्था भी शक्ति सन्तुलन का ही एक रूप है । सघीय शासन राज्यो के शासना पर एव राज्य सरकारें सघीय शासन की शक्तिया पर सन्तुलन रखते है ।

अवरोध एव सन्तुलन की व्यवस्था शक्ति पृथक्करण को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है । प्रो ऑग के अनुसार "एसी व्यवस्था किसी अन्य सविधान म नही है। शक्ति पृथक्करण की पद्धति अवरोध एव सन्तुलन की व्यवस्था सहित अमेरिकी शासन की मुख्य विशेषता है ।"[23] अवरोध एव सन्तुलन का उद्देश्य शासन के विभिन्न अगा म एकता एव सन्तुलन विकसित करना था परन्तु विभिन्न विभागा की एकता मे बाधा हुई है तथा शासन के कार्यो मे विलम्ब भी हुआ है । फाइनर के अनुसार "सविधान निर्माताओ ने जिन उद्देश्या की कल्पना की थी वे सभी पूण नही हो सके है क्याकि उनके द्वारा शासन के नेतृत्व म एकता (जो वतमान राजनीति की अनिवाय आवश्यकता है) को नष्ट कर दिया गया था । अध्यक्षात्मक शासन की स्थापना करके कार्यपालिका को व्यवस्थापिका स पृथक कर दिया गया तथा काग्रस के दोनो सदनो म निरन्तर प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गयी थी । दोना सदनो मे प्रत्यक मामले म पृथक पृथक नतृत्व बन गये तथा काग्रेस को राष्ट्रपति (कायपालिका) की उपस्थिति एव कार्यों से स्वतन्त्र कर दिया गया था ।'[24] कायपालिका एव व्यवस्थापिका मे शक्तियो का विभाजन तथा दोना म शक्तिया के समन्वय के उचित साधना के अभाव मे शासन के कार्यो म असाधारण विलम्ब होना स्वाभाविक था । ऑग एव रे का इस सन्दभ म कथन है कि अवरोध एव सन्तुलन की व्यवस्था न जिसका उद्देश्य शासन म पूण सन्तुलन एव व्यवस्था स्थापित करना था, शक्ति पृथक्करण के दोषा को कम करने की बजाय उनकी वृद्धि कर दी थी ।[25] कारविन के अनुसार शक्ति पृथक्करण एव अवरोध और सन्तुलन का व्यावहारिक महत्व आधुनिक समय म काफी कम हो गया है । राष्ट्रपति को प्रदत्त विधि निमाण की व्यवस्था क विकास के कारण विधि निर्माण म पर्याप्त नेतृत्व प्राप्त हो गया है ।[26] अमरिकी सविधान निर्माताओ की कल्पना से पर राजनीतिक दलो के

23 Ogg *Essentials of American Government* p 38
24 Finer, H *op cit* p 101
25 Ogg and Ray *Essentials of American Government*
26 Corwin S E *The Constitution and What It Means Today*, p 2

उदय एव विकास तथा उनके कार्यों ने सविधान द्वारा विभाजित शक्तिया का पुन वर्गीकरण सा कर दिया है और एक बडी मीमा तक देश के राजनीतिक जीवन मे कायपालिका का नेतृत्व स्थापित कर दिया है। काग्रेस ने भी सकट काल म राष्ट्रपति के नेतृत्व को स्वीकार किया है। राष्ट्रपति को विधि निर्माण की शक्तिया काग्रेस प्रदान कर सकती है परन्तु काग्रेस अपनी सभी शक्तिया राष्ट्रपति को प्रदान करने का अधिकार नही रखती। यदि काग्रेस द्वारा ऐसा किया गया, तो सर्वोच्च यायालय उसके इस काय को अवैधानिक घोषित कर देगा। अवरोध एव स तुलन की व्यवस्था म राजनीतिक दलो के फलस्वरूप पर्याप्त सशोधन हुआ है। सविधान जिसे पृथक करता है, राजनीतिक दल उसे जोडते ह।

शक्ति पृथक्करण एव अवरोध एव स तुलन के सिद्धान्तो ने भ्रम एव विवादो को भी ज म दिया है। काग्रेस एव राष्ट्रपति के बीच विभि न प्रकार क सम्ब ध रहे हैं जो राष्ट्रपति एव काग्रेस के सदस्यो के व्यक्तित्व एव तत्कालीन परिस्थितियो मे बहुत अधिक प्रभावित होते रह है। विल्सन का कथन था कि सत्ता के विभाजन एव उत्तरदायित्व की अस्पष्टता के कारण सकट काल म शासन पगु हो जाता है। जितनी अधिक शक्ति विभाजित होती है, उसी अनुपात मे सत्ता अनुत्तरदायी भी हो जाती है। वतमान काल मे राज्य के कार्यों म असाधारण वृद्धि हुई है। अत सबल प्रभावशाली एव उत्तरदायी शासन की आवश्यकता है। प्रश्न है कि अमेरिका मे प्रचलित शक्ति पृथक्करण के सिद्धा त और अवरोध एव स तुलन की प्रणाली तथा उत्तरदायी एव शक्तिशाली शासन की आवश्यकता मे सम वय कैसे स्थापित हो ? इस सम्ब ध मे विभिन्न सुझाव दिये गये है। वुड्रो विल्सन ने उत्तरदायी म त्रिमण्डलीय प्रणाली को श्रेष्ठ मानते हुए उसे स्वीकार करने का सुझाव दिया था। लेकिन अनेक विद्वानो ने अमेरिकी प्रणाली की श्रेष्ठता की प्रशसा की है। एक सुझाव यह भी आया है कि कायपालक एव विधायी तत्वो के सयुक्त म त्रिमण्डलो की स्थापना की जाय अर्थात सीनेटर एव प्रतिनिधि सदन के सदस्य राष्ट्रपति के म त्रिमण्डल म शामिल किय जायें। एक अ य सुझाव यह है कि राष्ट्रपति के म त्रिमण्डल के सदस्यो को काग्रेस के दोनो सदनो मे उपस्थित होने, शासकीय प्रस्तावो एव नीतियो के स दभ मे विचार व्यक्त करने तथा प्रश्नो का उत्तर देने का अधिकार दिया जाय। कुछ का सुझाव है कि काग्रेस की विधियो को अवैधानिक घोषित करने के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार को निलम्बित कर दिया जाय। इन सुझावो म से किसी को भी क्रिया वित नही किया जा सका है और शक्ति-पृथक्करण, बीयड के अनुसार, आज भी अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था का प्रधान तत्व है तथा उसकी शासन और राजनीति मे निरन्तर अभिव्यक्ति होती है।[27]

अन्य देशो मे शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त

ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain)

मो टेस्क्यू को शक्ति-पृथक्करण की प्रेरणा ग्रेट ब्रिटेन के सविधान स प्राप्त हुई

27 Beard, C A *American Government and Politics*, p 16

थी। लेकिन ग्रेट ब्रिटेन म शक्ति पृथक्करण मा य नही है। यह मो टेस्क्यू का भ्रम था। ग्रेट ब्रिटन के सविधान के बारे मे उसका अध्ययन सही नही था। मो टेस्क्यूकालान समय मे म त्रिमण्डलीय व्यवस्था का पूण विकास नही हुआ था। उस समय व्यवस्थापिका एव कायपालिका के सम्बन्धो मे एक सीमा तक पर्याप्त पृथकता थी। 18वी सदी के अ त तक म न्त्रिमण्डल का पूण विकास हुआ था जिसके परिणामस्वरूप विधायी एव कायपालक काय एक निकाय मे अधिष्ठित हो गये और कायपालिका सम्ब धी समस्त कार्यो पर म न्त्रिमण्डल का निय त्रण स्थापित हो गया है। ब्रिटिश म न्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका अर्थात् ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। व्यवहार मे हाउस आफ काम स के विश्वासपय त ही म न्त्रिमण्डल अपने पद पर रह सकता है। म त्रिमण्डल के सदस्य अनिवाय रूप मे व्यवस्थापिका के सदस्य होते है और विधि निर्माण म महत्वपूण भूमिका अदा करते है। कायपालिका के सदस्य के रूप मे उ हे प्रशासकीय विधियो का निमाण एव निय त्रण करने का अधिकार है।

ब्रिटिश ससद का उच्च सदन—लॉड सभा—आज भी इगलण्ड का सर्वोच्च पुनरावेदनीय यायालय है। नौ न्यायिक सदस्य जि हे Lords of Appeal in Ordinary कहा जाता है, इस सदन के आजीवन सदस्य रहते है। लाड चा सलर लाड सभा का अध्यक्ष होता है जो म त्रिमण्डल का भी सदस्य होता है एव पुनरावेदनीय यायालय (Court of Appeal), उच्च यायालय (High Court of Justice) एव उच्च यायालय के चा सरी विभाग (Chancery Division of High Court) की भी अध्यक्षता करता है। वह प्रीवी काउ सिल की यायिक समिति (Judicial Committee of the Privy Council) का भी सदस्य होता है। स्पष्ट है कि इगलैण्ड म शक्ति-पृथक्करण के सिद्धा त का नाम तक नही है। ससदीय प्रणाली वाले देशो म शासन व्यवस्था उत्तरदायित्व के सिद्धा त पर गठित होती है। वहा शक्तियो के पृथक्करण का प्रश्न ही नहीं है फिर भी इगलण्ड मे व्यवहार म यायपालिका कार्यपालिका एव व्यवस्थापिका के निय त्रण से मुक्त है।

फ्रा स (France)

शक्ति-पृथक्करण के सिद्धा त का विकास फ्रा स म हुआ था। मा टेस्क्यू फ्रा स का निवासी था। यदि रूसा ने फ्रा स की क्रा ति को प्रेरणा दी थी तो मो टेस्क्यू के विचारो ने फ्रास के प्रथम सविधानो का स्वरूप निर्धारित किया है। 1789 ई मे क्रा ति के नेताओ न जिस सविधान का निर्माण किया था, उसका आधार ही यह धारणा थी कि जहाँ शक्तियो का पृथक्करण नही है वहा सविधान नही है। फ्रा स की राष्ट्रीय सभा ने व्यवस्थापिका एव कायपालिका शक्तिया की पृथकता का सिद्धा त स्वीकार किया था। यह सविधान 1791 ई म लागू हुआ। सविधान म शक्ति पृथक्करण की उपेक्षा सम्ब धी कोई व्यवस्था नही थी। कायपालिका को विधायी शक्ति प्रदान नही की गयी थी। राष्ट्रीय सभा या भावी ससद का कोई भी सदस्य अपनी सदस्यता के समाप्त होने के 4 वष पूव तक म त्री अथवा लाभ के किसी अ य पद पर नियुक्त नही किया जा

सकता था। व्यवस्थापिका का कार्यपालिका के अध्यक्ष द्वारा भग नही किया जा सकता था। न्यायाधीश जनता द्वारा निर्वाचित होते थ। कार्यपालिका का अध्यक्ष व्यवस्थापिका क कार्यों म भाग नही लेता था। 1793 ई म यह सविधान असफल हो गया। 1795 ई म नेपोलियन द्वारा इसम सशोधन किया गया। उसन राजा के स्थान पर बहुल कार्यपालिका—डायरक्टरी (Directory)—की व्यवस्था की। डायरक्टरी के सदस्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित होत थ और इस प्रकार शक्ति पृथक्करण क सिद्धान्त म सशोधन हो गया।

1816 ई, 1830 ई एव 1848 ई म फ्रास क सविधान विभिन्न स्वरूपो म पुनर्जीवित होत रह। 1875 ई म निर्मित फ्राम क सविधान का स्वरूप सविधानो स भिन्न था परन्तु शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अमिट प्रभाव सभी सविधानो पर बना रहा। 19वी सदी भर यह तर्क किया जाता रहा कि शक्ति-पृथक्करण क सिद्धान्त के अभाव म स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी। 1875 ई के सविधान म ससदीय शासन-प्रणाली की स्थापना की गयी फलस्वरूप शक्ति-पृथक्करण क सिद्धान्त को मान्यता नही दी गयी थी। तृतीय एव चतुर्थ गणराज्य क अन्तर्गत फ्रास म ससदीय व्यवस्था थी। कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल म निहित थी और उसके सदस्य राष्ट्रीय सभा के सदस्य होत थ। मन्त्रियो के रूप म वे विभिन्न प्रशासकीय विभागो क अध्यक्ष भी होत थ। मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी होता था और राष्ट्रीय सभा के विश्वासपर्यन्त अपन पद पर रह सकता था। राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष था एव दोनो सदनो द्वारा सयुक्त अधिवेशन म चुना जाता था। उस विधि निर्माण पर निषेधाधिकार प्राप्त नही था लेकिन उस दोनो सदनो द्वारा पारित किसी भी विधेयक पर पुन विचार की माँग करन का अधिकार प्राप्त था।

फ्रास क पाँचवे गणराज्य (1958 ई) के अन्तर्गत भी ससदीय प्रणाली [illegible] बनी हुई है। फ्रासीसी मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाँति ही ससदीय कार्यपालिका है। मन्त्रिमण्डल निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है और उसी क प्रसादपर्यन्त पदारूढ रहता है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की [illegible] मन्त्रिमण्डल द्वारा विधान मण्डल म विधेयक प्रस्तुत किय जात है और [illegible] बात है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाँति ही फ्रेच प्रधानमन्त्री [illegible] का स्थान है। परन्तु [illegible] देशो की व्यवस्था म कुछ महत्वपूर्ण [illegible]। [illegible] मन्त्रिमण्डल का [illegible] फ्रेच मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ [illegible] सविधान द्वारा [illegible] व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी है। [illegible] मन्त्रिमण्डल [illegible] अपन कार्यकाल क दौरान [illegible]। फ्रास क पाँचवे [illegible] अन्तर्गत राष्ट्रपति की [illegible] राष्ट्र [illegible] वह ब्रिटिश सम्राट की [illegible] नही है।

फाइनर क [illegible] विधि [illegible] सिद्धान्त की कुछ [illegible] है। प्रथम, [illegible]

के सविधाना म न्यायपालिका को व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधियो को अवधानिक घोपित करन का अधिकार नही दिया गया है । द्वितीय, सेवा-काल म किय गय अपराध या भूल के लिए किसी राजकीय कमचारी की जाच एव उन्ह दण्डित करने का अधिकार सामान्य न्यायालय को नही दिया गया अपितु एसे अपराधो के लिए प्रशासकीय विधि एव न्यायालयो की पृथक से स्थापना की गयी । ऐसी ही स्थिति जमनी मे है लेकिन इगलण्ड मे इससे सवथा भिन्न व्यवस्था है ।[28] शक्ति-पृथक्करण क सिद्धान्त का फ्रास म स्वाभाविक परिणाम प्रशासकोय न्यायालयो की स्थापना थी । Council of State (Conscil d' Estate) फ्रास म सर्वोच्च प्रशासनिक न्यायालय है । इस न्यायालय को स्थानीय एव केन्द्रीय कमचारियो के नागरिको के प्रति अपराध या भूलो के लिए क्षेत्राधिकार प्राप्त है ।

सोवियत रूस (U S S R)

रूस के 1936 ई के स्टालिन सविधान के अन्तगत स्थापित शासन व्यवस्था म शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता नही दी गयी है । **विशिन्सकी** ने *'सोवियत सविधान एव विधि'* नामक अपनी पुस्तक म यह मत व्यक्त किया है कि सयुक्त राज्य अमेरिका एव यूरोप म शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त द्वारा कायपालिका की प्रमुखता को छिपाने का प्रयास किया जाता रहा है परन्तु कायपालिका की प्रमुखता को रोका नही जा सका है । **फाइनर** को विशिन्सकी के इस कथन मे कोई सत्यता नही दिखायी देती है ।[29]

रूस म मन्त्रिमण्डल सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी है । प्रेसीडियम भी अन्त म सुप्रीम सोवियत के प्रति ही उत्तरदायी है । मन्त्रिमण्डल के सदस्य सुप्रीम सोवियत के सदस्य होत हे और वे विधि निर्माण मे महत्वपूण भूमिका अदा करते है । अत रूस मे शक्ति पृथक्करण को स्वीकार नही किया गया है ।

भारत (India)

भारत का नवीन सविधान (1950) ससदीय प्रणाली की स्थापना करता है । मन्त्रिमण्डल (कायपालिका) के सदस्य ससद के सदस्य हात है और मन्त्रिमण्डल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी हे । राष्ट्रपति नाममात्र की कायपालिका है तथा अप्रत्यक्ष रीति से राज्यो की व्यवस्थापिकाओ एव भारतीय ससद के निर्वाचित सदस्यो के निर्वाचक मण्डल द्वारा चुना जाता है । मन्त्रिमण्डल अपने पद पर लोकसभा क प्रसादपयन्त ही रह सकता है । प्रधानमन्त्री को लोकसभा के विघटन की माग करने का अधिकार है । राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की नियुक्ति करता है लेकिन ससद को उन पर महाभियोग लगान का अधिकार प्राप्त है । कायपालिका को क्षमा प्रदान करने सम्बन्धी कुछ न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं । राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग

28 Finer, H *op cit*, p 104
29 *Ibid*, p 106

की जांच का अधिकार भारतीय ससद का है। सर्वोच्च न्यायालय को ससदीय विधिया एव कार्यपालिका के कार्यों को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है।

भारत की शासन-व्यवस्था ब्रिटिश ससदीय व्यवस्था पर आधारित है। उपरोक्त तथ्या स यह स्वयसिद्ध है कि भारत की शासन-व्यवस्था म शक्ति पृथक्करण को मान्यता नही दी गयी है।

निष्कर्ष

व्यवहार म शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त म पर्याप्त सशोधन हुआ है। अमेरिकी सविधान-निर्माताओ ने शक्ति पृथक्करण के दोषा के परिहार के रूप म ही अवरोध एव सन्तुलन क सिद्धान्त को स्वीकार किया है। शक्ति पृथक्करण एक सीमा तक ही उचित है। गेटेल के अनुसार "अपन चरम रूप म शक्ति पृथक्करण तथा अवरोध और सन्तुलन सुशासन के लिए खतरनाक है। बहुत अधिक शक्ति पृथक्करण से राज्य की विधिक रूप म अभिव्यक्त इच्छा के प्रशासन हेतु आवश्यक एकता एव सहयोग म बाधा उत्पन्न होती है और बहुत अधिक अवरोध एव सन्तुलन शासन म गतिरोध एव सघर्ष उत्पन्न कर देता है जिनसे सुशासन एव क्षमतायुक्त व्यवस्था के मार्ग मे बाधाएँ पैदा हो जाती है।"[30] शासन के विभिन्न अगो के एक से ही उद्देश्य होते है अत शासन की सफलता के लिए विभिन्न अगो म वाछित सहयोग आवश्यक है।

इस सिद्धान्त का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पडा है। लास्की ने इस सम्बन्ध म लिखा है कि "कार्यपालिका स न्यायपालिका की स्वतन्त्रता व्यक्तियो की स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है। शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की उपयोगिता एव उसका अधिकाश महत्व इस विशेषता म निहित है कि वह न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर सर्वाधिक बल देता है। यदि कार्यपालिका अपनी इच्छानुसार न्यायिक निर्णय देने लगे तो वह राज्य का पूर्ण स्वामी बन जायेगा।"[31] आज प्राय सभी सवैधानिक देशो म न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त मान्य है।

---

30 Gettell *Political Science*, p 216
31 Laski *A Grammar of Politics*, p 542

6

एकात्मक एव सघात्मक राज्य
UNITARY AND FEDERAL STATES

शक्तियो का विभाजन

शासन की शक्ति के कार्यों के आधार पर विभाजित करने के सिद्धा त—शक्ति पृथक्करण—का अध्ययन हम पाचवे अध्याय म कर चुके हैं। लेकिन आधुनिक राज्यो मे क्षेत्र की दृष्टि से भी शासन की शक्ति को विभाजित करने की आवश्यकता अनुभव हुई है। विशाल एव विस्तृत राज्यो का शासन एक ही के द्र से नही हो सकता। सुशासन के लिए यह आवश्यक है कि राज्य को पृथक-पृथक प्रशासनिक इकाइयो म विभाजित कर दिया जाय और प्रत्येक को अपने क्षेत्र म शासन के कुछ विशिष्ट दायित्व सौपे जायें। इन प्रशासनिक इकाइया का अपना शासन-सगठन भी होता है। इस आधार पर राज्य को केन्द्रीय एव स्थानीय शासना अथवा सघीय एव क्षेत्रीय शासनो मे विभाजित किया जाता है। यही एका मक एव सघात्मक शासना मे भेद का आधार है।

शासन की शक्तिया के विभाजन की आवश्यकता न केवल राज्या के विशाल आकार के कारण ही वाछनीय है अपितु इस दृष्टिकाण से भी उचित है कि शासन के अनेक दायित्वो का सम्ब ध ऐसी समस्याओ से है जो समग्र राज्य के हित के न होकर केवल स्थानीय महत्व के होते हैं। "यदि किसी राज्य मे शासन के समस्त काय केन्द्रीय सरकार के द्वारा ही किये जायँ तो सुशासन की दृष्टि से उसका काय भार अधिक होगा और शासन मे अनावश्यक व्यय एव विलम्ब होगा। इसके अतिरिक्त यह अधिक उचित एव यायपूण है कि छोटे-छोटे समाजो को उनसे सम्बधित मामला म प्रशासन का अधिकार दिया जाय क्योकि प्रत्यक्षत व्यक्तिया द्वारा अपने से सम्बधित मामलो का प्रशासन अधिक अच्छी प्रकार किया जायगा और बहुत से व्यक्तियो को राजनीतिक कार्यो म भाग लेने का अवसर भी मिलेगा।"[1]

क्षेत्रीय आधार पर शासन सत्ता के विभाजन से सम्बधित अनेक समस्याए है, जैसे—क्षेत्रा का विभाजन किस प्रकार हो, यह किस सत्ता के द्वारा निश्चित किया

1 Gettell *Political Science* 1956, p 227

जाय, कितनी शासन-सत्ता हर क्षेत्रीय इकाई को प्रदान की जानी चाहिए हर क्षेत्र म किस प्रकार की सरकार स्थापित की जानी चाहिए, आदि ।[2]

एकात्मक एव सघात्मक राज्या का भेद उपयुक्त प्रथम प्रश्न पर आधारित है अर्थात क्षेत्रीय दृष्टि से शासन-सत्ता का विशेपकर राष्ट्रीय एव स्थानीय सरकारा के रूप म विभाजित करने का अधिकार विधिक दृष्टि से किस सत्ता का प्राप्त है ? सत्ता विभाजित करने की मुख्यत दो प्रकार की पद्धति है फलस्वरूप दो प्रकार के शासन होते हैं। एक पद्धति के अन्तगत सविधान द्वारा शासन की सम्पूण सत्ता केन्द्रीय सरकार को प्रदान की जाती है जा उस सत्ता का अपनी इच्छानुसार क्षेत्रीय उपभागा को प्रदान करता है। इन क्षेत्रीय उपभागा का केन्द्रीय सरकार अपनी स्वेच्छा से निमाण करती है और सामान्य विधि द्वारा इनके क्षेत्र तथा अधिकारो मे स्वेच्छा से परिवर्तन कर सकती है। इस प्रणाली को एकात्मक सरकार कहते है।[3] दूसरी पद्धति के अनुसार राज्य के सविधान द्वारा स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय एव क्षेत्रीय सरकारो के मध्य शासन की सत्ता विभाजित होती है। इस पद्धति के अन्तगत राष्ट्रीय सरकारे और क्षेत्रीय सरकारे एक दूसरे की सत्ता मे विधिक दृष्टि से हस्तक्षेप नही कर सकती और न इस व्यवस्था मे एकाकी कोई परिवतन ही कर सकते है। शक्तिया का पुनविभाजन सविधान मे सशोधन द्वारा ही सम्भव है। इस प्रणाली के अन्तगत स्थापित व्यवस्था को सघीय व्यवस्था या सघ शासन कहत हैं।

सक्षेप म जिन राज्यो म सम्पूण शासन-सत्ता सविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार म अधिष्ठित होती है, उन्ह एकात्मक शासन कहत है, और जिन राज्या म सविधान द्वारा शासन की सत्ता को केन्द्रीय एव स्थानीय सरकारो मे विभाजित कर दिया जाता है उन्ह सघीय शासन (federal government) कहते है। इस अध्याय म क्रमश एकात्मक एव सघात्मक सरकारा का अध्ययन किया जायगा।

एकात्मक शासन

विभिन्न विद्वानो ने एकात्मक शासन (Unitary Government) की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी है। **सी एफ स्ट्राग** के अनुसार "एकात्मक शासन एक केन्द्रीय सरकार के अधीन सगठित होता हे अर्थात् केन्द्रीय शासन द्वारा प्रशासित क्षेत्रान्तगत जिलो को जो भी शक्ति प्राप्त होती है वह उन्ह केन्द्रीय सरकार की इच्छा पर प्राप्त हाती है तथा केन्द्रीय सरकार सर्वाच्च होती है और अपन क्षेत्रा को शक्ति प्रदान करन वाली विधि का उस पर कोई नियन्त्रण नही होता।"[4] अत एकात्मक राज्य म डायसी के

2 Gettell *op cit*, p 228
3 *Ibid*, p 228
4 'A unitary state is one organised under a single central govern ment that is to say, whatever powers are possessed by the various districts within the area administered as a whole by the central government and the central power is supreme over the whole without any restrictions imposed by any law granting special powers to its parts"—Strong *op cit*, p 63

अनुसार "राज्य की शक्ति एक दृश्य सर्वोच्च सत्ता संसद या जार (राजा) के हाथों में केन्द्रित होती है।"[5]

गार्नर के अनुसार एकात्मक शासन में "शासन की शक्ति संविधान द्वारा एक केन्द्रीय अंग या अंगों को प्रदान की जाती है एवं उसी से स्थानीय सरकारों का अधिकार या स्वायत्तता (जिसका वे प्रयोग करती हैं) तथा अस्तित्व की प्राप्ति होती है। एकात्मक सरकार की एक मुख्य विशेषता यह है कि केन्द्रीय शासन तथा अधीनस्थ क्षेत्रीय सरकारों के मध्य कोई संवैधानिक शक्ति विभाजन नहीं होता।"[6] दूसरे शब्दों में, एकात्मक शासन शासन का ऐसा स्वरूप है जिसमें शासन की सर्वोच्च शक्ति एक अंग या अंगों में केन्द्रित होती है और जो एक सामान्य केन्द्र से कार्य करते हैं।

फाइनर के अनुसार 'एकात्मक राज्य में सम्पूर्ण शासन सत्ता एवं शक्ति एक *ही केन्द्र के हाथों में होती है तथा उसकी इच्छा एवं अधिकारी सम्पूर्ण क्षेत्र में सर्वशक्तिमान होते हैं।*"[7]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर एकात्मक सरकार के सामान्य लक्षण निम्नवत् हैं

एकात्मक शासन में—

(1) एक राज्य में एक ही शासन होता है। शासन सत्ता का एकमात्र स्रोत एवं इच्छा होती है तथा केन्द्रीय एवं स्थानीय सरकारों में शक्तियों का कोई संवैधानिक विभाजन नहीं होता है। स्ट्राँग के अनुसार केन्द्रीय सरकार की शक्ति अनियन्त्रित होती है।

(2) केन्द्रीय सरकार द्वारा *प्रशासकीय सुविधा की दृष्टि से क्षेत्रीय प्रशासनों* का निर्माण किया जाता है। इन्हें विभिन्न देशों में भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे—डिपार्टमेंट (फ्रांस में), प्रान्त (ब्रिटिश भारत में), काउण्टी (इंगलैण्ड में), आदि।

(3) स्थानीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के द्वारा निर्मित होती हैं और उनकी स्वायत्तता एवं सत्ता का निर्धारण भी उन्हीं के द्वारा होता है। एकात्मक राज्य में स्थानीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की अभिकर्ता मात्र होती हैं।

(4) स्थानीय या क्षेत्रीय सरकारों को मौलिक शक्तियाँ प्राप्त नहीं होतीं।

स्ट्राँग के अनुसार एकात्मक सरकार की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—*प्रथम*, केन्द्रीय संसद (व्यवस्थापिका) की सर्वोच्चता, द्वितीय, अन्य सर्वोच्च निकायों का अभाव (the absence of the subsidiary sovereign bodies)।[8] स्ट्राँग ने इन दोनों

---

5 "Unitarianism in short means the concentration of the strength of the state in the hands of one visible sovereign power, be that power Parliament or Czar
—Dicey *Law of the Constitution*, p 157

6 Garner *Political Science and Government*, p 317
7 Finer H *op cit*, p 116
8 Strong, C F *op cit* p 84

विशेषताओ की व्याख्या करते हुए, यह स्पष्ट किया है कि सविधान द्वारा एकात्मक राज्यो म केन्द्रीय व्यवस्थापिकाओ को विधि निर्माण के सर्वोच्च एव निरपेक्ष अधिकार होते हैं। इसके अतिरिक्त एकात्मक राज्यो म सघीय राज्यो की भाति राज्य या क्षेत्रीय सरकारे नही होती जो सविधान द्वारा अपने क्षेत्र म स्वायत्तता का प्रयोग करती हो। सघीय राज्यो म इकाइयो को प्राप्त शक्तियाँ सविधान द्वारा प्रदत्त होती ह अत सघीय सरकार द्वारा उनमे कमी या वृद्धि नही की जा सकती।

एकात्मक राज्य के कुछ उदाहरण इगलण्ड, न्यूजीलैण्ड, आयरलण्ड दक्षिणी अफ्रीका, बेलजियम, फ्रास एव इटली है। इन सभी राज्यो म केन्द्रीय विधि-निर्माण सत्ता पर कोई नियन्त्रण नही ह। केन्द्रीय सरकार सत्ता का एकमात्र स्रोत होती ह। इगलण्ड मे स्थानीय शासन पर्याप्त शक्तिशाली एव स्वायत्तता-प्राप्त है लेकिन केन्द्रीय सरकार पर इसका कोई विधिक-नियन्त्रण नही है। स्थानीय शासन के निर्णयो को केन्द्रीय सरकार स्वेच्छानुसार बदल सकती है। इगलण्ड म स्थानीय शासन विधि निर्मात्री निकाय न होकर उपनियमो (rules and by laws) का निर्माण करने वाले निकाय होते है।

गानर के अनुसार "एकात्मक शासन का सार स्थानीय स्वशासन का अभाव है। यदि कुछ स्थानीय स्वशासन ह भी तो वह केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त ह और उसे वह अपनी इच्छानुसार सीमित या समाप्त कर सकती है।"[9]

एकात्मक शासन के गुण

(1) एकात्मक शासन के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश मे प्रशासनिक एव विधिक एकता तथा एकीकृत शासन की स्थापना सम्भव होती है।

(2) शासन का व्यय अपेक्षाकृत कम होता है क्योकि एकात्मक राज्य मे सघ शासन की तरह दुहरी शासन-व्यवस्था नही होती।

(3) लघु एव सभ्यता तथा सास्कृतिक एकता से युक्त राज्यो के लिए एकात्मक शासन सर्वाधिक उपयुक्त है। ये सरकारे शक्तिशाली एव सुदृढ होती है। सारे देश मे एक से ही कानूनो एव आदेशो का पालन होता ह।

(4) राष्ट्रीय सकट के समय एकात्मक सरकारे अधिक शक्तिशाली प्रमाणित हुई ह। अन्तर्राष्ट्रीय एव सुरक्षा सम्बन्धी दायित्वो का पालन भी वे अधिक सफलता-पूर्वक कर सकती है क्योकि राज्य के सभी अधिकारी उनकी अधीनता म होते ह।

(5) राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास के लिए एकात्मक राज्यो म उपयुक्त वातावरण होता है। प्रादेशिक एव स्थानीय भक्ति की भावनाओ को उभरने का अवसर नही मिलता और न विघटनकारी तत्व ही सक्रिय हो पाते ह। एकल नागरिकता क कारण राष्ट्रीय एकता को भी बल मिलता है।

(6) आर्थिक विकास भी शीघ्रता एव सरलता स सम्भव होता है। एक सी नियोजित नीति सारे देश को एक आर्थिक इकाई मानकर क्रियान्वित की जा सकती है।

9 Garner *op cit*, p 378

एकात्मक शासन के दोष

(1) एकात्मक शासन म शक्तिशाली प्रातीय एव क्षेत्रीय सस्थाआ का अभाव रहता है । स्थानीय समस्याआ एव नीतियो की व्यवस्था केन्द्रीय अधिकारिया द्वारा की जाती है । केन्द्रीय अधिकारिया को स्थानीय समस्याआ का पयाप्त ज्ञान नही होता, फलस्वरूप स्थानीय हिता की पूण रक्षा सम्भव नही होती है ।

(2) एकात्मक शासन विशाल आकार एव व्यापक जनसख्या वाल राज्यो क लिए उपयुक्त नही होते है । इससे प्रशासन म शिथिलता आ जाती है तथा अनावश्यक विलम्ब होता है । इसमे लालफीताशाही एव नौकरशाही का बोलबाला होता है। सक्षेप मे, एकात्मक शासन मे प्रशासनिक केन्द्रीकरण एव एकरूपता हाती है ।

(3) धम, भाषा, नस्ल आदि की विभिन्नताआ से युक्त राज्या म एकात्मक शासन सफल नही हो सकता । प्रत्येक सास्कृतिक समूह का अपना व्यक्तित्व होता है। एकात्मक शासन के अन्तगत वे अपनी परम्पराओ अथवा रीतियो के अनुरूप अपना विकास नही कर पाते ।

(4) इस शासन के अन्तगत स्थानीय जनता म पहल करन की क्षमता का विकास नही हो पाता और न सावजनिक कार्यों मे जनता की रुचि ही उत्पन्न हो पाती है । गानर के अनुसार "इस व्यवस्था के अधीन स्थानीय शासन की शक्ति कमजार हो जाती है और केन्द्रीकृत नाकरशाही का विकास होता है ।"

(5) एकात्मक शासन प्रणाली लोकतन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है । गानर क अनुसार इस प्रणाली को कभी-कभी केन्द्रकृत (centralised government) की भी सज्ञा दी जाती है यद्यपि यह दोनो ही समान नही हं लेकिन एकात्मक शासन अधिकतर केन्द्रकृत होता है। अत्यधिक केन्द्रीकरण के इस दोष को विकेन्द्रित व्यवस्था को प्रोत्साहन देकर कम करने का प्रयत्न किया गया है ।

फ्रान्स म एकात्मक शासन है । शासन की सम्पूण सत्ता परिस स्थित केन्द्रीय सरकार म अधिष्ठित है। केन्द्रीकरण की इस व्यवस्था को शिथिल बनाने क लिए अनेक कदम उठाये गये है । केन्द्रीय सरकार न अनेक प्रशासनिक मामला को डिपाटमा एव कम्यून के प्रीफेक्ट, उप प्रीफेक्ट, मयर एव पुलिस कमिश्नर आदि अधिकारिया का हस्तान्तरित कर दिया है । इसस परिस स्थित केन्द्रीय शासन म केन्द्रीकरणजनित अव्यवस्था कम हुई है । लेकिन समस्त स्थानीय अधिकारिया की नियुक्ति परिस स्थित केन्द्रीय सरकार द्वारा ही की जाती है और व उसके अभिकता के रूप म ही काय करत हैं । फ्रान्स म विकन्द्रीकरण की व्यवस्था इस सीमा तक ही है कि वहाँ स्थानीय स्वशासन की स्थापना की गयी लेकिन स्थानीय अधिकारिया की शक्तियाँ पर्याप्तत सीमित हैं और केन्द्रीय सरकार का उन पर व्यापक प्रशासनिक नियन्त्रण है । यही स्थिति सभी एकात्मक राज्या की है ।

सघात्मक राज्य

सघात्मक शासन (Federal State) एकात्मक शासन का विलाम है । इसम

शासन की सत्ता सविधान द्वारा केन्द्रीय एव स्थानीय या क्षेत्रीय (local or regional) सरकारो मे विभाजित होती है और केन्द्रीय सरकार स्वेच्छा से स्थानीय या क्षेत्रीय सरकारा के सविधान प्रदत्त अधिकारा एव शक्तिया को समाप्त या परिवर्तित नही कर सकती । ऐसे परिवतन सविधान म सशोधन द्वारा ही सम्भव है । विभिन्न विद्वानो ने सघात्मक शासन की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी है

मोन्टेस्क्यू (Montesquieu) के अनुसार सघ राज्य एक प्रकार का "ऐसा समझौता है जिसम अनेक छोटे-छोटे राज्य एक ऐसे वडे राज्य मे विलीन हो जाते है जिसकी उनके द्वारा स्थापना की जाती है ।"

फ्रीमेन के अनुसार "सघीय शासन मे पूण विकसित दृष्टि से एक तरफ तो सघ के सभी सदस्य शासन से सम्बन्धित मामलो मे पूण स्वतन्त्र होने चाहिए और दूसरी तरफ सभी सदस्यो को सामूहिक रूप से सम्बन्धित विषया मे एक सामान्य सत्ता के अधीन होना चाहिए । प्रत्येक सदस्य (राज्य) अपने क्षेत्र मे पूण स्वतन्त्र होना चाहिए परन्तु एक दूसरा क्षेत्र भी होता है जिसमे उसका पूरा अस्तित्व ही तिरोहित हो जाता है ।"[10]

डायसी के अनुसार 'सघवाद का अथ है कि राज्य की शक्तियो को ऐसे अनेक समान निकायो म विभाजित किया जाय जो सविधान की अधीनता एव नियन्त्रण मे काय करते हो ।'[11] सघीय शासन राजनीतिक व्यवस्था है जिसके द्वारा राष्ट्रीय एकता एव राज्या के अधिकारा मे समन्वय स्थापित किया जाता है ।

प्रो ऑग एव रे के अनुसार "सघीय शासन प्रणाली राजनीतिक सस्थाओ की एक ऐसी व्यवस्था है जिसम सत्ता के दो केन्द्र—एक केन्द्रीय तथा दूसरा क्षेत्रीय—होते ह । किसी अन्य व्यवस्था की तुलना मे इस व्यवस्था म शक्तियो एव दायित्वो के स्पष्ट विभाजन की आवश्यकता होती है । सविधान द्वारा निर्धारित व्यवस्था किसी निरपेक्ष राजनीतिक वार्तालाप का परिणाम नही होती अपितु अपने समय की माग का परिणाम होती है ।"[12]

हेरोसन मूर के शब्दो मे "सघीय शासन म किसी राज्य की सत्ता दो प्रकार के सगठना म विभाजित होती है—(i) केन्द्रीय शासन, और (ii) अनेक स्थानीय सरकारें । दोनो एक दूसरे से इस सीमा तक पृथक होती हैं कि कोई किसी को समाप्त नही कर सकत और न एक दूसरे के सविधान निर्धारित क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण ही कर सकते है ।"[13]

गानर के अनुसार "सघात्मक शासन एकात्मक शासन का विलोम है । इसकी मुख्य विशेषता यह है कि राज्य की विधायी, शासन एव प्रशासन की सत्ता राजधानी

---

10 Freeman, E A *History of Federal Government*, p 3
11 Dicey, A V *Law of the Constitution*, p 157
12 Ogg and Ray *Introduction to American Government, 1956*, p 45
13 Moore, W Harrison *The Constitution of the Commonwealth of Australia*, 1910, p 68

के केन्द्रीय अंग मे सगठित न होकर केन्द्रीय सत्ता एव सघ की घटक इकाइयो के अधिकारियो के हाथो मे विभाजित होती है। प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्राधिकार म स्वतन्त्र होता है और केन्द्रीय सरकार का उन पर कम या कोई नियन्त्रण नही होता। अपने क्षेत्र म राज्य विधि निर्माण तथा शासन एव प्रशासन के मामलो म स्वतन्त्र होते है और स्थानीय आवश्यकताओ एव हितो के अनुरूप ही काय करते हैं अत 'फेडरल प्रणाली' केन्द्रीकृत शासन एव स्थानीय शासन के समन्वय का प्रतिनिधित्व करती है।'[14]

मेरियट ने सघ व्यवस्था को मिश्रित या सयुक्त राज्य की सज्ञा दी है।[15]

विलोबी इसे बहुशासनतन्त्रवादी राज्य कहता है।[16]

सर रॉबर्ट गटन के अनुसार "जिस शासन मे सप्रभुता या राजनीतिक सत्ता केन्द्रीय एव स्थानीय सरकारो मे इस प्रकार विभाजित हो कि दोनो अपने-अपने क्षेत्रो मे एक दूसरे से स्वतन्त्र हो, तो वह सघात्मक शासन है।'[17]

हेमिल्टन के अनुसार "सघीय राज्य राज्यो का सघ है जो एक नये राज्य का निर्माण करता है।"

स्ट्राग के अनुसार सघात्मक राज्य वह राज्य है "जिसम अनेक समान (coordinate) राज्य सामान्य उद्देश्य के लिए एकीकृत हो जायें।"[18]

हरमन फाइनर के अनुसार "सघीय राज्य म सत्ता एव शक्तियो का एक भाग स्थानीय क्षेत्र मे और दूसरा भाग केन्द्रीय सस्था म अधिष्ठित होता है जिनका निमाण जानबूझकर पहले से स्वतन्त्र स्थानीय क्षेत्रो के सघ (association) द्वारा होता है।"[19]

के सी व्हीयरे को सघात्मक शासन व्यवस्था का एक अधिकृत विद्वान माना जाता है। व्हीयरे के अनुसार सघ (Federation) राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र का बहुचर्चित विषय है तथा इसकी व्याख्याएँ बहुत कम स्पष्ट है। व्हीयरे के अनुसार सघात्मक शासन की कोई परिभाषा उस समय तक पूर्ण या मान्य नही मानी जा सकती जब तक उसम सयुक्त राज्य अमरिका के सविधान को स्थान न दिया गया हो। राजनीतिक सगठन का जो सिद्धान्त सयुक्त राज्य अमरिका के सविधान म पाया जाता है, वह सघीय शासन का सिद्धान्त है। व्हीयर न सघीय सिद्धान्त की परिभाषा देते हुए कहा है कि सघीय सिद्धान्त का अर्थ सत्ता क विभाजन की ऐसी पद्धति से है जिसके द्वारा सामान्य (general) एव क्षेत्रीय (regional) सरकारें अपने क्षेत्रो म सार्वभौम होते हुए भी सहयोगी एव स्वतन्त्र (coordinate and independent) होती हैं।'[20]

14 Garner *op cit* pp 381 82
15 Marriot *The Mechanism of the Modern State* Vol II, p 382
16 Willoughby *The Government of the Modern State*, p 261
17 Quoted by Wheare, K C *Federal Government*, p 33
18 Strong C F *op cit* p 64
19 Finer, H *op cit*, p 10
20 Wheare, K C *op cit*, p 10

इस सिद्धा त का विश्लेषण करत हुए ह्वीयर न यह स्पष्ट किया है कि प्रत्यक सरकार को अपने क्षेत्र तक ही सीमित रहत हुए दूसर के हस्तक्षेप स मुक्त होना चाहिए । इसी सिद्धा त के आधार पर ह्वीयरे ने सघीय शासन की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'यदि एक शासन प्रणाली म मुख्य रूप से सामा य एव क्षेत्रीय सत्ताआ म शक्तिया का विभाजन किया जाता है और प्रत्येक सत्ता अपने क्षेत्र म दूसरे के साथ साथ रहते हुए भी स्वत त्र है तो वह शासन सघीय है ।"[21] ह्वीयरे उपर्युक्त सघीय सिद्धा त को सविधान म अगीकृत करना ही पर्याप्त नही मानत । उनके अनुसार शासन का स्वरूप सघीय है अथवा नही, यह उसके क्रिया वयन पर ही निभर करता है । अत ह्वीयरे के अनुसार सघीय सिद्धा त को शासन म व्यवहार रूप म और सविधान म सिद्धान्तत क्रिया वित किया जाना चाहिए । सघीय राज्य का सविधान एव सरकार दोनो ही सघीय होने चाहिए । अत ह्वीयरे ने सघीय शासन एव सघीय सविधान म अ तर या भेद किया है । एक देश का सविधान सघीय हो सकता है पर तु यह सम्भव है कि व्यवहार म वह सविधान इस प्रकार काय करता हो कि उसे सघीय नही कहा जाना चाहिए या यह भी सम्भव है कि गर-सघीय सविधान इस प्रकार क्रिया वित किया जाता हो कि वह सघीय सरकार का उदाहरण प्रस्तुत करे ।[22]

उपयुक्त सभी परिभाषाओ म से एक ध्वनि निकलती है कि सघीय राज्य मे केन्द्रीय एव स्थानीय या क्षेत्रीय सरकारा को अपने अपने क्षेत्रा म स्वत त्र होना चाहिए तथा केन्द्रीय एव स्थानीय सरकारो को एक दूसरे क क्षेत्रा म हस्तक्षेप नही करना चाहिए । लेकिन यह मत केवल आशिक सत्य पर ही बल देता है । फाइनर ने परिभाषा सम्बन्धी इस कमी की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "एक बार जस ही कुछ विशिष्ट बाता को दूसरी बातो से पथक करने के उद्देश्य स सामा य नाम प्रदान कर दिया जाता है, वे वस्तुएँ स्वत ही स्पष्टता के लिए विख्यात हो जाती है लेकिन ऐसा होता नही है ।" फाइनर का यह कथन सघीय शासन की परिभाषा पर भी लागू होता है । फिर सघीय शासन भी हर राजनीतिक सस्था की भाँति विकास का परिणाम है । कोई भी दो सघात्मक शासन एक से नही होते और न कि ही दो सघीय सरकारो का एक प्रकार से उदय या विकास ही हुआ है । हर सविधान सम्ब धित देश, काल एव जनता और उनकी आवश्यकताओ का परिणाम होता है । सघात्मक राज्यो के सविधान भी इसके अपवाद नही है ।

इसके अतिरिक्त सघात्मक शासन एक उद्देश्य की पूर्ति का साधन है । यह किसी समाज की विशेष राजनीतिक एव सामाजिक परिस्थितियो म सुशासन के हेतु स्थापित शासन व्यवस्था है । अत इसकी कोई भी एसी परिभाषा नही हो सकती जो उसके उद्देश्य के विपरीत हो ।

प्रो एस जे सी विले ने सघवाद के व्यावहारिक रूप के आधार पर परिभाषा

21 Wheare K C *op cit*, p 33
22 *Ibid*, p 10

देने का प्रयत्न किया है। प्रो विले ने 1789 ई मे अमेरिकी सघीय व्यवस्था की कायप्रणाली का अध्ययन व्यावहारिक दृष्टि से किया है। वे इस अध्ययन मे प्रो ए एच ब्रिच (Prof A H Brich) के विचारो से सहमत हैं। ब्रिच के अनुसार अपने-अपने क्षेत्र मे स्वतन्त्र होते हुए भी सघीय राज्या की केन्द्रीय एव राज्या की सरकारा मे परस्पर सहयोग की अधिकाधिक प्रवत्ति पायी जाती है। अत ब्रिच सघात्मक शासन या राज्य की किसी ऐसी परिभाषा को स्वीकार नही करते हैं जिसमे केन्द्रीय एव राज्यो की सरकारो की अपने-अपने क्षेत्र मे केवल स्वतन्त्रता पर बल दिया गया हो। प्रो ब्रिच सघ को केन्द्रीय एव क्षेत्रीय सरकारा मे सहयोग की अवस्था का सघवाद की एक अनिवाय विशेषता मानते है। एम जे सी विले ने सघवाद की निम्नलिखित परिभाषा दी है

'सघवाद शासन की वह प्रणाली है जिसम क्षेत्रीय सत्ताएँ पारस्परिक रूप स निभर राजनीतिक सम्बन्धो मे आवद्ध हाती है। इस प्रणाली मे ऐसा सन्तुलन रखा जाता है कि कोई भी सरकार एक दूसरे को आदेश नही दे सकती परन्तु एक दूसरे को प्रभावित अवश्य कर सकती है तथा एक दूसरे को फुसलाकर या समभा-बुभाकर सौदेबाजी कर सकती है। सामान्यत इस प्रणाली म केन्द्रीय एव स्थानीय सरकारो से स्वतन्त्र एक न्यायिक अग होता है लेकिन यह व्यवस्था अनिवाय नही है। कोई भी शासन विधिक दृष्टि से एक दूसरे के अधीन नही होता। सविधान के अन्तगत दोना स्तरो की सरकारो के मध्य प्रथम वार उनके कार्यो का विधिक विभाजन होता है। तत्पश्चात राजनीतिक दृष्टि से विषयो के विभाजन की आवश्यकता पडने पर विभाजन किया जाता है। यदि जरूरत पडे तो न्यायपालिका को भी इस काय मे सयुक्त कर लिया जाता है। इस व्यवस्था म दोनो प्रकार की सरकारा का एक दूसर पर निभर रहना प्रमुख महत्व की बात है जिससे कि निणय शक्ति कही किसी एक सरकार द्वारा हस्तगत न करली जाय।'[23]

उपयक्त परिभाषा म सघीय शासन की दो जुडवाँ (twin) विशेषताओ अथात शासना की अपने अपने क्षेत्र म स्वतन्त्रता एव केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारो की परस्पर निभरता (independence and inter dependence of the central and local governments) का उल्लेख किया गया है। सघवाद का भी विकास हो रहा है। प्रारम्भ म राज्या (सघ की घटक इकाइयो) की स्वतन्त्रता पर अधिक वल दिया गया था। इस व्यवस्था को Dual Federalism कहा जाता था। 20वी सदी म विभिन्न शासना म परस्पर सहयोग की प्रवत्ति का अधिक विकास हुआ है। अत सघवाद का भी स्वरूप सहयोगी (cooperative) हो गया है। इस Cooperative Federalism की सज्ञा दी गयी। विले की उपरोक्त परिभाषा द्वध सघवाद (Dual Federalism) स सहयोगी सघवाद (Cooperative Federalism) तक के विकास की स्थिति को व्यक्त करती है। प्रो विल की परिभाषा प्रो व्हीयरे तथा अन्य विद्वाना की परिभाषाओं स कही अधिक नमनीय ह और आधुनिक सघवाद की विशेषताओं का अधिक भली

23 Vile *The Structure of American Federalism*, 1961, p 199

प्रकार व्यक्त करती है। स्वय ह्वीयरे ने प्रो विले के तर्कों को स्वीकार किया है।[24] सघीय शासन मे एकता (unity) एव वैविध्य (diversity) के लाभो का समन्वय सम्भव हुआ है।

सघवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् है

(1) सघीय राज्य का सविधान सर्वोच्च तथा लिखित एव कठोर होता है।

(2) केन्द्रीय सरकार एव प्रान्तीय या राज्यो की सरकारो मे शासन की शक्ति का विभाजन होता है।[25]

(3) एक निष्पक्ष न्यायालय होता है जो केन्द्रीय एव राज्यो की व्यवस्थापिकाओ की विधियो एव शासनो के कार्यों को सविधान विरोधी होने पर अवैधानिक घोषित कर सके एव केन्द्र तथा राज्यो या दो राज्यो के मध्य विवादो मे अन्तिम निर्णय दे सके। प्राय हर सघीय शासन मे सर्वोच्च न्यायालय या सघीय न्यायालय होता है जिसे सविधान के सरक्षक की सज्ञा दी जाती है और जिसे केन्द्र एव राज्यो के विवादो के सम्बन्ध मे मौलिक क्षेत्राधिकार होते है।

सघात्मक राज्य मे केन्द्रीय शासन एव क्षेत्रीय या घटक इकाइयो की सरकारो मे शक्तियो का विभाजन होता है। अत एक ऐसी सत्ता की आवश्यकता होती है जो शासन की शक्तियो के विभाजन को निश्चित एव निर्धारित कर सके। यह सत्ता स्वय सविधान है। अत सघीय राज्य मे सविधान सर्वोच्च होता है जिससे दोनो सत्ताओ मे क्षेत्र सम्बन्धी कोई विवाद उत्पन्न न हो सके। अत स्पष्ट शब्दो मे शक्ति विभाजन अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त सविधान की व्याख्या करने और सघीय एव राज्यो की सरकारो या विभिन्न राज्यो की सरकारो के मध्य उत्पन्न विवाद या विवादो का निर्णय करने के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की आवश्यकता होती है। सघीय सविधान लिखित एव कठोर होते है। उनकी सशोधन प्रणाली कठोर होती है अर्थात् सामान्य विधि-प्रक्रिया द्वारा सविधान मे सशोधन नही किया जा सकता। सविधान मे केन्द्रीय या क्षेत्रीय सरकारो के मध्य शक्तियो के विभाजन म परिवर्तन के लिए विशेष व्यवस्था होती है। अत सघीय सविधान म सशोधन प्रणाली का स्पष्ट उल्लेख वाछनीय है। जो राज्य उपयुक्त विशेषताओ को पूर्ण नही करते उन्हे सघीय राज्य नही कहा

---

24 Wheare K C *Federal Government*, Footnote 2, p 14

25 सघीय राज्य की घटक इकाइयो के लिए 'राज्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ये घटक इकाइयाँ पूरे अर्थों मे राज्य नही हैं फिर भी अन्य उचित शब्दावली के अभाव म इनके लिए 'राज्य' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। ह्वीयर न सघ (federation) की केन्द्रीय सरकार के लिए 'General Government' शब्द का प्रयोग किया है एव राज्यो या प्रान्तीय सरकारो के लिए regional यानी क्षेत्रीय सरकार शब्द का प्रयोग किया है। कुछ विद्वान सघात्मक राज्य के केन्द्रीय शासन के लिए 'Federal Government' शब्द का प्रयोग करत हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका म केन्द्रीय शासन को फेडरल गवनमण्ट कहा जाता है।

देने का प्रयत्न किया है। प्रो विले न 1789 ई म अमेरिकी सघीय व्यवस्था की कायप्रणाली का अध्ययन व्यावहारिक दृष्टि से किया है। वे इस अध्ययन म प्रो ए एच ब्रिच (Prof A H Brich) के विचारो स सहमत हैं। ब्रिच के अनुसार अपने अपने क्षेत्र म स्वतन्त्र होते हुए भी सघीय राज्यो की केन्द्रीय एव राज्यो की सरकारो म परस्पर सहयोग की अधिकाधिक प्रवृत्ति पायी जाती है। अत ब्रिच सघात्मक शासन या राज्य की किसी ऐसी परिभाषा को स्वीकार नहीं करते हैं जिसम केन्द्रीय एव राज्यो की सरकारो की अपने-अपने क्षेत्र मे केवल स्वतन्त्रता पर बल दिया गया हो। प्रो ब्रिच सघ की केन्द्रीय एव क्षेत्रीय सरकारो म सहयोग की अवस्था को सघवाद की एक अनिवाय विशेषता मानते है। एम जे सी विले न सघवाद की निम्नलिखित परिभाषा दी है

'सघवाद शासन की वह प्रणाली है जिसम क्षेत्रीय सत्ताएँ पारस्परिक रूप स निमर राजनीतिक सम्बन्धो म आवद्ध होती हैं। इस प्रणाली म ऐसा सन्तुलन रखा जाता है कि कोई भी सरकार एक दूसरे को आदेश नहीं दे सकती परन्तु एक दूसरे को प्रभावित अवश्य कर सकती है तथा एक दूसरे को फुसलाकर या समझा-बुझाकर सौदेबाजी कर सकती है। सामान्यत इस प्रणाली म केन्द्रीय एव स्थानीय सरकारो से स्वतन्त्र एक न्यायिक अग होता है लेकिन यह व्यवस्था अनिवाय नहीं है। कोई भी शासन विधिक दृष्टि से एक दूसरे के अधीन नहीं होता। सविधान के अन्तगत दोनो स्तरो की सरकारो के मध्य प्रथम बार उनके कार्यों का विधिक विभाजन होता है। तत्पश्चात राजनीतिक दृष्टि स विषयो के विभाजन की आवश्यकता पडने पर विभाजन किया जाता है। यदि जरूरत पडे तो न्यायपालिका को भी इस काय मे सयुक्त कर लिया जाता है। इस व्यवस्था म दोनो प्रकार की सरकारो का एक दूसरे पर निभर रहना प्रमुख महत्व की बात है जिससे कि निणय शक्ति कहीं किसी एक सरकार द्वारा हस्तगत न करली जाय।' [23]

उपर्युक्त परिभाषा म सघीय शासन की दो जुडवाँ (twin) विशेषताओ अर्थात शासनो की अपने अपने क्षेत्र मे स्वतन्त्रता एव केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारो की परस्पर निभरता (independence and inter-dependence of the central and local governments) का उल्लेख किया गया है। सघवाद का भी विकास हो रहा है। प्रारम्भ म राज्यो (सघ की घटक इकाइयो) की स्वतन्त्रता पर अधिक बल दिया गया था। इस व्यवस्था को Dual Federalism कहा जाता था। 20वीं सदी म विभिन्न शासनो म परस्पर सहयोग की प्रवृत्ति का अधिक विकास हुआ है। अत सघवाद का भी स्वरूप सहयोगी (cooperative) हो गया है। इस Cooperative Federalism की सज्ञा दी गयी। विले की उपरोक्त परिभाषा द्वैध सघवाद (Dual Federalism) से सहयोगी सघवाद (Cooperative Federalism) तक के विकास की स्थिति को व्यक्त करती है। प्रो विले की परिभाषा प्रो व्हीयरे तथा अन्य विद्वानो की परिभाषाओ से कहीं अधिक नमनीय है और आधुनिक सघवाद की विशेषताओ को अधिक भली

23 Vile *The Structure of American Federalism* 1961, p 199

प्रकार व्यक्त करती है। स्वय ह्वीयरे ने प्रो विले के तर्कों को स्वीकार किया है।[24] सघीय शासन मे एकता (unity) एव वैविध्य (diversity) के लाभो का समन्वय सम्भव हुआ है।

सघवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत है

(1) सघीय राज्य का सविधान सर्वोच्च तथा लिखित एव कठोर होता है।

(2) केन्द्रीय सरकार एव प्रान्तीय या राज्यो की सरकारो मे शासन की शक्ति का विभाजन होता है।[25]

(3) एक निष्पक्ष न्यायालय होता है जो केन्द्रीय एव राज्यो की व्यवस्थापिकाओ की विधिया एव शासनो के कार्यों को सविधान विरोधी होने पर अवैधानिक घोषित कर सके एव केन्द्र तथा राज्यो या दो राज्यो के मध्य विवादो म अन्तिम निणय दे सके। प्राय हर सघीय शासन मे सर्वोच्च न्यायालय या सघीय न्यायालय होता है जिसे सविधान के सरक्षक की सज्ञा दी जाती है और जिसे केन्द्र एव राज्यो के विवादो के सम्बन्ध मे मौलिक क्षेत्राधिकार होते है।

सघात्मक राज्य मे केन्द्रीय शासन एव क्षेत्रीय या घटक इकाइयो की सरकारो मे शक्तियो का विभाजन होता है। अत एक ऐसी सत्ता की आवश्यकता होती है जो शासन की शक्तियो के विभाजन को निश्चित एव निर्धारित कर सके। यह सत्ता स्वय सविधान है। अत सघीय राज्य मे सविधान सर्वोच्च होता है जिससे दोनो सत्ताओ मे क्षेत्र सम्बन्धी कोई विवाद उत्पन्न न हो सके। अत स्पष्ट शब्दो मे शक्ति विभाजन अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त सविधान की व्याख्या करने और सघीय एव राज्यो की सरकारो या विभिन्न राज्यो की सरकारो के मध्य उत्पन्न विवाद या विवादो का निणय करने के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की आवश्यकता होती है। सघीय सविधान लिखित एव कठोर होत है। उनकी सशोधन प्रणाली कठोर होती है अथात् सामान्य विधि-प्रक्रिया द्वारा सविधान मे सशोधन नहीं किया जा सकता। सविधान मे केन्द्रीय या क्षेत्रीय सरकारो के मध्य शक्तियो के विभाजन म परिवतन के लिए विशेष व्यवस्था होती है। अत सघीय सविधान म सशोधन प्रणाली का स्पष्ट उल्लेख वाछनीय है। जो राज्य उपर्युक्त विशेषताओ को पूण नही करते उन्ह सघीय राज्य नही कहा

24 Wheare, K C *Federal Government*, Footnote 2, p 14

25 सघीय राज्य की घटक इकाइयो के लिए 'राज्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ये घटक इकाइया पूरे अर्थों म राज्य नही हैं फिर भी अन्य उचित शब्दावली के अभाव म इनके लिए 'राज्य' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। ह्वीयर ने सघ (federation) की केन्द्रीय सरकार के लिए 'General Government' शब्द का प्रयोग किया है एव राज्यो या प्रान्तीय सरकारो के लिए regional यानी क्षेत्रीय सरकार शब्द का प्रयाग किया है। कुछ विद्वान सघात्मक राज्य के केन्द्रीय शासन के लिए 'Federal Government' शब्द का प्रयाग करत हैं। सयुक्त राज्य अमरिका म केन्द्रीय शासन को फेडरल गवनमण्ट कहा जाता है।

जा सकता। ऐसे राज्य को अद्ध सघीय राज्य (Quasi Federal State) की सज्ञा दी जाती है।

सघ शासन के गुण

(1) सघीय राज्य के रूप म छोटे एव कमजोर राज्यो को सगठित होकर शक्तिशाली राज्य बनने का अवसर प्राप्त होता है। सघीय राज्य के अतगत छाटे राज्या की स्वतन्त्रता एव पृथक अस्तित्व अक्षुण्ण बने रहते है तथा उन्ह सुरक्षा एव आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त अवसर भी प्राप्त होता है।

(2) भाषा, धम, जाति, वर्ग आदि की विभिन्नताओ वाले देशो के लिए सघ शासन विशेष रूप से उपयोगी है। इनम विभिन्नताआ की रक्षा होते हुए एकता स्थापित की जा सकती है। केन्द्रकृत एव विकेन्द्रित शक्तियो मे सन्तुलन स्थापित हा सकता है। सघीय शासन के अन्तगत राष्ट्रीय एकता एव स्थानीय शासन दोना के ही लाभ सम्भव होते है। भारत जैसे देश म जहा प्रान्तीयता तथा भाषायी एव धार्मिक विभिन्नताएँ पायी जाती है, सघात्मक शासन-पद्धति ही श्रेष्ठतम एव अनुकूल पद्धति है।

(3) विशाल देशा के लिए एकात्मक शासन की अपेक्षा सघात्मक शासन अधिक उपयुक्त है। प्रशासनिक क्षमता की दृष्टि से भी विशाल देशा म सघीय शासन ही श्रेष्ठ है। एकात्मक शासन के अन्तगत विशाल देशा की व्यवस्था भली भाँति नहीं चल सकती। इसके विपरीत, सघीय प्रणाली के अन्तगत अखिल देशीय महत्व के विषय केन्द्रीय शासन के एव शेष विषय स्थानीय सरकारो के अधीन होते है। फलस्वरूप स्थानीय जनता का शासन-काय से सम्बन्धित होन के कारण सावजनिक शिक्षा प्राप्त होती है और उनम शासन के प्रति रुचि भी उत्पन्न होती है।

(4) लॉड ब्राइस के अनुसार सघीय शासन म जनता के अधिकारा के अतिक्रमण की अपेक्षाकृत कम सम्भावना होती है। **लाड एक्टन** के अनुसार लोकतन्त्र म शासन की निरकुशता पर जो नियन्त्रण लगाय जाते हैं, उनमे सर्वाधिक महत्वपूण एव एकमात्र अकुश सघ शासन प्रणाली ही है।

(5) सघीय शासन मे सावजनिक जीवन म विभिन्न प्रकार के अर्थात राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक प्रयोगा के लिए सुगमतापूवक अवसर प्राप्त हाते हैं। सघ की इकाइया के शासन अपने क्षेत्रो म भिन्न प्रकार के प्रयोग कर सकते हैं और यदि उनम उन्ह सफलता प्राप्त होती है तो अन्य राज्या द्वारा भी उसका अनुगमन किया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि किसी राज्य म कोई नीति असफल होती है ता उसका दुष्प्रभाव दूसरे राज्या पर नही पडता।

ब्राइस के अनुमार सघ शासन के निम्नलिखित गुण हैं [26]

(1) राष्ट्रीय राज्य के अन्तगत छाटे राज्या को अपने अस्तित्व को बनाये रखना सम्भव हाता है।

---

26 Bryce *The American Government*, Ch 29 30

(2) देश की उन्नति शीघ्रता एव सुचारु रूप म सम्भव होती है ।

(3) नागरिका की स्वतन्त्रता की अधिक सम्भावना होती है और केन्द्रीय शासन की निरकुशता मे वृद्धि नही हो पाती है ।

(4) शासन सम्बन्धी नवीन प्रयोग सम्भव होते है ।

(5) सघीय शासन देश के विस्तार एव विभिन्नता-जनित दोषो से उत्पन्न खतरो को कम करता है ।

(6) केन्द्रीय व्यवस्थापिका का कायभार कम हो जाता है ।

(7) जनता को राजनीतिक शिक्षा एव प्रशिक्षण मिलता है ।

(8) स्थानीय शासन मे भी जनता सक्रिय भाग लेती है ।

फाइनर[27] ने निम्नलिखित शब्दो म सघ शासन के गुणो का उल्लेख किया है

(1) सघ राज्य मे प्रयोग के अनेक अवसर होते हैं ।

(2) नवीन प्रयोगा के दुष्परिणाम एक क्षेत्र तक सीमित रहते है तथा सफलता का लाभ सभी देशो को प्राप्त होता है ।

(3) शासन को स्थानीय समस्याओ का ज्ञान रहता है ।

(4) दिन-प्रतिदिन के शासन काय मे जनता की रुचि रहती है और वे उसकी कठिनाइया को दूर करने के लिए शासन पर दबाव डाल सकते है ।

सघ शासन के दोष

(1) सघ शासन मे विधि, प्रशासकीय सगठन एव काय-पद्धति की विभिन्नता पायी जाती है । केन्द्रीय एव अनक स्थानीय राज्यो की पृथक् पृथक विधिया होती है। साधारण नागरिका को इससे बडी कठिनाई होती है और उनके समक्ष अनेक उलझने आती हैं । अन्त राज्यीय व्यापार सम्बन्धी समस्याएँ भी उत्पन्न होती है । अनेक ऐस विषय होते है जो सामान्य महत्व के होते है लेकिन राज्या की शक्ति के अन्तगत होने के कारण प्रत्येक राज्य द्वारा अपने क्षेत्र के लिए अलग-अलग नियम बनाये जाते है ।

(2) राष्ट्रीय सरकार एव राज्यो की सरकारो म क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवाद उत्पन्न हो जाते है ।

(3) सघीय राज्य मे दोहरी शासन प्रणाली के कारण प्रशासन अत्यधिक व्ययसाध्य होता है। सघ मे सेवाओ (services) का दुहरा होना भी स्वाभाविक है ।

(4) सघीय शासन की विदेश नीति शक्तिशाली नही होती है इस तक मे बहुत अधिक बल नही है । सयुक्त राज्य अमरिका की विदेश नीति को कमजोर नही कहा जायगा । लेकिन सघ की इकाइया केन्द्रीय शासन द्वारा की गयी सन्धियो के पालन के सम्बन्ध म ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती हैं जिसके कारण केन्द्र को दुविधा-

27 Finer, H *op cit*, p 184

पूर्ण स्थिति का सामना करना पडता है। उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने जापान को यह आश्वासन दिया था कि अमेरिका मे जापानियो के साथ कोई भेदभाव नही किया जायेगा। लेकिन केलीफोर्निया राज्य ने जापानिया के सम्बन्ध म विभेदकारी नियमो का निर्माण कर दिया था। इस प्रकार की कठिनाई की भारत मे उत्पन्न होने की कम सम्भावना है क्योकि केन्द्र द्वारा सम्पादित सन्धियो विरोधी राज्य की विधि निष्प्रभावी होती है।

(5) सघ शासन के सविधान लिखित होते है अत अपेक्षाकृत उनम सरलता से सशोधन सम्भव नही होते।

(6) सघ शासन के सबसे बडे दो दोष है—प्रथम, असन्तुष्ट राज्य सघ से पृथक होने का प्रयत्न करते है। उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमेरिका म दासता के प्रश्न को लेकर दक्षिणी रियासतो ने सघ से पृथक होने की धमकी दी थी और अमेरिकी गृह-युद्ध का सूत्रपात हुआ था। इस युद्ध मे विद्रोही दक्षिणी रियासतें पराजित हुई थी और अमेरिका की एकता की रक्षा हो सकी थी। इस प्रकार की पृथकत्ववादी प्रवति सघ शासन को कमजोर करती है। भारत मे भी विघटनकारी तत्व सक्रिय है। प्रातीयता और स्थानीयता की तीव्र भावना के कारण तमिलनाडु के द्रविण मुन्नेत्र कडगम नामक राजनीतिक दल ने स्वतन्त्र राज्य की माग की है। नागा विद्रोही भी नागालण्ड को स्वतन्त्र राज्य बनाना चाहते हैं। सघ राज्यो म विघटनकारी प्रवत्ति का पनपना स्वाभाविक एव सरल होता है। हर प्रदेश की जनता की सास्कृतिक एकता को अपने प्रदेश के राजनीतिक सगठन से सहज ही सहायता एव प्रेरणा प्राप्त हो जाती है। सघ राज्यो का दूसरा दोष यह है कि कुछ प्रभावशाली राज्य अपना गुट बनाकर सम्पूर्ण सघ पर हावी होने एव अपने हितो के सवर्धन के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करते रहते हैं।

(7) लीकॉक के अनुसार सघ शासन राजनीतिक एव बाह्य मामलो म शक्तिशाली और आतरिक एव आर्थिक मामलो म कमजोर प्रमाणित हुआ है। डा आशीर्वादम इस आलोचना को सयुक्त राज्य अमेरिका को दृष्टि म रखकर अस्वीकार करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका का सघ आतरिक एव बाह्य, राजनीतिक एव आर्थिक, दोनो ही दृष्टियो से शक्तिशाली राष्ट्र प्रमाणित हुआ है।

(8) डायसी के अनुसार सघ शासन कमजोर एव अनुदारवादी होता है और उसम विधि की प्रधानता होती है।[28] सघीय शासन की कमजोरी का कारण दो समान सत्ताओ के मध्य राजनीतिक शक्ति का विभाजन है। इसके अतिरिक्त, अवरोध एव सन्तुलन की पद्धति (जिसके द्वारा शासन का एक अग दूसरे अग की शक्ति को नियन्त्रित करता है) के कारण अनावश्यक शक्ति का विनाश होता है। सघीय सविधान के कठोर होने के कारण उसम शीघ्रतापूर्वक परिवर्तन भी सम्भव नही हो पाते।

28 Dicey *The Law of the Constitution* 1959, sec 171-180

जनता सघीय सविधान के उपब धो को पवित्र एव अनुलघनीय समभने लगती है। इससे जनता म अनुदारवादी भावना का विकास होता है। उदाहरण के लिए, डायसी के अनुसार अमेरिकी सीनेट को समाप्त करना लॉड सभा की तुलना मे कही अधिक कठिन सिद्ध होगा। अत सघ राज्य मे राष्ट्रीय अनुदारवाद एव अनुदारवादी प्रवृत्तियो को और अधिक बढावा मिलता है। सघीय सविधान मे यायपालिका की प्रमुखता होती है। जनता मे विधिक दृष्टिकोण की वद्धि हो जाती है। सघीय सवधानिक व्यवस्था मे यायालय धुरी का काय करते है और विधानमण्डल की स्थिति विधि निर्माण करने वाले अधीनस्थ सदन जैसी होती है। कार्यपालिका की शक्ति सविधान द्वारा सीमित होती है एव यायाधीशा द्वारा सविधान की व्याख्या की जाती है। अत डायसी का मत है कि सघवाद उन देशा म ही सफल हो सकता है जहा विधि के प्रति अपेक्षाकृत अधिक श्रद्धा होती है और विधिक भावना का आदर किया जाता है।

हरमन फाइनर[29] के अनुसार सघवाद की मुख्य कठिनाइया निम्नलिखित हैं

(1) सघ शासन दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था के कारण आर्थिक दृष्टि से खर्चीली व्यवस्था है। इसम समय एव शक्ति पर्याप्तत कम होती है। उपयुक्त प्रशासनिक एव विधिक एकता तथा उसकी उपलब्धि के लिए काफी समय पारस्परिक वार्ता म ही व्यतीत हो जाता है। यातायात, स्वास्थ्य, रोजगार आदि की अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनका सक्षमतापूवक प्रशासन अनेक प्रकार के अधिकारियो के अस्तित्व के कारण कठिन होता है।

(2) सविधान मे सशोधन कठिनता से ही हो पाते है।

(3) जनता को सघीय शासन मे अनेक उलभनो का सामना करना पडता है। व्यक्तिगत अधिकारा एव दायित्वो सम्ब धी मामलो मे अपेक्षाकृत अस्पष्टता रहती है। किस सत्ता के क्या अधिकार हैं, यह विवाद का विषय होते है। अत सघीय राज्य मे केद्र एव राज्या म क्षेत्राधिकार को लेकर अनक विवाद उठा करते हैं।

(4) शासन से सम्बधित अनेक काय ऐसे होते हैं जिह सघ शासन के अतगत पूण करना सम्भव नही होता। इसका कारण यह है कि सघीय शासन मे शक्तियो का विभाजन विगत पीढिया की आवश्यकता एव परिस्थितियो की दृष्टि से होता है। वतमान पीढी के आर्थिक एव सामाजिक कतव्यो के सम्पादन के लिए अपेक्षाकृत अधिक केद्रीकरण की आवश्यकता होती है। शक्तियो के विभाजन के द्वारा इस वाछनीय केद्रीकरण का अभाव होता है। सघ शासन सत्ता के केद्रीकरण का निषेध करता है।

सघवाद का इतिहास

सघवाद आधुनिक युग मे राजनीतिक सस्था के रूप मे एक नवीन प्रयोग है। सघवाद सिद्धात एव व्यावहारिक रूप मे 1787 ई म अमेरिकी सघीय व्यवस्था के आरम्भ के साथ प्रारम्भ होता है। लेकिन सघीय शासन का विचार अत्यन्त प्राचीन

---

29 Finer, H *op cit*, pp 184 85

है। प्राचीन भारत मे राज्यो एव गणराज्या के सघ थ। प्राचीन यूनान म भी राज्या के सघ थे। सवप्रथम यूनान के 12 राज्यो ने पारस्परिक सुरक्षा की दृष्टि स एकीयन सघ (Achean League) की स्थापना की थी लेकिन 3 से 2 सदी ई पू यूनानी नगर राज्यो के इस सघ म अनेक सशोधन एव परिवद्धन करन पडे थे। कोरिथ, मगारा एव दक्षिणी यूनान के कई नगर-राज्य इसमे सम्मिलित हो गये थे। विदेश नीति एव सुरक्षा सम्बन्धी सभी मामले राज्या द्वारा लीग को समर्पित कर दिय गये थे और आन्तरिक मामला मे वे पूण स्वतन्त्र बने रहे। यदि रोमन साम्राज्य का उदय न हुआ होता तो सम्भवत यूनान के सभी नगर-राज्य इसके सदस्य बन गये होत।

मध्य-युग की 13वी एव 14वी सदी के इटली के नगर-राज्यो के राजनीतिक सगठना को सघ की सज्ञा प्रदान कर सकते हैं। 1291 ई मे स्विस परिसघ (Swiss Confederation) का उदय हुआ था। यह सघीय शासन की दिशा मे एक महत्व पूण कदम है। तीन केन्टनो—यूरी, स्वेज और अण्डरवेल्डन—ने जो रोमन सम्राट के अधीन थे, पारस्परिक सुरक्षा के लिए अपने को एकता के सूत्र म बाध लिया था। कालान्तर मे इन तीनो केन्टना के सयुक्त राज्य ने विकास करते हुए स्विटजरलण्ड के आधुनिक सघीय शासन का रूप धारण कर लिया है।

सयुक्त राज्य अमरिका म 1789 ई मे उसके नये सविधान के लागू होने पर यथाथ रूप म सघ शासन की व्यवस्था का विकास प्रारम्भ हुआ है। यद्यपि अमेरिकी सविधान-निर्माताओ ने यूनानी उदाहरण एव अनुभव की बार-बार दुहाई दी परन्तु व यह भली भांति जानते थे कि सघीय शासन-व्यवस्था की वे प्रथम बार स्थापना कर रहे हैं। स्मरणीय है कि 1777 ई म स्थापित परिसघ (Confederation) की व्यवस्था, 1789 ई म सविधान के निमाण एव उसके लागू होने पर आधुनिक स्थायी सघीय व्यवस्था मे परिणत हो गयी। 19वी सदी म अनेक सघ राज्या का उदय हुआ है। 1848 एव 1874 ई म स्विटजरलण्ड के सविधान को सशोधित करके आधुनिक रूप प्रदान किया गया है। 1837 एव 1867 ई मे कनाडा म सघ शासन की स्थापना की गयी। 1867 ई म उत्तरी जमन सघ का निर्माण हुआ। 1871 ई म जमन साम्राज्य की स्थापना हुई। 1902 ई म आस्ट्रेलिया म सघ राज्य एव 1905 इ मे दक्षिणी अफ्रीका के सघ की स्थापना की गयी। दक्षिण अफ्रीका के महा द्वीप म मक्सिको एव ब्राजील म भी सघ राज्य की स्थापना हुई। वतमान सदी म रूस, भारत, मलेशिया, वस्टइण्डीज, युगोस्लाविया एव इण्डोनेशिया आदि देशा म सघीय शासन की स्थापना हुई है। सामान्यत रूस की व्यवस्था को सघीय शासन की श्रेणी म नही रखत। परन्तु रूस का सविधान (1936) अपन देश की परिस्थितिया के अनुसार परिवर्तित सघीय व्यवस्था की स्थापना करता है।

सघ शासन के निर्माण मे सहायक तत्व

सघ शासन की स्थापना एव सुदृढ़ता म अग्रलिखित परिस्थितियाँ सहायक होती हैं

(1) प्रथम आवश्यकता भौगोलिक सामीप्य की है। यदि सघ का निर्माण करने वाले राज्य एक दूसरे स बहुत दूर स्थित है और एक दूसरे के प्रदेश से सयुक्त नही हैं ता डायसी के अनुसार सघ की स्थापना नही हो सकती[30] और यदि हा जाती है ता उसका दीघकाल तक कायम रहना सन्देहजनक है। प्रारम्भ म पाकिस्तान भी सघ था। पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान से हजारा मील दूर था। दोना म भाषा, जाति, सस्कृति, हिता आदि से सम्बन्धित गहरे मतभेद थे। अन्त म पूर्वी बगाल की जनता ने बगला देश के रूप म सगठित होकर पृथक होने का आन्दोलन किया और स्वतन्त्र हो गयी।

(2) सघ की घटक इकाइया अर्थात राज्यो को समान होना चाहिए। यदि कोई राज्य अन्य इकाइया के मुकाबले म अधिक शक्तिशाली एव प्रभावशाली है तो शेष या अन्य राज्या पर उसके हावी होने का भय उत्पन्न हो जाता है। गिल्क्राइस्ट के अनुसार "आदश सघ के लिए राज्या म आकार एव शक्ति की दृष्टि से पूण समानता वाछनीय है।"[31] राज्या मे पायी जाने वाली असमानताओ को वधानिक उपायो द्वारा न्यूनतम बनाया जा सकता है। इसका एक तरीका यह है कि व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन मे राज्यो को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। डायसी ने तो धन की दृष्टि से भी राज्या की समानता पर बल दिया है।[32] लेकिन घटक इकाइयो की पूण समानता प्राय सघ राज्या म देखने म नही आती है। उदाहरण के लिए अमेरिका के घटक राज्यो को विधिक दृष्टि से समानता प्राप्त है। आस्ट्रेलिया के घटक राज्या को भी उच्च सदन—सीनेट—म समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। यद्यपि भारत मे उच्च सदन म राज्या को जनसख्या के अनुपात पर प्रतिनिधित्व प्राप्त है फिर भी प्रत्येक सघ म विधिक दृष्टि से सघ की प्रत्येक इकाई का समान स्तर प्राप्त होना चाहिए।

(3) भाषा, सस्कृति आदि की एकता भी सघ शासन की सफलता म सहायक होती हैं। लेकिन ये अनिवाय तत्व नही है जैसे कि भारत विभिन्न भाषा-भाषिया का सघ है। स्विटजरलैण्ड मे चार भाषा-भाषी जातिया निवास करती है। रूस मे भी भाषा की विभिन्नता पायी जाती है।

(4) सघ निर्माण के लिए दो विरोधी भावनाओ का होना आवश्यक है। सघ मे सम्मिलित होने वाले राज्या की जनता मे एक तरफ मिलकर सघ बनाने की एकता की भावना होनी चाहिए तो दूसरी तरफ उनमे अपने स्वतन्त्र राजनीतिक अस्तित्व को बनाये रखने की तीव्र उत्कण्ठा भी होनी चाहिए। अत उनम जहा सघ (union) की भावना होनी चाहिए वहा एकता (unity) की भावना नही होनी चाहिए।

(5) सघ की सफलता के लिए सम्बन्धित जनता म उच्च राजनीतिक चेतना का होना भी आवश्यक है। सघीय व्यवस्था अपक्षाकृत जटिल काय पद्धति है। सघ

30 Dicey *op cit*, pp 137 139
31 Gilchrist *Principles of Political Science*, p 377
32 Dicey *op cit*, p 139

राज्य में दो शासन होते हैं—जनता इनके अधीन निवास करती है। अत जनता के प्रति अपने दायित्वों एव शक्तियों म समन्वय स्थापित करने की क्षमता जनता म होनी चाहिए।

परिसघ

परिसघ (Confederation) सम्प्रभु राज्यो का सघ है जो निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया जाता है। गानर के अनुसार "परिसघ राज्यो के कुछ शाश्वत सामान्य उद्देश्यो, विशेषकर समान बाह्य सुरक्षा के हेतु निर्मित सघ है।"[33] गेटेल के अनुसार 'परिसघ राज्यो का सघ है। सामान्य हितो वाले राज्य समानता के आधार पर एकत्रित होकर एक केन्द्रीय शासन का निर्माण करते हैं और उसे कुछ शक्तियाँ प्रदान करते हैं।"[34] सी एफ स्ट्राग के अनुसार "परिसघ अनेक राज्यो का ढीला ढाला सघ है जो राज्य नही होता है।"[35]

परिसघ म सम्मिलित होने वाले सदस्य राज्य सप्रभु बने रहते हैं। परिसघ के सदस्य होने के कारण वे अपनी सप्रभुता का परित्याग नही करते। परिसघ के निर्माण से किसी नवीन राज्य का जन्म नही होता और सदस्य राज्य विधिक दृष्टि से स्वतन्त्र होते हैं। केन्द्रीय शासन के होते हुए भी केन्द्रीय सत्ता का निर्माण नही होता। केन्द्रीय शासन केवल सदस्य राज्यो की शाखा मात्र होता है। परिसघ को सत्ता सदस्य राज्यो द्वारा प्रदान की जाती है। अत उसकी सत्ता का आधार सदस्य राज्यो की स्वीकृति है।

परिसघ म सामान्यत एक केन्द्रीय विधानमण्डल या कांग्रेस होती है। परिसघ का निर्माण एव केन्द्रीय शासन की शक्तियो की व्याख्या करने वाले प्रपत्र को सविधान कहते हैं। वास्तव म यह परिसघ के सदस्य राज्यो के मध्य एक समझौता या सन्धि है। सदस्य देश परिसघ से अपनी इच्छानुसार पृथक हो सकते हैं और सदस्यता का परित्याग अविधिक या अवैधानिक काय नही माना जाता है। परिसघ वस्तुत एक सशर्त समझौता है। एकात्मक शासन की तुलना मे परिसघ के सदस्य राज्य पूर्णत स्वतन्त्र होते हैं। उनकी अपनी सेना, सरकार एव पृथक सत्ता होती है। वे स्वतन्त्र रूप से सन्धियाँ कर सकते है। सघात्मक राज्य एव परिसघ मे अन्तर है। सघ राज्य की सदस्यता एक बार ग्रहण करके उसका परित्याग नही किया जा सकता और न परिसघ की तरह सघीय राज्य की घटक इकाइयो को प्रभुसत्ता ही प्राप्त होती है।

33 "A confederation is a union or association of States formed for the purpose of promoting or achieving certain specific objects specially the maintenance of their common external security" —Garner *op cit*, p 251

34 'Confederation is a form of association of States having interests in common (and they) unite on the basis of equality and set up a central government to which are delegated certain powers" —Gettell *Political Science*, 1956, p 470

35 Strong, C. F *op cit*, p 103

और न वे पृथक वैदेशिक या सैनिक व्यवस्थाएँ ही कर सकते है। सामान्यत परिसघ का अन्त एकात्मक अथवा सघात्मक राज्य म होता है।[36]

परिसघ मे न तो नागरिक होते है और न ही प्रजाजन, जो उसकी आज्ञाओ का पालन करे या जिनके अधिकार या कर्तव्य हो। जेलिनिक के अनुसार परिसघ दो प्रकार के होते है एक जिनके नियमो का पालन सदस्य राज्यो की प्रजा नही करती है अपितु जिनका राज्यो से ही सम्बन्ध होता है। दूसरे वे जिनमे परिसघ की काग्रेस वास्तविक विधानमण्डल होता है और जिनके नियमो का पालन सदस्य राज्यो की प्रजा द्वारा किया जाता है। परिसघ की काग्रेस के सदस्य राज्यो की सरकारो की तरफ से मत देते हैं। परिसघ की काग्रेस को अपने नियमादि लागू करने की भी शक्ति प्राप्त नही होती है। परिसघ की अपनी कोई कार्यपालिका एव न्यायपालिका भी नही होती। उन्हे अपने निर्णयो को क्रियान्वित करने के लिए सदस्य राज्यो की सरकारी नीतियो पर ही निर्भर रहना पडता है।

परिसघ की विधिक स्थिति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। जेलिनिक, वान मोहाल, बोरल एव ओपेनहाइम परिसघ को राज्य नही मानते। उसे वे केवल एक सघ मानते है। इसको न तो कोई विधिक व्यक्तित्व प्राप्त है और न कोई अधिकार और क्षमता ही प्राप्त है। दूसरे विद्वान जैसे लीफर (LeFur), डीलोतर (DeLouter) एव सूल्ज (Schultz) उसे राज्य नही मानते परन्तु परिसघ को अन्तर-राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्रदान करते है।

परिसघ का इतिहास बहुत पुराना है। यूनानी काल मे अनेक परिसघ थे, जैसे—एचियन, लाईसियन, डीलियन लीग। मध्य-काल मे रेनिस (Rhenish) परिसघ (1254 1350), हैनिस्टिक लीग (Hanseatic League) (1367-1669), एव होली रोमन साम्राज्य (1526 1806) परिसघ के उदाहरण है। परिसघ के दो श्रेष्ठ उदाहरण सयुक्त राज्य अमेरिका का परिसघ (1781-1789) एव जर्मन परिसघ (1815-1867) हैं।

अमेरिकी परिसघ केवल सदस्य राज्यो की मित्रता का सघ था। सघ राज्य की अपनी कोई सम्प्रभुता न थी। सदस्य राज्य पूर्ण स्वतन्त्र थे और उन्होने परिसघ को अपनी सत्ता प्रदान नही की थी। वह केवल सामान्य काल मे शत्रुओ से रक्षा के लिए सघ था। किसी सामान्य प्रशासकीय एव न्यायिक अग का निर्माण नही किया गया था। परिसघ की काँग्रेस के निर्णयो को क्रियान्वित करना सदस्य राज्यो का ही काम था। काग्रेस को बहुत कम शक्ति प्रदान की गयी थी और काग्रेस के पास अपनी विधियो को क्रियान्वित करने के साधन नाममात्र के थे। फलत शासन की कमजोरी के फलस्वरूप उसका पतन हो गया।

---

36 Asirvatham, E *Political Theory*, p 362

जमन परिसघ[37] (1815-67 ई) मे विभिन्न आकार एव स्तर के 38 राज्य थे, जैसे—राज्य, ग्राण्ड डची एव स्वतन्त्र नगर। सदस्य राज्यो की स्वतन्त्रता एव दृढता तथा जमनी की बाह्य एव आन्तरिक सुरक्षा के लिए परिसघ का निर्माण हुआ था। सदस्य राज्यो के प्रतिनिधियो की एक ससद (Diet) थी। डाइट को परिसघ के नाम पर राजदूत भेजने, दूसरे देशो के राजदूतो का स्वागत करने, युद्ध, सन्धि एव विशेष परिस्थितियो म सदस्य राज्यो के आन्तरिक मामलो म हस्तक्षेप करने के अधिकार प्राप्त थे। प्रत्येक सदस्य राज्य को विदेशो से सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतन्त्रता थी। इस सम्बन्ध मे केवल एक ही प्रतिबन्ध था। वह यह कि ऐसी किसी सन्धि से परिसघ की स्वतन्त्रता को कोई खतरा नही होना चाहिए। युद्ध प्रारम्भ हो जाने की अवस्था म परिसघ की ससद की स्वीकृति के बिना कोई सदस्य राज्य सन्धि नही कर सकता था। न एक सदस्य दूसरे के विरुद्ध युद्ध की घोषणा ही कर सकता था। एक सामान्य साम्राज्यीय न्यायालय था। इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार सीमित थे। परन्तु परिसघ का अपना कोई प्रशासकीय यन्त्र नही था। परिसघ के निणय क्रियान्वित करने का दायित्व सदस्य राज्यो का था।

परिसघ का एक अन्य प्रयत्न 1907 ई मे मध्य अमेरिकी राज्यो—ग्वाटेमाला, कोस्टारीका होन्डूरास, निकारागुआ एव सालवेडर—ने किया था परन्तु इसका 1918 ई म अन्त हो गया।

उपर्युक्त अर्थ म कोई राज्य परिसघ नही है। यह अल्पकालिक होते हैं। जो परिसघ प्राचीन काल म थे भी वे धीरे धीरे या तो एकात्मक राज्य बन गये अथवा सघीय राज्य म परिणत हो गये। सयुक्त राज्य अमेरिका का परिसघ 1789 ई म सघीय राज्य म परिणत हो गया था।

37 इ
अप

7
सघवाद का व्यावहारिक स्वरूप
FEDERALISM IN PRACTICE

प्रमुख सघीय देशो की सघीय व्यवस्था का विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की सघीय व्यवस्था

सयुक्त राज्य अमेरिका सघीय देश है और उसके सविधान का इतिहास सघीय शासन-व्यवस्था का इतिहास है। उत्तरी अमेरिका म 17वी सदी के अन्त तक उपनिवेशो की स्थापना हो चुकी थी। इस क्षेत्र मे अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए फ्रान्स और इगलण्ड के मध्य सप्तवर्षीय युद्ध हुआ था। इसमे अग्रेज विजयी हुए और वे उत्तरी अमेरिका के स्वामी बने। 18वी सदी के मध्य तक 13 उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। इन 13 उपनिवेशो ने इगलैण्ड के विरुद्ध अनेक कारणो से प्रेरित होकर क्रान्ति की थी। इनमे प्रमुख कारण था ब्रिटिश सरकार द्वारा नवीन कर लगाना। परिणामस्वरूप उपनिवेशो की जनता न ब्रिटिश ससद म प्रतिनिधित्व की माग की। 'प्रतिनिधित्व के अभाव मे कर नही' का नारा बुलन्द हो उठा और युद्ध छिड गया। 4 जुलाई, 1776 ई को 13 उपनिवेशो ने इगलैण्ड तथा उसके सम्राट के विरुद्ध स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) कर दी।[1] 15 नवम्बर, 1777 ई को इन 13 उपनिवेशो ने मिलकर एक परिसघ (Confederation) की स्थापना की। स्मरणीय है कि परिसघ के निर्माण की प्रेरणा का मूल कारण उपनिवेशो की सुरक्षा की भावना थी। इस समय सभी उपनिवेश पूर्ण स्वतन्त्र राज्य थ और वे शासन के अधिकार नयी सत्ता को सौपने के इच्छुक नही थे।

परिसघ के सविधान को Articles of Confederation की सज्ञा दी गयी। इसम केवल 13 धाराए थी। परिसघ का नाम सयुक्त राज्य अमरिका रखा गया (प्रथम धारा)। परिसघ का सदस्य बनने के पश्चात भी प्रत्येक राज्य अपनी सत्ता एव

1 अमेरिकी स्वतन्त्रता का यह युद्ध 19 अक्टूबर, 1781 ई तक चलता रहा और इस वर्ष ग्रेट ब्रिटेन ने सयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया। 1783 ई म पेरिस सन्धि द्वारा इसको मान्यता दी गयी।

जमन परिसघ[37] (1815-67 ई) म विभिन्न आकार एव स्तर के 38 राज्य थे, जैसे—राज्य, ग्राण्ड डची एव स्वतन्त्र नगर। सदस्य राज्या की स्वतन्त्रता एव दृढता तथा जमनी की वाह्य एव आन्तरिक सुरक्षा के लिए परिसघ का निर्माण हुआ था। सदस्य राज्यो के प्रतिनिधिया की एक ससद (Diet) थी। डाइट को परिसघ के नाम पर राजदूत भेजने, दूसरे देशो के राजदूता का स्वागत करने, युद्ध, सधि एव विशेष परिस्थितिया म सदस्य राज्यो के आन्तरिक मामला म हस्तक्षप करने के अधिकार प्राप्त थे। प्रत्येक सदस्य राज्य को विदेशा से सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतन्त्रता थी। इस सम्बन्ध मे केवल एक ही प्रतिबन्ध था। वह यह कि ऐसी किसी सन्धि से परिसघ की स्वतन्त्रता को कोई खतरा नही होना चाहिए। युद्ध प्रारम्भ हो जाने की अवस्था मे परिसघ की ससद की स्वीकृति के बिना कोई सदस्य राज्य सधि नही कर सकता था। न एक सदस्य दूसरे के विरुद्ध युद्ध की घोषणा ही कर सकता था। एक सामान्य साम्राज्यीय न्यायालय था। इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार सीमित थे। परन्तु परिसघ का अपना कोई प्रशासकीय यन्त्र नही था। परिसघ के निणय क्रियान्वित करने का दायित्व सदस्य राज्या का था।

परिसघ का एक अन्य प्रयत्न 1907 ई मे मध्य अमेरिकी राज्या—ग्वाटेमाला, कोस्टारीका, होन्डूरास, निकारागुआ एव सालवेडर—ने किया था परन्तु इसका 1918 ई म अन्त हो गया।

उपर्युक्त अथ मे कोई राज्य परिसघ नही है। यह अल्पकालिक होते हैं। जो परिसघ प्राचीन काल म थे भी वे धीरे धीरे या तो एकात्मक राज्य बन गये अथवा सघीय राज्य म परिणत हो गये। सयुक्त राज्य अमरिका का परिसघ 1789 ई मे सघीय राज्य म परिणत हो गया था।

---

37 इस जमन परिसघ को German Bund कहते हैं। जमन शब्द Bund' का अथ सघ है।

7

सघवाद का व्यावहारिक स्वरूप
FEDERALISM IN PRACTICE

प्रमुख सघीय देशो की सघीय व्यवस्था का विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की सघीय व्यवस्था

सयुक्त राज्य अमेरिका सघीय देश है और उसके मविधान का इतिहास सघीय शासन व्यवस्था का इतिहास है। उत्तरी अमेरिका मे 17वी सदी के अन्त तक उपनिवेशो की स्थापना हो चुकी थी। इस क्षेत्र मे अपना-अपना प्रमुत्व स्थापित करने के लिए फ्रास और इगलैण्ड के मध्य सप्तवर्षीय युद्ध हुआ था। इसम अग्रेज विजयी हुए और वे उत्तरी अमेरिका के स्वामी बने। 18वी सदी के मध्य तक 13 उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। इन 13 उपनिवेशो न इगलण्ड के विरुद्ध अनेक कारणो से प्रेरित होकर क्रान्ति की थी। इनम प्रमुख कारण था ब्रिटिश सरकार द्वारा नवीन कर लगाना। परिणामस्वरूप उपनिवेशो की जनता न ब्रिटिश ससद मे प्रतिनिधित्व की माग की। 'प्रतिनिधित्व के अभाव मे कर नही' का नारा बुलन्द हो उठा और युद्ध छिड गया। 4 जुलाई, 1776 ई को 13 उपनिवेशा ने इगलण्ड तथा उसके सम्राट के विरुद्ध स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) कर दी।[1] 15 नवम्बर, 1777 ई को इन 13 उपनिवेशा ने मिलकर एक परिसघ (Confederation) की स्थापना की। स्मरणीय ह कि परिसघ के निर्माण की प्रेरणा का मूल कारण उपनिवेशो की सुरक्षा की भावना थी। इस समय सभी उपनिवेश पूण स्वतन्त्र राज्य थ और वे शासन के अधिकार नयी सत्ता का सौपन के इच्छुक नही थे।

परिसघ के सविधान को Articles of Confederation की सज्ञा दी गयी। इसम केवल 13 धाराए थी। परिसघ का नाम सयुक्त राज्य अमरिका रखा गया (प्रथम धारा)। परिसघ का सदस्य बनने के पश्चात भी प्रत्येक राज्य अपनी सत्ता एव

1 अमरिकी स्वतन्त्रता का यह युद्ध 19 अक्टूबर, 1781 ई तक चलता रहा और इस वष ग्रेट ब्रिटेन ने सयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतन्त्रता का स्वीकार किया। 1783 ई म परिस सन्धि द्वारा इसको मान्यता दी गयी।

जमन परिसघ[37] (1815 67 ई) म विभिन्न आकार एव स्तर के 38 राज्य थे, जैस—राज्य, ग्राण्ड डची एव स्वतन्त्र नगर। सदस्य राज्या की स्वतन्त्रता एव दृढता तथा जमनी की वाह्य एव आन्तरिक सुरक्षा के लिए परिसघ का निर्माण हुआ था। सदस्य राज्या के प्रतिनिधियो की एक ससद (Diet) थी। डाइट को परिसघ के नाम पर राजदूत भेजने, दूसरे देशो के राजदूतो का स्वागत करने, युद्ध, सन्धि एव विशेष परिस्थितियो म सदस्य राज्यो के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने के अधिकार प्राप्त थे। प्रत्येक सदस्य राज्य को विदेशो से सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतन्त्रता थी। इस सम्बन्ध मे केवल एक ही प्रतिबन्ध था। वह यह कि ऐसी किसी सन्धि से परिसघ की स्वतन्त्रता को कोई खतरा नही होना चाहिए। युद्ध प्रारम्भ हो जाने की अवस्था मे परिसघ की ससद की स्वीकृति के बिना कोई सदस्य राज्य सन्धि नही कर सकता था। न एक सदस्य दूसरे के विरुद्ध युद्ध की घोषणा ही कर सकता था। एक सामान्य साम्राज्यीय न्यायालय था। इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार सीमित थे। परन्तु परिसघ का अपना कोई प्रशासकीय यन्त्र नही था। परिसघ के निणय क्रियान्वित करन का दायित्व सदस्य राज्यो का था।

परिसघ का एक अन्य प्रयत्न 1907 ई मे मध्य अमरिकी राज्या—ग्वाटेमाला, कास्टारीका, होन्डूरास, निकारागुआ एव सालवडर—ने किया था परन्तु इसका 1918 ई म अन्त हो गया।

उपर्युक्त अथ म कोई राज्य परिसघ नही है। यह अल्पकालिक होते हैं। जो परिसघ प्राचीन काल मे थे भी व धीरे धीरे या तो एकात्मक राज्य बन गये अथवा सघीय राज्य म परिणत हो गये। सयुक्त राज्य अमरिका का परिसघ 1789 ई म सघीय राज्य म परिणत हो गया था।

37 इस जमन परिसघ को German Bund कहते हैं। जमन शब्द 'Bund' का अथ लीग है।

7

सघवाद का व्यावहारिक स्वरूप
FEDERALISM IN PRACTICE

प्रमुख सघीय देशो की सघीय व्यवस्था का विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की सघीय व्यवस्था

सयुक्त राज्य अमेरिका सघीय देश है और उसके सविधान का इतिहास सघीय शासन व्यवस्था का इतिहास है। उत्तरी अमेरिका मे 17वी सदी के अन्त तक उपनिवेशो की स्थापना हो चुकी थी। इस क्षेत्र म अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए फ्रास और इगलैण्ड के मध्य सप्तवर्षीय युद्ध हुआ था। इसमे अग्रेज विजयी हुए और वे उत्तरी अमेरिका के स्वामी बने। 18वी सदी के मध्य तक 13 उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। इन 13 उपनिवेशो ने इगलण्ड के विरुद्ध अनेक कारणो से प्रेरित होकर क्रान्ति की थी। इनमे प्रमुख कारण था ब्रिटिश सरकार द्वारा नवीन कर लगाना। परिणामस्वरूप उपनिवेशो की जनता न ब्रिटिश ससद म प्रतिनिधित्व की माग की। 'प्रतिनिधित्व के अभाव मे कर नही' का नारा बुलन्द हो उठा और युद्ध छिड गया। 4 जुलाई, 1776 ई को 13 उपनिवेशा ने इगलैण्ड तथा उसके सम्राट के विरुद्ध स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) कर दी।[1] 15 नवम्बर, 1777 ई को इन 13 उपनिवेशा ने मिलकर एक परिसघ (Confederation) की स्थापना की। स्मरणीय है कि परिसघ के निमाण की प्रेरणा का मूल कारण उपनिवेशा की सुरक्षा की भावना थी। इस समय सभी उपनिवेश पूण स्वतन्त्र राज्य थे और वे शासन के अधिकार नयी सत्ता का सौपने के इच्छुक नही थे।

परिसघ के सविधान को Articles of Confederation की सज्ञा दी गयी। इसमे केवल 13 धाराए थी। परिसघ का नाम सयुक्त राज्य अमेरिका रखा गया (प्रथम धारा)। परिसघ का सदस्य बनने के पश्चात भी प्रत्येक राज्य अपनी सत्ता एव

---

1 अमेरिकी स्वतन्त्रता का यह युद्ध 19 अक्टूबर, 1781 ई तक चलता रहा और इस वर्ष ग्रेट ब्रिटेन न सयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया। 1783 इ मे पेरिस सन्धि द्वारा इसको मान्यता दी गयी।

स्वतन्त्रता का स्वामी बना रहा। इसे उसने संघ की स्थापना के समय समर्पित नहीं किया। तत्कालीन तेरह उपनिवेशों ने अपनी सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता के रक्षार्थ तथा सामान्य हितों की पूर्ति के लिए परिसंघ में प्रवेश किया था। उन्होंने आक्रमण की अवस्था में एक दूसरे की सहायता का वचन दिया। संयुक्त राज्य संघ की एक कांग्रेस (विधानमण्डल) की स्थापना की गयी जिसे वैदेशिक मामलों का निर्णय करने, सिक्के एवं नाप-तोल में समानता स्थापित करने, जल व थल सेना पर नियन्त्रण रखने, राज्यों के आपसी विवादों का निर्णय करने के अधिकार प्राप्त थे। कांग्रेस में प्रत्येक राज्य को 2 से 7 तक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया था। कांग्रेस द्वारा नियुक्त एक समिति द्वारा उसके सत्रावसान-काल में कार्य किया जाता था। इस समिति में प्रत्येक राज्य का एक एक प्रतिनिधि होता था। परिसंघ की कांग्रेस को सामान्य हितों से सम्बन्धित मामलों में स्पष्ट रूप से शक्तियां प्रदान की गयी थी, यथा—युद्ध की घोषणा एवं शान्ति स्थापित करने, सन्धियाँ करने, राजनयकों को भेजने एवं दूसरे देशों के राजनयकों का स्वागत करने, मुद्रा, ऋण लेने, नौ-सेना का निर्माण, डाक व्यवस्था की स्थापना, संयुक्त राज्य की सेना के उच्च अधिकारियों को नियुक्त करने की शक्तियां। 13 में से 9 राज्यों की स्वीकृति महत्वपूर्ण निर्णयों के लिए आवश्यक होती थी। कांग्रेस को जनता पर प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण करने के अधिकार नहीं थे और न उसे कर लगाने एवं व्यापार को नियन्त्रित करने की शक्ति प्राप्त थी। कांग्रेस राज्यों से आर्थिक सहायता की मांग कर सकती थी। अतः केन्द्रीय सरकार राज्यों द्वारा दिये गये धन पर निर्भर करती थी। परिसंघ में कार्यपालिका और राष्ट्रीय न्यायपालिका की भी स्थापना नहीं की गयी थी। बोयड के अनुसार परिसंघ को पूर्ण राज्य घोषित किया गया था परन्तु संघ सरकार को वास्तविक शक्तियां प्राप्त नहीं थी। कांग्रेस की समितियों के द्वारा शासन ठीक प्रकार से न चल सका। ऑलिवर (Oliver) के शब्दों में परिसंघ की कांग्रेस राज्यों के राजदूतों की ऐसी संस्था थी जिसके विभिन्न विधान-मण्डलों के साथ उसके सम्बन्ध राजदूतों के समान थे। सेना स्थापित करने के लिए उसे आज्ञा लेनी पड़ती थी। फलस्वरूप उसे अपमानजनक एवं अविवेकपूर्ण शर्तें माननी पड़ती थी। जब कोई राज्य संघीय शासन को एक रेजीमेन्ट भेजता था तब वह राज्य अधिकारियों को नियुक्त करने के अधिकार अपने पास ही रहने देता था। ऐसी अवस्था में सेना का संगठन असम्भव था।" प्रत्येक राज्य अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए कृत-संकल्प था।

परिसंघ की धाराओं को 1781 ई. में सभी राज्यों ने स्वीकृत किया था। स्ट्रांग के अनुसार 1781 ई. के परिसंघ द्वारा सच्चे संघ (True Federation) का निर्माण नहीं हुआ था अपितु एक परिसंघ—एक ढीलेढाले संघ (a loose league)—का निर्माण हुआ था। वुडरो विल्सन के अनुसार "परिसंघ की धाराएँ बालू की रस्सी के सदृश थी जो किसी को भी बांध नहीं सकी।"[2] हरमन फाइनर के अनुसार

2 The Article of Confederation in 1781 constituted not a true

भयानक संकट के कारण उपनिवेश एकता के सूत्र मे आबद्ध हुए थे । परिसघ को मित्रता के दृढ सघ की सज्ञा दी गयी थी परन्तु वह स्वतन्त्र राज्यो का असन्तुष्ट सघ बन गया था । सप्रभुता राज्यो मे निहित थी, काग्रेस को अल्प एव सीमित शक्तिया प्राप्त थी । युद्ध की समाप्ति के फलस्वरूप काग्रेस का रहा-सहा अस्तित्व भी समाप्त हो गया था ।"[3]

परिसघ का यह प्रयोग सघवाद के इतिहास म अद्वितीय महत्व का है । 1783 ई म ब्रिटेन से सन्धि के समय अमेरिकी परिसघ अपनी दुदशा की चरम सीमा पर पहुँच गया था । मुनरो ने परिसघ की दुवलता पर मत व्यक्त करते हुए कहा है कि परिसघ मे कर लगाने, ऋण लेने, व्यापार को नियन्त्रित करने एव सामूहिक सुरक्षा हेतु सेना रखने की चार शक्तिया का अभाव था । यह शक्तिया प्रत्येक शक्तिशाली शासन के लिए आवश्यक हैं ।[3]

क्रान्ति के समय मे परिसघ के यह दोष स्पष्ट नही थे परन्तु क्रान्ति के तुरन्त बाद अनेक समस्याएँ उठ खडी हुईं । मुद्रा-स्फीति एव मूल्य-वृद्धि ने जनता की कमर तोड दी । केन्द्रीय राजकोष खाली हो गया था । निश्चित समय पर राज्य अपनी देनदारी न कर सके । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ठप हो गया था । ऐसे समय मे काग्रेस निष्क्रिय थी । इस स्थिति का उसके पास कोई इलाज नहीं था । केन्द्र एव राज्यो व परस्पर राज्यो के मध्य सम्बन्ध सोचनीय थे । वैदेशिक सम्बन्ध केन्द्रीय शासन के क्षेत्रान्तगत थे परन्तु कुछ राज्यो ने विदेशी सरकारो से पृथक रूप से वार्ता प्रारम्भ कर दी थी । नौ राज्यो ने अपनी स्वतन्त्र सेनाएँ एव नौ सेनाएँ सगठित कर ली थी । परिसघ म विभिन्न प्रकार की मुद्राए प्रचलित थी । प्रत्येक राज्य द्वारा अपने प्रदेश म व्यापार का नियमन किया जाता था । पडोसी राज्यो के प्रति राज्यो द्वारा भेदभाव की नीति का अनुगमन किया जाता था, फलस्वरूप राज्यो म प्रतिस्पर्द्धा एव ईर्ष्या अपनी चरम सीमा पर थी । 1786 ई म राज्यो म गृह-युद्ध छिड जाने की स्थिति उत्पन्न हो गयी । परिसघ के सुधार के सभी प्रयत्न असफल हो चुके थ । वाशिंगटन, हैमिल्टन एव अन्य प्रमुख नेता परिसघ को सुधारने अथवा उसके स्थान पर नवीन राज्य-व्यवस्था की आवश्यकता को अनुभव करने लगे थे । परिसघ के द्वारा कमजोर केन्द्रीय शासन की स्थापना की गयी थी । शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के लिए

---

federation, but a confederation, a loose league, a 'rope of sand' as Woodrow Wilson called these Articles, 'which could bind no one "—Strong, C F *op cit*, p 108

3 Finer, H *op cit*, p 169

4 "Especially it was weak because it lacked four things which every strong National Government must possess, ability to raise revenues by taxation, to borrow money, to regulate commerce and to provide adequately for common defence by raising and supporting armies"—Munro W B, cited by Mahajan V D *Select Modern Governments* 1964, p 132.

राष्ट्र की जनता की सरकार होना आवश्यक था। फलस्वरूप सितम्बर 1786 ई में अनापोलिस (Annapolis) नामक स्थान पर मैरीलैण्ड (Maryland) एव वर्जीनिया (Virginia) राज्यो के मध्य पोटोमैक (Potomac) नदी म नौचालन के प्रश्न पर उत्पन्न विवाद पर विचार हेतु राज्यो के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन आयोजित हुआ। एलेक्जेण्डर हैमिल्टन इसम एक प्रतिनिधि था। उसने सभी प्रतिनिधियो को यह समझाने का प्रयत्न किया कि व्यापार नियमन म अन्य अनेक प्रश्न निहित हैं, अत सम्मेलन म सभी राज्यो से अपने-अपने प्रतिनिधियो को भेजने के लिए कहा जाय जिससे परिसघ के सविधान मे परिस्थितियो के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किये जा सके। अत सभी राज्यो क प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन मई 1787 ई म फिलाडेलफिया म आमन्त्रित किया गया।

फिलाडेलफिया का सम्मेलन (1787 ई)

फिलाडेलफिया के सम्मेलन म विभिन्न राज्यो के 55 प्रतिनिधियो न भाग लिया था। इन प्रतिनिधियो म वाशिंगटन, जेम्स मेडीसन, एलेक्जेण्डर हैमिल्टन, बेन्जामिन फ्रैंकलिन, एडमण्ड रेनडोल्फ सदृश प्रसिद्ध एव अनुभवी राजनीतिज्ञ एव विद्वान भी थे। प्रत्येक राज्य को एक मत प्राप्त था। सभी कार्यवाही गुप्त थी और बन्द कमरे म हुई थी। सम्मेलन के समक्ष महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न राज्यो की स्वतन्त्र सत्ता एव केन्द्रीय शासन की शक्तियो म एकता स्थापित करना था। मेडीसन के अनुसार इस समस्या के समाधान हेतु प्रतिनिधियो न सिद्धान्तत यह स्वीकार किया कि केन्द्रीय सरकार के नवीन एव सामान्य होने के कारण उसकी शक्तियो का स्पष्ट रूप म उल्लेख उचित होगा और शेष शक्तियाँ राज्यो को प्राप्त होनी चाहिए। केन्द्रीय सरकार को मुद्रा, व्यापार, युद्ध, युद्ध की घोषणा एव शान्ति-स्थापना के अधिकार देकर यथार्थ म शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया गया था। सविधान को प्रभावी एव क्रियान्वित होने के लिए 13 म से 9 राज्यो की स्वीकृति आवश्यक मानी गयी। 1787 ई के अन्त तक केवल 3 राज्यो न सविधान को अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। इस समय एक विवाद उठ खडा हुआ था। केन्द्र की प्रदत्त शक्तियो के कारण अनेक राज्य चकित थे। सम्मेलन मे सघवादी—फेडरलिस्ट (Federalists)—एव सघ विरोधी—फेडरलिस्ट विरोधी (Anti Federalists)—दो गुट बन गये थे। सघवादी शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के समर्थक थे। सघ विरोधी स्वायत्तता प्राप्त राज्यो के ढीले ढाले सघ के निर्माण के समर्थक थे। वे राज्यो की स्वतन्त्रता एव स्वायत्तता के पक्षपाती थे। अनेक नेताओ—यथा, पैट्रिक हेनरी (Patric Henry) एव रिचार्ड हेनरी ली (Richard Henry Lee)—ने सविधान की इस आधार पर आलोचना की कि मौलिक अधिकारो का उसम उल्लेख नहीं है। फेडरलिस्टो ने इस माग का समर्थन किया कि नवीन सरकार शीघ्रातिशीघ्र मौलिक अधिकारो का सविधान म समावेश करे। परिणामस्वरूप नवीन सरकार न प्रथम दस सशोधनो को स्वीकार करके मौलिक अधिकारो को सविधान म स्थान प्रदान किया। इसके पश्चात

अनक राज्यो ने सविधान को स्वीकृति प्रदान की और 21 जून, 1788 ई से सविधान लागू हुआ ।[5]

सघीय व्यवस्था का स्वरूप

अमेरिकी सविधान द्वारा सघीय शासन की स्थापना की गयी है । प्रारम्भ मे 13 घटक राज्य थे लेकिन अब सयुक्त राज्य अमेरिका के सघ मे 50 राज्य है । सघ शासन की स्वीकृत एव मान्य तीन प्रमुख विशेषताओ का अमेरिकी सघीय व्यवस्था के निमाण एव विकास के आधार पर ही निर्धारण हुआ है । वे है क्रमश (1) लिखित एव कठोर सविधान, (2) शक्तियो का विभाजन, एव (3) निष्पक्ष न्यायपालिका । सविधान द्वारा सघीय शासन की शक्तियो का स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।[5] अवशिष्ट शक्तिया राज्या को प्रदान की गयी हैं । केन्द्रीय शासन एव राज्यो के मध्य शासन की शक्तिया के वितरण के सम्बन्ध म सयुक्त राज्य म गणना एव अवशेष के सिद्धान्त (Principle of Enumeration and Residuam) का पालन किया गया है । इस सिद्धान्त के अन्तगत केन्द्र या राज्यो मे स किसी एक की शक्तिया का उल्लेख कर दिया जाता है और शेष शक्तिया दूसरे शासन की समभी जाती है । अत अमेरिकी सविधान द्वारा कमजोर केन्द्रीय शासन का निर्माण किया गया था । अपेक्षाकृत राज्य अधिक शक्तिशाली थे । सविधान के 10वे सशाधन द्वारा रहे-सहे सन्देह का भी निवारण कर दिया गया । इस सशोधन के द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि "सविधान द्वारा जो शक्तिया केन्द्र को नही दी गयी है और न राज्या के लिए वर्जित है वे सब शक्तिया राज्यो व जनता के लिए सुरक्षित है ।" अत सविधान के अनुसार केन्द्रीय शासन को प्रदत्त शक्तियो के अलावा कोई अन्य शक्तिया प्राप्त नही थी ।

राज्यो के हिता को एक अन्य व्यवस्था द्वारा भी सरक्षण प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है । सविधान द्वारा अमेरिकी काग्रेस के उच्च सदन—सीनेट—मे सभी राज्यो को समान प्रतिनिधित्व अर्थात् प्रति राज्य को दो सदस्य भेजने का अधिकार प्रदान किया गया है । सीनट को राष्ट्रपति के द्वारा की गयी नियुक्तियो एव सन्धिया को अनुमोदित करन एव वित्तीय मामला म पूण शक्ति प्रदान की गयी है । प्रत्येक राज्य को सीनट म प्राप्त समान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था मे सवैधानिक सशोधन द्वारा परिवतन का निषेध है । स्पष्ट है कि इन व्यवस्थाआ द्वारा राज्यो के प्रतिनिधि सदन—सीनेट—को केन्द्रीय शासन म निर्णायक अधिकार प्रदान किये गये है ।

---

5 सविधान के अनुच्छेद 1 के अन्तगत काग्रेस को निम्नलिखित विषयो पर विधि-निर्माण का अधिकार दिया गया है कर लगाना एव उन्हे एकत्रित करना, ऋण देना एव सयुक्त राज्य अमेरिका की सुरक्षा एव सामान्य कल्याण की व्यवस्था करना, ऋण लेना, विदेशी व्यापार, नागरिकीकरण (Naturalisation) एव दिवालिया सम्बन्धी नियमो का निर्माण, मुद्रा-माप एव नाप प्रणाली, डाकघरा की स्थापना, विज्ञान की प्रगति, सर्वोच्च न्यायालय के अधीन सघीय न्यायालया की स्थापना, युद्ध की घोषणा, सेना एव नौसेना ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य की केन्द्र से पृथक अपनी सवैधानिक व्यवस्था, न्यायपालिका एव नागरिकता है। अमेरिका म दोहरी, सघीय एव राज्यो की न्याय पालिका है। सघीय न्यायपालिका के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है। उसे सघीय सविधान की व्याख्या, सघ एव राज्य तथा राज्यो के मध्य, एक राज्य के नागरिक एव अन्य राज्य या नागरिक के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादो मे मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय सविधान की व्याख्या का अन्तिम न्यायालय है।

सविधान म सशोधन की स्पष्ट व्यवस्था है प्रत्येक सवैधानिक सशोधन के प्रभावी होने के लिए उसे तीन-चौथाई राज्यो के विधानमण्डलो या इस हेतु बुलाये गये राष्ट्रीय सम्मेलनो (Conventions) के द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। अत सविधान म सशोधन के लिए राज्यो के बहुमत की स्वीकृति आवश्यक है। 2/3 राज्यो के विधानमण्डलो का सविधान म सशोधन प्रस्तावित करने का भी अधिकार है।

सघीय व्यवस्था का केन्द्रीकरण

सघीय शासन को अमेरिकी सविधान के उपबन्धो के अन्तगत शक्तिशाली नही बनाया गया था। उसकी शक्तियो का सविधान म स्पष्ट उल्लेख करके उसे सीमित अधिकार प्रदान किय गये थे परन्तु आज स्थिति भिन्न है। सघीय शासन राज्यो की अपेक्षा कही अधिक शक्तिशाली है। सघीय शासन की शक्तियो म वृद्धि अर्थात सघीय केन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण सघीय न्यायपालिका है। इसके अतिरिक्त विधायी एव प्रशासकीय व्याख्याओ के फलस्वरूप भी काग्रेस की शक्तियो मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। केन्द्रीय वित्तीय अनुदान, सुरक्षा एव युद्ध, अन्त राज्यीय व्यापार सघीय केन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी अन्य कारण हैं।

अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय तथा सघवाद

सघीय शासन की शक्तियो की वृद्धि मे सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुख योगदान है। सघीय शासन को दृढ करने म निर्णायक भूमिका 1801 ई से 1835 ई तक अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, जॉन मार्शल ने निभाई है। यह न्यायाधीश सघवादी (Federalist) था। उसके द्वारा प्रसिद्ध विवाद—मारबरी बनाम *मेडीसन—मे दिये गये निर्णय के फलस्वरूप सघीय न्यायालयो को सविधान की व्याख्या* करने एव काग्रेस की विधियो को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार प्राप्त हुआ था। 1819 ई के मेकलोच बनाम मेरीलैण्ड विवाद म दिये गये निर्णय के द्वारा काग्रेस की निहित शक्तियो के सिद्धान्त (Theory of Implied Powers)[6] का विकास हुआ और सघीय सर्वोच्चता की धारणा की स्थापना हुई थी। दोनो सिद्धान्तो ने इससे भी आगे बढकर शक्तियो के परिणामात्मक सिद्धान्त[7] (Theory of Result-

6 An implied power is 'a power that is deducible from an express power"

7 A resultant power is a power that is deducible from two or more express powers"

ant Powers) की घोषणा की। परिणामात्मक शक्ति दो या अधिक व्यक्त शक्तियों से परिणाम रूप में अनुमानित शक्ति होती है। निहित शक्तियों के सिद्धान्त के परिणाम-स्वरूप संघीय क्षेत्राधिकार में असाधारण वृद्धि हुई। शक्तियों के परिणामात्मक सिद्धान्त पर न्यायपालिका के अतिरिक्त अन्य कोई सीमा या प्रतिबन्ध नहीं होता है।[8] निहित शक्तियाँ संविधान की संक्षिप्तता का परिणाम है। संविधान के अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण संघीय शासन को प्राप्त शक्तियाँ अत्यन्त अस्पष्ट हैं और उनके प्रयोग करने की विधि का भी कोई उल्लेख संविधान में नहीं है। अतः यह स्वाभाविक है कि मूल शक्तियों के प्रयोग के लिए जिन अन्य शक्तियों के प्रयोग की आवश्यकता प्रतीत हो, उनका प्रयोग संघीय शासन मूल शक्ति में निहित मान कर करे। संविधान के अनुच्छेद 1 व 8 में संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के क्रियान्वयन के लिए उनसे सम्बन्धित शक्तियों को कांग्रेस में निहित माना गया है। इसका यह अर्थ है कि कांग्रेस को संविधान द्वारा प्रदत्त एवं उनमें निहित शक्तियों के प्रयोग का संवैधानिक आधार तो प्राप्त था परन्तु निहित शक्तियों को विधिक मान्यता न्यायाधीश मार्शल के उपरोक्त विवाद में निर्णय द्वारा ही प्राप्त हुई। निहित शक्तियों की धारणा का समर्थन सर्व-प्रथम 1790 ई. में तत्कालीन वित्त मन्त्री हेमिल्टन ने वैदेशिक एवं अन्तःराज्यीय व्यापार के लिए संयुक्त बैंक की स्थापना के सन्दर्भ में किया था। इस प्रश्न को लेकर कांग्रेस में विवाद उठ खड़ा हुआ। उदार संविधानवादियों का मत था कि संविधान की व्याख्या उदार दृष्टिकोण से की जानी चाहिए और मूल शक्तियों के उपभोग के लिए जिन अन्य शक्तियों की आवश्यकता हो वे संघीय शासन की मूल शक्तियों में ही निहित समझी जानी चाहिए। इसके विपरीत जैफरसन, मेडीसन सदृश संविधानवादी भी थे जो संविधान के अक्षरशः पालन के पक्षपाती थे। परन्तु इस विवाद का निर्णय हेमिल्टन के पक्ष में हुआ और एक संघीय बैंक की स्थापना हुई। इस निर्णय में अर्थात् बैंक की स्थापना में निहित शक्तियों की धारणा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। बैंक की स्थापना कोई नीति सम्बन्धी निर्णय नहीं था अपितु वह विशेष मामले से सम्बन्धित था। निहित शक्तियों को सिद्धान्त रूप में 1819 ई. के मैकलोच बनाम मेरीलैण्ड के मुकद्दमे में न्यायाधीश मार्शल के निर्णय द्वारा स्वीकार किया गया तथा संघीय सर्वोच्चता और निहित शक्तियों को पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई। इस निर्णय में कहा गया था कि "शासन की शक्तियाँ सीमित हैं और उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, परन्तु हमारा यह विचार है कि संविधान के स्वस्थ स्वरूप के अनुसार राष्ट्रीय व्यवस्थापिका को स्वविवेक से काम लेने की अनुमति अवश्य ही होनी चाहिए जिससे संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों को उसके द्वारा क्रियान्वित किया जा सके तथा वह संस्था अपने निर्धारित महान कर्तव्यों को ऐसे ढंग से पूरा कर सके कि वे जन-साधारण के लिए सर्वाधिक लाभकारी हों।"[9] सर्वोच्च न्यायालय ने संघीय शासन द्वारा स्थापित

---

8 Refer to Dimock & Dimock *American Government in Action*, p 134
9 'The powers of the government are limited and its powers were

बक पर राज्यो द्वारा कर लगाने के अधिकार को स्वीकार नही किया। सर्वोच्च न्यायालय का इस सम्बन्ध म मत था कि सघीय सस्थाओ पर राज्यो का कर लगाने के अधिकार का स्वीकार करने का अथ उस समाप्त करना ह। अत सर्वोच्च न्यायालय ने यह अनुमति प्रदान करने से इन्कार कर दिया। निहित शक्तियाँ शासन की वे शक्तियाँ है जो सघ शासन की मूल शक्तियो को क्रियान्वित करने के उद्देश्य स उसम निहित मानी गयी है। निहित शक्तियाँ कोई नवीन शक्तियाँ नही हैं अपितु व मूल शक्तियो का अग है। वे मूल शक्तियो को क्रियान्वित करन के साधन मात्र हैं। सघीय शासन को सविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ यदि साध्य हैं तो निहित शक्तियाँ साधन है। निहित शक्तियाँ निश्चय ही किसी मूल शक्ति के क्रियान्वयन स सम्बन्धित होती हैं। माशल के अनुसार निहित शक्ति के उद्देश्य 'वध एव सविधान के क्षेत्र के अन्तगत होन चाहिए और उनक साधन भी वधानिक होन चाहिए।'

निहित शक्तियो के सिद्धान्त के प्रभावस्वरूप सघीय शासन का अपने दायित्वो के सम्पादन म सहायता प्राप्त हुई और सविधान का विकास हुआ तथा परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार उसमे आवश्यक परिवतन होत रह। इसके अतिरिक्त, शासन की शक्ति का केन्द्रीकरण हुआ और शासनतन्त्र म न्यायपालिका के महत्व म वद्धि हुई। निहित शक्तियो के बारे म काग्रेस अन्तिम निर्णायक नही है अपितु सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम निर्णायक है और अनेक अवसरो पर इस सम्बन्ध म उसन काग्रेस क दृष्टिकोण का अस्वीकार कर दिया है।

न्यायाधीश माशल ने मैकलोच बनाम मरीलैण्ड के विवाद म निणय देते हुए कहा था कि 'सयुक्त राज्य अमेरिका जनता का सघ है और केन्द्रीय सरकार सिद्धान्त एव व्यवहार दोनो म ही प्रत्यक्ष रूप से जनता पर निभर रहने वाली राष्ट्रीय सरकार है।' इस निणय के माध्यम से माशल द्वारा इस बात पर बल दिया गया है कि केन्द्रीय शासन को शक्ति राज्यो स प्राप्त न होकर प्रत्यक्षत जनता से प्राप्त है। सविधान तो कवल एक स्वरूप है जिसके अन्तगत राष्ट्रीय सरकार विकास कर सकती है या उसे विकास करना चाहिए। इसी विचार की पुष्टि न्यायाधीश होम्स (Justice Holmes) ने एक अन्य विवाद (मिसौरी बनाम हालण्ड) म की है।

केन्द्र द्वारा राज्यो को प्रदत्त वित्तीय सहायता

यह केन्द्र की शक्ति की वृद्धि का एक अन्य कारण है। केन्द्र द्वारा राज्यो को आर्थिक अनुदान कराधान धारा[10] (Taxation Clause) के अन्तगत दिया जाता है।

---

not to be transcended But we think the sound construction must allow the National Legislature that discretion with respect to the means by which the powers it confers are to be carried into execution which will enable that body to perform high duties assigned to it in a manner most beneficial to the people' — Marshall, C J, in *McCulloch vs Maryland* (1819)

10 Article 1, Sec F, Clause 1

केन्द्रीय शासन को इस धारा के अधीन जनकल्याण के हेतु सहायता देने का अधिकार है। राज्यो की तुलना म केन्द्रीय शासन की आय के स्रोत अपेक्षाकृत अच्छे है। अधिकाश समाज-कल्याणकारी योजनाओ का भार राज्यो पर है लेकिन उनकी वित्तीय स्थिति इन अतिरिक्त दायित्वो का वहन करने म असफल ह। फलत राज्यो को केन्द्रीय वित्तीय अनुदान पर निभर रहना पडता है। कृषि, शिक्षा स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित जिन जन-कल्याणकारी योजनाओ के लिए सघीय शासन द्वारा राज्यो को अनुदान *दिया जाता है, सघीय शासन का इस आर्थिक अनुदान को व्यय करने से सम्बन्धित* नियमो को निश्चित करने का अधिकार होता है। प्रारम्भ मे सभी अनुदान बिना शर्त दिये गये थे परन्तु अब सभी अनुदान सशर्त (conditional) होते है। केन्द्र को केन्द्रीय अनुदान से सम्बन्धित राज्यो के कार्यों के निरीक्षण एव हिसाब की जाच करने का अधिकार है। परिणामस्वरूप राज्यो की स्वायत्तता सीमित होती जा रही है और राज्यो के कार्यो पर केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण बढता जाता है। केन्द्रीय शासन द्वारा *सडको, वन, सामाजिक सुरक्षा, कृषि के विकास व सावजनिक कार्यों के निर्माण तथा* बेरोजगारी, सुरक्षा एव शिक्षा आदि पर कुल व्यय का औसतन 50% अनुदान दिया जाता है। 1933 ई के बाद केन्द्रीय शासन ने नगरपालिकाओ को भी सीधे आर्थिक अनुदान देना प्रारम्भ कर दिया है।

सामाजिक परिवतन

सामाजिक परिवतन, युद्ध एव अन्तरराष्ट्रीय स्थिति के फलस्वरूप भी अमेरिकी केन्द्रीय शासन की शक्ति मे वृद्धि हुइ है। 1789 ई म सयुक्त राज्य अमेरिका कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था वाले 13 उपनिवशो का कम जनसख्या वाला देश था। आज वह 50 राज्यो का प्रधान औद्योगिक देश है और आबादी की दृष्टि से भी एक बडा देश है। 1917 ई तक अमेरिका ने वैदेशिक मामलो म पृथक्करण की नीति का अनुगमन किया था। आज वह विश्व की महान शक्ति है, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति म पश्चिमी उदारवादी लोकतान्त्रिक शक्तियो का प्रमुख पक्षधर है तथा लोकतान्त्रिक शक्तियो एव विश्व शान्ति की रक्षा के दायित्व को ओढे हुए है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सरकार के दायित्वो मे सहजही वृद्धि हुई है और उसी अनुपात मे उसकी शक्ति मे भी वद्धि हुई है। सघीय शासन के प्रति जनता के दृष्टिकोण पर इन परिवतनो का प्रभाव पडा है और जनता राष्ट्रीय शासन की शक्तियो म वद्धि के प्रति सहज ही सहिष्णु हो गयी है। यातायात एव आवागमन तथा नवीन वैज्ञानिक सचार व्यवस्था के द्रुतगामी साधनो के विकास के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न क्षेत्रो की पृथकता नष्ट हो गयी है। औद्योगिक एव व्यापारिक दृष्टि से सयुक्त राज्य अमेरिका एक सुदृढ इकाई बन चुका है। इसका स्वाभाविक परिणामस्वरूप राज्यो की शक्ति म ह्रास हुआ है और केन्द्रीय शासन अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली होता चला गया है। व्यापार एव औद्योगिक विकास से उत्पन्न समस्याओ के समाधान की क्षमता राज्यो म नही थी।

राष्ट्रीय स्तर पर दलो के सगठन एव विकास ने राज्यो की सीमाओ को समाप्त

कर लिया है। इसके द्वारा क्षेत्रीय एव राज्यो की दृष्टि की अपेक्षा राष्ट्रीय दृष्टि से नीति निर्धारित की जाती है। राष्ट्रीय समाचारपत्रो के विकास ने सामान्य राष्ट्रीय आदर्शों की स्थापना मे योग दिया है और जनता मे राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न की है। राष्ट्रपति राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गया है। लास्की का कथन है कि राष्ट्रपति की शक्तियो का विकास अमरीकी सघीय व्यवस्था मे महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

सुरक्षा एव युद्ध

सवैधानिक दृष्टि से सयुक्त राज्य अमरिका की सुरक्षा, विदेशी आक्रमण से रक्षा और युद्ध का दायित्व सघीय शासन का है। आज सुरक्षा का स्वरूप पूरी तरह बदल चुका है। युद्ध के प्रारम्भ होने तक सुरक्षा के लिए रुका नही रहा जा सकता। सुरक्षा के लिए सतत तैयारी अपेक्षित है। राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सम्पूर्ण औद्योगिक एव तकनीकी तथा आर्थिक एव मानवीय शक्ति का इस प्रकार समायोजन आवश्यक है कि किसी भी अप्रत्याशित परिस्थिति का सहज ही सामना किया जा सके। इसके लिए उत्पादन यातायात, सचार विनिमय-व्यवस्था एव मानवीय साधनो पर नियन्त्रण आवश्यक है। यह दायित्व सघीय शासन ही भली भाँति निभा भी सकता है। युद्ध प्रारम्भ होने पर इस दायित्व मे और अधिक वृद्धि हो जाती है। युद्ध के बाद सेना के विसैनीकरण एव युद्धोत्तर पुन निर्माण के लिए उचित नियोजन एव समन्वय की अपेक्षा होती है। राष्ट्रीय अर्थात सघीय शासन को युद्ध की घोषणा करने का अधिकार है। सफलतापूर्वक युद्ध-सचालन के लिए पूर्ण शक्ति की आवश्यकता होती है। विगत दो विश्व युद्धो के फलस्वरूप सघीय शासन की शक्तियो मे असाधारण विकास हुआ है। लियोनार्ड ने इस सत्य को व्यक्त करते हुए कहा है कि 'रूसी भालू वह स्पष्ट राक्षस है जो हमे केन्द्र की तरफ धकेल रहा है।' अत वाह्य आक्रमण एव असुरक्षा का भय सयुक्त राज्य अमरिका के केन्द्रीय शासन को अधिकाधिक शक्तिशाली बना रहा है।

अन्त राज्यीय व्यापार एव वाणिज्य

अन्त राज्यीय व्यापार एव वाणिज्य ने सघीय केन्द्रीकरण को बहुत बल दिया है। सविधान ने विदेशी राज्यो एव विभिन्न राज्यो के मध्य वाणिज्य के नियमन की शक्ति काँग्रेस को प्रदान की है।[11] यही वाणिज्य धारा (Commerce Clause) कहलाती है। इसके सम्बन्ध मे हमिल्टन का मत था कि व्यापारिक एव राजनीतिक हितो की पूर्ति शासन की एकता मे ही सम्भव है।[12] आज अमेरिका का अन्त राज्यीय एव विदेशी व्यापार बहुत बढ गया है। इससे सम्बन्धित उत्पादन, क्रय विक्रय, यातायात आदि सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। व्यापार एव वाणिज्य के विकास एव वृद्धि के साथ उसी अनुपात मे काँग्रेस की शक्तियो मे भी वृद्धि एव विकास स्वाभाविक

11 The 'power to regulate commerce with foreign nations and among several States is granted to the Congress by the U S Constitution vide Article 1, Sec VIII Clause 3

12 *The Federalist*, No 11

है । सर्वोच्च न्यायालय ने इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया है । फलस्वरूप व्यापार एव वाणिज्य से सम्बन्धित समस्त सघीय विधिया एव उनके क्रियान्वयन को न्यायालय ने मान्यता प्रदान की है । इससे देश के आर्थिक जीवन का हर क्षेत्र केन्द्रीय शासन के क्षेत्राधिकार के अन्तगत आ गया है । 1824 ई मे न्यायाधीश माशल ने वाणिज्य धारा (Commerce Clause) *की व्यापक परिभाषा दी जिससे सभी औद्योगिक एव* वाणिज्य विकास के काय, जैसे—रेलमाग, टेलीफोन, रेडियो, हवाई यातायात, स्वत ही सघीय नियन्त्रण मे आते चले गये ।[13] परन्तु 1868 ई म सर्वोच्च न्यायालय ने यह निणय दिया कि बीमा पर सघीय नियन्त्रण की अपेक्षा राज्यो का नियन्त्रण होना चाहिए । लेकिन 1944 ई मे सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस पूवनिणय को बदलते हुए बीमा पर भी सघीय नियन्त्रण एव अधिकार स्थापित कर दिया है ।

1937 ई मे सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य विवाद[14] मे निणय देते हुए श्रमिक सम्बन्धो (Labour relations) को भी सघीय शासन की वाणिज्यिक शक्ति *के अधीन माना था । फलस्वरूप राज्यो का जो इन मामलो मे नियन्त्रण था, वह* समाप्त हो गया । 1939 ई मे कृषि-उत्पादन को भी सर्वोच्च न्यायालय ने सघीय नियन्त्रण के अधीन स्वीकार किया था ।

वाणिज्य नियमन की शक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । व्यापार का प्रशासन एव उससे सम्बन्धित समस्त नियमा का निर्माण वाणिज्य नियमन के ही अन्तगत है। इसके अतिरिक्त, एक या अधिक राज्यो स सम्बन्धित व्यापार या वाणिज्य की सुरक्षा, विकास एव परिवद्धन वाणिज्य के नियमन के ही अन्तगत आता है । अत अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था का कोई क्षेत्र ऐसा नही है जो केन्द्रीय शासन के क्षेत्राधिकार के अन्तगत न हो । 1930 ई स 1940 ई तक के वर्षा मे काग्रेस ने वाणिज्य धारा का उपयोग श्रमिक-सम्बन्धो, रेडियो के नियन्त्रण, रेलवे कमचारियो के लिए अवकाश व्यवस्था प्रदान करने, अन्तर्राज्यीय बस एव ट्रक यातायात के नियमन एव यातायात सम्बन्धी नियमो के निमाण के लिए किया है । काग्रेस द्वारा निर्मित इन समस्त विधिया के फलस्वरूप राज्यो की शक्तियो का ह्रास हुआ है और सघीय सरकार द्वारा उनके क्षेत्र का अतिक्रमण हुआ है ।

काग्रेस द्वारा अनेक प्रशासकीय विभागो एव आयोगा की स्थापना की गयी है और उनसे सम्बन्धित विधियो का निर्माण किया है। इसके फलस्वरूप राज्या की शक्ति के मूल्य पर सघीय शासन की शक्ति म वद्धि हुई है । सघीय व्यापार आयोग, सघीय रिसच बोड पुनगठन वित्तीय निगम, राष्ट्रीय श्रम बोड, सामाजिकसुरक्षा बोड आदि ऐसे कुछ आयोग है । काग्रेस द्वारा अनेक ऐसी विधिया का भी निर्माण किया गया है जिनके फलस्वरूप सघीय शासन की शक्तियो म वृद्धि हुई है, जसे अन्त वाणिज्य

13 *Gibbons* vs *Ogden*, (1824) S C
14 *N L R B* vs *Jones and Laughlen Steel Corporation*, (1937) 301 U S 1

अधिनियम, खाद्य एव औपधि अधिनियम, सघीय व्यापार आयोग अधिनियम एव सरमन विधि ।[15] इन सभी बोर्डों की स्थापना एव विधियो का निमाण सामाजिक परिस्थिति का परिणाम है ।

मूल सविधान म यह प्रावधान था कि प्रत्यक्ष करो से प्राप्त होन वाली आय सभी राज्यो म वितरित की जायगी । गृह युद्ध काल म आय-कर काग्रेस के द्वारा जारी किया गया था । सर्वोच्च न्यायालय ने इसे अप्रत्यक्ष कर मानत हुए काग्रस की इस विधि को वैध माना था ।[16] लेकिन 1895 ई म सर्वोच्च न्यायालय न अपने इस निणय को बदल दिया ।[17] अत आय कर अधिनियम को वधता प्रदान करन के लिए 1913 ई मे सविधान म सशोधन करना पडा था ।[18]

किसी राज्य को सयुक्त राज्य अमरिका के सघ से पृथक होने का अधिकार नही है । इस सिद्धान्त का सम्बन्ध अमरिकी इतिहास की एक महत्वपूण घटना से है । 1861 65 ई के गृह-युद्ध या सघ स पृथक होने सम्बन्धी युद्ध (Civil War or the War of Secession 1861-65) न इस सिद्धान्त की स्थापना की थी । राष्ट्रपति लिंकन ने दासता के उन्मूलन की घोषणा की । दक्षिण के सात राज्यो न इसका विरोध किया । विरोध उग्ररूप धारण करता चला गया और गृह युद्ध छिड गया । इस युद्ध म दक्षिण के सात राज्य पराजित हुए और उनके विरुद्ध सघीय शासन की विजय हुई । लिंकन के द्वारा यह गृह युद्ध केवल दासता के उन्मूलन के लिए ही नहीं लडा गया था अपितु इसके द्वारा सघवाद के इस जीवनदायी सिद्धान्त की स्थापना हुई कि सघ शाश्वत हैं । लिंकन का कथन था कि हम यह निश्चयपूवक कह सकते हैं कि किसी देश के सविधान म उस देश के शासन को समाप्त करने सम्बन्धी कोई प्रावधान नहीं होता । आज अमेरिका का कोई राज्य पृथक होने की कल्पना भी नही कर सकता । गृह युद्ध के अन्त के पश्चात सघीय शासन विजयी एव शक्तिशाली अवतरित हुआ । स्ट्राग का कथन है कि ' पृथकता के युद्ध ने न तो अमेरिकी सविधान के स्वरूप म परिवतन ही किया और न उन्होने एकात्मक राज्य की स्थापना की । इस युद्ध न केवल यह सिद्ध किया कि अमेरिकी सघ एकात्मक राज्य की भाति दृढ है और विघटन से अपनी रक्षा कर सकता है ।'[19]

---

15 Interstate Commerce Act Food and Drugs Legislation, The Federal Trade Commission Act and the Sherman Anti trust Act

16 *Springer* vs *United States*, (S C)

17 *Pollock* vs *Farmer s Loan and Trust Co*, *157 U S 429* and *158 U S 601*

18 ' The Congress shall have power to lay and collect taxes or incomes from whatever source derived without apportionment among the several States and without regard to any census and enumeration —XVIth Amendment in the U S Constitution

19 Strong, C F *op cit*, p 111

समीक्षा

अमरिकी शासन-व्यवस्था मे सघीय केन्द्रीकरण के फलस्वरूप सहज रूप से यह प्रश्न उठ खडा हुआ है कि क्या ऐसी अवस्था मे सयुक्त राज्य को सघात्मक राज्य माना जाना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर सयुक्त राज्य अमेरिका के सघीय शासन के स्वरूप एव उसके इतिहास पर निमर है। अमेरिकी सघीय व्यवस्था के दो काल हैं—1930 ई क पूव का काल एव उसके बाद का काल। 1930 ई की विश्वव्यापी मन्दी के पूव का काल द्वध सघवाद (Dual Federalism) या प्राचीन (classical) सघवाद का युग कहा जाता है। 1930 ई की विश्वव्यापी मन्दी ने आधुनिक या सहयोगी (cooperative) सघवाद के युग का सूत्रपात किया है। अमेरिकी सघीय व्यवस्था के लिए 'द्वध सघवाद' शब्द का प्रयोग सवप्रथम एडवड एस कार्विन (Edward S Corwin) ने किया है। इस युग का सघवाद पर उपलब्ध सम्पूण अमेरिकी साहित्य इस धारणा को मान्यता देता है कि दो—केन्द्रीय एव राज्या की—सप्रभुताए हैं। वे सवर्तीय हैं और दोना अपने-अपने क्षेत्रा मे स्वतन्त्र हैं। 19वी सदी भर द्वैध सघवाद का सिद्धान्त अमेरिका सर्वोच्च न्यायालयो के निणयो के माध्यम से ध्वनित होता रहा। सघीय या केन्द्रीय और राज्या की सरकारो मे शक्तियो का विभाजन 'द्वैध सघवाद के सिद्धान्त का मूलाधार है। शासकीय समस्याओ के समाधान मे शासन के विभिन्न स्तरो पर सत्ता का पृथक्करण ही द्वधवाद (Dualism) था। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक शासन के अपने दायित्व थे जिन पर उसका पूण अधिकार था। प्राचीन सघवाद के युग मे इस सिद्धान्त का तीव्र समथन राज्यो के अधिकारो के समयका ने ही नही किया था, अपितु राष्ट्रवादी भी इसे मान्यता देते थे।[20] प्रो लियोनाड डी व्हाइट के अनुसार प्रशासन म भी द्वैधवाद पाया जाता था। दो प्रशासनिक एव न्याय-व्यवस्थाएँ थी। दोनो अपने अपने क्षेत्रा मे स्वायत्त एव पूण थी।[21]

सयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय न अन्त राज्यीय सम्बन्धा म द्वैधवाद को मान्यता दी है। दीघकाल तक तो सर्वोच्च न्यायालय ने सघीय द्वधवाद की प्रकृति पर कोई स्पष्ट निणय नही दिया था। प्राचीन सघवाद से सम्बन्धित मुख्य विवाद थे मार्टिन बनाम हन्टस (1816), कोहिन्स बनाम वर्जीनिया (1821), मैक्लोच बनाम मेरीलैण्ड (1819)[22] एव गिब्बन्स बनाम आगडेन।[23] इसके अतिरिक्त, अन्त राज्यीय वाणिज्य स सम्बन्धित विवादो मे द्वधवाद का विस्तत उल्लेख प्राप्त होता है। न्यायाधीश माशल के निणया के फलस्वरूप सघीय शासन की शक्तियो म

20 Elazar, D J *The American Partnership* 1962 ed, p 14
21 Leonard D White *The Jacksonians* 1954, p 506
22 *Martin* vs *Hunters Leasse* (1816), *Cohens* vs *Virginia* (1821) and *McCulloch* vs *Maryland* (1819)
23 *Gibbons* vs *Ogden* (1824)

असाधारण वृद्धि हुई है। सर्वोच्च न्यायालय मे जैक्सनवादी न्यायाधीशो के शक्ति आने के पश्चात दासता सम्बन्धी विवादो म दिये गय निणय राज्यो के पक्ष मे थे मुख्य न्यायाधीश बोअर वी टानी ने ऐबिलमेन बनाम बूथ (1858) के विवाद निणय देते हुए "द्वैधवाद" की निम्नलिखित शब्दो म स्पष्ट एव अधिकृत व्याख्या की है

"केन्द्रीय एव राज्य शासन की शक्तिया यद्यपि स्पष्ट हैं और एक ही क्षेत्रीय सीमा मे क्रियान्वित की जाती है परन्तु वे पृथक एव स्पष्ट सप्रभुताएँ हैं जो अपन अपने क्षेत्रो म पृथक एव स्वतन्त्र रीति से क्रियाशील है।"[24]

सयुक्त राज्य अमरिका के गृह-युद्ध के पश्चात सर्वोच्च यायालय न अनेक निणया म सघीय द्वैधवाद के सिद्धान्त का विस्तृत उल्लेख किया है, यथा—कलेक्टर बनाम डे (1871) स्लॉटर हाउस विवाद, मुनक्स बनाम इलीनोइस एव पोजी बनाम फीसेनडेक्टल (1922)[25]। अपन एक अन्य निणय म सर्वोच्च यायालय के न्यायाधीश विलियम आर डे न सर्वोच्च न्यायालय का काय दोना सरकारो से सम्बन्धित क्षेत्रो की रक्षा करना एव उनमे मध्यस्थता करना बताया है।[26] द्वैध सघवाद का अथ सघ एव राज्या म शक्तियो के वितरण एव दोनो सरकारा के पृथक क्षेत्र एव अधिकार से है। इस अमेरिकी सघीय राजनीतिक व्यवस्था का महत्वपूण तत्व माना जाता था। परन्तु अन्त राज्यीय सम्बन्धा म राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट की न्यू डील योजना नवयुग का सूत्रपात करती है। परिवर्तित परिस्थितियो मे एडवर्ड कार्विन, लियोनाड डी ह्वाइट सदृश विद्वाना ने द्वैधवाद की पुन व्याख्या की है। उनका मत है कि सविधान-निर्माता एक सशक्त राष्ट्रीय शासन का निर्माण करना चाहते थे परन्तु परिस्थितियावश उन्हे राज्या के लिए महत्वपूण दायित्व निर्धारित करना पडा।[27] अब द्वैधवाद का युग लद चुका है, नवीन सघवाद (New Federalism) का उदय हुआ है जिसका प्रारम्भ विल्सन के प्रशासन या फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के शासन से माना जाता है। नवीन सघवाद के द्वारा सघीय एव राज्या की सरकारा म जो अवरोध थे वे ध्वस्त हो गये हैं। फलस्वरूप सघ एव राज्यो म पृथकता की अपेक्षा सहयोग का विकास हुआ है। इस सहयोगी सघवाद (Cooperative Federalism) भी कहते हैं। यह परम्परागत पृथकतावादी सघीय द्वैधवाद स भिन्न है। सहयोगी सघवाद के परिणामस्वरूप

---

24 The powers of the Central Government and of the State although both exist and are exercised within the same territorial limits are yet separate and distinct sovereignties acting separately and independently of each other within their respective spheres' — *Ableman* vs *Booth case* U S Supreme Court (1858)

25 *Collector* vs *Day* (1871) *The Slaughter House* cases, *Munx* vs *Illinois* and *Ponzi* vs *Fessendanctal* (1922)

26 Mr Justice William R Day in *Hammer* vs *Dagenhart* (1918)

27 Ogg and Ray *Essentials of American Government*, p 45

सघीय शासन की शक्तिया का विस्तार राज्या के क्षेत्र म भी हो गया है। नवीन योजनाओ के नियान्वयन हेतु सघीय एव राज्या की सरकारा म सहयोग का विकास हुआ है।[28] प्राय प्रत्येक सघीय राज्य म केन्द्र एव राज्या के मध्य सहयोगी तत्वो एव सस्थाओ का विकास हुआ है। अमेरिका म गवनरा का सम्मेलन इस प्रकार के सहयोग का एक उदाहरण है। प्रथम सम्मेलन 1908 ई म थियोडोर रूजवेल्ट की प्रेरणा से हुआ था। परन्तु ह्वीयर के अनुसार गवनरा का सम्मेलन राज्या एव सघ शासन के मध्य किसी क्रियात्मक सहयोग का विकास नही कर सका है।[29] 1937 ई म सयुक्त राज्य अमेरिका मे राज्या म सहयोग के विकास हेतु अन्त राज्यीय परिषद (The Council of State Governments) की स्थापना की गयी थी। इस परिषद ने महत्वपूर्ण काय किया है।

नवीन सघवाद के प्रति मिश्रित प्रतिक्रिया हुई है। राज्या की स्वायत्तता के पक्षधर जिन्हे जफरसनवादी (Jeffersonians) कहा जाता है, इसे Coerced Federalism कहते हैं। केन्द्र एव राज्यो के इस सहयोग को केन्द्रीय सम्मिश्रण (Central assimilation) भी कहा जाता है।[30] इससे राज्या की परम्परागत स्वतन्त्रता एव अधिकारो का हनन हुआ है। इसके विपरीत, हेमिल्टनवादी (केन्द्र के पक्षधर) केन्द्र एव राज्या के बढते हुए सहयोग का समथन करते हैं। प्रो डेनियल जे इलाजार (Daniel J Elazar) ने अमेरिकी सघीय व्यवस्था एव राज्यो के सम्बन्धा की समीक्षा करते हुए कहा है कि "सयुक्त राज्य की सघीय यवस्था मूलत सहयोगी है और व्यवहार मे द्वैध सघवाद कभी सफल रही रहा है।" 19वी एव 20वी दोना ही सदियो मे सघ एव राज्यो ने शासकीय दायित्वा को परस्पर सहयोगपूवक सम्पादित किया है। लेकिन इस सत्य का अवलोकन न कर सकने का कारण उस युग के राजनीतिक नेताओ की सिद्धान्त एव व्यवहार के अन्तर के प्रति वैमनस्ययुक्त नीति थी।[31] सघीय अनुदानो ने सहयोगी सघवाद के आधार-स्तम्भ का काय किया है।

अमेरिका के सघीय शासन की शक्तिया मे राज्य के दायित्वो मे वृद्धि के साथ-साथ वद्धि स्वाभाविक है। फलस्वरूप सघीय शासन की शक्तियो मे असाधारण विकास हुआ है। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि स यह आवश्यक भी है। अमेरिकी सघ मे केन्द्र एव राज्यो म शक्ति सन्तुलन उलट गया है। केन्द्र की अपेक्षा राज्यो को सविधान म शक्तिशाली बनाया गया था परन्तु आज स्थिति उल्टी है। लेकिन इसका यह अथ नही है कि राज्या का कोई महत्व नही है। सत्य यह है कि राज्या को आज भी पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त है। राज्यो के दायित्व भी काफी महत्वपूण है। सभी अमेरिकी राज्यो म राज्य के प्रति तीव्र भक्ति पायी जाती है। स्मरणीय है कि 1900 ई के पूव अमे-

---

28 Elazar D J *op cit*, p 23
29 Wheare K C *Federal Government* p 229
30 Aiyar, S P *Federalism and Social Change*, (1961) p 165
31 Daniel J Elazar *op cit* p 24

रिका म सघ एव राज्या के सम्बन्ध मूलत एक राजनीतिक प्रश्न था, जबकि
वह विशुद्ध आर्थिक समस्या है। हम इस मत स भी सहमत हैं कि अमेरिकी म
शासन की शक्तियों म राज्या की शक्ति क मूल्य पर वद्धि हो रही ह परन्तु स्ट्रा
इस मत का भी हम स्वीकार करना पडेगा कि 'सयुक्त राज्य म सघीय सविधान
राज्या के सविधाना स जो उसक अत्यन्त उपयोगी एव अनिवार्य अग हैं, पृथक
अर्थ नहीं है।"[32]

आस्ट्रेलिया की सघीय व्यवस्था

आस्ट्रेलिया के सविधान म सघीय शासन की समस्त विशेषताएँ—यथा, स
धान की सर्वोच्चता केन्द्रीय एव राज्या की सरकारा के मध्य शक्तिया का विभा
एव सविधान की व्याख्या करन के लिए स्वतन्त्र न्यायपालिका—पायी जाती हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एव विकास

आस्ट्रेलिया म सघीय व्यवस्था का विकास सयुक्त राज्य अमेरिका और कना
की अपेक्षा बहुत भिन्न रूप म हुआ है। 1863 ई म ग्रेट ब्रिटेन न आस्ट्रेलिया मह
द्वीप क अपने छ उपनिवेशो का पुनर्गठन पूर्ण कर लिया था। इस समय इन राज
के समुद्रतटीय प्रमुख नगरा म तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा थी। इन छ नगरा म स्थानी
व्यवस्थापिकाएँ थी और उनक अधिवेशन भी होत थे।

सभी राज्य क्षेत्रफल म विशाल थे और एक दूसर स काफी दूर थे। उन
मध्य आवागमन के समुचित साधना का अभाव था। फलस्वरूप प्रत्यक राज्य म पृ
कत्ता की भावना विकसित हो चुकी थी। उपनिवेशा के मध्य एकता म सीमा शुल्क क
ऊँची दरें बाधक थी। विक्टोरिया, दक्षिण आस्ट्रेलिया एव न्यू साउथ वेल्स के राज
के हित एक समान थ। छोटे राज्य बड़े राज्यो को सन्देह एव ईर्ष्या की दृष्टि से देख
थे। निर्धन राज्या को यह भय था कि सघीय व्यवस्था से कर भार म वृद्धि न ह
जाये। फलत इस समय सघीय शासन की स्थापना के सभी प्रस्ताव असफल हो चु
थे। परन्तु आस्ट्रेलिया म सघ शासन की स्थापना म सुरक्षा के प्रभावशाली तत्व
पर्याप्त योग दिया है। न्यू केलेडोनिया पर फ्रास प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था
जर्मनी न्यू गिनी के एक भाग पर अधिकार जता रहा था। इगलण्ड व रूस म युद्ध क
सम्भावना थी। आस्ट्रेलिया के पूर्वी राज्या की सुरक्षा को जर्मनी के न्यू गिनी के प्रभुत
स सकट उत्पन्न हो गया था। इगलण्ड ने आस्ट्रेलिया के उपनिवेशा की सुरक्षा क
दायित्व बिना उनके सहयोग के वहन करने स इन्कार कर दिया था। आस्ट्रेलिया के
राज्यो म आक्रमण की आशका के कारण सुरक्षा के लिए एक आन्दोलन का सूत्रपात
हो गया था। न्यू साउथ वल्स के प्रधान मन्त्री के प्रयत्ना क परिणामस्वरूप 1819 ई
म सभी उपनिवेशा का एक राष्ट्रीय सम्मलन बुलाया गया। इसके अतिरिक्त सघ के
निर्माण म आर्थिक तत्व भी सक्रिय थ। प्रत्येक उपनिवेश न सीमा शुल्क की ऊची दरें

---

32 Strong C F op cit p 110

लगा रखी थी जिसस व्यापार वाणिज्य म बाधा उत्पन्न होती थी। कुछ उपनिवेश आर्थिक दृष्टि स अविकसित भी थे। उनके लिए रल मार्गों का स्वत न रूप म कायम रखना सम्भव नही था। फलस्वरूप कृषि का विकास नही हो पा रहा था।

1891 ई के उपयुक्त राष्ट्रीय सम्मेलन म विभिन्न महत्वपूण निणय लिये गये,[33] यथा—आन्तरिक क्षेत्र म व्यापार की स्वत त्रता, वित्तीय एव सुरक्षा नीति पर केन्द्रीय निय त्रण एव एक सघीय सत्ता द्वारा प्रशासन। 1897 ई म दूसरा राष्ट्रीय सम्मलन आयोजित किया गया। इस सम्मलन म प्रथम सवधानिक प्रारूप स्वीकृत नही हो सका। कुछ व्यवस्थापिकाओ द्वारा प्रस्तुत द्वितीय सवधानिक प्रारूप सभी राज्या द्वारा स्वीकार किया गया। पश्चिमी आस्ट्रलिया न पृथक राज्य का दजा प्राप्त करन पर ही सविधान क प्रारूप को स्वीकार किया था। 'इसक अतिरिक्त, राज्या द्वारा एक सी नीति अपनान पर उन्ह इगलण्ड से अपन सम्बन्धो मे पयाप्त स्वत त्रता प्राप्त होने की आशा भी थी।'[34]

आस्ट्रेलिया के इस सघ की स्थापना 1 जनवरी, 1901 ई को हुई।

सघीय व्यवस्था सम्बन्धी सवधानिक व्यवस्थाएँ

आस्ट्रेलिया के सविधान म सघीय सरकार (Commonwealth Government) की शक्तिया का स्पष्ट उल्लेख किया गया है और शेष शक्तिया राज्या को प्रदान की गयी है। उन्ह अपन क्षेत्र म पयाप्त स्वत त्रता प्राप्त है।

सघीय सरकार को प्रदान शक्तिया[35] म स कुछ पर उसे पूण अधिकार प्राप्त ह जैसे—सैनिक एव नौसनिक मामले, मुद्रा (coinage), शान्ति व्यवस्था, एव सघ का सुशासन आदि। सविधान मे कुछ समवर्ती शक्तियो (Concurrent powers) की भी व्यवस्था है, जसे—विदशी एव अ त राज्यीय व्यापार, कापीराइट डाक तार, विवाह, तलाक, बक व्यापार, बीमा, आदि। सघ के निर्माण के पूव से ही यह शक्तियाँ राज्या का प्राप्त थी। धारा 51 म कुछ ऐसी शक्तिया का भी उल्लेख ह जो राज्यो का पहले से प्राप्त नही थी। यह शक्तिया ससद का एकमात्र क्षेत्राधिकार है। अनुच्छेद 51 मे उल्लिखित अनेक विषय कनाडा के सविधान की धारा 91 से मिलते ह। सघीय सरकार को राष्ट्रीय महत्व के विषय प्रदान किये गये ह। कनाडा एव सयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना म आस्ट्रेलिया के सघीय शासन को अधिक व्यापक शक्तिया प्राप्त है और कनाडा की सघीय सूची की अपक्षा वह अधिक पूण भी है।

आस्ट्रेलिया म शक्तिया के विभाजन पर व्यक्तिवादी विचारा का प्रभाव स्पष्ट है। अधिकाश सविधान निर्माता सम्पत्तिशाली वग के थे। उनम से अनक चरागाहा के स्वामी एव व्यापारी भी थे। अत कनाडा क सविधान के शक्ति विभाजन को स्वी-

---

33 Finer H *op cit*, p 167

34 *Ibid*

35 Section 51 of the Australian Commonwealth Constitution

धार करना उनके लिए सम्भव नहीं था। आस्ट्रेलिया के संविधान के निर्माण के समय वहाँ के अनेक व्यक्ति 'राज्यों के अधिकारों की धारणा' में विश्वास रखते थे और अमरीकी इतिहास से इन्हें प्रेरणा प्राप्त करते थे।[36]

अवशिष्ट शक्तियाँ संयुक्त राज्य अमरीका एवं स्विट्जरलैण्ड की भाँति आस्ट्रेलिया में भी राज्यों में निहित हैं। अवशिष्ट शक्तियों में शिक्षा, कृषि, रेल-यातायात, स्वास्थ्य, वन, पुलिस, राज्यों के करें, मद्य-निषेध, शराबबन्दी आदि विषय आते हैं। आस्ट्रेलिया में शक्ति विभाजन कनाडा के ठीक विपरीत है।

राज्यों के अपने अलग-अलग संविधान हैं और वे उन्हें संशोधित कर सकते हैं। राज्यों के गवर्नरों की नियुक्ति क्राउन द्वारा संघीय सरकार की सहमति या स्वीकृति लिए बिना की जाती है। संघीय सरकार को राज्यों द्वारा निर्मित विधियों के सदन में हस्तक्षेप का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। आस्ट्रेलिया का संविधान कनाडा के संविधान की भाँति ब्रिटिश संसद द्वारा संशोधित नहीं किया जाता अपितु संघीय संसद (Parliament of the Commonwealth) द्वारा संशोधित एवं आस्ट्रेलिया की जनता द्वारा जनमत संग्रह (Referendum) के माध्यम से अनुमोदित किया जाता है।

संघीय संसद के दो सदन हैं। सीनेट (Senate) को उच्च सदन और प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) को निम्न या प्रथम सदन कहते हैं। सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष है। आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। प्रारम्भ में सीनेट में प्रत्येक राज्य द्वारा छः सदस्य भेजे जाते थे। 1948 ई. में प्रति राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाकर दस कर दी गयी है। अतः सीनेट की कुल सदस्य-संख्या 60 है। सभी सदस्य समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार चुने जाते हैं। इससे अल्पसंख्यकों का उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक राज्य को एक निर्वाचन क्षेत्र के रूप में परिणत कर दिया जाता है और दस सदस्य समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। अमरीकी सीनेट की भाँति ही आस्ट्रेलिया की सीनेट में भी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। सीनेट को प्रतिनिधि सदन के समान ही साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त है। वित्त विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही सर्वप्रथम प्रस्तुत किया जाता है। अमरीकी सीनेट की भाँति ही आस्ट्रेलिया की सीनेट को वित्त विधेयकों को आमूलचूल रूप में अस्वीकृत करने, संशोधित करने, नये कर प्रस्तावित करने या प्रस्तावित धन राशियों को कम करने या उनमें वृद्धि करने का अधिकार प्राप्त है। यदि प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित कोई विधेयक तीन माह के अन्तराल में दो बार सीनेट द्वारा अस्वीकृत किया जाता है तो गवर्नर-जनरल को दोनों सदनों का विघटित करके नवीन निर्वाचन का आदेश देने का अधिकार है। यदि नव निर्वाचित संघीय संसद के दोनों सदनों में भी मतभेद रहता है तो गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है और संयुक्त सदन द्वारा बहुमत से पारित होने पर

36 Crisp *Parliamentary Government of Australia*, pp 11 and 25 28

गवनर-जनरल द्वारा स्वीकृत होने पर विवादास्पद विधेयक विधि बनता है। आस्ट्रेलिया के सविधान निर्माताआ को सीनट से दा कतव्या की अपेक्षा थी। प्रथम, सीनेट सशोधन करने वाले सदन के दायित्वा का पूण कर। द्वितीय, राज्या के हितो की रक्षा की आशा भी सीनेट से की गयी थी। इन कार्यों को सीनेट सम्पादित नही कर सकी है। ब्राइस का कथन है कि "जिन आशाओ स सीनट की रचना की गयी थी वे बाद की घटनाआ से गलत प्रमाणित हुई है। यह राज्यो के हिता की रक्षा नही कर सकी है।" अमेरिकी सीनट की भाति उमे नियुक्ति एव सन्धिया के सम्बन्ध मे अधिकार नही ह। हेनरी टनर के अनुसार प्रतिनिधि सदन द्वारा शीघ्रता मे पारित विधेयको को रोकने एव राष्ट्रीय एक्ता की दृष्टि से महत्वपूण विधेयक पारित करने मे सीनेट असफल रही ह।

सघीय कायपालिका शक्ति सपरिषद् गवनर जनरल मे निहित है। गवनर-जनरल महारानी का प्रतिनिधि एव नाममात्र का अध्यक्ष एव कायपालिका है। मन्त्रि-परिषद वास्तविक कायपालिका है जो सघीय ससद के प्रति उत्तरदायी होती है। सघीय मन्त्रिमण्डल का नेता प्रधानमन्त्री होता है।

सविधान द्वारा सघीय न्यायपालिका की भी स्थापना की गयी है। आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय राज्य का सर्वोच्च सघीय न्यायालय है। उच्च न्यायालय को अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भाति सविधान की व्याख्या करने एव सघ सरकार और राज्या तथा राज्या के पारस्परिक विवादा के सम्बन्धो मे मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उच्च न्यायालय को सघीय कमचारियो के विरुद्ध आदेश पत्र (writs) जारी करने का अधिकार है। उच्च न्यायालय म अन्य सघीय न्यायालयो के निणयो के विरुद्ध अपील की जाती है। राज्य के सर्वोच्च न्यायालयो या अन्त राज्यीय आयोग के ऐसे निणयो के विरुद्ध अपील भी की जा सकती है जिनका सम्बन्ध किसी विधि से होता है। इन मामला मे उच्च न्यायालय का निणय अतिम होता है। स्मरणीय है कि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय मे राज्य की विधियो से सम्बन्धित निणयो के विरुद्ध अपीलें आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय की भाति नही की जा सकती। आस्ट्रेलिया की सघीय ससद को उच्च न्यायालय के मौलिक क्षेत्राधिकार को बढाने का भी अधिकार है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशा की नियुक्ति गवनर-जनरल द्वारा मन्त्रिया के परामश से की जाती है और वे सदाचरण पयन्त इस पद पर काय करते रहते है। अयोग्यता एव दुर्व्यवहार के अपराध के लिए उन पर महाभियोग लगाया जा सकता है।

स्ट्राग[37] के अनुसार आस्ट्रेलिया राज्य की सघीय प्रणाली सच्ची है। राज्या को अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त है। प्रत्यक को सीनेट मे समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। कनाडा की भांति राज्या के गवनरो की नियुक्ति सघीय सरकार द्वारा नही की जाती अपितु क्राउन द्वारा राज्यो के मन्त्रिया क परामश पर प्रत्येक राज्य का गवनर नियुक्त किया जाता है। सयुक्त राज्य अमरिका के राज्यो की भाति गवनर

37 Strong, C F *op cit*, pp 118 119

निर्वाचित नहीं होते हैं। संविधान में यह व्यवस्था भी है कि यदि कोई राज्य राज्यों से सम्बन्धित किसी विषय पर संघीय संसद द्वारा विधि-निर्माण में किसी प्रकार का योग चाहता है तो उसे ऐसी सहायता उपलब्ध होगी।

एकीकरण की प्रवृत्ति

आस्ट्रेलिया के संविधान का निर्माण आधुनिक युग के संघ-काल में हुआ था। राज्य नकारात्मक से सकारात्मक दायित्व को धारण करने का प्रयत्न कर रहा था। आस्ट्रेलिया में भी उसका प्रभाव पड़ा और संघीय सूची में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। यह वृद्धि संयुक्त राज्य अमरिका की भाँति न्यायिक व्याख्या (judicial interpretation) का परिणाम है। इसके अतिरिक्त, सुरक्षा की समस्या तथा सामाजिक सेवाओं की वृद्धि के कारण भी संघीय शासन की शक्तियों में वृद्धि हुई है। अमरिका की भाँति संघीय शासन एवं राज्यों के क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर आस्ट्रेलिया में भी तीव्र विवाद उत्पन्न होते रहे हैं।

आस्ट्रेलिया में सुरक्षा के प्रश्न को लेकर तीव्र विवाद चला है। अमेरिका एवं कनाडा की तुलना में सुरक्षा की समस्या ने आस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में अत्यधिक वृद्धि की है।

कनाडा[38] का संघ

कनाडा का वर्तमान संविधान एवं शासन उन विभिन्न ऐतिहासिक शक्तियों का स्वाभाविक परिणाम है जिनके फलस्वरूप ब्रिटिश उत्तरी अमरिका एक राष्ट्र बना है। 1 जुलाई, 1867 ई. को ब्रिटिश संसद द्वारा पारित ब्रिटिश नार्थ अमरिका एक्ट (The British North America Act, 1867) पारित किया गया था। यही कनाडा का वर्तमान संविधान है। इस संविधान द्वारा कनाडा में संघीय व्यवस्था की स्थापना की गयी है।

कनाडा के संघीय शासन की स्थापना में बाह्य शक्तियों की अपेक्षा आन्तरिक शक्तियाँ अधिक सक्रिय रही थीं परन्तु संघीय शासन के स्वरूप के निर्धारण में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों तत्वों ने समान रूप से योग दिया है। उत्तरी (नार्थ) ब्रिटिश अमे-

---

38 कनाडा प्रारम्भ में फ्रेंच उपनिवेश था जिसकी स्थापना 1608 ई. में हुई थी। अंग्रेजों ने 1759-60 ई. में इस पर आधिपत्य स्थापित किया और 1763 ई. की पेरिस सन्धि द्वारा ये विजित क्षेत्र पूरी तरह ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत आ गये थे। अमरिकी स्वातन्त्र्य संग्राम-काल में साम्राज्य की एकता के समर्थकों में से अनेक ने कनाडा में आश्रय लिया था। 1791 ई. में कनाडा एक्ट के द्वारा उत्तरी कनाडा एवं दक्षिणी या निचले (Lower) कनाडा (फ्रेंच प्रदेश) नामक दो प्रान्त बना दिये गये। लोअर कनाडा की व्यवस्थापिका में फ्रेंच लोगों का बाहुल्य था जबकि कार्यपालिका में सभी अंग्रेज थे। फलस्वरूप राष्ट्रीय स्तर पर द्वेष उत्पन्न हो गया और विद्रोह फूट पड़ा। इस स्थिति पर प्रतिवेदन (report) देने के लिए लॉर्ड डरहम की नियुक्ति की गयी थी।

रिका के उपनिवेशो के मध्य सघ की धारणा अमेरिकी उपनिवेशा की स्वतन्त्रता-सग्राम के समय ही ज म ले चुकी थी पर तु ऐसी धारणा के फलीभूत होने के लिए जिस सहयागी प्रयत्न की आवश्यक्ता थी उसका दीघकाल तक उपनिवेशा मे अभाव बना रहा। लॉड डरहम (Lord Durham) ने अपने प्रतिवेदन मे उत्तरी अमेरिकी उपनिवेशो के सघ का सुझाव निम्न शब्दा मे दिया है

"मने देखा है कि एक राज्य के हृदय म दो राष्ट्र सघषरत है। यह सिद्धातो का सघष न होकर जातियो का सघप था। मैने यह अनुभव किया है कि विधिया या सस्थाओ के द्वारा सुधार के प्रयत्न से कही अधिक उचित यह होगा कि उस प्राणघातक शत्रुता का पहले अ त किया जाये जो निचले कनाडा को फ्रेच एव अग्रेजी दो विरोधी भागो मे विभाजित किये हुए है।

अ य प्रा तो की भी स्थिति अच्छी नही थी। कनाडा के उत्तरी भाग मे अग्रेज जाति एव दक्षिणी भाग म फ्रच जाति के व्यक्ति निवास करते थे। लॉड डरहम ने अपने प्रतिवदन मे इन दोना भागा के सघ के निर्माण एव उत्तरदायी शासन की स्थापना का सुझाव दिया था। दोनो भागो के एकीकरण के फलस्वरूप ही राष्ट्रजातिगत विद्वेष का अ त एव उत्तरदायी शासन की स्थापना सम्भव हो सक्ती थी। दोनो राष्ट्रजातियो की पृथक सस्कृतिया ने उत्तरदायी शासन को असम्भव बना दिया था। उत्तरी कनाडा के निवासियो ने जनसख्या की दृष्टि से प्रतिनिधित्व की माग प्रस्तुत की थी। इससे राजनीतिक स तुलन के बिगड जाने की पूण सम्भावना उत्प न हो गयी थी क्याकि दक्षिणी भागा म फ्रेच भाषाभाषी अल्पमत मे थे। अत फ्रेंच भाषा भाषी यह अनुभव करने लग थे कि वे अपने को एक पृथक राजनीतिक इकाई के रूप म सघ शासन के अ तगत ही कायम रख सक्ते है। अत डरहम रिपोट (1841 ई) के द्वारा प्रस्तावित एकात्मक सविधान का असफल हो जाना स्वाभाविक था और 1860 ई तक वह असफल भी हो चुका था।

इसके अतिरिक्त, उत्तरी अमरिका के ब्रिटिश उपनिवशा को अमेरिकी साम्राज्य के आक्रमण का भी भय था। 1775 ई और 1812 ई म अमेरिकी सना न कनाडा की सीमाआ का अतिक्रमण किया था। फलत यह भावना बलवती होती जा रही थी कि उपनिवेशो द्वारा सघ बना कर ही अपनी रक्षा की जा सक्ती है। इसके अतिरिक्त आर्थिक कारणा ने भी सघ के निमाण म याग दिया था।

उपनिवेशा के समक्ष अनक आर्थिक समस्याए थी। नाविक विधिया (Navigational laws) एव विनेप चुगी व्यवस्थाआ के कारण 1840 50 इ के वर्षो म उत्प न समस्याआ न सघ के निमाण की भावना को पयाप्त बल प्रदान किया। नवीन औद्योगिक प्रगति मे उत्प न समस्याओ का समाधान किसी भी उपनिवश के सामित स्रोता एव अविकसित यातायात की प्रणाली के कारण सम्भव नहीं था। इन स परिस्थितिया के सहज परिणामस्वरूप सघीय शासन क निमाण पर बल दिया लगा और 1864 ई के वसन्त म वह कनाडा की तत्कालीन राजनीति का

प्रश्न बन गया था। इस सम्ब ध म नोवोस्कोशिया (Novo Scotia) के प्रधानम त्री डॉ चाल्स टप्पर (Dr Charles Tupper) ने पहल की और अपने प्रा त की व्यवस्थापिका मे न्यू ब्रु सविक (New Brunshwick) एव प्रि स एडवड द्वीप (Prince Edward Islands) के प्रतिनिधियो से सघीय शासन के निर्माण हेतु वार्ता के लिए प्रतिनिधि नियुक्त करने का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप 10 अक्टूबर, 1964 ई को क्यूबेक (Quebec) म कनाडा के इतिहास का युगा तरकारी सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन म चारलोटीटाउन (Charlottetown) मे हुए पहले सम्मेलन म स्वीकृत सघीय शासन की स्थापना सम्ब धी मूल सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। क्यूबक के सम्मेलन मे 18 दिन मे 72 प्रस्ताव प्रतिनिधिया द्वारा स्वीकार किये गये। यही प्रस्ताव ब्रिटिश नॉथ अमेरिका एक्ट, 1867 ई के आधार बने। इन प्रस्तावा को कनाडा के विधानमण्डल द्वारा तो स्वीकार कर लिया गया पर तु तटीय प्रा ना मे इनका वडा विरोध हुआ था। इस पर ब्रिटिश सरकार द्वारा नोवोस्कोशिया, न्यू ब्रु सविक एव कनाडा के प्रतिनिधियो का सम्मेलन ल दन म आयोजित किया गया। फलस्वरूप ब्रिटिश ससद द्वारा ब्रिटिश नॉथ अमेरिका एक्ट, 1867 ई पारित किया गया जो 1 जुलाई, 1867 ई से प्रभावकारी हुआ। कनाडा के डोमिनियन या उपनिवेश (Dominion of Canada) म इस समय ओ टोरियो (Ontorio) और क्यूबक (Quebec), न्यू ब्रु सविक (New Brunswick), नोवोस्कोशिया (Novo Scotia) नामक चार प्रान्त थे। कनाडा को क्यूबेक एव ओ टोरियो नामक दो प्रा ता मे विभाजित कर दिया गया था। रूपाट द्वीप (Ruperts Island) एव उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र और मेनीटोवा (Manitoba) 1870 मे, ब्रिटिश कोलम्बिया (British Columbia) 1871 ई मे, प्रि स एडवड द्वीप (Prince Edward Island) 1873 ई म कनाडा के सघ मे शामिल हुए थे। 1905 ई म पश्चिमी क्षेत्र को अल्वर्टा (Alberta) एव सस्केचवा (Saskatchewan) नामक प्रान्तो म विभाजित कर दिया गया। 1949 ई म न्यू फाउण्डलैण्ड (New Foundland) के शामिल होने पर कनाडा म दस प्रा त हो गये है।

कनाडा के सघात्मक शासन का स्वरूप

कनाडा के सविधान—ब्रिटिश नाथ अमेरिका एक्ट, 1867 ई—एव अ य परवर्ती सशाधन करने वाले विधेयको मे निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं

(1) डोमिनियन एव प्रा तीय विधानमण्डला के मध्य शक्तियो का स्पष्ट विभाजन चार भागो म किया गया है। प्रथम भाग म डोमिनियन ससद के क्षेत्राधिकार म आने वाले विषया का उल्लेख है (Section 91)। द्वितीय भाग म प्रान्तो के क्षेत्र के विषया का उल्लेख है (Section 92)। तृतीय भाग मे उन शक्तियो का उल्लेख है जिनके सम्ब ध म डोमिनियन एव प्रा तीय दोनो ही व्यवस्थापिकाओ को विधि निर्माण का अधिकार है। चौथे भाग का सम्ब ध शिक्षा से है (Section 93)। अवशिष्ट शक्तियाँ डोमिनियन (के द्रीय या सघीय) शासन को प्रदान की गयी हैं।

(2) डोमिनियन (सघीय) एव प्रान्तो की व्यवस्थापिकाएँ पृथक-पृथक है और दोना म से किसी को भी विषय-सूचियो म परिवतन करने का अधिकार नही है।

(3) *न्यायालय को प्रान्तीय एव डोमिनियन विधियो को सविधान की धाराओ* के विपरीत होने या केन्द्रीय एव प्रान्तीय शासनो के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण करने के आधार पर अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। स्पष्ट है कि कनाडा के सविधान म सवधानिक सप्रभुता के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है।

प्रो केनेडी[39] के अनुसार कनाडा की सघीय व्यवस्था की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं (1) *कनाडा की डोमिनियन (सघीय) व्यवस्थापिका को साम्राज्यीय या प्रान्तो* की व्यवस्थापिकाओ से अधिकार प्राप्त नही हुए हैं। (2) प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ को भी शक्तिया साम्राज्यीय व्यवस्थापिका द्वारा प्रदत्त नही हैं अपितु वे भी अपने क्षेत्र मे पूण अधिकार-सम्पन्न है। (3) डोमिनियन सघीय ससद द्वारा प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ को अधिकार प्रदान नही किये गये हैं। (4) प्रान्त स्वतन्त्र एव पूण स्वायत्त *सत्ता सम्पन्न हैं। राष्ट्रीय एव प्रान्तीय सरकारे अपने अपने क्षेत्र मे प्रभु एव समान* रूप मे (coordinate) सत्ता-सम्पन्न है। स्पष्ट है कि कनाडा का सविधान स्वरूप म सघीय है।

परन्तु कनाडा के सघीय स्वरूप के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। कनाडा की सघीय व्यवस्था म केन्द्रीकरण अपेक्षाकृत अधिक है। सविधान निर्माताओ *ने सघीय शासन को अधिक शक्तिया प्रदान की है और उसे अधिक शक्तिशाली बनाया* है। वे सघवाद के सकीण एव अमेरिकी सस्करण मे विश्वास नही करते थे। अमेरिका मे सघ एव राज्या के मध्य सप्रभुता सम्बन्धी विवाद की चरम परिणति गृह युद्ध म हुई थी। कनाडा के नेताओ ने इससे शिक्षा ग्रहण की। अत क्यूबेक सम्मेलन म उपस्थित अधिकाश नेताओ की यह दृढ धारणा थी कि सघ मे प्रारम्भ से ही विघटनकारी प्रवत्तियो के लिए कोई स्थान नही होना चाहिए। फलत सविधान मे सघ की घटक इकाइयो की शक्तिया का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है और अवशिष्ट शक्तिया सघीय सरकार को प्रदान की गयी हैं। सर जान मेक्डोनल्ड (Sir John MacDonald) नामक सविधान निर्माता के निम्न वाक्य इस सम्बन्ध मे महत्वपूण हैं

"परिसघ का सच्चा सिद्धान्त यह है कि सामान्य सरकार (General Government) को सप्रभुता के सभी सिद्धान्त व शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए और

39 Kennedy W P M *The Constitution of Canada* Ch XXIII Lord Haldane held the view that Canada was not a true Federation because the British North America Act, 1867, created not only a new common government but also new provincial governments whose powers were confined exclusively to a list of subjects enumerated in section 92 of the Act —Wheare K C *op cit*, p 1? *Prof* Wheare calls the Canadian Constitution a *quasi* [illegible] constitution, p 19

अधीनस्थ सरकारो (Subordinate Governments) के हाथो म स्पष्टत प्रदत्त शक्तियो के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति नही होनी चाहिए। अत हमारी व्यवस्था शक्तिशाली केन्द्रीय शासन और विधानमण्डल तथा स्थानीय मामला के लिए लघु विधान मण्डलो की विकेन्द्रित व्यवस्था होनी चाहिए।"

इसके अतिरिक्त, कनाडा के सविधान की निम्नलिखित सवैधानिक व्यवस्थाएँ केन्द्रीकरण की परिचायक है

(1) प्रान्तो को प्रदत्त शक्तियाँ स्थानीय महत्व की है। महत्वपूण शक्तिया केन्द्रीय शासन को प्रदान की गयी है। समवर्ती सूची मे केवल दो ही विषय थे—कृषि एव उदजन। प्रान्तो को ऋण लेने का भी अधिकार दिया गया है। प्रान्तो के आय स्रोत अपयाप्त थे अत उनके लिए डोमिनियन (सघीय) शासन से आर्थिक अनुदान की व्यवस्था की गयी है।

(2) धारा 91 (Section 91) के द्वारा राष्ट्रीय ससद को स्पष्ट रूप से कनाडा की शान्ति एव व्यवस्था तथा सुशासन के लिए प्रान्तो को प्रदत्त शक्तियो सहित सभी विषयो मे विधि निर्माण का अधिकार दिया गया है। युद्ध की अवस्था म केन्द्रीय शासन को प्रान्तीय विषयो मे भी विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है।

(3) डोमिनियन शासन को प्रान्तीय विधानमण्डल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को एक वप के अन्तराल मे अस्वीकार करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

(4) प्रान्तो म सभी महत्वपूण न्यायिक नियुक्तियो की शक्ति डोमिनियन शासन के हाथो मे है।

(5) डोमिनियन (सघीय) शासन को प्रान्तो क उप-राज्यपालो को नियुक्त एव पदच्युत करने की शक्ति प्राप्त है। प्रान्तीय उप-राज्यपालो को किसी प्रान्तीय विधेयक को स्वीकृत न करने के आदेश देने का अधिकार डोमिनियन शासन को है। गवनर-जनरल को उन विधेयको को जिन्ह वह उचित न समझे, अस्वीकृत करने का अधिकार प्राप्त है।

(6) सीनेट के सदस्य डोमिनियन सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं यद्यपि सभी प्रान्तो को सीनेट मे अमेरिकी सीनेट की भांति समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है।

कनाडा के सविधान के सम्बन्ध मे विभिन्न मत व्यक्त किये गये हैं। **प्रो के सी ह्वीयरे** का मत है कि "डामिनियन शासन को प्रान्तीय सूची के विपया से सम्बन्धित विधि को अस्वीकृत करने की शक्ति देकर केन्द्रीकरण को व्यवस्था की गयी है। क्या शासन के केन्द्रीकरण या एकीकरण की प्रवत्ति का इससे अधिक अन्य कोई अस्त्र हो सकता है?" स्मरणीय है कि कनाडा के सविधान म सघीय सिद्धान्त की पूरी तरह से उपेक्षा नही की गयी है। अपितु म उस महत्वपूण स्थान प्राप्त है। 'यदि हम केवल सविधान तक ही सीमित रह तो यह निणय करना कठिन है कि कनाडा के सविधान

को सघीय सविधान या पर्याप्त सघीय प्रवत्तियो से युक्त एकात्मक सविधान कहा जाय । "उसे सघीय सविधान कहना सघीय सिद्धान्त के साथ अन्याय करना होगा। अत मैं कनाडा को अर्द्ध सघीय सविधान कहना पसन्द करूँगा ।"[40]

प्रो सी एफ स्ट्राग[41] कनाडा के सविधान को सशोधित सघवाद की सज्ञा देते है । उनके अनुसार कनाडा का सविधान सयुक्त राज्य अमरिका, स्विट्जरलण्ड एव आस्ट्रेलिया के सविधानो की अपक्षा कम सघीय है क्योकि इन तीनो सविधानो मे अवशिष्ट शक्तिया राज्यो को प्रदान की गयी है जब कि कनाडा मे ठीक इसके विपरीत व्यवस्था है। इसी कारण कनाडा को सशोधित सघवाद का उदाहरण कहा जाता है। कनाडा के सघ की घटक इकाइया सही अर्थों मे राज्य नही है । व प्रान्त कहे जाते है जो इगलैण्ड के स्थानीय अधिकारियो एव दक्षिणी अफ्रीका के चार प्रान्तो से कही अधिक शक्तिशाली हे । कनाडा का डोमिनियन पूणत सघीय राज्य नही है परन्तु ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स एव न्यूजीलैण्ड जैसे एकात्मक राज्य स भी भिन्न है । कनाडा के सविधान म शक्तियो के विभाजन का सिद्धान्त सयुक्त राज्य के ठीक विपरीत है । कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय को सविधान की व्याख्या का कोई अधिकार नही है । इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त उल्लिखित एकात्मक प्रवृत्तिया का भी स्ट्राग ने उल्लेख किया है ।

कनाडा के सघीय सविधान म केन्द्रीकरण की अनेक उपर्यक्त प्रवृत्तियो के होते हुए भी उसका विकास विपरीत दिशा म हुआ है । **प्रो ह्वीयरे** ने सविधान क व्यावहारिक रूप को सविधान की विधि से अधिक महत्व दिया है । किसी देश का सविधान सघीय हो सकता है लेकिन यह सम्भव है कि सविधान का व्यावहारिक रूप ऐसा हो कि वहा की सरकार सघीय न हो । अत ह्वीयर का मत है कि विधिक दृष्टि स कनाडा का सविधान अर्द्ध सघीय (quasi federal) होते हुए भी व्यवहार म सघीय है । दूसरे शब्दो में, कनाडा का सविधान सघीय नही है परन्तु उसका शासन सघीय है ।[42] इसका यह अथ है कि सविधान की एकात्मक प्रवृत्तिया का व्यवहार मे इस प्रकार प्रयोग किया गया है कि प्रान्तो को व्यापक राजनीतिक एव विधिक शक्तिया प्राप्त हो गयी है । अपने क्षेत्र म प्रान्त पूणरूपण स्वायत्त सत्ता-सम्पन्न हैं । सघीय शासन द्वारा प्रान्तीय विधिया को स्वीकृत करन की शक्ति का यदाकदा केवल उन्ही विधिया के सन्दभ म प्रयोग किया जाता है जो कनाडा के हितो के विरुद्ध होती हैं । अब प्रान्ता के उप-राज्यपाल केन्द्रीय शासन के उपकरण नही रह हैं । डोमिनियन शासन द्वारा उनकी नियुक्ति केन्द्र एव प्रान्ता म सघीय कडी का ही केवल प्रमाण है । एक बार नियुक्ति हो जान के बाद उप राज्यपाल किन्ही अर्थों म सघीय सरकार के अधीन नही होता । व्यवहार म कनाडा के प्रान्त आज सयुक्त राज्य अमरिका के राज्यो स कही

40 Wheare, K C *Federal Government*, 1963, p 19
41 Strong, C F *Modern Political Constitutions* p 120
42 Wheare, K C *op cit*, p 21

अधिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। इस स्थिति के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं

(1) ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका एक्ट की केवल धाराओं के अध्ययन से कनाडा की सघीय व्यवस्था का बडा गलत चित्र उपस्थित होता है। एक्ट द्वारा सिद्धान्तत सभी सघीय शक्तियाँ गवनर-जनरल मे अधिष्ठित की गयी हैं परन्तु वास्तविक सत्ता का प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है जिसका अधिनियम म कही कोई उल्लेख नही है। इसी प्रकार डोमिनियन सरकार को प्रान्तीय विधेयको पर निषेधाधिकार प्राप्त है। लेकिन सविधान के सिद्धान्त व व्यवहार के भेद को इस व्यवस्था के सन्दभ म देखकर चकित रह जाना पडता है। विधिक दृष्टि से इस निषेधाधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नही है। डोमिनियन सरकार ने इस अधिकार का प्रयोग अवैधानिक विधेयक क विरुद्ध ही नही अपितु ऐसे विधेयको के विरुद्ध भी किया है जो उसे अप्रिय एव अस्वीकार थे। प्रान्तीय विधेयको को सघीय शासन द्वारा अस्वीकृत करने के आधार समय-समय पर भिन्न भिन्न रहे है। यह भी नही कहा जा सकता है कि अब इसका प्रयोग नही होगा। परन्तु इस सम्बन्ध मे रोविल सिरोस प्रतिवेदन के मत को उदधत करना समीचीन है—"हम यह सोचने के लिए बाध्य हैं कि निषेधाधिकार का प्रयोग इतना स्वतन्त्रतापूवक अब नही किया जायेगा जितनी स्वतन्त्रतापूवक परिसघ के प्रथम 30 वर्षों मे इसका प्रयोग किया गया है। लेकिन निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता।" कनाडा म विधायी सप्रभुता 1867 ई की अपेक्षा आज अधिक मान्य है। प्रीवी काउन्सिल क निणयो ने प्रान्तीय विधानमण्डलो की सप्रभुता को स्थापित करने म विशेष योग दिया है।

(2) राजनीतिक अधिकारियो के दृष्टिकोण का भी प्रभाव सविधान के कियात्मक रूप पर पडा है। सविधान के प्रारम्भिक काल म सर जॉन मक्डोनल्ड प्रमुख राजनीतिज्ञ थे। वे प्रान्तीय विधानमण्डलो को द्वितीय श्रेणी का विधानमण्डल मानते थे और प्रान्तीय उप-राज्यपालो को भी डोमिनियन शासन द्वारा मनोनीत अधिकारी मानते थे। इनका काय कतव्यपरायण सेवको की भाँति डोमिनियन सरकार के हितो की रक्षा करना था। मक्डोनल्ड ने ही प्रान्तीय विधेयको को अस्वीकृत करने की व्यवस्था प्रारम्भ की थी। सविधान के प्रथम दशक मे ही सघीय शासन द्वारा 29 प्रान्तीय विधेयको को अस्वीकृत किया गया था। मैक्डोनल्ड के इस विचार एव दृष्टिकोण का उदारवादी दल ने विरोध किया था। उदारवादी दल के नेता ओलीवर मोवेट (Oliver Mowat) थे। उसने डोमिनियन शासन द्वारा प्रान्तीय विधेयको को अस्वीकृत करने की शक्ति का उग्र विरोध किया। उदारवादियो ने सविधान की सीमा के अन्तगत प्रान्तीय स्वायत्तता की माँग की थी। केन्द्रीकरण की नीति के विरुद्ध असन्तोष 1887 ई तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। 1896 ई मे उदारदल सत्तारूढ हुआ। उसने केन्द्रीकरण की प्रवत्ति एव उसकी सम्भावना को कम किया था। स्मरणीय है कि डोमिनियन की उदारवादी सरकार ने भी सविधान द्वारा प्रदत्त अपने

किसी भी अधिकार का परित्याग नही किया और न इनको निरकुश ही माना । उस समय से प्रातीय विधेयकों को अस्वीकृत करने के सम्बन्ध म सघीय शासन द्वारा साव धानी अवश्य बरती जाने लगी है । अब कभी-कभी ही प्रातीय विधेयका का डामिनियन शासन द्वारा अस्वीकृत किया जाता है । सत्य तो यह है कि अब प्रान्तीय विधानमण्डल की भूलो एव दोषो का निर्णायक मतदाता होता है न कि डोमिनियन शासन ।

(3) क्रमश विकसित एव स्थापित ससदीय शासन सम्बन्धी अभिसमयो ने भी कनाडा की सघीय व्यवस्था को प्रभावित किया है । सविधान के अनुसार कनाडा के गवनर-जनरल द्वारा ही प्रातीय उप राज्यपालो की नियुक्ति की जाती है और उप-राज्यपाल मन्त्रियो की नियुक्ति करता है । लेकिन इस सम्बन्ध मे इस अभिसमय का विकास हुआ है कि प्रातीय उप राज्यपाल को प्रान्तीय व्यवस्थापिका के बहुमत दल म स ही मन्त्रियो की नियुक्ति करनी पडती है । डोमिनियन शासन के द्वारा जनता के इन प्रतिनिधियो को मान्यता देना स्वाभाविक है । जनता के निणय की उपेक्षा करना उनके लिए सम्भव नही है । इसी प्रकार, डोमिनियन सरकार को प्रात के उच्च न्यायिक अधिकारियो को नियुक्त करन का अधिकार है परन्तु उसने अपनी इस शक्ति का सजगतापूवक ही उपभोग किया है और न्यायाधीशो के पद पर दलीय दृष्टि से नियुक्तिया नही की हैं ।

अत **ह्वीयरे** का मत है कि कनाडा राजनीतिक रूप से सघीय है और कनाडा मे जिस किसी डोमिनियन शासन ने सविधान के एकात्मक तत्वो को सघीय तत्वो की कीमत पर स्थापित करने का प्रयत्न किया है वह सफल नही हो सका है ।[43] ह्वीयरे ने कनाडा की सघीय व्यवस्था को ध्यान मे रखकर कहा है कि 'कनाडा का सविधान विधिक दृष्टि से अद्ध सघीय होते हुए भी व्यवहार मे सघीय है ।'

परन्तु सत्य इसके विपरीत है । ह्वीयरे के मत को स्वीकार नही किया जा सकता । ह्वीयरे के मत को व्यक्त हुए काफी समय व्यतीत हो चुका है । कनाडा के सविधान का निर्माण जिस समय हुआ था उस समय पुलिस राज्य की धारणा मान्य थी । अब तो लोक कल्याणकारी राज्य का आदश स्तुत्य एव मान्य है । सामाजिक कल्याण की अनेक योजनाएँ राज्य का प्रथम दायित्व बन गयी है । प्रातीय शासना ने ऐसी अनेक योजनाओ को प्रारम्भ किया है । असन्तोषजनक वित्तीय स्थिति के कारण प्रातीय शासनो को केन्द्रीय सरकार पर धन के लिए अधिकाधिक निभर रहना पडता है । फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार का प्रातीय सरकारो पर नियन्त्रण भी बढ़ गया है । **एस पी अय्यर** के अनुसार, "यद्यपि कनाडा मे केन्द्र एव राज्य के मध्य सम्बन्धों को सहयोगपूण सम्बन्धो की सज्ञा दी जाती है परन्तु यह सज्ञा उचित नहीं है । [illegible]

---

43 Canada is politically federal and that no Dominion Government which attempt to stress the unitary elements in the Canadian constitution at the expense of the federal [illegible] survive "—Where, K C *Federal Government*, 1953, p 23.

तो यह है कि केन्द्रीकरण बढ रहा है और डोमिनियन शासन ने प्रान्तीय सरकारों के अनेक कार्यों को अपने हाथ मे ले लिया है। भले ही सविधान की दृष्टि म प्रान्त स्वायत्त-सम्पन्न हो परन्तु धन के लिए वे डोमिनियन शासन पर पूर्णरूपण निर्भर होते हैं। अत कनाडा का सविधान इस प्रकार अद्ध सघवाद की दिशा म तीव्र गति स अग्रसर हो रहा है।"[44]

स्विस परिसघ

स्विस परिसघ (Swiss Confederation) विश्व के वर्तमान सघीय राज्यो म प्राचीनतम सघ है। स्विटजरलैण्ड को परिसघ (Confederation) कहा जाता है[45] परन्तु स्ट्राग के अनुसार "यदि परिसघ का अर्थ सुदृढ केन्द्रीय सत्ताहीन राज्यो के ढीले ढाले सघ से है तो अब वह (स्विटजरलण्ड) परिसघ न होकर एक सच्चा सघीय राज्य है। परन्तु वह सदव ही ऐसा नही था।"[46]

स्विस गणराज्य मे 22 केन्टन है। केन्टन स्विस परिसघ की घटक इकाइयाँ है। इनमे से तीन केन्टनो—अन्टरवाल्डन, बेसल एव ऐपनजील—के विभाजित होने से 6 अद्ध केन्टनो का निर्माण हुआ है। प्रत्येक अद्ध केन्टन अपन मूल अद्धभाग से पूर्ण स्वतन्त्र होता है। अद्ध-केन्टन एव पूर्ण केन्टन म दो अन्तर है प्रथम, अद्ध-केन्टन स्विस सघीय सभा के उच्च सदन—राज्य-परिषद (Council of States)—मे प्रतिनिधि के रूप म एक सदस्य भेजता है जबकि पूर्ण केन्टन के द्वारा दो सदस्य भेजे जाते हैं। द्वितीय, सवैधानिक सशोधन के सन्दर्भ मे अद्ध केन्टन का मत भी आधा ही गिना जाता है। अत यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि स्विस परिसघ म 25 केन्टन है जिनम 6 अद्ध केन्टन और 19 पूर्ण केण्टन है और प्रत्येक का अपना सविधान, अपनी राष्ट्रीयता, अपनी विधियाँ, परम्पराएँ, रीति रिवाज, वैचारिक पद्धति एव इतिहास हैं।

स्विस परिसघ का इतिहास काफी पुराना है। इसकी स्थापना 13वी सदी म आस्ट्रिया के प्रभुत्व के विरुद्ध सघर्ष करने वाले तीन जिलो जिन्हे वन केन्टस (Forest Cantons) कहा जाता है द्वारा हुई थी। 1648 ई की वेस्टफेलिया की सन्धि (Treaty of Westphalia—1648) द्वारा इसे स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया था और इस समय तक इसके घटक राज्यो की सख्या 13 हो चुकी थी। नपोलियन के समय तक यह सुदृढ केन्द्रीय सत्ताहीन राज्यो का एक ढीला ढाला सघ ही बना रहा। 1815 ई के यूरोपीय समझौते के समय म भी इसका यही रूप विद्यमान था। 1847 ई मे स्विटजरलण्ड मे एक लघु गृह-युद्ध हुआ था। रोमन कथोलिक धर्मानुयायी 7 केन्टनो ने परिसघ से पृथक होने का निश्चय किया था। इस गहयुद्ध के बाद ही 1848 ई का सविधान बना। इस सविधान द्वारा पुराने परिसघ (Staatenbund)

---

44 Aiyar S P *Federalism and Social Change* p 130
45 Article 1
46 Strong, C F *op cit*, p 114

को सघीय राज्य (Bundesstaat) म परिवर्तित कर दिया गया । परिसघ क इस सविधान को 1874 ई म भी सशोधित किया गया । सामान्य रूप म यही सविधान कुछ परिवर्ती सशोधना सहित स्विटजरलण्ड म आज भी विद्यमान है ।

स्विटजरलैण्ड को परिसघ कहना ठीक नही है । परिसघ पूर्वोल्लेखानुसार राज्या का ऐसा ढीला ढाला सघ होता है जिसम सुदृढ केन्द्रीय सत्ता का अभाव होता है और उसे आवश्यक्तानुसार विघटित भी किया जा सकता है । इस सन्दभ म स्विस परिसघ की प्रस्तावना क निम्न वाक्य ध्यान देने योग्य है 'स्विस परिसघ का जन्म घटक इकाइया क परिसघ को एकीकृत करन तथा स्विस राष्ट्र की एकता, शक्ति एव सम्मान की रक्षा के लिए हुआ है । अत स्विस राष्ट्र की सुदृढता के हेतु सघीय सविधान को स्वीकार किया गया है ।"

यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रस्तावना का कोई विधिक मूल्य नही होता है तो भी इसस सविधान निर्माताओ की इच्छा का ज्ञान तो होता ही है । स्मरणीय है कि स्विस सविधान को स्विस जनता ने जनमत-सग्रह के द्वारा स्वीकार किया था । अत इससे भी परोक्ष रूप म जनता की इच्छा का ही पता चलता है । सत्य तो यह है कि सयुक्त राज्य अमेरिका के सघ के मूल म 13 राज्या की भाति ही स्विस कन्टन अपनी सप्रभुत्व शक्ति को इस प्रकार सशोधित करने को तयार हो गय थे जिससे परिसघ की कन्द्रीय सरकार को राष्ट्रीय उद्देश्या की पूर्ति के लिए पर्याप्त सत्ता प्राप्त हो सके । सघीय सरकार क निर्माण के लिए स्विटजरलैण्ड के निवासियो की भाषा, धम एव राष्ट्रीयताओ सम्बन्धी विभिन्नताएँ उपयुक्त अवसर प्रदान करती थी । 2/3 स्विस जनता जमन भाषाभाषी है और शेष जनता फ्रेच और इटालियन (रोमन) भाषाभाषी है । स्विस विधानमण्डल म सदस्यो को इन तीना म स किसी भी भाषा के बोलने की स्वतन्त्रता प्राप्त है । सभी केन्टनो म लोकतन्त्रीय व्यवस्था है । स्थानीय शासन के प्रति स्विस जनता म विशेष रुचि है । स्ट्राग का मत है कि "देश प्रेम न परिसघ के स्वास्थ्य एव शक्ति को अक्षुण्ण रखा है । स्थानीय स्वशासन के अभाव मे सघ कायम ही न रहता । स्विट्जरलण्ड की आधुनिक सघीय व्यवस्था केन्टना की आदत एव अनुभव पर आधारित है, न कि सवधानिक सिद्धान्तो एव विदेशी उदाहरणा के प्रयोग पर ।'[47]

स्विस सघीय व्यवस्था का अमेरिकी एव आस्ट्रेलियाई सघीय व्यवस्था से अधिक साम्य है और कनाडा के सघीय स्वरूप से अपेक्षाकृत कम साम्य है । अमेरिकी एव स्विस सघीय व्यवस्थाओ म साम्य का कारण, स्ट्राग के अनुसार, 1848 ई एव 1874 ई के स्विस सविधान के सशोधनकर्ताओ के द्वारा अपन देश की सस्थाओ को जानबूझकर अमरिकीकरण करने की सहज प्रवत्ति है । फिर भी स्विस सघीय व्यवस्था की अपनी विशेषताएँ है । उदाहरण के लिए, स्विस सविधान म स्विस राष्ट्र की जिस अथ

47 Strong, C F *op cit*, p 115

मे चर्चा की गयी है वह अमेरिकी सविधान को अनात है । परन्तु स्विस सविधान मे शक्तियो का विभाजन इस प्रकार किया गया है कि अवशिष्ट शक्तियाँ केन्टना को प्रदान की गयी है । केन्टन अपने-अपने क्षेत्र मे स्वायत्त सत्ता-सम्पन्न है । उनक अपने पृथक सविधान हैं, जिन्ह वे सशोधित कर सकत हैं । लेकिन केन्टनो पर तीन प्रतिबन्ध है (1) प्रत्येक केन्टन का सविधान गणतन्त्रीय होना चाहिए । (2) केन्टना क सविधान की कोई व्यवस्था सघीय सविधान के विरुद्ध नही हानी चाहिए । (3) केन्टना के *सविधाना म जनमत सग्रह या जन सहमति द्वारा ही सशोधन या पुनसशोधन (revision)* किये जाने की व्यवस्था है । स्विटजरलण्ड म राष्ट्रीय नागरिकता से सम्बन्धित कोई विधि नही है, अपितु केन्टनो की अपनी अलग-अलग नागरिकताएँ हैं । जो केन्टन का नागरिक होता है वही स्विस नागरिक भी होता है ।

सघीय व्यवस्थापिका का उच्च सदन राज्य-परिषद (Council of States) केन्टनो का प्रतिनिधित्व करता है और प्रत्येक केन्टन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है । इन प्रतिनिधियो को चुनने एव उनकी सेवा सम्बन्धी शर्तों को निर्धारित करने म प्रत्येक केन्टन स्वतन्त्र है । इसके अतिरिक्त स्विस सघीय सविधान मे बिना केन्टनो की सहमति के कोई भी सशोधन सम्भव नही है ।

स्विस सघीय व्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि स्विस सघीय न्यायालय को सविधान की व्याख्या का अधिकार सयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की भाति प्राप्त नही है । स्विट्जरलैण्ड म सविधान की व्याख्या का अधिकार सघीय व्यवस्थापिका को प्राप्त है । स्विस सघीय न्यायालय (Federal Tribunal) को केन्टना के मध्य विवादा का निणय करने का मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है और सभी प्रकार के पुनरावेदनीय मामलो के लिए वह देश का सर्वोच्च न्यायालय है ।

समीक्षा—स्विस सघीय सरकार को वैदेशिक मामला, राजदूतो को विदेशा म नियुक्त करने एव विदेशी राजदूतो का स्वागत करने का अधिकार है । इसके अतिरिक्त, युद्ध एव शान्ति, विदेशो से सन्धियाँ, सनिक व्यवस्था, आन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था, वाणिज्य, व्यवसाय, बैंकिंग, डाक तार, रेल, उच्च शिक्षा आदि विपया पर सघीय सरकार को पूण नियन्त्रण प्राप्त है । उद्योग एव बीमा राजमार्गों का निर्माण एव उनकी रक्षा, समाचार-पत्रो पर नियन्त्रण एव शिक्षा प्रसार समवर्ती विषय है । परन्तु सघीय शासन की शक्तियो मे निरन्तर वृद्धि हुई है । जुचर (Zurcher) के अनुसार सघ शासन की वद्धि से जहा उसकी प्रतिष्ठा मे वद्धि हुई है, वहाँ केन्टना की शक्ति का ह्रास हुआ है । आन्द्रे (Andre) ने तो यह सन्देह व्यक्त किया है कि यदि केन्द्रीय शक्ति इसी प्रकार केन्टनो की सत्ता का अतिक्रमण करती रही तो केन्टन सघीय आदशा का पालन करने वाले विशुद्ध जिला प्रशासन बन जायेंगे । युद्ध, आर्थिक मन्दी, सामाजिक सेवाओ की बढती हुई आवश्यकता एव अनिवायता तथा यातायात व उद्योग के क्षेत्र मे प्रावधिक एव यन्त्रीकरण की उन्नति के कारण प्रत्येक सघीय राज्य म केन्द्रीय शासन की शक्तिया मे वद्धि हुई है । स्विस परिसघ इसका अपवाद नही है ।

परन्तु सघीय शक्ति की वद्धि के पश्चात भी स्विस केन्टना को पर्याप्त अधिकार एव स्वायत्तता प्राप्त है। उदाहरण के लिए, के टना के न्यायालया द्वारा सघीय विधिया लागू की जाती है। केन्टन के कमचारियो के द्वारा ही सघीय शासन के दायित्व निभाय जाते है। केन्टना के द्वारा सेनाआ का भी प्रव ध किया जाता है। सघीय सरकार द्वारा तो केवल उनका निरीक्षण एव निर्देशन ही किया जाता है। स्विस सघीय सरकार की शक्तिया म जब भी वद्धि की गयी है तब वह बिना विरोध या अवरोध के नही हुई है। प्रत्येक विधेयक को विधि बनने के पूव जनता द्वारा जनमत-सग्रह के माध्यम स स्वीकृत होना चाहिए। सघीय सशोधन के लिए तो यह व्यवस्था अनिवाय है। स्विस सघीय सविधान मे सशोधन के लिए जनता के समथन के अतिरिक्त आधे स अधिक केन्टनो की सहमति भी आवश्यक होती है। स्विस जनता सहज ही ऐसे किसी विधेयक को स्वीकृति नही देती है। अत सघ की शक्ति म असाधारण वद्धि कभी नही हुई अपितु परिस्थितिया की आवश्यकता के अनुसार ही शक्ति मे वद्धि हुई है।

स्विस एव अमेरिकी सघीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन निम्नवत है

(1) स्विस सघीय शासन को अमरिकी सघीय शासन की अपेक्षा अधिक एव व्यापक शक्तिया प्राप्त है। सविधान के अनुसार सघीय शासन द्वारा के टनो को उनके क्षेत्र, निश्चित सीमाआ के अन्तगत सप्रभुता के प्रयोग एव अधिकारो तथा स्वतन्त्रता की प्रतिभूति प्रदान की गयी है।

(2) स्विस सघीय शासन एव केन्टनो के अधिकार क्षेत्र सयुक्त राज्य अमेरिका के सघीय शासन एव राज्यो के शासना व उनके अधिकार क्षेत्र की भाति स्पष्ट नही है। स्विस सघीय व्यवस्था के अन्तगत अनेक सघीय विधियो—सनिक विधियो सहित—के क्रियान्वयन के लिए सघीय शासन को के टनो के अधिकारिया पर निभर रहना पडता है। कुछ विभागो के सन्दभ मे स्विस सघीय शासन पूणरूपेण आत्मनिभर है। स्मरणीय है कि सयुक्त राज्य अमेरिका मे सघीय शासन एव राज्या के शासन के अलग-अलग अधिकारी हाते है।

(3) सयुक्त राज्य अमरिका की भाति स्विटजरलण्ड के सघीय न्यायालय को किसी भी सघीय विधि को अवधानिक घोपित करने का अधिकार नही है। अत स्विस सघीय यायालय को अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के समान न्यायिक पुनरीक्षण का अधिकार नही है।

स्ट्राग ने निम्न शब्दो मे स्विस व्यवस्था का सार स्पष्ट किया है "स्विस परिसघ म अवशिष्ट शक्तिया कन्टनो को प्राप्त है, सविधान सर्वोच्च है लेकिन जनमत-सग्रह एव उपक्रम (initiative) के माध्यम से हर विषय पर पूण लोकप्रिय नियन्त्रण की व्यवस्था है। अ त म स्विस सघीय न्यायपालिका को सविधान की व्याख्या का अधिकार प्राप्त नही है।"[48]

48 Strong, C F *op cit*, p 116

सोवियत रूस एवं संघवाद

सोवियत रूस के स्टालिन संविधान (1936 ई) के द्वारा संघीय व्यवस्था की स्थापना की गयी है। स्ट्राग के कथनानुसार संघीय व्यवस्था के सोवियत रूस के नवीन एव अपेक्षाकृत मौलिक नमूने का प्राचीन संघो के साथ तुलनात्मक अध्ययन लाभप्रद है। रूस मे संघीय व्यवस्था का विकास बिल्कुल भिन्न परिपेक्ष मे हुआ है। स्मरणीय है कि 1918 ई का लेनिन के मौलिक सोवियत संविधान का सम्बन्ध यूरोपीय रूस से ही था जो रूसी सोवियत संघीय समाजवादी गणराज्य (R S F S R) के नाम से ज्ञात है। 1923 ई मे सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की स्थापना हुई थी। यूरोपीय रूस (R S F S R) के साथ तीन अन्य प्रदेशो (जिनमे यूक्रेन (Ukraine) भी शामिल था) के स्वच्छिक मिलन से सोवियत समाजवादी संघ गण राज्य (U S S R) का जन्म हुआ था। धीरे धीरे जो अनेक नवीन गणराज्य स्थापित होते गये, इसी संघ मे शामिल होते चले गये। 1936 ई मे 1923 ई के संविधान के स्थान पर नवीन संविधान, जिसे स्टालिन संविधान की संज्ञा दी जाती है, स्थापना की गयी। स्टालिन संविधान की धारा 13 के अधीन 1936 ई का संविधान 11 समान सोवियत समाजवादी गणराज्यो का स्वेच्छिक संघ है।[49] अब इन घटक राज्यो की संख्या बढकर 15 हो गयी है। यह पन्द्रह संघ गणराज्य निम्न हैं

रूसी संघ, यूक्रेन, बाइलो रूस, उजबेकिस्तान, कजखिस्तान, जार्जिया, अजर बेजान, लिथुआनिया, लटविया, किरगजिस्तान, तुकमानिस्तान, एस्टोनिया, मोल्दाविया और आरमीनिया।

सोवियत संघ मे संयुक्त राज्य अमरिका, कनाडा, स्विट्जरलण्ड एव आस्ट्रेलिया की भाति द्विस्तरीय—केन्द्र व राज्य या प्रान्त या केंटनो—संघीय व्यवस्था नही है। सोवियत संघ मे 4 प्रकार की घटक इकाइयां है, जो क्रमश संघ गणराज्य (Union Republics), स्वायत्तशासी गणराज्य (Autonomous Republics), स्वायत्तशासी प्रदेश (Autonomous Regions) एव राष्ट्रीय क्षेत्र (National Areas) हैं। 15 गणराज्यो के अतिरिक्त 20 स्वायत्तशासी गणराज्य (Autonomous Republics) है। रूसी संघ मे 15, जॉर्जिया मे 3 और अजरबेजान और उजबेकिस्तान मे प्रत्येक मे एक-एक स्वायत्तशासी गणराज्य है। इसके अतिरिक्त, 9 स्वायत्तशासी प्रदेश (Autonomous Regions) एव 10 राष्ट्रीय क्षेत्र (National Areas) है। इनकी स्थापना राष्ट्रीयता एव भाषा के आधार पर की गयी है। संघ की इन चारो घटक इकाइयो का सुप्रीम सोवियत के उच्च सदन—राष्ट्रीयता सोवियत (Soviet of Nationalities)—मे प्रतिनिधित्व प्राप्त है। प्रत्येक गणराज्य को 25, स्वायत्तशासी

---

49 The Union of Soviet Socialist Republics is a federal state formed on the basis of a voluntary union of equal Soviet Socialist Republics —Article 13 of the Soviet Constitution

गणराज्य को 11, स्वायत्तशासी प्रदेश का 5 एव राष्ट्रीय क्षेत्र को 1 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

सोवियत रूस का सघ मानने के सम्बन्ध म विद्वाना म मतभेद है। सघवाद के प्रसिद्ध विद्वान प्रो ह्वीयरे का कथन है कि रूस का 1936 ई का सविधान अधिक स अधिक अद्ध सघीय (quası federal) है।[50] इसके विपरीत, प्रो स्ट्राग ने इसे कम वढ सघ राज्य माना है।[51] प्रो हेजाड[52] ने सोवियत सघ को गणतन्त्रो के सघ की सज्ञा दी है। इस मत-वभिन्य के लिए सावियत सघ की अनेक विशेषताएँ उत्तरदायी हैं। लिखित एव कठोर सविधान, शक्तिया का विभाजन एव सर्वोच्च न्यायालय क रूप मे स्वतन्त्र न्यायपालिका सघीय राज्य की तीन प्रधान विशेषताएँ है। सोवियत रूस की सघीय व्यवस्था ऊपरी तौर पर इनमे से केवल दो विशेषताओ को पूरा करती है। प्रथम, सोवियत सविधान लिखित है। वह कठोर भी है। उसम सशोधन की विशेष प्रक्रिया है। सर्वाच्च सोवियत के दोनो सदनो के 2/3 बहुमत की स्वीकृति सविधान मे सशोधन के लिए अनिवाय है। द्वितीय, केन्द्र व घटक इकाइयो के मध्य सोवियत सघ मे शक्तियो का स्पष्ट विभाजन भी है। अनुच्छेद 14 के अन्तगत सघ शासन की शक्तियों का उल्लेख किया गया है और अवशिष्ट शक्तिया घटक राज्यो को प्रदान की गयी हे। लेकिन तीसरी अनिवाय विशेषता अर्थात निष्पक्ष न्यायपालिका सोवियत सघ म नही पायी जाती है। अमेरिकी या भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की भाति सविधान की व्याख्या और केन्द्र व राज्यो के मध्य सम्बन्धो के निणय करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त नही है अपितु प्रेसीडियम को प्राप्त है जो केन्द्रीय विधान-मण्डल की एक समिति हे। यह कायपालक कतव्यो को भी सम्पादित करती है। उपयुक्त दो सघीय विशेषताओ की पूर्ति भी आशिक रूप म ही हाती है। सोवियत सघ म कुछ ऐसी महत्वपूण व्यवस्था है जो अधिकाश सघीय देशा मे नही पायी जाती है। वे निम्नलिखित है

(1) घटक गणराज्यो को सोवियत सघ से पृथक हाने का अधिकार प्राप्त है। (अनुच्छेद 17)

(2) 1944 ई मे सविधान मे सशोधन करके यह व्यवस्था की गयी है कि घटक गणराज्यो को पृथक रूप स सुरक्षा एव विदेश विभाग गठित करने तथा प्रत्येक घटक गणराज्य को विदेशी राज्या के साथ सम्बन्ध स्थापित करने व सन्धिया करने का अधिकार होगा। (अनुच्छेद 18) वेलोरसा तथा यूक्रन क सोवियत सघ गणराज्या को सयुक्त राष्ट्र सघ का इसी आधार पर सदस्य वनाया गया है।

---

50 The Constitution of 1936 is at best quası federal '—Wheare

51 'The U S S R ıs nonetheless a federal state '—Strong, C F *op cit*, p 128

52 The U S S R ıs a federation consisting of a number of constituent Republics —Prof Hazard

(3) सघ गणराज्यो को उपयुक्त दो व्यवस्थाएँ विशेष स्वायत्तता की स्थिति प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक सघ गणराज्य का अपना सविधान है और उन्हे अपने अधिकार क्षेत्र म आने वाले विषया म राज्य शक्ति के प्रयोग की पूण स्वतन्त्रता है (अनुच्छेद 16) सघीय गणराज्या की सीमाआ मे बिना उनकी सहमति के कोई भी परिवतन नही किया जा सकता है (अनुच्छेद 18)।

विशिन्सकी ने सोवियत सघ की घटक इकाइया की स्थिति पर मत व्यक्त करते हुए कहा है कि 'प्रत्येक सघीय गणराज्य की सप्रभुता की अभिव्यक्ति निम्न तथ्या द्वारा होती है—(1) प्रत्येक सघ गणराज्य का स्वनिर्मित अपना सविधान होता है, (2) उनका अपना निश्चित क्षेत्र होता है जिसमे उसकी सहमति के बिना परिवतन नही किया जा सकता, एव (3) उसे सघ से पृथक होने का अधिकार प्राप्त होता है।"

सोवियत सघ की उपर्युक्त व्यवस्थाओ के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सोवियत सघ मे घटक राज्यो को अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्तता प्राप्त है और अन्य सघा की अपेक्षा वह अधिक श्रेष्ठ है। परन्तु विचारको के अनुसार तथ्य इसके विपरीत है। सोवियत सविधान मे अनेक ऐसी व्यवस्थाए हैं जो उपर्युक्त व्यवस्थाओ को सीमित करके घटक इकाइया की स्वायत्तता को समाप्त कर देती हैं। सोवियत सघ की इन एकात्मक प्रवत्तियो के कारण ही हरमन फाइनर ने उसे एकात्मक राज्य माना है।[53]

सोवियत सघ म एकात्मक प्रवृत्तिया निम्नवत् हैं

(1) सयुक्त राज्य अमेरिका एव भारतीय सघ की भाति सोवियत सविधान के सशोधन म घटक इकाइयो की स्वीकृति आवश्यक नही है। सर्वोच्च सोवियत को सविधान मे सशोधन का एकाधिकार प्राप्त है। एकदलीय व्यवस्था के कारण दोनो सदनो मे 2/3 बहुमत प्राप्त करना कोई कठिन काय नही है।

(2) सघ एव घटक इकाइयो के मध्य शक्ति विभाजन मे भी पर्याप्त असमानता है। शक्ति विभाजन का आधार गणना एव अवशेष (Enumeration and Residium) का सिद्धान्त है। सघ सरकार को अत्यधिक व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी है।[54] इकाइया को प्रदत्त शक्तियाँ सघ की भाति महत्वपूण नही है। शक्ति विभा

---

53 The U S S R declares it a federal union but in reality it is a highly unitary state'—Finer, H *The Governments of Europe* p 634

54 अनुच्छेद 14
सघीय सरकार को प्रदत्त मुख्य शक्तियाँ निम्न हैं वैदेशिक सम्बन्ध, सन्धिया की स्वीकृति एव अस्वीकृति, युद्ध एव शान्ति के प्रश्न, सघ म नवीन गणराज्यो का प्रवेश, सोवियत सघ के सविधान के पालन सम्बन्धी प्रश्न, सघीय गणराज्या की सीमाआ की स्वीकृति एव उसम परिवतन, राज्य एकाधिकार के अधीन विदेशी व्यापार, राज्य की सुरक्षा, राष्ट्रीय आर्थिक योजना का निर्धारण, यातायात एव सचार व्यवस्था मुद्रा एव साख, राज्य बीमा सगठन, शिक्षा एव स्वास्थ्य, श्रम विधान, न्यायिक व्यवस्था दीवानी एव फौजदारी सहिताएँ, सघ की नागरिकता, क्षमादान, बक, औद्योगिक एव कृषि-सस्थाना का प्रशासन आदि।

जन मे परिवर्तन या सशोधन के लिए इकाइयो की स्वीकृति की आवश्यकता नही है ।

(3) सोवियत सघीय मन्त्रिमण्डल म दो प्रकार के मन्त्रालय होते है अखिल सघीय मन्त्रालय (All union ministries) एव सघ-गणराज्य मन्त्रालय (Union-Republic ministries) । अखिल सघीय मन्त्रालयो का क्षेत्र सम्पूण सोवियत सघ है । सघीय गणराज्य मन्त्रालया के द्वारा केन्द्रीय शासन सघ गणराज्यो के समान मन्त्रालयो के कार्यों का निरीक्षण करता है । स्पष्ट है कि केन्द्र का सघीय इकाइया पर पूण नियन्त्रण है ।

(4) अनुच्छेद 14 के अधीन सघीय शासन को सघ गणराज्यो एव विदेशी शक्तियो के सम्बन्ध को नियन्त्रित करने के अधिकार है । इसके अतिरिक्त, सघ गण-राज्या के सैनिक सगठन के नियन्त्रण एव निर्देशन से सम्बन्धित सिद्धान्तो को निर्धारित करने का सघीय शासन को अधिकार है । सत्य तो यह है कि केन्द्रीय सरकार का सघ-गणराज्यो पर इतना कठोर नियन्त्रण है कि सघ से पृथक होने अथवा विदेशो से पृथक सम्बन्ध स्थापित करने की वे कल्पना ही नही कर सकते । केन्द्रीय निर्देशन के विपरीत किया गया उनका प्रत्येक काय क्रान्ति विरोधी कदम माना जाता है ।

(5) अनुच्छेद 20 के अधीन किसी भी सघीय गणराज्य का कोई कानून यदि सघीय विधि के विरुद्ध होता है तो ऐसी स्थिति म सघीय विधि ही मान्य होती है ।

(6) सोवियत सघ के मन्त्रिमण्डल को सघ गणराज्य के मन्त्रिमण्डल के निणयो को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है । सोवियत केन्द्रीय शासन के हाथो मे यह एक ऐसा विशेषाधिकार है जो सघीय सिद्धान्त एव व्यवहार के ठीक विपरीत है ।

(7) सोवियत रूस मे प्रोक्यूरेटर जनरल (Procurator General) नामक एक केन्द्रीय अधिकारी होता है । यह सम्पूण देश मे सोवियत केन्द्रीय विधि के क्रिया-न्वयन के लिए उत्तरदायी है । प्रोक्यूरेटर जनरल को इस सम्बन्ध मे इतनी व्यापक शक्तिया प्राप्त है कि वह सभी मन्त्रालयो एव प्रशासकीय अभिकरणो पर नियन्त्रण रखता है । उसकी शक्तिया इतनी व्यापक एव पूण है कि ऐसे किसी अधिकारी का कोई अन्य उदाहरण किसी अन्य सघीय शासन मे उपलब्ध नही है ।

(8) सघीय शासन का सम्पूण देश की आर्थिक व्यवस्था पर पूण नियन्त्रण है । वदेशिक व्यापार, यातायात, सचार, बैंको की व्यवस्था, कृषि, उद्योग धन्धे, मुद्रा-व्यवस्था, राज्य-बीमा आदि विषयो पर केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण है । सक्षेप म केन्द्र शासन द्वारा ही सम्पूण राष्ट्रीय अथ-व्यवस्था के सचालन की योजना बनायी जाती है । सम्पूण देश का एक ही राष्ट्रीय बजट होता है । इसी म सघ-गणराज्यो के बजट भी सम्मिलित होते हैं । सारे देश के लिए एक ही नियोजन व्यवस्था होती है । राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन की एकीकृत व्यवस्था के कारण केन्द्रीय शासन का सारे देश पर पूण नियन्त्रण होता है ।

(9) प्रेसीडियम को भी सघ गणराज्यो को नियन्त्रित करने की शक्ति प्राप्त है। प्रेसीडियम उनके निणयो को रद्द कर सकती है।

(10) एकदलीय व्यवस्था के कारण इस केन्द्रीकरण की प्रवत्ति को और अधिक बल मिला है। रूस म एकमात्र दल साम्यवादी दल है। उसका अनुशासन फौलादी है। सम्पूण जन जीवन पर उसका एकछत्र राज्य है। प्रशासन सम्बन्धी सभी नीतियो का निर्माण इसी दल के चोटी के नताओ द्वारा किया जाता है। स्पष्ट है सघ गणराज्यो के प्रशासन पर भी साम्यवादी दल का नियन्त्रण होता है।

सोवियत सघ की वस्तु स्थिति

सोवियत रूस पश्चिमी सघो से पृथक और भिन्न है। सोवियत नेताओ के अनुसार वह सच्चा सघ है। सोवियत सघ राष्ट्रीयता पर आधारित है। घटक इकाइयो को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त है। सघ की इकाइयो को सघ से पृथक होने और पृथक वैदेशिक सम्बन्ध एव सनिक सगठन बनाने का अधिकार प्राप्त है। ऐसे अधिकार अन्य सघो म घटक इकाइयो को प्राप्त नही हैं। सोवियत नेताओ के अनुसार सोवियत सघीय सविधान के दो प्रमुख लक्षण हैं—(1) सघ म सम्मिलित इकाइया राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र है और सघ म शामिल होने के पश्चात आशिक रूप मे वे स्वायत्तशासी हैं। (2) सविधान म एसी व्यवस्था है कि इस स्वायत्तता की रक्षा हो सके। घटक इकाइयो की स्वायत्तता एव उसकी रक्षा के लिए उचित प्रावधान सोवियत सविधान म है अत सोवियत सघ का सविधान सच्चा सघीय सविधान है। उपयुक्त विश्लेषण स ऐसा आभास होता है कि सोवियत सघ अन्य सघो से श्रेष्ठ है। परन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। सोवियत सविधान की एक धारा द्वारा जहा स्वायत्तता की व्यवस्था की जाती है वहा उससे सलग्न दूसरी धारा उसका खण्डन करती है। उदाहरण के लिए, सघीय राज्यो को अपने पृथक सनिक सगठन बनाने का अधिकार है। परन्तु अनुच्छेद 14 के अनुसार केन्द्रीय शासन को सनिक सगठन सम्बन्धी सिद्धान्तो को निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है। यही वदेशिक मामलो के सम्बन्ध मे सत्य है। एक तरफ सघ गणराज्यो को स्वतन्त्र वदशिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार है तो दूसरी तरफ अनुच्छेद 14 (व) के द्वारा केन्द्रीय शासन को इस सन्दभ म नियम निर्धारित करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

गणराज्यो को सघ से पृथक होने की स्वतन्त्रता है। सिद्धान्त मे यह ठीक है परन्तु व्यवहार म पृथक होने या अलगाव की चर्चा की क्रान्ति विरोधी चर्चा है जिसकी किसी सघ गणराज्य को कभी भी अनुमति नही दी जा सकती। सघ से पृथक होने के विचार को साम्राज्यवादी शक्तियो का षडयन्त्र कहा जाता है और उसे साम्यवादी दल के नेता किसी स्थिति मे स्वीकार करने के लिए तैयार नही होते हैं।

अत सोवियत सघ मे केन्द्रीकरण की गम्भीर प्रवत्ति है। विशिन्सकी[55] द्वारा

---

55 Vyshinsky *The Law of the Soviet State*, 1948, pp 286 87

सघ गणराज्यो की स्थिति पर व्यक्त विचारो से यह स्पष्ट है कि वे केन्द्र के अनुशासन व निर्देशन म काय करते है।

सोवियत रूस के सघ म केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को रूसी नेता छिपाने का प्रयत्न नही करते, वरन वे उसे पूजीवादी देशा के केन्द्रीकरण से श्रेष्ठ मानत ह। पूजीवादी सघीय देशो म केन्द्रीकरण तो कमचारियो का केन्द्रीकरण है। विशिन्सकी के अनुसार "सोवियत सघ का निर्माण लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर हुआ है जा पूजीवादी राज्या के कमचारीत त्रात्मक केन्द्रीकरण से पूणत भिन्न है।" उसने 'आधारभूत प्रश्ना, सामान्य मागदशन तथा एक ही योजना के अनुसार पूरे राज्य के आर्थिक विकास की अधिकतम एकरूपता के हेतु केन्द्रीकरण का समथन किया है।

सत्य तो यह है कि "सोवियत सघ सास्कृतिक दृष्टि से सघ होत हुए भी आर्थिक एव राजनीतिक दृष्टि से एकात्मक राज्य है।' जारकालीन रूस म प्रान्ता की जनता एव अन्य सास्कृतिक अल्पसख्यको पर घोर अत्याचार किये जाते थे और इन अल्पसख्यको ने शासन के इस दमन का प्रबल विरोध किया था। जारकालीन शासन ने विभिन्न भाषाई एव सास्कृतिक इकाइयो की भाषा एव सस्कृतियो को दबाने एव उन पर रूसी भाषा एव सस्कृति को लादने का भरसक प्रयत्न किया था। प्रान्ता एव सास्कृतिक अल्पसख्यको के इन विद्रोहो मे हजारो लोगो को मौत क घाट उतार दिया गया था। लेकिन सोवियत रूस मे विभिन्न भाषाई एव सास्कृतिक राष्ट्र-जातिया को आज अपनी भाषा एव सस्कृति की पूण सुविधा एव स्वतन्त्रता प्राप्त है।

जर्मनी मे सघवाद

जमनी मे सघवाद का इतिहास बहुत पुराना है।[56] बिस्माक के नेतत्व मे 1871 ई मे जमनी का एकीकरण हुआ और राष्ट्रीय राज्य का उदय हुआ। इससे पूव जमनी म सघीय प्रवत्तिया दृष्टिगोचर होने लगी थी। जमन राज्यो के सघ के निर्माण मे विदेशी आक्रमण प्राथमिक कारण सिद्ध हुआ था। उसकी चरम परिणति 1871 ई एव 1919 ई म हुई थी।[57] 874 ई मे चार्ल्स महान की मृत्यु के पश्चात उसका विशाल साम्राज्य टुकडे टुकडे हो गया था। सम्पूण मध्ययुग म सामन्तवाद का बोलबाला बना रहा। पवित्र रोमन साम्राज्य तो सामन्तवाद की विकेन्द्रित व्यवस्था को आवृत करने वाला एक आवरण मात्र था। इसके अधीन दो प्रतिस्पर्धी राज्या—आस्ट्रिया एव प्रशा—का उदय हुआ। नेपोलियन के पूव इस प्रदेश मे आस्ट्रिया एव प्रशा के अतिरिक्त 1800 स्वतन्त्र राजनीतिक क्षेत्र थे। उस समय जमन क्षेत्र राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए उपयुक्त भूमि नही थी। प्रत्येक प्रदेश की अपनी सीमा एव आर्थिक नाकेबन्दी थी। प्रत्येक क्षेत्र के अलग-अलग सिक्के थे। उनकी अपनी पृथक राजनीतिक व्यवस्थाएँ थी। फ्रास की राज्यक्रान्ति एव नेपोलियन के आक्रमण ने जमनी

---

56 Strong, C F *op cit*, p 123
57 Finer, H *op cit*, p 171

मे राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। 1800 स्वतन्त्र राजनीतिक क्षेत्रो के स्थान पर 33 राज्यो का निर्माण किया गया और पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त कर दिया गया। 1815 ई मे **जमन परिसघ** (German Confederation) का निर्माण हुआ था जो आस्ट्रिया एव प्रशा के मध्य अन्तिम सघष के लिए, स्ट्राग के शब्दो मे, प्रस्तावना या आरम्भ था।[58] 1815 ई से 1842 ई तक परिसघ के काल म, फाइनर के अनुसार, प्रशा के अधीन जमन सघ के निर्माण की भावना बलवती होने लगी थी। परिसघ मे राजनीतिक दलो एव राष्ट्रीय भावना का विकास होने लगा था। फलत परिसघ की इकाइया सघीय सविधान के निर्माण एव आर्थिक एकता की दिशा मे अग्रसर हुई थी। 1848 ई की क्रान्ति हुई और आस्ट्रिया तथा प्रशा मे सघष प्रारम्भ हुआ। इसमे आस्ट्रिया विजयी हुआ। इसी काल मे आर्थिक क्षेत्र म चुगी सघ का निर्माण हुआ। इससे एकता स्थापित हुई। 1848 ई तक सघ के निर्माण मे आर्थिक प्रयोजन प्रधान थे। परन्तु इसके पश्चात राजनीतिक तत्वो न प्रमुख स्थान ले लिया।[59] 1848 ई म फ्रासीसी क्रान्ति के पश्चात सघीय योजनाओ पर गम्भीरता पूवक विचार होने लगा था। आस्ट्रिया ने सघ मे शामिल होने से इकार कर दिया। बवेरिया ने अनिच्छापूवक क्रान्ति की सफलता के पश्चात ही अपनी सहमति दी थी। 550 सदस्यो वाली एक सविधान सभा का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ। प्रशा के इसम 141 सदस्य थे। आस्ट्रिया मे क्रान्ति हो रही थी अत वह केवल दो सदस्य ही भेज सका। अत सविधान सभा की सफलता प्रशा के सहयोग पर निभर करती थी। प्रशा ने अवसर का लाभ उठाते हुए सविधान सभा का अधिवेशन उस समय आहूत किया जब आस्ट्रिया म क्रान्ति सफल हो चुकी थी, परन्तु क्रान्ति के वेग के कम होने पर बहुत स जमन नरेशो ने प्रशा के राजा के नेतृत्व को अस्वीकार कर दिया। प्रशा का शासक भी क्रान्तिकारियो की बाधाओ के आन्तरिक कारणो स आस्ट्रिया के साथ सघष के लिए तैयार न था। 'फ्रॅकफोट की ससद' मौलिक अधिकारो सम्बन्धी मतभेदो के कारण असफल हो गयी। लेकिन उसन सघीय सविधान को स्वीकार कर लिया था। इसम आस्ट्रिया को शामिल नही किया गया था। द्विसदनीय विधानमण्डल की व्यवस्था की गयी थी और सघीय शासन को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। आस्ट्रिया ने इसे स्वीकार नही किया। दक्षिणी जमन रियासतें आस्ट्रिया के सरक्षक की इच्छुक थी। बिस्माक ('आधुनिक जमनी का जनक') ने चतुर खिलाडी की भाँति प्रशा का जमन एकीकरण की दृष्टि स नेतत्व किया। उसन आस्ट्रिया का विरोध प्रारम्भ कर दिया और फ्रास से मित्रता की तथा सावभौम मताधिकार पर निर्वाचित जमन ससद की स्थापना की माँग की। बिस्माक ने सघीय सत्ता का अधिक व्यापक बनाने और आर्थिक एव वदशिक सम्बन्धो तथा जमन सशस्त्र सना का नतृत्व सघीय शासन का सौंपन का प्रस्ताव किया। जमन ससद द्वारा सवसम्मति स निणय

58 Strong C F *Ibid*, p 123
59 Finer, H *op cit*, p 174

करने की व्यवस्था को बिस्माक ने समाप्त करने का सुझाव दिया। इसे आस्ट्रिया की सरकार मानने को तैयार न थी क्योंकि बहुमत द्वारा निणय का अथ प्रशा की सफलता होता। अतएव आस्ट्रिया एव राइन नदी के निचले क्षेत्र के राज्यो को पृथक रखते हुए एक नवीन योजना बनायी गयी। इसे भी आस्ट्रिया ने अस्वीकार कर दिया। इस पर प्रशा ने परिसघ की समाप्ति और निलम्बित होने की घोषणा कर दी। 1866 ई म आस्ट्रिया एव प्रशा म युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमे आस्ट्रिया पराजित हुआ और जमन सघ के निर्माण की सबसे बडी बाधा दूर हो गयी। आस्ट्रिया को सघ से पृथक कर दिया गया। लेकिन अभी अनेक बाधाएँ बाकी थी परन्तु केन्द्रीय धुरी अब एक ही थी। युद्ध-काल मे उत्तरी राज्यो ने अपन को काफी असुरक्षित अनुभव किया था। लेकिन प्रशा के साथ युद्धकालीन सम्पक और सधियो के फलस्वरूप उत्तरी जमन परिसघ (North German Confederation, 1867) का जन्म हुआ। यही 1871 ई के जमन साम्राज्य का नमूना बना। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् थी

(1) एकता की स्थापना के पश्चात राज्यो को बहुत बडी मात्रा मे स्वतन्त्रता प्रदान की गयी।

(2) नवीन राज्यो के अतिरिक्त प्रत्यक राज्य को सघीय ससद मे पहले जो स्थान प्राप्त थे वे ही दिये गये। प्रशा को 42 म से 17 स्थान प्राप्त थे अत बहुमत के लिए केवल पाच मतो की आवश्यकता थी।

(3) सवैधानिक सशोधन के लिए 2/3 बहुमत जरूरी था। फलत छोटे राज्या को सगठित होकर एकजुट हो जाने पर सशोधन के सन्दम म निषेधाधिकार प्राप्त था। लेकिन प्रशा के सहयोग के बिना कोई सवैधानिक सशोधन पारित नही हो सकता था।

(4) प्रशा का राजा उत्तरी जमन परिसघ का सर्वोच्च सेनापति था। सेना सम्बन्धी सभी प्रस्तावा पर सर्वोच्च सेनापति की स्वीकृति आवश्यक थी।

(5) निर्वाचित सदन रीस्टाग मे सप्रभुता अधिष्ठित न होकर सघीय सभा (Federal Council) मे अधिष्ठित थी।

(6) सघीय चान्सलर किसी सघीय निकाय के प्रति उत्तरदायी न होकर सघ क अध्यक्ष प्रशा के राजा के प्रति उत्तरदायी था।

(7) सघीय विधिया राज्यो द्वारा क्रियान्वित की जाती थी।

किसी भी राज्य ने इस सविधान का विरोध नही किया और यह जुलाई 1867 ई से लागू हुआ। परन्तु यह सघीय व्यवस्था अभी अपूण थी क्योकि दक्षिणी रियासतें अभी जमन सघ से पृथक थी। बवेरिया वरटेमबग एव बाडिन की दक्षिणी रियासतो ने उत्तरी परिसघ से सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय तो किया परन्तु प्रशा के प्रति तीव्र सन्दह एव अविश्वास भी प्रकट किया। राजवशीय भावना की क कारण भी यह प्रयत्न सफल न हो सका। केवल इन राज्या स एक ... हो सकी। अत सम्पूण जमनी की सुरक्षा के लिए सघ तो बन गया था ...

राज्य अभी भी अवसर के अनुकूल स्वतन्त्र रीति से निणय करने के अधिकार को अपन पास सुरक्षित रखना चाहते थे। स्वतन्त्र व्यापार एव चुगी व्यवस्था के फलस्वरूप वाणिज्य का विकास हुआ था। राष्ट्रीय दलो के विकास के फलस्वरूप सघ की शक्ति म वृद्धि हुई। राज्यो मे जो तीव्र मतभेद थे वह भी कम हुए थ। बिस्माक अधीर नही था। दक्षिणी राज्यो का जमन सघ म आकर्षित करने के लिए वह प्रयत्नशील था परन्तु वह तेजी या जल्दी म नही था। दक्षिणी राज्यो ने पृथक सघ के निर्माण का प्रयत्न किया परन्तु वे असफल रहे। बिस्माक की यह धारणा थी कि जमन सघ का निर्माण शक्ति या बल-प्रयोग से हो सकता है या किसी सामान्य सकट की अवस्था मे सभी राज्य सघ मे शामिल हो सकते हैं। यह सामान्य सकट की अवस्था 1871 ई मे फ्रान्स एव प्रशा के मध्य युद्ध प्रारम्भ होने स उत्पन्न हो गयी। फ्रान्स इस युद्ध म हार गया। दक्षिणी राज्यो को निरन्तर उत्तरी सघ के विरुद्ध भडकाने वाले प्रधान तत्व का अन्त हो गया। बवेरिया को छोडकर सभी दक्षिणी राज्यो न इस युद्ध म उत्तरी परिसघ का साथ दिया था। सारी जमन सेनाओ का नेतृत्व प्रशा ने किया था। प्रशा के साथ इस युद्ध को सभी जमन राज्या के साथ युद्ध माना गया। इस युद्ध ने विजयी जमनी का एकीकरण सम्भव बना दिया। बवेरिया ने प्रारम्भ म उत्तरी परिसघ म शामिल होने के बदले म अनेक रियायता की माग की परन्तु अन्त म उस सघ म शामिल होना पडा। उस अनेक रियायते दी गयी थी। बाडिन (Baden), हेस (Hesse) एव वरटेमबग ने बिना किसी विरोध के जमन सघ के सविधान को स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार जमन साम्राज्य का जन्म हुआ और प्रशा का राजा जमन सम्राट बना।

जमन साम्राज्यीय सविधान (1871 ई) एव सघवाद

बिस्माक द्वारा स्थापित जमन साम्राज्य पूरी तरह सघीय नही था। स्वरूप म वह निश्चय ही 25 राज्या का सघ था। प्रत्यक राज्य की अपनी ससद या विधान मण्डल भी था और राज्या के विधानमण्डला को साम्राज्यीय विषया को छोडकर शेष सभी विषया म क्षेत्राधिकार प्राप्त था। केन्द्रीय शासन के अधीन वदेशिक सम्बन्ध, विदेशी व्यापार, सेना, नौसेना, चुगी, एक्साइज डयूटी, ऋण लेना, रेल, नहर, डाक तार सेवाएँ, मुद्रा, बैंक, पेटेन्ट एव सर्वाधिकार, माप एव नाप, दीवानी एव फौजदारी सहिताएँ, उद्योगा का नियमन, न्यायिक व्यवस्था जैसे सामान्य विषय थ। केन्द्रीय विषया का सविधान म उल्लेख किया गया था लेकिन राज्या की शक्तियाँ अपरिमापित थी अर्थात् अमरिकी सघ की भाँति सघ की शक्तिया का उल्लेख कर दिया गया था और शेष शक्तियाँ राज्या को प्रदान की गयी थी। केन्द्रीय शासन के अधिकार विषया का प्रशासन राज्या के अधीन था। जमन सघ म प्रशा का विशेष प्रभाव था। प्रशा का वंशानुगत राजा ही जमन सघ का अध्यक्ष एव जमन सम्राट था। वह इंग्लैण्ड के राजा की भाँति वंशानुगत शासक होते हुए भी नाममात्र का शासक नही था। उसकी शक्तियाँ वास्तविक थी। वह सिद्धान्त एव व्यवहार दोनो म सर्वोच्च काय

पालिका अधिकारी या। अमेरिका, स्विटजरलण्ड तथा आस्ट्रेलिया के सघो मे उच्च सदना मे प्रत्येक घटक को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है लेकिन जमन सघ के 58 सदस्यी उच्च सदन बु डरट (Bundesrat) मे अकेले प्रशा को ही 17 स्थान प्राप्त थे। अपन पडोसी राज्या के मतो पर उसका एकाधिकार था। सेना, नौसेना तथा वित्तीय मामला से सम्ब धित सभी विधेयका को प्रशा अस्वीकृत करके अकेले ही निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था। उच्च सदन को ही सघ तथा राज्यो एव राज्यो के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादा का निणय करने के अधिकार प्रदान किये गये थे। अमेरिकी सघ म यह कतव्य सर्वोच्च यायालय को प्रदान किय गये हैं। इस सदन म प्रशा का स्पष्ट बहुमत था जिसके कारण इन मामलो म निष्पक्ष निणय कठिन था। जमन सघ की व्यवस्थापिका द्विसदनीय थी। निम्न सदन रीस्टाग (Reichstag) की शक्ति नाम-मात्र की थी। सविधान म सशोधन साधारण विधि पारित करने की प्रणाली से दोना सदनो के 2/3 बहुमत द्वारा ही सम्भव था।

स्ट्राग की दृष्टि म 1871 ई के जमन साम्राज्य का सघवाद अद्वितीय था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह सघ के घटका की स्वेच्छा का परिणाम था। कुछ ने तो कुछेक वर्षों तक प्रशा के नेतृत्व म गठित जमन कस्टम सघ की सदस्यता से प्राप्त आर्थिक लाभा का उपभोग भी किया था। सत्य तो यह है कि जमन राज्यो म राज-नीतिक सघ के निर्माण की इच्छा अपक्षाकृत कम थी अपितु बिस्माक के प्रयत्नो एव उसके दबाव ने उ ह प्रशा के नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया था।

वीमर जमन सविधान (Weimar Constitution) एव सघवाद

1871 ई के साम्राज्ञीय सविधान मे एकात्मक प्रवत्तियो का बाहुल्य था। वीमर सविधान द्वारा इस एकात्मक या के द्रीकरण की प्रवत्ति को और अग्रसर किया गया। वीमर सविधान म 18 घटका के लिए पहले सविधान की भाति 'राज्य' शब्द का प्रयोग न करके 'क्षेत्र' शब्द का प्रयोग किया गया था। प्रत्येक क्षेत्र के लिए गणत त्रीय सविधान निश्चित किया गया। स्मरणीय है कि प्रथम विश्व युद्ध के फलस्वरूप प्रशा की शक्ति समाप्त हो गयी थी। यही नही समस्त जमन राजवशा का भी अ त हो चुका था। अत एकात्मक राज्य की स्थापना के लिए तीव्र आ दोलन शुरू किया गया और पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात ही सघ के निर्माण का निश्चय किया गया।

इस नवीन सघ (वीमर सविधान के अ तगत) की के द्रीय सरकार पर्याप्त शक्तिशाली थी। 1871 ई के सविधान म राज्याध्यक्ष के स्थान पर जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति की व्यवस्था की गयी थी।

सघीय शासन की शक्तिया का उल्लेख अनुच्छेद 6 म किया गया था। इसक अनुसार वदशिक एव औपनिवेशिक मामला, सुरक्षा सेनाओ के सगठन एव अनुशासन, तार-डाक एव टेलीफोन के सचार-साधन, मुद्रा, सीमा-कर, आ तरिक व्यापार, राष्ट्रीयता, आव्रजन, बहिगमन, प्रत्यापण आदि विषय सघीय विषय थे। अनुच्छेद 7 क अधीन कुछ विषया मे राज्या एव सघीय शासन को समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त था। अनुच्छद

12 के अनुसार यह व्यवस्था थी कि "सघीय शासन अपनी विधायी शक्ति का जहाँ प्रयोग नही करता वहा राज्य उसका प्रयोग करेंगे।" परन्तु अनुच्छेद 6 म उल्लिखित सघीय शासन की विधायी शक्तिया पर अनुच्छेद 12 लागू नही होता था। राज्य द्वारा पारित विधिया की तुलना मे सघीय विधियाँ अधिक मान्य थी और राज्य विधि एव सघीय-विधि मे विवाद अथवा असगति होने पर सर्वोच्च न्यायालय का निणय अन्तिम होता था अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय को सघीय विधिया की व्याख्या का अधिकार प्रदान किया गया था।

1871 ई के सविधान की भाति द्वितीय सदन रीचसरट (Reichsrat) को केन्द्र एव राज्या सम्बन्धी विवादो म निणय का अधिकार नही था अपितु इस हेतु सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गयी थी। उस विधान की व्याख्या का अधिकार प्राप्त था। नवीन सविधान के अधीन द्वितीय सदन की शक्तियाँ पर्याप्तत कम थी। निम्न सदन रीस्टाग वास्तविक विधायी सदन था। द्वितीय सदन रीचसरेट म अमेरिका एव आस्ट्रेलिया की भाति समान सख्या मे सदस्या के निर्वाचन की व्यवस्था नही की गयी थी।

प्रत्यक राज्य अपने क्षेत्र मे स्वायत्त सम्पन्न था। उन्ह अपने सविधान के निर्माण की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। परन्तु यह स्वतन्त्रता नाममात्र की थी क्याकि यदि कोई 'क्षेत्र' राष्ट्रीय सविधान या विधि द्वारा निर्धारित किसी दायित्व का सम्पादित करने म असफल रहता था तो राष्ट्रपति को सेना की सहायता से उन्ह क्रियान्वित कराने का अधिकार प्राप्त था (अनुच्छेद 48)। क्षेत्रा को व्यवहार मे कोई स्वायत्तता प्राप्त नही थी।

वीमर सविधान म जनमत सग्रह का भी प्रावधान था। सामान्य विधि या सवैधानिक सशोधन के सन्दर्भ मे जनता एव शासन को जनमत-सग्रह की माग करने का अधिकार प्रदान किया गया था।

स्ट्राग[60] के अनुसार 'जमनी के वीमर सविधान म सघवाद की तीन प्रमुख विशेषताएँ क्रमश सविधान की सर्वोच्चता, शक्तियो का विभाजन एव शक्तियो को विभाजित करने वाली सत्ताओ के मध्य विवादावस्था म व्याख्या करने के लिए न्यायालय विद्यमान था। फिर भी जमनी की (इस) सघीय व्यवस्था की अनोखी विशेषताएँ थी।' प्रथम, शक्तियो के पृथक विभाजन के स्थान पर त्रिसूत्री विभाजन था। एक सूची का सम्बन्ध सघीय सत्ता से था, दूसरे म उन विषया का उल्लेख था जिन्ह सघीय सत्ता क्षेत्रा के साथ-साथ उपभोग करती थी और तीसरे प्रकार के विषय उल्लिखित नही थे किन्तु इस मामला म भी सघीय विधि राज्य की विधि की अपेक्षा मान्य थी। द्वितीय उच्च सदन का सगठन जनसख्या के आधार पर किया गया था जिसके फलस्वरूप प्रशा का बवेरिया की तुलना म दुगुनी सदस्यता प्राप्त थी। तृतीय, राष्ट्रपति अमरिका की भाँति प्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित होता था। वह कनाडा एव आस्ट्रेलिया के मघा की

---

60 Strong, C F *op cit*, p 126

भाति मन्त्रिमण्डल के माध्यम स काय करता था परन्तु अमेरिका के विपरीत व्यवस्था पिका के प्रति उत्तरदायी था ।

नाजी उत्थान और जमन सघवाद

हिटलर के उत्थान और शक्ति म आने के पश्चात अर्थात तृतीय रीक (Third Reich) के अन्तगत 'क्षेत्र' (Landers) 'प्रशासनिक इकाई' मात्र बनकर रह गये थे। दी यूनीफिकेशन एक्ट (The Unification Act) 1933 ई के द्वारा इन क्षेत्रो का शासन गवनरो को प्रदान कर दिया गया था जो हिटलर के प्रति उत्तरदायी होते थे। गवनरो को हिटलर के द्वारा नियुक्त अथवा पदच्युत किया जाता था। फरवरी 1934 ई के एक आदश के द्वारा राज्या की पृथक नागरिक्ता भी समाप्त कर दी गयी थी। एक आदेश के द्वारा 'क्षेत्रा' को जो प्रभुत्व सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे व भी 'रीक' को हस्तान्तरित कर दिये गये थे। राज्य विधानमण्डलो को विघटित कर दिया गया और मन्त्रिमण्डलो को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के अधीन कर दिया गया था। केन्द्रीय शासन के निर्देश पर राज्यो के गवनरा द्वारा विधियो को जारी किया जाता था। गृह मन्त्री राज्यो पर नियन्त्रण रखता था। हिटलर के अधीन जमनी एकीकृत एव केन्द्रकृत राज्य मे परिवर्तित हो गया था। प्रशासकीय क्षेत्रो का पुन निर्माण भौगोलिक आधार पर किया गया था। रीचसरेट (Reichsrat)—क्षेत्रा के प्रतिनिधि सदन—द्वितीय सदन—को विघटित कर दिया गया था।

द्वितीय विश्व युद्धोपरान्त जमनी मे सघवाद

नाजी जमनी के पराजित हान पर विजेता राष्ट्रा ने जमनी म राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना के लिए वीमर सविधान आधार को मानते हुए विचार विमश प्रारम्भ किया था। चारा बडी शक्तिया जमनी म सघीय व्यवस्था की स्थापना के पक्ष मे थी। जमनी की उदारवादी जनता भी सघात्मक शासन की समथक थी। पश्चिमी राष्ट्रो (ग्रेट ब्रिटेन फ्रास एव सयुक्त राज्य अमेरिका) ने एक ढीले ढाले सघ के निमाण का समथन किया था। सोवियत रूस को यह सन्देह था कि सशक्त केन्द्रीय शासन भविष्य मे किसी विस्मार्क या हिटलर के उत्थान के लिए माग प्रशस्त कर सकता है।[61] जमनी मे सरकार की शीघ्र स्थापना के लिए पश्चिमी राष्ट्रो न सोवियत रूस स पृथक रहकर काय किया और सितम्बर 1948 ई म बोन स्थित जमन सविधान सभा के विचाराथ जमन राज्या के सघ के सविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया। जमन सघीय गणराज्य (पश्चिमी जमनी) का जन्म सितम्बर 1949 ई म हुआ। इसके सविधान को जमनी का आधारभूत कानून (Basic Law) कहते हैं। इसे बान सविधान (Bonn Constitution) भी कहत ह।

पश्चिमी जमनी म 11 सदस्य राज्य (Lander) हैं जिसम कुल जमन सख्या का तीन चौथाई भाग निवास करता है। 'बोन सविधान द्वारा दा सूचिया—सघीय सूची

61 Strong, C F *op cit*, p 127

एव समवर्ती सूची—का उल्लेख किया गया ह । सघीय सूची क विषया पर मघाय शासन को विधि निमाण का पूण अधिकार प्राप्त है। यह विषय हैं वदशिक मामले, सघीय नागरिकता, आवागमन क साधन, पारपत्र, वहिगमन, प्रत्यापण, मुद्रा, मम्पति, माप, एव नाप, सीमा-कर, रल, हवाइ यातायात, डाक एव सचार-व्यवस्था आदि।[62] दूसरा सूची म केन्द्र एव राज्या का समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त है । इस सूची म विधि, सामाजिक बीमा, आर्थिक नियमन, खाद्य-पदार्थो का यातायात, समुद्री एव तटीय जहाजरानी, श्रमिक कानून, वनानिक शोध, सडक एव मोटर यातायात आदि विषया का उल्लेख है । सविधान क अनुसार जिन विषया पर सघ का विधि निमाण का अधिकार नही दिया गया ह, उनके सम्बन्ध म राज्या (Landers) का विधि निमाण का अधिकार प्राप्त है अथात् अवशिष्ट शक्तियाँ राज्या का प्राप्त ह । इसक अतिरिक्त, सघीय विषया पर भी घटका की सरकारा का विधि निमाण क अधिकार प्राप्त हो सकत हैं, यदि सघीय सत्ता स्पष्ट रूप म उन्ह तत्सम्बन्धी अधिकार प्रदान कर ।

विदेश सवा, सघीय वित्त, सघीय रलव, सघीय डाक-तार सवाएँ एव जलाय जहाजरानी सम्बन्धी विषया पर सघीय प्रशासन का सीधा नियन्त्रण है । सीमा-कर, एकाधिकारा, एक्साइज करा, यातायात एव सम्पत्ति-करा स होन वाली आय सघीय सरकार के क्षेत्राधिकार म है । सघीय शासन का विधि बनाकर आय-कर एव निगम-कर स होने वाली आय म स अपन व्यय की पूर्ति हतु धनराशि की माँग करन का अधिकार है । समवर्ती सूची लम्बी है । सघीय शासन को दश की विधिक एव आर्थिक एकता के लिए इन पर विधि बनाने की व्यापक शक्ति प्राप्त है । अत किसी ऐस विषय की कल्पना करना कठिन है जिस पर सघीय शासन विधि निमाण न कर सक ।

सघीय शासन एव राज्यो म अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी विवादा का निणय करन हेतु सविधान द्वारा सघीय सवैधानिक न्यायालय (Federal Constitutional Court) की स्थापना की गयी ह । इस सविधान की व्याख्या का भी अधिकार है ।

'बोन' सविधान बहुत कुछ वीमर सविधान पर आधारित है । परन्तु वीमर सविधान की अपेक्षा इसम केन्द्रीकरण कम है । सविधान मे सघीय केन्द्रीकरण के विपरीत एक यह व्यवस्था है कि विधिक प्रस्ताव सघीय सभा (Federal Council) द्वारा मान्य होना चाहिए। स्ट्राग पश्चिमी जमन सघीय गणराज्य को विशुद्ध सघीय राज्य मानता है क्याकि उसम सविधान की सर्वोच्चता, शक्तियो के विभाजन तथा सघीय एव राज्या के अधिकारिया के विवादो को हल करने के हेतु एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था है ।[63]

पाकिस्तान एव सघवाद

भारत क विभाजन के फलस्वरूप 15 अगस्त, 1947 ई का पाकिस्तान का जन्म हुआ था । नवीन सविधान के बनने तक भारत शासन अधिनियम (1935) को

62 Section 73
63 Strong, C F *op cit* p 128

ही पाकिस्तान के सविधान की मान्यता दी गयी थी। पाकिस्तान का नवीन सविधान 29 फरवरी, 1956 ई को सविधान सभा द्वारा स्वीकार किया गया और 23 मार्च 1956 ई से लागू हुआ। 7 अक्टूबर 1958 ई तक यह सविधान प्रभावी रहा और इसी दिन अयूब खा ने इसे समाप्त घोषित करते हुए सैनिक तानाशाही की स्थापना की थी। यह सविधान आज भी पर्याप्त महत्व का है क्योंकि यही दैनिक प्रशासन का आधार है और समस्त भावी सविधानो को स्वाभाविक रूप से प्रभावित भी करता रहा है।

पाकिस्तान म सघीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी। पाकिस्तानी सघ म दो प्रान्त थे—पूर्वी पाकिस्तान[64] एव पश्चिमी पाकिस्तान। केन्द्र एव राज्यो म शक्तियो को विभाजित किया गया था। शक्तियो के विभाजन म सयुक्त राज्य अमेरिका, स्विटजरलण्ड, आस्ट्रेलिया कनाडा एव भारत म प्रचलित शक्तियो के विभाजन के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी थी। कनाडा एव भारत की भाँति सघीय एव राज्यो की शक्तियो का उल्लेख तीन सूचियो—सघीय, प्रान्तीय एव समवर्ती—म किया गया था। अवशिष्ट शक्तिया सयुक्त राज्य अमरिका, स्विटजरलण्ड एव आस्ट्रेलिया की भाति प्रान्तो को प्रदान की गयी थी।

सघीय सूची[65] म 30 विषय थे जैसे—सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, नागरिकता, अन्त प्रान्तीय एव अन्य देशो के साथ व्यापार एव वाणिज्य मुद्रा, आर्थिक नियोजन एव राष्ट्रीय आर्थिक समन्वय, सार्वजनिक ऋण एव जहाजरानी, डाक, जनगणना, बीमा माप एव भार, निर्वाचन आदि।

समवर्ती सूची म 19 विषय थ। इनम प्रमुख थे—दीवानी एव फौजदारी विधिया, वैज्ञानिक एव औद्योगिक शोध, मूल्य नियन्त्रण श्रमिक एव स्वामियो के सम्बन्ध तथा आर्थिक एव सामाजिक नियोजन।

प्रान्तीय सूची म 94 विषय थे। उदाहरणार्थ—शान्ति एव व्यवस्था, न्याय-प्रशासन, जेल, भू-राजस्व, कृषि, स्थानीय शासन, शिक्षा, रेलवे एव उद्योग धन्धे।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका को सघीय सूची के विषयो म सम्पूर्ण पाकिस्तान या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया था।[66] इसी अनुच्छेद के अधीन यह व्यवस्था भी की गयी थी कि पाकिस्तान के राष्ट्रीय हितो की रक्षा एव सुरक्षा, आर्थिक एव वित्तीय स्थिरता तथा समन्वय एव नियोजन हेतु केन्द्रीय व्यवस्थापिका का सघीय सूची के अतिरिक्त अन्य विषयो पर भी विधि बनाने का अधिकार होगा। किसी प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा प्रस्ताव पारित करके केन्द्रीय

---

64 पूर्वी पाकिस्तान स्वतन्त्र हो गया है और अब बगला देश क रूप म पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य है।
65 Third Schedule of the Constitution of Pakistan
66 अनुच्छेद 131

व्यवस्थापिका का किसी विषय के नियमन का अधिकार प्रदान किये जाने पर केन्द्रीय व्यवस्थापिका उस सम्बन्ध में विधि निर्माण कर सकती थी। परन्तु ऐसी विधियों को प्रान्तीय व्यवस्थापिकाएँ संशोधित या समाप्त भी कर सकती थी। राजधानी क्षेत्रों—इस्लामाबाद एवं ढाका—के लिए केन्द्रीय व्यवस्थापिका को संघीय विषयों के अतिरिक्त सभी विषयों में विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त था।

समवर्ती विषयों सम्बन्धी विधियों में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधियों के सम्बन्ध में विरोध एवं असंगति की दशा में केन्द्रीय विधि मान्य होती थी और प्रान्तीय विधि उस सीमा तक अवैध होती थी जहाँ तक वह केन्द्रीय विधि के विरुद्ध होती थी।[67] किसी व्यवस्थापिका को विधि-निर्माण का अधिकार है या नहीं, इसका निर्णय करने का अधिकार स्वयं व्यवस्थापिका को था और तत्सम्बन्धी निर्णय को इस आधार पर कि सदन को उक्त विधि के निर्माण का अधिकार नहीं था, चुनौती नहीं दी जा सकती थी।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका का किसी सन्धि या समझौते को क्रियान्वित करने हेतु विधि बनाने का अधिकार था, भले ही वह विधि किसी प्रान्तीय विषय से ही सम्बन्धित क्यों न हो। परन्तु ऐसी विधि के निर्माण से पूर्व केन्द्र को प्रान्तीय गवर्नरों से पूर्व परामर्श करना आवश्यक था।

कार्यपालिका शक्ति विधायी शक्ति की सहगामी (co-extensive) थी अर्थात जो विधि जिस विधानमण्डल द्वारा निर्मित की जाती थी, उसी कार्यपालिका द्वारा उसे क्रियान्वित भी किया जाता था। परन्तु संविधान द्वारा निम्नलिखित अवस्थाओं में प्रशासनिक क्षेत्र के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गयी थी कि प्रान्त संविधान के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते थे और न संघ की कार्यपालिका शक्ति को क्रियान्वित करने में बाधक ही हो सकते थे।

(1) बाह्य आक्रमण एवं आन्तरिक अशान्ति से प्रान्तों की रक्षा करना संघीय शासन का कर्तव्य था। इसके अतिरिक्त संघीय शासन व्यवस्था का यह भी दायित्व था कि प्रान्तीय शासन संकट-काल के अतिरिक्त संविधान के अनुसार संचालित होता रहे।

(2) प्रान्तीय कार्यपालिका शक्ति को इस प्रकार प्रयुक्त किये जाने की व्यवस्था थी कि संघीय अधिनियमों का पालन होता रहे और संघ की कार्यपालिका शक्ति के क्रियान्वयन में कोई बाधा भी उत्पन्न न हो।

केन्द्रीय कार्यपालिका को उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए प्रान्तों को आवश्यक निर्देश देने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय कार्यपालिका को प्रान्तों को राष्ट्रीय एवं सैनिक महत्व के राजमार्गों के निर्माण एवं निरीक्षण, प्रान्तों में रेलवे एवं रेलवे मार्ग की सुरक्षा, पाकिस्तान या उसके किसी भाग में शान्ति एवं आर्थिक जीवन के लिए

---

67 अनुच्छेद 134

सकट उत्पन्न होने पर प्रान्तीय कायपालिका शक्ति के प्रयोग एव समवर्ती सूची सम्बन्धी किसी विधि को प्रान्त म क्रियान्वयन के सम्बन्ध म निर्देश दन का अधिकार था।

प्रान्ता को केन्द्रीय शासन की अनुमति के बिना विदेशा स ऋण लेन का अधिकार प्राप्त नही था।[68] केन्द्रीय व्यवस्थापिका को प्रान्तो को आर्थिक अनुदान प्रदान करने का अधिकार था।[69] सविधान द्वारा 'राष्ट्रीय वित्त आयोग' की स्थापना की गयी थी। आयाग राष्ट्रपति का आय कर, निगम-कर, बिक्री एव खरीद-कर, जूट एव कपास पर आयत-कर एव राष्ट्रपति द्वारा घोषित अन्य किसी कर स होन वाली आय का प्रान्ता एव केन्द्र म वितरण करन के सम्बन्ध म परामश देता था।

पाकिस्तान के सर्वोच्च न्यायालय का केन्द्रीय एव प्रान्तीय शासना के मध्य *उत्पन्न हान वाले विवादा म मौलिक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया था।*

सविधान म सशोधन केन्द्रीय व्यवस्थापिका द्वारा ही सम्भव था। सवैधानिक सशोधन राष्ट्रीय सभा द्वारा कुल सदस्या के दा तिहाई बहुमत द्वारा पारित होने पर राष्ट्रपति की स्वीकृति हतु रखा जाता था और राष्ट्रपति का सवधानिक सशाधन को उसके समक्ष प्रस्तुत हाने के तीस दिन के भीतर स्वीकृत या अस्वीकृत करने या राष्ट्रीय सभा को पुनर्विचार हेतु लौटाने का अधिकार था। सशोधन के राष्ट्रपति द्वारा अस्वीकृत किय जाने की दशा म राष्ट्रीय सभा का उस पर पुनर्विचार का अधिकार था। सशाधन के सशोधन सहित अथवा बिना सशोधन के कुल सदस्या के तीन चौथाई बहुमत स पारित किय जान पर उस पुन राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किय जाने की आवश्यकता नही हाती थी। यदि राष्ट्रपति उस पुन अस्वीकृत करता था अथवा कुछ सशोधन प्रस्तावित करता था और राष्ट्रीय सभा उस पुन 2/3 या 3/4 बहुमत से सशोधन या बिना सशोधन के पारित करके राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करती थी तो राष्ट्रपति को 10 दिन के भीतर सशाधन को स्वीकृत करन या जनमत सग्रह के लिए प्रचारित करन का अधिकार प्रदान किया गया था। प्रान्तो की सीमाओ म सशोधन सम्बन्धित प्रान्तीय सभा के 2/3 बहुमत की स्वीकृति के बिना सम्भव नही था।[70]

राष्ट्रपति को वाह्य आक्रमण या आन्तरिक विद्राह अथवा आर्थिक सकट या उसकी सम्भावना पर पाकिस्तान या उसके किसी भाग म सकट-काल की घोषणा करन का अधिकार प्राप्त था। इसके फलस्वरूप केन्द्रीय व्यवस्थापिका को सभी विषयो पर विधि बनान एव अध्यादेश जारी करने का भी अधिकार प्राप्त हा जाता था।

पाकिस्तान के सघीय शासन को कनाडा एव भारत के सघीय नमून पर काफी शक्तिशाली बनाया गया था। भारत शासन अधिनियम (1935) म केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाकिस्तान की सघीय व्यवस्था में स्पष्ट थी। सघवाद की तीन प्रमुख विशेष

---

68 अनुच्छेद 14
69 अनुच्छेद 138
70 अनुच्छेद 210

ताएँ—सविधान की सर्वोच्चता, शक्तिया का विभाजन और केद्र एव प्रातो म विवाद की स्थिति मे निणय दने के लिए सर्वोच्च यायालय—पाकिस्तानी सघीय व्यवस्था म थी। परन्तु पाकिस्तान की अस्थिर आतरिक राजनीति, अतरराष्ट्रीय राजनीति एव प्रातीयता की भावना केद्रीकरण के लिए उत्तरदायी थी। प्रातीयता एव क्षत्रीयता की भावना भी पाकिस्तान म काफी उग्र थी। पूर्वी पाकिस्तान (अब बगला देश) ने प्रारम्भ से ही पश्चिमी पाकिस्तान के प्रभुत्व का विरोध किया था। फलस्वरूप दो राजधानियो—ढाका एव इस्लामाबाद—की व्यवस्था की गयी थी। ढाका को पूर्वी पाकिस्तान की दूसरी राजधानी बनाया गया था। बगाली एव उर्दू को राष्ट्रीय भाषा बनाया गया। पूर्वी पाकिस्तान को राष्ट्रीय सभा म प्रतिनिधित्व दिया गया था और केद्रीय शासन के सभी क्षेत्रो म जहा तक सम्भव हो सके दोना प्रातो की दृष्टि स समानता की व्यवस्था की गयी थी।[71] परन्तु बगाली राष्ट्रीयता की भावना को दबाया न जा सका और मुस्लिम साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्मित पाकिस्तानी सघ दीघजीवी न हो सका। पूर्वी पाकिस्तान की उपेक्षा एव आर्थिक शोषण ने उस प्रदश के बगालियो मे बिना किसी भेदभाव के सास्कृतिक एव भाषायी एकता उत्पन्न की जो साम्प्रदायिक सुदृढता (communal solidarity) से कही अधिक दृढ प्रमाणित हुई। पूर्वी पाकिस्तान ने स्वतन्त्रता के लिए चिरस्मरणीय सघष किया और वह बगला देश के रूप मे एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया।

यूगोस्लाविया की सघीय व्यवस्था

यूगोस्लाविया सघीय राज्य है। समाजवादी देश होने के कारण यूगोस्लाविया की सघीय व्यवस्था पश्चिमी लोकतन्त्रीय सघीय देशो की व्यवस्था से भिन्न है। यूगोस्लाविया के सघ मे 6 इकाइया हैं।[72] इन्ह सघीय समाजवादी गणराज्य की सज्ञा दी जाती है। यूगोस्लाविया म सर्ब, क्रोट स्लोवाक, मेसीडोनियन एव मोन्टोनीग्रो नामक पाच जातियाँ निवास करती है। इसके अतिरिक्त, तुर्क, हगेरियन, स्लोवाक, बल्गेरियन, चैक एव इटालियन भी पाय जात है। अत यूगोस्लाविया बहुराष्ट्रजातीय राज्य (multi national state) है। सब जातिया की भाषा एक सी है अत सभी स्लाव हैं। यह सभी राष्ट्रजातिया (nationalities) वहद यूगोस्लाव समाज की सदस्य है, यद्यपि विभिन्न एतिहासिक परिस्थितियो म एव विभिन्न राष्ट्रा म इनका विकास हुआ है। यूगोस्लाविया म तीन प्रमुख धर्मावलम्बी है। इस्लाम के अतिरिक्त दो ईसाई सम्प्र

---

71 अनुच्छेद 16

72 सर्बिया (Servia), क्रोटिया (Croatia) बोसनिया हर्जेगोविना (Bosnia Herzegovina) स्लोवेनिया (Slovenia), मसीडोनिया (Macedonia), एव मान्टोनीग्रो (Montenegro)। सर्बिया के गणराज्य म वोजवाडिना (Vojvodina) एव कोसोवो मितोहिया (Kosovo Metohia) नामक दो स्वशासित प्रात है।

दाय है। 1929 ई म सब, क्रोट एव स्लावा न अपन राज्य को यूगोस्लाविया मे परिवर्तित कर दिया था। इसी वष आतरिक समस्याओ के कारण राजा अलेक्जेण्डर प्रथम ने ससद का भग करके निरकुश शासन की स्थापना कर दी लेकिन 1934 ई म राजा की हत्या कर दी गयी। 1934 ई से 1941 ई तक रीजेन्सी का शासन रहा। युद्ध काल म जमनी एव इटली के दबाव म आकर यूगोस्लाविया ने धुरी राष्ट्रा के साथ एक अपमानजनक सधि की थी जिसके दो दिन पश्चात अर्थात 27 माच, 1941 ई को साम्यवादी दल और उसके नेता टीटो के नेतृत्व म जनता न क्राति प्रारम्भ कर दी थी। देश की रक्षा को साम्यवादी दल ने एकमात्र लक्ष्य घोषित किया था। दीर्घकालीन मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। जमनी के पराजित होने पर 7 माच, 1945 ई को माशल टीटो की अध्यक्षता म नवीन सरकार की स्थापना हुई और सविधान सभा की स्थापना नवम्बर 1945 ई म की गयी। यूगोस्लाविया का प्रथम सविधान 31 जनवरी, 1946 ई को लागू हुआ। द्वितीय को 1953 ई म एव तृतीय को 7 अप्रैल, 1963 ई को स्वीकार किया गया था। तृतीय सविधान मे यूगोस्लाविया का नाम समाजवादी सघीय गणराज्य कर दिया गया।

यूगास्लाविया सघीय गणराज्य है। राष्ट्रजातिया को अपनी मातृभाषा के प्रयोग की स्वतन्त्रता है। सघीय राज्य होन के साथ यूगोस्लाविया श्रमिका का एक सामाजिक राजनीतिक समुदाय भी है। 1953 ई के सविधान द्वारा एकता पर अधिक बल दिया गया था और गणराज्या के अधिकारो को सविधान या विधि द्वारा सीमित नही किया गया है। साथ ही साथ सविधान द्वारा गणराज्या के सुनिश्चित अधिकारो एव दायित्वा की स्पष्ट व्याख्या की गयी है। प्रत्येक गणराज्य स्वायत्त प्रान्तो, जिलो एव कम्यूना म विभाजित है। सघीय सविधान की अपेक्षा प्रत्येक गणराज्य का अपना सविधान है। गणतन्त्रीय शासनो द्वारा अपने अधिकारो एव कतव्या का सघीय सविधान, सघीय कानूना एव अपन सविधान के अन्तगत उपभाग किया जाता है। प्रत्येक गणराज्य को समान स्वतन्त्रता प्राप्त है। प्रत्येक व्यक्ति एव प्रत्येक राष्ट्रजाति को स्वतन्त्र एव स्वविकास क अधिकार है। इसके साथ साथ सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सामान्य हितो के प्रश्ना पर सभी गणराज्य परस्पर पूण सहयोग करते है।

सम्पूण समाज से सम्बन्धित काया का ही सघीय शासन को सापा गया है। शेष सभी विषय गणराज्या एव स्वायत्त प्रान्ता का प्रदान किये गये हैं। सघीय शासन को निम्न मामलो म पूण क्षेत्राधिकार प्राप्त है।[3] यूगोस्लाविया की स्वतन्त्रता एव सीमाआ की रक्षा, सेनाआ का सगठन एव राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रबन्ध सविधान की सुरक्षा की व्यवस्था वैदेशिक सम्बन्ध, सन्धिया, युद्ध तथा शान्ति, नागरिकता, सघीय सगठन और दायित्व का सम्पादन एव सघीय विधिया का क्रियान्वयन।

सघ का निम्नलिखित मामला से सम्बन्धित व्यापक विधियो के निमाण का

---

73 अनुच्छेद 160, भाग 2, अध्याय 8

अधिकार भी दिया गया है [74] सामाजिक सम्पत्ति, सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार, मुद्रा, चुगी, बर्किंग, भार एव नाप, पेटेण्ट, कॉपीराइट, यातायात नियम, मतदान, फौजदारी विधि, सावजनिक सुरक्षा, अस्त्र शस्त्र, व्यापारिक मामला का गठन, नागरिक सुरक्षा, प्रशासकीय एव न्यायिक विवाद, आदि ।

व्यापारिक एव श्रमिक सगठना, श्रमिक एव औद्योगिक सुरक्षा, सावजनिक श्रम, वजट वन, जलीय यातायात, सामाजिक नियोजन, यातायात, प्रस, नागरिक समुदाया आदि के सम्बन्ध म मूल विधिया के निर्माण का भी अधिकार सघ को है। सभी मामला स सम्बन्धित सामान्य विधिया का निर्माण भी सघीय क्षेत्राधिकार के अधीन है।

सघीय सभा (Federal Assembly) सत्ता का सर्वोच्च अग है। सघीय शक्तिया एव अधिकारो का इसी के द्वारा प्रयोग किया जाता है। सघीय सभा को प्रत्यक्षत सविधान म सशोधन करने, सघीय विधियो को पारित करन, जनमत-सग्रह करान, सघीय विधिया की व्याख्या करने एव क्षमादान करने का अधिकार है। सघीय सभा द्वारा वजट (वार्षिक आय-व्यय विवरण) एव यूगोस्लाविया के समाज की योजना को भी स्वीकृत किया जाता हे। देश एव विदेश-नीति के मूल सिद्धान्ता को भी यही सभा निर्धारित करती है। इस सभा को राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सघीय कायकारिणी परिषद के सदस्यो तथा यायाधीशा को निर्वाचित एव पदच्युत करन क भी अधिकार है। इसके पाच सदन है राष्ट्र-जातीय सदन,[75] आर्थिक सदन, शिक्षा एव सास्कृतिक सदन कल्याण एव स्वास्थ्य सदन एव राजनीतिक सगठन सदन। राष्ट्र-जातीय सदन के अतिरिक्त प्रत्यक सदन की सदस्य सख्या 120 है।

'राष्ट्र-जातीय सदन' (Chamber of Nationalities) गणराज्या का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक गणराज्य द्वारा इस सदन के लिए 20 सदस्यो को एव स्वायत्त प्रान्त द्वारा 10 सदस्या को अपनी सभाओ द्वारा निर्वाचित किया जाता है। स्मरणीय है कि आठवे सवधानिक सशाधन क पूव सघीय सदन (Federal Chamber) के अतिरिक्ति राष्ट्र जातीय सदन का भी अस्तित्व था। यूगोस्लाविया की सघीय सभा के विभिन्न सदन अपन स सम्बन्धित विषया पर विधिया का निर्माण करते हैं। सभी सदना की शक्तियाँ समान हैं। राष्ट्र जातीय सदन' को गणराज्या की समानता, व्यक्तियो एव अल्पसख्यका तथा गणराज्य के सवधानिक अधिकारा पर विचार करने का एकाधिकार प्राप्त था। फेडरल चेम्बर—सघीय सदन—की सभी शक्तियाँ राष्ट्र जातीय सदन को हस्तान्तरित कर दी गयी हैं। अत राष्ट्रजातीय सदन की तुलना हम अन्य सघीय देशा के द्वितीय सदना स कर सकत है। इस घटका का प्रतिनिधि

74 अनुच्छेद 161
75 आठवें सवधानिक सशाधन द्वारा यह परिवतन हुआ है। इससे पूव राष्ट्र-जातीय सदन को सघीय सदन कहत थ।

मदन मान सकते है । यह सदन इगलैण्ड की लॉडसभा एव भारत की राज्यसभा से अधिक शक्तिशाली है क्योकि यूगोस्लाविया म सभी सदनो को समान शक्तिया प्राप्त है ।

12वे सशोधन द्वारा यूगोस्लाविया के सविधान मे सशोधन की प्रणाली मे पूण परिवतन कर दिया गया है । पहले सघीय सभा एव राष्ट्रजातीय सभा द्वारा 2/3 बहुमत स सशोधन प्रस्ताव पारित करन पर एव अय सदना द्वारा उसका समर्थन किये जाने पर सविधान म सशोधन प्रभावी होता था । अ य तीन सदनो द्वारा सशोधन के सम्ब ध मे असहमत हान पर जनमत सग्रह की व्यवस्था थी । 12वे सशोधन द्वारा सशाधन प्रणाली सशोधित कर दी गयी है जिसके फलस्वरूप वह पर्याप्त जटिल हो गयी है ।[76]

नवीन सशोधन प्रणाली के अतगत—

(1) जनमत सग्रह की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है ।

(2) सविधान म सशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार 30 सघीय सदस्यो, एक सदन, गणराज्यो के राष्ट्रपति एव सघीय कायकारिणी परिषद को प्रदान किया गया है ।

(3) सशोधन क सम्ब ध मे प्रत्येक सदन के द्वारा पृथक रूप से निणय लेने की व्यवस्था की गयी है ।

(4) राष्ट्रजातीय सदन एव दो अय सदनो द्वारा सशोधन प्रस्ताव 2/3 बहुमत स स्वीकार कर लिय जाने पर स्वीकृत माना जाता है । यदि निरतर दो विवादो के पश्चात भी राष्ट्रजातीय सदन एव अय दो सदन किसी निणय पर नही पहुँचते तो आगामी एक वप तक सशोधन पर पुन विचार नही हो सकता ।

(5) सवैधानिक सशाधन सम्ब धी प्रस्ताव स्वीकृत होने पर राष्ट्रजातीय सदन द्वारा प्रस्ताव तैयार किया जाता है और उसे जनता के समक्ष विचाराथ प्रस्तुत किया जाता है । सशोधन पर श्रमिका के सदन एव सामाजिक राजनीतिक सदन द्वारा [illegible] पश्चात विचार होता है और दोना सदन अपना मत देते है । तत्पश्चात राष्ट्रजातीय सदन को सविधान म सशोधन का प्रस्ताव रखने का अधिकार है । यदि [illegible] सशोधन पर मतैक्य नही होता ता सभी सदना की सयुक्त समिति का निमाण [illegible] जाता है । यदि उसका निणय माय नही होता तो राष्ट्रजातीय सदन [illegible] सदनो द्वारा सशोधन स्वीकृत होने पर पारित माना जाता ह ।

उपर्युक्त सशोधन प्रणाली म सशोधन के लिए गणराज्या [illegible] सदन—राष्ट्रजातीय सदन—की स्वीकृति अनिवाय है । यह [illegible] अवस्था है ।

---

76 Amendment XII, Quoted Constitution of [illegible] 113

स्ट्राग के अनुसार यूगोस्लाविया रूस की भाँति एक समाजवादी देश है परन्तु उसके सविधान का सघीय स्वरूप इस बात का रोचक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार नवीन उद्देश्यो के लिए पुराने तरीको का प्रयोग किया जा सकता है।[77] यूगोस्लाविया म सघीय शासन के तीनो तत्व—सविधान की सर्वोच्चता, शक्ति-विभाजन एव सवैधानिक न्यायालय—पाये जाते हैं। परन्तु एकदलीय व्यवस्था के कारण सघीय शासन बहुत कुछ एकात्मक बन गया है। साम्यवादी दल का एकछत्र राज्य एव मार्शल टीटो साम्यवादी दल का एकछत्र नेता है। सभी सवैधानिक व्यवस्थाएँ व्यवहार म साम्यवादी दल की लोकतन्त्रीय केन्द्रीकरण की नीति पर आधारित हैं जिसका सहज अर्थ यह है कि वहाँ सत्ता का पूर्ण केन्द्रीकरण है और दल के चोटी के नेताओ म सत्ता का अधिष्ठान है। यूगोस्लाविया सोवियत रूस की भाँति का राजनीतिक सघ है जिसमे घटको को पर्याप्त सास्कृतिक स्वायत्तता प्राप्त है। यह पश्चिमी ढग का राजनीतिक सघ नही है अपितु एक सास्कृतिक सघ है।

भारतीय सघीय व्यवस्था

भारत का नवीन सविधान सघीय शासन की स्थापना करता है। भारत जैसे विशाल, बहुभाषी, भिन्न भिन्न सस्कृतियो और विभिन्न धर्मानुयायियो एव आर्थिक क्षेत्रो वाले देश के लिए सघीय व्यवस्था ही एकमात्र उपयुक्त व्यवस्था हो सकती है। सविधान निर्माताओ ने इस सत्य के अनुसार ही सघीय व्यवस्था की स्थापना की है। भारतीय सघीय व्यवस्था का विकास विशेष परिस्थितियो म हुआ है। भारत म सघीय शासन का विचार 1919 ई से बहुत अधिक पुराना नही है। मोण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट मे इसका उल्लेख था।[78] लेकिन इससे पूर्व महाराजा गायकवाड ने लॉर्ड चेम्सफोर्ड को 1918 ई मे भावी सुधारो के रूप म सघीय शासन का सुझाव दिया था।[79] भारतीय विधान-परिषद के अध्यक्ष सर फ्रेडरिक ह्वाइट (Sir Frederick Whyte) एव सयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर मेलकोम हेली ने भारतीय राजनीति की समस्या के समाधान के रूप मे सघीय शासन की स्थापना का प्रस्ताव रखा था।[80] नेहरू कमेटी ने भी कुछ सन्देह व्यक्त करते हुए सघ शासन की स्थापना का सुझाव दिया था। नेहरू कमेटी ने अपने प्रतिवेदन म प्रान्तीय शासनो को पर्याप्त शक्ति प्रदान की थी परन्तु उन्हे केन्द्रीय नियन्त्रण से बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्रदान नही की थी।[81] साइमन कमीशन ने अपने प्रतिवेदन म ऐसी शासन-व्यवस्था के प्रारम्भ का सुझाव दिया था जिसकी परिणति भारत के वृहद् सघ म होती। परन्तु सघीय शासन का विचार गोलमेज सम्मेलन के दौरान ही ठोस रूप धारण कर सका था। देशी नरेशो ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन म

77 Strong, C F *op cit* p 130
78 Banerjee *Indian Constitutional Documents* Vol III p 225, fn 1
79 Document No 52 *Ibid* p 362
80 Sharma M P *The Government of Indian Republic* 1965, p 76
81 Pylee, M V *Constitutional Government in India*, 1965 p 91

सघीय शासन के विचार का समथन किया था। वडौदा के प्रतिनिधि[82] एव महाराजा वीकानेर ने सर तेज बहादुर सप्रू के सघीय व्यवस्था की स्थापना के विचार का समथन किया था।[83] महात्मा गाधी ने काग्रेस के दृष्टिकोण का उपस्थित करते हुए कहा था कि देश का भावी सविधान सघीय होना चाहिए तथा भारतीया के हित की सुरक्षा हेतु अवशिष्ट शक्तिया घटका म अधिष्ठित होनी चाहिए।[84] गोलमेज सम्मेलन के दौरान सघीय शासन के विचार का सहसा उदय हुआ था। बहुत से सदस्य उसके सैद्धान्तिक अथ एव परिणामो की कल्पना तक न कर सके थे। इसके अतिरिक्त, कुछ सदस्य सघीय शासन के प्रति अत्यधिक सन्देहशील थे। मुस्लिम लीग भी सघीय शासन के ही पक्ष मे थी परन्तु वे कमजोर सघीय शासन के समथक थे और उन्होने अवशिष्ट शक्तिया प्रान्ता को देन का समथन किया था।[8] सर मोहम्मद इकबाल ने मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय पद से भाषण देते हुए कहा था कि "स्वशासित भारत के लिए एकात्मक व्यवस्था उपयुक्त नही है।" अत उन्हाने सघीय शासन का समथन किया था।[86] भारतीय उदारवादी एव हिन्दू राष्ट्रवादी सघीय व्यवस्था के सम्बन्ध म नेहरू कमेटी के द्वारा व्यक्त विचारो स सहमत थे।[87]

गोलमेज सम्मेलनो का परिणाम भारत शासन अधिनियम, 1935 ई के रूप मे सामने आया है। स्मरणीय है कि 1935 ई के सविधान तक भारत म एकात्मक शासन था। सम्पूण सत्ता ब्रिटिश क्राउन मे अधिष्ठित थी और सपरिषद गवनर-जनरल क्राउन के नाम पर भारत का शासन चलाता था। भारत शासन अधिनियम, 1935 ई क द्वारा प्रान्तो म स्वशासन तथा केन्द्र मे ब्रिटिश भारत एव देशी रियासतो के सघ की व्यवस्था की गयी थी। 1935 ई के अधिनियम द्वारा व्यक्त सघीय व्यवस्था मे सघ शासन की तीन विशेषताएँ—लिखित सविधान, शक्तिया का विभाजन एव सर्वोच्च न्यायालय—क होते हुए भी सघीय शासन के सार—प्रान्तीय स्वायत्तता—का अभाव था। गवनर जनरल को विशेष शक्तिया एव अधिकार प्रदान किये गय थे। गवनर-जनरल को व्यवस्थापिका को भग करके सभी शक्तिया अपने हाथ म लेने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त, उसे सकटकालीन शक्तिया प्रदान की गयी थी जिनकी *तीव्र आलाचना की गयी। सघीय व्यवस्था को राष्ट्रीय एव साम्प्रदायिक नेताआ द्वारा* अस्वीकार कर दिया था। द्वितीय विश्व-युद्ध जनित परिस्थितियो एव देशी नरेशो के असहयोग के कारण इस क्रियान्वित नही किया जा सका।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात भारतीय राजनीतिक गतिरोध के समाधान हेतु

---

82 Banerjee A C *Indian Constitutional Documents*, Vol III, p 364
83 First Round Table Conference Proceedings p 28
84 Banerjee A C *Ibid*, Introduction, p XVI
85 Refer to Jinnah s Fourteen Points
86 *The Indian Annual Register*, July Dec 1930 Vol II, pp 338 41
87 Aiyer, S P *Essays on Indian Federalism*, p 13

ब्रिटिश सरकार ने मन्त्रिमण्डलीय मिशन (1946) को भारत भेजा था। मन्त्रिमण्ड लीय मिशन के समक्ष प्रमुख समस्याएँ थी पाकिस्तान, देशी रियासते एव अल्पसख्यका की समस्या। कांग्रेस भारत के विभाजन के विरुद्ध थी। मुस्लिम लीग पाकिस्तान की स्थापना पर दृढ थी। अत मिशन न त्रिसूत्री सघवाद की योजना प्रस्तुत की। इसके अन्तगत केन्द्रीय शासन कमजोर था एव घटका को भविष्य म सघ स पृथक होन का अधिकार था। स्मरणीय ह कि केबिनेट मिशन न पाकिस्तान की माँग को प्रत्यक्ष रूप म अस्वीकार कर दिया था। उसकी धारणा थी कि पाकिस्तान के निर्माण स देश की सुरक्षा खतरे म पड जायगी। लेकिन मिशन योजना क्रियान्वित न हो सकी।

मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के लिए सीधी कायवाही प्रारम्भ कर दी। कांग्रेस तथा लीग मे समझौते के कोई आसार नही थे। इसी समय भारतीय नौसना ने भी विद्रोह कर दिया था। अत ब्रिटिश शासन न भारत छोडने के अपन निणय की घोषणा की। लॉड माउण्टबेटन ने भारत विभाजन की योजना प्रस्तुत की जिसे कांग्रेस एव लीग दोना ने स्वीकार कर लिया। 15 अगस्त, 1947 को देश विभाजित हुआ और दो स्वतन्त्र उपनिवेशा का जन्म हुआ। सम्पूण देश साम्प्रदायिक उपद्रवा एव हिंसा के दावानल मे जल रहा था। पाकिस्तान के निर्माण ने देश मे विघटन को बल दिया। देशी रियासते ब्रिटिश शासन के हटने से स्वतन्त्र हो गयी थी। सरदार पटेल की दूरदर्शिता एव दृढता के कारण भारत का विघटन होत होते बच गया। देशी रियासता के विलयन एव एकीकरण के फलस्वरूप 562 देशी रियासतो के स्थान पर केवल 15 देशी रियासतें ही रह गयी और इन्ह ब्रिटिश भारत के प्रान्तो की भांति भारतीय सघ म शामिल कर लिया गया।

केबिनेट मिशन योजना के अन्तगत सविधान सभा ने दिसम्बर 1946 ई म काय प्रारम्भ कर दिया था। मुस्लिम लीग ने असहयोग किया। भारत के स्वतन्त्र होने पर भारतीय प्रदेश की सविधान सभा ने काय प्रारम्भ किया। सविधान सभा के सदस्या पर देश विभाजन एव विघटन की परिस्थितिया का प्रभाव पडा था। वे भविष्य म भारत के विघटित हो जाने की चिन्ता स ग्रस्त थे, फलस्वरूप उन्होन सघीय शासन को अपक्षाकृत अधिक शक्तिशाली बनाया।

सघीय व्यवस्था की तीनो विशेषताएँ—सविधान की सर्वोच्चता, शक्तियो का विभाजन एव सर्वोच्च न्यायालय—भारतीय सघ म भी पायी जाती है। भारत का सविधान लिखित एव कठोर है। सविधान के सघीय भागा म सशोधन के लिए राज्या की स्वीकृति आवश्यक है। केन्द्र एव राज्यो म शक्तिया का स्पष्ट विभाजन तीन सूचियो—केन्द्रीय, समवर्ती एव राज्य सूची—द्वारा किया जाता है। अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र को प्रदान की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय को सविधान की व्याख्या करने एव सविधान विरोधी विधिया को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार प्राप्त है तथा केन्द्र एव राज्या व परस्पर राज्या म होन वाले विवादो म सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। अत भारत एक सघीय राज्य है।

परन्तु कुछ विद्वान इस मत से सहमत नही है। उदाहरण के लिए, के सी ह्वीयरे के अनुसार भारतीय सघ को अधिक से अधिक अद्ध सघीय राज्य कहा जा सकता है। "यह एकात्मक राज्य है जिसमे कम सघीय तत्व है। यह ऐसा सघीय राज्य नही है जिसम एकात्मक तत्व कम हो।"[88] डी एन बनर्जी के अनुसार "भारतीय सविधान स्वरूप म सघीय होत हुए भी एकात्मकता से युक्त है।"[89] डॉ के पी मुकर्जी इसे असघीय या एकात्मक सविधान कहते हैं।[90] डॉ के एन सन्थानम के अनुसार भारतीय सघीय राज्य एक सघ तो है परन्तु एक विशेष प्रकार का सघ है। वे उसे सावभौम सघ (Paramount Federation) कहते है।[91] भारतीय सघ को केन्द्रकृत सघ या विकेन्द्रित एकात्मक राज्य की सज्ञा दी जाती है। इन कथनो का अर्थ यह है कि भारतीय सविधान स्वरूप से सघीय है परन्तु आत्मा से एकात्मक है। इसके विपरीत, एलेक्जण्ड्रोविच का मत है कि भारत एक सघीय राज्य है जिसम राजत्व के लक्षणो (सप्रभुत्व शक्ति) का उपभोग केन्द्रीय एव स्थानीय राज्यो द्वारा किया जाता है।"[92]

शक्तिशाली केन्द्र

भारतीय सघीय व्यवस्था म केन्द्रीकरण की प्रवत्ति के पक्ष मे निम्नलिखित तक दिये जाते हैं

(1) भारतीय सविधान मे कनाडा के सविधान की भाति 'Union' शब्द का प्रयोग किया गया है न कि 'Federation' का (अनुच्छेद 1)।

(2) भारतीय ससद का भारतीय सघ मे नवीन राज्य को शामिल करने और नवीन राज्यो के निर्माण का अधिकार है (अनुच्छेद 2)। ससद को किसी एक राज्य मे से नये राज्य बनान, दो राज्यो को एक राज्य मे शामिल करने, किसी राज्य के साथ किसी क्षेत्र को मिलाने, राज्य का क्षेत्रफल बढाने या घटाने या राज्य की सीमा एव नाम मे परिवतन करने का अधिकार है (अनुच्छेद 3)। परन्तु उपर्युक्त विषयो से सम्बन्धित विधेयको को ससद म प्रस्तुत करन के पूव उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, उन राज्यो के भी विचार ज्ञात करना आव-

---

88 The Indian Union ' is at most quasi federal almost devolutionary in character a unitary state with subsidiary federal features rather than a federal state with subsidiary unitary features ' —Wheare K C *Aspects of Indian Constitution, op cit* p 50

89 "India's Constitution is federal with a pronounced unitary basis " —D N Banerjee, 1962 p 114

90 It is "unfederal or unitary constitution ' —Mukerjee K P Dr, *Indian Journal of Political Science,* July Sept 1954, p 177

91 Santhanam, K *Centre-State Relations,* 1960, pp 12-13

92 India is undoubtedly a federation in which the attributes of statehood are shared between centre and local state —Alexandrowicz, C H, *Constitutional Development in India,* p 169

श्यक है जिनके क्षेत्रफल एव सीमा मे परिवर्तन किया जा रहा हो। इस प्रकार राज्यो के नाम एव सीमा अथवा क्षेत्र मे परिवर्तनो को सवधानिक सशोधन सम्बन्धी व्यवस्थाएँ नही माना गया है (अनुच्छेद 4)। इसका अथ है कि इस सन्दर्भ म सशोधन पद्धति (अनुच्छेद 368) के उपयोग की आवश्यकता नही है। अनुच्छेद 2 तथा 3 के अधीन ही 1956 ई मे राज्य पुनगठन विधि पारित की गयी थी और बाद म अनेक नवीन राज्यो का निमाण हुआ है।

(3) केन्द्र एव राज्यो मे शक्तियो का स्पष्ट विभाजन है। केन्द्रीय सूची क विषयो पर केन्द्रीय सरकार एव राज्य सूची के विषया पर राज्यो को विधि निर्माण के अधिकार प्राप्त है। समवर्ती सूची पर केन्द्र एव राज्य दोनो को विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है परन्तु एक ही ऐसे विषय पर यदि केन्द्र और राज्य ने विधि का निर्माण किया है तो राज्य द्वारा निर्मित विधि की अपेक्षा केन्द्रीय विधि मान्य होगी और राज्य-विधि उस सीमा तक अवैध मानी जायगी जहा तक वह केन्द्रीय विधि के विरुद्ध होती है।

केन्द्रीय सूची मे राज्य सूची की तुलना म अधिक एव महत्वपूण विषय हैं। इसके अतिरिक्त, समवर्ती सूची के विषया पर भी केन्द्र को विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त है। भारतीय सघ म अवशिष्ट शक्तिया भी केन्द्र को प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त, भारतीय ससद को निम्नलिखित अवस्थाओ म राज्य-सूची के विषयो पर भी विधि निर्माण का अधिकार है

(i) राज्यसभा द्वारा अपने कुल सदस्यो अथवा उपस्थित सदस्यो के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके राज्य-सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करने पर एक वष के लिए उस विषय पर ससद को विधि बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है (अनुच्छेद 249)।

(ii) सकट-काल की अवस्था म ससद को राज्य-सूची के किसी भी विषय पर सम्पूण देश या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है। (अनुच्छेद 250)

(iii) एक या दो राज्या द्वारा प्राथना करने पर ससद को राज्य सूची क विषय पर विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है (अनुच्छेद 252)।

(iv) किसी सन्धि या अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के क्रियान्वयन हेतु भारतीय ससद को सम्पूण भारत या उसके किसी एव भाग के लिए विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है (अनुच्छेद 253)।

(4) सघीय शासन को राज्य प्रशासन पर पर्याप्त नियन्त्रण प्राप्त है। सघीय सूची क विषया स सम्बन्धित कायपालिका शक्ति केन्द्रीय शासन म एव राज्य-सूची से सम्बन्धित शक्ति राज्य-शासन म निहित है। परन्तु समवर्ती सूची का प्रशासन सामान्यत राज्या के अधीन है। इसके अतिरिक्त, सविधान क अनुसार राज्या द्वारा अपनी कायपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जायगा कि सघीय विधि क पालन और

सघीय प्रशासन मे कोई वाधा न पडे (अनुच्छेद 256)। राष्ट्रीय महत्व के यातायात मार्गों के निर्माण एव उनकी रक्षा तथा राज्या की सीमा मे रेलवे-पथो की रक्षा के लिए सघीय शासन राज्य शासन को आदेश दे सकता है (अनुच्छेद 257)। यदि किसी राज्य शासन द्वारा सघीय विषय से सम्बन्धित सघीय शासन के किसी आदेश का पालन नही किया जाता तो राष्ट्पति को उस राज्य मे सविधान की विफलता' की घोषणा करके वहा राष्ट्रपति शासन लागू करने का अधिकार प्राप्त है (अनुच्छेद 365)।

(5) राष्ट्रपति को व्यापक सकटकालीन शक्तिया प्राप्त है और सकट-काल मे देश की व्यवस्था एकात्मक हो जाती है। सकटकालीन घोषणा के पश्चात केन्द्रीय सरकार राज्य के किसी भी अधिकारी को राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग के सन्दभ मे निर्देश दे सकती है। किसी राज्य मे सवधानिक विफलता की अवस्था मे वहा राष्ट्रपति शासन स्थापित किया जा सकता है (अनुच्छेद 353 (क) व 356 (क))।

(6) ससद को राज्य विधानमण्डल के द्वितीय सदन—विधान परिषद—के सगठन मे आमूलचूल परिवतन के अधिकार ह (अनुच्छेद 171 (2))।

(7) केन्द्र की वित्तीय स्थिति राज्यो की अपेक्षा दृढ है। अधिक आय के स्रोत केन्द्र को प्रदान किये गये हैं। सविधान द्वारा शक्ति सूचियो के आधार पर राजस्व के स्रोतो का विभाजन किया गया है। यह अस्पष्ट एव अपूण है। राज्या की कमजोर वित्तीय स्थिति को ध्यान मे रखते हुए सविधान द्वारा केन्द्रीय अनुदान की व्यवस्था की गयी है (अनुच्छेद 275 एव 282)। केन्द्र एव राज्या के वित्तीय सम्बन्ध अत्यन्त जटिल है। केन्द्र द्वारा वित्तीय करो से होने वाली आय के वितरण के लिए प्रति पाच वष वाद वित्त आयोग की नियुक्ति की जाती है।

(8) सविधान के अनुसार राज्यो की सुरक्षा एव वाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक विद्रोहा से रक्षा करना एव यह देखना कि सविधान के अनुसार राज्य शासन सचालित हो रहा है, केन्द्रीय शासन का दायित्व एव कतव्य है (अनुच्छेद 355)।

(9) भारत मे अमेरिका की भाँति दोहरी नागरिकता एव दोहरी न्यायपालिका नही है। न राज्यो के पृथक सविधान ही है, न पृथक निर्वाचन आयोग है। अपितु राज्या एव सघीय निर्वाचना के लिए एक ही निर्वाचन आयोग है। भारत मे एकल नागरिकता एव न्यायपालिका है। केन्द्रीय एव राज्या के वित्त पर नियन्त्रण रखने के लिए कम्पट्रोलर एव आडीटर जनरल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है। राज्या के राज्यपाला को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और उसी के प्रसाद-पयन्त ये पदारूढ रहते हैं। राज्यो के उच्च न्यायालय राज्य के न्यायालय हैं, परन्तु उनका सगठन सघीय विषय ह। उनके न्यायाधीशा की नियुक्ति एव पदच्युति अथवा स्थानान्तरण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है (अनुच्छेद 217)।

(10) अखिल भारतीय सेवाओ—भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) एव भारतीय पुलिस सेवा (Indian Police Ser-

vice)—के सदस्य राज्यो मे मुख्य-मुख्य पदो पर काय करते है। केन्द्रीय शासन को ऐसी अन्य सेवाओ की स्थापना का भी अधिकार है (अनुच्छेद 312)।

आलोचकों का मत है कि उपर्युक्त सवधानिक केन्द्रीकरण दलीय व्यवस्था एव नियोजन के द्वारा और भी अधिक कठोर बन गया है। एक ही दल का केन्द्र एव राज्यो म शासन होने के कारण तथा दलीय अनुशासन एव नियन्त्रण के माध्यम स केन्द्र का नियन्त्रण और अधिक हो गया है। विगत 25 वर्षों म केन्द्र मे सम्पूण काल तक एव अधिकाश समय तक अधिकतर राज्यो मे काग्रेस का एकछत्र राज्य रहा है। काग्रेस हाईकमाण्ड[93] द्वारा काग्रेसी राज्यो के मुख्यमन्त्रियो एव मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की नियुक्ति, उनमे विभागो के विभाजन एव नीतिया आदि के सम्बन्ध मे निणय लिये जाते हैं। राज्य शासन के बारे मे अन्तिम निणय लेने का काग्रेस ससदीय दल एव काग्रेस हाईकमाण्ड को एकाधिकार है। राज्या के मुख्यमन्त्री आये दिन दिल्ली भागते नजर आते है। जिन प्रान्तो मे काग्रेस से भिन्न दलो की सरकार बनी है वहाँ की स्थिति भिन्न है। परन्तु वे भी अपने प्रमुख दलीय नेताओ के नियन्त्रण से मुक्त नही होते हैं।

नियोजन भारतीय सघीय व्यवस्था मे अत्यधिक केन्द्रीकरण करने वाला सबल तत्व प्रमाणित हुआ है। योजना आयोग को भारत के 'आर्थिक मन्त्रिमण्डल' की सज्ञा दी गयी है। राज्य की पचवर्षीय योजनाएँ योजना आयोग के परामश से तयार की जाती है और वह उनके क्रियान्वयन की भी समीक्षा करता है तथा किसी त्रुटि या कमी की दशा म राज्य सरकारो को सलाह एव निर्देश देता है। सिद्धान्तत यह परामश एव सलाह केवल विचार विमश ही होते है परन्तु व्यवहारत वे स्पष्ट निर्देश होते हैं। योजनाओ के लिए योजना-आयोग अनुच्छेद 282 के अधीन आर्थिक अनुदान प्रदान करता है। फलत राज्य योजना आयोग की उपक्षा करने म असमथ रहते है। 1952 53 ई म अनुच्छेद 282 के अधीन 8 59 करोड की धनराशि राज्यो को अनुदान के रूप म दी गयी थी। यह प्रारम्भ था। प्रति वर्ष यह राशि बढती गयी। प्रथम पचवर्षीय योजना म 64 03 करोड और द्वितीय पचवर्षीय योजना म 275 करोड रुपये केन्द्र द्वारा योजना पर व्यय के लिए विभिन्न राज्यो को अनुदान-स्वरूप दिये गये थे। अधिकाश अनुदान पूरक (*matching*) अनुदान होते है।[94] राज्यो की वित्तीय स्थिति सुदृढ न होने के कारण वे केन्द्रीय अनुदान पर ही योजना के क्रियान्वयन के लिए निभर करते हैं। यह सभी अनुदान विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयो द्वारा सम्पादित किये जाते हैं क्योकि सिद्धान्तत योजना-आयोग तो केवल परामशदात्री निकाय है, न कि कोई कायकारी निकाय।[95]

---

93 काग्रस हाईकमाण्ड से तात्पय काग्रेस के वरिष्ठ प्रभावशाली दलीय नेताओ से है जो काग्रेस की विभिन्न नीतिस्थ दलीय सस्थाओ के सदस्य होते हैं और इनका दल एव शासन पर समान प्रभाव होता है।

94 Santhanam, K *op cit*, p 53

95 *Ibid*

नियोजन के सम्बन्ध म राज्या के सहयोग को प्राप्त करने के लिए कुछ सस्थाओ की स्थापना की गयी है । इसमे 'राष्ट्रीय विकास परिषद' (National Development Council) बहुत महत्वपूण है । प्रधानमन्त्री ही इसका अध्यक्ष होता है और राज्यो के मुख्यमन्त्री इसके सदस्य होते है। इस परिषद को कोई विधिक या सवैधानिक अधिकार प्राप्त नही है परन्तु इसके निणय केन्द्रीय एव राज्यो के मन्त्रि-मण्डलो पर बन्धनकारी होते हैं। ऐसे अभिसमय का विकास हुआ है । इस परिषद द्वारा अनेक बार एसे निणय लिये जाते है जिन पर सामान्य सघीय विधिक व्यवस्था के अधीन राज्यो एव केन्द्रीय विधानमण्डलो द्वारा विचार विमश किया जाना चाहिए। सथानम न राष्ट्रीय विकास परिषद को देश की 'सुपर केबिनेट' की सज्ञा दी है।[96]

समीक्षा—उपर्युक्त आलोचना मे पर्याप्त सत्य है परन्तु केन्द्रीकरण भारतीय सघीय सविधान की कोई एकमात्र विशषता नही है। केन्द्रीय शासन की शक्तियो मे सभी सघीय राज्यो म वृद्धि हुई है। सयुक्त राज्य अमरिका जिसे ह्वीयर सदृश विद्वानो द्वारा सघीय शासन का प्रमाणिक उदाहरण माना जाता है, वहा भी सघीय शासन की शक्तिया मे असाधारण वृद्धि हुई है। अत भारत इस विश्वव्यापी सामान्य प्रवृत्ति का अपवाद नही हो सकता।

भारतीय सघीय सविधान म केन्द्रीकरण समय की माग ह। अत्यधिक केन्द्री-करण तो सघवाद के विपरीत होता है परन्तु राज्यो की स्वतन्त्रता के नाम पर राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे मे नही डाला जा सकता। सवैधानिक केन्द्रीकरण, नियोजन एव दलीय पद्धति से उत्पन्न केन्द्रीकरण की बाढ पर भाषावार प्रान्तो के निर्माण—भाषावाद (Linguism)—ने रोक लगायी है। अनुच्छेद 2 और 3 के अन्तगत ससद का राज्यो के नाम, क्षेत्र, सीमा आदि मे परिवतन का अधिकार देकर सविधान सभा ने बुद्धिमानी की है। सविधान निमाण के समय भाषायी प्रान्तो के निर्माण का प्रश्न हल नही हो पाया था अत बाद मे भाषावार प्रान्ता के सरलतापूवक निर्माण के लिए उक्त उपबन्ध किया गया। स्मरणीय है कि काग्रेस भाषावार प्रान्तो के निर्माण के हुतु वचनवद्ध थी। 1956 ई मे जनता के विरोध के सामने केन्द्रीय शासन को झुकना पडा और राज्यो का पुनगठन हुआ। आन्ध्र, महाराष्ट्र एव गुजरात का निर्माण और पजाब का विभाजन भाषावाद का ही परिणाम है। अत केन्द्रीकरण के विरुद्ध भाषावाद एक शक्तिशाली तत्व प्रमाणित हुआ है।

भारतीय सघीय व्यवस्था को कुछ विचारको[97] न सहयोगी सघवाद की सना दी है। यह विश्लेषण काफी तकपूण ह। सम्पूण सविधान म अनेक सहयोगी तत्व विद्यमान हैं। वित्त-आयोग (अनुच्छेद 280), अन्त राज्यीय जलीय विवाद निणय की व्यवस्था (अनुच्छेद 262), दो या अधिक राज्या के लिए सयुक्त लोक सेवा आयोग की स्थापना

96 Santhanam, K., p 47
97 Aiyer S P and Mehta Usha *Essays on Indian Federalism*, 1964, pp 114 134

(अनुच्छेद 252 (2) और (3)), अन्त राज्यीय विवादो के समन्वय हेतु अन्त राज्यीय परिषद की स्थापना (अनुच्छेद 263),,अखिल भारतीय सेवाएँ (अनुच्छेद 312), राज्यों को केन्द्रीय दायित्वो को प्रदान करना (अनुच्छेद 258), अन्त राज्यीय व्यापार एव वाणिज्य म बाधाओ के उन्मूलन की व्यवस्था (अनुच्छेद 286, 301, 302 एव 333), राज्यो की वाह्य आक्रमणो एव आन्तरिक विद्रोहो से रक्षा आदि उपबन्ध एव व्यवस्थाए सहयोगी सघवाद के प्रमाण हैं। व्यवहार म भी केन्द्र एव राज्यो के मध्य सहयोग का विकास भी हो रहा है। राज्यो म सवधानिक शासन की असफलता पर राष्ट्रपति शासन की व्यवस्था भी राज्यो क साथ सहयोग ही है। अधिकाश मामलो म केन्द्र ने आवश्यकता से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन का राज्य म कायम नहीं रखा है। मारिस जान्स ने केन्द्र और राज्य क बीच सम्बन्धो की समीक्षा करते हुए कहा है कि भारत म सौदेबाज सघवाद (Bargaining Federation) है।[98] यह मत अधिक ग्राह्य नहीं है।

लेखक भारतीय सघीय व्यवस्था को अर्द्ध-सघीय व्यवस्था मानने के लिए तयार नही है। सघीय शासन के तीन लक्षण हैं लिखित सविधान, शक्ति विभाजन एव सर्वोच्च न्यायालय। भारतीय सघ इनकी पूर्ति करता है अत भारत एक सघ है।[99] केन्द्रीय शासन को अपने दायित्व के अनुरूप शक्ति प्राप्त है। आज का शक्ति-विभाजन हर काल के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। अत सामाजिक आवश्यकताओ क अनुसार परिवतन अपेक्षित है। भारतीय सघ म शक्तिशाली केन्द्रीय शासन एक ऐतिहासिक आवश्यकता है। निबल केन्द्र का अथ होता है भारतीय राष्ट्र का विघटन। सघ के निर्माण म विघटन एव एकीकरण दोनो पद्धतियो का प्रयोग हुआ है। ब्रिटिश प्रान्तो को, जो एकात्मक शासन के अग थे, राज्यो के रूप मे सघ म स्थान दिया गया है। देशी रियासते ब्रिटिश सरकार के जाने के बाद सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न हो गयी थी। सघ म शामिल होने के लिए देशी नरेशो ने प्रवेश-पत्रो पर हस्ताक्षर किये थे अत देशी रियासतो का भारतीय सघ मे प्रवेश एकीकरण की प्रणाली का प्रमाण है।

कुछ आलोचको का मत है कि केन्द्रीय शासन को अपर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। व्यावहारिक दृष्टि से केन्द्रीय सरकार विकास योजनाओ के क्रियान्वयन मे सफल नहीं हुई है। सुप्रसिद्ध अमेरिकी विचारक एपिलबी का मत है कि राज्यो की तुलना म केन्द्र कमजोर है। उनका कथन है कि "कोई बडी राष्ट्रीय सरकार जो वस्तुत स्वतन्त्र है, सैद्धान्तिक दृष्टि से भारत की केन्द्रीय सरकार के बराबर अधीन इकाइयो पर निभर नही करती।"[100] विकास-योजनाओ के क्रियान्वयन के लिए केन्द्र राज्यो पर निभर है। "आजकल तो केन्द्रीय व्यवस्था प्रधानमन्त्री के असाधारण व्यक्तित्व के प्रभाव क

98 Jones, William Morris *The Government and Politics of India*, p 141

99 Alexandrowicz, C H *Constitutional Development in India*, p 169

100 Appleby H Paul *Public Administration in India*—Report of a Survey p 21

कारण चल रही है। भविष्य मे क्या होगा ?" राज्या मे केन्द्र का कोई अधिकारी-मण्डल भी नहीं है जिसके द्वारा वह सकटकालीन शक्तिया का प्रयोग करा सके। एपिलवी ने भारतीय सघ की शक्ति-विभाजन की भी आलोचना की है। उनकी दृष्टि मे सावजनिक स्वास्थ्य एव मछली-पालन जैसे विषय भी राष्ट्रीय सरकार को सौंपने चाहिए क्योकि इनका राष्ट्रीय महत्व है। डा महादेव प्रसाद शर्मा ने इस आलोचना को सारहीन नहो माना है यद्यपि यह अमेरिकी पृष्ठभूमि से प्ररित ह ।[101] वतमान लेखक ऐपिलवी इस तक से सहमत है कि शक्ति-विभाजन ठीक नही है। उत्तर प्रदेश म पुलिस विद्रोह हुआ था। क्या यह राज्यो की कमजोरी का प्रमाण नही है ? क्या यह घटना इस मत का समथन नही करती कि केन्द्र को राज्यो म महत्वपूण स्थानो पर केन्द्रीय सुरक्षा दल की टुकडियाँ स्थायी रूप स तनात कर देनी चाहिए ? लेखक का मत है कि कृषि, स्वास्थ्य एव शिक्षा आदि विषया को यदि केन्द्रीय विषय नही बनाया जा सकता तो उन्ह कम से कम समवर्ती सूची मे अवश्य स्थान देना चाहिए। इन विषयो का राष्ट्रीय महत्व है।

भारतीय सघीय व्यवस्था विकास की स्थिति म है और केन्द्र एव राज्यो के सम्बन्ध निर्माणावस्था म हैं। 1947 ई की अपक्षा 1972 ई मे सघीय व्यवस्था एक अधिक वास्तविक तथ्य है। सघीय व्यवस्था स्वयसाध्य नही है अपितु साधन है। साध्य जन कल्याण है। अत आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्रीय शासन को राज्यो के प्रति अपेक्षाकृत सहयोगी रुख अपनाना चाहिए और राज्यो को सकीण क्षेत्रीयता एव भाषावाद स मुक्त होना चाहिए। राष्ट्रीय एव क्षेत्रीय हितो म स्वस्थ सन्तुलन ही सघीय व्यवस्था की सफलता की कुजी है।

मलयेशिया एव सघवाद

मलाया मे सघीय व्यवस्था ब्रिटिश शासन की देन है। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन काल मे द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात मलाया मे सघीय व्यवस्था (1948 ई) की स्थापना हुई थी। इस समय आर्थिक कारणा की अपेक्षा सुरक्षा की आवश्यकता ने सघीय शासन की स्थापना मे अधिक योग दिया था। मलाया ब्रिटिश साम्राज्य का एक अग था। इस देश म तीन प्रधान जातिया—मलय, तमिल एव चीनी—निवास करती ह। मलय मूल निवासी हैं परन्तु वे आर्थिक दृष्टि से अविकसित हैं। मलाया म सघीय शासन की स्थापना मे बहुजातीयता ने ही केवल योग नही दिया है। दक्षिणी एव दक्षिण-पूर्वी एशिया के क्षेत्र मे 1941 ई के जापानी आक्रमण के समय से लेकर 1954 ई मे इण्डोचीन मे युद्ध प्रारम्भ हाने तक का काल सकट एव सघष का काल है। इस क्षेत्र के अनेक देशा ने युद्ध, सशस्त्र विद्रोह, विदेशी आक्रमण एव तीव्र सविनय आन्दोलनो के द्वारा स्वतन्त्रता अर्जित की थी परन्तु साम्यवादी आक्रमण तथा पश्चिमी साम्राज्यवाद के परिवर्तित रूप के आक्रमण की सम्भावना का भय सदव इन देशा पर

101 डा महादेव प्रसाद शर्मा भारतीय गणतन्त्र का सविधान, 1959, पृष्ठ 99।

छाया रहता था। फलत भारत एव मलाया जैसे देशा म दृढ सघीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया। मलाया की सघीय व्यवस्था के अ तगत के द्रीय शासन अत्यधिक शक्तिशाली है। मलाया म अनेक छोटी-बडी रियासते थी। ब्रिटिश शासन मलाया प्रदेश मे सुल्तानो के माध्यम से शासन करता था। 1946 ई मे मलाया प्रदेश क स्थानीय ब्रिटिश अधिकारिया एव मलय राष्ट्रवादिया म राजत त्र इतना अधिक शक्तिशाली था कि एकत त्रीय शासन-व्यवस्था की स्थापना असम्भव थी।

दक्षिण-पूर्वी एशिया मे मलाया भारत की भाति एक स्थायी सघीय शासन है। ब्रिटिश काल मे स्थापित सघीय व्यवस्था के फलस्वरूप मलाया मे विदेशी शासन से राष्ट्रीय सरकार को सरलतापूवक सत्ता का हस्ता तरण सम्भव हो सका था। 31 अगस्त, 1957 ई को मलयेशिया सघ का नवीन सविधान लागू हुआ है। यह सविधान लिखित है। सघ की 11 इकाइया है। सघीय एव इकाइया की सरकारो के मध्य शक्ति विभाजन के अनुसार मुख्य विधायी एव कायपालिका शक्तिया सघीय सरकार को प्रदान की गयी है। राज्य की विधियो एव सघीय विधियो के मध्य विरोध की अवस्था मे सघीय विधिया मा य हाती है। राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओ को राज्य-शक्ति के विरुद्ध भी क्रियान्वित करने का सघीय शासन को अधिकार है। सघीय सविधान मे सशोधन व्यवस्था कठोर है। मलयेशिया की ससद क दाना सदनो की कुल सदस्य सख्या के ⅔ बहुमत से सशोधन पारित होने पर प्रभावकारी होता है। अमेरिका की भाति राज्या द्वारा सशोधन के अनुमोदन एव स्विटजरलण्ड की भाति जनमत सग्रह द्वारा सशोधन की अनिवाय स्वीकृति की व्यवस्था मलयेशिया मे नहीं है। मलयशिया की ससद को सवैधानिक सशोधन के सम्ब ध मे एकाधिकार प्राप्त है। मलयेशिया की ससद द्विसदनात्मक है। प्रथम सदन—दीवान ए रैय्यत—प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) के 104 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति स एकल सदस्यी निर्वाचन क्षेत्रा से चुन जात हैं। सीनट द्वितीय सदन है। इसे दीवान ए-नेगर कहत है। इसके 38 सदस्या म से 22 सदस्य राज्य विधान मण्डला द्वारा निर्वाचित हात ह और 16 सदस्या को सघ के अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाता है। अत मलयशिया की सीनेट आशिक रूप म राज्या का सदन है। मलयशिया का राज्याध्यक्ष राजा होता ह। यह 5 वप के लिए मलाया प्रदश के 9 राजाआ द्वारा अपनी मजलिस म निर्वाचित किया जाता है। मलयशिया म ससदीय शासन-व्यवस्था का अपनाया गया है। राजा सवधानिक अध्यक्ष होता है। प्रधानम त्री वास्तविक कायपालिका है।

मलयशिया म एकल यायपालिका है। सर्वोच्च यायालय इसक शीप पर है। इस सघ एव राज्य तथा परस्पर राज्या के मध्य उत्पन्न हान वाले विवादा म मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

मलयशिया सघ म क द्रीय शासन सिद्धा त एव व्यवहार दाना म ही अत्यधिक शक्तिशाली है। सघवाद क द्वध स्वरूप (Dual Federation) क अथ म मलयशिया अद्ध-सघ (Quasi Federation) है। सविधान के अनुच्छेद 76, 94, 150 एव

159 के अन्तगत केन्द्र को राज्यो की स्वायत्तता के अतिक्रमण का अधिकार है। भारत की तरह सघीय शासन को सकटकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं और वाह्य सकट एव आर्थिक अव्यवस्था की दशा म सघीय शासन राज्या के शासन अपने निय त्रण म ले सकता है। राज्यो की तुलना मे सघ के वित्तीय स्रोत अधिक आय के है। एक्साइज ड्यूटी एव आय-कर सघीय क्षेत्राधिकार के अधीन है। राज्या की वित्तीय स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है। वे सघीय शासन के आर्थिक अनुदाना पर निमर रहत है। केन्द्र एव राज्या के मध्य करो से आय एव अनुदाना के वितरण हतु सघीय वित्तीय आयोग की सविधान द्वारा व्यवस्था की गयी है। मलयेशिया मे एक दलीय व्यवस्था है। मलयेशिया के सघ मे सिंगापुर के शामिल होने का प्रश्न वहुत दिनो तक विचाराधीन बना रहा था। सिंगापुर शामिल भी हुआ पर तु शीघ्र ही पृथक हो गया। इसका कारण जातीयता (Racialism) है। मलयेशिया एक जातीय सघ (Racial Federation) है। मलयेशिया की मूल जाति मलय आर्थिक दृष्टि स पिछडी होने के कारण सघीय व्यवस्था के अ तगत अपने क्षेत्र म अपनी शिक्षित जनता के लिए रोजगार के अधिक अवसरा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहती है। अत सघीय व्यवस्था को कायम रखने के लिए वे प्रयत्नशील एव इच्छुक हैं। सिंगापुर मे चीनी लोगो की जनसख्या अधिक है। सिंगापुर के सघ म सम्मिलित होने से मलय जाति अल्पसख्या मे रह जाती है अत मलयेशिया के सघ म सघर्ष क्षेत्रा के मध्य न होकर जातियो (races) के मध्य है। क्षेत्रीय भिन्नता जातीय विभेद द्वारा आवत है। अत लाभा का बँटवारा जातीयता (races) के आधार पर होता है। उदाहरण के लिए, 1955 ई मे तुकू अब्दुल रहमान ने अपने प्रथम म त्रिमण्डल म 6 मलय, 3 चीनी और 1 भारतीय को मन्त्री नियुक्त किया था। किसी को यह चिन्ता नहीं थी कि म त्रीगण किस क्षेत्र अथवा राज्य के निवासी है। सभी जातिया इससे स तुष्ट थी कि उनकी जाति को म त्रिमण्डल म प्रतिनिधित्व उनकी सख्या के अनुपात मे प्राप्त हुआ है।

मलयशिया के समुद्र-तट के दूसरे किनारे पर ब्रिटिश बोर्नियो का क्षेत्र है जिसम सरावक, उत्तरी बोर्नियो एव ब्रूनी के प्रदेश है। मलाया से इनके बहुत कम सम्ब ध है। ब्रूनी के प्रदेश म मलय जाति के लोग निवास करते है।

1963 ई मे अ त राज्यीय समिति की स्थापना उत्तरी बार्नियो एव सरावक को मलयेशिया सघ म शामिल करने के लिए की गयी थी। समिति ने अपने प्रतिवेदन म यह सिफारिश की थी कि मलयेशिया के सविधान का इस प्रकार सशोधित किया जाना चाहिए कि उसम नवीन राज्यो की इच्छाओ एव स्थिति को समुचित स्थान प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त उत्तरी बोर्नियो एव सरावक का अपना पृथक सविधान भी होना चाहिए। शक्तिया का पुनर्विभाजन किया जाना चाहिए और वोर्नियो को अ य राज्यो की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए तथा उसका अधिक वित्तीय स्रोता पर निय त्रण होना चाहिए, सघीय शासन को पर्याप्त वित्तीय ... प्रदान करनी चाहिए। नवीन विधानमण्डल म बोर्नियो राज्य के दो निर्वाचित सी

एव 6 अतिरिक्त मनोनीत सीनेटरो को स्थान मिलना चाहिए। बोर्नियो के प्रतिनिधियो को राज्य विधानमण्डल द्वारा चुने जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

नाइजीरिया

नाइजीरिया पश्चिमी अफ्रीका मे नवोदित स्वतन्त्र देश है। यह सबसे बड़ा ब्रिटिश उपनिवेश था। 1954 ई के सविधान द्वारा नाइजीरिया मे सघीय व्यवस्था की स्थापना की गयी। नाइजीरिया के अन्तगत उसके उत्तरी, पूर्वी एव पश्चिमी क्षेत्र तथा दक्षिणी कामरून (South Cammeroon) का प्रदेश शामिल है। दक्षिणी कामरून पर 1918 ई मे जमनी का अधिकार था और प्रथम युद्ध के पश्चात इसे न्यास क्षेत्र (Trusteeship Territory) घोषित कर दिया गया था। 1 अक्टूबर, 1960 ई को ब्रिटिश अधीनता से नाइजीरिया स्वतन्त्र हुआ और वहाँ वतमान सविधान लागू हुआ। नाइजीरिया 3,93,250 वगमील के क्षेत्रफल वाला एक विशाल देश है। इसम विभिन्न जातिया एव कबीले तथा भाषा एव धम के व्यक्ति रहते हैं। उत्तरी नाइजीरिया म होशा/फुलानी (Hausa/Fulani) जाति, पूर्वी क्षेत्र मे इबो (Ibo) जाति, पश्चिमी क्षेत्र म यूरूब (Yurab) जाति के व्यक्ति निवास करते हैं। इनम गम्भीर सामाजिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक मतभेद हैं। पूर्वी एव पश्चिमी क्षेत्र म गर मुसलमान जनसख्या का बाहुल्य है तो उत्तरी नाइजीरिया मे मुसलमान निवास करते हैं। सघीय व्यवस्था के अनुकूल जहा नाइजीरिया मे ये विभक्तकारी तत्व विद्यमान हैं वहाँ सम्पूण नाइजीरिया मे व्यापार के लिए उपयुक्त सुव्यवस्थित यातायात की सुविधा है। उत्तरी नाइजीरिया के निवासी एकात्मक व्यवस्था के विरुद्ध हैं और सघ म उनका प्राधान्य है। 1954 ई के निर्वाचनो मे विजयी उत्तरी जन-कांग्रेस (North Peoples Congress) नामक दल ने केन्द्रीय शासन को कम शक्तियाँ देने का समथन किया था और वह उसकी स्थिति को एक प्रबन्ध निकाय (Managing Agency) की तरह कर देने का पक्षपाती था।

नाइजीरिया के सविधान म दो सूचियाँ हैं—सघीय सूची एव समवर्ती सूची। सघीय शासन को दोना सूचिया के विषयो पर विधि-निर्माण का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषया पर केन्द्र एव घटक राज्या दोना को ही विधि निर्माण का अधिकार है परन्तु दोना म विरोध की दशा म घटका की विधि अवैध होती है। अवशिष्ट शक्तियाँ घटक इकाइया को प्राप्त हैं। सविधान के सशोधन म केन्द्र एव राज्य दोना की स्वीकृति अपक्षित है। केन्द्रीय विधानमण्डल को सकटकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं। सकटकाल म केन्द्रीय ससद का सम्पूण देश के लिए शान्ति-व्यवस्था एव सुशासन की दृष्टि से विधि निमाण का अधिकार है (धारा 65)। अन्तरराष्ट्रीय सन्धियो एव सगठनो के निणयो को क्रियान्वित करने के लिए केन्द्र को विधि निर्माण का अधिकार है। किसी प्रदेश को सघ से पृथक होने का अधिकार प्राप्त नहीं है। सविधान द्वारा प्रदेश सरकारो पर अपनी कायपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करने पर बल दिया गया है कि सघीय कायपालिका के लिए कोई खतरा या सकट उत्पन्न न हो जाय। इस प्रावधान

के उल्लघन की दशा मे सघीय ससद द्वारा दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करने पर सम्बन्धित प्रदेश के विषय मे विधि बनाने का अधिकार उसे प्राप्त हो जाता है। बाइफरा ने प्रथकता के लिए सशस्त्र विद्रोह किया था जिसे केन्द्रीय शासन ने सेना का प्रयोग करके दबा दिया।

आर्थिक दृष्टि से सभी क्षेत्र परस्पर निर्भर है। आय के प्रमुख स्रोतो पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार है, जैसे—कम्पनिया पर कर, निर्यात कर आदि केन्द्र को प्राप्त है। परन्तु केन्द्रीय सरकार ने स्वेच्छा से निर्यात-कर लगाना छोड दिया है। व्यक्तियो पर आय-कर प्रदेशा की सरकारा द्वारा लगाया जाता है। केन्द्र द्वारा आर्थिक अनुदान दिये जाते हैं। नाइजीरिया मे समय-समय पर वित्तीय स्थिति पर विचार करने के लिए वित्त-आयोग (Fiscal Review Commission) की स्थापना होती रही है। रायसमन आयोग (Raisman Commission) के सुझाव पर राष्ट्रीय आर्थिक परिषद (National Economic Council) की स्थापना हुई। यह प्रदेशा के मध्य सहयोगी सस्था है। वर्तमान स्थिति मे नाइजीरिया के प्रत्येक प्रदेश को पृथक रूप से आर्थिक निर्भरता प्राप्त करना कठिन है।

नाइजीरिया के सविधान मे केन्द्रीय शासन को सिद्धान्तत शक्तिशाली बनाया गया है परन्तु व्यवहार म यह कमजोर सिद्ध हुआ। इसका कारण नाइजीरिया मे क्षेत्र-वाद एव जनजातीयवाद (Tribalism) का बाहुल्य एव प्राधान्य है।

सघवाद की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

प्रत्येक सघीय राज्य म घटक इकाइया के मूल्य पर केन्द्रीय शासन की शक्तिया म वृद्धि आधुनिक सघवाद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। सयुक्त राज्य अमेरिका म सघीय शक्तिया का विकास समवर्ती क्षेत्राधिकार के सिद्धान्त (Doctrine of Concurrent Jurisdiction) एव निहित शक्तिया के सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) के माध्यम स हुआ है। केन्द्रीय सरकार की शक्तियो मे विकास का अर्थ प्रो ह्वीयरे के अनुसार यह नही समझना चाहिए कि केन्द्रीय शासन ने राज्या के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण करके धीरे धीरे राज्यो की उन शक्तियो को हथिया लिया है जो प्रारम्भ म राज्या को प्रदान की गयी थी।[102] केन्द्रीय शासन की शक्तियो के विकास के लिए ह्वीयरे के अनुसार चार तत्व उत्तरदायी हैं। वे ह क्रमश युद्ध, आर्थिक मन्दी, राज्य द्वारा सामाजिक सवाआ म विकास एव यातायात और उद्योगा म यान्त्रिक क्रान्ति। दूसरे शब्दो मे, शक्ति राजनीति, मन्दी की राजनीति, कल्याणकारी राजनीति एव एजिन (यन्त्र) सघवाद म केन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी तत्व है।"[103] सघीय

102 Wheare K C *Federal Government* p 237
103 Wheare ascribes four factors of the development of the powers of federal governments, they are ' War, economic depressions, the growth of social services and the mechanical revolution in transport and industry To express the same thing in different words they were power politics, depression politics welfare politics and internal combustion engine —*Ibid*, p 239

राज्यो की काय-पद्धति भी केन्द्रीकरण मे सहायक है। युद्ध एव आर्थिक मन्दी के काल मे परिस्थितियाँ अधिकाधिक केन्द्रीय नियन्त्रण को अनिवाय बना देती हैं और इस प्रकार अस्थायी रूप से केन्द्रीय शासन की शक्तियो म वृद्धि हो जाती है। लेकिन कल्याणकारी राज्य एव यान्त्रिक क्रान्ति केन्द्रीय शासन की शक्ति मे वृद्धि करने वाल स्थायी तत्व हैं। सुदृढ वित्तीय स्थिति के कारण केन्द्रीय सरकारा की शक्ति म विकास स्वाभाविक है। सामाजिक कल्याण की योजनाओ के फलस्वरूप राज्यो पर केन्द्रीय नियन्त्रण मे वृद्धि हुई है। स्विटजरलैण्ड के केण्टना के द्वारा आय-कर सघीय शासन को प्रदान कर दिया गया है। अमेरिकी सविधान के 16वें सशोधन द्वारा आय कर सघीय शासन को सौप दिया गया है। आस्ट्रेलिया मे विभिन्न राज्या एव सघीय शासन की 23 प्रकार की आय पर कर प्रचलित थे। द्वितीय विश्व-युद्ध की परिस्थितिया से वाध्य होकर राष्ट्रीय सरकार ने राज्यो से आय कर का केन्द्रीय शासन के पक्ष म त्याग दने का प्रस्ताव किया। परन्तु राज्य इसके लिए सहमत नही हुए। केन्द्रीय सर कार ने इस पर अनेक विधिया पारित की जिससे आय कर लगाने का अधिकार उसे प्राप्त हो गये और राज्यो को मुआवजे के रूप मे अनुदान देना स्वीकार किया।"[104] कनाडा के प्रान्ता ने द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियो से वाध्य होकर युद्ध-काल के लिए 'आय कर' एव 'निगम कर' केन्द्रीय शासन को सौपना स्वीकार किया था। डोमीनियन सरकार ने क्षतिपूर्ति के रूप मे प्रान्तो को अनुदान प्रदान किया। 1947 ई मे ओ टोरियो एव क्यूबेक प्रान्तो को छोडकर अन्य प्रान्तो ने इस विषय पर भविष्य के लिए समझौते किये। 1952 ई म ओन्टोरियो भी इस व्यवस्था मे शामिल हो गया। अब प्रति पाच वष के पश्चात नवीन समझौते कर लिये जाते हैं।

प्रा ह्वीयरे के अनुसार "युद्ध एव आर्थिक मन्दी का बार-बार होना सघीय शासन के लिए हितकर नही है। उन्ह इसम सन्देह है कि आस्ट्रेलिया की सघीय व्यवस्था भविष्य मे किसी युद्ध या आर्थिक मन्दी के दुष्परिणामो को बर्दाश्त कर सकेगी। शान्ति एव सम्पन्नता न कि युद्ध एव आर्थिक मन्दी, सघीय शासन की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें हैं।"[105]

केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के साथ सघीय व्यवस्था के अन्तगत राज्या या घटक इकाइयो मे स्थानीयता की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ है। भाषा, क्षेत्रीयता एव सास्कृतिक निष्ठा ने केन्द्रीकरण विरोधी भावनाओ को विकसित किया है। ह्वीयरे के अनुसार सभी सघा की इकाइया द्वारा अब अनेक कार्यों को सम्पादित किया जाता है जो सघीय व्यवस्था के जन्म के समय उनके द्वारा सम्पादित नही किये जाते थे। उदा हरण के लिए, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सवाएँ एसे ही विषय है। इन सेवाओ के क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ राज्या द्वारा इन पर पहले स कई गुना अधिक धन व्यय किया जाता है। स्थानीयता की भावना न राज्यो म आत्मचेतना एव दृढ़ता को

104 Wheare K C *op cit*, pp 103 106
105 *Ibid*, p 239

ज म दिया है और केन्द्रीय शासन की शक्ति के विकास के अनुपात म ही राज्यो मे आत्मचेतना एव दृढता बढती गयी है। यह कहना अधिक ठीक होगा कि राज्या म स्थानीय निष्ठा केन्द्रीकरण मे वद्धि के अनुपात म विकसित हुई है। केन्द्रीकरण के फलस्वरूप राज्यो ने यह अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया है कि उनकी स्थिति को खतरा है और वे इसकी कडे शब्दा म शिकायत करते हैं। कभी कभी तो केन्द्र के अ याय के कारण वे सघ से पृथक होने की चर्चा तक करने लगते है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया ने आस्ट्रेलियाई सघ से पृथक होन के लिए हिंसात्मक आन्दोलन तक प्रारम्भ कर दिया था। कनाडा के क्युवेक एव ओन्टोरियो राज्यो की सरकारे तथा आस्ट्रेलिया के तस्मानिया एव दक्षिणी आस्ट्रेलिया नामक राज्यो ने केन्द्रीय शासन के निरन्तर हस्तक्षेप का दृढतापूवक विरोध किया है। केन्द्रीय शासन की शक्ति मे वृद्धि से आतकित होकर एक गुट बनाकर राज्यो द्वारा अपने अधिकारो की रक्षा के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया जाता है। इससे पृथकता की भावना को बल मिलता है। भारतीय सघ म तमिलनाडु की द्रविड मुन्नेत्र कडघम (DMK) की सरकार अधिकाधिक स्वतन्त्रता की माग कर रही है। 1969 ई म चतुथ निर्वाचन के बाद भारत मे गैर-काग्रेसी सरकारो ने केन्द्र के विरुद्ध मिलकर राज्या क अधिकारो की रक्षाथ एक सम्मेलन बुलाया था और एक जुट होने का प्रयत्न किया था। सघीय राज्यो मे जहा केन्द्रीकरण बढ रहा है वहा केन्द्र एव राज्यो मे परस्पर निभरता एव सहयोग का भी विकास हुआ है। प्रत्येक सघ मे अनेक सहयोगी सस्थाएँ विकसित हुई हैं। द्वध सघवाद का स्थान सहयोगी सघवाद ने ले लिया है।

अत केन्द्रीकरण एव पृथकतावाद (Centralism and Separatism) आधुनिक सघवाद की दो अनिवाय सलग्न (twin) विशेषताए है। इनम केन्द्रीकरण की प्रवत्ति अधिक मुखर है। केन्द्रीकरण की बढती हुई प्रवत्ति के मध्य पृथकतावाद की उपस्थिति ने सघवाद को एक व्यावहारिक एव वास्तविक तथ्य बना दिया है।

8

व्यवस्थापिका[1]

LEGISLATURES

लोकतन्त्रीय देशो मे शासन के तीन अगो म से व्यवस्थापिका का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसमे जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। इनके द्वारा देश के लिए विधि का निर्माण किया जाता है। विधि शासन का आधार है अत राज्य म व्यवस्थापिका की स्थिति केन्द्रीय होती है। विधि के द्वारा ही व्यक्ति के अधिकारो की रक्षा की जाती है। आन्तरिक शान्ति एव सुरक्षा की व्यवस्था तथा न्याय का प्रशासन किया जाता है। विधि के आधार पर ही राज्य के विभिन्न अधिकारी शक्ति या सत्ता प्राप्त करते हैं और उसका प्रयोग करते है। व्यवस्थापिका लोकतन्त्रीय देशो म 'मानसिक न्यास' (brain trust) की भूमिका निभाता है।

व्यवस्थापिकाओ को विभिन्न देशो म भिन्न-भिन्न नामो से पुकारा जाता है जसे—ससद (Parliaments), काग्रेस (Congress), एव सामान्य सभाएँ (General Assemblies)। ससद के अग्रेजी पर्यायवाची शब्द पार्लियामेण्ट (Parliament) का अथ है 'वार्ता का स्थान'। ससद के आलोचको ने व्यवस्थापिकाओ को 'वार्ता की दुकाना' (Talking Shops) की सज्ञा दी है। इगलण्ड एव औपनिवेशिक देशो—जसे, कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत आदि—मे राष्ट्रीय व्यवस्थापिका को ससद (Parliament) की सज्ञा दी गयी है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे सघीय व्यवस्थापिका का काग्रेस (Congress) एव फ्रास म राष्ट्रीय सभा (National Assembly) की सज्ञा दी गयी है। सोवियत रूस म केन्द्रीय व्यवस्थापिका को 'सुप्रीम सावियत' (Supreme Soviet) कहा जाता है। जापान मे डाईट (Diet) तथा स्विट्जरलण्ड मे फेडरल असेम्बली (Federal Assembly) पुकारा जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका की इकाइया—राज्या—मे व्यवस्थापिका (legislature) शब्द का प्रयोग किया गया है। अमेरिका के पचास राज्या म से छब्बीस म इसे व्यवस्थापिका (Legislature), उन्नीस म जनरल असम्बली (General Assembly), तीन राज्यो म लेजिस्लेटिव असम्बली

---

1 विधानाग, विधानमण्डल, विधानपालिका, विधायिका, व्यवस्थापिका शासन के विधि निर्माण करने वाले अग के लिए प्रयुक्त हिन्दी भाषा के पर्यायवाची शब्द हैं।

(Legislative Assembly) एव दो राज्या मे जनरल कोट (General Court) कहा जाता है।[2] व्यवस्थापिका एकसदनीय अथवा द्विसदनीय होती है। इगलैण्ड, अमेरिका, फ्रान्स, भारत, सोवियत रूस, स्विट्जरलैंड, पश्चिमी जमनी, कनाडा आस्ट्रेलिया आदि देशो की व्यवस्थापिकाएँ द्विसदनात्मक हैं। दोनो सदनो के नाम हर देश मे भिन्न भिन्न है। इगलैण्ड मे निम्न सदन को हाउस ऑफ कॉमन्स (House of Commons) एव उच्च सदन को लॉड सभा (House of Lords), सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रतिनिधि सभा (House of Representative—निम्न सदन) एव सीनेट (Senate—उच्च सदन), स्विट्जरलैण्ड मे राष्ट्रीय परिषद (National Council—निम्न सदन) एव राज्य परिषद (Council of States—उच्च सदन), भारत मे लोकसभा (Loka Sabha or the House of Peoples—निम्न सदन) एव राज्य सभा (Rajya Sabha or the Council of States—उच्च सदन), सोवियत रूस म निम्न सदन को सघ सोवियत (Soviet of the Union) एव उच्च सदन को राष्ट्रीय सोवियत (Soviet of the Nationalities) की सज्ञा दी जाती है।

व्यवस्थापिकाओ का विकास

विधि-निर्माण आधुनिक राज्यो का प्रमुख काय है। प्राचीन काल मे विधि-निर्माण न तो शासन का प्रधान काय एव दायित्व ही था और न वतमान काल की भाति प्रतिनिधि सभाओ द्वारा विधियो का निर्माण ही होता था, अपितु विधिया दीघकालीन परम्पराआ एव रीति-रिवाजो पर आधारित होती थी। समय वीतन के साथ-साथ इन सामाजिक विधियां का महत्व कम होता चला गया और व्यवस्था तथा शान्ति की स्थापना के लिए कायपालिका द्वारा दिये जाने वाले आदेश विधि का रूप धारण करने लग।

प्रतिनिधि प्रणाली के उदय के सम्बन्ध म गेटेल के अनुसार पर्याप्त मतभेद है। परम्परागत मत यह है कि प्रतिनिधि सभाओ का विकास उत्तरी यूरोप के देशो मे प्राचीन ट्यूटानिक सभाओ (Teutonic Folkmoots or Assemblies of Freemen) से हुआ है।[3] इन सभाओ मे जन जाति के प्रमुख शामिल होते थे। यह सभाए परामशदात्री परिषद के रूप मे काय करती थी और सामान्य नीति से सम्बन्धित महत्वपूण प्रश्नो को निश्चित करती थी। इगलण्ड मे इस प्रकार की सभा का प्रारम्भिक रूप Witenagemot—विद्वानजनो की सभा—थी। समाज के प्रमुख व्यक्ति इसम भाग लेते थे। इनका सम्मेलन वष म कई वार इगलैंड के राजा के द्वारा बुलाया जाता था। धीरे-धीरे यही सस्था राज्य की प्रमुख सस्था महा परिषद (The Great Council of the Kingdom) बन गयी। नवीन कर लगाने के लिए इसकी स्वीकृति आवश्यक

---

2 Wheare, K C *Legislatures* p 1
3 Gettell, R G *Political Science*, pp 309 10

थी। यही सस्था कालान्तर मे ब्रिटेन की प्रतिनिधित्वपूर्ण राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के रूप म विकसित हो गयी।

ब्रिटिश ससद वर्तमान ससदो की जननी मानी जाती है। ब्रिटिश ससद से ही प्रतिनिधि शासन की धारणा एव ससदीय शासन प्रणाली के विचार का प्रादुर्भाव एव विकास हुआ है। अत ब्रिटिश ससद का इतिहास 'व्यवस्थापिका' या 'विधानमण्डल' का इतिहास माना जाना चाहिए। व्यवस्थापिका से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्तो की नीव ब्रिटिश ससद के विकासकाल म पडी है और इन्ही सिद्धान्तो को लोकतन्त्रीय पद्धति के अनिवार्य तत्वो के रूप म मान्यता दी जाती है। ब्रिटिश ससद के विकास का सक्षिप्त विवरण अपेक्षित है, जो निम्नवत है

उपर्युक्त उल्लिखित ब्रिटिश राज्य की महा परिषद (Great Council of the Kingdom) मे कालान्तर म समाज के नवीन वर्गों को भी प्रतिनिधित्व दिया गया। फलस्वरूप उसके आकार मे वृद्धि हुई और सदस्यो को श्रेणियो म वर्गीकृत किया गया। 1215 ई इसके महान् घोषणापत्र—मगना कार्टा—का वर्ष है। द्वारा लोकतन्त्रीय नियन्त्रण की नीव का शिलान्यास नही हुआ था अपितु यह तो केवल राज्य की शक्तियो को सामन्तो द्वारा सीमित करने का प्रयत्न था। इगलण्ड के राजा को जब धन की आवश्यकता होती थी तब वह छोटे भू स्वामियो से सम्पर्क स्थापित करता था। छोटे भूमिधर बहुसख्या मे थे और वे धन प्रदान करने की क्षमता रखते थे। ब्रिटिश राजाओ द्वारा इन छोटे भूमिधरो को अपने कुछ प्रतिनिधि नामाकित करने के आदेश दिये जाते थे जिससे वह उनसे कर सम्बन्धी स्वीकृति प्राप्त कर सके। राजा द्वारा बेरन (Baron), पादरी (Clergy), नाइट (Knight) एव बर्गेस (Burgess) आदि जिनमे कर देने की क्षमता थी, आमन्त्रित किये जाते थे। 1265 ई तक इस प्रकार गठित ससद शासन का एक स्थायी अग बन चुकी थी। प्रारम्भ म ससद की सदस्यता सम्मान या सत्ता का स्रोत नही मानी जाती थी अपितु राजाज्ञा एव दण्ड भय के कारण अनिच्छापूर्वक ही इसकी सदस्यता ग्रहण की जाती थी। इन प्रारम्भिक ससदो से यह अपेक्षित था कि वे राजा की बातो को सुनकर ही उन्हे स्वीकृति दे। इन ससदो का उद्देश्य लोकतन्त्र की स्थापना करना नही था अपितु शाही राजस्व म वृद्धि करना था।'[4]

प्रारम्भ मे ससद के अधिवेशन एक निकाय के रूप म ही होते थे। परन्तु बाद म ससद समाज के तीन वर्गों—सामन्त, पादरी एव सामान्य प्रजाजनो (commons)—का प्रतिनिधित्व करने वाले तीन सदनो मे विभाजित हो गयी थी। 1295 ई म उच्च पादरियो एव सामन्तो के हितो म समानता होने के कारण वे एक सदन—लॉर्ड सभा—म सगठित हो गये। छोटे सामन्त एव स्वतन्त्र भूमिधर हित समान होने के कारण एक साथ मिल गये और एक सदन—कॉमन्स सभा—म सगठित हो गये। अत ब्रिटेन म

4 Gettell R G *op cit*, p 310

द्विसदनीय प्रणाली का निर्माण सुनिश्चित योजना का परिणाम नही था अपितु आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियो का परिणाम था। कॉमस सभा के सदस्य प्रतिनिधियो के रूप म भाग लेते थे फलत इससे वतमान क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के सिद्धात की नीव पडी। लॉड सभा के सदस्य वर्गीय प्रतिनिधित्व के सिद्धात के अनुसार व्यक्तिगत रूप स ही लॉड सभा मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किये जाते थे। लॉड सभा यथाथ म महापरिषद (Great Council or Magnum Councilium) का स्थायीकरण था।

यूरोप के अय देशो मे इगलण्ड की अपेक्षा ससदा—प्रतिनिधि सदनो—का विकास धीमी गति एव भिन्न तरीके से हुआ है। जमनी, फ्रास एव स्पेन म मध्ययुगीन प्रतिनिधि सभाएँ थी। नगरा के विकास एव राष्ट्रीय ससदो म उनके द्वारा प्रतिनिधित्व की माग का प्रतिनिधित्व की धारणा के विकास म महत्वपूण योग है। गेटेल[5] के अनुसार "हर वग के प्रतिनिधियो को पृथक रूप से आमन्त्रित किया जाता था। वे पृथक सदना मे मतदान करते थे। इन देशा की ससदो मे तीन एव कभी-कभी चार सदन होते थे। हर वग अपने अधिकारा एव हिता की रक्षा के लिए सजग एव प्रयत्नशील रहता था। प्रतिनिधि जिस वग द्वारा निर्वाचित किय जाते थ, उसके हिता की रक्षाथ नियुक्त अभिकर्ता जैसी स्थिति रखते थे। यह विचार अभी तक विकसित नही हुआ था कि प्रतिनिधि सम्पूण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। फ्रास जसे देश म इन मध्ययुगीन सभाओ का कई शताब्दियो तक अधिवेशन न बुलान के कारण कोई अस्तित्व ही नही रहा था। वग प्रतिनिधित्व की धारणा का अत फ्रेंच क्रांति के समय हुआ और तभी राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व की धारणा की स्थापना हुई थी। 19वी शताब्दी मे यूराप मे आधुनिक अर्थो म राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व युक्त व्यवस्थापिकाओ की स्थापना हुई थी।"

व्यवस्थापिका के प्रकार

व्यवस्थापिका के दो ही मुख्य प्रकार ह एकसदनीय (Unicameral legislature), एव द्विसदनीय व्यवस्थापिका (Bicameral legislature)। एकसदनीय व्यवस्थापिका की अपेक्षा द्विसदनीय व्यवस्थापिका का ही अधिक प्राधान्य है।[6]

उपर्युक्त के अतिरिक्त वर्गीकरण के तीन अय आधार भी हो सकते है (i) सख्या, (ii) रचना की पद्धति, और (iii) अधिकार एव शक्तिया।

(1) **सदस्य सख्या की दृष्टि से** कुछ व्यवस्थापिकाएँ लघु *या कम सदस्य-सख्या* वाली हैं, तो कुछ वृहद या बहुसदस्यीय है, जसे—ब्रिटिश लॉडसभा एव रूस की सुप्रीम सावियत। परन्तु यह वैज्ञानिक वर्गीकरण नही है। अनेक छोटे देशो म अपक्षाकृत वहद व्यवस्थापिका पायी जाती है, यथा—इगलैण्ड। इसके विपरीत, वड देश भारत की सदस्य सख्या ब्रिटिश ससद की सदस्य सख्या स काफी कम है।

5 Gettell, R G *op cit*, pp 311-12

6 देखिए अध्याय 9 द्विसदनवाद।

(2) रचना की दृष्टि से व्यवस्थापिकाओ के दो वर्ग हैं (i) निर्वाचित (Elected), एव (ii) अनिर्वाचित (Non-elected)। (i) निर्वाचित व्यवस्थापिकाओ मे प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदनो के उदाहरण हैं इगलण्ड की कामन्स सभा, अमरिकी प्रतिनिधि सदन, सुप्रीम सोवियत का निम्न सदन सघीय सोवियत (Soviet of the Union) स्विटजरलण्ड की सघीय सभा का निम्न सदन राष्ट्रीय परिषद (National Council) एव भारतीय ससद का निम्न सदन लोक सभा। अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदनो के उदाहरण है 1913 ई तक अमरिकी सीनेट, भारत की राज्यसभा एव अनेक भारतीय राज्यो (Indian States) की व्यवस्थापिका के उच्च सदन विधान परिषद (Legislative Council)। भारत की ससद का उच्च सदन—राज्यसभा—आशिक रूप से निर्वाचित है, इसके 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। दक्षिणी अफ्रीका की सीनेट के 8 सदस्य राज्याध्यक्ष द्वारा मनोनीत किये जाते है। लका के प्रथम सविधान के अन्तर्गत निर्मित सीनेट आशिक रूप से निर्वाचित एव मनोनीत सदन थी। (ii) अनिर्वाचित (Non elected) व्यवस्थापिकाओ के अन्तर्गत वशानुगत एव मनोनीत व्यवस्थापिकाएँ आती हैं। लॉर्ड सभा ऐसा ही एक सदन है। उसके सदस्य वशानुगत एव मनोनीत होते है। कनाडा की सीनेट के सदस्य गवनर जनरल द्वारा जीवन भर के लिए मनोनीत किये जाते हैं। बर्मा के प्रथम सविधान के अन्तर्गत द्वितीय सदन—Chamber of Nationalities—मे 125 सदस्य थे जो विभिन्न राष्ट्रीयताओ (nationalities) द्वारा चुने जाते हैं। शान एव करेन राज्यो के प्रतिनिधि वहा के प्रमुखो द्वारा निर्वाचित किये जाते थे अत बर्मा का उच्च सदन अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन था।

(3) अधिकार एव शक्तियो की दृष्टि से व्यवस्थापिकाओ को पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न एव आशिक प्रभुत्व सम्पन्न वर्गों मे बाँट सकते है। ब्रिटिश ससद पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न व्यवस्थापिका का उदाहरण है। भारतीय ससद और अमेरिकी काग्रेस ब्रिटिश ससद की भाति पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न नही हैं। लिखित सविधान, मौलिक अधिकारो के उल्लेख एव शक्तियो के विभाजन से ससद की प्रभुत्व-सम्पन्नता पर सीमा निर्धारित हो जाती है। व्यवस्थापिकाओ के निम्न सदन उच्च सदन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होते हैं। अमेरिकी सीनेट केवल इस नियम का अपवाद है।

उपर्युक्त तीनो वर्गीकरण एक दूसरे का अतिक्रमण करते है। जैसे—अमरिकी सीनेट लघु होते हुए भी एक शक्तिशाली सदन है और उच्च सदन होते हुए भी वह निर्वाचित सदन है। इसके विपरीत लॉर्ड सभा वृहद् एव वशानुगत है परन्तु शक्तिहीन सदन है। ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस प्रकार के अतिक्रमण से वर्गीकरण की वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है। अत एकसदनीय एव द्विसदनीय वर्गीकरण ही अधिक ग्राह्य है।

एक लम्बे समय तक द्विसदनीय व्यवस्थापिका राजनीति विज्ञान का स्वीकृत सिद्धान्त रही है। फलस्वरूप विश्व की अधिकाश व्यवस्थापिकाएँ द्विसदनात्मक हैं।

ब्राइस का मत है कि यह सिद्धान्त अमेरिकी सवैधानिक सिद्धान्तो का आधार है। सर हेनरी मेन एव बेजहोट ने भी द्वितीय सदनो का समथन किया है। 18वी एव 19वी सदी के प्रारम्भिक काल म एकसदनीय व्यवस्थापिका के प्रति अधिक झुकाव था। अमरिकी विचारक बेंजामिन फ्रैंकलिन एकसदनीय व्यवस्था का उग्र समथक था। उसने द्विसदनीय व्यवस्था की तुलना एक ऐसी गाडी से की है जिसके दोनो तरफ के दो घोडे विपरीत दिशा म गाडी को खीचते हैं। फलस्वरूप पेन्सलवेनिया राज्य के प्रथम सविधान द्वारा एकसदनीय व्यवस्थापिका का निर्माण किया गया था। इसी समय इगलण्ड के विचारक बेन्थम ने एकसदनीय ससद का सुझाव दिया था। क्रान्तिकालीन फ्रास मे एकसदनीय व्यवस्थापिका का विचार अधिक प्रचलित था। इस समय टारगोट (Turgot) एकसदनवाद का प्रबल समथक था। फलस्वरूप 1791 ई के सविधान म सवसम्मति से एक सदन---राष्ट्रीय सभा---के निर्माण का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। 1793 ई के सविधान मे भी एकसदनीय व्यवस्थापिका की ही स्थापना की गयी थी। परन्तु 1795 ई मे फ्रास म द्विसदनीय व्यवस्था को अपनाया गया। यह व्यवस्था 1848 ई तक कायम रही। इसी वष पुन अल्पकाल के लिए फ्रास म एकसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी। 1848 ई म फ्रान्स मे एकसदनीय व्यवस्था का प्रबल समथक लामार्टीन (Lamartine) था। 1795 ई मे द्विसदनवाद के समथक Boissy d' Anglas का मत था कि फ्रास की क्रान्ति के पश्चात अनेक बुराइया एव कष्टो का कारण एकसदनीय व्यवस्थापिका के हिंसात्मक एव अतिवादी काय हैं। एकसदनीय सभाओ की काय-पद्धति म निष्कृष्ट प्रकार की हिंसा, अस्थिरता यित्व एव अतिवादिता का प्राधान्य था।[7] केवल कुछ देशो को छोडकर अधिकाश मे एकसदनीय प्रधान देशो ने कालान्तर मे द्विसदनीय व्यवस्थापिका को स्वीकार कर लिया है।

इगलण्ड म कॉमनवेल्थ-काल (1649-1660) म एकसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी थी। परन्तु राजतन्त्र के पुनर्स्थापन (Restoration of 1660) के पश्चात लॉडसभा की पुन स्थापना की गयी। सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम सविधान (Articles of Confederation) के अन्तगत गठित राष्ट्रीय काग्रेस (National Congress) एकसदनीय व्यवस्थापिका थी। इस व्यवस्था से सभी असन्तुष्ट थे। फिलाडेलफिया सम्मलन मे सयुक्त राज्य अमेरिका के वतमान सविधान के निर्माताओ मे केवल बेंजामिन फ्रेंकलिन को छोडकर सभी सदस्य एकसदनीय व्यवस्थापिका के विरोधी थे। इस सम्बन्ध म हेमिल्टन के निम्न विचार महत्वपूण है "महाद्वीपीय काग्रेस एकसदनीय सभा के दोषो को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। प्राय यह हुआ है कि अनेक प्रस्ताव उसके द्वारा दूसरे दिन अस्वीकृत करने के लिए ही पारित किये गये थे।"[8] केन्ट ने इस सम्बन्ध मे पेन्सलवेनिया एव जार्जिया राज्य के उदाहरण

7 'The proceedings of the single chamber legislative assemblies were marked with violence instability and excesses of the worst kind —Garner *op cit*, p 548

8 Hamilton *Federalist*, Nos 62 and 63

देते हुए लिखा है कि इन राज्यो मे अस्थिरता के फलस्वरूप भावुक एव भिन्न भिन्न प्रकार की विधियाँ पारित की गयी थी। गार्नर का कथन है कि स्पेन, पुर्तगाल, नेपल्स, मैक्सिको, बोलाविया, इक्वेडर एव पीरू आदि सभी राज्यो ने एकसदनीय व्यवस्थापिका का परित्याग कर दिया है और द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की है। परन्तु 1931 ई के स्पेन के सविधान के अन्तगत एकसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी थी।

भारत के नवीन सविधान मे द्विसदनीय व्यवस्थापिका स्थापित की गयी है। कुछ भारतीय राज्यो म एकसदनीय व्यवस्थापिका भी है। मध्य प्रदेश म द्वितीय सदन की स्थापना का प्रस्ताव 1959 ई म पारित हुआ था परन्तु 1969 ई म ही द्वितीय सदन—विधान परिषद (Legislative Council)—की स्थापना हुई। कुछ भारतीय राज्यो ने द्वितीय सदन को समाप्त करन की माँग की है। साम्यवादी चीन म एकसदनीय व्यवस्थापिका है।

व्यवस्थापिका के कार्य

व्यवस्थापिका का प्रधान काय विधि निर्माण करना है। विधि निर्माण के अतिरिक्त उसके अ य काय भी है। किसी देश की व्यवस्थापिका के काय उस दश के सविधान के स्वरूप पर निभर करते है। व्यवस्थापिका के कार्यों एव दायित्वा का विधायी, सवैधानिक कायपालिका तथा प्रशासनिक, न्यायिक एव वित्तीय श्रेणिया मे वर्गीकृत किया जाता है।

1 विधायी एव सवधानिक काय
(Legislative and Constitutional Functions)

परिवतनशील वतमान सामाजिक परिस्थितिया मे प्रति वष प्रत्येक देश म नवीन विधियो की आवश्यक्ता पडती है। व्यवस्थापिका इस आवश्यकता की पूर्ति करती है। वह विधि निर्माण का प्रमुख एव प्रधान स्रोत ह परन्तु एकमात्र स्रोत नही है। आधुनिक व्यवस्थापिकाओ पर इतना अधिक काय भार होता है कि वे अपने इस प्रमुख दायित्व को भली प्रकार सम्पादित नही कर पाती हैं। इसके अतिरिक्त, अनक ऐसे विषय होते हैं जिनके सम्बन्ध म विधि निर्माण हेतु विशेष ज्ञान एव योग्यता की आवश्यक्ता होती है। अत व्यवस्थापिका कायपालिका का विधि बनाकर उसकी सीमा के अन्तगत आदेश, नियम उपनियम आदि बनाने का अधिकार प्रदान कर देती है। इसे प्रदत्त विधान या व्यवस्थापन (Delegated Legislation) या उप-विधान (Subordinate Legislation) की सज्ञा दी जाती है। प्रदत्त विधान की आधुनिक काल म असाधारण वृद्धि हुई है। ऐसी विधिया के सन्दर्भ म कभी कभी तो कुछ मामलो म ससद की स्वीकृति की भी आवश्यक्ता नही पडती।[9]

सभी देशा की व्यवस्थापिकाओ की विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियाँ समान नही

9 प्रदत्त विधान के लिए देखिए अध्याय 14।

हैं। जिन देशा म व्यवस्थापिकाएँ प्रभुत्व-सम्पन्न होती है वहाँ वे हर प्रकार की विधि का निर्माण कर सकती हैं। यथा—ग्रटब्रिटेन की ससद। ब्रिटिश ससद प्रभुत्व-सम्पन्न है अत विधि निर्माण के क्षेत्र म उस पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही है। उसक द्वारा निर्मित प्रत्यक विधि देश के न्यायालया के लिए बन्धनकारी है। इसके विपरीत, लिखित सविधान एव सघीय देशा म विधानमण्डल सम्पूण प्रभुत्व-सम्पन्न नही हाते हैं। फलस्वरूप उनकी विधि निर्माण की शक्ति सीमित होती है तथा न्यायालया क द्वारा विधिया को अवैधानिक घोषित किया जा सकता है। उदाहरणाथ सयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस और भारत, कनाडा एव आस्ट्रेलिया की ससदे तथा स्विटजरलैण्ड की फेडरल असम्बली की विधायी शक्ति सीमित है। स्विस सविधान म जनता को जनमत-सग्रह (Referendum) के माध्यम से फेडरल असम्बेली द्वारा निर्मित विधिया को अस्वीकृत करन क अधिकार के साथ उपक्रम (initiative) के माध्यम स नवीन विधिया को प्रस्तावित करने का भी अधिकार प्राप्त है। सघात्मक राज्या म सविधान की व्याख्या एव व्यवस्थापिका की विधियो की वैधानिकता की जाच का अधिकार न्यायपालिका को प्राप्त होता है। लेकिन स्विटजरलण्ड म सघीय असम्बली को सविधान की व्याख्या का अधिकार प्रदान किया गया है। सामान्यत व्यवस्थापिका की विधि निर्माण की शक्ति पर निम्नलिखित सीमाएँ होती हैं

(1) सघीय सविधाना म केन्द्रीय या सघीय एव घटक इकाइयो की सरकारा म शक्तिया का स्पष्ट विभाजन होता है। सघीय एव क्षेत्रीय सरकारे केवल अपने अपने क्षेत्र म सम्बन्धित विषया पर ही विधि निर्माण कर सकती है।

(2) कुछ देशा म क्षत्रीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिकाआ की शक्ति सीमित होती है लेकिन केन्द्रीय व्यवस्थापिका की शक्ति सीमित नही होती। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन के अधीन उत्तरी आयरलैण्ड की व्यवस्थापिका की शक्ति सीमित है। दक्षिणी अफ्रीका की ससद की शक्तियाँ असीमित हैं जबकि उसी गणराज्य के चार प्रान्तो—केप प्रान्त, नटाल, ओरज फ्री स्टट एव ट्रान्सवाल—की व्यवस्थापिकाआ की शक्तियाँ सीमित हैं।

(3) एकतन्त्रीय राज्या म पांचवे फ्रच गणराज्य की भाँति यह सम्भव है कि केन्द्रीय एव क्षेत्रीय सरकारो (व्यवस्थापिकाआ म नही) म विधि निर्माण की शक्ति विभाजित हो तथा कुछ विषया म प्रतिनिधि सभा को विधि निर्माण का अधिकार हो एव शप मामलो म कायपालिका को विधि निर्माण का अधिकार हो। पाचवे फ्रेच गणराज्य के सविधान म कुछ विषय पूणतया ससद के क्षेत्रान्तगत है जसे वित्त, सुरक्षा, सम्पत्ति एव नागरिक अधिकार राष्ट्रीयता आदि। शप मामलो म कायपालिका का अध्यादेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है।

(4) कुछ देशो की व्यवस्थापिकाआ को सविधान द्वारा कुछ विषया म विधि निमाण का अधिकार प्रदान नही किया गया है। उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमरिका की सघीय अथवा राज्या की व्यवस्थापिकाआ को लिग-भेद क आधार पर

नागरिक अधिकारो को सीमित करने की शक्ति प्राप्त नही है। इसके अतिरिक्त, सयुक्त राज्य अमरिका की काग्रेस या किसी राज्य की व्यवस्थापिका के द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति, जीवन व स्वतन्त्रता से विधि की उचित प्रक्रिया (due process of law) के विना वचित नही किया जा सकता। किसी व्यक्ति को सम्पत्ति विना मुआवजा दिय शासन द्वारा हस्तगत नही की जा सकती। किसी राज्य को सीनट म समान प्रतिनिधित्व से ससदीय विधि अथवा सवैधानिक सशोधन द्वारा वचित नही किया जा सकता। विधायी शक्ति पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध भारत, मलयेशिया जैसे देशा के नवीन सविधाना मे भी हैं।

(5) सवैधानिक सशोधन सम्बन्धी विधियो पर व्यवस्थापिका का सामान्यत अनियन्त्रित क्षेत्राधिकार नही होता। यह व्यवस्थापिकाओ की स्वाभाविक विधायी शक्ति पर प्रतिबन्ध है। इगलैण्ड एव न्यूजीलैण्ड की ससदे इसका अपवाद हैं। ह्वीयरे का मत है कि "सविधान का उद्देश्य (व्यवस्थापिका सहित) शासन-प्रणाली की स्थापना एव उसकी व्यवस्था करना होता है। अत यह सवथा उचित है कि व्यवस्थापिका को उस अग से उच्च नही बनाया जाना चाहिए जिसके द्वारा व्यवस्थापिका का निर्माण हुआ है।"[10]

विधि निर्माण से सम्बन्धित एक दूसरा प्रश्न भी है। व्यवस्थापिकाओ द्वारा पारित की जान वाली विधिया के सम्बन्ध म व्यावहारिक दृष्टि से आखिरी निणय कौन करता है? दूसरे शब्दा म, विधि निर्माण में व्यवस्थापिका का क्या भाग है? ससद प्रधान देशा म—जैसे इगलैण्ड, भारत सहित राष्ट्रमण्डलीय देशा म—विधिया को प्रस्तावित करने का दायित्व कायपालिका—मन्त्रिमण्डल—का होता है। ससदीय प्रणाली वाले देशा म व्यवस्थापिकाएँ विधि निर्माण के सम्बन्ध म मन्त्रिमण्डल का नतृत्व स्वीकार करती हैं। लकिन इसका अथ यह नही है कि कार्यपालिका पर विधिया को प्रस्तावित करन के सम्बन्ध म प्रतिबन्ध नही है। कर एव व्यय सम्बन्धी कुछेक विधिया का व्यवस्थापिकाओ के समक्ष अनिवायत प्रस्तुत किया जाता है। इन मामला म मन्त्रिमण्डल को कोई स्वतन्त्रता नही होती। शेष मामला म मन्त्रिमण्डल विधि विशेष को विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तावित करन या प्रस्तावित न करन म पूण स्वतन्त्र होता है।

सयुक्त राज्य अमरिका की काग्रेस विधि को प्रस्तावित करन क सम्बन्ध म ससदीय प्रणाली क देशा की अपक्षा अधिक स्वतन्त्र है। परन्तु निश्चित रूप स यह नही कहा जा सकता कि अध्यक्षात्मक देशा म विधिया को प्रस्तावित करन म महत्वपूण भूमिका व्यवस्थापिका और कायपालिका म स किस क हाथा म है। राष्ट्रपति सघीय काग्रेस क नाम सन्दश भजकर विधियाँ प्रस्तावित करता है। लकिन राष्ट्रपति क द्वारा प्रस्तावित विषया पर विधि बनान या न बनान का अन्तिम निणय काग्रेस ही करती है। काग्रेस म विधि निमाण क सम्बन्ध म समितियाँ महत्वपूण भूमिका निभाती है। अत विधि निमाण क सम्बन्ध म अन्तिम निश्चय काग्रेस द्वारा ही नही किया जाता वास्तव म निश्चय ता समितिया क रूप म सगठित नताओ क द्वारा किय जात

10 Wheare K C *Legislatures*, p 99

हैं। लेकिन इतने पर भी व्यवस्थापिका का बहुमत दल विधि निर्माण मे महत्वपूण भाग लेता है। इगलैण्ड की भांति अमेरिकी काग्रेस को भी कुछ विधियां—यथा, राजकीय धन विधेयक—को अनिवायत पारित करना पडता है।

ह्वीयरे का मत है कि इगलैण्ड एव सयुक्त राज्य अमेरिका दोना देशो म विधेयको के सम्बन्ध मे पर्याप्त साम्य है। दोनो ही देशो मे व्यवस्थापिका के नेताओ द्वारा व्यवस्थापिका का कायक्रम निश्चित किया जाता है। परन्तु दोना देशा मे एक महत्वपूण अन्तर भी है। ब्रिटेन म व्यवस्थापिका का नेता ही शासन (कायपालिका) का नेता होता है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे अध्यक्षात्मक प्रणाली के कारण व्यवस्थापिका का नेता व्यवस्थापिका का ही प्रमुख नेता होता है, वह शासन (कायपालिका) का नेता नही होता है। भारत मे ब्रिटिश व्यवस्था का अनुगमन किया गया है।

विधि निर्माण प्रणाली भी सभी देशा म समान नही है। गैर वित्तीय एव वित्तीय विधेयको के पारित होने की पद्धति एक दूसरे से भिन्न है। शासकीय एव व्यक्तिगत सदस्यो द्वारा प्रस्तावित विधेयको के पारित करने की प्रणाली मे भी अन्तर होता है।[11]

सविधान म सशोधन भी व्यवस्थापिका द्वारा ही किया जाता है। इगलैण्ड की ससद को इस सम्बन्ध मे अनियन्त्रित अधिकार प्राप्त है। सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस के दोनो सदना द्वारा सशोधन-प्रस्तावा का प्रभावकारी होने के लिए पारित होना आवश्यक है। भारत म ससद को सविधान के अनेक उपबन्धा को सशोधित करने का अधिकार है। सोवियत सघ मे सर्वोच्च सोवियत को सवैधानिक सशोधन का अधिकार है। स्विट्जरलैण्ड मे भी सविधान के सशोधन म वहा की फेडरल असेम्बली महत्वपूण भाग लेती है।

2 कायपालक एव प्रशासकीय काय
(Executive and Administrative Functions)

व्यवस्थापिका द्वारा ससदीय प्रणाली वाले देशा मे कायपालिका पर नियन्त्रण रखा जाता है। मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका अथात व्यवहार म निम्न सदन के प्रति अपनी समस्त नीतियो एव कार्यो के लिए उत्तरदायी होता है। अध्यक्षात्मक प्रणाली वाले देशा—यथा, सयुक्त राज्य अमेरिका—म कायपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नही होती लेकिन व्यवस्थापिका का कायपालिका पर नियन्त्रण होता है तथा कायपालिका व्यवस्थापिका की उपेक्षा नही कर सकती।

ससदीय प्रणाली वाले देशा म प्रशासन से सम्बन्धित विषया पर प्रश्न पूछ कर काम रोको, निन्दा आदि प्रस्ताव उपस्थित करके, बहस की मांग एव शासन के कार्यों की आलोचना करके कायपालिका पर नियन्त्रण रखा जाता है। अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर मन्त्रिमण्डल द्वारा त्यागपत्र देना अनिवाय है।

---

11 विस्तृत विवरण के लिए देखिए अध्याय 12।

सयुक्त राज्य अमेरिका म काग्रेस का अवरोध एव सन्तुलन की व्यवस्था के अधीन कायपालिका को नियन्त्रित करन के अवसर प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए, अमरिकी राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तिया को प्रभावी वनाने के लिए सीनट क दो तिहाई वहुमत से उनकी स्वीकृति आवश्यक है। इसी प्रकार, विदेशा स की गयी सधियो को भी प्रभावकारी बनाने के लिए 2/3 बहुमत से उनका सीनेट द्वारा अनुमोदन आवश्यक है। युद्ध की घोपणा एव शान्ति स्थापना की भी शक्ति व्यवस्थापिका मे होती है। दूसर शब्दो मे, वदेशिक एव सुरक्षा सम्बन्धी विपयो म भी व्यवस्थापिका को व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। इगलैण्ड म सन्धि करने की शक्ति कायपालिका को प्राप्त है। इसके विपरीत, अमेरिका म सन्धि के मामले मे व्यवस्थापिका (सीनट) की अनुमति आवश्यक है। स्विट्जरलैण्ड मे भी फेडरल असेम्वली द्वारा सधियो की स्वीकृति आवश्यक होती है। स्मरणीय है कि अमरिका मे सन्धि के मामलो म कांग्रस के दोना सदनो को शक्ति प्राप्त नही है अपितु उसके एक भाग—सीनेट—को ही सधि सम्बन्धी अधिकार प्राप्त है। लेकिन इगलैण्ड म ससद सधि एव युद्ध के लिए आवश्यक वित्तीय अनुदान एव विदेश विभाग के अनुदाना को अस्वीकृत करके अप्रत्यक्ष रूप से इन मामलो म हस्तक्षेप कर सकती है।

युद्ध की घोपणा के सम्बन्ध म दो प्रकार के देश है। इगलण्ड एव राष्ट्रमण्डलीय देशा म कायपालिका द्वारा ही युद्ध की घोपणा की जाती है। ससद से इसकी स्वीकृति की आवश्यकता नही होती। स्वीडन भी इसी श्रेणी म आता है। लेकिन दूसरी श्रेणी के दशो म सयुक्त राज्य अमरिका प्रमुख देश है। अमेरिकी काग्रस को ही युद्ध की घोपणा का अधिकार प्राप्त है। फ्रान्स के पाँचवें गणराज्य के सविधान के अनुसार युद्ध की घोपणा का अधिकार फ्रेंच ससद को है। लेकिन इगलैण्ड एव उस वग के देशा मे ससद अप्रत्यक्ष रीति स अर्थात आवश्यक धन की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति द्वारा इस अधिकार को नियन्त्रित करती है। सयुक्त राज्य अमरिका की काग्रेस को युद्ध की घोपणा का सवैधानिक अधिकार तो है लेकिन राष्ट्रपति विदेश नीति के सचालन से एसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है कि कांग्रस को युद्ध की घोपणा करना अनिवाय हो जाये। कुछ व्यवस्थापिकाओ को राज्य के प्रमुख अधिकारियो को चुनन का अधिकार प्राप्त होता है। वह निर्वाचन सम्बन्धी कार्यों का मना दे सक्ते हैं। उदाहरण के लिए, स्विट्जरलैण्ड म फेडरल असम्वली (सघीय व्यवस्थापिका) द्वारा परिसघ के राष्ट्रपति तथा सघीय कायपालिका परिपद क (फडरल काउसल) क सदस्या, न्यायाधीशा एव प्रधान सनापति का निर्वाचन किया जाता है। भारत क राष्ट्रपति का निर्वाचन करने वाले निर्वाचक-मण्डल क सदस्या म भारतीय ससद के दोना सदना क निर्वाचित सदस्य भी होत है। भारत के उपराष्ट्रपति का निर्वाचन भी भारतीय ससद द्वारा किया जाता है। फ्रास के राष्ट्रपति का निर्वाचन वहाँ क दोना सदना की सयुक्त बैठक म होता है। सयुक्त राज्य अमरिका म राष्ट्रपति पद के किसी भी प्रत्याशी को बहुमत प्राप्त न होने पर प्रतिनिधि सभा को यह अधि

कार प्राप्त है कि वह सबसे अधिक मत पाने वाले प्रथम तीन प्रत्याशियो म से किसी भी एक प्रत्याशी का राष्ट्रपति चुन ले। उपराष्ट्रपति पद के लिए भी यदि किसी प्रत्याशी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही होता है तो सीनेट को सबसे अधिक मत पाने वाले दो प्रत्याशिया में से किसी एक को उपराष्ट्रपति निर्वाचित करन का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस के दोना सदना का अपने सदस्यो की निर्वाचन सम्बन्धी योग्यताएँ, अपन निर्वाचनो एव निर्वाचन सम्बन्धी विवादो के सम्बन्ध म निणय करने का अधिकार प्राप्त हाता है।

व्यवस्थापिकाआ का एक महत्वपूण काय शासन की आलोचना करना होता है। महत्वपूण सावजनिक मामला पर व्यवस्थापिका म वाद विवाद होते हैं। व्यवस्थापिकाएँ जनता की शिकायता एव लोकमत को प्रकाश म लान का एक सबल माध्यम है। जान स्टुअट मिल के अनुसार वे 'शिकायता की समिति एव 'विचारा के सदन' के रूप म काय करती हैं।[12]

3 वित्तीय काय
(Financial Functions)

आधुनिक राज्यो मे व्यवस्थापिका का राज्य के वित्त पर पूण नियन्त्रण होता है। सभी लोकतान्त्रिक देशा म यह नियम है कि राजकोष मे से एक पैसा भी व्यवस्थापिका की स्वीकृति के बिना व्यय नही किया जा सकता और जनप्रतिनिधियो की स्वीकृति के बिना न कोई कर ही लगाया जा सकता है। वित्त सम्बन्धी शक्तिया सामान्यत निम्न सदन म ही अधिष्ठित होती है और इसके सदस्य सीधे जनता द्वारा सावजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाते है। समस्त वित्त विधेयक निम्न सदन में ही सवप्रथम प्रस्तुत किये जाते है। यह वतमान समय मे एक सुस्थापित परम्परा है। इगलैण्ड, अमेरिका, फ्रान्स, कनाडा और भारत आदि देशा म यही परम्परा है। सामान्यत वित्त विधेयका के सम्बन्ध मे द्वितीय सदन को प्रथम सदन के समान अधिकार प्राप्त नही होते हैं। लेकिन अमेरिकी सीनट इसका अपवाद है।

कायपालिका द्वारा वार्षिक आय व्यय का विवरण (बजट) तैयार किया जाता है और व्यवस्थापिका के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। वह कायपालिका द्वारा प्रस्तावित मदा म कटौती कर सकती है। व्यवस्थापिका द्वारा जिस रूप मे बजट पारित किया जाता है उसी प्रकार एव स्वीकृत मदो मे ही धन व्यय किया जा सकता है। व्यवस्थापिका यह भी देखती है कि कायपालिका उसके द्वारा स्वीकृत धनराशि को निश्चित नियमो के अनुसार ही व्यय करती है। अत वह लेखा-परीक्षण (audit) भी करती है। इसके लिए व्यवस्थापिका समितिया का निर्माण करती है जैस साव-

12 They debate great issues of public concern The constitute 'a ground inquest of the nation They act as what John Stuart Mill called a committee of grievances' and 'a congress of opinions —Wheare, K C *Legislatures*, p 1

जनिक लेखा समिति एव अनुमान समिति । इसके अतिरिक्त, महालेखा परीक्षक की वार्षिक रिपोट ससद के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत की जाती है ।

4 न्यायिक कार्य
(Judicial Functions)

व्यवस्थापिका द्वारा अनेक देशा मे न्यायिक काय किये जाते हैं । इगलण्ड की ससद का द्वितीय सदन—लॉड सभा—देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है । सयुक्त राज्य अमेरिका मे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशा एव सघीय अधिकारियो के विरुद्ध महाभियोग की जाच सीनेट करती है । प्रतिनिधि सदन द्वारा महाभियोग का प्रस्ताव किया जाता है । ऐसी स्थिति म सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश सीनेट की अध्यक्षता करता है । भारतीय ससद को भी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की जाच करने का अधिकार है । फ्रास मे राष्ट्रपति एव किसी मन्त्री पर महाभियोग लगाये जाने पर 'काउ सल ऑफ रिपब्लिक' न्यायालय का काय करती है ।

व्यवस्थापिका का आकार

विधि निर्माण मे वाद विवाद एव विचार विमश विशेष एव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । सामान्यत विचार विमश के सम्बन्ध मे एक स दो भले होते हैं। जब विवेच्य विषय का सम्बन्ध राष्ट्र से हो, तो दो की अपेक्षा दो सौ की सख्या अपेक्षित हे । दूसरे शब्दो मे, विधि निर्माण के हेतु व्यवस्थापिका म पर्याप्त सदस्य सख्या होनी चाहिए जिससे समाज के सभी वर्गों एव हितो तथा विचारा का समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके । ऐसी अवस्था मे ही विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि व्यापक स्वीकृति पर आधारित हो सकती है । व्यवस्थापिका की सदस्य-सख्या के निर्धारण के सम्बन्ध मे किसी सिद्धान्त या नियम की स्थापना सम्भव नही है। प्रत्येक देश के आकार या क्षेत्रफल, जनसख्या अथवा अन्य आवश्यकताओ के अनुसार उनकी व्यवस्थापिकाओ के आकार या सदस्य-सख्या म भी अन्तर होता है । 1789 ई की फ्रान्स की व्यवस्थापिका सबसे बडी व्यवस्थापिका थी । इसम 1,200 सदस्य थे। जनता द्वारा निर्वाचित आधुनिक सदना म एक तरफ बडे अर्थात् अधिक सदस्य-सख्या वाले सदन हैं ता दूसरी तरफ छोट अर्थात् कम सदस्य-सख्या वाले सदन हैं । उदाहरण के लिए, इगलैण्ड की कॉमन्स सभा म 630 सदस्य हैं । फ्रान्स की राष्ट्रीय सभा म 482, इटली के चेम्बर आफ डेपुटीज मे 630, भारतीय लोकसभा म 525, जमन बुन्डस्टेग म 496, अमरिकी प्रतिनिधि सदन म 435, सोवियत रूस की सघ सोवियत म 791 सदस्य हैं । यह सभी सदन आकार म बहुत बडे हैं और जन-समाआ से प्रतीत होत हैं । वहदाकार हान के कारण यह सुचारु रूप स अपने दायित्वा का सम्पादन नही कर पात है । जहाँ एस बहु सदस्य-सख्या वाल सदन हैं, वहाँ दूसरी तरफ अनेक सदना की सदस्य सख्या बहुत कम भी है । उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमरिका मे दा राज्या निवदा एव डिलावार की सीनट म केवल 17 सदस्य हैं और इन राज्या की सीनट एक समिति सी प्रतीत हाती है । स्विट्जरलण्ड की राष्ट्रीय

राष्ट्र परिषद (National Council) म 196 सदस्य है और राज्य परिषद (Council of State) म 44 सदस्य हैं। दक्षिणी अफ्रीका की असेम्बली म 159 एव आस्ट्रेलिया क प्रतिनिधि सदन म 121 सदस्य ह। कुछ व्यवस्थापिकाएँ आश्चयजनक रूप से बडी हैं, जैसे सयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू हैम्पशायर के प्रतिनिधि सदन म 400 सदस्य हैं जबकि वहाँ की जनसख्या 6 लाख है। दूसरी तरफ न्यूयाक राज्य की जनसख्या 1 करोड 70 लाख है लेकिन उसकी असेम्बली म केवल 150 सदस्य है। ह्वीयरे के अनुसार यह आश्चयजनक है कि 'सयुक्त राज्य अमरिका एव भारत जैस वहद जनसख्या वाले देशो की व्यवस्थापिका के सदना की सदस्य-सख्या ग्रेट ब्रिटेन, इटली एव फ्रास के सदना की तुलना म काफी कम है। उपयुक्त दोना देशो के सदना द्वारा अपेक्षाकृत अधिक जनता का प्रतिनिधित्व किया जाता है। यह सत्य है कि सघात्मक राज्य होने के कारण एव भारतीय जनता को राष्ट्रीय एव राज्या की व्यवस्थापिकाओ दोना ही म प्रतिनिधित्व प्राप्त है। लेकिन फिर भी यह विचारणीय है कि क्या ग्रेट ब्रिटेन इटली एव फ्रास क विधायी सदन विशेष वडे हैं या अमेरिकी एव भारतीय व्यवस्थापिका के सदन विशष छोटे है।'[13]

इसके अतिरिक्त द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका वाले देशो म द्वितीय सदन की सदस्य-सख्या कम होती है। इगलैण्ड की लॉड सभा इसका अपवाद है। उसकी सदस्य-सख्या कामन्स सभा से भी अधिक है। लेकिन व्यवहार म लॉड सभा के सभी सदस्य उसकी बठका म भाग नही लेत। सोवियत सघ की सुप्रीम सोवियत के दोनो सदना—निम्न सदन (सघ सोवियत) एव उच्च सदन (राष्ट्रीयताओ की सोवियत)—की सदस्य सख्या म बहुत अधिक अन्तर नही है। सोवियत उच्च सदन की सदस्य सख्या 653 है जबकि निम्न सदन म 791 सदस्य हैं। लेकिन अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड एव भारत के द्वितीय सदना की सदस्य-सख्या प्रथम सदन की तुलना म कम है। सयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट की सदस्य-सख्या कवल 100 है।

ह्वीयरे का कथन है कि अधिकाश देशा की व्यवस्थापिका के सदना—विशेपकर निम्न सदना—की सदस्य सख्या सामान्यत 100 से 300 के मध्य म है।[14] उन्होने अपन मत क समथन म कनाडा क हाउस ऑफ कामन्स (265 सदस्य), वेल्जियम के निम्न सदन (212 सदस्य), स्विस निम्न सदन (233 सदस्य), स्विटजरलैण्ड की नेशनल काउन्सल (196 सदस्य), आयरलण्ड (144 सदस्य), नीदरलण्ड (150 सदस्य), डनिस (179 सदस्य) के उदाहरण दिये हैं। न्यूजीलण्ड के निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन—की सदस्य-सख्या केवल 80 है। ह्वीयर का कथन कि अधिकाश निम्न सदना की सदस्य सख्या 300 से अधिक नही है। यह केवल कम जनसख्या एव छोटे उपयुक्त देशा के सन्दर्भ म ही सत्य है, लेकिन इगलैण्ड, भारत, रूस, फ्रास, अमरिका आदि देशो के निम्न सदना की सदस्य-सख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।

13 Wheare K C *op cit* pp 3 4
14 Wheare K C *op cit* p 4

ह्वीयरे का मत है कि व्यवस्थापिका की सदस्य सख्या क फलस्वरूप उसक सगठन एव काय-पद्धति सम्बन्धी अनेक महत्वपूण समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, वडे सदन के समक्ष प्रथम समस्या स्थान की होती है। इगलण्ड की कामन्स सभा का भवन अपनी सदस्य सख्या को देखत हुए छोटा है। 1943 ई म उसके पुन निमाण के समय इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया था कि कॉमन्स क भवन को इतना वडा बनाया जाय कि सभी सदस्य स्थान पा सके। इगलण्ड अपवाद है अन्यथा सभी देशा के सदना म सदस्यो के बैठने की समुचित व्यवस्था होती है।

व्यवस्थापिका सभा की कितनी सदस्य-सख्या उचित है ? फाइनर के अनुसार इस सम्बन्ध म विचारणीय वात यह है कि प्रतिनिधियो की सख्या जितनी अधिक होगी उतने ही छोटे निर्वाचन क्षेत्र होगे और इससे जनता को अपक्षाकृत अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। श्रेष्ठ विधि के निर्माण के लिए प्रतिनिधित्व का प्रधान महत्व है। लकिन अधिक सदस्य सख्या के कारण प्रभावशाली काय-पद्धति को अपनाना कठिन हो जाता है। अत पूण प्रतिनिधित्व को अधिकतम महत्व दिया जाना चाहिए। काय-पद्धति सम्बन्धी आपत्ति के सम्बन्ध म फाइनर का मत है कि 'विधि निर्माण का अधिकाश काय समितियो द्वारा किया जाता है।' अत फाइनर न आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्या के निम्न सदन की सख्या 800 निश्चित की है। उसने सदस्य-सख्या के वढान का उग्र समयन किया है। 'नियाजन के युग म व्यवस्थापिका को वडा होना चाहिए। यदि वप म 365 दिना का नही वढाया जा सकता तो अपन काय भार को वहन करने के लिए व्यवस्थापिका क सदस्यो की सख्या म वृद्धि की जानी चाहिए।'[15]

व्यवस्थापिका का कार्यकाल

व्यवस्थापिका के कायकाल या अवधि की समस्या इस मूल प्रश्न स सम्बन्धित है कि प्रतिनिधित्व कसा होना चाहिए ? यदि प्रतिनिधि सदन जनता की इच्छा का भली प्रकार एव उचित ढग से प्रतिनिधित्व करे तो प्रतिनिधि सदना का कायकाल छोटा होना चाहिए। जॉन आदम (John Adams) का कथन था कि अमरिकी सविधान के निर्माण के समय यह विचार वहुत लोकप्रिय था कि व्यवस्थापिकाओ का काय-काल छोटा हाना चाहिए। 'जहाँ वार्षिक चुनाव नही होत वहाँ अत्याचारतन्त्र का आरम्भ हो जाता है।' अत अमरिका के सविधान क निर्माण-काल म मुख्य प्रश्न अत्याचार स रक्षा का था, न कि शासन म क्षमता से। शासन की क्षमता की उस समय उपक्षा की गयी थी। अमरिकी प्रतिनिधि सदन का द्विवर्षीय कायकाल विना वाद विवाद क सविधान क निर्माताओ न स्वीकार कर लिया था। उस समय की परिस्थितिया म एसा सम्भव था। 'फडरलिस्ट' (*The Federalist*) नामक रचना म प्रतिनिधि सदन क एकवर्षीय कायकाल की अपक्षा द्विवर्षीय कायकाल क पक्ष म निम्न ठोस तर्क दिय गय हैं (1) उस समय सदन पर नियन्त्रण की कम आवश्यकता थी। सविधान

15 Finer, H *op cit*, p 390

द्वारा अन्य सघीय अगो के माध्यम से प्रतिनिधि सदन की शक्ति पर पर्याप्त प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। (2) योग्य विधायक बनने के लिए विधि एव उसके निर्माण का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। यह ज्ञान व्यावहारिक अनुभव से ही सम्भव होता है। अत अमेरिकी सविधान निर्माताओ ने एक वर्ष के स्थान पर द्विवर्षीय कार्यकाल को स्वीकार किया। (3) इसके अतिरिक्त, लम्बा कार्यकाल व्यवस्थापिका के विघटन एव नवीन निर्वाचन सम्बन्धी कठिनाइयो से भी मुक्ति प्रदान करता है।

यूरोपीय देशो की व्यवस्थापिकाओ के कार्यकाल भिन्न भिन्न है। इगलैण्ड का निम्न सदन—कामन्स सभा—का कार्यकाल पाच वर्ष है। 1911 ई के पूर्व इसका कार्यकाल सात वर्ष था। 1641 ई के अधिनियम के अनुसार इगलण्ड की ससद का कार्यकाल केवल तीन वर्ष था। 1716 ई मे सप्तवर्षीय अधिनियम (The Septennial Act) के अनुसार इसका कार्यकाल सात वर्ष कर दिया गया था। ससदीय अधिनियम 1911 ई के पारित होने पर कॉमन्स सभा विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली सदन बन गया है। लार्ड सभा की शक्तियाँ सीमित कर दी गयी है। अत कॉमन्स पर अपेक्षाकृत अधिक नियन्त्रण की आवश्यकता अनुभव नही की गयी। जनमत सग्रह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। अत कॉमन्स सभा पर नियन्त्रण का केवल एक ही साधन रह जाता है और वह है कि कॉमन्स सभा के कार्य-काल को कम कर दिया जाय। इस व्यवस्था का विरोधी दल के कुछ सदस्यो ने इस आधार पर विरोध किया है कि शीघ्र चुनावो के कारण दलीय नियन्त्रण बढ जायेगा और मन्त्रिमण्डल की शक्ति मे अधिक वृद्धि हो जायेगी तथा व्यक्तिगत सदस्यो की स्वतन्त्रता सीमित हो जायेगी। इसके अतिरिक्त ससदीय जीवन के खर्चे म वृद्धि हो जायगी। अनुदारदलीय सदस्यो के दबाव के कारण अधिनियम म यह धारा जोड दी गयी है कि अकेले कॉमन्स सभा एव राजा के द्वारा ससद के पाच वर्ष के कार्यकाल मे वृद्धि नही की जा सकती। लेकिन फाइनर के अनुसार आज यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या कॉमन्स सभा का कार्यकाल पाच वर्ष से कम नही होना चाहिए?

फ्रान्स म व्यवस्थापिका का कार्य काल पाच वर्ष था। शासन व्यवस्थापिका को भग नही कर सकता था। इगलैण्ड मे मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर क्राउन के द्वारा कामन्स सभा को कार्यकाल के पूर्व भग किया जा सकता है। फ्रान्स मे अक्टूबर 1946 ई के निर्वाचन अधिनियम की धारा 36 के अधीन सदस्य पाँच वर्ष के लिए चुने जाते हैं। 1919 ई के जर्मनी के वीमर सविधान के अन्तर्गत सघीय विधानमण्डल का कार्यकाल 4 वर्ष था लेकिन शासन को उसे उसके पूर्व भग करने का अधिकार प्राप्त था।

स्विटजरलैण्ड की राष्ट्रीय सभा (निम्न सदन) चार वर्ष के लिए निर्वाचित होती है। लेकिन इसको कार्य-काल के मध्य म विघटित नही किया जा सकता। पश्चिमी जर्मनी के निम्न सदन (Bundestag) के सदस्य चार वर्ष के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित किये जाते हैं। इटली के नवीन सविधान के अन्तर्गत चैम्बर आफ डेपुटीज (Chamber of Deputies—निम्न सदन) का कार्यकाल 5 वर्ष है।

सोवियत रूस की सर्वोच्च सोवियत का कायकाल 5 वप है। सर्वोच्च सोवियत के दोनो सदनो का निर्वाचन एक साथ ही होता है। जापान के नवीन सविधान म वहाँ की व्यवस्थापिका (Diet) के निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन—का कायकाल 4 वप निश्चित किया गया है। भारतीय लोकसभा का कायकाल 5 वप है। मत्रिमण्डल इसको कायकाल के पूव विघटित करने की माग कर सकता है। आस्ट्रेलिया क प्रतिनिधि सदन का कायकाल 3 वप है। कनाडा के निम्न सदन—कामस सभा—का कायकाल भी 5 वप है। इसे भी कायकाल से पूव विघटित किया जा सकता है।

फाइनर चार वप के कायकाल को उचित मानता है और उसका ही पक्षपाती है। उसके अनुसार चारवर्षीय कायकाल दला पर नियन्त्रण की दृष्टि से आवश्यक है। दलो की शक्ति म वद्धि के फलस्वरूप व्यक्तिगत सदस्य की स्वतन्त्रता सीमित हो गयी है। सत्ताधारी नेताओ को आत्म-सन्तोष तथा निर्वाचन के धक्के से ही जगाया जा सकता है एव जैसे जैसे निर्वाचन समीप आता जाता है वे लोकमत के प्रति अधिक सचेष्ट होते जाते हैं। फाइनर के अनुसार "इगलैण्ड की दृष्टि से 3 वप का कायकाल विधायक के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्ति हेतु कम है लेकिन 5 वप का कायकाल अधिक है। अत वे 4 वप की अवधि को सहज ही स्वीकार कर सकते है।" फाइनर निर्वाचन की अवधि को कम करने के पक्ष मे एक और सवल तक देता है। आज निर्वाचको एव मतदाताओ का सीधा सम्बन्ध है और महत्वपूण विपयो के निणय व्यवस्थापिका के वाहर ही किये जाते हैं अत राजनीतिक दृष्टि से निर्वाचकाका योग्य होना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि राजनीतिक सस्थाएँ निर्वाचका को अपने दायित्व मे दीक्षित कर। अत व्यवस्थापिका के कायकाल के कम होने पर जनता से शीघ्र परामश सम्भव होता है और विभिन्न दला को परिवतित परिस्थितिया के अनुकूल अपने लक्ष्यो म परिवतन करने का अवसर मिलता है। निर्वाचको को भी राजनीतिक शिक्षा मिलती है। जनता को विभिन्न दलो के आश्वासनो एव क्रियाकलापा के परीक्षण के अपेक्षाकृत अधिक अवसर प्राप्त होते है। अत फाइनर का कथन है कि 'व्यवस्थापिका का चारवर्षीय कायकाल एक आधुनिक आवश्यक्ता है। विशेपकर राष्ट्रीय नियोजन की वढती हुई प्रवृत्ति के कारण शासन के काय मे जिस अनुपात म वद्धि हो रही है उसी अनुपात म उस पर लोकप्रिय नियन्त्रण की भी आवश्यक्ता है। व्यवस्थापिका के 4 वप के कायकाल के पूव व्यवस्थापिका का विघटन परिस्थितिया वश यदि आवश्यक हो जाय तो सविधाना म उसकी भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।'[16]

16 'A four yeaı s term (of a legislature) ıs a modern necessıty a longer term ıs ınadvısable because the broder the actıvıty of government. the more opportunıtıes ought there to be for reference back to the cıtızens the duratıon be set for four years with earlıer dıssolutıon ıf cırcumstances requıre ıt' — Fıner, H *op cıt*, p 390

व्यवस्थापिकाओ का विघटन एव उप-चुनाव

व्यवस्थापिका से सम्बन्धित दो महत्वपूण प्रश्न उसके विघटन एव उप-चुनावा स हैं (1) क्या व्यवस्थापिकाआ को उनके कायकाल के पूव विघटित किया जाना चाहिए ? एव (2) इस प्रकार का विघटन एव उप चुनाव किन परिस्थितियो मे उचित है ? सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस का कायकाल निश्चित है और उसे घटाया या बढाया नही जा सकता। 1919 ई के जमनी के वीमर सविधान एव फ्रा स के चतुथ गणतन्त्रीय सविधान म अवधि के पूव व्यवस्थापिका के विघटन की व्यवस्था थी। इगलैण्ड मे भी क्राउन ससद को अवधि के पूव विघटित कर सकता है। अनेक अवसरो पर ब्रिटिश ससद को अवधि के पूव विघटित किया गया है। भारत के नवीन सविधान के अन्तगत प्रथम बार 1970 ई मे प्रधानमन्त्री इन्दिरा गान्धी के परामश पर राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को विघटित किया गया था और मध्यावधि निर्वाचन हुए थे।

इगलैण्ड म ससद को विघटित करने का अधिकार क्राउन को प्राप्त है। लोकतन्त्र के विकास के पश्चात राजा के व्यक्तिगत अधिकार सस्थागत क्राउन को हस्तान्तरित हो गये है और विघटन का अधिकार मन्त्रिमण्डल को प्राप्त हो गया है। अब मन्त्रिमण्डल राजा को देश हित म विघटन का परामश देता है। प्रश्न यह है कि इगलण्ड म मन्त्रिमण्डल किन कारणो से ससद के विघटन का प्रस्ताव करने के लिए बाध्य है ? 19वी सदी म केवल एक ससद (1867-73 ई) ही अपने पूर कायकाल-पयन्त काय कर सकी थी। इस काल म कॉमन्स सभा मे उदार दल का बहुमत था। इस निर्वाचन के पूव इगलण्ड की ससद के दलो मे प्राय धार्मिक, वदेशिक एव व्यापारिक प्रश्नो पर मतभेद हुआ करते थे और एक दूसरे मे परस्पर तीव्र विरोध हुआ करता था। बहुधा बहुसख्यक एव अल्पसख्यक दला मे इन वर्षो म अधिक से अधिक बीस मता का अन्तर होता था। 1873 ई के पश्चात बहुमत दलो को एक अन्य कठिनाई का सामना करना पडा। इगलैण्ड के विभिन्न दल आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर विभाजित थे। इस समय इगलैण्ड की राजनीति मे स्थायित्व आयरिश शासन के 60 सदस्यो के गुट पर निभर रहता था। 1885 ई म इस गतिरोध के अन्त के लिए उदारवादियो एव अनुदारवादियो दोनो ने ससद को विघटित करने का निश्चय किया था। ब्रिटिश ससद के अपनी अवधि के पूव विघटन के कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं 1905 ई म बालफोर द्वारा त्यागपत्र, 1910 ई म लॉयड जॉज के परामश पर सामाजिक एव आर्थिक सुधारो पर जनता की राय जानने हेतु ससद को विघटित किया गया जिसक फलस्वरूप लॉड-सभा की शक्तियाँ कम हुइ, 1918 ई मे प्रथम विश्व-युद्ध के युद्ध विराम के पश्चात ससद का विघटन, सरक्षण के प्रश्न पर 1923 ई मे बाल्डविन का त्यागपत्र, 1931 ई मे रैम्से मकडोनल्ड ने श्रमदल से पृथक होकर राष्ट्रीय सरकार का नेतत्व किया। राष्ट्रीय सरकार म अनुदार, उदार [illegible] सदस्य शामिल थे जिनके हितो मे परस्पर विरोध था। मुक्त [illegible]

की नीति के प्रश्न पर दलो मे मतभेद बढत गये । अन्त म ससद को विघटित कर नवीन चुनाव हुए थे ।

फाइनर[17] के अनुसार इगलैण्ड के इतिहास से हम इस समस्या का कोई स्पष्ट उत्तर नही मिलता । लेकिन यह अवश्य ज्ञात होता है कि वहाँ किन परिस्थितियो म विघटन हुए थे । वे परिस्थितियाँ निम्नलिखित है

(i) शासन जब किसी विधेयक को पारित करना आवश्यक समझता हो और विरोधी दल द्वारा उसम गतिरोध उत्पन्न कर दिया गया हो ।

(ii) सरकार को जब अपनी स्थिति का ठीक ज्ञान न हो या उस यह विश्वास हो गया हो कि जनता का विश्वास उसे प्राप्त नही है ।

(iii) सरकार के समक्ष जब कोई ऐसा मौलिक अथवा महत्वपूर्ण नीति सम्बन्धी प्रश्न विचारणीय हो जिस पर जनता की राय लेना आवश्यक हो ।

जमनी के वीमर सविधान (1919-1933 ई) म विघटन की व्यवस्था थी। राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान किया गया था, लेकिन सविधान के अनुसार एक कारण के लिए केवल एक बार विघटन सम्भव था । वीमर सविधान के अन्तगत राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होता था । मन्त्रिमण्डल भी जनता द्वारा प्रत्यक्षत निवाचित होता था । ससदीय व्यवस्था की स्वीकृत एव मा य व्यवस्था के कारण मन्त्रिमण्डल को भी राष्ट्रपति के समान ही व्यवस्थापिका को विघटित करने का अधिकार प्राप्त हो जाता था । अत प्रश्न यह था कि मन्त्रिमण्डल विघटन का आदेश दे सकती थी या नही ? जिन अनेक मन्त्रिमण्डलो ने विघटन की माग की थी, उन्हें यह अधिकार प्राप्त नही हुआ था । जमनी के ससदीय जीवन म अवरोध की तीन अवस्थाओ मे ही राष्ट्रपति द्वारा विघटन स्वीकार किया गया । राष्ट्रपति हिण्डेनबग ने व्यवस्थापिका के विघटन की माग को अस्वीकार कर दिया था। उसने मन्त्रिमण्डल को पदारूढ रहने एव कम विवादयुक्त या विवादहीन नीतियो के अनुसार काय करने का परामश दिया था । इन्ही राष्ट्रपति हिण्डेनबग ने 1932 ई म प्रधानमन्त्री ब्रूनिंग को त्यागपत्र देने का आदेश दिया था । जमनी क ससदीय जीवन मे प्रतिक्रियावादियो— नाजी अनुदारवादी एव साम्यवादी—के गुट के कारण विघटन की अनेक घटनाए घटी थी । प्रथम विघटन 1924 ई म हुआ था । नवीन निर्वाचन के पश्चात भी समस्या नही सुलझी । पहले की भाति ससद म अनेक दल थे और उनकी स्थिति कमजोर थी । इसी वप अक्टूबर 1924 ई मे ससद का पुन विघटन हुआ था । जुलाई 1930 ई म ब्रूनिंग के मिश्रित मन्त्रिमण्डल को प्रतिक्रियावादी दलो के गुट क विरोध के कारण विघटित करना पडा था । ससद के निष्प्राण होने के कारण इन विघटनो का लक्ष्य स्पष्टत स्थायित्व था अत ये प्रशसनीय थे । लेकिन इसी अस्त्र का प्रयोग फरवरी 28, 1933 को हिटलर द्वारा प्रधानमन्त्री बनने के बाद किया गया और

17 Finer, H *op cit*, p 393

ससद को विघटित करने की उसकी माग को हिण्डेनबग ने स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप जमनी म लोकतन्त्र का विघटन हो गया और अधिनायकतन्त्र का उदय हुआ।

तृतीय फ्रेन्च गणराज्य के सविधान के अन्तगत राष्ट्रपति को सीनेट की अनुमति से चेम्बर ऑफ डेपुटीज को विघटित करने की शक्ति प्रदान की गयी थी। इसका केवल एक बार 1877 ई मे राजतन्त्रवादी राष्ट्रपति मैकमोहन ने प्रयोग किया एव जुलियस साइमन को त्यागपत्र देने के लिए बाध्य किया। चेम्बर ऑफ डेपुटीज म जिसम गणतन्त्रवादियो का बहुमत था इससे तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप राष्ट्रपति ने सीनेट से विघटन का समथन करने को कहा। निस्सन्देह यह सवधानिक अधिकार का दुरुपयोग था। फ्रेन्च राष्ट्रपति ने इस अधिकार का प्रयोग एक प्रकार से जनता के विरुद्ध किया था। इसके पश्चात तृतीय गणराज्य काल मे विघटन के अधिकार का प्रयोग नही किया गया। चतुथ फ्रेन्च गणराज्य के अधीन कुछ सीमाओ के अन्तगत ससद के विघटन की व्यवस्था थी।

भारत म इन्दिरा गाधी ने लोकसभा के विघटन की माग 1970 ई मे विशेष परिस्थितियो मे की थी। कांग्रेस दल म मतभेद उत्पन्न हो गये थे। फलस्वरूप दल विघटन की स्थिति मे था। प्रधानमन्त्री ने अपनी नीतियो के सम्बन्ध मे सीधे जनता से स्वीकृति लेने का निश्चय किया। प्रधानमन्त्री की माग पर नवीन निर्वाचन हुए जिनमे उन्ह, उनके दल तथा उनकी नीतियो को असाधारण सफलता मिली थी। इस विघटन की माग को निजी स्वाथ एव लक्ष्य से प्रेरित नही कहा जा सकता। यह एक स्वस्थ परम्परा है। 1970 ई के मध्यावधि निर्वाचना के फलस्वरूप दृढ एव स्थायी सरकार का निर्माण हुआ था।

व्यवस्थापिका को प्रभावित करना

व्यवस्थापिकाआ पर व्यक्तियो एव सस्थाआ का निरन्तर प्रभाव पडा करता है और इन सूत्रा से ये अत्यधिक प्रभावित होते रहते है। ह्वीयरे के अनुसार विधायका को निम्नलिखित तरीका से प्रभावित किया जाता है

(1) निर्वाचन-काल मे विधायको द्वारा या उनके दलीय नेताआ द्वारा निर्वाचका को दिय गय आश्वासन। चुनाव घोषणा पत्र म मतदाताआ को अनेक वाता क सम्बन्ध म दल की तरफ से आश्वासन दिया जाता है। विधायका द्वारा इनकी उपेक्षा नही की जा सकती। अधिकाश विधायक किसी दल के सदस्य होते हैं। दलीय सगठना द्वारा निर्वाचित विधायको के काय दलीय अनुशासन एव नियन्त्रण द्वारा प्रभावित किये जात है। उन्ह विशिष्ट मामला म किस प्रकार अपना मत देना है, इसके सम्बन्ध म कुछ दला द्वारा स्पष्ट निर्देश दिय जात हैं। हर देश एव दल की नीति इस सम्बन्ध म भिन्न होती है। सामान्यत प्रत्येक दल द्वारा अपन विधायका म दलीय नीतिया क समथन की अपेक्षा की जाती है।

(2) विधायका का जनता म सम्पक होता है। वह अपन निर्वाचन-क्षेत्र सदस्या क विचारा म प्रभावित होता है। तार एव पत्र, आवदन-पत्र (petitio

उनके विचारो एव कार्यों के विरोध अथवा समयन म व्यक्त मत, विरोध प्रदशन, व्यवस्थापिका के समक्ष प्रदशन आदि विधायको को प्रभावित करन क अन्य साधन हैं।

(3) अमेरिका म कांग्रेस को प्रभावित करने के लिए प्रभाव-समूहा का सगठन किया जाता है। कांग्रेस क सदस्या का प्रभावित करन की प्रक्रिया एव प्रणाली का Lobbying की सज्ञा दी जाती है। इन प्रभाव-समूहा द्वारा व्यवस्थापिका क सदस्या को प्रभावित करन के लिए अनेक प्रकार के तरीके प्रयोग म लाय जात हैं। उदाहरण के लिए, विधायको के चुनावा म आर्थिक सहायता देना, विभिन्न क्षेत्रा स उम्मीदवार खडे करना, निर्वाचन-क्षत्रा की जनता को सम्बन्धित प्रश्न के पक्ष या विपक्ष म प्रभावित करने हेतु विधायका को पत्रादि या प्रचार-सामग्री भिजवाना। विधायका को प्रभावित करने के लिए भ्रष्ट एव अनुचित तरीको का भी प्रयोग किया जाता है।

व्यवस्थापिका को किस सीमा तक प्रभावित किया जा सकता है, यह बहुत कुछ देश विशेष की शासन प्रणाली पर निभर करता है। व्यवस्थापिका का शासन प्रणाली मे कितना महत्व है ?, व्यवस्थापिका एव कायपालिका तथा नौकरशाही क कैस सम्बन्ध हैं ? ससदीय प्रणाली वाले देशा म प्रभाव-समूहा द्वारा व्यवस्थापिका की अपेक्षा मन्त्रिमण्डल को प्रभावित किया जाता है। लेकिन जिन ससदीय देशा म कायपालिका शक्तिशाली नही होती एव व्यवस्थापिका अपक्षाकृत शक्तिशाली होती है वहाँ कायपालिका व्यवस्थापिका की उपेक्षा नही कर सकती।

लेकिन सयुक्त राज्य अमेरिका जैस देश मे जहाँ शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है, व्यवस्थापिका को ही प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता है।

इसके अतिरिक्त जिन देशा मे बहुदलीय पद्धति होती है और मिश्रित सरकारें बनती है वहाँ व्यवस्थापिका का कायपालिका पर अधिक नियन्त्रण रहता है। अत व्यवस्थापिका को प्रभावित करने के प्रयत्न स्वाभाविक ही हैं। जिन व्यवस्थापिकाओ म दलीय अनुशासन ढीला होता है उनके सदस्यो को सरलता से प्रभावित किया जा सकता है।

व्यवस्थापिका के सदस्यो को प्रभावित करने के अतिरिक्त समितिया को भी प्रभावित किया जाता है क्याकि समितिया विधि निर्माण मे महत्वपूण भूमिका अदा करती हैं।[18] जिन देशो—जसे सयुक्त राज्य अमेरिका—मे समितियो की जाँच पडताल के अधिकार होते है, वहा उन पर ध्यान केन्द्रित होना स्वाभाविक है।

फाइनर का मत है कि आज हम प्रभावो के केन्द्र मे निवास करते हैं। जनमत की कोई उपेक्षा नही कर सकता। प्रभावा के वृत्त म होने के कारण केन्द्र स्थानीय क्षेत्रा की मनोदशा के अनुरूप और स्थानीय क्षेत्र केन्द्र की मनोदशा के अनुसार सोचते है।[19]

---

18 देखिए अध्याय 13

19 Finer, H *op cit* p 391

9

द्विसदनवाद
[BICAMERALISM]

व्यवस्थापिका से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि उसकी रचना कैसी होनी चाहिए ? व्यवस्थापिका का स्वरूप क्या हो ? व्यवस्थापिका के दायित्वों एव कार्यों म शीघ्रता एव भावावेश को स्थान नही हो सकता। अत उसकी रचना ऐसी होनी चाहिए जिससे कि उसके कार्यों मे अधिक से अधिक सतकता एव विचार-विमश की गुजाइश हो सके। अत अधिकाश आधुनिक व्यवस्थापिकाएँ द्विसदनात्मक हैं अर्थात व्यवस्थापिकाओ म दो सदन होते हैं। स्ट्राग के अनुसार अधिक महत्वपूण राज्या की द्विसदनात्मकता एक विशेषता है।[1] ब्राइस ने इस सन्दभ मे कहा था कि सवैधानिक इतिहास की किसी शिक्षा का इतना गहरा प्रभाव नही है जितना कि द्वितीय सदन के प्रयोग की शिक्षा का है। बडे राज्यो मे एकसदनीय व्यवस्था अपक्षाकृत कम पायी जाती है और यदि होती भी है तो वह स्थायी नही होती।

द्विसदन की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक है। लेकिन इसके अपवाद भी हैं। न्यूजीलण्ड ने 1950 ई एव डेनमार्क ने 1954 ई मे अपने यहाँ द्वितीय सदनो को समाप्त कर दिया है। सयुक्त राज्य अमेरिका के 50 राज्या मे से केवल नेवरास्का (Nebraska) ने 1937 ई मे द्वितीय सदन को समाप्त कर दिया था। आस्ट्रेलिया मे क्वीसलण्ड राज्य मे एकसदनीय व्यवस्था है। इसके विपरीत उदाहरण भी पाय जात हैं। 1923 ई म अतातुक कमाल के नेतत्व म तुर्की म स्थापित गणराज्य म एक-सदनीय व्यवस्था की प्रारम्भ मे स्थापना की गयी थी। लेकिन 1961 ई के नवीन सविधान के अधीन द्विसदनात्मक व्यवस्था—नेशनल असेम्बली एव सीनेट—का निमाण किया गया है। द्विसदनीय व्यवस्था नार्वे म भी है। नार्वे की व्यवस्थापिका (Storting) एक सदन के रूप म निर्वाचित होती है लेकिन निर्वाचित हाने के बाद दो भागा म विभाजित हो जाती है। एक भाग लॉगटिंग (Lagting) कहलाता है। इसद

1 Bicameralism is a characteristic of most important States today '—Strong, C F *op cit*, p 194

सदस्य स्टारटिंग (Storting) के सदस्या द्वारा चुने जाते हैं। दूसरा भाग आडलस्टाग (Odelsting) कहलाता है जिसम शेष 112 सदस्य होत है। लागटिंग (Lagting) को विधि प्रस्तावित करन की शक्ति प्राप्त नही हैं। यह सदन ओडलेस्टाग द्वारा प्रस्तुत विधेयको म केवल सशोधन प्रस्तावित कर सकता है। यदि सशोधन अस्वीकृत किय जाते हैं अथवा लॉगटिंग (Lagting) अपन विचारा पर दृढ़ है तो दोना सदना के सयुक्त अधिवेशन म दो-तिहाई बहुमत से निणय किया जाता है। द्विसदन की चर्चा करते समय एक भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना है। सभी देशा म प्रथम एव द्वितीय सदन शब्दो का प्रयोग समान अर्थों मे नही किया जाता है। ब्रिटेन, कनाडा, फ्रास, इटली आदि देशो म प्रथम सदन जनता द्वारा निर्वाचित सदन है। दूसरा सदन द्वितीय सदन कहलाता है। अमरिका एव आस्ट्रेलिया म दोना सदन निर्वाचित होत हैं। इन राज्या म प्रथम सदन वह सदन है जो जनसख्या के अनुपात म गठित होते हैं। द्वितीय सदन म प्रत्येक राज्य को समान स्थान प्राप्त होत हैं। भारत का प्रथम सदन—लोकसभा (The House of the People)—जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित सदन है एव द्वितीय सदन (राज्यसभा) जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन है परन्तु वह राज्या का प्रतिनिधि सदन माना जाता है। भारत म अमेरिका, आस्ट्लिया स्विट्जरलैण्ड के उच्च सदना की भांति राज्यो को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नही है अपितु जनसख्या के अनुपात म हर राज्य को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। कुछ राज्यो मे—जैसे नीदरलण्ड एव स्वीडन मे—जनता द्वारा निर्वाचित—सदन द्वितीय सदन एव अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित उच्च सदन प्रथम सदन कहलाता है।

इस भ्रम के निवारणाथ ह्वीयर ने प्रथम एव द्वितीय सदन (First and Second Chamber) के स्थान पर निम्न एव उच्च सदन (Lower and Upper Chamber) के प्रयोग का सुझाव दिया है।[2]

द्विसदनवाद

व्यवस्थापिका एकसदनीय होनी चाहिए अथवा द्विसदनीय, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और फ्रेंच राज्यक्रान्ति के समय से तीव्र विवाद का प्रश्न रहा है। दोनोही प्रणालियो के समथका ने अपने अपन पक्ष म सबल एव प्रामाणिक तक उपस्थित किय हैं। इन पर विचार करने के पूव द्विसदनात्मक व्यवस्था की उत्पत्ति म सहायक तत्वो की समीक्षा वाछनीय है। फाइनर के अनुसार 'व्यवस्थापिकाए दो मुख्य एव पृथक कारणो स द्विसदनात्मक है (i) सघवाद, एव (ii) सविधाना मे लोकप्रिय सिद्धान्त को सीमित करने की इच्छा। इसका यह अथ नही है कि सघीय राज्या मे द्वितीय सदन का निर्माण केवल राज्या को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए ही किया गया था। सघीय राज्यो म भी द्वितीय सदन के निर्माण के पीछ लोकप्रिय या जन सिद्धान्त को सीमित करने की इच्छा का अभाव नही है।[3]

2 Wheare K C *op cit*, p 133
3 Finer H *op cit*, p 399

इन दो कारणो के अतिरिक्त दो अ य मूल आकाक्षाओ ने भी द्वितीय सदन की स्थापना मे योग दिया है। प्रथम, हर व्यक्ति सम्भावित भूल से बचने एव अपने को इस सम्ब ध मे पूण स तुष्ट करने के लिए हर सम्भव परामश ले लेना आवश्यक समझता हैं। शासन का काय कठिन होता है और उसके गलत कार्यो का सशोधन भी उतना ही कठिन है। अत ऐसी सस्थाएँ स्थापित की जाती है जिनमे विचार-विमश के पश्चात निश्चय किये जा सके। शासन के कार्यो का व्यापक प्रभाव होता है। अत सत्ता के दोषो को कम से कम करने के लिए अधिक से अधिक सतकता श्रेयस्कर है। विचारपूवक किये गये निणयो एव निश्चयो की सहज स्वीकृति की अधिक सम्भावना होती है। ऐसे निणय सामा य दोषो एव निरकुश प्रवृत्ति से अधिकाशतया मुक्त होते है। यह सब वे तक हैं जो किसी समस्या पर अधिक विचार विमश पर बल देते हैं। यही तक द्वितीय सदन के समथन का के द्र-बि दु है।

द्वितीय, सत्ता एव सम्पत्तिशाली व्यक्तियो द्वारा उनकी रक्षा के लिए विशेष प्रयत्न किये जाते हैं। वे हर प्रकार के अवरोधको का निर्माण करते है जिससे कि उनकी सत्ता एव सम्पत्ति सुरक्षित रहे। "सभी द्वितीय सदनो की स्थापना एव रक्षा का एक-मात्र कारण उत्कृष्ट विचार-विमश की निष्पक्ष भावना ही नही है अपितु यह भी है कि उसके निर्माता विशेषकर विरासत म प्राप्त सम्पत्ति एव स्थिति (status) की शेष समाज से रक्षा के लिए इच्छुक होते है।"[4]

इगलैण्ड म द्वितीय सदन लाडसभा सामाजिक एव ऐतिहासिक शक्तियो के विकास का परिणाम है। अमेरिकी सीनेट की स्थापना मे भी तत्कालीन परिस्थितियो ने महत्वपूण योग दिया है। इसकी स्थापना के लिए सघवाद के अतिरिक्त तत्कालीन लोकत त्र का अव्यवस्थित एव उपद्रवी रूप भी पर्याप्त रूप से उत्तरदायी है। फिलाडेलफिया सम्मेलन मे मेरीलैण्ड के प्रतिनिधि श्री मेकहेनरी का कथन था कि 'मुख्य सकट हमारे सविधान के लोकत त्रीय अशो से उत्पन्न होता है। जनता द्वारा शासन की शक्ति का प्रयोग किये जाने पर वह अ य अगो का आत्मसात कर लेती है।" अत सीनट लोकत त्र के विरुद्ध एक अवरोध था। फ्रा स के क्रा तिकारी डीलोलमी (Delolme) एव माँटेस्क्यू द्विसदनीय व्यवस्था के विचार को स्वीकार करने के लिए तयार नही थे। इसके दो कारण थे। फ्रे च क्रा तिकारी यह सिद्ध करना चाहते थे कि सप्रभुता जनता म निवास करती है और सभी व्यक्ति समान हैं। फ्रे च विद्वान टरगोट (Turgot), ऐबी सईस (Abbe Sieyes), मथ्यू दी मो टमार सी (Mathieu de Montmorency) ने एक सदन का तीव्र समथन किया है। मैथ्यू का कथन था कि यदि सीनट की स्थाप[illegible] की जाती है ता इससे निरकुशत त्र की स्थापना होगी और जनता दासता [illegible]

4 *All second chambers have been instituted and are maintai*[illegible] not from the disinterested love of mature deliberati[illegible] because there is something their makers wished to defend [illegible] the rest of the community, especially inherited possess[illegible] status "—Finer, H *op cit*, p 400

बनेगी। फलस्वरूप 1791 ई एव 1793 ई के सविधानो म द्वितीय सदन की स्थापना नही की गयी थी। 1848 ई मी सविधान सभा न मी द्विसदनीय व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया था। लेकिन 1875 ई म फ्रास म तृतीय गणराज्य की स्थापना पर सीनेट की स्थापना की गयी थी। यह व्यवस्था वामपन्थी अल्पसख्यक दलो एव दक्षिण पन्थी य मध्यमपन्थी दलो के मध्य समझौते का परिणाम था। ब्रिटिश उपनिवेशो, कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत आदि देशो म द्विसदनीय व्यवस्था इगलण्ड की सवैधानिक व्यवस्था की देन है।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के पक्ष म निम्न तर्क दिये जाते हैं

(1) द्वितीय सदन प्रथम सदन की निरकुशता पर अकुश लगाता है। जान स्टुअर्ट मिल का मत था कि प्रथम सदन निरकुश एव अहकारी हो सकता है अत अविभाजित शक्ति के विनाशकारी प्रभाव से मुक्ति के लिए द्वितीय सदन आवश्यक है। द्वितीय सदन का अस्तित्व लॉर्ड एक्टन की दृष्टि म स्वतन्त्रता की प्रतिभू देता है और अत्याचार से सुरक्षा प्रदान करता है। एकसदनीय व्यवस्था म बहुमत दल निरकुश हो सकता है और कार्यपालिका एव न्यायपालिका की शक्तियो को समाप्त कर सकता है। ब्राइस का कथन था कि "दो सदनो की आवश्यकता का आधार यह विश्वास है कि हर समूह मे ईर्ष्यालु, अत्याचारी एव भ्रष्ट होन की स्वाभाविक प्रवत्ति होती है अत समान सत्ता से युक्त दूसरे सदन के निर्माण के द्वारा इन प्रवृत्तियो को रोकने की आवश्यकता है।"

(2) द्वितीय सदन प्रथम सदन द्वारा शीघ्रता एव भावावेश मे पारित विधेयको की भूलो एव कमियो को सशोधित कर उन्हे दूर कर देता है। स्मरणीय है कि भली प्रकार सोच विचार कर पारित की गयी विधियाँ अधिक स्थायी प्रमाणित होती हैं। द्वितीय सदन के फलस्वरूप विधेयक के पारित होने मे थोडा सा विलम्ब अवश्य हो जाता है परन्तु इससे जनता एव सदन दोनो को ही विधेयक पर पुनर्विचार का अवसर प्राप्त हो जाता है। अत प्रथम सदन के भावावेश एव शीघ्रता पर द्वितीय सदन एक वाछित प्रतिबन्ध है। लेकी के अनुसार प्रथम सदन पर "नियन्त्रण, सशोधन एव अवरोधक की दृष्टि से द्वितीय सदन की आवश्यकता स्वयसिद्ध है।"[5] लॉर्ड एक्टन के अनुसार विधि-निर्माण मे द्वितीय सदन आवश्यक सन्तुलन स्थापित करता है और सशोधन करने वाले एक श्रेष्ठ सदन की भूमिका निभाता है।

(3) द्वितीय सदन म उन विभिन्न वर्गो एव हितो को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है जो प्रथम सदन मे प्रतिनिधित्व पाने से वचित रह जाते हैं। सामान्य निर्वाचनो म अल्पसख्यक वग को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता है। डुग्वी (Duigvit) का मत था कि एक श्रेष्ठ व्यवस्थापिका मे एक सदन को जनता का प्रतिनिधित्व करना

5 The necessity of a second chamber to exercise a controlling modifying retarding influence has acquired almost the position of an axiom '—Lecky, quoted by Garner in *Political Science and Government*, 1951, p 551

चाहिए और दूसरे सदन मे उन विभिन्न समूहो को प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए जिनम कि जनता विभाजित हो।

(4) द्वितीय सदन म ऐसे योग्य व्यक्तिया को मनोनीत करना भी सम्भव होता है जो निर्वाचना के झझट से दूर रहना चाहते ह । ऐसे प्रमुख व्यक्तियो की सेवाएँ, ब्राइस के अनुसार, वतमान समय मे जबकि राजनीतिज्ञो के प्रति जनता का विश्वास गिर रहा हो, प्राप्त करना आवश्यक हो गया है। भारत की राज्यसभा मे राष्ट्रपति को ऐसे 12 सदस्यो का नाम निर्देशित करने का अधिकार है जो ज्ञान, विज्ञान, समाज-सेवा आदि के क्षेत्र मे विख्यात हा।

(5) इसके अतिरिक्त द्वितीय सदन के अन्य लाभ निम्नलिखित हैं

(क) द्वितीय सदन प्रथम सदन के काय भार को हल्का करता है। छोटे एव कम महत्व के विधेयको पर प्राथमिक स्तर पर विचार के पश्चात उन्ह प्रथम सदन के पास विचार हेतु भेजा जा सकता है। इससे प्रथम सदन के काय भार मे कमी आती है।

(ख) सघात्मक राज्यो मे द्वितीय सदन घटक इकाइया का प्रतिनिधित्व करता है एव उनके हितो की रक्षा के लिए एक अनिवाय आवश्यकता है।

(ग) द्वितीय सदन के अस्तित्व म कायपालिका को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। गेटिल के अनुसार 'विधानमण्डल के दोनो सदनो द्वारा एक दूसरे को सीमित करने के प्रयासा के कारण कायपालिका को अपेक्षाकृत अधिक काय करने एव उत्तरदायित्व को सम्पादित करने की अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।'[6] यह व्यवस्था कालान्तर मे सदन के दोनो ही अगो के हित मे है।

(घ) ब्राइस द्वितीय सदन को विशेष ज्ञान के भण्डार के रूप के विकसित करने का पक्षपाती था। द्वितीय सदन बुद्धिजीवियो का सदन होता है। 'सीनेट के सदस्यो मे प्रभावशाली वकील, प्रतिष्ठित जनरल, न्यायाधीश एव प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ होते है। लॉडसभा के विचारो का स्तर कॉमन्स सभा की तुलना मे श्रेष्ठ एव ऊँचा होता है तथा लॉडसभा के सदस्य अपेक्षाकृत अधिक योग्य, बुद्धिमान एव प्रतिभा सम्पन्न भी होते हैं।

मेडीसन (Madison) ने सयुक्त राज्य अमेरिका के सीनेट सम्बन्धी सवैधानिक उपबन्धा के निर्माण मे मुख्य भाग लिया था। उसकी दृष्टि मे द्वितीय सदन के उद्देश्य[7] निम्नवत हैं

(1) जनता की शासको से रक्षा।

(2) अपने ही चचल व अस्थिर विचारा एव धारणाओ से अपनी (व्यवस्थापिका की) रक्षा करना। अस्थिर विचारो का कारण अपने हिता की सूचना का अभाव या गलत

---

6 ' in checking each other, the two branches of the legislative organ permit to executives a greater degree of freedom of action and of responsibility '—Gettell, R G *op cit*, p 314

7 Finer, H *op cit*, p 401

दृष्टिकोण या अपनी अस्थिरता एव व्यक्तिगत स्वार्थ हो सकते हैं। अत "एक अवरोध की आवश्यकता होती थी। ऐसा अवरोध प्रबुद्ध परन्तु सीमित सदस्यो का निर्माण होना चाहिए। इसमे मावावेश प्रधान प्रथम सदन के प्रबल परामर्श को रोकने की वाछित दृढता मी होनी चाहिए।"

(3) स्वतन्त्रता की रक्षा। मडीसन की दृष्टि म स्वतन्त्रता का अर्थ वविध्य का विकास था। उसके अनुसार सविधान का निर्माण मी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए हुआ था। फ्रासीसी विद्वान लाल्ली टोल्लोनडोल (Lally Tallendol) ने कम बढ उपरोक्त तर्कों के आधार पर द्वितीय सदन की रचना का समर्थन किया है। उसका कथन था कि द्वितीय सदन द्वारा जल्दबाजी एव मावावेश म निर्मित विधियो पर प्रतिबन्ध रखा जा सकता है, एक सदन के बाह्य असंसदीय प्रमावो से शीघ्र प्रमावित होने की कम सम्मावना होती है, सीनट के योग्य एव अनुभवी सदस्यो के निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण होते हैं और जनता के असन्तोष का सामना दोनो सदनो की सयुक्त सत्ता अधिक अच्छी तरह कर सकती है।[8]

सर हेनरी मेन की दृष्टि म सुसगठित द्वितीय सदन अतिरिक्त सुरक्षा (additional security) प्रदान करता है। वह प्रतिस्पर्धी निर्भ्रान्तता (rival infallibility) का प्रतीक नही होता। अत द्वितीय सदन एक अनिवार्यता है।

एकसदनवाद

18वी सदी के अन्त एव 19वी सदी के प्रारम्भ म कुछ विचारको ने एक सदनीय व्यवस्थापिका का समर्थन किया था। "यह दृष्टिकोण इस सिद्धान्त के प्रभाव का परिणाम था कि राज्य म जनता सम्प्रभु है और उसकी सामान्य इच्छा को ही विधियो के रूप मे अभिव्यक्त होना चाहिए। अत प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित सदन ही राज्य की सप्रभुता का एकमात्र अधिष्ठाता होना चाहिए और उसी के माध्यम से सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।"[9]

एकसदनीय व्यवस्था के मुख्य समर्थक 1789 ई एव 1848 ई के फ्रेंच क्रान्तियो के नेतागण कोनडोरसेट (Condorcet) एव रोबेसपीयरे (Robbespierre) आदि थे। 1848 ई म फ्रासीसी विचारक लामर्टीन (Lamartine) भी 1789 ई के टरगोट(Turgot) की भाँति एकसदनवाद का योग्यतम समर्थक था। अमेरिका म बेंजामिन फ्रेंकलिन एव इगलण्ड म बेथम भी इसी मत के समर्थक थे। एकसदनीय व्यवस्था के समर्थको ने द्विसदनवाद की तीव्र निन्दा की है और वे उसे निरर्थक मानते है। द्विसदनवाद के विपक्ष के तर्क एकसदनवाद के पक्ष मे दिये जाने वाले तर्क है। एकसदनवाद के समर्थको द्वारा प्रस्तुत मुख्य तर्क निम्नवत है

(1) द्वितीय सदन का सिद्धान्त लोकतन्त्र के आदर्शों का विरोधी है। प्रथम सदन पर अकुश लगाने का अर्थ लोकतन्त्र प्रणाली म अविश्वास एव जनता के प्रति

8 Finer, H *op cit*, p 403
9 Gettell *op cit*, p 315

निधियो पर नियन्त्रण स्थापित करना है। यह धारणा लोकतन्त्र की आधारशिला को ही हिला देती है।

(2) द्वितीय सदन प्रतिक्रियावादियो एव अनुदारवादियो का गढ होता है। अन्तत हाउस ऑफ लॉर्ड्स के विरोध का अन्त करने के लिए लॉर्डसभा को शक्ति से वचित करना ही पडा। स्मरणीय है कि द्वितीय सदन की स्थापना का एक मुख्य कारण समाज के सम्पत्तिवान एव सम्मानित व्यक्तियो के हितो की रक्षा करना था। इसके अतिरिक्त, द्वितीय सदन प्रथम सदन के कार्यों मे बाधा उत्पन्न करता है। द्वितीय सदनो के द्वारा अत्यन्त उपयोगी समाज सुधारो का तीव्र विरोध किया गया है और इस प्रकार जन क्रान्ति के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

(3) द्वितीय सदन के कारण समय एव धन का अपव्यय होता है।

(4) द्वितीय सदन के अस्तित्व के कारण प्रथम सदन के अनुत्तरदायी हो जाने की अधिक सम्भावना होती है।

(5) इस तर्क म भी अधिक बल नही है कि द्वितीय सदन का विधि निर्माण पर सुधारात्मक प्रभाव होता है। आधुनिक राज्यो मे विधि निर्माण की एक निश्चित प्रणाली है। प्रथम सदन म प्रत्येक विधेयक पर तीन वाचन एव समिति मे विचार होता है। व्यवस्थापिका म विधेयक को प्रस्तुत करने के पूव यह देखा जाता है कि वह दलीय नीति के अनुकूल है या नही। अत भूल या भावावेश अथवा जल्दबाजी मे विधि के पारित होने के आरोप मे कोई सार नही है। प्रत्येक वाचन म विधेयक पर गम्भीर वाद विवाद एव विचार विमश होते है। जनता को भी इस दौरान विधेयक पर अपना मत व्यक्त करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो जाता है। स्पष्ट है कि प्रथम सदन भावा-वेश का शिकार नही होता है और न जल्दबाजी म ही उसके द्वारा विधि निर्माण होता है। कभी-कभी तो विधेयक को पारित होने मे वर्षो लग जाते है। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश ससद म आयरिश स्वतन्त्रता सम्बन्धी विधेयक पर 30 वर्षो तक विचार होता रहा। ब्रिटिश ससद को आस्ट्रेलिया के सविधान को पारित करने मे 20 वष तथा भारत शासन अधिनियम (1935 ई) को पारित करने मे 7 वष लगे थे।

फ्रेंच विचारक एबी सईस (Abbe Sieyes) एकसदनीय व्यवस्था का समथक था। उसका तक था कि "विधि व्यक्तियो की इच्छा है। एक ही विषय पर व्यक्तियों की दो इच्छाएँ नही हो सकती। अत जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली व्यवस्थापिका अनिवायत एक ही होनी चाहिए। जहा पर दो सदन होगे वहाँ अनिवायत मतभेद एव कलह उत्पन्न हो जायेगे और जनता की इच्छा निष्क्रिय हो जायेगी।[10] 'लोकमत का सही प्रतिनिधित्व केवल प्रथम सदन ही कर सकता है, द्वितीय नही। यदि द्वितीय सदन प्रथम सदन से असहमत ह तो दुष्ट है, यदि समथन करता है तो व्यथ है।'[11] अत प्रत्येक अवस्था मे द्वितीय सदन अनावश्यक है।

---

10 Abbe Sieyes quoted by Garner *op cit*, p 549
11 'If the two Assemblies agree, the second chamber is unneces-

द्विसदनात्मक व्यवस्था द्वारा राज्य की एकता के महत्वपूर्ण सिद्धान्त को तिला जलि दे दी जाती है। गानर के अनुसार द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका अपने म ही विभक्त होती है।[12] लास्की की दृष्टि म यह आवश्यक नही है कि प्रथम सदन की अपेक्षा द्वितीय सदन के अपने निणय सही ही हो। "जनता की जडता (inertia) एव शासन द्वारा व्यापक परिवतना के टालने की प्रवृत्ति म आवश्यक प्रतिबन्ध सदव उप स्थित होते ह जो खतरनाक हो सकते हैं और यदि प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं तो वे निहित स्वार्थों के प्रगति विरोधी दृष्टिकोण का ही समथन करते हैं।"[13]

गेटिल का कथन है कि कुछ आधुनिक विद्वानो ने द्विसदनीय व्यवस्था को राज नीतिक विकास मे सक्रमणकालीन व्यवस्था माना है।[14] द्वितीय सदन राज्य म विचारो एव हितो के विरोध को व्यक्त करता है। जब हितो की एकता स्थापित हो जायेगी तो दो सदनो की कोई आवश्यकता नही रहेगी।

क्या द्वितीय सदन आवश्यक हैं ?

अधिकाश देशो मे द्वितीय सदन की स्थापना उसकी अनिवायता एव आवश्य कता का प्रमाण नही है। द्वितीय सदन के पक्ष म दिये गय तक भी निर्भ्रान्त एव अकाट्य नही हैं। एस एस आयगर की दृष्टि म द्विसदनीय व्यवस्था लोकतन्त्र मे एक बीती हुई धारणा है। उनके अनुसार लोकतन्त्र मे सन्देहास्पद विश्वास एव अल्प सख्यको को सन्तुष्ट करने की भावना द्विसदनवाद के ही कारण है। जनमत की अभिव्यक्ति के दो तरीके क्यो होने चाहिए ? लोकतन्त्र को दो भाषाओ म क्या बोलना चाहिए ? सत्य तो यह है कि द्विसदनीय व्यवस्था दलीय व्यक्तियो की महत्वाकाक्षाओ को सन्तुष्ट करने का एक साधन है।[15]

द्वितीय सदन के पक्ष म प्रस्तुत सभी तर्कों की वैधता असदिग्ध नही है। यह तक कि द्वितीय सदन सघीय व्यवस्था का एक अनिवाय तत्व है, पूणत सत्य नही है। यह सोचना भी गलत है कि द्वितीय सदन सघीय राज्यो के हितो का अनिवायत प्रतिनिधित्व करेगा। उदाहरण के लिए, अमेरिकी सीनेट प्रतिनिधि सदन से किसी भी प्रकार कम राष्ट्रीय या प्रगतिशील नही रही है। मैरियट (Marriott) का यह कथन अतिशयोक्तिपूण है कि द्वितीय सदन सघीय सविधान की रक्षा के लिए प्रथम एव प्रभावशाली प्रतिभूति है।

---

sary if they disagree, it is obnoxious' —Abbe Sieyes quoted by Finer, p 403

12 'Double chambered legislature was an assembly divided against itself —Garner *op cit*, p 550

13 'The necessary checks are always present in the inertia of the mass and the desire of a government to avoid large changes which may be disastrous' —Laski *A Grammar of Politics*, p 332

14 Gettell R G *op cit* pp 316 317

15 Asirvatham, E *Political Theory*, (1965) p 401

आधुनिक समय मे द्विसदनीय व्यवस्था की अपेक्षा एकसदनीय व्यवस्था की तरफ भुकाव है। विगत वर्ष भारत के अनेक राज्यो ने द्वितीय सदन को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव स्वीकार किये थे। द्वितीय सदन की शक्तियो को भी कम किया गया है। उदाहरण के लिए, लॉर्डसभा की शक्तिया कम की गयी है। यूनान, बलगारिया, रूमानिया, पनामा, क्यूबेक एव नोवोस्कोशिया (Novoscotia) नामक दो प्रान्तो को छोडकर कनाडा के समस्त प्रान्त, स्विस कैण्टनो एव लैटिन-अमेरिकन सघो म एकात्मक व्यवस्थापिका है। लास्की एक-सदनीय व्यवस्था का समर्थक था। उसके अनुसार एक सदन बहु-अमतायुक्त (multi competent) विधानमण्डल है और आधुनिक राज्य की आवश्यकताओ की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ है। ससदीय प्रणाली के अन्तर्गत एकसदनीय व्यवस्था कही अधिक सुविधाजनक एव प्रभावकारी होती है।

डॉ आशीर्वादम के अनुसार 'इस प्रश्न का कि द्वितीय सदन आवश्यक है या नही' कोई एक उत्तर नही दिया जा सकता। यह बहुत कुछ देश विशेष की पूर्वगामी ऐतिहासिक स्थिति पर निर्भर है। फ्रास एव सयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेटो एव इगलैण्ड के हाउस ऑफ लॉर्ड्स के समाप्त कर देने से इन देशो की व्यवस्था म निस्सन्देह कमी आ जायगी। लेकिन कनाडा मे यदि सीनेट को हटा दिया जाय तो इससे कोई विशेष हानि नही होगी।[16]

उच्च सदनो का सगठन

द्वितीय सदन को ही उच्च सदन की सज्ञा दी जाती है। उच्च सदनो की एक प्रमुख समस्या उनके सगठन सम्बन्धी है। विश्व के प्रमुख देशो के उच्च सदनो को सगठन की दृष्टि से गार्नर ने निम्न वर्गों म वर्गीकृत किया है[17]

(1) **पूर्णतया या प्रधानत वशानुगत आधार (Hereditary principle) पर सगठित उच्च सदन**—इस श्रेणी मे इगलण्ड का हाउस ऑफ लॉर्ड्स, हगरी का टेबल ऑफ मेगनेट सदन (1926 ई के पूर्व), साम्राजीय जापान का पीयर सदन (House of Peers) एव आस्ट्रिया का उच्च सदन आते है। यह सभी सदन प्रधानत वशानुगत आधार पर सगठित थे।

(2) **मनोनीत (Nominated) सदन**—इस प्रकार के उच्च सदनो के सभी या अधिकाश सदस्य कार्यपालिका द्वारा जीवन भर के लिए या कुछ वर्षों के लिए मनोनीत किये जाते हैं। इसके उदाहरण हैं—इटली की सीनेट एव कनाडा की सीनट। जापान के पीयर सदन (House of Peers) के कुछ सदस्यो को भी मनोनीत किया जाता था। भारत के उच्च सदन—राज्यसभा—के 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते है।

(3) **प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित सदन**—इस प्रकार के सदनो के

16 Asirvatham, E *op cit*, p 401
17 Garner *op cit*, pp 559 560

उदाहरण है—1913 ई के पश्चात की अमरिकी सीनेट एव ब्राजील, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि की सीनेट भी इसी वग म आती हैं।

(4) **अप्रत्यक्ष रीति से सावजनिक मताधिकार द्वारा निर्वाचित सदन**—इस श्रेणी म फ्रास एव डेनमाक क उच्च सदन आत हैं।

(5) **स्थानीय व्यवस्थापिकाओं या समितियो द्वारा निर्वाचित सदन**—इसक उदाहरण पुतगाल, दक्षिणी अफ्रीकी सघ एव नीदरलैंण्ड के उच्च सदन हैं। भारत की राज्यसभा के सदस्य भी अप्रत्यक्ष रीति से राज्यो की विधानसभाओ के सदस्या द्वारा ही चुने जाते हैं।

अनेक देशो के उच्च सदनो के सगठन म उपरोक्त उल्लिखित दो या तीन तरीको का एक साथ प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, इगलण्ड के हाउस ऑफ लाड स म वशानुगत (hereditary) एव मनोनीत (nominated) दोना ही प्रकार के सदस्य होते है। वतमान जापानी सविधान के पूव के साम्राज्ञीय सविधान के पीयर सदन के सदस्य भी वशानुगत एव मनोनीत दोनो ही प्रकार क होते थे। डेनमाक के उच्च सदन मे दो प्रकार के सदस्य होत हैं—प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित एव क्राउन द्वारा मनोनीत। स्विटजरलैंण्ड की सघीय सभा (Federal Assembly) के उच्च सदन—राज्य परिषद (Council of States)—के सदस्या का बहुसख्यक केण्टना मे प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन होता है। केवल सात केण्टनो म सदस्य केण्टनो के विधानमण्डलो द्वारा चुने जाते हैं।

वशानुगत एव मनोनयन की रीति से सदस्यो को नियुक्त करने की पद्धति तीव्र आलोचना का विषय रही है। इगलैंण्ड को छोडकर प्राय सभी यूरोपीय दशो म वशानुगत सदस्यता समाप्त हो चुकी है। इगलण्ड मे भी इसका तीव्र विरोध हुआ है। फलस्वरूप लॉडसभा को शक्ति से वचित कर दिया गया है। मनोनयन की प्रणाली भी वशानुगत रीति की भाँति अलोकतात्रिक है।

गानर के अनुसार आधुनिक समय म उच्च सदन को लोकप्रिय निर्वाचन द्वारा सगठित करने की प्रवत्ति वलवती है। जनता प्रत्यक्ष रीति से जिस प्रकार निम्न सदनो के लिए प्रतिनिधियो को चुनती है उसी प्रकार उच्च सदन के सदस्या को भी चुना जाना चाहिए क्योकि यह पद्धति लोकतन्त्र एव लाकप्रिय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अधिक अनुकूल है। वशानुगत एव मनोनीत उच्च सदन केवल सशोधन करने वाले सदन की द्वितीय श्रेणी की भूमिका निभाता है। प्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित उच्च सदन के सम्बन्ध म यह प्रश्न उठता है कि क्या वह निम्न सदन का दुगणन (duplication) मात्र नही है? दोनो ही सदना के प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित होने पर उनम सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है। **लीबर** (Lieber) के अनुसार यदि दोनो सदनो को एक ही समय मे एक ही निर्वाचका द्वारा चुना जाता है तो वे दोना सदन एक ही सदन की दो समितियाँ हागे। अत यह आवश्यक है कि दोना सदनो का सगठन भिन्न भिन्न आधारा पर होना चाहिए। उच्च सदन को

ब्लुद्शली के अनुसार विशेष वर्गों के हितो या राजनीतिक इकाइयो का तथा निम्न सदन को सामूहिक रूप से जनता के हिता का प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

सघीय राज्या म घटक राज्या के विधानमण्डला द्वारा द्वितीय सदन के सदस्या को निवाचित करन की पद्धति प्रचलित है। 120 वर्षों अर्थात् 1789 ई स 1913 ई तक अमरिकी सीनेट के सदस्य इसी रीति से चुने जाते थे। लेकिन इस प्रणाली म भी दोष हैं। 1913 ई म अमेरिका म प्रचलित व्यापक भ्रष्टाचार के कारण इसका परित्याग कर दिया गया। बहुधा राज्या के विधानमण्डल के दोना सदनो म गतिरोध उत्पन्न हो जाते थ और कभी-कभी तो राज्य विधानमण्डल सीनेट के सदस्यो को चुनने के अपने दायित्व को ही पूरा नही करते थे।

अत उच्च सदन का सगठन किस प्रकार किया जाय, यह राजनीति शास्त्र की एक कठिन समस्या है। इस सम्बध म अभी तक कोई सवसम्मत विचार या धारणा स्थापित नही हुई है। जान स्टुअट मिल ने इस सम्बन्ध म यह मत व्यक्त किया था कि एक सदन के माध्यम से लोकमत की अभिव्यक्ति होनी चाहिए और दूसरे सदन मे व्यक्तिगत योग्यता एव प्रतिभा को, जो जनसेवा द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो, स्थान दिया जाना चाहिए। मिल द्वितीय सदन का स्वाभाविक नताओ (natural leaders) का सदन मानता था। समाजवादी नेता श्री एव श्रीमती सिडनी वब द्विसदनीय प्रणाली के विरुद्ध थे। लेकिन उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि आधुनिक व्यवस्थापिकाओ का काय भार अधिक है अत उनक कार्यों को दो भागो—राजनीतिक एव सामाजिक—मे विभाजित कर देना चाहिए और विधानमण्डल के एक भाग को राजनीतिक ससद और दूसरे को सामाजिक ससद की सना दी जानी चाहिए। लास्की ने इस योजना को आकषक तो बताया परन्तु वह उसे अव्यावहारिक मानता था।[18] 1918 ई मे लॉड ब्राइस ने लॉडसभा के सुधार के लिए एक योजना प्रस्तुत की थी लेकिन उस याजना पर सहानुभूतिपूवक विचार नही हुआ।

गानर का इस सम्बन्ध मे यह मत है कि व्यवस्थापिका यदि द्विसदनीय है तो दोना सदना को भिन्न आधार एव सिद्धान्त पर सगठित किया जाना चाहिए। इनमे स एक सदन के सदस्यो का कायकाल अपेक्षाकृत लम्बा होना चाहिए। उनकी योग्यता एव कायकाल भी अधिक होना चाहिए तथा उनके निर्वाचन क्षेत्र भी बडे होने चाहिए। उनका निवाचन भिन्न प्रकार से गठित निर्वाचकों एव भिन्न निर्वाचन-प्रणाली द्वारा होना चाहिए। लेकिन आधुनिक लोकतन्त्रीय मान्यताएँ एव विश्वास ऐसे सदनो के पक्ष म नही है। जहा पर उपरोक्त सभी बातें पायी जाती है वहाँ एक सदन आकार मे छोटा होता है परन्तु उसमे अधिक अनुभवी एव अधिक अवस्था के अनुदारवादी सदस्य होते हैं और ऐसा सदन सम्पत्तिशालियो एव बुद्धिवादियो के हितो का प्रतिनिधित्व करता है।[19]

गानर की उपरोक्त धारणा के अनुकूल अनेक देशो—अमेरिका, भारत आदि—

18 Laski *Parliamentary Democracy in England*, p 337
19 Garner *op cit*, pp 565 566

के उच्च सदनो का गठन किया गया है। सम्भवत यह सयोग ही है। भारतीय लोकसभा की तुलना मे राज्यसभा के सदस्यो की सख्या बहुत कम है अर्थात् आधी है। सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है। राज्यसभा एक स्थायी सदन है। राज्यसभा के सदस्य समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर राज्यो की विधायिका परिषद के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुने जाते हैं। अत लोकसभा की तुलना म राज्यसभा के निर्वाचन क्षेत्र वडे हैं, निर्वाचन प्रणाली एव पद्धति और निर्वाचकगण भी भिन्न हैं। अमरिकी सीनेट भी एक छोटा सदन है। उसके निर्वाचन क्षेत्र भी वडे हैं। सीनट एव राज्यसभा की सदस्यता के लिए अधिक आयु सम्बन्धी योग्यता की व्यवस्था है। वेल्जियम, फ्रास, पोलैण्ड एव इटली मे 40 वर्ष की अवस्था पार करने पर ही द्वितीय सदन के सदस्य हो सकते है। इन देशो के उच्च सदनो म अधिक अनुभवी राजनीतिज्ञो की सेवाए प्राप्त की जा सकी है।

उच्च सदनो का वर्गीकरण

उपरोक्त सगठन पद्धतियाँ उच्च सदनो के वर्गीकरण का आधार भी हो सकती हैं। सी एफ स्ट्राग ने उच्च सदनो को दो प्रमुख वर्गों म विभाजित किया है। प्रथम, अनिर्वाचित (Non Elective), एव द्वितीय, निर्वाचित (Elective)। इनके वह दो दो उपभाग करता है। अनिर्वाचित सदन के दो उपभाग हैं—वशानुगत (hereditary), एव मनोनीत (nominated)। निर्वाचित उच्च सदनो के भी दो उप-भाग हैं—'अशत निर्वाचित' या 'पूणत निर्वाचित'। स्ट्राग अपने इस वर्गीकरण को पूण नही मानता है। किसी एक देश के उच्चसदन के सगठन म किसी एक ही सगठन पद्धति का प्रयोग नही हुआ है। इसके उपरोक्त वर्गीकरण को हम निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं
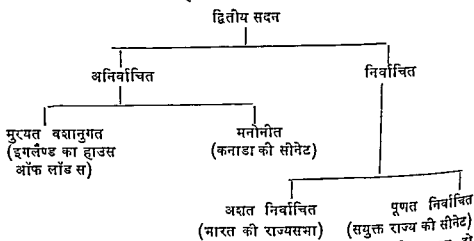
इगलण्ड का उच्च सदन अनिर्वाचित श्रेणी म तो है लेकिन उसके सदस्य दो वर्गों के हैं—वशानुगत एव मनोनीत। कनाडा का उच्च सदन—सीनेट—पूरी तरह मनोनीत सदन है। उसके सदस्य गवनर-जनरल के माध्यम से क्राउन द्वारा मनोनीत किय

जाते हैं। फ्रास तथा इटली के एकात्मक राज्या के द्वितीय सदन—सीनेट—निर्वाचित सदन हैं। फ्रास की सीनेट अप्रत्यक्ष रीति स एव इटली के नवीन गणराज्य का द्वितीय सदन प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होता है। आस्ट्रेलिया एव सयुक्त राज्य अमरिका की सीनेट प्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित उच्च सदन है। भारत के द्वितीय सदन राज्यसभा के बहुसख्यक सदस्य अप्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित होते हैं एव उसके 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होते है।

स्तृा क निर्वाचित वग के दो और उपभाग हो सकते है—प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन।

10

व्यवस्थापिका—उच्च सदन

[LEGISLATURE—UPPER CHAMBER]

उच्च सदनो के स्वरूप एव प्रकृति का उचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ प्रमुख देशो का उच्च सदनो के सगठन, शक्तिया एव कार्यों का पृथक पृथक अध्ययन वाछनीय है। अत हम इगलैण्ड की लॉडसभा (House of Lords), सयुक्त राज्य अम रिका की सीनेट (Senate), कनाडा एव आस्ट्रेलिया के द्वितीय सदनो—सीनेट—एव स्विट्जरलण्ड, सोवियत रूस, भारत के द्वितीय या उच्च सदनो की इस अध्याय म समीक्षा करेंगे।

इगलैण्ड की लॉर्डसभा

आधुनिक समय मे लॉडसभा (House of Lords) वशानुगत आधार पर गठित विश्व का एकमात्र उच्च या द्वितीय सदन है एव शेष सभी वशानुगत सदनो का अत हो चुका है। इसी कारण लास्की न लॉडसभा को एक अरक्षित कालभ्रम या विरोधा भास की सज्ञा दी है।[1] यह विश्व का सबसे प्राचीन सदन है। इसके वशानुगत स्वरूप का कारण ऐतिहासिक है।

लॉडसभा का इतिहास

स्ट्राग के अनुसार, ' अधिकाश राज्या के वशानुगत उच्च सदन मध्ययुगीन शासन प्रणाली के अवशेष थ। लाडसभा के सम्बन्ध म यह पूणत सत्य है। लार्डसभा की उत्पत्ति ब्रिटेन के नॉमन-काल की मुख्य सामन्ता एव पादरिया की समिति—महान समिति (Great Council)—से हुई है। इसके वप म तीन अधिवेशन होत थे। 1295 ई की माडल पार्लियामण्ट (Model Parliament) के समय राजा एडवड प्रथम ने प्रत्यक शाइर (Shire) से दा सामन्त एव नगरा, शहरा एव वरा (Boroughs) स कुछ निर्वा

---

1 ' For as the second chamber of a political democracy it (House of Lords) is an indefensible anachronism '—Laski H J *Parlia mentary Democracy in England*, 1952, p 111

चित प्रतिनिधिया को इस महान् समिति मे और शामिल कर दिया था। कुछ समय तक तो इनके सम्मिलित अधिवेशन होते रहे लेकिन एडवड तृतीय के शासन-काल मे सामन्ता एव पादरियो तथा निर्वाचित प्रतिनिधिया के पृथक-पृथक दो सदन बन गये। साम ता एव पादरिया ने मिलकर लॉडसभा का तथा ग्रामीण एव शहरी क्षेत्रो के प्रतिनिधिया ने कॉम स सभा का निर्माण किया। क्रामवेल के गणत त्रीय काल मे लॉडसभा को समाप्त कर दिया गया था। 1660 ई मे उसकी पुनस्थापना हुई। उस समय स यह निरन्तर चला आ रहा है।

1832 ई म सुधार विधेयक के पारित होने के पश्चात ब्रिटेन मे नवयुग का सूत्रपात हुआ है एव कॉम स सभा का लोकत त्रीयकरण प्रारम्भ हुआ। सुधार विधेयक के प्रश्न पर हुए सघप ने नवीन सामाजिक तत्वो की शक्ति को स्पष्ट कर दिया था। इस सघप मे लॉडसभा को पराजित होना पडा था। 1832 ई के सुधार कानून के अन्तगत कॉम स सभा के लिए जिस निर्वाचन-प्रणाली को स्वीकार किया गया था, उसके फलस्वरूप फाइनर के अनुसार लॉडसभा का स्थायी रूप से काम स सभा का विरोधी हो जाना एव निर तर आत्मरक्षा की स्थिति मे रहना तथा अ त म शक्तिहीन हो जाना अनिवाय था।

18वी सदी के अ त तक काम स सभा यथाथ म निम्न सदन ही था यद्यपि उस समय भी लाडसभा को कॉम स सभा की तुलना म वित्तीय मामलो मे श्रेष्ठता प्राप्त थी। दोनो सदनो मे मतभेद हुआ करते थे। इन मतभेदो का कारण दोनो सदनो की दलीय शक्तियो या राजनीतिज्ञो की वैयक्तिक महत्वाकाक्षाओ मे अ तर या गुटब दी हुआ करती थी। लेकिन पृथक इकाइयो के रूप मे दोनो सदनो मे कोई मतभेद नही थे। 19वी सदी मे कॉम स सभा के लोकत त्रीयकरण के साथ सत्ता का के द्र लॉडसभा से हटकर कॉम स सभा मे अधिष्ठित हो गया था।

लाडसभा का सगठन

लॉडसभा की सदस्य सख्या मे सदैव ही परिवतन होते रहे है। इस समय इसकी सदस्य सख्या 1,000 से अधिक है। लेकिन एक व्यवस्था के कारण यह सख्या घटकर 890 के करीब रह गयी है। लाडसभा के उन सदस्या को जो ससद के सत्रो या सत्र म उपस्थित होना नही चाहते, अनुपस्थिति स मुक्ति के लिए आवेदन-पत्र देकर सदन की सदस्यता से हट जान का अधिकार होता है। सदस्य द्वारा एक माह की पूवसूचना देने पर अनुपस्थिति से मुक्ति की यह व्यवस्था निरस्त हो जाती है।[2]

लॉडसभा मे निम्न प्रकार के लॉड स होते हैं

(1) वशानुगत पीयर (Hereditary Peers)—लॉडसभा म इस वग का बहुमत है। वश परम्परा से लाड के ज्येष्ठ पुत्र को लाडसभा की सदस्यता प्राप्त होती है। पीयर[3] कई स्तर के हाते हैं जैसे डयूक (Duke), मार्क्विस (Marquis), विसकाउण्ट

2 The British Parliament, R 5548/73 B I S (1973) p 7
3 Peer means a nobleman It is a degree of nobility in England

(Viscount) एव बैरन (Baron)। प्रधानमन्त्री के परामर्श पर राजा द्वारा वशानुगत पीयरो की नियुक्ति भी की जाती है। इनकी सख्या पर कोई सीमा नही है।

(2) स्कॉटलण्ड के प्रतिनिधि पीयर (Scottish Representative Peers)—यह भी वशानुगत पीयर ही होत हैं। स्कॉटलैण्ड के सभी पीयर प्रत्यक ससद के लिए अपने मे से 16 सदस्यो को चुनते हैं। 1963 ई से यह व्यवस्था कर दी गयी है कि स्कॉटलैण्ड के वतमान सभी पीयर लॉडसभा के अधिवेशना म भाग लेत हैं। इस वर्ग मे नये पीयर नही बनाये जा रहे हैं। फलस्वरूप पीयरो का यह वग धीरे धीरे समाप्त हो रहा है।

(3) आयरलण्ड के प्रतिनिधि पीयर (Representative Peers of Ireland)—इनकी सख्या 1959 ई म केवल 1 रह गयी है। ये पीयर भी वशानुगत पीयरो की श्रेणी मे ही आते हैं। 1800 ई मे 234 आयरिश पीयर थे। सन 1800 ई के यूनियन एक्ट के अन्तगत आयरिश पीयरो द्वारा अपन म स 28 पीयरो को लाडसभा के लिए निर्वाचित किया जाता था। 1932 ई म आयरलण्ड स्वतन्त्र हो गया, फलस्वरूप नवीन आयरिश पीयरो का मनोनयन भी बन्द हो गया है।

(4) धार्मिक लॉड (Spiritual Lords)—इनकी सख्या 26 है। इस श्रेणी मे केन्टवरी एव यॉक के आर्कबिशप, लन्दन डरहम एव विनचेस्टर के बिशप तथा वरिष्ठता के आधार पर नियुक्त इगलण्ड के चच के 21 अन्य बिशप होते हैं।

(5) विधि लॉड (Law Lords)—इनकी सख्या नौ है। ये प्रसिद्ध विधि वेत्ता होते हैं और जीवन भर के लिए नियुक्त किय जात हैं। इन्ह Lords of Appeal in Ordinary की सज्ञा दी जाती है।

(6) आजीवन लॉड (Life Peers and Peeresses)—क्राउन को आजीवन पीयस अधिनियम (1958) के अन्तगत किसी भी स्त्री अथवा पुरुष को लाडसभा का सदस्य नियुक्त करने का अधिकार है। ऐसे सदस्य आजीवन लॉड कहलात हैं।

(7) राजवशीय लॉड (Peers of Royal Blood)—लाडसभा मे तीन या चार राजवश के राजकुमार होते है। वे दलीय राजनीति से पृथक रहते हैं और लाडसभा के अधिवेशनो मे भाग नही लेते।[4]

सन् 1961-62 ई म 4 राजवशीय, 854 वशानुगत,[5] 29 स्कॉटलण्ड एव 1 आयरलण्ड के तथा 26 आध्यात्मिक, 9 विधि एव 120 आजीवन लाड थे।

---

4 लॉटसभा के सदस्यो को सुविधा की दृष्टि से दो भागो म विभाजित कर सकते है (1) Lords Temporal (सासारिक लाड) एव (2) Lords Spiritual (आध्यात्मिक लॉड)। सासारिक लॉड की श्रेणी म (1) इगलण्ड, स्काटलण्ड, ग्रेट ब्रिटन एव यूनाइटेड किंगडम के वशानुगत लाड, (2) आजीवन लाड, तथा (3) विधि लॉड शामिल हैं।

5 ब्रिटेन क वशानुगत लार्डों को इगलैण्ड, ग्रेटब्रिटेन एव यूनाइटेड किंगडम के पीयर कहा जाता है। सन 1707 ई के पूव जब इगलण्ड, स्कॉटलण्ड एव आयरलण्ड

लॉडसभा की शक्तिया एव काय

ससदीय अधिनियम (1911) के पारित होने के पूव लॉडसभा की शक्तिया सिद्धा तत कॉम स सभा के समकक्ष थी। लॉडसभा की शक्तिया निम्नलिखित है

1 **विधायी शक्तियाँ**—कोई भी विधेयक लॉडसभा की स्वीकृति के बिना विधि नही बन सकता। लेकिन विधि निर्माण मे लॉडसभा की शक्ति कॉम स सभा की तुलना म बहुत सीमित है। 1911 ई के ससदीय अधिनियम द्वारा लॉडसभा की शक्ति सीमित कर दी गयी है। गैर वित्तीय विधेयको को लॉडसभा अधिक से अधिक दो वष के लिए रोक सकती है। ससदीय अधिनियम 1948 ई द्वारा इस अवधि को घटाकर एक वष कर दिया गया है। लॉर्डसभा के विचाराथ कामस सभा की अपेक्षा अधिक विधेयक प्रस्तुत किये जाते है। कॉम स सभा यथाथ मे राजनीतिक सत्ता का केद्र है। किसी समय लॉडसभा को जो शक्तिया प्राप्त थी वे धीरे धीरे उससे निष्क्रमित होकर कॉम स सभा को प्राप्त हो गयी हैं।

2 **वित्तीय शक्तियाँ**—लॉडसभा को वित्तीय मामला मे कोई शक्ति प्राप्त नही है। 1614 ई म लॉडसभा ने कॉम स सभा मे सवप्रथम वित्त विधेयको का सवप्रथम प्रस्तावित किया जाना स्वीकार कर लिया था। 1671 ई म कॉम स सभा ने लॉड-सभा द्वारा करा को कम करने के प्रयत्न का सफल विरोध किया था। उस समय स यह अभिसमय स्थापित हो गया है कि लॉडसभा को कामस सभा द्वारा पारित वित्त-विधेयको को परिवर्तित करने का अधिकार नही है। लॉडसभा उ ह बिना सशोधित किये हुए स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। इस परम्परा को 1909 ई तक मा यता दी जाती रही थी। लाडसभा ने इस अवधि मे केवल एक वित्त-विधेयक—कागज कर को समाप्त करने वाले विधेयक—को 1860 ई म अस्वीकार किया था। 1909 ई म लॉडसभा ने कॉम स सभा द्वारा पारित बजट को स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप दोना सदना मे तीव्र विवाद उत्पन्न हो गया। लाडसभा के इस काय का कॉम स सभा ने तीव्र प्रतिवाद करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि लाडसभा को कर-विधयको को छूने का भी अधिकार नहीं है। 1911 ई के ससदीय अधिनियम द्वारा लाडसभा की वित्तीय मामला मे शक्ति को पूणत समाप्त कर दिया है। फलस्वरूप लाडसभा किसी वित्त विधेयक को अधिक से अधिक केवल 14 दिन के लिए रोक सकती है।

3 **कायपालक शक्तियाँ**—लॉडसभा म भी शासन की नीतिया पर वाद-विवाद होता है एव शासन से प्रश्न पूछे जात हैं पर तु उनका उत्तर कॉम स सभा की

पृथक पृथक राज्य थे, उस समय जो पीयर बने थे वे इगलण्ड के पीयर कहे जाते हैं। सन् 1707 ई म स्कॉटलैंण्ड इगलण्ड म मिल गया। इसके बाद व पीयर ग्रेटब्रिटेन के पीयर कहलाते हैं। सन् 1800 ई के पश्चात जब आयरलण्ड, स्कॉट-लण्ड एव इगलण्ड एक ही गये थे, उसके बाद जो पीयर बने, वे यूनाइटेड किंगडम के पीयर कहलाते हैं।

भांति तत्परतापूवक नही दिया जाता है । कॉमन्स की भांति लाडसभा का मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण नही है । लाडसभा म मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव के पारित होने का कोई महत्व नही है क्योकि ऐसी स्थिति म मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र नही दता। कायपालिका को नियन्त्रित करने की शक्ति लॉडसभा 16वी सदी म ही खो चुकी है। लेकिन लॉडसभा के सदस्य मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं । 19वी सदी म लाडसभा के अनेक सदस्य मन्त्रिमण्डल क सदस्य रहे थे । बाद मे उनकी सख्या कम होती गयी है। लॉडसभा मन्त्रिमण्डलीय मन्त्रियो का सग्रहालय (Reservoir of Cabinet Ministers) है । विदेश मन्त्री अधिकतर लॉडसभा से ही चुना जाता है क्योकि विदेश विभाग, जिसका सम्बन्ध गोपनीय वाता से होता है, के प्रशासन का उसे विवरण दने की आवश्यकता ही नही पडती । 1937 ई के मन्त्रियो सम्बन्धी अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि कम के कम मन्त्रिमण्डल के दो उच्च सदस्य लॉडसभा के होने चाहिए । इनके अतिरिक्त लॉड प्रेसीडेण्ट (Lord President) या लॉड प्रीवीसील (Lord Privy Seal) या दोनो ही लॉडसभा के ही सदस्य होने चाहिए । सैलिसबरी के मन्त्रिमण्डल म 10, बालफोर के मन्त्रिमण्डल म 8 एव 1937 ई म चेम्बरलैन के मन्त्रिमण्डल म 6 मन्त्री पीयर थे। 1950 ई के श्रमदलीय मन्त्रिमण्डल म 3 केबिनेट मन्त्री लॉडसभा के सदस्य थे । 1955 ई मे ब्रिटिश केबिनेट के 4 मन्त्री लॉडसभा के सदस्य थे ।

4 न्यायिक शक्तिया—लॉडसभा ग्रेट ब्रिटेन का सर्वोच्च पुनरावेदनीय (appellate) न्यायालय है । जब लॉडसभा का सर्वोच्च पुनरावेदनीय न्यायालय के रूप म अधिवेशन होता है तो अभिसमय के अनुसार केवल नौ विधि लाड ही उसम भाग लेते है एव लाड चान्सलर (Lord Chancellor) अध्यक्षता करता है । लाडसभा को कॉमन्स द्वारा लगाये गये महाभियोग की जाच करने का अधिकार है। परन्तु मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के विकास के कारण लॉडसभा की यह शक्ति महत्वहीन हो गयी है । इस अधिकार का दीघकाल से प्रयोग नही किया गया है एव अन्तिम महाभियोग 1805 ई म लगाया गया था ।

संसदीय अधिनियम, 1911 ई

लाडसभा की शक्तिया ससदीय अधिनियम 1911 ई के द्वारा अनेक मामलो मे सीमित कर दी गयी हैं और उसकी शक्तिया का सही अनुमान ससद अधिनियम 1911 ई के ज्ञान के बिना अपूण है । 1892 ई से 1895 ई तक उदारदल सत्तारूढ था । इसी काल म आयरलण्ड के स्वतन्त्रता विषयक विधेयक (The Home Rule Bill) को कॉमन्स सभा ने पारित किया था लेकिन लाडसभा ने इसे अस्वीकृत कर दिया था। इसी समय लॉडसभा के सशोधन या सुधार का निश्चय उदार दल कर चुका था । 1905 ई म उदार दल पुन सत्तारूढ़ हुआ । दोना सदना म सघर्ष प्रारम्भ हो गया था जिसने 1909 ई म उग्रतम रूप धारण कर लिया था । 1909 के बजट म इनकम टक्स की दर ऊँची कर दी गयी थी, मृत्यु-कर, खाना पर भूमि मूल्य-कर (Land Values Duties) लगाने की व्यवस्था की गयी

थी। इन कर प्रस्तावो का भू-स्वामियो एव सम्पत्तिशालियों पर विपरीत प्रभाव पडना स्वाभाविक था। फलत लाडसभा ने बजट को अस्वीकार कर दिया।[6] लॉडसभा ने इस प्रकार उस शक्ति का प्रयोग किया जिसका प्रयोग आधुनिक बजट-प्रणाली की स्थापना के समय से नही किया गया था। वित्तीय मामला मे हस्तक्षेप करके लॉडसभा ने कॉम स सभा के एकाधिकार पर अपना दावा किया एव मं त्रमण्डल को चुनौती दी थी। विरोध मे कॉम स सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया था और लॉडसभा के इस काय को सविधान भग करने एव सत्ता अपहरण की सज्ञा दी। मं त्रमण्डल की माग पर काम स सभा को भग कर दिया गया और जनवरी 1910 ई मे नवीन चुनाव हुए। चुनावो के दौरान उदार दल ने लॉर्डसभा की शक्तियो को कम करने की घोषणा की। उदारदलीय सरकार को नवीन चुनावा म बहुमत प्राप्त हुआ। फलस्वरूप लॉडसभा की शक्ति को सीमित करने के लिए एक विधेयक 1910 ई म प्रस्तुत किया गया। इस बार लॉडसभा ने समपण कर दिया। सरकार द्वारा प्रस्तावित अधिनियम काम स म पारित होने के पश्चात लॉडसभा मे प्रस्तुत किया गया। लॉडसभा मे उसके पारित होने की आशा नही थी। मं त्रमण्डल ने लॉडसभा म उसे पारित करने के लिए अतिरिक्त सदस्य नामजद किये जाने (swamping) की माग राजा से की। राजा जॉज पचम ने प्रधानम त्री को जनमत जानने के लिए निर्वाचन का सुभाव दिया। एक सवदलीय सम्मेलन प्रधानम त्री एस्क्विथ (Asquith) के नतत्व मे सवसम्मत योजना की स्वीकृति के लिए आयोजित भी किया गया था। वह असफल रहा। दिसम्बर 1910 ई मे नवीन निर्वाचन हुए। विवाद का मुरय विषय लाडसभा का सुधार था। निर्वाचन के फलस्वरूप कॉम स मे शक्ति स तुलन अपरिवर्तित रहा अर्थात चुनावो मे उदार दल की विजय हुई। शासन द्वारा यह घोषणा की गयी कि राजा ने लाडसभा के विरोध को निष्क्रिय बनाने के लिए अतिरिक्त पीयरो की नियुक्ति का आश्वासन दिया है। इस पर लॉर्डसभा झुक गयी और अ त म विधेयक पारित हो गया। यही ससदीय अधिनियम 1911 ई कहलाया। इसकी मुख्य धाराएँ निम्नवत है

1 **धन विधेयक**—(1) धन-विधेयक के कॉम स द्वारा पारित किये जाने एव लॉडसभा मे प्रस्तुत करने के एक माह के पश्चात यदि बिना किसी सशोधन के पारित नही किया जाता तो उसे राजा के समक्ष हस्ताक्षरो हेतु प्रस्तुत किया जाना चाहिए और हस्ताक्षर होन पर वह ससदीय अधिनियम बन जायेगा। कॉम स सभा द्वारा धन विधेयक को लॉडसभा मे सत्रावसान के कम से कम 1 माह पूव भेजने की अनिवाय व्यवस्था की गयी।

(2) धन विधेयक से अथ उस सावजनिक विधेयक (Public Bills) स है जिसका सम्ब ध स्पीकर की सम्मति म कर, ऋण एव सावजनिक धन स हो।

---

6 इस समय लॉडसभा की सदस्य सख्या 554 थी। 1909 ई के बजट के विपक्ष म 350 एव पक्ष मे 75 मत आय थे। स्पष्ट है कि बहुत बडी सख्या म लॉड-सभा के सदस्या ने भाग लिया था।

(3) प्रत्येक धन-विधेयक को लॉडसभा एव क्राउन के पास भेजे जात समय स्पीकर द्वारा मुद्रित एव प्रमाणित किये जाने की अनिवाय व्यवस्था की गयी अर्थात धन विधेयक के सम्बन्ध म कॉमन्स सभा के स्पीकर के निणय को अन्तिम एव मान्य ठहराया गया। सक्षेप म, कर एव व्यय सम्बन्धी मामला म लॉडसभा के कोई अधिकार नही रह गये है।

2 अन्य सावजनिक विधेयक—किसी सावजनिक विधेयक को यदि कामन्स सभा द्वारा अपने निरन्तर होने वाले तीन सत्रो, चाहे वे सत्र एक ही ससद के हो या न हो, म पारित कर दिया जाता है एव लॉडसभा उसे तीसरी वार भी अस्वीकार कर देती है, तो क्राउन के द्वारा स्वीकृत होने पर उस विधेयक के अधिनियम वन जाने की व्यवस्था की गयी है। लेकिन इस व्यवस्था मे केवल एक शत यह रखी गयी कि विधयक के प्रथम वार प्रस्तुत करने के द्वितीय वाचन एव तृतीय बार के तृतीय वाचन की तिथि म दो वप का अन्तर अनिवायत होना चाहिए।

इस व्यवस्था के द्वारा लॉडसभा के निरकुश निषेधाधिकार (absolute veto) को अस्थायी निषेधाधिकार (suspensive veto) म परिवर्तित कर दिया गया है। लॉडसभा गैर वित्तीय विधेयका को इस नवीन व्यवस्था के अन्तगत अधिक से अधिक दो वप के लिए किसी विधेयक को रोक सकती थी।

3 ससद का कायकाल 7 वप से घटाकर 5 वप कर दिया गया है। इसका यह अथ है कॉमन्स सभा पर लॉडसभा के नियन्त्रण को कम किया गया है और शीघ्र चुनावो की व्यवस्था के माध्यम से जनता के नियन्त्रण म वृद्धि की गयी।

फाइनर के अनुसार इस अधिनियम के निम्न परिणाम हुए है "अनुदारदलीय शासन-काल मे लॉडसभा सशोधन की शक्ति का प्रयोग महत्वहीन विषयो के सम्बन्ध म करती थी लेकिन उदार दल या श्रमदल के सत्तारूढ होने पर इन दला द्वारा सम्पत्ति शाली वग के विरुद्ध जब प्रस्तावित उग्र सामाजिक एव आर्थिक सुधारो को पारित करने का निश्चय किया जाता था तो लॉडसभा अपनी अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करने म नहीं चूकती थी।"[7] स्मरणीय है कि उपरोक्त अधिनियम के द्वारा लॉडसभा की गर वित्तीय विधेयको सम्बन्धी शक्ति को एक सीमा तक ही सीमित किया था यद्यपि वित्तीय मामलो मे उसे कोई शक्ति नही रह गयी थी। गैर वित्तीय मामला मे उसे दो वप का निलम्बनकारी निशेपाधिकार प्राप्त था जिसके प्रयोग से वह किसी भी विधयक के भविष्य को सदिग्ध वना सकती थी। द्विवर्षीय अवरोध अनिश्चितकालीन अव रोध म परिणित हो सकता था। **लायड जॉज** ने लॉडसभा के भूतकालीन आचरण पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि "लॉड स सविधान का रक्षक स्वान न होकर अनुदार दल के नेता का पिल्ला है।"[8] लॉडसभा के अनुदारदलीय सदस्या मे एव लोकसभा के

7 Herman Finer *op cit*, p 412
8 The Lords would not be the watchdog of the constitution but the conservative leader's poodle'—Lloyd George, cited by Finer, H *op cit*, p 412

उदार विरोधी सदस्यो के बीच गठबन्धन सरलता से हो जाते थे। उदार दल या मजदूर दल की अल्पसख्यक सरकार के सत्तारुढ होने पर लॉडसभा एसी सरकार की कमजोरी का पूरा लाभ उठाती थी। स्पष्ट है कि अधिनियम द्वारा लॉडसभा की शक्तिया कम तो हुई थी लेकिन इसके बाद भी लाडसभा लोकतन्त्रीय इच्छा म बाधा उत्पन्न करन की स्थिति म बनी रही। लास्की न इस सत्य को सही-सही आका था। 1938 ई म लॉडसभा के सम्बध म लास्की ने कहा था कि "ससदीय अधिनियम 1911 ई के द्वारा निर्धारित सीमाओ के बावजूद भी लाडसभा काफी प्रभावशाली है। यह सत्य है कि ससदीय अधिनियम के कारण लॉडसभा की स्थिति राज्य म निस्सन्देह घट गयी है लेकिन सामाजिक कारणा स यह सत्ता भी जो स्पष्ट रूप मे दिखायी देती है, उससे कही अधिक है।"[9] लास्की की यह धारणा एव विश्वास था कि श्रमदलीय सरकार के लिए लॉडसभा की यह शक्ति भविष्य मे उसी प्रकार असहनीय प्रमाणित होगी जैसे कि 1906 से 1914 तक उदार दल के लिए सिद्ध हुई थी। 1929 31 ई मे श्रम-दल की अल्पसख्यक सरकार थी और इस काल मे लॉडसभा क आचरण से उस पर्याप्त हानि उठानी पडी थी। हताश होकर 1934 ई मे श्रम दल ने लाडसभा के उन्मूलन का प्रस्ताव पारित किया था।

ससदीय अधिनियम, 1949 ई

1945 ई में श्रम दल पुन सत्तारूढ हुआ। इस समय यह प्रश्न उसके समक्ष था कि लॉडसभा का तात्कालिक किसी कारण के और कैसे उन्मूलन किया जाय? 1947 ई के मध्य तक लाडसभा शान्त रही लेकिन कोयला खान राष्ट्रीयकरण अधिनियम (1946) एव यातायात अधिनियम (1947) के समय उसने उनका विरोध किया था। अक्टूबर 1947 ई मे राजा ने अपने भाषण म यकायक लाडसभा की शक्तिया को और अधिक सीमित करने की घोषणा की तथा नवम्बर 1947 ई मे ससदीय अधिनियम (1911) को सशोधित करने के लिए श्रम दल न एक अन्य अधिनियम प्रस्तुत कर दिया। कुछ वर्षों तक इस अधिनियम के फलस्वरूप इगलैण्ड के राजनीतिक जीवन म तहलका सा मचा रहा।

इस अधिनियम के अधीन यह व्यवस्था की गयी है कि लॉडसभा द्वारा किसी गैर-वित्तीय विधेयक क अस्वीकार किये जान और कॉमन्स सभा द्वारा उस विधेयक को तीन सत्रा क बजाय दो निरन्तर होन वाले सत्रा मे पारित कर दिया जाता है एव प्रथम बार प्रस्तुत करने के द्वितीय वाचन एव अन्तिम प्रस्तुतीकरण के अन्तिम वाचन मे 2 के स्थान पर 1 वर्ष का ही केवल अन्तराल हो तो विधेयक पारित माना

---

9 'And even after the limitations on that power introduced by the Parliament Act of 1911, its authority remains impressive 'It is true that the Act has reduced the House of Lords to a definitely subordinate position in the State But this is in fact a much greater power than appears on the surface for social reforms' —Laski *op cit*, pp 114 115

जायेगा। दूसरे शब्दा म, लॉडसमा के विलम्बकारी निषेधाधिकार की अवधि दो वष से घटाकर एक वष कर दी गयी और कॉमन्स सभा मे विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया को भी सरल बना दिया गया था।

इस विधेयक पर गम्भीर विवाद होता रहा। कामन्स ने इस विधेयक के पक्ष मे सबल तक प्रस्तुत किये थे। यथा—सामान्य निर्वाचनो मे व्यक्त जनमत को प्रश्रय दिया जाना चाहिए, किसी भी अन्य लोकतन्त्रीय देश मे ऐसे द्वितीय सदन को स्थान नहीं है जो किसी एक दल का ही समथन करता हो, इगलैण्ड म लॉडसभा के अनुदार दल का समथक होने के कारण व्यवहार म एकसदनीय व्यवस्था की स्थापना हो गयी है, यह निर्विवाद रूप म विलक्षण बात है कि एक ऐसे सदन का व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो कॉमन्स सभा की भाति निर्वाचित एव विघटित नही किया जा सकता, ससदीय अधिनियम 1911 ई के पारित होन के पश्चात 40 वष तक अनुदार दल शक्ति म रहा था अत उसे स्वय लॉडसभा का सुधार करना चाहिए था, आदि।

उक्त प्रस्ताव कॉमन्स द्वारा तो पारित कर दिया गया परन्तु 9 जून 1948 ई को लॉडसभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। इसी बीच 1948 म सवदलीय सम्मेलन का आयोजन हा चुका था। उसने लॉडसभा के सुधार सम्बन्धी कुछ प्रस्ताव स्वीकार किये थे। लॉडसभा द्वारा विधेयक के अस्वीकार करने पर इन सवदलीय प्रस्तावा को भी अस्वीकृत कर दिया गया तथा प्रस्तावित ससदीय अधिनियम को पारित करने की कायवाही पुन प्रारम्भ कर दी गयी। 1949 ई मे इस द्वितीय ससदीय अधिनियम को अन्तिम स्वीकृति प्राप्त हुई।

लॉडसभा के विरुद्ध तर्क

लॉडसभा की तीव्र आलोचना की गयी है, जो निम्नवत है

(1) यह प्रतिक्रियावादी सदन है और निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र विचारधारा वाला सदन नही है। लॉडसभा का अनुदारवादी दल की ओर विशेष झुकाव है। लास्की के अनुसार ' जब अनुदार दल की सरकार होती है तब लाडसभा सम्भवत एक अच्छा द्वितीय सदन होता है।" प्रगतिशील सरकार के सत्तारूढ होने पर लॉडसभा के दृष्टिकोण के कारण उसके कार्यों मे अनेक गतिरोध उत्पन्न होते है। "ऐसे समय लाडसभा अनुदार दल की रक्षित शक्ति के रूप म काय करता है। निर्वाचन मे वह प्रगतिशील वग की विजय के परिणामा को सशोधित करने के लिए कृतसकल्प रहता है तथा अपनी शक्ति भर प्रयत्न करता है।"[10] 1938 ई मे लॉडसभा की सदस्यता का विश्लेषण करते हुए लास्की ने कहा था कि लगभग 750 सदस्या म से 12 पीयर

10 'The House of Lords, when a Conservative Government is in office is perhaps as good a second chamber as there is in the world It becomes the reserve chamber as there is in the Party, determined to correct the consequences of a progressive victory at the polls so far as lies in its power ' Laski *op cit*, p 114

श्रमदलीय, 8 उदारदलीय तथा 3 या 4 रैमजे मैक्डोनल्ड के राष्ट्रीय ग्रुप के थे। शेष या तो किसी दल के सदस्य नही थे अथवा अनुदार दल के प्रति भक्ति रखते थे।[11]

(2) **रमजे म्योर** के अनुसार लॉडसभा सम्पत्ति का गढ (fortress of wealth) है। बडे उद्योगो से सम्बन्धित निहित हितो का सदन पर एकाधिकार है। उद्योगपतियो, बडी कम्पनियो के डायरेक्टरो, साम्राज्य निर्माताओ, व्यापारियो, जागीरदारो का यह सदन केन्द्र है। लास्की के अनुसार "कोई ऐसा राष्ट्रीय प्रमुख उद्योग नही है जिसे लॉर्डसभा मे पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो।" 1936 ई म लॉडसभा म 729 सदस्य थे। इनमे से 119 बीमा कम्पनियो के डायरेक्टर, 74 साहूकार, 97 बकों, 64 रेलवे कम्पनियो एव 49 जहाजरानी-उद्योग कम्पनियो से सम्बन्धित सदस्य थे। स्पष्ट है कि लॉडसभा समाज के सम्पत्तिशाली वग का गढ है।

(3) यह एक वृहद् सदन है एव अधिकाश सदस्य सदन की बैठको म भाग नही लेते हैं। **बेजहोट** (Bagehot) को 19वी सदी म लॉडसभा के उन्मूलन का तो भय नही था पर तु उसके पतन का भय अवश्य था क्योकि उसके अधिकाश सदस्य अपने कतव्यो की उपेक्षा करते थे। **लास्की** के अनुसार "भले ही लॉडसभा मे इतने अधिक सदस्य हो लेकिन व्यवहार मे वह सवथा ही भिन्न सदन है। इसकी बठकों मे सामान्यत केवल 35 सदस्य ही उपस्थित रहते हैं।" **सर जेनिंग्स** (Sir Jennings) के अनुसार लॉडसभा मे 80 से अधिक सदस्य उपस्थित नहीं होते। 1919 ई से 1938 ई तक केवल 13 अवसरो पर लॉडसभा मे एक समय म 200 सदस्य उपस्थित हुए थे। आवे सदस्यो ने तो सदन मे कभी विचार ही व्यक्त नही किये थे। 100 ऐसे सदस्य हे जिन्होने कि लॉडसभा की सदस्यता की शपथ ही नही ग्रहण की थी।

(4) आलोचको का मत है कि लॉडसभा ने प्रगतिशील विधेयको के माग म बाधा उत्पन्न की है। लॉडसभा ने वर्षो तक विधि निमाण के बारे मे विलम्बकारी काय प्रणाली को अपनाया है और उन सरकारो के विधेयको को अस्वीकार किया है जिन्हे वह पसन्द नही करता। **रमजे म्योर** के शब्दो मे "लाडसभा सशोधन एव विलम्बकारी सदन है, और इस काय को भी वह ठीक प्रकार से सम्पादित नही करता है।"[12]

(5) सगठन की दृष्टि से लॉडसभा लोकतन्त्र मे एक विरोधाभास है। लोकतन्त्रात्मक देश म वशानुगत द्वितीय सदन कल्पनातीत है। **सिडनी एव बेट्रिस वब** के कथनानुसार "श्रमिक वग का इसमे कोई सदस्य नही है और न दुकानदारो, लिपिको एव अध्यापको का ही कोई प्रतिनिधि है। स्त्रियो का भी कोई प्रतिनिधि नही है। लाडसभा के निणय उसकी रचना एव सगठन से प्रभावित होते है। अब तक निर्मित सभी प्रतिनिधि सदनो मे यह निकृष्टतम है।"[13]

11 Laski *op cit* p 113
12 It became merely a delaying body'—Ramsay Muir *How Britain is Governed* 1951, p 186
13 Sidney and Beattrice Webb *A Constitution for the Socialistic Commonwealth of Great Britain*, p 63

फाइनर ने लॉडसमा की प्रकृति (spirit) का तकपूण विवेचन किया है। 19वी एव 20वी सदी म लॉडसमा ने अपने अस्तित्व के औचित्य म सबल तक दिए है। लॉडसमा ने समयानुकूल अपने अस्तित्व को यायोचित सिद्ध करने के लिए प्रतिनिधि सिद्धान्त का सहारा लिया है। लॉडसमा के 19वी सदी म काय आपत्तिजनक थे। फिर भी लॉडसमा के समयको ने यह दावा किया कि वह जनता की रक्षा स्वय उसके निर्वाचित प्रतिनिधियो—कॉमन्स-समा—द्वारा निर्मित अवाछनीय विधियो से उनको सशोधित परिवर्तित एव अस्वीकृत करके करता हैं। 18वी सदी की अपनी श्रेष्ठता का लॉडसभा ने दवाव मे आकर ही परित्याग करना स्वीकार किया था। 19वीं सदी मे जनता इतनी जागरूक नही थी कि वह लाडसभा के वास्तविक मन्तव्यो को समझ सके और न उस समय तक लोकतन्त्र का ही पूण विकास हुआ था। यही लाडसमा की शक्ति थी और उसने इसका सफलतापूवक उपयोग भी किया।"[14]

लाडसभा ने 19वी सदी मे प्रत्येक उदारवादी प्रस्ताव को या तो सशोधित या अस्वीकार किया था। इसके विपरीत, प्रत्येक अनुदारवादी प्रस्ताव को लाडसभा ने सरलता से पारित कर दिया था। फलस्वरूप स्वय ग्लैडस्टोन को लॉडसभा के विरोध का नेतृत्व करना पडा। लॉडसभा के इस कथन का विरोध किया गया कि वह देश के स्थायी मत का प्रतिनिधित्व करता है। लॉडसमा ने कृपको के हितो की तुलना म जमीदारो की स्थिति की रक्षा की, धार्मिक एव राजनीतिकएकता को अस्वीकार किया विश्वविद्यालयो मे धम विरोधियो (dissenters) को प्रवेश की अनुमति प्रदान नही की, सैनिक हितो की रक्षा एव निधन बन्दियो को कानूनी सलाह दिया जाना अस्वीकार किया, आयरलैण्ड के साथ दुव्यवहार हुआ, स्वशासित सस्थाओ के विकास का विरोध किया गया, ससदीय सुधारो को अस्वीकार किया गया एव उनका अग मग हुआ, मानव कल्याण से सम्बन्धित अनेक विधेयक वर्षो तक पारित न हो सके एव प्रथम मालिक दायित्व विधेयक (First Employers Liability Bill) जानबूझ कर अस्वीकृत किया गया था। लॉडसभा द्वारा अनुचित तरीके अपनाये गये। लक्ष्यो की घोषणा करते हुए उसके द्वारा सत्य सिद्धान्तो की कुटिल रीति से हत्या की गयी। लॉडसमा द्वारा यह बहाना किया जाता रहा है कि सत्र के अन्त म विधेयक पर्याप्त विलम्ब से उसके पास पहुँचते है और उपलब्ध समय मे विधेयका पर उचित विचार विमश सम्भव नही है। फिर भी लॉडसभा द्वारा अनेक असम्भव सशोधन विधेयको म जोड दिये जाते थे जिससे कि उनके उद्देश्य और उपयोगिता ही समाप्त हो जाती थी।[15]

लाडसभा की उपयोगिता

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि लॉडसभा की तीव्र आलोचना अस्वाभाविक नही है। 1907 ई म श्रमदल ने लॉडसभा को समाप्त करन का नारा लगाया था। उदार दल उसके सशोधन का पक्षपाती था। लास्की श्रमदल के निणय से सह

14 Finer H *op cit*, p 409
15 Finer, H *op cit* p 410

मत था एव लॉडसभा के उन्मूलन का पक्षपाती था। उसका मत था कि लोकतन्त्रीय समाज म लाडसभा जैसी अलोकतन्त्रीय सस्था कायम नही रह सकती। लाडसभा सम्पत्ति एव विशेषाधिकारो का मूत रूप है। अत उसके कारण सम्पत्तिशालियो एव जनता म सघष अनिवाय है। इसके अतिरिक्त, लोकतन्त्र म जन-विरोधी शक्ति का अस्तित्व असम्भव होता है। अत लॉडसभा के उन्मूलन की माँग अव्यावहारिक नही थी।

श्रम दल के द्वारा लॉडसभा को समाप्त करने की दृढ नीति के अनुगमन के पश्चात भी लॉर्डसभा आज कायम है। आश्चय तो यह है कि कि चार बार सत्तारूढ होने पर भी श्रम दल लॉडसभा को समाप्त नही कर सका है। एटली के श्रमदलीय मन्त्रिमण्डल को 1949 ई के ससदीय अधिनियम द्वारा सुधार करके ही सन्तोष कर लेना पडा था। वशानुगत आधार पर गठित द्वितीय सदन के स्थान पर लोकप्रिय प्रतिनिधित्व पर आधारित सदन की स्थापना क उदारदलीय प्रयत्न भी असफल रह है। लॉडसभा क रूप म कोई परिवतन नही हुआ है। उसका लोकतन्त्रीयकरण नही हो सका है। क्या ? उसकी ऐसी क्या उपयोगिता है ? इसके अस्तित्व का क्या कारण है ? सामान्यत लॉडसभा के कायम रहने के निम्न कारण दिय जाते है

(1) ब्रिटिश जनता का ऐतिहासिक एव प्राचीन सस्थाओ के प्रति विशेष अनुराग एव लगाव है। ब्रिटिश सविधान विकास का परिणाम है एव आवश्यकता के अनुसार उसमे सशोधन किया जाता रहा है। यह बात लाडसभा पर भी लागू होती है। ब्रिटिश जनता के पुरातन प्रेमी होने के कारण आमूलचूल परिवर्तन उसे स्वीकाय नही हैं। हबट मौरीसन का मत है कि लॉडसभा का विवेकहीन (irrational) सगठन एव उसकी प्राचीनता आधुनिक ब्रिटिश लोकतन्त्र के लिए सुरक्षा व्यवस्था है।

(2) लॉडसभा उपयोगी सावजनिक सेवा करती है। वह सशोधन करने वाला (revisory) सदन है। वह कॉमन्स द्वारा पारित विधेयको को पूरी तरह अस्वीकार तो नही कर सकता परन्तु उन्हे पहले दो वष क लिए अब 1 वष के लिए रोक अवश्य सकता है। इस बीच म जनता को विधेयक के सम्बन्ध मे भली प्रकार विचार विमश करने का अवसर मिल जाता है।

(3) यह सदन भावनाओ के अभिव्यक्ति स्थल (ventilating ground) के रूप म काय करता है। विभिन्न विधेयको पर विचार विमश के द्वारा लाडसभा सम्बन्धित विषयो पर जनमत का निर्माण करता है तथा शासन को प्रभावित करने म योग देता है। लाडसभा म वाद विवादो का स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा होता है। इस सदन म प्रशासन की निष्पक्षता एव निभयतापूवक आलोचना की जाती है एव उसका कॉमन्स सभा पर भी प्रभाव पडता है जिसके फलस्वरूप शासन अपनी भूलो के प्रति सचेत एव सजग रहता है। लाडसभा का नेता मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है और उसका यह कतव्य है कि वह मन्त्रिमण्डल को सदन की भावनाओ से अवगत कराता रहे।

(4) लोकतन्त्र मे द्वितीय सदन की आवश्यकता को अनुभव किया गया है। ऐसी स्थिति म यदि लॉडसभा को समाप्त कर दिया जाय तो प्रश्न यह है कि उसका

क्या विकल्प होना चाहिए ? यदि उच्च सदन का सगठन निम्न सदन की भांति ही होता है तो उच्च सदन का कोई महत्व व मूल्य नही है । एक अन्य प्रश्न यह भी है कि नवीन सदन के सगठन का आधार क्या होना चाहिए। क्या वह मनोनीत होना चाहिए या निर्वाचित । लॉर्डसभा सम्बन्धी यह सब व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। सिडनी ला के अनुसार एक दल द्वारा शासन चलाना सवैधानिक शैतानियत (constitutional monstrosity) है । इगलैण्ड म अमेरिकी सीनेट की तरह शक्तिशाली एव फ्रास की गणतन्त्र परिषद (Council of Republic) जैसी दुबल एव सम्मानहीन सस्था सवथा ही अव्यावहारिक होगी अत उसको जनता स्वीकार नही करेगी । एक दृष्टिकोण यह भी है कि नवीन एव अपरिचित सस्था के स्थान पर पुरानी एव परिचित सस्था को ही क्यो न रखा जाय ? वतमान म लॉडसभा की शक्तियाँ काफी कम कर दी गयी हैं। सुधार की अनेक योजनाएँ प्रस्तावित की गयी हैं लेकिन उनम से कोई भी स्वीकार नहीं हो सकी है । आजकल श्रम दल के केवल कुछ उग्र सदस्य ही लाडसभा के उन्मूलन का समथन करते हैं ।

(5) राज्य-काय मे वृद्धि के कारण विधान (legislation) मे भी वृद्धि हुई है। लॉर्डसभा की समाप्ति से कॉमन्स सभा के काय का दूना हो जाना स्वाभाविक है। ब्राइस ने यह सुझाव दिया था कि विवादहीन विधेयको को पहले लॉडसभा म प्रस्तावित किया जाना चाहिए एव उसके द्वारा पारित किये जाने के पश्चात उन्हे कॉमन्स सभा सरलता से पारित कर सकेगी । वैयक्तिक विधेयका पर सवप्रथम लॉडसभा म ही विचार किया जाता है । इससे कॉमन्स का कायभार भी कम हा जाता है ।

ब्राइस ने लाडसभा की निम्नलिखित चार उपयोगिताओ का उल्लेख किया है

(अ) लॉडसभा कॉम स द्वारा पारित विधेयको का परीक्षण एव पुनविचार तथा सशोधन करती है ।

(आ) निर्विवाद एव वैयक्तिक विधेयको पर लॉडसभा मे सवप्रथम विचार करके कॉमन्स के समय की वचत की जाती है ।

(इ) विलम्ब का वधानिक महत्व है । लॉडसभा के विरोध के फलस्वरूप विवादास्पद विधेयक पर जनमत को सगठित होने का अवसर प्राप्त होता है ।

(ई) लॉडसभा म पूण एव मुक्त वाद विवाद के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुअवसर हाता है ।

लॉडसभा के सुधार की योजनाएँ

लॉडसभा के सुधार के प्रयत्न 19वी सदी म ही प्रारम्भ हो गये थे । इस सदी की कॉमन्स के सुधार की योजनाओ का लॉडसभा द्वारा विरोध किया गया था । लाड सभा के नेताओ न इस प्रयत्न म अपना पतन देखा था । लॉडसभा अपनी रक्षा अपने आचरण को सुधार कर ही कर सकती थी और इसके लिए उसका प्रतिनिधित्वपूण होना आवश्यक था । अत सुधार के प्रयत्न प्रारम्भ हुए थे । प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त

को इन सुधारों के आधार के रूप में स्वीकार करके वंशानुगतता को शासनाधिकार के आधार के रूप में अस्वीकार कर दिया गया था।

प्रमुख सुधार-योजनाएँ निम्नांकित हैं

(1) सुधार योजना सम्बन्धी प्रथम विधेयक लॉर्ड रसेल (Lord Russell) ने 1869 ई. में प्रस्तुत किया था। इसके अनुसार क्राउन को प्रति वर्ष 4 आजीवन पीयर 6 वर्षों में से नामजद करने का अधिकार दिया गया था जिनकी कुल संख्या 85 से कम नहीं होनी चाहिए थी। प्रस्तावित 6 वर्ग थे स्कॉटलैण्ड एवं आयरलैण्ड के प्रतिनिधि पीयर्स, वे व्यक्ति जो 10 वर्ष तक कॉमन्स के सदस्य रह चुके हों, सेना एवं नौसेना के अधिकारी, न्यायाधीश एवं उच्च विधिक अधिकारी, साहित्य, विज्ञान एवं कला के क्षेत्र में ख्यातिनामा व्यक्ति, 5 वर्ष तक क्राउन की सेवा करने वाले व्यक्ति। इस प्रस्ताव को Black Sheep Bill की संज्ञा दी गयी और इसे अस्वीकार कर दिया गया।

(2) 1874 ई. में लार्ड रोजबेरी (Lord Rosebury) एवं 1888 ई. में लॉर्ड रोजबेरी व लार्ड सैलिसबरी ने योजनाएँ प्रस्तुत की थीं। इनमें यह प्रस्तावित किया गया था कि लार्डसभा की सदस्य-संख्या को कम कर दिया जाये तथा लॉर्डसभा के सदस्यों द्वारा ही अपने सदस्यों को चुना जाय। आजीवन लॉर्ड्स की संख्या 50 निश्चित की गयी थी। इनमें से प्रति वर्ष 5 सदस्यों का चुनने की योजना थी।

1907 ई. तक सुधार की अन्य कोई चर्चा नहीं सुनी गयी। इस काल में अनुदार दल का शासन था। 1907 ई. में लॉर्डसभा ने विधि-निर्माण के सम्बन्ध में सदन को सुझाव देने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में सदन के लिए नवीन संविधान का सुझाव दिया जिसमें राजवंश के न्यायिक एवं वंशानुगत लॉर्डों के चुने हुए 200 प्रतिनिधि हों। इसके अतिरिक्त सदन में विशिष्ट योग्यता वाले वंशानुगत, आध्यात्मिक एवं आजीवन पीयरों की भी व्यवस्था थी।

1909 ई. में लार्ड लैन्सडाउन (Lord Lansdowne) ने एक सुधार-योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अनुसार लार्डसभा की सदस्य-संख्या 330 निश्चित की गयी थी। यह योजना भी अस्वीकार कर दी गयी।

ब्राइस सुधार योजना (1918 ई.)—1917 ई. में लॉर्ड ब्राइस की अध्यक्षता में लार्डसभा के सुधार के लिए 30 सदस्यीय समिति गठित की गयी थी। इसने अपना प्रतिवेदन 1918 ई. में प्रस्तुत किया था। इसकी मुख्य सिफारिशें निम्नवत् थीं

(1) लार्डसभा की कुल सदस्य-संख्या घटा कर 327 कर देने का सुझाव दिया गया। तीन-चौथाई सदस्यों को समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर कॉमन्स के सदस्यों द्वारा चुने जाने का सुझाव दिया गया था। यह सदस्य 13 प्रादेशिक निर्वाचित किये जाने थे। शेष सदस्यों का दोनों सदनों की संयुक्त स्थायी पीयरों में से चुने जाने की व्यवस्था थी। सदन का कार्यकाल 12 वर्ष

गया जिनम से एक तिहाई सदस्यो के प्रति चार वप पश्चात पदमुक्त होन की व्यवस्था थी । इस प्रकार लॉडसभा को एक स्थायी सदन बनाया गया था ।

ब्राइस सम्मेलन लॉडसभा के सुधार की दृष्टि से बहुत ही विद्वतापूण एव सजग गवेषणात्मक प्रयत्न था । लेकिन इसके समक्ष दो कठिनाइयाँ थीं जिनक समाधान कठिन थे । प्रथम, लॉडसभा के लिए जो शक्तियाँ प्रस्तावित की गयी थी व प्रगतिवादियो की दृष्टि से बहुत अधिक थी और अनुदारवादिया के अनुसार कम थी। द्वितीय, प्रस्तावित अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली कष्टसाध्य थी । साथ ही वह प्रगतिवादिया की दृष्टि मे पर्याप्त अलोकतन्त्रीय एव अनुदारवादियो के अनुसार कुलीनतन्त्रीय नहीं थी । अत उपरोक्त प्रतिवेदन विरोधी विचारो के मध्य समझौते का परिणाम था जो किसी को भी सन्तुष्ट कर सका ।

मन्त्रिमण्डलीय समिति प्रस्ताव (1922 ई)—1922 ई म मन्त्रिमण्डल का एक उप समिति ने सुधार की निम्न योजना प्रस्तुत की थी

लॉडसभा मे राजवश को लॉर्डों, लॉड पादरियो एव विधि लॉर्डों के अतिरिक्त प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रीति से लॉडसभा के बाहर से निर्वाचित लॉड, लॉड समुदाय द्वारा लॉडसभा मे से ही निर्वाचित सदस्य एव सम्राट द्वारा नामजद सदस्यो की व्यवस्था की गयी थी । कुल सदस्य सख्या 350 निश्चित की गयी । नवीन प्रकार के सदस्यो का कायकाल विधि द्वारा निर्धारित किये जाने की व्यवस्था थी । उनके पुन निर्वाचन का भी विधान था । ससदीय अधिनियम 1911 ई के अनुरूप ही अधिकार बनाये रखने की व्यवस्था थी । मन्त्रिमण्डल के बदल जाने के कारण यह योजना नियान्वित न हो सकी।

दिसम्बर 1933 ई मे एक अन्य सुधार विधेयक लॉडसभा मे प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार लॉडसभा की शक्तियो मे पर्याप्त वद्धि करने का प्रस्ताव किया गया था । वित्त विधेयक की व्याख्या का अधिकार दोनो सदना की सयुक्त समिति को प्रदान किया गया । इसके अध्यक्ष—स्पीकर—को नियुक्त करने का विधान किया गया। सदन की कुल सदस्य सख्या 300 निर्धारित की गयी । 150 सदस्य पीयरो द्वारा एव शेष 150 सदस्यो को ससद के दोनो सदनो के द्वारा प्रस्तावित रीति म निर्वाचित किये जाने का प्रस्ताव था । इस सुधार योजना पर प्रथम दो वाचन पारित होने क बाद अनुदार दल के नेता बाडविन के निर्देश पर विचार स्थगित कर दिया गया था।

सवदलीय सम्मेलन (1949) के प्रस्ताव—1949 ई म ससदीय अधिनियम 1911 ई का जब सशोधन प्रस्ताव विचाराधीन था अब अनुदार दल के अनुरोध पर लॉडसभा के सुधार की समस्या पर विचार करने हेतु एक सवदलीय सम्मलन का आयोजन किया गया था । लॉडसभा के सगठन के सम्बन्ध म इस सम्मेलन म निम्न सवसम्मत निश्चय किये गय थे

(1) वतमान वशानुगत सदस्यता का अन्त कर दिया जाय ।

(2) इसके स्थान पर व्यक्तिगत प्रतिष्ठा एव सावजनिक सवा के आधार पर

वशानुगत लॉर्डों मे से ससदीय लॉर्डों की नियुक्ति की जाय। सभी ससदीय लॉर्डों को कॉमन्स सभा के सदस्यो की भाति वेतन प्राप्त हो एव उनका आजीवन कायकाल हो।

(3) स्त्रियो को भी लॉडसभा के सदस्य होने का अधिकार दिये जायें।

(4) ससदीय लॉर्डों मे कुछ राजवशीय एव पादरी लाड भी होने चाहिए।

(5) जो वशानुगत लाड ससदीय लॉड न बनाये जाये, उन्हे कॉमन्स सभा के निर्वाचन मे मत देने एव सदस्यता के लिए निर्वाचित होने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

लेकिन इस सम्मेलन के सदस्यो मे लॉडसभा की शक्तिया के सम्बन्ध मे मतैक्य न हो सका। फलस्वरूप सगठन सम्बन्धी उपरोक्त सवसम्मत रूप म स्वीकृत निणय भी क्रियान्वित न हो सके। ससदीय अधिनियम 1949 ई के द्वारा लॉडसभा की निलम्बकारी शक्तियो को और अधिक सीमित कर दिया गया। परन्तु लॉडसभा का *सगठन सम्बन्धी प्रश्न विवादास्पद बना रहा। 1951 ई मे अनुदार दल ने यह वचन* दिया था कि सत्तारूढ होने पर वे लॉडसभा के सुधार के प्रश्न का समाधान करेगे।

1952 ई मे लॉड साइमन (Lord Simon) ने एक प्रस्ताव द्वारा यह सुभाव दिया था कि सम्राट द्वारा प्रति वष 10 आजीवन लॉड नियुक्त किये जायें। लेकिन सरकार ने इस प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकृत कर दिया कि वह लाडसभा के सामान्य सुधारो की योजना बना रही है।

1952 ई मे चर्चिल ने दूसरा सवदलीय सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव किया था परन्तु श्रमदल ने इसमे भाग लेने से इकार कर दिया।

माच 1955 ई मे वाईकाउण्ट सेमुअल ने लॉडसभा मे 1948 ई के सम्मेलन के आधार पर सुधार योजना प्रस्तावित की। 1956 ई मे अनुदार दल ने पुन लॉड सभा के सुधार सम्बन्धी विचार व्यक्त किये। अक्टूबर 1957 ई म सरकार ने सुधारो का प्रस्ताव किया। इसके अनुसार सीमित सख्या मे आजीवन लार्डो की नियुक्ति करने, महिलाओ को लाडसभा का सदस्य बनाने एव सभी लॉर्डों को पारिश्रमिक देने के *प्रस्ताव किये गये। इन प्रस्तावो मे लॉडसभा की शक्तिया सम्बन्धी कोई उल्लेख नही* था। अत इस सुधार योजना मे किसी को विशेष रुचि नही थी।

जीवनपयन्त पीयरेज अधिनियम[16] (1958 ई)—इस अधिनियम द्वारा (1) *लॉडसभा मे कुछ सीमित सख्या मे जीवन भर के लिए—जीवनपर्यन्त सदस्यता (Life* Peerage) प्रदान की गयी है, (2) महिलाओ को लॉर्डसभा की सदस्यता प्रदान की गयी है एव (3) लॉडसभा के सदस्यो को कुछ दैनिक भत्ता प्रदान किया गया है। इस अधिनिमय के अधीन जून 1958 ई मे 14 आजीवन सदस्य नियुक्त किये गये। इनम चार महिलाएँ थी। 1964 ई मे आजीवन सदस्यो की सख्या 7 महिलाओ सहित 45 थी।

---

16 The British Parliament, R 5448/73, p 6

इस व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य समाज के विभिन्न क्षेत्रो के प्रतिष्ठित एव अनुभवी व्यक्तियो को लॉडसभा मे स्थान दना है । शासन द्वारा यह भी आश्वासन दिया गया था कि आजीवन सदस्या की नियुक्ति करत समय विरोधी दल की स्वीकृति भी ल ली जायेगी या उदार दल के नेता से परामर्श किया जायगा ।

पीयरेज अधिनियम (1963 ई)—लॉडसभा के सुधार के पुन प्रयत्न 1962 ई म प्रारम्भ किय गय । फलस्वरूप 1963 ई म पीयरेज अधिनियम पारित हुआ । इस अधिनियम क अन्तर्गत निम्न व्यवस्थाएँ की गयी (1) पतक लाड सदस्यो को केवल अपने जीवन भर के लिए लॉडसभा की सदस्यता से त्यागपत्र का अधिकार प्रदान किया गया । त्यागपत्र दने वाले लॉड का उत्तराधिकारी सदस्यता के अधिकार से वचित नही होता है । वह लॉडसभा का सदस्य स्वत बन जाता है।

(2) स्कॉटलैण्ड के सभी लॉड लॉडसभा के सदस्य बना दिय गय ।

(3) आयरलैण्ड के लॉड सदस्यो को कॉमन्स सभा के लिए निर्वाचन का अधिकार दिया गया ।

(4) महिला लॉर्डों का भी यह समस्त अधिकार प्रदान किये गय।

पैतक लॉर्डों को लाडसभा से अपने जीवन भर के लिए परित्याग की व्यवस्था एक विशेष कारण से करनी पडी थी। प्रत्येक लॉड की अपनी मत्यु के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र वशानुक्रम के सिद्धान्त के अनुसार स्वत ही लॉडसभा की सदस्यता का अधिकारी हो जाता था । प्रधानम त्री मैकमिलन के बाद लॉड होम को अनुदार दल ने उनका उत्तराधिकारी चुना था । लॉर्डसभा की सदस्यता उनके प्रधानमन्त्री होने के माग म बाधा थी क्योकि परम्परा के अनुसार प्रधानमन्त्री कॉमन्ससभा का ही सदस्य होना चाहिए । उपरोक्त उल्लेखित पीयरेज अधिनियम (1963 ई) के अन्तगत ही लाड होम ने लॉर्डसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दिया एव तत्पश्चात प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण किया ।

1968 ई म एक बार फिर लॉडसभा के अधिकारा को कम करने की बात उठी । दक्षिणी रोडेशिया के विरुद्ध कॉमन्स सभा द्वारा आर्थिक प्रतिबन्धो विषयक पारित प्रस्ताव का माग लॉडसभा ने अवरुद्ध कर दिया था । प्रधानमन्त्री विल्सन (Wilson) ने लॉडसभा के इस काय को लोकत त्र एव सविधान की धारणा के बिलकुल विपरीत बताया था ।

निष्कर्ष—लॉडसभा वशानुगत, रूढिवादी, अनुदारवादी एव पक्षपाती सदन है तथा असाधारण रूप से वहद है। यह अलोकतान्त्रिक भी है । यह किसी का भी प्रतिनिधित्व नही करता । उसे 'जीवित यशस्वी व्यक्तियो का वेस्टमिनिस्टर स्थित गिरजाघर' (Westminister Abbey of living celebrities) की सज्ञा दी जाती है । फाइनर से अनुसार 'यह एक आश्चयजनक सत्य है कि ब्रिटेन विधिवत, अर्द्ध लोकतन्त्रीय सभा द्वारा शासित है क्योकि लॉडसभा का अस्तित्व बहुमत शासन के सिद्धान्त के ठीक विपरीत है । दो बातें और उल्लेखनीय हैं—(1) लॉडसभा प्रशासकीय एव विदेशनीति

से सम्बन्धित नीतियों पर भी वाद-विवाद या विचार-विमर्श करती है। यह किसी तरह भी उचित नहीं है कि अलोकतन्त्रीय सदन के अनुत्तरदायी एवं प्रतिनिधित्व-हीन विचारों को विधिक मान्यता-युक्त अधिकार प्राप्त हो।" (2) लॉर्डसभा को कॉमन्स सभा की भांति ही उन नियमों एवं उपनियमों को अस्वीकार करने का अधिकार है जो किसी संसदीय अधिनियम के अधीन निर्मित किये गये हों। यह शक्ति पर्याप्त महत्वपूर्ण है।[17]

संसदीय अधिनियम 1911 ई एवं 1949 ई के द्वारा लार्डसभा की शक्ति को पर्याप्त कम करने के पश्चात भी उसके सुधार की मांग कायम है। श्रमदल प्रबल बहुमत से पदारूढ़ होने के बावजूद भी उसका उन्मूलन नहीं कर सका। इसका क्या कारण है? यह कहा जाता है कि लार्डसभा की वर्तमान शक्तिहीनता ही उसकी प्रधान शक्ति है। इस कथन में विरोधाभास होते हुए भी पर्याप्त सत्य है। अब लार्डसभा में शासन को चुनौती देने की शक्ति नहीं है, अतः उसके प्रति उतना तीव्र असन्तोष भी नहीं है।

इसके अतिरिक्त, लॉर्डसभा का संगठन विदेशियों को विचित्र भले ही लगे परन्तु स्वयं ब्रिटेन-वासी उससे चिन्तित या व्यग्र नहीं हैं। **हरबर्ट मौरीसन** का कथन है कि हम ब्रिटेन वासियों में स्वतन्त्रता विरोधी संस्थाओं से कार्य चलाने की पर्याप्त क्षमता है। किसी चीज से जब तक काम चलता है तब तक उसे वे अच्छा ही समझते हैं या उसके प्रति कम से कम सहिष्णुता का भाव तो रखते ही हैं। श्रमदलीय सरकार भी अब लॉर्डसभा में विवेकी एवं लोकतन्त्रीय सुधारों के लिए चिन्तित नहीं है। ऐसे सुधारों से लॉर्डसभा की शक्ति बढ़ जाने एवं उसके कॉमन्स सभा का प्रतिद्वन्द्वी हो जाने का भय है। हम संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट की भांति शक्तिशाली द्वितीय सदन नहीं चाहते, वर्तमान लॉर्डसभा का तर्कहीन एवं विचित्र संगठन हमारे ब्रिटिश लोकतन्त्र का रक्षक है।[18]

लॉर्डसभा के सुधार में उपरोक्त दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य मुख्य बाधा उसके संगठन से सम्बन्धित है। उसका संशोधित रूप कैसा हो और उसके अधिकार क्या हों? वर्तमान लॉर्डसभा के कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जो द्वितीय सदन द्वारा सम्पादित नहीं किये जाते, जैसे— न्यायिक कार्य। वे किस संस्था को सौंपे जायें? उपरोक्त कठिनाइयों के बावजूद भी यह सर्वमान्य एवं सुनिश्चित मत है कि लार्डसभा के अलोकतन्त्रीय स्वरूप को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। लॉर्डसभा के सुधार के सम्बन्ध में निम्न बातों से प्राय सभी सहमत हैं —

(1) लॉर्डसभा लोकतन्त्रीय भावना के अनुसार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन होना चाहिए तथा उसका वर्तमान वंशानुगत स्वरूप समाप्त किया जाना चाहिए।

---

17 Finer H *op cit*, pp 416 417
18 Herbert Morrison *Government and Parliament*, p 194

(2) लॉर्डसभा को कॉमन्स सभा की तुलना मे द्वितीय स्थान होना चाहिए। उसमे किसी स्थायी दल का बहुमत भी नही होना चाहिए।

(3) उसके न्यायिक कार्य समाप्त कर देने चाहिए एव स्वतन्त्र न्यायालय की स्थापना की जानी चाहिए।

(4) लॉर्डसभा के दायित्व एक आदर्श द्वितीय सदन के अनुरूप होने चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि लॉर्डसभा का वर्तमान रूप काफी समय तक बना रहेगा। लास्की की यह सम्भावना भी उतनी ही सत्य बनी हुई है जितनी कि 1938 ई म थी जब उसने यह व्यक्त किया था कि यदि अनुदार दल के अनुरूप लॉर्डसभा का सशोधन किया जाता है तो "हम सविधान की सुरक्षा-नली अर्थात लार्डसभा के निर्णयो को अस्वीकार करने की शक्ति खो बैठेगे। श्रम दल को सन्तुष्ट करने वाले सिद्धान्तो के आधार पर यदि लॉर्डसभा का पुन सगठन किया जाता है तो सम्पत्तिशाली वर्ग म उनकी शक्ति को सकट उत्पन्न करने वाली लोकतन्त्रीय व्यवस्था को समाप्त कर देने की तीव्र भावना उत्पन्न होने की आशका है। अत जो राजनीतिज्ञ इन गम्भीर समस्याओ के मध्य कोई रास्ता खोज सकेगा वह निस्सन्देह राष्ट्र की कृतज्ञता का अधिकारी होगा।"[19] लेकिन लॉर्डसभा भी लोकतन्त्र की माँग का बहुत समय तक अवरोध नही कर सकेगी। उसकी शक्ति नगण्यप्राय हो ही गयी है।

सयुक्त राज्य अमेरिका का द्वितीय (उच्च) सदन—सीनेट

सयुक्त राज्य अमेरिका की सघीय व्यवस्थापिका—कांग्रेस—द्विसदनात्मक है। प्रथम सदन को प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) एव द्वितीय सदन को सीनेट (Senate) की सज्ञा दी जाती है। दोनो सदन सगठन एव शक्तियो की दृष्टि से असमान है।

सीनेट का सगठन

सीनेट को विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन माना है। अमेरिकी शासन मे इसका स्थान प्रमुख एव केन्द्रीय है। सीनेट अमेरिकी सघ के घटको—राज्यो—का प्रतिनिधि सदन है। प्रत्येक राज्य को सीनेट म दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है। इसकी सदस्य सख्या 100 है। किसी भी राज्य को बिना उसकी स्वीकृति के सीनेट मे प्राप्त समान प्रतिनिधित्व से वचित नही किया जा सकता। 1913 ई के अमरिकी सविधान के 17वें सशोधन के द्वारा सीनेटरो को राज्यो की जनता द्वारा प्रत्यक्षत निर्वाचित किया जान लगा है। इसके पूर्व सीनेट के सदस्यो को राज्यो की व्यवस्थापिकाओ द्वारा निर्वाचित किया जाता था। इस प्रणाली के कारण गम्भीर एव दीर्घकालीन गतिरोध उत्पन्न हो जात थे। अनेक अवसरो पर राज्यो की व्यवस्थापिकाएँ एक प्रतिनिधि को भी चुनने म असमर्थ रहती थी और सीनेट म उस राज्य का कोई प्रतिनिधि नही होता था। 1901 ई म डिलवारे (Delaware) राज्य का सीनेट म कोई प्रतिनिधि नही था।

19 Laski *op cit* 1952, p 138,

1890 ई से 1912 ई के काल मे अनेक अवसरो पर 11 राज्यो का सीनेट मे केवल एक एक प्रतिनिधि ही था। राज्य विधानमण्डलो द्वारा निर्वाचन के समय हर प्रकार के भ्रष्ट साधनो का सहारा लिया जाता था एव राज्यो की व्यवस्थापिकाओ के सामा य कार्यों म बडा व्यवधान उत्पन्न होता था। अत प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के पक्ष मे तीव्र आ दोलन प्रारम्भ हुआ था जिसके फलस्वरूप उपरोक्त 17वा सवैधानिक सशोधन पारित हुआ था।

ऐ सी बोयड के अनुसार सीनेट मे प्रत्येक राज्य को प्राप्त समान प्रतिनिधित्व लोकत त्रीय सिद्धा त के विपरीत है। सीनेट मे मनुष्यो को नही अपितु भौगोलिक इकाइयो को प्रतिनिधित्व दिया गया है। निवादा (Nevada) नामक कम जनसख्या वाले राज्य एव अधिक जनसख्या वाले यूयाक जैसे बडे राज्य को समान महत्व प्राप्त है। सयुक्त राज्य अमेरिका के 10 राज्यो मे पूरे देश की आधी जनसख्या निवास करती है। लेकिन सीनेट म उनको केवल 1/5 प्रतिनिधित्व प्राप्त है। यूयाक, पे सलवीनिया, इलीनियोस, ओहियो, केलीफोर्निया एव टैक्सास मे 5 करोड व्यक्ति निवास करत है जबकि सीनेट मे इन राज्यो के केवल 12 सदस्य है। अत सीनेट म असमान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है।

सीनेट एक स्थायी सदन है। इसके सदस्यो का कायकाल 6 वष है। एक-तिहाई सदस्य दो वष के पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेते है। अत सम्पूण सदन कभी एक साथ विघटित नही होता। पूरे 6 वष की अवधि मे प्रत्यक राज्य से सीनेट के लिए दो प्रतिनिधि निर्वाचित होते है। सीनेट की सदस्यता के लिए निर्धारित योग्यतानुसार प्रत्याशी के लिए यह आवश्यक है कि उसकी आयु 30 वष की होनी चाहिए, कम से कम 9 वष तक वह अमरीकी नागरिक रह चुका हो तथा निर्वाचित होने वाले राज्य का निवासी हो।

सीनेट का अध्यक्ष अमेरिका का उप राष्ट्रपति होता है।

सीनेट की उत्पत्ति

फाइनर का मत है कि द्वितीय सदन सम्ब धी आधुनिक राजनीतिक सिद्धा त का विकास यथाथ म सवप्रथम 1787 ई के फिलाडेलफिया सम्मेलन मे अमेरिकी राजनीतिज्ञो द्वारा ही किया गया था। सीनेट के ज म के विशेष कारण थे। सघवाद सीनेट के ज म का एकमात्र उत्तरदायी कारण नही था। अमरिकी उपनिवेशो म 1776 ई म ब्रिटिश शासन की समाप्ति के पश्चात स्थापित लोकत त्रीय शासनो न असयमित ढग स काय किया था अत अमरिकी समाज के तत्कालीन उपद्रवो एव असयमित लोकत त्र ने सीनट के स्वरूप के निर्धारण म महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सम्मलन म प्राय सभी वक्ताओ ने अपने भाषणो म इसका सकेत किया है। मरीलण्ड के प्रतिनिधि **मक्हेनरी** के कहा था कि हम मुख्य खतरा अपने सविधानो के लोकत त्रीय भागो स है किसी भी सविधान म लोकत त्र के विपरीत पयाप्त अवरोधो की व्यवस्था नही है।"[20]

20 'Our chief danger arises from the democratic parts of our constitutions None of the Constitutions have provided sufficient

फिलाडेलफिया सम्मेलन के सभी सदस्य द्वितीय सदन के उद्देश्य के सम्बध म समान मत रखते थे। लेकिन द्वितीय सदन का निर्वाचन कैसे हो ?, उसका कायकाल एव सदस्यो की आयु क्या हो ? उनका सगठन कैसा हो ? इन प्रश्ना के सम्बध में सदस्यो म विवाद था। सम्मेलन के सदस्या को इस बात का भी भय था कि यदि सीनेट का कायकाल लम्बा रखा गया तो बाद मे सीनेट के सदस्य अपने कायकाल को बढा कर कही जीवन भर न कर ले और कही सीनेट वशानुगत सदन म परिवर्तित न हो जाय। इसके अतिरिक्त उन्ह यह भी सम्भावना थी कि लम्बे समय तक सदस्यो का निर्वाचका स कोई सम्पक न रहने के कारण उनम राज्य के अतिरिक्त अन्य शासन अर्थात सघ शासन के प्रति लगाव उत्पन्न हो सकता है। मडीसन के अनुसार 9 वष का कार्यकाल पर्याप्त था। रेडोल्फ ने 7 वष के कार्यकाल का सुझाव दिया था। इसके विपरीत हैमिल्टन सीनेट के सदस्यो को सदाचरण पय त कायकाल के लिए अप्रत्यक्षरीति से निर्वाचित किय जाने का पक्षपाती था। सीनेटरो के लिए 30 वष की आयु को ठीक समझा गया था क्योकि कतव्या एव दायित्वा की दृष्टि से उनसे अधिक अनुभव एव दृढ चरित्र की अपेक्षा की गयी थी। जहा कुछ सदस्यो मे दीघकाल के प्रति सन्देह था, वहाँ उनमे यह भी विश्वास था कि दीघ कायकाल के कारण सदन अधिक स्थायी सिद्ध होगा तथा वैदेशिक दायित्वा को स्थायी एव दृढ सदन ही भली प्रकार निभा सकता है। इसके अतिरिक्त, ऐसे सदन के सदस्यो म उत्तरदायित्व की भावना भी अपेक्षाकृत अधिक होगी। इन परस्पर विपरीत विचारो म समन्वय का परिणाम अमेरिकी सीनेट है। सविधान निर्माता सीनेट को इगलैण्ड की प्रीवी काउन्सिल का अमेरिकी प्रतिरूप मानते थे।

सीनेट की शक्तिया

सीनेट को विश्व के सभी द्वितीय सदनो की अपक्षा अधिक शक्तिया प्राप्त हैं। सीनेट की व्यवस्थायन या विधायी, कायपालक एव न्यायिक शक्तियाँ निम्नवत हैं

(1) **विधायी शक्तियाँ**—सीनट का विधि-निर्माण पर व्यापक नियन्त्रण है। गैर वित्तीय विधेयक सीनेट मे प्रस्तुत किये जा सकते है। यदि कोई विधेयक प्रतिनिधि सदन म प्रथम बार प्रस्तुत भी किया जाता है तो भी उसका सीनेट द्वारा पारित होना आवश्यक होता है अर्थात बिना सीनेट की स्वीकृति के कोई विधेयक विधि नही बन सकता। वित्त विधेयका का प्रथम बार प्रतिनिधि सदन म ही प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु सीनट को वित्त विधेयको को अपनी इच्छानुसार परिवर्तित या सशोधित करने का पूण अधिकार प्राप्त है। वित्त विधेयक के शीपक को छोडकर सीनेट उसके सम्पूर्ण कलेवर को आमूलचूल रूप स सशोधित कर सकती है। जब तक सीनेट द्वारा वित्त विधेयका म प्रस्तावित सशोधना का प्रतिनिधि सदन द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता

---

checks against the democracy ' —Mc Henry of Maryland, quoted by Finer *op cit* p 401

तब तक उसके पारित होने की कोई सम्भावना नही है। अत व्यवहारत विधेयका का स्वरूप अतिम रूप मे सीनेट द्वारा ही निश्चित होता है।

(ii) **कायपालक शक्तियाँ**—सीनेट को व्यापक कायपालक शक्तिया प्राप्त हैं। राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियो को सीनेट दो-तिहाई वहुमत से अनुमोदित करती है। यह सम्भव है कि सीनेट की विना अनुमति के राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियाँ सीनेट द्वारा स्वीकृत (confirm) ही न की जावे, क्योकि नियुक्तियो के सम्बन्ध म 'सीनेट का सौजन्य' (senatorial courtesy) नामक एक प्रथा का विकास हुआ है। इसके अनुसार जिस राज्य म सघीय नियुक्ति की जाती है उस राज्य के सीनेटरो से राष्ट्रपति द्वारा अनौपचारिक रूप से पहले ही विचार विमश कर लिया जाता है। यदि राष्ट्रपति इस परम्परा की उपेक्षा करता है तो सभी सीनेटर उसके द्वारा प्रस्तावित नियुक्ति को विना दलीय भेदभाव के एकमत होकर अस्वीकार कर देते ह। 1938 ई मे राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 'सीनेटरो के सौजन्य' की सुस्थापित प्रथा की उपेक्षा की थी। उस समय सभी ने एकमत होकर उसका विरोध किया था।[21] राष्ट्रपति द्वारा की गयी सन्धियाँ भी सीनेट के दो तिहाई वहुमत से अनुमोदित होती है। यह आवश्यक नही है कि राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली सभी सन्धिया स्वीकृत हो ही जायें। 1919 ई की वार्साई सन्धि को सीनेट ने अनुमोदित करने से इन्कार कर दिया था। फलस्वरूप सयुक्त राज्य अमेरिका राष्ट्रसघ का सदस्य न वन सका। 1824 ई तक सीनेट ने एक भी सन्धि अस्वीकृत नही की थी। सीनेट के समक्ष 1935 ई तक स्वीकृति के लिए प्रस्तुत की गयी करीव 1,100 सन्धियो मे से 900 सन्धिया उसके द्वारा स्वीकृत की गयी है और केवल 62 सन्धिया को ही अस्वीकृत किया था। राष्ट्रपति को सीनेट के समक्ष किसी सन्धि को स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करने के पश्चात उसे वापस लेने का अधिकार नही है। स्मरणीय है कि सीनेट को अकेले युद्ध की घोषणा करने का अधिकार नही है। यह अधिकार काग्रेस अर्थात सीनेट एव प्रतिनिधि सदन दोनो को प्राप्त है। सीनेट राष्ट्रपति से विदेशी शक्तियो से वार्ता करने के लिए प्राथना कर सकती है। सामान्यत राष्ट्रपति सीनेट की इस प्रकार की प्राथना को स्वीकार कर लेता है लेकिन अनिवायत स्वीकार करना आवश्यक नही है। राष्ट्रपति किसी सन्धि को सीनेट द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात अनुमोदित करने से इन्कार कर सकता है।

(iii) **न्यायिक शक्तिया**—सीनेट को राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति एव अन्य सभी सघीय अधिकारियो पर लगाये गये महाभियोगो की जाच करने का अधिकार है।

---

21 1938 ई मे रूजवेल्ट द्वारा की गयी वर्जीनिया के न्यायाधीश की नियुक्ति को सीनेट ने अस्वीकार किया था। 1943 ई म एडवर्ड जे फ्लाइन (Edward J Flymn) को रूजवेल्ट ने आस्ट्रेलिया म राजदूत मनोनीत किया था लेकिन सीनेट के विरोध के कारण उसका नाम वापस ले लिया था। 1950 ई मे राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा नियुक्त सघीय व्यापार आयोग के सदस्य की नियुक्ति को सीनेट अनुमोदित करने से अस्वीकार कर दिया था।

प्रतिनिधि सदन द्वारा प्रस्ताव पारित करके महाभियोग लगाया जा सकता है। महाभियोग को प्रस्तावित करने मे सीनेट का कोई अधिकार नही है । सीनेट द्वारा किसी अधिकारी को दोषी पाये जाने पर उसे कारावास या मृत्यु दण्ड आदि नही दिया जा सकता है, अधिक से अधिक उसे पद मुक्त किया जा सकता है । महाभियोग प्रमाणित होने के लिए सीनेट का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक है । सीनेट म महाभियोग सिद्ध होने पर सम्बन्धित व्यक्ति को किसी भी अधिकारी द्वारा क्षमा नही किया जा सकता। अभी तक बारह सघीय महाभियोग के मामले सीनेट के समक्ष आय हैं। लेकिन केवल चार मामला मे महाभियोग प्रमाणित हुए है । राष्ट्रपति के विरुद्ध अब तक 1868 ई म केवल एक बार महाभियोग लगाया गया और वह भी प्रमाणित नही हो सका।[22]

सीनेट मे महाभियोग की सुनवाई की एक अलग पद्धति है। सीनेट द्वारा एक समिति नियुक्त की जाती है। समिति द्वारा महाभियोग के आरोपा को यदि सही माना जाता है तो सीनेट सम्बन्धित अधिकारी के विरुद्ध महाभियोग की जाच करती है। सीनेट जब महाभियोग न्यायालय के रूप मे काय करती है उस समय उप राष्ट्रपति उसकी अध्यक्षता नही करता अपितु अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अध्यक्ष होता है । इसके अतिरिक्त सीनेट को जाच के व्यापक अधिकार है ।

सीनेट का मूल्याकन

लिण्डसे रोगर के अनुसार "अमेरिकी सीनेट आधुनिक राजनीति का महत्वपूर्ण आविष्कार है ।"[23] स्ट्राग के शब्दो मे "सीनेट व्यापक शक्तिया से युक्त है। सम्भवत आज विश्व के किसी भी द्वितीय सदन का इतना वास्तविक एव प्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्रीय महत्व के विषया जसे—वैदेशिक मामलो मे ही स्पष्ट नही है अपितु वित्त सहित समस्त सघीय विधान सम्बन्धी मामूली बातो मे भी स्पष्ट है । सीनेट इतनी शक्तिशाली है कि यह सयुक्त राज्य अमेरिका का एकमात्र प्रभावशाली सघीय सदन माना जाता है।"[24] ब्राइस ने सीनेट का मूल्याकन करते हुए लिखा है कि सविधान-निर्माताओ के मुख्य उद्देश्य को सीनेट क्रियान्वित कर सकती है । वह शासन मे गुरुता का केन्द्र है । एक तरफ यह

22 1802 ई म सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एव 1868 ई म राष्ट्रपति एण्ड्रू जॉनसन के विरुद्ध महाभियोग प्रमाणित न हो सका । राष्ट्रपति जॉनसन क महाभियोग की सुनवाई सीनेट म तीन माह तक हुई एव एक मत के अभाव म महाभियोग असफल हो गया ।

23 American Senate has become the most remarkable invention of modern politics —Lindsay Rogers *The American Senate* (1926), cited by Mahajan, p 177

24 'The powers of the Senate are very great Probably no second Chamber in the world today has an influence so real and direct, not only in the most obviously national concerns, such as foreign affairs but down to the very minutest business of federal legislation including finance So powerful is the Senate indeed that is regarded by some as the sole affective Federal Chamber in the United States '—Strong, C F *op cit*, p 213

प्रतिनिधि सदन के लोकतन्त्रीय अनुत्तरदायित्व को और दूसरी तरफ राष्ट्रपति की राजतन्त्रीय महत्वाकाक्षाओ को सशोधित एव नियन्त्रित करती है। सीनट की स्थिति दोनो के मध्य की होने के कारण उसकी दोना से प्रतिस्पर्द्धा एव विरोध है। प्रतिनिधि सदन विना सीनेट की सहमति के कुछ नही कर सकता है। सीनेट अपने विरोध द्वारा राष्ट्रपति को रोक सकती है। यह सीनेट की नकारात्मक सफलताएँ हैं। सकारात्मक दृष्टि से भी सीनेट अपने को लोकप्रिय एव महान बनाने म सफल हुई है।"[25] **जॉज वाशिंगटन** ने एक वार कहा था कि सीनेट तो एक तश्तरी है जिसमे प्रतिनिधि सदन की उबलती चाय को शीतल किया जाता है।[26]

"कुछ ऐसे काम है जिन्हे राष्ट्रपति और सीनेट बिना प्रतिनिधि सदन की सहमति के कर सकते है, कुछ को प्रतिनिधि सदन एव सीनेट बिना राष्ट्रपति की स्वीकृति के कर सकते है, लेकिन राष्ट्रपति एव प्रतिनिधि सदन बिना सीनेट की स्वीकृति के वहुत कम काम कर सकते हैं।"

सीनेट की शक्ति एव प्रभाव के कारण निम्न है

(1) विधायी क्षेत्र मे ही केवल सीनेट एव प्रतिनिधि सदन की शक्तिया असमान नही हैं अपितु सीनेट को महत्वपूण कायपालक एव न्यायिक शक्तिया भी प्राप्त हैं। वित्त विधेयका को पूणत सशोधित करने का उसे अधिकार प्राप्त है। अत सीनेट काग्रेस की एक अधीनस्थ शाखा मात्र नही है अपितु वह अपनी शक्ति के कारण एक तरफ राष्ट्रपति पर और दूसरी तरफ प्रतिनिधि सदन पर नियन्त्रण रखती है।

(2) सीनेट का आकार छोटा है जिसके फलस्वरूप इसके द्वारा प्रभावपूण ढग से विचार विमश सम्भव है। सीनेट के सदस्यो मे एकता की भावना पायी जाती है। वास्तव मे सीनेट एक अथ म पारस्परिक सुरक्षा का समुदाय (a mutual protection society) है। उसकी एकता मे ही उसकी स्वत त्रता एव प्रभाव डालने की क्षमता निहित है। सीनेट 'जीओ और जीने दो' तथा 'किसी को भी अपने विशेषाधिकारा का अतिक्रमण मत करने दो' के सिद्धान्तो को मा यता देती है।

(3) सीनेट के सदस्यो का कायकाल अपेक्षाकृत लम्बा है। इसके अतिरिक्त

---

25 'Senate has succeeded by effecting the chief object of the father of the Constitution, viz the creation of a centre of gravity in the government, an authority to correct and check on one hand the democratic recklessness of the House, on the other the monarchial ambition of the President Placed between the two, the Senate is necessarily the vital and often the opponent of both the House can accomplish nothing without its concurrence The president can be checkmated by its resistance These are so to speak the negative successes, on its positive side it has succeeded in making itself eminent and respected "—Lord Bryce, cited by Mahajan *op cit* p 176

26 The Senate was once described by George Washington as 'the saucer in which the boiling tea of the House was cooled '—Cited by Mahajan, p 176

सीनेटरो को अधिकाशत पुन निर्वाचित किया जाता है, अत वे अपने कायक्षत्र मे पूण दक्ष होते हैं और उन्ह सार्वजनिक मामला का व्यापक ज्ञान तथा अनुभव होता है। व दल के प्रभावशाली नेता भी होते है।

(4) सीनेट मे सदस्यो को वाद-विवाद की पूण स्वत त्रता होती है। इस अधि कार का कभी-कभी दुरुपयोग भी किया जाता है लेकिन इससे अल्पसख्यक सदस्यो को अपने विचार एव दृष्टिकोण को उपस्थित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

(5) सीनेट की जाच करने की शक्ति भयानक है। वह हर प्रकार क मामलो मे विशेष रूप से जाँच कर सकती है। सिद्धा तत सीनेट को जाच करने का अधिकार इसलिए प्राप्त है ताकि जाच के माध्यम से वह विधि-निर्माण के लिए आवश्यक तथ्य एव सामग्री एकत्रित कर सके। सीनेट द्वारा विशेष समस्याओ के अध्ययन के लिए भी समितिया नियुक्त की जाती है। इस प्रकार सीनेट अपने को विभिन्न समितिया म विभाजित कर लेती है और उन्ही के माध्यम से काय करती है। इन समितिया को आवश्यक कागजात प्राप्त करने एव शपथपूवक साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है। वह किसी भी व्यक्ति को अपने समक्ष साक्ष्य देने के लिए बाध्य कर सकती है। सीनेट की 'वैदेशिक मामलो से सम्ब धित समिति' सर्वाधिक शक्तिशाली है। इन समितियो के समक्ष अधिकाश अधिकारी उपस्थित होने एव साक्ष्य देने मे घबराते है। समितियो की कायवाही गुप्त नही होती। सीनेटरो के द्वारा समितियो मे साक्ष्य देने वाला से ऐसे प्रश्न पूछे जाते है एव सूचनाएँ प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है जिससे कि साक्ष्य देने वाले की बदनामी हो सकती है एव उसकी चरित्र हत्या भी सम्भव है। यह भयानक एव दु खद स्थिति है। अत **ऑग और रे** का कथन है कि "सीनेट की शक्ति एव प्रतिष्ठा मे वद्धि केवल भाग्य और अवसर का परिणाम नही है।"

पहले की अपेक्षा सीनेट कम अनुदार है। उसम पहले की भाँति सम्पत्तिशाली वग का बाहुल्य एव प्राबल्य नही है। यह प्रतिनिधि सदन की अपेक्षा अधिक उदार एव प्रगतिशील भी है। इसके वाद विवाद का स्तर निस्स देह ऊँचा है। कभी कभी सीनेट के सदस्यो मे प्रतिनिधि सदन के सदस्यो की भाति पक्षपात एव भावना की प्रधानता दिखायी देती है। लेकिन सीनेट के अधिकाश सदस्य अपने विचारो को स्वत त्र रूप मे ही व्यक्त करत हैं।

सीनेट की शक्ति एव प्रभाव से सम्ब धित तथा उसकी कायपद्धति क परिणामा का फाइनर न उल्लेख किया है।[27] वे निम्न हैं

(1) सीनेट प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली है। उस प्रतिनिधि सदन क समान ही विधि निर्माण के अधिकार हैं। वित्त विधेयका क सम्ब ध म उस व्यापक अधिकार हैं। वह उनम पूण सशोधन कर सकती है। उस नियुक्तिया एव सधिया को अनुमोदन करन की शक्ति है। इन व्यापक शक्तिया के कारण सीनट के सदस्य अपन राज्य एव दल के प्रतिनिधि सदन क सदस्या को प्रभावित करने म सफल होत हैं। नियुक्तिया

27 Finer, H *op cit* pp 420 22

सम्बन्धी सीनेट की शक्ति केन्द्रीय होती है और नीति-निर्धारण मे मोहरे का काय करती है।

(2) सीनेट म प्रत्येक सदस्य को विचार व्यक्त करने की अनियन्त्रित स्वतन्त्रता है। किसी भी सीनेटर को विधि निर्माण एव प्रशासन के काय म बाधा उत्पन्न करने से रोकने के लिए सवसम्मत निणय की आवश्यकता होती है। किसी अनावश्यक विषय पर निरन्तर भाषण देकर सीनेट के काय को उसके सदस्य ठप्प कर सकते है। इस अस्त्र का प्रयोग अधिकाशत अल्पसख्यक सदस्यो द्वारा उस समय किया जाता है जबकि सीनेट के बहुसख्यक सदस्य शीघ्रतापूवक किसी महत्वपूण विधेयक को पारित करना चाहते हैं या कभी-कभी किसी विधेयक को समाप्त करने के इच्छुक होते है। एक व्यक्ति निरन्तर बोलत रहकर सीनेट के काय को अवरुद्ध कर सकता है। इस प्रथा को फिलीबसटरिंग (Filibustering) कहते हैं। इसके कारण सदन का पर्याप्त समय व्यय ही नष्ट हो जाता है।[8] इस दूषित प्रथा को रोकने के लिए 1917 ई म एक अधिनियम बनाया गया था जिसके द्वारा यह व्यवस्था की गयी थी कि यदि 16 सदस्या द्वारा विचाराधीन विधेयक पर विवाद को समाप्त करन का प्रस्ताव किया जाता है और दो तिहाई बहुमत से सदस्यगण उसका समथन करते है तो विवाद को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।[29] इस अधिनियम के कारण फिलीबसटरिंग कम तो हुई है लेकिन समाप्त नही हुई है। स्मरणीय है कि फिलीबसटर का प्रयोग कभी कभी केवल थोडे ही सदस्य करते हैं।

(3) सीनेट म समान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है अर्थात सभी बडे एव छोट राज्या को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। इसके कारण देश के विभिन्न आर्थिक एव सामाजिक समूहा को असमान प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है।

(4) दोनो सदनो मे उत्पन्न गतिरोध को दूर करन के लिए उपयुक्त विधान का अभाव है। दोनो ही सदनो के कुछ सदस्या को नियुक्त किया जाता है जो कि पार

---

28 1903 ई म सीनेटर टिलमन ने कवि बायरन के 'चाइल्ड हैरल्ड नामक काव्य का उस समय तक पाठ करने की घोषणा की थी जब तक विवादास्पद अश को विधेयक म से निकाल नही दिया जाता। एक दूसरे अवसर पर सीनेटर रात भर बोलते रहे। सीनेटर शपड ने लगातार 6 घण्टे 50 मिनट तक भाषण दिया था। 1908 ई म सीनेटर फालेट ने 30 घण्टे एव 1953 ई म मास आफ आगन ने 22 घण्टे 26 मिनट तक भाषण दिया था।

29 इस नियम का उपयोग सवप्रथम 1919 ई म वार्साई सन्धि पर वाद विवाद को समाप्त करने के लिए किया गया। उसके बाद तीन वार इसका सफलतापूवक प्रयोग किया गया है। 1949 ई मे इस नियम को पुन सशोधित किया गया जिसके अन्तगत कुल सदस्या के 2/3 बहुमत को वाद विवाद के अन्त के लिए अनिवाय किया गया। 1917 ई के नियमानुसार उपस्थित सदस्यो के ही 2/ बहुमत की आवश्यकता होती थी। 1959 ई म 1949 ई की व्यवस्था को सशोधित करके 1917 ई की व्यवस्था को ही स्वीकार किया गया है।

स्परिक वार्ता द्वारा विवाद का हल ढूढते है एव उसे स्वीकृति क लिए दोनो सदनो के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । प्राय यह सदस्य गुप्त सौदबाजी क द्वारा किसी सवसम्मत हल पर पहुँचत है । लेकिन इस समिति द्वारा सदन म सूचना प्राय सत्र क अन्त म ही रखी जाती है । सदन के पास उस समय पुन विचार के लिए पर्याप्त समय नही रहता। यह व्यवस्था प्रतिनिधि एव उत्तरदायी शासन की धारणा की दृष्टि से अनुचित है। 1946 ई की अगस्त विधि (Law of August, 1946) के द्वारा सदन एव समितिया की काय प्रणाली मे कुछ परिवतन किये गये ह। वजट सम्बन्धी गतिरोध पर विचार करने के लिए एक सयुक्त समिति की व्यवस्था की गयी है ।

लास्की ने सीनेट पर मत व्यक्त करते हुए कहा है कि "बहुत कम व्यवस्थापिकाओ म इतना अधिक समय नष्ट होता है और उससे भी कम व्यवस्थापिकाओ में लागरोलिंग (Logrolling) को एक पूण कला के रूप म विकसित किया गया है। कायपालिका के प्रति सीनेट का कोई उत्तरदायित्व नही है । यह एक ऐसी सस्था है जो नियुक्तिया के प्रश्न पर ही केवल एकमत होती है । फिर भी यह अमरिकी राजनीतिक प्रणाली की महान सफलता है । यह इसकी अभूतपूव क्षमता है कि सामान्य नागरिक मे अपने सम्बन्ध म रुचि उत्पन्न कर सकी है और बहुत कम व्यक्ति इसकी सदस्यता के लोभ का सवरण कर पाते है । यह राष्ट्रपति की निरकुशता एव महत्वाकाक्षा पर महत्वपूण अवरोध के रूप मे काय करती है। इसके सदस्य कभी कभी सकीण मनोभाव के होते है परन्तु वे प्रतिनिधि सदन की सकीणता से सवथा मुक्त होत हैं।'

क्या सीनेट की स्थापना के उद्देश्य पूण हुए हैं ?

सीनेट की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य राज्या के अधिकारा की सुरक्षा एव राष्ट्रपति की निरकुशता को कम करना था। यह दो समस्याएँ अमेरिकी सविधान निर्माताओ के समक्ष थी और उपद्रवी एव अनियन्त्रित लोकत त्र का सीमित एव नियन्त्रित करने का प्रश्न था। फलस्वरूप राज्या के अधिकारा की रक्षाथ प्रत्येक राज्य को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व दिया गया। राष्ट्रपति पर नियन्त्रण के लिए नियुक्तियो एव वदेशिक मामला म सीनेट की दो तिहाई बहुमत से सहमति आवश्यक बना दी गयी। परन्तु परवर्ती घटनाओ की समीक्षाआ स यह स्पष्ट है कि राज्या के अधिकारा की सुरक्षा नही हो सकी है। इसका एक मूल कारण यह है कि सीनेट म दलीय अनुशासन प्रतिनिधि सदन की अपेक्षा ढीला है। एक राज्य के एक ही दल के दो प्रतिनिधि अपनी अपनी इच्छानुसार पृथक पृथक मत देत हैं। 1913 ई के बाद तो सीनेटरा पर दलीय निय त्रण और भी ढीला हो गया ह क्योकि वे जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होन लगे हैं। अत यह आशा करना व्यथ है कि एक राज्य के दाना सीनेटर एक साथ काय करगे। यदि दोना सीनेटर पृथक पृथक दला के है तो कुछ कहना ही नही। इसके अतिरिक्त आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियो ने अमेरिकी सघीय सरकार की शक्तिया म पर्याप्त वृद्धि कर दी ह।

राष्ट्रपति पर जहाँ तक नियन्त्रण का प्रश्न है, लास्की के अनुसार राष्ट्रपति

की नीतिया के सम्बन्ध मे प्रभावकारी नियन्त्रण करने का सीनेट एक सवधानिक उपकरण है। पर्याप्त शक्तिशाली एव प्रभावशाली राष्ट्रपतियो को भी उसके समक्ष झुकना पडा है। रूजवेल्ट तथा विल्सन भी सीनेट की उपेक्षा नही कर सके थे। सीनेट के विरोध के कारण राष्ट्रपति कूलिज उस व्यक्ति को एटोर्नी जनरल न बना सके जिसे वे बनाना चाहते थे और राष्ट्रपति निक्सन को वाटरगेट काण्ड के कारण पद से हटना पडा।

अत सीनेट राष्ट्रपतियो पर नियन्त्रण करने म सफल रही है।

अमेरिकी सीनेट तथा ब्रिटिश लॉडसभा दोना ही द्वितीय सदन है। दोना म पर्याप्त असमानताएँ है। सगठन की दृष्टि से लॉर्डसभा अधिकाशत वशानुगत मनोनीत एव वृहद सदन (1,010 सदस्य) ह तो सीनेट निर्वाचित एव 100 सदस्यो का लघु सदन है। सीनेट के सदस्या का कायकाल 6 वष है जब कि लाडसभा की सदस्यता जीवन पयन्त होती है। शक्ति की दृष्टि से लॉडसभा की तुलना मे सीनेट अधिक शक्तिशाली है। विधि निर्माण के क्षेत्र मे लॉडसभा को गैर वित्तीय विधेयको के सन्दभ म केवल 1 वष की निलम्वकारी शक्ति प्राप्त है। वित्त-विधेयको के सम्बन्ध मे उसकी शक्ति नगण्य है लेकिन सीनेट को विधि निर्माण म प्रतिनिधि सदन के समान ही शक्तिया प्राप्त है। केवल धन विधेयक का प्रारम्भ प्रतिनिधि सदन मे होता है लेकिन सीनेट उसम आमूलचूल सशोधन कर सकती है। सीनेट को नियुक्तियो एव सन्धिया को अनुमोदित करने की शक्ति है जो लाडसभा को प्राप्त नही है। लॉडसभा सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है एव लॉर्डों के देशद्रोह एव अन्य गम्भीर आरोपा की जाच करता है। सीनेट केवल उच्च पदाधिकारिया के महाभियोग के मामलो को सुनती है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन म कॉमन्स सभा लॉडसभा की शक्तिया एव सगठन म परिवतन कर सकती है लेकिन प्रत्येक राज्य को सीनट म प्राप्त समान प्रतिनिधित्व स उस वचित नही किया जा सकता। ब्रिटेन मे लाडसभा तथा कामन्स सभा म सघप की स्थिति म लॉडसभा की पराजय निश्चित है लेकिन अमेरिकी सीनेट एव प्रतिनिधि सदन म विरोध की स्थिति म अधिकाशत सीनेट की ही विजय होती है।

फ्रान्स का द्वितीय सदन—सीनेट

फ्रान्स के ततीय (1875 ई)[30], चतुथ (1946 ई) एव पचम (1958 ई) गणराज्या के सविधानो मे द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी है। उच्च सदन को ततीय एव पचम गणराज्यो के अन्तगत सीनट एव चतुथ गणराज्य के अन्तगत 'गणराज्य परिषद' (Council of the Republic) की सना प्रदान की गयी।[31]

---

30 तृतीय फ्रेंच गणराज्य की स्थापना 1870 ई म हुई थी लेकिन उसक सविधान क निमाण म 5 वप लग थे। सविधान तीन विधिया —फरवरी 25, फरवरी 24 एव जुलाई 16, 1875 ई म सग्रहीत है।

31 तृतीय गणराज्य के अन्तगत निम्न सदन को डेपुटीज सदन (Chamber of Deputies) तथा चतुथ एव पचम गणराज्या म नशनल असम्बली (National Assembly) क नाम से पुकारा गया।

सीनेट की उत्पत्ति एव विकास

फ्रास म द्वितीय सदन के निर्माण तथा विकास का भी अपना इतिहास है। फ्रास के राजनीतिकारियो को लोकप्रिय सप्रभुता म विश्वास था। वे डीलोनमे (Delolme) एव मोन्टेस्क्यू (Montesquieu) की द्विसदनीय व्यवस्थापिका के विचार को स्वीकार न कर सके। रूसो से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण एकसद नीय व्यवस्थापिका की ही स्थापना की गयी थी। यह दो कारणो से आवश्यक भी था (1) क्रान्तिकारी यह प्रमाणित करना चाहते थे कि सप्रभुता जनता म निहित है, तथा (2) सभी व्यक्ति समान है। फलत 1791 ई एव 1793 ई के सविधानो म द्विसद नीय व्यवस्था को नही अपनाया गया था। द्वितीय साम्राज्यकाल (1852 70 ई) के अन्तगत राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ही एकमात्र सदन था और उसने अकेले ही नेपोलियन ततीय का सामना किया था।

तृतीय गणराज्य के 630 सविधान निर्माताओ म से 400 सदस्य राजतन्त्र म विश्वास करते थे तथा वे सभी राजतन्त्र की पुनर्स्थापना के लिए दृढ-सकल्प थे एव उसके अभाव म एसी सस्थाओ की स्थापना कर देना चाहते थे जिनके द्वारा उपयुक्त अवसर पर राजतन्त्र की स्थापना हो सके। द्वितीय सदन का वशानुगत आधार पर सगठन अलोकतान्त्रिक होने और मनोनयन की रीति म राजतन्त्रीय भावना की गन्ध आने के कारण उच्च सदन के निर्माण के लिए निर्वाचन की रीति अपनाने का निश्चय किया गया था। यह निश्चय अल्पसख्यक वामपन्थी एव दक्षिणपन्थी दलो के मध्य समझौते का परिणाम था।

तृतीय गणराज्य की सीनेट

यह अप्रत्यक्ष रीति स गठित सदन था। सीनेट के सदस्यो को निर्वाचित करने वाले निर्वाचक मण्डल म डिपाटमण्ट (Department) के डिप्टीज, डिपाटमण्ट के जनरल काउन्सिल के सदस्य, उप-काउन्सिलो (Arrondisement) के सदस्य तथा नगर पालिकाओ के प्रतिनिधि होते थे। सीनेट के सदस्यो का कायकाल 9 वष था और एक तिहाई सदस्य प्रति तीन वष बाद चुने जाते थे। 40 वष से कम आयु का कोई भी फ्रच नागरिक सीनेट का सदस्य नही हो सकता था। 1884 ई तक सीनेट मे 300 सदस्य थ जिनमे स 225 सदस्य डिपाटमेण्टो द्वारा एव 75 राष्ट्रीय सभा द्वारा चुने जाते थे। सगठन की इस विधि से छोटे कम्यूनो को सीनेट मे अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता था। वामपक्षी गणतन्त्रवादी सीनेट की आजीवन सदस्यता का अन्त करना चाहते थे और छोटे कम्यूनो को जो अतिरिक्त प्रतिनिधित्व प्राप्त था उसे कम करना चाहते थे। 1883 ई के निर्वाचनो म गणतन्त्रवादियो को अपेक्षाकृत अधिक बहुमत प्राप्त हो गया और 1884 ई म सामान्य विधि द्वारा सीनेट के निर्माण की रीति म सशोधन किया गया और प्रत्येक आजीवन सदस्य की मृत्यु के उपरान्त निर्वाचित सदस्य की नियुक्ति का विधान किया गया।

से प्रश्न पूछने एव सूचना प्राप्त करने तथा जांच की व्यवस्था द्वारा सीनेट प्रशासन पर नियन्त्रण रखती थी। उसके द्वारा अविश्वास एव निन्दा के प्रस्ताव भी पारित किये जाते थे। सीनेट अपने आयोगो (Commissions) के द्वारा भी मन्त्रियो पर नियन्त्रण रखती थी।

ततीय गणराज्य की सीनेट को एक आदश द्वितीय सदन माना जाता था। यह न तो बहुत अधिक शक्तिशाली था और न बहुत कमजोर ही था। मुनरो के अनुसार "आदश द्वितीय सदन को जनमत के भावावेश के सामने धीरे धीरे झुकना चाहिए लेकिन जब यह निश्चित हो जाय कि हवा का रुख एक निश्चित दिशा मे है तो उसे तुरन्त झुक जाना चाहिए। व्यवहार म सीनेट ने इसी प्रकार आचरण किया है। अत सीनेट एक आदश द्वितीय सदन है।" **फाइनर** के अनुसार "सीनेट ने अपने निर्माताओ की आकाक्षाओ एव आशाओ को अधिकाशत पूरा किया था। वह सख्या पर निश्चय ही प्रतिबन्ध था। सीनेट यह दो कारणो स कर सकी थी—(1) चेम्बस की अलोकप्रियता, एव (2) इसक फलस्वरूप देश तथा दोनो सदनो म सशक्त दलीय सगठन का विकास। सीनेट अपने को सशोधन एव अवरोध के केन्द्र के रूप म ही बनाये रख सकी। इसी म उसने सन्तोष रखा। कभी कभी महत्वहीन मामलो के बारे मे ही उसने विधि के निर्माण म पहल की थी।[32]

चतुर्थ फ्रेंच गणराज्य का द्वितीय सदन—गणराज्य परिषद

चतुथ गणराज्य के सविधान मे भी द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी थी। इसके द्वितीय सदन को गणराज्य परिषद (Council of the Republic) की सज्ञा दी गयी। ततीय गणराज्य की सीनेट की भाँति यह भी अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन था। सविधान के प्रथम प्रारूप मे द्वितीय सदन का उल्लेख नही था। सम्भवत इसका कारण फ्रान्स की जमन आधिपत्य से मुक्ति (1944 ई) के पश्चात वामपथी दलो का सीनेट के भूतकालीन आचरण से असन्तुष्ट होना था। सविधान के अन्तिम प्रारूप मे अत्यन्त ही कमजोर द्वितीय सदन का सुझाव दिया गया था और सदन के आकार अवधि आदि की बारे मे विधि द्वारा व्यवस्था का उल्लेख था।

1948 ई के अधिनियम के अनुसार सीनेट की सदस्य-सख्या 320 निश्चित की गयी। इन 320 सदस्या म से 200 डिपाटमेण्टो तथा 50 निम्न सदन—राष्ट्रीय सभा (National Assembly) द्वारा निर्वाचित किय जाते थे। शेष 20 स्थान समुद्र पार के फ्रेंच उपनिवेशो एव प्रवासी फ्रान्सीसियो को प्रतिनिधित्व हेतु प्रदान किये गये थे। सीनेट का कायकाल 6 वष निश्चित किया गया था। प्रति तीन वष बाद आधे सदस्य अवकाश ग्रहण करते थे। गणराज्य परिषद की सदस्यता के लिए न्यूनतम आयु 35 वष नियत की गयी थी। स्त्रियाँ भी सदस्य हो सकती थी। राजपरिवार के वशजो, सेना व नौ-सेना के अधिकारियो, निर्वाचन विधियो के उल्लघनकर्ता आदि कुछ श्रेणी के नागरिको

32 Finer, H *op cit*, P 431

को सदस्यता से वचित कर दिया गया था। परिषद की शक्तिया अत्यन्त सीमित थी।[33] विधि निमाण के क्षेत्र मे उसका बहुत कम नियन्त्रण था। उस एक परामशदायी सदन की सज्ञा द सकते है। यदि कोई गैर वित्तीय विधेयक प्रथम वार परिषद मे प्रस्तुत कर भी दिया जाता था तो उस पर विचार नही हो सकता था क्योकि ऐसे विधेयको पर सवप्रथम राष्ट्रीय सभा म ही विचार होने की व्यवस्था थी। परिषद किसी विधेयक को अधिक स अधिक केवल 2 माह तक ही रोक सकती थी। वित्त विधेयको के सम्ब ध मे तथा आपत्ति काल म उस अवधि को भी घटाया जा सकता था।

गणराज्य के राष्ट्रपति के निर्वाचन मे सीनेट को अधिकार प्राप्त था। यह सवैधानिक समिति के तीन सदस्यो को भी चुनती थी। मन्त्रिमण्डल परिषद के प्रति उत्तरदायी नही था।

चतुथ गणराज्य की परिषद विश्व के सबसे कमजोर द्वितीय सदना मे थी। अत आलोचका का कथन ह कि फ्रा स म इस सदन के रूप मे छायात्मक द्विसदनवाद (Shadowy Bicameralism) या अपूण द्विसदनवाद (Incomplete Bicameralism) या मदु एकसदनवाद (Tempered Monocameralism) की स्थापना हुई थी। यह सदन काय समिति (Council for Action) न होकर विचार-विमश की परिषद (Council for Reflection) थी। यह किसी तरह भी पुरानी सीनेट की सन्तान नही कही जा सकती। लेकिन काटर, रेमने एव हेज का मत है कि परिषद को विधि-निमाण की अत्यन्त सीमित शक्ति प्राप्त होने पर भी उसने राष्ट्रीय सभा द्वारा शीघ्रता एव भावावेश मे पारित विधेयको म सशोधन प्रस्तावित किये एव इन सशोधनो को राष्ट्रीय सभा अस्वीकार नही कर सकी थी। परिषद की कायपद्धति से यह स्पष्ट हुआ है कि सीमित शक्तियो से युक्त वित्तीय सदन भी पर्याप्त नैतिक शक्ति डाल सकता है।[34] फाइनर के अनुसार, गणराज्य परिषद की स्थापना से ततीय गणराज्य की सीनेट की धृष्टता का वदला लिया गया।[3]

पचम फ्रेंच गणराज्य (1958) का द्वितीय सदन—सीनेट

पचम फ्रेच गणराज्य के द्वितीय सदन—सीनेट—के सगठन मे कोई मौलिक अ तर नही है। सीनेट अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन है और फ्रास के उपनिवेशा म निवास करने वाले फ्रेचजनो को सीनेट मे प्रतिनिधित्व दिया गया है। सदस्या का काय काल 9 वप है। एक तिहाई सदस्य प्रति तीन वष के पश्चात अवकाश ग्रहण

33 1954 ई के सवैधानिक सशोधन द्वारा परिषद की शक्तिया मे कुछ परिवतन किये गये थे जो नगण्य थे।

34 The Council of the Republic is atleast giving a demonstration of the fact that even a Second Chamber with very limited powers can exert considerable moral authority —Carter, Ramney and Herz *op cit*, p 139

35 Thus the audacity of the Senate of the Third Republic has b avenged '—Finer, H *op cit*, p 433

करते है। चतुथ गणराज्य के द्वितीय सदन की सरया से इसकी सदस्य-सरया कम है। कुल सदस्य-सरया 307 मे से 225 सदस्य फा स के डिपाटमेण्टो 6 सदस्य प्रवासी फ्रेच निवासिया एव शेष फ्रेच उपनिवेशो का प्रधिनिधित्व करते हैं। अल्जीयस नामक उपनिवेश को 32 स्थान प्राप्त थे, लेकिन उसके स्वतन्त्र होने के पश्चात यह सख्या कम हो गयी है।

पचम गणराज्य के अ तगत दोनो सदना के सम्ब ध ततीय गणराज्य के समान ही है। सीनेट राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित विधेयक के माग मे बाधा उत्पन्न कर सकती है। दोना सदनो के मध्य उत्पन विवाद के समाधान के लिए सविधान म कोई व्यवस्था नही है। जिस विधेयक पर दोनो सदन एकमत नही होते, वह दोना के मध्य निर तर विवाद का कारण बना रहता है। ऐसी स्थिति म विशेष परिस्थिति म शासन को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। यदि दोनो सदना म विधेयक पर दो बार विचार हो चुका हो तो सरकार को एक आयोग की स्थापना की माग करने का अधिकार है जिसमे कि प्रत्येक सदन के तीन-तीन सदस्य होते है। आयोग यदि किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचता है तो उसके अनुसार उस विधेयक को दोनो सदनो द्वारा पुन पारित किया जाता है पर तु यदि आयोग के प्रयत्ना का कोई परिणाम नही होता या विधयक किसी एक सदन द्वारा पुन अस्वीकार किया जाता है, तो दोना सदनो को पुन किसी निणय पर पहुँचन के लिए प्रयत्न करने का अधिकार है। सामा य विधियो के सम्ब ध म सीनट के विरोध को निष्प्रभावी करने के लिए यह आवश्यक है कि निम्न सदन (राष्ट्रीय सभा) उ ह अपने सामा य बहुमत से पुन पारित करे। यह व्यवस्था वित्त विधेयका एव मूल विधिया (Organic Bills) पर लागू नही होती। वित्त विधेयका को राष्ट्रीय सभा म ही सवप्रथम प्रस्तुत किया जाता है।

राष्ट्रीय सभा की तुलना म सीनेट की स्थिति एक अधीनस्थ सदन की है। लेकिन अनेक अ य सवैधानिक उपब ध उसकी स्थिति को दृढ करने म योग देते हैं, जसे—

(1) सीनट का अध्यक्ष गणराज्य के राष्ट्रपति के अस्वस्थ होने की अवस्था म उसका स्थान ग्रहण करता है और नवीन राष्ट्रपति के चुने जाने तक राष्ट्रपति बना रहता है।

(2) राष्ट्रीय सभा के विघटन की घोषणा करने से पूव राष्ट्रपति के लिए सीनट के अध्यक्ष स परामश करना आवश्यक है।

(3) सीनट के अध्यक्ष को विशेष परिस्थितिया म किसी विधेयक को सवैधानिक समिति म विचार हेतु भेजन का अधिकार है। वह इस समिति क तीन सदस्यो को भी मनोनीत करता है।

(4) सीनट क नाम राष्ट्रपति का सन्देश भेजन का अधिकार है। इसके अतिरिक्त जनमत सग्रह क लिए पारित राष्ट्रीय सभा का प्रस्ताव द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक होता है।

(5) प्रधानमन्त्री का यह अधिकार है कि वह जब चाहे तब सीनट स सामा य

नीति की स्वीकृति की माग कर सकता है लेकिन मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय सभा के प्रति ही उत्तरदायी होता है। राष्ट्रीय सभा मे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर या कोई अन्य विधेयक या सामान्य नीति या कार्यक्रम सम्बन्धी प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडता है। सीनेट को मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास व्यक्त करने का अधिकार नही है।

(6) सीनेट को उच्च न्यायालय (High Court of Justice) मे राष्ट्रीय सभा के समान ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है।

(7) सविधान के अनुसार फ्रेच ससद अर्थात सीनेट सहित राष्ट्रीय सभा को युद्ध की घोषणा करने का अधिकार है।

पचम गणराज्य की सीनेट अपने पूववर्ती काउन्सिल ऑफ दी रिपब्लिक की तुलना मे अधिक शक्तिशाली है। स्मरणीय है कि इगलैण्ड की लार्डसभा एव फ्रान्स की सीनेट (ततीय एव पचम गणराज्य) एव गणराज्य परिषद (चतुथ गणराज्य) एकात्मक राज्यो के द्वितीय सदन है लेकिन इनके सगठन एव शक्तियो मे पर्याप्त अन्तर है। लॉर्डसभा प्रधानत वशानुगत एव मनोनीत है तो फ्रेच सीनेट निर्वाचित सदन है। लेकिन दोनो सदनो की शक्तिया अपने अपने निम्न सदनो की तुलना मे कम है। सीनेट (पचम गणराज्य) की तुलना मे लॉर्डसभा की शक्तिया भी कम है।"[36]

कनाडा का द्वितीय सदन—सीनेट

कनाडा के वतमान सविधान की स्थापना ब्रिटिश नाथ अमरिका एक्ट के द्वारा हुई है। यह सविधान 1 जुलाई, 1867 ई से क्रियान्वित हुआ है। कनाडा का सविधान सघीय है।

कनाडा की व्यवस्थापिका द्विसदनात्मक है। प्रथम सदन को कॉमन्स सभा (House of Commons) एव द्वितीय सदन को सीनेट (Senate) की सज्ञा दी गयी है।

सीनेट का सगठन

सीनेट के सदस्यो को क्राउन द्वारा गवनर जनरल—व्यवहार मे मन्त्रि-परिषद (प्रधान मन्त्री)—के परामश पर मनोनीत किया जाता है। प्रत्येक सीनेटर की आयु कम से कम 30 वष होनी चाहिए एव उसे जन्मजात या ब्रिटिश प्रजाजन होना चाहिए तथा

---

36 स्टाग ने एकतन्त्रीय राज्य मे निर्वाचित द्वितीय सदन का दूसरा उदाहरण इटली के नवीन गणराज्य की सीनेट का दिया है। पहले इटली की सीनेट मनोनीत थी लेकिन नवीन सविधान के अन्तगत यह क्षेत्रीय आधार पर निर्वाचित सदन है। 5 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा समाज विज्ञान एव कला आदि के क्षेत्रो मे ख्याति के आधार पर मनोनीत किये जाते है। इसके अतिरिक्त गणराज्य के भूतपूव राष्ट्रपति भी सीनेट के सदस्य होते है। इसका कायकाल 6 वष है। निम्न सदन अर्थात् चेम्बस आफ डिप्टीज का कायकाल 5 वष होता है। लेकिन दोनो सदनो को अपने समय के पूव भी भग किया जा सकता है। विधि निर्माण के क्षेत्र की शक्तिया समान है सीनेट को शासन के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव करने का अधिकार है।

जिस प्रान्त की तरफ से उसकी नियुक्ति हो रही हो उसका निवासी एव उस प्रान्त म चार हजार डालर के मूल्य की स्थायी सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिए। उपरोक्त योग्यताओ के अन्तगत सीनेटर को जीवन भर के लिए मनोनीत किया जाता है। सीनेट क सदस्यो को स्वच्छा से पद-त्याग का अधिकार है। इसके अतिरिक्त निरन्तर होने वाले दो सत्रो मे अनुपस्थित रहने, नागरिकता एव राष्ट्र के प्रति निष्ठा बदलने, दिवालिया होने अथवा निर्धारित योग्यताओ को खोने की अवस्था म सीनेटर को अपना पद-त्याग करना पडता है।

सीनेट की वतमान सदस्य-सख्या 102 है। विभिन्न प्रान्तो को पृथक पृथक 24 से लेकर 4 सदस्य भेजने का अधिकार प्राप्त है। स्मरणीय है कि 1867 ई के एक्ट के अधीन सीनेट की सदस्य सख्या 72 निश्चित की गयी थी। तीन मूल प्रान्तो म से प्रत्येक को 24 सदस्य प्रतिनिधि के रूप म भेजने का अधिकार प्रदान किया गया था। लेकिन दोनो समुद्रतटीय प्रान्तो को प्रतिनिधित्व की दृष्टि से एक प्रान्त माना गया था। कनाडा म नवीन प्रान्तो क मिलने से उसका विकास हुआ और समान प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त कायम न रखा जा सका। सविधान मे स्पष्ट कर दिया गया था कि एडवड द्वीप के उपनिवेश म मिलने पर सीनेट म 4 सदस्य उसका प्रतिनिधित्व करेंगे और समुद्रतटीय प्रान्तो के प्रतिनिधित्व को घटाकर 10-10 सदस्य कर दिया जायगा। 1871 ई के अधिनियम द्वारा कनाडा की ससद को नवीन प्रान्तो के लिए सीनेटरो की नियुक्ति का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त गवनर जनरल को मूल प्रान्तो के लिए 3 से 6 तक समान रूप स अतिरिक्त सदस्यो की नियुक्ति का अधिकार दिया गया था।

सीनेट की शक्तिया

सविधान म सीनेट की शक्तियो की स्पष्ट व्याख्या नही की गयी है, केवल यही उल्लेख है कि कर एव व्यय सम्बन्धी विधेयक सवप्रथम कॉमन्स सभा म ही प्रस्तुत किये जायेंगे। सामान्य और गैर वित्तीय विधेयको के सम्बन्ध म सीनेट को कामन्स सभा के समान ही शक्तियाँ प्राप्त है। सामान्य विधेयक प्रथम वार सीनेट म प्रस्तावित किये जा सकते है एव काम स द्वारा पारित विधेयको को सीनेट अस्वीकार कर सकती है। दोनो सदनो म गतिरोध की अवस्था म गवनर जनरल के परामश पर क्राउन 4 स 8 सदस्यो तक की सीनेट म वृद्धि कर सकता है। स्मरणीय है कि गवनर जनरल व्यवहार म मन्त्रिमण्डल क परामश स ही काय करता है।

सीनेट ने 1912 ई म वित्त-विधेयक को अस्वीकार किया था। 1923 ई एव 1924 ई म सीनेट न कनाडा रेलवे के निर्माण सम्बन्धी विधेयको के प्रस्तावो को अस्वीकार किया तथा 1925 ई म होम बैंक सम्बन्धी विधेयक को सशोधित किया था। स्मरणीय है कि 1922 ई स 1930 ई तक सीनेट म अनुदार दल का बहुमत था। अत इस काल म सीनेट ने वित्तीय मामलो म अपने अधिकारो का प्रदशन करने का प्रयत्न किया था। निर्वाचन म किसी दल के पराजित होन पर सीनेट म उसक

द्वारा युद्ध अवसरों पर नवीन सागरों या परगनों भरने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया जाता है। मन्त्रिमण्डल सीनेट के प्रति उत्तरदायी न होकर कामन्स सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। कुछ अवसर मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ है जिनमें सीनेट का कोई भी सदस्य मन्त्री नहीं था। 1920 ई० के बाद से मन्त्रिमण्डल में सीनेट का केवल एक ही सदस्य और विभागीय मन्त्री होता रहा है।

समीक्षा

सीनेट की सदस्यता दलीय सेवाओं के प्रतिफल एवं उपहार-स्वरूप प्राय वृद्धावस्था में प्राप्त होती है। इसमें नियुक्तियाँ दलीय आधार पर की जाती हैं। यदि उदारदलीय मन्त्रिमण्डल शासित में होता है तो वह उदारदलीय सदस्यों की ही नियुक्ति करता है। इसका यह दोष है कि यदि एक दल बहुत समय तक पदारूढ़ रहता है तो सीनेट में उसी दल का बहुमत हो जाता है और दल के निम्न सदन में हार जाने पर भी सीनेट में उसका बहुमत बना रहता है। सीनेट दलीय आधार पर ही निर्णय करती है अत कनाडा की सीनेट को वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो वरिष्ठ एवं अनुभवी सदस्यों की सभा को स्वाभाविक रूप में प्राप्त होना चाहिए।

सामाजिक विधेयकों के प्रति सीनेट के दृष्टिकोण को बहुधा प्रतिक्रियावादी कह कर तीव्र आलोचना की जाती है। केनेडी के अनुसार कनाडा की सीनेट न्यूनाधिक शून्य हो चुकी है और वह उपहास-युक्त वातावरण तथा निष्फल कुचक्र से घिरी हुई है।[37] सीनेट द्वारा द्वितीय सदन के संशोधनात्मक कर्तव्य ही भली-भाँति सम्पादित किये जाते हैं। यह संघीय सिद्धान्त की भी रक्षा नहीं कर सकी है। सीनेट में संघ के घटकों को असमान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसकी असफलता का प्रधान कारण यह है कि इसके माध्यम से असम्भव को सम्भव बनाने का प्रयत्न किया गया था। लॉर्डसभा की भाँति सीनेट के सदस्यों को जीवन भर के लिए चुनने की योजना थी। अत मनोनयन की पद्धति को अपनाया गया। इसके अतिरिक्त सीनेट में संघीय सिद्धान्त को मान्यता देने का प्रयत्न किया गया है। यह केन्द्रीय सत्ता द्वारा निर्वाचन की प्रणाली के बिलकुल विपरीत है।[38]

आस्ट्रेलिया का द्वितीय सदन—सीनेट

आस्ट्रेलिया का वर्तमान संविधान (कामनवेल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया अधिनियम, 1900 ई०) 1 जनवरी, 1901 ई० से लागू हुआ। इस संविधान द्वारा द्विसदनीय व्यवस्थापिका का निर्माण किया गया है। प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) निम्न सदन है। सीनेट (Senate) उच्च सदन है।

सीनेट का संगठन

सीनेट में प्रारम्भ में केवल 36 सदस्य थे। आस्ट्रेलिया के संघ की 6 घटक

---

37 "The Canadian Senate has become almost a cipher surrour with devisive state and the trappings of impotence '—

38 Strong, C F *op cit*, p 203

इकाइयो—राज्यो—को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है और प्रत्येक राज्य 6 सदस्य भेजता था । 1948 ई म प्रत्यक राज्य को 10 सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया है । अत अब सीनेट की कुल सदस्य सख्या 60 है । इसी वष सीनेट के निर्वाचन क लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का सूत्रपात किया गया था । अत सीनेट क सदस्य प्रत्यक राज्य की जनता द्वारा एकल निर्वाचन क्षेत्र क रूप म वयस्क मताधिकार क आधार पर समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार निर्वाचित किय जाते है । आस्ट्रेलिया की ससद को सीनेट के सदस्यो की सख्या को घटाने-बढाने का अधिकार है लेकिन किसी राज्य को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व से वचित नही किया जा सकता ।

सीनेट का कायकाल 6 वष है । आधे सदस्य प्रति तीन वष बाद अवकाश ग्रहण कर लेत है । आस्ट्रेलियन सीनेट अमरिकी सीनेट की भांति स्थायी सदन नही है । दोना सदना म गतिरोध उत्पन्न होने की अवस्था म गवनर जनरल दोनो सदनो को विघटित कर देता है तथा दोनो सदनो क नवीन निर्वाचन होत हैं । लेकिन ऐसा अभी तक केवल दो बार 1914 ई एव 1951 ई म ही हुआ है ।

सीनेट की शक्तियाँ

सीनेट को निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन—के समान ही विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं । वित्त विधयक को प्रतिनिधि सदन म ही सवप्रथम प्रस्तुत किया जाता है । सीनेट को वित्त विधेयको को सशोधित करने का अधिकार नही है वह केवल उन्हे अस्वीकार कर सकती है । शेप सभी विधेयक दोनो म से किसी भी सदन म सवप्रथम प्रस्तुत किये जा सकत है एव दोनो सदना द्वारा पारित होने के पश्चात ही विधि बन सकते हैं । दोनो सदनो म उत्पन्न मतभेद को दूर करने के लिए सविधान म व्यवस्था की गयी है । यदि प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित होने के तीन माह के भीतर किसी विधेयक को सीनेट द्वारा अस्वीकृत किया जाता है तो गवनर जनरल दोना सदनो को विघटित करके नवीन चुनाव के आदेश दे सकता है । यदि फिर भी नव निर्वाचित सदस्यो म मतभेद रहते है तो दोनो सदनो के सयुक्त अधिवेशन म स्पष्ट बहुमत से विधेयक के पारित होने पर गवनर जनरल उसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर सकता है ।

स्ट्राग क अनुसार अमरिकन सीनेट की भाति आस्ट्रेलियन सीनेट भी सघीय विचार का प्रतिनिधित्व करती है । स्मरणीय है कि सविधान के निर्माण के समय द्वितीय सदन क लिए राज्य सदन (House of States) और राज्य सभा (States Assembly) नाम सुझाये गये थे और बड राज्यो क विरोध के विपरीत सभी छोटे राज्यो को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व दिया गया ।[39]

क्या आस्टेलिया की सीनेट द्वितीय सदन के कतव्यो के निर्वाह म सफल रही है ?

---

39 C F op cit p 214

सविधान निर्माताओ न सीनेट से निम्न दो कतव्यो की अपेक्षा की थी । प्रथम, सशोधन सदन के कतव्या अर्थात् निम्न सदन के कार्यों को सशोधित करन की सीनेट से आशा की गयी थी । सीनेट इस कतव्य को सन्तोषजनक ढग से सम्पादित करने म असफल रही है। द्वितीय कतव्य राज्यो के हितो की रक्षा करना था। इसम भी सीनेट असफल रही है । स्ट्राग के अनुसार "व्यवहार म सीनेट भी निम्न सदन की भाति ही राजनीतिक दलो के आधार पर विभाजित रहती है । सभी प्रश्नो पर राज्यो के हिता की दृष्टि से नही अपितु दलीय दृष्टि से ही विचार किया जाता है। अत जो दल निरन्तर दो चुनावो मे विजयी हो जाता है उसका सीनेट पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है ।[40] ब्राइस के विचारा से भी इसी मत का समथन होता है। उनके अनुसार सीनेट द्वारा राज्यो के हिता की रक्षा नही की गयी है । ऐसे बहुत ही कम प्रश्न उसके समक्ष आये है अमेरिकन सीनेट को नियुक्ति एव विदेश-नीति पर नियन्त्रण जैसे विशेष कतव्य इस सदन को प्राप्त नही हैं । अत आस्ट्रेलिया की सीनेट अमेरिकी सीनेट की नकल होते हुए भी उसकी निम्न श्रेणी की प्रतिलिपि प्रमाणित हुई है ।[41] कुछ विचारको ने सीनेट को समाप्त करने का भी सुझाव दिया है ।

सोवियत रूस का द्वितीय सदन—राष्ट्रजातीय सोवियत

स्टालिन सविधान (1936 ई) द्वारा द्विसनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी है । सुप्रीम सोवियत रूस की सघीय व्यवस्थापिका है। सुप्रीम सोवियत के दो सदन है—सघ सोवियत (Soviet of the Union) निम्न सदन एव राष्ट्रजातीय सोवियत (Soviet of Nationalities) द्वितीय सदन है । प्रथम सदन प्रत्यक्षत जनता द्वारा निर्वाचित होता है ।

सोवियत रूस बहुराष्ट्र जातियो (Multi Nationalities) का देश है। इन्हे द्वितीय सदन म प्रतिनिधित्व दिया गया है । राष्ट्रजातीय सोवियत के लिए सोवियत रूस के विभिन्न घटका—सघ गणराज्या, स्वशासित गणराज्या एव क्षेत्रो तथा राष्ट्रीय क्षेत्रो—की जनता द्वारा प्रतिनिधि (डिप्टीज) चुन कर भेजे जाते हैं । प्रत्यक सघ गणराज्य 25 सदस्य, स्वशासित गणराज्य 11 सदस्य, स्वशासित क्षेत्र 5 सदस्य एव प्रति राष्ट्रीय क्षेत्र 1 सदस्य निर्वाचित करके भेजता है । इसकी कुल सदस्य सख्या 640 है । द्वितीय सदन सोवियत रूस की सभी राष्ट्र जातिया के हिता का प्रतिनिधित्व करता है ।

दोनो सदनो का कायकाल 4 वष है । दोनो ही सदनो के अधिवेशन एक साथ होते हैं और एक साथ ही समाप्त होते है । प्रशासन, वित्त एव विधि निर्माण के सम्बन्ध म दोना की शक्तिया समान होती है । दोनो ही सदनो द्वारा विधेयक पारित होने पर विधि बनता ह । दोना सदना मे विवाद उत्पन्न हाने की अवस्था म वह दोनो सदना की एक समझौता समिति के समक्ष रखा जाता है । यदि यह समिति भी विवाद को

40 Strong, C F *op cit*, p 215
41 Bryce *Modern Democracies*, Vol II, p 204

इकाइयो—राज्यो—को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है और प्रत्यक राज्य 6 सदस्य भेजता था। 1948 ई म प्रत्यक राज्य को 10 सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया है। अत अब सीनट की कुल सदस्य सख्या 60 है। इसी वर्ष सीनेट क निर्वाचन क लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का सूत्रपात किया गया था। अत सीनेट क सदस्य प्रत्यक राज्य की जनता द्वारा एकल निर्वाचन-क्षत्र क रूप म वयस्क मताधिकार क आधार पर समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली क अनुसार निर्वाचित किय जात हैं। आस्ट्रेलिया की ससद को सीनेट के सदस्यो की सख्या को घटाने-बढ़ाने का अधिकार है लेकिन किसी राज्य को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व से वचित नही किया जा सकता।

सीनेट का कार्यकाल 6 वर्ष है। आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। आस्ट्रेलियन सीनेट अमेरिकी सीनेट की भाँति स्थायी सदन नही है। दोनो सदनो म गतिरोध उत्पन्न होने की अवस्था म गवनर जनरल दोनो सदनो को विघटित कर देता है तथा दोनो सदनो क नवीन निर्वाचन होत हैं। लेकिन ऐसा अभी तक केवल दो बार 1914 ई एव 1951 ई म ही हुआ है।

सीनेट की शक्तियाँ

सीनेट को निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन—के समान ही विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। वित्त विधेयक को प्रतिनिधि सदन म ही सर्वप्रथम प्रस्तुत किया जाता है। सीनेट को वित्त विधेयको को सशोधित करने का अधिकार नही है वह केवल उन्ह अस्वीकार कर सकती है। शेष सभी विधेयक दोनो म स किसी भी सदन म सर्वप्रथम प्रस्तुत किये जा सकते हैं एव दोनो सदनो द्वारा पारित होने के पश्चात ही विधि बन सकते हैं। दोनो सदनो म उत्पन्न मतभेद को दूर करने के लिए सविधान म व्यवस्था की गयी है। यदि प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित होने क तीन माह के भीतर किसी विधेयक को सीनेट द्वारा अस्वीकृत किया जाता है तो गवनर जनरल दोनो सदनो को विघटित करके नवीन चुनाव के आदेश दे सकता है। यदि फिर भी नव निर्वाचित सदस्यो म मतभेद रहते हैं तो दोनो सदनो के सयुक्त अधिवेशन म स्पष्ट बहुमत से विधयक के पारित होने पर गवनर जनरल उसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

स्ट्राग के अनुसार अमरिकन सीनेट की भाँति आस्ट्रेलियन सीनेट भी सघीय विचार का प्रतिनिधित्व करती है। स्मरणीय है कि सविधान के निर्माण के समय द्वितीय सदन के लिए राज्य सदन (House of States) और राज्य सभा (States Assembly) नाम सुझाये गये थे और बडे राज्यो के विरोध के विपरीत सभी छोटे राज्यो को सीनेट म समान प्रतिनिधित्व दिया गया।[39]

क्या आस्ट्रेलिया की सीनेट द्वितीय सदन के कर्तव्यो के निर्वाह म सफल रही है ?

39 Strong C F *op cit* p 214

सविधान निर्माताओ न सीनेट से निम्न दो कतव्यो की अपेक्षा की थी। प्रथम, सशोधन सदन के कतव्यो अर्थात् निम्न सदन के कार्यो को सशोधित करने की सीनेट से आशा की गयी थी। सीनट इस कतव्य को सन्तोषजनक ढग से सम्पादित करने म असफल रही है। द्वितीय कतव्य राज्यो के हिता की रक्षा करना था। इसम भी सीनेट असफल रही है। स्ट्राग के अनुसार 'व्यवहार म सीनेट भी निम्न सदन की भाति ही राजनीतिक दला के आधार पर विभाजित रहती है। सभी प्रश्नो पर राज्यो क हितो की दृष्टि से नही अपितु दलीय दृष्टि से ही विचार किया जाता है। अत जो दल निरन्तर दो चुनावो मे विजयी हो जाता है उसका सीनेट पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है।[40] ब्राइस के विचारो से भी इसी मत का समथन होता है। उनके अनुसार सीनेट द्वारा राज्या के हिता की रक्षा नही की गयी है। ऐसे बहुत ही कम प्रश्न उसके समक्ष आय है अमेरिकन सीनेट को नियुक्ति एव विदेश-नीति पर नियन्त्रण जैसे विशेष कतव्य इस सदन को प्राप्त नही है। अत आस्ट्रेलिया की सीनेट अमेरिकी सीनेट की नकल होते हुए भी उसकी निम्न श्रेणी की प्रतिलिपि प्रमाणित हुई है।[41] कुछ विचारका ने सीनेट को समाप्त करने का भी सुझाव दिया है।

सोवियत रूस का द्वितीय सदन—राष्ट्रजातीय सोवियत

स्टालिन सविधान (1936 ई) द्वारा द्विसनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी है। सुप्रीम सोवियत रूस की सघीय व्यवस्थापिका है। सुप्रीम सोवियत के दो सदन हैं—सघ सोवियत (Soviet of the Union) निम्न सदन एव राष्ट्रजातीय सोवियत (Soviet of Nationalities) द्वितीय सदन है। प्रथम सदन प्रत्यक्षत जनता द्वारा निर्वाचित होता है।

सोवियत रूस बहुराष्ट्र-जातियो (Multi Nationalities) का देश है। इन्हे द्वितीय सदन म प्रतिनिधित्व दिया गया है। राष्ट्रजातीय सोवियत के लिए सोवियत रूस के विभिन्न घटका—सघ गणराज्या, स्वशासित गणराज्या एव क्षेत्रा तथा राष्ट्रीय क्षेत्रो—की जनता द्वारा प्रतिनिधि (डिप्टीज) चुन कर भेजे जाते हैं। प्रत्यक सघ गणराज्य 25 सदस्य, स्वशासित गणराज्य 11 सदस्य स्वशासित क्षेत्र 5 सदस्य एव प्रति राष्ट्रीय क्षेत्र 1 सदस्य निर्वाचित करके भेजता है। इसकी कुल सदस्य सख्या 640 है। द्वितीय सदन सोवियत रूस की सभी राष्ट्र जातियो के हिता का प्रतिनिधित्व करता है।

दोनो सदनो का कायकाल 4 वष है। दोनो ही सदनो के अधिवेशन एक साथ होते है और एक साथ ही समाप्त होते है। प्रशासन, वित्त एव विधि निर्माण के सम्बन्ध म दोनो की शक्तिया समान होती है। दोना ही सदनो द्वारा विधेयक पारित होने पर विधि बनता है। दोना सदनो मे विवाद उत्पन्न होने की अवस्था म वह दोनो सदना का एक समझौता समिति के समक्ष रखा जाता है। यदि यह समिति भी विवाद को

---

40 Strong C F *op cit*, p 215
41 Bryce *Modern Democracies*, Vol II, p 204

हल करन म असफल रहती है तो प्रेसीडियम मासियत की प्रसीडियम दोना सदना को विघटित करके नवीन निर्वाचन का आदेश देती है।

राष्ट्रजातीय सोवियत का निम्न सदन—सघ सोवियत—के सयुक्त अधिवेशन म प्रेसीडियम एव मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को निर्वाचित करन का अधिकार है। इसके अतिरिक्त दोनो सदनो को सर्वोच्च न्यायालय एव विशेष न्यायालयो के सदस्यो को निर्वाचित करन एव प्रोक्यूरेटर जनरल की नियुक्ति करन का भी अधिकार प्राप्त है।

स्विस द्वितीय सदन—राज्य-परिषद

स्विटजरलण्ड सघीय देश है एव यहाँ की सघीय व्यवस्थापिका (Federal Assembly) द्विसदनात्मक है। प्रथम सदन को राष्ट्रीय सभा (National Council) व द्वितीय सदन को राज्य परिषद (Council of States) कहते हैं।

राज्य परिषद का सगठन

स्ट्राग के अनुसार स्विस राज्य-परिषद केवल एक अथ म ही सयुक्त राज्य अमरिका एव आस्ट्रेलिया के अनुरूप है। स्विस परिषद की इकाइयो—केण्टनो—को राज्य परिषद म समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है।[13] उच्च सदन म प्रत्येक पूर्ण कण्टन को दो सदस्य एव अर्द्ध-कण्टन को एक सदस्य भेजन का अधिकार है। राज्य-परिषद की कुल सदस्य-सख्या 44 है। सभी केण्टनो म परिषद के सदस्यो के निर्वाचन की कोई एक समान विधि नहीं है। प्रत्येक केण्टन म निर्वाचन की विधि भिन्न होती है। 21 केण्टनो म राज्य परिषद के सदस्य प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा या जन सभाओ द्वारा निर्वाचित होते है एव 4 केण्टनो म व्यवस्थापिकाओ द्वारा चुने जाते हैं। परिषद के सदस्यो का कार्यकाल 1 से 4 वर्ष तक होता है।

राज्य परिषद की शक्तियाँ

दोनो सदनो की शक्तियाँ समान हैं। विधेयक किसी भी सदन म प्रस्तुत किया जा सकता है। सघीय परिषद (कार्यपालिका) के सदस्य दोनो सदनो के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वे दोनो सदनो के अधिवेशनो म भाग लेते हैं, परन्तु किसी भी सदन म मत नहीं देते। दोनो सदनो के अध्यक्षो द्वारा यह निर्णय किया जाता है कि ससद के प्रत्येक सत्र म कौन से विधेयक किस सदन म प्रस्तुत किये जायें। कुछ कार्यों जैसे सघीय परिषद के सदस्यो, परिषद के अध्यक्ष, सघीय न्यायालय के सदस्यो सघीय सेनाध्यक्ष के निर्वाचन एव क्षमादान, आदि के लिए दोनो सदनो के सयुक्त अधिवेशन आहूत किये जाते हैं।

समीक्षा

सविधान द्वारा दोनो सदनो को समान शक्तियाँ प्रदान की गयी है परन्तु व्यवहार म राष्ट्रीय सभा का महत्व अधिक है एव वह अधिक शक्तिशाली है। इसका कारण यह है कि प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन की ताकत की म उपेक्षा करना कठिन होता है। राष्ट्रीय सभा जनता का सदन है जबकि राज्य-परिषद केण्टनो का सदन है।

---

[13] Strong C F *op cit* p 215

सी एफ स्ट्राग के अनुसार "स्विस व्यवस्थापिका भी स्विस कार्यपालिका की भाति अनोखी है। विश्व का यही एकमात्र ऐसा विधानमण्डल है जिसके उच्च सदन के काय निम्न सदन स किसी प्रकार भी भिन्न नही हैं।"[43] इसके अतिरिक्त, स्ट्राग की यह भी धारणा है कि स्विस राज्य परिषद वस्तुत सामान्य अर्थो मे द्वितीय या सघीय सदन (Federal Chamber) नही है। यदि यह शुद्ध सघीय सदन होता तो उसका आशिक कतव्य यह होता कि वह राज्या के हितो की उस सत्ता से रक्षा करे जिसके पक्ष मे राज्यो ने अपनी सप्रभुता का परित्याग किया है और यदि यह सामान्य द्वितीय सदन होता तो उसको निश्चित रूप से सशोधन सम्बन्धी कतव्य या निषेधाधिकार प्राप्त होते।[44] कुछ कतव्य दोनो सदन अपने सयुक्त अधिवेशन मे एक साथ पूरा करते है जसे कि सघीय परिषद (कायपालिका) के सदस्या, सघीय सर्वोच्च न्यायालय एव सघीय बीमा न्यायालय के न्यायाधीशा, अध्यक्षो एव उपाध्यक्षो का निर्वाचन।[45]

भारतीय गणराज्य का द्वितीय सदन—राज्यसभा

भारतीय गणराज्य का द्वितीय सदन अधिकाशत निर्वाचित एव अशत मनोनीत सदन है। अत स्ट्राग के द्वितीय सदनो के वर्गीकरण के अनुसार इस आशिक रूप से निर्वाचित द्वितीय सदन की श्रेणी मे रखना ही उचित है।

राज्यसभा का सगठन

भारतीय ससद का स्वरूप द्विसदनात्मक है। निम्न सदन लोकसभा (House of People) जनता द्वारा सावभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित सदन है। द्वितीय सदन राज्यसभा (Council of States) अप्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित सदन है। इसके 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा साहित्य, विज्ञान, कला एव समाज सेवाओ के क्षेत्रो म से मनोनीत किये जाते है।[46] यह सघीय सिद्धान्त के विरुद्ध है। इस सदन की अधिकतम सख्या 250 निश्चित की गयी है जो लोकसभा की वतमान सख्या के आधे से भी कम है। राज्यसभा की अधिकतम सदस्य सख्या 240 है। 219 राज्या के प्रतिनिधि एव 9 केन्द्र शासित क्षेत्रो के प्रतिनिधि तथा 12 मनोनीत सदस्य होते है। राज्यसभा के सदस्यो को अप्रत्यक्ष रीति से राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्या द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल सक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इस एकल प्रणाली म मतदाता केवल एक प्रत्याशी को ही मत देता है लेकिन उसे क्रमश द्वितीय एव अन्य पसन्दे भी व्यक्त करने का अधिकार होता है। इस व्यवस्था के अन्तगत मतदाता का मत व्यथ नही जाता है। सविधान के अनुसार केन्द्र शासित

---

43 'The Swiss legislature, like the Swiss Executive, is unique It is the only legislature in the world the functions of whose upper House are in no way differentiated from those of the lower —Strong, C F *op cit*, p 216

44 *Ibid*

45 Hans Huber *How Switzerland is Governed*, 1946, p 44

46 अनुच्छेद 80 (अ)।

प्र.ना न प्रतिनिधियो के निर्वाचन की रीति गगद का निधारित करने का अधिकार प्राप्त है।

राज्यसभा एक स्थायी सदन है। इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष पश्चात अवकाश ग्रहण करते हैं। राज्यसभा की सदस्यता की निम्न योग्यताएँ हैं—(1) भारतीय नागरिक हो (2) 30 वर्ष से कम आयु का न हो, एव (3) लोकसभा के लिए निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो। यह तीसरी व्यवस्था जम्मू कश्मीर राज्य के सन्दर्भ म लागू नहीं होती।

भारतीय उप राष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन अध्यक्ष होता है।

राज्यसभा की शक्तियाँ

राज्यसभा की शक्तियाँ निम्नवत् हैं —

(1) विधायी शक्तियाँ—गैर वित्तीय विधेयकों को सवप्रथम राज्यसभा म भी प्रस्तुत किया जा सकता है तथा लोकसभा म प्रस्तावित एव पारित विधयको का राज्यसभा द्वारा पारित होना आवश्यक है। राज्यसभा को लोकसभा द्वारा पारित विधेयकों को अस्वीकार एव सशोधित करने का अधिकार प्राप्त है। लोकसभा द्वारा प्रस्तावित सशोधन के अस्वीकार होने की अवस्था म उत्पन्न गतिरोध का दोनो सदनो के सयुक्त अधिवेशन म ही निर्णय होता है। लेकिन राज्यसभा किसी भी विधेयक को स्थायी रूप से पारित होने से नही रोक सकती। वह अधिक से अधिक गैर वित्तीय विधयक के पारित होने म 6 माह का विलम्ब कर सकती है।

(2) वित्तीय शक्तियाँ—वित्तीय क्षेत्र म राज्यसभा की शक्तियाँ कम हैं। वित्त विधेयक सवप्रथम लोकसभा म ही प्रस्तुत किया जाता है। लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधयक ही राज्यसभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। राज्यसभा वित्त विधेयक को अधिक से अधिक 14 दिन के लिए रोक सकती है। राज्यसभा की सिफारिशो को स्वीकारना या अस्वीकारना लोकसभा पर निर्भर है। यदि राज्यसभा की सिफारिशें लोकसभा को मान्य नही होती तो मूल रूप म वित्त विधयक पारित माना जाता है।

(3) प्रशासकीय शक्तियाँ—मन्त्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है [अनुच्छेद 75 (3)]। अत राज्यसभा म पराजित होने पर उसे त्यागपत्र देने की आवश्यकता नही है। लेकिन राज्यसभा मन्त्रिमण्डल को प्रश्न पूछकर अथवा शासकीय नीति की आलोचना करके अन्य अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। राज्यसभा के सदस्य न होने पर भी मन्त्रियो को सदन म उपस्थित होकर अपने बचाव म उत्तर देने का अधिकार है लेकिन ऐसे मन्त्री जो सदन के सदस्य नही होते मतदान म भाग नही ले सकते (अनुच्छेद 88)।

(4) सवधानिक शक्तियाँ—सवधानिक सशोधन का प्रस्ताव सवप्रथम किसी सदन म भी प्रस्तुत किया जा सकता है (अनुच्छेद 368)। सवधानिक सशोधन के समस्त प्रस्तावो का राज्यसभा द्वारा अन्तत स्वीकृत होना आवश्यक है। विवाद का समाधान दोना सदनो की सयुक्त बैठक मे होता है।

(5) अन्य कर्तव्य—उपरोक्त कर्तव्यों के अतिरिक्त राज्यसभा के अन्य कर्तव्य निम्न हैं राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेते हैं।[47] राष्ट्रपति पर महाभियोग का प्रस्ताव राज्यसभा में प्रस्तुत किया जा सकता है एवं कुल सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव का पारित होना आवश्यक है। दूसरा सदन अर्थात् लोकसभा या उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधिकरण महाभियोग की जाच करता है। यदि लोकसभा में महाभियोग का प्रस्ताव सर्वप्रथम प्रस्तावित किया जाता है तो राज्यसभा या उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधिकरण को उसकी जाँच करने का अधिकार होता है।[48] दो माह से अधिक समय के लिए सकटकालीन घोषणा को कायम रखने के लिए राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है।[49] राज्यसभा प्रस्ताव पारित करके राज्य सूची के किसी भी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर सकती है। इससे ससद को उस विषय पर राष्ट्रीय हित में विधि बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।[50] लेकिन यह प्रस्ताव केवल 1 वर्ष तक ही प्रभावकारी रहता है। उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में लोकसभा के साथ राज्यसभा के सदस्य भी भाग लेते हैं।[51] राज्यसभा द्वारा उपराष्ट्रपति के पदच्युत सम्बन्धी प्रस्ताव को पारित करने एवं उसका लोकसभा द्वारा समर्थन किये जाने पर उपराष्ट्रपति को उसके पद से पृथक किया जा सकता है।[52] सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, मुख्य चुनाव आयुक्त, कॉम्पट्रोलर एवं आडीटर जनरल को उनके पदों से दोनों सदनों द्वारा प्रस्ताव पारित करने पर ही हटाया जा सकता है।[53]

समीक्षा

राज्यसभा में राज्यों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है। अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रेलिया की भांति सघ के घटकों—राज्यों—को इस सदन में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। वित्तीय क्षेत्र में राज्यसभा की शक्तियां अत्यधिक सीमित हैं। प्रचलित लोकतन्त्रीय विश्वास के आधार पर भारत में जनता के प्रतिनिधियों (लोकसभा) को राज्यों के प्रतिनिधियों (राज्यसभा) की अपेक्षा वित्त पर वास्तविक नियन्त्रण प्रदान किया गया है। लॉर्डसभा को वित्त विधेयक को सशोधित करने की शक्ति नहीं है। वह अधिक से अधिक उसके पारित होने में एक माह का विलम्ब कर सकता है। भारतीय राज्यसभा को वित्त-विधेयकों में सशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार है तो लेकिन लोकसभा उसे मानने या न मानने के लिए स्वतन्त्र है। राज्य-

---

47 अनुच्छेद 55 (2) (ब)।
48 अनुच्छेद 61।
49 अनुच्छेद 352 (2) (c), 356 (c) एव 360 (2)।
50 अनुच्छेद 249।
51 अनुच्छेद 66 (1)।
52 अनुच्छेद 67 (ख)।
53 अनुच्छेद 124 (4) एव 217।

सभा वित्त-विधेयक के पारित होने म केवल 14 दिन का विलम्ब कर सकती है जब कि अमेरिकी सीनेट का वित्त-विधेयको मे सशोधन करने की व्यापक शक्तिया प्राप्त हैं। व्यवहार मे सीनेट को वित्तीय क्षेत्र मे प्रतिनिधि सदन से भी अधिक शक्तिया प्राप्त है। स्पष्ट है कि वित्तीय मामला मे भारतीय राज्यसभा की स्थिति लोकसभा मे निम्न है। लेकिन दोना ही देशो म इगलैण्ड की तरह वित्त विधेयक निम्न सदनो मे ही प्रस्तावित होते है।

गैर वित्तीय विधेयका क सम्बन्ध म दोनो सदनो की शक्तिया समान ह। ससदीय अधिनियम 1949 ई के अधीन ब्रिटिश कामन्स सभा निश्चित पद्धति का अनुगमन करके सभी मामलो म लॉडसभा का अतिक्रमण कर सकती है और यदि चाह तो अकेले ही विधि निर्माण कर सकती है, लेकिन वित्तीय क्षेत्र का छोडकर शेष सभी विषया म भारतीय लोकसभा राज्यसभा की उपेक्षा नहीं कर सकती।

राज्यसभा का स्थिति तृतीय फ्रेंच गणराज्य की गणराज्य परिषद (Council of States) जैसी हय भी नहीं ह। यह कनाडा की सीनेट की भाति भी नहीं है जो शीघ्रता म पारित अवाछनीय विधयका पर शीघ्र प्रतिबन्ध लगान म असमथ हो और सशोधन सम्बन्धी दायित्वो को भी ठीक प्रकार स सम्पादित न कर पाती हो।

लोकसभा एव राज्यसभा मे सम्बन्ध

लोकसभा की तुलना मे राज्यसभा की स्थिति विधिक दृष्टि से निम्न है। फिर भी राज्यसभा एव लोकसभा मे विवाद उत्पन्न हुए है। मॉरिस जास (Morris John) के अनुसार दाना सदना म अल्पकाल मे ही तीव्र प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गयी थी एव राज्यसभा ने लोकसभा स प्रतिस्पर्द्धा करना प्रारम्भ कर दिया था। लोकसभा द्वारा राज्यसभा के इस आचरण की तीव्र आलोचना एव प्रतिवाद किया गया है। ऐसा अवसर सवप्रथम अप्रल 1953 ई म उस समय उत्पन्न हुआ था जबकि लोकसभा द्वारा पारित आयकर (सशोधन) विधेयक 1952 ई पर राज्यसभा विचार कर रही थी। इस अवसर पर राज्यसभा न प्रस्ताव पारित करके विधि मन्त्री श्री विश्वास को जो सदन के सदस्य थे, लोकसभा म आय-कर विधयक सम्बन्धी भ्रान्ति को दूर करन हतु जाने स रोक दिया। इधर लोकसभा ने श्री विश्वास को सदन म उपस्थित होने का आदेश दिया। लोकसभा के सदस्या न राज्यसभा क प्रस्ताव की वैधानिकता क प्रति रोषपूर्ण आपत्ति करत हुए यह कहा कि मन्त्रीगण लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रधानमन्त्री श्री नेहरू क सामयिक हस्तक्षेप स स्थिति बिगडन स बच गयी।

जनवरी 1953 ई म दोना सदना क मध्य सघर्ष का पुन अवसर उत्पन्न हो गया। राज्यसभा द्वारा सावजनिक लेखा-समिति (Public Accounts Committee) म सम्बन्धित एक प्रस्ताव लोकसभा के समक्ष उपस्थित किया गया था। इसम यह सुझाव दिया गया था कि या तो राज्यसभा की अपनी लेखा समिति हो अथवा लोकसभा की वतमान लेखा-समिति म राज्यसभा क 7 सदस्यो को सम्मिलित करके उस दाना

सदनो की एक सयुक्त लेखा समिति म परिवर्तित कर दिया जाय। सावजनिक लेखा-समिति को यह प्रस्ताव स्वीकार नही थे क्योकि दोनो ही विकल्प सविधान म निहित सिद्धान्तो के विपरीत थे। सम्भवत यह बात यही समाप्त हो जाती परन्तु प्रधानमन्त्री ने लोकसभा म एक प्रस्ताव रखा कि राज्यसभा को लोकसभा की लेखा समिति म भाग लेने के लिए 7 सदस्य मनोनीत करने के लिए कहा जाय। इस प्रस्ताव ने विवाद को भडका दिया। प्रधानमन्त्री का उद्देश्य इस प्रस्ताव के द्वारा सयुक्त लेखा समिति का निर्माण या लोकसभा की वित्तीय शक्तिया को सीमित करना नही था। प्रधानमन्त्री द्वारा यह आश्वासन दिये जाने पर कि लेखा-समिति लोकसभा की ही समिति रहेगी, उनके द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव पारित हो सका। इसी प्रकार की कठिनाइया सयुक्त समितियो के गठन को लेकर भी उत्पन्न हुई थी।

ततीय विवाद चटर्जी घटना (1954 ई) स सम्बन्धित है। लोकसभा के सदस्य श्री एन सी चटर्जी ने एक सावजनिक भाषण म यह कहा कि वरिष्ठा का निकाय (राज्यसभा) दुष्ट बालको के समूह की भाति अनुत्तरदायी ढग से आचरण करता है। उनके यह शब्द विवाद का विषय बन गये। राज्यसभा मे विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया और उसके अध्यक्ष ने सचिव को श्री चटर्जी के भाषण की सत्यता की जाँच करने का आदेश दिया। लोकसभा के सदस्यो ने सचिव द्वारा पत्र लिखने पर आपत्ति की। स्पीकर न इस सम्बन्ध में निणय देते हुए कहा कि सचिव का पत्र एक आदेश-पत्र ह एव उन्होने सुझाव दिया कि इस विवाद तथा ऐसे मामला मे सामान्य प्रक्रिया के प्रश्न पर दोना सदना की विशेषाधिकार समितिया सयुक्त अधिवेशन म विचार करे। राज्यसभा इस बात पर सहमत हा गयी और अन्तत मामला समाप्त हो गया।

इन विवादो के कारण राज्यसभा की उपयोगिता विवाद का विषय बन गया। अप्रेल 1954 ई म लोकसभा मे निजी प्रस्ताव द्वारा राज्यसभा को शीघ्र ही भग करने की माग की गयी। वामपक्षी एव काग्रेस के कुछ सदस्यो ने राज्यसभा को प्रतिक्रियावादी तत्वा का सुदृढ गढ एव जनता की आवाज की उपेक्षा करन वाले सदन की सज्ञा दी थी। कुछ सदस्यो ने उसका कायम रखने की सलाह दी परन्तु उसकी निर्वाचन पद्धति म परिवतन का परामश दिया। शासन का मत था कि राज्यसभा की उपयागिता के सम्बन्ध म इतन अल्प समय म कोई निणय देना कठिन है।

प्रश्न यह है कि क्या राज्यसभा प्रभावशाली द्वितीय सदन एव सघीय सदन के रूप म सफलतापूवक काय कर सका है? सघीय सदन के रूप मे राज्या के हिता एव उनके सरक्षण की आशा राज्यसभा से पूण नही हुई ह। इसका मुख्य कारण यह है कि राज्यसभा एव लोकसभा का दलीय स्वरूप कम वढ एक सा ही होता है। प्रारम्भिक वर्षा म दोना सदना म एक ही दल का प्राधान्य रहा। राज्यसभा म भी अधिकाश सदस्य कांग्रेस दल के ही थे। द्वितीय सदन के रूप म दायित्व पूर्ति की आशा से ही सविधान-निर्माताओ न राज्यसभा की स्थापना की थी। सविधान सभा के प्रारम्भ म एक-

सदनीय व्यवस्था की स्थापना के लिए एक सशाधन प्रस्ताव रखा गया था जो पारित नही हुआ। श्री गोपालस्वामी आयगर का मत था कि द्विसदनीय व्यवस्था के द्वारा विद्वान एव अनुभवी व्यक्तियो के सहयोग का लाभ प्राप्त हो सकेगा।[54] श्री अनन्तशयनम आयगर ने भी वाद म उच्च सदन की उपयोगिता का समथन करते हुए कहा था कि उच्च सदन की स्थापना का लक्ष्य महत्वपूण मामला म उपयुक्त विचार का अवसर प्रदान करना एव भावावेश म पारित विधियो के निर्माण म विलम्ब करना होता है। राज्यसभा क सम्बन्ध मे कुछ तथ्य महत्वपूण एव रोचक है। राज्यसभा एव लोकसभा के दलीय स्वरूप म विशेष अन्तर नही रहा है। दोनो सदनो की काय पद्धति न्यूनाधिक एक सी है लेकिन आकार म छोटा होने के कारण लोकसभा की अपेक्षा राज्यसभा म वाद विवाद के अधिक स्वतन्त्र अवसर होते हैं। राज्यसभा म प्रतिदिन $2\frac{1}{2}$ घण्टे एव शुक्रवार का पूरा दिन निजी सदस्यो के कार्यो के लिए दिया जाता है। राज्यसभा म शासन द्वारा अनेक विधेयको को सवप्रथम प्रस्तुत किया जाता है। मन्त्रिमण्डल के भी कुछ सदस्य राज्यसभा स ही लिए जात हैं।

परन्तु राज्यसभा ने प्रभावशाली ढग से सशाधन करने वाले सदन की भूमिका नही निभायी है। 1952 ई मे प्रथम सत्र म 25 विधयको म से केवल 1 म सशोधन किया था। यही स्थिति अन्य अवसरो की है। 1952 57 ई के बीच म प्रस्तुत 363 विधेयको म स 201 विधेयक राज्यसभा म प्रस्तुत किये गये थे। इनम से अधिकाश विधेयक सामाजिक प्रकृति के थ।

जापान का उच्च सदन

1889 ई म निर्मित मीजी (Meiji) सविधान के अन्तगत जापान म द्विसदनीय व्यवस्थापिका की व्यवस्था की गयी थी। उच्च सदन को पीयस सदन (House of Peers) एव निम्न सदन को प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) कहा जाता था। पीयस सदन म 409 सदस्य थ। 20 वप स अधिक आयु के राजकुल क सभी सदस्य, राजकुमार आदि, करदाताओ के प्रतिनिधि तथा विशेष योग्यता वाल व्यक्ति इसक सदस्य होते थे। निर्वाचित सदस्या का कायकाल 7 वप होता था। इस व्यापक शक्तियाँ प्राप्त थी। वित्त विधेयक प्रतिनिधि सदन म ही सवप्रथम प्रस्तुत किय जात थ परन्तु अमरिकी सीनेट की भाँति पीयस सदन को उसम सशोधन करन और अस्वीकृत करन का अधिकार था। शेष सभी मामला म दोना सदना की शक्ति समान थी। यह सदन सगठन की दृष्टि स इगलण्ड की लाडसभा क अधिक निकट था। उसी की भाँति राजपरिवार क सदस्या एव अन्य सामन्तवर्गीय सदस्या को जन्मजात सदस्यता प्राप्त थी।

द्वितीय विश्व युद्ध म मित्र राष्ट्रा क समक्ष जापान न 1945 ई म आत्म समपण किया था। अमरिकी प्ररणा क फलस्वरूप लोकतन्त्रीय आदर्शों पर जापान क

---

54 C. A D Vol IV p 927

वर्तमान सविधान का निर्माण हुआ जो 3 मई, 1946 ई को लागू हुआ। इस शांति का सविधान (The Peace Constitution) भी कहा जाता है क्योकि इस सविधान द्वारा युद्ध का परित्याग किया गया है। इसमे स्त्रियो के अधिकारो को भी मान्यता दी गयी।

इस नवीन सविधान के अन्तगत द्विसदनीय राष्ट्रीय ससद या डाइट (National Diet) का निर्माण किया गया है। यह राज्य म शक्ति का सर्वोच्च अग है और *विधि निर्माण की सत्ता इसमे निहित है। उच्च सदन को काउसलर सदन* (The House of Councillors) एव निम्न सदन को प्रतिनिधि सदन (The House of Representatives) कहते है। काउन्सलर सदन प्रतिनिधि सदन की भाँति जन-प्रतिनिधियो का निर्वाचित सदन है। इसकी सदस्य सख्या 250 है। इसके सदस्य वशानुगत नही होते। 100 काउसलर निर्वाचित जिला (Districts) से एव 150 सदस्य प्रीफेक्चरो (Prefectures) से चुने जाते है।[55] सदस्या का कायकाल 6 वष है। आधे सदस्य प्रति तीन वष पश्चात निर्वाचित होते है। अत यह एक स्थायी सदन है। कोई व्यक्ति दोनो सदना का एक साथ सदस्य नही हो सकता। प्रतिनिधि सदन के विघटित होने की अवस्था मे काउसलर सदन भी ब द हो जाता है पर तु राष्ट्रीय सकटावस्था मे म न्त्रिमण्डल को उसका अधिवेशन आहूत करने का अधिकार है। काउसलर सदन द्वारा इस दशा मे पारित विधेयक अस्थायी होते है और डाइट के आगामी अधिवेशन के प्रारम्भ होने के 10 दिन के भीतर यदि उनको प्रतिनिधि सदन स्वीकृति प्रदान नही करता तो वे स्वत प्रभावहीन हो जाते हैं।

जापान म भी उच्च सदन की अपेक्षा निम्न सदन को अधिक शक्तिया प्रदान की गयी है। यद्यपि दोना सदनो को अपने सदस्यो की योग्यता का निधारण करने एव बहुमत से निणय करने तथा अपने अध्यक्ष एव अधिकारियो के निर्वाचन का अधिकार है पर तु विधि निर्माण के सम्ब ध म दोनो की शक्तियो म अ तर है। दोनो सदनो द्वारा किसी विधेयक के पारित होने पर ही वह विधि बनता है। यदि काउसलर सदन प्रतिनिधि सदन द्वारा स्वीकृत विधेयक मे कोई सशोधन करता है अथवा प्रतिनिधि सदन से भिन्न *निणय लेता है और प्रतिनिधि सदन यदि अपने उपस्थित सदस्या के दो तिहाई* बहुमत से उसे पुन पारित कर देता है तो वह विधि बन जाता है। इस व्यवस्था के बावजूद भी प्रतिनिधि सदन को दोना सदना का सयुक्त अधिवेशन आहूत करने का अधिकार है। प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित विधेयक को प्राप्त करने के 60 दिन के पश्चात भी यदि काउसलर सदन कोई अ तिम निणय नही लेता तो प्रतिनिधि सदन इसे उच्च सदन की *अस्वीकृति मान सकता है। वित्त विधेयक सव प्रथम प्रतिनिधि* सदन (निम्न सदन) म ही प्रस्तुत किया जाता है। यदि काउसलर सदन बजट के

55 जापान म निर्वाचन हेतु प्रत्येक प्रीफेक्चर (Prefecture)—प्रान्त—एक से लेकर चार जिलो तक म विभाजित होता है। टोकियो इस नियम का अपवाद है। उसम 7 जिले हैं।

यक प्रथम सदन—Odelsting—मे ही सवप्रथम उसके किसी सदस्य या मन्त्रिमण्डल के सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । यदि विधेयक पारित हो जाता है तो Lagting को विचार हेतु भेज दिया जाता है । उस विधेयक को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार है । अस्वीकृत करने की अवस्था म सदन को अपनी राय व्यक्त करने की स्वतन्त्रता होती है जिसे निम्न सदन स्वीकार करे या न करे । यदि निम्न सदन विधेयक को पुन लॉगटिंग (Lagting) के पास भेजता है और वह दुबारा अस्वीकार कर दिया जाता है तो ससद—स्टोटिंग—का अधिवेशन होता है एव उस पर दो तिहाई बहुमत से निणय लिया जाता है । दोनो सदनो द्वारा या स्टोटिंग द्वारा विधेयक पारित होने पर ही उसे राजा की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है । राजा के द्वारा विधेयक पर हस्ताक्षर न करने की अवस्था मे यदि स्टोटिंग के निरन्तर तीन अधिवेशनो, जिनके मध्य म निर्वाचन हो चुका हो, मे विधेयक पारित किया जाता है तो विधेयक राजा के हस्ताक्षर के बिना ही विधि बन जाता है । राजा के द्वारा निषेधाधिकार का कम ही प्रयोग किया जाता है ।

प्रो ली स्मिथ का मत है कि नार्वे की ससद एक ऐसी एकसदनीय व्यवस्थापिका है जिसम द्विसदनवाद के अवशेष प्राप्त हैं ।

आयर गणराज्य का द्वितीय सदन

दीघकालीन स्वातन्त्र्य सघष के पश्चात 1922 ई म आयरलण्ड स्वतन्त्र हुआ था लेकिन अल्स्टर (Ulster) का प्रदेश ब्रिटेन का ही भाग बना रहा । आयरलैण्ड के शेष भाग एव ब्रिटेन के मध्य एक सन्धि हुई जिसके फलस्वरूप आयरिश स्वतन्त्र राज्य का जन्म हुआ । इस सन्धि के द्वारा आयरलण्ड को स्वशासित उपनिवेश की स्थिति प्राप्त हुई । 14 जून, 1937 ई को आयरलण्ड की ससद ने जनता द्वारा निर्मित नवीन सविधान को स्वीकार किया । आयरिश फ्री स्टेट आयर (Eire) के नाम से ज्ञात है । 1936 ई म आयरलण्ड ने ब्रिटिश सम्राट का नाम सविधान से हटा दिया तथा गवनर जनरल के पद को समाप्त करके राष्ट्रपति की व्यवस्था की । इस प्रकार आयरलण्ड के ब्रिटिश क्राउन से सभी सम्बन्ध समाप्त हो गये और आयर गणराज्य का जन्म हुआ ।

1922 ई के सविधान म भी द्विसदनीय व्यवस्थापिका थी । प्रथम सदन को प्रतिनिधि सदन (Dail Eireann) एव द्वितीय सदन को सीनेट (Senate) की सज्ञा दी जाती है । 1937 ई के सविधान मे भी इस व्यवस्था को कायम रखा गया ।

1937 ई के सविधान के अधीन आयरलण्ड की सीनेट का आकार 1922 ई जसा ही है । लेकिन दोनो के सगठन म अन्तर है । पहली सीनेट पूणत निर्वाचित थी जबकि वतमान सीनेट आशिक रूप से निर्वाचित एव आशिक रूप से मनोनीत है । 1922 ई के सविधान के अधीन सीनेट के सदस्यो की सख्या 60 थी । उनका कार्यकाल 12 वर्ष था । एक चौथाई सदस्य प्रति तीन वष पश्चात अवकाश ग्रहण करते थे । सभी सदस्य समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने जाते थे । सदस्यता की

योग्यता सम्बन्धी की अर्हताएँ कठोर थी। संविधान के अनुसार केवल वे ही व्यक्ति सदस्य चुने जा सकते है जिन्होने कि 35 वर्ष की अवस्था प्राप्त कर ली हो तथा विशेष योग्यता रखते हों अथवा राष्ट्र के लिए गौरव अर्जित किया हो या राष्ट्रीय जीवन के किसी महत्वपूर्ण भाग का प्रतिनिधित्व करता हो। प्रत्येक निर्वाचन के पूर्व प्रत्याशियो की एक सूची तैयार की जाती है। इसकी सदस्य संख्या निर्वाचित सदस्यो की संख्या से तिगुनी होती है। इस के दो तिहाई सदस्य निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन (Dail Eireann)—द्वारा एवं एक तिहाई सीनेट द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचित किये जाते थे। सीनेट के भूतपूर्व या अवकाश प्राप्त सदस्य प्रधानमन्त्री को अपनी उम्मीदवारी की सूचना देकर अपना नाम इस सूची में जुड़वा सकते थे।

सीनेट की शक्तियां अपेक्षाकृत कम थी। वित्त-विधेयको के सम्बन्ध में इसे कोई अधिकार प्राप्त नही थे। लॉर्डसभा की तरह इसे केवल विलम्बकारी निषेधाधिकार प्राप्त था।

1937 ई० के संविधान द्वारा सीनेट के संगठन में परिवर्तन किया गया है। 60 सदस्यो में से 11 प्रधानमन्त्री द्वारा मनोनीत किये जाते हैं तथा शेष 49 सदस्य निर्वाचित होते हैं। 21 वर्ष से अधिक आयु का नागरिक प्रतिनिधि सदन के लिए निर्वाचित होने का अधिकारी होता है। वह सीनेट के लिए भी सदस्य निर्वाचित हो सकता है। 49 निर्वाचित सदस्यो में से 2 विश्वविद्यालयो द्वारा तथा शेष 47 सदस्य 5 सूचियो (Panels) में से निर्वाचित होते है। प्रत्येक निर्वाचन के पूर्व 5 सूचियाँ—(1) संस्कृति एवं साहित्य, (2) कला एवं शिक्षा, (3) कृषि एवं अन्य हितों, (4) श्रमिक उद्योग एवं वाणिज्य (बैंकिंग, वास्तुकला एवं इन्जीनियरिंग सहित), एवं (5) लोक प्रशासन और सामाजिक सेवा—के क्षेत्र सम्बन्धी गठित की जाती हैं। इन सूचियो के सदस्य अनुच्छेद 19 के अधीन विधि द्वारा व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के अनुसार चुने जाने के लिए, प्रत्यक्ष निर्वाचन सम्बन्धी नियम बना सकते हैं।

निम्न सदन द्वारा पारित विधेयको पर सीनेट को 90 दिन का विलम्बकारी निषेधाधिकार प्राप्त है। सीनेट का कार्यपालिका पर कोई नियन्त्रण नही है। कार्यपालिका केवल निम्न सदन के प्रति ही उत्तरदायी है।

यूगोस्लाविया का द्वितीय सदन

यूगोस्लाविया एक संघीय देश है। स्ट्रांग के अनुसार यूगोस्लाविया के गणराज्य का निर्माण पश्चिमी ढंग पर नहीं हुआ है परन्तु फिर भी पश्चिमी प्रभाव से वह पूर्ण रूपेण मुक्त भी नहीं है। अतः यूगोस्लाविया के संघीय द्वितीय सदन के स्वरूप एवं कार्यों का अन्य देशों के द्वितीय सदन के साथ तुलनात्मक अध्ययन दिलचस्प होगा।[56]

1946 ई० के यूगोस्लाविया के संघीय गणराज्य का संघीय सदन दो सद

56 Strong C F *Modern Political Constitutions* p 218

राज्य की जनसभा (Peoples' Assembly of the Republic) की सज्ञा दी जाती थी। यह द्विसदनीय व्यवस्थापिका थी। निम्न सदन का सघ परिषद (Federal Council) एव उच्च सदन को राष्ट्रजातीय परिषद (Council of Nationalities) की सज्ञा दी गयी। दोना सदना का कायकाल 4 वष था एव अधिकार भी समान थे। सघीय परिषद (निम्न सदन) को प्रत्यक्ष रीति से प्रति 50 हजार निवासिया के लिए एक प्रतिनिधि के आधार पर चुना जाता था। द्वितीय सदन (राष्ट्रजातीय परिषद) को विभिन्न गणराज्या के नागरिका द्वारा 30 प्रतिनिधि प्रति स्वायत्त प्रात, 20 प्रतिनिधि प्रति प्रात एव 15 प्रतिनिधि प्रति क्षेत्र के अनुसार निर्वाचित किया जाता था।

दोना सदना के सामायत पृथक अधिवेशन होत थे। विशेप अवसरा पर विशेप अधिवशन भी हो सक्त थे। जनसभा के सयुक्त अधिवेशन म कायपालिका का निर्वाचन एव सविधान म सशाधन जस महत्वपूण विपया पर विचार-विमश होता था। इन अधिवेशना म निणय बहुमत स हात थे। दोना म स किसी भी सदन म विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता था। एक सदन म विधेयक पारित होन पर यदि दूसरा सदन उसे अस्वीकार करता था तो दाना सदना की एक समन्वयकारी समिति उस पर विचार करती थी। यदि समिति भी किसी निणय पर नही पहुचती थी तो दोना सदना को विघटित करके नवीन निवाचन किय जात थे।

यूगोस्लाविया म सघवादिया (Federalists) एव एकात्मक शासन के समथका (Unitarianists) म विवाद बहुत पुराना है। 1960 ई म इसके फलस्वरूप नवीन सविधान क निमाण की घोपणा की गयी थी। प्रस्तावित नवीन सविधान की मुख्य विशेपताएँ निम्न है —

(1) यूगोस्लाविया का नाम सघीय समाजवादी गणराज्य प्रस्तावित किया गया।

(2) नवीन विधान का प्रारूप समाज का सविधान था, न कि राज्य का।

(3) सघीय सभा के सगठन म आमूलचूल सशोधन प्रस्तावित किय गय थे जिससे पूरे सघ मे समाजवादी लोकतन्त्र के विकास को गति प्रदान की जा सके।

नवीन सविधान के अ तगत सघीय सभा (Federal Assembly) के स्वरूप मे आमूलचूल परिवतन हो गया है। सघीय सभा द्विसदनात्मक न होकर पाच-सदनीय व्यवस्थापिका है। अत इसके सदना को निम्न या उच्च या प्रथम या द्वितीय सदनो की सज्ञा नही दी जा सकती। इसकी कुल सदस्य सख्या 670 है। प्रत्यक सदन म 120 सदस्य होते है। पाँच सदना के नाम है—(1) सघीय सदन, (2) आर्थिक सदन, (3) शक्षणिक एव सास्कृतिक सदन, (4) सावजनिक स्वास्थ्य एव सामाजिक कल्याण सदन, (5) सगठनात्मक एव राजनीतिक सदन। इसके अतिरिक्त, सघीय सदन का एक और अग है जिसे राष्ट्रीयताओ या उपराष्ट्रा का सदन कहते है। इसकी सदस्य सख्या 70 है। 6 गणराज्यो द्वारा 10 प्रतिनिधि प्रति गणराज्य एव 2 स्वायत्त प्रा तो द्वारा 5 प्रतिनिधि प्रति प्रात के हिसाब से इसम प्रतिनिधि भेजे जाते है।

सघीय सदन के सदस्य अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होते हैं। अय सदनो के

सदस्यो को अप्रत्यक्ष रीति से सामुदायिक सभाओ द्वारा निर्वाचित किया जाता है। सघीय सदन की सदस्यता प्रत्येक नागरिक को निर्वाचित होने पर ही प्राप्त हो सकती है। शेष सभी सदन व्यावसायिक आधार पर गठित हैं और उसकी सदस्यता के लिए व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित होना आवश्यक है। सदनो के किसी सदस्य का सघीय विधि के अधीन निर्धारित निर्वाचक मण्डल के बहुमत से प्रत्यावर्तन सम्भव है। सघीय सभा को किसी भी सदन का विघटित करने का अधिकार है। नवीन निर्वाचन पन्द्रह दिन के अन्दर हो जाते हैं। सघीय सभा का अध्यक्ष ही नवीन निर्वाचन की व्यवस्था करता है।

अधिकार एव शक्तियां

सघीय सभा शक्ति का सर्वोच्च अग है। लेकिन सभा को अपने अधिकार एव कर्तव्यो का पालन सविधान एव विधियो के अधीन करना पडता है। उसे विधि निर्माण, सघीय वार्षिक आय व्यय एव वित्तीय विवरण को स्वीकार करने तथा आन्तरिक एव वदेशिक नीति को निर्धारित करने का अधिकार है। सघीय कार्यकारिणी परिषद के अध्यक्ष एव सदस्यो का निर्वाचन करती है। उन्हे पदच्युत करना, युद्ध की घोषणा एव शान्ति की स्थापना, सामाजिक योजनाओ, राजनीतिक अधिकारियो एव प्रशासनिक अगो के कार्यों का निरीक्षण, गणराज्य की सीमाओ मे परिवर्तन, अन्तराष्ट्रीय सन्धियो की सम्पुष्टि एव सविधान द्वारा निर्धारित अन्य मामलो के बारे मे आवश्यक कार्यवाही करना सघीय सभा का दायित्व है।

सघीय सभा का अधिकार क्षेत्र सघ के अधिकार-क्षेत्र के अनुरूप ही विस्तृत है।

यूगोस्लाविया का पाँच सदनीय विधानमण्डल अपनी कार्य-पद्धति एव सगठन की दृष्टि से अनोखा है। राष्ट्रीयताओ के सदन की स्थिति सघीय सदन जसी है। सघीय सदन का यह एक उपाग है। बिना इस उप-सदन की स्वीकृति के सविधान मे कोई परिवर्तन सम्भव नही है। इस व्यवस्था द्वारा यूगोस्लाविया के समाजवादी गणतन्त्रीय सविधान मे सघीय सविधान की इस मान्यता को स्वीकार किया गया है कि सघ के घटको का प्रतिनिधित्व करने वाला एक सदन होना चाहिए। एक सीमा तक समान प्रतिनिधित्व को भी मान्यता दी गयी है।

11

व्यवस्थापिका—प्रथम या निम्न सदन

[LEGISLATURE—FIRST OR LOWER CHAMBER]

व्यवस्थापिका का निम्न सदन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन होता है। यही सत्ता का केन्द्र एव सच्चे अर्थों मे व्यवस्थापिका होती है। इगलैण्ड म ससद का निम्न सदन समस्त व्यावहारिक कार्यो के लिए ससद है। किन्ही भी दो देशा के निम्न सदनो की स्थिति एक सी नही है। परन्तु एक समानता सभी म पायी जाती है। सभी निम्न सदन सावभौम मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति मे निर्वाचित होत हैं। कायकाल, आकार एव शक्ति की दृष्टि स प्राय सभी मे कुछ न कुछ असमानताएँ होती हैं। उदाहरणार्थ, इगलैण्ड की कॉमन्स सभा का कायकाल 5 वष, अमेरिका के प्रतिनिधि सदन का 2 वष, कनाडा की कॉमन्स सभा 5 वष, आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि सदन का 3 वष, ततीय फ्रच गणराज्य के चेम्बर आफ डिप्टीज का 4 वष, चतुथ गणराज्य का राष्ट्रीय सभा (National Assembly) का 5 वष है। सुप्रीम सोवियत का निम्न सदन सघ सावियत (Soviet of the Union) 4 वष, भारत की लोकसभा 5 वष एव स्विटजरलैण्ड की राष्ट्रीय परिषद 4 वष के लिए निवाचित होती है। इगलैण्ड की कामन्स सभा मे 635[1], अमेरिकी प्रतिनिधि सदन मे 435, कनाडा की कॉमन्स सभा म 265, आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि सदन म 122, फ्रच चतुथ गणराज्य की राष्ट्रीय सभा म 627, सघ सोवियत मे 791,[2] भारतीय लोकसभा मे 520 एव स्विटजरलैण्ड की राष्ट्रीय परिषद मे 200 सदस्य[3] होते है। विभिन्न देशा म प्रति सदस्य प्रतिनिधित्व की सख्या भी भिन्न भिन्न है। मताधिकार

---

1 1973 ई म कामन्स सभा की सदस्य-सख्या 630 थी। लकिन 5 अतिरिक्त नवीन निर्वाचन क्षेत्रो का निमाण किया गया है। फरवरी 1974 के निर्वाचना मे 635 सदस्यो का निवाचन हुआ है।

2 सन 1958 म 738 सदस्य थे।

3 1962 ई के सवधानिक सशाधन के अन्तगत सदस्य सख्या 200 हो गयी है। इसके पूव यह सख्या 196 थी।

एव उनभ सम्बन्धित बातें भी हर देश म भिन्न हैं। अनेक देशा म एकसदस्यी ता अन्य देशा म बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र हैं। इस अध्याय म कुछ प्रमुख देशा के निम्न सदना का अध्ययन किया गया है जिससे कि उनस सम्बन्धित समस्याओ की सरलता पूवक समोक्षा की जा सके।

ब्रिटेन का निम्न सदन—कॉमन्स सभा

ब्रिटिश कामन्स सभा सदव ही एक निर्वाचित सदन रहा है। इस समय इसकी कुल सदस्य सख्या 635 है। इसक पूव 630 थी। इनम 511 इगलण्ड, 36 वेल्स, 71 स्काटलण्ड एव 13 उत्तरी आयरलण्ड का प्रतिनिधित्व करते थे। कॉमन्स सभा की इस सदी के प्रारम्भ म सदस्य सख्या 707 थी, 1945 ई म 640 एव 1955 ई मे 620 सदस्य थे। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1948 (The Representation of the People Act, 1948) क द्वारा सदस्य सख्या 613 स न बहुत अधिक और न बहुत कम रखने का विधान किया गया था। 1954 ई म कामन्स सभा (स्थान पुनर्विभाजन) अधिनियम, 1949 को सशोधित करके इगलण्ड, वेल्स, स्काटलैण्ड एव उत्तरी आयरलैण्ड म प्रत्येक के लिए पृथक पृथक चार स्थायी सीमा आयोगा की स्थापना की गयी थी एव निर्वाचन क्षेत्रा का कम से कम 10 वर्षों एव अधिक से अधिक 15 वर्षों म पुनर्विभाजन का विधान किया गया। 1954 ई के पुनर्विभाजन क अधीन 5 पुराने स्थाना को समाप्त किया गया तथा 11 नवीन निर्वाचन क्षेत्रा की स्थापना की गयी। सभी सदस्य एकल सदस्यी निर्वाचन क्षेत्रो से चुने जात हैं। 1944 ई के कामन्स सभा (स्थान पुनगठन) अधिनियम एव 1948 ई के जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के पूव कुछ निर्वाचन क्षेत्र दो सदस्यी भी थे। विश्वविद्यालय के स्नातको एव व्यापारिक सस्थानो का भी अतिरिक्त मतदान के अधिकार थे। लेकिन अब बहुल मतदान व्यवस्था पूणत समाप्त कर दी गयी है। 'एक व्यक्ति एक मत (one man one vote) का नियम पूणत स्थापित हो चुका है। कामन्स सभा का रूप अब पूणत प्रजातान्त्रिक है।

कामन्स सभा का लोकतन्त्रीकरण

कामन्स सभा सदव ही लोकतान्त्रिक सदन नही था। उसका लोकतन्त्रीकरण 1832 ई से प्रारम्भ हुआ है। इसके पूव बहुत कम व्यक्तिया को मताधिकार प्राप्त था एव सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यताएँ थी। इगलण्ड तथा वेल्स के सम्पूण ग्रामीण क्षेत्र म केवल $2\frac{1}{2}$ लाख मतदाता थ। वे 80 शिलिंग वार्षिक लगान वाली भूमि के स्वामी थे। मताधिकार केवल पुरुषो को प्राप्त था। नगरो म मताधिकार की कोई व्यवस्था नही थी। सम्पूण देश म तथाकथित स्वतन्त्र जन (freemen) सम्बन्धी एक सी मतदान व्यवस्था नही थी। कुछ नगरा म मताधिकार उँगलियो पर गिनने योग्य था, ता कही सभी वयस्क पुरुष मतदाता थे।

इसके अतिरिक्त किसी निश्चित नियम के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रो का निर्माण नही होता था। एक पुराने नियम के अनुसार प्रत्येक शहरी एव ग्रामीण क्षेत्र, बरो (Borough) एव काउन्टी (County) को दो प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था, चाहे

उनकी जनसख्या कुछ भी क्या न हो। फलत एक तरफ तो लाखो की जनसख्या वाले नगरो द्वारा केवल दो सदस्य भेजे जाते थे तो कुछ ऐसे कस्बे भी थ जो उजड चुके थे परन्तु वे भी दो प्रतिनिधि भेजने के अधिकारी थे। औद्योगिक क्रान्ति के कारण बहुत से देहाती क्षेत्र उजड चुके थे और बरमिघम, लिवरपूल जैसे छोटे छोटे गाव अब बडे शहर बन गये थे। परन्तु प्रतिनिधित्व की वही पुरानी पद्धति थी। फलस्वरूप अनेक हास्यास्पद विषमताएँ उत्पन्न हो गयी थी। ओल्डसेरम (Old Sarum) नामक शहर मे केवल दो ही निवासी रह गये थे जो रहते भी कही अन्यत्र थे। इन दो व्यक्तियो को भी दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त था। अण्डरटन (Underton) नामक बरो समुद्र म विलीन हो गया था, परन्तु उसके नाम पर भी दो प्रतिनिधि भेजे जाते थे। ऐसे निर्वाचन क्षेत्र सडे गले निर्वाचन क्षेत्र (Rotten Boroughs) कहे जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य बरो मे प्रतिनिधि भेजने का अधिकार जमीदारो को था जो उनके स्वामी होते थे। यह निर्वाचन क्षेत्र व्यवहार मे भूस्वामियो की जेब मे अर्थात अधिकार मे होते थे और इन्हे जेबी निर्वाचन क्षेत्र (Pocket Boroughs) की सज्ञा दी जाती थी। ऐसे निर्वाचन क्षेत्रो का खुलेआम सौदा होता था और जो जमीदारो को अधिक मूल्य चुकाता था वही इन बरो से निर्वाचित हो जाता था।[4]

1830 ई म उदार दल विजयी हुआ था। 1832 ई म कॉमन सभा ने सुधार विधेयक पारित किया एव मताधिकार तथा निर्वाचन क्षेत्रो का पुनर्विभाजन किया गया। 1832 ई के सुधार विधेयक के अन्तर्गत ग्रामीण एव शहरी क्षेत्रो के लिए समान व्यवस्था रखी गयी अर्थात 40 शिलिंग वार्षिक लगान या किराये वाली अचल सम्पत्ति के स्वामी या किरायेदार को मताधिकार प्रदान किया गया। फलस्वरूप मतदाताओ की सख्या मे $2\frac{1}{2}$ लाख की वृद्धि हुई। निष्प्रभावी एव जेबी बरो (Pocket Boroughs) को समाप्त कर दिया गया। 56 बरो को मताधिकार से वचित कर दिया गया एव 30 बरो मे एक एक सदस्य कम किया गया। 22 बडे नगरो को दो सदस्य एव 20 अन्य नगरो को एक सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। कुल मिलाकर 150 स्थानो का पुनर्विभाजन किया गया। इससे घने आबाद क्षेत्रो को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। वास्तव मे इस विधेयक द्वारा उच्च मध्यम वर्ग को मताधिकार प्रदान किया गया था। लेकिन सर्वसाधारण को मताधिकार प्राप्त नही हुआ और पूर्णरूपेण प्रजातन्त्र की स्थापना भी नही हुई। इस विधेयक ने भविष्य के लिए निस्सन्देह मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

1832 ई का सुधार अधिनियम असन्तोषजनक था। जनता शीघ्र ही वयस्क मताधिकार की माग करने लगी। चार्टिस्ट आन्दोलनकारियो ने निम्न 6 माँगे प्रस्तुत की थी (1) वयस्क पुरुष मताधिकार, (2) समान आकार के निर्वाचन क्षेत्र, (3)

---

4 Adams G B *Constitutional History of England* 1956, p 435

5 Adams G B *op cit* p 447 and Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1956 p 191

गुप्त मतदान, (4) वार्षिक ससदीय निर्वाचन, (5) सम्पत्ति सम्ब धी योग्यता का अ त, एव (6) ससद सदस्यो को वेतन दिया जाय।[6]

1867 ई के द्वितीय सुधार अधिनियम के द्वारा नगरो के सभी श्रमजीविया को मताधिकार प्रदान किया गया। फलस्वरूप मतदाताओ की सख्या म 10 लाख की वृद्धि हुई।[7] 1872 ई के मतदान विधेयक (Ballot Act) के द्वारा गुप्त मतदान की व्यवस्था प्रारम्भ हुई।[8]

1884 ई के लोकप्रिय प्रतिनिधित्व विधि के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो म श्रमिको को भी मताधिकार प्रदान किया गया। इसमे मतदाताओ की सख्या म 20 लाख की वद्धि हुई एव पूण वयस्क मताधिकार की स्थापना हो गयी।[9] 1885 ई के ससदीय कानून द्वारा निर्वाचन क्षेत्रो का पुनर्विभाजन भी किया गया। इस समय तक स्त्रिया को मताधिकार प्राप्त नही हुआ था। 'एक व्यक्ति एक मत का सिद्धा त भी स्थापित नही हुआ था। निर्वाचन क्षेत्र भी असमान थे। कुछ लाग कई स्थानो की योग्यता के कारण एक से अधिक मत देते थे। अधिकाश निर्वाचन क्षेत्र भौगोलिक थे। पर तु कुछ निर्वा चन-क्षेत्र—जसे विश्वविद्यालय—व्यावसायिक आधार पर भी गठित थे।

1918 ई के लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम द्वारा इन दोषो को दूर करने का प्रयास किया गया। बहुल मतदान पर प्रतिब ध लगा दिया गया एव मताधिकार म वृद्धि की गयी। सम्पत्ति सम्ब धी मताधिकार की योग्यता को समाप्त कर दिया गया एव वयस्क पुरुष मताधिकार स्थापित किया गया। 21 वष वयस्कता की आयु सीमा निश्चित की गयी। 30 वष या उससे अधिक आयु की स्त्रियो को भी मताधिकार प्रदान किया गया। स्त्रियो के मताधिकार के सम्ब ध म यह व्यवस्था थी कि उ ह या उनके पतियो को स्थानीय सस्थाओ का मतदाता होना चाहिए। 1928 ई के लोक-प्रतिनिधित्व अधिनियम द्वारा स्त्रिया के मताधिकार सम्ब धी इन प्रतिब धो को हटा दिया गया एव उ ह पुरुषो के समान ही मताधिकार प्रदान किया गया। 1948 ई के जन प्रतिनिधित्व अधिनियम द्वारा ससदीय निर्वाचनो मे बहुल मतदान को समाप्त कर दिया गया। 1970 ई म 18 वष की आयु के प्रत्यक स्त्री पुरुष को मताधिकार प्रदान किया गया है।

कॉम स सभा का कायकाल

कॉम स सभा का कायकाल 1911 ई के ससदीय अधिनियम द्वारा 5 वष निश्चित कर दिया गया है। इसके पूव सप्तवर्षीय अधिनियम 1715 ई (The Sep-

---

6 *Ibid*, p 448
7 *Ibid* p 460
8 इस विधेयक की व्यवस्थाओ एव निर्वाचन-पद्धति सम्ब धी अ य बातो को 1949 ई क जनप्रतिनिधित्व अधिनियम म समन्वित किया गया है।
9 Adams, G B *op cit*, pp 463 64
10 *Ibid*, pp 465 66

tennial Act, 1715) के अधीन इसकी अवधि 7 वष थी। ससद कॉमन्स सभा की अवधि का विधि द्वारा घटा या बढ़ा सकती है। प्रधानमन्त्री के परामश पर राजा को कॉमन्स सभा को विघटित करने का अधिकार है। तत्सम्बन्धी परम्परा सुनिश्चित रूप मे स्थापित हो चुकी है। 1906 ई से 1950 ई तक की अवधि म कामन्स सभा का कायकाल पूरे 5 वष एक बार भी नही रहा है, उसस कम या अधिक ही रहे हैं। दोना विश्व-युद्धो के काल म उसका कायकाल 5 वष स अधिक रहा था। कॉमन्स सभा के काय-काल म वद्धि या ह्रास से सम्बन्धित प्रस्तावो का लाडसभा द्वारा समथन किया जाना आवश्यक होता है। दिसम्बर 1910 ई मे निर्वाचित ससद का 1918 ई मे विघटन हुआ था। ससद न अपन कायकाल मे इस अवधि के बीच मे पाँच बार वृद्धि की एव प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद ही नये निवाचन हो सके थे। इसी प्रकार, नवम्बर 1935 इ मे निर्वाचित ब्रिटिश ससद 9 वष 6 माह के उपरान्त 1945 ई म विघटित हुई थी। 1910 ई एव 1911 ई म तीन बार निर्वाचन (10 जनवरी, 1910, 19 नवम्बर, 1910 ई एव 31 जनवरी, 1911) हुए थे। 1919 ई मे निर्वाचित ससद 3 वष 8 माह के बाद 1922 ई मे विघटित हो गयी। 1924 ई म दो बार (जनवरी एव दिसम्बर) निवाचन हुए थे। 1929 ई, 1931 ई एव 1935 ई म क्रमश निर्वाचन हुए। 1949 ई एव 1950 ई के वर्षो म कामन्स सभा के एक वष के पश्चात ही निर्वाचन हुए थे। विगत 150 वर्षों म केवल तीन बार 1867-73 ई, 1951 55 ई एव 1955 1959 ई तक ब्रिटिश ससद ने अपनी पूण अवधि तक काय किया है।

कामन्स सभा की सदस्यता सम्बन्धी योग्यताए[11]

सभी वयस्क स्त्री पुरुषा को जो ब्रिटिश प्रजाजन ह, मतदान का अधिकार प्राप्त है। वे किसी भी उपनिवेश के निवासी हो सकत ह। वयस्कता की आयु सीमा 21 वष थी। अब 18 वष है। इससे कम आयु के व्यक्तियो को मतदान का अधिकार नही है। विदेशी, अल्पवयस्क, पादरी,[12] विक्षुप्त, पीयर अर्थात लॉडसभा के सदस्य, देशद्रोही एव महापातक के अपराधी जिन्होने कारावास की अवधि पूण नही की है या अवधि के पूव क्षमा प्राप्त नही कर सके हैं तथा ससदीय निर्वाचना म भ्रष्ट एव अनुचित तरीको के प्रयोग क दोषी व्यक्तियो को मतदान का अधिकार प्राप्त नही है। ऐसे व्यक्ति कामन्स सभा की सदस्यता के लिए प्रत्याशी भी नही हो सकत। कामन्स सभा अयोग्यता अधि-नियम 1957 ई (House of Commons Disqualification Act, 1957) के अधीन उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से लेकर दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) तक अनेक

---

11 Refer to House of Commons Disqualification Act 1957, Quoted the United Kingdom Constitution, B I S Pamphelet No P F P 4758/68, pp 17 18

12 इगलैण्ड, आयरलैण्ड एव स्काटलण्ड के चर्चों के पादरियो एव रामन कथोलिक चच के पादरिया को मताधिकार प्राप्त नही है।

न्यायिक अधिकारिया, क्राउन के लोक कमचारिया (Civil Servants), सेना, विदश एव उपनिवेश सेवा तथा पुलिस कर्मचारी कॉमन्स सभा के सदस्य नही हो सकत। राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) के बाहर के किसी देश की व्यवस्थापिका एव किसी आयोग, बोड या न्यायाधिकरण का सदस्य भी कॉमन्स सभा का सदस्य नही हो सकता।

प्राचीन परम्परा के अनुसार कॉमन्स सभा की सदस्यता अधिकार न होकर कतव्य माना जाता है। आज भी कॉमन्स सभा का कोई सदस्य औपचारिक रूप से त्यागपत्र नही द सकता। पदत्याग के इच्छुक सदस्यो को अप्रत्यक्ष रूप से ही पदत्याग करना पडता है। क्राउन के अधीन किसी लाभ के पद को स्वीकार कर लेने पर कामन्स सभा का सदस्य स्वत ही सदन की सदस्यता स वचित हो जाता है। 18वी सदी से ही क्राउन के अधीन मन्त्रि-पद को छोडकर लाभ के किसी अन्य पद को ग्रहण करना कामन्स सभा की सदस्यता के लिए अयोग्यता (disqualification) माना गया है। बेलिफ आफ दी हण्ड्रेड ((Bailiff of the Hundred) एव मेनर ऑफ दी नाथ हैड (Manor of the North Head) नामक दो पद ऐसे ही है एव वे दीघकाल स समाप्त हो चुके हैं। कॉमन्स सभा का जो सदस्य उसकी सदस्यता से मुक्त होना चाहते हैं वह उनम स किसी पद पर नियुक्ति की प्राथना करता है। प्राय इस प्राथना को अस्वीकार नही किया जाता है। यह दोना पद वित्त मन्त्री (Chancellor of the Exchequer) के अधिकार क्षेत्र म हैं और लाभ के अवतनिक पद माने जाते हैं।

कॉमन्स सभा की शक्तियाँ

कामन्स सभा द्वारा निम्नलिखित तीन महत्वपूण काय सम्पादित किये जात है

(1) विधि निमाण,

(2) प्रशासन पर नियन्त्रण एव निरीक्षण, एव

(3) राष्ट्रीय वित्त पर नियन्त्रण।

(1) विधायी शक्तियाँ—कॉमन्स सभा को 1911 ई के ससदीय अधिनियम के अन्तगत विधि निमाण सम्बन्धी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं। 1949 ई क ससदीय अधिनियम के द्वारा लाडसभा की विलम्बकारी शक्ति को कम करक एक वष तक सीमित कर दिया गया है। सभी वित्त विधेयक कामन्स सभा म ही प्रस्तुत किये जात हैं। लाडसभा का प्राय इस क्षेत्र म कोई शक्ति प्राप्त नही है। वह अधिक स अधिक किसी एसे विधयक पर एक माह म विचार व्यक्त कर सकती है, उसको स्वीकार करना या अस्वीकार करना कॉमन्स सभा पर निभर करता है। गैर वित्तीय विधेयका को सवप्रथम किसी भी सदन म प्रस्तुत किया जा सकता है। लकिन महत्वपूण गर वित्तीय विधयक कामन्स सभा म ही प्रस्तुत किय जात हैं। गर वित्तीय विधयका क सम्बन्ध म लाडसभा का विरोध कामन्स सभा क समक्ष व्यावहारिक दृष्टि स महत्व-हीन है। कामन्स सभा यदि किसी विधेयक का निरन्तर होन वाल तीन सत्रा म पारित कर देती है एव प्रथम सत्र के द्वितीय वाचन तथा तृतीय सत्र क तृतीय वाचन म कवल

एक वर्ष का अन्तर होता है, तो विधेयक लॉर्डसभा का विरोध होते हुए भी पारित हो जाता है। सक्षेप मे, कॉमन्स सभा को वित्तीय एव गैर-वित्तीय दोनो ही प्रकार के विधेयको को पारित करने के अन्तिम अधिकार प्राप्त हैं।

(2) कार्यपालिका एव प्रशासन के नियन्त्रण एव निरीक्षण सम्बन्धी शक्ति—ससद कार्यपालक अधिकारी नही है। लेकिन क्राउन एव कार्यपालिका के कार्यों एव ससदीय विधियो के प्रशासन पर वह प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रीति से कठोर नियन्त्रण रखती है। कॉमन्स सभा के प्रति मन्त्रिमण्डल अपने कार्यों एव नीतियो के लिए उत्तरदायी होता है। अभिसमय के अनुसार क्राउन द्वारा बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है। मन्त्रिमण्डल के मुख्य सदस्य कॉमन्स सभा के ही सदस्य होते है। अभिसमय के अनुसार प्रधानमन्त्री भी कॉमन्स सभा का ही होना चाहिए। कामन्स सभा का विश्वास खोने पर मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडता है। इसके अतिरिक्त सदस्यो को प्रश्न पूछ कर शासन से सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। वे वाद विवाद की माग करके शासन की नीति की आलोचना कर सकते है। किसी नीति सम्बन्धी प्रश्न की समीक्षा बजट काल मे उस विभाग की मागो पर विचार के समय की जा सकती है। सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास (No Confidence) एव निन्दा प्रस्ताव (Censure Motion), स्थगन (Adjournment) एव ध्यानाकर्षण प्रस्तावो (Call Attention Motions) को उपस्थित करके शासन को नियन्त्रित किया जाता है। अविश्वास एव निन्दा प्रस्ताव तथा विभाग की माँगो मे कटौती के प्रस्ताव के पारित होने का अर्थ मन्त्रिमण्डल का पतन होता है।

ससद-सदस्यो के प्रश्न पूछने का अधिकार वह महत्वपूर्ण उपकरण है जिसके द्वारा वे शासन के कार्य की आलोचना कर सकते हैं तथा उसका ध्यान जनता की कठिनाइयो की ओर आकर्षित कर सकते है। प्रश्न पूछना शासन के कार्यों पर सर्वश्रेष्ठ अवरोध है। शासन का प्रत्येक विभाग यह अनुभव करता है कि उस पर निरन्तर दृष्टि रखी जा रही है। फलस्वरूप वे सजग रहते है। यदि किसी प्रश्न के उत्तर से सदस्यो को सन्तोष नही होता तो वे सदन के कार्य को स्थगित करके सार्वजनिक महत्व के किसी प्रश्न पर विचार करने का प्रस्ताव कर सकते हैं। विशेष कठिनाई, आलोचना एव किसी प्रस्ताव को उपस्थित करने के लिए सदस्यगण ध्यानाकर्षण नोटिस दे सकते है। शासन की किसी महत्वपूर्ण नीति पर विचार करने या शासन के विरुद्ध निन्दा या प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए विरोधी दल के नेता को तिथि निश्चित करने की माँग करने का अधिकार होता है।

लास्की के अनुसार 'प्रश्न पूछने की पद्धति के महत्वपूर्ण परिणाम हुए हैं। इससे राज्य के विभिन्न विभागो के कार्य जनता की निगाह मे आ जाते हैं।' यह नौकरशाही की आदतो से उत्पन्न खतरो को पूरी तरह समाप्त तो नही [illegible] अवश्य कर देती है। लास्की की दृष्टि मे प्रश्न पूछकर शासन को जाता [illegible] एव उनके कष्टो को दूर करने की सूचना दी जाती है। कॉमन्स सभा [illegible]

जन-कष्टो को अभिव्यक्त करना (ventilation of grievances) है। जन कष्टो की अभिव्यक्ति से अथ जनता के कष्टो पर ध्यानाकर्षण की शक्ति स है। जहाँ इस शक्ति का अभाव है वहा अत्याचार का होना अनिवाय है।[13]

लास्की के अनुसार कामन्स सभा का मुख्य काय शासन का निर्माण करना है जो उसके विश्वासपयन्त विधि निर्माण सम्बन्धी निर्देश दे सके। विधि निर्माण की निर्देश शक्ति शासन के हाथ मे देकर कॉमन्स सभा को शासन के कायक्रम पर विचार करने की शक्ति एव अधिकार स्वत प्राप्त हो जाता है। शासन निर्माण क पश्चात विधि निर्माण के अतिरिक्त, लास्की के अनुसार, कॉमन्स सभा के अन्य काय निम्नलिखित है —जनता के कष्टो का निवारण करना, सूचना प्राप्त करना एव वाद विवाद के माध्यम से सावजनिक विषयो म जनता की रुचि जागृत करके उस जन जीवन म शिक्षित करना है। इसके अतिरिक्त सदन का एक काय अपने मे से योग्य सदस्यो का चुनाव करना है। सदन के इस चुनाव काय स अथ उस चतुर मनोवैज्ञानिक पद्धति से है जिसके फलस्वरूप एक सदस्य को तो ख्याति प्राप्त होती है और दूसरा असफल हो जाता है।[14]

कामन्स सभा वाद विवाद (debate) की दृष्टि म राष्ट्र का चर्चा स्थल है। विधि निर्माण काल म एव शासन की समीक्षा के दौरान सदन म वाद विवाद होता है। कभी-कभी सदस्यो के द्वारा शासन की किसी नीति या किसी सावजनिक महत्व के प्रश्न पर भी वाद विवाद की माग की जाती है। कामन्स सभा म यद्यपि वाद विवाद का स्तर निरन्तर गिर रहा है परन्तु इसके महत्व को अस्वीकार नही किया जा सकता।

(3) **राष्ट्रीय वित्त पर नियन्त्रण**—कामन्स सभा राष्ट्र की वित्तीय व्यवस्था—आय एव व्यय—को स्वीकृति देन के अधिकार से उस पर नियन्त्रण रखती है। धन की

---

13 The power to ventilate grievances means the power to compel attention to grievance ' Nothing makes responsible Government so sure 'where this power is absent the room for tyranny is always wide —Laski *Parliamentary Government in England* 1952, p 149

14 The business of House of Commons is 'primarily to make a Government to whom so long as it gives that Government its confidence it is prepared to entrust that initiative' (p 143) By leaving the initiative in legislation to the Government the House assures itself of the capacity to consider a programme' (p 144) If we assume that a Government is in being what are the functions the House must perform ? There is the ventilation of grievance There is the extraction of information There is the business debate to sustain public interest and to educate it in the significance of what is being done There is the selective function of the Houses—by which is meant that subtle psychological process by which one member makes a reputation and another fails to make one —Laski *op cit*, p 144

स्वीकृति को लेकर ही 17वी सदी मे इगलैण्ड म राजा एव ससद म सघप हुआ था और चाल्स प्रथम को प्राणो से हाथ धोना पडा तथा जेम्स द्वितीय को सिहासन त्यागना पडा था। 1688 ई मे यह निर्विवाद रूप मे निश्चित हो गया था कि ससद ही राष्ट्र के वित्त की सरक्षिका है। कॉमन्स सभा म ही वित्त-विधेयक सवप्रथम प्रस्तुत किये जात है। कॉमन्स सभा की स्वीकृति के बिना न कोई कर लगाया जा सकता है, न कोई धन-राशि व्यय की जा सकती है।[15] कॉमन्स सभा क्राउन द्वारा धन की माग करने एव कर प्रस्तावित करने पर ही व्यय एव कर लगाने की स्वीकृति दे सकती है। इसका अथ यह है कि वित्तीय मामला मे सरकार को पहल करने की शक्ति है। इर्स्कीन के शब्दा म "क्राउन द्वारा धन की माग की जाती है, कॉमन्स उसे स्वीकृत करते हैं, लॉर्ड्स उस पर अपनी स्वीकृति देते हैं, लेकिन कॉमन्स उस समय तक धन को स्वीकृत नही करते जब तक कि क्राउन द्वारा उसकी माग नही की जाती।[16] कामन्स सभा क्राउन द्वारा प्रस्तावित करा या व्यय की राशियो मे कटौती कर सकती है लेकिन वृद्धि नही कर सकती। दिसम्बर 1706 ई को कॉमन्स ने एक प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकार किया कि यह सदन सावजनिक सेवा के लिए धन हेतु कोई आवेदन क्राउन की सस्तुति के बिना स्वीकार नही करेगा। यही 11 जून, 1713 से स्थायी नियम बन गया है।[17] लाडसभा को वित्तीय मामला मे कोई शक्ति प्राप्त नही है।

कामन्स द्वारा बजट पारित होने पर हर देनदारी को नियन्त्रक एव महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) द्वारा अधिकृत किया जाता है। वार्षिक लेखा की जाच सावजनिक लेखा समिति (Public Account Committee) द्वारा की जाती है। समिति द्वारा प्रतिवेदनो को कामन्स सभा के समक्ष रखा जाता है।

प्रश्न पूछकर एव वाद-विवाद क समय वित्तीय नीति की आलोचना करके भी राष्ट्रीय वित्त पर नियन्त्रण रखा जाता है। कामन्स सभा करो से प्राप्त राजस्व पर वित्त विधेयक (Finance Act) एव उपाय एव साधन समिति (Ways and Means Committee) म होने वाले विवाद के माध्यम से नियन्त्रण रखती है। राष्ट्रीय धन के व्यय पर ससद पूर्ति समिति (Committee of Supply) मे होने वाले विवाद एव विनियोग विधेयक (Appropriation Act) को स्वीकृत करके तथा ससद के प्रति उत्तरदायी नियन्त्रक एव महालेखा परीक्षक के अधिकरण (authorisation) के माध्यम

15 Sir Thomas Erskine May *Treatise on the Law, Privileges, Proceedings and Usages of Parliament*, 1964, p 40

16 ' The crown demands money the Commons grant it, and the Lords assent to the grant but the Commons do not vote money unless it is required by the Crown "—Erskine *op cit*, 13th edn, p 493

17 Resolved, that this House will receive no petitions for any sum of money relating to public service but what is recommended from Crown (i e by a minister) *Commons Journals* vol XV p 211 11th December 1706 cited the United Kingdom Constitution B I S, *op cit*, p 20

स नियन्त्रण रखती है। ससदीय सावजनिक लेखा समिति द्वारा लेखा का परीक्षण किया जाता है।

सक्षेप म, कॉमन्स सभा विभिन्न तरीको स कायपालिका पर नियन्त्रण रखती है, जसे कि शान्ति काल म ससद की स्वीकृति के बिना सेना को रखने का कोई भार जनता वहन नही करेगी, कॉमन्स सभा द्वारा अनुदान की माँगे प्रति वप स्वीकृत की जानी चाहिए अनुदानित धन राशि को स्वीकृत मद म ही व्यय किया जाना चाहिए, एव मन्त्रिमण्डल अपने कार्यों के लिए कामन्स सभा के प्रति उत्तरदायी होता है।[18]

कॉमन्स सभा की स्थिति की समीक्षा

आलोचको ने कामन्स सभा को वार्ता की दुकान (talking shop) की सना दी है। कार्लाइल ने क्रोध म यह कहा था कि विश्व ने शायद ही ऐसा कभी देखा हो कि 600 गधे महान साम्राज्य के विधि निर्माण एव प्रशासन काय म इस प्रकार सलग्न हैं। कार्लाइल का यह व्यग भ्रामक है। परन्तु यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि कामन्स सभा म कुछ कमियाँ हैं।

रमजे म्योर के अनुसार ससद का काय आलोचना करना एव राष्ट्र की तरफ स नियन्त्रण करना है। उसका काय प्रशासन की जाँच करना भी है। यह देखना भी उसका काय है कि प्रशासन मितव्ययता एव सक्षमतापूवक चलाया जाता है। शासन द्वारा प्रस्तावित हर नयी विधि एव अध्यादेश की सजगता से परीक्षा करना एव उसे सशोधित करना उसका काय है। प्रस्तावित करा के सुनिश्चित होने के सम्बन्ध म ससद को सन्तुष्ट होना चाहिए तथा यह देखना चाहिए कि जनता पर कर का कम से कम भार पडे।[19] प्रश्न यह उठता है कि आलोचना एव नियन्त्रण के इन कार्यों को कामन्स सभा क्या ठीक प्रकार स सम्पादित करती है? क्या उसका वतमान सगठन एव स्वरूप राष्ट्र की इच्छा एव विचारो को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है? क्या कामन्स सभा राष्ट्र का पूण प्रतिनिधित्व करने वाला सदन है?

कामन्स सभा की वतमान निर्वाचन प्रणाली आलोचको की दृष्टि म दोषपूण है। प्रचलित बहुमत मतदान व्यवस्था के कारण कामन्स सभा जनमत को भली प्रकार अभिव्यक्त नही करता। निर्वाचन क्षेत्रो म दो या अधिक प्रत्याशियो के मध्य सघष होने की दशा म यह सम्भव है कि विजयी दल के उम्मीदवारा को कुल मतदाताओ का स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने पर भी वे बहुमत स विजयी घोषित किये जायें। इंग्लण्ड के सामान्य निर्वाचनो के उपलब्ध आकडा से उक्त कथन की पुष्टि होती है। सन 1918 ई के सामान्य निर्वाचन मे सयुक्त दल (coalition) को कामन्स सभा म 472 स्थान एव अन्य दलो को 130 स्थान प्राप्त हुए थे। सयुक्त दल एव अन्य दलो को प्राप्त स्थानो का अनुपात 4 और 1 था जबकि सयुक्त दल को 52% तथा अन्य दलो को

---

18 Halsbury *Laws of England* Vol 28 3rd (Simonds) edn, (1929) pp 300 1, cited the United Kingdom Costitution *op cit* p 21

19 Ramsay Muir *How Britain is Governed* (1951) p 117

48% मत प्राप्त हुए थे। यदि दोनो दलो को प्राप्त मता के अनुपात म स्थान प्राप्त हुए होत तो 342 के स्थान पर सयुक्त दल का केवल 30 का बहुमत होता। रैमजे म्योर के अनुसार यह राष्ट्रीय विचारो की गम्भीर विकृति है। इसस शासन के हाथ मजबूत हुए और उसे *अमर्यादित अधिनायकत्व प्राप्त हो गया।*[20] सयुक्त दल के पतन के पश्चात 1922, 1923 एव 1924 ई मे निर्वाचन हुए थे। 1922 ई मे अनुदार दल को 347 स्थान एव 79 का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ था लेकिन अनुदार-दल को कुल मतो के केवल 38 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। उदारवादियो को 28 5 प्रतिशत एव श्रम दल को 29 5 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। स्पष्ट है कि प्राप्त मता के अनुपात म अनुदार दल को स्पष्ट बहुमत नही मिलना चाहिए था और उदारवादियो को प्राप्त मता के अनुपात म कम स्थान मिले थे।

1923 ई के निर्वाचना म अनुदार दल को 38 प्रतिशत मत मिले थे लेकिन 1922 ई की तुलना म 90 स्थान कम मिले थे। इस बार स्पष्ट बहुमत के स्थान पर 100 सदस्यो से वे अल्पमत म थे। फिर भी उन्ह प्राप्त मता के अनुपात से 24 स्थान अधिक मिले थे। 1924 ई के *सामान्य निर्वाचना म उदार दल को प्राप्त मता* के अनुपात म 108 स्थान मिलने चाहिए थे जबकि उन्ह केवल 42 स्थान ही प्राप्त हुए थे। अनुदार दल को केवल 47 प्रतिशत मत मिले थे लेकिन 415 स्थान प्राप्त हुए थे जबकि प्राप्त मता के अनुपात मे उन्ह केवल 289 स्थान मिलने चाहिए थे। इस प्रकार अनुदार दल 5 वष तक निरकुश ढग से शासन करता रहा। 1929 ई के निर्वाचनो म श्रम दल को 36 प्रतिशत मत मिले लेकिन उन्ह 224 के स्थान पर 288 स्थान प्राप्त हुए थे।

1935 ई के निर्वाचनो म शासन को 428 स्थान एव विरोधी दल को 184 स्थान मिले थे जबकि विरोधी दल को शासकीय दल को प्राप्त मतो के 80% मत प्राप्त हुए थे। 1945 ई के निर्वाचना म अनुदार दल को श्रम दल की तुलना मे आधे स भी कम स्थान मिले थे जबकि श्रम दल को प्राप्त मतो के 2/3 मत से अधिक मत अनुदार दल को प्राप्त हुए थे। 1959 ई म अनुदार दल को 49 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे परन्तु 58 प्रतिशत स्थान कामन्स सभा मे प्राप्त हुए। अत कॉमन्स सभा जनमत का विकृत रूप ही प्रस्तुत करती है।

अल्पसख्यक दलो की स्थिति इस निर्वाचन पद्धति के अन्तगत और भी दयनीय होती है। या तो ऐसे दल राजनीतिक रगमच से पूरी तरह हट जाते हैं या उनको उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता। ब्रिटेन मे उदार दल की यही स्थिति है। जनिग्स के शब्दो म 'ऐसा दल कुल मतो के एक तिहाई *मतो को प्राप्त कर सकता है* परन्तु यह सम्भव है कि उसे एक भी स्थान प्राप्त न हो क्योकि अनुदार या श्रम दल के किसी न किसी प्रत्याशी को उससे अधिक मत प्राप्त हुए होगे।[21] 1955 ई म उदार

20 *Ibid*, p 123
21 Jennings, Sir Ivor *The British Constitution*, (4th edition), p

दल को 7,22 402 मत प्राप्त हुए थे परन्तु उसे केवल 6 स्थान प्राप्त हुए थे। 1959 ई म उन्हे 16,40,761 मत प्राप्त हुए किन्तु उनके सदस्यो की सख्या 6 ही बनी रही। स्मरणीय है कि इस निर्वाचन म जहाँ एक अनुदारदलीय सदस्य 38,000 मतदाताओ का प्रतिनिधित्व करता था वहाँ उदार दल का एक सदस्य 27 500 मतो का प्रतिनिधित्व करता था।

उपरोक्त आँकडो स यह स्पष्ट है कि कामन्स की प्रचलित निर्वाचन-पद्धति दोषपूर्ण है। अनुमानत कुल मतदाताओ के 70 प्रतिशत मतदाता देश के राजनीतिक घटनाक्रम को अपने मतो स प्रभावित करने म असफल रहते हैं या वे ऐसी नीति या विचारधारा का समर्थन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं जिससे कि वे सहमत नही होते। निर्विरोध निर्वाचनो के कारण अनेक मतदाताओ को मतदान का अवसर ही नही मिलता एव असफल उम्मीदवारो के मतो का कोई मूल्य नहीं होता।

रमजे म्योर का कथन है कि हमारी निर्वाचन पद्धति के अधीन निर्वाचन के जुआ बन जाने के कारण निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। निर्वाचन क्षेत्रो एव राष्ट्रीय स्तर पर इसका दूषित प्रभाव पडता है। जनमत के अनुरूप दल की नीति को परिवर्तित करने के स्थान पर निर्वाचनो म प्राप्त सफलता के आधार पर ऐसी योजनाओ को अधिनायकवादी ढग से क्रियान्वित किया जाता है जिन्हे राष्ट्र नही चाहता। "राष्ट्र का दृष्टिकोण इस प्रकार के निर्वाचनो से अभिव्यक्त नही होता वास्तविक प्रभुत्व राष्ट्र के गम्भीर एव विचारवान व्यक्ति के हाथो म न रहकर अविवेकी, अस्थिर व्यक्तियो के हाथो म रहता है जो भय, प्रदर्शनो, आश्वासनो म आकर अपना मत देते हैं। शक्ति के जुआ म सफलता के हेतु इस जनसमूह को राजनीतिज्ञ जीतने का प्रयास करते हैं। यही नही निर्वाचन क्षेत्रो म प्रत्याशीगण थोडे से मतो को प्राप्त करने के लिए अपने सिद्धान्तो तक की तिलाजलि दे देते हैं। इसके अतिरिक्त, वर्तमान निर्वाचन पद्धति के कारण योग्य एव चरित्रवान व्यक्ति ससद के लिए नही चुने जाते।" हमारी निर्वाचन प्रणाली म रेमजे म्योर के शब्दो म, 'योग्य व्यक्तियो के निर्वाचन को कोई प्रोत्साहन नही है। सक्षेप में कॉमन्स सभा की निर्वाचन-पद्धति अत्यधिक अन्यायपूर्ण, असन्तोषजनक एव खतरनाक है।'[23]

---

22 Walker K W *Government in Britain and New Commonwealth* 1965 p 60

23 'The real mind of the nation is obscured not revealed, by elections conducted in this way, the real supremacy rests not with the sober and thinking elements in the nation but with the margin of unthinking waverers who can be swung this way or that by panics stunts and promises and it is to this margin that politicians are tempted to address themselves in the gamble of power (p 126), in short our method of election is in the highest degree unjust unsatisfactory and dangerous' —Ramsay Muir *op cit*, (1951) p 127

निर्वाचन-पद्धति के सुधार के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं। इगलैण्ड की समानुपातिक प्रतिनिधित्व परिषद ने एकल सक्रमणीय मतदान व्यवस्था का सुझाव दिया था । समानुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका मे राष्ट्र के सभी वर्गों एव हितो के ठीक प्रतिनिधित्व होने का उचित आश्वासन है । इसके अतिरिक्त सचित मतदान प्रणाली (Cumulative Vote System) का भी सुझाव दिया गया है । इस पद्धति के अपनाने से मतदान प्रणाली के बहुत कुछ दोषो से बचा जा सकता है। एक अन्य सुझाव Restrictive Vote System का है । लेकिन इन मतदान-प्रणालियो का एक गम्भीर दोष यह है कि इनसे देश म बहुदलीय पद्धति का विकास होगा एव राजनीतिक अस्थिरता के लिए मार्ग प्रशस्त हो जायेगा ।[24] अत उपचार के रोग से भी गम्भीर परिणाम होगे ।

कॉमन्स सभा की निर्वाचन प्रणाली की मुख्य विशेषता यह है कि इसम शासन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है एव स्थायी शासन का निर्माण होता है। स्थायी शासन की अपनी विशेषताएँ होती है। सुदृढ विदेश-नीति एव दीर्घकालीन आर्थिक विकास की योजनाओ का क्रियान्वयन सम्भव होता है। लॉर्ड पैथिक लॉरेंस का मत था कि "हमारे लोकतन्त्र की पद्धति गणितीय आधार पर प्रतिनिधित्व की उपलब्धि पर आधारित नही है अपितु एक ऐसे ससद का निर्माण करती है जो दृढ एव स्थायी नीति के लिए स्थिर शासन का निर्माण करने म योग देती है ।'

सक्षेप म, ब्रिटिश कॉमन्स सभा विश्व का सबसे प्राचीन निम्न सदन है । वित्तीय मामलो म इसे अन्तिम शक्ति प्राप्त है। यह व्यवहार मे ब्रिटिश ससद है। इसका कार्यपालिका पर नियन्त्रण होता है, यह सिद्धान्तत सत्य है परन्तु व्यवहार म स्थिति भिन्न है। प्राय प्रत्येक देश म कार्यपालिका अधिक शक्तिशाली होती जा रही है । ससदीय प्रणाली वाले देशो के सम्बन्ध म तो यह और भी सत्य है । कॉमन्स सभा पर अब मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण होता है। मन्त्रिमण्डल बहुमत दल म से निर्मित होने के कारण दलीय अनुशासन द्वारा कामन्स सभा पर नियन्त्रण करता है। विधि निर्माण म मन्त्रिमण्डल ही कॉमन्स सभा का नेतृत्व करता है। नीतियो का निर्माण मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है । सदन केवल उनको स्वीकृत करता है।[26] बजट मन्त्रिमण्डल के द्वारा निर्मित किया जाता है, वित्त मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और कॉमन्स सभा अधिकाशतया उसे उसी रूप म स्वीकार कर लेती है। कामन्स सभा अपने समय का 85 प्रतिशत भाग शासकीय कार्यों म व्यय करती है। कॉमन्स सभा की प्रभुसत्ता की धारणा केवल भ्रम है । अत ब्रिटेन म मन्त्रिमण्डल कॉमन्स सभा का स्वामी है ।[27] परन्तु विश्व के सर्वाधिक अनुभवी एव चेतन सदनो म कॉमन्स सभा की

---

24 निर्वाचन प्रणाली के लिए देखिए अध्याय 31 ।
25 Walker K W *op cit* 1965, p 61
26 Neumann, R G *European and Comparative Governments*, p 67
27 Ramsay Muir *op cit*, 1951, p 174

लिए एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं होगा तथा एक राज्य का कम से कम 1 प्रतिनिधि अवश्य होगा। 1964 65 ई के निर्वाचनो म $3\frac{1}{2}$ से $4\frac{1}{2}$ लाख व्यक्तियो के लिए एक प्रतिनिधि चुना गया है। प्रारम्भ म प्रतिनिधि सदन की कुल सदस्य-सख्या 65 थी लेकिन 1910 ई म इसकी सख्या 435 पहुँच गयी एव 1929 ई के एक अधिनियम द्वारा कुल सदस्य सख्या 435 निश्चित कर दी गयी है।[30] प्रत्यक राज्य से उसकी जनसख्या के आधार पर प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं। अत बडे राज्यो को इस सदन म अधिक सदस्यता प्राप्त है। नेवेदा, डेलावेयर, व्योमिंग एव परमाउण्ट नामक राज्यो के एक-एक सदस्य हैं जबकि यूयाक के 43 सदस्य प्रतिनिधि सदन म है। सदन का कायकाल 2 वप है। इसे घटाया या बढाया नही जा सकता।

प्रतिनिधि सदन की सदस्यता के लिए निर्धारित योग्यताओ के अधीन प्रत्याशी को कम से कम 7 वप से सयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक होना चाहिए, उसकी आयु 25 वप से कम नही होनी चाहिए एव उसे उसी राज्य का निवासी होना चाहिए जहा से वह निर्वाचन लड रहा है।[31] अब यह प्रथा भी विकसित हो गयी है कि उसे राज्य के साथ-साथ उस निर्वाचन क्षेत्र का भी निवासी होना चाहिए जहा से वह निर्वाचन लड रहा है। इसे स्थानीय नियम (Locality rule) कहते है। इस नियम का यह दुष्परिणाम भी है कि दल के योग्य व्यक्ति उस समय तक किसी निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचन म खडे नही हो सकते जब तक कि व निवास सम्बधी योग्यता को पूण न करते हो। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सोल ब्लूम (Sol Bloom) की मृत्यु के कारण यूयाक के रिक्त स्थान पर निर्वाचन लडने के लिए यूयाक जिले मे एक मकान को किराये पर लेकर उसे अपना आवास-स्थल घोषित किया था। इस नियम के कारण क्षेत्रीय सकीर्णता की भावना का भी विकास हुआ है।

इसके अतिरिक्त सयुक्त राज्य के किसी पद पर काय करने वाला कोई व्यक्ति पद पर रहते हुए काग्रेस की सदस्यता के लिए प्रत्याशी नही हो सकता। इस व्यवस्था का उद्देश्य शासन के कायपालिका एव व्यवस्थापिका विभागो म पृथक्करण रखना है। इसके अतिरिक्त काग्रेस का कोई भी सदस्य अपने कायकाल के मध्य नागरिक सेवा मे किसी पद पर नियुक्त नही किया जा सकता। प्रतिनिधि सदन को प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है। एकल सदस्यी निर्वाचन क्षेत्र होते हैं।

प्रतिनिधि सदन के सदस्यो को निर्वाचित करने के लिए सामान्यत उन सभी

---

30 1929 ई म निर्मित विधि को 1941 ई म पुन सशोधित किया गया। 1959 ई म प्रतिनिधि सदन की सदस्य सख्या अस्थायी रूप म हवाई द्वीप एव अलास्का के अमेरिकी सघ म शामिल होने पर अस्थायी रूप से 437 निर्धारित कर दी थी। लेकिन 1961 ई म जनगणना के परिणामो के आधारो पर स्थायी रूप स इसकी सख्या 435 निश्चित कर दी गयी है।—Ogg and Ray *Essentials of American Government*, 1967 (Ind edn) p 187

31 Article 1, sec 2, cl 2 of U S Constitution

व्यक्तियो को मतदान का अधिकार प्राप्त है जो राज्य व्यवस्थापिका के निम्न सदन के लिए मतदान कर सकते हैं। अनेक राज्यो म मतदान व्यवस्थाएँ भिन्न है।[32] सामान्यत हर 21 वर्षीय अमेरिकी नागरिक को मतदान का अधिकार है।[33]

प्रतिनिधि सदन की शक्तिया

प्रतिनिधि सदन को प्राप्त विधायी शक्तिया के अधीन सभी सघीय विधेयको के लिए प्रतिनिधि सदन द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। सविधान मे उन समस्त विषयो का उल्लेख है जिन पर अमेरिकी काग्रेस को विधि निर्माण का अधिकार है। निहित शक्तियो के सिद्धान्त (The Theory of Implied Powers) के अधीन विधायी शक्ति म वृद्धि हुई है। वित्त विधेयक सवप्रथम प्रतिनिधि सदन मे ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं लेकिन सीनेट को उनमे आमूलचूल परिवतन करने का अधिकार प्राप्त है। गर वित्तीय विधेयक सवप्रथम किसी भी सदन मे प्रस्तुत किये जा सकत हैं परन्तु दूसरे सदन द्वारा भी उनका पारित किया जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि वे प्रथम बार सीनेट मे प्रस्तुत किये जाते है तो सीनट द्वारा पारित होने पर प्रतिनिधि सदन द्वारा उनका पारित होना आवश्यक है।

प्रतिनिधि सदन को राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति एव अन्य सघीय अधिकारियो पर महाभियोग लगाने का अधिकार है लेकिन उसका परीक्षण सीनेट करती है। सवधानिक सशोधन को भी प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित किया जाना आवश्यक है। यदि राष्ट्रपति के निर्वाचन मे किसी प्रत्याशी को पूण बहुमत प्राप्त नही होता तो प्रतिनिधि सदन को सबसे अधिक मत पाने वाले तीन प्रत्याशिया मे से किसी एक को राष्ट्रपति घोषित करने का अधिकार प्राप्त है।

सीनेट एव प्रतिनिधि सदन की शक्तिया समान है। प्रतिनिधि सदन का सीनेट के निणय पर निषेधाधिकार लगान का अधिकार नही है। वित्तीय, महाभियोग, नियुक्ति एव सन्धियो के सम्बन्ध म सीनेट को प्राप्त विशेष शक्तियाँ उसे प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली बना देती हैं। इसके अतिरिक्त सीनट को जाँच समितिया के माध्यम स जाच करन की व्यापक एव भयकर शक्ति प्राप्त ह। अत प्रतिनिधि सदन की स्थिति सीनेट की तुलना मे घटिया एव निम्न है।

कॉंग्रेस के दाना सदना को अपने सदस्या को निष्कासित करन का अधिकार है परन्तु प्राय इस अधिकार का प्रयोग नही किया जाता है। उनक द्वारा अन्य नागरिका को यदि इन व्यक्तिया के काय कॉंग्रेस के काय म बाधा उत्पन्न करत हैं, तो

32 अलबामा राज्य म मताधिकार पान क लिए साम्यवाद विरोधी शपथ लेना अनिवाय होता है। लुइसियाना म अग्रजी एव मातभाषा पढ़ सकन वाले व्यक्ति को ही मताधिकार प्राप्त है। 19 राज्यो म मताधिकार क लिए सविधान पढ़न की योग्यता अपक्षित है।

33 जाजिया (Georgia) राज्य म 18 वष क आयु क व्यक्तिया का मताधिकार प्राप्त है।

दण्डित किया जा सकता है। शासन के विभिन्न विभागों को उनके कार्यों के सम्बन्ध मे काग्रेस के दोनो सदन प्रस्ताव पारित करके निर्देश दे सकते है एव विभागो स उनके कार्यों के सम्बन्ध मे प्रतिवेदन मांगे जा सकते हैं तथा स्वतन्त्र प्रशासकीय अभिकरणो की स्थापना भी की जाती है।

ब्रिटिश कॉमन्स सभा एव अमेरिकी प्रतिनिधि सदन की तुलना

कॉमन्स सभा एव प्रतिनिधि सदन दोनो ही दो बडे लोकतन्त्रीय देशो के निम्न सदन हैं। दोनो म सगठन एव शक्तियो की दृष्टि से महान् अन्तर है। कुछ समानताएँ भी है। अमेरिकी प्रतिनिधि सदन ब्रिटिश कॉमन्स सभा की ही सन्तान है एव मुनरो के शब्दो म अपन वशजा की छाप प्रतिनिधि सदन पर स्पष्ट है।[34] कॉमन्स सभा प्रतिनिधि सदन की तुलना म बडा सदन है। कॉमन्स सभा समस्त व्यावहारिक कार्यो के लिए ब्रिटिश ससद है जो विधिक दृष्टि से सप्रभु होती है एव उसे विधायी मामलो मे अन्तिम शक्ति प्राप्त है। लेकिन प्रतिनिधि सदन की यह स्थिति नही है। वित्त विधेयक दोनो ही सदनो म सवप्रथम प्रस्तुत किये जाते है परन्तु कॉमन्स सभा को उनके सम्बन्ध म अन्तिम शक्ति प्राप्त है। लेकिन प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित वित्त-विधेयक को सीनेट बदल सकती है। गैर-वित्तीय विधेयको के सम्बन्ध मे लाडसभा को अधिक से अधिक 1 वष की विलम्वकारी शक्ति प्राप्त है। लेकिन प्रतिनिधि सदन एव सीनेट की शक्ति इस सम्बन्ध म समान है। कॉमन्स सभा को अपना कायकाल वढाने एव घटाने का अधिकार है। लॉडसभा की शक्तियो एव स्वरूप म उसे परिवतन की शक्ति प्राप्त है। लेकिन अमेरिकी काग्रेस के उच्च सदन सीनेट म राज्यो को प्राप्त समान प्रतिनिधित्व से वचित नही किया जा सकता। कॉमन्स सभा की भाति प्रतिनिधि सदन का कायकाल घटाया या वढाया नही जा सकता है। ब्रिटेन म ससदीय व्यवस्था के कारण कायपालिका कॉम स सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। शासन को कॉमन्स सभा को विघटित करने की मांग का अधिकार होता है। लेकिन अमेरिका मे शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण प्रतिनिधि सदन के प्रति कायपालिका उत्तरदायी नही होती है और न कायपालिका द्वारा व्यवस्थापिका को विघटित ही किया जा सकता है। मुनरो के अनुसार कॉमन्स सभा मे प्रतिनिधि सदन की तुलना मे अधिक व्यवस्था एव शान्ति का वातावरण होता है। प्रतिनिधि सदन म काय की सभी को शीघ्रता दिखायी देती है। उपस्थिति भी अपेक्षाकृत कम होती है। केवल कुछ सदस्य ही काय रत रहते हैं। अन्त म, यह कहा जा सकता है कि एक सदन विशुद्ध रूप से अग्रेज है तो दूसरा अमेरिकी और प्रत्यक की अपनी-अपनी आदतें एव रुचिया हैं।[35]

प्रतिनिधि सदन सीनेट की तुलना मे कमजोर सदन है। इसके अग्रलिखित कारण है

---

34 Munro *Government of Europe*, p 171
35 Munro *op cit*, p 172

(1) सीनेट की भाँति प्रतिनिधि सदन को कार्यपालिका अर्थात् नियुक्तियों एवं सन्धियों सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं।

(2) उसका कार्यकाल सीनेट की अपेक्षा बहुत कम है। प्रथम वर्ष में तो अधिकांश सदस्य अपने दायित्वों के प्रति सजग ही नहीं हो पाते और दूसरे वर्ष के आरम्भ से ही निर्वाचन की भाग दौड़ में लग जाते हैं।

(3) प्रतिनिधि सदन की कार्य पद्धति दुरूह है। सदस्यों के पास विचार विमर्श के लिए पर्याप्त समय नहीं होता। अतः सदन के अधिकांश निर्णय अविवेकपूर्ण होते हैं।

(4) प्रतिनिधि सदन सीनेट की तुलना में वृहद् सदन है। राजनीतिक दलों की इतनी अधिक चालें होती हैं कि सदस्यगण अपने दायित्वों को भलीभाँति सम्पादित नहीं कर पाते। सीनेट में दलीय अनुशासन अपेक्षाकृत कम होता है।

(5) लास्की के अनुसार सीनेट को जितना सम्मान प्राप्त है उतना प्रतिनिधि सभा को प्राप्त नहीं है।[36] अन्य देशों में निम्न सदन का सदस्य होना गौरवपूर्ण माना जाता है जबकि अमेरिका में सीनेट की सदस्यता को राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल की सदस्यता से भी अधिक महत्व दिया जाता है। अमेरिका में अनुभवी एवं योग्य राजनीतिज्ञों की आकांक्षा हमेशा सीनेट के सदस्य बनने की होती है। सीनेटर अधिकांशतया प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की अपेक्षा अधिक योग्य भी होते हैं।

(6) प्रतिनिधि सदन सामूहिक रूप से जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता। पेटरसन[37] के शब्दों में यद्यपि "यह सदन अमेरिकन जीवन की जड़ाऊ तस्वीर है एवं इसके सदस्य विभिन्न राज्यों की जनता होते हैं परन्तु वास्तविक बात यह है कि वे स्थानीय बातों का प्रतिनिधित्व करते हैं, न कि राष्ट्रीय हित का। उनका निर्वाचन बहुत कम समय के लिए स्थानीयता के नियमानुसार होता है जिससे कि वे दुबारा भी प्रतिनिधि चुने जा सकें।'

(7) अमेरिकी प्रतिनिधि सदन सबसे खर्चीला होता है। यही इसकी दुर्बलता के कारण हैं। इनके कारण अमेरिकी प्रतिनिधि सदन विश्व के सबसे कमजोर निम्न सदनों में गिना जाता है। लास्की[38] के अनुसार प्रतिनिधि सदन उन कृत्यों को सम्पादित करने में नितान्त असफल रहा है जिनकी उससे अपेक्षा थी। वह एक महान राष्ट्र के लिए अनुपयुक्त सदन है।'

रूस की सुप्रीम सोवियत[39] का निम्न सदन—संघ सोवियत

रूस की संघीय व्यवस्थापिका—सुप्रीम सोवियत—द्विसदनात्मक है। संघ सोवियत (Soviet of the Union) निम्न सदन तथा राष्ट्रजातीय सोवियत (Soviet of

36 Laski *The American Democracy*, p 89
37 Patterson *op cit* p 371
38 Laski *op cit*, p 79
39 राज्य सत्ता का सर्वोच्च अंग—अनुच्छेद 30

Nationalities) उच्च सदन है।[40] सघ सोवियत के सदस्यो को सोवियत नागरिको द्वारा निर्वाचित किया जाता है। प्रत्यक सदस्य तीन लाख मतदाताओ का प्रतिनिधित्व करता है।[41] सघ सोवियत सम्पूण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात यह जन प्रतिनिधि सदन है। अपनी रचना म यह प्रजातन्त्रीय देशो के निम्न सदनो से मिलता है। यह किसी राष्ट्र-जाति (Nationality) या हित का पृथक रूप से प्रतिनिधित्व नही करता। सघीय शासन म द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका एक अनिवाय आवश्यकता है, लेकिन सोवियत रूस म द्विसदनवाद के लिए इसे उचित कारण स्वीकार नही किया जा सकता। सोवियत रूस बहुराष्ट्रजातीय देश है तथा स्टालिन के अनुसार ऐसे देश की अनक राष्ट्रजातियो के प्रतिनिधियो के अभाव म मास्को म सर्वोच्च शासन का चलना असम्भव है। अत द्वितीय सदन—राष्ट्रजातीय सोवियत (Soviet of Nationalities)—की स्थापना की गयी है।

दोनो सदनो का कायकाल चार वष है[42] और दोनो ही सदन समान रीति से सावभौम मताधिकार पर गुप्त मतदान द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होते है तथा एक साथ विघटित होते है। प्रत्येक 18 वर्षीय वयस्क रूसी नागरिक—स्त्री तथा पुरुष—को मतदान का अधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च सोवियत की सदस्यता के लिए प्रत्येक 23 वर्षीय सोवियत नागरिक निर्वाचन म भाग ले सकता है। शासकीय अधिकारियो एव सैनिको को भी सर्वोच्च सोवियत के सदस्य होने का अधिकार है। भारत, सयुक्त राज्य अमरिका तथा ग्रेट ब्रिटन मे ऐसी सुविधा नही है।

दोनो सदनो को विधि निर्माण सम्बन्धी समान शक्तियाँ प्राप्त है[43] तथा उनके सामान्य बहुमत से विधेयक का पारित होना आवश्यक होता है।[44] किसी विधेयक के प्रश्न पर दोनो सदनो म मतभेद होने की अवस्था मे उसे दोनो सदनो की मध्यस्थता समिति (Conciliation Committee) के पास निणय के लिए भेज दिया जाता है। यदि मध्यस्थता समिति विवाद को हल करने मे असफल रहती है या समिति द्वारा प्रस्तावित हल से कोई एक सदन सहमत नही होता तो दोनो सदनो म पुन उस पर विचार होता है। यदि दोनो सदन फिर भी एकमत नही होते तो प्रेसीडियम सर्वोच्च सोवियत को भग कर देती है और नवीन निर्वाचनो का आदेश दिया जाता है।[45] दोनो सदनो के सम्मेलन एक साथ आहूत होते है तथा दोनो के सत्रावसान भी एक साथ ही होते है।[46]

सघ सोवियत की शक्तिया

सघ सोवियत रूस के शासन का सबसे शक्तिशाली अग है। इसे व्यापक

40 Article 32
41 Article 34
42 Article 36
43 Article 37
44 Article 39
45 Article 47
46 Article 42

विधायी, प्रशासनिक, न्यायपालिक, आर्थिक, सामाजिक एवं निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसकी स्थिति बहुत कुछ ब्रिटिश संसद जैसी है।

संविधान के अनुसार संघ सोवियत को सुरक्षा, वैदेशिक मामले, विदेशी व्यापार, कर तथा राजस्व, आर्थिक योजनाएँ, नवीन गणतन्त्रीय संघों या प्रदेशों को संघ में शामिल करना, यातायात के साधन, मुद्रा, बीमा, ऋण, अधिकोष, कृषक एवं औद्योगिक संगठन, नागरिक एवं फौजदारी कानून, सार्वजनिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य आदि केन्द्रीय विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है।[47] इसके अतिरिक्त संविधान में दोनों सदनों के 2/3 बहुमत से संशोधन सम्भव है।[48] युद्ध एवं शान्ति की घोषणा तथा विदेशों से सन्धि करना संघ सोवियत का ही काम है। संघ के मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति[49] प्रेसीडियम,[50] सर्वोच्च न्यायालय[51] तथा प्रॉक्यूरेटर जनरल[52] का निर्वाचन भी संघ सोवियत ही करती है। मन्त्रिमण्डल संघ सोवियत के प्रति ही उत्तरदायी होता है[53] किन्तु उसके सत्रावसान-काल में प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होता है। सोवियत संघ में सम्पूर्ण वित्त पर संघ सोवियत का ही नियन्त्रण होता है। कोई नवीन कर उसकी स्वीकृति के बिना नहीं लगाया जा सकता। वार्षिक आय-व्यय विवरण पत्र—बजट (Budget)—इसके द्वारा ही पारित किया जाता है।[54] संघ सोवियत को किसी भी न्यायालय द्वारा दण्डित अपराधी को क्षमा प्रदान करने का अधिकार प्राप्त है।

समीक्षा—संघ सोवियत के दोनों सदनों के सत्र वर्ष में दो बार अति अल्प-काल अर्थात् केवल एक सप्ताह या 10 दिन के लिए ही होते हैं।[55] इस अल्पकाल में संघ सोवियत के लिए अपनी शक्तियों का भली-भाँति प्रयोग करना सम्भव नहीं है। अतः संघ सोवियत उन विधेयकों का केवल अनुमोदन मात्र करती है जिन्हें साम्यवादी दल पहले ही स्वीकृत कर चुकता है।[56] विरोधी दल के अभाव में सोवियत शासन की कोई प्रभावशाली आलोचना भी सम्भव नहीं है। इसके विपरीत, साम्यवादी लेखकों का यह दावा है कि संघ सोवियत राज्य शक्ति के सर्वोच्च अंग के रूप में देश के सभी व्यक्तियों के हितों को समुचित रूप में अभिव्यक्त करती है और सोवियत जनता के मध्य भ्रातृत्व,

---

47 Article 14
48 Article 146
49 Article 56
50 Article 48
51 Article 105
52 Article 114
53 Article 65
54 Article 14 (k)
55 Article 46
56 Refer to Carter and Others *Government of Soviet Union*, 1954, p 105

मित्रता एव सहयोग म योग देती है। यह जनमत का मापक-यन्त्र है। सघ सोवियत का सदस्य 'जनता का सेवक तथा उसका सन्देशवाहक होता है।' जनता उसका प्रत्याह्वान कर सकती है। व पेशेवर राजनीतिज्ञ नहीं होते अपितु समाजवादी उत्पादन आदि स सम्बन्धित होते हैं। यह सदन साम्यवादी गुट एव निर्दलीय व्यक्तियो का सरक्षक है तथा समाजवाद के अनुभवी कमठ योद्धा की स्थिति म है।

लेकिन सघ सोवियत की वास्तविक स्थिति पर कुछ विचारको ने इससे भिन्न मत व्यक्त किये हैं। ऑग एव जिक के अनुसार सोवियत समाचार-पत्रो म प्रकाशित विचारो के अनुसार विचार विमर्श के सदन के रूप म सघ सोवियत सफल हुई है लेकिन पश्चिम के अनेक विचारको के लिए इस मूल्याकन को स्वीकार करना सम्भव नहीं है। वष म दो बार केवल 10 दिन के लिए होने वाले सत्र इस बात का प्रमाण हैं कि सघ सोवियत विधेयको का प्रस्तावित एव विचार करने, वादविवाद, सशोधन एव मतदान पर उतना समय व्यय नहीं करती जितना कि अन्य विधानमण्डलो म होता है। सोवियत सघ म विधेयक सामान्यत मन्त्रियो, साम्यवादी दल या अन्य किसी निकाय द्वारा प्रमाणित किये जाते हैं। पश्चिमी देशो की दृष्टि म सघ सोवियत को 'विचार-विमर्श का सदन' नहीं कहा जा सकता। यह पश्चिमी व्यवस्थापिका के सदनो की भाँति भी नहीं है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सावजनिक मामलो म इसका आवश्यक प्रभाव नहीं होता है।[57] जूलियन टाउस्टर के अनुसार सघ सोवियत यद्यपि सिद्धान्त म सर्वोच्च विधि निर्माण का अग है, परन्तु आकार म वृहद् निकाय होने एव वष म उसके अल्पकालीन सत्रो के होने के कारण अभी तक यह प्रधानत अनुमोदन एव समर्थन करने वाले सदन के रूप म ही काय करता रहा है। इसका मुख्य काय समय या अवसर के अनुकूल शासकीय नीति को प्रतिनिधि सदन के रूप म स्वीकृत करना रहा है।[58]

कनाडा की कॉमन्स सभा

कनाडा की ससद द्विसदनात्मक है। प्रथम सदन को कॉमन्स सभा (House of Commons) तथा द्वितीय सदन को सीनेट (Senate) कहते हैं। कामन्स सभा के सदस्यो का वयस्क मताधिकार पर 5 वष के लिए जनता द्वारा निर्वाचन होता है। कॉमन्स सभा को प्रधानमन्त्री के आग्रह पर कनाडा के गवनर-जनरल द्वारा अवधि के पूव भी

---

57 In the western sense, Supreme Council of U S S R may not be a truly deliberative body—certainly it does not conform to the pattern of western legislative bodies—but it should not be assumed that it does not exercise atleast a reasonable amount of influence in the public affairs of the Soviet Union "

—Ogg and Zink *Modern Foreign Governments* 1956, p 860

58 ' Theoretically the supreme soviet is the sole legislating organ has so far operated primarily as a ratifying and propogating body Its chief purpose appears to be periodically, or occasion demands, to lend the voice of approval of a representative assembly to governmental policy "

—Julian Towstor *Political Power in the U S S R*, pp 262 263

विघटित किया जा सकता है। इसकी सदस्य-सख्या स्थिर नही है। प्रति 10 वप वाद जनसख्या के आधार पर उसकी सदस्य सख्या मे सशोधन या परिवतन होता रहता है। लेकिन ब्रिटिश नॉथ अमेरिका एक्ट (The British North America Act) के द्वारा क्यूबेक (Quebec) प्रान्त के प्रतिनिधियो की सख्या 65 निश्चित है जो अपरिवतनीय है। शेष प्रान्ता के प्रतिनिधिया की सख्या के निर्धारण के लिए सविधान मे सिद्धान्त का उल्लेख है। इस सिद्धान्त के अनुसार अन्य प्रान्तो को उनकी जनसख्या के अनुपात म उतने ही स्थान प्राप्त होगे जितने कि क्यूबक को (65 स्थान) उसकी जनसख्या के अनुपात म प्राप्त होते है।

1952 ई के नवीन प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन कॉमन्स सभा की सदस्य सख्या 265 है। विभिन्न प्रान्ता की सदस्य सख्या निम्नवत है

ओन्टोरियो (Onterio) के 85, क्यूबेक (Quebec) के 65, नोवोस्कोशिया (Novo Scotia) के 12, प्रिन्स एडवड द्वीप (Prince Edward Islands) के 4, न्यू बुशविक (New Bruinshwick) के 12, मनीतोबा (Manitoba) के 14, ब्रिटिश कोलम्बिया (British Columbia) के 22, सस्केचवान (Saskatchewan) के 17, अलबर्टा (Alberta) के 17, न्यूफाउण्डलण्ड (New Foundland) के 7 तथा उत्तर पश्चिमी के यूकन (Yukan) क्षेत्र और मेकेंजी जिले (Mackenzie District) के 1-1 सदस्य होते हैं। 1952 ई से पूव कॉमन्स सभा की सदस्यता 181 थी।

दोना सदनो की शक्तिया समान है। वित्त विधेयक कामन्स सभा म ही सवप्रथम प्रस्तुत किये जाते ह। शेप सभी विधेयक सवप्रथम किसी भी सदन म प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्रत्येक विधेयक का दोनो सदना से पारित होना आवश्यक है। ग्रेट ब्रिटेन की भांति वित्त-विधेयक केवल शासन द्वारा ही प्रस्तुत किय जाते है, किसी व्यक्तिगत सदस्य द्वारा नही। मन्त्रिमण्डल के अधिकाश सदस्य कॉमन्स सभा के सदस्य होते हैं। प्रधान मन्त्री कॉमन्स सभा का ही सदस्य होता है। मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध कामन्स सभा म अविश्वास प्रस्ताव के पारित होने का अथ मन्त्रिमण्डल का पतन होता है। अधिकाश महत्वपूण विधेयक निम्न सदन (कॉमन्स सभा) म ही प्रस्तुत किये जाते हैं। अत कॉमन्स सभा की सदस्यता को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इगलण्ड की भांति कनाडा मे भी विधेयको को प्रथम वाचन, द्वितीय वाचन, समिति स्तर, प्रतिवेदन-स्तर एव तृतीय वाचन की अवस्थाओ को पार करना पडता है। सक्षेप म कनाडा की कॉमन्स सभा ब्रिटिश कॉमन्स सभा की भांति जन प्रतिनिधि एव शक्तिशाली सदन है।[59] यह जनमत की अभिव्यक्ति का प्रमुख अभिकरण है। इसको व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है। विधि निर्माण वित्त, कायपालक एव अन्य क्षेत्रा म इसकी भूमिका महत्वपूण होती है। यह देश क राजनीतिक जीवन का सन्तुलन चक्र है। इसका

59 The House of Commons 'is the real driving force just as the House of Commons is in England and for the same reasons
—Bryce *Modern Democracies*, Vol I, 1929, p 514

वित्त पर नियन्त्रण है। कायपालिका के निर्माण एव विघटन की शक्ति इसम निहित है। अत यह दलीय सघप का केन्द्र है।[60]

आस्ट्रेलिया का प्रतिनिधि सदन

आस्ट्रेलिया की द्विसदनीय सघीय व्यवस्थापिका के निम्न सदन को प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) कहते हैं। इसकी सदस्य सख्या प्रारम्भ म 75 थी लेकिन अब 122 है। सविधान क अनुसार प्रतिनिधि सदन की कुल सदस्य सख्या सीनेट की सदस्य सख्या की दुगुनी होनी चाहिए और किसी भी राज्य के 5 से कम सदस्य प्रतिनिधि सदन म नही होने चाहिए। सदन का कायकाल 3 वष है। सीनेट के लिए मतदान करने की जो योग्यताएँ हैं वही प्रतिनिधि सदन के लिए भी है। 1924 ई के मतदान अधिनियम (The Electoral Act of 1924) के अधीन आस्ट्रेलिया म अनिवाय मतदान का सूत्रपात हुआ है। मत का प्रयोग न करने वाले मतदाता को 10 शिलिंग से 2 पौण्ड तक जुर्माना देना पडता है। फलस्वरूप आस्ट्रेलिया म 70 से 90 प्रतिशत तक मतदान होता है।

दोनो सदनो की शक्तियाँ समान ह, केवल धन विधेयक सवप्रथम प्रतिनिधि सदन म ही प्रस्तुत किये जा सकते है। सीनेट को वित्त विधेयको को पूणरूपेण अस्वीकार करने का तो अधिकार है लेकिन उसमे वह सशोधन नही कर सकती। मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से प्रतिनिधि सदन के प्रति उत्तरदायी होता है और उसी के प्रसाद पय त पदारूढ रहता है। सदस्यो को शासन से प्रश्न एव पूरक पूछने अथवा सूचनाएँ प्राप्त करन का अधिकार है। प्रतिनिधि सदन आलाचना करने वाला सदन है और वाह्य जनमत की अभिव्यक्ति का साधन है। सदन मे काम रोको एव नि दा प्रस्ताव तथा अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से जन-प्रतिनिधियो द्वारा शासत का ध्यान जनता की कठिनाइयो की ओर आकर्षित किया जा सकता है। नि दा या अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता है। ब्राइस के अनुसार आस्ट्रेलिया मे "समद राजनीतिक कार्यों का केन्द्र है। कायपालिका का पूरा स्वामी है। किसी निषेधाधिकार का उस पर प्रतिबन्ध नही है। ससद मे लोकप्रिय सदन (प्रतिनिधि सदन) की शक्ति सर्वोच्च है क्योंकि वह कायपालिका को बनाती एव बिगाडती है तथा वित्त के सम्बन्ध मे उस मुख्य आवाज प्राप्त है।"[61]

स्विट्जरलैण्ड का प्रथम सदन—राष्ट्रीय परिषद

स्विस सघीय द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के निम्न सदन को राष्ट्रीय परिषद (National Council) कहते हैं। यह जनता का सदन है। इसकी सदस्य-सख्या मे समय-समय पर जनसख्या के अनुपात म परिवतन होता रहता है। सविधान द्वारा

60 "The House controls finance and since it has the making and un making of the Executive Ministries, is the centre of party strife" —Bryce *Ibid*, p 514

61 Bryce *Modern Democracies*, Vol II, 1929, p 199

इसकी सदस्य सख्या निश्चित नही की गयी है । प्रति 10 वष पश्चात मतगणना के आधार पर प्रत्येक केण्टन की जनसख्या के अनुसार उसका प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्या की सख्या निर्धारित की जाती है । लेकिन सविधान म यह सुस्पष्ट है कि प्रत्यक पूण या अर्द्ध केण्टन को राष्ट्रीय सभा म कम से कम एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार अवश्य प्राप्त होगा । इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक केण्टन की जनता के हितो का सरक्षण करना है । वन (Berne) नामक केण्टन के 1940 ई की जनगणना क अनुसार 33 प्रतिनिधि हैं ।[62] चार केण्टन ऐसे हैं जिनका केवल एक एक प्रतिनिधि है । प्रत्येक वीस वर्षीय वयस्क स्विस नागरिक[63] को राष्ट्रीय परिषद के सदस्यो के निर्वाचन का अधिकार है । सदस्य प्रत्यक्ष मतदान द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली[64] के आधार पर निर्वाचित होते है । स्विटजरलण्ड मे निर्वाचन क्षेत्रो का निर्धारण काम पालिका न करके व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है । 1920 ई के पूव राष्ट्रीय परिषद का कार्यकाल 3 वष था लेकिन उसके पश्चात 4 वष हो गया है । राष्ट्रीय परिषद की सदस्यता व्यवहार म प्राय स्थायी है क्योकि अधिकाश सदस्य पुन निर्वाचित होते रहते है ।

स्विस सघीय व्यवस्थापिका—फेडरल असेम्बली—के दोना सदनो की शक्तिया समान है । कोई विधेयक किसी भी सदन म सवप्रथम प्रस्तुत किया जा सकता है । सघीय परिषद (Federal Council) अर्थात सघीय कायपालिका के सदस्यो को दोनो सदनो मे बठने का अधिकार है और वे दोनो ही सदना के प्रति उत्तरदायी होते हैं, लेकिन उनका कायकाल निश्चित है ।

विश्व की कोई अय व्यवस्थापिका स्विस सघीय सभा की भाति अनेक एव विभिन्न प्रकार के दायित्वो का सम्पादन नही करती । फेडरल असेम्बली विधि निर्माण के क्षेत्र म सप्रभु है । इसके अतिरिक्त वार्षिक आय व्यय लेख की स्वीकृति, सविधान मे सशोधन, नवीन सघीय पदो का निमाण, राजस्व एकत्र करना, मुख्य सेनापति की नियुक्ति तथा सघीय परिषद एव सघीय यायालय के यायाधीशो को निर्वाचित करने की शक्ति फेडरल असेम्बली को प्राप्त है । केण्टनो द्वारा परस्पर तथा विदेशो के साथ की जाने वाली सन्धियो को सघीय असेम्बली ही अनुमोदित करती है । देश की सुरक्षा स्वतन्त्रता एव तटस्थता की रक्षा एव अनुरक्षण क लिए उसे उचित काय वाही करने का अधिकार है । युद्ध की घोषणा एव शान्ति स्थापित करने, केण्टनो की क्षेत्रीय सुरक्षा एव स्वतन्त्रता की रक्षा, राष्ट्रीय सेना का नियन्त्रण एव निरीक्षण तथा सामूहिक एव व्यक्तिगत क्षमा प्रदान करन सम्बन्धी व्यापक अधिकार उसे प्राप्त हैं । प्रशासनिक कार्यों के निरीक्षण एव प्रशासकीय मामलो म सघीय सभा को अन्तिम शक्ति प्राप्त है । राष्ट्रीय परिषद सघीय असेम्बली का निम्न सदन है । फलस्वरूप इन

---

62 1919 ई म सवप्रथम समानुपातिक प्रतिनिधि प्रणाली का सूत्रपात किया गया है ।
63 स्विस स्त्रिया को मताधिकार 8 फरवरी, 1971 ई को प्रदान किया गया है ।
64 Hans Huber *How Switzerland is Governed* 1946 p 45

शक्तिया के उपभोग म उसे उच्च सदन के समान ही शक्ति प्राप्त है। उच्च सदन की सदस्य-सख्या राष्ट्रीय परिषद से कम होती है अत राष्ट्रीय परिषद की इन शक्तियो के प्रयोग मे भूमिका निर्णायक होती है। सिद्धात मे दोना सदनो की शक्तिया समान होने पर भी व्यवहार मे राष्ट्रीय परिषद अधिक शक्तिशाली है। इसका प्रमुख कारण यह धारणा एव विश्वास है कि राष्ट्रीय परिषद जनता का प्रत्यक्ष रीति से प्रतिनिधित्व करने वाला सदन है। स्मरणीय है कि राष्ट्रीय परिषद द्वारा कुछ कतव्यो को द्वितीय सदन—राज्य-परिषद के सहयोग से सामूहिक रूप से सम्पादित किया जाता है, यथा—सघीय परिषद के सदस्या, फेडरल ट्रिब्यूनल के न्यायाधीशो, स्विस परिसघ के अध्यक्ष, सेनापति एव चान्सलर का निर्वाचन दोना सदना के सयुक्त अधिवेशन मे ही होता है। सदन मे सम्मान, सभ्यता एव अनुशासन पाया जाता है।[65] आस्ट्रेलिया की भाति दोनो सदना की शक्तिया समान हैं। व्यवहार मे द्वितीय सदन जो केण्टना का प्रतिनिधित्व करता है, दोना सदनो म कमजोर सदन है। क्षमतावान् एव महत्वाकाक्षी व्यक्ति राष्ट्रीय परिषद के ही सदस्य होना पसन्द करते हैं। दोना सदना मे किसी प्रश्न पर मतभेदो को हल करने सम्बन्धी कोई व्यवस्था नही है। लेकिन न तो अधिक मतभेद होते हैं और न वे गम्भीर ही होते हैं। इसका कारण यह है कि राज्य परिषद के सदस्य द्वितीय सदन से कम अनुदारवादी नही होते। विधान सम्बन्धी अतिम निणय की शक्ति जनता के हाथो मे होती है।[66] विधानमण्डल के सदस्या मे स्विस चरित्र की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। वे गम्भीर एव चतुर होते हैं किन्तु भावुक नही।[67] सदना म उपस्थिति नियमित होती है और सदस्यगण समय का पूरा ध्यान रखते हैं।[68] सदनो के निर्वाचना मे राजनीतिक दल फ्रास व इगलैण्ड की तुलना मे बहुत कम भाग लेते हैं। दोना सदना म दलो का सगठन कठोर नही है।[69] सदनो म समितियो की स्थिति अमेरिकी काग्रेस की भाति शक्ति एव महत्व की नही है। व्यक्तिगत विधि निर्माण अपेक्षाकृत कम होता है।[70] स्विटजरलैण्ड म विरोधी दल भी उग्र नही है, न सत्तारूढ दल ही पदा पर अपना एकाधिकार रखना चाहता है। विरोधी दलो द्वारा प्रशासन के कार्यों म बाधा नही डाली जाती और इस प्रकार अन्य ससदीय देशो की भाति प्रगति रथ के चक्रा को अवरुद्ध नही किया जाता। सदस्यगण दलीय दृष्टि की अपेक्षा राष्ट्रीय भावना से विधेयको पर विचार करते हैं।[71] स्विस विधानमण्डला मे उस प्रतिभा का अत्यन्त अभाव है जो 1920 ई तक उनम परिलक्षित होती थी। इसके अतिरिक्त दोना सदना की अन्य कोई आलोचना सम्भव नही है। वे क्षमतापूवक अपना काय करते हैं।

---

65 Hans Huber *op cit*, p 47
66 Bryce *Modern Democracies*, Vol I, 1929, p 386
67 *Ibid*, p 387
68 *Ibid*, p 389
69 *Ibid*, p 390
70 *Ibid*, p 391
71 *Ibid*, p 392

आचरण तथा व्यवहार के श्रेष्ठ स्तर को व कायम रखते हैं, जनता का उन्हें सम्मान प्राप्त है तथा वे कायपालिका से सहयोगपूवक काय करत हैं।[72]

साम्यवादी चीन की व्यवस्थापिका—राष्ट्रीय जनवादी कॉंग्रेस

साम्यवादी चीन के सविधान (1954 ई) के अन्तगत एकसदनीय व्यवस्थापिका का निर्माण किया गया है। इस राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस (The People's Congress) कहते है। यह साम्यवादी चीन की राज्य-शक्ति का प्रयोग करने वाला सर्वोच्च एव एकल अग है।[73] उसके सदस्यगण, जिन्हें डेपुटीज (Deputies) कहा जाता है, प्रान्ता, स्वशासित क्षेत्रा, केन्द्रीय शासन के अधीन नगरपालिकाओ, सशस्त्र सनाओ एव विदेशो मे निवास करने वाले चीनी नागरिको म स चुने जात है। सदस्यता का काय काल 4 वष है। कॉंग्रेस अपने कायकाल से दो माह पूव विघटित हो जाती है तथा कॉंग्रेस की स्थायी समिति (Standing Committee) द्वारा आगामी कॉंग्रस के प्रतिनिधियो को निर्वाचित करन की व्यवस्था की जाती है। कांग्रेस के कायकाल का विशेष परिस्थितियो म आगामी कांग्रेस के प्रथम सत्र तक के लिए बढाया जा सकता है।

यह एक वृहद सस्था है। द्वितीय कॉंग्रेस की सदस्य सख्या 1959 ई म 1,226 थी। तृतीय कॉंग्रेस की सदस्य सख्या 1964 ई म 2,848 हो गयी थी। वष म कॉंग्रस का केवल एक ही सत्र होता है जो स्थायी समिति के द्वारा आहूत किया जाता है। स्थायी समिति द्वारा आवश्यकता के समय अथवा 1/5 प्रतिनिधियो द्वारा माग करने पर कांग्रेस के विशेष सत्र आहूत किये जा सकते हैं।

काय एव शक्तिया—राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है। इसे अपने दो तिहाई बहुमत से सविधान मे सशोधन करने की शक्ति है। इसे विधि निर्माण, सविधान के पालन हेतु निरीक्षण, चीन के राष्ट्रपति एव उप राष्ट्रपति के निर्वाचन, चीन के अध्यक्ष की सिफारिश पर प्रधानमन्त्री एव प्रधानमन्त्री के परामश पर मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की नियुक्ति क अधिकार प्राप्त है। यही सर्वोच्च न्यायालय क अध्यक्ष एव प्रधान प्रोक्यूरटर का निर्वाचन करती है। राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओ के सम्बन्ध म यही अन्तिम निणय करती है। कांग्रेस राष्ट्रीय रक्षा समिति के उपाध्यक्ष एव सदस्यो की नियुक्ति के सम्बन्ध मे निणय करती है। कांग्रेस ही राजकीय वजट एव वित्त सम्बन्धी प्रतिवेदनो की जाँच करती है तथा उन्हें स्वीकृत करती है। यही युद्ध एव शान्ति सम्बन्धी मामलो का निणय करती है सावजनिक क्षमा प्रदान करती है तथा प्रान्तो, स्वशासित क्षेत्रो एव केन्द्र प्रशासित नगरपालिकाओ की सीमा एव दर्जे की स्वीकृति देती है।[74]

सविधान के अधीन कांग्रस का साम्यवादी चीन के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, प्रधानमन्त्री, उप प्रधानमन्त्री, मन्त्रिगण, समितियो के अध्यक्ष, राज्य-समिति के महामन्त्री,

72 *Ibid*, p 393
73 Articles 21 and 22
74 Article 27

राष्ट्रीय रक्षा समिति के अध्यक्ष एव सदस्य, जनवादी न्यायालय के अध्यक्ष एव प्रधान प्रोक्यूरेटर का पदच्युत करन के अधिकार प्राप्त हैं।

समीक्षा—चीन की जनवादी राष्ट्रीय कांग्रेस का निर्वाचन पश्चिमी लोकतान्त्रिक देशो की भाँति नही होता है। चीन म व्यापक मताधिकार है लेकिन भूपति-वग तथा क्रान्ति विरोधी वग एव तत्वो को मतदान का अधिकार नही है। प्रतिनिधि क्षेत्रीय एव सामूहिक दोना हिता क आधार पर चुने जाते हैं। अत प्रतिनिधिगण अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होते ह तथा विभिन्न वर्गों एव हिता को असमान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। सदन म क्षेत्रीय एव वर्गीय हिता के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है।

जनवादी काँग्रेस को एक वृहद सस्था होने के नात एक वष म केवल एक ही सत्र की व्यवस्था है। अत इसे श्रेष्ठ एव सफलतापूवक विचार विमश करने वाले सदन की सना नही दी जा सकती है। यह स्थायी समिति, जिसकी स्थिति सोवियत प्रेसीडियम जसी है, द्वारा किये गये निणयो को केवल स्वीकृत करती है। सोवियत रूस की भाति साम्यवादी चीन म सत्ता का केन्द्र कही अन्यत्र ही हाता है, जनवादी काग्रेस तो साम्यवादी दल के निणयो को केवल अनुमोदित और स्वीकृत भर करती है। जनवादी काग्रेस को विधायी एव कायपालक दोना ही प्रकार की शक्तिया प्राप्त है। यथाथ मे काग्रेस शासन करन वाला निकाय है। किन्तु शासन की नीति निर्धारित करने की शक्ति वस्तुत साम्यवादी दल के राजनीतिक ब्यूरो मे ही होती है। चीन मे भी रूस की भाति लोकतांत्रिक केन्द्रीकरण है। विरोधी दल का पूण अभाव है। जनवादी कांग्रेस तो चीनी साम्यवादी दल के अधिनायकत्व को बनाये रखने का एक साधन मात्र है अर्थात सत्ता का केन्द्र जनवादी काग्रेस न होकर स्थायी समिति है। वैसे शासन की वास्तविक सत्ता साम्यवादी दल के नेताओ म अधिष्ठित होती है।

राष्ट्रीय जनवादी कॉग्रेस के निर्वाचन पूणरूपेण स्वतन्त्र नही है। विरोधी दल के अभाव के कारण सोवियत रूस की भाति व्यवहार मे अधिकतर स्थानो के लिए एक ही उम्मीदवार खडा होता है। उम्मीदवारो की नामजदगी पर साम्यवादी दल के अधिकारियो का नियन्त्रण होता है। उम्मीदवारा की एक सूची होती है और वे सभी अनिवार्य रूप म साम्यवादी दल के सदस्य होत है या उसकी विचारधारा से सहानुभूति रखते है।

स्थायी समिति (The Standing Committee)

चीन की राष्ट्रीय काग्रेस की स्थायी समिति एक स्थायी निकाय है। इसमे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष महामन्त्री एव काग्रेस द्वारा निर्वाचित 66 सदस्य होते है। स्थायी समिति अपने कार्यों के लिए राष्ट्रीय काग्रेस के प्रति उत्तरदायी होती है तथा उसके समक्ष अपने कार्यों का प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय काग्रेस को स्थायी समिति के सदस्या के प्रत्यावतन की शक्ति प्राप्त है। इसका कायकाल 4 वष है।

काय—स्थायी समिति के काय हैं—राष्ट्रीय काग्रेस क प्रतिनिधियो का

75 Article 28

निर्वाचन करना, उसके अधिवेशन आहूत करना, विधियो की व्याख्या करना, आज्ञप्तियाँ प्रचारित करना तथा राज्य समिति (State Council), जनवादी न्यायालय एव प्रोक्यूरेटर के कार्यों का निरीक्षण करना, सविधान एव विधि विरुद्ध आदेशो व निणयो को रद्द करना, प्रान्तो, क्षेत्रो एव नगरपालिकाओ के अनुचित निणयो को अस्वीकृत करना उप-प्रधानो, मन्त्रियो, आयोगो के अध्यक्षो, जन-न्यायालय के उपाध्यक्ष, न्यायाधीशो एव प्रोक्यूरेटरो आदि को नियुक्त एव पदच्युत करना, राजदूतो की नियुक्ति एव उनकी वापसी का निणय करना, सन्धियो को स्वीकार एव अस्वीकार करना, सैनिक, राजनीतिक एव अन्य उपाधियो व पदो की व्यवस्था करना, क्षमादान, पूण या आशिक सैनिक भर्ती का निणय करना सैनिक कानूनो को क्रियान्वित करना, जनवादी काग्रेस के सत्रावसान काल मे युद्ध सम्बन्धी निणय करना, आदि।

उपरोक्त कार्यों के विवरण से स्पष्ट है कि स्थायी समिति द्वारा विधायी, कायपालक न्यायिक एव प्रशासनिक सभी प्रकार के दायित्व सम्पादित किये जात हैं। यह सोवियत रूस की प्रेसीडियम की भाति है। लेकिन सोवियत प्रेसीडियम का अध्यक्ष राज्य का अध्यक्ष होता है जबकि स्थायी समिति का अध्यक्ष राज्य का अध्यक्ष नहीं होता। चीन म राज्य का अध्यक्ष जनवादी गणतन्त्र का समापति होता है। सोवियत प्रेसीडियम को सशस्त्र सेना के उच्च कमान की नियुक्ति एव उन्हे पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त है जबकि चीन गणराज्य की स्थायी समिति को यह शक्ति सिद्धान्तत प्राप्त नहीं है, यद्यपि व्यवहार मे उसने इस शक्ति का प्रयोग किया है।

कुछ विषयो के सन्दम म चीन की स्थायी समिति सोवियत रूस की प्रेसीडियम से भी अधिक शक्तिशाली है, जैसे—(1) प्रेसीडियम की भाति मन्त्रियो की नियुक्ति एव पदच्युति के लिए स्थायी समिति को प्रधानमन्त्री एव जनवादी काग्रेस के अनुसमथन की आवश्यकता नही है। (2) राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस सविधान म वर्णित अन्य शक्तियो को स्थायी समिति को सौप सकती है। रूसी सविधान म ऐसा कोई प्रावधान नही है। (3) काग्रेस के सत्रावसान-काल म स्थायी समिति जाच हेतु आयोगो को नियुक्त कर सकती है। सोवियत सघ की प्रेसीडियम को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नही है। स्थायी समिति कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होती है और उसके समक्ष प्रतिवेदन भी प्रस्तुत करती है लेकिन स्थायी समिति की स्थिति व्यवहार म केन्द्रीय है और कांग्रेस उसका अनुगमन करती है तथा उसके द्वारा निर्मित एव स्वीकृत विधियो का अनुसमथन मात्र करती है।

भारत का निम्न सदन—लोकसभा

भारतीय गणराज्य की सघीय ससद द्विसदनात्मक है। निम्न सदन को लोकसभा (Lok Sabha or the House of the People) एव उच्च सदन को राज्यसभा (Rajya Sabha or the Council of States) कहते हैं।[76] लोकसभा जनता का सदन है। राज्यसभा सघ के घटको का प्रतिनिधित्व करता है।

---
76 अनुच्छेद 79

लोकसभा की अधिकतम सदस्य सख्या 525 निश्चित की गयी है। राज्यो के विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रो से अधिकतम 500 सदस्य एव केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रो से अधिकतम 25 सदस्यो के निर्वाचन का सविधान मे विधान है।[77] 1963 ई के पूर्व तक केन्द्र प्रशासित क्षेत्रो के प्रतिनिधियो की अधिकतम सख्या 20 थी। इस वर्ष पाण्डुचेरी को प्रतिनिधित्व देने के लिए 20 के स्थान पर अधिकतम सख्या 25 कर दी गयी है।[8] सविधान द्वारा प्रत्येक राज्य की सदस्य-सख्या का पृथक रूप से उल्लेख नही किया गया है अपितु सामान्य सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक राज्य को उसकी जनसख्या के अनुपात मे लोकसभा म प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इस प्रकार के प्रतिनिधित्व का आधार समान होता है। प्रत्येक सदस्य अधिकतम पाच लाख व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करता है। यही प्रतिनिधित्व की समानता का सिद्धान्त निर्वाचन क्षेत्रो के सन्दर्भ म भी मान्य है। प्रत्येक राज्य के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रतिनिधित्व समान होना चाहिए। अनुच्छेद 81 (2) (ब) के अनुसार प्रत्येक राज्य को क्षेत्रो म इस प्रकार विभाजित करना चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र समान जनसख्या का प्रतिनिधित्व करे। प्रत्येक नवीन जनगणना के पश्चात निर्वाचन क्षेत्रो का पुनगठन होता है एव इस सम्बन्ध मे ससदीय विधि द्वारा व्यवस्था का विधान है।[79] 1951 ई के मतगणना के आधार पर ससद ने 1952 ई मे परिसीमन आयोग अधिनियम पारित किया था।[80] 1956 ई मे राज्य-पुनगठन के समय राज्य पुनगठन अधिनियम के अन्तगत उक्त अधिनियम की व्यवस्थाओ को निरस्त कर दिया गया एव एक परिसीमन आयोग का गठन किया गया और इस आयोग को ससदीय एव राज्यो के निर्वाचन क्षेत्रो म सशोधन एव परिवधन का अधिकार दिया गया।[81] परिगणित जातियो एव जन-जातियो के लिए लोकसभा मे स्थान सुरक्षित है। प्रारम्भ मे यह व्यवस्था केवल 10 वर्ष के लिए थी। परन्तु दो बार क्रमश 10-10 वर्ष के लिए सविधान मे सशोधन के माध्यम से वृद्धि की गयी है।[82] लोकसभा के निर्वाचन के लिए सविधान-सभा ने पृथक एव साम्प्रदायिक निर्वाचन को अस्वीकार कर दिया था। आग्ल-भारतीय समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व के अभाव म राष्ट्रपति को दो सदस्य मनोनीत करने का अधिकार है।[83]

राज्य पुनगठन के पश्चात लोकसभा की सदस्य सख्या 500 थी एव 1957 ई के सामान्य निर्वाचन के उपरान्त लोकसभा की सदस्य-सख्या म कोई वृद्धि नही

---

77 अनुच्छेद 81 (अ) एव (ब)।
78 14वा सवैधानिक सशोधन, 1963 ई।
79 अनुच्छेद 82
80 The Delimitation Commission Act, LXXXV of 1952
81 Sections 40 to 48, States Reorganisation Act, 1950, No XXXVII, pp 22-25
82 अनुच्छेद 334 एव 8वा सवैधानिक सशोधन, 1959 ई एव 23वा सशोधन, 1969 ई।
83 अनुच्छेद 331

हुई है। 1967 के सामान्य निर्वाचन के पश्चात लोकसभा म 521 सदस्य थ। 1970 इ के मध्यावधि निर्वाचना के बाद गठित पांचवी लोकसभा म 518 सदस्य हैं।

कायकाल

लोकसभा का कायकाल 5 वष है। इस अवधि स पूव भी विघटित किया जा सकता है। सकट-काल म इसकी अवधि ससदीय विधि द्वारा एक बार म 1 वष क लिए बढायी जा सकता है लेकिन सकट काल की समाप्ति के बाद किसी भी अवस्था म 6 माह स अधिक की वृद्धि नही की जा सकती।[84]

लोकसभा की सदस्यता के लिए निम्न अहताएँ निधारित की गयी हैं—(1) भारतीय नागरिक हो और उसकी आयु कम से कम 25 वष हो। (2) उन समस्त योग्यताओ को पूण करता हो जो ससदीय विधि द्वारा निर्धारित की गयी है।[85] लेकिन कोई भी व्यक्ति दोना सदना का एक साथ सदस्य नही हो सकता और न ससद या किसी राज्य व्यवस्थापिका का ही एक साथ सदस्य हो सकता है।[86] पागल, दिवालिया, सघ एव राज्य शासन म लाभ क पद धारण करन वाले, विदशी, भारतीय नागरिकता का परित्याग करके किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार करने वाल तथा किसी ससदीय विधि की व्यवस्था द्वारा अयोग्य घोषित किय जान वाले व्यक्ति लोकसभा की सदस्यता के अधिकारी नही हो सकत।[87] लोकसभा के सदस्या का निवाचन प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। प्रत्यक 21 वर्षीय भारतीय नागरिक को जो विधि द्वारा एव सविधान के अन्तगत मताधिकार से वचित नही है, लोकसभा के निर्वाचन म मत देन का अधिकारी होता है।[88]

अधिकार एव शक्तियाँ

भारतीय लोकसभा की विधायी, वित्तीय, निर्वाचन, कायपालक, सविधानिक एव अन्य शक्तिया निम्नवत है

विधायी शक्तियाँ—किसी विधेयक को पारित होने के लिए लोकसभा द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। वित्त विधेयक लोकसभा म ही सवप्रथम प्रस्तुत किये जाते हैं।[89] गैर वित्तीय विधेयक दोना म से किसी भी सदन म सवप्रथम प्रस्तुत किया जा सकता है।[90] दानो सदनो मे किसी विधेयक के सम्बन्ध म मतभेद होन पर या अन्य सदन द्वारा विधेयक को अस्वीकार करने या एक सदन द्वारा दूसरे सदन से किसी विधेयक को प्राप्त होने क पश्चात 6 माह का समय व्यतीत हो जाने पर राष्ट्रपति

84 Article 83 (2)
85 Article 84
86 Article 101
87 Article 102
88 Article 326
89 Article 109
90 Article 107

को दोना सदनो का सयुक्त अधिवेशन आहूत करने का अधिकार प्राप्त है । सयुक्त अधिवेशन मे दोना सदना के उपस्थित सदस्या के बहुमत से यदि विधेयक पारित कर दिया जाता है तो वह विधेयक ससद द्वारा पारित माना जाता है ।[91] लेकिन यह व्यवस्था धन-विधेयको के सम्बन्ध मे नही है । लोकसभा की सदस्य सख्या अधिक होने के कारण सयुक्त अधिवेशन मे उसकी इच्छानुसार विषयो का स्वीकृत होना अनिवाय है और यही लोकसभा की शक्ति है ।

वित्तीय शक्तिया—लोकसभा को राज्य के वित्त पर वास्तविक नियन्त्रण प्राप्त है । वित्त विधेयक सवप्रथम लोकसभा म ही प्रस्तुत किये जाते है । लोकसभा द्वारा वित्त-विधेयक के पारित किये जाने पर वह राज्यसभा के समक्ष उसकी सिफारिश के लिए प्रस्तुत किया जाता है । राज्यसभा को वित्त विधेयक को अपनी सिफारिश सहित 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटा देना चाहिए ।[92] राज्यसभा की सिफारिशा को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार लोकसभा को है एव तदनुरूप विधेयक ससद द्वारा पारित माना जाता है । यदि 14 दिन के अन्दर राज्यसभा वित्त विधेयक को न तो पारित करती है और न लौटाती है तो विधेयक लोकसभा द्वारा जिस रूप मे पारित किया गया है उसी रूप म ससद द्वारा पारित मान लिया जाता है ।[93] अत राज्यसभा को वित्त विधेयका के सम्बन्ध मे केवल 14 दिन की विलम्बकारी शक्ति प्राप्त है । ब्रिटिश लॉडसभा को वित्त विधेयक के सम्बन्ध म 1 माह की विलम्बकारी शक्ति प्राप्त है । अनुदान की मागा एव करो की स्वीकृति पर लोकसभा का एकाधिकार है ।

कायपालिका पर नियन्त्रण सम्बधी शक्तियाँ—लोकसभा का यह अत्यन्त महत्वपूण काय है । केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है[94] एव लोकसभा के प्रसाद पयन्त ही मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ रह सकता है ।[95] सिद्धान्तत उत्तरदायित्व म ही नियन्त्रण निहित होता है एव नियन्त्रण और उत्तरदायित्व को पृथक करना असम्भव है । लोकसभा का नियन्त्रण केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल को अनुत्तरदायी होने से राकता है, फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल सदव सजग रहता है । लोकसभा के सदस्य शासन के कार्यो की सूचना प्राप्त करके शासन पर नियन्त्रण रखते है । प्रश्न एव पूरक प्रश्न पूछकर सदस्यो द्वारा शासकीय नीति एव कार्यों के सम्बन्ध म सूचना प्राप्त की जाती है तथा नीति की आलोचना करके शासन पर नियन्त्रण रखा जाता है । लोकसभा वाद विवाद का सदन है । सदस्यो द्वारा किसी भी विषय

91 Article 108
92 Article 109 (2)
93 Article 109 (5)
94 Article 75 (3)
95 Article 74 (3)

पर वाद विवाद की माग की जा सकती है। अनुदान की मांग पर विचार के समय शासन के कार्यो की तीव्र आलोचना की जाती है। महत्वपूण आकस्मिक घटना घटित होने पर काम रोको प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते है। निन्दा प्रस्ताव एव अविश्वास प्रस्ताव उपस्थित करके शासन को अपने काय एव नीति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। इन प्रस्तावो के पारित होने पर शासन को त्यागपत्र देना पडता है। राष्ट्रपति के भाषण के पश्चात उस पर वाद विवाद के अवसर के माध्यम से विरोधी दल को शासन की नीतियो की समीक्षा एव आलोचना करने का श्रेष्ठ अवसर प्राप्त होता है। विगत 25 वर्षों म लोकसभा मे काग्रेस दल का सुनिश्चित बहुमत रहा है एव सुदृढ विरोधी दल का भारतीय ससदीय जीवन मे अभाव रहा है। फिर भी लोकसभा म वाद विवाद का स्तर सन्तोषजनक एव प्रशसनीय रहा है। प्रति दिन आधा घण्टे का समय वाद विवाद के लिए निश्चित होता है। यह जनता की शिकायतो की अभिव्यक्ति के लिए उचित अवसर होता है। वार्षिक बजट के समय प्राय प्रत्यक विभाग के कार्यो की समालोचना की जाती है तथा मन्त्रियो को अपने कार्यों एव नीतियो के सम्बन्ध मे सदस्या को सन्तुष्ट करना पडता है।

सवधानिक शक्तियां—सविधान म सशोधन करने का लोकसभा को अधिकार प्राप्त है। अधिकाश सवैधानिक सशोधन प्रस्तावा को दोनो सदना के द्वारा पृथक पृथक रूप मे कुल सदस्य-सख्या के स्पष्ट बहुमत एव उपस्थित सदस्या के दो तिहाई बहुमत से पारित होना आवश्यक है। सघीय व्यवस्था से सम्बन्धित प्रावधाना म उक्त रीति के अतिरिक्त राज्या के विधानमण्डला की स्वीकृति भी आवश्यक होती है।[96] स्पष्ट है कि भारतीय लोकसभा को ब्रिटिश कॉमन्स सभा की भाति इस सम्बन्ध म अनियन्त्रित शक्ति प्राप्त नही है। न वह सोवियत सघ की सुप्रीम सोवियत की भांति सवैधानिक सशोधन के सन्दम मे एकाधिकार का प्रयोग करती है। इस सन्दभ म उसकी स्थिति बहुत कुछ अमेरिका के प्रतिनिधि सदन जैसी है। भारतीय लोकसभा को सविधान की कुछ महत्वपूण व्यवस्थाओ मे सशोधन का सामान्य विधि से अधिकार प्राप्त है। भारतीय ससद सामान्य विधि पारित करके भारतीय सघ म नवीन राज्या को शामिल कर सकती है, उनका निर्माण कर सकती है एव उनकी सीमाओ, क्षेत्रो, नामो आदि मे परिवतन या विभाजन कर सकती है।[97]

निर्वाचन सम्बन्धी तथा न्यायिक एव अन्य शक्तिया—राष्ट्रपति एव उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन म लोकसभा का सक्रिय योग होता है। लोकसभा के सदस्य राष्ट्रपति के निवाचक-मण्डल क सदस्य होते हैं।[98] उप राष्ट्रपति का निर्वाचन लोकसभा एव राज्य

---

96 अनुच्छेद 368
97 अनुच्छेद 2 और 3
98 Article 54

सभा के सदस्यो द्वारा सयुक्त अधिवेशन म किया जाता है।[99] राष्ट्रपति के विरुद्ध महा-भियोग का प्रस्ताव किसी एक सदन द्वारा प्रस्तावित किया जा सकता है एव दूसरा सदन उसकी जाच करता है।[100] उप-राष्ट्रपति को पदच्युत करने सम्बन्धी प्रस्ताव का राज्यसभा द्वारा पारित होने पर लोकसभा द्वारा अनुसमर्थन आवश्यक है।[101] इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो को पदच्युत करने के सम्बन्ध मे लोकसभा को अधिकार प्राप्त है। दोनो सदनो द्वारा पृथक-पृथक रूप मे इस आशय के स्पष्ट बहुमत एव उपस्थित सदस्यो के दो तिहाई बहुमत स प्रस्ताव पारित करके प्रतिवेदन करने पर राष्ट्रपति न्यायाधीशो को पदच्युत कर सकता है।[102] लोकसभा को अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्षो को निर्वाचित एव पदच्युत करने के अधिकार प्राप्त है। अपने सदस्यो तथा बाहर के किसी भी व्यक्ति को सदन के विशेषाधिकार का हनन करने के अपराध मे दण्ड देने का अधिकार भी उसे प्राप्त है।[102] विभिन्न सकटकालीन घोषणाओ को जारी रखने के लिए ससद की स्वीकृति आवश्यक होती है।

समीक्षा—भारतीय लोकसभा कई अर्थों मे ब्रिटिश कॉमन्स सभा से समानता रखती है लेकिन उसकी भाति सप्रभु नही है। इसका कारण भारतीय सविधान का लिखित एव सघीय होना है। ब्रिटिश कॉमन्स सभा ही व्यवहार मे ब्रिटिश ससद है। उसके द्वारा पारित विधियाँ यायिक पुनर्रीक्षण के क्षेत्राधिकार से मुक्त है। ब्रिटिश ससद द्वारा सविधान म सरलतापूर्वक सशोधन सम्भव है। गैर वित्तीय विधेयको के सम्बन्ध मे लार्डसभा को केवल 1 वर्ष का विलम्बकारी निषेधाधिकार प्राप्त है। भारतीय लोकसभा को राज्यसभा की तुलना मे अधिक शक्ति प्राप्त है। लेकिन भारतीय ससद सामान्य-काल म केवल सघीय सूची के विषयो पर ही विधि बना सकती है। यदि सघीय विधियाँ मौलिक अधिकारो या सविधान की किसी धारा का अतिक्रमण करती हैं तो न्यायालय द्वारा वे अवधानिक घोषित की जा सकती हैं।

भारतीय लोकसभा की प्रमुख आलोचना निम्नवत है

(1) लोकसभा की निर्वाचन पद्धति जनमत को ठीक प्रकार स अभिव्यक्त नही करती।

(अ) सविधान निर्माताओ ने लोकसभा के निर्वाचन के सम्बन्ध म समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को अस्वीकार कर दिया था क्योकि वे उसे ससदीय शासन के अनुकूल नही मानते थे। इससे स्थिर शासन के बनने की सम्भावना समाप्त हो जाती

99 Article 66
100 Article 61
101 Article 67 (2)
102 Articles 124 (4) and 217 (1) (6)
103 Articles 93 and 94

है । सदन म अनेक राजनीतिक दलो के अस्तित्व की सम्भावना भी बढ़ जाती है । इसक अतिरिक्त यह पद्धति जटिल है एव अशिक्षित मतदाताओ क अनुरूप नही है । ससदीय शासन की सफलता के लिए द्विदलीय पद्धति एक अनिवाय आवश्यकता है । अत लाक सभा के सदस्या का एकल सदस्यी निर्वाचन क्षेत्रा से सावभौम वयस्क मताधिकार क आधार पर निर्वाचन होता है । 1961 ई के द्विसदस्यी निर्वाचन (उन्मूलन) अधि नियम के पूव कुछ क्षेत्र द्विसदस्यी थे । यह वे निर्वाचन क्षेत्र थे जहाँ से परिगणित जातियो एव अनुसूचित वर्गों के सदस्य चुने जाते थे । अब द्विसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र समाप्त हो गये हैं ।

(आ) इस निर्वाचन पद्धति का एक अन्य दोष यह है कि निर्वाचन म प्राप्त कुल मतो के अनुपात म सदन मे स्थान प्राप्त नही होते हैं । भारतीय लोकसभा के चार सामान्य निर्वाचना एव एक मध्यावधि निर्वाचन म ब्रिटिश कॉमन्स सभा के निर्वाचन सम्बन्धी कमियो एव दोषा को दुहराया गया है । प्रथम निर्वाचन (1951 52) म लोकसभा के 489 स्थाना म से कांग्रेस को 363 अथात 74% स्थान प्राप्त हुए थे जबकि उसे कुल मता के केवल 44 प्रतिशत मत ही प्राप्त हुए थे । इस निर्वाचन म समाजवादी दल को 10 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे लेकिन उस केवल 3 प्रतिशत स्थान ही प्राप्त हो सके थे । द्वितीय एव ततीय निर्वाचना मे भी इसी कहानी को दोहराया गया है । यदि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को अपनाया गया होता तो इन निर्वा चना के पश्चात कोई भी दल स्थायी सरकार न बना पाता एव सयुक्त मन्त्रिमण्डलो का निर्माण होता जो भारतीय ससदीय शासन प्रणाली के जीवन म स्वय एक अभिशाप बन जाते ।

(इ) लोकसभा म दो सदस्य आग्ल भारतीय मनोनीत किये जात हैं । सवि धान के 25 वष के पश्चात भी इस प्रकार के सरक्षण की अब कोई आवश्यकता नही रही है ।

(2) सुदृढ एव उत्तरदायी विरोधी दल का अभाव भारतीय ससदीय शासन प्रणाली की एक महत्वपूण समस्या है । इसके अभाव म सत्तारूढ दल का एक प्रकार से दलीय अधिनायकत्व स्थापित हो जाता है । भारत मे कांग्रेस दल का केन्द्र एव राज्या मे प्रथम 15 वर्षो म एकछत्र राज्य रहा है । केन्द्र मे तो विगत 25 वर्षों से कांग्रेस ही पदारूढ है । ऐसी स्थिति मे सत्तारूढ दल को जनता द्वारा हटाये जाने का भय ही नही है और शासन के भी व्यवहार म अनुत्तरदायी हो जाने की आशका है ।

(3) ब्रिटन की भाति भारत मे भी मन्त्रिमण्डलीय अधिनायकत्व की स्थापना हुई है । ससद मन्त्रिमण्डल का अनुचर बन गयी है । सुदृढ विरोधी दल का अभाव इस अधिनायकत्व के लिए माग प्रशस्त करता है । भारत के ससदीय जीवन म विरोधी दल का योग उसकी सख्या के आधार पर नही आँका जाना चाहिए । इधर कुछ वर्षों म विरोधी दलो ने अपनी शक्ति से अधिक क्षमता का प्रदशन किया है ।

प्रतिनिधि सदन के रूप में लोकसभा का मूल्यांकन कठिन है। इसके सदस्य कम शिक्षित हैं। उन्हें उन सुविधाओं का भी अभाव है जिनके कारण वे अधिक सक्रिय रूप से कार्य कर सकते है। उन्हें गम्भीर चिन्तन के लिए अवसर प्राप्त नहीं है और न शोध की सुविधाएँ ही प्राप्त हैं। अपने निर्वाचकों से उनका सम्बन्ध टूट जाता है।[104]

फ्रेंच गणराज्य के निम्न सदन

तृतीय फ्रेंच गणराज्य (1875 1940) की द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका—राष्ट्रीय सभा (National Assembly)—के निम्न सदन को चेम्बर ऑफ डेपुटीज (Chamber of Deputies) एवं उच्च सदन को सीनेट की संज्ञा दी गयी थी। दोनों सदनों की विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियाँ समान थी।[105] लेकिन वित्त विधेयक चेम्बर ऑफ डेपुटीज में ही सर्वप्रथम प्रस्तुत किये जा सकते थे। सीनेट को वित्त विधेयकों को अस्वीकृत करने का अधिकार था और व्यवहार में उसने इस अधिकार का पर्याप्त प्रयोग किया था। मन्त्रिमण्डल दोनों सदनों के प्रति उत्तरदायी होता था। चेम्बर आफ डेपुटीज का निर्वाचन 21 वर्षीय वयस्क फ्रेंच पुरुष मतदाताओं द्वारा 4 वर्ष के लिए होता था। राष्ट्रपति को चेम्बर ऑफ डेपुटीज का विघटन सीनेट की अनुमति से करने का अधिकार प्राप्त था।

चतुर्थ फ्रेंच गणराज्य (1946 1958) में भी द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का ही निर्माण किया गया था। प्रथम सदन को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) एवं द्वितीय सदन को गणराज्य परिषद (Council of the Republic) की संज्ञा दी गयी थी। राष्ट्रीय सभा 5 वर्ष के लिए क्षेत्रीय निर्वाचन-क्षेत्रों से सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्षतः निर्वाचित की जाती थी। इसकी सदस्य संख्या में हर निर्वाचन के साथ परिवर्तन होता था। नवम्बर 1946 ई में निर्वाचित प्रथम राष्ट्रीय सभा में 618 सदस्य और द्वितीय में 627 सदस्य थे। चतुर्थ गणराज्य के संविधान की एकमात्र मुख्य विशेषता यह है कि एक सदन—राष्ट्रीय सभा—में ही निरंकुश शक्तियाँ केन्द्रित कर दी गयी थी।[106] यह सर्वोच्च केन्द्र-स्थल था। विधि निर्माण सम्बन्धी पूर्ण शक्ति इसे प्राप्त थी जिसे वह हस्तान्तरित नहीं कर सकती थी। फ्रेंच राष्ट्रीय सभा में विधि निर्माण की पद्धति ब्रिटिश कॉमन्स सभा की अपेक्षा भिन्न थी। कॉमन्स सभा में अधिकांश विधेयक मन्त्रियों द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं लेकिन फ्रेंच

---

104 Palmer and Tinker *Leadership and Political Institutions in India*, pp 135 136 quoted by D C Chaturvedi *Indian Government and Politics*, 1973, p 218

105 Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1956, pp 447 48

106 The most distinctive characteristic of the Constitution of the Fourth Republic is its concentration of almost absolute power in the hands of one chamber, the National Assembly' —Carter, Ranney and Hertz *The Government of France*, 1956, Ind ed p 116

राष्ट्रीय सभा म व्यक्तिगत सदस्या के लिए विधेयको को प्रस्तुत करना सरल था। शासकीय विधेयका को भी समितियो द्वारा उन्हे सम्बोधित करने के पश्चात समिति के अध्यक्षा द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता था । वजट को सवप्रथम राष्ट्रीय सभा मे प्रस्तुत किया जाता था । मन्त्रिमण्डल भी केवल इसी सदन के प्रति उत्तरदायी होता था। राष्टीय सभा के सदस्यो को राष्ट्रपति के निर्वाचन म अधिकार प्राप्त थे । सविधान म सशोधन का प्रस्ताव राष्ट्रीय सभा म ही सवप्रथम प्रस्तुत किया जाता था और सदन द्वारा स्पष्ट वहुमत से उसका पारित होना आवश्यक था । गणराज्य परिषद म सशो धन-प्रस्ताव न तो प्रस्तुत किये जा सकते थे और न ही वहा पारित होते थे । परिषद द्वारा सशोधन प्रस्ताव के स्वीकृत या अस्वीकृत होने पर राष्ट्रीय सभा उन्हे पुन पारित कर सकती थी और वे प्रभावकारी होते थे । अत वित्तीय, विधायी एव प्रशासकीय क्षेत्रो मे राष्ट्रीय सभा की शक्तियाँ सर्वोच्च थी । यह शासन का सर्वोच्च अग थी एव अन्य सभी उसके अधीन थे ।[107] यह मन्त्रिमण्डल को न कि इगलण्ड की कामन्स सभा की भाति मन्त्रिमण्डल इस सदन को नियन्त्रित करती थी ।

पचम फ्रेंच गणराज्य (1958) की ससद द्विसदनात्मक है। राष्ट्रीय सभा (National Assembly) निम्न सदन है, सीनेट (Senate) उच्च सदन है। राष्ट्रीय सभा के सदस्य प्रत्यक्ष रीति से एव सीनेट के सदस्य अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होते है । राष्ट्रीय सभा का प्रत्येक सदस्य एकल सदस्यी निर्वाचन क्षेत्र से दुहरे गुप्त मतदान मे वहुमत प्राप्त करने पर निर्वाचित घोपित किया जाता है । प्रथम गुप्त मतदान म ही जिन्हे स्पष्ट वहुमत प्राप्त हो जाता है वे उसी मे विजयी घोषित कर दिये जाते हैं। द्वितीय गुप्त मतदान की व्यवस्था केवल उन्ही निर्वाचन क्षेत्रा मे होती है जहाँ किसी भी प्रत्याशी को प्रथम मतदान मे स्पष्ट वहुमत प्राप्त नही होता । द्वितीय मतदान म सामान्य वहुमत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को ही विजयी घोषित किया जाता है। इस मतदान व्यवस्था का उद्देश्य उग्रवादिया को हटाना एव मध्यवर्गीय प्रत्याशिया को सफल वनाना है । मतदाताओ से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मध्यमवर्गीय प्रत्याशियो का द्वितीय मतदान म सहायता दें । नवम्बर 1958 ई के निर्वाचन म यह आशा पूण भी हुई । इस निर्वाचन म साम्यवादियो को केवल 10 स्थान मिले थे जबकि चतुथ गणराज्य की राष्ट्रीय सभा मे उन्हे 145 स्थान प्राप्त हुए थे और वह सदन म सबसे वडा राजनीतिक दल था। पाँचवें गणराज्य म राष्ट्रीय सभा की सदस्य-सख्या घटाकर 465 कर दी गयी है ।

---

107 The French National Assembly (was) not simply one organ of government among many taking its place side by side with the Council of the Republic the Cabinet and the Presidency It is the supreme agency to which all others are subordinate "—Carter, Ranney and Hertz *op cit*, 1956, Ind edn, p 116

का कार्यकाल 5 वर्ष है। प्रधानमन्त्री के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा इसे विघटित किया जा सकता है।

आयरलैण्ड में प्रतिनिधि सदन प्रधानमन्त्री को मनोनीत करता है। अन्य किसी देश की व्यवस्थापिका को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। प्रधानमन्त्री द्वारा मनोनीत मन्त्रियों को प्रतिनिधि सदन स्वीकृत करता है। वित्त विधेयकों पर इसे पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है। वे केवल निम्न सदन में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं। प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित वित्त विधेयक 21 दिन के अन्दर विधि बन जाते हैं, भले ही उच्च सदन इस अवधि में उन्हें स्वीकार करे अथवा न करे। संविधान में संशोधन प्रस्तावित करने का इस सदन को एकाधिकार प्राप्त है। मन्त्रि-परिषद इसी सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। किसी वित्त-विधेयक के सम्बन्ध में यह विवाद होने पर कि वह वित्त विधेयक है अथवा नहीं, प्रतिनिधि सदन का निर्णय अन्तिम होता है। उसके इस निर्णय के विरुद्ध विशेषाधिकार समिति में अपील की जा सकती है। इस विशेषाधिकार समिति में दोनों सदनों के समान सदस्य होते हैं और सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश इसका अध्यक्ष होता है। गैर-वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में दोनों सदनों की शक्ति समान है। ऐसे विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते हैं तथा दोनों सदनों द्वारा पारित होने पर ही वे विधि बनते हैं। यदि प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित गैर वित्तीय विधेयक सीनेट द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है तो प्रतिनिधि सदन पुनः उस विधेयक को सीनेट के द्वारा अस्वीकृत होने के 90 दिन में पारित करके सीनेट के पास भेज देती है एवं 90 दिन बीत जाने के पश्चात अर्थात 91वें दिन वह विधेयक स्वतः ही पारित माना जाता है। प्रधानमन्त्री यदि विधेयक को आवश्यक प्रमाणित कर देता है एवं राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद की सम्मति प्राप्त करके उसे अनुमोदित कर देता है तो प्रतिनिधि सदन द्वारा 90 दिन की अवधि में भी कमी की जा सकती है।

दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिए भेजा जाता है। सामान्यतः राष्ट्रपति निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करता। गैर वित्तीय विधेयकों एवं संवैधानिक संशोधन के प्रस्तावों को मन्त्रि-परिषद के परामर्श पर सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति हेतु भेजने का राष्ट्रपति को अधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिकता सम्बन्धी अपना अभिमत 30 दिन के अन्दर देना चाहिए। यदि सर्वोच्च न्यायालय विधेयक को अवैधानिक मानता है तो राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति प्रदान नहीं करता।

जापान की डाइट (व्यवस्थापिका)

1889 ई. के पूर्व जापान में सामन्तशाही थी। राजा को देवता के समान पूजा जाता था परन्तु उसे बहुत अधिक शक्ति प्राप्त नहीं थी। राजकुमार इटो द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन के आधार पर 1889 ई. में जापान में प्रथम संविधान का निर्माण हुआ

था। इसे मीजी सविधान (The Meiji Constitution) कहते हैं। यह अधिकाशत प्रशा (Prussia) के सविधान पर आधारित था और इसकी 76 मे से 46 धाराएँ प्रशा के सविधान से प्रभावित थी। प्रधानमन्त्री राजा के प्रति उत्तरदायी होता था एव प्रशा के नमूने पर ससदीय शासन की स्थापना की गयी थी। यह जापान का प्रथम लिखित सविधान था लेकिन प्रारम्भ से ही इसके विकास म अभिसमयो ने महत्वपूण भूमिका निभायी थी। जापानी व्यवस्थापिका को साम्राज्यी डाइट (Imperial Diet) की सना प्रदान की गयी। इसमे पीयर सभा (House of Peers) एव प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) नामक दो सदन थे।

उच्च सदन—पीयर सभा—की सदस्य सख्या 409 थी। इनम से 200 सदस्य सामन्त वग म से वशानुगत आधार पर नियुक्त किये जाते थे। इनमे राजवश के राजकुमार एव उच्च सामन्त भी शामिल थे। 125 पीयर जीवन भर के लिए प्रधानमन्त्री के परामश पर सम्राट द्वारा नियुक्त किये जात थे। सर्वाधिक कर देने वाले धनिक वग द्वारा भी कुछ सदस्य निर्वाचित किये जाते थे जिन्हे सम्राट द्वारा 7 वष के लिए पीयर सभा का सदस्य नियुक्त किया जाता था।[108]

प्रतिनिधि सदन निम्न या प्रथम सदन था। इसकी सदस्य सख्या 450 के आसपास थी जो 122 बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्रा से निर्वाचित किय जाते थे। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से अधिकतम 5 सदस्य निर्वाचित हो सकते थे।[109] 'एक मतदाता एकमत' क सिद्धान्त पर गुप्त मतदान स सदस्या का निवाचन होता था। प्रतिनिधि सदन का कायकाल 4 वष था लेकिन उसे उसकी अवधि क पूव भी भग किया जा सकता था। *1925 ई को निर्वाचन विधि द्वारा सावभौम पुरुष मताधिकार की व्यवस्था की गयी* और प्रत्येक 25 वर्षीय जापानी पुरुष को मतदान का अधिकार दिया गया था। प्रतिनिधि सदन की शक्तिया अत्यधिक सीमित थी। वित्तीय मामलो मे ससद (डाइट) का कम नियन्त्रण था। यदि डाइट बजट को पारित करने मे असफल रहती थी तो विगत वष के स्वीकृत बजट क आधार पर शासन को प्रशासन चलाने का अधिकार प्राप्त था। 1931 ई के पश्चात प्रशासन मे सनिक अधिकारियो के प्रभुत्व म वद्धि हो गयी थी। 1941 ई म सविधान का स्वरूप अत्यधिक फासीवादी हो गया था।

नवीन जापानी सविधान (1946 ई) के अधीन डाइट (Diet) को राज्य शक्ति का सर्वोच्च अग घोषित किया गया है। इस सविधान के निर्माण पर अमेरिकी प्रभाव स्पष्ट है। द्वितीय विश्व-युद्ध म पराजित होने के पश्चात अमरिकी प्रेरणा से जापान क नवीन सविधान का निर्माण हुआ है। इस सविधान के अन्तगत जापान म दैवी राजतन्त्र का परित्याग करके जन-प्रभुत्व की स्थापना की गयी है। सम्राट के कर्तव्य केवल औपचारिक हैं। अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धो मे जापान ने सदव के लिए शक्ति के परित्याग

108 Ogg and Zink *op cit*, p 957
109 *Ibid*, p 958

की घोषणा की है और जल, थल एव नभ सनाओ का न रखने का निर्णय किया है। व्यापक मौलिक अधिकारा का स्वीकार किया गया है। स्वरूप म सविधान कठोर है।

इस नवीन सविधान के अन्तगत जापानी व्यवस्थापिका—डाइट (Diet)—द्विसदनात्मक है। प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) प्रथम सदन है और काउ सलर सदन (House of Councillors) द्वितीय सदन है। प्रतिनिधि सदन की सदस्य सख्या 466 है। सदस्या का 4 वष के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन होता है। मतदान की न्यूनतम आयु 20 वष है। जापानी इतिहास म प्रथम बार महिलाओ को भी मतदान का अधिकार दिया गया है। उच्च सदन क सदस्य—काउन्सलर—भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से ही चुन जात हैं। इनकी सख्या 250 है। काउन्सलर सदन म वशानुगत आधार पर कोई सदस्य निर्वाचित नही हो सकता। 100 काउन्सलर जिला से तथा 150 प्रीफेक्चरो (Prefectures) स चुन जात हैं। काउन्सलर का कायकाल 6 वष है, जिनम से आधे प्रति 3 वष पश्चात चुने जात हैं। अत काउन्सलर सदन एक स्थायी सदन है।

जापानी डाइट विधि निर्माण का सर्वोच्च अग है। सविधान के अनुसार वष म डाइट का एक सामान्य अधिवेशन होना आवश्यक है, लेकिन मन्त्रिमण्डल विशष अधिवशन भी आहूत कर सकता है। दोना सदना की कुल सदस्य सख्या क चौथाई या अधिक सदस्या द्वारा अधिवशन बुलाये जान की माँग करने पर अनिवायत अधिवशन आहूत किया जाता है।

विधेयका का दोनो सदना द्वारा पारित होना आवश्यक होता है। लेकिन वित्त विधेयको को सवप्रथम प्रतिनिधि सदन म ही प्रस्तुत किया जाता है। यदि प्रस्तुत किय जाने के 30 दिन के भीतर काउन्सलरो द्वारा वित्त विधेयक पारित नहीं किया जाता अथवा अस्वीकार कर दिया जाता है तो प्रतिनिधि सदन उसे दो तिहाई बहुमत से पुन पारित कर सकता है और ऐसी स्थिति मे वह दोना सदना द्वारा पारित माना जाता है। यदि गर वित्तीय विधेयको को काउन्सलर सदन अस्वीकृत कर देता है तो उन्ह भी प्रतिनिधि सदन दो तिहाई बहुमत स पुन पारित कर सकता है, तथा ऐसी अवस्था म सम्बन्धित विधेयक दोना सदनो द्वारा पारित हुआ माना जाता है। दोना सदना म मतभेद हो जान की दशा मे दोना सदनो के सयुक्त अधिवेशन का विधान है।

मन्त्रिमण्डल के सदस्य विधेयक पर विचार विमश के समय दोनो म से किसी भी सदन मे उपस्थित हो सकते है, चाहे वे उस सदन के सदस्य हा अथवा न हो। मन्त्रिमण्डल सिद्धान्तत डाइट के प्रति उत्तरदायी है लेकिन व्यवहार म प्रतिनिधि सदन म अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता है। डाइट द्वारा सन्धियो का अनुमोदित किया जाना आवश्यक है। यदि द्वितीय सदन किसी सन्धि को अनुमोदित नही करता और वित्त विधेयक की भाँति प्रतिनिधि सदन उसे दो-तिहाई बहुमत से पुन स्वीकृत कर देता है तो ऐसी दशा म उसे सम्पूण डाइट द्वारा

अनुमोदित माना जाता है। स्पष्ट है कि काउंसलर सदन की स्थिति प्रतिनिधि सदन की तुलना म हेय है।

जापानी डाइट द्वारा निर्मित विधियाँ सविधान विरोधी होने पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैधानिक घोषित की जा सकती हैं। जापानी सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के समान हैं। डाइट को देश के वित्त पर पूरा नियन्त्रण प्राप्त है। मन्त्रिमण्डल के कार्यों पर उसका पूर्ण नियन्त्रण है। प्रधानमन्त्री का नामांकन सम्राट के द्वारा नहीं किया जाता वरन् डाइट करती है। डाइट को प्रशासन के विभिन्न भागों की जाँच करने एव न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने का अधिकार है। इसके लिए दोनों सदनों के समान सदस्यों को मिलाकर एक महाभियोग न्यायालय की स्थापना की जाती है। अत जापानी डाइट म केवल विधि निर्माण की ही शक्तियाँ निहित नहीं हैं लेकिन यह ब्रिटिश ससद की भाँति सम्प्रभु नहीं है यद्यपि सविधान के अनुसार विधि निर्माण का सर्वोच्च अग है।

नेपाल[110] की व्यवस्थापिका—राष्ट्रीय पचायत

नेपाल में एकसदनीय व्यवस्थापिका है। इसे राष्ट्रीय पचायत कहते हैं। नेपाल म विकेन्द्रित पचायती व्यवस्था का श्रीगणेश किया गया है।

---

110 नेपाल भारत के उत्तरी सीमान्त पर स्थित पहाड़ी देश है। इसकी अधिकांश जनता हिन्दू धर्मावलम्बी है। नेपाल के आधुनिक इतिहास का प्रारम्भ 1768 ई से होता है। नेपाल म दिल्ली समझौता के समय तक राणाओं का शासन था। राणा-परिवार का ज्येष्ठ सदस्य देश का प्रधानमन्त्री हुआ करता था एव निरकुश सत्ता का प्रयोग करता था। सम्राट उसके हाथों में कठपुतली की भाँति था। लोकतन्त्र स्थापित करने के लिए कुछ प्रयत्न किये गये थे परन्तु वे असफल रहे। 1950 ई म नेपाली कांग्रेस द्वारा राणाशाही के निरकुशतन्त्र के विरुद्ध महाराज त्रिभुवन वीर विक्रमशाह के सहयोग से विद्रोह किया था। भारत सरकार के सहयोग के फलस्वरूप दिल्ली समझौता हुआ और राणाशाही का अन्त हुआ। नेपाल नरेश पुन पदारूढ हुए, लोकतन्त्रीय आदर्शों के अनुरूप शासन-व्यवस्था एव सविधान निर्माण हेतु सविधान सभा की स्थापना की गयी तथा अन्तरिम शासन की स्थापना की गयी। नवीन सविधान के प्रारूप के निर्माण हेतु सर आइवर जेनिंग्स के निरीक्षण म एक समिति की स्थापना हुई। इसके द्वारा निर्मित सविधान की 12 फरवरी, 1959 ई को घोषणा की गयी। इसका स्वरूप ससदीय था, ससद द्विसदनात्मक थी, निम्न सदन सार्वजनिक मताधिकार पर निर्मित सदन था तथा सम्राट को अवशिष्ट शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं। यह सविधान 30 जून 1959 ई को क्रियान्वित किया गया लेकिन सफलतापूर्वक चल नहीं सका। दिसम्बर 1960 ई म नेपाल नरेश ने सविधान भग कर दिया और शासन सूत्र अपने हाथों में ले लिया। इस सविधान की असफलता का मुख्य कारण यह था कि नेपाल म लोकतन्त्रीय शासन की कोई परम्पराएँ नहीं थीं और तथा राजनीतिक दलों म आवश्यक चेतना का अभाव था तथा जनता

सगठन—ग्रामा स लेकर राष्ट्रीय स्तर तक पिरामिडाकार रूप म पचायता की स्थापना की गयी है। नपाली राष्ट्रीय पचायत की सदस्य-सख्या 125 निर्धारित की गयी है। यह अन्य लोकत त्रीय देशा के निम्न सदना की भाँति सावजनिक मताधिकार पर आधारित लोकप्रिय सदन नहीं है वरन् इसके 90 सदस्य अचल सभाओ, 16 वर्गीय एव व्यावसायिक सगठना तथा 4 स्नातका द्वारा निर्वाचित किय जाते हैं और 16 सदस्या को सम्राट मनोनीत करता है। अत यह निर्वाचित एव मनोनीत सदन है। विभिन्न श्रेणी क सदस्या क कायकाल भी पृथक पृथक हैं। अचल सभाओ द्वारा निर्वाचित सदस्या का कायकाल 6 वष है, इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दो वष पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेत हैं। शेष सभी श्रेणी क सदना का कायकाल चार वष है। राष्ट्रीय पचायत की एक 21 सदस्यी निर्देशक समिति है।

राष्ट्रीय पचायत की सदस्यता सम्बन्धी योग्यताएँ निम्नलिखित हैं—(1) नेपाली नागरिक होना चाहिए, (2) कम से कम 25 वष की आयु हो, (3) शासकीय सेवा मे नही होना चाहिए, लेकिन मन्त्री एव सहायक मन्त्री इस नियम स मुक्त हैं, (4) गोपनीयता भग करने का अपराधी नही होना चाहिए, और (5) किसी विधि क अन्तगत अयोग्य न ठहराया गया हो।

सम्राट राष्ट्रीय पचायत के किसी सदस्य का गोपनीयता भग करन के आराप मे आयोग द्वारा पदच्युत करने की सिफारिश करने पर उस पदच्युत कर सकता है। राष्ट्रीय पचायत का अध्यक्ष, सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश तथा राज्यसभा का एक सदस्य इस आयोग के सदस्य होते है।

अध्यक्ष—राष्ट्रीय पचायत का एक अध्यक्ष होता है जो पचायत की सिफारिश पर पचायत द्वारा नियुक्त किया जाता है। इसका कायकाल 2 वष है। वह पुनर्निर्वाचित हो सकता है। राष्ट्रीय पचायत के कुल सदस्या के दो तिहाई सदस्या के बहुमत की सिफारिश पर सम्राट अध्यक्ष को पदच्युत कर सकता है। अध्यक्ष पद क रिक्त होने या बीमारी या अन्य कारण से अपने दायित्वो का सम्पादन न कर सकन पर सम्राट के आदेश पर उपाध्यक्ष अध्यक्ष के कार्यों को सम्पादित करता है।

और राजनीतिक वातावरण भ्रष्ट था। नेपाल का वतमान सविधान 1962 ई म लागू किया गया जो एक समिति के सहयोग से बनाया गया था। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—(1) यह लिखित, निर्मित एव कठोर सविधान है (2) सम्राट द्वारा प्रदत्त है सम्प्रभुता सम्राट म निहित है। सम्राट सम्पूण राजनीतिक व्यवस्था की केन्द्रीय धुरी है, (3) नेपाल एक स्वत त्र, अविभाज्य एव सावभौम राजत त्रीय हिन्दू राज्य है, (4) विकेन्द्रित लोकत त्र के आधार पर पचायती व्यवस्था की स्थापना की गयी है (5) मौलिक अधिकारो एव सावजनिक नीति के उद्देश्यो एव सिद्धान्ता का सविधान म उल्लेख है, (6) एकात्मक राज्य एव (7) ससदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन-पद्धतियो का मिश्रण है। नेपाली सविधान देश की मौलिक विधि (fundamental law) है।

राष्ट्रीय पचायत का अध्यक्ष उसके अधिवेशनो की अध्यक्षता करता है, पचायत के अधिवेशनो में अनुशासन रखता है, सदन का कार्यक्रम निर्धारित करता है एव विभिन्न कार्यक्रमो का समय निश्चित करता है तथा राष्ट्रीय पचायत के नियमो का पालन कराता है। एक प्रकार से वह सम्राट एव राष्ट्रीय पचायत के मध्य कडी का कार्य करता है। वह किसी भी सदस्य को अनुशासन भग करने पर दण्ड दे सकता है, उसे निष्कासित एव सदस्यता से निलम्बित कर सकता है, सदस्यो को भाषण एव वाद-विवाद की अनुमति प्रदान करता है विवाद की स्थिति में निर्णायक मत देता है। वैसे सामान्यत वह मत नही देता है। अध्यक्ष की स्थिति अन्य देशो के विधानमण्डलो के अध्यक्षो की ही भाँति है।

राष्ट्रीय पचायत अपने सदस्यो में से एक को उपाध्यक्ष चुनती है जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में राष्ट्रीय पचायत के अधिवेशनो की अध्यक्षता करता है।

सत्र—सम्राट को पचायत के अधिवेशन को आहूत करने का अधिकार प्राप्त है लेकिन प्रथम एव द्वितीय अधिवेशन के मध्य 6 माह से अधिक का अन्तर नही होना चाहिए। सम्राट को राष्ट्रीय पचायत का अधिवेशन निश्चित तिथि के पूर्व आहूत करने का अधिकार है। प्रथम सवैधानिक सशोधन (1967 ई) के पूर्व राष्ट्रीय पचायत के खुले अधिवेशन नही होते थे। सभी अधिवेशन बन्द कमरे में हुआ करते थे। लेकिन अब सम्मेलन में कुछ श्रेणियो की पचायतो एव वर्गीय सगठनो के प्रतिनिधियो को उपस्थित होने की अनुमति है। सम्राट को प्रेस एव जनता के लिए भी अधिवेशन खुला घोषित करने का अधिकार है। सम्राट को राष्ट्रीय पचायत के अधिवेशन में भाषण देने का अधिकार है तथा वह राष्ट्रीय पचायत को सन्देश भी भेज सकता है। राष्ट्रीय पचायत के सदस्यो को बहुमत से सम्राट के पास सन्देश भेजने का अधिकार है।

कुल सदस्य-सख्या के एक तिहाई सदस्यो की उपस्थिति गणपूर्ति के लिए अनिवार्य है।

कार्य—राष्ट्रीय पचायत के कार्य एव दायित्व निम्नवत् है

विधायी कार्य—वह देश का एक मात्र विधानमण्डल है। विधि निर्माण उसका प्रमुख कार्य है। राष्ट्रीय पचायत के विधेयक सम्राट की स्वीकृति के पश्चात ही विधि बनते हैं। वित्त, सेवा एव मौलिक अधिकार सम्बन्धी विधेयक सम्राट की पूर्व-स्वीकृति से ही राष्ट्रीय पचायत में उपस्थित किये जा सकते है। सम्राट को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है लेकिन ऐसे अध्यादेशो को राष्ट्रीय पचायत के आगामी सत्र में प्रथम अधिवेशन के सात दिन के अन्दर उपस्थित करना आवश्यक है। यदि अध्यादेशो को पचायत स्वीकृत नही करती है तो वे तुरन्त समाप्त हो जाते हैं। यदि वे पचायत के सत्र में स्वीकृति हेतु उपस्थित नही किये जाते तो राष्ट्रीय पचायत के अधिवेशन के 40 दिनो के पश्चात स्वत ही समाप्त हो जाते है।

कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य—मन्त्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रीय पचायत के

सदस्य होते हैं। राष्ट्रीय पचायत के सदस्या को उनके कार्यों की आलोचना का अधिकार है। वे प्रश्न, पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं एव वाद विवाद की माँग कर सकते हैं। राष्ट्रीय पचायत अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर सकती है। किसी मन्त्री के विरुद्ध राष्ट्रीय पचायत के सदस्य अपने 2/3 बहुमत से अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर सकते हैं। लेकिन सम्राट ऐसे प्रस्तावो को स्वीकृत या अस्वीकृत करने के लिए स्वतन्त्र है। स्मरणीय है कि मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय पचायत के प्रति उत्तरदायी न होकर सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता है।

न्यायिक काय—राष्ट्रीय पचायत को सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की अक्षमता या कदाचार के कारण असमथ होने पर उसे पदच्युत करने हेतु सम्राट को सम्बोधित करने का अधिकार है।

वित्तीय काय—वार्षिक बजट पारित करना और कर निधारण राष्ट्रीय पचायत द्वारा ही किये जाते हैं। सचित निधि पर भारित व्यया को राष्ट्रीय पचायत पारित नही करती है अपितु उन पर केवल सदन म वाद-विवाद होता है।

अन्य काय—राष्ट्रीय पचायत अपने अध्यक्ष एव समितियो के सदस्यो का निर्वाचन करती है। सवैधानिक सशोधन के हेतु निर्मित विशिष्ट समिति मे राष्ट्रीय पचायत की स्थायी समिति के सदस्य होते हैं।

मूल्याकन

राष्ट्रीय पचायत विधायी सदन है। लेकिन इसका गठन एव शक्तिया लोकतन्त्रीय सिद्धान्तो पर अपेक्षाकृत कम ही आधारित हैं। यह अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन है। मन्त्रिमण्डल (कायपालिका) इसके प्रति उत्तरदायी नहीं है। राष्ट्रीय सभा के सदस्य सदन के दो-तिहाई बहुमत से मन्त्री को पदच्युत करने की केवल माग कर सकते हैं, इस माँग को स्वीकार या अस्वीकार करना सम्राट की इच्छा पर निभर है। सवैधानिक सशोधन के सम्बन्ध मे इसे कोई शक्ति प्राप्त नही है। यह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो को पदच्युत करने की केवल सिफारिश कर सकती है। यह मन्त्रिमण्डल पर केवल प्रश्न पूछ कर नियन्त्रण रख सकती है। लेकिन इस प्रकार का नियन्त्रण व्यवहार म निष्प्रभावी है क्योकि मन्त्रिमण्डल सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता है। इसकी स्थिति ब्रिटिश ससद एव भारतीय ससद की तुलना म नगण्य है। यह बहुत कुछ स्वतन्त्रता से पूव की 'भारतीय केन्द्रीय धारासभा' के समकक्ष है। नेपाल म दलीय व्यवस्था का अभाव है। फलस्वरूप राष्ट्रीय पचायत के सदस्य व्यक्तिगत रूप मे ही अपने विचार व्यक्त करते है। राजनीतिक दलो को 1962 ई म समाप्त करके उनके स्थान पर 5 वर्गीय सगठनो[111] का निर्माण किया गया है।

111 ये वर्गीय सगठन इस प्रकार है (1) नेपाल कृषक सगठन, (2) नेपाल युवक सगठन, (3) नेपाल नारी सगठन (4) नेपाल श्रमिक सगठन, एव (5) नेपाल भूतपूव सनिक सगठन।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय पचायत म कुछ मनोनीत सदस्य होते है । अत ऐसे सदन से यह अपेक्षा नही की जा सकती कि वह राज्यसत्ता का केन्द्र बन सकेगा । नेपाल म राष्ट्रीय पचायत की स्थिति सम्राट की तुलना म गौण है । श्रीमन्नारायण अग्रवाल के अनुसार नेपाल नरेश दल-विहीन पचायती लोकतन्त्र की इस प्रणाली की स्थापना के लिए कृत सकल्प हैं । उनके इस प्रयत्न क विरुद्ध सन्देह व्यक्त किये जाते रहे हैं एव प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप म ससदीय लोकतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना की माँग उठती रही है । नेपाली काग्रस के नेता बी पी कोइराला इस मत के मुख्य समथक है । नेपाल नरेश की दृष्टि म राजनीतिक दलो की पुनस्थापना नेपाल जैसे देश म कल्याण-कारी राज्य की स्थापना की दृष्टि से उचित नही है । नेपाली पचायती व्यवस्था मे ग्राम्य स्तर पर वयस्क मताधिकार पर प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की स्थापना की गयी है । जिला क्षेत्र, एव राष्ट्रीय स्तर के उच्च निकाय अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते है । श्रीमन्नारायण अग्र-वाल के अनुसार, ' मैं छोटे एव विकासोन्मुख देश नेपाल म इस प्रकार के प्रजातन्त्र मे कोई हानि नही देखता । गाधीजी ने स्वत निम्नतम स्तरो पर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र एव शीपस्थ सस्थाओ के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन का सुझाव दिया है । नेपाल की इस लोकतन्त्रीय व्यवस्था का मुख्य दोष एव कमी यह है कि राष्ट्रीय पचायत को प्रधानमन्त्री के रूप मे काय करने हेतु अपना नेता चुनने की अनुमति प्राप्त नही है । वतमान व्यवस्था के अन्तगत यदि सम्राट उचित समझे तो राष्ट्रीय पचायत के परामश के पश्चात वह प्रधान मन्त्री की नियुक्ति कर सकते हैं ।'[112]

पाकिस्तान का विधानमण्डल

1962 ई के पाक सविधान के अन्तगत पाकिस्तान विधानमण्डल एकसदनीय था । इसको राष्ट्रीय सभा (National Assembly) की सज्ञा दी गयी थी एव इसकी सदस्य सख्या 156 थी । 1967 ई म सवैधानिक सशोधन द्वारा इसकी सदस्य-सख्या बढाकर 218 कर दी गयी थी । राष्ट्रीय सभा म 6 स्थान स्त्रियो के लिए सुरक्षित किये गये थे तथा पूर्वी एव पश्चिमी पाक से बराबर सख्या मे सदस्य निर्वाचित होते थे । 1967 ई के सवैधानिक सशोधन द्वारा 10 स्थान भूतपूर्व राष्ट्रपतियो, विधानमण्डलो के अध्यक्षो, राज्यपालो, मन्त्रियो एव कला, विज्ञान या साहित्य के क्षेत्र म ख्यातिनामा विद्वानो के लिए सुरक्षित किये गये थे जिसे 1970 ई से क्रियान्वित किया जाना था । राष्ट्रीय सभा का कायकाल 5 वष था लेकिन इसे इस अवधि से पूव भी विघटित किया जा सकता था और अपने कायकाल की समाप्ति पर सदन स्वत विघटित हो जाता था । राष्ट्रीय सभा को आहूत करने एव उसके सत्रावसान तथा स्थगित एव विघटित करने के अधि-कार राष्ट्रपति को प्राप्त थे । राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष को एक-तिहाई सदस्यो द्वारा माग करने पर सदन को आहूत करने का अधिकार था लेकिन राष्ट्रपति इस स्थगित कर सकता था । राष्ट्रपति एव राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष के स्थानो के

---

112 S Narain *India and Nepal*, pp 89 90

रिक्त होने पर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को राष्ट्रीय सभा को आहूत करने का अधिकार था। राष्ट्रपति राष्ट्रीय सभा को विघटित कर सकता था लेकिन विघटन की तिथि से तीन माह के अन्दर निर्वाचन का होना आवश्यक था। राष्ट्रीय सभा का निर्वाचन निर्वाचक मण्डल के सदस्यो द्वारा किया जाता था।[113] प्रति 6 माह म इसका एक अधिवेशन होना अनिवाय था। इसका अध्यक्ष राष्ट्रीय सभा के सदस्या द्वारा चुना जाता था। राष्ट्रपति के पदच्युत होने तथा उसकी शारीरिक या मानसिक अस्वस्थता की दशा म राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष राष्ट्रपति के रूप म काय कर सकता था। विधान मण्डल के अध्यक्षो के परम्परागत कतव्य अध्यक्ष द्वारा सम्पादित किये जाते थे।

---

113 15 अगस्त, 1947 ई को भारत विभाजन के साथ पाकिस्तान का जन्म हुआ है। इस प्रदेश का उदय मुस्लिम साम्प्रदायिकता एव द्विराष्ट्र सिद्धान्त का परिणाम है। 1961 ई म इसकी जनसख्या $9\frac{1}{2}$ करोड थी। यह मुस्लिम बहुल देश है। जन्म के समय पाकिस्तान के दो भाग थे—पूर्वी पाकिस्तान जो अब बगला देश के रूप म सम्पूण-प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्र बन चुका है, एव पश्चिमी पाकिस्तान। पाकिस्तान इस्लामी राज्य है। पाकिस्तान म व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन के प्रत्यक पहलू पर इस्लाम छाया हुआ है। पाकिस्तान का प्रथम सविधान 1956 म बना था। 1947 स 1956 ई तक पाकिस्तान का शासन भारतीय शासन अधिनियम, 1935 ई के अनुसार सगठित किया गया था एव उसके अनुसार चलता रहा। इसम आवश्यकतानुसार समय समय पर परिवतन कर दिय गय थे। पाकिस्तान के निर्माता श्री मोहम्मद अली जिन्ना 1947 ई मे ही प्रथम गवनर जनरल नियुक्त किये गये थे। 1947 ई म गठित पाक सविधान सभा भारत शासन अधिनियम 1935 ई के अनुसार सघीय व्यवस्थापिका के रूप म काय करती रही। इसके अतिरिक्त एक सघीय न्यायालय (Federal Court) भी था। सविधान सभा ने 1956 ई मे सविधान-निर्माण का काय पूरा किया और 23 माच, 1956 को नवीन सविधान लागू किया गया। 1956 इ के पाक के इस्लामी गणराज्य की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत हैं (1) इस्लाम के सामाजिक न्याय के सिद्धान्ता पर पाक राज्य का निर्माण किया गया था। (2) सविधान म नीति निर्देशक तत्वा की व्यवस्था की गयी थी। (3) वित्त-आयोग एव राष्ट्रीय वित्त समिति की स्थापना की गयी थी। (4) सघ गणराज्य की स्थापना की गयी एव अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तो का प्रदान की गयी। (5) गवनर-जनरल के स्थान पर निर्वाचित राष्ट्रपति का विधान किया गया। (6) केन्द्र एव प्रान्ता म एकसदनीय विधानमण्डला की स्थापना की गयी। (7) ससदीय शासन-व्यवस्था की स्थापना की गयी थी तथा पाक राष्ट्रपति के लिए मन्त्रिया के परामश पर काय करना आवश्यक था। (8) सर्वोच्च न्यायालय एव उच्च न्यायालया की स्थापना की गयी थी। न्यायपालिका सविधान की सरक्षक थी एव उस व्याख्या का अधिकार प्राप्त था। (9) सविधान म मौलिक अधिकारा का उल्लख किया गया था। (10) एकल नागरिकता का निर्माण किया गया। (11) सविधान कठोर नही था। कुछ अस्थायी अनुच्छेदा के निर्माण द्वारा सविधान म सशोधन किया जा सकता था जो ससद द्वारा निरस्त न किय जान तक प्रभावी होत थ।

राष्ट्रीय सभा का मुख्य काय विधि निर्माण करना था और सविधान द्वारा उल्लिखित विधि निर्माण के सिद्धान्ता का उसके द्वारा पालन आवश्यक था। न्यायालया को इन सिद्धान्ता के विपरीत विधियो को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार दिया गया था। विधिया के पारित होने के 30 दिन के भीतर उन्ह स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार दिया गया था। राष्ट्रीय सभा अस्वीकृत विधेयका को पुन अपने दो तिहाई बहुमत से पारित कर सकती थी। ऐसी अवस्था म राष्ट्रपति के लिए 10 दिन के भीतर पुन पारित विधेयक को स्वीकृति दना आवश्यक था या वह सभा को विघटित कर सकता था या विधेयक को जनमत सग्रह के लिए निर्वाचकगणा को भेज सकता था।

यह सविधान सफलतापूवक न चल सका। 7 अक्टूबर, 1958 ई को फील्ड माशल मोहम्मद अयूब खाँ ने सैनिक शासन की घोषणा कर दी एव पाक राजनीति की सफाई का प्रयत्न किया। 17 फरवरी, 1960 ई को अयूब खा द्वारा पाकिस्तान म ससदीय शासन की असफलता तथा नवीन सविधान की रूप रेखा प्रस्तुत करने के लिए एक आयोग की स्थापना की गयी। इस आयोग के प्रतिवदन पर पाक के द्वितीय नवीन सविधान का निर्माण किया गया। यह 8 जून, 1962 को लागू हुआ।

अयूबशाही के विरुद्ध लोकतन्त्रीय शक्तियाँ धीरे धीरे सक्रिय होने लगी। 1967 ई मे पाकिस्तान म लोकतन्त्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जो सफल नही हुआ। 1967 ई म श्री भुट्टो न लोकतन्त्र की स्थापना के लिए पीपुल्स पार्टी का निर्माण किया। 21 माच, 1969 ई को राष्ट्रपति जनरल अयूब ने पाक सेनापति जनरल याहिया खा को पाकिस्तान का मुख्य सनिक प्रशासक नियुक्त किया। उनक द्वारा 1962 ई का सविधान रद्द कर दिया गया। 31 माच, 1969 ई को वे राष्ट्रपति बने एव 4 अप्रल को उन्होने 1962 ई के सविधान के कुछ उपबन्धा को लागू किया तथा एक नवीन सविधान क निर्माण की घोषणा की। अक्टूबर 1970 को वयस्क मताधिकार के आधार पर राष्ट्रीय सभा के चुनाव हुए परन्तु नवीन राष्ट्रीय सभा 120 दिन मे सविधान न बना सकी। फलस्वरूप नवीन निर्वाचन किय गये। पूर्वी पाकिस्तान म मुजीबुरहमान के नेतत्व म आवामी लीग ने इन निर्वाचना मे 169 म से 167 स्थान प्राप्त किये। श्री भुट्टो की पीपुल्स पार्टी को 83 स्थान मिले। अन्य दला को शेप 61 स्थान प्राप्त हुए थे। भुट्टा एव याहिया को मुजीव की नीति पसन्द नही थी अत राष्ट्रीय सभा की बठक स्थगित कर दी गयी। फलस्वरूप राजनीतिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। पूर्वी पाक म पाक अधिकारिया के अत्याचारो ने उन्ह स्वतन्त्रता के लिए सघप करन को बाध्य कर दिया। सशस्त्र विद्रोह एव सघप के पश्चात बगला देश का जन्म हुआ। 20 दिसम्बर, 1971 ई को पाक की पराजय के पश्चात भुट्टो राष्ट्रपति बने। 1962 ई के सविधान को समाप्त कर दिया गया। 1972 ई म ततीय नवीन सविधान बना। पूर्वी पाक को स्वतन्त्र होने के पश्चात पाकिस्तान म पुन ससदीय शासन की स्थापना की गयी है। सविधान के अनुसार पाकिस्तान को गणराज्य घोपित किया गया है। मौलिक अधिकारो की भी व्यवस्था की गयी है।

जनमत सग्रह म दा तिहाई बहुमत से समथन प्राप्त होने पर विधेयक पारित हो जाता था। राष्ट्रीय सभा की वित्तीय शक्तियाँ नगण्य थी। उसमे केवल बजट क अनुदाना पर ही मतदान होता था यद्यपि सदस्यो को सम्पूण बजट पर बहस का अधिकार प्राप्त था। आय व्यय की किसी राशि का राष्ट्रीय सभा द्वारा अनुमोदन न किये जाने पर शासन का पदत्याग की आवश्यकता नही थी। सदस्या को वाद विवाद की सुविधा प्राप्त थी। वे प्रश्न एव पूरक प्रश्न पूछ सकते थ परन्तु मन्त्री उनका उत्तर देने के लिए बाध्य नही थे।

मूल्याकन—पाक राष्ट्रीय सभा जनमत को नापने का उपयुक्त यन्त्र नही थी। यह अप्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित सदन था। निर्वाचक मण्डल के सदस्यगण पाक की जनता का विकल्प नही हो सकते थे। निर्वाचन की जिस अप्रत्यक्ष व्यवस्था को अयूब खा ने चालू किया था उसका मुख्य उद्देश्य दलीय व्यवस्था के दोषो को दूर करना था। लेकिन यह उद्देश्य भी पूण नही हुआ। राष्ट्रीय सभा विधायी एव वाद विवाद करने वाले सदन के रूप म भी ठीक ढग से काय न कर सकी। उसकी शक्ति सीमित थी। राष्ट्रपति को कुछ विधायी अधिकार प्राप्त थे। इसके अतिरिक्त उसे सभा का विघटित करने की शक्ति भी प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति का व्यापक आपातकालीन विधायी शक्तिया प्राप्त थी। राष्ट्रीय सभा की वित्तीय शक्ति नाममात्र की थी। सरकार पर उसका कोई नियन्त्रण नही था अपितु राष्ट्रीय सभा पर शासन का ही नियन्त्रण रहता था। राष्ट्रीय सभा म सरकार की पराजय का अथ शासन द्वारा पदत्याग करना नही हुआ करता था। इस सविधान क अधीन पाक म एकसदनीय व्यवस्थापिका का अनोखा प्रयोग किया गया था। स्मरणीय है कि पाक जैस बडे देशो म जहाँ भाषा एव क्षेत्र की विभिन्नताएँ पायी जाती हो एव सघीय शासन के लिए जो उवर भूमि हो, वहाँ इस प्रयोग का असफल होना स्वाभाविक था।

12

व्यवस्थापिका—विधि-निर्माण प्रक्रिया एव सम्बन्धित विपय

[LEGISLATURES—LAW MAKING AND THE RELATED SUBJECTS]

इस अध्याय मे व्यवस्थापिका के प्रमुख दायित्व विधि निर्माण की प्रक्रिया एव उससे सम्बन्धित विपयो जैस व्यवस्थापिका के अध्यक्ष एव उनके अधिकारो सम्बन्धी प्रश्नो का अध्ययन किया गया है। विधि निर्माण की भी विभिन्न देशा म पृथक पृथक प्रणालिया है। वित्त विधेयक एव गैर वित्तीय विधेयक को पारित करने क लिए भिन्न पद्धतिया का प्रयोग किया जाता है। आज भी स्विट्जरलैण्ड के कुछ केण्टना एव सयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यो म प्रत्यक्ष रीति स विधि निर्माण होता है। हर देश मे विधि निर्माण मे व्यवस्थापिका की समितिया महत्वपूण योग दती ह। लेकिन ग्रेट ब्रिटेन व अमेरिका की समिति व्यवस्था म अतर ह। व्यवस्थापिका विधि निमाण सम्बन्धी सभी दायित्वा को अनेक कारणो स स्वय पूरा नही कर पाती है। कार्याधिक्य एव समयाभाव तथा तक्नीकी विषया सम्बन्धी अपेक्षित ज्ञान का अभाव इसका प्रधान कारण है। अत व्यवस्थापिका विधि से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तो को निधारित करके तत्सम्बन्धी नियमो एव उपनियमा के निर्माण का दायित्व कायपालिका को सौप दती है। इस व्यवस्था को प्रदत्त विधान (Delegated Legislation) कहते है। इस अध्याय मे व्यवस्थापिका के अध्यक्ष, विभिन्न विधि निमाण पद्धतिया, एव समिति व्यवस्था का उल्लेख किया गया है तथा अगले अध्याया म प्रत्यक्ष विधि निर्माण[1], प्रदत्त व्यवस्थापन एव सदस्यो क विशेषाधिकार सम्बन्धी प्रश्नो का अध्ययन किया गया है।

व्यवस्थापिका के अध्यक्ष

विधि निमाण व्यवस्थापिका का प्रधान काय है। वाद विवाद एव विचार-

---

1 अध्याय 13

विमर्श विधि निर्माण के आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यवस्थापिका की अपनी कार्य-पद्धति या कार्य संचालन रीति और उसी से सम्बन्धित नियम भी होने हैं। इन नियमों का क्रियान्वयन व्यवस्थापिका के बहुसंख्यक सदस्यों एवं समाज की न्याय एवं विवेक की धारणा तथा विधानमण्डल द्वारा विचाराधीन एवं सम्पादित किये जाने वाले कार्य की प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान पर निर्भर करता है। व्यवस्थापिका की प्रतिष्ठा उसके निर्णयों पर निर्भर करती है। व्यवस्थापिका के कार्य संचालन सम्बन्धी नियमों को भली-भाँति क्रियान्वित करने के लिए एक अधिकारी की आवश्यकता है जो उनकी व्याख्या कर सके एवं उन्हें व्यवहार में ला सके। अतः फाइनर के अनुसार विधानमण्डल के "अध्यक्ष (Presiding Officer) में अनेक गुण होने चाहिए विचार अभिव्यक्ति के समय निपुणता या चतुराई (tact) के साथ-साथ उसे पर्याप्त सजग होना चाहिए जिससे कि त्रुटियों को पकड़कर अव्यवस्था को रोका जा सके। उसके प्रमुख गुण उसकी निर्णय-शक्ति एवं निष्पक्षता हैं एवं (अध्यक्ष के लिए) नियमों के ज्ञान की आवश्यकता सुस्पष्ट ही है।"[2] निष्पक्षता के लिए किसी स्पष्ट प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। फ्रेंच राष्ट्रीय सभा (French National Assembly) एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष निष्पक्ष नहीं होते। अध्यक्ष के पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण एवं व्यवहार से समय का अपव्यय होता है क्योंकि ऐसी अवस्था में उसके निर्णयों को प्रति क्षण चुनौती दी जा सकती है। इसका एक अन्य दुष्परिणाम भी होता है। विधि निर्माण में यदि शासन अत्यधिक हस्तक्षेप करता है तो उस पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि जो विधियाँ पारित की गयी हैं वे अनुचित ढंग से पारित की गयी हैं। ऐसी अवस्था में विधियाँ अपनी पवित्रता एवं प्रभाव खो बैठती हैं। इसके अतिरिक्त अध्यक्ष के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से व्यवस्थापिका में अव्यवस्था की हर सम्भावना रहती है। अन्य व्यवस्थापिकाओं की अपेक्षा ब्रिटिश संसद के अध्यक्ष अपने आचरण में पूर्णतः निष्पक्ष होते हैं। संसदीय देशों में निम्न सदन के अध्यक्ष की निष्पक्षता एवं निर्दलीयता लोकतन्त्र की सफलता के लिए न्यायपालिका की निष्पक्षता एवं संसदीय सम्प्रभुता के समान ही आवश्यक है।

उच्च सदनों के अध्यक्ष

अग्रिम पृष्ठों में निम्न सदन के अध्यक्षों (speakers) का विस्तार में अध्ययन किया गया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि उच्च सदनों के भी अध्यक्ष (Presiding Officers) होते हैं। अध्यक्षों के अतिरिक्त व्यवस्थापिका के अन्य अधिकारी भी होते

---

2 "A Presiding officer needs many qualities for instance tact and sufficient alertness during hours of speeches to detect and stop any disorder The prime qualities are decision and impartiality The need for a knowledge of ruler is obvious"—Finer, H op cit, p 474

है, यथा—व्यवस्थापिका के सचिव एवं उसके अन्य सहयोगी अधिकारी।[3] व्यवस्थापिका का अपना सचिवालय भी होता है।

ब्रिटिश लॉर्डसभा के अध्यक्ष को लार्ड चान्सलर (Lord Chancellor)[4] कहते हैं। वह मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है और मन्त्रिमण्डल के कार्य काल-पर्यन्त लार्डसभा का अध्यक्ष रहता है। उसकी नियुक्ति के सन्दर्भ में सदन से परामर्श नहीं किया जाता। प्रधानमन्त्री इसके नाम की सिफारिश करता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य के रूप में वह लार्डसभा का पदेन अध्यक्ष है। कामन्स सभा के स्पीकर की तुलना में लॉर्डसभा के अध्यक्ष की शक्तियां नगण्य हैं। उदाहरण के लिए, यदि दो सदस्य एक साथ बोलने के लिए खड़े होते हैं तो यह निर्णय करना सदन का कार्य है कि पहले कौन बोलेगा। लॉर्डसभा में व्यवस्था स्थापित करने का दायित्व अध्यक्ष का नहीं अपितु सदन ही का होता है। सदस्यगण अध्यक्ष को सम्बोधित न करके साथी लॉर्डों को 'My Lords' कह कर सम्बोधित करते हैं। यदि लॉर्ड चान्सलर पीयर है तो वह सदन के वाद विवाद में भाग ले सकता है अन्यथा नहीं। वाद विवाद में भाग लेते समय वह अध्यक्ष की कुर्सी से हट जाता है। वह दलीय आधार पर मत भी दे सकता है लेकिन उसे निर्णायक मत प्राप्त नहीं है। उसकी अनुपस्थिति में क्राउन द्वारा नियुक्त डिप्टी स्पीकर या सदन द्वारा नियुक्त उपाध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करता है।

अमेरिकी सीनेट का अध्यक्ष अमेरिकी संघ का उपराष्ट्रपति होता है।[5] इसी प्रकार, भारतीय उच्च सदन (राज्यसभा) की अध्यक्षता भी उपराष्ट्रपति (vice president) करता है। दोनों ही उपराष्ट्रपति अपने-अपने देशों के उच्च सदनों के पदेन अध्यक्ष होते हैं। दोनों ही अपने कार्यकाल पर्यन्त अपने-अपने सदनों की अध्यक्षता करते हैं। उनके अधिकार व शक्तियां निम्न सदनों के अध्यक्षों (स्पीकर) की ही भांति होती हैं। भारत में उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति में सदन की अध्यक्षता के लिए सदन अपने में से ही उपाध्यक्ष का निर्वाचन करता है।[6] उपाध्यक्ष को सदन साधारण बहुमत से प्रस्ताव पारित करके पदच्युत कर सकता है। भारतीय उपराष्ट्रपति सदन का सदस्य नहीं होता, उसे केवल निर्णायक मत प्राप्त है।[7]

अमरिकी उपराष्ट्रपति सीनेट का सदस्य नहीं होता वह सीनेट के बहुमत दल से

---

3 Other permanent officials of the House of Lords are the clerk of the parliament, the Clerk Assistant the Reading Clerk the Fourth Clerk (Judicial) the Gentleman Usher of the Black Rod and Serjeant at Arms The British Parliament B I S Monogram, May 1973 p 8
4 *Ibid* pp 7 8
5 Article 1 Section III of the U S Constitution quoted by Ogg and Ray *Essentials of American Government* 1967 p 686 also see pp 201 202
6 Article 89
7 Article 100 (2)

भिन्न दल का हो सकता है। सीनेट की समितियों की वह नियुक्ति नहीं करता और केवल विवाद की स्थिति में ही निर्णायक मत देता है। सीनेट का अध्यक्ष प्रत्येक सदस्य को उसी क्रम में विचार व्यक्त करने का अवसर देता है जिस क्रम में वे खड़े होते जाते हैं। अतः उसे प्रतिनिधि सदन के स्पीकर की भांति स्वीकृत करने (recognition) की शक्ति प्राप्त नहीं है। उपराष्ट्रपति प्रतिनिधि सदन के स्पीकर की भांति सीनेट का नेतृत्व नहीं करता है। सीनेट में वाद-विवाद सम्बन्धी इस परम्परा का विकास हुआ है कि अध्यक्ष दोनों दलों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करेगा। सीनेट अपने में से ही अस्थायी अध्यक्ष (President pro Tempore) को चुनती है जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सीनेट की अध्यक्षता करता है। अस्थायी अध्यक्ष यद्यपि सीनेट द्वारा निर्वाचित होता है परन्तु व्यवहार में वह बहुमत दल की समिति द्वारा निर्वाचित किया जाता है एवं प्रतिनिधि सदन के स्पीकर की भांति बहुमत दल का नेता होता है। ऑग एवं रे के अनुसार प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष की भांति अस्थायी अध्यक्ष का पद दलीय है और वह बहुमत दल के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करता है।[8]

ब्रिटिश कामन्स सभा का अध्यक्ष

ब्रिटिश कॉमन्स सभा के अध्यक्ष को स्पीकर कहा जाता है यद्यपि वह कामन्स सभा के वाद विवाद एवं विचार विमर्श में कभी कोई भाग नहीं लेता। वह जब कभी बोलता है तब लोकसभा में नहीं अपितु लोकसभा की तरफ से बोलता है। स्पीकर के पद की उत्पत्ति अतीत के गर्त में विलीन है। उसका पद सम्मान, प्रतिष्ठा एवं सत्ता का है। प्रथम ज्ञात स्पीकर का नाम सर थामस हंगरफोर्ड (Sir Thomas Hungerford) था। वे 1377 ई. में अध्यक्ष थे।[9] प्राचीन काल में स्पीकर कॉमन्स सभा का प्रवक्ता होता था। वह सदन की तरफ से राजा के समक्ष आवेदनों एवं प्रार्थना-पत्रों को प्रस्तुत किया करता था। इस पद का विगत 600 वर्षों में विकास हुआ है। प्रारम्भ में स्पीकर की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी। लेकिन अब स्पीकर निर्वाचित होने लगा है परन्तु इसके पश्चात भी जैसा कोक (Coke) ने 1648 ई. में कहा है, 'परम्परा यह बनी हुई है कि राजा किसी योग्य एवं विद्वान व्यक्ति को स्पीकर नामांकित करता है और कॉमन्स सभा द्वारा उसका निर्वाचन किया जाता है।' जार्ज तृतीय के काल तक स्पीकर के निर्वाचन में राजा का प्रभाव होता था। आज भी स्पीकर के निर्वाचन को राजा द्वारा स्वीकृत किया जाता है लेकिन यह केवल औपचारिकता मात्र ही है। सिद्धान्ततः स्पीकर या अध्यक्ष का निर्वाचन कामन्स सभा द्वारा होता है लेकिन व्यवहार में प्रधानमन्त्री किसी सुयोग्य व्यक्ति का मन्त्रिमण्डल के सदस्यों एवं विरोधी दल के नेता के परामर्श से चयन करता है। इसके पश्चात कामन्स सभा के सदस्यों द्वारा

8 Ogg and Ray *op cit*, p 202
9 कामन्स सभा के कुछ प्रमुख स्पीकरों के नाम है—पीटर डी माउण्टफोर्ड (Peter de Montford), सर थामस मूर (Sir Thamas Moore), सर एडवर्ड कुक (Sir Edward Cocke) एवं सर विलियम लेन्थाल (Sir William Lenthal)।

उसका नाम प्रस्तावित किया जाता है एवं दो वैयक्तिक सदस्य उसका समर्थन करते हैं। स्पीकर का निर्वाचन दलीय आधार पर होता है। सामान्यतः बहुमत दल के ही किसी सदस्य का नाम प्रस्तावित किया जाता है लेकिन विरोधी दल से इस सम्बन्ध में परामर्श अनिवार्यतः किया जाता है। जिस नाम के सम्बन्ध में विरोधी दल सहमत नहीं होता है, प्रधानमन्त्री द्वारा उस नाम को प्रस्तावित नहीं किया जाता है। इस परम्परा का उद्देश्य अध्यक्ष के निर्वाचन का सर्वसम्मति से करना है। यद्यपि अध्यक्ष का निर्वाचन दलीय आधार पर होता है परन्तु निर्वाचन के पश्चात वह निर्दलीय हो जाता है एवं पूर्ण निष्पक्षता से आचरण करता है।

निष्पक्षता, निर्दलीयता एवं स्थायित्व ब्रिटेन के स्पीकर की मुख्य विशेषताएँ हैं। वह निष्पक्षता से सदन के नियमों का पालन करता है और राजनीतिक दलबन्दी से अपने को पूर्णरूपेण पृथक रखता है। निर्वाचित होने के पश्चात स्पीकर राजनीतिक दल से पूर्णरूपेण सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। चार्ल्स प्रथम के शासन काल में घटित एक घटना से उसकी निष्पक्षता पर प्रकाश पड़ता है।[10] चार्ल्स प्रथम (1625-1647) का संसद से संघर्ष छिड़ा हुआ था। चार्ल्स ने 1642 ई. में एक दिन कामन्स सभा में घुसकर स्पीकर से पूछा कि उसका विरोध करने वाले विद्रोही पाँच सदस्य कहाँ हैं? तत्कालीन स्पीकर लिनथाल (Linthall) ने इस पर यह उत्तर दिया था कि "महाराज इस स्थान पर कामन्स जिसका कि मैं सेवक हूँ के निर्देशन के अलावा मुझे देखने एवं कुछ कहने के लिए आँख एवं जिह्वा प्राप्त नहीं है। स्पीकर सदन के नियमों एवं कार्य पद्धति का निष्पक्ष संरक्षक होता है। फलतः नवीन निर्वाचन में वह निर्विरोध निर्वाचित होता है। यद्यपि स्पीकर का निर्वाचन कामन्स सभा की अवधि के लिए होता है परन्तु ग्रेट ब्रिटेन में इस परम्परा का विकास हुआ है कि स्पीकर जब तक चाहता है अपने पद पर बना रहता है। एक बार अध्यक्ष निर्वाचित होने का अर्थ मृत्युपर्यन्त अर्थात जीवन भर के लिए अध्यक्ष नियुक्त होना है। वह स्वेच्छा से अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है। उसके विरुद्ध निर्वाचनों में कोई अन्य प्रत्याशी खड़ा नहीं किया जाता है।[11] यह परम्परा 1722 ई. में स्पीकर कोम्प्टन (Compton) के समय से प्रारम्भ

---

10 Keir Sir David Lindsay *The Constitutional History of Modern Britain*, 1955 p 482

11 इस परम्परा का एक दोष यह है कि जिस निर्वाचन क्षेत्र से स्पीकर चुना जाता है वह व्यावहारिक रूप से प्रतिनिधित्व से वंचित हो जाता है। अतः यह सुझाव दिया गया है कि अध्यक्ष एक कल्पित निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाये। लेकिन अभी तक यह सुझाव क्रियान्वित नहीं हो सका है। फाइनर इस तर्क को कि निर्वाचन क्षेत्र प्रतिनिधित्व से वंचित हो जाता है हास्यास्पद मानता है। 1939 ई. में कॉमन्स सभा की एक प्रवर समिति ने इस प्रश्न पर एक रिपोर्ट दी है। प्रवर समिति के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक शोध का यह निष्कर्ष है कि निर्वाचन-क्षेत्र का अकेला छोड़ देना अच्छा है। स्पीकर को भी अन्य सदस्यों की भाँति निर्वाचित

हुई है। 1895 ई म वालफोर ने स्पीकर गुली का विरोध करके इस परम्परा को तोडने की धमकी दी थी लेकिन निर्वाचनो म अनुदार दल का बहुमत प्राप्त होन क कारण बाल्फोर ने अपने विचार को क्रियान्वित नही किया। 1935 ई म श्रम दल ने इस स्थापित परम्परा के विरुद्ध स्पीकर फिटजरो (Fitzroy) को उम्मीदवार खडा किया था लेकिन उसे केवल असफलता ही हाथ लगी थी क्योकि अनुदार दल एव उदार दल न पुराने स्पीकर का ही समर्थन किया था। 1839 ई म Shaw Lefevre सवप्रथम एक सघष मे ही स्पीकर चुने गये थे। 1951 ई मे भी स्पीकर के पद पर सघष हुआ था। इस समय श्रम दल विरोधी दल था। अनुदारदलीय उम्मीदवार का विरोध तो श्रम दल ने नही किया परन्तु यह प्रस्तावित किया कि भूतपूव उपाध्यक्ष अपने व्यापक अनुभव के कारण एक योग्य उम्मीदवार है। अत मतदान हुआ जिसमे अनुदारदलीय प्रत्याशी विजयी घोपित किया गया। सामान्यत स्पीकर के पद के लिए ऐसे प्रत्याशी का नाम प्रस्तावित किया जाता है जो दीघकाल तक शासन का सदस्य नही होता तथा सक्रिय राजनीतिज्ञ और साधन या अन्य समिति के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष के रूप म काय करने का दीघकाल का अनुभव रखता है। चूकि अध्यक्ष से पूण निष्पक्षता की आशा की जाती है अत यह आवश्यक है कि वह हर प्रकार के राजनीतिक कार्यों से दूर रहे। यह भी आवश्यक है कि उसे निर्वाचन म भाग न लेना पडे। अत इगलैण्ड का जनमत स्पीकर का निर्विरोध पुन निर्वाचित करना अपना कतव्य मानता है।

स्पीकर निष्पक्षतापूवक आचरण कर सके इस हेतु निम्नलिखित परम्पराओ का विकास हुआ है

(1) स्पीकर सम्पूण सदन द्वारा निर्वाचित होता है एव 1722 ई से प्रत्येक स्पीकर एक बार निर्वाचित होने के पश्चात निर्विरोध निर्वाचित होता रहा है। प्रत्येक स्पीकर का औसतन कायकाल दस वष रहा है। स्पीकर आनस्ला (Onslaw) 34 वष तक पदारूढ रहा था। इगलैण्ड मे स्पीकर फ्रान्स की भाति एक सत्र क लिए निर्वाचित नही होता। अत दीघकाल तक पदारूढ रहने के कारण स्पीकर का विशष स्थिति प्राप्त हो जाती है।

(2) स्पीकर सवसम्मति से विरोधी दल को विश्वास म लेकर निर्वाचित किया जाता है। 1839 ई म इस प्रथा का विकास हुआ है।

(3) स्पीकर निर्वाचित होन के पश्चात पूणरूपेण निदलीय हो जाता है। वह समस्त दलीय सम्बन्ध तोड लेता है, दल की बठको म भाग नही लेता, दलीय नीति के सम्बन्ध मे विचार व्यक्त नही करता और न अपने निर्वाचन-क्षेत्र का ही ध्यान रखता है। राजनीति से वह पूणरूपण निरपक्ष हो जाता है।

किया जाना चाहिए। इससे उसम एव अन्य सदस्यो म एक प्रकार की समानता आती है।' —Finer, H op cit, p 476

(4) वह सदन के वाद विवाद म भाग नही लेता। उसे निर्णायक मत देने का अधिकार है लेकिन उसके द्वारा इसका प्रयोग प्राय नगण्य ही है। यदि कभी कोई अवसर आता भी है तो यथास्थिति वनाये रखने के लिए परम्परानुसार ही वह अपना मत देता है जिससे सदन म समस्या पर पुन विचार हो सके।

स्पीकर के काय एव दायित्व—स्पीकर कामन्स सभा की अध्यक्षता एव उसका सामूहिक रूप स प्रतिनिधित्व करता है। सदन एव लॉडसभा एव लॉडसभा तथा सम्राट के मध्य वही वार्ता करता है। वह सम्मेलना एव औपचारिक समारोहो म सदन का प्रतिनिधित्व करता है। वह सदन एव उसके सदस्या के विशेषाधिकारा एव अधिकारा का सरक्षक है। व्यक्तिगत सदस्या के हितो का भी वही सरक्षक है। सदन म अनुशासन एव व्यवस्था कायम रखना उसका प्रथम कतव्य है। आवश्यकता पडने पर अनुशासन भग एव आज्ञा का उल्लघन करने वाले सदस्या को वह कॉमन्स सभा स निष्कासित करने का अधिकार रखता है। वह कामन्स सभा का प्रवक्ता (Spokes man) होता है। वह सदन के नाम प्रेपित सभी सन्देशा को प्राप्त करता है एव सदन के आदेशा को क्रियान्वित करता है। उसकी दृष्टि म सभी सदस्य समान होत है।

वह सदन म वाद विवाद सम्बन्धी नियमो एव औचित्य के प्रश्ना (Points of Order) को क्रियान्वित एव निश्चित करता है। सदस्या को प्रश्न पूछने की अनुमति वही प्रदान करता है एव सदन म मतदान की व्यवस्था तथा उसके आधार पर निणय घोपित करना उसका दायित्व है।

वह कॉमन्स सभा की प्रक्रिया (procedure) निधारित करता है एव आवश्यकतानुसार तत्सम्बन्धी नियमो की व्याख्या करता है। वह स्वय वाद विवाद मे भाग नही लेता लेकिन गतिरोध की स्थिति म निर्णायक मत देता है। वह वाद विवाद मे सदस्यो को भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। प्रस्तुत सशोधना को विचार विमश हेतु वही चयन करता है। पुनरावत्ति एव अनावश्यक सशोधना एव प्रश्ना को रोकता है। प्रश्नकाल (Question hour) के पश्चात प्रस्तुत तात्कालिक सावजनिक महत्व के प्रश्नो पर काम रोको एव स्थगन प्रस्तावो को स्वीकृत एव अस्वीकृत करन का उसे अधिकार प्राप्त है। तात्कालिक सावजनिक महत्व के सम्बन्ध म उसका निणय अन्तिम एव निर्णायक होता है। 1923 ई के बाद स स्पीकरो द्वारा तात्कालिक सावजनिक महत्व सम्बन्धी दायित्वा की एसी सुनिश्चित व्याख्या की जा रही है कि सामान्य सदस्या के लिए इन प्रस्तावा के माध्यम स सरकार को चुनौती दना प्राय असम्भव हो गया है।[12]

वह सदस्या क भापण के अधिकार को स्वीकार करता है। अत उसका यह दायित्व है कि सदन के सभी प्रतिनिधि वर्गों एव हिता का उपलब्ध समय म विचार

12 Finer, H *op cit*, (Footnote N 4), p 476

व्यक्त करन का अवसर प्राप्त हो जाय। आवश्यक एव विलम्बकारी प्रस्तावा को वह अस्वीकार कर सकता है।

अध्यक्ष के द्वारा ससद क प्रारम्भ म ही कुछ सदस्यो की एक सूची तयार की जाती है। इनम स वह स्थायी समितियो के अध्यक्षा का चयन करता है एव यह निश्चित करता है कि विधेयक किस समिति म विचार हतु भेजा जाय।

शासन म पूछे जाने वाल प्रश्ना का वह औचित्य क अनुसार क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित करता है एव पूरक प्रश्ना क लिए समय निश्चित करता है। उस वित्तीय विधेयका को प्रमाणित करने का भी अधिकार प्राप्त है।

समीक्षा—ब्रिटिश अध्यक्ष का पद सम्मान का है। उसस यह आशा की जाती है कि वह न्यायाधीश जैसी निष्पक्षता से काम करेगा। अध्यक्ष पद के लिए ग्लेडस्टोन क अनुसार 'उस व्यक्ति को चुना जाना चाहिए जिसका दल म काइ विशेष प्रभाव न हो क्योकि ऐसा न होने पर सद्धान्तिक आपत्तियाँ होती रहगी और अध्यक्ष का पद दलगत विवाद का विषय बन जायेगा।" जेनिंग्स की दृष्टि मे अध्यक्ष की शक्तिया उसक उस वैभव का प्रगट नही करती जिसका वह उपयोग करता है।[13] आग एव जिंक की दृष्टि म स्पीकर को अत्यन्त गम्भीर, रौबीला एव मृदुभाषी होना चाहिए। उसकी वाणी तेज एव स्वभाव अहकारी होन के साथ ही उस धनी, दयालु योग्य, सजग, धयवान एव व्यवहारकुशल भी होना चाहिए। स्पीकर का हम 'कामन्स सभा की कार्य पालिका' कह सकत हैं।[14] ग्लेडस्टोन के अनुसार उसका काय सदन की अपन से ही रक्षा करना ह और वाद विवाद क समय जब वह अध्यक्षता करता है तब इस दायित्व को विशेष रूप से निभाता है।[15] स्पीकर 'वाद-विवाद का लॉर्ड' है। यह ध्यान रखना उसका ही दायित्व है कि सदस्यगण विषय पर ही वाद विवाद करे।

अपने सीमित क्षेत्र म अध्यक्ष को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह अपन कार्यो के लिए केवल सदन के प्रति ही उत्तरदायी होता है। उसक निणया की शायद ही कभी उपेक्षा की जाती हो। यह देखना उसका दायित्व है कि सदन द्वारा निणय लिय जान के पूव समस्या पर पर्याप्त विचार विमश हो चुका है। स्पीकर का निष्पक्ष होना इस उद्देश्य के लिए नितान्त आवश्यक है। अत ब्रिटिश स्पीकर के तीन महान् गुण—निष्पक्षता निर्दलीयता एव दायित्व—उसे एक आदश अध्यक्ष बना देते है। अन्त म, स्पीकर श्री डगलस क्लिफटन ब्राउन (Douglas Clifton Brown) के अध्यक्ष पद सम्बन्धी विचारो का उदधृत करना उचित है जिनम उन्होंने अत्यन्त सुन्दर शब्दो मे

---

13 'It is impossible however to indicate by enumeration of powers and immunities the prestige which the Speaker enjoys' — Ivor Jennings *The Parliament* 1970 p 70

14 Ogg and Zink *op cit* p 248

15 Gladstone cited by A C Kapoor *op cit* p 163

स्पीकर के पद एवं दायित्वों को व्यक्त किया है "मैं देखने का प्रयत्न करता हूँ कि सम्पूर्ण यन्त्र भली प्रकार चल रहा है। स्पीकर अपने पद में एवं पद के अतिरिक्त इसमें सहायता कर सकता है। मेरा कार्य यह देखना भी है कि शासकीय कार्य, जिसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ, के मार्ग में जानबूझ कर बाधाएँ उत्पन्न नहीं की जाती हैं। मेरा कार्य यह देखना भी है कि अल्पसंख्यकों के विचार सुने जाते हैं। जब भाषण देने के लिए वक्ताओं के नाम लिये जाते हैं तब सदन के सभी प्रकार के विचारों को उचित अवसर मिल सके, इसका मुझे ध्यान रखना पड़ता है। सभी को स्वतन्त्र भाषण के उचित अवसर प्राप्त हो सकें, यह मेरा दायित्व होना चाहिए। मैं अध्यक्ष के नाते न तो सरकारी और न विरोधी दल का ही सदस्य हूँ। मैं कॉमन्स सभा का व्यक्ति हूँ एवं उसकी रक्षा करने का इच्छुक हूँ तथा उसकी रक्षा भी करूँगा।"[16]

अमेरिकी प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष

संविधान प्रतिनिधि सदन को अपना स्पीकर एवं अन्य अधिकारियों के चयन का अधिकार दिया गया है।[17] अमेरिकी प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष पद का विकास 18वीं सदी के ब्रिटिश अध्यक्ष की परम्परा पर हुआ है। लेकिन वह ब्रिटिश अध्यक्ष के पद से पूर्णरूपेण भिन्न संस्था है। अमेरिकी प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष कॉमन्स सभा के अध्यक्ष की भाँति सदन के नियमों की घोषणा मात्र ही नहीं करता वरन् सदन के नियमों की स्वविवेकानुसार व्याख्या या समितियों के नियमों का निर्माण भी करता है। स्मरणीय है कि समितियों का व्यवहारतः सदन की कार्यपद्धति पर अधिकार होता है। ब्रिटेन की भाँति प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष को भी स्पीकर की संज्ञा दी जाती है। बीयर्ड के अनुसार, "20वीं सदी के प्रारम्भ में अर्थात् 1910 ई० तक सदन की निर्देशन शक्ति उसी (स्पीकर) में निहित थी। वही विभिन्न महत्वपूर्ण समितियों का अध्यक्ष होता था एवं उसका सदन पर निरंकुश नियन्त्रण होता था।"[18] लेकिन अब वह समय नहीं है जब स्पीकर *बिना किसी सन्देह के अपनी शक्तियों का प्रयोग कर* सके। वह नियम समिति से अब हटा दिया गया है और समस्त समितियों की नियुक्ति करने की शक्ति स्पीकर से लेकर प्रतिनिधि सदन को प्रदान कर दी गयी है।

प्रतिनिधि सदन की अध्यक्षता के लिए प्रत्येक नवीन कांग्रेस का सत्र प्रारम्भ

---

16 Clifton Brown, cited The United Kingdom Constitution, B I S R F, p 4758/68 pp 24 25

17 Article 1, sec II, cl 5 of U S Constitution

18 At the opening of this century, the directing power in the House was unquestionably concentrated in the speaker The majority members of the Rules Committee (of whom the Speaker was one) and the Chairman of the important committees were appointed by the Speaker —Prof Beard quoted by Mahajan V D *op cit*, p 179

होने पर उस बहुमत दल के काक्स (Caucus) द्वारा मनोनीत किया जाता है एव बहुमत के आधार पर सदन द्वारा औपचारिक रूप म निर्वाचित किया जाता है। सदन म जिस दल का बहुमत होता है अनिवार्यत उसी दल का प्रत्याशी स्पीकर निर्वाचित होता है । ब्रिटेन की तरह यहाँ विरोधी दल का विश्वास म नही लिया जाता है । वह ब्रिटिश स्पीकर की भाति निर्वाचन के पश्चात अपने दलीय स्वरूप का परित्याग भी नही करता और दलीय कार्यों एव सगठन म सक्रिय भाग लेता रहता है। वह दल का शक्तिशाली नेता होता है। ब्रिटिश स्पीकर की भाति वह अपने पद पर बार बार निर्विरोध निर्वाचित नही होता है । प्राय हर निर्वाचन के पश्चात प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष बदलते रहते है। प्रतिनिधि सदन म स्पीकर अपने दल का घोषित अभिकर्ता होता है और वहा की दलगत राजनीति म वह सक्रिय भाग लेता है। अत ब्रिटिश स्पीकर की भाति उसके निष्पक्ष होने का प्रश्न ही नही उठता। वह सदन के कार्यों म अपने दल को हर सम्भव सहायता पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। अपने दलीय कार्यक्रम को अग्रसर करने के लिए वह सक्रिय रहता है एव इस हेतु आवश्यक विधियों के निर्माण म योग देता है। स्पीकर सदन का महत्वपूर्ण अधिकारी होता है एव उसकी स्थिति केन्द्रीय होती है।

स्पीकर के कार्य एव दायित्व[19]—स्पीकर सदन की अध्यक्षता करता है, सदन की बैठको को प्रारम्भ एव समाप्त करता है तथा वह सदस्यो का विचार व्यक्त करने की अनुमति प्रदान करता है। सामान्यत उसके द्वारा किसी विधेयक पर पहले पक्ष मे तथा बाद म विपक्ष म बोलने के क्रम म अनुमति दी जाती है, लेकिन अपने दल के सदस्यो को वह अधिक अवसर प्रदान करता है। वाद विवाद की व्यवस्था एव सदन म अनुशासन एव व्यवस्था बनाये रखना उसी का दायित्व है, लेकिन ब्रिटिश स्पीकर की भाँति उसे सदस्यो को दण्डित करने का अधिकार प्राप्त नही है। सदन को ही किसी सदस्य को दण्डित करने का अधिकार होता है। अव्यवस्था एव सदस्यो द्वारा हस्तक्षेप की दशा में वह सदन को स्थगित कर सकता है या सार्जेण्ट को व्यवस्था स्थापित करने का आदेश दे सकता है।

समितियो के सदस्यो को भी उसके द्वारा ही नियुक्त किया जाता है। 1911 ई तक वह नियम समिति (Rules Committee) एव समस्त स्थायी समितियो के सदस्यो को नियुक्त करता था लेकिन अब उसे केवल प्रवर एव विशेष समितियो अथवा प्रतिनिधि सभा द्वारा अधिकार प्रदत्त किये जाने पर समितियो के सदस्यो को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यदि किसी विधेयक को समिति म भेजने के सम्बन्ध म कोई मतभेद होता है तो ऐसी अवस्था मे स्पीकर का निर्णय अन्तिम माना जाता है। वह सदन के नियमो की व्याख्या करता है तथा उन्हे क्रिया

19 Ogg and Ray *op cit*, p 200 and Herman Finer *op cit*, pp 477 478

न्वित करता है। सदन को उसकी व्याख्या को बहुमत स अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन सदन ने अपने इस अधिकार का बहुत कम प्रयोग किया है। अत कामन्स सभा के अध्यक्ष की भाँति प्रतिनिधि सदन के स्पीकर द्वारा की गयी व्याख्या अन्तिम नही होती है।

स्पीकर को अपना मत देने एव बराबर मत आने पर निर्णायक मत देने का अधिकार है। वह अपना मत गुप्त मतदान की अवस्था म ही देता है। सामान्यत स्पीकर मत देने के अधिकार का प्रयोग नही करता। वह सदन के विचारार्थ उपस्थित प्रश्न पर मत विभाजन कराता है एव उसके आधार पर निर्णय की घोषणा करता है। वह सदन द्वारा पारित सभी विधेयको एव सदन द्वारा निर्देशित सयुक्त प्रस्तावो, लेखो एव आदेशो पर हस्ताक्षर करता है। आवश्यकता समझने पर वह दीर्घाओ को खाली करा सकता है।

वह अपनी अनुपस्थिति म सदन की बिना अनुमति के किसी भी अन्य सदस्य को अध्यक्षता करने के लिए अधिक से अधिक तीन दिन एव अस्वस्थता की अवस्था म 10 दिन के लिए अस्थायी अध्यक्ष (Speaker protempore) नियुक्त कर सकता है। लेकिन व्यवहार म वह अन्य व्यक्तियो को अध्यक्षता करने के लिए अस्थायी रूप से नियुक्त करता है।

समीक्षा—स्पीकर प्रतिनिधि सदन म अपने दल का नेता होता है। सयुक्त राज्य अमरिका म शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के अनुसार कार्यपालिका व्यवस्थापिका से प्रत्यक्ष रीति स सम्बन्धित नही होती। अत वह सदन म अपने ही दल का प्रतिनिधित्व नही करता अपितु ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की तरह सदन का नेतृत्व भी करता है। यदि राष्ट्रपति एव स्पीकर एक ही दल के होते हैं तो स्पीकर अक्सर राष्ट्रपति से परामर्श करता रहता है और उसे व्यवस्थापिका (प्रतिनिधि सदन) म प्रशासन का अधिकृत प्रवक्ता माना जाता है।

सविधान म प्रतिनिधि सदन के आन्तरिक सगठन के सम्बन्ध म केवल इतना कहा गया है कि सदस्य स्पीकर एव अन्य अधिकारियो को नियुक्त करेंगे। उसकी शक्तियो एव कर्तव्यो के बारे में सविधान म कोई उल्लेख नही है। सविधान के अनुसार यह आवश्यक नही है कि स्पीकर सदन का सदस्य हो। लेकिन प्रारम्भ स ही प्रत्येक स्पीकर अपने निर्वाचन के समय सदन का अनिवार्यत सदस्य होता रहा है।[20]

अमेरिकी स्पीकर ब्रिटिश स्पीकर की भाँति निर्दलीय एव निष्पक्ष तथा न्यायप्रिय (Judicious) नही होते। यह दलीय व्यक्ति है एव अपने दल की पूरी सहायता करता है।[21] इसका एक प्रधान कारण है। प्रतिनिधि सदन म अधिकृत नेतृत्व

20 Ogg and Ray *op cit*, p 201
21 Ogg and Ray *op cit* p 201

(official leadership) का अभाव है। संविधान-निर्माताओं की धारणा थी कि सदन अपने नेतृत्व की समस्या का समाधान स्वयं कर लेगा। सदन की सदस्य संख्या एवं कार्य भार में वृद्धि के साथ नेतृत्व की आवश्यकता को भी अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा था एवं बहुमत दल का प्रमुख सदस्य होने के कारण यह दायित्व स्पीकर के कंधों पर आ पड़ा है। हेनरी के समय से ही स्पीकर बहुमत दल के सदस्य होते रहे हैं और इस कारण उन्हें सदन का नेता माना जाता रहा है। मुनरो के अनुसार स्पीकर ही वह व्यक्ति था जिस पर बहुमत दल अपने विधि प्रस्तावों को नियमों के जंजाल से सरलतापूर्वक पारित कराने के लिए निर्भर रहता था। फलतः उसके हाथों में अधिक से अधिक शक्ति केन्द्रित होने लगी है और वह वास्तव में एक तानाशाह बन गया है।[22] ऑग ने इसी विचार को व्यक्त करते हुए कहा है कि "एक साधारण सा अध्यक्ष पद शक्तिशाली तानाशाही में विकसित हो गया है और सदन द्वारा सम्पादित किये जा सकने वाले हर विषय में उसे जीवन एवं मरण की शक्ति प्राप्त हो गयी है।"[23] 'उसके पद में औपचारिक नेतृत्व एवं औपचारिक दलीय नेतृत्व सम्मिलित है।'[24]

1911 ई. तक प्रतिनिधि सभा के स्पीकर की स्थिति तानाशाह जैसी ही थी। स्पीकर थॉमस बी. रीड जार रीड कहा जाता था। स्पीकर जोसेफ जी कैनान की स्थिति भी ऐसी ही थी और वे Uncle Joe के नाम से विख्यात थे। 1910-11 ई. में स्पीकर की इस अनियन्त्रित स्थिति के विरुद्ध प्रतिनिधि सदन में एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ था। उस समय तक स्पीकर सभी स्थायी प्रवर समितियों की नियुक्ति करता था एवं उसका विधि निर्माण पर यथार्थ नियन्त्रण था। इसके अतिरिक्त वही सदस्यों को वाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार प्रदान करता था (Power of Recognition)। रिपब्लिकन दल के कुछ सदस्यों ने 1910 ई. में कैनानवाद (Canonism) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।[25] स्पीकर कैनान ने अनेक विषयों पर वाद-विवाद की स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की थी। इस विद्रोह में डेमोक्रेट सदस्यों ने भी विद्रोहियों का साथ दिया। फलस्वरूप सदन के नियमों में अनेक संशोधन किये गये। निश्चय

---

22 Speaker 'became the man on whom the majority depended for getting its measures safely through the maze of rules More and more authority was absorbed into his hands until he became a virtual dictator '—W B Munro *The Government of the United States op cit*, pp 324 325

23 A simple chairmanship grew into a vital dictatorship, carrying the power over life and death over almost everything that the House undertook to do —Ogg cited by Mahajan, V D *Select Modern Governments* 1964 p 180

24 Ogg and Ray *op cit* p 201

25 Finer, H *op cit* p 480

समिति से स्पीकर को हटा दिया गया तथा सभी स्थायी समितियो को नियुक्त करने का अधिकार सदन को प्रदान किया गया। मान्यता (recognition) की शक्ति उससे ले ली गयी। फलत स्पीकर की शक्तियाँ काफी कम हो गयी लेकिन आज भी स्पीकर सदन का प्रमुख अधिकारी है।

हरमेन फाइनर के अनुसार, "स्पीकर आज भी यथार्थत दलीय व्यक्ति है। वह कांग्रेस के थोड़े से नेताओ मे से एक है जो प्रशासकीय विधेयको को पारित करने के लिए राष्ट्रपति से सम्पर्क स्थापित करता है। आज भी दलीय सचालक समिति (Steering Committee) उससे परामर्श करती है। उसका दल मे बड़ा प्रभाव है। आज भी वह समितियो के मध्य कार्य विभाजन एव उनकी प्राथमिकता के निर्धारण के सम्बन्ध मे व्यापक शक्ति रखता है। इसी कारण वह स्पीकर भी चुना जाता है। 435 सदस्यो के प्रतिनिधि सदन मे व्यवस्था तथा कार्य प्रणाली के लिए कही न कही तो नेतृत्व का होना आवश्यक है ही। 1910 ई तक वह शक्ति स्पीकर एव उसकी कृपा से उसके मित्रो मे निहित थी। आज वह स्पीकर के मित्रो एव स्पीकर मे केंद्रित है। अब नेतृत्व को समितिकृत (syndicated) या समूहकृत कर दिया गया है लेकिन स्पीकर समिति का आज भी प्रमुख सदस्य होता है।"[26]

ब्रिटिश एव अमेरिकी स्पीकर की तुलना

ब्रिटिश स्पीकर की तीन मुख्य विशेषताएँ हैं—निष्पक्षता, निर्दलीयता एव स्थायित्व। लेकिन अमरिकी स्पीकर की यह विशेषताए नही होती है। वह निर्वाचित होने के पश्चात दलीय सम्बन्धो का परित्याग नही करता, फलस्वरूप वह निष्पक्ष नही है और उसका पद भी स्थायी नही होता। प्रत्येक निर्वाचन के पश्चात नया स्पीकर निर्वाचित किया जाता है।

ब्रिटिश स्पीकर की भाति प्रतिनिधि सदन के स्पीकर का निर्वाचन भी निर्विवाद नही होता। अतएव उसके लिए अपने निर्वाचको की उपेक्षा कर सकना सरल नही है। प्रतिनिधि सदन मे वह सदन के नेता की भूमिका निभाता है एव कॉमन्स सभा के स्पीकर के विपरीत वह वाद विवाद मे भाग लेता है तथा आवश्यकता पड़ने पर अपने मत का भी प्रयोग करता है। कामन्स सभा का स्पीकर केवल निर्णायक मत रखता है। उसका भी प्रयोग वह स्थापित परम्परा के अनुसार यथास्थिति बनाये रखने के लिए ही करता है।

'कामन्स सभा का स्पीकर केवल नियमो की घोषणा करता है चाहे वे अल्पसंख्यको के हित मे हो अथवा अहित मे। प्रतिनिधि सदन का स्पीकर नियमो की व्याख्या करने मे पर्याप्त स्वविवेक का प्रयोग करता है।' फाइनर के अनुसार आज स्पीकर अपने दल के प्रमुख नेताओ मे से होता है। 1911 ई के पूर्व वह व्यवस्थापिका मे दल

---

26 Finer, H *op cit*, p 480

का प्रमुख नेता होता था।[27] ब्रिटिश एव अमेरिकी स्पीकर की विभिन्नताएँ महत्वपूर्ण है। 'दोनो ही अपनी सम्पूर्ण राजनीतिक प्रणालिया के लघु रूप है।"[28]

कनाडा, आस्ट्रेलिया एव न्यूजीलैण्ड के स्पीकर

इन देशो मे ब्रिटिश ससदीय प्रणाली का प्रभाव है क्योकि वे सभी ब्रिटिश औपनिवेशिक देश ह। उनके सविधानो का स्रोत ब्रिटिश ससद है।

उपरोक्त तीनो देशो मे शासन म परिवतन के साथ अध्यक्ष पद म भी परिवतन होते हैं। बहुमत दल का स्पीकर पद पर प्रभाव होता है। ब्रिटेन म स्पीकर के निर्वाचन म उसका विरोध नही होता। लेकिन इन देशो मे इस परम्परा का अनुगमन नही किया जाता है।

जब सदन का समिति क रूप मे अधिवेशन होता है तो इन देशा म स्पीकर वाद विवाद मे भाग लेत हैं एव मतदान भी करते हैं। इतना होने पर भी इन देशा म स्पीकर की निष्पक्षता के प्रति म सदेह नही किया जाता है। ससद के सभी वर्गों एव दलो का उस पूण समथन प्राप्त होता है। फिर भी स्पीकर के निणय के विरुद्ध कभी-कभी इन देशा के सदनो म मतदान हुए है। ब्रिटेन की भाति इन देशा म एव दक्षिणी अफ्रीका म स्पीकर पद स पृथक होन के पश्चात सक्रिय राजनीति से अवकाश ग्रहण नही करत हैं क्योकि इन देशा म स्पीकर के पद का राजनीतिक जीवन की सर्वोच्च परिणति नही माना जाता है और न ही स्पीकर पद से पृथक होन के पश्चात मन्त्री पद ग्रहण करना अस्वाभाविक समझा जाता है।

फ्रास मे अध्यक्ष का पद

ततीय फ्रच गणराज्य के निम्न सदन चेम्बर आफ डेपुटीज एव चतुथ गणराज्य के निम्न सदन राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष की स्थिति अमेरिकी स्पीकर की अपेक्षा ब्रिटिश स्पीकर स अधिक मिलती है। फ्रासीसी अध्यक्ष भी ब्रिटिश स्पीकर की भाति ससदीय प्रणाली की उपज है जिसके अन्तर्गत उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल को मागदशन एव नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त होती है। अत फ्रास मे उन परिस्थितियो का अभाव है जिनके प्रभाव क कारण अध्यक्ष का दृष्टिकोण दलीय एव पक्षपातपूण हो जाता है। लेकिन फाइनर के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन की तरह फ्रास म वे सब परिस्थितियाँ नही पायी जाती हैं जिनके फलस्वरूप फ्रासीसी अध्यक्ष ब्रिटिश स्पीकर की योग्यता एव निष्पक्षता को प्राप्त कर सक।[29]

---

27 "He is today one of majority party leaders, before 1911 he was the party leader in the legislative branch of the government '—Finer, H *op cit* p 477

28 "Each speakership epitomizes a whole political system "—*Finer*, H *op cit*, p 480

29 Finer, H *op cit* p 481

तृतीय फ्रांसीसी गणराज्य के निम्न सदन—चेम्बर—के हर नये सत्र का नया अध्यक्ष समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुना जाता था। 6 अध्यक्ष भी इसी रीति से निर्वाचित होते थे जो वरिष्ठता के क्रम म अध्यक्ष के पद को रिक्त होने पर ग्रहण करते थे। चतुर्थ गणराज्य म भी इस परम्परा का अनुगमन किया गया था। प्रति नवीन सत्र म नये अध्यक्ष के निर्वाचन का कारण फ्रेंच जनता की स्थापित अधिकारियों के प्रति परम्परागत अविश्वास की धारणा है। विधि-निर्माण म दक्षता की दृष्टि से यह व्यवस्था एक बहुत बडी कमी है। हर नवीन सत्र के साथ निर्वाचन की सरगर्मी प्रारम्भ हो जाती थी और दलीय तन्त्र उसम व्यस्त हो जाता था तथा अध्यक्ष के दोष एव गुण निर्वाचन की सरगर्मी म चर्चा का मुख्य विषय बन जाते थे। इसके अतिरिक्त अध्यक्ष को अपने निर्वाचकों को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त नहीं होता था। अल्प कायकाल के कारण अध्यक्ष को अपने काय का पूरा ज्ञान भी नहीं हो पाता था। इगलण्ड मे 1872 ई से 1945 ई तक के समय म केवल 6 स्पीकर पदासीन हुए जब कि इसी काल म फ्रांस म 15 अध्यक्ष हुए। फ्रांस म बहुदलीय पद्धति का तृतीय एव चतुर्थ गणराज्य काल म प्राधान्य था। फलस्वरूप अध्यक्ष को अपनी स्थिति दृढ करने म कठिनाई का होना स्वाभाविक था और यह ऐसी अवस्था म और भी कठिन होता था जबकि पूर्ण बहुमत प्राप्त होने पर भी दुबारा मतदान (second ballot) की व्यवस्था थी।

फ्रांस के तृतीय गणराज्य म चेम्बर एव सीनेट तथा चतुर्थ गणराज्य म असेम्बली एव काउन्सिल (Council) के अध्यक्षों ने राष्ट्रपति के सहयोग से मन्त्रिमण्डलों के निर्माण म महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अपने दलों स उनके सम्बन्ध रहते थे। वे निर्विरोध निर्वाचित नहीं होते थे। दलीय बैठकों म भी वे सहयोग करते थे एव कभी कभी तो समाचार पत्रों म होने वाले विवादों म भी भाग लेते थे। अध्यक्षों द्वारा मन्त्री पद ग्रहण कर लिया जाता था एव मन्त्री पद स अध्यक्ष पद पर वे पुन लौट आते थे। यद्यपि उनके द्वारा वाद विवादों म दलीय दृष्टिकोण से हस्तक्षेप नहीं किया जाता था परन्तु वे दलीय विचारों एव कार्यों तथा भावनाओं को उभार देते थे। 1929 ई म फ्रांस म एक घटना घटी थी जिसकी इगलण्ड म कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस समय चेम्बर के अध्यक्ष मो होरियो थे। उन्होंने यकायक यह निश्चय किया कि वे शासकीय आदेशों द्वारा विधि निर्माण की शक्ति प्राप्त करने के शासन के प्रयत्नों का विरोध करेंगे और बिना किसी पूर्व सूचना के यकायक वे अपने स्थान पर पहुच एव उनके भाषण ने सरकार का तख्ता पलट दिया। राष्ट्रपति द्वारा उन्हें नयी सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया गया। फर्नाण्ड बाइस्सन (Fernand Bonisson) 1926 ई स चेम्बर के अध्यक्ष थे। उन्होंने प्रधानमन्त्री बनने के लिए अपने पद से 1935 ई

म त्यागपत्र दे दिया था। फाइनर के अनुसार, "चेम्बर की अध्यक्षता गणराज्य के राष्ट्रपति पद के लिए सीढ़ी थी।[30]

फ्रेंच विधानमण्डलों के अध्यक्षों को ब्रिटिश स्पीकर के समान ही शक्ति प्राप्त होती है। लेकिन फ्रेंच व्यवस्थापिका में अनेक दलों के कारण स्पीकर का दायित्व अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है तथा फ्रेंच संसद में अनेक संसदीय आयोगों की उपस्थिति उसके कार्य को और भी अधिक कठिन बना देती है। इसके अतिरिक्त पद सम्बन्धी परम्पराएँ उसका दलीय स्वरूप एवं संसदीय जीवन की अस्थिरता के फलस्वरूप अध्यक्षों का कार्य और भी अधिक कठिन हो गया है। सदन में व्यवस्था के लिए घण्टी बजती रहती थी लेकिन कोई सदस्य उस पर ध्यान नहीं देता था। इन सब की जड़ में सदस्यों में व्याप्त यह भावना थी कि वे सम्प्रभु हैं। इसके अतिरिक्त दलीय विभेद एवं राज्य भक्ति का अभाव इस अनुत्तरदायित्व की भावना के अन्य कारण थे।

चतुर्थ गणराज्य की राष्ट्रीय सभा के नियमों के कारण अध्यक्ष की स्थिति और भी कठिन हो गयी थी। उसको शक्तियाँ तो प्रदान की गयी थीं लेकिन उसकी सत्ता को कम कर दिया गया था। सम्मेलन का आहूत करने विधेयकों को गणराज्य परिषद (Council of Republic) द्वारा पारित होने पर राष्ट्रपति को उन्हें घोषित करने हेतु प्रेषित करने और प्रेषित विधेयक को यदि दस दिन हो चुके हों तो उन्हें विधि रूप में घोषित करने अनुशासन भंग करने वाले सदस्यों को दण्ड देने एवं असेम्बली की रक्षा करने वाली सैनिक टुकड़ी को अध्यक्ष के नियन्त्रण में देकर उसे कुछ ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं जो फाइनर के अनुसार कोई दुर्बुद्धि अध्यक्ष घोर संकट के समय प्रयोग करके शासन के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर सकता है।[31] चतुर्थ गणराज्य के अध्यक्ष को कुछ ऐसे दायित्व सौंपे गये थे जो किसी देश के अध्यक्ष को प्राप्त नहीं हैं जैसे कि असेम्बली के विघटन की माँग करने के पूर्व मन्त्रिमण्डल को असेम्बली के अध्यक्ष से परामर्श करना चाहिए (अनुच्छेद 51)। असेम्बली के भंग हो जाने पर प्रधानमन्त्री तो अपने पद से पृथक् हो जाता था। लेकिन मन्त्रिमण्डल बना रहता था जिसकी अध्यक्षता असेम्बली का अध्यक्ष करता था। नव निर्वाचनों तक वह शासन की देखभाल करता था। उस मन्त्रिमण्डल में नवीन गृहमन्त्री एवं उन सब समूहों में से राज्यमन्त्री नियुक्त करने का अधिकार होता था जिन्हें मन्त्रिमण्डल में कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता था (अनुच्छेद 52)। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति का पद किसी कारण से रिक्त होने पर नवनियुक्ति तक वह गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करता था (अनुच्छेद 42)।[32]

---

30 Finer H *op cit* p 481

31 Finer H *op cit* p 482

32 पाँचवें फ्रेंच गणराज्य के अन्तर्गत अध्यक्ष की स्थिति में केवल यह परिवर्तन हुआ है कि अब अध्यक्ष विधानमण्डल के कार्यकाल के लिए चुना जाता है।

भारतीय लोकसभा का स्पीकर या अध्यक्ष

ब्रिटिश कॉमन्स सभा की भांति नवीन भारतीय लोकसभा अपने म से एक सदस्य को अध्यक्ष चुनती है।[33] वह उसके अधिवेशनो की अध्यक्षता एव सदन के काय का सचालन करता है। *सदन एक उपाध्यक्ष को भी निर्वाचित करता है और वह स्पीकर* की अनुपस्थिति म उसके कतव्यो का सम्पादन करता है तथा सदन की अध्यक्षता करता है।[34] स्पीकर का 5 सभापतियो को भी नामजद करने का अधिकार प्राप्त है जो उसके एव उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति मे सदन की अध्यक्षता करते हैं।[35] स्मरणीय है कि इगलण्ड म कोई उपाध्यक्ष नही होता। वहाँ सदन का अधिवशन बिना स्पीकर के हो ही नही सकता। 1943 ई म अध्यक्ष फिटजरो (Fitzroy) की मृत्यु पर कामन्स सभा का अधिवेशन युद्धकाल होत हुए भी तुरन्त स्थगित कर दिया गया था एव उनके उत्तराधिकारी के नियुक्त होन के पश्चात ही सदन का अधिवेशन हो सका था। अध्यक्ष अपने पद से त्यागपत्र देकर पृथक हो सकता है। सदन का सदस्य न रहने पर वह पद स स्वत ही पृथक हो जाता है।[36] लोकसभा को अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष को पदच्युत हेतु अपने स्पष्ट बहुमत स प्रस्ताव पारित करने का अधिकार है।[37] जब सदन एस प्रस्ताव पर विचार विमश करता है तो उस समय वह सदन की अध्यक्षता नही करता।[38] लेकिन उस सदन म उपस्थित होकर अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार होता है।[39] लोकसभा के विघटित हो जाने पर स्पीकर अपने पद से पृथक नही होता अपितु नवीन निवाचनो क पश्चात नया स्पीकर निवाचित होन तक वह अपने पद पर बना रहता है।

शक्तियाँ—ब्रिटिश कॉमन्स सभा के स्पीकर की भांति भारतीय लोकसभा के स्पीकर को निम्न *व्यापक शक्तिया प्राप्त है*

वह सदन की अध्यक्षता करता है। सदन म व्यवस्था एव शान्ति स्थापित करता है। सदस्यो को वाद विवाद म भाग लेने की अनुमति देता है। सदन के नेता क परामश स सदन के कायक्रम का निर्धारित करता है। सदन की ओर स वह सन्देशो को ग्रहण करने एव उन्ह भेजने की अनुमति प्रदान करता है तथा सदन को प्रेषित समस्त सन्देशो, आवेदनो, पत्रो आदि को वह स्वीकार करता है। वह नियमानुसार

---

33 Article 93

34 Article 93

35 Rule No 7 of the Rules of Procedure and Conduct of Business, cited by M P Sharma *The Government of Indian Republic* 1972, p 194

36 Article 93 (a) and (b)

37 Article 93 (c)

38 Article 96 (1)

39 Article 96 (2)

वाद विवाद की व्यवस्था करता है तथा औचित्य के प्रश्नों (Points of Order) को निश्चित करता है। वह प्रश्न एवं प्रस्तावों को आमन्त्रित करता है तथा यह देखता है कि वे नियमानुसार हैं अथवा नहीं। वाद-विवाद के दौरान वह अनावश्यक पुनरावृत्ति को रोकता है। दुर्व्यवहार एवं अनुशासन को भंग करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करता है तथा वाद विवाद को समाप्त करने की माँग पर निर्णय करता है। वह केवल सदन के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का ही रक्षक नहीं होता अपितु अल्पसंख्यकों के अधिकारों को भी मान्यता देता है।

वह प्रस्तावों की आवश्यकता एवं औचित्य पर राष्ट्रीय हित की दृष्टि से विचार करके उन्हें स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार रखता है। वह मन्त्री को सदन के समक्ष सूचना प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है।

वह गणपूर्ति के अभाव में सदन को स्थगित कर सकता है। सदन में मतदान की व्यवस्था करके उसके निर्णयों की घोषणा करता है। सदन या उसके द्वारा स्थापित समस्त समितियों का वह सर्वोच्च अध्यक्ष है। वह समितियों के अध्यक्षों को समितियों की कार्य-पद्धति एवं सम्बन्धित मामलों में निर्देश दे सकता है। समितियों के कार्यों की वह सूचना रखता है। कोई समिति संसद के बाहर बिना अध्यक्ष की अनुमति के अपना अधिवेशन नहीं कर सकती और राज्य या शासन के किसी अधिकारी को अपने समक्ष उसकी पूर्व अनुमति के बिना गवाही देने के लिए आमन्त्रित नहीं कर सकती है। कार्यक्रम परामर्शदायी समिति (Business Advisory Committee), नियम समिति (Rules Committee) एवं सामान्य उद्देश्य समिति (General Purpose Committee) का वह अध्यक्ष होता है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा का अध्यक्ष ही करता है।[40] वह धन विधेयकों को प्रमाणित करता है।[41] वह सदन के वाद-विवाद में सामान्य सदस्यों की भाँति भाग नहीं लेता और केवल निर्णायक मत ही देता है। सदन के सदस्यों की कठिनाइयों को सुनता है। लोकसभा का वह प्रमुख वक्ता है। विशेष अवसरों पर वह सदन का प्रतिनिधित्व करता है तथा लोकसभा एवं राज्यसभा और लोकसभा एवं राष्ट्रपति के मध्य सम्पर्क का माध्यम है। उसका प्रमुख कार्य सदन में वाद विवाद एवं विचार विमर्श की उचित व्यवस्था करना है। अतः उसे कॉमन्स सभा के अध्यक्ष की भाँति वाद विवाद के लॉर्ड (Lord of Debates) की संज्ञा दी जाती है।

स्थिति—कॉमन्स सभा के स्पीकर की भाँति वह सदन के सम्मान का संरक्षक है। ब्रिटिश स्पीकर की अनुकरणीय विशेषता, निष्पक्षता का अनुगमन करने का भारतीय स्पीकरों ने प्रयत्न किया है, लेकिन वे पूर्ण निष्पक्षता के आदर्श को प्राप्त नहीं कर सके हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय केन्द्रीय धारासभा (The Central Legislative

40 Article 118 (4)
41 Article 110 (3)

Assembly) के अध्यक्ष श्री विटठल माई पटेल अपनी यायप्रियता एव निष्पक्षता के लिए विख्यात थे।[42] वे 1925 ई मे केन्द्रीय धारासमा के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। ब्रिटिश परम्परा के अनुरूप उन्होने निर्वाचन के बाद अपने को निदलीय घोषित किया था। 1930 ई म जब उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन म माग लेने का निश्चय किया तो उन्हाने स्पीकर के पद से त्यागपत्र दे दिया था। लेकिन ब्रिटिश निरपेक्ष निदलीयता का भारत म पूण अनुगमन नही हो सका है। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन उत्तर प्रदेश विधान समा के यशस्वी स्पीकर थ। उन्हाने व्यक्तिगत आचरण म निर्भ्रान्त निष्पक्षता का पालन किया था। परन्तु उन्होन स्पष्ट शब्दो म यह भी कहा था कि इस सम्बन्ध म भारत के लिए ब्रिटेन का अनुगमन करना कठिन होगा। उनका मत था कि अध्यक्ष को सदन के अन्दर निदलीय व्यक्ति के रूप म काय करना चाहिए परन्तु सदन के बाहर सावजनिक जीवन मे वह अपने दलीय सम्बन्धो को कायम रख सकता है।[43] स्वतन्त्र भारतीय गणराज्य के प्रथम लोकसमा के प्रथम अध्यक्ष श्री गणश वासुदव मावलकर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अपने समय म योग्यतम स्पीकरो म माने जाते थे। वे बडे अनुमवी एव पर्याप्त प्रमावशाली थे। श्री मावलकर की मान्यता थी कि भारतीय अध्यक्ष के लिए ब्रिटिश स्पीकर की मांति पूणरूपेण निदलीय हो सकना सम्मव नही है। वह अपन दल का सदस्य रह सकता है लेकिन उस अध्यक्ष के रूप म अपन आचरण, विचारो तथा कार्यों म पूण निष्पक्षता स काय करना चाहिए।

ब्रिटिश स्पीकर का निर्विरोध निर्वाचन होता है। मावलकर[44] की दृष्टि म भारत क सावजनिक जीवन की वतमान अवस्था म विमिन्न राजनीतिक दला स इस अमिसमय क पालन की आशा करना कठिन है। मावलकर की इस धारणा म पर्याप्त बल है। अध्यक्ष का निर्विरोध निवाचित होना एव उसका निदलीय होना समाज की उस राजनीतिक परिपक्वता का प्रतीक है जो लोकतन्त्रीय व्यवस्था की प्रमुख आधारशिला कही जा सकती है। फाइनर का यह कथन कटु सत्य है कि "व्यवस्थापिका का प्रधान हर देश के राजनीतिक चरित्र का सक्षिप्तीकरण (epitome) होता है।" मावलकर ने ब्रिटिश स्पीकर को आदश माना था परन्तु मावलकर न [illegible] अमरिकी स्पीकरो के मध्य क माग का अनुसरण किया है। यद्यपि [illegible] म व राजनीति स पूणरूपण पृथक नही रह थे परन्तु अध्यक्ष क रूप म [illegible] निष्पक्ष रहा था।

अभी तक लाकसमा क पांच अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव [illegible] शयनम आयगर, सरदार हुकुमसिंह, श्री सजीव रड्डी तथा [illegible]

---

42 M N Kaul, cited by A C Kapoor [illegible]
M G [illegible] *Modern Governments Theory* [illegible] 225 [illegible]
43 A C Kapoor *Indian Constitution*, [illegible] 364 [illegible]
44 A C Kapoor *op cit*, p 226

है। सभी का पर्याप्त सम्मान रहा है। अध्यक्ष के निर्णयों से कभी-कभी कटुतापूर्ण वाता-
वरण भी उत्पन्न हुए हैं। एक बार तो सन् 1954 ई. में श्री मावलकर के विरुद्ध एक
विरोधी सदस्य ने अविश्वास का प्रस्ताव भी उपस्थित कर दिया था यद्यपि वह पारित
न हो सका। इस अविश्वास का कारण उनके विरुद्ध तीव्र असन्तोष था। उन्होंने तीन
वर्ष (1951-54 ई.) के काल में प्रस्तावित 89 कामरोको प्रस्तावों में से केवल
एक को ही स्वीकार किया था। अनेक ऐसे अवसर भी लोकसभा के जीवन में आये
हैं जब कि स्पीकर के विरोध में सदन में अव्यवस्था का वातावरण पैदा हो गया और
अध्यक्ष के आदेशों का उल्लंघन किया गया तथा उसकी निष्पक्षता पर आरोप लगाये
गये हैं। सन् 1962 ई. में इस प्रकार की घटना लोकसभा में हुई थी जिसमें समाज-
वादी सदस्य श्री रामसेवक यादव को अध्यक्ष के आज्ञोल्लंघन के अपराध में एक सप्ताह
के लिए सदन से निष्कासित किया गया था।[45]

कभी-कभी राज्यों की विधानसभाओं के अध्यक्षों के विरुद्ध उत्तरदायी व्यक्तियों
ने आपत्तिजनक विचार व्यक्त किये हैं। सितम्बर 1962 ई. में उत्तर प्रदेश विधान
सभा के एक अध्यक्ष ने एक प्रस्ताव पढ़ा जिसमें उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री पर यह
आरोप लगाया गया था कि मुख्य मन्त्री ने यह कहा है कि 'अध्यक्ष अपने को बुद्धिमान
समझता है। उसे यह जानना चाहिए कि वह जो कुछ भी है वह मेरे द्वारा बनाया
गया है। वह विरोधी दल को इतना समय देता है कि मुझे रुकना पड़ता है।' मुख्य
मन्त्री के क्षमा याचना करने पर ही मामला समाप्त हुआ था।[46] ब्रिटिश स्पीकर की
भाँति भारतीय स्पीकर निर्विरोध नहीं चुना जाता। निर्वाचनों में उसका विरोध
होता है और एक बार अध्यक्ष बनने पर वह आजीवन अध्यक्ष भी नहीं बना रहता है।
श्री मावलंकर की मृत्यु के बाद श्री अनन्तशयनम आयंगर 5 वर्ष अध्यक्ष रहे थे।
उनके बाद सरदार हुकुमसिंह अध्यक्ष बने। वे भी कुछ वर्षों तक ही इस पद पर रहे।
उनके पश्चात् संजीव रेड्डी ने स्पीकर का पद ग्रहण किया था। भारत में फ्रान्स
की भाँति स्पीकर से सम्बन्धित अवांछनीय व्यवस्था का विकास हो रहा है, ऐसा प्रतीत
होता है। श्री अनन्तशयनम आयंगर एवं सरदार हुकुमसिंह स्पीकर पद से मुक्त होने के
बाद क्रमशः बिहार तथा राजस्थान राज्यों के राज्यपाल नियुक्त किये गये। इसी प्रकार
श्री नीलम संजीव रेड्डी ने स्पीकर पद से त्यागपत्र देकर राष्ट्रपति पद के लिए
निर्वाचन लड़ा था। ब्रिटिश स्पीकर अपने पद से या तो मृत्यु के कारण ही
हटता है या पद से हटने पर सक्रिय राजनीतिक जीवन से भी पृथक् हो जाता है।
भारत में स्पीकरों को गवर्नर जैसे किसी लाभ के पद पर नियुक्त करना एक स्वस्थ

45 Gupta M G *op cit* p 499
46 Gupta M G *op cit* p 499

परम्परा नही है । ऐसी स्थिति म उनसे पूणरूपेण निर्भीक एव निष्पक्ष होन की आशा करना कठिन हो जायेगा। राज्यो की विधानसभाओ के अध्यक्षा की स्थिति तो अमेरिकी एव फ्रेच स्पीकरो जसी है। अनेक ऐसे उदाहरण है जहा राज्य विधान सभा के स्पीकरा न मन्त्रिपद ग्रहण करने के लिए त्यागपत्र दिय हैं। लोकत त्रीय विकास की दृष्टि से ये सब काय अनुचित हैं।

फिर भी धीरे धीरे भारतीय स्पीकर निष्पक्षता एव निदलीयता के आदश की तरफ अग्रसर हो रहा है। माग कष्टसाध्य एव दुगम अवश्य है लेकिन यह भी एक कटु सत्य है कि कोई व्यवस्थापिका सम्मान एव क्षमतापूवक अपने दायित्व को उस *समय तक नही निभा सकती जब तक कि उसके अध्यक्ष की निष्पक्षता एव न्यायप्रियता* ने सदन को पूर्ण विश्वास न हो।

विधि-निर्माण प्रक्रिया

विधि निर्माण प्रक्रिया विभिन्न देशा म भिन्न भि न है । सामान्यत विधेयक के तीन वाचन होते हैं। लेकिन प्रक्रिया के विभिन्न स्तरो मे अन्तर हाता है। ससदीय एव अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था वाले देशो की प्रक्रिया मे भी अन्तर होता है। ग्रेट ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमेरिका एव भारत की विधि प्रक्रियाओ का अध्ययन अग्रिम पृष्ठो म किया गया है।

ग्रेट बिटेन की विधि निर्माण प्रक्रिया[47]

ग्रेट ब्रिटेन मे प्रस्तावित विधेयको[48] को मुख्यत दो प्रकार—सावजनिक (Public) एव व्यक्तिगत (Private)—के विधेयको म वर्गीकृत किया जाता है। सावजनिक विधेयको का सम्बन्ध सम्पूण देश एव जनता से होता है। उदाहरण के लिए निर्वाचको *की योग्यता म सशोधन सम्बन्धी विधेयक सावजनिक विधेयक कहा जायगा। व्यक्तिगत* या असावजनिक विधेयका का सम्बन्ध देशव्यापी समस्या स न हाकर किसी विशेष भाग, वग या हित स होता है। किसी विशेष व्यक्ति, नियम, समूह, समुदाय, स्थानीय सस्था

---

47 कनाडा, आस्ट्रेलिया एव न्यूजीलण्ड की विधि-निमाण प्रक्रिया पर ब्रिटिश प्रणाली का व्यापक प्रभाव है और उनम कोई विशेष अन्तर नही है। कनाडा की कॉमन्स सभा म ब्रिटेन की भाति बहुमत दल का कठोर निय त्रण नही होता है। वाद-विवाद अपेक्षाकृत लम्बा होता है। 1913 ई म कनाडा म सम्पुट (closure) की व्यवस्था प्रारम्भ की गयी थी लेकिन उसका बहुत कम प्रयोग किया गया है। कनाडा की कॉमन्स सभा म निश्चित कायक्रमानुसार बहुत कम काय होता है। सत्र के अन्तिम दिनो मे सदन महत्वपूण मामलो का निपटान की जल्दी म रहता है। राजनीतिक दलो का कायक्रम भी ब्रिटेन की भाति व्यापक नही होता और न ही दलीय अनुशासन कठोर होता है।

48 Refer to Ogg and Zink *Modern Foreign Governments* pp 268 278 The British Parliament B I S Publication R5448/T3, May 1973 pp 19 25

या क्षेत्र से सम्बन्धित विधेयक व्यक्तिगत विधेयकों की श्रेणी में आते हैं। उनका सामान्य जनता से सम्बन्ध नहीं होता। व्यक्तिगत विधेयक सार्वजनिक विधेयकों से भिन्न रीति से पारित किये जाते हैं।

सार्वजनिक विधेयक दो प्रकार के होते हैं—धन या वित्त विधेयक (Money Bills) एवं गैर वित्तीय विधेयक (Non Money Bills)। धन विधेयक का सम्बन्ध राजस्व एवं राजकीय व्यय से होता है। मन्त्रिमण्डल द्वारा संसद के समक्ष स्वीकृति के हेतु जिन विधेयकों को प्रस्तुत किया जाता है उन्हें शासकीय विधेयक (Government Bills) की संज्ञा दी जाती है तथा जिन विधेयकों को सदन के किसी अन्य सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है वे व्यक्तिगत सदस्य विधेयक (Private Members Bills) के नाम से पुकारे जाते हैं। वित्तीय एवं गैर वित्तीय विधेयकों के पारित करने की प्रणाली में अन्तर होता है।

गैर वित्तीय सार्वजनिक विधेयक निर्माण प्रक्रिया—गैर वित्तीय सार्वजनिक विधेयक को सर्वप्रथम किसी भी सदन—लॉर्डसभा या कामन्ससभा—में प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन प्रत्येक विधेयक का दोनों सदनों द्वारा पारित होना आवश्यक है। विधेयक के तीन वाचन (readings) होते हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीय एवं तृतीय वाचन के मध्य की समिति अवस्था एवं प्रतिवेदन स्तर अन्य अवस्थाएँ होती हैं। अत विधेयक को प्रत्येक सदन में प्रथम एवं द्वितीय वाचन, समिति स्तर, प्रतिवेदन-स्तर, एवं तृतीय वाचन कुल क्रम में पाँच अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ता है। कामन्स सभा में विधेयक के पारित होने पर उसे द्वितीय सदन लॉर्डसभा में प्रस्तुत किया जाता है। लार्ड सभा में भी विधेयक को इन पाँच अवस्थाओं में से होकर पारित होना पड़ता है। विधेयक को लॉर्डसभा स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकती है। यदि लॉर्डसभा द्वारा विधेयक में संशोधन प्रस्तावित किया जाता है तो वह पुनर्विचार हेतु कामन्स सभा में वापस भेज दिया जाता है। यदि कामन्स सभा द्वारा निरन्तर होने वाले दो सत्रों में सम्बन्धित विधेयक को पुनः पारित कर दिया जाता है तथा प्रथम और तृतीय सत्र के मध्य की अवधि एक वर्ष से कम नहीं होती है तो विधेयक पारित माना जाता है तथा रानी/राजा के हस्ताक्षरों के लिए भेज दिया जाता है। स्थापित परम्परा के अनुसार रानी/राजा विधेयक को अस्वीकार नहीं कर सकते।

कामन्स सभा में विधेयकों को प्रस्तुत करने के पूर्व मन्त्रिमण्डल उन पर विचार विमर्श करता है। विधेयक को प्रस्तुत करने का निश्चय किये जाने पर विधेयक से सम्बन्धित सामान्य बातों का विवरण एक ज्ञापन के रूप में संसदीय सलाहकारों (Parliamentary Counsels) को भेजा जाता है। वे विधि विशेषज्ञ होते हैं। वे ज्ञापन में निर्देशित बातों को ध्यान में रख कर विधेयक को तैयार करते हैं। विधेयक के इस प्रारूप को मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकार करने के पूर्व उसे प्रकाशित कर दिया जाता है एवं सम्बन्धित व्यक्तियों से विचार विमर्श किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर प्रस्ता

वित विधेयक के प्रारूप म शासन द्वारा सशोधन किया जाता है या उसे पुन निर्मित कर दिया जाता है ।

विधेयक का पारित करने की 5 अवस्थाओ का विवरण निम्नवत है

(1) प्रथम वाचन (First Reading)—विधेयक को सदन म प्रस्तुत करने की यह प्रथम अवस्था है । प्रस्तावक इस सम्बन्ध म दो मे से एक रीति को अपना सकता है । प्रथम, प्रस्तावक अध्यक्ष को विधेयक प्रस्तुत करने की सूचना निश्चित प्रपत्र (Orders of the Day) पर प्रेषित करता है । निश्चित दिन सदन के अधिकारी—Clerk—द्वारा प्रस्तावक का नाम पुकारने पर वह विधयक की एक प्रति सदन की मेज पर रख देता है । द्वितीय रीति के अनुसार प्रस्तावक सदन म विधेयक प्रस्तुत करने के लिए समय की माग करता है । इस अवस्था म प्रस्तावक एव समथक क सक्षिप्त भाषणा के पश्चात प्रस्ताव को अध्यक्ष द्वारा सदन के समक्ष मत हेतु प्रस्तुत किया जाता है । सामायत प्रथम माग का अनुसरण किया जाता है । प्रस्तावका के द्वारा प्रतीक विधेयक (Dummy Bills) इस समय प्रस्तुत किये जाते हैं । इस विधेयक मे केवल विधेयक के शीषक का उल्लेख होता है, अन्य कोई विवरण नही होता । वास्तव मे पहले से ही तैयार एव सदन द्वारा स्वीकृत एक फाम होता है जिस पर विधेयक का केवल नाम लिख दिया जाता है एव सदन मे प्रस्तुत कर दिया जाता है । प्रथम वाचन मे कोई विवाद या वहस नही होती है । विधेयक (Bill) के तैयार हो जाने पर उसकी प्रतिया सदन के सदस्यो के मध्य वितरित कर दी जाती हैं । इसके पश्चात निश्चित तिथि को सदन म विधेयक का द्वितीय वाचन प्रारम्भ होता है ।

(2) द्वितीय वाचन (Second Reading)—विधेयक को पारित होने की यह बहुत महत्वपूण अवस्था है क्योकि इसी समय विधेयक के सभी सिद्धान्तो पर विवाद एव विचार होता है तथा सदन के मत से उसे स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है ।[49] पूव निधारित दिन का मन्त्री अपने स्थान पर खडे होकर यह कहता है कि अब विधेयक का द्वितीय वाचन होना चाहिए (The Bill be now read a second time) । वह विधेयक के महत्व एव उद्देश्यो पर विस्तारपूवक प्रकाश डालता है । समथका द्वारा उसके समथन मे तक दिये जाते हैं । विरोधी दला द्वारा उसकी आलोचना की जाती है अथवा विपरीत सशोधन का प्रस्ताव भी रखा जाता है, यथा—विधेयक का 6 माह उपरान्त अमुक तिथि को द्वितीय वाचन हो । इस प्रकार के प्रस्ताव का अथ विधेयक का अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने की माग करना होता है । इसके पश्चात विधेयक पर सदन म मतदान होता है । विधेयक के अस्वीकृत हो जाने पर शासन को

49 The second reading is the most important stage through which the Bill is required to pass, for, its whole principle is then at issue and is affirmed or denied by a vote of the House '—Erskine May Quoted by Herman Finer *The Theory and Practice of Modern Government*, 1956, p 485

त्यागपत्र देना पड़ता है। लेकिन इस प्रकार की सामान्यतः कोई आशंका नहीं होती क्योंकि मंत्रिमण्डल बहुमत दल में से निर्मित होता है। द्वितीय वाचन के बाद विवाद एवं विचार विमर्श के मध्य विधेयक पर बारंबार बहस नहीं होती। द्वितीय वाचन का उद्देश्य विधेयक के सिद्धान्तों की स्वीकृति देना है।

द्वितीय वाचन के दौरान ही समिति-स्तर एवं प्रतिवेदन-स्तर होते हैं।

(3) **समिति स्तर** (The Committee Stage)—सार्वजनिक विधेयक द्वितीय वाचन के दौरान में सम्बन्धित स्थायी समिति (Standing Committee) को भेज दिया जाता है। लेकिन यदि कोई सदस्य विधेयक को सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) या किसी प्रवर समिति (Select Committee) में भेजने का प्रस्ताव करता है तो वे सदन के निर्णय के अनुसार उक्त समिति को भेज दिये जाते हैं। सामान्यतः महत्त्वपूर्ण विषय सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) में प्रेषित किये जाते हैं। प्रवर समिति में किसी विधेयक को विशेष अवस्था में ही भेजा जाता है।

समिति स्तर में विधेयक पर बारंबार विचार होता है। संशोधन प्रस्तावित किये जाते हैं एवं नवीन धाराएँ जोड़ी जाती हैं। हर धारा को पृथक् से समिति को संशोधित एवं स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार होता है। सामान्यतः समिति में संयत वाद विवाद होता है। सदस्यगण समिति में एक प्रश्न या विषय पर अनेक बार बोल सकते हैं। यदि विरोधी दल चाहे तो प्रत्येक धारा पर मतदान की माँग भी कर सकता है।

शासकीय विधेयक को पारित कराने का दायित्व किसी न किसी मन्त्री का होता है। उसका यह दायित्व है कि विधेयक में ऐसा कोई संशोधन न किया जाय जिसमें विधेयक के मूल सिद्धान्तों में परिवर्तन हो जाय। समिति में चूँकि सत्तारूढ़ दल का बहुमत होता है अतः विधेयक में संशोधन सम्बन्धी ऐसे किसी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जाता जिससे उसके उद्देश्यों में अन्तर पड़ता हो।

(4) **प्रतिवेदन स्तर** (Report Stage)—समिति का अध्यक्ष विधेयक पर विचार विमर्श होने के पश्चात सदन को विधेयक को लौटाते हुए प्रतिवेदन देता है। प्रतिवेदन में प्रस्तावित संशोधन पर सदन में बहस होती है। वैकल्पिक संशोधन प्रस्तावित किये जाते हैं। इस अवसर का शासन द्वारा लाभ उठाया जाता है और उन समस्त संशोधनों को जिन्हें शासन सिद्धान्ततः पहले ही स्वीकार कर चुका हो एवं जिनके अनुरूप विधेयक में संशोधन का वचन दिया हो और जो संशोधन किन्हीं कारणों से समिति स्तर पर नहीं किये जा सके थे स्वीकार कर लेता है। यदि विधेयक पर सम्पूर्ण सदन की समिति में विचार होता है तो प्रतिवेदन देने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती।

(5) **तृतीय वाचन** (Third Reading)—प्रतिवेदन के पश्चात विधेयक सदन

के समक्ष तृतीय वाचन के हेतु प्रस्तुत किया जाता है। यह किसी सदन म विधेयक की अतिम अवस्था होती है। इस अवस्था म विधेयक म केवल मौखिक एव भाषा सम्बन्धी संशोधन ही प्रस्तावित किय जा सकते है। यद्यपि सदन विधेयक का स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है परन्तु इस अवस्था म आकर सामान्यत कोई विधेयक अस्वीकृत नही होता। ततीय वाचन म विधयक पर विचार विमश एव वाद विवाद होता है। स्मरणीय है कि सदन द्वारा विधेयक के सिद्धा ता का द्वितीय वाचन म अस्वीकार कर चुकन क पश्चात उस पर समिति म विचार विमश होता है। अत अतिम स्वीकृति देन से पूव सशोधित विधेयक को स्वीकृत करन के पूव उसका एक बार पुन निरीक्षण आवश्यक होता है। यही तृतीय वाचन का उद्देश्य है।

इन्ही पाँचा अवस्थाओ म स होकर विधेयक को लॉडसभा म स गुजरना पडता है एव द्वितीय सदन द्वारा स्वीकृत होने पर राजा या रानी के समक्ष विधेयक हस्ताक्षरा के लिए प्रस्तुत किया जाता है एव उनके हस्ताक्षर होन पर विधेयक पारित माना जाता है एव विधि बन जाता है।

व्यक्तिगत विधेयक (Private Bills)—सार्वजनिक विधेयका स व्यक्तिगत विधेयका को पारित करन की पद्धति भिन्न है। इगलैण्ड म प्रति वष बहुत से व्यक्तिगत विधेयक पारित किय जात हैं। इनम स अधिकाश विधेयका द्वारा स्थानीय सस्थाओ को विशेष शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। स्मरणीय है कि व्यक्तिगत विधेयका के प्रस्तावक ससद सदस्य नही होत अपितु व ससद के बाहर के व्यक्ति या निकाय होते है। सामान्यत विधेयक इनकी तरफ स ससदीय अभिकर्ताओ (Parliamentary Agents) द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार क विधेयको को एक प्राथनापत्र (petition) के साथ सलग्न करके आवदन के रूप म प्रस्तुत किया जाता है। इसके पश्चात प्रस्तावित विधेयक को ससद क दो व्यक्तिगत विधेयका के परीक्षका (Examiners of Petition of Private Bills) क पास निरीक्षण हेतु भेज दिया जाता है। इस प्रकार के विधेयक को प्रस्तावित करन के पूव उसस सम्बन्धित व्यक्तिया को लिखित रूप मे सूचित किया जाता है जिसस कि उन्ह विधयक की सूचना हो सके। प्रस्तावित विधेयक की अग्रिम प्रतियाँ सम्बन्धित विभागो का भी भेजी जाती है। परीक्षका का दायित्व यह है कि वे देखे कि सम्बन्धित हिता एव विभागा का सूचित किया जाता है और विधेयक की प्रतियाँ उन्ह भेजी जा चुकी है। सभी औपचारिकताओ के पूण होने पर वे विधेयक को प्रमाणित (certify) करते है एव इसके पश्चात ही विधेयक किसी सदन मे प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि सभी औपचारिकताएँ पूण नही होती तो परीक्षका के द्वारा विधेयक दोना सदना की स्थायी आदेशो की समिति (Committee of Standing Orders) को भेजे जात हैं। इस समिति को औपचारिक अपूणता की उपेक्षा करन सम्बन्धी निणय कर सकने का अधिकार होता है।

सदन म व्यक्तिगत विधेयक के प्रस्तुत किय जान के पश्चात उसका प्रथम

द्वितीय वाचन सार्वजनिक विधेयकों की भांति ही होता है। प्रथम वाचन म सदन म विधेयक का केवल शीर्षक पढा जाता है। द्वितीय वाचन मे यदि विधेयक का विरोध नही होता तो उस निर्विरोध विधेयक समिति (Committee of Unopposed Bills) को भेजा जाता है। यदि विधेयक का विरोध किया जाता है तो उसे व्यक्तिगत विधेयक समिति (Private Bill Committee) को भेजा जाता है। इस समिति म कॉमन्स सभा के 4 एव लॉर्डसभा के 5 सदस्य होते हैं। इस समिति के सदस्यगण विधेयक से किसी प्रकार भी सम्बन्धित नही होते। कभी-कभी बहुत से व्यक्तिगत विधेयको को एक ही समिति मे भेज दिया जाता है।

समिति म विधेयको पर न्यायालयों की भांति ही विचार किया जाता है। सर्वप्रथम समिति मे विधेयक के उद्देश्यो एव प्रयोजनो पर विचार होता है। इसके पश्चात विधेयक से प्रभावित होने वाले व्यक्तियो के पक्ष एव विपक्ष मे बयान लिये जाते हैं। सम्बन्धित व्यक्तियो को समिति मे अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए अधिवक्ता नियुक्त करने की सुविधा प्राप्त होती है। यदि समिति विधेयक के उद्देश्य एव प्रयोजन का उचित मान लेती है तो विधेयक पर आगे धारावार विचार प्रारम्भ होता है। सम्बन्धित शासकीय विभाग के प्रतिवेदन पर भी साथ साथ विचार किया जाता है। समिति द्वारा विचार किये जाने पर विधेयक को अपने निर्णय सहित वह सदन को लौटा देती है। सामान्यत समिति के प्रतिवेदन को सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। यदि समिति म विधेयक के विरुद्ध निर्णय होता है तो सदन उसे अस्वीकृत कर सकता है अन्यथा तृतीय वाचन होता है। एक सदन म विधेयक के पारित होने के पश्चात वह इसी रीति से द्वितीय सदन म भी पारित किया जाता है और सम्राट की स्वीकृति के पश्चात विधि बन जाता है।

ब्रिटेन म व्यक्तिगत विधेयको पर राजनीतिक दलबन्दी की दृष्टि से विचार नही किया जाता है। इन विधेयको का पारित होना उनकी उपयोगिता पर निर्भर करता है। ये विधेयक सदन के अविवादग्रस्त (non controversial) कार्य माने जाते हैं एव एक सदन म विधेयक के पारित होने पर उसे दूसरा सदन सरलता से स्वीकार कर लेता है।

स्थानीय संस्थाओ को सदन से अधिकार-वृद्धि के लिए आवेदन के अधिकार देकर निश्चित रूप से एक कमी को पूरा किया गया है। परिवर्तित परिस्थितिया म नवीन अधिकारों की आवश्यकता हो सकती है। छोटी, बडी, निर्धन एव सम्पन्न सभी संस्थाओ को इस सुविधा के कारण समान विधियो के अधीन कार्य नही करना पडता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्थाओ को इस बात की प्रतीक्षा भी नही करनी पडती कि संसद स्वत आवश्यक विधि का निर्माण करे। संस्थाएँ स्वय प्रस्ताव करके आवश्यक विधि के निर्माण के लिए पहल कर सकती हैं। लेकिन व्यक्तिगत विधेयको को पारित करने म बहुत अधिक समय एव धन व्यय होता है।

गर सरकारी विधेयक (Non Government Bills)—इन्हे व्यक्तिगत सदस्य विधेयक (Private Members Bill) भी कहते है। यह भी सावजनिक विधेयक होते ह, अन्तर केवल इतना होता है कि ये किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तुत न करके किसी साधारण सदस्य द्वारा प्रस्तावित किये जाते है। कॉमन्स सभा का अधिकाश समय शासकीय काम-काज मे ही व्यतीत हो जाता है। अत गैर सरकारी विधेयको पर सप्ताह मे केवल शुक्रवार के दिन ही विचार होता है एव एक सत्र मे इनकी अधिक से अधिक सख्या 20 हो पाती है। इसके अतिरिक्त एक शुक्रवार विधेयको के लिए, तो दूसरा शुक्रवार प्रस्तावो आदि के लिए निश्चित होता है। अत एक सत्र म केवल 10 दिन ही गैर सरकारी विधेयको पर विचार विमर्श हेतु प्राप्त हो सकते हैं। यह समय पर्याप्तत कम है एव समस्त गैर-सरकारी विधेयका पर विचार हो सकना सम्भव नही होता है। अत सत्र के प्रारम्भ मे ही विधेयको के प्रस्तावका के नाम की चिट्ठी डाल कर (ballots for precedence) निणय कर लिया जाता है एव क्रमबार नाम निकलने पर सूची को व्यवस्थित कर लिया जाता है तथा प्रत्येक शुक्रवार को क्रम मे उन्हे विधेयक प्रस्तुत करने को आमन्त्रित किया जाता है। निर्धारित शुक्रवारो की सख्या समाप्त होने पर जो विधेयक रह जात है, उनको कोई अवसर प्राप्त नही होता।

गैर सरकारी विधेयक का शासकीय सहानुभूति के अभाव मे पारित होना सम्भव नही है। यदि शासन का पूण समथन न हो तो कम से कम यह तो आवश्यक है ही कि उसे कम स कम विरोध का सामना करना पडे। मन्त्रिमण्डल द्वारा विरोध किये जाने पर विधेयक का प्रथम वाचन मे ही अन्त हो जाता है यदि मन्त्रिमण्डल के विरोध क पश्चात भी कोई गैर सरकारी विधेयक पारित होता है तो इसका यह अथ है कि मन्त्रिमण्डल म सदन को अविश्वास है। ये विधेयक भी सरकारी विधेयको की भाति पृथक पृथक दोना सदना द्वारा तीन वाचनो म पारित किये जाते है एव सम्राट की स्वीकृति प्राप्त करके विधि बनते है।

ब्रिटिश वित्त व्यवस्था[50]

ब्रिटिश ससद—व्यवहार म कॉमन्स सभा—राष्ट्र क वित्त पर नियन्त्रण रखती है। राष्ट्रीय वित्त का प्रबन्ध ससद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण दायित्व है। जिसका वित्त पर अधिकार होता है वही सत्ता पर अधिकार रखता है। आर्थिक नियन्त्रण के माध्यम से शासन पर नियन्त्रण रखा जाता है। ब्रिटेन म वित्त पर ससदीय नियन्त्रण के निम्न चार प्रकार हैं —

(1) शासकीय विभागा एव उनके कार्यों के लिए आवश्यक अनुदाना को स्वीकृत करना।

(2) शासकीय आय के साधनो—करो—को निर्धारित करना।

50 Refer to Ogg and Zink *op cit*, Chap XIII, pp 279 294, Finer, H *op cit*, pp 508 512

(3) स्वीकृत अनुदानों के व्यय का निरीक्षण एवं समीक्षा।

(4) शासकीय आय एवं व्यय का लेखा परीक्षण।

सार्वजनिक वित्त व्यवस्था के सम्बन्ध में पहले शासन के अनुमानित व्यय को निर्धारित किया जाता है तब तदनुरूप आय की व्यवस्था की जाती है। स्मरणीय है कि वित्त विधेयकों को सर्वप्रथम कामन्स सभा में ही प्रस्तुत किया जाता है। लार्डसभा को अधिक से अधिक एक माह तक रोकने का अधिकार प्राप्त होता है। यदि लार्ड सभा कामन्स सभा के प्रस्तावित सुझावों को स्वीकार नहीं करती तो कामन्स सभा जिस रूप में वित्त विधेयक पारित करती है उसी रूप में वह पारित माना जाता है। वित्त विधेयक को स्पीकर प्रमाणित करता है एवं इस सम्बन्ध में उसका निर्णय अन्तिम होता है। वित्त विधेयकों को पारित होने की पद्धति गैर वित्तीय विधेयकों से भिन्न होती है। ग्रेट ब्रिटेन के आय व्यय प्रपत्र (Budget) में अर्थ दो—विनियोग एवं राजस्व—विधेयकों (Appropriation Act and Finance Act) से है जो पृथक्-पृथक् रूप में कामन्स सभा पारित करती है। पहले वार्षिक व्ययों के अनुमानों (Estimates) को कामन्स सभा में जनवरी के अन्तिम या फरवरी के प्रथम सप्ताह में वित्त-मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। अनुमानों के प्रस्तुत करने के पश्चात् वित्त विधेयक या राजस्व विधेयक का जिसका सम्बन्ध कर प्रस्तावों से होता है सदन में प्रस्तुत किया जाता है। वित्त मन्त्री (Chancellor of Exchequer) जिस दिन बजट को कामन्स सभा में प्रस्तुत करता है वह दिन 'बजट दिवस' (Budget day) कहलाता है। वित्त-मन्त्री द्वारा इस दिन भाषण दिया जाता है। इस भाषण द्वारा आगामी करों का पता चल जाता है। विनियोग विधेयक को विभिन्न विभागों के सहयोग से वित्त विभाग 6 7 माह में तैयार करता है। दोनों विधेयकों पर विचार विमर्श के लिए कामन्स सभा अपने को पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) में परिवर्तित कर लेती है। विनियोग विधेयक पर विचार करते समय कामन्स सभा को सम्पूर्ण समिति को पूर्ति समिति (Committee of Supply) की संज्ञा दी जाती है और जब कामन्स सभा राजस्व विधेयक पर विचार विमर्श करती है तो उसे उपाय एवं साधन समिति (Committee of Ways and Means) कहते हैं। राजस्व या कर सम्बन्धी प्रस्तावों को उपस्थित करते समय पूर्ण गोपनीयता बरती जाती है और सदन में प्रस्तुत करने के पूर्व यदि उसका कोई अंश प्रकाशित हो जाता है तो वह वित्त मन्त्री की अयोग्यता का प्रमाण माना जाता है। फलस्वरूप वित्त मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ता है।

व्यय के सम्पूर्ण अनुमानों पर वाद विवाद एवं निर्णय हेतु केवल 26 दिन निर्धारित होते हैं। प्रत्येक विभाग के लिए समय निश्चित होता है और इस अवधि में यदि सम्बन्धित विभाग की सम्पूर्ण माँगों पर विचार विमर्श नहीं हो पाता तो सम्पुट (closure) का प्रयोग किया जाता है। बहस कम न होकर चार-पाँच महीनों में

बिखरी होती है अत फरवरी से जुलाई तक बजट पर बहस होती रहती है। स्मरणीय है कि बजट की अवधि प्रति वष 31 माच को समाप्त हो जाती है और नवीन वित्तीय वष 1 अप्रल से प्रारम्भ होता है। बहुधा बजट की स्वीकृति इस तारीख तक नही हो पाती है। अत पूर्ति समिति (Committee of Supply) पहली अप्रल के पूव ही कुछ महीनो के व्यय हेतु आवश्यक धनराशि की अग्रिम स्वीकृति दे देती है। इसे अग्रिम स्वीकृति (Vote of Account) कहते है। यदि यह धनराशि कम पडती है और निर्धारित अवधि म बजट स्वीकृत नही हो पाता है तो पुन अन्तिम 'अग्रिम स्वीकृति प्राप्त की जाती है।

कॉमन्स सभा म प्रस्तावित व्ययो मे साधारण सदस्यो को केवल कमी या कटौती का ही प्रस्ताव करन का अधिकार होता है। वे व्यय की नयी मदो की वृद्धि का प्रस्ताव नही कर सकते। ब्रिटिश वित्तीय व्यवस्था के अनुसार सिद्धान्तत व्यय की माग तो सम्राट के नाम पर मन्त्रियो द्वारा ही की जा सकती है। साधारण सदस्य न तो करारोपण की माग कर सकते है और न उनकी वृद्धि का प्रस्ताव कर सकते हैं। वे व्यय की मागो या करा के प्रस्ताव म केवल किफायत, कटौती या कमी का प्रस्ताव कर सकते हैं।

व्यय के अनुमाना एव कर प्रस्तावो पर जब सदन क्रमश पूर्ति समिति (Committee of Supply) तथा उपाय एव साधन समिति (Committee of Ways and Means) के रूप मे विचार विमश कर चुकता है तो वे कॉमन्स सभा के पास भेज दिये जात है। इ ह दो विधेयका के रूप म सगठित किया जाता है। व्यय प्रस्तावा सम्बन्धी विधेयक को 'विनियोग विधेयक' (Appropriation Bill) एव कर-प्रस्तावा सम्बन्धी विधेयक को वित्त अथवा राजस्व विधेयक (Finance or Revenue Bill) कहते ह। ये दोना विधेयक सयुक्त रूप से बजट (Budget) कहे जाते है। अत विधेयको की भाँति इसे भी तीन वाचना मे पारित किया जाता ह परन्तु अन्य विधेयका की भाति इस पर द्वितीय वाचन के स्तर पर समितिया म विचार नही होता क्योकि कॉमन्स सभा की दो पूण सदन समितिया इस पर पहले ही विचार कर चुकती है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की विधि-निर्माण प्रक्रिया [1]

सयुक्त राज्य अमेरिका की विधि प्रणाली कुछ अर्थो म ब्रिटन से भिन्न ह। ब्रिटेन की तरह सयुक्त राज्य अमेरिका म विधेयक तीन प्रकार के नही होते। अमरिका म सावजनिक विधेयका (Public Bills) स अथ उन विधेयका से है जो मौलिक महत्व के होत हैं एव महत्वपूण शासकीय नीति स सम्बन्धित होते ह। व्यक्तिगत विधेयका (Private Bills) का सम्बन्ध गर-सरकारी एव व्यक्तिगत मामला स होता है। इगलण्ड

51 Refer to Ogg and Ray *The Foundations of Government in the United States* 9th edn, pp 210 230 Harold Zink, H R, Penniman and G B Hawthorn *American Government and Politics*, 1967, pp 18० 206

(3) स्वीकृत अनुदानों के व्यय का निरीक्षण एव समीक्षा।

(4) शासकीय आय एव व्यय का लेखा परीक्षण।

सार्वजनिक वित्त व्यवस्था के सम्बन्ध में पहले शासन के अनुमानित व्यय को निर्धारित किया जाता है एव तदनुरूप आय की व्यवस्था की जाती है। स्मरणीय है कि वित्त विधेयकों को सर्वप्रथम कामन्स सभा में ही प्रस्तुत किया जाता है। लार्डसभा को अधिक से अधिक एक माह तक रोकने का अधिकार प्राप्त होता है। यदि लार्ड सभा कामन्स सभा के प्रस्तावित सुझावों को स्वीकार नहीं करती तो कामन्स सभा जिस रूप में वित्त विधेयक पारित करती है उसी रूप में वह पारित माना जाता है। वित्त विधेयक को स्पीकर प्रमाणित करता है एव इस सम्बन्ध में उसका निर्णय अंतिम होता है। वित्त विधेयकों की पारित होने की पद्धति गैर वित्तीय विधेयकों से भिन्न होती है। ब्रिटेन के आय व्यय प्रपत्र (Budget) से अर्थ दो—विनियोग एव राजस्व—विधेयकों (Appropriation Act and Finance Act) से है जो पृथक पृथक रूप में कामन्स सभा पारित करती है। पहले वार्षिक व्ययों के अनुमानों (Estimates) को कामन्स सभा में जनवरी के अन्तिम या फरवरी के प्रथम सप्ताह में वित्त-मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। अनुमानों के प्रस्तुत करने के पश्चात वित्त विधेयक या राजस्व विधेयक को जिसका सम्बन्ध कर प्रस्तावों से होता है सदन में प्रस्तुत किया जाता है। वित्त मन्त्री (Chancellor of Exchequer) जिस दिन बजट को कामन्स सभा में प्रस्तुत करता है उस दिन बजट दिवस (Budget day) कहलाता है। वित्त-मन्त्री द्वारा इस दिन भाषण दिया जाता है। इस भाषण द्वारा आगामी करों का पता चल जाता है। विनियोग विधेयक को विभिन्न विभागों के सहयोग से वित्त विभाग 6 7 माह में तैयार करता है। दोनों विधेयकों पर विचार विमर्श के लिए कामन्स सभा अपने को पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) में परिवर्तित कर लेती है। विनियोग विधेयक पर विचार करते समय कामन्स सभा की सम्पूर्ण समिति को पूर्ति समिति (Committee of Supply) की संज्ञा दी जाती है और जब कामन्स सभा राजस्व विधेयक पर विचार विमर्श करती है तो उसे उपाय एव साधन समिति (Committee of Ways and Means) कहते हैं। राजस्व या कर सम्बन्धी प्रस्तावों को उपस्थित करते समय पूर्ण गोपनीयता बरती जाती है और सदन में प्रस्तुत करने के पूर्व यदि उसका कोई अंश प्रकाशित हो जाता है तो वह वित्त मन्त्री की अयोग्यता का प्रमाण माना जाता है। फलस्वरूप वित्त मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ता है।

व्यय के सम्पूर्ण अनुमानों पर वाद विवाद एव निर्णय हेतु केवल 26 दिन निश्चित होते हैं। प्रत्येक विभाग के लिए समय निश्चित होता है और इस अवधि में यदि सदस्यों पर विभाग की सम्पूर्ण मांगों पर विचार विमर्श नहीं हो पाता तो सम्पूर्ण (closure) का प्रयोग किया जाता है। बहुत कम [illegible] महीनों में

बिखरी होती हैं अत फरवरी से जुलाई तक बजट पर बहस होती रहती है। स्मरणीय है कि बजट की अवधि प्रति वष 31 माच को समाप्त हो जाती है और नवीन वित्तीय वष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है। बहुधा बजट की स्वीकृति इस तारीख तक नही हो पाती है। अत पूर्ति समिति (Committee of Supply) पहली अप्रल के पूव ही कुछ महीनो के व्यय हेतु आवश्यक धनराशि की अग्रिम स्वीकृति द देती है। इस अग्रिम स्वीकृति (Vote of Account) कहते हैं। यदि यह धनराशि कम पडती है और निर्धारित अवधि म बजट स्वीकृत नही हो पाता है तो पुन अन्तिम अग्रिम स्वीकृति' प्राप्त की जाती है।

कामन्स सभा मे प्रस्तावित व्यया म साधारण सदस्यो को केवल कमी या कटौती का ही प्रस्ताव करने का अधिकार होता है। वे व्यय की नयी मदा की वृद्धि का प्रस्ताव नही कर सकत। ब्रिटिश वित्तीय व्यवस्था के अनुसार सिद्धान्तत व्यय की माग तो सम्राट के नाम पर मन्त्रिया द्वारा ही की जा सकती है। साधारण सदस्य न तो करारोपण की माग कर सकते है और न उनकी वृद्धि का प्रस्ताव कर सकते हैं। वे व्यय की मागा या करा के प्रस्ताव म केवल किफायत, कटौती या कमी का प्रस्ताव कर सकते हैं।

व्यय के अनुमाना एव कर-प्रस्तावा पर जब सदन क्रमश पूर्ति समिति (Committee of Supply) तथा उपाय एव साधन समिति (Committee of Ways and Means) के रूप मे विचार विमश कर चुकता है तो वे कॉमन्स सभा के पास भेज दिये जाते हैं। इ ह दा विधेयका के रूप म सगठित किया जाता है। व्यय प्रस्तावा सम्बधी विधेयक को 'विनियोग विधेयक' (Appropriation Bill) एव कर प्रस्तावो सम्बन्धी विधेयक को वित्त अथवा राजस्व विधेयक (Finance or Revenue Bill) कहते ह। ये दोना विधेयक सयुक्त रूप से बजट (Budget) कहे जाते है। अत विधेयको की भाति इसे भी तीन वाचना म पारित किया जाता है पर तु अन्य विधेयको की भाति इस पर द्वितीय वाचन के स्तर पर समितियो म विचार नही होता क्योकि कॉमन्स सभा की दो पूण सदन समितिया इस पर पहले ही विचार कर चुकती है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की विधि-निर्माण प्रक्रिया[51]

सयुक्त राज्य अमेरिका की विधि प्रणाली कुछ अर्थों मे ब्रिटन से भिन्न ह। ब्रिटेन की तरह सयुक्त राज्य अमेरिका म विधेयक तीन प्रकार के नही होते। अमेरिका मे सावजनिक विधेयको (Public Bills) स अथ उन विधेयको से है जो मौलिक महत्व के होते हैं एव महत्वपूण शासकीय नीति स सम्बन्धित होत है। व्यक्तिगत विधेयका (Private Bills) का सम्बन्ध गर-सरकारी एव व्यक्तिगत मामलो स होता है। इगलैण्ड

51 Refer to Ogg and Ray *The Foundations of Government in the United States*, 9th edn pp 210 230 Harold Zink H R, Penniman and G B Hawthorn *American Government and Politics*, 1967, pp 189-206

के अर्थो म यहा सावजनिक विधयक नही होते । इसके अतिरिक्त सयुक्त राज्य अमरिका म विधेयका (Bills) एव सयुक्त प्रस्तावो (Joint Resolutions) म भी अतर होता है यद्यपि दोनो म कोई विशेष अतर नही है । विधेयका की अपेक्षा सयुक्त प्रस्तावा का क्षत्र सकीण होता है एव उनके उद्देश्य भी स्थायी होत है। सदन म कायकारी प्रस्ताव (concurrent resolutions) भी प्रस्तावित किये जाते है। इह सरल सदन (Simple House) या सीनेट के प्रस्ताव भी कहा जाता है। ये सरल प्रस्ताव सदनो क विचार एव दृष्टिकोणो को व्यक्त करत है और इह राष्ट्रपति क पास हस्ताक्षर के लिए नही भेजा जाता है । इनका कोई विधिक महत्व भी नही है । स्मरणीय है कि सावजनिक एव व्यक्तिगत विधेयको तथा सयुक्त प्रस्तावा के मध्य भेद को व्यवहार म मायता नही दी जाती है । सयुक्त राज्य अमरिका म सभी विधेयक व्यक्तिगत सदस्या द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं । इसका कारण शक्ति पृथक्करण के सिद्धात पर आधारित अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था है । कायपालिका व्यवस्थापिका का अग नही होती है और न वह उसके प्रति उत्तरदायी ही है । ब्रिटिश विधि निर्माण प्रक्रिया का अमरिकी पद्धति पर स्पष्ट प्रभाव है । उदाहरणाथ—विधेयक दोनो सदनो द्वारा तीन वाचनो म पारित किय जाते हैं, समिति व्यवस्था दोनो देशो म है पर तु दोना देशा म विस्तार की बातो म पर्याप्त अतर पाया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका म विधेयक को निम्न अवस्थाओ म स होकर पारित होना पडता है (1) विधयको का आरम्भ (Introduction of the Bills) एव प्रथम वाचन (First Reading), (2) समिति-स्तर (Committee Stage), (3) सूची-स्तर (Calendar Stage) (4) द्वितीय वाचन (Second Reading) एव (5) ततीय वाचन (Third Reading) । इनका विस्तृत विवरण निम्नवत है

(1) **विधेयक का आरम्भ एव प्रथम वाचन**—अमेरिका म विधयको को प्रस्तावित करना बहुत सरल है । समस्त गैर वित्तीय विधेयक काग्रेस क किसी सदन म प्रथम बार प्रस्तावित किय जा सकते ह । वित्त विधेयक प्रथम बार प्रथम सदन—प्रतिनिधि सदन—म ही प्रस्तुत किय जाते है। प्रस्तावक विधयक की एक हस्ताक्षर युक्त प्रति प्रतिनिधि सदन के क्लक (Clerk) या सीनेट म सक्रेटरी (Secretary) की मज पर रखी एक पेटी (hopper) म डाल देता है। विधेयक को प्रस्तुत करने की क्रिया पूण हो जाती है । कांग्रेस क प्रत्यक सत्र म हजारा की सख्या म विधेयक प्रस्तावित किये जात है। प्रत्यक सदस्य का अनक विधेयक प्रस्तावित करने का अधिकार होता है। प्रस्तावित विधेयका को क्रमानुसार सख्या प्रदान की जाती है । इस प्रकार विधयक को प्रस्तावित करना—प्रथम वाचन—पूण हो जाता है। यह क्वल औपचारिक मात्र है।

(2) **समिति स्तर (Committee Stage)**—इसके पश्चात विधेयक क्लक द्वारा सम्बधित समिति क पास भेज दिया जाता है । विधेयक को किस समिति के पास भेजा जाय जसी कोई शका उत्पन्न होन पर सदन के अध्यक्ष का निणय इस सम्बध म अन्तिम होता है । समिति म विधेयक की प्रारम्भिक जांच क पश्चात उसको महत्वपूण

एव आवश्यक समझने पर विधेयक पर आगे विचार विमश होता है अन्यथा विधेयक का अन्त हो जाता है। अनावश्यक विधेयको को दफ्तर-दाखिल (file) कर दिया जाता है। इसे ही विधेयका की अकाल मत्यु (pigeon holed) कहते हैं। समिति म विधेयक पर बारावार विचार होता है। सम्बन्धित व्यक्तियो के विचारो को सुना जाता है। समिति को विधेयक म सशोधन एव आमूलचूल परिवतन करने तक का अधिकार होता है, वह शीषक को छोडकर शेष विधेयक को पूणरूपेण परिवर्तित कर सकती है। वह विधेयक को अस्वीकृत भी कर सकती है। ग्रेट ब्रिटेन की तरह यह आवश्यक नही है कि समितियाँ प्रत्येक विधेयक को अपने प्रतिवेदन सहित सदन को वापस करे। जिन विधेयको को वे अस्वीकार कर देती है, उन पर वे प्रतिवेदन ही नही देती और वह विधेयक समिति अवस्था मे ही समाप्त हो जाता है। स्मरणीय है कि प्रतिनिधि सदन अपने सदस्यो के स्पष्ट बहुमत से प्रस्ताव पारित करके विधेयक को स्वय विचार करने के लिए समिति से वापस मँगा सकता है। सीनेट भी प्रस्ताव पारित करके समिति को विधेयक पर विचार करने से रोक सकती है एव विधेयक पर स्वय विचार कर सकती है। समिति के अध्यक्ष द्वारा प्रतिवेदन दिया जाता है।

(3) **सूची स्तर (Calendar Stage)**—प्रत्यक विधयक को समितियो द्वारा सदन को प्रतिवेदन सहित जिस क्रम से लौटाया जाता है, उसी क्रम म उनको तीन प्रमुख सूचियो (Calendars) म से एक मे सम्मिलित कर दिया जाता है। तीन प्रमुख सूचिया है (i) **सघीय सूची (Union calendar)** इस सूची मे सभी सघीय या धन सम्बन्धी या अन्य सावजनिक विधेयक रखे जाते है। (ii) **सदन सूची (House calendar)** राजस्व, धन या अन्य वित्त विधेयका के अतिरिक्त शेष सावजनिक विधेयको को इस सूची म रखा जाता है। (iii) **व्यक्तिगत सूची (Private calendar)** इसम सभी व्यक्तिगत विधेयक रखे जाते ह। इसे सम्पूण सदन की व्यक्तिगत विधेयक समिति सूची (Calendar of Committee of the Whole House for Private Bills) भी कहते है।

(4) **द्वितीय वाचन (Second Reading)**—सूची स्तर के पश्चात विधेयक पर सदन मे विचार किया जाता है। इसे विधेयक का द्वितीय वाचन कहते ह। सम्पूण सदन की समिति (Committee of the Whole House) के रूप म सदन का अधिवेशन प्रारम्भ होता है। स्पीकर सदन की पूण समिति की अध्यक्षता नही करता ह। 100 सदस्या की उपस्थिति गणपूर्ति के लिए आवश्यक होती है। अनौपचारिक रूप मे सभी काय चलता है। मौखिक मतदान होता है एव उसका कोई विवरण नही रखा जाता है। विधेयक पर विचार विमश समाप्त हो चुकने पर स्पीकर पुन अध्यक्ष का आसन ग्रहण कर लेता है। द्वितीय वाचन विधेयक की महत्वपूण अवस्था होती है। इस अवस्था म अनेक सशोधन प्रस्तावित किय जात ह। विधेयक पर सदन म विचार के समय समिति के प्रमुख सदस्या द्वारा उसका मागदशन किया जाता है। अल्प-

सख्यक सदस्या द्वारा उसका विरोध होता है। विचार विमश की समाप्ति पर सदन का अध्यक्ष विधेयक को ततीय वार पढ़े जान का प्रस्ताव रखता है। यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है ता विधेयक का तृतीय वाचन हाता है अयथा द्वितीय वाचन म ही विधेयक समाप्त हो जाता है।

(5) तृतीय वाचन (Third Reading)—यह सदन म विधेयक की अतिम अवस्था होती है और इसम नाममात्र का वाचन होता है तथा विधेयक का केवल शीषक पढकर सुना दिया जाता है। यदि कोई सदस्य सम्पूण विधेयक क पढ़े जाने की मांग करता है तो उसे पढा जाता है। सामायत ऐसी मांग नही की जाती है। इसके पश्चात विधेयक पर अतिम निणय जानन क लिए अध्यक्ष मतदान कराता है। मतदान की तीन प्रमुख रीतियाँ हैं (1) मौखिक मतदान (Viva voce Vote) अथात सदस्या के पक्ष विपक्ष को ध्वनि के आधार पर निर्णीत किया जाता है, (2) खडे होकर मतदान (Vote by standing), एव (3) हां या 'न' द्वारा मतदान (Vote in a yes and noes)। 'खडे हाकर मतदान' तथा 'हाँ' या 'न' द्वारा मतदान की रीतियो का प्रयोग सदस्या के मांग करन पर ही किया जाता है।

दोनो सदना स विधेयक के पारित हान पर वह राष्ट्रपति क हस्ताक्षरो क लिए भेज दिया जाता ह एव तत्पश्चात वह विधि बनता है। राष्ट्रपति विधयक को स्वीकार कर सकता ह या उसे सशोधन सहित पुनर्विचार हतु वापस भेज सकता है या अस्वीकार कर सकता है। राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित सशोधन को स्वीकार करने के लिए काग्रेस वाध्य नही ह। यदि कांग्रेस 2/3 बहुमत स विधेयक को पुन मूल म पारित कर देती है तो राष्ट्रपति के हस्ताक्षरो के विना भी वह अधिनियम का रूप धारण कर लेता है। विधेयक प्राप्त होने क दस दिन क भीतर राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति/अस्वीकृति प्रदान कर देनी चाहिए। यदि इस अवधि के समाप्त होने पर भी राष्ट्रपति ऐसा नही करता तो यह माना जाता है कि विधेयक को राष्ट्रपति के द्वारा स्वीकृति प्रदान कर दी गयी है और वह अधिनियम बन जाता है। यदि इस अवधि (दस दिन) के अदर काग्रेस का सत्र समाप्त हो जाता है और राष्ट्रपति कोई कायवाही नही करता तो विधेयक का स्वत अन्त हो जाता है।

सीनेट एव प्रतिनिधि सदन मे विधि निर्माण प्रक्रिया सम्बधी तीन महत्वपूण अतर है। वे निम्नलिखित हैं

(1) 1933 ई के पूव सीनेट म प्रतिनिधि सदन की अपेक्षा सदन की पूण समिति की व्यवस्था का अधिक प्रचलन था। लेकिन अब सीनेट मे सधियो के सदभ मे विचार विमश करते समय ही सदन की पूण समिति का आयोजन किया जाता है।

(2) विनियोग विधेयको (Appropriation Bills) को सीनेट मे अनिवायत प्राथमिकता दी जाती है। अय कोई विधेयक विशेष महत्व का नही होता है। अत सूची के क्रमानुसार या इच्छानुसार विधेयको पर विचार होता रहता है। सीनेट म

संयुक्त राज्य अमेरिका म वित्तीय विधि निर्माण[53]

अमरिका वित्तीय विधि निमाण पद्धति ब्रिटिश वित्तीय व्यवस्था स पर्याप्तत भिन्न है। इसका मुख्य कारण यह है कि अमरिका म व्यवस्थापिका एव कार्यपालिका का गठन शक्ति पृथक्करण पर आधारित है। 1921 ई क पूव अमरिकी बजट-व्यवस्था पर्याप्तत अव्यवस्थित थी। प्रत्यक विभाग द्वारा अपन विभागीय अनुमानो को तयार किया जाता था एव कोषागार विभाग क सचिव (Secretary of the Treasury Department) द्वारा उनको प्रतिनिधि सदन क समक्ष आगामी वष क कर-प्रस्तावो सहित प्रस्तावित किया जाता था। फाइनर क अनुसार यह अनुमान (Estimates) अव्यवस्थित (uncoordinated) एव असशोधित (unrevised) हुआ करत थे।[54] इन्ह प्रतिनिधि सदन की विभिन्न समितियो के मध्य विचाराथ वितरित कर दिया जाता था। सदन की समितियाँ पृथक-पृथक रूप म प्रतिवेदन प्रस्तुत करती थीं। इस प्रकार सम्पूण बजट पर एक साथ विचार नही होता था। प्रतिनिधि सदन म बजट पर विचार हो चुकन क पश्चात इसी प्रक्रिया को सीनेट म दोहराया जाता था। अत बजट पृथक पृथक विभागीय अनुमानित माँगो का कवल एक समूह मात्र हुआ करता था और इसम कोइ क्रमबद्धता नही पायी जाती थी।

1921 ई के बजट एव लेखा अधिनियम (Budget and Accounting Act) के द्वारा निम्न व्यवस्थाएँ की गयी। ट्रेजरी विभाग के अतगत बजट कार्यालय (Bureau of the Budget) की स्थापना की गयी है।[55] इसके अध्यक्ष को निर्देशक (Director) की सज्ञा दी गयी जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होता है एव उसी के प्रति उत्तरदायी भी होता है। उसकी सहायताथ उपनिर्देशक भी नियुक्त किये जाते हैं। निर्देशक (Director) की स्थिति भारतीय वित्त मन्त्री एव ब्रिटिश वित्तमन्त्री (Chancellor of the Exchequer) के समान होती है। वह वित्तीय व्यवस्था म क्षमता एव मितव्ययता के लिए सदव प्रयत्नशील रहता है। विभिन्न विभागो द्वारा प्रस्तावित व्यय की अनुमानित माँगो की वह उनके सहयोग से सतकतापूवक जाँच पडताल करता है। जहाँ वह उचित समभता है इनम कटौती कर सकता है एव विभागो के द्वारा इस सम्बन्ध म अपील करने पर उसका निणय अन्तिम हुआ करता है। व्यय की अनुमानित माँगो (Esti

53 Refer to Finer, H *op cit* pp 519 523
54 *Ibid* pp 519 520
55 फाइनर द्वारा बजट ब्यूरो को बजट प्रणाली का कारखाना (Workshop of the Budget System) की सज्ञा दी है। 1939 ई के पुनगठन अधिनियम के अधीन बजट कार्यालय को राष्ट्रपति के कार्यालय (Executive office) का एक अग बना दिया गया है। स्मरणीय है कि बजट कार्यालय को कोई स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त नही हैं। वह एक जाँच करने वाली सत्ता (investigating and collating authority) है। यह सत्ता भी राष्ट्रपति म ... के द्वारा सक्रिय एव ...

mates) पर विचार के साथ ब्यूरो आय के स्रोतो—करो—का भी अध्ययन करता है एव कौन से नवीन कर कांग्रेस को प्रस्तावित किय जायें इस पर विचार करता है। आय एव व्यय सम्बन्धी सभी आंकडे तैयार हो जान पर राष्ट्रपति को कांग्रेस म बजट प्रस्तुत करन सम्बन्धी व्यवस्था उपरोक्त अधिनियम के अधीन ही दी गयी है। फाइनर के अनुसार राष्ट्रपति म ही सावजनिक वित्त के सम्बन्ध म विचार एव तदनुरूप (कांग्रेस से) सिफारिश करने की शक्ति केन्द्रित है।[56] अधिनियम द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकारी या विभागीय कमचारीगण कांग्रेस एव उसकी समितिया स अनुमानित व्यय के लिए धन की माग या प्राथना नही कर सकते और उनके द्वारा नवीन कर के प्रस्ताव भी नही रखे जा सकत हैं। फाइनर का मत है कि इस व्यवस्था की प्रत्यक्ष मे तो नही लेकिन अप्रत्यक्ष रूप म उपक्षा की जाती है।[57] स्मरणीय है कि बजट ब्यूरो कांग्रेस के आदेश पर उसे आवश्यक सहायता एव सूचना भी प्रदान करता है।[58]

प्रतिनिधि सदन म बजट प्रस्तावित करने के पश्चात व्यय की अनुमानित मागो को सदन की विनियोग या प्रदाय समिति (Appropriation Committee) के पास भेज दिया जाता है। विनियोग समिति की अनक उप समितियाँ उस पर विचार करती हैं। इन समितिया के द्वारा अपने समक्ष अधिकारिया को बुलाया जाता है। उन्हे अपने विभागा की मागा के औचित्य के सम्बन्ध म विचार रखन का अधिकार होता है। उप समितिया अधिकारियो द्वारा कभी कभी किसी विशेष मद के व्यय किये जाने के सम्बन्ध म वचन ले लेती हैं। यह व्यवस्थापिका द्वारा प्रशासन पर नियन्त्रण की एक प्रणाली है। सीनेट की विनियोग समिति भी इसी व्यवस्था का अनुगमन करती है। प्रदाय समितिया द्वारा कायपालिका के कुछ प्रस्तावा म कमी तो दूसरा मे वद्धि की जाती है। पोक विधि निर्माण (Pork Legislation) अमेरिकी विधि निमाण पद्धति की एक विशेषता है।[59] विनियोग समिति सभी अनुमानित मागो को एक विधेयक म सगृहीत करके सदन को लौटाती नही है वरन् एक के पश्चात दूसरे करीब 12 अनुमान-व्यय विधेयक सदन को प्रेषित किय जात हैं। प्रतिनिधि सदन म विनियोग विधेयकों

56 Finer, H *op cit*, p 520
57 *Ibid*, p 520
58 *Ibid*, p 520
59 अमेरिकी क दक्षिणी राज्या म एक पुरानी प्रथा है कि गुलामा को एक निश्चित दिन गोश्त वितरित किया जाता था। यह गाश्त पीपा म भरकर खेतो पर जाता था। इसी प्रकार इस उपमा का यदि विधि निर्माण पर लागू करें तो इसका अथ यह हुआ कि अपने निर्वाचन क्षेत्रो की विविध सामाजिक सेवाओ के हिताथ धन प्राप्त करने हेतु काग्रेस का प्रत्येक सदस्य शासन म परस्पर सहयोग करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार निर्मित विधिया पाक विधिया कहलाती है।—Beard C A *American Government and Politics*, 1955, p 151

(Appropriation Bills) के पारित होने के पश्चात् उन्हें सीनेट में भेज दिया जाता है। सीनेट की विनियोग समिति में विचार विमर्श होता है, महत्वपूर्ण संशोधन किये जाते हैं तथा धन सम्बन्धी कटौती या वृद्धि के प्रस्ताव पारित होते हैं। प्रतिनिधि सदन के निर्णय से असन्तुष्ट वर्ग द्वारा सीनेट में प्रश्न को नये सिरे से विचार के लिए उठाया जाता है और उनके द्वारा समितियों पर दबाव डाला जाता है तथा वांछित संशोधन का प्रयत्न किया जाता है। सीनेट द्वारा विचार कर चुकने के पश्चात् उसके द्वारा प्रस्तावित संशोधन की स्वीकृति के लिए व्यय विधेयक को प्रतिनिधि सदन में पुनः भेजा जाता है। यदि प्रतिनिधि सदन सीनेट के संशोधनों को स्वीकार नहीं करता तो दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति (Conference Committee) की नियुक्ति की जाती है। यह समिति एक समाधान की खोज करती है जो दोनों सदनों को मान्य हो। दोनों सदनों में मतैक्य होने पर ही विधेयक का पारित हो सकना सम्भव है और तभी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। बजट कार्यालय द्वारा प्रस्तावित कर प्रस्तावों पर प्रतिनिधि सदन की उपाय एवं साधन समिति (Ways and Means Committee) एवं सीनेट की वित्त समिति (Finance Committee) विचार करती है।

मैक्स बेलाफ के अनुसार 'अमरिकी बजट में कांग्रेस द्वारा स्वीकृत होने पर ब्रिटिश बजट जैसी अनिवार्य एकता का अभाव होता है। ब्रिटेन में शासकीय बहुमत इसका विशेष ध्यान रखता है कि बजट मूल रूप में जैसे सदन में प्रस्तुत किया गया है उसी रूप में पारित हो।'[60] अमरिकी राष्ट्रपति यह आशा कभी नहीं कर सकता कि उसके द्वारा प्रस्तुत कर एवं व्यय के अनुमान स्वीकृत हो ही जायेंगे। अमरिकी बजट प्रक्रिया में विभिन्न हितों के दबाव पड़ते हैं एवं लागरोलिंग (logrolling) का तीव्र प्रचलन रहता है। बजट की मुख्य रूपरेखा का निर्धारण कृषि श्रम एवं औद्योगिक हितों के मध्य कठोर सौदेबाजी के पश्चात् निर्धारित होता है। अमेरिकी बजट व्यवस्था में एकरूपता हेतु 1946 ई. में विधायी पुनर्गठन अधिनियम (Legislative Reorganisation Act 1946) पारित किया गया था। इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में दोनों सदनों की विनियोग एवं वित्त समितियों के संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था की गयी तथा आगामी वर्ष के प्रस्तावित बजट पर 15 फरवरी के पूर्व कांग्रेस को प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देने का प्रस्ताव किया गया है। लेकिन इस अधिनियम को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। फलस्वरूप अमरिका में सन्तुलित बजट अभी केवल कल्पना मात्र है। फाइनर के अनुसार, 'अमरिकी वित्तीय प्रणाली में अनेक सुधारों के

60 The Budget as originally offered does not have the compelling unity of the British Budget where the Governmental majority will ensure that the whole thing goes pretty well as originally presented —Max Beloff *The American Federal Government* 1959 P 150

61
62

पश्चात आज भी मुख्य कठिनाई बनी हुई है । काग्रेस राष्ट्रपति के प्रस्तावो को अपनी इच्छानुसार परिवर्तित करने का अधिकार रखती है। दोना सदन एव उनकी समितिया श्रेष्ठ एव सतुलित वजट से कभी भी आँख-मिचौनी खेल सकती हैं ।"[61]

वित्त पर काग्रेस का नियत्रण अनेक दोषो के कारण प्रभावहीन है। सम्वन्धित उप समितियाँ केवल अपने से सम्बन्धित अनुमाना के अश पर ही विचार करती है। इन उप-समितिया की बैठके गुप्त होती है । मुख्य समिति के सदस्य भी उसमे भाग नही ले सकते है अत सावजनिक आलोचना के लिए कोई अवसर नही होता। इसके अतिरिक्त यह उप समितिया बहुत कम समय म विचार विमश पूण कर लेती हैं, परन्तु समिति को प्रतिवेदन काफी विलम्ब से देती हैं, फलस्वरूप समिति के पास इन विभिन्न उप-समितियो के प्रतिवेदनो म तालमेल स्थापित करने के लिए पर्याप्त समय नही रह जाता है । अनेक विभागीय मागा पर पूण विचार किये विना ही उप समितिया उन्ह रद्द कर देती हैं और अनेक मदो को बिना विचारे ही स्वीकार कर लेती ह । फाइनर का कथन है कि दोना सदनो की एक ही प्रदाय समिति (Appropriation Committee) होनी चाहिए तथा वतमान दो समितिया अर्थात् दुहरी व्यवस्था का अन्त होना चाहिए। किसी भी लोकतन्त्रीय शासन म सयुक्त राज्य अमरिका जैसी विनाशकारी दोहरी व्यवस्था नही पायी जाती है।[62] 1921 ई तक सयुक्त राज्य अमेरिका म लेखा-परीक्षण की व्यवस्था भी दोषपूण थी। बजट एव लेखा-कार्यालय अधिनियम, 1921 ई के अन्तगत मुख्य लेखा कार्यालय (General Accounting Office) की स्थापना की गयी है तथा नियन्त्रक एव महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा 15 वष के लिए की जाती है। इस लेखा के सम्बन्ध म व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी ह ।

ब्रिटिश एव अमेरिकन विधि निर्माण प्रक्रिया की तुलना

दोना देशा की प्रक्रिया मे कुछ आधारभूत समानताएँ है लेकिन विस्तार की बाता म उनम काफी अन्तर ह । समानताए निम्नवत् हैं

(1) दानो देशा म विधेयक के तीन वाचन (Three Readings) होत हैं,

(2) दोना देशो म विधि निर्माण म समितियो की व्यवस्था है ।

(3) दोनो देशा म वित्त-विधेयक सवप्रथम निम्न सदना म ही प्रस्तुत किये जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त कोई समानता नही है । समानता की अपक्षा भेद अधिक हैं

---

61 Finer, H *op cit*, p 521

62 'It has been proposed that the two Houses shall form one Appropriations Committee rather than have a dual and duplicated system as now exists The crushing duality of the United States system exists nowhere else in democratic government'—Finer, H *op cit* p 522

(1) अमरिका म इगलैण्ड की तरह सावजनिक एव व्यक्तिगत अथवा शासकीय एव व्यक्तिगत सदस्य विधेयका जस कोई भेद नही हात हैं। यह सम्भव है कि कुछ विधेयक ऐस हा जिन्ह राष्ट्रपति या किसी प्रशासकीय विभाग का समथन प्राप्त हा, लेकिन इसका यह अथ नही है कि ऐस विधेयक अमरिकी कांग्रेस म पारित हो ही जायें। अनक अवसरा पर राष्ट्रपति द्वारा इच्छित विधेयका को कांग्रेस न अस्वीकार कर दिया है। इगलैण्ड म सभी शासकीय विधेयक मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित किय जात हैं। सदन म उनके सफल परायण (passage) एव पारित हान के लिए सम्बन्धित विभाग का मन्त्री उत्तरदायी होता है। इगलण्ड म किसी शासकीय विधेयक की अस्वीकृति का अथ मन्त्रिमण्डल का पतन है। मन्त्रिमण्डल का शासन द्वारा प्रस्तावित विधयको के पारित होन के सम्बन्ध म सदन म उपलब्ध व्यापक दलीय समथन क कारण पूण निश्चितता रहती है। इगलैण्ड की तरह अमरिका म कायपालिका के सदस्य—राष्ट्रपति एव उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य—विधि निमाण काय म प्रत्यक्ष रूप स सम्बन्धित नही होते फलत वे कोई योग नही देत हैं।

(2) अमरिकी कांग्रेस के सभी विधेयक व्यक्तिगत रूप म सदस्या द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। उनके परायण हेतु आवश्यक समथन प्राप्त करन क लिए अनेक सदस्य आपस मे गुट बना लेते हैं एव उन विधेयका का विरोध भी करत हैं जिनक वे विरुद्ध हात है। इसे लागरोलिंग (Logrolling) कहते हैं। इस प्रथा का विकास ब्रिटिश ससद म सम्भव ही नही है।

(3) दोनो देशा म समितिया विधि निमाण म महत्वपूण भूमिका निभाती हैं लेकिन सयुक्त राज्य अमेरिका म समितिया अधिक महत्वपूण एव शक्तिशाली है। ग्रेट ब्रिटेन म द्वितीय वाचन क उपरान्त विधेयक समितियो म भेजा जाता है। इस समय तक उसके आधारभूत सिद्धान्ता पर सदन मे निणय हो चुकता है। अमरिका म प्रथम वाचन के उपरान्त और द्वितीय वाचन के पूव ही विधेयक समितियो म भेज दिया जाता है। अमेरिकी समितियो का ग्रेट ब्रिटेन की भाति विधेयक को प्रतिवेदन सहित अनिवायत सदन को लौटाना आवश्यक नही है। इस कारण अनेक विधेयका की समिति अवस्था म ही हत्या हो जाती है।

(4) ब्रिटिश ससद द्वारा पारित विधेयको को सम्राट द्वारा स्वीकृत किया जाना आवश्यक है लेकिन यह औपचारिकता मात्र है। सम्राट ससद द्वारा पारित किसी भी विधेयक को स्वीकृति प्रदान करने से इकार नही कर सकता। परन्तु अमेरिकी राष्ट्रपति का प्राप्त निषेधाधिकार (Veto) वास्तविक है एव वह उसका प्रयोग भी करता है।

ग्रेट ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमेरिका की वित्तीय व्यवस्था म निम्न अन्तर हैं —

(अ) अमेरिका म व्यय के अनुमाना (Estimates) को बजट निदेशक द्वारा

तयार किया जाता है तथा राष्ट्रपति द्वारा बजट कांग्रेस को भेजा जाता है। इगलण्ड म बजट वित्त मन्त्री के द्वारा तैयार किया जाता है और उसी के द्वारा ससद (कामन्स-सभा) मे प्रस्तुत किया जाता है।

(आ) अमरिका मे बजट प्रस्तुत किये जाने के बाद प्रतिनिधि सदन की विनियोग एव साधन समितिया को विचार हेतु भेजा जाता है। इगलण्ड म कामन्स सभा द्वारा '*पूर्ण सदन की समिति*' के रूप म पूर्ति एव उपाय तथा साधन समिति के रूप म बजट पर विचार किया जाता है।

(इ) इगलैण्ड मे कामन्स सभा के सदस्या का बजट के अनुमाना मे केवल कमी या कटौती करन का अधिकार होता है। अमेरिका म कांग्रेस के सदस्यो को बजट म कमी, वृद्धि एव अन्य प्रकार के सशोधन करन के भी अधिकार होते ह।

(ई) ब्रिटिश लॉर्डसभा को वित्तीय क्षेत्र मे कोई महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त नही है, अधिक से अधिक वह विधेयक का पारित करने म एक माह का विलम्ब कर सकती है। इसके विपरीत, अमेरिकी सीनेट को वित्त विधेयका म प्रतिनिधि सदन के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। वह उसमे आमूलचूल परिवर्तन कर सकती है। यहा तक कि प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित वित्त-विधेयक को वह अस्वीकार भी कर सकती है।

भारत की विधि-निर्माण प्रक्रिया

भारत की विधि निर्माण प्रक्रिया ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित है। सविधान म विस्तारपूर्वक विधि निर्माण प्रक्रिया का उल्लेख नही किया गया है। गर वित्तीय विधेयक भारतीय ससद के दोना म से किसी भी सदन म सर्वप्रथम प्रस्तुत किये जा सकत है।[63] विधेयक तभी पारित माना जाता ह जब वह दोना सदनो द्वारा सशोधन या बिना सशोधन के पारित किया गया हो। दोना सदना के स्थगित (prorogation) होन पर विचाराधीन विधेयक रद्द नही माना जाता है[64] और राज्यसभा म विचाराधीन विधेयक जो लोकसभा द्वारा पारित नही किया गया है, लोकसभा के विघटित होन पर समाप्त नही होता है।[65] *लकिन विधेयक के लोकसभा म विचाराधीन होने या* लोकसभा द्वारा पारित होन पर राज्यसभा म विचाराधीन होने पर वह लोकसभा के विघटित हो जान पर समाप्त हो जाता है।[66] यदि राष्ट्रपति ससद के दोना सदना की सयुक्त बठक बुलान की घोषणा कर देता है एव उसके पश्चात् लोकसभा का विघटन हो जाता ह तो एसी अवस्था मे विचाराधीन विधेयक समाप्त नही होता है।

ससद द्वारा विधि निर्माण सम्बन्धी नियम बनाय गय है। इस सम्बन्ध म दोना सदना म समान पद्धति का अनुगमन किया जाता है। दोनो सदनो म विधेयक के तीन

63 Article 107
64 Article 107 (3)
65 Article 107 (4)
66 Article 107 (5)

वाचनों का होना अनिवार्य है। मन्त्रियों द्वारा प्रस्तुत विधेयक सार्वजनिक या शासकीय विधेयक (Public or Government Bills) कहे जाते हैं। भारत में इंगलैण्ड की तरह व्यक्तिगत विधेयक (Private Bill) जैसे कोई विधेयक नहीं होते। साधारण सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों को व्यक्तिगत-सदस्य विधेयक (Private Members Bill) कहते हैं। इंगलैण्ड में सार्वजनिक विधेयक एवं व्यक्तिगत विधेयकों के पारित होने की प्रक्रिया पृथक् पृथक् होती है लेकिन भारत में शासकीय विधेयक एवं व्यक्तिगत-सदस्य विधेयकों के लिए एक ही प्रक्रिया का प्रयोग होता है।

विधेयक को निम्न अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है—प्रथम एवं द्वितीय वाचन (First and Second Readings), समिति एवं प्रतिवेदन स्तर (Committee and Report Stage), एवं तृतीय वाचन (Third Reading)।

(1) प्रथम वाचन—सत्र प्रारम्भ होने पर उस सत्र के शासकीय विधेयकों की एक सूची प्रकाशित कर दी जाती है। यह आवश्यक नहीं कि वह सूची पूर्ण ही हो। प्रथम वाचन के अन्तर्गत विधेयक का प्रस्तुतीकरण एवं शासकीय गजट (Government Gazette) में उसका प्रकाशित होना आवश्यक है। सदन में विधेयक के प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् प्रार्थना किये जाने पर स्पीकर या सदन का अध्यक्ष विधेयक को गजट में प्रकाशित करने का आदेश देता है। ऐसी अवस्था में सदन में विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति प्राप्त करने हेतु प्रार्थना की आवश्यकता नहीं होती। यदि विधेयक प्रकाशन के पश्चात् सदन के प्रस्तुत किया जाता है तो उसके पुनः प्रकाशन की आवश्यकता नहीं रहती है।

विधेयक को प्रस्तुत करने का इच्छुक सदस्य या मन्त्री विधेयक को सदन में प्रस्तुत करने की अनुमति माँगता है एवं उसका शीर्षक पढ़ता है। मन्त्री के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य विधेयक को प्रस्तुत करने की अपनी इच्छा की पूर्व-सूचना देते हैं तथा विधेयक की एक प्रति एवं उसके उद्देश्य एवं कारणों का उल्लेख भी विधेयक के साथ सलग्न कर देते हैं। भारत में विधेयक प्रस्तुत करने के समय उसे पूर्ण होना चाहिए, इंगलैण्ड की भाँति Dummys Bills प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। इसके अतिरिक्त जिन विधेयकों को राष्ट्रपति की अनुमति द्वारा ही प्रस्तावित किया जा सकता है, उनके सम्बन्ध में अनुमति भी होनी चाहिए।

विधेयक को प्रस्तावित करते समय कोई वाद विवाद नहीं होता। सामान्यतः विधेयक के प्रस्तावित करने के तुरन्त पश्चात् ही स्पीकर सदन के समक्ष उसे स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता है और सदन इसकी मौखिक रूप से अनुमति प्रदान कर देता है। इस समय मन्त्री या विधेयक को प्रस्तावित करने वाला अन्य कोई सदस्य भाषण नहीं देता।

लेकिन कभी कभी विधेयक के प्रस्तुतीकरण का भी विरोध किया जा सकता है। 1954 ई० में निवारक निरोध (संशोधन) अधिनियम (Preventive Detention

Amendment Act, 1954) का प्रस्तावित करने पर ही विरोध किया गया था। ऐसी दशा में प्रस्तावक एवं विरोध करने वाले सदस्य को संक्षेप में अपने कारणों पर प्रकाश डालने की स्पीकर अनुमति दे देता है और उसके पश्चात् विधेयक पर मतदान होता है। यदि विधेयक का विरोध उसके सदन के क्षेत्राधिकार में न होने के कारण किया जाता है तो स्पीकर पूर्ण वाद विवाद की अनुमति प्रदान कर देता है और सदन का मत ज्ञात करता है। महाधिवक्ता भी वाद विवाद में भाग ले सकता है एवं स्थिति पर प्रकाश डाल सकता है।

(2) द्वितीय वाचन—निश्चित तिथि को सदन में विधेयक पर द्वितीय वाचन प्रारम्भ होता है। प्रस्तावक को तीन विकल्पों में से किसी एक को स्वीकार करने का अधिकार है (1) विधेयक पर तुरन्त या भविष्य में किसी तिथि पर विचार किया जाय (2) विधेयक किसी प्रवर समिति को भेज दिया जाय या विधेयक के औचित्य/अनौचित्य के सम्बन्ध में जनमत जानने के लिए उसे जनता के मध्य वितरित कर दिया जाय। सामान्यतः विधेयक को प्रवर समिति में भेज दिया जाता है। (3) विवादहीन विधेयकों पर तुरन्त विचार होता है। परन्तु ऐसे विधेयक बहुत कम होते हैं अतः अधिकांश विधेयकों पर तुरन्त विचार नहीं होता है। विवादग्रस्त विधेयकों को सामान्यतः जनता के मध्य जनमत जानने के लिए वितरित कर दिया जाता है। द्वितीय वाचन की अवस्था में विधेयक के आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार विमर्श होता है। उस पर धारावार विचार-विमर्श नहीं होता और न इस अवसर पर संशोधन ही प्रस्तुत किये जाते हैं। विधेयक के समर्थकों एवं विरोधियों द्वारा पक्ष एवं विपक्ष में मत व्यक्त किये जाते हैं। सम्पूर्ण विधेयक पर विचार विमर्श होता है ताकि उसके आधारभूत सिद्धान्तों पर सभी सहमत हो सकें।

(3) समिति स्तर—इसके पश्चात् विधेयक किसी प्रवर समिति को भेज दिया जाता है। समिति-स्तर विधि निर्माण प्रक्रिया की महत्वपूर्ण अवस्था होती है। विधेयक का प्रस्तावक (मन्त्री या सामान्य सदस्य) एवं विधि मन्त्री प्रवर समिति के सदस्य होते हैं। विधि मन्त्री पदेन सदस्य होता है। समिति द्वारा संशोधन प्रस्तावित किये जा सकते हैं। समिति के प्रत्येक सदस्य को पृथक प्रतिवेदन देने का अधिकार होता है। समिति की सम्पूर्ण कार्यवाही प्रकाशित की जाती है एवं उसे सदन के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

(4) प्रतिवेदन-स्तर—सदन में प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् मन्त्री या प्रस्तावक सदन से प्रतिवेदन पर विचार करने की माँग कर सकता है। इसके अतिरिक्त विधेयक को कुछ आदेशों या बिना आदेशों सहित समिति में पुनः विचारार्थ भेजने या जनमत जानने के लिए जनता के मध्य विधेयक को प्रचारित करने की माँग मन्त्री या प्रस्तावक द्वारा की जा सकती है। यदि सदन प्रतिवेदन पर विचार करना स्वीकार कर लेता है तो विधेयक पर धारावार विचार होता है, सदस्यों द्वारा संशोधन प्रस्ता

वित किय जा सक्ते है और अध्यक्ष को उन्हे स्वीकार करने या अस्वीकार करने का अधिकार हाता है । प्रत्येक धारा एव सशोधन पर मतदान होता है । प्रतिवदन पर विचार हो चुकने के पश्चात सम्पूर्ण विधेयक पर मतदान लिया जाता है और इसके साथ ही द्वितीय वाचन पूर्ण हो जाता है ।

(5) तृतीय वाचन (Third Reading)—इसके पश्चात एक पूर्व निर्धारित तिथि को विधेयक का ततीय वाचन प्रारम्भ होता है । प्रस्तावक विधेयक को पारित करने की माग करता है । इस अवस्था मे विधेयक के पक्ष या विपक्ष म तर्क प्रस्तुत किय जात है । अनावश्यक तर्कों के लिए कोई स्थान नही होता एव विधिवत प्रस्ताव प्रस्तावित नही किय जा सक्त । केवल मौखिक प्रस्ताव रखे जा सकत हैं । सदन म उपस्थित सदस्यो के बहुमत स मतदान म स्वीकृत होने पर विधेयक पारित हो जाता है ।

एक सदन म विधेयक क पारित होने पर उस दूसरे सदन म विचारार्थ भेज दिया जाता है । वहा भी उस उपरोक्त पाँच अवस्थाओ म स होकर गुजरना पडता है एव उसके पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति हेतु भेज दिया जाता है । राष्ट्रपति विधयक को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सक्ता है या सन्देश या बिना सन्देश क सशोधन प्रस्तावित करते हुए सदन का पुनर्विचार के लिए लौटा सक्ता है ।[67] यदि सदनो द्वारा विधेयक का सशोधन या बिना सशोधन क पुन पारित कर दिया जाता है ता राष्ट्रपति का स्वीकृति दनी पडता है और विधेयक विधि बन जाता है

गर वित्तीय विधेयको के सम्बन्ध म सम्भावित दो स्थितियाँ निम्नलिखित हैं

(1) यदि विधेयक पर दोनो सदनो म मतैक्य नही होता तो दोनो सदनो के सयुक्त अधिवेशन म विवाद का निश्चय होता है । सयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोक सभा का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति म उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) करता है एव लोकसभा के कार्यकारी नियम लागू होत हैं । सयुक्त अधिवेशन म सशोधन प्रस्तावित किय जा सकत हैं, परन्तु केवल वे ही सशोधन प्रस्तावित किय जा सकते हैं जो या ता विलम्ब क कारण आवश्यक बन गय हो अथवा जो एक सदन द्वारा प्रस्तावित किय गय हो और दूसर सदन द्वारा अस्वीकृत किय जान पर आवश्यक बन गय हो । सशोधनो का स्वीकृत करन (admissibility) के सम्बन्ध म अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है । सयुक्त समिति म दोनो सदनो क उप[illegible] भाग [illegible] वाले सदस्यो के बहुमत स पारित होन पर विधयक का पा[illegible] है ।[68]

(2) [illegible] विधेयको [illegible] Bills) पर विचार करन तथा स्वीकृति [illegible] न 1953 ई [illegible]
[illegible] अनुसार [illegible] [illegible] गया

67 Article 111
68 Article 108

के द्वारा विधेयका एव प्रस्तावो को विचाराथ प्रस्तुत किया जाता है। एक शुक्रवार को विधेयकों पर तो दूसरे शुक्रवार को प्रस्तावो पर विचार विमश होता है। व्यक्तिगत-सदस्य विधेयको एव शासकीय विधेयका को पारित करने की रीति प्राय समान है, केवल थोडा अन्तर होता है। व्यक्तिगत-सदस्य विधेयक को प्रस्तुत करने की सूचना के साथ उनके उद्देश्य एव कारणा का विवरण तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति (यदि विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक हो) एव विधेयक के वित्तीय परिणाम का विवरण आदि सलग्न होने चाहिए। यदि विधेयक दोषपूण है या उपरोक्त विवरण मे से किसी का अभाव है तो विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति नही दी जा सकती। यदि अध्यक्ष विधेयक को सदन के कायक्रम मे शामिल करना उचित नही समझता है तो वह उसे उपस्थित करन की अनुमति अस्वीकार कर सकता है। व्यक्तिगत सदस्यो से सम्बन्धित एक 15 सदस्यी समिति (Committee on Private Members Bills and Resolutions) होती है जिसके सदस्या को अध्यक्ष द्वारा एक वष के लिए मनोनीत किया जाता है।

वित्तीय विधि निर्माण

वित्त-विधेयको क लिए एक विशेष एव पृथक प्रक्रिया का विधान है। सविधान के अनुसार वित्त विधेयक राज्यसभा म प्रस्तावित नही किया जा सकता। दूसरे शब्दा म, वित्त विधेयक सवप्रथम लोकसभा (The House of the People)—निम्न सदन—मे ही प्रस्तावित किया जा सकता है।[69] इसके अतिरिक्त बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के कोई वित्त विधेयक और अनुमानित माग प्रस्तावित नही की जा सकती।[70] लोकसभा द्वारा वित्त विधेयक के पारित होने के पश्चात उसे राज्यसभा को उसकी सिफारिशो के लिए भेजा जाता है। विधेयक के प्राप्त करने के 14 दिन के भीतर राज्यसभा को विधेयक को अपन सुझावा सहित लौटा देना चाहिए। यदि विधेयक इस अवधि म राज्यसभा द्वारा नही लौटाया जाता तो वह पारित समझा जाता है। परन्तु राज्यसभा द्वारा विधेयक को इस निश्चित अवधि म लोकसभा को लौटाने पर निम्न सदन को राज्यसभा की सिफारिशे स्वीकार करने या अस्वीकार करने का अधिकार है और एसी दशा म विधेयक दोनो सदनो द्वारा पारित माना जाता है।

सविधान के अनुसार निम्नलिखित मामलो से सम्बन्धित होने पर विधेयक का वित्त विधेयक माना जायगा[71]

(1) कर लगाने, समाप्त करने, कम करने या परिवतन अथवा व्यवस्थित करने से सम्बन्धित विधेयक (2) ऋण को व्यवस्थित करने स सम्बन्धित विधेयक,

---

69 अनुच्छेद 109

70 अनुच्छेद 113 (3) और 117

71 अनुच्छेद 110

(3) सचित निधि या आकस्मिक निधि स सम्बधित एव इन निधियो म से धन की देनदारी से सम्बधित विधेयक, (4) सचित निधि मे से धन के व्यय से सम्बधित, (5) किसी व्यय को सचित निधि पर भार घोषित करने या ऐसे व्यय की धनराशि म वृद्धि से सम्बधित, (6) सचित निधि, भारतीय सावजनिक लेखा म आय या उसके सरक्षण एव देनदारी सम्बधी या सघ एव राज्य के लेखा के परीक्षण सम्बधी, एव (7) उपरोक्त मामला से सम्बधित कोई अन्य विधेयक। विधेयक वित्त विधेयक है या नही, इस सम्बध म लोकसभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है। जुर्माना, लाइसेन्स फीस एव *स्थानीय सरकारो के द्वारा लगाये जाने वाले करा सम्बधी विधेयको* को सविधान के अनुसार वित्त विधेयक नही माना गया है।[72]

भारतीय वित्तीय विधि निर्माण प्रक्रिया ब्रिटिश वित्त व्यवस्था पर आधारित है। दोना एक सी ही हैं। भारतीय वित्त के **मूल सिद्धान्त** (basic principles) सक्षप मे निम्नवत् है

(1) व्यवस्थापिका द्वारा शासन के विभागा द्वारा तयार किये गये अनुमानो का परीक्षण किया जाता है एव वह उनके लिए धन स्वीकृत करती है।

(2) आवश्यक धन की व्यवस्था कसे की जाय यह ससद का दायित्व है। नवीन करा को लगाने एव पुरानो को कम या समाप्त करने का उसे एकाधिकार प्राप्त है।

(3) कायपालिका द्वारा स्वीकृत (sanctioned) धन के व्यय की जाच पड ताल ससद करती है।

(4) ससद विभिन्न विभागो के सावजनिक लेखा परीक्षण की व्यवस्था करती है।

भारतीय वित्त व्यवस्था की **मूल विशेषताएँ** (main features) निम्न हैं

(1) सम्पूण वित्तीय कायक्रम मन्त्रिमण्डल द्वारा तयार किया जाता है। वही उसक लिए उत्तरदायी होता है। अत वित्त के सम्बध मे सम्पूण पहल (initiative) कायपालिका के हाथो म होती है।

इगलैण्ड के वित्त मन्त्री (Chancellor of Exchequer) की भाति ही भारतीय वित्त मन्त्री बजट—विनियोग एव राजस्व विधेयक—के लिए उत्तरदायी होता है।

(2) सावजनिक वित्त पर ससद का पूण नियन्त्रण होता है। उसकी अनुमति के बिना सावजनिक धनराशि का एक अश भी व्यय नही किया जा सकता और न कोई कर ही लगाया जा सकता है।

(3) वार्षिक बजट म शासन की ... के बिना कोई गम्भीर परिवतन नही किय जा सकते। ... कर सा... कायपालिका द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

(4) व्यय ... सकती है लेकि ... वृद्धि नही कर सक...

72 Articles 110 (

(5) सचित निधि के स्थायी भार[3] (Charges on the Consolidated Fund of India) इगलैण्ड की भाति भारतीय ससद के नियन्त्रण से परे है परन्तु ससद को इनम विधि द्वारा परिवतन करने का अधिकार है।

(6) भारत मे भी इगलैण्ड की भाति ससद की समितिया द्वारा बजट प्रस्तावो की पूरी तरह स छानबीन की जाती है।

वित्तीय विधि निर्माण को अवस्थाएँ—वार्षिक वित्त विधेयक (बजट) ससद के दोनो सदनो के समक्ष विचाराथ प्रति वष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।[4] भारत मे वित्तीय वष 1 अप्रैल को प्रारम्भ होता है। भारत का बजट दो भागा—रेलवे बजट एव सामान्य बजट (Railway Budget and General Budget)—मे प्रस्तुत किया जाता है। रेलवे बजट का सम्बन्ध रेल विभाग से होता हे एव रल मन्त्री द्वारा सामान्यत प्रति वष फरवरी के मध्य मे रखा जाता है। शेष विभागो के आय व्यय सम्बन्धी विवरण वित्त मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। सामान्य बजट रेलवे बजट के पश्चात प्रस्तुत किया जाता है। दोनो बजटा के पारित होने की प्रक्रिया समान है। बजट म स्पष्ट रूप से सचित निधि पर स्थायी भार का एव अन्य अनुमानित व्यया का पृथक पृथक उल्लेख किया जाना चाहिए। यद्यपि सचित निधि के स्थायी व्यय ससद की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नही किये जाते है लेकिन ससद के दोना सदनो को उन पर बहस करने का अधिकार प्राप्त होता है। शेष सभी व्यय अनुदान की मागा (demands for grants) के रूप मे लोकसभा मे प्रस्तुत की जाती है।[6] लोकसभा को उन्ह स्वीकृत या अस्वीकृत या कम करने का पूण अधिकार होता है।

वार्षिक बजट निम्न पाच अवस्थाओ म होकर पारित होता है

(1) **बजट को प्रस्तुत करना** (Introduction or Presentation of the Budget)—सामान्य बजट वित्त मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है एव अपने बजट भाषण म वित्त मन्त्री शासन की मुख्य वित्तीय एव आर्थिक नीतियो पर प्रकाश डालता है। बजट की प्रतिया सदस्या के मध्य वितरित कर दी जाती ह।

(2) **दोनो सदनों मे समान विचार विमश** (General Discussion in both

---

73 सचित निधि पर स्थायी भार निम्न है राष्ट्रपति का वेतन, भत्ते एव उनके कार्यालय सम्बन्धी अन्य व्यय, राज्यसभा एव लोकसभा के अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष का वेतनादि, भारत शासन ऋण भार, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशा का वेतन, उच्च न्यायालय एव फेडरल कोट के न्यायाधीशो का पन्शन, नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का वेतन, अन्य कोई देनदारी एव व्यय। —Article 112 (3)

74 Article 112

75 Article 112 (2)

76 Article 113 (1) and (2)

the Houses)—बजट के प्रस्तुत करने के पश्चात् सम्पूर्ण बजट पर दोनों सदनों में विचार विमर्श होता है। इस समय कोई कटौती या अन्य संशोधन का प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जाता है। दोनों सदनों में पृथक्-पृथक् तीन या चार दिन तक सम्पूर्ण व्यय की राशियों पर संचित निधि के स्थायी व्ययों सहित केवल सामान्य विचार विमर्श होता रहता है। विभिन्न शासकीय विभागों की नीतियों एवं प्रशासन की आलोचना की जाती है। इस विचार विमर्श का स्वरूप राजनीतिक अधिक होता है। इस समय कोई मत नहीं लिया जाता है। ब्रिटिश परम्परा का अनुगमन करते हुए विरोधी दलों को विचार विमर्श-काल में अधिक से अधिक समय दिया जाता है।

(3) लोकसभा द्वारा अनुमानों की स्वीकृति (Voting of Demands by the Lok Sabha)—विभिन्न विभागों की अनुमानित माँगों पर विचार करने के लिए पृथक् पृथक् समय निश्चित किया जाता है। अनुमानों (Estimates) पर विचार विमर्श के लिए समय सदन के नेता के परामर्श से स्पीकर निश्चित करता है। विभिन्न विभागों के वार्षिक कार्य-विवरण को सदस्यों के मध्य वितरित कर दिया जाता है एवं सदस्यों द्वारा विभागों की माँगों पर विचार के समय उनकी तीव्र आलोचना की जाती है। आलोचना की तीव्रता तो प्रस्तावित संशोधनों पर विचार के समय अत्यधिक बढ़ जाती है। निश्चित अवधि में ही प्रत्येक विभाग की मांगों पर विचार विमर्श पूर्ण हो जाना चाहिए। निर्धारित समय के अन्तिम दिन सम्पुट (closure) का प्रयोग किया जाता है एवं समस्त मांगों को एक साथ चाहे उन पर विचार हुआ हो या नहीं मन्त्र की स्वीकृति हेतु मतदान के लिए प्रस्तुत कर दिया जाता है।

स्मरणीय है कि राज्यसभा को अनुदानों की स्वीकृति के सम्बन्ध में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। यह तो लोकसभा का ही एकमात्र विशेषाधिकार है।

(4) विनियोग विधेयक (The Appropriation Bills)[77]—लोकसभा द्वारा स्वीकृत सभी अनुमानित माँगों एवं संचित निधि के स्थायी व्ययों को एकत्रित करके एक विधेयक के रूप में जिसे वार्षिक विनियोग विधेयक (Annual Appropriation Bill) कहते है, लोकसभा के समक्ष स्वीकृति हेतु रखा जाता है। सदन के अध्यक्ष द्वारा विधेयक की विभिन्न अवस्थाओं के लिए समय निश्चित कर दिया जाता है। द्वितीय वाचन में केवल सामान्य वाद विवाद होता है। केवल उन्हीं मदों पर वाद विवाद होता है जिन पर पहले बहस नहीं होती है। अनुमानित मांगों में केवल कमी की मांग की जा सकती है। सभी अवस्थाओं में विधेयक के गुजरने के पश्चात उस पर सदन में मतदान होता है एवं स्वीकृत होने पर स्पीकर उसे धन विधेयक घोषित करता है। इसके पश्चात विधेयक राज्य सभा में भेज दिया जाता है। राज्यसभा द्वारा विनियोग विधेयक के पारित होने पर वह राष्ट्रपति के पास स्वीकृति हेतु भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति

---

77 Article 114

द्वारा स्वीकृति केवल औपचारिक होती है। वह पुनर्विचार के लिए किसी धन विधेयक को लौटा नही सकता।

यदि शासन अतिरिक्त धन की आवश्यकता अनुभव करता है तो पूरक मागो के हेतु एक या अधिक विनियोग विधेयक लोकसभा म वित्तीय वष के अन्त के पूव प्रस्तुत कर सकता है एव उन्हे पारित किया जा सकता है।

(5) वित्त विधेयक (The Finance Bill)—वित्त विधेयक म आगामी वष के करो या वित्तीय प्रस्तावो को उपस्थित किया जाता है और यह बजट के साथ ही ससद म रखे जाते हैं। वित्त विधेयक क द्वितीय वाचन मे उसके सामान्य सिद्धान्तो पर विचार-विमर्श किया जाता है। प्रवर समिति म ही विधेयक पर धारावार विचार होता है। इसके पश्चात समिति अपना प्रतिवदन प्रस्तुत करती है। प्रस्तावित कर-प्रस्तावो म सशोधन या कटौती के लिए बहुत कम गुजाइश होती है। सविधान म पूरक (Supplementary), अतिरिक्त (Additional or excess), विशेष (Exceptional) एव अग्रिम (Votes on Account) मागो (Grants) को स्वीकार करने की भी व्यवस्था है। सामान्यत केन्द्रीय शासन द्वारा बजट प्रति वष 28 फरवरी को ससद मे उपस्थित किया जाता है। अत 1 अप्रैल से लकर बजट पारित होने की तिथि तक शासकीय व्यय हेतु ससद द्वारा अग्रिम मागे (Votes on Account) पारित कर दी जाती है।

13

विधायी समिति-व्यवस्था

[LEGISLATIVE COMMITTEE SYSTEM]

समिति व्यवस्था, ह्वीयरे के अनुसार, व्यवस्थापिका के विधि निर्माण काय का प्रमुख य-त्र है ।[1] विधि निर्माण काय के मध्य म व्यवस्थापिका को अनेक अवसर प्राप्त होते हैं जबकि वह कायपालिका पर निय-त्रण लगा सकती है । आधुनिक समाज म राज्य के काय क्षेत्र मे वद्धि हुई है । उसे विभिन्न प्रकार की अनेक विधियो का निमाण करना पडता है । एक ही सत्र म व्यवस्थापिका द्वारा समस्त आवश्यक विधेयका को पारित कर सकना समयाभाव क कारण प्राय असम्भव है, चाहे इस काय क लिए ससद का अधिवेशन वषपय-त चलता रहे अथवा उसके काय करने के घण्टो म वद्धि कर दी जाये । विधानमण्डलो मे विधि निर्माण सम्ब-धी दायित्व के बढने और उसे मती प्रकार सम्पादित करने के लिए सम्पुट (closure) का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा था। सम्पुट व्यवस्थापिकाआ क कायाधिक्य (congestion) को कम करने का एक तरीका होता था । इगलण्ड म कॉम-स सभा म सम्पुट के विकल्प के रूप मे समिति व्यवस्था को स्वीकार किया गया है । समिति व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य विधि निर्माण काय को तीव्र करना है । समितियो म विधेयका के सभी पक्षा का भली भाँति निरीक्षण होता है और उन पर व्यापक विचार विमश होता है । ब्रिटिश कॉम-स सभा, भारतीय लोकसभा, सोवियत व्यवस्थापिका के दाना सदना सदृश बडे या वहृद् आकार के सदना म विचार विमश के लिए आवश्यक उपयुक्त वातावरण का प्राय अभाव रहता है । इसके विप रीत, समिति म विधेयक की प्रत्यक धारा पर चर्चा होती है और मतदान होता है। समिति-व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप व्यवस्थापिकाआ द्वारा विधेयका को अपनी ही अ-य सस्थाआ म भेजकर समय की बचत की जाती है और उस समय म वह अन्य

---

1 "The chief instrument in this (law making) work is the committee system —Wheare K C *Legislatures*, p 91

आवश्यक कार्यों को करती है। समितिया द्वारा अन्य समय म विधेयकों पर विचार किया जाता है।

समितियाँ सदन द्वारा ही निर्मित की जाती हैं। ह्वीयरे के अनुसार "समिति का अर्थ उस निकाय अथवा सस्था से है जिसे अन्य व्यक्तियो या निकाया द्वारा कोई कार्य सौंपा जाता है। समिति मे यह धारणा बद्धमूल है कि समिति या ऐसे निकाय या सस्था उस व्यक्ति या निकाय के प्रति अन्तत उत्तरदायी या अधीन होते हैं जिनके द्वारा उनकी स्थापना की जाती है अथवा जिन्हे उनके द्वारा शक्तिया तथा दायित्व सौंपे जाते हैं।"[2] इसीलिए फाइनर समितिया को केवल सशोधन करने वाले सहायक निकाय मानता है। सदन द्वारा केवल प्रमुख सिद्धान्तो एव प्रमुख प्रमुख निष्कर्षों का ही निश्चित किया जाता है।[3] इगलण्ड, सयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रास एव भारत की समिति व्यवस्थाओ का उल्लेख अग्रिम पृष्ठो म प्रस्तुत किया गया है।

ग्रेट ब्रिटेन की समिति-व्यवस्था

ब्रिटेन मे समिति व्यवस्था के अकुर ऐतिहासिक दृष्टि स काफी पुराने हैं। जितनी ससदीय प्रणाली जितनी प्राचीन है, समिति व्यवस्था भी उतनी ही प्राचीन है। ब्रिटेन मे एडवड प्रथम ने आवेदन पत्रो का ग्रहण करने वाल (Receivers) एव उनके परीक्षणकर्ताओ (Triers) की नियुक्ति करना प्रारम्भ किया था। समिति-व्यवस्था के इतिहास मे यह प्राचीनतम उदाहरण माने जाते है। 17वी शताब्दी तक समिति-व्यवस्था का काफी विकास हो चुका था। इसके अतिरिक्त, प्राचीन काल म कॉमन्स सभा के सदस्य स्पीकर की अनुपस्थिति म ही विचार विमर्श करना उचित समझते थे, क्योंकि स्पीकर राजा का सेवक होता था और उसे एक गुप्त अधिकारी समझा जाता था। आधुनिक काल समितिया की उपयोगिता इस बात म है कि वे विधि-निर्माण के महत्वपूर्ण दायित्व के सम्पादन मे योग देती है। कॉमन्स सभा द्वारा अकेले ही इस दायित्व का निर्वाह करना सम्भव नही है। सदन पर निरन्तर बढते हुए विधायी कार्यभार के अतिरिक्त 19वीं शताब्दी के आठवे दशक म आयरिश सदस्या द्वारा [illegible] की नीति का [illegible] प्रारम्भ कर दिया गया था एव विधि निर्माण के कार्य में उनके द्वारा बाधाएँ उप-

---

2 "The essence of a committee is surely that it is a body to which some task has been referred or committed by some other person or body The notion of a committee carries with it the idea [illegible] body being in some manner or degree responsible or subordinate or answerable in the last resort to the body of person [illegible] up or committed all powers or duty to it"—Wheare, *Government Committee* (An Essay on the British Constitution) pp 5 6

3 The Committees are merely secondary amending [illegible] House itself decides main principles and major [illegible] Finer, H *op cit*, p 489

स्थित की जाती थी। अत निरतर वढते हुए कायभार को कम करने एव अवरोध की नीति से उत्पन्न कठिनाइयो के निवारणाथ कोई माग खोजना आवश्यक हो गया था। 1888 ई म दो स्थायी समितियो (Standing Committees) की स्थापना की गयी। यही स्थायी समितियो का प्रारम्भ था। 1907 ई म दो क स्थान पर चार स्थायी समितियाँ स्थापित कर दी गयी। इनमे से एक समिति केवल स्काटलण्ड क मामलो से ही सम्बधित थी। इस समय तक द्वितीय वाचन के पश्चात गर वित्तीय विधेयका को समितियो म भेजना सामा य नियम वन गया था। 1919 ई म समितियो की सरया वढकर 6 हो गयी थी। समिति के सदस्यो की सख्या 60 से 80 को घटाकर 40 से 60 कर दिया गया था। स्मरणीय है कि प्रारम्भ म यह परम्परा प्रचलित थी कि समितियो मे विभिन्न दला के सदस्य कॉमन्स सभा के दलीय अनुपात म ही होते थे जिससे समितिया भी कॉमन्स सभा का लघु रूप मात्र होती थी। किसी विशेष विधेयक पर विचार करत समय समिति को अपनी सदस्य सख्या के बराबर अतिरिक्त सदस्या को नियुक्त करने का अधिकार था। 1919 ई म जिस प्रकार समितियो के सदस्यो की सख्या कम की गयी थी उसी प्रकार विशेष सदस्या की सख्या को भी 10 से 15 तक सीमित कर दिया गया था। समितियो के अधिवशन किसी समय भी हो सकते थे लेकिन सदन के मतदान-काल मे उनके अधिवेशन स्थगित रहत थ। समितियो की सरया 1926 ई म घटाकर 5 कर दी गयी। उनकी सदस्य सख्या कम से कम 30 और अधिक से अधिक 50 निर्धारित की गयी, लेकिन अतिरिक्त सदस्या की सरया 10 से 35 तक ही निश्चित की गयी थी। 1946 ई मे स्थायी समितिया की सरया 6 कर दी गयी और सदस्य सरया अधिकतम 20 निश्चित की गयी। अतिरिक्त सदस्यो की सख्या भी 30 तक हो सकती थी।

ग्रेट ब्रिटेन की समिति व्यवस्था के अतगत सम्पूण सदन की समितियाँ (Committees of the Whole House), प्रवर समितियाँ (Select Committees) एव कामन्स सभा की सावजनिक विधेयक सम्बन्धी स्थायी समितियाँ (Standing Committees on Public Bills in Commons) होती हैं। प्रवर समितियो के अतगत सत्रीय (Sessional) एव व्यक्तिगत विधेयक समितियाँ (Committees on Private Bills) होती हैं। इसक अतिरिक्त दोना सदना की सयुक्त समितियो क उदाहरण भी प्राप्त होत हैं। सयुक्त समितियो मे दोनो सदना की प्रवर समितियाँ शामिल होती हैं। अत ग्रेट ब्रिटेन म समिति व्यवस्था निम्नवत् है

1 सम्पूण सदन की समितियाँ (Committees of the Whole House)
   (1) सामा य विधेयक समिति (Committee on Ordinary Bill)
   (2) वित्त विधयक समिति (Committee on Money Bill)
      (i) वित्त विधेयक समिति (Committee on Money Bill)
      (ii) प्रदाय समिति (Committee on Supply)

(iii) उपाय एव साधन समिति (Committee of Ways and Means)

2 प्रवर समितिया (Select Committees)

(1) सत्रीय समितिया[4] (Sessional Committees)

(i) सावजनिक लेखा समिति (The Committee of Public Accounts)

(ii) अनुमान समिति (The Estimates Committee)

(iii) राष्ट्रीय उद्योगो की समिति (Committee on Nationalised Industries)

(iv) वधानिक आदेश समिति (Committee on Statutory Instruments)

(v) विशेषाधिकार समिति (Committee of Privileges)

(vi) सावजनिक आवेदन समिति (Committee of Public Petitions)

(vii) कामन्स सभा सेवा समिति (The House of Commons [Services] Committee) and,

(viii) विशषज्ञ समितियाँ (Specialist Committees)

(a) कृषि विज्ञान समिति

(b) तकनीकी एव शिक्षा समिति

(c) विज्ञान समिति

(ix) अन्य समितिया

(a) निर्वाचन समिति (Selection Committee)

(b) स्थायी आदेश सम्बन्धी समिति (Standing Orders Committee)

(2) व्यक्तिगत विधेयक समिति (Committee on Private Bills)

3 स्थायी समितिया (Standing Committees)

(1) सावजनिक विधेयक समिति (Committee on Public Bills)

(2) द्वितीय वाचन समिति (Committee on Second Reading)

---

4 लॉडसभा म निम्न सत्रीय समितियाँ है Committees on (1) Standing Orders (2) Personal Bills (3) Procedure (4) Offices, (5) Privileges, (6) Journals (7) The Appeal and Appellate Committees, and (8) Committee of Selection निर्वाचन समिति निविरोध व्यक्तिगत विधेयक समितिया (Committees on Unopposed Private Bills) के सदस्या का भी चयन करती है ।

(3) स्कॉटिश ग्राण्ड समिति (Scottish Grand Committee)
(4) स्काटिश स्थायी समिति (Scottish Standing Committee)
(5) वैल्स ग्राण्ड समिति (Welsh Grand Committee)

4 संयुक्त समितियाँ (Joint Committees)

सम्पूण सदन की समिति (Committee of the Whole House)

ब्रिटिश ससद के दोनो सदन पृथक पृथक रूप से अपने को समिति के रूप म परिवर्तित कर सकते है। सम्पूण मदन के समस्त सदस्य इसमे शामिल होते हैं और उसकी कायवाही मे भाग लेते है। लेकिन यह समिति सदन से भिन्न होती है। कॉमन्स सभा की सम्पूण सदन की समिति की अध्यक्षता स्पीकर नही करता। उसका स्थान उपाय एव साधन समिति (Committee on Ways and Means) का सभापति ले लेता है। वह स्पीकर के आसन पर न बठकर उसकी मेज के समीप रखी क्लक की कुर्सी पर बैठता है। सम्पूण सदन की समिति के सभापति की अनुपस्थिति म उप सभापति समिति के अधिवेशन की अध्यक्षता करता है। स्पीकर का दण्ड (mace) उसकी मेज पर से उठाकर नीचे रख दिया जाता है। सदन के नियमा म शिथिलता आ जाती है। प्रत्येक सदस्य को भाषण की पूण स्वतन्त्रता होती है और वह एक ही प्रश्न पर अनेक बार बोल सकता है। समिति के रूप म सदन की सम्पूण प्रक्रिया अनौपचारिक होती है और प्रस्तावो के समथन की आवश्यकता नही होती। सम्पूण सदन का सभापति कट्टर दलीय व्यक्ति होता है और प्रत्येक नवीन ससद के गठन के पश्चात उसका निवाचन होता है। सदन की समिति मे वाद विवाद को सीमित या समाप्त नही किया जा सकता है। जब सम्पूण विधेयक पर विचार-विमश हो चुकता है तो सदन के उठने और अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का प्रस्ताव किया जाता है। इस प्रस्ताव के स्वीकार होते ही स्पीकर अपना आसन ग्रहण कर लेता है और सम्पूण सदन की समिति का सभापति सदन के समक्ष समिति के प्रतिवेदन को स्वीकृति हेतु उपस्थित करता है, दूसरे शब्दो म, सदन अपनी ही सिफारिशो को स्वीकार करता है।

एक समय ऐसा था जब कामन्स सभा प्रत्येक विधेयक पर सम्पूण सदन की समिति म विचार करती थी। लेकिन स्थायी समितिया के अधिक लोकप्रिय हो जाने के कारण सम्पूण सदन की समिति का प्रयोग कम होने लगा है। सम्पूण सदन की समिति के विकास के अनेक कारण हैं

(1) वाद विवाद एव विचार विमर्श हेतु सदस्या की उपस्थिति को सम्भव बनाने के लिए सदन को समिति का स्तर प्रदान किया गया। समिति म कुछ गिने चुने सदस्य ही होन पर सभी सदस्या की उपस्थिति म सन्देह रहता था अत सम्पूण सदन को समिति का रूप प्रदान होन से अधिकतम सदस्या की उपस्थिति की सम्भावना स्वाभाविक हो जाती है। यही कारण था कि 17वी शताब्दी म विधेयका को सम्पूण सदन की समिति म ही भेजा जाता था।

(2) सम्पूण सदन की समिति म सदन के समस्त सदस्या को विचार व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। व्यवहार म इसका यह अथ है कि सदस्या के लघु एव प्रभावकारी गुट को विधेयक पर भली भाति विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

(3) प्राचीन समय म कॉमन्स सभा के सदस्य वित्तीय विषयो को राजा स गुप्त रखना चाहते थे। वे स्पीकर को राजा का व्यक्ति समझते थे अत वित्तीय मामलो पर एकान्त म समितिया म विचार करना श्रेयस्कर एव आवश्यक समझते थे। अतएव स्पीकर को समिति के अध्यक्ष पद से हटा दिया गया। यद्यपि अब स्पीकर के प्रति सन्देह की कोई गुजाइश और आवश्यकता नही है फिर भी परम्परा आज भी वही चली आ रही है।

सम्पूण सदन समिति की व्यवस्था की स्थापना एव विकास के फलस्वरूप गोपनीयता तथा लचीली एव अनौपचारिक काय पद्धति सम्भव हो सकी है।

सम्पूण सदन की समिति म महत्वपूण[5] एव वित्त विधेयको पर विचार किया जाता है। सम्पूण सदन की समिति जब गर वित्तीय विधयका पर विचार करती है तब उसे सामान्य विधेयक समिति (Committee on Ordinary Bills) कहते है। जब किसी वित्तीय प्रस्ताव या वित्त विधेयक पर सम्पूण सदन समिति के रूप म विचार करता है तो उसे सम्पूण सदन वित्त-प्रस्ताव समिति (Committee on the Whole House on a Money Resolution) कहत है। जब समिति अनुमानो की मागा (Appropriations) पर विचार करती है तो उसे प्रदाय या पूर्ति समिति (Committee in Supply or House in Supply) कहते है। जब सदन समिति के रूप म राजस्व विधेयक अर्थात कर प्रस्तावा पर विचार करता है तब उसे उपाय एव साधन समिति (Committee of Ways and Means) कहते हैं।

महत्वपूण किन्तु सामान्य विधेयक (Ordinary Bill) पर विचार करने के लिए सम्पूण सदन की समिति म विचार का प्रस्ताव नियमानुसार द्वितीय वाचन क तुरन्त बाद किया जाना चाहिए। यदि ऐसा कोई प्रस्ताव उपस्थित नही किया जाता है तो विधेयक स्वयमेव किसी स्थायी अथवा प्रवर समिति को विचाराथ भेज दिया जाता है।

सावजनिक विधेयको को सम्पूण सदन की समिति म विचार विमश हतु भेजने का प्रस्ताव नही किया जाता, क्याकि सम्पूण सदन की समिति की वहद सख्या के

---

5 महत्वपूण विधेयका स तात्पय ऐसे विधेयका से है जिनका शीघ्र पारित किया जाना आवश्यक होता है अथवा जो सवधानिक महत्व के होत हं। इसके अतिरिक्त जो विधेयक अस्थायी आदशा को स्वीकृत करने से सम्बन्धित (Bills Confirming Provisional Orders) होत हैं उन पर भी सम्पूण सदन की समिति म विचार होता है।

कारण उसमे विचार विमर्श के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव होता है। रमजे म्योर का मत था कि "किसी विधेयक पर, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्या न हो, सम्पूर्ण सदन की समिति मे विचार विमर्श नही होना चाहिए। सदन को विधेयक पर प्रथम बार द्वितीय वाचन मे फिर प्रतिवेदन-स्तर पर तथा अन्त म तृतीय वाचन की अवस्था मे विचार-विमर्श के उपयुक्त अवसर प्राप्त होते हैं। इतना पर्याप्त है, और फिर विधेयक की व्यापक छानबीन एव उसमे सशोधन का दायित्व तो उन सदस्यो को सौपा जाना चाहिए जि ह विधेयक सम्बन्धी विशेष ज्ञान होता हो।"[6]

स्थायी समितिया (Standing Committees)

अधिकाश सावजनिक विधेयको को, जब तक कि ऐसे किसी विधेयक को सम्पूर्ण सदन की समिति मे भेजने का प्रस्ताव नही किया जाता है, सामान्यत द्वितीय वाचन के पश्चात स्वयमेव स्थायी समितियो को भेज दिया जाता है। प्रारम्भ म केवल 2 स्थायी समितिया थी। 1907 ई म इनकी सख्या 4 व 1919 ई म 6 थी, परन्तु 1929 ई मे घटाकर 5 कर दी गयी है। 1946 ई म इनकी सख्या पुन 6 कर दी गयी। 1947 ई मे आवश्यकतानुसार समितियो के निर्माण की स्वतन्त्रता दी गयी है।

कामन्स सभा की 5 स्थायी समितिया ह—(1) सावजनिक विधेयक स्थायी समिति (2) द्वितीय वाचन समिति, (3) स्काटिश ग्राण्ड समिति, (4) स्कॉटिश स्थायी समिति, एव (5) वेल्स ग्राण्ड समिति।[7]

सावजनिक विधेयक स्थायी समितिया किसी विशेष प्रकार क विधेयक पर विचार करने क लिए निर्मित नही की जाती और न सम्बन्धित विषय के आधार पर उनके कोई विशिष्ट नाम ही होत ह। उन्ह केवल एक अक्षर A, B, C या D से सम्बोधित किया जाता है। इन समितियो का एक अध्यक्ष एव 20 स 50 तक सदस्य होते है जो निर्वाचन समिति द्वारा प्रत्यक विधेयक पर विचार हतु पृथक-पृथक मनोनीत किये जाते है। एक सत्र मे निर्मित हो सकने वाली इस प्रकार की स्थायी समितियो की सख्या पर काइ प्रतिबन्ध नही है। द्वितीय वाचन समिति म निर्वाचन समिति द्वारा मनोनीत 20 स 80 तक सदस्य हात ह। स्काटिश ग्राण्ड समिति म स्काटिश निर्वाचन क्षेत्रो के सभी सदस्य होते है। इस समिति म कम से कम 10 और अधिक स अधिक 15

---

6 No Bill however important, ought to be discussed in a Committee of the Whole House The whole House has its appropriate opportunities of discussion first on the second reading and then on the Bill as amended at the Report Stage and then on the third reading These ought to be sufficient and the work of detailed consideration and amendment ought to be entrusted to those members who have special qualifications for dealing with the subject of the Bill"—Ramsay Muir *How Britain is Governed*, pp 158 159

7 The British Parliament B I S CRF P 5448 (68) 1968, p 27

अ य सदस्य भी हो सकते हैं। इस समिति का काय स्काटलण्ड से सम्बन्धित विधेयकों, अनुमानित व्ययो (Estimates) एवं स्कॉटलैण्ड सम्बन्धी मामलो पर विचार करना होता है। **स्काटिश स्थायी समिति** म स्काटिश विधेयको पर विचार विमश होता है।[8] इसमे स्कॉटिश निर्वाचन क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करने वाले 30 सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक विधेयक पर विचार हेतु 20 अ य सदस्य मनोनीत किये जाते है। **वेल्स ग्राण्ड समिति** मे वेल्स निर्वाचन क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करने वाले 36 सदस्य *एवं 5 अ य मनोनीत सदस्य होते हैं। यह समिति निश्चित तिथिया पर वेल्स* मनमन्थशायर (Monmonthshire) सम्ब धी मामलो पर भी विचार करती है।

स्थायी समितियो मे सदस्यो का सामान्यत वही अनुपात होता है जो सम्पूण सदन म होता है। गणपूर्ति के लिए 17 सदस्या अथवा कुल सदस्य सख्या के एक-तिहाई सदस्यो म से जो भी सख्या कम हो के बराबर सदस्यो की उपस्थिति आवश्यक है। सभापति इसमे शामिल नही किया जाता है। अध्यक्षो की सूची (Panel of Chairman) मे से इन समितियो के अध्यक्ष को स्पीकर नियुक्त करता है। अध्यक्षो की सूची को निर्वाचन समिति द्वारा तैयार किया जाता है।

प्रवर समितिया (Select Committees)

किसी विशेष मामले पर सूचना प्राप्त करने एवं उसके आधार पर सदन के समक्ष प्रतिवेदन रखने के लिए सामान्यत प्रवर समितियो को गठित किया जाता है। ब्रिटिश ससद के दोनो ही सदना द्वारा अवसर आने पर प्रवर समितिया नियुक्त की जाती है। सम्बन्धित विधेयक पर विचार विमश पूण हो जाने पर इन्हे समाप्त कर दिया जाता है। सत्र के आरम्भ म भी प्रवर समितिया गठित की जाती हैं ताकि उस सत्र म प्रस्तुत होने वाले सम्भावित मामलो के प्रत्यक पहलू पर विचार किया जा सके। इस प्रकार की समितिया को **सत्रीय समितिया** (Sessional Committees) कहते हैं। ये एक सत्र के लिए ही गठित की जाती है और सत्र के उपरान्त वे समाप्त भी हो जाती हैं। अत प्रवर समितिया अस्थायी प्रकृति की होती है।

प्रवर समितिया के सदस्या को दलीय आधार पर नियुक्त किया जाता है। समितिया मे सदस्या की *सख्या सदन म विभिन्न दला की सदस्य सख्या के अनुपात* मे निश्चित की जाती है। लाडसभा मे प्रवर समिति की सदस्य सख्या सीमित नही है, लेकिन कॉमन्स सभा की प्रवर समितियो मे अधिकतम 15 सदस्य हो सकते हैं। सदन यदि चाहे तो सदस्या की सख्या म वृद्धि कर सकता है। विभिन्न दला के सचेतका द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि विभिन्न प्रवर समितिया म उनके दल के कौन स सदस्य अधिक योग्यतापूवक समिति म अपने दायित्व का निर्वाह कर सकते हैं। शासकीय दल का सचेतक सदन के नेता के परामश से समिति के सदस्या के बहुमत के बार म निश्चय करता है। इसी प्रकार समिति के शेष अल्पसख्यक सदस्या को विभिन्न विरोधी

8 The British Parliament, *op cit* p 27

दलो के सचेतको द्वारा अपन दलीय नताओ के परामश स मनोनीत किया जाता है। सामा यत समिति क सभी सदस्यो के नाम सयुक्त रूप म ही सदन के समक्ष प्रस्तुत किय जात हैं और बिना किसी वाद विवाद के सदन द्वारा उ ह स्वीकार कर लिया जाता है ।

कामन्स सभा की प्रवर समितियो को साक्ष्य लेन एव प्रपत्रा (documents) को प्राप्त करन का अधिकार होता है । लॉडसभा की समितियो को यह शक्तियाँ स्वत प्राप्त नही होती है । सामा यत लॉडसभा की समितियो के समक्ष गारण्टी दन एव प्रपत्र प्रस्तुत करने के लिए समिति के आदेश पर ही सम्ब धित व्यक्ति उपस्थित हात है । लेकिन सदन के द्वारा आवश्यकता अनुभव करन पर समिति को तत्सम्ब धी आदश देने का अधिकार होता है । कभी-कभी साक्ष्य के हेतु जनता को भी प्रवर समिति म उपस्थित हान की सुविधा प्रदान की जाती है । लेकिन समिति का विचार विमश पूणत गुप्त ही होता है । कॉमन्स सभा या लाडसभा के सदस्यो का अपनी-अपनी समितियो म उपस्थित होन का अधिकार होता है, पर सौज यवश वे समितियो म उपस्थित नही होत हैं ।

कॉमन्स सभा द्वारा निम्नलिखित **सत्रीय प्रवर समितियाँ** नियुक्त की जाती हैं

(1) **सावजनिक लेखासमिति**[9] (The Committee of Public Accounts)—इस समिति की सवप्रथम 1861 ई म स्थापना की गयी थी । इस समिति का प्रमुख काय यह देखना है कि सदन द्वारा स्वीकृत धनराशि उ ही मदो म व्यय होती है जिनके लिए उसे स्वीकृत किया गया है । कम्पट्रोलर एव ऑडीटर जनरल के प्रतिवदन एव सावजनिक 'व्यय या विनियोग लेखा' (Appropriation Accounts) का समिति द्वारा परीक्षण किया जाता है ।

(2) **अनुमान समिति**[10] (The Estimates Committee)—यह समिति सवप्रथम 1912 ई म स्थापित की गयी थी । इसका व्यय पर निय त्रण होता है। इसमे 43 सदस्य होते ह । इ ह उप समितियो मे विभाजित कर दिया जाता है । इन उप समितियो द्वारा शासन के व्यय के एक एक अश की जाच पडताल की जाती है। इस समिति द्वारा सराहनीय काय किया गया है, फलत इसके प्रभाव मे भी वद्धि हुई है । कुछ म त्रालयो मे यह समिति अधिक लोकप्रिय नही है । इस समिति का महत्व इस कारण है कि यह शासन को सदैव सचेत एव सजग रखती है । अनुमान समिति द्वारा अपने प्रतिवेदन मे विभिन्न शासकीय विभागो की भूलो एव गलतियो की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है ।

(3) **राष्ट्रीय उद्योगो की समिति** (Committee on Nationalised Industries)—यह नवीनतम समिति है । यह राष्ट्रीयकृत उद्योगो के हिसाब किताब की

---

9 Wheare *Government by Committee*, Chap VIII, 1955, pp 205 243
10 *Ibid*

जाच करती है और इसके माध्यम से कॉमन्स सभा इन उद्योगो पर नियत्रण रखती है। एक मत्र म प्राय एक ही उद्योग की जाच की जाती है।

(4) वधानिक आदेश समिति[11] (Committee on Statutory Instruments)—इसकी स्थापना 1944 ई मे हुई है। प्रत्येक वैधानिक आदेश जो सदन के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, उसकी जाच इस समिति द्वारा की जाती ह। लेकिन समिति केवल उन विशेप मामलो पर ही अपना प्रतिवेदन देती है जो उसके समक्ष विचार हेतु भेजे जाते है।

(5) विशेषाधिकार समिति (The Committee of Privileges)—सत्र के प्रारम्भ मे कॉमन्स सभा द्वारा इस समिति का गठन किया जाता है। इसम सदन के नेता सहित वरिष्ठतम 10 सदस्य होते है। सदन का नेता समिति का अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त सदन म विरोधी दल का नेता एव एटार्नी जनरल या सोलिसिटर जनरल म से कोई एक विधि अधिकारी भी इसके सदस्य होते हैं। इस समिति के अधिवेशन तभी आहूत किये जाते हैं जब सदन के समक्ष विशपाधिकार सम्बन्धी कोई मामला विचार हेतु आता है।

(6) सावजनिक आवेदन समिति (The Committee of Public Petitions)—इस समिति मे सदन को प्रेषित समस्त आवेदन पत्र भेजे जाते हैं और वहा इन पर विचार-विमश होता है।

(7) कॉमन्स सभा सेवा समिति (The House of Commons [Services] Committee)—यह समिति कॉमन्स सभा मे स्थान एव सेवाओ के सम्बन्ध म स्पीकर को परामश देती है।

इसके अतिरिक्त तीन विशेपज्ञ समितिया होती है—(1) कृषि विज्ञान समिति, (2) तकनीकी एव शिक्षा समिति, तथा (3) विज्ञान समिति। इन समितिया को सम्बन्धित विभागो क मत्रियो को अपने समक्ष उपस्थित होकर साक्ष्य देने सम्बन्धी आज्ञा देने का अधिकार होता है। इन समितियो के अधिवेशन जनता के लिए खुले होते हैं।

इसके अतिरिक्त दो और समितिया हैं (1) निर्वाचन समिति (Selection Committee), एव (2) अस्थायी आदशो सम्बन्धी समिति (Standing Orders Committee)। निर्वाचन समिति स्थायी समितिया क सदस्यो का चुनाव करती है। अस्थायी आदेशो सम्बन्धी समिति का सम्बन्ध व्यक्तिगत विधेयको स होता है।

व्यक्तिगत विधेयक सम्बन्धी समितिया[12] (*Committees on Private Bills*)—इन समितियो का उद्देश्य ससद म प्रस्तावित व्यक्तिगत विधेयको क सम्बन्ध म निणय करना होता है। इस प्रकार की समितिया की रचना, काय एव पद्धति

---

11 Wheare *op cit* pp 205-43
12 The British Parliament B I S *op cit*, pp 26 27

सम्बन्धित विधेयक के स्वरूप पर निभर करती है अर्थात प्रस्तावित विधेयक विरोध (Opposed Bill) किया गया है या विरोध नहीं (Unopposed Bill) गया है। 'Opposed Bill' वह विधेयक होता है जिसके विरुद्ध सदन में कोई आवेदन-पत्र प्रेषित किया गया हो। यदि विधेयक का कोई विरोध नहीं भी किया जाए परन्तु कॉमन्स सभा में साधन समिति के अध्यक्ष या लॉर्डसभा में समितियों के अध्यक्ष (Lord Chairman of the Committees) द्वारा यह कहा जाता है कि इसे Opposed Bill माना जाय तो वह विधेयक Opposed Bill माना जाता है। Opposed Bill से सम्बन्धित समिति में सदन के 4 सदस्य होते हैं जो समिति द्वारा चुने जाते हैं। इन सदस्यों का विधेयक में कोई व्यक्तिगत या हित नहीं होना चाहिए। Opposed Bill से सम्बन्धित समिति में उपाध्यक्ष एवं समिति के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष द्वारा मनोनीत 3 अन्य सदस्य और भी होते हैं। अध्यक्ष इन तीनों सदस्यों को सत्र के प्रारम्भ में निर्वाचन समिति द्वारा तैयार सूची में से चुनता है। लॉर्डसभा के व्यक्तिगत विधेयक समितियों में पांच सदस्य होते हैं और Unopposed Bills समितियों के लॉर्ड अध्यक्ष को भेज दिये जाते हैं।

व्यक्तिगत विधेयक समिति के सदस्यों का पूर्ण निष्पक्षता से कार्य करना आवश्यक होता है। समिति के समक्ष विधेयक के पक्ष/विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करने के लिए सम्बन्धित पक्षों द्वारा सुविज्ञ विधिवेत्ताओं को नियुक्त किया जाता है। इन समितियों के प्रतिवेदनों को सदन सदैव स्वीकार करता है।

प्रवर समितियां अपनी निष्पक्षता एवं सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार के लिए विख्यात होती हैं। इन समितियों में दलीय आधार पर मतदान अपवाद होते हैं। इनमें गर्मागर्म बहस भी नहीं होती। इन प्रवर समितियों द्वारा आवश्यक साक्ष्य लेने एवं शासकीय विभागों का निरीक्षण करने के लिए दूरस्थ स्थानों की यात्रा भी की जाती है।

संयुक्त समितियां[13] (Joint Committees)

प्रत्येक संयुक्त समिति में दोनों सदनों के बराबर बराबर सदस्य होते हैं। संयुक्त समिति के सदस्यों की नियुक्ति किसी विशेष विषय या विधेयक या एक ही प्रकार के सभी विधेयकों पर विचार करने के लिए की जाती है। संयुक्त समितियों का निर्माण किसी भी सदन के निवेदन पर किसी विशिष्ट विषय या विधेयक पर विचार हेतु किया जा सकता है परन्तु विधेयक को संयुक्त समिति में भेजने का प्रस्ताव उसी सदन द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसमें कि वह सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया हो। संयुक्त समिति के सदस्यों को दोनों सदनों द्वारा पृथक् पृथक् रूप से निर्वाचित किया जाता है। समिति को दोनों सदनों द्वारा प्रदान अधिकार ही प्राप्त होते हैं।

13 The British Parliament *op cit* p 28

दोनो सदनो की सहमति से ही समिति के अधिवेशन का समय एव स्थान निश्चित किया जाता है। समिति के सदस्या द्वारा अध्यक्ष को चुना जाता है। दोनो म से किसी एक सदन द्वारा मनोनीत सदस्यो मे से भी अध्यक्ष को चुना जा सकता है। सभी निणय मतदान से होते है। अय सदस्यो की भाति अध्यक्ष को भी मत देने का अधिकार प्राप्त है।

सयुक्त समिति का प्रतिवदन दानो सदना के समक्ष विचाराथ प्रस्तुत किया जाता है। समिति का अध्यक्ष जिस सदन का सदस्य होता है, उसमे स्वय उसके द्वारा एव दूसरे सदन मे समिति द्वारा मनोनीत किसी अय सदस्य द्वारा प्रतिवदन प्रस्तुत किया जाता है।

समीक्षा—महारानी एलिजाबेथ प्रथम के समय से ही द्वितीय वाचन के पश्चात विधेयक समिति म भेजे जाते थे और इसे अस्वाभाविक काय नही माना जाता था। उस समय की समिति की वतमान प्रवर समिति से तुलना की जा सकती है। लेकिन वतमान समिति व्यवस्था का विकास 19वी शताब्दी के अन्तिम चरण म आयरिश राष्ट्रवादियो की अवरोधक नीति के फलस्वरूप ससद के बढ़ते हुए कायभार को कम करने का सहज परिणाम है। ब्रिटिश समिति-व्यवस्था अमरिकी एव महाद्वीपीय देशा की समिति व्यवस्था स सवथा भिन्न ह। अमरिकी समितिया अपेक्षाकृत स्थायी हैं और उनका सावजनिक नीति के किसी एक पहलू से ही सम्बध होता है। अमरिकी समितिया शासन की नीति को निर्धारित करती हैं और उसके कार्यों म हस्तक्षेप करती हैं। ततीय फ्रेंच गणराज्य के अतगत फ्रच आयोग भी अमेरिकी समितिया की भाति ही काय करते थे। लेकिन ब्रिटिश समितियाँ इससे सवथा भिन्न हैं। कॉमस सभा की समितिया किसी विषय विशेष की विशेषज्ञ समितिया नही होती हैं। वे सदन का लघु रूप मात्र होती हैं। समितिया के अध्यक्ष भी कामन्स सभा के स्पीकर की प्रतिमूर्ति हैं। समितियाँ स्थायी नही होती और न उनका काई अपना पृथक व्यक्तित्व ही होता है। उनकी सदस्यता म सदव परिवतन होता रहता है और वे किसी विषय विशेष से ही सम्बन्धित नही होते। समितिया का उद्देश्य विधेयक को अन्तिम रूप देना होता है। स्मरणीय है कि ब्रिटन म प्रथम वाचन के मध्य ही सदन द्वारा विधेयक के सामाय सिद्धाता को निधारित कर दिया जाता है। ब्रिटिश समितिया को स्पीकर द्वारा स्वच्छापूवक विधेयक भेजे जात हैं। कामन्स सभा की समितियाँ सदन की सहायक मात्र होती हैं। वे प्रमुख विधायी यत्र—ससद—के सहायक उपकरण हैं। कॉमस सभा विधि निमाण सम्बधी अपन दायित्व के प्रति पूर्ण सजग रहती है।

कामन्स सभा की स्थायी समितिया का एक दोष यह था कि ... विलम्ब होता था। 1947 ई स स्थायी समितिया म ...

14 इस विभागीय समापन (closure by compartment) ... विवाद को समाप्त करन क लिए मतदान की ...

प्रयोग प्रारम्भ हो गया है। सदन द्वारा विधेयक के प्रतिवेदन को उपस्थित करने की तिथि निश्चित कर दी जाती है। समिति को उसी तारीख तक विधेयक को वापस भेजना अनिवार्य होता है। ग्रेट ब्रिटेन में समितियों ने विधि निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में समिति-व्यवस्था

फाइनर के अनुसार समितियाँ ही प्रतिनिधि सदन की यथार्थ विधायी निकाय हैं।[15] वुडरो विल्सन समितियों के कटु आलोचक थे। वह उन्हें लघु व्यवस्थापिका (Little Legislatures) कहा करते थे। वुडरो विल्सन द्वारा ही सर्वप्रथम अमरिकी समिति-व्यवस्था का गम्भीर अध्ययन किया गया था, और यह अध्ययन चकित कर देने वाला था। सुप्रसिद्ध स्पीकर थॉमस बी रीड समितियों को सदन की आँखें, कान, हाथ व मस्तिष्क कहा करता था।[16] शासन के अध्यक्षात्मक स्वरूप के कारण समिति-व्यवस्था का संयुक्त राज्य अमेरिका में अपना विशेष महत्व है। इंगलैण्ड में संसदीय शासन होने के कारण अधिकांश विधेयक मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। अमेरिका में शासन व्यवस्था शक्ति-पृथक्करण पर आधारित है एवं कांग्रेस नेतृत्व विहीन है। फलतः समितियों का वहाँ विशेष महत्व है। अमेरिकी कांग्रेस में अधिकांश विधेयक विभिन्न समितियों द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा कांग्रेस के नाम भेजे जाने वाले सन्देशों के आधार पर विभिन्न समितियों द्वारा अपने से सम्बन्धित विधेयक बनाकर उन्हें सदन में प्रस्तावित किया जाता है। कांग्रेस में कार्य भार अधिक होने के कारण समितियों द्वारा जिस रूप से विधेयकों का निर्माण किया जाता है व अधिकांशतः उसी रूप में बिना किसी परिवर्तन के सदन द्वारा स्वीकार कर लिये जाते हैं। समिति द्वारा विधेयक पर अनुकूल प्रतिवेदन देने पर सदन द्वारा उस विधेयक का पारित होना निश्चित है किन्तु प्रतिकूल प्रतिवेदन की अवस्था में उस विधेयक की मृत्यु भी निश्चित ही है।

अमरिकी प्रतिनिधि सदन में निम्न छः प्रकार की समितियाँ होती हैं : स्थायी समितियाँ (Standing Committees), प्रवर समितियाँ (Select Committees),

---

कहते हैं। विचार के लिए समय निर्धारित कर दिया जाता है। समय के समाप्त होते ही वाद विवाद समाप्त हो जाता है और उस पर मतदान होता है, भले ही विधेयक या उसके किसी अंश पर विचार पूर्ण न हो पाया हो। चूंकि विधेयक की धाराओं पर पृथक-पृथक विवाद होता है अतः इसे विभागीय समापन की संज्ञा भी देते हैं।

15 The Committees in fact are the real legislative bodies of the House of Representatives —Finer, H *op cit*, p 497

16 ' Speaker of the House, Thomas B Read described the Committees as the eye the ear the hand and very often the brain of the House —Quoted by Finer, H *op cit*, p 297

सम्पूण सदन की समितिया (Committees of the Whole House), विशेष समितिया एव विशेष जाच समितिया (Special Investigational Committees), सयुक्त समितिया (Joint Committees) एव सम्मेलन समितिया (Conference Committees) ।

स्थायी समितिया (Standing Committees)

स्थायी समितिया द्वारा विधि निर्माण के काय मे महत्वपूण भूमिका निभायी जाती है । ग्रेट ब्रिटेन म केवल 6 स्थायी समितियाँ है जबकि अमेरिका मे उनकी सख्या 34 है । प्रत्येक स्थायी समिति का नाम उन विधेयको पर निभर करता है जो समितिया म विचार हतु भेजे जाते है । स्मरणीय है कि 80वी काग्रेस (1946) के प्रतिनिधि सदन म 19 एव सीनेट मे 15 समितिया निश्चित की गयी थी ।[17] इसक पूव 79वी काग्रेस के प्रतिनिधि सदन मे 48 एव सीनेट मे 33 स्थायी समितिया थी । अनुमानित व्यय (Appropriation), सनिक सेवा वित्त, वैदेशिक मामले, श्रम एव सावजनिक कल्याण से सम्बन्धित समितिया सीनट की प्रमुख स्थायी समितिया हैं । इसी प्रकार अनुमानित व्यय (Appropriation), सनिक सेवा, उपाय एव साधन, वदेशिक मामले, शिक्षा एव श्रम नियम, अन्त राज्यीय एव द्वितीय मामले, व्यापार एव वाणिज्य, याय एव सावजनिक काय से सम्बन्धित समितिया प्रतिनिधि सदन की प्रमुख स्थायी समितिया है ।

इन समितिया म सामान्यत सदन के दलीय अनुपात के आधार पर दोना दलो के सदस्य होते है । प्राय प्रत्येक सीनेटर दो समितियो का एव प्रतिनिधि सदन का प्रत्येक सदस्य किसी एक समिति के सदस्य होते ह । इस नियम के कुछ अपवाद भी होते हैं । यह समितियाँ अपने सदन का प्रतिनिधि रूप नही होती है क्योकि काग्रेस के सदस्य प्राय उन ममितिया की सदस्यता प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयत्न करते है जिनकी सदस्यता ग्रहण करना उनके निर्वाचन क्षेत्र के हितो की पूर्ति की दृष्टि से अधिक अनुकूल होता है । स्थायी समिति मे वहुमत दल का वरिष्ठ सदस्य ही अध्यक्ष होता है। यदि वह किसी अन्य समिति का सदस्य होता है तो बहुमत दल का अन्य वरिष्ठ सदस्य समिति का अध्यक्ष बना दिया जाता है । वरिष्ठता का निर्धारण समिति म दीघकालीन सेवा के आधार पर हाता है । समिति के अध्यक्षो का समिति के कार्यों पर व्यापक प्रभाव होता है और समिति के कार्यो म उनकी आवाज प्रमुख होती है ।

स्थायी समितिया का निर्वाचन सदन द्वारा किया जाता है । जिस दल का सदन म बहुमत होता है उस दल का नेता प्रत्येक समिति के सदस्या की सख्या निश्चित करता है । प्रत्यक दल सदन म अपनी शक्ति के अनुपात म सदस्या के नामा का चयन

---

17 89वी काँग्रेस (1965) के प्रतिनिधि सदन म 20 और सीनट म 16 स्थायी समितियाँ थी—Ogg and Ray *op cit*, p 203

कर लेता है और उन सदस्यो को सदन द्वारा निर्वाचित कर लिया जाता है। अत व्यवहार म दोना सदनो की स्थायी समितियाँ दल के नेताओ द्वारा मनोनीत होती हैं और दोनो सदनो द्वारा उन्ह औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया जाता है। सभी समितिया की सख्या एक समान नही होती है। सीनेट की समितियो की सदस्य-सख्या कम होती है, केवल एक अनुमान समिति (Appropriation Committee) म ही 27 सदस्य होते हैं। कोलम्बीय जिला समिति एव नियम तथा प्रशासन समिति म क्रमश 7 एव 9 सदस्य होते है। शेष समितियो मे 12 से 17 तक सदस्य होते हैं। प्रतिनिधि सदन की समितियो की सदस्य सख्या सामान्यत 25 से 34 तक होती है जो सीनेट की समितियो की सदस्य सख्या की तुलना मे कही अधिक है। प्रतिनिधि सदन की अनुमान समिति मे 50 सदस्य होते हैं जबकि नियम समिति मे 15 और गर अमेरिकी समिति म केवल 9 सदस्य ही होते है। दोनो सदना की बहुत सी समितियो के नाम एक समान ही ह। यही नही, दोनो सदनो की समितिया के काय भी समान हैं। कुछ समितियाँ ही इसका अपवाद हैं।

नियम समिति[18] (Rules Committee of the House) स्थायी समितिया म सबस महत्वपूण समिति है। प्रतिनिधि सदन के स्पीकर एव बहुमत दल के नेता को निर्देशन की जो व्यापक शक्ति प्राप्त है, उसका उपयोग वे नियम समिति के साथ करते ह। सदन के नियमो के निमाण के अधिकार के कारण यह समिति अत्यधिक प्रभाव शाली हो गयी है एव नियमा के निर्माण के माध्यम स यह विधि निमाण का नियन्त्रित करती है। प्रतिनिधि सदन के काय सम्पादन म इसे निर्णायक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। 1961 ई क पूव इसके सदस्यो की सख्या 12 थी। इस वष स्पीकर रेबन (Rayburn) के नेतृत्व म समिति की सदस्य सख्या की वृद्धि का प्रस्ताव पारित किया गया था, फलस्वरूप सदस्य सख्या 15 कर दी गयी। विभिन्न समितिया द्वारा विधयको के पक्ष म जो प्रतिवेदन दिये जाते है उन पर नियम समिति विचार करती है एव सदन के विचार क्रम को निर्धारित करती है। नियम समिति द्वारा ही यह निश्चय किया जाता है कि प्रत्यक विधेयक पर सदन म कितने समय तक विचार किया जाय एव कौन से सशोधन किये जायें। नियम समिति को यहाँ तक अधिकार है कि वह नये विधेयक के प्रस्तुत करन तक का आदश दे सकती है। वह किसी भी विधेयक पर विचार विमर्श को रोक सकती है। नियम समिति को यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह किसी विधेयक पर सदन म होने वाली बहस का स्थगित करके किसी अन्य प्रस्ताव पर विचार करने का आदश दे। सीनेट म नियम समिति के सादृश्य कोई अन्य समिति नही है। यहाँ वाद विवाद ... स्वतन्त्र ... प्रतिनिधि सदन की नियम समिति का विधान ... की ...

18 Ogg and Ray

स्थायी समितियो के अतिरिक्त अन्य समितियाँ निम्नवत है

(1) **प्रवर समितियाँ** (Select Committees)—यह समितियाँ किसी विशेष काय के लिए नियुक्त की जाती हैं एव उस कार्य के समाप्त हो जाने के पश्चात इन समितियो का अन्त हो जाता है। अत प्रवर समितियाँ अस्थायी होती है। इसके सदस्यो की नियुक्ति सदन के अध्यक्ष द्वारा की जाती है।

(2) **सयुक्त सम्मेलन समिति** (Joint Conference Committees)—जब किसी विधेयक के सम्बन्ध म दोनो सदना म मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो दोनो सदना की ओर से समितिया की नियुक्ति की जाती है और वे दोनो समितिया मिलकर मतभेद को दूर करने का प्रयत्न करती हैं। इस प्रकार की समिति की स्थापना की आवश्यकता सामान्यत प्रत्येक 10 विधेयको पर पडती है। इस समिति के सदस्य सामान्यत उन स्थायी समितियो के दोना दला के वरिष्ठ सदस्यगण होत है जिन स्थायी समितियो म विधेयक पर पहले विचार हो चुकता है। सदन को इन समितियो को नियन्त्रित करने मे वडी कठिनाई होती है। ये समितिया केवल विवादग्रस्त प्रश्नो को सुलझाने तक ही सीमित नही रहती। यह बात विशेषकर कर-प्रस्तावो के सम्बन्ध म अधिक सत्य है। कभी कभी देखा गया है कि दोना सदना द्वारा सरक्षण (protection) की नीति को अस्वीकार कर देने पर अथवा दोना सदनो म कर की दरो के सम्बन्ध म गम्भीर मत-भेद हो जाने पर इन समितिया ने समझौते के माग का अनुसरण करते हुए कुछ वस्तुओ के सम्बन्ध मे सरक्षण की नीति का समथन किया था एव कुछेक करो की दरो मे वद्धि कर दी थी। इन समितिया के सदस्यो को सत्र के अन्त काल के समय पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति मे उनके द्वारा दिया गया प्रतिवेदन अनि-वायत स्वीकार कर लिया जाता है। सयुक्त सम्मेलन समिति अमेरिकी सवैधानिक तन्त्र का एक महत्वपूण अग है।

(3) **सम्पूण सदन की समिति** (Committee of the Whole House)—इगलण्ड की भाति ही अमेरिकी प्रतिनिधि सदन अपने आप को सम्पूण सदन की समिति मे अनुमान एव राजस्व विधेयको तथा अन्य प्रकार के विधेयका पर विचार हेतु परि-वर्तित कर लेता है। 100 सदस्यो की उपस्थिति गणपूर्ति के लिए आवश्यक होती है। इस समिति को अध्यक्षता प्रतिनिधि सदन का स्पीकर नही करता है अपितु अन्य सभा-पति चुना जाता है। इस समिति द्वारा विधेयको का परीक्षण किया जाता है। 1930 ई के पूव तक समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन को सुनने के लिए प्रतिनिधि सदन के सम्पूर्ण सदन का समिति के रूप म अधिवेशन होता था। इस प्रथा को सामान्य विधे-यका सम्बन्धी प्रतिवेदना के सम्बन्ध मे अव त्याग दिया गया है, किन्तु सन्धियो पर विचार करते समय आज भी इस परिपाटी का पालन किया जाता है। सम्पूण सदन समितियाँ दो प्रकार की हैं—प्रथम, व्यक्तिगत विधेयका के विचाराथ पूर्ण सदन की समिति, तथा द्वितीय, सावजनिक विधेयका सम्बन्धी पूण सदन की समिति।

सदन की समितियों में अनौपचारिक रूप से वाद-विवाद होता है। इन सदस्यों को समिति में सदन की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। यहाँ केवल मौखिक मतदान होता है। स्थगन प्रस्ताव उपस्थित नहीं किए जा सकते। पूर्ण सदन की समिति में प्रत्येक सदस्य को अनेक बार भाषण करने का अवसर होता है।

(4) विशेष समितियाँ (The Special Committees)—अमरिका कांग्रेस द्वारा समय-समय पर विशिष्ट मामलों की जाँच करने के लिए विशेष समितियों का निर्माण किया जाता है। यह समितियाँ अस्थायी होती हैं। इनका कार्य समाप्त होने पर इन्हें भंग कर दिया जाता है। इसी रूप की समितियों में कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा समय-समय पर नियुक्त की जाने वाली विशेष जाँच समितियाँ (Special Investigation Committees) आती हैं। कांग्रेस को किसी भी मामले की जाँच करने का अधिकार है। कांग्रेस द्वारा इस प्रकार की प्रथम जाँच 1792 ई० में की गयी थी। 1925 ई० के पश्चात् कांग्रेस द्वारा 300 से भी अधिक मामलों की जाँच की गयी है। पिछले 35 वर्षों में इसका अधिक प्रयोग हुआ है। फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट के प्रथम राष्ट्रपतित्व-काल में कांग्रेस द्वारा 165 मामलों की जाँच की गयी थी।

कांग्रेस को संविधान के अन्तर्गत विशेष रूप से जाँच की शक्तियाँ प्राप्त हैं ताकि विधि निर्माण में उपयोगी एवं आवश्यक तथ्य, विचार, मत, सूचनाएँ एवं परामर्श प्राप्त किए जा सकें। इसके अतिरिक्त, प्रशासन की भूलों का निरीक्षण करना इन समितियों का दूसरा उद्देश्य होता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जाँच समितियों को संयुक्त राज्य के अधिकारियों, मन्त्रिमण्डल के सदस्यों एवं जनता के व्यक्तियों को सफाई पेश करने एवं आवश्यक प्रमाण हेतु साक्ष्य देने के लिए अपने समक्ष उपस्थित होने का आदेश देने का अधिकार है। समितियाँ इन व्यक्तियों से आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर सकती हैं एवं प्रपत्रों (documents) की माँग कर सकती हैं। जाँच समितियाँ जहाँ आवश्यक सूचना प्राप्त करने में योगदान देती हैं वहाँ प्रशासन पर वह एक अवरोध भी है। मुनरो का मत है कि इन समितियों द्वारा जाँच के बहाने अपने विरोधियों के विरुद्ध ऐसे अनेक अस्त्र खोजे जाते हैं जिनका प्रयोग वे अपने विरोधियों के विरुद्ध आगामी निर्वाचनों में कर सकें।[19] अतएव इन समितियों द्वारा की जाने वाली जाँच-कार्यवाही अधिकांश में राजनीतिक होती है। सीनेट के सदस्यों का अमरिकी राजनीति में प्राधान्य होता है अतएव सीनेट की जाँच-समितियों के लक्ष्य अधिकांशतः राजनीतिक होते हैं। सीनेट की जाँच-समितियों ने बड़ा आतंक फैला रखा है। प्रशासकीय कर्मचारियों, जिनसे प्रशासन में भूल होना अस्वाभाविक नहीं है, कांग्रेस के विरोधी सदस्यों की पूछताछ से घबड़ाते रहते हैं। जाँच-समितियों के अधिवेशन सार्वजनिक

---

19 'What they often are seeking is ammunition that can be used in the next election campaign."—Munro *The Government of the United States* p 303

को यदि चाहे तो संशोधित कर सकती है, उन्हें अपने प्रतिवेदन सहित वापस कर सकती है या स्वीकृत एवं अस्वीकृत करने की सिफारिश कर सकती हैं। यह भी सम्भव है कि समिति अपना प्रतिवेदन ही प्रस्तुत न करे। ऐसी स्थिति में विधेयक की समिति अवस्था में ही मृत्यु हो जाती है। समितियों के अन्तिम विचार विमर्श गुप्त होते हैं। प्रतिनिधि सदन में कार्य-भार अत्यधिक होता है। सामान्यतः समितियों द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों को बिना किसी संशोधन के ही सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। स्पष्ट है कि विधि-निर्माण में प्रतिनिधि सदन की समितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

लेकिन सीनेट की समितियों को विधेयक पर इस प्रकार की जीवन एवं मरण की शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। सीनेट के सदस्य संख्या में कम होते हैं अतः वे सजगतापूर्वक विधेयकों की जाँच करते हैं। सीनेट की किसी समिति का एक विधेयक के पक्ष में दिया गया प्रतिवेदन सदन द्वारा उस विधेयक को पारित कर देने की गारण्टी नहीं होता है। किसी विधेयक पर यदि प्रतिनिधि सदन की कोई समिति प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करती तो प्रस्तावक विधेयक को सदन में पुनः उपस्थित करने की माँग सदन के कुल सदस्यों के बहुमत के हस्ताक्षर प्राप्त करके कर सकता है। यह प्रायः कठिन होता है। लेकिन सीनेट में सदस्य-संख्या कम होने के कारण किसी समिति में डूबे हुए विधेयक के पुनरुद्धार के लिए सीनेट के आधे सदस्यों का समर्थन प्राप्त कर सकना विशेष कठिन कार्य नहीं है।

समीक्षा—बीयर्ड[21] के अनुसार "समितियाँ उच्च विशेषाधिकार का उपयोग करती हैं और उनकी कार्यवाही गुप्त होती है। समितियों पर लॉबीस (lobbies) का बड़ा प्रभाव होता है, फलस्वरूप सम्पूर्ण समिति-व्यवस्था की विधि निर्माण यन्त्र के रूप में तीव्र आलोचना की गयी है तथा प्रतिनिधि सदन में अल्पसंख्यकों द्वारा निरन्तर समितियों के विरुद्ध शिकायत की जाती है।" एक सदस्य ने शिकायत करते हुए कहा था कि महत्वपूर्ण प्रश्नों को समितियों में भेजकर थोड़े से गिने चुने व्यक्तियों के हाथों में विधेयक को पारित करने की शक्ति सौंप दी जाती है, और फिर लौह मण्डित नियमों के अन्तर्गत उन्हीं विधेयकों को सदन में प्रस्तुत किया जाता है। सदन के सदस्यों के विचारों को बलपूर्वक दबा दिया जाता है और इन्हीं विधेयकों या प्रस्तावों को काँग्रेस के सुनिश्चित निर्णय की संज्ञा दी जाती है, जब कि इन पर कोई भी सदस्य कोई निश्चित निर्णय नहीं देता। समिति व्यवस्था की मुख्य आलोचनाएँ निम्नवत् हैं

(1) समितियों के फलस्वरूप अमेरिकी प्रतिनिधि सदन का महत्व कम हो गया है। सदन तो बीयर्ड के अनुसार समितियों के निर्णयों को केवल स्वीकृति प्रदान करता है।

---

21 Beard, C A *op cit*, pp 161 62

(2) समितिया के द्वारा जो अन्तिम विचार विमर्श एव निर्णय किये जाते है वे पूर्णरूपेण गुप्त होते हैं। समितियो में विचार विमर्श के पश्चात सदन में विधेयक पर होने वाला विचार विमर्श अत्यल्प, असम्बद्ध या अनियमित होता है। समितिया परस्पर सहयोगपूर्वक कार्य भी नही करती हैं। उनमे एक दूसरे के प्रति तनिक भी सम्मान की भावना नही होती। व्यवहार म प्रतिनिधि सदन म उत्तरदायित्व 19 समितियो रूपी भागो मे विभाजित हो जाता है। प्रत्येक समिति द्वारा विधेयक तयार किये जाते है और सम्बन्धित मामला एव नीति की एकता सम्बन्धी प्रश्नो को ध्यान मे नहीं रखा जाता है। ऐसी स्थिति मे विधि निर्माण मे "परस्पर सघर्ष (conflicts), विरोध (contradiction) एव मतभेद (confusion) अनिवार्य है।"[22] इसके अतिरिक्त विधि निर्माण मे दलबन्दी की भावनाएँ सक्रिय हो जाती हैं।

(3) अमेरिकी समितियो का आकार बहुत छोटा होता है अत य सदनो के समस्त वर्गो एव हितो का प्रतिनिधित्व नही करती। फाइनर के अनुसार, "समितिया राष्ट्र के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से बहुत छोटी है। अन्य देशो की व्यवस्थापिकाओ से तुलना की दृष्टि से औसत रूप म अमेरिकी समिति मे 21 सदस्य होते हैं जबकि फ्रास म 44 और इगलण्ड म 50 सदस्य होते है।"[23]

(4) समितिया म अत्यधिक समय, धन एव बुद्धि का अपव्यय होता है। 1946 ई म पुनर्गठन अधिनियम (Reorganisation Act) द्वारा समितिया की सख्या को कम करने का उद्देश्य विधि निर्माण म समय एव धन के अपव्यय को रोकना भी था। समितिया के अपने सुसज्जित कार्यालय होते हैं। कार्यालयो के सचिवो एव स्टेशनरी तथा अन्य कार्यों के लिए भत्ते आदि दिये जाते है। अधिकाश सदस्य अपनी पत्नियो और सम्बन्धियो को लिपिक एव सहायको के पद पर नियुक्त कर लेते हैं। धन का दुरुपयोग होता है और वह व्यय के कार्यों पर व्यय होता है। आलोचना से कान पर जू भी नही रेगती। क्षमता के लिए मितव्ययता आवश्यक होती है, लेकिन इस क्षेत्र मे मितव्ययता सम्भव नही होती क्योकि सदस्यगणो के लिए अपने निर्वाचन क्षेत्रो के कुछेक व्यक्तियो को और कभी-कभी अपने रिश्तेदारो को नियुक्त करना आवश्यक हो जाता है।[24]

---

22 Thus, under these conditions 'conflicts, contradiction and confusion in legislation are inevitable'—Beard, C A *op cit*, p 161

23 The committees are too small for due national representativeness The contrast with the legislatures of other countries in this respect 21 compared with 44 in France, and 50 in Britain —Finer, H *op cit*, p 498

24 "Each Standing Committee has a well furnished office Many pre requisites are appreciated by the members, that is, allowance for secretaries, stationery and other purposes Often members employ their wives and relatives as clerks and assistants Undoubtedly, money is wasted on useless activities, but criticism of the system fall on deaf ears"—Beard, C A *op cit*, p 158

(5) समितियाँ अपना काय बहुत धीमी गति से करती हैं, फलत समय का अपव्यय होता है। स्थायी एव विशेष समितिया की काय-पद्धति, प्रभावशीलता एव भावना म पर्याप्त अ तर होता है। समितिया म विधेयका क सम्ब ध म प्रस्तुत किये जाने वाले साक्ष्य स सम्ब धित चर्चा होती है। समितियाँ नैतिक एव विधिक अधिकारो को तनिक भी मा यता नही देती हैं।

दोना सदना की समितियाँ अधिकारिया एव नागरिका के लिए अलग-अलग अधिवेशन करती हैं और इस प्रकार अपन समय का दुरुपयोग करती हैं। यदि समिति का कोई सदस्य उत्तेजनायुक्त व्यक्ति होता है (अधिकाशत विशेष समितिया क सदस्य ऐसे ही व्यक्ति होत हैं), तो समिति की स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। ऐसी अवस्था म ऐसे अहकारिया (egotists) के नाम समाचार-पत्रा म मोटी सुर्खियो म प्रगट होते है और उ ह झूठी विज्ञप्ति प्राप्त होती है।

(6) समितिया के सभापति वरिष्ठता नियम (Seniority Rule) के अनुसार नियुक्त होते हैं जिसके फलस्वरूप योग्य व्यक्तिया को अध्यक्षता करन के अवसर प्राप्त नही होते हैं। फाइनर[25] के अनुसार वरिष्ठता योग्यता की गारण्टी नही है। वरिष्ठ सदस्यो का अपने समय और राष्ट्रपति की नीतिया से सहानुभूति का होना अधिक कठिन होता है। लकिन इस सम्ब ध म यह भी विचारणीय है कि समितिया क अध्यक्षा के निर्वाचन के लिए फिर किस सिद्धा त को अपनाया जाय। किसी अ य सिद्धान्त को खोजना भी कठिन है। यदि उपयोगिता क सिद्धान्त के आधार पर अध्यक्ष की नियुक्ति का निश्चय किया जाता है और योग्यता के निर्धारण का अधिकार दलीय समिति को सौंपा जाता है, तो इसका अथ दलीय समिति को व्यवस्थापिका का स्वामी बना देना होगा।

वरिष्ठता नियम का एक अ य दोष भी है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप अध्यक्ष और उसके अनुयायिया म आवश्यक एकता का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त इससे समितियो एव राष्ट्रपति के विधायी नेतृत्व के सम्ब धो म बाधा पडती है। समिति के सदस्यो के बहुमत पर अध्यक्षो का निय त्रण नही होता है। सदस्यगण समिति के अध्यक्षो को अपदस्थ नही कर सकते और न वे नये अध्यक्ष को निर्वाचित ही कर सकते हैं। प्रश्न यह है कि इस सब के बावजूद दल का नवयुवक वग इस नियम के विरुद्ध विद्रोह क्या नही करता। फाइनर[26] के अनुसार इसके निम्न कारण हैं (1) नवयुवक सदस्यो को विधि निर्माण एव सदन की काय पद्धति का अनुभव नही होता है जबकि सीनेट के सदस्या को अपेक्षाकृत दीघकालीन सेवा का अनुभव होता है। (2) वरिष्ठ सदस्य दल के पुराने अनुभवी नेता होन के कारण अधिक शक्ति अर्जित करने म सफल होत है। (3) वरिष्ठ सदस्यो की सेवा एव समथन करके उनके निकटतम अनुयायी

25 Finer, H *op cit*, p 499
26 Finer H *op cit*, p 499

उचित अवसर पर उनसे वाछित लाभ एव पुरस्कार की आशा रखते है । (4) यह परम्परा स्वय म पर्याप्त दीघकालीन होने के कारण एक शक्ति बन गयी है ।

फाइनर[27] का मत है कि 1946 ई म समितिया के पुनगठन द्वारा उनकी सख्या अवश्य कम कर दी गयी परतु समितियो को सदस्य सख्या वही बनी रही है । विशेषज्ञ कमचारियो की नियुक्तिया योग्यता एव स्थायी आधार पर की जाती हैं। परतु वरिष्ठता नियम म कोई परिवतन नही किया गया है । यह खेदजनक है कि जहा तक समितिया का प्रश्न है इस विधि का केवल आशिक पालन हुआ है ।

उपर्युक्त आलोचना के होते हुए भी अमेरिकी विधि-व्यवस्था मे समितिया का विशेष स्थान है । उनकी महत्ता फाइनर के निम्न कथन से स्पष्ट है "सभी विधेयक समितिया म भेजे जाते है। समितिया का अथ स्थायी समितिया है क्याकि सम्पूण सदन की समिति को शायद ही कोई गैर वित्तीय विधेयक भेजा जाता हो । यदि भेजा भी जाता है तो उस विधेयक पर स्थायी समिति उसके पूव ही विचार कर चुकती है । विधेयक के पारित होने म समितिया अनिवाय अवस्था है । परम्परा ने उन्हे यथाथ एव व्यवहार म (in substance and form) विधि निर्माण का मुख्य न्यायाधीश बना दिया है ।'[28]

ऑग एव रे न अमेरिकी समिति व्यवस्था के पक्ष म उसके समथका के निम्नलिखित तक दिये हैं

(1) समितिया ने राष्ट्र की भली भाति सेवा की है और विधायी प्रक्रिया म यथाथत कोई व्यवधान नही पडा है ।

(2) समितिया इसकी प्रतिभूति है कि काग्रेस म अनुभवी व्यक्तियो का प्राधा य रहेगा ।

(3) समितियाँ प्राथमिकता की दृष्टि से निष्पक्ष एव वस्तुगत मानदण्ड का निर्धारण करती हैं । इससे व्यक्तिगत कटुता एव षड्यन्त्रो को कोई स्थान नही रहता।

(4) समितियो का श्रेष्ठ विकल्प जो अधिकाश सदस्यो को स्वीकाय हो, अभी तक प्रस्तावित नही किया गया है ।[29]

फ्रान्स मे समिति-व्यवस्था

फास के क्रान्ति-काल से ही समितियाँ फ्रेंच ससदो का अभिन्न अग हैं। इनका काय विधि निमाण के पूव सामाजिक स्थिति की समीक्षा एव असेम्बली के काय का सशाधन करना था । फ्रेंच समितिया के वतमान स्वरूप की स्थापना 1848 ई तक हो चुकी थी ।

---

27 Finer, H *op cit*, p 499

28 *Ibid*, p 497

29 Ogg & Ray *Essentials of American Government*, 1967, p 205

चतुर्थ गणराज्यीय सविधान के अन्तगत विधेयका एव विधि प्रस्तावा के अध्ययन के लिए प्रत्यक सदन को पृथक पृथक समिति व्यवस्था की स्थापना का निर्देश दिया गया था। 1848 ई से ही फ्रास म यह विवाद का प्रश्न रहा है कि समितिया का विषय या क्षेत्र क्या होना चाहिए ? अमेरिकी कांग्रेस की समितिया की भाँति ही उन्हे गठित किया जाय और उस काय विशेष के समाप्त हो जाने पर समिति को भी भग कर दिया जाय या स्थायी समितियो का निर्माण किया जाय। स्मरणीय है कि स्थायी समितिया का विचार प्रारम्भ मे फ्रा स मे स्वीकाय नही था। 1898 ई म फ्रेंच ससद मे आयोगा (Commissions) की प्रथा का विकास हुआ था और 1902 ई मे आयोगा को स्थायी बना दिया गया। सदन (Chamber) के नियमा म परिवतन करके आयोगो के सम्बन्ध मे आवश्यक व्यवस्था की गयी। 1910 ई मे आयोगा की स्थापना की प्रचलित व्यवस्था को ब्यूरा (Bureaux) के द्वारा समाप्त कर दिया गया। लेकिन 1919 ई तक सीनेट म आयोगा की स्थापना की प्रणाली को समाप्त नही किया गया था। फाइनर के अनुसार, "इन दो सुधारो के फलस्वरूप ससदीय आयोगा के आधुनिक आधार—दलीय स्वरूप एव स्थायित्व—की स्थापना हुई थी।"[30] लेकिन 1946 ई म फ्रेंच सविधान म आयोगा का उल्लेख किया गया था। फ्रेंच समद के आयागो का कायकाल एक वर्ष होता है। स्मरणीय है कि 1902 ई तक वे विधानमण्डल के सम्पूण कायकाल के लिए निर्वाचित होते थे। लेकिन 1920 ई म उनका कायकाल एक वप कर दिया गया था। 1947 ई के नियमानुसार एक वप का अल्प कायकाल ही कायम रखा गया यद्यपि इसकी तीव्र आलोचना की गयी थी। फ्रास मे आयोगो की कुल सख्या 19 है। इनको असेम्बली के सभी सदस्यो द्वारा निर्वाचित किया जाता है। प्रत्यक आयोग मे 44 सदस्य हाते हैं। प्रत्यक फ्रेंच ससदीय राजनीतिक समूह द्वारा सदन मे अपनी सदस्य सख्या के अनुपात मे आयोग म सदस्यो को मनोनीत किया जाता है। लेकिन जिस राजनीतिक समूह के 14 से कम सदस्य होते ह उसे आयोग म कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता है। स्पष्ट है कि समितियो का गठन समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर किया जाता है। यह व्यवस्था द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात अपनायी गयी थी जिससे राजनीतिक दला का और अधिक विघटन न हो। छोटे छोटे समूह आपस म मिलकर प्रतिनिधित्व के लिए वाता कर सकते है। प्रत्येक आयोग मे 4 पदाधिकारी, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, रेपोर्टियर (Rapporteur) एव मन्त्रिगण होते है। अध्यक्ष समिति का प्रमुख होता है। वह सदस्या एव शासन की अन्य सस्थाओ—असेम्बली एव मन्त्रिमण्डल—के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है। आयोगो के अध्यक्षो का पद सत्ता एव प्रभाव का होता है एव पर्याप्त महत्वपूण है।

---

30 Finer H *op cit*, p 494

आयोग का अध्यक्ष शासकीय दल का ही होता है । इसके कारण निम्न-लिखित है (1) शासन पर प्रतिबन्ध रखना एव रखने की इच्छा । (2) मन्त्रियो के समान एव प्रतिस्पर्धी पदा की स्थापना । स्मरणीय है कि सभी विधायको के लिए मन्त्री पद प्राप्त करना कठिन ही नही असम्भव है । अत आयोगो की अध्यक्षता प्रदान करके शासकीय दल के महत्वाकाक्षी सदस्यो को सन्तुष्ट किया जा सकता है । (3) सदस्यो के ज्ञान एव अनुभव से लाभान्वित होने की कामना । स्मरणीय है कि आयोग की अध्यक्षता भविष्य मे मन्त्री पद के लिए प्रशिक्षण का काय करती है । रेपोर्टियर (Rapporteur) का पद भी महत्व का है । उसका काय नीति की दृष्टि से आयोगा के कार्यों का मागदशन करता है । यह पद भी प्रतिष्ठा एव सत्ता का है ।

शासकीय एव गैर शासकीय सभी विधेयका को सम्बन्धित आयोगो को भेज दिया जाता है । चेम्बर (प्रथम सदन) का अध्यक्ष यह निश्चय करता है कि कौन-सा विधेयक किस आयोग को भेजा जाय । यह अनिश्चितता उत्पन्न होने पर कि अमुक विधेयक को किस आयोग के पास भेजा जाय या कोई विधेयक दो विशेष आयोगा से सम्बन्धित है, सदन मतदान द्वारा अन्तिम निणय करता है । सामान्यत विधेयका को आयागा के पास भेजत समय उनकी वापसी की तारीख निश्चित कर दी जाती है । सामान्यत आयोगा द्वारा तीन माह के अन्दर विधेयक को लौटाना अनिवाय होता है । यदि आयोग निर्धारित अवधि म विधेयक को सदन मे वापस लौटाने मे असमथ होता है तो शासन या सदन के 50 सदस्या को विधेयक की वापसी की माँग करने का अधिकार होता है । विधेयक पर विचार के लिए आयागो के अनक सम्मेलन हात है जिनमे विधेयक पर वाद विवाद होता है । प्रस्तावा एव सशोधका को आयोग के समक्ष उपस्थित होकर अपने पक्ष को प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त है । आयागा के प्रतिवदना को प्रकाशित किया जाता है तथा सदन म विचार विमश के पूव वे सदस्या म वितरित कर दिये जाते हैं । फाइनर के अनुसार य प्रतिवेदन ब्रिटिश एव अमेरिकी समितिया द्वारा दिये जाने वाले प्रतिवेदना की अपक्षा कही अधिक सूचनाओ स युक्त होते हैं । आयोग अपने समस्त निणय एक इकाई के रूप म करता है । आयोग के निणय स असहमत अल्पसम्यक सदस्या का अपना पृथक प्रतिवेदन दन का अधिकार नही है ।

असम्बली म विधेयक पर निधारित दिन विचार विमश हाता है । आयोगा के रपोर्टियरा द्वारा सदन के वाद विवाद म प्रमुख भाग लिया जाता है । नियमानुसार रेपोर्टियर एव आयोग क अध्यक्ष को वाद विवाद की किसी भी अवस्था म हस्तक्षेप का अधिकार हाता है । सदन के अल्पसख्यक एव उनका प्रतिनिधित्व करन वाल सदस्या का परम्परानुसार विचार-अभिव्यक्ति की विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती है ।

समस्त आयोगा के अध्यक्ष "अध्यक्षा का सम्मेलन' (Conference of Presidents) के सदस्य हात हैं । आयोगा क अध्यक्षा क अलावा 6 उपाध्यक्ष एव सभी

स्वीकृत दलीय समूहो के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष भी इस सम्मेलन के सदस्य होते हैं। यह 'अध्यक्षों का सम्मेलन' सदन के अध्यक्ष को उसके कार्य, अधिवेशन आदि के सम्बन्ध में सहायता करता है।

समीक्षा—फ्रांस की आयोग व्यवस्था के फलस्वरूप प्रत्येक विधेयक पर सामान्य वाद विवाद हेतु सदन में 20 से 30 तक दक्ष एवं अनुभवी सदस्यों का एक समूह सदैव ही उपलब्ध रहता है जो पूर्णत सजग रहकर कार्य करता है। आयोग की बिना अनुमति के विधेयक में कोई नवीन सशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। प्रस्तावित सशोधनों पर सामान्यत आयोग का मत लिया जाता है। आयोगों द्वारा प्रस्तुत विधेयक ही वाद विवाद के आधार होते हैं। यदि सदन विधेयक के आधारभूत सिद्धान्त को ही अस्वीकृत कर देता है तो आयोग द्वारा उस पर पुनर्विचार होता है। विधेयक की समस्त धाराओं पर विचार विमर्श हो चुकने के पश्चात ही विधेयक पर विचार हेतु उसे पुन आयोग को भेजने की माँग (recommittal of the bill) की जा सकती है। आयोग का अध्यक्ष या रेपोर्टियर (Rapporteur) सशोधन पर पुनर्विचार की माग कर सकता है। यदि कोई आयोग यह अनुभव करता है कि किसी विधेयक विशेष पर जो किसी अन्य आयोग के विचाराधीन है, उसके द्वारा उपयुक्त विचार व्यक्त किये जा सकते हैं तो सदन के अध्यक्ष से उस अन्य आयोग में अपने प्रतिनिधि को भेजने की माग कर सकता है और तत्सम्बन्धी अपना प्रतिवेदन सदस्यों में वितरित कर सकता है। स्पष्ट है फ्रांस में आयोगों को व्यापक विधायी शक्तियां प्राप्त हैं।

फाइनर के अनुसार, 'आयोगों की शक्ति एवं प्रभाव दूरगामी हैं। वे पर्याप्त शक्तिशाली होते हैं और शासन के नेताओं तक को चुनौती देते रहते हैं। शासन पर प्रशासकीय एवं मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत बजट पर नियन्त्रण के माध्यम द्वारा, न कि सामान्य विधेयकों पर नियन्त्रण से उनके द्वारा शासन को नियन्त्रित किया जाता है। फ्रांस में शीघ्र और परिवर्तनशील समूहों के सयुक्त मन्त्रिमण्डल होते हैं। आंशिक रूप से इस परिस्थितिजन्य कमजोरी से बचने के लिए आयोगों का विकास हुआ है। आयोगों के सदस्य विधि निर्माण के क्षेत्र में ससदीय नेतृत्व प्रदान करते हैं और उस स्थायित्व एवं निरन्तरता को प्रदान करते हैं जो अल्पकालीन मन्त्रिमण्डल प्रदान नहीं कर पाये हैं। आयोग व्यवस्था के कुछ भी दोष क्यों न हों परन्तु यह व्यवस्था अच्छी है क्योंकि उनके द्वारा विशेष योग्यता एवं ज्ञान प्रदान किया जाता है और वे समस्त सदस्यों को सक्रिय एवं प्रभावशाली समूहों में सगठित करते हैं।'[31]

---

31 'The power and influence of the Commissions are far reaching They have often become powerful enough to challenge the leadership of the government, but their power has there been exerted more through their powers of administrative control and through the annual challenge to the Cabinet Budget than an ordinary legislation The French ministries are swift changing coalitions

सोवियत के सदस्य भी इस आयोग के कार्यों म भाग लेत हैं । इसका लक्ष्य सघ-गण राज्या के अधिकारा की वृद्धि करना है । इस समिति का काय राष्ट्रीय आर्थिक योजना का विकसित करना एव सघ गणराज्या की आर्थिक आवश्यकताओ को ध्यान म रखना है । इस समिति के सुझावा के आधार पर सुप्रीम सोवियत एव सोवियत शासन द्वारा विद्यालया, चिकित्सालया, उच्च शिक्षा एव स्थानीय सोवियत गृह व्यवस्था सम्बन्धी प्रस्तावित विभिन्न योजनाओ को स्वीकार किया गया था ।

समितिया एव आयोगा द्वारा सभी निणय सामान्य बहुमत स लिय जाते हैं। समिति या आयोग का कोई सदस्य यदि निणय से असहमत है तो उसे सम्बन्धित समिति को अपने प्रस्ताव पृथक रूप से प्रस्तुत करने का अधिकार होता है । सुप्रीम सोवियत के अन्य सदस्या को आयोगा की बठका म भाग लेने का अधिकार है परन्तु वहाँ वे केवल परामर्श भर दे सकते हैं। प्रवर समितियाँ अपने कार्यों के लिए उसी सदन के प्रति उत्तरदायी होती ह जो उन्ह निर्वाचित करता है । सदन के सत्रावसान काल म वे सदन के अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होती ह । ऑग एव जिंक के अनुसार सुप्रीम सोवियत की वैदेशिक मामला, विधान एव बजट सम्बन्धी समितियाँ अत्यधिक महत्व की हैं। सुप्रीम सोवियत का अधिवेशन वष मे केवल एक सप्ताह या दस दिन का होता है। एसी स्थिति म सोवियत रूस म समितियाँ अमेरिकी समितिया स कही अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।[32]

भारत मे समिति-व्यवस्था

भारत म विधि निर्माण समितिया का इतिहास बहुत पुराना है । 1853 ई के चाटर अधिनियम के अन्तगत विधान परिषद् की स्थापना 1854 ई म की गयी थी और उसी वष परिषद ने एक समिति का निर्माण किया था । तब स प्रत्येक भारतीय व्यवस्थापिका द्वारा विधि निर्माण काय म योग दने हेतु समितिया का निर्माण किया जाता रहा है । भारतीय विधि निर्माण समितियाँ ब्रिटिश समिति प्रणाली पर आधारित है। परन्तु दोनो मे एक महत्वपूण अन्तर यह है कि भारतीय ससद मे ग्रेट ब्रिटेन की भाति सम्पूण सदन की समिति का अभाव है ।

भारतीय ससद के दोना सदना मे अनेक समितियाँ हैं । प्रस्तावित विधेयक की समीक्षा के लिए समय समय पर भारतीय ससद म अतिरिक्त (*Ad hoc*) समितियो की स्थापना की जाती हैं । अत भारतीय ससद म दो प्रकार की समितिया हैं स्थायी समितिया (Standing Committees), एव अस्थायी समितिया (*Ad hoc* Committees) । अस्थायी समितिया के अन्तगत दोनो सदनो द्वारा समय समय पर नियुक्त की जाने वाली समस्त प्रवर एव सयुक्त समितिया आ जाती हैं । अस्थायी समितियाँ किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए गठित की जाती हैं और काय के समाप्त हो जाने पर भग कर दी जाती है ।

32 Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1956, p 857

महत्वपूर्ण विधेयको पर विचार हेतु दोनो सदनो द्वारा सयुक्त समितियो का भी गठन किया जाता है। कभी-कभी गैर-विधायी मामलो पर विचार करने हेतु भी सयुक्त समितिया गठित की जाती हैं। उदाहरण के लिए, 1956 ई म द्वितीय पचवर्षीय योजना पर विचार हेतु एक सयुक्त समिति का गठन किया गया था। भाषा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार हेतु भी अस्थायी सयुक्त समिति गठित की गयी थी। स्थायी समितिया का वर्गीकरण[33], समितियो के कार्यों के आधार पर एस एस मोरे द्वारा निम्न रूप म प्रस्तुत किया गया है

1 अन्वेपक समितिया (Committees to Enquire)
   (i) आवेदन समिति (Committee of Petitions)
   (ii) विशेपाधिकार समिति (Committee of Privileges)
2 निरीक्षण समितिया (Committee of Scrutinize)
   (i) शासकीय आश्वासन समिति (Committee of Government Assurances)
   (ii) अधीनस्य विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation)
3 सदन के काय से सम्बन्धित प्रशासकीय प्रकृति की समितिया (Committees of an Administrative Character Relating to the Business of the House)
   (i) सदन के अधिवेशना मे सदस्यो की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति (Committee on Absence of Members from the Sittings of the House)
   (ii) कायक्रम परामशदात्री समिति (Business Advisory Committee)
   (iii) व्यक्तिगत-सदस्य विधेयक एव प्रस्ताव सम्बन्धी समिति (Committee on Private Members' Bills and Resolutions)
   (iv) नियम समिति (Rules Committee)
4 सदस्या की सुविधा एव व्यवस्था समिति (Committee dealing with Provision of Facilities to Members)
   (i) सामान्य उद्देश्य समिति (General Purposes Committee)
   (ii) सदन समिति (House Committee)
   (iii) पुस्तकालय समिति (Library Committee)

33 S S More 'Practice and Procedure of Indian Parliament', cited by A. C Kapur *Select Constitutions (Indian Constitution)*, 1965, p 244

(iv) संसदीय सदस्यों के वेतन एवं भत्तों सम्बन्धी संयुक्त समिति (Joint Committee on Salaries and Allowances of Members of Parliament)

5 वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)

(i) अनुमान समिति (Estimates Committee)

(ii) सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee)

स्थायी समितियाँ (Standing Committees)

भारतीय लोकसभा में निम्न स्थायी समितियाँ हैं सार्वजनिक लेखा समिति, अनुमान समिति तथा कार्यक्रम परामर्शदात्री, विशेषाधिकार, नियम, आवेदन, व्यक्तिगत-सदस्य विधेयक एवं प्रस्ताव सम्बन्धी समितियाँ एवं सरकारी आश्वासनों तथा अधीनस्थ विधान समितियाँ। सार्वजनिक लेखा समिति तथा अन्तिम दो समितियाँ कार्यपालिका पर नियन्त्रण के प्रभावपूर्ण साधन हैं। शेष सभी समितियाँ सदन के आन्तरिक मामलों से सम्बन्धित हैं।

राज्यसभा में निम्न 6 स्थायी समितियाँ हैं आवेदन, विशेषाधिकार, नियम, सदन एवं सामान्य उद्देश्य तथा कार्यक्रम परामर्शदात्री सम्बन्धी समितियाँ। प्रथम चार समितियों के कार्य लोकसभा की समितियों के समान ही हैं। सदन एवं सामान्य उद्देश्य समितियाँ उन कार्यों को सम्पादित करती हैं जिनका सदन के कार्यक्रम से कोई सम्बन्ध नहीं होता। सदन समिति का राज्यसभा के आवास सम्बन्धी मामलों से सम्बन्ध होता है। सामान्य उद्देश्य समिति कार्यालय के आवास एवं संसदीय कागजों के प्रकाशन जैसे सामान्य मामलों से सम्बन्धित होती है। इन सभी समितियों को राज्यसभा के अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाता है। यह समितियाँ नवीन समितियों के गठन तक पदारूढ़ रहती हैं। राज्यसभा का अध्यक्ष नियम समिति एवं कार्यक्रम परामर्शदात्री समिति का पदेन सदस्य होता है।

प्रवर समितियाँ (Select Committees)

किसी विधेयक की जाँच या अन्वेषण या शिकायत पर विचार हेतु प्रवर समिति की नियुक्ति की जाती है। प्रथम प्रवर समिति की स्थापना 1854 ई. में हुई थी। इसके पश्चात हर विधानमण्डल में अनेकानेक प्रवर समितियों की स्थापना होती रही है। दोनों सदनों में प्रवर समितियों सम्बन्धी नियम समान हैं। प्रवर समिति में विधेयक को भेजने का प्रस्ताव स्वीकार किये जाने के पश्चात उसे प्रवर समिति को प्रेषित कर दिया जाता है। विधेयक को प्रस्तावित करने वाला सदस्य प्रवर समिति के सदस्यों के नामों का सुझाव देता है। प्रवर समिति में नियुक्त किये जाने के पूर्व सदस्यों की इच्छा ज्ञात कर ली जाती है। सदन का अध्यक्ष सदस्यों में से ही समिति के अध्यक्ष को नियुक्त करता है। यदि अध्यक्ष भी समिति का सदस्य होता है तो वह स्वयं समिति की अध्यक्षता करता है। एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति गणपूर्ति के लिए आवश्यक

होती है। निणय बहुमत से होते है । अध्यक्ष को विवाद की स्थिति मे निणायक मत देने का अधिकार होता है । प्रवर समितिया उप-समितिया भी नियुक्त कर सकती है । इन समितियो के अधिवेशन गुप्त होते है । प्रवर समितिया और उनकी उप समितिया व्यक्तियो को अपने समक्ष साक्ष्य देने अथवा कोई पत्र या कागजात उपस्थित करने का आदेश दे सकती हैं । निश्चित अवधि के भीतर समिति अपना प्रतिवेदन सदन को प्रेषित करती हे । सदन द्वारा यदि कोई समय निश्चित नही किया जाता है तो सूचना प्राप्त करने के एक माह के भीतर समिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देना चाहिए। समिति के बहुमत के निणय से असहमत सदस्या को पृथक रूप से अपना मत व्यक्त करने का अधिकार होता है। समिति के अध्यक्ष को समिति के काय एव सगठन को व्यवस्थित करने के लिए आवश्यक निर्देश देने का अधिकार होता है । जो मन्त्री किसी समिति का सदस्य नही होता, उसे समिति के अध्यक्ष की अनुमति से समिति मे अपने विचार व्यक्त करने की सुविधा होती है। जो ससद सदस्य समिति के सदस्य नही होते, उन्ह भी विचार विमश के समय समिति म उपस्थित होने का अधिकार होता है। परन्तु उन्ह समिति के अधिवशना म समिति के अग के रूप मे भाग लेने का अधिकार नहीं होता है।

कुछ प्रमुख समितिया का विवरण निम्नवत् है

नियम समिति (Rules Committee)—नियम समिति का दायित्व सदन की काय पद्धति विषयक मामला की जाच करना होता है । वतमान काय-पद्धति के नियमो मे आवश्यक सशोधन करने या नवीन नियम बनाने की सिफारिश समिति द्वारा ही की जाती है । लोकसभा का स्पीकर नियम समिति का पदेन सदस्य होता है । उसकी अनुपस्थिति म उपाध्यक्ष अध्यक्षता करता है । इसकी सदस्य सख्या 15 है जो लोकसभा के स्पीकर या राज्यसभा के अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।

विशेषाधिकार समिति (Committee on Privileges)—विशेषाधिकार समिति का सम्बन्ध सदन एव सदन के सदस्यो के विशेषाधिकारो तथा उनके भग होने से सम्बन्धित मामलो से होता है। इसकी सदस्य सख्या 15 है जो सत्र के आरम्भ म स्पीकर द्वारा मनोनीत किये जात हैं।

व्यक्तिगत सदस्य विधेयक समिति (Private Members' Bills Committee)—यह समिति व्यक्तिगत सदस्यो द्वारा प्रस्तावित विधेयका या प्रस्तावा की परीक्षा करती है । समिति द्वारा ऐसे विधेयक दो वर्गो म विभाजित कर दिये जात है और उनके लिए समय निश्चित कर दिया जाता है।

कायक्रम परामर्शदात्री समिति (Business Advisory Committee)—इस समिति द्वारा सदन का कायक्रम निश्चित किया जाता है एव विभिन्न विधेयको के लिए समय निधारित किया जाता है। इसकी सदस्य-सख्या 15 है। स्पीकर इस समिति का अध्यक्ष होता है।

शासकीय आश्वासन समिति (Committee on Government Assurances)—स्पीकर के द्वारा एक वर्ष के लिए 15 सदस्यों की यह समिति गठित की जाती है। यह मन्त्रियों द्वारा सदन में समय-समय पर दिये गये वचनों, आश्वासनों एवं निश्चयों की समीक्षा करती है और सदन को यह प्रतिवेदन देती है कि उनमें से किन आश्वासनों को क्रियान्वित किया गया है और आश्वासनों को निश्चित अवधि में पूरा किया गया है या नहीं। इस समिति द्वारा इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि प्रत्येक मन्त्री को अपने आश्वासनों को दो माह की अवधि में पूरा कर देना चाहिए। यदि कोई मन्त्री इसमें असफल रहता है तो उसे सदन में इसका स्पष्टीकरण देना चाहिए। यह समिति पर्याप्त प्रभावशाली है।

अधीनस्थ विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation)—इस समिति का कार्य यह देखना है कि संसद द्वारा अधीनस्थ विधान की जो शक्तियाँ विधि निर्माण हेतु प्रदान की जाती हैं उनका सही रूप में प्रयोग किया जाता है अथवा नहीं। समिति सम्बन्धित सदन में प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। समिति का दायित्व है कि वह यह देखे कि निर्मित अधीनस्थ विधि सम्बन्धित संसदीय विधि के मूल उद्देश्यों के अनुरूप है अथवा नहीं। समिति का 1 अध्यक्ष एवं 15 सदस्य होते हैं, जो स्पीकर द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किये जाते हैं। इसकी स्थापना 1953 ई० में की गयी थी।

यह समिति अधीनस्थ विधान के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों की समीक्षा करती है क्या अधीनस्थ विधि संसदीय विधि के मूल मन्तव्यों के अनुरूप है ?, क्या अधीनस्थ विधान में कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें संसद द्वारा पृथक विधि के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए ?, क्या अधीनस्थ विधि द्वारा कोई नवीन कर प्रस्तावित किया गया है ?, क्या संसदीय विधि द्वारा वर्जित विषयों के सम्बन्ध में अधीनस्थ विधि में कोई व्यवस्था की गयी है ?, एवं क्या अधीनस्थ विधि द्वारा शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना है ? इस समिति का कार्य सन्तोषजनक नहीं रहा है और न यह अपने कार्य को ही निपटा पाती है। विधि आयोग ने एक स्थायी समिति के निर्माण का सुझाव दिया था जिसके सदस्य पूरे समय के लिए नियुक्त हों और जो सभी प्रदत्त विधानों की समीक्षा करें।

सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee)—सार्वजनिक लेखा समिति एवं अनुमान समिति (Estimates Committee) संसद की दो महत्वपूर्ण समितियाँ हैं। भारत में प्रथम सार्वजनिक लेखा समिति 1923 ई० में केन्द्रीय विधान मण्डल द्वारा गठित की गयी थी। नवीन संविधान के प्रारम्भ होने पर यह समिति सही अर्थों में संसदीय समिति बनी है। सार्वजनिक लेखा समिति का कार्य सदन द्वारा स्वीकृत सरकार के व्यय एवं लेखा, वार्षिक वित्तीय लेखा एवं अन्य लेखों का परीक्षण करना है। समिति यह देखती है कि सदन द्वारा जो धन जिस मद में व्यय करने की स्वीकृति प्रदान की गयी है, वह उसी मद में व्यय किया गया है या नहीं। इसकी सदस्य-संख्या 22 है,

जिसमे 7 सदस्य राज्यसभा के होते है। सदस्यगण समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर एक वर्ष के लिए निर्वाचित किये जाते हैं। कोई मन्त्री इस समिति का सदस्य नही होता है। लोकसभा के वरिष्ठतम गैर-सरकारी सदस्य को स्पीकर समिति का अध्यक्ष नियुक्त करता है। समिति द्वारा राज्यो के निगमो, स्वायत्त एव अर्द्ध-स्वायत्त निकायो एव राष्ट्रपति के निर्देश पर नियन्त्रक एव महालेखाकार द्वारा किये गये परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदन पर भी विचार किया जाता है। कम्पट्रोलर एव आडीटर जनरल के वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार करना समिति का प्रधान कार्य है। वित्त-मन्त्रालय द्वारा विभागीय अपव्यय को रोकने के लिए निर्मित नियमो की परीक्षा भी यही समिति करती है।

मौरिस जोन्स (Morris Jones) ने समिति के कार्यों की समीक्षा करते हुए कहा है कि सार्वजनिक लेखा समिति को तीन दिशाओ मे सफलता प्राप्त हुई है—(1) समिति ने प्रशासन के उन दोषो पर प्रकाश डाला है जिन्हे सरकार जागरूक रहते हुए भी सुधारने मे असफल रही है। (2) समिति एव ऑडीटर जनरल का अस्तित्व प्रशासन के लिए निरन्तर इस चेतावनी के रूप मे है कि सदन द्वारा उनके कार्यों की जाच की जाती है। (3) समिति केन्द्रीय सरकारी अधिकारियो एव राजनीतिज्ञो को एक दूसरे के समीप लाती है और अधिकारियो को लोकमत के प्रति सजग रहने तथा राजनीतिज्ञो को रचनात्मक आलोचना का प्रशिक्षण प्रदान करती है।

अनुमान समिति (Estimates Committee)—भारत मे अनुमान समिति की स्थापना अप्रैल 1950 ई मे की गयी थी। 1953 ई मे इसके दायित्वो मे वृद्धि की गयी। अनुमान समिति का कार्य सदन के समक्ष प्रस्तुत विभिन्न विभागो के व्यय के अनुमानो की जाच करना है। यह महत्वपूर्ण दायित्व है क्योकि प्रत्येक विभाग के अनुमानित व्यय सम्बन्धित विभागीय मन्त्रियो द्वारा तैयार किये जाते है और वित्त मन्त्री द्वारा उनकी विस्तृत जाच के पश्चात ही वे सदन मे स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किये जाते हैं। विभागीय अनुमानित मागो मे नीति सम्बन्धी प्रश्न निहित होते हैं। सदन द्वारा अनुमानित मागो की आलोचना का अर्थ शासकीय नीति के प्रति सहज सन्देह की अभिव्यक्ति माना जाता है। फिर भी ससद का यह दायित्व है कि विभिन्न विभागीय मागो की परीक्षा करके उस स्वय को सन्तुष्ट कर लेना चाहिए कि मागे उचित एव न्यायपूर्ण हैं और उन्हे स्वीकृति प्रदान करना वाछनीय है। इस प्रकार समिति को अनुमानों की जाच के माध्यम से शासन की नीति के सम्बन्ध मे विचार व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हो जाता है और सम्पूर्ण शासन समिति के क्षेत्राधिकार मे आ जाता है। समिति ने अनेक अवसरो पर शासकीय नीति के सशोधन एव परिवर्द्धन का सुझाव दिया है। भूतपूर्व नियन्त्रक एव महालेखाकार श्री अशोक चन्दा ने भारतीय अनुमान समिति के इस अधिकार को कार्यपालिका शक्ति का अतिक्रमण माना है। समिति के सदस्यो द्वारा जाच हेतु देश के विभिन्न भागो का भ्रमण किया जाता है।

अशोक चन्दा के मतानुसार इससे अनुशासनहीनता पनपती है। समिति ने उन कार्यों को करना स्वयं प्रारम्भ कर दिया है जो कि मूल रूप में सदन के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं।[34] यह सदन की एक स्थायी समिति है। इसकी उप-समितियाँ होती हैं। समिति की सदस्य संख्या 30 है जो लोकसभा के सदस्यों द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर एकल संक्रमणीय मत के अनुसार निर्वाचित किये जाते हैं। इसमें राज्यसभा का कोई सदस्य नहीं होता। समिति का अध्यक्ष स्पीकर द्वारा मनोनीत किया जाता है। सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है। अनुमान समिति का मुख्य उद्देश्य प्रशासन में मितव्ययता एवं क्षमता लाना है। यदि समिति यह समझती है कि बहुत सा धन व्यय जा रहा है तो नीति के परिवर्तन पर बल दे सकती है। समिति के प्रतिवेदनों में तीन प्रकार की सिफारिशें होती हैं (1) संगठन के सुधार, (2) मितव्ययता, एवं (3) अनुमानित माँगों को प्रस्तुत करने सम्बन्धी सुझाव। अनुमान समिति भारतीय प्रशासन की क्षमता के विकास में महत्वपूर्ण योग दे रही है।

34 Ashok Chanda *Indian Administration* pp 192-193

14

प्रदत्त विधान

[DELEGATED LEGISLATION]

सभी देशो मे प्रदत्त विधान का विकास युद्धोत्तरकालीन प्रमुख विशेषता है, यद्यपि इसका उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धा त अति प्राचीन है ।[1] डायसी के जीवन-काल मे ही प्रदत्त विधान को मान्यता दी जाने लगी थी । ब्रिटेन म 1832 ई के सुधार अधिनियम एव स्थानीय शासन सम्बन्धी उपनियम के फलस्वरूप प्रदत्त विधान या प्रशासकीय विधि मे असाधारण वृद्धि हुई थी । प्रथम विश्व युद्ध के काल म प्रदत्त विधान का असम्भावित विकास हुआ था एव सुरक्षा नियमो (Defence of the Realm Act, 1914 15) के अन्तगत कार्यपालिका को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी थी । विधानमण्डल द्वारा अपनी विधि निमाण शक्ति को कायपालिका एव उसके अधिकारिया को हस्ता तरित कर दिया जाता है और व ऐसे पारित अधिनियम के अधीन विभागीय अधिकारिया को विधि निर्माण का अधिकार प्रदान कर देते है । इस प्रकार काय-पालिका द्वारा निर्मित विधि या नियम या आदेश प्रदत्त विधान (delegated legislation) कहलाता है । यह आधुनिक विधान का अनिवाय अग है । विधि निर्माण काय-पालिका का काय नही ह अपितु विधानमण्डल का एकाधिकार है । विशेष परिस्थितिया या कारणवश विधि बनाकर उसकी सीमा के अन्तगत नियम बनान का अधिकार काय-पालिका को प्रदत्त कर दिया जाता है । अत प्रदत्त विधान विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि की तुलना मे कायपालिका द्वारा निर्मित अधीनस्थ विधान है । 'मन्त्रियो की शक्ति सम्बन्धी समिति ने प्रदत्त विधान की परिभाषा देत हुए कहा ह कि ' स्वय ससद द्वारा

---

1 Laski, *op cit*, p 214 डी एल हौविट के अनुमार 1800 ई के पूव 30 वार व्यवस्थापिका द्वारा विधि का प्रदत्तीकरण हुआ था ।

2 प्रदत्त विधान को अधीनस्थ (subordinate) विधान, द्वितीय (secondary) या विभागीय (departmental) या प्रशासकीय (administrative) विधि भी कहते हैं ।

प्रदत्त सांविधानिक सत्ता के अधीन लघु विधान शक्ति का अधीनस्थ अधिकारियों एवं निकायों द्वारा प्रयोग प्रदत्त विधान है।"[3] ब्रिटेन में 1890 ई० में 168 एवं 1913 ई० में 444 अधीनस्थ नियम एवं आदेश जारी किए गये थे। 1937 ई० के पश्चात प्रतिवर्ष 1500 से कम ऐसे नियमों का निर्माण नहीं हुआ है। 1945 ई० में इनकी संख्या 1706, 1951 ई० में 1166 तथा 1952 में 706 थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने 1011, विल्सन ने 1770, कूलिज ने 1428, हूवर ने 1424 एवं फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने 3711 प्रशासकीय आदेश जारी किये थे। अन्य देशों में भी प्रशासकीय आदेशों की संख्या इनसे अधिक ही होगी।[4]

प्रदत्त विधान का विकास

इसके विकास के निम्न कारण है

(1) विधानमण्डल के कार्यों में राज्य के कार्यक्षेत्र में वृद्धि के साथ साथ असाधारण वृद्धि हुई है। समयाभाव के कारण विधानमण्डल अपने इन बढ़े हुए दायित्वों को निभाने में प्रायः असमर्थ रहते हैं। अतः विधानमण्डलों द्वारा महत्वपूर्ण विधेयकों से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों की परिभाषा सम्बन्धित विधेयक में कर दी जाती है और उन सिद्धान्तों के अधीन विधि एवं नियम बनाने का दायित्व विभागीय कर्मचारियों को सौंप दिया जाता है। फाइनर का मत है कि कोई भी विधानमण्डल सभी प्रकार की आवश्यक विधियों से सम्बन्धित नियमादि का निर्माण वर्षपर्यन्त 24 घण्टे लगातार काम करके भी पूरा नहीं कर सकता।

(2) इसके अतिरिक्त अनेक विधियों का सम्बन्ध जटिल एवं तकनीकी मामलों से होता है, उदाहरणार्थ, मशीन, औषधि, पशु-चिकित्सा आदि। विधानमण्डलों के सदस्यों में इन विधियों के निर्माण के लिए अपेक्षित योग्यता का अभाव रहता है तथा इस सम्बन्ध में उन्हें प्राविधिक एवं वैज्ञानिक विशेषज्ञों के परामर्श एवं सहयोग की आवश्यकता होती है।

(3) विधानमण्डल के सत्र या अधिवेशन सदैव नहीं होते रहते जबकि विभिन्न सामाजिक समस्याएँ तीव्र गति से उत्पन्न होती रहती हैं। अतः उनके एवं अन्य संकटकालीन समस्याओं के समाधान हेतु एवं उन्हें दृष्टि में रखकर अवसर के अनुकूल आवश्यक विधि या नियम के निर्माण का अधिकार प्रशासकीय कर्मचारियों को प्रदान किया जाना चाहिए।

(4) फाइनर ने संयुक्त राज्य अमरिकी कांग्रेस का इस सन्दर्भ में उद्धरण देते

---

3 Delegated Legislation is defined 'as the exercise of minor legislative power by subordinate authorities and bodies in pursuance of statutory authority given by the Parliament itself. The committee on Ministers Power was appointed by British Lord Chancellor in 1929 to examine the question of delegated legislation.

4 Finer H. *The Theory and Practice of Modern Governments*, 1956, p. 523

हुए कहा है कि कुछ विषयो मे अमेरिकी कांग्रेस की दृष्टि अस्पष्ट होती है। उस यह स्पष्ट नही होता कि क्या करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक विषयो के सम्बन्ध म उनके महत्व के कारण कांग्रेस नियम बनाने का अधिकार कार्यपालिका को सौपने के लिए भी तैयार नही होती। फलस्वरूप अमेरिकी कांग्रेस न फाइनर के अनुसार प्रयोग के रूप मे विधि निर्माण का दायित्व आयोगो जैसे सघीय व्यापार आयोग और अन्त-राज्यीय व्यापार आयोग को सौप दिया है।[5]

सक्षप मे, ससद के पास समयाभाव, विधियो से सम्बन्धित विषयो की जटिलता एव प्राविधिकता, गम्भीर असम्भावित घटनाओ का घटित होना एव सम्भावना तथा विधि निर्माण मे सरलता की आवश्यकता ने 20वी सदी म प्रदत्त विधान को एक अनिवार्य आवश्यकता बना दिया है।

कोई प्रशासकीय नियम यदि सम्बन्धित मूल ससदीय अधिनियम की धाराओ के विपरीत होता है या प्रदत्त सत्ता का अतिक्रमण करता है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकते है, अन्यथा न्यायालयो को इन नियमो के सन्दर्भ मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही होता है और वे ससदीय विधि की भाति ही प्रभावकारी होते है।

विभिन्न देशो मे प्रदत्त विधान

ग्रेट ब्रिटेन

ब्रिटिश प्रदत्त विधान पर ससद का नियन्त्रण होता है। महत्वपूर्ण मामला सम्बन्धी विभागीय नियमादि तभी वैध माने जाते है जब कि ससद न उनको स्वीकृति प्रदान कर दी हो। मूल विधेयक म उल्लिखित रीति के अनुसार ससद की स्वीकृति हेतु एसे समस्त नियमादि को उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इनमे स कुछ विशिष्ट नियमो के सम्बन्ध म ससद की स्वीकृति अनिवार्यत आवश्यक होती है अन्यथा शेष समस्त नियमादि ससद के समक्ष एक निश्चित अवधि तक प्रस्तुत रहने के पश्चात स्वत विधि बन जाते हैं तथा ससदीय विधि की भाति ही प्रभावकारी होते है। कुछ नियम या आदेश एसे भी होते हैं जो ससद के समक्ष विचार एव स्वीकृति के लिए रख तो जाते हैं लेकिन ससद को उनके सम्बन्ध म कुछ करना नही पडता। कुछ कार्यपालक आदेशो को तो ससद म प्रस्तुत करने की भी आवश्यकता नही होती। सामान्यत ऐसे आदेशो को ससदीय सदन मे चालीस कार्यकारी दिनो तक विचार हेतु रखे रहना आवश्यक होता है। फाइनर के अनुसार सयुक्त राज्य अमरिका एव फ्रान्स मे प्रदत्त विधान पर ब्रिटेन की भाँति ससद का नियन्त्रण नही होता है।

प्रदत्त विधान का क्षेत्र व्यापक होता है और इनके अधीन प्राप्त शक्तियाँ भी व्यापक होती हैं। निस्सन्देह प्रदत्त विधानो म से कुछ केवल प्रपत्र, कागजात, जन-गणना एव सांख्यिकी से सम्बन्धित होते हैं। परन्तु शेष प्रदत्त या अधीन नियमो क

5 Finer, H *op cit*, p 524

द्वारा सम्बन्धित विधि का क्रियान्वयन निर्धारित किया जाता है एव उनके द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता या सम्पत्ति को नियन्त्रित किया जाता है। मानवीय क्रियाओ का शासन द्वारा जितना अधिक नियोजन किया जायगा उसी अनुपात मे कार्यपालिका की शक्ति मे भी वृद्धि स्वाभाविक होती है।[6] जब तक किसी प्रदत्त नियम का किन्ही विशेष आर्थिक या राजनीतिक हितो पर विपरीत प्रभाव नही पडता, ससद मे उन पर बहुधा कोई विचार नही किया जाता है। इसके कई कारण है। व्यक्तिगत रूप मे ससद के सदस्य इन नियमो एव आदेशो को चुनौती देने की क्षमता नही रखते और सदन के पास इनके हितार्थ न तो आवश्यक समय है और न ही वाछित रुचि। विभागो द्वारा ऐसे नियम बनाने के पूर्व अनिवार्यत सम्बन्धित पक्षो एव प्रतिनिधियो की परामर्शदायी समितियो से परामर्श एव विचार विमर्श किया जाता है। ऐसे नियमादि मे से केवल कुछ पर ही ससद मे विचार होता है जिन्हे कि न्यायालय द्वारा किसी विधि या सीमा के अतिक्रमण के कारण अवैध घोषित कर दिया जाता है। व्यक्तिगत विधयको से सम्बन्धित आदेशो के विरुद्ध जनता शिकायते कर सकती है। सार्वजनिक या शासकीय विधेयको के सम्बन्ध मे नीति या सिद्धान्त या मूल नियम के आधार पर जाच की आज्ञा दी जा सकती है। प्रशासकीय नियम या आदेश विभाग द्वारा निर्मित होते हैं। कभी कभी परामर्शदायी प्रतिनिधि सस्थाओ से इन नियमो के सम्बन्ध मे परामर्श भी लिया जाता है। बहुधा ऐसे नियमो को ससद के अधिवेशन की समाप्ति के समय शीघ्रता मे स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है। इन प्रदत्त विधियो पर वास्तविक जन प्रतिक्रिया तभी ज्ञात होती है जब कि वे न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिये जाते हैं परन्तु उस समय तक पर्याप्त खर्च हो चुकता है। परन्तु किसी नियम या आदेश के राजनीतिक औचित्य का परीक्षण कि व नियम जनता की स्वतन्त्रता को कहा तक प्रभावित करते है एव उनकी क्या उपयोगिता है, किसी न्यायालय द्वारा भी सम्भव नही है। मन्त्रियो की शक्ति सम्बन्धी समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह स्वीकार किया है कि मन्त्रियो को प्रदत्त शक्ति के निरीक्षण एव नियन्त्रण के लिए उपलब्ध शक्तियाँ अपर्याप्त हैं और इस बात का भय है कि कही सेवक स्वामी न बन जाय।[7]

1914-16 ई मे ब्रिटिश ससद द्वारा पारित सुरक्षा अधिनियमो ने मन्त्रियो को युद्ध सचालन के लिए सभी कुछ करने की शक्तिया प्रदान कर दी थी। एक ऐसे विधेयक[8] द्वारा मन्त्री को न केवल आदेश देने अपितु अन्य ऐसे समस्त कार्य करने का भी अधिकार प्रदान किया गया था जिसे वह आवश्यक एव उचित समझे। यही नही उसे विधेयक के प्रावधानो मे आवश्यकतानुसार सशोधन करने का भी अधिकार प्रदान किया गया था। 1931 ई की सकटकालीन स्थिति के निवारणार्थ ससद द्वारा पारित कुछ

6 Finer H *op cit* p 524
7 Committee of Ministers' Powers' Quoted by H Finer, p 525
8 The Rating and Valuation Act, 1925

विधियों की कमी को दूर करने के लिए सम्बन्धित मन्त्रियों को आदेश देने का अधिकार प्रदान किया गया था। 1932 ई में नगर-नियोजन अधिनियम[9] के अन्तर्गत ब्रिटिश स्वास्थ्य मन्त्री को स्थानीय अधिकारियों से परामर्श के पश्चात आवश्यक योजनाएँ बनाने का अधिकार दिया गया था। 1932 ई के कर-अधिनियमों के अधीन टरिफ बोर्ड (Tariff Board) को परिस्थितियों के अनुसार करों की दरें निर्धारित करने का अधिकार प्रदान किया गया था।

1929 ई में गठित 'मन्त्रियों की शक्ति सम्बन्धी समिति' ने अपने प्रतिवेदन में कामन्स सभा की एक स्थायी समिति के गठन की सिफारिश की थी। सभी प्रशासकीय आदेशों को विधि बनने से पूर्व इस समिति को प्रस्तावित किये जाने की व्यवस्था की गयी थी। समिति का यह भी दायित्व निर्धारित किया गया था कि किसी आदेश में यदि कोई कमी हो तो वह इस सम्बन्ध में सभा का ध्यान आकर्षित करे।

द्वितीय विश्व युद्धकाल में ग्रेट ब्रिटेन में प्रदत्त विधान में बड़ी वृद्धि हुई थी। इससे कामन्स सभा एवं अन्य सार्वजनिक नेताओं को बड़ी चिन्ता हुई। फलतः मई 1949 ई में विधिक नियमों एवं आदेशों सम्बन्धी एक प्रवर समिति का निर्माण किया गया। प्रत्येक सत्र में नवीन समिति गठित की जाती है।[10] इस समिति के द्वारा प्रत्येक विधिक आदेश या नियम का परीक्षण किया जाता है। समिति ऐसे नियमों की तरफ सदन का ध्यान आकर्षित करती है जिनके द्वारा (1) सार्वजनिक राजस्व पर अतिरिक्त कर-भार पड़ता हो, (2) न्यायालय के समक्ष सम्बन्धित मामलों को चुनौती न दी जा सके, (3) अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्ति का अनुचित एवं अस्वाभाविक उपयोग किया जाये एवं (4) अधिनियम में ऐसा उपबन्ध हो जो अनावश्यक विलम्ब के कारण प्रकाशित न किये गये हों, आदि।

इस समिति का कार्यभार अधिक है। इसने 1943-44 ई में 1473 नियमों एवं आदेशों में से 291 का परीक्षण किया था। 1944-45 ई में 168 तथा 1945 46 ई में 469 प्रशासकीय आदेशों का परीक्षण किया गया। 1946 47 ई में 1900 नियमों में से 795 का परीक्षण हुआ था जिनमें से केवल 6 आदेशों की तरफ सदन का ध्यान आकर्षित किया गया था।[11] इस समिति द्वारा लोकसभा के सदस्यों को आवश्यक पूछताछ हेतु अपने समक्ष बुलाया जाता है। समिति द्वारा कॉमन्स सभा को अपना प्रतिवेदन दिया जाता है। फाइनर का मत है कि समय बीतने के साथ साथ समिति के द्वारा अधिक उचित पद्धति एवं व्यवस्था की स्थापना की जायेगी एवं वह सब आवश्यक जानकारी उपलब्ध हो सकेगी जिससे संसद प्रदत्त विधान पर अधिक

---

9 The Town Planning Act, 1932.

10 लार्डसभा में 1925 ई में इसी प्रकार की एक समिति गठित की गयी थी।

11 Finer, H *op cit*, p 525

प्रभावकारी नियन्त्रण कर सके।[12] समिति के प्रतिवेदनो पर विचार करने के लिए ससद के पास आवश्यक समय का अभाव है। प्रतिदिन का काय समाप्त होने के बाद केवल आधे घण्ट का समय प्रदत्त विधान पर विचार करने के लिए सदस्यो को प्राप्त होता है। यह समय बहुत ही अपर्याप्त है।

फ्रांस

फ्रांस म दो प्रकार के प्रशासकीय नियम या आदेश प्रचलित ह (1) साधारण नियम (Simple Rules), एव (2) प्रशासकीय नियम (Rules of Public Administration)। प्रदत्त विधान का अन्य आधुनिक राज्यो की भाँति फ्रांस म भी तीव्र गति स विकास हुआ ह। तृतीय गणराज्य के अन्तगत साधारण प्रदत्त नियम जारी करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान किया गया था।[13] चतुथ गणराज्य के सविधान के द्वारा यह शक्ति प्रधानमन्त्री को प्रदान की गयी थी।[14] फाइनर की दृष्टि म यह परिवतन विशिष्ट महत्व का है।[15] प्रशासकीय नियमो का निर्माण मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है और काउन्सिल ऑफ स्टेट के समक्ष उन्ह चुनौती दी जा सकती है। फाइनर का कथन है कि तृतीय गणराज्य की सरकारो द्वारा विभिन्न मामलो म, विशेष कर वित्तीय मामलो मे इन नियमो का व्यापक प्रयोग किया गया था। तृतीय एव चतुथ गणराज्य की अस्थिर सरकारो के लिए उत्तरदायी, विद्रोही एव असहयोग करने वाली फ्रेंच ससद के कारण प्रदत्त विधान का उपयोग अनिवाय सा हो गया था।[16]

सयुक्त राज्य अमेरिका

सयुक्त राज्य अमेरिका म भी प्रदत्त विधान की वद्धि हुई ह। स्मरणीय है कि सयुक्त राज्य अमेरिका की शासन पद्धति का आधार शक्ति पृथक्करण है। इसका स्वाभाविक निष्कष यह है कि सिद्धान्तत सयुक्त राज्य म शक्तियो का प्रदत्तीकरण असम्भव है। विधि निर्माण की शक्ति सविधान द्वारा काग्रेस मे अधिष्ठित की गयी है अत किसी अन्य सस्था या निकाय को उसका प्रदत्तीकरण सवैधानिक दृष्टि स असम्भव होगा। लेकिन परिस्थितियो स बाध्य होकर इस सावैधानिक कठिनाई से बचने का प्रयास किया गया परन्तु उससे केवल छलपूर्वक ही बचा जा सका है। काग्रेस द्वारा अद्ध (quasi) विधि निर्माण शक्ति ही प्रदान की जाती है, न कि विधि निर्माण (legislative) शक्ति। अद्ध विधि निर्माण शक्ति एक काल्पनिक धारणा मात्र है। अमेरिकी

12 "As the time goes on, the Committee must assist the establishment of more rational procedures and create a corpus of knowledge enabling better control —Finer H *op cit*, p 525
13 Article 3 of the Constitutional Law of February 25, 1875
14 Article 47 of the Constitution of 1946
15 Finer, H *op cit* p 528
16 Finer H *op cit*, p 528

सर्वोच्च यायालय न भी इसे स्वीकार किया है। 1928 ई म एक मुकदमे मे सर्वोच्च यायालय द्वारा दिये गय निणय के अनुसार विधि निर्माण शक्ति का प्रदत्तीकरण निषिद्ध नही ह।[17] अमेरिकी यायालय प्रदत्तीकरण के विरुद्ध नही ह पर तु उ होने सत्ता के प्रदत्तीकरण को सीमित करने का प्रयत्न किया है। अमेरिकी यायालय की दृष्टि म सत्ता प्रदत्तीकरण तभी वैध माना जाना चाहिए जबकि उसकी सीमा निर्धारित कर दी गयी हो। उसे किसी भी अवस्था म अस्पष्ट नही होना चाहिए। यह मत एक उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो जाता है 1933 ई म राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुत्थान अधिनियम[18] की धारा 3 के अनुसार राष्ट्रपति को प्रतियोगिता से सम्ब धित उचित सहिता को स्वीकृत करने का अधिकार दिया गया था। सर्वोच्च यायालय ने इस प्रावधान को अवैध ठहराया। अपने निणय म सर्वोच्च यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अधिनियम के अ तगत राष्ट्रपति को जो सत्ता प्रदान की गयी है वह असीमित है, अत अवैध है।

सयुक्त राज्य अमरिका म प्रदत्त विधान पर ब्रिटिश पद्धति के विपरीत विधान-मण्डल की अपेक्षा यायालयो का अधिक निय त्रण है। प्रशासन द्वारा निर्मित नियमो की समीक्षा काग्रेस द्वारा नही की जाती है। सभी अधीनस्थ या प्रदत्त नियमा, आदेशो एव उपनियमो को यायालय म चुनौती दी जा सकती है। सामा यत यायालय निम्न आधारा पर प्रदत्त विधान का परीक्षण करते ह

(1) क्या प्रशासकीय नियम सम्ब धित मूल अधिनियम के अनुरूप हैं ?

(2) क्या मूल अधिनियम म प्रस्तावित रीति के अनुसार ही उनका निर्माण किया गया है ?

(3) क्या मूल अधिनियम वैधानिक है ? यदि मूल अधिनियम अवैधानिक है तो उस अधिनियम पर आधारित प्रशासकीय नियम उपनियम या आदेश स्वत ही अवैधानिक हो जाते है।

(4) क्या नियम या आदेश सवैधानिक अधिकारा का अतिक्रमण करता है ?[19]

हट क अनुसार अमरिकी यायालयो की दृष्टि म किसी प्रदत्त विधान की वधता की निम्न आवश्यकताए हैं

(1) शक्ति का प्रदत्तीकरण करन वाली विधि स्वय वैधानिक हानी चाहिए अर्थात उसे कांग्रेस के अधिकार क्षेत्र म होना चाहिए।

(2) प्रदत्तीकरण सीमित हाना चाहिए, अथात सत्ता के प्रदत्तीकरण का विषय एव क्षेत्र सुस्पष्ट होना चाहिए।

---

17 *Hampton and Co* vs *U S*, (S C) 1928

18 The National Industrial Recovery Act of 1933

19 Finer H *op cit*, p 526

(3) सत्ता का प्रदत्तीकरण सावजनिक अधिकारियो को होना चाहिए, न कि किसी व्यक्ति या व्यक्तिगत सस्था को।

(4) दण्ड निर्धारित करने की शक्ति का प्रदत्त नही किया जा सकता। प्रदत्त विधान के किसी नियम के उल्लघन के लिए जो दण्ड आवश्यक हो, कांग्रेस द्वारा स्वय उसको निधारित करना चाहिए।[20]

स्पष्ट है कि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदत्त विधान की धारणा को सविधान-सम्मत माना है। 1935 ई म दो मामलो म सर्वोच्च न्यायालय ने निश्चय ही कुछ प्रशासनिक विधियो को अवैधानिक घोषित किया था परन्तु तत्पश्चात आज तक किसी भी प्रशासनिक विधि को अवधानिक घोषित नही किया गया है।[21] सयुक्त राज्य अमेरिका म ब्रिटेन की भाँति प्रदत्त विधान से सम्बन्धित ससदीय समितियो की व्यवस्था नही होती है। ह्वीयरे के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका म इसके अतिरिक्त अन्य सावधानिया बरती जाती ह, जसे सत्ता के प्रदत्तीकरण सम्बन्धी विधि का ध्यानपूवक एव सजगतापूवक निर्माण, नियमो को लागू करने के पूव सम्बन्धित पक्षो की बातो को ध्यानपूवक सुनना एव न्यायालय द्वारा नियन्त्रण, जो सयुक्त राज्य अमेरिका म इगलण्ड की अपेक्षा कही अधिक व्यापक है।[22]

भारत

भारत म भी ग्रेट ब्रिटेन एव अमेरिका की भाँति व्यापक रूप म प्रशासकीय विधियो का निमाण किया जाता है। भारत एव ग्रेट ब्रिटन मे ससदीय प्रणाली है परन्तु भारतीय ससद ब्रिटिश ससद की भाति सम्प्रभु नही है फलत भारत मे ससदीय विधियाँ सवैधानिक विधि द्वारा मर्यादित हैं। यदि भारतीय ससद द्वारा निर्मित कोई विधि सविधान के किसी प्रावधान के विपरीत है तो उसे असवैधानिक घोषित किया जाना स्वाभाविक ह। निम्न तीन परिस्थितियो म भारत म प्रदत्त विधान को असवधानिक घोषित किया जा सकता है

(1) प्रत्यायोजन करन वाला अधिनियम अवैधानिक हो।

(2) प्रदत्त विधान सविधान का अतिक्रमण करता हो।

(3) प्रदत्त विधान अपने मूल विधान के उपबन्धो के प्रतिकूल हो।

अक्टूबर 1962 ई मे सकटकालीन स्थिति की घोषणा होने पर भारत म सुरक्षा नियमो (Defence of India Rules) को जारी किया गया था। इनके अधीन कायपालिका को विधि निर्माण की व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी ह। भारत म प्रदत्त

20 Hart *An Introduction to Administrative Law*, p 318 Quoted by Dr M P Sharma *Public Administration in Theory and Practice*, p 318
21 Wheare, K C *Legislatures, op cit* p 110
22 *Ibid* p 111

विधान से सम्बन्धित तीन महत्वपूर्ण मुकद्दमे सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार हेतु आये हैं। वे है क्रमशः दिल्ली विधि अधिनियम (1951) विवाद, हरीशंकर बागला बनाम मध्यप्रदेश राज्य (1954) एवं बसंतलाल वगैरह बनाम बम्बई राज्य (1961) विवाद। दिल्ली विधि अधिनियम (1951) से सम्बन्धित विवाद में न्यायाधीशों का सामान्य मत यह था कि विधि निर्माण कार्य की सारभूत या मूल बातें प्रदत्त या प्रत्या-जित (delegate) नहीं की जा सकती। यही प्रत्यायोजन की सीमा है। उपरोक्त तीनों विवादों में दिये गये निर्णयों का सार यह है कि व्यवस्थापिका सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए विधियों का निर्माण करती है और वह अपनी इच्छा के व्यक्तियों को अधीनस्थ शक्ति निर्धारित नीति के क्रियान्वयन के लिए सुविधाजनक समझती है, प्रत्याजित कर सकती है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि व्यव-स्थापिका किसी भी अवस्था में अपनी मूल विधि निर्माण सम्बन्धी शक्ति को प्रदत्त नहीं कर सकती। उसे स्वयं विधायी नीति एवं उसके सिद्धान्तों का निर्धारण करना चाहिए एवं उक्त नीति के क्रियान्वयन के लिए सत्ता प्रदत्त करने के पूर्व आवश्यक निर्देश भी निर्धारित करने चाहिए।[23]

प्रदत्त विधान पर संसदीय नियन्त्रण हेतु 1953 ई में एक समिति का निर्माण किया गया था। इसे अधीनस्थ विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation) की संज्ञा दी गयी है। इनकी स्थापना के पूर्व प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों (Rules of Procedures) के अन्तर्गत प्रदत्त विधान सम्बन्धी दो व्यवस्थाएँ—नियम 88 एवं 222—थी। नियम 88 के अनुसार जिस विधेयक में शक्ति के प्रत्यायोजन का प्रस्ताव किया जाता था उसमें प्रस्ताव के सामान्य एवं असामान्य स्वरूप एवं उसके क्षेत्र को परि-भाषित करने वाले एक स्मृति पत्र का होना आवश्यक होता था। नियम 222 के अनुसार संसदीय विधि प्रस्ताव के अधीन निर्मित सभी प्रशासकीय आदेशों के सदन के समक्ष रखने एवं उनके लागू होने के पूर्व उन्हें गजट में प्रकाशित करने की आवश्यकता होती थी।

उक्त समिति का मुख्य कार्य यह देखना है कि कार्यपालिका द्वारा निर्मित नियम एवं विनियम या आदेश प्रत्याजित करने वाली मूल विधि के अनुकूल है या नहीं। समिति द्वारा निम्न आधारों पर किसी प्रदत्त विधि का परीक्षण किया जाता है[24]

(1) प्रशासकीय नियम सम्बन्धित मूल विधि में उल्लिखित सामान्य उद्देश्यों के अनुकूल है या नहीं ?

(2) विषय-वस्तु की दृष्टि से प्रस्तावित नियम में वे सब बातें हैं या नहीं, जो किसी संसदीय अधिनियम में होनी चाहिए ?

(3) क्या प्रस्तावित नियम द्वारा कोई कर लगाया गया है ?

(4) क्या न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में प्रस्तावित प्रशासकीय विधि बाधक है ?

---

23 Delhi Laws Act etc AIR 151 S C 332

24 Avasthi and Maheshwari *Public Administration* 1971, p 449

(5) क्या प्रस्तावित नियम, किसी ऐसे मामले में जिसके सम्बन्ध में मूल अधिनियम अस्पष्ट है, पूर्वापेक्षी काल से ही प्रभावी किया गया है?

(6) सम्बन्धित व्यय क्या संचित निधि या लोक राजस्व पर भार है या उससे लिया गया है?

(7) क्या प्रस्तावित नियम द्वारा मूल विधेयक में प्रदत्त शक्तियों के अनुचित प्रयोग की आशंका है?

(8) क्या प्रशासकीय नियम के प्रकाशन एवं उसे संसद के समक्ष रखने में अनुचित विलम्ब किया गया है?

(9) क्या किसी कारण प्रस्तावित प्रदत्त विधि के स्वरूप या अभिप्राय के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है?

अधीनस्थ विधान समिति ने 1953 ई. से 1965 ई. तक अपनी 65 बैठकों में 8500 आदेशों की जाँच की है एवं 22 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये हैं। समिति के प्रभावपूर्ण कार्य की प्रशंसा मॉरिस जोन्स (Morris Jones) जैसे विद्वान ने की है। उसके अनुसार समिति ने अपने महत्वपूर्ण कार्य का प्रारम्भ योग्यता एवं क्षमता से किया है।

समिति ने संसदीय नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाने हेतु अनेक सुझाव दिये हैं जैसे राजपत्र में प्रकाशित होने के पश्चात् शीघ्र ही नियम सदन में विचार के हेतु रखा जाना चाहिए। सदन में प्रशासकीय विधियाँ अधिकतम 30 दिन तक रखी रहनी चाहिए एवं सदन को नियमों में संशोधन का पूर्ण अधिकार होना चाहिए।

समिति द्वारा प्रदत्त विधान सम्बन्धी कई व्यवस्थाओं की निन्दा की गयी है, उदाहरणार्थ उनके द्वारा न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र को सीमित करना, मूल अधिनियम के उपबन्धों का अतिक्रमण, अस्पष्ट शब्दावली एवं प्रशासकीय विधि को सदन में प्रस्तुत करने एवं उनके प्रकाशन में अनुचित विलम्ब। समिति की अनेक सिफारिशें स्वीकार की जा चुकी हैं।[25]

प्रदत्त विधान की आलोचना

प्रदत्त विधान की तीव्र आलोचना की गयी है। लॉर्ड हीवर्ट[26] ने ब्रिटेन के प्रदत्त विधान एवं प्रशासकीय न्यायालयों की 'नवीन निरंकुशतन्त्र' (*New Despotism*) नामक अपनी पुस्तक में तीव्र आलोचना की है। उन्होंने इन्हें 'गुप्त एवं घृणित षड्यन्त्र' कहकर पुकारा है। लार्ड हीवर्ट ने नौकरशाही की तीव्र आलोचना करते हुए कहा है कि अब वह उन शक्तियों का प्रयोग कर रही है जो अधिकांशतः संसद और न्यायपालिका के अधिकार-क्षेत्र में आती हैं। रैमजे म्योर[27] ने हीवर्ट के तर्कों को बड़ी ही बुद्धिमत्ता

25 Refer to Avasthi and Maheshwari *op cit* pp 450 451
26 They are 'dark and sinister conspiracies "—Lord Hewart
27 Refer to Ramsay Muir *How Britain is Governed* 1951 pp 45 49

पूर्वक समर्थन प्रदान किया है। 1931 ई में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान प्रो सी के एलन द्वारा प्रकाशित अपनी पुस्तक 'विजयी नौकरशाही' (*Bureaucracy Triumphant*) में प्रदत्त विधान की तीव्र आलोचना की गयी है।[8]

रैमजे म्योर के द्वारा प्रदत्त विधान की आलोचना के सन्दर्भ में व्यक्त निम्न विचार महत्वपूर्ण हैं ससदीय विधि के अधीन होने के कारण प्रदत्त विधान द्वारा प्राप्त अधिकारों पर कार्यपालिका का एकाधिकार होता है। फलत 'मन्त्री का निर्णय अन्तिम है', मूल ससदीय विधि में एसी ही व्यवस्था होती है। अत कोई न्यायालय हस्तक्षेप नही कर सकता। यह ठीक है कि विभागीय अधिकारियो द्वारा प्रदत्त विधान के अन्तर्गत प्राप्त व्यापक शक्ति का बडी सजगता से उपभोग किया जाता है परन्तु यह न्याय के स्थापित सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है कि बचाव का अवसर प्रदान किये बिना ही किसी को कठोर दण्ड दिया जाय। (प्रदत्त विधान द्वारा) नागरिको को न्यायालय में अपील के अधिकार से वचित कर दिया गया है, एसा कई प्रसिद्ध अधिकारियो का मत है।[29]

प्रदत्त विधान की आलोचना के प्रमुख आधार निम्न हैं

(1) प्रशासकीय अधिकारियो को विधि निर्माण की शक्ति देने के फलस्वरूप निरकुशता में वृद्धि की आशका है। लॉर्ड हीवर्ट का यह तर्क था कि प्राचीन काल में निरकुशता का अर्थ शासन की तीनो शक्तियो का केन्द्रीकरण हुआ करता था। जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु सवैधानिक व्यवस्था में इनका पृथक्करण किया गया है। प्रदत्त विधान एव प्रशासकीय न्याय की व्यवस्था के विकास एव वृद्धि ने शासन की शक्तियो का केन्द्रीकरण पुन कर दिया है एव निरकुशता को बल प्रदान किया है। प्रशासकीय अधिकारियो द्वारा प्रदत्त विधान के प्रयोग से नागरिक स्वतन्त्रता के अतिक्रमण की हर सम्भावना बढ गयी है।

(2) प्रदत्त विधान के विकास से विधानमण्डल के अपने दायित्वो के प्रति उदासीन हो जाने की सम्भावना है। वह केवल मुख्य सिद्धान्तो का ही अधिनियम में उल्लेख करके सन्तुष्ट हो जाती है।

(3) प्रत्येक प्रदत्त विधि का पूर्ण निरीक्षण और नियन्त्रण नितान्त कठिन है और इस बात की अधिक सम्भावना है कि उनके द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया जाय।

(4) प्रदत्त विधान के निर्माण में असगठित सामान्य जनता के विचारो का

---

28 साथ ही साथ देखिए सर सेसिल कार (Sir Cecil Carr) द्वारा जॉन इ कारसेल (John E Kersell) की पुस्तक *Parliamentary Supervision of Delegated Legislation* के लिए लिखित प्राक्कथन। इसमे प्रदत्त विधान की आलोचना का पूर्वाभास मिलता है।

29 Ramsay Muir *How Britain is Governed*, 1951, p 48

महत्त्व नही दिया जाता है । यह ठीक है कि सम्बन्धित प्रशासकीय निकायो से विधि निर्माण के समय परामर्श कर लिया जाता है लेकिन नियमो का सम्बन्ध तो जनता से होता है न कि प्रशासकीय एजेन्सियो से । विधानमण्डल जनता का प्रतिनिधित्व करता है अत उसके द्वारा निर्मित विधियो से ही जनता के हितो की रक्षा सम्भव है।

(5) प्रदत्त विधियो द्वारा न्यायपालिका की शक्तियो पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है । इसका यह अर्थ है कि नागरिको को शासन के अतिक्रमण से उन्हें अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के मूल अस्त्र से ही वचित कर दिया गया है ।

(6) अधिकारियो का दृष्टिकोण केवल प्रशासकीय अर्थात एकांगी होता है। अत प्रदत्त विधान द्वारा राजनीतिक दृष्टिकोण की उपेक्षा सुनिश्चित है।

(7) नमनीयता प्रदत्त विधान की एक प्रमुख विशेषता है । परन्तु यही उसकी सबसे बडी कमजोरी भी प्रमाणित हो सकती है । नियमो मे शीघ्र परिवर्तनो के कारण अराजकता एव अस्थिरता की अधिक सम्भावना हो सकती है । इसके अतिरिक्त प्रकाशन की उचित व्यवस्था के अभाव मे जनता प्रदत्त विधान के सन्दर्भ मे अनभिज्ञ भी हो सकती है।

उपयोगिता

उपरोक्त आलोचना के होते हुए भी यह स्वीकृत मत है कि प्रदत्त विधान की निश्चित उपयोगिता है। उसका अप्रत्यक्ष उल्लेख प्रदत्त विधान के विकास के कारणो के सन्दर्भ मे भी किया जा चुका है ।

(1) प्रदत्त विधान के फलस्वरूप विधानमण्डल अतिरिक्त कार्य भार से मुक्त हो जाते है एव उन्हे महत्वपूर्ण नीतियो सम्बन्धी प्रश्नो एव सामान्य सिद्धान्तो पर ध्यान केन्द्रित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है ।

(2) आधुनिक समाज से सम्बन्धित अनेक विधियो के सम्बन्ध मे आवश्यक तकनीकी एव बारीक तथ्यो के सम्बन्ध मे विधानमण्डल की अपेक्षा विशेषज्ञो द्वारा अधिक सुलझा हुआ परामर्श दिया जा सकता है ।

(3) विधि के क्रियान्वयन से प्रत्यक्षत अधिकारीगण सम्बन्धित होते हैं। अत किसी नीति एव विधि के क्रियान्वयन से उत्पन्न समस्याओ एव कठिनाइयो की विधानमण्डल द्वारा कल्पना भी नही की जा सकती और न उसका वाछित समाधान ही प्रस्तुत किया जा सकता है । अत नियम-निर्माण सम्बन्धी शक्ति प्रशासकीय अधिकारियो को प्रदान करना सर्वथा उचित है ।

(4) ससदीय विधियो की अपेक्षा प्रशासकीय नियमो को अनुभव से लाभ उठाते हुए अधिक सरलतापूर्वक पारित एव सशोधित करना सम्भव होता है ।

(5) प्रशासकीय नियम के निर्माण मे सम्बन्धित पक्षो से सरलता एव सुविधापूर्वक परामर्श किया जा सकता है ।

(6) युद्ध, महामारी, प्राकृतिक प्रकोप आदि जैसे सकट-काल मे सफलता के

लिए यह वाछनीय है कि कार्यपालिका को आवश्यक विधि-निर्माण की शक्ति प्रदान की जाय। नियोजन एव विकास-कार्यों सम्बन्धी नियमों का भी शीघ्रतापूर्वक निर्माण सम्भव होता है।

प्रदत्त विधान के दोषों के बावजूद भी यह स्वीकार्य है कि आधुनिक काल मे प्रशासन द्वारा नियमों का निर्माण आवश्यक एव अनिवार्य है। 'मन्त्रियों की शक्ति सम्बन्धी समिति' के अनुसार, "सत्य तो यह है कि यदि ससद अपनी विधि निर्माण शक्ति के प्रदत्तीकरण के लिए तैयार नही होती है तो वह आधुनिक जनमत के इच्छानुकूल आवश्यक एव व्यापक मात्रा म विधि निर्माण नही कर सकती।"[30] यह कथन ब्रिटेन की भांति अन्य देशों के स दर्भ म भी पूर्णत सत्य है। अत उपरोक्त समिति की दृष्टि मे "प्रदत्त विधान कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए निश्चित एव उचित सीमा और रक्षा-व्यवस्था के अधीन सवैधानिक दृष्टि से वाछनीय है।"[31]

प्रदत्त विधान के दोषों के निवारणार्थ प्रस्तावित उपाय निम्नलिखित है

(1) ससद द्वारा विधि निमाण शक्ति का प्रदत्तीकरण अस्पष्ट नही होना चाहिए अपितु क्षेत्र व शक्ति की सुनिश्चित सीमा होनी चाहिए जिससे कि आवश्यकता के अनुसार उनकी समीक्षा की जा सके एव नियन्त्रण रखा सके। ब्रिटेन म ससद सम्प्रभु है। अत प्रदत्त विधान पर वहा कोई न्यायिक नियन्त्रण नही है। सयुक्त राज्य अमरिका मे न्यायालयों द्वारा प्रदत्त विधान पर सीमा निर्धारित की गयी है। डोनोमूर (*Donongbmore*) समिति ने अपने प्रतिवेदन म कहा था कि ब्रिटिश ससद द्वारा विधि निर्माण की जो शक्ति प्रशासकीय अधिकारियों को प्रदान की जाती है उसकी स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित होनी चाहिए।[32] समिति का यह मत सभी देशों के सन्दर्भ मे सत्य है।

(2) ससद या विधानमण्डल को किन्ही सामान्य उद्देश्यों हेतु ही विधि निर्माण की शक्ति प्रशासन को प्रदान करनी चाहिए। असामान्य एव असाधारण उद्देश्यों जैसे, कराधान, सिद्धान्तों के सम्बन्ध म विधि निमाण, ससदीय विधि म सशोधन एव परिवद्धन या अपराधों की व्याख्या एव उनके लिए दण्ड प्रस्तावित करने के सम्बन्ध मे सामान्यत (ordinarily) विधि निर्माण शक्ति प्रदत्त नही की जानी चाहिए। जहाँ ऐसे मामलों म प्रशासन को विधि निमाण की शक्ति प्रदान की जाती है वहाँ अनिवार्यत उसका काल 1 या 2 वर्ष तक सीमित कर देना चाहिए एव ससद को विधिवत प्रदत्त विधियों को स्वीकृत करना चाहिए एव उनकी विशेष जाच की व्यवस्था करनी चाहिए।

---

30 The Committee on Ministers' Powers (Dononghmore Committee) Report, 1929, p 32

31 *Ibid*, p 31

32 *Ibid*, p 63

(3) प्रदत्त विधान को निर्माण के पूर्व एवं पश्चात् प्रकाशित किया जाना चाहिए एवं सम्बन्धित पक्षों से आवश्यक परामर्श की व्यवस्था होनी चाहिए। ब्रिटेन में 1893 ई. के नियम प्रकाशन अधिनियम के अधीन इन विधियों के पूर्व प्रकाशन की व्यवस्था थी। बाद में भी प्रदत्त विधान प्रकाशित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सभी संघीय नियम, अधिनियम एवं आदेश, संघीय पंजीकरण पुस्तिका अधिनियम, 1935 (Federal Register Act, 1935) के अधीन प्रकाशित किये जाते हैं। प्रदत्त विधि के पारित होने के पश्चात् प्रकाशन की व्यवस्था 1946 ई. के कांग्रेस के एक अन्य अधिनियम द्वारा की गयी है। भारत में इस सन्दर्भ में कोई संसदीय विधि नहीं है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सभी प्रदत्त विधानों की सार्वजनिक सुनवाई होती है परन्तु भारत एवं ब्रिटेन में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। केवल सम्बन्धित विशिष्ट पक्षों से ही परामर्श की व्यवस्था है।

(4) विधानमण्डल द्वारा प्रत्येक प्रदत्त विधान की संसदीय समीक्षा (parliamentary scrutiny) की जानी चाहिए। ब्रिटिश संसद निम्न तरीकों से प्रदत्त विधान की समीक्षा करती है। प्रत्येक मूल अधिनियम में सम्बन्धित प्रशासकीय नियमों की समीक्षा की विधि का उल्लेख होता है

(i) संसद के किसी निर्देश की आवश्यकता के अभाव में सम्बन्धित प्रदत्त नियम को संसद के विचारार्थ प्रस्तुत करने की व्यवस्था है।

(ii) संसद में विचारार्थ प्रस्तुत प्रशासकीय नियमों के सम्बन्ध में एक निश्चित अवधि के अन्दर दोनों में से किसी भी सदन में विपरीत प्रस्ताव द्वारा सम्बन्धित विधि की समाप्ति की माँग की जा सकती है।

(iii) प्रदत्त विधान के अन्तर्गत निर्मित नियमों को संसद के समक्ष दोनों सदनों या कामन्स सभा की स्पष्ट स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक होता है अन्यथा वे प्रभावकारी नहीं हो सकते। इसे ही सकारात्मक प्रस्ताव पद्धति (affirmative resolution procedure) कहते हैं।

(iv) प्रदत्त विधान का प्रारूप एक निश्चित समय तक संसद के समक्ष रखा रहना चाहिए।

यह देखा गया है कि ग्रेट ब्रिटेन में "सकारात्मक प्रस्ताव व्यवस्था" के अभाव में सकड़ों विधेयक संसदीय निरीक्षण के बिना ही पारित हो जाते हैं। सदस्यों को अत्यधिक कार्यभार एवं व्यस्तता के कारण उनकी समीक्षा का अवसर नहीं प्राप्त होता। अतः प्रशासकीय नियमों को सदन के समक्ष प्रस्तुत करने (laying before the parliament) की व्यवस्था केवल एक औपचारिकता बन चुकी है। फलतः 1944 ई. में प्रदत्त विधान सम्बन्धी एक प्रवर समिति की स्थापना की गयी।

ब्रिटिश संसद को प्रशासकीय नियमों को केवल स्वीकार या अस्वीकार करने

का अधिकार है। उस सशोधन की कोई शक्ति प्राप्त नही है। यदि किसी प्रदत्त विधि मे सशोधन करना आवश्यक होता है तो विधि निर्माण की प्रक्रिया का अनुगमन करना पडता है और ऐसी अवस्था म प्रदत्त विधान का कोई मूल्य नही रह जायेगा।

भारत म प्रदत्त विधान पर ससदीय नियन्त्रण एव समीक्षा ग्रेट ब्रिटेन की तुलना म अत्यधिक अविकसित अवस्था म है। अधिकाशत मूल ससदीय विधियो मे सम्बन्धित प्रशासकीय नियमो को ससद के समक्ष प्रस्तुत करने की कोई व्यवस्था नही होती है। जिन विधिया म ऐसी व्यवस्था होती भी ह तो उसके अनुसार एक निश्चित अवधि अर्थात् 14 दिन स 2 माह तक प्रशासकीय नियम ससद के समक्ष प्रस्तुत कर दिय जाते है। यदि इस अवधि म ससद इनम कोई सशोधन या परिवर्द्धन नही करती तो अवधि समाप्त होने के पश्चात वे प्रभावकारी हो जाते है। बहुत कम मामलो मे 'सकारात्मक प्रस्ताव की पद्धति' का अनुगमन किया जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका म प्रदत्त विधान पर नियन्त्रण का अधिकाश काय न्यायालया द्वारा किया जाता है। वहा काग्रस के समक्ष प्रस्तुत करने एव काग्रेस द्वारा समीक्षा की कोई व्यवस्था नही है। ग्रेट ब्रिटेन एव भारतीय ससदो की भाति अमेरिकी काग्रस की अपनी कोई प्रशासकीय विधि सम्ब धी समिति नही है अपितु काग्रस की विभिन्न समितिया ही यह काय करती है। काग्रेस प्रदत्त विधान को अप्रत्यक्ष रीति स ही नियन्त्रित करती है। Administrative Procedures Act, 1946 अमरिकी काग्रेस का इसी प्रकार का एक प्रयत्न है। राष्ट्रपति के पुनगठन सम्ब धी आदेशो के बारे म यह व्यवस्था है कि वे काग्रेस के समक्ष 60 दिन की अवधि तक के लिए प्रस्तुत किये जाने चाहिए। स्पष्ट है कि प्रशासकीय नियमो को अमेरिकी काँग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करना कोइ अनोखी बात नही है पर तु प्रशासकीय विधि पर इस व्यवस्था के कारण काग्रेस का प्रत्यक्ष नियन्त्रण बहुत ही कम है।

(5) न्यायालयो द्वारा प्रदत्त विधान की समीक्षा (judicial review) की जानी चाहिए। यह देखना न्यायालयो का काय है कि प्रशासकीय अधिकारी प्रदत्त शक्ति के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नही करता है। ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमेरिका मे न्यायालयो द्वारा प्रदत्त विधान को सामान्यत इसी आधार पर अवैधानिक घोपित किया जाता है। परन्तु दानो दशा म एक अन्तर है। ब्रिटेन म ससद को किसी भी प्रदत्त विधि का न्यायिक नियन्त्रण स मुक्त करन का पूण अधिकार है। लेकिन अमेरिकी काँग्रस को यह अधिकार प्राप्त नही है। भारत मे ग्रेट ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य की स्थिति है। ग्रेट ब्रिटेन म किसी प्रदत्त विधान की वैधानिकता के लिए केवल यह अपेक्षित है कि उसे मूल विधि के अनुकूल होना चाहिए। लेकिन भारत व सयुक्त राज्य अमेरिका म प्रदत्त विधान की वैधानिकता (intra vires) की दो कसौटिया ह (1) मूल विधान, एव (2) सविधान के अनुकूल होना। ब्रिटेन म मूल प्रदत्त विधान न्यायिक पुनर्रीक्षण के अन्तगत नही आता है अपितु उसके अधीन

निर्मित प्रशासकीय नियमो एव आदेशो की ही समीक्षा करने का अधिकार केवल न्याया लया को होता है। स्मरणीय है कि ससदीय समीक्षा एव न्यायिक निरीक्षण का उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारियो की स्वेच्छाचारिता को नियन्त्रित एव प्रतिबन्धित करना है।

प्रदत्त विधान के सिद्धान्त का शनै शनै विरोध कम हो रहा है तथा लोक तन्त्रीय पद्धति का यह एक आवश्यक अग बन गया है। प्रशासकीय व्यावहारिकता एव अनुभव ने उसकी आवश्यकता एव महत्व पर अधिकाधिक बल दिया है। हरबट मौरीसन[33] क अनुसार प्रदत्त विधान सिद्धान्तत ठीक है लेकिन ससद को हर अवस्था मे उस पर सजग दृष्टि रखनी चाहिए। लास्की ने भी प्रदत्त विधान की आलोचना का स्वीकार नही किया है। उनका मत है कि इस बात के साक्ष्य उपलब्ध नही है कि नियम निर्माण की जो शक्ति विभागो को प्रदान की गयी उसका उनके द्वारा दुरुपयोग किया गया है। प्रदत्त विधान के विकास का विरोध उसकी गम्भीर समीक्षा के फलस्वरूप निष्प्रभावी हो जाता है एव ससदीय नियन्त्रण होने के कारण प्रदत्त विधान सकारात्मक राज्य के हेतु अनिवार्यत एव मूलत एक पद्धतिमूलक व्यवस्था है।[34]

---

33 Herbert Morrison *Government and Parliament* 1954, p 151

34 The protest against the growth of the delegated legislation collapses as soon as it is submitted to serious scrutiny (and) that achieved, the system of delegated legislation is in fact, an elementary procedural convenience, essential to the positive state —Laski *Parliamentary Government in England*, 1952, pp 350 51

15

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण

[DIRECT LEGISLATION]

आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्यो मे विधि निर्माण का काय जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा सम्पादित किया जाता है। इसे प्रतिनिधि लोकतन्त्र कहते ह। राज्यो के विशाल क्षेत्रफल एव जनसख्या के कारण जनता द्वारा प्रत्यक्षत विधि निमाण सम्भव नही है। लेकिन कुछ देशो म 'प्रत्यक्ष लोकत न्त्र' के अवशेष आज भी विद्यमान हैं और वहा जनता प्रत्यक्षत विधि निर्माण से सम्बन्धित है। जनमत सग्रह (Referendum), अभिक्रम (Initiative)[1] एव प्रत्यावतन (Recall), ये तीन तरीके हैं जिनके द्वारा जनता स्वत विधि-निर्माण मे भाग लेती है। स्ट्राग के अनुसार इनके प्रयोग के द्वारा विधानमण्डल के कार्यो एव कुछ मामलो म विधायको के कायकाल को सीमित कर दिया गया ह। विधानमण्डल पर ये व्यवस्थाएँ जनता का प्रत्यक्ष नियन्त्रण ह। प्रत्यक्ष विधि निर्माण के दो आधार है—प्रथम सैद्धान्तिक तथा द्वितीय व्यावहारिक। सैद्धान्तिक आधार के अनुसार जनता सम्पूण शक्ति का स्रोत है अत उसे प्रत्यक्षत विधि निर्माण करना चाहिए। द्वितीयत व्यावहारिक अनुभव के अनुसार अनेक मामलो म विधान मण्डलो के कार्यो एव विधियो से तीव्र निराशा हुई है। विधानमण्डल के कार्यो की समीक्षा के अभाव एव उनके हस्तक्षेप के बिना विधि-निर्माण ने प्रत्यक्षत जनता द्वारा विधियो के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया है। अनक राज्यो म कठोर दलीय अनुशासन के कारण व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व पूणरूपेण नष्ट हो गया है। फाइनर के अनुसार प्रतिनिधित्व की कठिनाइयो के कारण अनेक बातो क साथ-साथ यह माग भी उठ खडी हुई कि ससदीय एव दलीय सरकारो की शक्तियो को जनता की प्रत्यक्ष काय-

---

1 'Referendum के लिए हिन्दी म जनमत सग्रह एव लोकमत सग्रह तथा 'Initiative' के लिए उपक्रम अभिक्रम एव प्रस्तावाधिकार शब्द प्रचलित हैं। लेखक ने इनके लिए क्रमश जनमत सग्रह एव अभिक्रम शब्दो का प्रयोग किया है।

2 Strong, C F *Modern Political Constitutions*, 1963, p 222

वाही के द्वारा यदि समाप्त नही तो कम अवश्य किया जाना चाहिए।[3] अत फाइनर के मतानुसार प्रत्यक्ष विधि निर्माण प्रतिनिधित्व की कठिनाई का परिणाम है।

जनमत सग्रह एव अभिक्रम प्रत्यावर्तन (Recall) की तुलना म अपेक्षाकृत एक नरम तरीका है। इसके अतिरिक्त नगर सभा (Town meeting) प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का एक अन्य तरीका है। नगर सभाएँ सयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू इगलण्ड म प्रचलित है। इनम सभी मतदाता एक साथ नगर अधिकारियो को चुनते है एव स्थानीय मामलो को निर्णीत करते है। स्विटजरलण्ड के कम जनसख्या वाले कैण्टनो म लैण्डसजीमिन्डे (Landsgemendı) की प्रथा है। इसम कण्टन की पूरी जनता शासन कार्य म वर्ष मे एक बार भाग लेती है, आवश्यक विधियो का निर्माण करती है एव पदाधिकारियो को चुनती है। यहा प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रचलित होने के कारण जनमत-सग्रह का व्यवहारत कोई मूल्य नही है।

प्रत्यक्ष विधि निर्माण के पक्ष मे निम्न तर्क प्रस्तुत किये जाते है

(1) जनता स्वय विधि बनाती है अत उसके जनहित विरोधी होने की कोई आशका नही है। प्रतिनिधि प्राय अपने व्यक्तिगत एव वर्गगत स्वार्थों के अधीन विधि निर्माण कर सकते है। प्रत्यक्ष विधि निर्माण म ऐसी कोई सम्भावना नही होती, न कोई विधि अल्पमत से पारित हो सकती है और न जनता पर कोई ऐसी विधि लादी ही जा सकती है जिसे वह नही चाहती हो।

(2) प्रत्यक्ष विधि निर्माण के फलस्वरूप जनता म राजनीतिक जागृति एव उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

(3) प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत राजनीतिक दलो का महत्व भी कम हो जाता है। अन्तिम निर्णय जनता के हाथो म होता है अत दलबन्दी व उससे उत्पन्न होने वाली बुराइया बहुत कम हो जाती हैं।

(4) जनता द्वारा विधि निर्माण के कारण किसी विधि के विरुद्ध आन्दोलन एव विद्रोह की प्राय कोई सम्भावना नही रहती है।

(5) स्वनिर्मित विधियो का जनता द्वारा अधिक ईमानदारी से पालन किया जाता है।

(6) शासन म भ्रष्टाचार भी कम हो जाता है।

स्ट्राग[4] क मतानुसार जनमत-सग्रह, अभिक्रम एव प्रत्यावर्तन (Recall) म निम्न गुण हैं

(1) भ्रष्ट एव जन आदेशो का उल्लघन करने वाले विधानमण्डल के दोषो को जनमत सग्रह द्वारा सुधारा जाता है।

---

3 Finer H *op cit* p 560
4 Strong C F *op cit*, pp 229 230

(2) निर्वाचका एव निर्वाचिता म अपेक्षाकृत स्वस्थ एव लाभदायक सम्ब ध स्थापित हो जाते है।

(3) जन भावना विरोधी विधि पारित नही हो पाती ह।

(4) अभिक्रम के द्वारा निर्वाचका का अपनी इच्छानुसार विधि निर्माणके प्रस्ताव स्वय प्रस्तावित करने के अवसर प्राप्त होत ह।

(5) प्रत्यावतन के अधिकार के प्रयोग से जनता द्वारा निर्वाचित भ्रष्ट एव अनुत्तरदायी अधिकारिया को वापस बुलाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

फाइनर[5] के अनुसार प्रत्यक्ष प्रणाली के गुणो का आधार आधुनिक ससदीय प्रणालियो के वास्तविक एव काल्पनिक दोष है।

(1) ससद की आ तरिक फूट एव कठिनाइया से उत्प न दोषा को प्रत्यक्ष विधि-निर्माण द्वारा दूर किया जाता है। विधानमण्डला म दलो एव समूहो म बहुधा अनुचित गठब धनो के फलस्वरूप सयोगवश मिश्रित दलो को बहुमत प्राप्त हो जाता ह। ऐसी स्थिति मे वाछित विधिया का निर्माण रुक जाता है या वगगत विधियाँ सहज ही सरलतापूवक निर्मित होन लगती ह। सक्षेप म अनेक अवसरा पर ससदीय दलीय व्यवस्था सामा य इच्छा को अभिव्यक्त करने म असफल रहती है। सामा य इच्छा को पुनर्जीवित करन का एकमात्र उपाय यही है कि प्रस्तावा को प्रत्यक्षत जनता क निणय के लिए प्रस्तुत किया जाय। उपरोक्त तक 1919 ई की जमन सविधान सभा मे पूणरूपेण परिलक्षित हुए थे।

(2) प्रत्यक्ष विधि निर्माण का उपयोग आस्ट्रेलिया के सविधान की भाति दोनो सदनो के मध्य उत्प न विवादा को हल करन के लिए भी किया जाता है।[6]

(3) समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को निष्क्रिय बनान वाले अच्छे या बुरे प्रभाव को दूर करने हेतु प्रत्यक्ष विधि निर्माण का प्रयोग किया जाता है।

(4) अनुदारवादिया का यह मत है कि सामा यत जनता अनुदार होती है अत प्रत्यक्ष विधि-निमाण उनकी दृष्टि मे प्रगतिशील न होकर अनुदार होता है। जनता द्वारा अधिकाशत प्रगतिशील विधेयको को स्वीकार नही किया जाता है।

जनमत सग्रह

प्रत्यक्ष विधि निर्माण के तरीको म जनमत सग्रह (Referendum) का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। जनमत सग्रह के माध्यम से जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधिया द्वारा प्रस्तावित अधिनियमा की उनके विधि बनन के पूव समीक्षा करती है तथा स्वय प्रत्यक्षत विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम के सम्ब ध मे अपना मत दती ह। जनता द्वारा किसी अधिनियम को स्वीकार किये जान पर ही वह विधि बनता है

5 Finer, H *op cit* p 560

6 चकोस्लोवाकिया एव लूथानिया म जनम्त सग्रह के द्वारा कायपालिका एव व्यवस्थापिका म उत्प न विवादो के सम्ब ध मे अ तिम निणय किया जाता है।

अन्यथा अधिनियम समाप्त हो जाता है। जनमत संग्रह के द्वारा फाइनर के शब्दों में, जनता को अपने ही निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित किसी अधिनियम के बारे में अन्तिम निर्णय का अधिकार प्राप्त हो जाता है।[7] अतः जनमत-संग्रह जनता के हाथों में निषेधाधिकार (veto) है जिससे विधानमण्डल के कार्यों को वह अस्वीकृत कर सकती है। स्ट्राग के अनुसार जनमत संग्रह को मत-संग्रह (Plebiscite) के नाम से भी जाना जाता है। इसका इतिहास अनुमानतः अधिक प्राचीन है। रोमन गणतन्त्रीय काल में 'Plebiscitum' से तात्पर्य प्लीब्स की समिति द्वारा पारित विधेयक से होता था। इससे आधुनिक फ्रेंच शब्द Plebiscite' का 'जनता से अपील करने सम्बन्धी' अर्थ स्पष्ट होता है। 'मत संग्रह' शब्द का प्रयोग कुछ समय से त्याग दिया गया है और उसके स्थान पर जनमत संग्रह का प्रयोग अधिक प्रचलित हो गया है। 'जनमत संग्रह' शब्द का प्रयोग नेपोलियन प्रथम एवं नेपोलियन तृतीय द्वारा भी किया गया था। जनमत-संग्रह के द्वारा ही 1848 ई में नेपोलियन तृतीय सर्वप्रथम राष्ट्रपति चुना गया था तथा 1851 ई में गणतन्त्र के विरुद्ध विद्रोह की स्वीकृति भी वह प्रच जनता से जनमत संग्रह के माध्यम से ही प्राप्त कर सका था। 1851 ई में गणतन्त्र का अन्त हो गया और द्वितीय साम्राज्य का 1852 ई में उदय हुआ। जनमत-संग्रह का इसी प्रकार का दुरुपयोग हिटलर ने जर्मनी में सत्ता में आने के लिए किया था। अपने राजनीतिक कार्यों के लिए उसने अनेक बार जनमत संग्रह कराये थे। नवम्बर 1933 ई में उसने जनमत-संग्रह द्वारा ही जर्मनी के राष्ट्र संघ की सदस्यता त्यागने पर जनता की स्वीकृति प्राप्त की थी। अप्रैल 1934 ई में हिटलर द्वारा प्रधानमन्त्री तथा राष्ट्रपति दोनों पदों को संयुक्त करने पर जनमत-संग्रह के माध्यम से ही जनता ने अपनी स्वीकृति दी थी। 1938 ई में जर्मनी एवं आस्ट्रिया के एकीकरण का जर्मन एवं आस्ट्रियन जनता ने जनमत संग्रह द्वारा ही समर्थन किया था।

इससे पूर्व 1859 ई में इटली के एकीकरण और 1905 ई में स्वीडन के नॉर्वे से पृथक होने पर जनमत संग्रह हुआ था। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात अनेक अवसरों पर जनमत-संग्रह का प्रयोग अनेक राष्ट्र जातियों के स्वभाग्य निर्णय (self determination) के हेतु किया गया। परन्तु जनमत संग्रह मूल उद्देश्य अर्थात अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान एवं लोकतन्त्र की रक्षा का मार्ग प्रशस्त न कर सका।

स्ट्राग ने उपर्युक्त सभी उदाहरण मत संग्रह (Plebiscite) के लिए दिये हैं। Plebiscite (मत-संग्रह) एवं Referendum (जनमत संग्रह) में लेखक के मतानुसार अन्तर है, यद्यपि इतिहास के एक युग में दोनों का समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयोग हुआ है। मत संग्रह (Plebiscite) का सम्बन्ध समाज की किसी विवादास्पद राजनीतिक समस्या से होता है और जनता उसके पक्ष या विपक्ष में मत देती है, जब कि जनमत-संग्रह (Referendum) के माध्यम से जनता विधानमण्डल द्वारा पारित विधि

7 Finer, H *op cit*, p 560

या सवैधानिक सशोधन को स्वीकृत या अस्वीकृत करती है। स्मरणीय है कि दोनो ही इस सिद्धान्त पर आधारित हैं कि जनता सम्प्रभु होती है।

अनेक सविधानो मे जनमत सग्रह की व्यवस्था है। इसका उपयोग जनता द्वारा सवैधानिक सशोधन और विधियो की स्वीकृति के लिए किया जाता है। जनमत सग्रह दो प्रकार का होता है अनिवाय एव वकल्पिक। यह भी सम्भव है कि कुछ मामलो मे अनिवाय (compulsory) तो दूसरो म वकल्पिक (optional) जनमत सग्रह की व्यवस्था हो। आस्ट्रेलिया, डेनमार्क, आयर, फ्रास, इटली स्विटजरलैण्ड एव सयुक्त राज्य अमेरिका, के अनेक राज्यो म तथा अत्यन्त व्यवस्थित रूप मे सवधानिक सशोधनो के सम्बन्ध म न्यूजीलैण्ड मे जनमत सग्रह की व्यवस्था है। आस्ट्रेलिया एव न्यूजीलण्ड म आधुनिक शताब्दी म जनमत सग्रह का बहुत कम प्रयोग किया गया है। 1947 ई क इटली के गणतन्त्रीय सविधान की धारा 75 द्वारा 5 लाख मतदाताओ या 5 क्षेत्रीय समितियो के माग किय जाने पर किसी भी विधि को पूण या आशिक रूप से अस्वीकृत करने के लिए जनमत सग्रह की व्यवस्था की गयी है। फ्रास के पाचवे गणतन्त्रीय सविधान (1958 ई) के अधीन अनेक प्रतिबन्धो सहित जनमत-सग्रह की व्यवस्था की गयी है। फ्रेंच सविधान म यह व्यवस्था है कि ससद के सत्रकाल म शासन या शासकीय पत्रिका मे प्रकाशित दोनो सदनो के सयुक्त प्रस्ताव के माध्यम से प्रस्ताव करने पर राष्ट्रपति किसी भी विधेयक पर जिसका शासकीय अधिकारियो के पुनगठन अथवा समाज के किसी सविधान विरोधी समझौते या सन्धि की स्वीकृति से सम्बन्ध हो, जनमत सग्रह ले सकता है।[8] सयुक्त राज्य अमेरिका म सघीय मामलो मे जनमत सग्रह की व्यवस्था नही है। लेकिन अनक राज्यो म आधुनिक काल मे जनमत-सग्रह अभिक्रम एव प्रत्यावतन को अपनाया गया है। ऑरेगन कोलोरेडो, केलीफोर्निया और मेसेच्यूसटस मे जनमत सग्रह की व्यवस्था है। 5 से 10 प्रतिशत मतदाताओ का किसी भी विधि के सन्दभ मे जनमत-सग्रह की माग करने का अधिकार है। विधानमण्डल जिन विधियो को आवश्यकीय घोषित कर देत है, उन पर स्विटजरलैण्ड की भाति जनमत सग्रह की आवश्यकता नही है।

अभिक्रम

अभिक्रम (Initiative) के अन्तगत जनता को अपनी इच्छा की विधियो विधानमण्डल से पारित करने की माग करने एव उन्ह प्रस्तावित करन का अवसर प्राप्त होता है। जनमत सग्रह जनता के हाथो मे यदि नकारात्मक अस्त्र है तो अभिक्रम सकारात्मक है। स्ट्राग की दृष्टि मे अभिक्रम जनमत सग्रह की तुलना मे अधिक विकसित कदम है। जनमत सग्रह विधानमण्डल के दोषो से जनता की रक्षा करता है तो अभिक्रम विधानमण्डल के भूल रूपी दोषो का उपचार है। अभिक्रम क पक्ष म

8 Strong C F *op cit*, 1963, pp 225 226

यह तक प्रस्तुत किया जाता है कि विधानमण्डल जनमत का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नही करते और जनमत सग्रह का सम्बन्ध केवल विधानमण्डल द्वारा पारित विधियो से होता है, अत विधानमण्डल द्वारा शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध जनमत-सग्रह पर्याप्त प्रतिभूति नही है। जनमत-सग्रह एव अभिक्रम दोनो साथ-साथ कार्य करते है। जनता द्वारा प्रस्तावित विधिया विधानमण्डल द्वारा पारित होने पर पुन जनता के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत की जाती हैं। स्टाग के अनुसार किसी भी देश म अभिक्रम का अस्तित्व जनमत सग्रह के बिना सम्भव ही नही है।[9]

स्विटजरलण्ड एव सयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यो म अभिक्रम की व्यवस्था है। जमन म वीमर सविधान एव इथोपिया के अन्तगत भी अभिक्रम की व्यवस्था थी। सयुक्त राज्य अमेरिका के 19 राज्यो मे विधि के सन्दर्भ म तथा 14 राज्यो मे सवधानिक सशोधनो के सम्बन्ध म अभिक्रम प्रचलित है। जमन के वीमर सविधान के अनुसार 1/10 मतदाताओ द्वारा किसी विधेयक को प्रस्तावित करन की मांग करने पर रीस्टाग मे उक्त विधेयक प्रस्तुत किया जाता था और यदि रीस्टाग विधेयक को पारित कर देता था तो वह विधि बन जाता था, परन्तु रीस्टाग द्वारा अधिनियम को अस्वीकृत किय जाने की अवस्था म उस पर जनमत सग्रह की अनिवाय व्यवस्था थी। इटली के गणतन्त्रीय सविधान म भी अभिक्रम सम्बन्धी ऐसी ही व्यवस्था है।

प्रत्यावर्तन

स्ट्राग[10] क अनुसार जन प्रतिनिधियो या निर्वाचित अधिकारियो को अपन पद से वापस बुलान अर्थात प्रत्यावतन की शक्ति या अधिकार कोई नवीन व्यवस्था नही है। प्रत्यावतन के अधीन भ्रष्ट, अयोग्य एव असक्षम जन प्रतिनिधियो एव निर्वाचित अधिकारियो को जनता निश्चित सख्या म हस्ताक्षर करके उन्हे उनके पद से च्युत करन या हटाने की शक्ति रखती है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति काल म फ्रेंच विधानमण्डल के अयोग्य सदस्यो को निर्वाचको द्वारा पदच्युत करने का प्रस्ताव रखा गया था परन्तु उनका यह प्रस्ताव स्वीकृत नही हुआ था। आधुनिक काल म सयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यो मे प्रत्यावतन पूण सफलता से प्रचलित है। प्रत्यावतन भी जनमत सग्रह एव अभिक्रम की भाति अधिकाशत पश्चिमी अमरिकी राज्यो म ही अधिक प्रचलित है। कुछ राज्यो म प्रत्यावतन की व्यवस्था विधानमण्डल एव कायपालिका के सदस्यो के अतिरिक्त न्यायाधीशो के सन्दर्भ म भी प्रचलित है। कोलोरेडो राज्य म तो न्यायाधीशो क द्वारा दिय गये निणयो के सन्दभ म भी इसका प्रयोग होता है। स्ट्राग क अनुसार किसी भी अन्य देश म प्रत्यावतन का इतना व्यापक प्रयोग नही किया गया है। सोवियत रूस क गणराज्य के मूल सविधान म इसकी व्यवस्था होते हुए भी

9 Strong C F *op cit*, p 227
10 *Ibid*, pp 228-229

सोवियत मघ क स्टालिन सविधान (1936 ई) म इसको स्थान नही दिया गया है। स्विटजरलैण्ड के सात केण्टना म जनता को निर्धारित बहुमत से केण्टना के विधान-मण्डलो के विघटन एव पुनर्निर्वाचन की माग विधानमण्डल के काय-काल के मध्य मे ही करने का अधिकार है।[11]

प्रत्यावतन के अधिकार स निस्मदेह मतदाताआ को कुछ अधिकार प्राप्त हो जात है। लेकिन इस अधिकार के अधीन राजनीतिक पडयन्त्र की भी काफी गुजाइश रहती है। चुनावा म पराजित प्रतिनिधि अपने विरोधी को अपदस्थ करने के लिए आवश्यक सख्या म मतदाताआ के हस्ताक्षर कराकर प्रत्यावतन के लिए आवश्यक आवेदन पत्र दिलवाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

स्विट्जरलैण्ड मे जनमत सग्रह एव अभिक्रम[1]

स्विट्जरलण्ड प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का देश है। स्विस राजनीतिक व्यवस्था की यह सर्वाधिक महत्वपूण विशेषता है। जनमत-सग्रह एव अभिक्रम का सबसे अधिक सफलतापूवक प्रयोग स्विटजरलैण्ड म ही हुआ है। इनके माध्यम से जनता विधि निमाण म प्रत्यक्षत भाग लेने म समथ हुइ है और इसी कारण स्विस जनता का तृतीय सदन कहा जाता है।

जनमत सग्रह

स्विटजरलण्ड मे जनमत-सग्रह दा प्रकार का है—अनिवाय, एव वकल्पिक।[13] स्विस सघीय सविधान मे सशोधन के लिए अनिवाय जनमत सग्रह की व्यवस्था है। 1921 ई के सवैधानिक सशोधन के अधीन अनिश्चित काल या 15 वप से अधिक समय के लिए की गयी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धिया क सम्बन्ध मे यदि 30 हजार नागरिको एव 8 केण्टना द्वारा जनमत सग्रह की माग की जाती है ता जनमत-सग्रह आवश्यक होता है। केण्टना के सभी सवधानिक सशोधनो के सन्दम म अनिवायत जनमत सग्रह की व्यवस्था है। 8 केण्टनो म साधारण विधि के सम्बन्ध म भी अनिवाय जनमत सग्रह की व्यवस्था है, परन्तु 6 केण्टना म सामान्य विधिया के सन्दभ म वकल्पिक जनमत सग्रह का विधान है। 16 केण्टनो म प्रशासन एव वित्त सम्बन्धी मामला म ही जनमत सग्रह आवश्यक होता है। एक केण्टन म जनमत सग्रह की कोई व्यवस्था नही है। स्विस सघीय सविधान के अन्तगत वकल्पिक जनमत सग्रह की माग 30 हजार मतदाताओ या 8 केण्टनो द्वारा किसी विधि के पारित होने के 90 दिन के भीतर की जा सकती है। वैकल्पिक जनमत-सग्रह की माग सम्भवत सकट-कालीन या अस्थायी प्रकृति की विधियो क सम्बन्ध म की जाती है यद्यपि सभी प्रकार

11 Strong C F *op cit*, p 229
12 इसके अतिरिक्त देखिए अध्याय 3।
13 स्ट्राग ने वकल्पिक (optional) जनमत सग्रह के लिए Faculative' शब्द का भी प्रयोग किया है।—Strong, C F *op cit*, p 226

की विधियों के सम्बन्ध में जनमत सग्रह की माग करने का अधिकार जनता को प्राप्त है। अत जनमत-सग्रह सामान्य प्रकृति की विधियों के सम्बन्ध में ही हो सकता है। वार्षिक बजट, प्रशासकीय प्रकृति के निर्णयों एव सन्धियों के सम्बन्ध में जनमत-सग्रह नही लिया जा सकता। सघीय विधानमण्डल जिन विधियों को आवश्यकीय (urgent) घोषित कर देता है उन पर भी जनमत-सग्रह नहीं होता है। अधिकाश कण्टनों में अस्थायी प्रकृति की विधियाँ जनमत सग्रह के लिए प्रचारित नही की जाती हैं। कुछ केण्टनों में जनमत सग्रह में अनिवार्य मतदान का विधान है, जो मतदाता मतदान नही करता उसे दण्डित किया जाता है। सवैधानिक सशोधन सम्बन्धी जनमत-सग्रह में केन्टनों एव मतदाताओं दोनों का ही बहुमत आवश्यक होता है लेकिन साधारण विधियों के सम्बन्ध में किसी एक का अर्थात केण्टनों या मतदाताओं का निषेध सम्बन्धित विधि को रद्द करने के लिए पर्याप्त होता है।

अभिक्रम

अभिक्रम (Initiative) भी दो प्रकार का होता है—निर्मित (Formulated), एव अनिर्मित (Unformulated)। निर्मित अभिक्रम के अन्तगत जनता विधि का प्रारूप बनाकर विधानमण्डल की स्वीकृति के लिए प्रेषित करती है। ऐसी दशा में विधानमण्डल का यह दायित्व होता है कि वह उसे मूल रूप में पारित करे। अनिर्मित उपक्रम के अधीन जनता विधि के सामान्य सिद्धान्तों एव उद्देश्यों का उल्लेख मात्र करके विधानमण्डल से तत्सम्बन्धी विधि बनाने की माँग करती है एव विधानमण्डल का यह कर्तव्य है कि वह उन सिद्धान्तो के आधार पर एव उद्देश्यों के अनुरूप विधि का निर्माण करे तथा विचार विमर्श के पश्चात उसे पारित करे।

स्विटजरलण्ड के सघीय सविधान में अभिक्रम का प्रयोग सवैधानिक विधि के लिए ही किया जाता है। 50 हजार स्विस नागरिक सघीय सविधान के पूर्ण सशोधन की माग कर सकते है। आशिक सवैधानिक सशोधन के सम्बन्ध मे निर्मित एव अनिर्मित अभिक्रम की व्यवस्था है। पूर्ण एव आशिक सवैधानिक सशोधनों को जनता एव केण्टनों के स्पष्ट बहुमत से स्वीकृत होना आवश्यक होता है। केण्टनों में दोनों, सवैधानिक एव साधारण विधियो, के सन्दर्भ में अभिक्रम की व्यवस्था है। नागरिको की निर्धारित सख्या द्वारा केण्टनों के सविधान के पूर्ण या आशिक सशोधन की माग की जा सकती है। जेनेवा (Geneva) का केण्टन इसका अपवाद है। वहाँ प्रति 15 वर्ष बाद सविधान में अनिवार्यत सशोधन होता है। तीन कण्टनो को छोडकर शेष सभी केण्टनों में नागरिकों की निश्चित सख्या को निर्मित या अनिर्मित रूप में नवीन विधियों का प्रस्ताव करने का अधिकार प्राप्त है। प्रस्तावित निर्मित अधिनियम जनता के समक्ष मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तावित अनिर्मित विधि के सन्दर्भ में विधानमण्डल मत सग्रह के माध्यम से पहले ही जनता की इस सन्दर्भ में अनुमति प्राप्त कर लेता है कि प्रस्तावित सिद्धान्तों के आधार पर विधि का निर्माण किया जाय या

नही । जनता द्वारा स्वीकृति देने पर विधि का निमाण कर एव उस पारित करके विधानमण्डल उस पर पुन जनमत सग्रह लेता है और जनता द्वारा इस वार भी स्वीकृत किय जान पर वह विधि वन जाता है ।

समीक्षा—सामान्यत जनमत सग्रह एव अभिक्रम की व्यवस्था साथ-साथ होती है परन्तु यह अनिवाय नही है । एक-दूसर से पृथक भी इनका अस्तित्व होता है । स्विटजरलण्ड इसका प्रमाण है । वहाँ इनका प्रारम्भ एक साथ ही समस्त केण्टना म नही हुआ है । गाल (Gall) नामक कण्टन म 1931 ई म, वले (Bale) म 1832 ई म, वालेस (Valais) म 1839 ई म एव लूसरने (Lucerne) म 1841 ई म जनमत-सग्रह प्रारम्भ हुआ था । अधिकाश केण्टना का जनमत-सग्रह की व्यवस्था को स्वीकार करने म करीव 30 वष का समय लगा था । 1848 ई एव 1874 ई के सविधाना म सवधानिक विधिया के लिए अनिवाय जनमत सग्रह की व्यवस्था थी परन्तु सामान्य विधियो के लिए वकल्पिक जनमत सग्रह का प्रारम्भ 1874 ई म हुआ था ।

जनमत-सग्रह एव अभिक्रम म आधारभूत अन्तर है । जनता विधानमण्डल की विधिया पर जनमत-सग्रह द्वारा निषेधाधिकार का प्रयोग करती है । इसके विप रीत, अभिक्रम के माध्यम से जनता को अपनी इच्छा की विधियो को प्रस्तावित करने के अवसर प्राप्त हो जात हैं । अत जनमत सग्रह एक ढाल की तरह है जिसके द्वारा जनता विधानमण्डल द्वारा निर्मित अवाछनीय विधिया से अपनी रक्षा करती है और अभिक्रम एक खडग की भाति है जिसस वह अपने विचारो एव आवश्यकताओ के अनुकूल विधिया के निर्माण के लिए माग प्रशस्त करने म सफल होती है ।

प्रत्यक्ष विधान की प्रणाली स्विटजरलैण्ड म असाधारण रूप से सफल रही है और जनमत सग्रह तथा अभिक्रम स्विस राजनीतिक व्यवस्था के स्थायी अग बन गये है । इसक मुख्य कारण निम्नलिखित है

(1) स्विस जनता का दीघकालीन स्वशासन का अनुभव उत्कृष्ट देशभक्ति एव सामाजिक एकता की भावना तथा सावजनिक दायित्व के प्रति अनुराग इसके मुख्य कारण हैं । लॉड ब्राइस क अनुसार स्विटजरलैण्ड प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के लिए उवर भूमि है । "पौधो की भाति सस्थाएँ भी उपयुक्त भूमि एव सूय के प्रकाश म ही फलती फूलती है । उरी मे लण्डसजीमिन्डे लोकप्रिय है । ज्यूरिख म जनमत सग्रह का प्रचलन है । दोना को ही यदि मिस्र (Egypt) म रोपा जाय तो क्या वे सफल हो सकेंगे ? निश्चय ही नही ।"[14] ब्राइस का यह कथन स्विटजरलण्ड एव प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के सन्दभ मे पूणत सत्य है । दूसरे देशा म प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की असफलता का मुख्य कारण यह है कि वहा का वातावरण इन सस्थाओ के विकास की दृष्टि से सवथा भिन्न है अर्थात

14 In Switzerland it is a natural growth racy of the soil There are institutions which, like plants flourish only on their own hillside and under their own sunshine' —Bryce *Modern Democracies* Vol I 1929, pp 453 454

सामान्य वातावरण एव भूमि इस प्रकार की सस्थाओ के विकास क लिए उपयुक्त नही है ।

(2) स्विस नागरिक स्वतन्त्रता प्रिय हैं । व स्वतन्त्रतापूवक मतदान करत हैं उनमे भावनाओ का उद्रेक नही होता । व विवक को प्रमुखता देत हैं । काल्पनिक हान की अपेक्षा वे विवेकशील अधिक ह । अधिकाशत य शिक्षित हात हैं । फलत प्रचार एव भावनाओ का वे सरलतापूवक शिकार नही हात । ब्राइस की दृष्टि म स्विटजरलण्ड म प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता के लिए उनका स्वशासन म दीघकालीन अनुभव, सामाजिक समानता एव देशभक्ति और सावजनिक कतव्य की भावना उत्तरदायी है ।[15]

स्विस जनता न जनमत सग्रह एव अभिक्रम का अत्यन्त बुद्धिमानी स प्रयोग किया है । 1848 ई स 1967 ई तक सघीय सविधान के सशोधन के लिए 96 वार जनमत सग्रह हुए हैं जिनम 54 सशोधन जनता क द्वारा स्वीकार किय गय हैं। स्पष्ट है कि विधायका की अपक्षा स्विस जनता अधिक अनुदार प्रमाणित हुई है। सामान्यत जनता ने जटिल एव व्यापक विधियो को अस्वीकार किया है ।

प्रत्यक्ष विधान के सम्बन्ध म स्ट्राग का निष्कष यह है कि राजनीतिक सस्थाओ का स्थायित्व एव उनकी उपयोगिता उस समाज की स्थिति पर निभर करती है जिसस उनका सम्बन्ध होता है । यह महत्वपूण है कि सस्थाओ को सचालित करने वाली जनता की क्षमता से उनको अग्रिम (advance) नही होना चाहिए ।[16]

---

15 'The success has been attained in Switzerland by the method of direct legislation due to 'the long practice of self government in small communities to social equality and to the pervading spirit of patriotism and sense of public duty of Swiss people '— Bryce *op cit* p 453

16 Strong, C F *op cit*, p 231

16

ससदीय विशेषाधिकार

[PARLIAMENTARY PRIVILEGES]

ससदीय विशेषाधिकार से तात्पय विधानमण्डलो एव उनके सदस्यो और समि तियो के विशेषाधिकारो से है । **सर इर्स्किन** ने ब्रिटिश ससद के सन्दभ मे विशेपा धिकार की निम्नवत व्याख्या की है

"ससदीय विशेषाधिकार उन विचित्र अधिकारो का योग है जिनका ससद रूपी उच्च यायालय के अभिन्न अग के रूप मे दोना सदन सामूहिक रूप से और दोनो सदना के सदस्यगण व्यक्तिगत रूप स उपभाग करते है और जिनके अभाव मे उनके द्वारा *अपने कतव्या को सम्पादित नही किया जा सकता तथा जो अन्य निकायो एव* व्यक्तियो द्वारा प्राप्त अधिकारो से अधिक होत है । अत विशेषाधिकार विधि का अग होते हुए भी एक निश्चित सीमा तक सामान्य विधि से विमुक्त होते है ।"[1]

कीथ के अनुसार ब्रिटिश कॉमन्स सभा के विशेषाधिकार उन शक्तियो एव अधिकारो का प्रतिनिधित्व करत है जो प्रारम्भ म किसी सभा के द्वारा अपने एव अपने सदस्यो के रक्षाथ आवश्यक माने गये थे ।[2] सदन के विशेषाधिकारो एव कार्यो मे स्पष्ट अन्तर होता है । विशेषाधिकार का प्रयोग इर्स्किन की दृष्टि म प्रत्येक सदन

1 Parliamentary privileges is the sum of the peculiar rights employed by each house collectively as a constituent part of High Court of Parliament and by members of each house indivi dually without which they could not discharge their functions and which exceed those possessed by other bodies and indivi duals Thus privilege, though part of the law of the land, is to a certain extent an exemption from ordinary law —Sir Thomas Erskine May *Treatise on the Law Privileges Proceedings and Usages of Parliament* 18th edn, 1971, edited by Sir Barnett Cocks, p 64

2 Keith *Constitutional Law*, 7th edn, 1946 p 68

के उन मूल अधिकारो की रक्षा हेतु आवश्यक होता है जो सामान्यत उसके संवैधानिक कार्यों को सम्पादित करने हेतु आवश्यक माने जाते हैं।[3] उदाहरणार्थ, कभी-कभी कॉमन्स की वित्तीय शक्तियों को जो उसे क्राउन एवं लार्डसभा के सदन में प्राप्त हैं वित्तीय विशेषाधिकार कहा जाता है। किसी वित्तीय शक्ति हेतु विशेषाधिकार या संवैधानिक शक्ति का प्रयोग सम्बन्धित शक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। ईस्किन के शब्दों में, 'विशेषाधिकार का प्रधान गुण उसका अधीनस्थ स्वरूप है। संसदीय विशेषाधिकार वे अधिकार हैं जो संसद की शक्तियों के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक होते हैं।" संसद के सदस्यगण उनका उपयोग इसलिए करते हैं कि संसद अपने सदस्यों की अहर्निश सेवा के अभाव में अपने कार्यों को सम्पादित करने में असफल रहता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदन अपने सदस्यों एवं उनकी सत्ता एवं सम्मान के रक्षार्थ उनका उपयोग करता है।[4] अत संसदीय विशेषाधिकार स्वयं अपने में साध्य नहीं है अपितु संसदीय कार्यों की पूर्ति हेतु एक आवश्यक एवं वाञ्छनीय साधन है।

इन विशेषाधिकारों का जब किसी व्यक्ति या अधिकारी द्वारा अतिक्रमण या उपेक्षा की जाती है तो वह विशेषाधिकारों का हनन माना जाता है एवं दण्डनीय अपराध होता है। प्रत्येक सदन को ऐसे सभी कार्यों के लिए दण्ड देने का अधिकार होता है जो विशेषाधिकार का हनन न होते हुए भी संसद की विधि के अन्तर्गत संसद की सत्ता एवं सम्मान के विरुद्ध अपराध होते हैं, जैसे—संसदीय आदेशों की उपेक्षा या संसद एवं उसके सदस्यों पर दोषारोपण आदि। ईस्किन के अनुसार, "ऐसे कार्य यद्यपि विशेषाधिकार का हनन कहे जाते है परन्तु वास्तव में वे मानहानि (contempt) सम्बन्धी कार्य होते हैं।"[5]

प्रत्येक विधानमण्डल के लिए इस प्रकार की शक्तियाँ अपने कार्यों एवं दायित्वों के सम्पादन के लिए आवश्यक होती हैं। उनके अभाव में विधानमण्डलों में अनुशासन कायम रखना कठिन हो जाता है। संसद के कार्यों, विशेषाधिकारों एवं अनुशासनात्मक शक्तियों में घनिष्ठ सम्बन्ध होते है। अत विशेषाधिकार संसद के कार्यों एवं अनुशासनात्मक शक्तियों के आवश्यक पूरक के रूप में है।[6]

ईस्किन मे के अनुसार कुछ अधिकार एवं विमुक्तियाँ (immunities) जैसे बन्दी न बनाये जाने एवं भाषण की स्वतन्त्रता कुछ ऐसे अधिकार हैं जो प्राथमिक रूप

---

3 Erskine May *Parliamentary Practices op cit*, p 64

4 उपरोक्त, पृ 64

5 उपरोक्त, पृ 65

6 ' Such powers are essential to the authority of every legislature The functions the privileges and disciplinary powers of a legis lative body are thus necessary complement of the function and the disciplinary powers of the privileges "—Erskine May *op cit* p 64

सम्बन्ध म ससद सदस्या का पूण अधिकार प्राप्त हैं। गम्भीर अपराध ही सम्भवत इसका अपवाद हो सकता है।

(2) ससद सदस्या को प्राप्त कुछ व्यक्तिगत विशेषाधिकार। इनम सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषाधिकार यह है कि सदन के सत्रकाल एव सदन क अधिवशन क 40 दिन पूव स एव पश्चात तक सदन क सदस्या को बन्दी न बनाय जान का स्वतन्त्रता तथा उन्ह सदन म वाद विवाद की पूण स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

(3) सदन की मानहानि सम्बन्धी निणया का क्रियान्वित करन की शक्ति या विशेषाधिकार। एसी अवस्था म सदन अपन सदस्या को या अन्य किसी भी व्यक्ति को सदन की मानहानि या विशेषाधिकार के हनन के लिए दण्डित कर सकता है। इसका प्रमाण मिडिलसक्स क शेरिफ का विवाद (Case of the Sheriff of Middlesex) प्रमाण है।

इर्स्किन मे के अनुसार विशेषाधिकारा के हनन को हम निम्न चार श्रेणिया म विभाजित कर सकते हैं[9]

(1) किसी सदन के सामान्य ससदीय आदेशा या नियमा का उल्लघन।

(2) विशिष्ट आदेशा या नियमा का उल्लघन।

(3) ससदीय काय पद्धति की निन्दा करना।

(4) ससद सदस्या पर आक्रमण करना या उनको अपमानित करना या उनक चरित्र पर तथा ससद म उनके आचरण पर अनुचित आक्षेप लगाना या ससद के अधिकारिया के कतव्य सम्पादन म हस्तक्षेप करना।

कुछ प्रमुख ससदीय विशेषाधिकारा की समीक्षा निम्नवत है

ससदीय विशेषाधिकारो म भाषण की स्वतन्त्रता का विशेष महत्व है। सर इर्स्किन मे के अनुसार भाषण की स्वतन्त्रता प्रत्येक स्वतन्त्र परिषद या विधानमण्डल का आवश्यक विशेषाधिकार है। 11 दिसम्बर 1667 ई के कॉमन्ससभा क सम्मेलन म इस सिद्धान्त की वाक्षित समीक्षा निम्न शब्दा मे हुई थी[10]

"इसम किसी को कोई सन्देह नही हो सकता कि एक बार जो पारित कर दिया जाता है वह विधि सम्मत होता है सदस्या को यहाँ अपने घरा की भाति ही स्वतन्त्र होना चाहिए। ससदीय विधि राज्य को नष्ट नही कर सकती।" विधि के पारित होने के पूव उस पर वाद विवाद अपेक्षित है। फलत वाद विवाद राज्य के लिए परेशानी का कारण नही हो सकता।

इसके पूव 1621 ई मे ही कॉमन्स ने भाषण की स्वतन्त्रता को एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया था। इस प्रस्ताव के अनुसार ससद या उसके कार्यों तथा ससद मे

9 Erskine May quoted by Maitland in *The Constitutional History of England*, Cambridge 1941, p 379

10 Erskine May *op cit* p 70

भावना, विचार, तक एव वाद विवाद की स्वय सदन द्वारा अभियोग को छोडकर सदस्यो को अभियोग एव व दी वनाये जाने से पूण स्वत त्रता प्राप्त होगी । 1688 ई की क्रान्ति के पश्चात भाषण की स्वत त्रता विषयक विशेषाधिकार का सावैधिक मा यता प्राप्त हो गयी थी । अधिकारपत्र (Bill of Rights) की नवी धारा म यह स्पष्टत घोषित कर दिया गया था कि ससद म भाषण की पूण स्वत त्रता होगी एव किसी भी यायालय या ससद के बाहर किसी भी स्थान पर ससद म वाद-विवाद या कार्य के लिए कोई अभियोग नही लगाया जा सकेगा और न ही इस [illegible] पूछताछ की जा सकेगी । मे के अनुसार उपरोक्त धारा क अ तगत प्रत्येक [illegible] कार्यों की वधानिकता का अ तिम निर्णायक है और अपन सदस्या का [illegible] के लिए दण्ड देन का अधिकारी है ।[11]

ग्रेट ब्रिटन म आज स्थिति यह है कि ससदीय नियमों के [illegible] को सदन म अपन विचार स्वत त्रतापूवक व्यक्त करन का अधिकार है, [illegible] विचार किसी व्यक्ति या व्यक्तिया के लिए हानिप्रद या [illegible] करने वाले हो । प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार की [illegible] ससदीय सदस्या द्वारा इस अधिकार के दुरुपयोग की [illegible] निर्माण के लिए इस प्रकार की स्वत त्रता वाछनीय ह । [illegible] किया है ।[18] लेकिन इसका यह अथ नही है कि [illegible] अतर्गत ब्रिटिश ससदीय सदस्या को अनाप [illegible] । सर विलियम एन्सन के अनुसार भले ही यह [illegible] स्वत त्रता है पर तु इस स्वत त्रता का [illegible] स्वत त्रता से नही है । "सदन अपन सदस्या [illegible] की नि दा करके, सदन के कार्यों का [illegible] सित करके उन पर निय त्रण करता है । [illegible] नाम का अनुचित एव सम्मानहीन [illegible] या व्यक्तिगत सदस्य के प्रति [illegible] अपराध है जिनके बारे म [illegible]

आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग करने के अपराध में काफी सदस्यों को दण्ड दिये गये हैं। अनेक सदस्यों को प्रताडना, कारावास एवं कामन्स सभा से निष्कासन का दण्ड दिया गया है। सर इर्स्किन का कथन है कि कामन्स सभा के अनुशासन सम्बन्धी विशेषाधिकारों को सदन व अध्यक्ष के आदेशों से सम्पुष्ट किया गया है।[14]

भाषण की स्वतन्त्रता के विशेषाधिकार की रक्षार्थ (1) प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह कोई कार्य उस विशेषाधिकार के विपरीत न करे जिसका वह उपभोग करता है। उसे किसी बाह्य व्यक्ति या संस्था या निकाय के साथ ऐसे कोई अनुबन्ध नहीं करने चाहिए जिनसे संसद सदस्यों की पूर्ण या आंशिक स्वतन्त्रता नियन्त्रित होती हो। उसका ऐसा हर अनुबन्ध या कार्य संसदीय कार्य एवं दायित्व के विपरीत माना जाता है। (2) कामन्स सभा की बैठकें गुप्त होनी चाहिए और उसमें बाहर के किसी सदस्य की उपस्थित नहीं होना चाहिए। यदि कोई बाह्य व्यक्ति कामन्स सभा के अधिवेशन में उपस्थित रहता है तो उसे बन्दी बनाया जा सकता है। (3) अपनी कार्यवाही के प्रकाशन पर कॉमन्स सभा को प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है। गलत एवं असत्य वाद विवाद का प्रकाशन विशेषाधिकार का हनन माना जाता है एवं सदन को ऐसे अपराध के लिए दण्ड देने का अधिकार है। (4) संसद के दोनों सदनों के आदेश से प्रकाशित पत्रों के सम्बन्ध में न्यायालयों के हस्तक्षेप से विधिक संरक्षण प्रदान किया गया है। यदि कोई सदस्य अपना कोई ऐसा भाषण प्रकाशित करता है जो संसदीय वाद विवाद का अंश नहीं है तो वह भाषण की स्वतन्त्रता के विशेषाधिकार के अन्तर्गत रक्षा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है और वह सामान्य विधि के अन्तर्गत किसी भी आपत्तिजनक भाषा के प्रयोग के लिए न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। (5) भाषण की स्वतन्त्रता का विशेषाधिकार उन सभी गवाहों, आवेदकों व अभिभावकों को भी उनकी कथनी एवं करनी के लिए प्राप्त होता है जो वे सदन या समिति में कहते व करते हैं एवं इन विचारों के लिए उन्हें न्यायालयों में उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। (6) किसी भी सदस्य को सदन में व्यक्त विचारों के लिए चाहे वे कितने ही अपराधी प्रकृति के क्यों न हों, सामान्य अदालत में उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। किसी सदस्य द्वारा यदि सदन में कोई फौजदारी अपराध किया जाता है तो सदन को उस सम्बन्ध में कार्यवाही करने का पूर्ण अधिकार होता है। लेकिन इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत मत नहीं है। सर इर्स्किन मे के अनुसार कामन्स सभा के फौजदारी कार्यों की क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विधिक स्थिति स्पष्ट नहीं है।[15] इसके विपरीत, न्यायाधीश स्टीफेन का यह सुस्पष्ट मत था कि कॉमन्स सभा में किये गये किसी भी साधारण अपराध के लिए सामान्य न्यायालयों में मुकदमा नहीं चल सकता है।[16] सर

14 Erskine May *op cit*, p 72
15 Erskine May *op cit* p 87
16 *Bradlaugh* v *Gossett*, 1884 12 Q B D 271, cited by Erskine *op cit* p 87

विलियम एन्सन[17] भी जस्टिम स्टीफेन के मत को स्वीकार करत हैं। परन्तु मैटलैण्ड का कथन है कि यदि कॉमन्स या लाड सभा का कोई सदस्य चोरी करता है तो उसे सामान्य रीति से सामान्य न्यायालयो द्वारा ही दण्डित किया जाना चाहिए।[18]

ब्रिटिश ससद के अन्य विशेपाधिकार निम्नवत हैं

(1) बन्दी न बनाये जाने की स्वतन्त्रता (Freedom from Arrest)[19]—कामन्स सभा के सदस्यो को दीवानी कार्यों या मुकदमो के लिए ससद के सत्रकाल म या ससद का अधिवेशन प्रारम्भ होने या समाप्त होने के 40 दिन के पूव या पश्चात बन्दी नही बनाया जा सकता। इस विशेपाधिकार का उद्देश्य ससद सदस्यो को विना किसी विघ्न बाधा के अपने ससदीय दायित्व को सम्पादित करने के अवसर प्रदान करना है। ससद सदस्य का प्रमुख कतव्य ससदीय दायित्व का सम्पादन होना है। इस विशेपाधिकार का उल्लघन दण्डनीय अपराध है लेकिन फौजदारी अपराधो या निवारक निरोध के अधीन ससद सदस्यो को नजरबन्दी किया जा सकता है। अत इन मामलो म सदस्यो को यह विशेपाधिकार प्राप्त नही है। यदि किसी सदस्य को किसी फौजदारी काण्ड म बन्दी बनाया जाता है तो उसकी सूचना अनिवायत सदन के अध्यक्ष को दी जानी चाहिए।

(ii) ससदीय विशेपाधिकारो के हनन एव मानहानि सम्बन्धी कार्यों की सूची पर्याप्त लम्बी है।[20] सामान्यत किसी सदन के सम्पादन मे बाधा डालना किसी सदस्य या सदन के अधिकारो एव कतव्य-सम्पादन म प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बाधा उत्पन्न करना या वे सभी कार्य जिनके उपरान्त परिणाम हो सकते हैं मानहानि (contempt) समझे जाते है। सदन या उसकी किसी समिति मे अपमानजनक आचरण को मानहानि माना जाता है।

(iii) कॉमन्स सभा का दण्ड सम्बन्धी क्षेत्राधिकार (Penal Jurisdiction of House of Commons)[21] के अधीन ससद के दोनो सदनो को अपने सदस्यो को या अन्य व्यक्तियो को सदन या उसके बाहर अशिष्ट आचरणो या अपराधो के लिए दण्डित करने का अधिकार है। सर इस्किन मे ने मानहानि के लिए दण्डित करने की ससद की इस शक्ति को ससदीय विशेपाधिकार का आधार स्तम्भ की सज्ञा प्रदान की है। ब्रिटिश न्यायाधीशो न ससद की मानहानि के लिए स्वतन्त्र रूप मे दण्ड दन के अधिकार को स्वीकार किया है। उदाहरणाथ, मिडिलसेक्स के शैरिफ (Sheriff of Middlesex)

17 Anson *op cit*, p 186
18 Maitland *op cit*, p 321
19 Erskine May *op cit*, Ch VII, pp 89 103
20 *Ibid*, p 104
21 Erskine May *op cit*, Ch IX, p 112
22 Erskine May *op cit*, p 113

के मामले में मुख्य न्यायाधीश ने निर्णय देते हुए कहा था कि 'प्रतिनिधि निकायों को स्वतः अपने साधनों से अपनी सत्ता का बचाव करना चाहिए।'[23] मुख्य न्यायाधीश एलनबरो की दृष्टि में कामन्स की मानहानि एवं विशेषाधिकारों के हनन के लिए दण्ड देने की क्षमता को चुनौती नहीं दी जा सकती। स्वरक्षा एवं बचाव की शक्ति कामन्स के हाथों में होनी चाहिए।[24] छोटे एवं हल्के अपराधों के लिए अपराधी की प्रताडना एवं भर्त्सना की जाती है। सदस्यों की मानहानि के अपराध में सदन से निष्कासन या अल्पकाल के लिए निलम्बन का दण्ड दिया जाता है।

संसदीय विशेषाधिकारों के क्षेत्राधिकार के प्रश्न को लेकर ब्रिटिश न्यायालयों एवं संसद में समय समय पर संघर्ष होते रहे हैं। लेकिन विगत 100 वर्षों से ब्रिटिश न्यायालय एवं ब्रिटिश संसद में इस सम्बन्ध में एक कामचलाऊ समझदारी का विकास हुआ है। फिर भी अन्तिम रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इस समस्या का समाधान हो चुका है। आज स्थिति यह है कि ब्रिटिश न्यायालय संसदीय मानहानि के सम्बन्ध में कामन्स सभा के निर्णय को पूर्णरूपेण स्वीकार करते हैं।

सदन के विशेषाधिकार के हनन या मानहानि के आरोपों के सम्बन्ध में कामन्स सभा या लार्डसभा के अध्यक्ष द्वारा प्रारम्भिक जाँच की जाती है। यदि इस जाँच के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि विशेषाधिकार का हनन या अतिक्रमण हुआ है या सदन की मानहानि हुई है तो मामला सदन या विशेषाधिकार समिति के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता है। अपराधी को अपने बचाव का समुचित अवसर प्रदान किया जाता है।

लार्डसभा के विशेषाधिकार निम्न हैं: दीवानी मामलों में बन्दी न बनाये जाने की स्वतन्त्रता, वाद-विवाद की स्वतन्त्रता, सम्राट से व्यक्तिगत रूप से मिलने की स्वतन्त्रता एवं मानहानि के लिए दण्ड देने का अधिकार। जिस प्रकार कामन्स के स्पीकर द्वारा विशेषाधिकार की विधिवत माँग की जाती है उसी प्रकार लार्डसभा द्वारा उनकी विधिवत माँग नहीं की जाती है, अपितु वे स्वतन्त्र रूप से लॉर्डसभा को प्राप्त हैं।

स्टब्स के अनुसार लार्डसभा के व्यक्तिगत सदस्यों के विशेषाधिकार कॉमन्स सभा के व्यक्तिगत सदस्यों के विशेषाधिकारों से पृथक होते हैं, दोनों को ही संसदीय सदस्य के रूप में समान विशेषाधिकार प्राप्त हैं, लेकिन लार्डसभा के सदस्यों को पीयरों के रूप में कामन्स सभा के सदस्यों से सर्वथा पृथक विशिष्ट विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं।[25] पीयर के रूप में उपलब्ध विशेषाधिकार संसदीय विशेषाधिकार से भिन्न है। पीयर

23 *The Case of the Sheriff of Middlesex*, 1840, see Keir and Lawson *op cit*, p 142

24 *Burdett vs Abbot*, 1811

25 Stubbs quoted by Erskine *op cit*, p 64

के विशेपाधिकार सभी पीयरो को उपलब्ध होते ह, भले ही वे लाडसभा के सदस्य न हो। इसकी सीमा एव क्षेत्र स्पष्ट नही हैं।[6]

दोना सदनो को विशेपाधिकारो के प्रशासन म समान अधिकार प्राप्त ह। दोना सदनो द्वारा पृथक रूप स स्वतन्त्रतापूवक इनका उपभोग किया जाता है। कुछ विशेपाधिकार ब्रिटिश ससद की विधियो एव परम्पराओ (Customs) पर आधारित हैं। कुछ परम्पराआ की ससदीय विधि द्वारा व्याख्या की गयी है।[27] कोई एक सदन नवीन विशेपाधिकार का सृजन नही कर सकता।[8] 1966 ई म कॉमन्स सभा म ससदीय विशेपाधिकारा की समीक्षा के लिए एक प्रवर समिति की स्थापना की गयी थी। समिति न 1967 ई मे प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन म विशेपाधिकारो के क्षेत्र एव मानहानि विपयक कुछ नवीन सिफारिश की थी लेकिन इन पर तत्काल कोई निणय नही लिया जा सका।[29]

भारत मे ससदीय विशेपाधिकार

भारतीय सविधान के अनुच्छेद 105 एव 194 के अन्तगत ससदीय विशेपाधिकारो का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 105 का सम्बन्ध ससद, उसके सदस्यो एव समितिया से है तथा अनुच्छेद 194 राज्य विधानमण्डल, उसके सदस्यो एव समितिया के विशेपाधिकारा से सम्बन्धित है। भारतीय ससद सदस्यो को सविधान के उपबन्धो एव ससद की कायपद्धति से सम्बन्धित नियमा एव स्थायी आदेशा के अधीन भापण की स्वतन्त्रता प्राप्त है। ससद या उसकी समिति मे व्यक्त विचारो एव मतदान के लिए या ससद के किसी सदन के अधिकारानुसार प्रस्तुत किसी ज्ञापन पत्र, मत या कायवाही के प्रकाशन के लिए किसी सदस्य को किसी न्यायालय मे उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता।[30] विशेपाधिकार निधारित करने का अधिकार भारतीय ससद को सविधान के द्वारा प्रदत्त है। जब तक भारतीय ससद इस सम्बन्ध मे किसी विधि का निर्माण नही करती उस समय तक भारतीय ससद के भी वही विशेपाधिकार होगे जिनका उपभोग ब्रिटिश ससद की कॉमन्स सभा एव उसके सदस्य तथा समितियो द्वारा किया जाता है।[31] सविधान के अनुसार उपरोक्त सभी अधिकार उन सभी व्यक्तिया को भी ससदीय सदस्या की भाति ही प्राप्त होगे जिन्हे कि सविधान के अधीन सदन मे भापण का

26 Erskine May *op cit*, p 68
27 *Ibid*, p 66
28 *Ibid* p 69
29 *Ibid*, p 69
30 अनुच्छेद 105 (1) व (2)
31 अनुच्छेद 105 (3)

अधिकार प्राप्त होगा या जो सदन या किसी समिति की कायवाही म भाग लग। अनुच्छेद 194 के अन्तगत उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ राज्य विधानमण्डल को भी प्रदान की गयी हैं। भारत म विशेषाधिकारा को विधिवत् सहितावद्ध नही किया गया है, फलत विभिन्न अवसरो पर अनेक विवाद खडे होते रहे हैं।

भारत म विधानमण्डल के सदस्या की भाषण की स्वतन्त्रता पर सविधान क विभिन्न उपबन्धो एव सदन की कायपद्धति सम्बन्धी नियमा के प्रतिवन्ध हैं। उदाहरण के लिए, सामाजिक महत्व सम्बन्धी प्रस्ताव को लोकसभा म उपस्थित करने क लिए कायपद्धति के निम्न नियमो की पूर्ति आवश्यक है [32]

(1) प्रस्ताव की भाषा स्पष्ट एव सुगठित होनी चाहिए।

(2) प्रस्ताव को एक ही प्रश्न से सम्बन्धित होना चाहिए।

(3) प्रस्ताव म तर्को, निष्कर्षों, व्यगात्मक सम्बोधनो, आरोपा एव निन्दाजनक वाक्या का प्रयोग नही होना चाहिए।

(4) प्रस्ताव मे व्यक्तियो के पद एव सावजनिक आचरण सम्बन्धी तथा चरित्र के अतिरिक्त अन्य किसी आचरण एव चरित्र का उल्लेख नही होना चाहिए।

(5) प्रस्ताव मे ऐसे किसी मामले का उल्लेख नही होना चाहिए जो न्यायालय म विचाराधीन हो।

स्पीकर द्वारा स्वीकृत होन पर प्रस्ताव पर लोकसभा म विचार-विमश हो सकता है परन्तु स्पीकर को किसी प्रस्ताव को विचार हेतु स्वीकृत करने के पूव उपरोक्त बातो के अतिरिक्त निम्न बातो का भी ध्यान रखना चाहिए [33]

(1) प्रस्ताव का सम्बन्ध निकट भूत म घटित किसी घटना से ही होना चाहिए।

(2) यदि किसी मामले पर किसी सत्र म पहले विचार हो चुका हा तो उसपर पुन विचार नही हो सकता।

(3) ऐसे मामलो पर भी विचार नही किया जाना चाहिए जिन पर भविष्य म विचार होने वाला हो।

इसके अतिरिक्त लोकसभा की कायपद्धति सम्बन्धी कुछ सामान्य नियम भी होते है। इन नियमा क अनुसार किसी सदस्य को भाषण देते समय ऐसे किसी मामले का उल्लेख नही करना चाहिए जो न्यायालय के विचाराधीन हो, न अन्य किसी सदस्य पर व्यक्तिगत आक्षेप करना चाहिए और न ही ससद की कायवाही के विरुद्ध आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग करना चाहिए। राष्ट्रपति के नाम का भी उपयोग नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सदस्यो को अपने भाषणो मे राजद्रोहात्मक एव षड्यन्त्रकारी तथा

32 Refer *Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha*, Ch XIII, 5th edn, 1957

33 *Ibid*, Ch XIV

निन्दात्मक शब्दो का प्रयोग नही करना चाहिए। भाषण के अधिकार का प्रयोग किसी भी सदस्य द्वारा सदन की कार्यवाही को स्थगित करने के लिए नही करना चाहिए।[34] लोकसभा के अध्यक्ष का आपत्तिजनक आचरण के लिए सदस्यगणों को शेष दिन के लिए निष्कासित करने का अधिकार प्राप्त है।[35] अध्यक्ष की आज्ञा का उल्लघन करने वाले सदस्य को वह नामांकित कर सकता है, जिसका अर्थ यह है उस सदस्य को उस सत्र के शेपकाल के लिए निष्कासित किया जाता है।[36]

ब्रिटिश ससद की भाति भाषण की स्वतन्त्रता की धारणा भारत मे भी पूरी तरह मान्य है। सचलाइट (पटना) के मुकदमे मे सर्वोच्च न्यायालय ने यही मत प्रतिपादित किया है। इस मुकदमे मे यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि अलोकतन्त्रीय काल मे मान्य ब्रिटिश ससदीय विशेपाधिकारो को भारतीय ससद या राज्य विधानमण्डलो के सन्दर्भ मे लागू नही किया जाना चाहिए क्योकि यहाँ की परिस्थितियाँ ब्रिटेन से भिन्न है। न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा था कि हमारे सविधान ने स्पष्ट रूप मे ससद या राज्य विधानमण्डलो से सम्बन्धित शक्तियो, विशेपाधिकारो एव उन्मुक्तियो की व्याख्या की है। सविधान के क्रियान्वयन के पश्चात उन्हे वे सब शक्तियाँ विशेपाधिकार एव उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं जो कॉमन्स सभा को प्राप्त है। कॉमन्स सभा जब इनका उपभोग करती हो तो उस समय इन्हे भारतीय ससद को प्रदान न करने का अर्थ सविधान का पुनर्निर्माण होगा, न कि उसकी व्याख्या करना।[37]

अन्य विशेपाधिकार जैसे बन्दी न बनाये जाने की स्वतन्त्रता एव मानहानि तथा विशेपाधिकारो के हनन पर दण्ड देने का अधिकार भी भारतीय ससद एव विधानमण्डलो को ब्रिटिश ससद की भाँति पूर्णरूपेण प्राप्त है। ब्रिटिश कॉमन्स सभा की भाति भारतीय लोकसभा ने भी विशेपाधिकारो के हनन तथा सदन की मानहानि के लिए अनेक अवसरो पर सदस्यो एव बाहरी व्यक्तियो को दण्डित किया है। उदाहरण के लिए, सितम्बर 1951 ई मे श्री मुदगल को विशेपाधिकार समिति द्वारा दोषी ठहराये जाने पर सदन से निष्कासित कर दिया गया था। ससद सदस्य श्री देशपाण्डे को निवारक निरोध अधिनियम के अधीन 1952 ई मे बन्दी बनाया गया था। विशेपाधिकार समिति का यह मत था कि निवारक निरोध अधिनियम के अधीन नजरबन्दी से सदस्य के विशेपाधिकार का हनन नही होता है। एक अन्य मामला टाइम्स आफ इण्डिया पत्र से सम्बन्धित है। इस पत्र ने एक सम्पादकीय प्रकाशित किया था। विशेपाधिकार समिति ने इस सम्पादकीय लेख के लिए समाचार पत्र एव सम्पादक को सदन

34 *Ibid*, Ch XXVII
35 *Ibid*, Rule 373
36 *Ibid*, Rule 374
37 *Pandit M S M Sharma* vs *Shri Krishna Sinha and others* S C J, Vol XVII, p 940

कि ब्रिटिश कॉमन्स सभा की तुलना मे अधिकाश राष्टमण्डलीय देशो म विधायका को आलोचना विषयक अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है ।

सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस द्वारा मानहानि के लिए दण्ड देने की शक्ति का समय-समय पर प्रयोग किया गया है । प्रतिनिधि सदन इस शक्ति का उपभोग जाच समितिया विशेष कर अमेरिका विरोधी कार्यों से सम्बन्धित समिति—The Committee on un American Activities—के माध्यम से करता है । लेकिन मानहानि के लिए काग्रेस द्वारा दण्ड तीव्र विवाद का विषय बन गया है । मानहानि के लिए दण्ड देने का अधिकार सविधान द्वारा काग्रेस को प्रदत्त नही है फिर भी इसे विधानमण्डल को अपने दायित्व सम्पादन के लिए आवश्यक माना गया है । परन्तु अमेरिकी विधानमण्डलो द्वारा इसका बहुत कम प्रयोग किया गया है । सीनेट के सदस्यो को सदन मे अनियन्त्रित भाषण की स्वतन्त्रता प्राप्त है । ब्रिटिश कॉमन्स सभा एव अन्य राष्ट्रमण्डलीय देशो की तुलना म अमेरिकी काग्रेस के सदस्यो को अपेक्षाकृत भाषण की स्वतन्त्रता अधिक है ।[40]

17

कार्यपालिका

[EXECUTIVE]

अर्थ एव प्रकृति

कायपालिका शासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग माना जाता है एव सामान्य जनता कायपालिका को ही शासन समझती है। व्यवस्थापिका के द्वारा निर्मित विधियो के आधार पर कायपालिका देश के शासन का सचालन करती है। दूसर शब्दो म, कायपालिका व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधिया को क्रियान्वित करती है। कायपालिका से अथ सामान्यत शासन के उन अधिकारिया या उन निकायो स है जिनका दायित्व देश की विधिया का क्रियान्वयन या पालन करना होता है। व्यापक अथ मे, गैटेल क अनुसार, कायपालिका मे शासन के वे सब कमचारी सम्मिलित होते है जो व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के सदस्य नही होते एव वे सभी अभिकरण भी सम्मिलित होत हैं जा विधिया के रूप म अभिव्यक्त राज्य की इच्छा को क्रियान्वित करत हैं।[1] सकीण अथ म कायपालिका का अथ केवल उसके अध्यक्ष स होता है, उदाहरणाथ, सयुक्त राज्य अमरिका या भारत का राष्ट्रपति। व्यापक अथ मे कायपालिका के अतगत कायपालिका का अध्यक्ष, कायपालिका समिति, मन्त्रिमण्डल, नौकरशाही एव सनिक सेवाएँ भी शामिल होती है। फाइनर के अनुसार, "शासन के अन्य अगो—व्यवस्थापिका एव न्यायपालिका द्वारा अपन भाग की शक्ति को लेने के पश्चात जो शक्ति शष बचती है वह कायपालिका शक्ति कहलाती है। अत कायपालिका शासन की अवशिष्ट शक्ति है।[2]

---

1 Gettell *Political Science*, 1956, p 331

2 "The Executive is the residuary legatee in Government after other claimants like Parliaments and the Law Courts have taken their share —Finer *The Theory and Practice of Modern Government*, 1956 p 575

विलोबी सदृश कुछ विद्वान शासन की कायपालिका एव प्रशासकीय (Administrative) शाखाओ म भेद करते हैं।[3] कायपालिका को वे राजनीतिक अग मानते हैं जिसका मुख्यत नीतियो एव नवीन योजनाओ के निर्माण स सम्बन्ध होता है। इसे व्यापक निर्णायक शक्ति प्राप्त होती है। राज्य म विधियो को क्रियान्वित करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय एव सैनिक सन्धियो को व्यवस्थित करना कायपालिका का दायित्व एव कतव्य होता है। प्रशासन (Administration) शासन का अराजनीतिक भाग है। इसका काय कायपालिका के निणयो या शासन की नीतियो को क्रियान्वित करना है। वे नीति निर्माण म भी भाग लेत हैं लेकिन वे उसके लिए उत्तरदायी नही होते। प्रशासनिक अधिकारियो का मुख्य काय दिनप्रतिदिन के प्रशासन का सचालन करना होता है।

कायपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के भेद उनके कार्यों की प्रकृति पर आधारित होत हैं। कायपालिका की सफलता हेतु शीघ्र निणय बुद्धि एव कायक्षमता तथा कमठता की आवश्यकता होती है। एक सीमा तक कायपालिका के कार्यों म गोपनीयता भी अनिवाय है। इस दृष्टि से कायपालिका शक्ति एक या थोडे स व्यक्तियो के हाथो म होनी चाहिए। विचार-विमश की दृष्टि से व्यवस्थापिका म अधिक सख्या एक वाछनीय तत्व है लेकिन शीघ्र काय करने की दृष्टि से यह सबसे बडा दुर्गुण भी है। अत राजनीतिक अनुभव से एकल अध्यक्षीय कायपालिका का पक्षपोषण होता है।

कायपालिका के प्रकार

कायपालिका को निम्न वर्गों म विभाजित किया जाता है

(1) एकल एव बहुल कायपालिका (Single and Plural Executive),

(2) वशानुगत एव निर्वाचित कायपालिका (Hereditary and Elected Executive),

(3) नाममात्र एव वास्तविक कायपालिका (Nominal and Real Executive),

(4) ससदीय एव अससदीय कायपालिका (Parliamentary and Non Parliamentary Executive)।

उपर्युक्त वर्गीकरण चार सिद्धान्तो पर आधारित है। प्रथम वर्गीकरण सख्या पर आधारित है। द्वितीय वर्गीकरण का आधार कायपालिका की नियुक्ति प्रणाली से सम्बन्धित है। ततीय वर्गीकरण शासन की शक्ति धारण करने के तथ्य स सम्बन्धित

3 Willoughby *Government of Modern States*, Chaps XIV and XVI, cited by Gettell *Political Science*, 1956, p 332

है । चतुथ वर्गीकरण कायपालिका एव व्यवस्थापिका के पारस्परिक सम्ब धा पर आधारित है ।

एकल एव बहुल कायपालिका

एकल प्रणाली म कायपालिका की शक्ति एक व्यक्ति म अधिष्ठित होती है। प्राचीन काल म शासन की सभी शक्तियाँ राजा के हाथ म हुआ करती थी । आधुनिक समय मे सयुक्त राज्य अमरिका की कायपालिका एकल कायपालिका का श्रेष्ठ उदाहरण मानी जाती है । अमरिकी राष्ट्रपति म कायपालिका शक्ति निहित है । अमरिकी म न्त्रि मण्डल राष्ट्रपति के अधीन हाता है । म न्त्रिया का राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाता ह और व उसी के प्रसाद पयन्त पदारूढ रहते है । व राष्ट्रपति के प्रति ही उत्तर दायी होते ह ।

बहुल कायपालिका म शासन की शक्ति एक से अधिक व्यक्तिया या एक समिति म अधिष्ठित होती है । प्राचीन काल म भी बहुल कायपालिका प्रणाली पायी जाती थी । उदाहरण के लिए स्पार्टा म दा राजाआ का शासन था । प्राचीन एथे स मे काय पालिका शक्ति अनेक अधिकारियो म जि ह जनरल एव आर्कन (archons) कहा जाता था, विभाजित थी । रोम के गणराज्य म दो काउ सल (consuls) होत थ । फ्रच राज्य-क्रा ति के पश्चात 1795 ई म फ्रास मे पाच सदस्या की डायरक्टरी के हाथो म कायपालिका शक्ति निहित थी । वतमान समय म स्विट्जरलैण्ड मे 7 सदस्यी बहुल कायपालिका का विधान है ।[4] गेटिल के अनुसार रूस म कामपालिका सम्ब धी कुछ शक्ति म न्त्रिया की परिषद म निहित है ।[5] म न्त्रिमण्डलीय शासन व्यवस्था को भी बहुल कायपालिका म रख सकते हैं पर तु यह उचित वर्गीकरण नही माना जायेगा क्याकि प्रधानम न्त्री म न्त्रिमण्डल का प्रमुख होता है । अत उसे बहुल कायपालिका नही मान सकत । केवल स्विटजरलैण्ड ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ बहुल कायपालिका पायी जाती है । स्थानीय शासनो मे बहुल कायपालिका पद्धति का ही अधिकाशत प्रयोग किया जाता है । नगर का प्रशासन समिति या आयोगा के हाथा मे होता है ।

एकल कायपालिका अधिक दृढता, एकता एव तत्परता स काय करती है । प्राय गुटब दी का इसम अभाव होता है और सकटकाल म यह अधिक उपयोगी सिद्ध होती है । बहुल कायपालिका के पक्ष म यह तक दिया जाता है कि एक की अपेक्षा कुछ व्यक्तियो मे अधिक बुद्धि होती है और एक कायपालिका की अपेक्षा बहुल काय पालिका के नीति निर्माण म निणय एव निश्चय अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होते हैं । बहुल काय पालिका क अधीन निरकुश एव अत्याचारी शासन की सम्भावना का अभाव रहता है

4 Garner *Political Science and Government*, 1956, p 620
5 Gettell *op cit*, p 333

एव नागरिक स्वत त्रता की अधिक प्रतिभूति होती है। लेकिन अनुभव न यह सिद्ध किया है कि बहुल कायपालिका सामान्यत असन्तोषजनक होती है। इस प्रणाली के अधीन सदस्या म उत्तरदायित्व विभाजित होता है, फलस्वरूप उनम एकता का अभाव रहता है और सत्ता कमजोर पड जाती है। आधुनिक राजनीतिक विचारको का सव सम्मत मत यह है कि कायपालिका का सगठन एकता पर आधारित होना चाहिए।[6] अमरिकी विचारक एलेक्जेण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने एकल काय पालिका के पक्ष का समथन करत हुए कहा था कि 'सुशासन की परिभाषा का प्रमुख तत्व सशक्त कायपालिका है।' बाह्य आक्रमणा एव अराजकता से समाज की रक्षा स्थायी शासन, सम्पत्ति, स्वतन्त्रता एव सामान्य न्याय की रक्षा के लिए सशक्त काय पालिका कम आवश्यक नही हाती।[7] न्यायाधीश स्टोरी ने भी कायपालिका की एकल प्रणाली का समथन किया है।

वशानुगत एव निर्वाचित कायपालिका

वशानुगत कायपालिकाओ म अनिवायत राजा या सम्राट कायपालिका के प्रमुख हात हैं एव व जन्म क आधार पर राजपद क अधिकारी होते है तथा जीवन पयन्त पदारूढ रहत हैं। मृत्यु क पश्चात उसका उत्तराधिकारी राजा या मुख्य काय पालिका नियुक्त किया जाता है। अत जिस कायपालिका की नियुक्ति वश परम्परा या जन्म के आधार पर की जाती है उसे वशानुगत कायपालिका की सज्ञा देते है। काय-पालिका की नियुक्ति का अन्य तरीका निर्वाचन है। निर्वाचित कायपालिका का कायकाल निश्चित होता है। निश्चित समय के लिए जनता द्वारा उन्हे चुना जाता है। आधुनिक काल म अधिकाश देशा म निर्वाचित कायपालिका पायी जाती है।

ग्रेट-ब्रिटेन, नेपाल, बेल्जियम, नार्वे एव स्वीडन वशानुगत कायपालिका के उदाहरण हैं। वतमान समय के वशानुगत राजा सामान्यत सवैधानिक शासक होते हैं। प्राय सभी देशा म लोकतन्त्रीय शक्तिया सक्रिय हैं परन्तु कुछ अविकसित दशो मे लोकतन्त्र अभी भी पूरी तरह अपन पैरा पर खडा नही हा सका है। ऐसे देशो म निरकुश वशानुगत राजतन्त्रीय व्यवस्था पायी जाती है।

भारत, फ्रास, स्विटजरलैण्ड, सयुक्त राज्य अमेरिका आदि देश निर्वाचित कायपालिका के उदाहरण हैं। कायपालिका के निवाचन का कोई एक तरीका नही है। निर्वाचन की अनेक पद्धतिया प्रचलित है। कुछ देशा मे प्रत्यक्ष रीति से तो दूसरे दशो म अप्रत्यक्ष रीति से कायपालिका निर्वाचित होती है। भारत, सयुक्त राज्य अमेरिका फ्रास, स्विटजरलण्ड मे अप्रत्यक्ष रीति से, तो पीरू, ब्राजील, बोलाविया आदि

6 Gettell *op cit* p 333
7 Garner *op cit*, p 619

लेटिन अमेरिकी देशो मे प्रत्यक्ष रीति से राष्ट्रपतिया को चुना जाता है। जमनी क वीमर सविधान के अन्तगत राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित करने की व्यवस्था थी। अमेरिकी राष्ट्रपति निर्वाचक मण्डल द्वारा चुना जाता है जिसमे प्रत्येक राज्य क उतने ही सदस्य होते है जितने कि उस राज्य का काग्रेस मे प्रतिनिधित्व करते हैं। फ्रासीसी ससद के दोनो सदन अपने सयुक्त अधिवेशन म फ्रेच राष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं। स्विस कायपालिका को वहाँ की सघीय व्यवस्थापिका (फेडरल असेम्बली) द्वारा चुना जाता है।[8] भारतीय गणराज्य का राष्ट्रपति ससद के दोनो सदनो एव राज्यो की व्यवस्थापिकाओ के निर्वाचित सदस्यो के निर्वाचक मण्डल द्वारा चुना जाता है।

अत कायपालिका-प्रमुख का निर्वाचन तीन पद्धतियो से होता है—(1) जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन, (2) निर्वाचक-मण्डल द्वारा निर्वाचन, एव (3) व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचन। निर्वाचित कायपालिका के अध्यक्षो की शक्ति म व्यापक अन्तर होत हैं। लेटिन अमेरिकी राज्यो क राष्ट्रपतिया की स्थिति किसी अधिनायक से किसी भी प्रकार कम नही होती। सयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति पर्याप्त शक्तिशाली होता है। ततीय एव चतुथ फ्रेंच गणराज्यो के राष्ट्रपतियो की शक्तियाँ नगण्य थी। स्विटजरलण्ड मे राष्ट्रपति केवल कार्यपालिका आयोग का अध्यक्ष मात्र होता है।

राजनीतिक दृष्टि से अविकसित देशो के लिए वशानुगत कार्यपालिका अपेक्षाकृत कुछ विशेष परिस्थितिया मे उपयुक्त हो सकती है। वशानुगत कायपालिका क कारण अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे प्रतिष्ठा म कुछ वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त शासन मे स्थायित्व, उत्तरदायित्व एव जनता म कायपालिका के प्रति सम्मान की भावना इसके अन्य गुण है। वशानुगत कायपालिका प्रधान देशो मे नौकरशाही स्थायी एव सक्षम होती है।[9] बेजहोट के अनुसार 'वशानुगत राजतन्त्र एक दृढ सरकार है क्याकि यह दृश्य है। राजा शासन एव जनता के मध्य एक कडी का काय करता है और शासन के प्रति जनता की भक्ति एव आज्ञानुवर्तिता प्राप्त करन म सहज रूप से अपने व्यक्तित्व से योग प्रदान करता है। ब्रिटिश राजा एकता का सूत्र है, समाज का प्रमुख है एव नतिक व्यवस्था का सरक्षक है।[10] लेकिन वशानुगत कायपालिका का सबस बडा दोष यह है कि जन्म के आधार पर नियुक्त कायपालिका योग्यता की कोई गारण्टी नही है।[11] गानर के अनुसार इतिहास वशानुगत कायपालिका के पक्ष म नही है। यह पद्धति भूतकालीन अवशेष मात्र है।[12]

8 आस्ट्रिया, पोलैण्ड एव चकोस्लोवाकिया म भी कायपालिका प्रमुख व्यवस्थापिका द्वारा ही चुने जाते हैं।
9 Gettell *op cit* p 335
10 Bagehot *The English Constitution*, Ch 2, 1963, pp 82 98
11 Gettell *Ibid* p 335
12 Garner *op cit*, p 626

नाममात्र एव वास्तविक कायपालिका

कायपालिका द्वारा प्रयुक्त शक्ति के आधार पर उस नाममात्र एव वास्तविक कायपालिका मे वर्गीकृत किया गया है। कायपालिका के निर्वाचित होने पर यह आवश्यक नही है कि वही वास्तविक कायपालिका हो बल्कि यह भी सम्भव है कि वह नाममात्र की कायपालिका हो, जैसे कि तृतीय एव चतुथ फ्रेच गणराज्य के राष्ट्रपति तथा भारत के वतमान राष्ट्रपति नाममात्र की कायपालिका है। लेकिन सभी लोकतान्त्रिक देशा मे वशानुगत राजा को नाममात्र की शक्तिया प्राप्त होती हैं। लोकतन्त्र एव वशानुगत राजतन्त्र परस्पर विरोधी है। लेकिन जिन देशा म लोकतन्त्र के साथ-साथ राजतन्त्र भी होता है वहा वह ऐतिहासिक विकास का परिणाम होता ह। इगलण्ड मे लोकतन्त्र के विकास म राजतन्त्र ने महत्वपूण भूमिका अदा की है। ब्रिटिश राजतन्त्र ने लोकतन्त्र के विकास मे वाधा उत्पन्न नही की है। अत इगलैण्ड म राजतन्त्र के प्रति आज भी वडी श्रद्धा है। आधुनिक लोकतन्त्रात्मक देशो म वशानुगत सम्राट *सवैधानिक राजा होता है। वे राज्य करते हैं लेकिन शासन नहीं।* स्वशासित उपनिवेशा मे गवनर जनरल भी नाममात्र की कायपालिका हात हैं। नाममात्र की कायपालिका सामान्यत राज्य के अध्यक्ष के कतव्यो का निर्वाह करती है। उसके नाम स शासन होता है लेकिन वह स्वय शासन की शक्ति का प्रयोग नही करती।

वास्तविक कायपालिका से अथ शासन की शक्तिया का यथाथ रूप म उपयोग करने वाले व्यक्ति या व्यक्ति-समूहरूपी कायपालिका से है। इसे राजनीतिक कायपालिका (Political Executive) भी कहते है। इगलण्ड म मन्त्रिमण्डल वास्तविक कायपालिका है। वही ब्रिटिश राजा के नाम पर सम्पूर्ण शक्तिया का उपभोग करता है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे राष्ट्रपति राज्य का भी अध्यक्ष है तथा मुख्य कायपालिका भी है। ससदीय शासन प्रणाली प्रधान देशा म दो प्रकार की—नाममात्र एव वास्तविक—कायपालिकाएँ पायी जाती हैं। नाममात्र की कायपालिका का देश के प्रशासन मे कम सम्बन्ध होता है। मन्त्रिमण्डल द्वारा ही शासन-काय किया जाता है और मन्त्रिमण्डल राजा के प्रति उत्तरदायी न होकर व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होता है।

वास्तविक कायपालिका भी चार प्रकार की होती है ब्रिटिश, अमरीकी, स्विस एव फ्रासीसी राजनीतिक कायपालिकाएँ।

वशानुगत एव निवाचित कायपालिका तथा नाममात्र एवं वास्तविक कायपालिका म भेद वर्गीकरण क भिन्न आधारा का परिणाम है। इगलैण्ड का वशानुगत सम्राट एव फ्रास का निवाचित राष्ट्रपति दोनो ही नाममात्र की कार्यपालिका है

13 यह ततीय एव चतुथ फ्रच गणराज्य क राष्ट्रपतियो क बारे म ही [illegible] फ्रास क पचम गणराज्य क राष्ट्रपति की स्थिति अलग। पूर्ववर्तियों से उसे पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त है। देखिए अध्याय 19।

इसके विपरीत, निर्वाचित अमेरिकी राष्ट्रपति एव 1947 ई के पूव जापान का वशानुगत सम्राट वास्तविक कायपालिका के उदाहरण हैं। नाममात्र एव वास्तविक कायपालिका के अ तर का आधार कार्यपालिका एव व्यवस्थापिका के पारस्परिक सम्ब ध होते हैं। इसी आधार पर ससदीय एव अससदीय कायपालिकाएँ वर्गीकृत है।

ससदीय एव अससदीय कायपालिका

ससदीय शासन प्रणाली को म न्त्रिमण्डलीय एव उत्तरदायी व्यवस्था के नाम से भी पुकारते हैं।[14] अससदीय कायपालिका का अध्यक्षात्मक (*Presidential*) प्रणाली भी कहते है। स्ट्राग के अनुसार, "ससदीय प्रणाली के अ तगत म त्री व्यवस्थापिका क अग होत हैं और अपने अस्तित्व के लिए उस पर निभर करत हैं अत कायपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के भी सदस्य होते हैं।"[15] मसदीय कायपालिका म दो—नाममात्र एव वास्तविक—कायपालिकाए होती है। म न्त्रिमण्डल वास्तविक कायपालिका और राज्य का अध्यक्ष नाममात्र की कायपालिका होत हैं। म त्रिमण्डल व्यवस्थापिका क प्रति उत्तरदायी होता है। भारत एव इगलैण्ड ससदीय कायपालिका वाले देश हैं। अध्यक्षात्मक प्रणाली के अ तगत शक्ति-पृथक्करण के सिद्धा त के आधार पर कायपालिका व्यवस्थापिका से स्वत त्र होती है। दोनो का कायकाल एव शक्तियाँ सविधान द्वारा निश्चित होती हैं। राष्ट्रपति निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित होता है। उसकी शक्तियो का सविधान द्वारा स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। इसी अध्याय म ससदीय एव अससदीय कायपालिका का विस्तृत अध्ययन अग्रिम पृष्ठो म किया गया है।

कार्यपालिका की अवधि

कायपालिका की अवधि का प्रश्न केवल निर्वाचित या मनोनीत कायपालिकाओ से ही सम्ब धित है क्योकि वशानुगत कायपालिकाओ का कायकाल तो जीवनपय त होता ही है। कायपालिका का कायकाल एव उसकी पुनर्नियुक्ति सम्ब धी बातें काय पालिका प्रमुख की नियुक्ति स सम्ब धित महत्वपूण प्रश्न है। विभिन्न देशो म निर्वा चित कायपालिकाओ का कायकाल 1 से 7 वष है। लोकत त्रीय गणराज्यो म काय पालिका के लम्बे कायकाल को पस द नही किया जाता है। इसके मूल म यह आशका है कि दीघकाल तक पदारूढ रहने के फलस्वरूप कायपालिका कही निरकुश न हो जाय और अपनी राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना न कर ल। इसी भय के कारण अधिका श अमेरिकी राज्यो म कायपालिका क पुन निर्वाचन का विधान नही है। सयुक्त राज्य अमरिका क अधिका श राज्यो म गवनर 2 वर्ष के लिए निर्वाचित होत हैं। सयुक्त राज्य अमरिका के राष्ट्रपति का कायकाल 4 वष है, जबकि फ्रास व जमनी के राष्ट्रपतियो का कायकाल 7 वष है। भारतीय राष्ट्रपति 5 वष क लिए निर्वाचित

---

14 Cabinet, Parliamentary or Responsible executive

15 Strong *Modern Political Constitutions* 1963, p 236

था। फ्रास के चतुथ गणराज्य के अनुच्छेद 29 के अनुसार वहाँ का राष्ट्रपति केवल एक ही वार पुन निर्वाचित किया जा सकता है।

कायपालिकाध्यक्ष के पुन निर्वाचन की व्यवस्था से नीतिया म क्रम एव निरन्तरता वनी रहती है। लेकिन इसके दोप भी है। पुनर्निर्वाचन की सम्भावना के कारण कायपालिका दृढता एव निष्पक्षतापूवक अपने दायित्व का सम्पादन नही कर पाती है। सत्य तो यह है कि स्वार्थी राजनीतिज्ञ का कायपालिका के रूप म नियुक्त किया जाना अभिशाप वन जाता है। लेकिन अमेरिका की भाति कायपालिका के काय काल को निश्चित करने के भी अपने दोप हैं। ऐसी अवस्था म प्राय देश किसी परिपक्व राजनीतिज्ञ की सेवाओ से उस समय वचित हो जाता है जवकि अनुभव एव योग्यता की दृष्टि से पद के लिए वह प्रत्याशी सर्वाधिक उपयुक्त होता है। लीकॉक का कथन था कि इगलैण्ड मे ग्लेडस्टोन, वेकन्सफील्ड, सलिसवरी एव लायड जॉज के अनिवाय पद-त्याग को उस समय राष्ट्रीय क्षति माना जाता जवकि वे अपने राजनीतिक जीवन की चरमावस्था पर थे।[17]

कार्यपालिका की शक्तियाँ एव काय

गेटेल के अनुसार कायपालिका के कार्यो को कूटनीतिक या राजनयिक (Diplomatic) सनिक (Military), प्रशासकीय (Administrative), विधायी (Legislative) एव न्यायिक (Judicial) मे वर्गीकृत किया जा सकता है।[18] गानर ने भी यही वर्गीकरण किया है, उन्होने केवल क्रम वदल दिया है।[19]

राजनयक काय

सभी देशो म प्राय वदेशिक मामला का सचालन कायपालिका का दायित्व होता है। राजनयक कार्यों के अन्तगत ही वैदेशिक नीति के सचालन सम्वन्धी विपय एव काय आते हैं। कायपालिका द्वारा ही विदेशो मे राजदूत नियुक्त किये जाते हैं और विदेशी राजदूता की नियुक्ति को अपने देश म स्वीकार किया जाता है। विदेशी सरकारो को मान्यता देना, सुरक्षा, व्यापारिक, सास्कृतिक सम्वन्धी सभी समझौते एव सन्धियाँ कायपालिका द्वारा ही सम्पादित की जाती हैं।

कुछ देशा मे सन्धि करने की शक्ति का उपयोग कायपालिका द्वारा व्यवस्थापिका के सहयोग से किया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका म सीनेट दो तिहाई बहुमत से सन्धियो का स्वीकृत करती है। गोपनीयता रखने के लिए सन्धि वार्ता से व्यवस्थापिका को पृथक रखा जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध-काल म गुप्त कूटनीति या राजनय (Secret Diplomacy) की तीव्र आलोचना की गयी थी।

---

17 Leacock Stephen *Elements of Political Science*, pp 183 184
18 Gettell *op cit*, pp 347 350
19 Garner *op cit* Ch XXIII

ग्रेट ब्रिटेन मे सधि करने की शक्ति कायपालिका को प्राप्त है। ब्रिटिश ससद को सधि सम्पादन सम्बधी कोई अधिकार नही है। इस स्थिति का केवल यह अपवाद है कि यदि किसी सधि को क्रियान्वित एव प्रभावी होने के लिए किसी विधि की आवश्यकता होती है तो ससद को सधि विषयक अधिकार प्राप्त हो जाते है। जमनी म छोटे मोटे समझौतो के अतिरिक्त सभी सधियां एव समझौते निम्न सदन के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किये जाते हैं। फ्रास म समस्त सधियां को दोना सदनो के समक्ष स्वीकृति हेतु रखा जाता है। स्विटजरलैण्ड म 15 वष से अधिक समय के लिए सम्पादित सन्धियां को जनमत सग्रह के लिए प्रस्तुत किये जाने की अनिवाय व्यवस्था है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे पारस्परिक व्यापार सम्बधी जैसे अ तर्राष्ट्रीय समझौता को राष्ट्रपति अपने अधिकार मात्र से ही सम्पादित कर सकता है। शेप सभी सधियों के लिए सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है। अमेरिकी काग्रेस के निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन—को सधियो के सम्बध मे केवल अप्रत्यक्ष रूप मे ही अधिकार प्राप्त हैं अर्थात् वह किसी सधि के लिए आवश्यक धनराशि को अस्वीकृत कर सकता है।

सनिक काय

सामान्यत कायपालिका का प्रमुख राज्य की सनाओ का मुख्य सेनापति होता है। उदाहरणाथ—अमेरिकी राष्ट्रपति जल, थल एव नभ सेनाओ का प्रमुख होता है। भारत का राष्ट्रपति भी प्रमुख सेनापति है। इस अधिकार के आधार पर ही वह सनिक पदाधिकारियो की नियुक्ति करता है एव उन्हे पदच्युत करता है तथा सेना की व्यवस्था एव युद्ध का सचालन करता है।[20] युद्ध की घोपणा का अधिकार भी कायपालिका मे निहित होता है। ब्रिटिश कायपालिका को युद्ध की घोपणा का अधिकार प्राप्त है। लेकिन "युद्ध सचालन के लिए आवश्यक धन को ससद स्वीकृत करती है। अत व्यवहार मे युद्ध की घोपणा के लिए ससद की स्वीकृति आवश्यक होती है।"[21] सयुक्त राज्य अमेरिका मे युद्ध की घोपणा का अधिकार कांग्रेस को है लेकिन राष्ट्रपति वदेशिक नीति एव राजनय के सचालन से ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है कि युद्ध अनिवाय एव आवश्यक हो जाय। ततीय एव चतुथ फ्रेंच गणराज्यो म युद्ध की घोपणा करने के लिए दोनो सदना की स्वीकृति आवश्यक थी।

युद्ध-काल मे अमेरिकी राष्ट्रपति को मुख्य सनापति होने के कारण सनिक विधिया के क्रियान्वयन का अधिकार प्राप्त हो जाता है तथा युद्ध-काल म वह नागरिक अधिकारो एव बन्दी प्रत्यक्षीकरण के अधिकारा को निलम्बित कर सकता है। राष्ट्रपति उन अनेक विधियो को भी निलम्बित कर सकता है जो सनिक अधिकारियां की दृष्टि स महत्वहीन हो। इन आज्ञाओ के उल्लघन के लिए वह व्यक्तियां

20 Gettell *op cit*, p 348
21 Garner *op cit* p 654

को दण्डित भी कर सकता है।[22] द्वितीय विश्वयुद्ध-काल म अमरिकी काग्रेस ने अनेक विधिया पारित की थी। अनेक देशो की कायपालिकाओ को सकट काल या युद्ध काल मे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती है। भारतीय केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के समान ही युद्ध सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं।

प्रशासकीय काय

कायपालिका का प्रमुख दायित्व व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधिया को क्रियान्वित करना होता है। इस हेतु कायपालिका अधीनस्थ प्रशासकीय अधिकारियो की नियुक्ति करती है, एव उनकी सेवा की शर्तें निर्धारित करने तथा पदच्युत करने एव निरीक्षण सम्बन्धी अधिकार भी उसे प्राप्त होते हैं। विभिन्न शासकीय विभागो की उसके द्वारा स्थापना की जाती है एव उनका सगठन किया जाता है। जैसे, सयुक्त राज्य अमेरिका सदृश राज्यो म कायपालिका की प्रशासकीय शक्ति पर व्यवस्थापिका अर्थात काग्रेस के उच्च सदन का नियन्त्रण होता है। अमेरिकी सीनेट दो तिहाई बहुमत से अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तिया को अनुमोदित करती है। स्मरणीय है कि अधिकारियो को पदच्युत करने की शक्ति केवल राष्ट्रपति को ही प्राप्त है। सभी देशा म सामान्यत बहुसख्यक प्रशासनिक अधिकारियो की नियुक्ति लोक सवा आयोगो के अधीन प्रतियोगी परीक्षाओ के माध्यम से की जाती है।

अमेरिकी राष्ट्रपति की नियुक्ति करने की शक्ति का सम्बन्ध केवल उच्च राजनीतिक, न्यायिक एव सैनिक पदाधिकारिया से ही होता है। चैकोस्लोवाकिया म मुख्य कायपालिका विश्वविद्यालयो के प्राचार्यों की भी नियुक्ति करता है। स्विट्जरलण्ड मे विभिन्न प्रशासकीय अधिकारिया की नियुक्ति व्यवस्थापिका द्वारा की जाती है। सयुक्त राज्य अमेरिका के घटक राज्या मे अनेक सावजनिक पदा पर नियुक्तियाँ जनता निर्वाचन की रीति स करती है। विधिया के क्रियान्वयन हेतु कायपालिका द्वारा अनेक नियमा एव उपनियमो का निर्माण किया जाता है।

प्रशासकीय शक्ति को आन्तरिक एव कुछ दशा मे गृह शक्ति की सज्ञा दी जाती है। फ्रास म विधिया के क्रियान्वयन एव प्रशासन म भेद किया जाता है। विधिया के क्रियान्वयन को कायपालिका के राजनीतिक या शासकीय काय (political or governmental functions) एव द्वितीय अर्थात प्रशासन का प्रशासकीय काय की सज्ञा प्रदान की जाती है।

विधायी काय

विधि निमाण म कायपालिका महत्वपूण भूमिका अदा करती है। ससदीय प्रणाली म कायपालिका विधि निर्माण म यथायत ससद का नतृत्व करती है। मन्त्र

22 Garner *op cit* p 655

मण्डल द्वारा ही व्यवस्थापिका के अधिवेशन आहूत, स्थगित एव समाप्त किये जाते हैं। कायपालिका द्वारा ही व्यवस्थापिका के प्रथम सत्र का उदघाटन किया जाता है। कायपालिका व्यवस्थापिका को विघटित करके नवीन चुनावो की माग कर सकती है। विधियो को प्रस्तावित करना एव उनको सदन मे पारित कराना सम्बन्धित मन्त्रियो का दायित्व होता है। अध्यक्षात्मक प्रणाली म कायपालिका की विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्तिया सीमित होती हैं। इन देशो मे वह ससदीय कायपालिका की भाति ससद का नेतत्व नही करती। व्यवस्थापिका के अधिवेशन स्वत नियमित रूप स होते हैं। अमरिकी राष्ट्रपति विधि-निमाण से अप्रत्यक्ष रूप से ही सम्बन्धित होता है। वह अमरिकी काग्रेस के नाम सन्देश भेजता है और इन सन्देशो के माध्यम स ही वह काग्रेस स विभिन्न विधियो के निर्माण का प्रस्ताव करता है। विधि प्रस्तावो की स्वीकृति या अस्वीकृति काग्रेस पर निभर करती है। "गणतन्त्रो मे कायपालिका को विशिष्ट मामलो पर विचार हेतु सकट-काल मे ससद के विशेष अधिवेशन आहूत करने का अधिकार अनिवायत प्राप्त होता है। सामान्यत सविधान द्वारा ही व्यवस्थापिका के सत्रारम्भ सम्बन्धी व्यवस्था की जाती है और कार्यपालिका द्वारा ससद को आहूत करन की व्यवस्था नही की जाती है।"[3] सयुक्त राज्य अमेरिका, चिली एव ब्राजील क सम्बन्ध म यही सत्य है।

ससदीय देशो मे ससद के प्रत्येक प्रथम सत्र म राज्याध्यक्ष अपने भाषण म मन्त्रिमण्डल की नीतियो का उल्लेख करता है। अध्यक्षात्मक प्रणाली म ससदीय देशो की भाति राष्ट्रपति क भाषण की कोई व्यवस्था नही होती। गानर के अनुसार, "राजतन्त्रीय देशो म कायपालिका को व्यवस्थापिका के सत्रो का भविष्य के लिए स्थगित करने का अधिकार सविधान द्वारा प्रदान किया गया है। लकिन गणराज्यो म इस प्रकार के अधिकार का अभाव होता ह। ससदीय देशो म कायपालिका कुछ परिस्थितियो मे व्यवस्थापिका के अधिवेशन को स्थगित कर सकती है।"[24] अध्यक्षात्मक देशो म सयुक्त राज्य अमरिका की भाति कायपालिका का विधानमण्डल के सत्रो को स्थगित करने का अधिकार केवल दोनो सदनो म विवाद उत्पन्न होन की अवस्था म ही प्राप्त होता है।

कार्यपालिका सकट काल म अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकती है। अध्यादेशो का विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधियो के समान ही महत्व एव प्रभाव होता है। कायपालिका-प्रमुख को निषेधाधिकार (Veto) की असाधारण शक्ति प्राप्त होती है अर्थात् वह विधानमण्डल द्वारा पारित विधियो का अपने हस्ताक्षर प्रदान करने से अस्वीकार कर सकता है या पुन विचार हेतु उस पुन सदन को वापस

23 Garner *op cit*, p 660
24 *Ibid*

भेज सकता है। विधानमण्डल द्वारा पारित विधियाँ कार्यपालिकाध्यक्ष द्वारा स्वीकृत किये जाने पर ही विधि बनते हैं। ग्रेट ब्रिटेन म क्राउन को पूर्ण निषेधाधिकार प्राप्त है। ब्रिटिश ससद उसे समाप्त नही कर सकती। लेकिन यह केवल सिद्धान्त म ही सत्य है। मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के विकास के साथ क्राउन द्वारा दीर्घकाल स निषेधाधिकार का प्रयोग नही किया गया है। फलस्वरूप वह निष्प्रभावी हो गया है। बर्गेस का मत है कि इगलैण्ड के सविधान का यह मौलिक सिद्धान्त है कि क्राउन किसी अधिकार के प्रयोग न करन के कारण उसे खो नही देता है। अत क्राउन का प्राप्त निषेधाधिकार प्रयोग के अभाव म निष्प्रभावी नही हो सकता। यह केवल सैद्धान्तिक स्थिति है। लावेल (Lowell) ने उन सम्भावित परिस्थितियो का भी उल्लेख किया है जब क्राउन द्वारा निषेधाधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए। लेकिन व्यवहार म क्राउन द्वारा निषेधाधिकार शक्ति का दीर्घकाल से प्रयोग नही किया गया है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे राष्ट्रपति को प्राप्त निषेधाधिकार पूर्ण नही है। काग्रेस के दोनो सदन यदि पुन अपन दो तिहाई बहुमत से सम्बन्धित विधि को पारित कर देते है तो राष्ट्रपति का निषेधाधिकार निष्प्रभावी हो जाता है। अमेरिकी राष्ट्रपति को निषेधाधिकार के कारणो का भी उल्लेख करना पडता है। निषेधाधिकार का उद्देश्य यह है कि व्यवस्थापिका द्वारा शीघ्रता मे पारित अविवेकीय विधियो को पारित होने से रोका जाय। हेमिल्टन (Hamilton) का मत था कि निषेधाधिकार के अभाव म कार्यपालिका क्रमश सत्ता विहीन हो जाती है। निषेधाधिकार कार्यपालिका के लिए ढाल का कार्य ही नही करता अपितु दलीय भावना एव शीघ्रता तथा समुचित विचार विमर्श के अभाव म पारित विधियो पर पुन विचार के अवसर प्रदान करता है। निषेधाधिकार के द्वारा कार्यपालिका व्यवस्थापिका से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने को कहती है।

तृतीय एव चतुर्थ फ्रेंच गणराज्यो मे कार्यपालिका को आंशिक निषेधाधिकार (suspensive veto) प्राप्त था जिसका उद्देश्य फ्रेंच ससद द्वारा पारित एव राष्ट्रपति द्वारा अस्वीकृत विधियो पर पुनर्विचार की व्यवस्था करना था। अस्वीकृत विधियो को यदि पुन सामान्य बहुमत से फ्रेंच विधानमण्डल द्वारा पारित कर दिया जाता तो व राष्ट्रपति की अस्वीकृति के बावजूद भी विधि बन जाती थी।

न्यायिक कार्य

कार्यपालिका द्वारा अनेक न्यायिक कार्य भी सम्पादित किये जाते है। सभी स्तर के न्यायाधीशो को उसके द्वारा नियुक्त किया जाता है और अयोग्य एव भ्रष्ट न्यायाधीशो को पदच्युत किया जाता है। कुछ देशो मे उच्च न्यायाधीशो को विधानमण्डल द्वारा प्रस्ताव पारित करके प्रार्थना करन पर कार्यपालिका पदच्युत कर सकती है। सभी देशो की कार्यपालिका के प्रमुखो या अध्यक्षो का न्यायालय द्वारा दण्डित अपराधियो को

क्षमा करन, दण्ड को कम करने अथवा स्थगित करने के अधिकार प्राप्त होते है। विद्रोहियो को आशिक व सामूहिक क्षमादान प्रदान करने का अधिकार भी उसे होता है। ब्रिटेन तथा भारत म क्षमादान की शक्ति का प्रयोग गृहमन्त्री के परामश पर किया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक राज्या मे क्षमादान के सम्बन्ध मे राज्यपाला को परामश देन के लिए परामशदायी परिषदें होती है। लेकिन महाभियोग के अपराधिया को कायपालिका क्षमा प्रदान नही कर सकती। अमेरिकी राष्ट्रपति को अपराधी को दण्ड देने के पश्चात या पूव क्षमा प्रदान करने का अधिकार प्राप्त है।

लोकतान्त्रिक देशो मे शासन के विभिन्न विभागा को प्रशासन सम्बन्धी नियम एव उपनियम बनाने के अधिकार होते है। इन नियमो के अन्तगत कायपालिका द्वारा निणय भी दिय जाते हैं। अत प्रशासकीय विधि के अधीन कायपालिका को अद्धन्यायिक शक्तिया प्राप्त होती हैं।

ससदीय कार्यपालिका

ससदीय देशो मे वास्तविक कायपालिका अर्थात मन्त्रिमण्डल विधिक दृष्टि से व्यवस्थापिका के प्रति अपने कार्यो एव नीतिया के लिए प्रत्यक्षत उत्तरदायी होती है। नाममात्र की कायपालिका अर्थात क्राउन या राष्ट्रपति पूणरूपेण अनुत्तरदायी होत है। राष्ट्रपति या क्राउन के प्रत्येक कार्य के लिए कोई न काई मन्त्री उत्तरदायी होता है।

ससदीय कायपालिका की परिभाषा गानर के शब्दा म निम्नत है

"मन्त्रिमण्डलीय सरकार वह पद्धति है जिसम यथाथ कायपालिका—मन्त्रिमण्डल या मन्त्रीगण—अपनी राजनीतिक नीतियो या कार्यो के लिए प्रत्यक्षत या विधिक रूप से व्यवस्थापिका अथवा उसके एक सदन (प्राय लोकप्रिय सदन) के प्रति और अन्तिम रूप मे निवाचका के प्रति उत्तरदायी होती है। उपाधिधारी या नाममात्र की कायपालिका जो राज्य का प्रमुख होती है, किसी के प्रति भी उत्तरदायी नही होती।"[5]

ससदीय कायपालिका की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं

(1) **दो प्रकार की कायपालिकाएँ**—ससदीय प्रणाली म दो प्रकार के प्रमुख होते हं नाममात्र का अध्यक्ष (nominal head) एव यथाथ कायपालिका (real executive)। नाममात्र की कायपालिका वशानुगत या निर्वाचित होती है। इसको नाममात्र की शक्तिया प्राप्त होती है। यह राज्य एव शासन दोना का ही अध्यक्ष होता है। यथाथ कायपालिका—मन्त्रिमण्डल—इसी के नाम पर सम्पूण शक्तिया का प्रयोग करती है। शासन के अन्य सभी सदस्य उसके अधीन होत है। नाममात्र की कायपालिका कवल उपाधिधारी प्रमुख होता है। वह राज्य की प्रतिष्ठा एव गरिमा का प्रतीक हाता है। उदाहरणाथ, इगलण्ड की रानी वहाँ की नाममात्र की प्रमुख है, वास्तविक कायपालिका शक्ति इगलण्ड के मन्त्रिमण्डल मे निहित है। भारत के राष्ट्रपति की स्थिति

25 Garner *op cit*, p 296

भी ब्रिटिश सम्राट के ही समान है। भारतीय संविधान द्वारा सभी शक्तियाँ राष्ट्रपति में अधिष्ठित हैं लेकिन मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसकी सहायता एवं परामर्श हेतु नियुक्त किये जाते हैं जो लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। अतः भारतीय राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल यथार्थ या वास्तविक कार्यपालिका है। नाममात्र की कार्यपालिका राज्य का अध्यक्ष है जबकि कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग उसके नाम पर मन्त्रिमण्डल करता है। वास्तविक या यथार्थ कार्यपालिका निर्वाचित होती है एवं अपने सभी कार्यों के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है।

(2) **कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका में घनिष्ट सम्बन्ध**—संसदीय प्रणाली में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त मान्य नहीं है। यथार्थ कार्यपालिका—मन्त्रि-परिषद—के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं। सामान्यतः विधानमण्डल के निम्न सदन के बहुमत दल को मन्त्रि-परिषद के निर्माण का अधिकार होता है। बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त किया जाता है। किसी व्यक्ति को जब मन्त्री नियुक्त किया जाता है, उस समय उसके लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना आवश्यक नहीं होता। लेकिन ऐसे व्यक्तियों को एक निश्चित समय के भीतर विधानमण्डल का सदस्य हो जाना चाहिए अन्यथा उन्हें मन्त्री पद से हटना पड़ता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा विधि निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। सत्य तो यह है कि मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल का नेतृत्व करता है। फलस्वरूप शासन के व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका अंगों में पारस्परिक सहयोग सम्भव होता है।

(3) **मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व**—संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत कार्यपालिका (मन्त्रिमण्डल) व्यवस्थापिका के प्रति अपने कार्यों एवं नीतियों के लिए उत्तरदायी होती है। इसका अर्थ है कि मन्त्रिमण्डल उसी समय तक पदारूढ़ रह सकता है जब तक कि उसे व्यवस्थापिका का विश्वास प्राप्त होता है। मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने या किसी विधेयक या बजट के अस्वीकृत होने पर मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका मन्त्रिमण्डल से प्रश्न पूछकर अथवा निन्दा एवं 'काम रोको' प्रस्तावों के माध्यम से उस पर नियन्त्रण रखती है।

(4) **सामूहिक उत्तरदायित्व**—इसका अर्थ यह है कि सभी मन्त्रीगण व्यवस्थापिका के प्रति संयुक्त या सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। नीति निर्धारण के समय सभी मन्त्रियों को अपनी राय व्यक्त करने का अवसर होता है। एक बार निर्णय हो जाने पर हर मन्त्री विधानमण्डल एवं जनता के समक्ष उस नीति का समर्थन करने के लिए बाध्य है, भले ही वह व्यक्तिगत रूप से उस निर्णय से सहमति न रखता हो। अतः व्यवस्थापिका के समक्ष सभी सदस्य मन्त्रिमण्डल की नीतियों के लिए उत्तरदायी होते हैं। यदि कोई मन्त्री मन्त्रिमण्डल के निर्णय से असहमति रखता है तो ऐसी अवस्था में

उस पदत्याग कर देना चाहिए। किसी एक विभाग के मन्त्री द्वारा यदि कोई भूल की जाती है ता सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल उसके लिए उत्तरदायी होता है और सभी मन्त्री अपने पद से त्यागपत्र दे दत हैं। अत सभी एकसाथ डूबते और एक साथ तरत है (They swim and sink together)। यह सम्भव है कि किसी अयोग्य सुरक्षा मन्त्री की भूल के लिए सम्पूण मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडे। लेकिन इसका यह अथ नही है कि किसी मन्त्री की व्यक्तिगत त्रुटि एव भ्रष्ट आचरण के लिए भी सम्पूण मन्त्रिमण्डल को पद-त्याग करना पडेगा। अपनी व्यक्तिगत भूल के लिए केवल सम्बन्धित मन्त्री को ही त्याग पत्र देना पडता है। उदाहरणाय, वित्तमन्त्री डाल्टन (Dalton) को ही बजट के रहस्यो के पूव प्रकाशन के लिए ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र (1947 ई) देना पडा था। जॉन प्राफ्यूमा को क्रिस्टन कीलर नामक सुन्दरी से सम्बन्धित होने क कारण अपने पद स त्यागपत्र देना पडा था। लॉड लम्बटन एव लॉड जेल्लिको को भी मई 1973 ई म इसी प्रकार की चारित्रिक भ्रष्टता एव सुन्दरियो के साथ सम्बन्धित होने के कारण मन्त्रिमण्डल म हटना पडा था।

(5) **प्रधानमन्त्री द्वारा नेतत्व**—प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का वास्तविक नेता या प्रमुख होता है। वह मन्त्रिमण्डल के सदस्या का चयन करता है, सभी विभागो के कार्यो का निरीक्षण करता है तथा उनके मध्य समन्वय स्थापित करता है। यदि किसी मन्त्री के कार्य से वह असन्तुष्ट होता है तो सम्बन्धित मन्त्री स त्यागपत्र की माग कर सकता है या उस पदच्युत कर सकता है। वह मन्त्रिमण्डल की बठको की अध्यक्षता करता है। विधानमण्डल म वह बहुमत दल एव शासन का नेता और प्रवक्ता होता है। लास्की के शब्दो म, 'उसकी स्थिति मन्त्रिमण्डल के जन्म, जीवन एव मत्यु की दृष्टि से केन्द्रीय होती है।' प्रधानमन्त्री को विधानमण्डल को भग करने की माग करने का भी अधिकार हाता है।

ससदीय कायपालिका के गुण

(1) कायपालिका एव व्यवस्थापिका के मध्य पूण सामजस्य एव सहयोग होता है। विलोबी के अनुसार, "यह पद्धति उत्तरदायित्व, निर्देशन एव प्रभुत्व की एकता का समथन करती है। इसम शासन क विभिन्न अगा के मध्य सघष असम्भव हो जाता है।' कायपालिका एव व्यवस्थापिका मे एक ही दल की प्रमुखता होने स इसम मत-भेद एव गतिरोध की सम्भावना नही होती।

(2) कायपालिका के स्वेच्छाचारी एव अनुत्तरदायी होन की सम्भावना नही होती। मन्त्रिमण्डल की दृष्टि सदव ही जनमत पर होती है।

(3) यह प्रणाली पर्याप्त नमनीय है। अवसर क अनुरूप बेजहोट क अनुसार, जनता शासन का चुनाव कर सकती है। प्रथम विश्वयुद्ध काल मे इगलण्ड म ऐस्क्विथ (Asquith) के स्थान पर लायड जाज (Lloyd George) को बिना किसी कठि

नाई के प्रधानमन्त्री चुन लिया गया था। इसी प्रकार चर्चिल को चेम्बरलेन के स्थान पर द्वितीय विश्व युद्ध के समय प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया था।

(4) इस पद्धति का शैक्षणिक मूल्य भी है। सुदृढ एव सगठित दलीय व्यवस्था के अभाव म इस पद्धति की सफलता सदिग्ध होती है। 'दलीय प्रणाली एव उसकी कायपद्धति, प्रचार, निर्वाचन आदि से जनता को पयाप्त राजनीतिक शिक्षा एव चेतना प्राप्त होती है।[26] लेकिन इसे हम केवल ससदीय प्रणाली की ही विशेपता या गुण नही मान सकते।

(5) ससदीय प्रणाली म कायपालिका एव व्यवस्थापिका के मध्य सामजस्य आवश्यक होता है। इससे शासन-काय को शीघ्रता एव विश्वासपूवक सम्पादित किया जाता है तथा कायपालिका को प्रत्येक विपय म शीघ्र निणय लेन एव निश्चिन्ततापूवक अपने दायित्वो को सम्पादित करने मे सहायता मिलती है।

ससदीय कायपालिका के दोप

(1) शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के अनुसार कायपालिका एव व्यवस्थापिका का एकीकरण नागरिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से घातक होता है।

(2) ससदीय प्रणाली दलीय सरकार होती है। इसके लिए दलीय पद्धति एव कठोर दलीय अनुशासन का विकास आवश्यक होता है। अत ब्राइस के अनुसार, "यह पद्धति दलीय भावना को बढावा देती है। राष्ट्र के समक्ष महत्वपूण नीति सम्बन्धी प्रश्न न होने पर भी (राजनीतिक) पदो के लिए दलो म सदैव सघप होता रहता है।"[27] विरोधी दल द्वारा सदैव ही शासन की नीतियो का केवल विरोध के लिए विरोध किया जाता है। अत इस पद्धति के अन्तगत समय एव शक्ति का अपेक्षाकृत अधिक अपव्यय होता है।

(3) सिजविक के अनुसार इस प्रणाली का प्रमुख दोप यह है कि मन्त्रियो का बहुत सा समय केवल विधि निमाण मे ही व्यतीत हो जाता है। फलस्वरूप व अपना पूण ध्यान एव समय कायपालिका के दायित्वो के सम्पादन म नही दे पाते हैं।

(4) ससदीय प्रणाली म शासन म स्थायित्व का अभाव होता है। मन्त्रिमण्डल का कायकाल व्यवस्थापिका की कृपा पर निभर करता है। दलीय अनुशासन एव सगठन के कारण यह दोप कम होता जा रहा है परन्तु बहुदलीय पद्धति प्रधान देशो म यह दोप अधिक स्पष्ट है और उसके परिणाम घातक है। फ्रास के चतुथ गणराज्य म मन्त्रिमण्डलो का कायकाल अत्यन्त अल्प रहा था। बहुदलीय पद्धति के कारण फ्रास म राजनीतिक अस्थिरता व्यापक रूप स फल गयी थी जिसस मुक्ति नवीन (फ्रास का पचम गणराज्य) सविधान क निर्माण स ही प्राप्त हुई है।

26 Gilchrist *Principles of Political Science*, 1930, pp 243 44
27 Bryce *Modern Democracies*, Vol II, 1929, p 512

(5) ससदीय प्रणाली का एक दोष यह भी है कि सकट काल मे कायपालिका अपेक्षाकृत शीघ्र निणय करने मे असमथ रहती है । डायसी के अनुसार इस व्यवस्था के दो प्रधान दोष है । प्रथम, यह वस्तुत दलीय शासन है अर्थात ऐसे व्यक्तियो का शासन होता है जो दल के सदस्य होने के कारण नेतृत्व प्राप्त करते है, दल के कारण सत्ता मे आते है तथा उनकी नीतिया दलीय रग मे रगी रहती हैं ।[28] ससदीय कायपालिका बहुल कायपालिका (plural executive) है । मन्त्रिमण्डल एक समिति है । अत यह युद्ध एव राष्ट्रीय सकट मे कमजोर सिद्ध होती है । द्वितीय, मन्त्रिमण्डल ससद के हाथा म खिलौना बन सकता है ।

ससदीय शासन की प्रधान आलोचना यह है कि कठोर दलीय अनुशासन के कारण मन्त्रिमण्डल का अधिनायकत्व स्थापित हो जाता है । स्वामी सेवक एव सेवक स्वामी बन गया है अर्थात ससद मन्त्रिमण्डल की अनुचर बन गयी है । प्रधानमन्त्री की स्थिति मन्त्रिमण्डल म केन्द्रीय होती है । अत लास्की का मत था कि मन्त्रिमण्डल क हाथो मे विधायी एव कायपालिका शक्तियो का केन्द्रीकरण वयक्तिक स्वतन्त्रता एव अधिकारो की दृष्टि मे घातक है । उपरोक्त आलोचना तकसगत नही है । ससदीय प्रणाली आधुनिक प्रतिनिधिमूलक प्रजातन्त्र म सर्वाधिक श्रेष्ठ पद्धति है एव **सिडनी लो** का यह कथन सत्य है कि इस प्रणाली के अन्तगत लोकतन्त्रीय सिद्धान्त की सर्वाधिक रक्षा होती है ।

अध्यक्षात्मक कार्यपालिका

अससदीय कायपालिका का अध्यक्षात्मक कायपालिका भी कहते ह । **स्ट्राग** के अनुसार कायपालिका हमेशा ही किसी के प्रति उत्तरदायी होती है, चाहे तो ससद के प्रति या एक निश्चित समय के पश्चात जनता के प्रति । "यदि कायपालिका निश्चित अवधि के पश्चात निर्धारित रूप से किसी व्यापक निकाय के प्रति उत्तरदायी होती है एव ससदीय क्रिया से उसे हटाया नही जा सकता तो उसे अससदीय या स्थिर (Fixed) कायपालिका कहगे ।"[29] स्ट्राग ने इसे अधिक स्पष्ट करत हुए कहा है कि "अध्यक्षात्मक प्रणाली के अन्तगत सविधान द्वारा प्रदत्त कायपालिका शक्तिया उस पदाधिकारी को प्राप्त होती हैं जो कायपालिका पद के लिए चुना जाता है ।"[30] अत अध्यक्षात्मक प्रणाली मे कायपालिका अपने कायकाल के सम्बन्ध मे सवैधानिक दृष्टि से व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र होती है एव अपनी राजनीतिक नीतिया के लिए व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नही होती । इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार ह

---

28 Dicey *Cabinet* v *Presidential Government*, cited by Garner *op cit*, Footnote No 23, pp 390 91
29 Strong *op cit* p 74
30 *Ibid*, p 261

(1) अध्यक्षात्मक प्रणाली म नाममात्र (Titular) एव वास्तविक (Real) कायपालिकाआ का भेद नही हाता। कायपालिका का अध्यक्ष नाममात्र का अध्यक्ष नही होता। सविधान द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियो का प्रयोग उसी के द्वारा किया जाता है। वही यथाथ कायपालिका होती है। राज्य तथा कायपालिका का अध्यक्ष एक हा व्यक्ति होता है।

(2) इस प्रणाली क अन्तगत कार्यपालिका व्यवस्थापिका क प्रति उत्तरदायी नही होती और न उसकी सहायता पर ही निमर करती है। उदाहरणाथ, अमरिको राष्ट्रपति काग्रेस के प्रति उत्तरदायी नही होता है और न उसका कायकाल हीव्यवस्थापिका के सहयाग पर निमर होता है। वह चार वष अथात् निश्चित कायकाल क लिए निर्वाचित होता है।

(3) अध्यक्षात्मक प्रणाली के अन्तगत कायपालिका जनता द्वारा निश्चित कायकाल क लिए चुनी जाती है और उसे पद क दुरुपयाग के अपराध पर महाभियाग द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है।

(4) कायपालिका अर्थात राष्ट्रपति द्वारा व्यवस्थापिका को भग नही किया जा सकता। व्यवस्थापिका का कायकाल और उसकी शक्तियाँ एव अधिकार भी सविधान द्वारा निश्चित होते है।

(5) अध्यक्षात्मक प्रणाली मे शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है, फलस्वरूप कायपालिका एव व्यवस्थापिका की शक्तिया पृथक-पथक होती हैं। कायपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य नही होत हैं। उदाहरणाथ, अमरिका राष्ट्रपति एव उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस के किसी सदन क सदस्य नही हात और यह भी आवश्यक नही है कि व एक ही राजनीतिक दल के सदस्य हो या बहुमत दल के ही सदस्य हा। वे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी हाते है एव उसके प्रसाद पयन्त ही पदारूढ रहते है। वे उसके मन्त्री नही अपितु सचिव (Secretary) होत हैं। इगलैण्ड के मन्त्रिया की भाति वे ससदीय नेता नही होत।

ससदीय प्रणाली मे सिद्धान्ततः व्यवस्थापिका या ससद की सर्वोच्चता होती है। कायपालिका ससद के अधीन होती है एव उसी के प्रति उत्तरदायी होती है। इसक विपरीत, अध्यक्षात्मक प्रणाली मे कायपालिका एव व्यवस्थापिका एक दूसरे क समान होती ह। दोनो का कायकाल निश्चित एव शक्तियाँ निर्धारित हाती ह। दोना एक दूसरे स स्वतन्त्र होती हैं और एक दूसरे को नियन्त्रित नही करती।

अध्यक्षात्मक प्रणाली के गुण

(1) ससदीय प्रणाली की तुलना म अध्यक्षात्मक कायपालिका अधिक स्थिर होती है। कायपालिका निश्चित समय के लिए जनता द्वारा निर्वाचित होती है। वह व्यवस्थापिका द्वारा हटाई नही जा सकती है और न ससदीय कायपालिका की भाँति विधानमण्डल का भग करने का उसे अधिकार प्राप्त है।

(2) अध्यक्षात्मक कायपालिका अपक्षाकृत अधिक कायकुशल होती है। एक व्यक्ति म शक्ति निहित होने के कारण निणय शीघ्रतापूवक किय जा सकते ह।

(3) मन्त्रियो का व्यवस्थापिका से कोई सम्बन्ध न होने के कारण वे अपना अधिकाधिक समय प्रशासन को देते है।

(4) विधानमण्डल म दलीय अनुशासन अपेक्षाकृत कम होता है।

(5) अध्यक्षात्मक प्रणाली के अन्तगत राष्ट्रपति के पुन निर्वाचन की व्यवस्था होती है। अत नीतियो म क्रम एव स्थायित्व की सम्भावना बनी रहती है। साथ ही एक व्यक्ति के अधिनायकत्व की स्थापना का भय नही रहता। शक्ति पृथक्करण पर आधारित होने के कारण शासन की सम्पूण सत्ता किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह म केन्द्रित नही हो पाती।

अध्यक्षात्मक प्रणाली के दोष

(1) अध्यक्षात्मक पद्धति म राष्ट्रपति के निरकुश होने की सम्भावना होती है। जनप्रतिनिधिया—विधानमण्डल—के नियन्त्रण से वह स्वतन्त्र होता है। उसका कायकाल निश्चित होता है एव उसे उसके पद स उसके कायकाल के मध्य म हटाया नही जा सकता। एस्मिन के अनुसार यह प्रणाली निरकुश, अनुत्तरदायी एव खतरनाक होती है।[31] सविधान के अनुसार अध्यक्षात्मक कायपालिका अपने कायकाल म अपनी इच्छानुसार शासन कर सकती है और जब तक उसका आचरण आपत्तिजनक नही होता वह पदच्युत नही किया जा सकता। वह अनुत्तरदायी इस अथ म है कि वह व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नही है। गानर के अनुसार अमरिकी कांग्रेस राष्ट्रपति की निन्दा कर सकती है, उसे परिस्थितियो के अनुकूल शक्तिया देने से इन्कार कर सकती है, उसके निषेधाधिकारो को अमान्य ठहरा सकती है, लेकिन वह सविधान प्रदत्त उसकी शक्तिया को कम या सीमित नही कर सकती।[3]

(2) अध्यक्षात्मक प्रणाली के अन्तगत कार्यपालिका एव व्यवस्थापिका म आय दिन गतिरोध उत्पन्न होते रहते है। कायपालिका द्वारा व्यवस्थापिका म विधेयक प्रस्तावित नही किये जा सकत। कायपालिका जब एक दल की होती है और व्यवस्थापिका म दूसर दल का बहुमत होता है तो एसी अवस्था म शासन का काय सुचारु रूप स नही चल पाता है और एक दूसरे पर उनके द्वारा दोषारोपण किय जात हैं। दोनो ऐसी स्थिति म एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। ब्राइस का कथन है कि शक्ति-पृथक्करण के फलस्वरूप स्वाभाविक एकतायुक्त सगठना म भी बरबस अलगाव उत्पन्न हो जाता है। कायपालिका एव विधानमण्डल दोना एक दूसर पर उत्तरदायित्व थोपन

31 Esmein *Droit Constitutional* p 419 cited by Garner *op cit* (5th edn 1909) p 395

32 Garner *op cit*, pp 395 96

का प्रयत्न करते हैं एव समय-समय क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवाद भी उत्पन्न होते रहते हैं ।

(3) अध्याक्षात्मक प्रणाली की विधि निर्माण प्रक्रिया भी दोषपूर्ण होती है। बहु-समिति व्यवस्था (Multiple Committee System) की प्रधानता होने के कारण विधि निर्माण म विलम्ब, अस्पष्टता एव पारस्परिक विरोध स्वाभाविक होता है।

विलोबी के अनुसार अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के दोष निम्न है—इस पद्धति मे शासन सत्ता एव उत्तरदायित्व कई अगो मे विभाजित होता है । इनम एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या होती है । परस्पर सहयोग कठिन हो जाता है । शासन प्रणाली अपेक्षाकृत अपरिवतनशील होती है । शासन के विभिन्न अगो मे विवाद स्वाभाविक होते हैं जिनका निणय न्यायपालिका ही कर सकती है ।[33] ब्रिटिश न्यायशास्त्री बेजहोट[34] ने अध्यक्षात्मक प्रणाली के दोषो को निम्न शब्दो म व्यक्त किया है "इस प्रणाली म कायपालिका पगु बन जाती है क्योकि वह उन विधियो को पारित कराने म असमय होती है जिनकी उसके द्वारा आवश्यकता अनुभव की जाती है । विधानमण्डल उत्तरदायित्वविहीन ढग से काय करने के कारण बिगड जाते है । वस्तुत कायपालिका अपने नाम के अनुकूल नही रह जाती । वह अपने निणयो को क्रियान्वित करने म असफल रहती है। विधानमण्डल का नतिक पतन हो जाता है क्योकि स्वतन्त्र होने के कारण उसके द्वारा ऐसे निणय किये जाते हैं जिनका फल स्वय उसे नही अपितु दूसरो को भोगना पडता है। राष्ट्रपति निश्चित समय के लिए निर्वाचित होता है । अपने पद से इस अवधि म उसे हटाया नही जा सकता । सभी व्यवस्थाएँ निश्चित समय के लिए होती है । इसमे नमनीयता के तत्व का अभाव होता है, सभी कुछ कठोर, निश्चित एव निधारित होता है ।'

(4) राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय देश म बडी उथल पुथल होती है । कभी कभी तो विद्रोह तक हो जाते हैं । यह दक्षिण अमेरिकी राज्यो, न कि सयुक्त राज्य अमेरिका, के सम्बन्ध मे अधिक सत्य है ।

(5) अध्यक्षात्मक पद्धति म राष्ट्रपति के सचिवो को विधानमण्डल की कायवाही म भाग लेने की कोई सुविधा प्राप्त नही है, अस्तु विधानमण्डल एव प्रशासन मे कोई जीवनदायी सम्पक नही होता । शासन की आवश्यकताओ को विधानमण्डल समझने म असमय रहने के कारण शासन की मागो को उसके द्वारा अस्वीकार किया जा सकता है । वह उनकी उपेक्षा एव अवहेलना भी कर सकता है ।

33 Willoughby *The Governments of Modern States*, pp 259 60
34 Bagehot *The English Constitution*, Ch 1, 1963, pp 69 81

18

ब्रिटिश ससदीय अथवा मन्त्रिमण्डलीय कार्यपालिका

[BRITISH PARLIAMENTARY EXECUTIVE]

ससदीय कायपालिका का सवश्रेष्ठ उदाहरण ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल है। सी एफ स्ट्राग के अनुसार, "शासन के क्षेत्र मे इगलैण्ड की मन्त्रिमण्डलीय कायपालिका का विकास सवाधिक शिक्षाप्रद है।"[1] ब्रिटिश ससदीय प्रणाली का विश्व के अनेक देशो जसे कनाडा आस्ट्रेलिया, भारत, न्यूजीलैण्ड आदि ने अनुगमन किया है।

मन्त्रिमण्डल इगलैण्ड की यथाथ कायपालिका है। डायसी के अनुसार, "राज्य का हर कार्य सम्राट के नाम पर किया जाता है परन्तु इगलैण्ड के शासन की वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिमण्डल है।"[2] यद्यपि विधिक दृष्टि से प्रभुसत्ता सम्राट एव ससद मे अधिष्ठित है, लेकिन व्यवहार मे मन्त्रिमण्डल ससद एव सम्राट दोनो की शक्तियो का उपभोग करता है। मन्त्रिमण्डल, सयोग एव योजना तथा अवसर एव बुद्धि की सन्तान है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध मे व्यक्त विभिन्न विद्वानो ने भिन्न मत उसके महत्व को व्यक्त करते है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल लावेल के अनुसार, "राजनीतिक महराब का आधार स्तम्भ है।'[3] रेमजे म्योर के शब्दो मे, "ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल राज्य रूपी जहाज का चालक चक्र है।"[4] जॉन मेरियट के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल वह धुरी है जिसके चारो तरफ सम्पूण राजनीतिक यन्त्र चक्कर मारता है।'[5] एल एस एमरी

1 Strong *op cit*, 1963, p 237

2 Dicey *The Law of the Constitution*, 1959, p 162

3 Cabinet is "the keystone of political arch "—Lowell; cited by Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1956, p 86

4 Cabinet is ' the steering wheel of the ship of the State ' —Ramsay Muir *How Britain is Governed op cit*, p 03

5 Cabinet is "the pivot round which the whole political machinery practically revolves ' —John Marriott *English Political Institutions* 1955, p 69

के अनुसार मन्त्रिमण्डल शासन का केन्द्रीय निर्देशक यन्त्र है।[6] 19वी सदी के प्रसिद्ध ब्रिटिश विधिशास्त्री बेजहोट के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल राज्य के विधायी भाग को कार्यपालिका अंग से जोड़न वाला बकसुआ है।"[7] ग्लेडस्टोन के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल सूर्य पिण्ड है जिसके चारो तरफ अन्य लघु नक्षत्र चक्कर काटते हैं।"[8] डायसी के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल इगलैण्ड की वास्तविक कार्यपालिका है यद्यपि सब कार्य राजा के नाम पर किया जाता है।"[9] एक अन्य सन्दर्भ में ग्लेडस्टोन ने "मन्त्रिमण्डल की एक ऐसे त्रिमुखी यन्त्र से तुलना की है जो ब्रिटिश संविधान को क्रियान्वित करने के लिए राजा या रानी, लॉर्डसभा या कामन्स सभा को एक सूत्र में बाँधता है।"[10]

सिडनी लो के अनुसार, "इगलैण्ड के अभिसमयो के अनुसार मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी कार्यपालिका है जिसका प्रशासन पर पूर्ण नियन्त्रण होता है एव जिसके सम्पूर्ण कार्य व्यापार का निर्देशन किया जाता है लेकिन इस पर प्रतिनिधि सदन (कॉमन्स सभा) जिसके प्रति यह अपने कार्यों एव भूलो के लिए उत्तरदायी है, का कठोर नियन्त्रण होता है।"[11]

मन्त्रिमण्डल को ब्रिटिश संविधान का केन्द्रीय तत्व एव मुख्य लक्षण माना जाता है। यह ब्रिटिश शासन का एकमात्र महत्वपूर्ण यन्त्र है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को 1937 ई में Ministers of the Crown Act के पारित होने तक कोई वैधिक मान्यता प्राप्त नही थी अर्थात् इसका आधार कोई संसदीय विधि नही थी। इसका विकास ऐतिहासिक परिस्थितिया एव सयोग का परिणाम है। यह परम्पराओ की देन है। यह जानबूझकर निर्मित सस्था नही है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल बहुमत दल के संसदीय प्रमुखो का स्थायी परन्तु अनौपचारिक सगठन है।

---

6 Cabinet is "the central directing instrument of the Government" —L S Amery *Thoughts on the Constitution*, 1964 p 70

7 Cabinet is a 'combining hyphen which joins a buckle which fastens the legislative part of the state with the executive part" —Walter Bagehot *The English Constitution*, 1963, p 68

8 Cabinet is "the solar orb round which other bodies revolve' —Gladstone, cited by Ogg & Zink *op cit* p 86

9 Dicey, A V cited by J A R Marriott *op cit* p 68

10 'The cabinet is the threefold hinge that connects together for action the British Constitution of King or Queen Lord and Commons "—Gladstone, cited by Marriott *op cit*, p 68

11 According to the conventions of the Constitution, the cabinet is the responsible executive having the complete control of administration and general direction of all national business but under strict supervision of the representative chamber which it is accountable for all its acts and omissions —Sidney Low

मन्त्रिमण्डल का इतिहास एव विकास

ब्रिटन म मन्त्रिमण्डल का विकास धीमी गति से हुआ है और उसके प्रगति पथ का प्रत्यक नवीन कदम किसी न किसी विधिक कल्पना द्वारा आवत है। विधिक दृष्टि से मन्त्रिमण्डल प्रीवी काउन्सल (Privy Council) की एक समिति है। प्रीवी कॉउन्सल नामन ग्रेट काउन्सल या क्यूरिया (Curia) की वश-परम्परा म है। नामन काल मे क्यूरिया राज्य के परामशदाताओ एव प्रशासको का स्थायी निकाय था। यह समिति न्यायिक, वित्तीय, कायपालक एव परामशदायी कतव्य सम्पादित करती थी। समय बीतन के साथ क्यूरिया के न्यायिक कतव्यो को दो न्यायालयो—किंग्स बैंच एव कॉमन्स न्यायालय—द्वारा सम्पादित किया जान लगा एव वित्तीय दायित्व कोषागार द्वारा निभाये जान लग। सामान्य प्रशासन म राजा को परामश देन का काय परिषद द्वारा किया जाता रहा। हनरी सप्तम के काल म यह निकाय अत्यधिक लोकप्रिय हो गया था। एडवड षष्टम ने इस प्रीवी परिषद का नाम प्रदान किया। एडवड षष्टम ने ही प्रीवी परिषद की एक समिति (Committee of State) को महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित करन का भार सौंपा था। ट्यूडर-काल म प्रीवी परिषद समितियो मे विभाजित कर दी गयी थी। विभिन्न राजाओ के काल मे इसकी सदस्य-सख्या मे अन्तर होता रहा। 1509 ई मे इसकी सदस्य-सख्या 19 और 1547 ई मे 25 थी। मेरी के शासन-काल म इसकी सदस्य-सख्या 46 थी और एलिजाबेथ के शासन काल मे इसमे कुल 13 सदस्य थे।

बेकन (Becon) ने सवप्रथम केबिनट (cabinet) शब्द का प्रयोग किया है। इसके पश्चात क्लेरनडन (Clarendon) ने 1640 ई मे केबिनेट शब्द का प्रयोग एक एसी सस्था के लिए किया जिसम प्रीवी काउन्सल के राजा के विश्वासपात्र सदस्य शामिल होते थे और प्रशासन मे उसकी सहायता करते थे। उस समय जनता मे इनके प्रति सन्देह था। इनका कोई विधिक आधार न होने के कारण इन्हे ससद के प्रति उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता था। उस समय ससद सर्वोच्च एव सम्प्रभु सस्था नही थी। इस प्रकार केबिनेट प्रीवी परिषद का एक भाग मात्र बनी रही। इस समय तक दलीय व्यवस्था का भी पूण विकास नही हुआ था।

मकॉले न प्रीवी परिषद की इस लघु समिति के लिए आन्तरिक परिषद (Interior Council) शब्द का प्रयोग किया है। इसके अधिवेशन सभा भवन मे न होकर एक कमरे (cabinet) मे होते थे। चार्ल्स प्रथम के शासन काल मे भी केबिनेट की यही स्थिति थी।[12]

चार्ल्स प्रथम के शासन-काल म इगलण्ड के सवैधानिक इतिहास के इस मह

12 Strong *op cit* p 238

पूण प्रश्न का निणय हुआ था कि क्राउन एव ससद की सत्ता क्या है ? स्मरणीय है, क्राउन निरकुश नही हो सकता । चार्ल्स प्रथम के शासन काल मे (1642 ई) यह महान सघर्ष प्रारम्भ हुआ था । 1643 ई के व्यापक प्रदशन (Grand Remonstrance) मे राजा से यह प्राथना की गयी थी कि वह अपने सलाहकारो के रूप म ससद के विश्वासपात्र व्यक्तियो को ही नियुक्त करे । स्पष्ट है कि इस सघष म ससद के प्रति मन्त्रियो के उत्तरदायित्व का प्रश्न निहित था । ससद इस सघष म विजयी हुई थी। 1648 ई म चार्ल्स प्रथम को फासी दे दी गयी । मन्त्रियो को ससद के प्रति उत्तर दायी बनाने की प्रक्रिया का स्ट्राग के अनुसार यह प्रथम चरण था ।

चार्ल्स द्वितीय के शासन-काल म प्रीवी काउन्सल के सदस्यो की सख्या म वृद्धि हुई थी । चार्ल्स द्वितीय ने वृहद प्रीवी परिषद के सदस्या के स्थान पर 1667 ई मे चुने हुए कुछेक सदस्यो की एक अनौपचारिक समिति स परामश करना प्रारम्भ कर दिया था । इसे 'कबाल' (CABAL) भी कहा जाता था । इस शब्द की रचना राजा के द्वारा नियुक्त पाच परामशदाताओ के नामो के प्रथम अक्षर को लेकर की गयी थी । इन परामशदाताओ के नाम थे—क्लिफड (Clifford), एशले (Ashley), बकिंघम (Buckingham), एसलिंग्टन (Aslington) तथा लो डरडोल (Londordole) । यह निकाय लोकप्रिय नही था और न ससद के प्रति उत्तरदायी ही था। यह सभी परामशदाता केवल राजा के कृपापात्र थे । लेकिन इसी 'कबाल' मे परवर्ती मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के बीज देखे जा सकते है । राजा के कुछ प्रमुख परामशदाताओ का यह लघु समूह उसे शासन काय मे सामूहिक रूप से परामश देता था ।

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की नीव चार्ल्स द्वितीय के काल म ही निश्चित रूप से पड चुकी थी । 1643 ई मे राजा से ससद के विश्वासपात्र मन्त्रियो को नियुक्त करने की प्राथना की गयी थी । बकिंघम (Buckingham) एवम् वेटवथ (Wentworth) पर ससद द्वारा चार्ल्स प्रथम के काल मे महाभियोग लगाये गय थे । 1679 ई म डेनबी (Denby) पर महाभियोग लगाकर मन्त्रिमण्डलीय उत्तर दायित्व की पूणरूपेण स्थापना की गयी थी । लेकिन सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का विकास 17वी सदी मे नही हो सका । स्टुअटवशी अन्तिम दो शासको के काल म दलीय प्रणाली के विकास ने वतमान मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के विकास म योग दिया है । 1688 ई तक मन्त्रिमण्डल का निर्माण कॉमन्स म बहुमत दल के सदस्या म से होना प्रारम्भ नही हुआ था लेकिन रक्तहीन क्रान्ति (1688 ई) तक मन्त्रिमण्डल प्रीवी परिषद से पृथक हो चुका था और राजा के प्रति उत्तरदायी होते हुए भी वह ससद को मान्यता देने लगा था।

रक्तहीन क्रान्ति (1688 ई) के पश्चात मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था

विलियम तृतीय एव रानी ऐनी के काल मे मन्त्रिमण्डल सर्वोच्च परामशदायी परिषद एव राज्य की कायपालिका के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुका था । विलियम

तृतीय ने सत्तारूढ होने के पश्चात दोना दलो (टोरी एव ह्विग) म से अपने मन्त्रियो का चुनाव किया था, लेकिन इससे परिषद की एकता नष्ट हो गयी। सदस्यगण सहयोगपूवक काय न कर सके। अत 1695 ई म ह्विग दल के नेता सुडरलण्ड ने राजा को कामन्स के बहुमत दल—ह्विग दल—म से ही मन्त्रियो का चयन करने हेतु तैयार कर लिया। इस समय राजा ही मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनो की अध्यक्षता करता था। इस ह्विगदलीय मन्त्रिमण्डल को 'ह्विग जुटा' (Whig Junta) की सज्ञा दी गयी। यह मन्त्रिमण्डल तीन वष तक सत्तारूढ रहा था। यह एक एव बहुमत दल का मन्त्रिमण्डल था।

विलियम तृतीय के पश्चात रानी ऐनी सिंहासनारूढ हुई थी। इसके कायकाल म 1701 ई मे सेटलमेन्ट एक्ट (The Act of Settlement) की धारा 3 के द्वारा मन्त्रिमण्डल के विकास को प्रीवी परिषद की शक्तियो को पुनर्जीवित करके अवरुद्ध करने का जानबूझकर प्रयत्न किया गया था। लेकिन उक्त धारा एक मृतपत्र बनी रही। ऐनी भी विलियम की भाति ही मन्त्रियो को मनोनीत करती एव मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता करती थी। 1708 ई से 1710 ई तक ह्विग दल एव 1710 ई से 1714 ई तक टोरी दल के मन्त्रिमण्डल थे। इन दोनो दलो का इस काल मे ससद म बहुमत था। ऐनी के शासनकाल मे एक दिशा मे अवश्य महत्त्वपूण विकास हुआ था। एनी टोरी दल की समथक थी लेकिन उसने अनिच्छापूवक कॉमन्स सभा म बहुमत रखने वाले ह्विगदलीय मन्त्रिमण्डल को स्वीकार किया। स्पष्ट है कि इससे मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के इस सिद्धान्त की स्थापना हुई कि राजा के न चाहते हुए भी मन्त्रिमण्डल ससद के विश्वासपयन्त पदारूढ बना रहेगा। ऐनी के समय तक प्रधानमन्त्री के पद की सृष्टि नही हुई थी। यह काय हनोवर वशीय शासको के भाग्य म था।

हनोवर-वश एव मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था

प्रथम हनोवर वशीय शासक जॉज प्रथम के सिंहासनारूढ होने के पश्चात मन्त्रिमण्डल के सगठन एव कायपद्धति म महत्वपूण परिवतन का सूत्रपात हुआ। इस समय तक मन्त्रिमण्डलो की अध्यक्षता राजा करता था। जाज प्रथम एव द्वितीय दोनो ही जमन थे। उन्हे अग्रेजी भाषा का ज्ञान नही था और न वे इगलैण्ड की राजनीति म रुचि ही रखते थे। धीरे धीरे राजा का स्थान प्रधानमन्त्री लेने लगा अर्थात् प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता करने लगा। इस परिवतन के निम्न दो परिणाम हुए

(1) मन्त्रियो को अधिक स्वतन्त्रता से मामलो पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ और वे निश्चित योजना एव नीति राजा के समक्ष उपस्थित करने लगे।

(2) मन्त्रियो ने राजा की अनुपस्थिति म अपने म से ही एक मन्त्री को अध्यक्षता हेतु चुनना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रमुख नेता हुआ करता था और बाद म वही प्रधानमन्त्री कहा जाने लगा।

सर रॉबट वालपोल (Sir Robert Walpole) यह प्रधान मन्त्री था जिसने

प्रथम प्रधानमन्त्री होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वालपोल को मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की आधारशिला रखने का श्रेय प्राप्त है। उसने मुख्यमन्त्री के रूप म अपने सहयोगियो से पूण भक्ति की अपेक्षा की तथा ससद म सामूहिक रूप से आचरण करने पर बल दिया। 1730 ई मे वालपोल ने टाउनसेण्ड (Townsend) को पदत्याग करने के लिए मजबूर किया था क्योंकि वह उसकी नीतियो से असहमत था। इसी प्रकार 1733 ई म एक्साइज विधेयक का विरोध करने के कारण चेस्टरफील्ड (Chester field) को त्यागपत्र देना पडा था। वालपोल ही कोषागार का प्रथम लाड (First Lord of Treasury) एव वित्तमन्त्री (Chancellor of Exchequer) था। उसने प्रशासन सम्बधी नीतियो को नियान्वित एव निर्धारित किया तथा सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को लागू किया।

1742 ई म वालपोल ने कॉमन्स म पराजित हो जाने के कारण अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था यद्यपि उसे राजा का विश्वास प्राप्त था। उसके त्यागपत्र के साथ सम्पूण मन्त्रिमण्डल ने भी त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की स्थापना हुई।

जॉज ततीय (1760 1820) ने शाही सम्मान एव सत्ता को पुन स्थापित करने का प्रयत्न किया था। उसका यह प्रयत्न घडी को उल्टा चलाने का प्रयत्न मात्र था। जॉज ततीय द्वारा सत्ता को हस्तगत करने के इस प्रयत्न ने मन्त्रिमण्डल म राजनीतिक एकता एव उत्तरदायित्व के गुणो को अधिक दृढ किया। अमेरिकी उपनिवेश को खोने के पश्चात राजा की व्यक्तिगत सरकार का अन्त हो गया था। टोरी दल भी मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के प्रति ह्विग दल की भाति ही आस्थावान हो गया था। 1782 ई मे लाड रोकिंघम (Lord Rockingham) का मन्त्रिमण्डल एक ही राजनीतिक दल से निर्मित प्रथम मन्त्रिमण्डल था। कनिष्ट पिट (Pitt, the Younger) ने मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था को और अधिक पूणता प्रदान की थी। उसने मन्त्रिमण्डल म से राजा के राजमहल के अधिकारियो जैसे लॉड चेम्बरलैण्ड एव अश्वपति (Master of Horses) को मन्त्रिमण्डल से हटा दिया। प्रारम्भिक हिचकिचाहट के पश्चात रानी विक्टोरिया ने मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था को पूणरूपेण स्वीकार कर लिया था एव सवैधानिक शासक की भूमिका का पूर्ण सम्पादन किया था।

मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की विशेषताएँ

मन्त्रिमण्डल के उपरोक्त इतिहास एव विवरण से यह स्पष्ट है कि मन्त्रिमण्डल की अपनी कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। मेरियट के अनुसार वे निम्नत हैं

(1) राजा मन्त्रिमण्डल का अग नही होता।

(2) व्यवस्थापिका एव कायपालिका म घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

(3) राजनीतिक एकरसता अर्थात् मन्त्रिमण्डल के सदस्य एक ही राजनीतिक विचारधारा के होते हैं।

(4) सामूहिक उत्तरदायित्व ।

(5) प्रधानमन्त्री की प्रमुखता अर्थात अन्य मन्त्री उसके अधीन होते है ।[13]

प्रो ऑग के अनुसार 18वी सदी के अन्त तक मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की निम्न विशेषताएँ भली प्रकार स्थापित हो चुकी थी

(1) मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को ससद का सदस्य होना चाहिए ।

(2) सभी मन्त्रियो को एक ही राजनीतिक दल एव राजनीतिक विचारो का होना चाहिए ।

(3) मन्त्रियो को सदन का विश्वास प्राप्त होना चाहिए अर्थात उन्हे बहुमत दल मे से चुना जाना चाहिए ।

(4) मन्त्रियो की एक ही स्वीकृत नीति होनी चाहिए ।

(5) सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त अर्थात मन्त्रिमण्डल को कॉमन्स सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होना चाहिए ।

(6) मुख्यमन्त्री की अधीनता ।

एच डी ट्रेल (H D Traill) ने मन्त्रिमण्डल की निम्न विशेषताओ का उल्लेख किया है

(1) इसके सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य होने चाहिए ।

(2) इनके एक से राजनीतिक विचार होने चाहिए और ये कॉमन्स सभा मे बहुमत दल मे से निर्वाचित होने चाहिए ।

(3) सभी सदस्यो को एक सी नीति का अनुगमन करना चाहिए ।

(4) सामान्य उत्तरदायित्व के अधीन कार्य करते हो अर्थात् ससद द्वारा निन्दा का प्रस्ताव पारित होने पर सभी सदस्यो को सामूहिक रूप से त्यागपत्र दे देना चाहिए ।

(5) एक मुख्यमन्त्री की अधीनता को स्वीकार करते हो ।[14]

उपरोक्त विशेषताओ के अतिरिक्त एक और विशेषता है और वह है गोपनीयता (secrecy) । मन्त्रिमण्डल के सभी कार्य गुप्त होते है । मन्त्रियो को अपने मतभेद प्रकट नही करने चाहिए । इससे मन्त्रिमण्डल की एकता नष्ट हो जाने भय रहता है ।

स्ट्रांग ने मन्त्रिमण्डल की उपरोक्त विशेषताओ को तीन शब्दो मे व्यक्त किया है—एकरसता (homogeneity), एकता (solidarity), एव एक नेता की अधीनता (Common loyalty to a Chief) ।

मन्त्रिमण्डल एव मन्त्रि-परिषद

मन्त्रिमण्डल (cabinet) एव मन्त्रि-परिषद (ministry) के अन्तर को समझना

---

13 Marriott *English Political Institutions*, 1938, pp 78 84
14 Quoted by Strong *op cit*, pp 239-240

आवश्यक है। मन्त्रि-परिषद एक वृहद निकाय है। यदि मन्त्रि-परिषद का हम वडा वृत्त मान लेते हैं तो मन्त्रिमण्डल उसके भीतर लघु वृत्त है। मन्त्रि-परिषद के अन्तर्गत क्राउन के वे सब उच्च अधिकारी आ जाते हैं जो अपने कार्यों एवं नीतियों के लिए कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं एवं जो बहुमत दल के सदस्य होते हैं। इसके विपरीत, मन्त्रिमण्डल के अन्तर्गत केवल प्रमुख विभागों के मन्त्री होते हैं। प्रधान मन्त्री इन्हीं प्रमुख सदस्यों से एक निकाय के रूप में समय समय पर इनके अधिवेशन बुला कर देश के प्रशासन के सम्बन्ध में परामर्श करता है। मन्त्रि-परिषद की सदस्य-संख्या निश्चित नहीं है। वह सामान्यत 60 या 70 होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध काल में तो इसकी सदस्य-संख्या 100 तक पहुँच गयी थी। मन्त्रि परिषद में सभी प्रकार के मन्त्री होते हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे मन्त्रियो की चार प्रमुख श्रेणियाँ होती हैं—(1) विभागाध्यक्ष —जैसे विदेश मन्त्री, सुरक्षा मन्त्री एव वित्तमन्त्री, आदि। (2) वे मन्त्री जो विभागाध्यक्ष नहीं होते—जैसे लॉर्ड प्रीवी सील (Lord Privy Seal), लॉर्ड चान्सलर (Lord Chancellor)—यह उच्च पदाधिकारी होते हुए भी विभागाध्यक्ष नहीं होते हैं। (3) संसदीय उपसचिव (Parliamentary Under Secretary)। (4) राजमहल के अधिकारी (Officers of the Household)—जैसे खजाची एव उप-चेम्बरलेन। इन चारो वर्गों के अधिकारियो को संयुक्त रूप से मन्त्रि परिषद कहते है। सामान्यत प्रथम दो प्रकार के मन्त्री तथा कुछ अन्य प्रकार के सदस्य मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं। मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की संख्या निश्चित नहीं है। यह संख्या सामान्यत 20 से 25 तक होती है। प्रारम्भ में केवल 7 या 8 सदस्य ही मन्त्रिमण्डल में होते थे। 19वी सदी में इनकी सदस्य संख्या 13 14 तक थी। प्रथम विश्व-युद्ध के काल में सदस्य संख्या बढकर 20 तक हो गयी थी।

मन्त्रिमण्डल के द्वारा जो नीति निर्धारित की जाती है वही मन्त्रि-परिषद द्वारा क्रियान्वित की जाती है। मन्त्रिमण्डल की भाँति मन्त्रि परिषद के नियमित अधिवेशन नहीं होते। प्रत्येक मन्त्री केबिनेट का सदस्य नहीं होता है अपितु हर केबिनेट मन्त्री मन्त्रि-परिषद का सदस्य होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य सामूहिक एव व्यक्तिगत दोनो रूपो में अपने कार्यों एव नीतियो के लिए उत्तरदायी होते है लेकिन मन्त्रिमण्डल के अतिरिक्त मन्त्रि परिषद के सदस्य अपने विभागो के कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से ही उत्तरदायी होते है। मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र के साथ मन्त्रि परिषद को भी पदत्याग करना पडता है। मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य अपने दल के प्रमुख नेता होते है। वे दल एव सरकार के कार्यक्रम एव नीति पर विचार विमर्श करते हैं। मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री के विश्वस्त सहयोगी होते है। यह शासन की सत्ता का यथार्थ रूप में प्रयोग करते हैं। मन्त्रिमण्डल नीति निर्माता एव राज्य का चालक यन्त्र है।

इसके अतिरिक्त आन्तरिक मन्त्रिमण्डल नामक एक नवीन संस्था का विकास हुआ है। सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की भाँति यह भी विकास का ही परिणाम है। प्रधानमन्त्री के लिए 20 25 व्यक्तियों के साथ शासन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना व्यावहारिक दृष्टि से प्रायः सम्भव नहीं होता है अतः प्रधानमन्त्री अपने विश्वस्त, प्रमुख तथा सहयोगी मन्त्रियों से मन्त्रिमण्डल की बैठक के पूर्व अनौपचारिक चर्चा कर लिया करता है जिससे मन्त्रिमण्डल द्वारा वह अपनी नीति को सरलतापूर्वक स्वीकृत करा सके। मन्त्रिमण्डल के वरिष्ठ एवं प्रभावशाली तथा सक्रिय सदस्यों के इस अनौपचारिक निकाय को आन्तरिक मन्त्रिमण्डल कहते हैं। सर सिडनी लो ने निम्न शब्दों में आन्तरिक मन्त्रिमण्डल की प्रकृति पर प्रकाश डाला है आन्तरिक मन्त्रिमण्डल से तात्पर्य ऐसे मन्त्रिमण्डल से है "जो निर्देश तो देता है परन्तु प्रशासन नहीं करता। इसके द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व को व्यक्तिगत उत्तरदायित्व में परिवर्तित कर दिया गया है। इसका कॉमन्स सभा से कम सम्बन्ध होता है। कुछ कार्यों के बारे में तो यह कॉमन्स सभा से पूर्ण स्वतन्त्र होता है। यह हमारी दलीय व्यवस्था के बाहर है तथा गुप्त होते हुए भी गुप्त अधिवेशन के अर्थों में पूर्णरूपेण गोपनीय नहीं है।"

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के कार्य

मन्त्रिमण्डल अनेक प्रकार के कर्तव्यों का पालन करता है। व्यापक शक्तियों के कारण उसकी तीव्र आलोचना की गयी है। मन्त्रिमण्डल के कार्यों एवं शक्तियों का आधार विधिक न होकर परम्परागत है। सिद्धान्त रूप में मन्त्रिमण्डल एक ऐसी परामर्शदायी समिति की भाँति है जिसका कार्य क्राउन को शासन कार्य में परामर्श देना है। इंगलैण्ड में राजतन्त्र का लोकतन्त्रीकरण हो जाने के कारण ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल व्यवहार में देश की यथार्थ कार्यपालिका बन गयी है। शासनतन्त्र समिति के प्रतिवेदन (हेल्डेन समिति रिपोर्ट, 1918) के अनुसार मन्त्रिमण्डल के मुख्य तीन कार्य निम्नलिखित हैं

(1) संसद के समक्ष प्रस्तावित नीति का अन्तिम रूप से निर्धारण करना।

(2) संसद द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार राज्य की कार्यपालिका पर सर्वोच्च नियन्त्रण रखना।

(3) राज्य के विभिन्न विभागों के अधिकारों का सीमांकन एवं उनमें निरन्तर समन्वय की व्यवस्था करना।

उपरोक्त कार्यों को संक्षिप्त रूप में नीति निर्धारण, कार्यपालक एवं समन्वयात्मक श्रेणी में वर्गीकृत कर सकते हैं। संसद का कार्य शासकीय नीति पर अन्तिम स्वीकृति देना होता है। तृतीय कार्य कार्यपालक कार्य का एक अंग है। अतः उपरोक्त रिपोर्ट ने मन्त्रिमण्डल के व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका सम्बन्धी केवल दो ही

मुख्य काय माने ह । इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल का व्यापक वित्तीय अधिकार भी प्राप्त है । अत अध्ययन की दृष्टि से मन्त्रिमण्डल के कार्यों को व्यवस्थापिका, काय पालिका एव वित्तीय श्रेणिया मे वर्गीकृत करना श्रेयस्कर होगा ।

व्यवस्थापिका सम्बन्धी काय—ससद के अधिवेशन आहूत करने, सत्रावसान करने एव उसके विघटन की शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल मे निहित हैं। ससद का कायक्रम मन्त्रिमण्डल द्वारा ही तैयार किया जाता है । मन्त्रिमण्डल का एक प्रकार स ससद क समय पर एकाधिकार होता है । समस्त शासकीय विधेयक मन्त्रिमण्डल द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं । कौन से विधेयक ससद मे प्रस्तुत किये जाने हैं, यह निणय करना भी उसी का काय है । ससद मे अपने द्वारा प्रस्तुत विधेयको को पारित कराना भी उसी का दायित्व होता है । मन्त्रिमण्डल नीति का निर्धारण करता है एव आवश्यक मामला पर इसके द्वारा विचार विमश किया जाता है । नीति-निर्धारण के बाद उसक क्रियान्वयन हेतु आवश्यक विधि निर्माण काय मन्त्रिमण्डल का ही काय है । जब तक मन्त्रिमण्डल को बहुमत का समथन प्राप्त है, मन्त्रिमण्डल ससद स सहज ही स्वीकृति प्राप्त कर लेता है । सच तो यह है कि ससद मन्त्रिमण्डल की अनुमति एव परामश से ही विधि निर्माण करती है । प्रदत्त व्यवस्थापन के फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल को विधि निर्माण के क्षेत्र मे व्यापक शक्तिया प्राप्त हो गयी है ।

कायपालिका सम्बन्धी काय—मन्त्रिमण्डल देश की सर्वोच्च कायपालिका है। देश की विदेश नीति, आन्तरिक व्यवस्था एव शान्ति के लिए आवश्यक नीतियाँ एव कायक्रम मन्त्रिमण्डल द्वारा ही निर्धारित किये जाते हैं। युद्ध एव शान्ति के प्रश्नो का यही तय करती है। विदेशो से इसी के द्वारा सन्धि-वार्ता की जाती है । नीतिया को स्वीकृत करना एव ससदीय विधियो को क्रियान्वित करना ससद का ही दायित्व है । विभिन्न विभागो पर नियन्त्रण रखना एव उनम समन्वय स्थापित करना मन्त्रिमण्डल का प्रमुख दायित्व है । हेल्डेन समिति ने इस सन्दभ मे व्यापक सिफारिशे की थी ।

इस समिति ने शासकीय कार्यों के सम्पादन हेतु निम्न मुख्य विभागो की स्थापना का सुभाव दिया था (1) वित्त, (2) सुरक्षा, (3) विदेश विभाग, (4) शोध एव सूचना, (5) उत्पादन (कृषि, वन एव मछली उद्योग सहित), (6) यातायात एव वाणिज्य, (7) रोजगार की व्यवस्था (Employment), (8) शिक्षा, (9) स्वास्थ, (10) न्याय, एव (11) पूर्ति (Supplies) । समिति का यह भी सुभाव था कि मन्त्रिमण्डल के अधिवेशन शीघ्र होते रहने चाहिए । व्यक्तिगत रूप से उन मन्त्रियो से परामश किया जाना चाहिए जिनक कार्यों पर निर्धारित नीति का प्रभाव पड सकता हो एव उस ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिसस उसकी नीतियो को विभिन्न विभागा द्वारा प्रभावशाली ढग स क्रियान्वित किया जा सके ।

इसक अतिरिक्त ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को नियुक्ति सम्बन्धी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं । राजदूता, साम्राज्य क उच्च अधिकारिया जस गवनर जनरल, उपनिवशीय

गवनरो आदि की नियुक्ति पर मन्त्रिमण्डल ही विचार करता है। व्यवहार मे ससद को इस सम्बन्ध मे हस्तक्षेप की कोई शक्ति प्राप्त नही है। लार्ड ऑक्सफोड तथा एस्क्विथ का मत है कि निम्न विषयो पर मन्त्रिमण्डल म विचार विमश नही होता (1) राजा के क्षमादान के विशेषाधिकार के प्रयोग, (2) मन्त्रियो का चयन, तथा (3) उच्चस्तरीय नियुक्तिया।

मन्त्रिमण्डल कार्यपालिका के रूप मे व्यापक शक्तियो का उपभोग करता है।

वित्त सम्बन्धी काय—देश का वार्षिक बजट या वार्षिक आय व्यय का विवरण मन्त्रिमण्डल द्वारा ही तैयार किया जाता है एव ससद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। ससद द्वारा उसे पारित कराना वित्तमन्त्री का काय होता है। सामान्यत ससद मे बजट प्रस्तुत करने के 4 5 दिन पूर्व मन्त्रिमण्डल उस पर विचार करता है। ससद म बजट प्रस्तुत किय जान के पश्चात उसम परिवतन या आमूलचूल सशोधन की माग ससद के सदस्यगणो को करने का अधिकार है। बजट की आलोचनाओ का उत्तर देना एव कटौती प्रस्तावो से बजट की रक्षा करना वित्तमन्त्री का प्रधान दायित्व होता है। मन्त्रिमण्डल द्वारा ही सचित निधि (Consolidated Fund) एव आकस्मिक निधि (Contingency Fund) सम्बन्धी व्ययो का निर्धारण किया जाता है। राष्ट्रीय ऋण की व्यवस्था करना भी मन्त्रिमण्डल का ही काय ह। मन्त्रिमण्डल द्वारा ही बजट मे नवीन करो को प्रस्तावित किया जाता है। यद्यपि देश के वित्त का दायित्व अन्तिम रूप मे ससद का होता है परन्तु मन्त्रिमण्डल ही यह निश्चित करता है कि राजस्व किस प्रकार वसूल किया जाय एव कौनसा नवीन कर लगाया जाय तथा किस मद मे कितना व्यय किया जाय।

न्याय सम्बन्धी काय—लॉर्ड चान्सलर के परामश से क्राउन द्वारा महत्वपूण न्यायालयो के न्यायाधीशो की नियुक्ति की जाती है। क्राउन का क्षमा प्रदान करने, दण्ड को कम या स्थगित करने का अधिकार है। परन्तु वह अपनी इन शक्तियो का प्रयोग गृहमन्त्री के परामश से ही करता है।

मन्त्रिमण्डल का सगठन

नवीन निर्वाचन या प्रधानमन्त्री के त्यागपत्र के पश्चात ब्रिटिश राजा द्वारा कॉमन्स सभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है एव उसके परामश से अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति की जाती है। सन 1923 ई तक दोनो सदनो म मे किसी भी सदन के सदस्य को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता था। 19वी सदी म अनेक प्रधानमन्त्री लॉडसभा से ही चुन गये थे, यथा लाड पामस्टन, लॉड सेलिसबरी आदि। 1912 ई मे लॉड सेलिसबरी के त्यागपत्र क पश्चात कोई भी पीयर प्रधानमन्त्री नियुक्त नही किया गया। 1923 ई म श्री बोनार ला (Bonar Law) द्वारा त्यागपत्र देने पर राजा न लॉर्ड कजन (लाडसभा म अनुदार दल के नता)

के स्थान पर बाल्डविन (Baldwin) (कॉमन्स सभा के सदस्य एव अनुदार दल के नेता) को प्रधानमन्त्री के लिए चुना था। राजा का यह मत था कि विरोधी दल अर्थात श्रम दल को लार्डसभा म चूकि कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नही है अत प्रधानमन्त्री भी कॉमन्स म से ही चुना जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रधानमन्त्री को कॉमन्स सभा का ही सदस्य होना चाहिए क्योकि मन्त्रिमण्डल कॉमन्स सभा के प्रति ही उत्तरदायी होता है। इसलिए कामन्स म प्रधानमन्त्री का चयन लोकतन्त्रीय धारणा के अधिक अनुकूल है। बाद मे लार्डसभा की सदस्यता स्वीकार करने पर स्वय बाल्डविन ने प्रधानमन्त्री रहना स्वीकार नही किया था। अत अब ब्रिटेन म यह सुनिश्चित परम्परा या अभिसमय है कि प्रधानमन्त्री को कॉमन्स सभा का ही सदस्य होना चाहिए।

प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यो का चुनाव करते समय विभिन्न दृष्टिकोणो से प्रभावित होता है। सिद्धान्त मे मन्त्रियो के चयन के सम्बन्ध मे उस पर कोई वैधानिक नियन्त्रण नही होता परन्तु व्यवहार म कई प्रतिबन्ध होते हैं। मन्त्रिमण्डल मे विभिन्न वर्गो, हितो एव क्षेत्रो को प्रतिनिधित्व दिया जाना आवश्यक होता है। प्रधानमन्त्री क्षेत्रीय, दलीय, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एव व्यक्तिगत दृष्टिकोणो एव प्रभावो की उपेक्षा नही कर सकता। दल के महत्वपूर्ण एव प्रभावशाली सदस्यो को उसे मन्त्रिमण्डल म स्थान देना ही पडता है। शक्तिशाली दलीय सदस्यो को दल मे शामिल करने से मन्त्रिमण्डल अधिक शक्तिशाली हो जाता है। उसे पूर्व मन्त्रिमण्डल के अनुभवी एव विश्वस्त सदस्यो को भी मन्त्रिमण्डल म शामिल करना पडता है।

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व

मन्त्रिमण्डल निरकुश रूप से अपनी शक्ति का प्रयोग नही कर सकता। अपने कार्यों के लिए वही उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व त्रिसूत्री है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का कोई विधिक आधार नही है, यह प्रथा अभिसमय पर आधारित है। मन्त्रिमण्डल प्रकारान्तर से तीन अधिकारियो के प्रति उत्तरदायी होता है—(1) सम्राट के प्रति, (2) कॉमन्स के प्रति, एव (3) देश के मतदाताओ के प्रति।

सम्राट के प्रति उत्तरदायित्व

प्राचीन काल म मन्त्री केवल राजा या सम्राट के प्रति ही उत्तरदायी होते थे। वे राजा के द्वारा नियुक्त किये जाते थे एव उसी के प्रसाद-पर्यन्त पदारूढ रहते थे। प्रजातन्त्र के विकास के साथ राजा की शक्ति मन्त्रिमण्डल को हस्तान्तरित हो गयी है। राजा अब मन्त्रियो के परामर्शानुसार कार्य करता है। सम्राट के प्रति उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि विधिक दृष्टि से राजा के प्रसाद पर्यन्त ही मन्त्रिमण्डल पदारूढ रहता है। यह केवल सैद्धान्तिक व्यवस्था है। व्यवहार मे सम्राट सवैधानिक अध्यक्ष है, उसे मन्त्रिमण्डल के परामर्श को स्वीकार करना पडता है। अत राजा के प्रति मन्त्रियो का उत्तरदायित्व कोई गम्भीर बात नही है। इसका अभिप्राय तो केवल यह है कि मन्त्रि

मण्डल सम्राट को प्रत्येक बात की सूचना देता रहे जिससे कि शासकीय कागजात देख कर राजा को परामर्श देने का अवसर प्राप्त हो सके। बेजहोट के अनुसार यह राजा का अधिकार है कि उससे परामर्श किया जाय। इसके अतिरिक्त उसे प्रोत्साहन एवं चेतावनी देने का भी अधिकार प्राप्त है।[15]

कॉमन्स के प्रति उत्तरदायित्व

यही वास्तविक उत्तरदायित्व है। 1911 ई तक ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल संसद के दोनों सदनों के प्रति समान रूप से उत्तरदायी होता था। परन्तु संसदीय अधिनियम 1911 ई के पारित होने के फलस्वरूप लॉर्डसभा की शक्तियाँ कम हो गयी हैं और मन्त्रिमण्डल केवल कॉमन्स सभा के प्रति ही उत्तरदायी होता है। इसका अर्थ है कि मन्त्रिमण्डल तभी तक पदारूढ रह सकता है जब तक कि उसे कॉमन्स सभा का विश्वास अर्थात कॉमन्स सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है। अविश्वास प्रस्ताव,[16] निन्दा प्रस्ताव, महत्वपूर्ण सरकारी विधेयक या अन्य प्रस्ताव अथवा किसी मन्त्री के वेतन को कम करने का प्रस्ताव या कोई ऐसा गैर सरकारी प्रस्ताव जिसका कि मन्त्रिमण्डल विरोध करता हो, की स्वीकृति को मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास माना जाता है।

कामन्स सभा के प्रति मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। आधुनिक राजनीतिक आचरण को यह ब्रिटेन का महत्वपूर्ण अनुदेय है। हर मन्त्री कामन्स के प्रति व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। जो मन्त्री जिस विभाग से सम्बन्धित होता है वह उसके कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। कोई मन्त्री अपने विभाग के कार्यों के लिए यह कह कर नही बच सकता कि अमुक कार्य उसके अधिकारी या सचिव ने किया है अतः वे ही उसके लिए उत्तरदायी हैं। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के साथ साथ हर मन्त्री सामूहिक रूप से भी मन्त्रिमण्डल के क्रिया कलापों के लिए उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल एक इकाई है। विधानमण्डल एवं सम्राट के साथ आचरण में मन्त्रिमण्डल एक इकाई के रूप में कार्य करता है। सभी मन्त्री एक साथ एक इकाई के रूप में पद ग्रहण करते हैं और एक साथ पद त्याग करते हैं। सभी एक साथ तरते एवं एक साथ डूबते हैं। एक मन्त्री के विरुद्ध आरोप पूरे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध आरोप माना जाता है।

---

15 "The Sovereign has, under a Constitutional Monarchy such as ours, three rights—the right to be consulted, the right to encourage and the right to warn" —Walter Bagehot *The English Constitution*, *op cit*, p 111

16 अविश्वास प्रस्ताव (Voice of No confidence) साधारणतः विरोधी दल के नेता द्वारा मन्त्रिमण्डल की सामान्य नीति या उसके समस्त कार्यकलाप के विरुद्ध प्रस्तुत किया जाता है।

लास्की के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल एक गुप्त निकाय है अत वह अपने निणयो के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी है।"[17] मन्त्रिमण्डल की बठको म सदस्यो को स्वतन्त्र विचार-विमश का अवसर होता है परन्तु एक बार निणय हो चुकने पर मन्त्रिमण्डल की कायवाही गुप्त रखी जाती है। 1878 ई म लॉड सेलिसबरी ने सामूहिक उत्तरदायित्व का निर्धारण करते हुए कहा था कि "मन्त्रिमण्डल के सभी निणयो के लिए हर वह सदस्य जो त्यागपत्र नही देता, पूण एव अनिवायत उत्तरदायी है। उसे बाद म यह कहने का अधिकार नही है कि वह किसी एक मामले म तो समझौते के कारण एव दूसरे मे अन्य सदस्यो के समझाने बुझाने पर सहमत हो गया था।"[18] अत हर मन्त्री को जो त्यागपत्र नही देता, मन्त्रिमण्डल के निणयो को स्वीकार करना चाहिए अन्यथा त्यागपत्र दे देना चाहिए।[19] यदि वह त्यागपत्र नही देता तो भले ही उस निणय का उसके द्वारा विरोध किया गया हो, वह उसका निणय माना जायगा। उस निणय के पक्ष मे उसे मन्त्रिमण्डल म मत देना चाहिए एव आवश्यकता पडने पर जनता म उसका समथन करना चाहिए। यदि सदन म मतदान के समय कोई मन्त्री अनुपस्थित रहता है तो उसकी निन्दा की जानी चाहिए और उस मन्त्रिमण्डल से निकाल दिया जाना चाहिए। मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृत नीति के विरुद्ध किसी मन्त्री को कोई वक्तव्य नहीं देना चाहिए। यदि मन्त्रिमण्डल के निणय के विरुद्ध कोई मन्त्री अपना वक्तव्य देता है तो उसे पदत्याग करना पडता है। उदाहरण के लिए, 1903 ई म चम्बरलेन ने त्यागपत्र दिया था। इसी प्रकार किसी भी मन्त्री द्वारा ऐसा कोई आश्वासन नही दिया जाना चाहिए जिसके सम्बन्ध मे मन्त्रिमण्डल ने कोई निणय नही लिया हो। 1927 ई म सर विलियम जानीसन हिक्स द्वारा मन्त्रिमण्डल के निणय के अभाव मे ही 21 वष से अधिक आयु की स्त्रियो को मतदान का अधिकार देने का वचन दिया गया था। मन्त्रिमण्डल ने जॉनीसन के इस आश्वासन को स्वीकार नहीं किया, फलस्वरूप उन्हे पदत्याग करना पडा था। परन्तु किसी घोषणा के पूव महत्वपूण सहयोगियो का सम

17 "The Cabinet is a secret body, collectively responsible for its decisions"—Laski *Parliamentary Government in England*, *op cit*, p 254

18 Quoted by Laski *Ibid*, p 254

19 1855 ई मे लॉड जॉन रसल ने मन्त्रिमण्डल के निणय से असहमत होने के कारण त्यागपत्र दिया था। जनरल पील ने तीन अन्य सदस्यो सहित डिजरेली के सुधार कानून से असहमत होने के कारण त्यागपत्र दिये थे। 1914 ई म लाड मोर्ले एव श्री बन्स ने युद्ध मे शामिल होने के विचार का समथक होने के कारण त्यागपत्र दिया था। हरबट सेमुअल एव अन्य उदारवादियो एव श्री स्नोडीन ने ओटावा समझौते के विरोध म त्यागपत्र दिया था। 1938 ई म श्री एन्थोनी ईडन ने प्रधानमन्त्री चम्बरलेन की विदेश नीति के विरोध म त्यागपत्र प्रस्तुत किया था।

थन प्राप्त करने पर त्यागपत्र देना आवश्यक नही होता है। उदाहरण के लिए, लायड जाज ने 1911 ई मे मेन्सन हाउस (Mansion House) भाषण के पूव इस प्रकार का आश्वासन प्राप्त कर लिया था। कोई मन्त्री अपने बचाव मे यह नही कह सकता कि मन्त्रिमण्डल के निणय से वह स्वय सहमत नही था।

सामूहिक उत्तरदायित्व का यह अथ नही होता कि कोई मन्त्री कभी अकेले पदत्याग करेगा ही नही या सम्पूण मन्त्रिमण्डल प्रत्येक मन्त्री के व्यक्तिगत भ्रष्ट एव सावजनिक जीवन के उदात्त नैतिक मानदण्डो के विपरीत आचरण के लिए उत्तरदायी होगा। यदि कोई मन्त्री व्यक्तिगत अयोग्यता, भ्रष्टाचार अथवा चारित्रिक दोष का अप राधी होता है तो ऐसी अवस्था मे सम्पूण मन्त्रिमण्डल को पद-त्याग करने की आवश्यकता नही होती, अपितु केवल उस मन्त्री विशेष को ही अपने पद से हटना पडता है। उदाहरणार्थ, 1936 ई मे अथ मन्त्री जे एच टॉमस एव 1947 ई म डालटन को बजट के रहस्यो के पूव-प्रकाशन के कारण अपने पदो से त्यागपत्र देना पडा था। 1922 ई म भारत-मन्त्री मोन्टेग्यू को मन्त्रिमण्डल से निष्कासित कर दिया गया था क्योकि उन्होने मन्त्रिमण्डल की अनुमति के बिना महत्वपूण नीति सम्बन्धी प्रस्ताव को प्रकाशित करने का आदेश दे दिया था। 1937 ई मे विदेशमन्त्री सेमुअल होर को इस कारण पदत्याग करना पडा था कि उनके एव फ्रास के विदेश मन्त्री लावेल के मध्य सम्पन्न इथोपिया सम्बन्धी कुत्सित समझौता देश को मान्य नही था।[20] कीलर-काण्ड से सम्बन्धित जॉन प्रोफ्यूमा को अपने व्यक्तिगत भ्रष्ट चरित्र के कारण त्यागपत्र देना पडा था। प्रोफ्यूमा ने कॉमन्स सभा मे क्रिस्टन कीलर नामक सुन्दरी से अपने सम्बन्धो को अस्वीकृत करके असत्य भाषण किया था। इसी प्रकार सुन्दरियो के कारण (मई 1973 ई मे) लॉड जेल्लिको एव लॉड लेम्बटन को त्यागपत्र देना पडा था।

सामूहिक उत्तरदायित्व के अभाव मे मन्त्रिमण्डल एक टीम के रूप म कार्य नही कर सकता। इसके अभाव मे मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का काय-सचालन असम्भव हो जाता है। यदि सामूहिक उत्तरदायित्व को समाप्त कर दिया जाय तो सभी मन्त्रीगण अपनी-अपनी ढपली तथा अपना-अपना राग अलापेंगे। अत यह एक आवश्यक एव स्वस्थ नियम है। सामूहिक उत्तरदायित्व परस्पर विश्वास को जन्म देता है एव नीति के सम्बन्ध म विचारो और सहयोग का आदान प्रदान सम्भव होता है। सामूहिक उत्तरदायित्व के अभाव मे मन्त्रिमण्डल का दीर्घजीवी होना सम्भव नही हो सकता। जनता की दृष्टि मे अलोकप्रिय निणयो से सभी बचना चाहते हैं। 1932 ई म ब्रिटिश

---

20 बाद की घटनाओ स ऐसा लगता है कि मन्त्रिमण्डल विदेश मन्त्री के विचारो स सहमत था। सम्भवत यही कारण था कि वे पुन कुछ माह बाद नौसेना मन्त्री बना दिये गये थे। अत कुछ समय के लिए उन्हे केवल बलि का बकरा बनाया गया था।

विकल्प रहते है प्रथम, पद से त्यागपत्र देना, एव द्वितीय, नवीन निर्वाचन की माँग करना। साधारणत प्रधानमन्त्री द्वारा द्वितीय विकल्प अपनाया जाता है। वह सम्राट से ससद के विघटन की माग करता है जिसे सम्राट सामान्यत मान लेता है। यदि नवीन चुनावो मे मन्त्रिमण्डल विजयी होता है तो वह पदारूढ रहता है। यदि चुनावा म मन्त्रिमण्डल पराजित होता है अर्थात् नवीन चुनावो के परिणामस्वरूप मन्त्रिमण्डल के दल को कॉमन्स सभा मे बहुमत प्राप्त नही होता तो प्रधानमन्त्री तुरन्त अपने मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र प्रस्तुत कर देता है। ससद के विघटन की माग के द्वारा प्रधान मन्त्री यह मत व्यक्त करता है कि इस कॉमन्स सभा को भले ही मुझ म या मेरे मन्त्रिमण्डल मे विश्वास न हो परन्तु जनता का मैं आज भी विश्वासपात्र हूँ, अत मुझे सीधे जनता से अपने भाग्य का फैसला कराने का अधिकार प्राप्त है। अत वह निर्वाचन के माध्यम से जनता से कॉमन्स सभा के निर्णय पर पुनर्विचार की प्रार्थना करता है। साधारणत कोई भी मन्त्रिमण्डल अब कॉमन्स सभा म पराजित होने पर पदत्याग नही करता।

कई विद्वानो की दृष्टि म सामूहिक उत्तरदायित्व की उपादेयता सन्देहजनक है। इससे कॉमन्स सभा का महत्व कम हुआ है एव उसकी स्थिति भी गिर गयी है तथा मन्त्रिमण्डल का अधिनायकत्व स्थापित हो गया है और मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की आड म नौकरशाही फल फूल रही है। व्यवहार म मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रदर्शन सफलतापूर्वक कर सकना असम्भव नही तो अत्यधिक कठिन हो गया है। यह मन्त्रिमण्डल के दलीय स्वरूप के कारण है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के दोष पर प्रकाश डालते हुए मोर्ले ने कहा था कि वित्त मन्त्री को विदेश मन्त्री के गलत पत्र के लिए पद से हटना पड सकता है, तथा सुयोग्य गृह-सचिव को मूर्ख युद्ध मन्त्री की भूलो के परिणाम भोगने पड सकते हैं।[25] हरमेन फाइनर का इस सम्बन्ध म मत है कि यदि मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के श्रेष्ठतम अश की रक्षा करनी है तो हम इसका

मान। लेकिन धाँधली की अधिक गुजाइश नही होती। यदि मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध बहुमत होता है तो मन्त्रिमण्डल की कॉमन्स सभा म एक के बाद दूसरी हार होती ही चली जायगी।

25 " as a general rule, every important piece of departmental policy is taken to commit the entire cabinet and its members stand and fall together The Chancellor of the Exchequer may be driven from the office by a bad despatch from the foreign office and an excellent Home Secretary may suffer from the blunders of a stupid Minister of War The Cabinet is a unit—a unit as regards the Sovereign and a unit as regards the Legislature Its views are laid before the Sovereign and before the Parliament as if they were the views of one man It gives its advice as a single whole, both in the Royal closet and in the hereditary or the representative Chamber The first mark

ससद के सभी सदस्यो को मतदान की स्वतन्त्रता दी गयी थी। उसके भयकर परिणाम हुए थे। यदि प्रत्येक मन्त्री को स्वतन्त्रतापूर्वक अपना मत व्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाय तो मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था का आधार ही समाप्त हो जायगा। सामूहिक उत्तरदायित्व के अभाव का विकल्प कमजोर एव अल्पकालिक मन्त्रिमण्डल हैं जो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था को ध्वस्त कर देंगे। इसस मिश्रित मन्त्रिमण्डलो का निर्माण हो सकता है। डॉ जेनिंग्स के मत म इससे फासीवाद का माग प्रशस्त हो जायेगा।

हरबर्ट मोरीसन का मत है कि शासन को एक इकाई के रूप म काय करना चाहिए अन्यथा शासन मे दरारे पड जाने की सम्भावना रहती है और यह सुशासन के लिए हानिप्रद एव आत्मघाती प्रमाणित हो सकता है। अत उनका कथन था कि सभी मन्त्री मन्त्रिमण्डल के निणयो से बँधे है। यदि कोई सावजनिक रूप म मन्त्रिमण्डल के निणय का खण्डन करता है तो उसे त्यागपत्र देना पडता है।[21] न्यूमेन के अनुसार सामूहिक उत्तरदायित्व केवल मन्त्रिमण्डल के सदस्यो पर ही नहीं अपितु ससदीय सचिवो सहित सभी मन्त्रियो पर लागू होता है। एल एस एमरी के अनुसार हमारी मन्त्रिमण्डलीय *व्यवस्था का सार ही मन्त्रियो का सामूहिक उत्तरदायित्व* है। *नीति सम्बन्धी* सभी निणय सम्पूण मन्त्रिमण्डल के निणय समझे जाते है। ससद की स्वीकृति अथवा निन्दा का प्रभाव सभी पर पडता है। यदि कोई प्रश्न महत्वपूण नीति से सम्बन्धित होता है तो ऐसी अवस्था म मन्त्रिमण्डल पद-त्याग कर देता है।[22] लाड हेलशाम (Lord Hailsham) इसे अत्यधिक स्वस्थ सवैधानिक सिद्धान्त मानते हैं। वे मन्त्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व को ब्रिटिश ससदीय शासन प्रणाली की सम्पूण सरचना का केन्द्र मानते है।[23] लास्की का यह मत है कि सामान्य काल म सामूहिक उत्तरदायित्व का रहस्य यह है कि मन्त्रिमण्डल की जडे दलीय प्रणाली मे हैं। दलीय रूप के कारण मन्त्रिमण्डल को उद्देश्य की एकता एव इस एकता को कायम रखने के लिए आवश्यक समथन प्राप्त होता है। दलीय समथन के कारण ही राजनीतिक एकरूपता सम्भव होती है और सामूहिक उत्तरदायित्व का क्रियान्वयन साकार हो उठता है।

मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास[24] व्यक्त होने पर मन्त्रिमण्डल के समक्ष दो ही

21 Herbert Morrison *Government and Parliament*, 1954, p 60

22 Amery *Thoughts on the Constitutions*, p 70

23 Laski *op cit*, p 258

24 कभी-कभी काम स सभा म मन्त्रिमण्डल का बहुमत होने पर भी असावधानी या समथको के पर्याप्त सख्या म उपस्थित न होने के कारण पराजय हो जाती है। इसे आकस्मिक हार (snap vote) कहते हैं। इसके कारण मन्त्रिमण्डल पदत्याग करने को बाध्य नही किया जा सकता। यह मन्त्रिमण्डल के निणय पर निभर होता है कि कामन्स सभा म किस हार को महत्वपूण और किसे महत्वपूण न

विकल्प रहते हैं प्रथम, पद से त्यागपत्र देना, एव द्वितीय, नवीन निर्वाचन की माग करना। साधारणत प्रधानमन्त्री द्वारा द्वितीय विकल्प अपनाया जाता है। वह सम्राट से ससद के विघटन की माग करता है जिसे सम्राट सामान्यत मान लेता है। यदि नवीन चुनावो म मन्त्रिमण्डल विजयी होता है तो वह पदारूढ रहता है। यदि चुनावो म मन्त्रिमण्डल पराजित होता है अर्थात नवीन चुनावा के परिणामस्वरूप मन्त्रिमण्डल के दल को कॉमन्स सभा मे बहुमत प्राप्त नही होता तो प्रधानमन्त्री तुरन्त अपने मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र प्रस्तुत कर देता है। ससद के विघटन की माग के द्वारा प्रधान मन्त्री यह मत व्यक्त करता है कि इस कॉमन्स सभा को भले ही मुझ म या मेरे मन्त्रिमण्डल मे विश्वास न हो परन्तु जनता का मैं आज भी विश्वासपात्र हूँ, अत मुझे सीधे जनता से अपने भाग्य का फैसला कराने का अधिकार प्राप्त है। अत वह निर्वाचन के माध्यम से जनता से कॉमन्स सभा के निणय पर पुनर्विचार की प्राथना करता है। साधारणत कोई भी मन्त्रिमण्डल अब कॉमन्स सभा मे पराजित होने पर पदत्याग नही करता।

कई विद्वाना की दृष्टि मे सामूहिक उत्तरदायित्व की उपादेयता सन्देहजनक है। इससे कॉमन्स सभा का महत्व कम हुआ है एव उसकी स्थिति भी गिर गयी है तथा मन्त्रिमण्डल का अधिनायकत्व स्थापित हो गया है और मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की आड म नौकरशाही फल फूल रही है। व्यवहार मे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रदशन सफलतापूवक कर सकना असम्भव नही तो अत्यधिक कठिन हो गया है। यह मन्त्रिमण्डल के दलीय स्वरूप के कारण है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के दोष पर प्रकाश डालते हुए मोर्ले ने कहा था कि वित्त मन्त्री को विदेश मन्त्री के गलत पत्र के लिए पद से हटना पड सकता है, तथा सुयोग्य गृह-सचिव को मूख युद्ध मन्त्री की भूलो के परिणाम भोगने पड सकते है।[25] हरमेन फाइनर का इस सम्बन्ध म मत है कि यदि मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के श्रेष्ठतम अश की रक्षा करनी है ता हम इसको

माने। लेकिन धाँधली की अधिक गुजाइश नही होती। यदि मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध बहुमत होता है तो मन्त्रिमण्डल की कॉमन्स सभा मे एक क बाद दूसरी हार होती ही चली जायेगी।

25 " as a general rule, every important piece of departmental policy is taken to commit the entire cabinet and its members stand and fall together The Chancellor of the Exchequer may be driven from the office by a bad despatch from the foreign office and an excellent Home Secretary may suffer from the blunders of a stupid Minister of War The Cabinet is a unit—a unit as regards the Sovereign and a unit as regards the Legislature Its views are laid before the Sovereign and before the Parliament as if they were the views of one man It gives its advice as a single whole both in the Royal closet and in the hereditary or the representative Chamber The first mark

त्याग नही सकते। यदि हम व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को प्रश्रय देते हैं तो इसका यह अर्थ होगा कि प्रत्येक मन्त्री को अपनी सुरक्षा हेतु सहयोगी मन्त्रियो के अपराध का पक्षपोषण करना पडेगा और परिषद म निर्भीकतापूवक एव स्पष्टता के स्थान पर रक्षा हेतु सजग रहना पडेगा। ऐसा इसलिए भी सम्भव नही है क्योंकि प्रशासन के कार्यों को हम पृथक पृथक रूप मे विभाजित नही कर सकत। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से मन्त्रिमण्डल की एकता परिषद की स्पष्टता एव उत्तरदायित्व का असदिग्ध निधारण नष्ट हो जायेगा।[6]

मन्त्रिमण्डल का अधिनायकत्व

[मन्त्रिमण्डल तथा ससद के सम्बन्ध]

मन्त्रिमण्डल ससद के प्रसाद पयन्त पदारूढ रहता है। मन्त्रगण अनिवायत ससद के सदस्य होते हैं। अत ससद एव मन्त्रिमण्डल म घनिष्ट सम्बन्ध होते हैं। ससदीय सम्प्रभुता के युग 19वी सदी मे ससद ही यथाथ म स्वामिनी थी और मन्त्रिमण्डल उसका सेवक। परन्तु 19वी सदी की यह स्थिति आज 20वी सदी म नही रही है। राजनीतिक दलीय नियन्त्रण के फलस्वरूप स्थिति बिल्कुल उलट गयी है अथात स्वामी सेवक और सेवक स्वामी बन गया है। 20वी सदी को मन्त्रिमण्डलीय अधिनायकत्व का युग कहत हैं। मन्त्रिमण्डल की स्थिति काफी शक्तिशाली हो गयी है, फलस्वरूप हम आज 'मन्त्रिमण्डल के अधिनायकत्व' की चर्चा करने लगे हैं। जेनिंग्स के अनुसार मन्त्रिमण्डल ही कॉमन्स सभा का नियन्त्रण करता है, न कि कामन्स सभा मन्त्रिमण्डल का।[27] सर सिडनी लो के अनुसार आजकल किसी भी मन्त्रिमण्डल की कॉमन्स सभा म हार नही होती। कामन्स सभा के प्रस्ताव के फलस्वरूप 1895 ई मे उदार दल को अपदस्थ किया गया था। उसके पश्चात किसी सरकार का पतन अविश्वास के कारण नही हुआ।[28] रेमजे म्योर ने मन्त्रिमण्डल की इस बढती हुई शक्ति की तीव्र आलोचना की है। उसका कथन है कि मन्त्रिमण्डल सवशक्तिमान है। सिद्धान्त की दृष्टि से मन्त्रिमण्डल ससद के अधीन है परन्तु वास्तव म वह ससद का स्वामी है।[9] एक निकाय जो इतनी शक्तियो का प्रयोग करता है, सिद्धान्त म ही सवशक्तिमान कहा जा सकता है भले ही वह अपनी सत्ता के प्रयोग मे कितना ही असशक्त क्यो न हो। बहुमत का समथन प्राप्त होने के कारण जनता का नियन्त्रण होते हुए भी उसकी

---

of the Cabinet, as that institution is now understood is united and indivisible responsibility "—Morley *Life of Walpole* 1913, pp 155 56

26 Finer *Theory & Practice of Modern Governments op cit*, pp 595-96

27 Jennings *Cabinet Government*, 1959 p 473

28 Jennings *Parliament*, 1939, p 120

29 Ramsay Muir *How Britain is Governed* 1951 (Ind Ed), p 62

स्थिति अधिनायक की है । दो पीढिया पूव की अपेक्षा आज यह अधिनायकत्व कही अधिक निरकुश हो गया है ।[30]

मन्त्रिमण्डल की शक्ति के विकास मे दलीय अनुशासन, मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, प्रदत्त विधि निर्माण, प्रशासकीय न्याय, मन्त्रिमण्डल की कॉमन्स सभा को विघटित करने की शक्ति एव ससदीय जीवन की वतमान दशा रूपी विभिन्न तत्व प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं । इनका विश्लेषण निम्नवत है

(1) ब्रिटिश ससदीय सदस्यो पर राजनीतिक दलो का नियन्त्रण 19वी सदी की अपेक्षा वतमान सदी मे बढ गया है । आज निर्वाचित प्रतिनिधि अपने दल के निर्देशन पर पूरी तरह काय करता है । 19वी सदी मे विभिन्न अवसरो पर कामन्स सभा म जिस उच्चकोटि का वाद विवाद हुआ करता था उसका अव अभाव है एव बहुत ही कम अवसर पर वह देखन को मिलता है । लास्की के अनुसार वह भी केवल उन अवसरा पर जब सरकार कॉमन्स सभा के सदस्यो को स्वतन्त्र मतदान का अधिकार प्रदान कर देती है । दलीय प्रणाली की कठोरता का अथ कॉमन्स सभा का मन्त्रिमण्डल पर क्रमश बढता हुआ नियन्त्रण है । इसका रहस्य यह है कि सत्तारूढ एव विरोधी दल, दोना के ही नेता दलीय मशीन द्वारा अपने सदस्यो के क्रियाकलापो पर नियन्त्रण करत है । स्वतन्त्र सदस्यो के दिन अब बीत चुके हैं और उनके लौटने की कोई सम्भावना भी नही है ।[31]

दला की शक्ति मे वृद्धि मुख्य रूप से निम्न कारणो से हुई है

(क) मतदाताओ की सख्या मे वृद्धि हो जाने के कारण उनके जन सम्पक हेतु अपेक्षाकृत कही अधिक व्यापक दलीय सगठन की आवश्यकता होती है । ऐसी स्थिति म दला की शक्ति म वृद्धि होना स्वाभाविक है ।

(ख) राज्य के काय क्षेत्र मे वद्धि के फलस्वरूप ससद के शासकीय काय क्षेत्र म भी वद्धि हुई है । निर्धारित समय के अन्दर काय समाप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक दृढ एव कठोर दलीय सगठन अपेक्षित होता है ।

(ग) वतमान निर्वाचक अपने प्रतिनिधियो को उनके व्यक्तिगत कार्यों की अपेक्षा अधिकतर उनके दलीय नेताओ के कारण चुनते हैं । बहुत कम सदस्य अपनी योग्यता एव कार्यो के कारण चुने जाते है ।

लास्की ने इसी सन्दभ म यह कहा है कि सम्पूण दलीय पद्धति का व्यवसायीकरण हो गया है एव उनके कार्यों की व्यापकता ने दलो को सेना के समान अनुशासन रखने के लिए विवश कर दिया है । यह सम्भव है कि दलीय कठोरता के विरुद्ध आवाजें उठें और विद्रोह भी हो । लेकिन अधिकाश सदस्य यह जानत हैं कि दल स

---

30 Ramsay Muir *op cit* p 68
31 Laski *Parliamentary Government in England op cit*, p 74

सम्बन्ध तोडना उनके लिए केवल खतरनाक ही नही है प्रत्युत् विवाद के गम्भीर होन पर विरोधियो से झगडे के अवसर बढ जाते हैं। अत जब तक कोई गम्भीर बात नही होती, दल के अन्दर विद्रोह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। स्मरणीय है 1931 ई म दल के केवल 16 सदस्यो ने रेमजे मैकडोनल्ड का साथ दिया था।[32]

(2) मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के कारण भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति मे वृद्धि हुई है। सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल एक टीम के रूप म एक दूसरे के साथ सहयोगपूर्वक काय करता है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के फलस्वरूप नौकरशाही मे अनुत्तरदायित्व पनपता है। दलीय सगठन इसमे सहायक है। बहुमत के बूते पर मन्त्रिमण्डल निरकुश ढग से आचरण करता है।

(3) प्रदत्त विधि-निर्माण (Delegated Legislation) के उदय एव विकास ने भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति म वृद्धि की है। राज्य के कार्यों म वृद्धि होन के कारण ससद द्वारा एक बडी सख्या म प्रति वष विधियो का निर्माण किया जाता है। समयाभाव एव अनेकानेक प्रश्नो से सम्बन्धित विधियो की पेचीदगियो के कारण ससद सम्बन्धित विधियो के निर्माण म असफल रहती है। अतएव वह अपनी शक्ति कार्यपालिका विभागाध्यक्षो को प्रदत्त कर देती है। ससद द्वारा विधेयको के प्रारूप या मुख्य सिद्धान्तो को पारित कर दिया जाता है और सम्बन्धित विभाग के मन्त्री को तत विधेयक सम्बन्धी आदेश आवश्यकतानुसार जारी करने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को विधि निर्माण की शक्ति प्राप्त हो जाती है। प्रति वष हजारो की सख्या म प्रशासकीय आदश जारी किये जाते हैं। अत प्रशासकीय क्षेत्र के अतिरिक्त मन्त्रियो को विधि निर्माण के सम्बन्ध म भी व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये है।

(4) यही स्थिति न्याय के क्षेत्र मे है। प्रशासकीय न्याय के कारण मन्त्रियो के प्रभाव एव शक्ति मे असाधारण वृद्धि हुई है। विभिन्न मन्त्रालयो को अपने विभाग से सम्बन्धित कुछ ऐसे मामलो म न्याय करने की शक्ति प्रदान कर दी गयी है जिनके सम्बन्ध म पहले न्याय करने का अधिकार सामान्यत न्यायालयो को प्राप्त होता था। इस प्रकार विभागीय मन्त्रियो को इससे व्यापक न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं। इन प्रशासकीय न्यायाधिकरणो को सामान्य न्यायालय की कार्य पद्धति का अपनाने की भी आवश्यकता नही है, लेकिन प्राकृतिक न्याय के नियमो का पालन इनसे अपेक्षित है।

(5) मन्त्रिमण्डल की शक्ति म वृद्धि का एक अन्य कारण उसकी ससद को विघटित करने की शक्ति है। मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त होने पर उसे तत्क्षण त्यागपत्र देने की आवश्यकता नही है। प्रधानमन्त्री को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सम्राट (राज्याध्यक्ष) से मन्त्रिमण्डल को विघटित करने की माँग करे। जब

32 Laski *op cit*, p 74

सम्राट से प्रधानमन्त्री तत्सम्बन्धी माग करता है तो राजा ससद को विघटित कर देने की उसकी माग को स्वीकार कर लेता है क्योकि ऐसा अभिसमय है। नवीन निर्वाचनो म विजयी होने पर ही मन्त्रिमण्डल पदारूढ रह सकता है। स्पष्ट है कि मन्त्रिमण्डल को ससद के विघटन की शक्ति के रूप म ब्रह्मास्त्र प्राप्त है। **बेजहोट** के अनुसार मन्त्रिमण्डल एक ऐसा जन्तु है जिसम अपने निर्माताओ को ही नष्ट करने की शक्ति होती है।[33] विद्रोही ससद सदस्यो पर इस शक्ति के फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल नियन्त्रण रखने म सफल रहता है। यह सम्भव है कि ससद के विघटित होने के पश्चात होने वाले निर्वाचनो मे अनेक ससद सदस्य जनता द्वारा न चुने जाये। इसम उनका बहुत सा धन भी व्यय होता है।[34] अत विघटन की माँग करने की शक्ति के कारण मन्त्रिमण्डल की स्थिति काफी दृढ हो गयी है।

(6) ब्रिटिश ससदीय जीवन स्तर भी ससद पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखने म असफल-सा है। ससद के सदस्यो को अनेक काम होते है। वे अपना पूरा समय ससदीय कार्यो को नही दे पाते। **सिडनी लो**[35] के अनुसार "आधा सदन कायरत रहता है तो आधा आमोद प्रमोद म व्यस्त।" ससदीय प्रणाली मे मन्त्रिमण्डल निरकुश हो गया है। मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली एसा निरकुशतन्त्र है जो निरन्तर जनता की आलोचना से दग्ध और जनमत, विश्वास का अभाव एव निर्वाचनो से आतकित रहता है। ससद के सत्रकालो मे ही मन्त्रिमण्डल उसके प्रति उत्तरदायी होता है। स्मरणीय है कि 6 माह एव उससे अधिक समय तक ससद का कोई सत्र ही नही होता। **रोजबेरी** के अनुसार इस अवधि म समाचार पत्रो से प्राप्त सूचना के अतिरिक्त हम तनिक भी यह पता नही रहता कि हमारे शासक क्या कर रहे है ? वे क्या प्रबन्ध एव तत्सम्बन्धी विचार करते हैं ?[36]

अत साराश मे मन्त्रिमण्डल पर कॉमन्स का स्वामित्व कम हो गया है। मन्त्रिमण्डल अपने सदस्यो के बहुमत के बूते पर जो चाहे कानून बना सकता है, जितना चाहे उतना व्यय स्वीकृत करा सकता है, चाहे जो कर लगा सकता है एव जिस कर को चाहे समाप्त कर सकता है। ससद का जीवन उसकी मुट्ठी मे है। मन्त्रिमण्डल व्यवहार म कॉमन्स सभा का स्वामी है। ससद मन्त्रिमण्डल के हाथ की कठपुतली बन गयी है। **रेमजे म्योर** के अनुसार, "नीति निर्धारण शासन, विधि निर्माण, आय-व्यय, उच्च पदा

33 Bagehot *The English Constitution op cit*, Chap I, pp 59 81

34 जेनिग्स का कथन है कि ससद सदस्यो को पुनर्निवाचन पर करीब 1 हजार पौण्ड तक व्यय करना पडता है। "He has to spend an unpleasant fortnight or three weeks Above all he may have little certainty of being re elected' —Jennings *Parliament*, 1939, p 112

35 Sidney Low *The Governance of England* p 63

36 *Ibid*

पर नियुक्तियाँ आदि काय मन्त्रिमण्डल के हाथ म हैं।[37] ब्रिटिश प्रजातन्त्र विकृत हो गया है। जनप्रतिनिधियो क हाथा म स नियन्त्रण की शक्ति उपरोक्त कारणा स खिसक कर मन्त्रिमण्डल के हाथा म पहुँच गयी है और मन्त्रिमण्डल अब स्वय ससद को नियन्त्रित करन लगा है। यह विपयय ही मन्त्रिमण्डलीय अधिनायकत्व कहा जाता है। लेकिन जेनिंग्स का मत है कि मन्त्रिमण्डल की उपरोक्त आलोचना का यह अथ नही है कि जिस मन्त्रिमण्डल को ससद का बहुमत प्राप्त हो जाता है उसका अस्थायी अधिनायकत्व स्थापित हो जाता है। वह जन भावना की उपक्षा नही कर सकता।[38] प्रो हेराल्ड लास्की एव श्री एल एस एमरी न मन्त्रिमण्डल क अधिनायकत्व क आरोपा का खण्डन किया है। व ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की काय-पद्धति को उचित मानत हैं।

लास्की न आरोपा की व्यापक समीक्षा की है।[39] रेमजे म्योर के अनुसार मन्त्रिमण्डल अपन निम्न दायित्वो का भली प्रकार निभान म असमय है प्रशासनतन्त्र की समीक्षा तथा नियन्त्रण, एव विभिन्न विभागा क कार्यों म समन्वय। इन दायित्वा के ससद स मन्त्रिमण्डल को हस्तान्तरित हो जान क परिणाम अत्यन्त घातक हुए है। लास्की का मत है कि प्रत्यक मन्त्री मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है। उनक निणया के पीछे मन्त्रिमण्डल की सत्ता होती है। मन्त्रिया का नवीन समस्याआ पर विचार करने एव तत्सम्बन्धी विचारा को मन्त्रिमण्डल म रखन की पूण स्वतन्त्रता होती है। वित्तीय प्रश्नो पर वित्त विभाग म पूण विचार विमश होता है। विवादास्पद विषया पर मन्त्रिमण्डल विचार एव निणय करता है। ससद स्वय एक वृहद् निकाय है और वह प्रशासन पर नियन्त्रण सम्बन्धी दायित्वा को भली प्रकार नही निभा सकती। अत प्रशासन पर नियन्त्रण सम्बन्धी किसी अन्य श्रेष्ठ प्रणाली की वतमान मन्त्रिमण्डलीय नियन्त्रण पद्धति की तुलना म कल्पना करना कठिन है। रेमजे म्योर का यह भी तक था कि मन्त्रिया के पास न तो समय है और न ही पर्याप्त अवकाश है कि वे तकनीकी एव आर्थिक प्रश्नो को सुलझा सके। उनके पास उस आवश्यक क्षमता का भी अभाव है जो इन प्रश्नो को हल करने के लिए आवश्यक है। लास्की का कथन है कि ये विचार ठीक है परन्तु मन्त्रिमण्डलीय पद्धति पर रेमजे म्योर के य आरोप गलत हैं। मन्त्रिमण्डल राजनीतिक सतह पर उभरने वाली समस्याओ पर ही विचार कर सकता है। मन्त्रिमण्डल—राजनीतिज्ञो का समूह—विशेषज्ञो का सगठन नही है। न वे शोधकर्ता हैं। मन्त्रिमण्डल का काय तो शोध के परिणामो का ठीक ढग से प्रयोग करना है। ससदीय लोकतन्त्र मे शासन को वही काय करने चाहिए जिनकी मतदाताओ का अपेक्षाकृत बडा समूह उससे अपक्षा करता हो। मन्त्रिमण्डल रॉयल सोसाइटी की भाँति

37 Ramsay Muir *op cit*, pp 66 69
38 Jennings *Cabinet Government, op cit*, pp 475 476
39 Laski *Parliamentary Government in England, op cit*, pp 262 305

ज्ञानाजन करन वाली सस्था नही है। उसका काय तो तात्कालिक राजनीतिक महत्व से सम्बन्धित परिणामो के उपयुक्त प्रयोग से सम्बन्धित है।

मन्त्रिमण्डल के लिए लोकमत की उपेक्षा करना असम्भव है। ससदीय प्रणाली म शासक अधिनायक नही होता एव वह लोकमत से स्वतन्त्र होकर नीतियो की घोषणा नही कर सकता।[40] उसे अपने प्रस्तावो को क्रियान्वित करने के लिए सहयोग की आवश्यकता होती है और इस सहयोग को प्राप्त करने के लिए शासन को दल की आज्ञाओ का सदैव ध्यान रखना पडता है। ससदीय प्रणाली का सार उत्तरदायित्व है। उत्तरदायित्व के अतिरिक्त किसी अन्य विकल्प को स्वीकार करने के फलस्वरूप सम्पूण प्रणाली ध्वस्त हो जायगी। यही नही शासकीय कार्यो का दायित्व ससद के बाहर किसी अन्य सस्था को सौपने का अथ अधिनायकत्व के लिए माग प्रशस्त करना है।[41] अत शक्तिशाली स शक्तिशाली मन्त्रिमण्डल भी निरकुश नही हो सकता। आज स्थिति यह है कि मन्त्रिमण्डल का पतन कॉमन्स सभा मे पराजित होन पर न होकर चुनाव म हारन पर ही होता है। इसका यह अथ है कि लोकतन्त्र के विकास के साथ उत्तरदायित्व निष्क्रामित होकर मतदाताओ के प्रति हो गया है। पहले मन्त्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे। लोकतन्त्र के थोडे विकास के कारण मन्त्रिमण्डल कामन्स सभा के प्रति उत्तरदायी हो गया था तथा लोकतन्त्र के पूण विकसित होने पर मन्त्रिमण्डल अब सीधे जनता के प्रति उत्तरदायी हो गया है।

एल एस एमरी[42] ने भिन्न तक दिय है। उनके अनुसार लोकतन्त्रीय शासन पद्धति के दो सिद्धान्त है। प्रथम सिद्धान्त यह है कि सरकार को शासनाधिकार जनता से प्राप्त होता है। अत शासन का चुनाव जनता या उसके प्रतिनिधियो द्वारा ही होना चाहिए और जनता की इच्छानुसार उसके आदेशो का अनुसरण करत हुए ही शासन किया जाना चाहिए। फ्रास, स्विट्जरलण्ड एव सयुक्त राज्य अमेरिका म इसी सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। अमेरिकी राष्ट्रपति जो कायपालिका का प्रमुख है, जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है। ततीय फ्रेच गणराज्य का राष्ट्रपति जनता द्वारा चुना जाता था और पाचवे फ्रेंच गणराज्य म भी जनता द्वारा ही चुना जाता है। व स्वतन्त्र रीति से शासन का सचालन नही कर सकते। परन्तु ग्रेट ब्रिटन के शासन

40 लोकमत की उपेक्षा के परिणाम भयकर होत हैं। 1886 ई म आयरिश स्वराज्य के प्रश्न पर उदार दल एव 1931 ई म व्यय की कमी क प्रश्न पर मजदूर दल का पतन हो गया था। 1936 ई म सेमुअल होर को अबीसीनिया सम्बन्धी उनकी नीति के लोकमत क प्रबल विरोध के कारण ही त्यागपत्र देना पडा था। प्रधानमन्त्री ईडन की स्वेज नहर पर आक्रमण की नीति की जनता ने तीव्र निन्दा की थी, फलस्वरूप उन्हे राजनीति से अवकाश ग्रहण करना पडा था।

41 Laski *op cit*, pp 277-278

42 L S Amery *Thoughts on Constitution, op cit* Chap I, pp 1 32, Chap III, pp 70 104

के सगठन का सिद्धान्त इसस भिन्न है । वहाँ शासन या मन्त्रिमण्डल का निर्माण सम्राट द्वारा किया जाता है । उसके अधिकारा का मूल ब्रिटन का राजा होता है, न कि जनता या उसके प्रतिनिधि । ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल जनता या उसके प्रतिनिधियो द्वारा निर्वाचित नही है, अपितु ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की नियुक्ति सम्राट करता है एव उसके परामश से अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति की जाती है । अत शासन सचालन म मन्त्रिमण्डल ससद का अनुकरण न करक उसका नेतृत्व करता है । लाकतन्त्र का ग्रेट ब्रिटेन म यह अथ है कि शासन ससद की सम्मति स होना चाहिए, न कि ससद द्वारा स्वय शासन किया जाय । ब्रिटन मे न तो ससद स्वय शासन करती है और न वह कर सकती है । नीति निर्धारण एव शासन सचालन का अधिकार केवल मन्त्रिमण्डल को प्राप्त है । ससद केवल सहमति या असहमति व्यक्त कर सकती है । ससद की असहमति पर ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल पदत्याग कर देता है परन्तु वह अपनी नीति म कोई परिवतन नही करता। मन्त्रिमण्डल सदैव ही नेतृत्व करता है । ससद को किसी न किसी मन्त्रिमण्डल के पीछ चलना ही पडता है । एमरी के कथन का साराश यह है कि ब्रिटिश पद्धति म प्रमुखता मन्त्रिमण्डल की है । ससद का काय केवल आलोचना करना और नियन्त्रण रखना है। मुख्य बात यह है कि शासन का सचालन होता रहे—शासन सचालन जनहित म हो, यह बाद की बात है । जिन देशो म ससदीय प्रणाली के इस सिद्धान्त के क्रम को बदलकर लोकतन्त्र को प्रधान एव शासन को गौण स्थान दिया गया है वहा ससदीय पद्धति मे अनेक दोष उत्पन्न हो गय हैं, यथा—मन्त्रिमण्डल निबल एव अल्पजीवी हो गये हैं । अत मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का विशुद्ध अथ यह है कि यदि मन्त्रिमण्डल की नीति से जनता या ससद सहमत नही है तो मन्त्रिमण्डल को पदत्याग कर देना चाहिए । परन्तु जब तक ससद या जनता उसको पदारूढ रखना चाहती है उस समय तक वह उसम निरन्तर विश्वास व्यक्त करती रहती है । ऐसी स्थिति म मन्त्रिमण्डल को अपने पद पर बना रहना चाहिए एव ससद को मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व मानते हुए काय करना चाहिए । अत मन्त्रिमण्डल की निरकुशता एव तानाशाही की चचा उनके द्वारा की जाती है जो मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के इस अथ को नही समझत । जनता स्वय शासन सचालन नही कर सकती । अधिक से अधिक वह यह बता सकती है कि शासन अच्छा है या बुरा । यह ब्रिटिश ससदीय प्रणाली का मौलिक एव आधारभूत सत्य है ।

व्यवहार मे मन्त्रिमण्डल पर लोकमत का सदव ही नियन्त्रण रहता है । लोकमत की उपेक्षा करने का साहस शक्तिशाली से शक्तिशाली मन्त्रिमण्डल भी नही कर सकता है। यदि कोई मन्त्रिमण्डल बार बार त्यागपत्र देता है या ससद के विघटन की माँग करता है या जनमत की उपक्षा करता है एव अत्यधिक गोपनीयता बरतता है तो उसके अलोकप्रिय हो जाने का भय है । उस सदव ही जनता की इच्छा एव अपन समथका के हिता का

ध्यान रखना चाहिए और जनहित म शासकीय नीति को आवश्यकतानुसार तुरत परिवर्तित कर देना चाहिए अन्यथा परिणाम भयकर हो सकते हैं । 1931 ई मे श्रमदलीय मन्त्रिमण्डल को अपन सहयोगिया—स्नाडीन, थॉमस एव हेन्डरसन के विद्रोह के कारण ही पदत्याग करना पडा था ।[43] 1934 ई की राष्ट्रीय सरकार को, जिसे कामन्स म असाधारण बहुमत प्राप्त था, बेराजगार सहायता अधिनियम के कारण पद त्याग करना पडा था । 1935 ई म कुत्सित होर लावेल पक्ट के कारण विदेश मन्त्री समुअल होर को पदत्याग करना पडा था । 1937 ई मे चम्बरलेन की गलत विदेश नीति का जनता न विरोध किया, फलस्वरूप उन्ह अपन पद स हटना पडा था । स्वेज नहर क प्रश्न पर प्रधानमन्त्री एन्थानी ईडन को प्रधानमन्त्री पद स हटना पडा यद्यपि उनके दल का बहुमत था । यह सब उदाहरण इस मत की पुष्टि करते है कि मन्त्रिमण्डल का जनता की नाडी पर सदैव ही हाथ रखना चाहिए । जनता के विरोध म मन्त्रिमण्डल का अन्त निश्चित है । अत लावेल[44] का यह कथन पूणरूपेण सत्य है कि मन्त्रिमण्डल की निरकुशता का कारण सावजनिक लोकप्रियता है, उसकी निरन्तर ही आलाचना होती रहती है तथा जनमत की शक्ति, (सदन के) विश्वास की आवश्यकता एव नवीन निर्वाचना की सम्भावना सदव ही उस (मन्त्रिमण्डल) का व्यवस्थित करती रहती है । मन्त्रिमण्डल भी आलोचना के प्रति सदैव सजग रहता है एव उसकी कभी उपक्षा नही कर सकता । फाइनर का निम्न मत ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली के सन्दम म महत्वपूण है "ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था शीघ्रगामी, गतिशील, विवकी एव उत्तरदायी नतृत्व प्रदान करती है । इस पर नियन्त्रण रखा जा सकता है परन्तु इसका दमन सम्भव नही है । इससे प्रश्न किये जा सकत हैं परन्तु इसका अविश्वास नही किया जा सकता । राजनीतिक द्वेष होत हुए भी इसके सदस्या म व्यक्तिगत ईर्ष्या नही होती । इस पर उत्तरदायित्व की शक्ति, इसकी सस्थाओ एव अनुमतियो द्वारा नियन्त्रग रखा जा सक्ता है ।"[45]

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री

मोर्ले[46] के अनुसार ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डलीय मेहराब की आधारशिला

---

43 स्मरणीय है 1931 ई मे कॉमन्स म दलीय स्थिति निम्नवत थी अनुदार दल—260, उदार दल 59 एव श्रम दल 288 । इस समय रेमजे मक्डोनल्ड प्रधानमन्त्री थ । हेन्डरसन के नेतृत्व म कुछ श्रमदलीय सदस्या ने विद्रोह कर दिया । फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया था ।

44 Lowell *The Government of England*, Vol I, p 355

45 Finer *op cit*, p 621

46 The Prime Minister is the keystone of the cabinet arch"—Lord Morley *Life of Walpole* (1913) cited by Ramsay Muir *op cit*, p 63

है। "यद्यपि मन्त्रिमण्डल के सभी मन्त्रियों का स्तर समान होता है और वे सभी एक स्वर में बोलते हैं तथा मतदान के समय 'एक व्यक्ति एक मत' के अनुसार मतगणना की जाती है परन्तु मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष अपने समकक्षों में प्रथम (primus inter pares) होता है। वह अपने पद पर रहते हुए असाधारण एवं विचित्र सत्ता का उपभोग करता है।"[47] विलियम वर्नोन हरकोट के अनुसार वह तारों के मध्य चन्द्रमा है।[48] मुनरो के अनुसार यह कोई नहीं जानता कि अन्य मन्त्री कहाँ रहते हैं। परन्तु मूर्ख से मूर्ख भी जानता है कि 10 डाउनिंग स्ट्रीट का क्या अर्थ है।[49] प्रधानमन्त्री मन्त्रि परिषद, मन्त्रिमण्डल एवं शासन का प्रमुख होता है। लास्की के अनुसार ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के निर्माण, उसके जीवन एवं मृत्यु के लिए केन्द्रीय स्थिति रखता है।[50] रेमजे म्योर की दृष्टि में मन्त्रिमण्डल राज्य रूपी जहाज का चालक चक्र है और प्रधानमन्त्री उसका चालक है।[51]

प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का प्रमुख एवं शासन का प्रधान होता है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का पद विकास का परिणाम है एवं अभिसमय पर आधारित है। हनोवर वंश के काल में प्रधानमन्त्री के पद का उदय हुआ था। जॉर्ज प्रथम जर्मन भाषा नहीं जानता था। उसने मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करना छोड़ दिया था। वरिष्ठ मन्त्री उसके स्थान पर मन्त्रियों की बैठक की अध्यक्षता करने लगा था। सर वालपोल प्रथम प्रधानमन्त्री थे। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का 1905 ई. में शासकीय कागजातों में प्रथम बार उल्लेख मिलता है। इस वर्ष एक राजघोषणा के अनुसार यार्क के आर्कबिशप के पश्चात उसे वरिष्ठता प्रदान की गयी थी।[52] प्रधानमन्त्री को First Lord of Treasury (कोषागार के प्रथम लॉर्ड) के रूप में वेतन मिलता था। 1937 ई. में क्राउन एक्ट (Ministers of Crown Act) के द्वारा प्रधानमन्त्री एवं कोषागार के प्रथम लॉर्ड के वेतन का स्पष्ट उल्लेख करके स्पष्ट रूप से प्रधानमन्त्री को विधिक मान्यता

---

47 *Ibid*, p 157

48 '*Inter Stellas Luna Minores*'—Sir William Vernon Harcourt cited by Ogg and Zink *op cit*, p 90

49 "No one knows and no one cares where other Ministers dwell but the fool of fools knows the meaning of the 10 Downing Street' —Munro *The Governments of Europe*, 1954 p 75

50 ' The Prime Minister is central to its formation, central to its life and central to its death —Laski *Parliamentary Government in England* pp 228 229

51 The cabinet is in short the streering wheel of the ship of the state the steersman is the Prime Minister —Ramsay Muir *How Britain is Governed, op cit*, p 63

52 इससे पूर्व बर्लिन सन्धि में डिजरेली (लॉर्ड बेकन्सफील्ड) को First Lord of Her Majesty's Treasury and Prime Minister कहा गया था।

प्रदान की गयी है। उसे 10 हजार पौण्ड प्रति वर्ष वेतन प्रदान किया जाता है तथा समस्त भूतपूर्व प्रधानमन्त्रियों को 2 हजार पौण्ड प्रति वर्ष पेंशन के रूप में प्राप्त होते हैं।

ब्रिटिश परम्परा के अनुसार प्रति नवीन निर्वाचन के पश्चात सम्राट कामन्स सभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त करता है।[53] ग्रेट ब्रिटेन में द्विदलीय पद्धति होने के कारण सम्राट को बहुमत दल के नेता को चुनना कठिन कार्य नहीं है, परन्तु तीन या अधिक दलों के विकसित होने पर कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। कॉमन्स सभा में बहुमत दल के नेता की स्थिति अस्पष्ट होने की दशा में ही प्रधानमन्त्री के चयन में सम्राट को स्वविवेकीय शक्ति प्राप्त होती है। 1894 ई में प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टोन के त्यागपत्र के पश्चात उदार दल का कोई स्पष्ट नेता न होने की स्थिति में सम्राट ने स्वविवेक से प्रधानमन्त्री का चयन किया था। सम्राट द्वारा ऐसे व्यक्ति को ही प्रधानमन्त्री के पद पर चुना जाना चाहिए जो स्थायी शासन का निर्माण कर सके तथा कॉमन्स सभा का विश्वास अर्जित कर सके। जब कामन्स सभा में दलों की अस्पष्ट स्थिति के फलस्वरूप प्रधानमन्त्री का चयन करना असम्भव होता है तो सम्राट या राजा को इस सम्बन्ध में स्वविवेकीय शक्ति प्राप्त हो जाती है। 1931 ई में श्रमदलीय प्रधानमन्त्री रमजे मक्डोनल्ड को श्रम दल से निष्कासित करके हेण्डरसन को दल का नेता चुना गया था। कॉमन्स में श्रम दल के 289 सदस्यों में से 16 सदस्यों ने विद्रोह कर दिया था। देश की वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने के सम्बन्ध में प्रस्तावित उपायों पर मन्त्रिमण्डल में उत्पन्न मतभेद विद्रोह का कारण था। 23 अगस्त, 1931 ई को रैमजे मैकडोनल्ड ने पदत्याग कर दिया। सामान्य परिस्थितियों में प्रधानमन्त्री के पदत्याग करने पर राजा को कुछ निश्चित अभिसमयों के अनुसार विरोधी दल के नेता को नवीन मन्त्रिमण्डल के निर्माण हेतु आमन्त्रित करना चाहिए। अतः रैमजे मक्डोनल्ड के पदत्याग के पश्चात या तो अनुदार दल के नेता बाल्डविन को या श्रम दल के नये नेता हेण्डरसन को प्रधानमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित करना चाहिए था। परन्तु सम्राट जॉर्ज पंचम ने रैमजे मक्डोनल्ड से वित्तीय सकट-काल में राष्ट्र का साथ देने की अपील की एवं अनुदार और उदार दल के अतिरिक्त श्रम दल के उन सभी सदस्यों का सहयोग राष्ट्रीय सरकार के निर्माण हेतु प्राप्त करने का प्रयत्न किया जो उसके लिए तैयार थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि राजा ने अनुदार एवं श्रमदलीय नेताओं से भी ऐसी ही अपील की थी।[54] फलस्वरूप रैमजे मक्डोनल्ड को पुनः प्रधानमन्त्री चुन लिया गया और उन्होंने राष्ट्रीय सर

53 महारानी विक्टोरिया ग्लेडस्टोन को व्यक्तिगत रूप से पसन्द नहीं करती थी परन्तु उन्हें ग्लेडस्टोन को बहुमत दल का नेता होने के कारण चार बार प्रधानमन्त्री पद पर आमन्त्रित करना पड़ा था।

54 Mr Sidney Webb (Colonial Secretary in Mr Macdonald's Cabinet) quoted by Laski *op cit*, p 234

कार का निर्माण किया। लास्की के अनुसार राजा के द्वारा रमजे मक्डोनल्ड को प्रधानमन्त्री पद के लिए तैयार करना उसके सवधानिक दायित्व के अनुरूप नही था। "नवीन मन्त्रिमण्डल का स्वरूप राजमहल की क्रान्ति के सदृश्य ठीक उसी प्रकार था जैसे कि 1763 ई मे लॉडबूट को प्रधानमन्त्री बनाया गया था।"[55] लास्की का मत है है कि रेमजे मक्डोनल्ड को राष्ट्रीय सरकार का प्रधानमन्त्री बनाना सवथा अनुचित था क्योकि वे दलीय प्रतिनिधि के रूप मे प्रधानमन्त्री नही बने थे। दल ने उह नेता पद से निष्कासित कर दिया था। अत उपलब्ध सूचनाओ के आधार पर मक्डोनल्ड की नियुक्ति वस्तुत राजा की इच्छा का परिणाम थी। स्मरणीय है कि सिडनी वेब एव जेनिंग्स ने सम्राट जॉज पचम के काय को पूणरूपेण सवधानिक ठहराया है क्योकि उदारवादी नेता समुअल तथा अनुदारवादी नेता बाल्डविन दोनो ने आमन्त्रित किये जान पर मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने से इकार कर दिया था। अत राजा द्वारा मैक्डोनल्ड के अतिरिक्त किसी अन्य को नियुक्त करने का विकल्प नही था। परन्तु राजा द्वारा हे डरसन को मन्त्रिमण्डल के निर्माण हेतु आमन्त्रित न करन का कोई औचित्य नही था। लास्की ने इस सम्पूण घटना से यह निष्कप निकाला है कि *अस्थिर राजनीतिक सकट के समय प्रधानमन्त्री के चयन म राजा का महत्व अत्यधिक* हो जाता है।[56] मैक्डोनल्ड को पुन प्रधानमन्त्री बनाने म राजा का प्रमुख हाथ था। उन्होने ही बाल्डविन एव हवट सेमुअल को मक्डोनल्ड को प्रधानमन्त्री बनाने क लिए तैयार किया था। मक्डोनल्ड को राजा के द्वारा चुना गया था। उस कोई दलीय समथन नही था। सविधान शास्त्री कीथ ने राजा के कदम के समथन म निम्न दो तक दिये हैं प्रथम देश के स्वणमान की रक्षा, तथा द्वितीय आगामी निर्वाचना म राष्ट्रीय सरकार का स्पष्ट बहुमत प्राप्त होना। लास्की के अनुसार प्रथम तक का अथ यह हुआ कि "राजा अपने किसी विचार क लिए बहुमत प्राप्त करन का प्रयत्न कर सकता है। यही जाज तृतीय की नीति थी। इसका स्वाभाविक अथ यह है कि राजा तटस्थ नही है।" यह ससदीय व्यवस्था का निषेध है। राजा नाममात्र का अध्यक्ष होता है। द्वितीय तक अपने आप मे ही आधारहीन है। यह तो राजा के काय को बाद म उचित ठहराना है। इसका अथ यह हुआ कि "राजा द्वारा निर्मित मन्त्रिमण्डल यदि निर्वाचना म बहुमत प्राप्त करन म सफल हाता ह ता राजा का काय सवैधानिक होगा। लास्की के अनुसार यह खतरनाक सिद्धात है।[57]

सिद्धा त म प्रधानमन्त्री अपन सहयोगिया का चुनन म स्वतन्त्र है परन्तु व्यवहार म उस अनक नियन्त्रणा के अधीन काय करना पडता है। दलीय हित के साथ-साथ

---

55 Laski *Parliamentary Government*, p 235
56 Laski *op cit*, p 236
57 Laski *op cit*, pp 405-407

देश क सभी औद्योगिक क्षेत्रा, वर्गों, हिता, धर्मा एव योग्य दलीय नेताओ को मन्त्रिमण्डल म प्रतिनिधित्व देना आवश्यक होता है । इसके अतिरिक्त सभी मन्त्री ससद म स ही चुने जान चाहिए । यदि नियुक्ति के समय कोई मन्त्री ससद का सदस्य नही होता तो 6 माह के भीतर उस ससद के लिए निर्वाचित हो जाना चाहिए । प्रधानमन्त्री लॉर्ड सभा के सदस्या म भी कुछ सदस्या को मन्त्रिमण्डल म शामिल करता है । लार्ड सभा का अध्यक्ष—लॉर्ड चान्सलर—अनिवार्यत मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है । मन्त्रिमण्डल के निर्माण म प्रधानमन्त्री को योग्यता एव क्षमता दोना म समन्वय करना पडता है । लावेल के अनुसार प्रधानमन्त्री द्वारा मन्त्रिमण्डल का निमाण विभिन्न प्रकार के असमान एव विभिन्न शक्ला के टुकडा से किसी वस्तु के निर्माण के समान है ।[58] लास्की ने निम्न शब्दा म बडे सुन्दर रूप म इस स्थिति की समीक्षा की है 'उसे अनेक परिस्थितियो को ध्यान म रखना पडता है । दल के नेता के रूप मे वह कुछेक साथिया की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योकि उनकी उपस्थिति दलीय शासन के लिए अपेक्षित है । उसके कुछ साथी इतने महत्वपूर्ण हो सकते हैं कि वे जिस विभाग का लेना चाहे उन्हे उसे वही विभाग देना पडता है । वास्तव मे वह एक सावयवी इकाई का निमाण करता है जिसके सदस्य एक दूसरे के कार्यों के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व वहन करने का तत्पर रहते है ।"

"प्रधानमन्त्री को राजा की भी स्वीकृति प्राप्त करनी पडती है । परम्परा के अनुसार नियुक्तिया क सम्बन्ध म विचार विमश करना राजा का मौलिक अधिकार है । इस प्रकार राजा भी अपने विचारा से (मन्त्रिमण्डल के निर्माण को) प्रभावित कर सकता है ।"

"प्रधानमन्त्री का विवेक एव प्रभाव निर्णायक हाता है । लेकिन विभागा क वितरण क सम्बन्ध म वह प्रमुख साथिया की उपक्षा नही कर सकता । उसे एक एसी टीम का निर्माण करना पडता है जो सफलतापूवक काय कर सके एव जो दल का भी स्वीकार हो ।"[59]

प्रधानमन्त्री की शक्तिया

प्रधानमन्त्री ग्रेट ब्रिटेन एव उसके साम्राज्य का राजनीतिक शासक हे । ब्रिटिश प्रशासन का प्रमुख है । रेमजे म्योर के अनुसार, "उसकी शक्तिया की विधिक व्याख्या प्राप्त नही है परन्तु उसको जितनी व्यापक शक्तिया प्राप्त ह उतनी विश्व के किसी भी

58 'His work is like that of constructing a figure out of blocks which are too numerous for the purpose and which are not of shapes to fit perfectly together —Lowell *The Government of England*, Vol I, p 57 (Cited by Ogg & Zink *Modern Foreign Governments* 1956 p 85)

59 Laski *Parliamentary Government in England*, pp 236 238

सवधानिक शासक, यहा तक कि अमेरिकी राष्ट्रपति को भी प्राप्त नही है।" वह अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति है। सम्पूण प्रशासन के लिए वह उत्तरदायी है।

(1) वह मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष एव नेता है। ब्रिटिश सम्राट की सहमति स वह मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को नियुक्त करता है। उन्हे वह पदच्युत भी कर सकता है। उनके मध्य विभागो का वितरण करता है। विभिन्न मन्त्रालयो म उत्पन्न मत भेदो का समाधान एव विभागो के कार्यों म समन्वय करता है तथा उनकी कठिनाइयो को दूर करता है। सभी मन्त्री उससे परामश करते हैं। मन्त्रिमण्डल की बैठको की अध्यक्षता करता है। वह इस बात पर दृष्टि रखता है कि सभी विभाग मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृत नीति का पालन करते हैं एव स्वेच्छापूवक विभाग की नीति का निर्धारण नही करते। मन्त्रिमण्डल के निणयो को क्रियान्वित करना उसी का दायित्व होता है।

(2) प्रधानमन्त्री को नियुक्ति सम्बन्धी व्यापक शक्तिया प्राप्त हैं। राज्य एव साम्राज्य की सभी उच्च नियुक्तिया वास्तव म प्रधानमन्त्री द्वारा ही की जाती हैं। राजदूतो, मन्त्रियो तथा 1947 ई के पूव भारत क गवनर जनरल एव गवनरो आदि पदाधिकारियो की नियुक्ति प्रधानमन्त्री द्वारा ही की जाती है। वह साम्राज्यीय सुरक्षा समिति जसी समितियो की भी स्थापना करता है। युद्धकाल मे विभिन्न विभागो के कार्यों के मध्य समन्वय स्थापित करने वाली सुरक्षा समिति का वह अध्यक्ष होता है। वह मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय पर नियन्त्रण रखता है तथा समय समय पर उससे परामश एव विचार विमश करता है।

(3) प्रधानमन्त्री कॉमन्स सभा का नेता[60] और शासन का प्रमुख अधिवक्ता होता है एव समस्त शासकीय नीतियो पर वह अधिकारपूवक निणय देता है। उसका विश्लेषण एव वक्तव्य सम्बन्धित विषय पर प्रामाणिक एव अन्तिम माना जाता है। कामन्स सभा का कायक्रम वही तयार करता है। वही यह निश्चय करता है कि ससद के अधिवेशन कब और कितने समय के लिए बुलाये जायें। ससद का काय विवरण भी वही निश्चित करता ह। शासकीय एव व्यक्तिगत सदस्यो से सम्बन्धित कार्यों के लिए समय-विभाजन भी उसी की सहमति से किया जाता है। ससद के गुप्त अधिवेशन का समय भी वही निश्चित करता है। उसे कॉमन्स सभा के विघटन की माग करने की शक्ति प्राप्त है। लॉड एव अन्य उपाधियो को देने के सम्बन्ध म भी सम्राट को वही अन्तिम रूप से परामश देता है।

(4) दश की विदेश नीति का वह प्रमुख निमाता है। वदशिक एव सम्पूण

---

60 1942 ई तक प्रधानमन्त्री कामन्स सभा का नतृत्व करता था परन्तु इस वष प्रधानमन्त्री क कायभार को कम करन क लिए श्री आर ए बटलर को कामन्स सभा का नता बना दिया गया था। तब स यह प्रथा चल पडी है कि प्रधानमन्त्री एव कामन्स सभा क नता दो पृथक-पृथक व्यक्ति हो सकत हैं। परन्तु इससे प्रधान मन्त्री क दायित्वो म कोई कमी नहीं आती है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नो पर शासन का वह अधिकृत वक्ता होता है। यद्यपि वह विदेश मन्त्री नही होता परन्तु उसका विदेश नीति के निर्माण एव क्रियान्वयन पर निर्णायक प्रभाव होता है। विदेश नीति सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण घोषणाएँ प्रधानमन्त्री द्वारा ही की जाती हैं। विदेश मन्त्री द्वारा कोई निर्णय करने से पूर्व प्रधानमन्त्री से परामर्श किया जाता है। यह भी सम्भव है कि बिना मन्त्रिमण्डल के विचार विमर्श के केवल प्रधान मन्त्री के परामर्श से ही विदेश मन्त्री कोई कार्य कर सकता है। सर एडवर्ड ग्रे ने 30 जुलाई, 1914 ई को ब्रिटिश तटस्थता विषयक तार प्रधानमन्त्री एस्क्विथ के परामर्श से ही भेजा था। 1914 ई मे जर्मनी को अल्टीमेटम मन्त्रिमण्डल के विचार विमर्श के पूर्व प्रधानमन्त्री की सहमति से ही भेजा गया था। प्रधानमन्त्री का विदेश मन्त्री से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रधानमन्त्री चम्बरलेन स्वय ही अपने कार्यकाल मे विदेश-नीति के निर्माता थे। वे स्वय ही म्यूनिख पेक्ट के लिए उत्तरदायी थे। स्वेज सकट (1956 ई) के लिए प्रधानमन्त्री एन्थनी ईडन उत्तरदायी थे। श्री चर्चिल द्वितीय विश्वयुद्ध काल मे विदेश नीति के निर्णायक थे। विदेशो के राजदूतो का प्रधानमन्त्री द्वारा स्वागत किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे भी वही भाग लेता है।

(5) प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल एव राजा के मध्य कडी का कार्य करता है। मन्त्रि एव राजा के मध्य सभी पत्र-व्यवहार उसके माध्यम से होता है। उपनिवेशो के प्रधानमन्त्रियो से उसका सीधा सम्पर्क होता है। सम्राट एव मन्त्रिमण्डल के मध्य कडी के रूप मे प्रधानमन्त्री महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह मन्त्रिमण्डल के निर्णयो से सम्राट को सूचित करता है एव सम्राट की स्वीकृति प्राप्त करता है। सम्राट को प्रधानमन्त्री द्वारा विभिन्न मन्त्रियो के विचारो को बताना आवश्यक नहीं है। परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी है। उदाहरणार्थ, प्रधानमन्त्री डिजरेली साम्राज्ञी विक्टोरिया को मन्त्रिमण्डल मे होने वाले विचार विमर्श की विस्तृत सूचना दिया करते थे। परन्तु यह रीति उचित नहीं है। इससे सम्राट के हृदय मे उस मन्त्री के प्रति सन्देह उत्पन्न हो सकता है जिसके विचार उसके विचारो के अधिक निकट नही होते हैं। सम्राट के हृदय मे सभी मन्त्रियो के लिए समान सद्भाव रहना चाहिए। अत यह आवश्यक है कि प्रधानमन्त्री सम्राट को मन्त्रिमण्डल की बैठको का विवरण न दे। यदि वह ऐसा करता है तो एक प्रकार से वह अपने सहयोगी मन्त्रियो के प्रति विश्वासघात का दोषी समझा जा सकता है।

(6) वह दल का प्रमुख नेता एव ससदीय दल का प्रमुख होता है। ससद मे अपने दल एव विरोधी दल के सदस्यो से निरन्तर सम्पर्क रखता है। वह दल की केन्द्रीय समितियो एव सगठनो का प्रमुख होता है। दलीय प्रचार मे वह पूर्ण सक्रिय रहता है।

प्रधानमन्त्री की स्थिति

प्रधानमन्त्री देश का यथार्थ शासक है। फाइनर के अनुसार प्रधानमन्त्री की

प्रमुखता के कारण मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता, ससद का नेतृत्व, सम्राट के साथ व्यवहार म प्रमुख कडी की स्थिति एव उसका प्रमुख दलीय नेता होना आदि हैं। वह सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का मूर्तिमान रूप है।[61] देश मे होने वाले सामान्य निर्वाचन वास्तव मे प्रधानमन्त्री के निर्वाचन होते है।[62] 1880 ई के निर्वाचनो म ग्लैडस्टोन ने डिजरायली के प्रशासन की तीव्र आलोचना की थी। अपनी व्यक्तिगत लोकप्रियता क परिणामस्वरूप ही ग्लैडस्टोन 1880 ई मे विजयी हुए थे। 1945 ई के निर्वाचनो मे प्रधानमन्त्री चर्चिल ने मतदाताओ से व्यक्तिगत रूप म अपने दल को विजयी बनाने की अपील की थी। स्मरणीय है कि 1945 ई म अनुदार दल ने कोई चुनाव घोषणा पत्र जारी नही किया था, अपितु प्रधानमन्त्री चर्चिल ने व्यक्तिगत रूप म एक घोषणा पत्र प्रचारित किया था। अनुदार दलीय उम्मीदवारो न अपने को चर्चिल का प्रत्याशी घोषित किया था। चुनाव प्रचार के मैदान म 'चर्चिल बनाम लास्की', 'चर्चिल या विनाश' आदि नारे लगाये गये थे।

जेनिंग्स के अनुसार, 'प्रधानमन्त्री केवल समकक्षो म प्रथम नही है, न वह जसा हरकोर्ट न कहा है, तारा के मध्य चन्द्रमा है। अपितु वह सूय है जिसके चारो तरफ अन्य नक्षत्र घूमते हैं।[63]

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के सन्दभ मे लास्की का निम्न कथन महत्वपूण है "प्रधानमन्त्री वह धुरी है जिसके चारा तरफ सम्पूण शासनतन्त्र घूमता है। वह कार्यपालिका के प्रभावशाली भाग का अध्यक्ष है। वह विभागो के मध्य मतभेदा को दूर करता है, राजा की अनुमति से किसी भी मन्त्री स त्यागपत्र माग सकता है, तथा महत्वपूर्ण नियुक्तिया के सन्दभ म उसका मत निर्णायक होता है। वह सभी विभागा, विशेषकर विदेश विभाग पर दृष्टि रखता है एव नीति के समन्वयकर्ता के रूप म काय करता है। वह कॉमन्स सभा का नेता हाता है एव सामान्य सदस्या द्वारा कठिनाई स ही सामान्य मन्त्री के निणय के अतिरिक्त अपील की जाती है। वह सम्राट एव मन्त्रिमण्डल के मध्य प्रभावकारी कडी है। कॉमन्स सभा म उसके शब्द ही विधि हैं। उपरोक्त कथन के सन्दभ म उसके विरुद्ध विद्रोह उस समय तक कठिन ही होता है जब तक उसन अपन कार्यों म (अपन विरुद्ध) व्यापक असन्तोष उत्पन्न न कर लिया हो।"[64]

प्रधानमन्त्री का पद उसका धारण करन वाल के व्यक्तित्व पर निभर करता

---

61 Finer *Theory & Practice of Modern Government*, pp 592 93

62 "A General Election is, in reality, the election of Prime Minister The elector has a choice between Gladstone and Disraeli Salisbury and Rosebery, Balfour and Campbell Bannermann Asquith and Balfour Mcdonald and Henderson, Churchill and Attlee —Jennings *The British Constitution*, p 162

63 Jennings *Cabinet Government*, pp 183 184

64 Laski *Parliamentary Government in England*, pp 239-41

। लॉर्ड सलिसबरी अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यो पर भली प्रकार नियन्त्रण भी नही
र सक थे । लॉर्ड रोजबरी की भी यही स्थिति थी परन्तु डिजरायली, ग्लेडस्टोन एव
र्चिल की सत्ता को उनके सहयोगियो मे से कोई चुनौती देने वाला नही था । प्रधान
न्त्री की योग्यता, जानकारी का व्यापक क्षेत्र, अध्यक्ष के रूप मे उसकी योग्यता, शीघ्र
कार्य एव निणय करने की क्षमता, पूण महत्व एव महत्वहीन कार्यो मे अन्तर करने की
शक्ति आदि का उसके पद, शक्ति एव प्रभाव पर व्यापक प्रभाव पडता है । युद्ध-काल
म उसकी शक्ति का क्षेत्र आश्चयजनक रूप म अत्यधिक बढ जाता है । आधुनिक काल
म शासन के कायक्षेत्र मे वद्धि के कारण प्रधानमन्त्री केवल नीति सम्बन्धी सामान्य रूप
रखा ही निर्धारित कर पाता है । परन्तु लास्की के मतानुसार इससे प्रधानमन्त्री की
शक्ति स कमी नही आयी है ।[65] सामान्य निर्वाचनो मे प्रधानमन्त्री को राष्ट्रीय आधार
प्राप्त हो जाता है और जब तक वह प्रधानमन्त्री है कोई उसको चुनौती नही दे सकता ।
'दल उसके व्यक्तित्व पर आधारित होता है और जब तक दल पर उसका पूण नियन्त्रण
हाता है कोई उसका विरोध नही कर सकता ।'[66]

प्रधानमन्त्री की स्थिति इतनी महत्वपूण होने पर भी, फाइनर[67] के शब्दा म, "वह सीजर नही है । वह ऐसा देवता नही है जिसे चुनौती नही दी जा सके । उसके विचार आदेशा के सदृश्य नही होते है । वह सदैव इस दया पर निभर रहता है कि उसके द्वारा निश्चित ही लाभदायक सेवा की जा रही है या नही । किसी भी क्षण उसको कोई विरोधी अपदस्थ कर सकता है ।" आधुनिक काल मे उसकी सत्ता म असा धारण वृद्धि हुई है । प्रो चेस (Prof Chase) का कथन है कि आधुनिक वर्षा म प्रधान-मन्त्री की स्थिति अद्ध अध्यक्षात्मक (Quasi Presidential) हो गयी है । इसका अथ है कि प्रत्यक्ष रीति से निवाचित होने के कारण वह अपने (मन्त्रिमण्डल के) सदस्यो एव ससद से स्वतन्त्र अपने पद का उपभोग करता है । लेकिन प्रो लास्की[68] इस मत को स्वीकार नही करते । उनके अनुसार यह कहना उचित नही है कि "ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति के समान है । दलीय सगठन के परिपेक्ष्य मे उसकी स्थिति प्रभावपूण है । सुनिश्चित रूप मे प्रदत्त विधिया उसकी शक्ति का आधार नही है । लेकिन मैं समझता हूँ कि मन्त्रिमण्डल पर जितना अधिक प्रधानमन्त्री का नियन्त्रण होता है उतना ही अधिक ससदीय प्रणाली के सफलतापूवक चलने की आशा

---

65 Laski *op cit*, pp 239 41
66 *Ibid*
67 'The Prime Minister is not a Caesar He is not an unchallengable oracle, his views are not dooms, he is always on sufferance, its terms are whether he can render indubitably useful service At any time a rival may supplant him "—Finer *op cit*, p 581
68 Laski *op cit*, p 241

होती है ।" प्रधानमन्त्री की स्थिति के सन्दर्भ मे निम्न बातो को सदैव ध्यान म रखना चाहिए

(1) प्रधानमन्त्री की स्थिति, शक्ति, प्रभाव एव शासनतन्त्र म स्थान उसके व्यक्तित्व एव साथियो के साथ उसके सम्बन्धो पर निर्भर करता है । एस्क्विथ, लायड जॉज एव चर्चिल की स्थिति प्रधानमन्त्री की विधिक शक्तियो की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व एव दल मे उनके असदिग्ध एकाधिकारी नेतृत्व पर निभर थी ।

(2) प्रधानमन्त्री को यदि दल के बहुमत का समथन प्राप्त नही है ता उसके लिए प्रधानमन्त्री रहना असम्भव है । अत उसे सदैव जनता की नाडी पर अपना हाथ रखते हुए दल की आवश्यकताओ के प्रति पूण सजग रहना चाहिए ।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री, बेजहोट के अनुसार, शासन विधान के सफल एव कुशल अग का प्रधान है । सिडनी लो के अनुसार, "वह जमन सम्राट तथा अमेरिकी राष्ट्रपति एव सयुक्त राज्य की काग्रेस की समितियो के सभापतियो से भी अधिक शक्तिशाली होता है ।' वैधानिक शासका म वह विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली शासक है ।

19

फ्रास, जर्मनी एव सोवियत रूस की कार्यपालिका

[EXECUTIVES OF FRANCE, GERMANY & SOVIET RUSSIA]

इस अध्याय मे महाद्वीपीय देशा—फ्रास (तृतीय, चतुथ एव पचम गणराज्य), *जमनी एव सोवियत रूस (स्टालिन सविधान) की कायपालिकाओ के स्वरूप एव प्रकृति का विश्लेषण किया गया है।*

फ्रान्सीसी कार्यपालिका
[FRENCH EXECUTIVE]

फ्रा स को सवैधानिक प्रयोगा की प्रयोगशाला की सज्ञा दी जाती है। फ्रा स की वतमान शासन व्यवस्था एव उससे सम्बन्धित समस्याओ को समभने के लिए फ्रा स के सवधानिक विकास पर दृष्टि डालना हितकर होगा। निरकुश राजत त्र स सावि-धानिक शासन के विभिन्न अनुभवो के पश्चात ही फ्रा स म ससदीय शासन की स्थापना सम्भव हुई थी। दूसरे शब्दा म निरकुशत त्र से सवशक्तिमान व्यवस्थापिका एव कायपालिका की तानाशाही के अनुभवो के पश्चात ही ससदीय शासन की स्थापना हुई थी। 1789 ई की राज्यक्रान्ति के पश्चात निर्मित 1791 ई के सविधान के अधीन निरकुश बोरवन-वशीय राजत त्र को सीमित राजत त्र म परिवर्तित कर दिया गया था। राजा को विधि निर्माण एव व्यवस्थापिका को भग करने की कोई शक्ति प्राप्त नही थी। म त्रीगण सिद्धा तत राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे लेकिन उन पर उच्च यायालय म अभियोग भी लगाया जा सकता था। विधि निर्माण, करारोपण, युद्ध की घोषणा एव शान्ति सम्ब धी अधिकार व्यवस्थापिका को प्राप्त थे। व्यवस्थापिका एक-सदनीय थी। दो वष के लिए इसके 745 सदस्य प्रत्यक्ष कर देन वाले मतदाताओ द्वारा सीमित मात्रा म चुन जात थ। यायाधीश निर्वाचित होत थे। स्थानीय शासन लोकत त्रीय सिद्धा त पर पुन सगठित किया गया था। यह सविधान बहुत समय तक सन्तोष रूप म न च न सका। लुई अठारहवे की कमजोरी एव अस्थिरता ने इस सविधान के सचालन सम्ब धी कठिनाइयाँ बढा दी थी। व्यवस्थापिका सभा न लुई सोलहवें को

लेकिन प्रथम काउ सल वास्तविक सत्ता का उपभोग करता था। व्यवस्थापिका मे सीनेट सर्वोच्च थी एव किसी भी विधेयक को वह असवधानिक घोषित कर सकती थी। सीनेट एक मनोनीत सदन था। व्यवहार म प्रथम काउ सल की इच्छा ही अन्तिम होती थी। 1804 ई म नेपोलियन न सम्राट की उपाधि धारण की। 1815 इ मे नेपोलियन की पराजय के वाद फ्रास म वोरवन वश की स्थापना हुई और 15 वर्षों तक फ्रास म निरकुश राजतन्त्रीय शासन चलता रहा। 1930 ई मे द्वितीय क्रान्ति हुई। लुई फिलिप को सिंहासनारूढ किया गया तथा उसे सीमित शक्तियाँ प्रदान की गयी। फ्रास म इसके साथ सीमित राजत त्र की स्थापना हुई। मध्यम वग को मताधिकार प्रदान किये गये। राजा फ्रेंचवासिया का राजा था न कि फ्रास का। मन्त्रियो को एक सीमा तक व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया। व्यवस्थापिका को विधि निर्माण सम्व धी व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी। लुई फिलिप के शासन को 'नागरिक राजतन्त्र' (Citizen Monarchy) की सज्ञा दी जाती है।

द्वितीय फ्रेंच गणराज्य (1848 1852 ई)

1848 ई की फ्रेच क्रान्ति के फलस्वरूप द्वितीय फ्रेच गणराज्य का जन्म हुआ था। यह गणराज्य अल्पकालीन था। 1852 ई मे फ्रा स प्रशा युद्ध के कारण इसका पतन हो गया। द्वितीय फ्रेंच गणतन्त्रीय सविधान ने ससदीय शासन की स्थापना की थी। इसका निर्माण सविधान सभा द्वारा किया गया था। ससदीय शासन-व्यवस्था केवल नाममात्र की थी। व्यवस्थापिका एकसदनीय थी। इसके 750 सदस्य तीन वप के लिए प्रत्यक्ष रीति से 21 वप या उससे अधिक आयु के पुरुष नागरिको द्वारा चुने जाते थे। कायपालिका शक्ति राष्ट्रपति मे अधिष्ठित थी जो चार वप के लिए प्रत्यक्षत जनता द्वारा चुना जाता था। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मन्त्रीगण असेम्वली के प्रति उत्तरदायी होते थे। असेम्वली को राष्ट्रपति भग नही कर सकता था। राष्ट्रपति को विधिया प्रस्तावित करने का अधिकार था। प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति के समक्ष असेम्बली की स्थिति गौण हो गयी थी। लुई नेपोलियन जसे प्रभावशाली व्यक्तित्व को राष्ट्रपति चुना गया था। 1852 ई म सनिक क्रान्ति द्वारा लुई नपोलियन ने अधिनायकतन्त्रीय शक्तियाँ प्राप्त कर ली थी, फलस्वरूप मन्त्रिया को राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी वना दिया गया और राष्ट्रपति का कायकाल 10 वप निश्चित कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त लुई नेपोलियन ने अपने का सम्राट भी घोषित कर दिया था। उसने नेपोलियन वोनापाट के समय की काउन्सलेट की भाति के सविधान को लागू किया लेकिन जन विरोध के कारण सम्राट को उदार नीतिया का अनुगमन करना पडा। इसकी चरम परिणति मई 1870 ई के सविधान मे हुई। इस सविधान के अन्तगत मन्त्रीगण जो दोना सदना के सदस्य होत थे व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी ठहराये गये। सम्राट मन्त्रि परिपद (Council of Ministers) की अध्यक्षता करता था। व्यवस्थापिका के दाना सदना एव काय-

पालिका को विधियाँ प्रस्तावित करने के अधिकार प्राप्त थे। यथार्थ में इस सविधान द्वारा साम्राज्ञीय प्रणाली एवं ससदीय प्रणाली में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया था, लेकिन इस सविधान को स्वीकार करने के 4 माह के भीतर ही द्वितीय साम्राज्य का अन्त हो गया।

तृतीय फ्रेंच गणराज्य (1870 1940 ई)

1870 ई मे तृतीय गणराज्य की घोषणा की गयी। इसके सविधान के निर्माण म आगामी 5 वर्ष लगे थे। तृतीय फ्रेंच गणराज्य का सविधान फरवरी 24, फरवरी 25 एव जुलाई 16, 1875 ई की तीन विधियो म पाया जाता है। इसमे कुल 24 अनुच्छेद है। इस सविधान की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत हैं

(1) एकात्मक शासन की स्थापना की गयी एव समस्त शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार मे अधिष्ठित की गयी थी।

(2) फ्रास को गणराज्य घोषित किया गया और सवैधानिक सशोधन द्वारा इस व्यवस्था मे परिवतन निषिद्ध कर दिया गया था।

(3) सविधान कठोर था। फ्रेंच ससद द्वारा साधारण विधि पारित करने की प्रक्रिया द्वारा इसम इसमे सशोधन सम्भव नही था। सविधान म सशोधन दोनो सदनो द्वारा पृथक पृथक रूप म स्पष्ट बहुमत से पारित किय जाने के पश्चात पुन दोनो सदनो के सयुक्त अधिवेशन (राष्ट्रीय सभा) द्वारा स्पष्ट बहुमत से पारित होने पर ही प्रभावकारी होता था। सविधान की कठोरता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1875 ई से 1940 ई तक केवल तीन सशोधन किये जा सके थे।

(4) तृतीय गणतन्त्रीय सविधान के द्वारा ससदीय शासन की स्थापना की गयी और कार्यपालिका को व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया था। फ्रेंच राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की भाँति नाममात्र का अध्यक्ष था। मन्त्रि परिषद यथार्थ कार्यपालिका थी।

(5) फ्रेंच ससद म दो सदन थे (i) चेम्बर ऑफ डिप्टीज, एव (ii) सीनेट। चेम्बर ऑफ डिप्टीज के 618 सदस्य चार वर्ष के लिए सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होते थे। सीनेट के 314 सदस्य नौ वर्ष के लिए चुने जाते थे एव एक तिहाई सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद अवकाश ग्रहण कर लेते थे।

तृतीय गणराज्य का पतन जुलाई 1940 ई म हो गया। इस दिन विची (Vichy) म चेम्बर ऑफ डिप्टीज एव सीनेट ने अपने सयुक्त अधिवेशन अर्थात राष्ट्रीय सभा के रूप म एक प्रस्ताव पारित किया। इसके द्वारा राष्ट्रीय सभा ने मार्शल पेंता के नेतृत्व मे गणराज्यीय शासन को फ्रेंच राज्य के लिए एक या अधिक अधिनियमों द्वारा नवीन सविधान बनाने का अधिकार प्रदान किया। दूसरे दिन मार्शल पेता ने राष्ट्रपति सम्बन्धी सभी सवैधानिक व्यवस्थाओ को निलम्बित करते हुए स्वय को राष्ट्रपति घोषित कर दिया। उन्होने मन्त्रियो को नियुक्त एव पदच्युत करने की

शक्तियाँ भी अपने हाथो म ले ली। व्यवस्थापिका के अधिवेशन सम्बन्धी समस्त सवैधानिक व्यवस्थाओ को भी समाप्त कर दिया। राष्ट्र विरोधी कार्यों के लिए चेम्बर ऑफ डिप्टीज द्वारा राष्ट्रपति एव मन्त्रिया पर अभियोग लगाने की शक्ति को भी समाप्त कर दिया गया। पेंता फ्रास का अधिनायक बन बैठा। अगस्त 1940 ई म माशल पेता जमनी चला गया। कुछ समय तक यह कठपुतली सरकार सत्तारूढ बनी रही। माशल पेता के विची शासन के विरुद्ध जनरल डिगाल के नेतृत्व मे फ्रेच स्वातन्त्र्य सघष प्रारम्भ हुआ। सितम्बर 1941 ई मे स्वतन्त्र फ्रेच राष्ट्रीय समिति (Free French National Committee) की स्थापना की गयी। इसने 'स्वतन्त्र फ्रास' के नाम पर सघष जारी रखा। अल्जियस म सितम्बर 1943 ई म 84 सदस्यी फ्रेच परामशदायी सभा (Consultative Assembly) का निर्माण किया गया। जून 1944 ई मे फ्रेच राष्ट्रीय समिति ने अपना नाम फ्रेंच गणराज्य की अस्थायी सरकार मे बदल लिया। 25 अगस्त, 1944 ई को फ्रास म जमन सनिको ने आत्मसमपण कर दिया एव जनरल डिगाल के नेतृत्व मे अस्थायी शासन की स्थापना की गयी। प्रथम 14 महीनो मे परामशदायी सभा के होते हुए भी जनरल डिगाल ने मन्त्रियो का खुद ही चुनाव किया था और वे केवल उनके प्रति ही उत्तरदायी थे। स्वतन्त्रता के पश्चात के इन 14 महीना के शासन को 'सहमति से अधिनायकतन्त्र' (Dictatorship by Consent) की सज्ञा दी गयी थी।

द्वितीय युद्धोत्तरकालीन फ्रास के नव सविधान के निर्माण हेतु जून 1946 ई म नवीन सविधान सभा का चुनाव हुआ था। नवीन सविधान को सविधान सभा ने 13 अक्टूबर, 1946 ई को स्वीकार किया एव 27 अक्टूबर 1946 ई से वह लागू हुआ। यह फ्रास के चतुथ गणराज्य का सविधान था जो 1958 ई तक चलता रहा। 1958 ई मे फ्रास के पाचवें गणराज्य का उदय हुआ।

फ्रासीसी मन्त्रिमण्डल

फ्रास के ततीय एव चतुथ गणराज्य के अन्तगत कायपालिका शक्ति राष्ट्रपति एव मन्त्रिमण्डल मे निहित थी। राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष था और मन्त्रिमण्डल यथाथ कायपालिका थी।

ततीय गणराज्य के अन्तगत प्रधानमन्त्री कायपालिका का वास्तविक अध्यक्ष हुआ करता था। वह मन्त्रिमण्डल का भी अध्यक्ष था। मन्त्रियो के लिए व्यवस्थापिका के किसी सदन का सदस्य होना आवश्यक नही था, लेकिन व्यवहार म डिप्टीज एव सीनेटरो मे से ही मन्त्री चुन जाते थे। मन्त्रिमण्डल की सदस्य सख्या सविधान द्वारा निश्चित नही थी। ततीय गणराज्य के अन्तगत मन्त्रिमण्डल या प्रधानमन्त्री को चेम्बर ऑफ डिप्टीज को भग करने एव नवीन निर्वाचन की माँग करने का अधिकार प्राप्त था। इस अधिकार का केवल एक बार मकमाहन सकट (जून 1877 ई) के समय ही प्रयोग किया गया था।

तृतीय फ्रेंच गणराज्य की मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्न वत् थी

(1) फ्रेंच मन्त्रिमण्डल अल्पकालीन रहे थे। इसका कारण बहुदलीय पद्धति थी। सयुक्त मन्त्रिमण्डलो का निर्माण एक अनिवायता बन गयी थी। सयुक्त मन्त्रिमण्डल अपनी प्रवत्ति मे ही अस्थिर होते है। फाइनर के अनुसार "फ्रास म अनेक (राजनीतिक) समूह थे। यदि व्यवस्थापिका मे किसी नेता के हाथ म 10 या 15 मत होते थे तो वह शासन के लिए तानाशाह बन सकता था। 1924-28 ई की ससद मे 10 विभिन्न (राजनीतिक) समूह या ग्रुप एव 31 निदलीय सदस्य थे तथा 1932 ई मे 16 ग्रुप एव 26 निर्दलीय सदस्य थे। किसी दल को निम्न सदन—चेम्बर आफ डिप्टीज—मे कभी स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही हुआ था अत हर सरकार सयुक्त सरकार होती थी।"[1] 1875 से 1925 ई तक फ्रास म 50 मन्त्रिमण्डलो का निर्माण हुआ जबकि इगलैण्ड मे इसी काल म केवल 12 मन्त्रिमण्डल बने थे। अत स्पष्ट है कि सयुक्त मन्त्रिमण्डलो का कायकाल अति अल्प हुआ करता था। फाइनर के अनुसार 1873 से 1940 ई के बीच फ्रास मे 100 मन्त्रिमण्डल बने थे जिनका औसत कायकाल केवल 8 माह से कुछ ही अधिक था। इनमे से कुछ मन्त्रिमण्डल तो एक सप्ताह से भी कम समय के लिए पदारूढ रह सके थे। फ्रास मे मन्त्रिमण्डलीय अस्थिरता का भली प्रकार अनुमान तो हमे ततीय गणराज्य के चार दीघकालीन मन्त्रिमण्डलो के कायकाल की तुलनात्मक समीक्षा से ही ज्ञात हो सकता है। वाल्डक रूसो (3 वष), कोम्बस ($2\frac{1}{2}$ वष) तथा क्लीमेन्सा (दो बार 3 3 वष) के मन्त्रिमण्डल कुल मिलाकर केवल 11 वष तक सत्तारूढ रहे थे।[2]

(2) इगलैण्ड म एक मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र के पश्चात नवीन मन्त्रिमण्डल के निमाण के साथ प्राय नये मन्त्री पदारूढ होते हैं। फ्रास मे ऐसी स्थिति नही है। फ्रच मन्त्रिमण्डल मे परिवतन का अथ केवल ताश के पत्ता का फेंटना न होकर उनका बदलना हुआ करता था। पदत्याग करने वाले मन्त्रिमण्डल के अनेक सदस्य सामान्यत नये मन्त्रिमण्डल म पद ग्रहण करते थे। अक्टूबर 1933 ई म डालेदियर मन्त्रिमण्डल क पतन के पश्चात मन्त्रिमण्डल के एक सदस्य Sarranst न नवीन मन्त्रिमण्डल बनाया था। इस नये मन्त्रिमण्डल म 18 मे से 12 सदस्य पुरान मन्त्रिमण्डल के थे। इगलण्ड म इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। इस प्रकार की कायवाही को Replastering कहा जाता है। कभी कभी इस Dosage अथवा Dosing अर्थात मरणासन्न रोगी को कुछ नये मन्त्रियो क रूप म औषधि देना भी कहा जाता है।

(3) व्यक्तिगत रूप म मन्त्रियो द्वारा आये दिन त्यागपत्र दिये जाते थ। इस

---

1 Finer *op cit*, p 625
2 *Ibid*, p 627

प्रकार के त्यागपत्र मन्त्रिमण्डल की दृष्टि से बहुत हानिकारक होते थे। इनके कारण मन्त्रिमण्डल शक्तिशाली होने की अपेक्षा कमजोर हो जाता था तथा अनेक मन्त्रिमण्डलो का पतन हो गया था।

(4) तृतीय गणराज्य की मन्त्रिमण्डलीय कार्यपालिका की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उसका अत्यधिक शक्तिहीन होना था। फ्रेंच प्रधानमन्त्री ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाति शक्तिशाली नही था। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ऐसे मन्त्रिमण्डल का प्रमुख एव नेता होता है जो दलीय अनुशासन के कारण एकता के सूत्र मे आबद्ध रहता है। फ्रेंच प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनो की अध्यक्षता करता था। वह व्यवस्थापिका को यथाशक्ति नियन्त्रित करता तथा मन्त्रिमण्डल को एक सूत्र म आबद्ध रखता था। वह देश मे अपनी लोकप्रियता को कायम रखने के लिए अथक प्रयत्नशील रहता था। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाति फ्रेंच प्रधानमन्त्री को चेम्बर ऑफ डिप्टीज को विघटित करने की शक्ति प्राप्त नही थी। अधिकाश मन्त्री अपने व्यक्तिगत प्रभाव के कारण चुने जाते थे। फ्रास मे दलीय अनुशासन नाममात्र का है। अधिकतर सयुक्त मन्त्रिमण्डलो का ही निर्माण होता रहता था। प्रधानमन्त्री को केवल अपने दल का ही नेतृत्व नही करना पडता था अपितु उसे अन्य दलो को भी साथ म लेकर चलना पडता था। फाइनर के अनुसार व्यवहारत प्रधानमन्त्री का बहुत सा समय सम्प्रभुता प्राप्त करने म व्यतीत हो जाता था जिससे कि मन्त्रिमण्डल को जीवित रखा जा सके।[3] 1873 से 1940 ई तक ऐसे केवल चार प्रधानमन्त्री हुए थे जिनका कार्यकाल 4 वर्ष स अधिक था जबकि सत्रह प्रधानमन्त्रियो का तो कार्यकाल 6 माह से भी कम था। 1928 से 1940 ई तक कुल पन्द्रह प्रधानमन्त्री हुए थे जिनम स सात का कार्यकाल 6 माह से भी कम था। केवल एक प्रधानमन्त्री का कार्यकाल करीब 2 वर्ष स कुछ कम था।

(5) फाइनर[4] के अनुसार बहुत कम व्यक्ति दीर्घकाल तक किसी विभाग क मन्त्री रह पाते थे, फलस्वरूप व न तो अपनी योग्यता की छाप छोडते थे और न विभाग सम्बन्धी कार्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्ह पर्याप्त समय ही प्राप्त होता था। परिणामस्वरूप वे दीर्घकालीन नीतियाँ क्रियान्वित नही कर पाते थे। उनका अधिकाश समय ससद और आयोगो के सदस्यो एव प्रतिनिधि मण्डलो स मिलने म निकल जाता था। हर नये मन्त्रिमण्डल म पुराने मन्त्रिमण्डल क कुछ सदस्यो क होने पर भी यह आवश्यक नही था कि उन्ह वही विभाग दिये जायें जो उनके पास पहले थे। यदि विभाग म परिवर्तन नही होता था तो भी उस नये सहयोगियो एव नये प्रधानमन्त्री क साथ सर्वथा नवीन एव सयुक्त ससदीय कार्यक्रम के अधीन कार्य करना पडता था। फ्रास म 1873 स 1940 ई तक 27 विदेशमन्त्री 37 गृहमन्त्री, 38 वित्तमन्त्री

3 Finer *op cit*, p 628
4 *Ibid*, pp 628 629

एव 42 कृषिमन्त्री हुए थे। इस प्रकार मन्त्रियो के विभागो म तीव्र गति म परिवतन के फलस्वरूप शासन म स्थायित्व एव सुदीघकालीन नीति एव कायक्रमो का क्रियान्वयन न हो सकना स्वाभाविक ही था।

(6) फाइनर[5] के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल के लिए सीनेट एक अतिरिक्त कठिनाई का कारण थी।" फ्रेंच मन्त्रिमण्डल दोनो सदनो—चेम्बर ऑफ डिप्टीज एव सीनेट—के प्रति उत्तरदायी होता था। इगलण्ड म मन्त्रिमण्डल केवल निम्न सदन—कामन्स सभा—के प्रति ही उत्तरदायी होता है, उच्च सदन—लॉर्डसभा—के प्रति नही। इसके विपरीत, ततीय फ्रेंच गणराज्य के अन्तगत सीनेट के विपरीत मत के फलस्वरूप फ्रेंच मन्त्रिमण्डलो का पतन हो जाता था। बोर्गोस मन्त्रिमण्डल (1896 ई), ब्रियाँ का मन्त्रिमण्डल (1913 ई), हेरिया मन्त्रिमण्डल (1925 ई), टारडीन मन्त्रिमण्डल (1930 ई), लावेल मन्त्रिमण्डल (1932 ई) एव ब्लूम (Blum) मन्त्रिमण्डल (1937 ई एव 1938 ई) का पतन सीनेट के विपरीत मत का परिणाम थे। अत प्रत्येक मन्त्रिमण्डल म सीनेट म से कुछ सदस्य अनिवायत लिये जाते हैं। 1873 ई से 1940 ई तक 54 प्रधानमन्त्रियो म से 22 प्रधानमन्त्री सीनेट के सदस्य थे।

(7) राष्ट्रीय सभा के सदस्यो को मन्त्रिमण्डल से प्रश्न पूछने एव सूचना प्राप्त करने के व्यापक अधिकार प्राप्त थे। प्रश्न इतनी चतुराई से पूछे जाते थे कि विभागीय मन्त्रियो को अधिकाशत बदनामी ही पल्ले पडती थी। वाद-विवाद को सीमित करने का मन्त्रिमण्डल को कोई अधिकार नही था। वाद विवाद के पश्चात यदि अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाता था तो मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र देना पडता था। चेम्बर ऑफ डिप्टीज द्वारा केवल सामान्य नीति के सम्बन्ध म ही नही अपितु प्रशासन के सम्बन्ध मे भी छानबीन की जाती थी। मन्त्रियो के साथ एक कठिनाई यह थी कि अस्थायी मन्त्रिमण्डलो के कारण उनके समथको का अभाव होता था।

(8) फ्रास म असम्बली द्वारा नियुक्त आयोग विधि निर्माण, वित्तीय एव प्रशासकीय कार्यों म महत्वपूण भूमिका निभाते है। इन आयोगो म भूतपूव मन्त्री तथा सीनेट और चेम्बर ऑफ डिप्टीज के अनुभवी एव प्रभावशाली सदस्य होते हैं। इन आयोगो के अस्तित्व के कारण मन्त्रिमण्डल की स्थिति कमजोर हो गयी है। फाइनर के अनुसार, "यह आयोग मन्त्रिमण्डल को कमजोर बनाते हैं। यह मन्त्रियो के तीव्र प्रतिस्पर्धी हैं और चेम्बर सदन मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा आयोगो से मागदशन की अधिक अपेक्षा करता था। इसके विपरीत, इगलण्ड म मन्त्रिमण्डल ही मागदशन का स्रोत होता है।" आयोगो को विभागो से सूचना प्राप्त करने के भी अधिकार होते है एव इस प्रकार सूचनाएँ प्राप्त करके वे मन्त्रियो के पतन का माग प्रशस्त कर देते हैं। दूसरी ओर, मन्त्रीगण दोषयुक्त योजनाओ और सीमित एव अनुपयुक्त प्रशासन के लिए

5 Finer *op cit*, pp 628 629

राष्ट्रीय सभा म साम्यवादी दल क सदस्य मतदान म भाग नहीं लेंगे। लेकिन इस निणय के विपरीत मन्त्रिमण्डल के साम्यवादी मन्त्री बठका म भाग लेत रहे और राष्ट्रीय सभा म शासन की नीतिया के पक्ष म उन्होंने मतदान भी किया। बाद म मन्त्रिया सहित सभी साम्यवादियो न राष्ट्रीय सभा म मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृत वेतन नीति (Wage Policy) क विरुद्ध मत दिया लेकिन साम्यवादी मन्त्रिया ने मन्त्रिमण्डल स त्यागपत्र देन स इकार कर दिया। साम्यवादी मन्त्रिया के इस काय स मन्त्रिमण्डलीय एकता एव उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को गम्भीर धक्का लगा। यही नही साम्यवादी मन्त्री अपन पदा पर रहत हुए शासकीय सम्मान व शक्ति का उपभोग भी करत रहे। साथ ही साथ व शासकीय नीति के विरुद्ध सावजनिक असन्तोष स भी लाभ उठात रहे। अत प्रधानमन्त्री मोशिय रामाडीर (M Ramadier) ने साम्यवादी मन्त्रिया द्वारा पदत्याग न करन पर उन्हें मन्त्रिमण्डल स निष्कासित करने का निणय किया था। इस पर राष्ट्रपति न साम्यवादी मन्त्रिया को पदच्युत कर दिया और उनके स्थान पर नवीन मन्त्रिया की नियुक्तियाँ की थी।

मन्त्रिमण्डलीय एकता का दूसरा प्रमाण एक अय घटना स भी प्राप्त होता है। फरवरी 1950 ई म साम्यवादी मन्त्रिया न निर्वाह-व्यय भत्ता (Cost of Living Bonus) की माँग को अपने सहयोगी मन्त्रिया द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर त्यागपत्र दे दिये थे। प्रधानमन्त्री मोशिय बिदाल्त (M Bidault) ने मोशिय रामाडीर (M Ramadier) का अनुगमन करत हुए त्यागपत्र नही दिया अपितु समाजवादी मन्त्रिया के स्थान पर एम आर पी (M R P) एव अय सदस्या की नियुक्तियाँ कर दी। फ्रास म ग्रेट ब्रिटेन की अपक्षा मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के कारण अपेक्षाकृत अधिक जटिल समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। फ्रेंच मन्त्रिमण्डला म ब्रिटेन की भाँति एक ही दल के सदस्य नही होते और न ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के सफल सचालन जसा लम्बा इतिहास ही है। फ्रेंच मन्त्रिमण्डल म प्राय विभिन्न एव परस्पर विरोधी विचारधाराओ के अनेक दल होते हैं। उदाहरण के लिए, 1947 (नवम्बर) म राबट शूमा द्वारा जिस मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया गया था उसम नियोजित अथ व्यवस्था म विश्वास करने वाले समाजवादी एव मुक्त व्यापार और यदमाव्यम नीति म विश्वास रखने वाले उग्र समाजवादी थे। ऐसे सयुक्त मन्त्रिमण्डला म प्रत्येक नीति विषयक प्रस्ताव पर गम्भीर विवाद होना स्वाभाविक ही है।

फ्रेंच प्रधानमन्त्री[8]

ततीय एव चतुथ फ्रेंच गणराज्या के प्रधानमन्त्रियो की स्थिति का अध्ययन अत्यन्त रोचक है। ससदीय प्रणाली म प्रधानमन्त्री की स्थिति केन्द्रीय होती है। वह

---

8 फ्रेंच प्रधानमन्त्री को प्रेसीडेण्ट ऑफ दी काउन्सल आफ मिनिस्टस (President of the Council of Ministers) की सज्ञा दी जाती है। फ्रेंच शासन के

मन्त्रिमण्डल का नेता एव यथाथ कायपालिका होता है। लास्की के शब्दो मे, ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के जन्म, जीवन एव मरण का कारण है। फ्रेंच प्रधान मन्त्रियो की शासन मे ऐसी केन्द्रीय स्थिति नही थी। ततीय गणराज्य म प्रधानमन्त्री समकक्षो मे प्रथम (primus inter pares) नही था और न अन्य मन्त्रियो के समक्ष ही था। प्रत्येक फ्रेंच मन्त्रिमण्डल म प्रधानमन्त्री की समान स्थिति एव व्यापक राजनीतिक व्यक्तित्व वाले कई व्यक्ति हुआ करत थे। उनम से कुछ तो अपने अपने दलो के प्रमुख एव भूतपूव प्रधानमन्त्री भी होते थ। वे अपने व्यक्तित्व एव दलीय विचारो को सहज ही प्रधानमन्त्री के अधीन मानने को तैयार नही होते थे। अन्य दलो के नेता ही नही, अपितु उसके अपने दल के महत्वाकाक्षी सदस्य भी प्रधानमन्त्री बनने के सदैव इच्छुक रहते थे। काटर, रेने एव हेज के अनुसार, "फ्रेंच दलीय नेता के प्रति ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय भक्ति का अभाव था और प्रधानमन्त्री अमेरिकी राष्ट्रपति एव ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की प्रतिष्ठा का भी उपभोग नही करता था।"[9]

चतुथ गणराज्य के सविधान निर्माता फ्रेंच प्रधानमन्त्री को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाँति शासन का यथाथ नेता बनाना चाहते थे। प्रधानमन्त्री को मनोनीत होने के पश्चात नेशनल असेम्बली का विश्वास प्राप्त करना पडता था।[10] वह मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की सूची पर राष्ट्रीय सभा की स्वीकृति प्राप्त करता था। इस व्यवस्था स प्रधानमन्त्री क पद का महत्व बढा था। मोशिये रामाडीर ने इस सम्बन्ध म कुछ स्वस्थ परम्पराएँ डाली थी। उसने प्रधानमन्त्री चुने जाने क बाद एक व्यक्तिगत वक्तव्य दिया था जो उसके सहयोगियो की सहमति मे निर्मित एक सामूहिक वक्तव्य नही था। इसके पश्चात उसने 'मन्त्रिमण्डलीय बेंच पर अकेले ही स्थान ग्रहण किया था। रामाडीर ने प्रधानमन्त्री की स्थिति को दृढ करने की दिशा म एक अन्य उल्लेखनीय काय किया। उसने अपने मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यो को निष्कासित करके मन्त्रिमण्डल का पुनर्निर्माण भी किया। इस प्रकार प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के राजनीतिक आधारभूत स्वरूप मे परिवतन कर सकता था। तृतीय गणराज्य की तुलना म चतुथ गणराज्य के प्रधानमन्त्री को अपने सहयोगियो के साथ व्यवहार करने म अधिक स्वतन्त्रता एव शक्ति प्राप्त थी। पहले मन्त्रियो द्वारा विभिन्न विधेयक सीधे असम्बली म प्रस्तावित किये जाते थे लेकिन चतुथ गणराज्य के अन्तगत सभी प्रस्तावित विधेयको पर प्रधानमन्त्री के हस्ताक्षरो का होना आवश्यक था। मन्त्रियो के द्वारा प्रस्तावित परस्पर विरोधी विधेयको पर विचार करने के लिए चतुथ गणराज्य

अनेक पदाधिकारियो को प्रेसीडेण्ट की सज्ञा प्राप्त है। अत यहाँ मन्त्रिमण्डलीय परिषद के अध्यक्ष क स्थान पर प्रधानमन्त्री शब्द का प्रयोग अनावश्यक अस्पष्टता से बचने के लिए किया गया है।

9 Carter Ranney and Hez, *op cit*, p 149

10 अनुच्छेद 45।

में अन्त विभागीय समितियों की व्यवस्था थी। स्पष्ट है कि प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल में एक समन्वयात्मक कड़ी का कार्य करता था।

लेकिन चतुर्थ गणराज्य के अन्तर्गत भी अन्तिम सत्ता असम्बली के हाथ में ही थी। मन्त्रिमण्डल को अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर पदत्याग करना पड़ता था। स्मरणीय है कि फ्रांस में बहुदलीय पद्धति के कारण प्रधानमन्त्री अत्यन्त सोच समझकर कार्य करता है। चतुर्थ गणतन्त्र में प्रधानमन्त्री को मन्त्रियों की नियुक्ति करने एवं उन्हें पदच्युत करने के अधिकार थे। लेकिन संयुक्त मन्त्रिमण्डलों का अध्यक्ष होने के नाते प्रधानमन्त्री किसी भी दल को असन्तुष्ट करने की स्थिति में नहीं होता था और इसी प्रकार न वह स्वविवेक से अपने मन्त्रियों का चयन ही कर सकता था। कार्टर, रेने एवं हेज[11] के अनुसार चतुर्थ गणराज्य के अन्तर्गत फ्रेंच प्रधानमन्त्री की शक्ति में कुछ वृद्धि अवश्य हुई थी। प्रथम, प्रधानमन्त्री बहुमत का निर्माण करने वाले दलों के नेताओं का समर्थन प्राप्त करने में सफल होने पर असम्बली का सरलतापूर्वक सामना कर सकता था। कठोर दलीय अनुशासन एवं मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का परस्पर महत्वपूर्ण संयोग हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में मन्त्रिमण्डल संसदीय सहयोग की अपेक्षा दलीय सहयोग पर अधिक निर्भर रहता है। इसी कारण यह सुझाव दिया गया था कि मन्त्रिमण्डल में शामिल प्रत्येक दल का एक विभागहीन मन्त्री होना चाहिए जो मन्त्रिमण्डल तथा दलीय मुख्य कार्यालय से सम्बन्ध रख सके। यह सुझाव अन्ततोगत्वा ततीय क्यूइल (Queuille) मन्त्रिमण्डल काल में क्रियान्वित किया जा सका। प्रधानमन्त्री की स्थिति को प्रभावशाली बनाने में सहायक दूसरा कारण यह था कि मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने के पूरे एक दिन पश्चात ही उस पर विचार किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त अविश्वास प्रस्ताव के मत नाम लेकर पुकारे जाने की रीति (roll call role) से लिये जाते थे। निम्न सदन—चेम्बर ऑफ डिप्टीज के द्वारा स्पष्ट बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव स्वीकृत होने पर ही मन्त्रिमण्डल का पतन होता था। 1954 ई में स्पष्ट बहुमत के स्थान पर सामान्य बहुमत की व्यवस्था कर दी गयी थी। प्रधानमन्त्री इन व्यवस्थाओं का लाभ उठा कर प्राय विधिक प्रस्ताव को विश्वास सम्बन्धी घोषित करके उन्हें पारित करने में सफल हो जाता था। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल उच्च सदन—काउन्सल—के प्रति चतुर्थ गणतन्त्र में उत्तरदायी नहीं था। अन्त में प्रधानमन्त्री को राष्ट्रीय सभा को भंग करने की शक्ति प्राप्त होने के कारण उसकी शक्ति में वृद्धि हुई थी।

फ्रेंच प्रधानमन्त्रियों के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कोई सामान्य विचार प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। एक बात स्पष्ट है—क्लीमेंसो (Clemenceau), पांकारे (Poincare) एवं ब्रियानो (Briano) जैसे महान् प्रधानमन्त्रियों के कार्यकाल अपेक्षाकृत

---

11 Carter, Ranney and Hez *op cit*, p 150

लम्बे थे। वे दलीय नता होने के कारण नही अपितु अपने व्यक्तित्व क कारण दीघकाल तक अपने पद पर बने रहे। फ्रेंच प्रधानम-त्री के लिए दृढ निश्चयी एव सुनिश्चित कायक्रम वाला होने की अपेक्षा समझौत की कला मे दक्ष होना अधिक आवश्यक है। काटर, रेने एव हेज के अनुसार 'उसे समझौत की कला म दक्ष एव सम-वयात्मक प्रवत्ति का होना चाहिए तथा उसे अपने कायत्रम को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि उसस असहमति रखने वाले भी असन्तुष्ट न हो। उसको विभिन्न एव अधिकाधिक समूहो का विश्वास और यदि सम्भव हो तो मित्रता अर्जित करनी चाहिए। उसे निश्चित रूप स गणतन्त्रीय विचारधारा का होना चाहिए ताकि वह परस्पर सदस्यो मे और मन्त्रि-मण्डल एव राष्ट्रीय सभा मे मतक्य स्थापित करने मे सफल हो सके।" 1946 ई म हेनरी क्यूइल (Henry Queuille) एक वष से अधिक समय तक प्रधानम त्री रहे थे। वे मेल या समझौत की कला म दक्ष थे। उनके मन्त्रित्व काल मे युद्ध जजरित फ्रास न पयाप्त उन्नति की थी।

1870 से 1958 ई तक के काल की फ्रेंच सावैधानिक व्यवस्था सासद प्रमुख थी। लेकिन पाचवे गणराज्य म स्थिति भिन्न है। अब कायपालिका पहले की अपेक्षा शक्तिशाली एव दृढ है। पाचवे गणराज्य (1958 ई) के अन्तगत प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। लेकिन वह सामान्यत ससद के प्रति उत्तर-दायी होता है। प्रधानम त्री ही राष्ट्रपति के समक्ष मन्त्रियो के नामा को उपस्थित करता है और राष्ट्रपति उनको नियुक्त करता है। मन्त्रिमण्डल की बैठको की अध्य-क्षता राष्ट्रपति करता है न कि प्रधानम त्री। तृतीय गणराज्य मे भी मन्त्रिमण्डल की बठका की अध्यक्षता राष्ट्रपति ही करता था और उसका अपना मत भी होता था। चतुथ गणराज्य के अन्तगत राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डलो की बैठको की केवल अध्यक्षता करता था। पाचवें गणराज्य मे प्रधानमन्त्री की स्थिति राष्ट्रपति की तुलना म हय है। प्रधानमन्त्री देश की सुरक्षा एव विधियो के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है। वह ससद मे शासन का प्रमुख वक्ता है लेकिन उसे सदन का नेता नही कहा जा सकता।

फ्रास म बहुदलीय पद्धति के विकास के कारण फ्रेंच प्रधानमन्त्री का कायकाल अधिक लम्बा नही होता। 1873 ई से 1928 ई तक फ्रेंच प्रधानमन्त्री का औसत कायकाल 18 माह स अधिक नही रहा है।

फ्रेंच गणराज्य का राष्ट्रपति

ततीय गणराज्य के अन्तगत फ्रेंच राष्ट्रपति की स्थिति अत्यन्त कमजार थी। राष्ट्रपति को फ्रेंच व्यवस्थापिका के दोनो सदना की सयुक्त बठक—राष्ट्रीय सभा—के बहुमत म 7 वष के लिए चुना जाता था। प्रत्येक फ्रेंच नागरिक राष्ट्रपति चुने जाने का अधिकारी होता था। राजवश के सदस्य इसका अपवाद था। राष्ट्रपति की शक्तिया का प्रयोग मन्त्रिया द्वारा किया जाता था। उसके नाम पर दिय जान वाले आदो

पर किसी न किसी म त्री के हस्ताक्षर अनिवायत होते थे। म त्रीगण राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी न होकर निम्न सदन—चेम्बर ऑफ डिप्टीज—क प्रति उत्तरदायी होते थे। राष्ट्रपति पर चेम्बर आफ डिप्टीज को महाभियोग लगान का अधिकार प्राप्त था। सीनेट इसकी जाच करती थी।

फ्रेंच राष्ट्रपति की स्थिति अवशानुगत सवैधानिक राजा (Non hereditary Constitutional Monarch) जैसी थी। वह राज्य का सम्मानास्पद अध्यक्ष था। वह समारोहो की अध्यक्षता करता था, दलीय दृष्टि से निष्पक्ष तथा पक्षपातपूण दलीय राजनीति से दूर रहता था। राष्ट्रपति द्वारा इन विशेषताओ का अतिक्रमण किये जाने पर उसे उसका प्रतिफल भी भोगना पडता था। उदाहरणाथ, 1877 ई म राष्ट्रपति मकमोहन क अधिनायकत त्रीय शक्तियो को अर्जित करने के प्रयत्न की नि दा की गयी थी एव 1924 ई म दलीय पक्षपात के लिए राष्ट्रपति मिलेरा ड (Millerand) को पदत्याग करना पडा था। फ्रासीसी लोग शक्तिशाली कार्यपालिका के प्रति अधिक स देहशील रहे है। लुई नेपोलियन ने गणत त्र का समाप्त कर साम्राज्य की स्थापना की थी। अत फ्रासीसियो को शक्तिशाली राष्ट्रपति का विचार स्वीकाय नही था। इसी प्रकार राष्ट्रपति को जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित करने का विचार भी उ हे स्वीकाय नही था। सकट के पश्चात यह विचार जनता मे अधिकाधिक बल पकडता गया कि राष्ट्रपति को शानशौकत विहीन, पूणत गणत त्रीय एव कम लोकप्रिय होना चाहिए। तृतीय गणराज्य के अ तगत केवल एक राष्ट्रपति—पाकारे—प्रथम श्रेणी का राजनीतिज्ञ था। योग्य तथा प्रमुख राजनीतिज्ञो—क्लीमे सो एव ब्रियानो—को राष्ट पति पद के लिए निर तर अस्वीकार किया जाता रहा। ततीय गणराज्य के फ्रेंच राष्ट्रपति के सम्ब ध मे सर हेनरीमेन का यह मत था कि 'फ्रेंच राष्ट्रपति के अतिरिक्त किसी भी जीवित पदाधिकारी की स्थिति अधिक दयनीय नही है।' फ्रास के प्राचीन नरेश ही राज्य एव शासन करते थे। "सवैधानिक राजा", मोशिय दीयरस के अनुसार, "राज्य करता है शासन नही। सयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति शासन करता है पर तु राज्य नही। यह केवल फ्रच राष्ट्रपति के ही भाग्य म है कि वह न राज्य करे और न शासन।' अत राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश सम्राट की तुलना म हेय है। काटर, रेंने एव हेज के अनुसार राजाओ के प्रति अनेक पीढियो से जो श्रद्धा का भाव पाया जाता है उसका सामान्यत फ्रेंच राष्ट्रपति के लिए अभाव है। उसके अधिकाश काय समारोहात्मक होते थे। लेकिन ततीय गणराज्य के राष्ट्रपति की स्थिति सामा यत ठीक नही थी बार्थोन (Barthon) का यह स्पष्ट मत है कि राष्ट्रपति निर्जीव शासक नही है। वह सक्रिय परामश देकर पर्याप्त प्रभावशाली हो सकता है क्योकि म त्रीगण उसके परामश को पद एव अनुभव के कारण आदर से ग्रहण करते हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात फ्रास के नाजी निय त्रण स मुक्त होने पर डिगाल ने शक्तिशाली कायपालिका की स्थापना का समथन किया था। वे राष्ट्रपति को वास्त

विक अध्यक्ष वनाने क पक्ष म थे। प्रथम, डिगाल राष्ट्रपति को ससद से स्वत-त्र रखना चाहते थे अर्थात् उनका मत था कि राष्ट्रपति को ससद की अपेक्षा एक अ-य वहद निकाय द्वारा चुना जाना चाहिए। द्वितीय म-त्रियो को राष्ट्रपति द्वारा चुना जाना चाहिए एव उसके प्रति ही वे उत्तरदायी होने चाहिए। ततीय, राष्ट्रपति को ससद को भग करके जनता से अपील करने का अधिकार होना चाहिए। लेकिन डिगाल के मत को स्वीकार नही किया गया। 1946 ई के सविधान के प्रारूप (Draft) के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन सावजनिक मतानुसार असेम्वली द्वारा किये जान की व्यवस्था की गयी थी। फलस्वरूप दलीय राजनीति के दलदल मे राष्ट्रपति का डूवना अनिवाय था। राष्ट्रपति को तृतीय गणराज्य के अ-तगत प्राप्त सभी विशेषाधिकारो स वचित कर दिया गया था एव क्षमादान का अधिकार उससे लेकर एक -यायिक समिति का देने का प्रस्ताव किया गया था। प्रधानम-त्री को नियुक्त करने की शक्ति भी उससे ले लेन का प्रस्ताव किया गया था। उसे प्रधानम-त्री के लिए विभिन्न नामो को असेम्वली के समक्ष प्रस्तावित करने का अधिकार मात्र दिया गया था। जनता ने इन प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिया।

चतुथ गणराज्य के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव राष्ट्रीय सभा (National Assembly) एव गणराज्य परिषद (Council of the Republic) के सयुक्त अधिवेशन म, जिसे काग्रेस की सज्ञा दी गयी थी, सामा-य वहुमत से किये जाने की व्यवस्था की गयी थी। उसका कायकाल 7 वप था एव राष्ट्रपति पद पर कोई व्यक्ति एक वार ही निर्वाचित हो सकता था। दशद्रोह के लिए उस पर राष्ट्रीय सभा द्वारा दोषारोपण होने पर सर्वोच्च -यायालय (High Court of Justice) म मुकदमा चलाया जा सकता था। राष्ट्रपति पद के लिए कोई अहताएँ एव आयु निर्धारित नही की गयी थी। प्रत्येक 21 वर्षीय फ्रेंच नागरिक जिसे नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे एव जो राजवश का सदस्य नही था, राष्ट्रपति पद पर चुने जाने की योग्यता रखता था।

सविधान के अनुसार राष्ट्रपति की समस्त शक्तिया का प्रयोग उसके नाम पर म-त्रिमण्डल के अध्यक्ष (प्रधानम-त्री) एव अ-य म-त्रियो द्वारा किया जाता था। राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए राजनीतिक रूप से उत्तरदायी नही था, देशद्रोह इसका एकमात्र अपवाद था। म-त्रिमण्डल, राष्ट्रीय सुरक्षा समिति, सवधानिक समिति एव दण्डाधिकारिया की सर्वोच्च समिति की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता था। अध्यक्ष के रूप म उसका काय केवल समितियो के निणया को घोपित करना एव कायवाहिया को सुरक्षित रखना मात्र था। लेकिन जव म-त्रिया की वैठक राजनीतिक उद्देश्य हेतु विशेपकर म-त्रिमण्डल (Cabinet) के रूप मे होती थी, तो राष्ट्रपति अनुपस्थित रहता था। तृतीय गणराज्य के राष्ट्रपति को सिद्धान्तत विधियाँ प्रस्तावित करन का अधिकार प्राप्त था। लेकिन चतुथ गणराज्य के राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त नही

था। वह राष्ट्रीय सभा से सन्देश के माध्यम से अप्रत्यक्ष रीति से वांछित विधियों के निर्माण का प्रस्ताव कर सकता था और ऐसे सन्देशों का प्रधानमन्त्री या किसी मन्त्री द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक था। तृतीय गणराज्य के अन्तर्गत राष्ट्रपति को सिद्धान्ततः निषेधाधिकार प्राप्त था। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बिना कोई भी विधयक विधि नहीं बन सकता था। चतुर्थ गणराज्य में राष्ट्रपति को निषेधाधिकार की शक्ति प्राप्त नहीं थी। यदि पारित विधयकों को प्रस्तुत किये जाने के दस दिन और आवश्यक विधेयक का पांच दिन के अन्दर राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता था, तो राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष को ऐसे विधेयकों को स्वीकृत करने का अधिकार प्रदान किया गया था।

राष्ट्रपति को नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। वह मन्त्रियों, काउन्सिल आफ स्टेट के सदस्यों, ग्राण्ड चान्सलर (Grand Chancellor of the Legion of Honour), सर्वोच्च परिषद (Supreme Council) एवं राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के सदस्यों, रैक्टरों, प्रीफेक्टों, राजदूतों, विशेष दूतों एवं उच्च केन्द्रीय प्रशासकीय अधिकारियों को नियुक्त करता था। वह सभी सन्धियों पर हस्ताक्षर करता एवं उन्हें अनुमोदित करता था। वह सेना का सर्वोच्च सेनापति भी था एवं न्यायपालिका की सर्वोच्च समिति (Supreme Council of the Judiciary) की अध्यक्षता करता था।

फ्रेंच राष्ट्रपति को सिद्धान्त में तृतीय एवं चतुर्थ गणराज्य में व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं। परन्तु व्यवहार में वह शक्तिहीन था। उसका पद शक्ति का नहीं अपितु प्रभाव का था। इसका प्रमुख कारण यह था कि राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश पर किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे। लेकिन ब्रिटिश सम्राट की तुलना में उसका प्रभाव अधिक था। ब्रिटिश सम्राट ने दो शताब्दियों से मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता नहीं की है। फ्रेंच राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता करने एवं वाद विवाद में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। ब्रिटिश सम्राट के विपरीत देश की राजनीति में सक्रिय रहने के कारण उसके (फ्रेंच राष्ट्रपति के) परामर्श अनुभव पर आधारित होते थे। राष्ट्रपति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति राष्ट्रीय सभा की सहमति से प्रधानमन्त्री को मनोनीत करना था। ब्रिटेन में कामन्स सभा के बहुमत दल का नेता ही प्रधानमन्त्री पद के लिए राजा द्वारा आमन्त्रित किया जाता है लेकिन फ्रांस में बहुदलीय पद्धति होने के कारण राष्ट्रीय सभा में किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, अतः राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री के चयन में पर्याप्त स्वविवेकीय अवसर प्राप्त हो जाते हैं। लेकिन प्रधानमन्त्री का चयन करना एक अत्यन्त नाजुक कार्य है। इस हेतु कुशल एवं धैर्यवान वार्ताकार के गुणों का राष्ट्रपति में होना आवश्यक होता है। चतुर्थ गणराज्य के संविधान के निर्माण के समय राष्ट्रपति को संविधान के संरक्षक की संज्ञा दी गयी थी। 1947-48 ई. के संकटकालीन शरद ऋतु में विभिन्न राजनीतिक समूहों ने राजनीतिक

और सार्वजनिक शक्ति का उचित उपयोग किया जाता है तथा राज्य कायम रहता है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता क्षेत्रीय अक्षुण्णता एव समझौत और सन्धियो का वह सरक्षक है।[13]

वह प्रधानमन्त्री को नियुक्त करता है।[14] प्रधानमन्त्री द्वारा त्यागपत्र प्रस्तुत करने पर वह उसे स्वीकार करता है। प्रधानमन्त्री के परामर्श पर वह अन्य मन्त्रियो को नियुक्त एव पदच्युत करता है। वह मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता करता है।[15] अनुच्छेद 8, 11, 12 16 एव 54 56, 61 सम्बन्धी कार्यों को छोडकर राष्ट्रपति के शेष सभी कार्यों पर प्रधानमन्त्री या अन्य सम्बन्धित मन्त्री के हस्ताक्षर होने चाहिए।[16] वह विधियो की घोषणा करता है तथा ससद को विधिया पर पुनर्विचार का आदेश दे सकता है।[17] ससद के सत्रकाल मे शासन या दोना सभाओ के सयुक्त प्रस्ताव पर वह सार्वजनिक शान्ति अथवा सन्धि सम्बन्धी किसी विधेयक पर जनमत सग्रह का आदेश दे सकता है। यदि विधेयक के पक्ष मे जनता मत देती है तो राष्ट्रपति को 15 दिन के भीतर उसे स्वीकृति प्रदान कर देनी चाहिए।[18] प्रधानमन्त्री तथा दोनो सदनो के अध्यक्षा के परामर्श से वह राष्ट्रीय सभा को विघटित कर सकता है लेकिन विघटन के कम से कम 20 दिन और अधिक से अधिक 40 दिन के भीतर सामान्य निर्वाचन हो जाने चाहिए। इसके पश्चात पुन विघटन सम्भव नही है। राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद के अध्यादेशो एव आज्ञाओ पर हस्ताक्षर करता है। उन्हे वह दोनो सदनो को भेज सकता है जहाँ वे पढे तो जाते है परन्तु उन पर विवाद नही हो सकता।[19]

राष्ट्रपति को नियुक्ति सम्बन्धी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। सैनिक एव असैनिक पदो जैसे मन्त्री, राजदूतो विशेष राजदूतो, मुख्य चासलर, लेखाकन कार्यालय का प्रमुख, समुद्रपार राज्य के प्रतिनिधि एव पदाधिकारी प्रमुख अधिकारियो, शिक्षा अधिकारियो (रेक्टरो) एव केन्द्रीय प्रशासन के निर्देशको की नियुक्ति वह मन्त्रि-परिषद के निश्चय के अनुसार करता है।[20] विदेशो म वह राजदूतो की नियुक्ति करता है एव विदेशी राजदूतो का स्वागत करता है। वह सशस्त्र सेनाओ का अध्यक्ष है और राष्ट्रीय सुरक्षा की उच्च परिषदो एव समितियो की अध्यक्षता करता है।[21]

---

13 अनुच्छेद 5
14 अनुच्छेद 8
15 अनुच्छेद 9
16 अनुच्छेद 19
17 अनुच्छेद 10
18 अनुच्छेद 11
19 अनुच्छेद 18
20 अनुच्छेद 13
21 अनुच्छेद 15

राष्ट्रपति को सकटकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं।[22] गणतन्त्र की सस्थाओ, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एव अखण्डता तथा अन्तर्राष्ट्रीय वचनो क पालन का खतरा उत्पन्न हान के कारण सवधानिक शासन का चलना कठिन होने पर राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री एव सभाओ के अध्यक्षो तथा सवैधानिक परिषद स परामर्श करके परिस्थिति का सामना करन के लिए आवश्यक कदम उठा सकता है। अपन निणय की सूचना वह सन्देश क द्वारा देता है। इन विशष शक्तियो के प्रयोग काल म राष्ट्रीय सभा भग नही की जाती है।

राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्तियाँ प्राप्त हैं।[23] उस दण्ड कम करने का अधिकार है। राष्ट्रपति न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का सरक्षक होता है तथा न्यायपालिका की उच्च परिषद[24] की अध्यक्षता करता है।

स्थिति

पाँचवें फ्रेंच गणराज्य का राष्ट्रपति सविधान की धुरी है। देश के राजनीतिज्ञो म सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति डिगाल को प्रथम राष्ट्रपति चुना गया था। राष्ट्रपति को सविधान द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। फ्रास म शक्तिशाली राष्ट्रपति को प्राय सन्देह की दृष्टि स देखा जाता था। लुई नपोलियन न द्वितीय गणराज्य का राष्ट्रपति हान पर अपन को सम्राट घोपित किया था, फलत तीसरे गणराज्य म राष्ट्रपति को नाममात्र की शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। वह सबस कमजोर राज्याध्यक्षो म स था तथा अप्रत्यक्ष रीति स चुना जाता था। विधानमण्डल के दोनो सदनो को विघटित करन की अपनी विधिक शक्ति का 1877 ई के पश्चात उसन कभी प्रयोग नही किया। चतुथ गणराज्य के राष्ट्रपति की स्थिति म भी कोई विशेष अन्तर नही था। इस ऐतिहासिक परिपक्ष्य म पाँचवें गणराज्य के राष्ट्रपति की स्थिति का मूल्याकन महत्वपूण है।

राष्ट्रपति कायपालिका का यथाथ अध्यक्ष है और आन्तरिक एक वैदेशिक नीति का निर्माता है। वह राज्य व शासन का वास्तविक अध्यक्ष है। उसे विधानमण्डल को नियन्त्रित करने सम्बन्धी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह विधानमण्डल को विघटित कर सकता है। विधानमण्डल द्वारा शासन के विरुद्ध प्रस्ताव पारित करने पर राष्ट्रपति को असम्बली को विघटित करके नवीन निर्वाचन का आदेश देने का अधिकार है। उसे व्यापक सकटकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं। डोरथी पिकिल्स (Dorthy Pickles) के अनुसार जनरल डिगाल इन अनुच्छेदो को सीमित एव निश्चित अवस्था म ही प्रयोग करना चाहते थे तथा राष्ट्रीय सकट के समय रक्षित शक्ति के रूप म ही इस व्यवस्था का प्रयोग करन

---

22 अनुच्छेद 16

23 अनुच्छेद 17

24 न्यायपालिका की उच्च परिषद (High Council of the Judiciary) को न्यायाधीशो पर अनुशासन सम्बन्धी नियन्त्रण प्राप्त है। इसम 9 सदस्य होत हैं जिन्ह राष्ट्रपति एव विधि मन्त्री मनोनीत करता है।

के पक्ष मे थे। सकटकालीन शक्ति के प्रयोग के कारणा के सम्ब ध म आलोचको को आपत्ति नही है । मुख्य आपत्ति सकटकालीन शक्तिया सम्ब धी पद्धति पर है।[25] राष्ट्र पति स्वय को शक्तिशाली बनाने के लिए इन शक्तिया का दुरुपयोग कर सकता है । राष्ट्र पति को सकट-काल के सम्ब ध म निणय लेने का एकाधिकार प्राप्त है । विधानमण्डल के दोना सदनो एव सवैधानिक परिपद से उसे केवल परामश लेना पडता है। परन्तु क्या यह परामश ब धनकारी है ? यह स्पष्ट नही है । आलोचको का यह भी मत है कि यदि विधानमण्डल के दोना सदना एव सवैधानिक परिपद क अधिवेशन ही न हा तो सकटकालीन शक्तियो को क्रियान्वित करना असम्भव है । दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या राष्ट्रपति की सकटकालीन शक्तियो पर कोई प्रतिब ध है ? क्या राष्ट्रपति सवि धान के किसी भाग को अल्पकाल के लिए निरस्त कर सकता है ? इसी स सम्बन्धित एक अन्य प्रश्न यह भी है कि क्या सकट काल म राष्ट्रपति को अपने कार्यों की सूचना ससद को देनी चाहिए ?

पाचवे फ्रेंच गणराज्य के राष्ट्रपति की भारतीय राष्ट्रपति एव अमेरिकी राष्ट्रपति से तुलना नही की जा सकती है । ब्रिटिश राजा एव भारतीय राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रि मण्डल की अध्यक्षता नही की जाती है । इसके विपरीत, फ्रेंच राष्ट्रपति अपन मन्त्रि मण्डल की अध्यक्षता करता है । ततीय गणराज्य का राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की अध्य क्षता तो करता था पर तु उसे मतदान का अधिकार प्राप्त नही था । भारतीय राष्ट्र पति को सामान्यत प्रधानम त्री की नियुक्ति म निर्णायक शक्ति प्राप्त नही है । फ्रेंच राष्ट्रपति को फ्रान्स मे बहुदलीय पद्धति के कारण प्रधानमन्त्री के चयन म यथाथ शक्ति प्राप्त है । प्रथम राष्ट्रपति दिगाल के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने इसमे और अधिक योग दिया था तथा राष्ट्रपति की सकट-काल की शक्तियो ने उसे और अधिक शक्तिशाली बना दिया था । सकटकालीन शक्तिया का उपभोग राष्ट्रपति द्वारा बिना मन्त्रिमण्डल की सलाह से किया जा सकता है । लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना मे उसकी स्थिति हेय है । अमेरिकी राष्ट्रपति का व्यवहार म प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन होता है। वह कही अधिक शक्तिशाली होता है । अमेरिकी मन्त्रिमण्डल उसके प्रति ही उत्तरदायी होता है। फ्रेंच गणराज्य के अ तगत मन्त्रिमण्डल ससद के प्रति उत्तरदायी है।

फ्रेंच राष्ट्रपति राष्ट्र का चालक चक्र है । मन्त्रिमण्डल की स्थिति उसके सामने गौण है । वह उसे आच्छादित कर सकता है । उस पर केवल महाभियोग का एकमात्र प्रतिब ध है । परन्तु महाभियोग की रीति बडी जटिल है । देशद्रोह जैसे गम्भीर अपराध के लिए ही उस दोषी ठहराया जा सकता है । दानो सदना द्वारा महाभियोग प्रस्ताव खुले मतदान म कुल सदस्य-सख्या क स्पष्ट बहुमत से पारित होने पर ही राष्ट्रपति पर महाभियाग लगाया जा सकता है । तत्पश्चात उच्च यायालय (High Court of

---

25 Dorothy Pickles *The Fifth French Republic*, p 143

Justice) द्वारा महाभियोग की जाँच की जाती है जो दोना सदना के समान निर्वाचित सदस्या का एक निकाय होता है।[26]

स्ट्राग[27] के अनुसार पाँचवे गणराज्य के अन्तगत फ्रास मे अर्द्ध-गणतन्त्रीय पद्धति की स्थापना की गयी है जो आशिक शक्ति-पृथक्करण पर आधारित है। सविधान के क्रियान्वयन के प्रथम चार वर्षों म डिगाल द्वारा की गयी उसकी व्याख्या एव मूल मन्तव्यो म बडा अन्तर था। वृद्धावस्था तथा अपने ऊपर होने वाले आक्रमणा एव आलोचनाआ के फलस्वरूप डिगाल ने अपने हटने के बाद की अवस्था पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। अक्टूबर 1962 ई म राष्ट्रीय सभा के शीतकालीन अधिवेशन के अन्तिम दिना म राष्ट्रपति डिगाल ने राष्ट्रपति को सावभौमिक मताधिकार के आधार पर चुनने एव सविधान म तत्सम्बन्धी सशोधन करने का प्रस्ताव किया। 28 अक्टूबर, 1962 ई को इस प्रस्ताव पर जनता की सहमति प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति ने जनमत सग्रह की घोषणा की। जनमत सग्रह के इस प्रस्ताव को अनुच्छेद 89 के अनुसार ससद की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नही किया गया, फलत दश म सवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। राष्ट्रीय सभा ने मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित किया, ससद को विघटित कर दिया गया और नवीन निर्वाचन के आदेश दे दिए गए। प्रस्तावित जनमत-सग्रह मे जनता द्वारा राष्ट्रपति का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हो गया और सविधान म आवश्यक सशोधन कर दिया गया। इस प्रकार, स्ट्राग के मतानुसार, ससदीय प्रजातन्त्र को डिगाल Plebiscitary Presidency म परिवर्तित करने मे सफल हुए।[28]

मन्त्रिमण्डल

पाचवे फ्रच गणराज्य के सविधान म मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गयी है। राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करता है और प्रधानमन्त्री के परामर्श पर अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति करता है।[29] उसका (राष्ट्रपति) [illegible] है। मन्त्रिमण्डल (शासन) ससद के प्रति उत्तरदायी है।[30] [illegible] प्रतीत होता है कि फ्रास म [illegible] की स्थापना की गयी है। [illegible] स्वीकृत ब्रिटिश ससदीय [illegible] मे अनेक अन्तर है। राष्ट्रपति [illegible] द्वारा चुना जाता है [illegible] सदस्य अल्पमत म होते है। 1962 ई. के [illegible] राष्ट्रपति के [illegible]

---

26 अनुच्छेद 68

27 "It is a 'semi-presidential system' based on partial [illegible] powers"—Strong, Modern Political Constitutions [illegible]

28 *Ibid*, p 251

29 अनुच्छेद 8

30 अनुच्छेद 10

राष्ट्रपति का भी प्रत्यक्ष रीति से चुना जाने लगा है । मन्त्रिमण्डल के सदस्य ससद के प्रति उत्तरदायी होते हैं परन्तु वे ससद के सदस्य नही होते हैं । स्पष्ट है कि सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को प्रभावशाली ढग से क्रियान्वित नही किया गया है अर्थात मन्त्रिमण्डल पर दलीय अनुशासन तथा मतदाताओ का प्रभाव नही है । राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं । वह वास्तव म प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित राष्ट्र का प्रतिनिधि है । उसे ससद को विघटित करने की शक्ति प्राप्त है । ससद का अधिवेशन भी केवल $5\frac{1}{2}$ माह होता है । ससद द्वारा राष्ट्रपति का विरोध करने पर राष्ट्रपति उसे भग करके नवीन निर्वाचन का आदेश दे सकता है । राष्ट्रपति को व्यापक सकटकालीन शक्तियाँ भी प्राप्त हैं।

फ्रेंच प्रधानमन्त्री ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाति मन्त्रिमण्डल का नेता नही है यद्यपि सविधान के अनुसार वह राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता है । विधियो को क्रियान्वित करने का दायित्व उसका है । वह शासनतन्त्र को सचालित करता है, सैनिक एव असैनिक अधिकारियो की नियुक्ति करता है तथा मन्त्रियो को अपनी कुछ शक्तियाँ हस्तान्तरित कर सकता है । वह आवश्यकता पडने पर राष्ट्रपति की अनुपस्थिति या उसके द्वारा अधिकृत किय जाने पर उसके स्थान पर मन्त्रिमण्डल तथा उच्च परिषदो और राष्ट्रीय सुरक्षा आयोगो की अध्यक्षता कर सकता है ।[31] तृतीय एव चतुर्थ गणराज्य के सविधानो के अधीन राष्ट्रीय सभा द्वारा अपने स्पष्ट बहुमत से प्रधानमन्त्री म विश्वास प्रकट करने पर ही राष्ट्रपति उसे प्रधानमन्त्री नियुक्त कर सकता था । इन व्यवस्थाओ को पाँचवें गणराज्य के सविधान म कोई स्थान नही है । फ्रेंच प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता नही करता । उसकी स्थिति राष्ट्रपति के समक्ष गौण है । वह ससद मे शासन का प्रवक्ता अवश्य होता है परन्तु ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाँति ससद का नेता नही होता ।

जर्मन कार्यपालिका
[GERMAN EXECUTIVE]

प्रशा (Prussia) के नेतृत्व म 1871 ई म जर्मन राष्ट्र का जन्म हुआ था । प्रशा के प्रधानमन्त्री (चान्सलर) प्रिन्स बिस्मार्क ने रक्त एव लौह की नीति से जर्मनी के एकीकरण एव निर्माण म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया और प्रशा के होहनजालन राजवश के अधीन जर्मन साम्राज्य का जन्म हुआ । जर्मन शासन प्रणाली पर प्रशा की केन्द्रकृत एव शक्तिशाली शासन-व्यवस्था का प्रभाव पडा है । प्रशा की जनता प्राचीन रोमनो की भाँति सम्राट द्वारा शासित होना अपना सौभाग्य समझती थी । प्रशा की शासन प्रणाली के तीन मुख्य आधार थे—(1) जमीदारो (Junkers) द्वारा समर्थन, (2) क्षमतावान नौकरशाही एव (3) शक्तिशाली सेना ।

31 अनुच्छेद 21

हगेलवाद का प्रशा के जन जीवन पर स्पष्ट प्रभाव था। राज्य का जन जीवन पर पूण नियन्त्रण था।

जमन साम्राज्य (1871 ई) 25 राज्यो का सघ था। **फाइनर** के अनुसार 1918 ई तक जमनी मे कोई उत्तरदायी सरकार नही थी।[32] समस्त शक्ति जमन सम्राट म अधिष्ठित थी। प्रधानमन्त्री को वह नियुक्त करता था एव उसी के प्रति वह उत्तरदायी होता था। रीस्टाग—विधानमण्डल का निम्न सदन—को विघटित करने का सम्राट को अधिकार था। कभी किसी दल का इस सदन मे बहुमत नही हुआ था। अत सम्राट वास्तव मे सत्ता का स्रोत था।

प्रथम विश्व-युद्ध म जमनी के पराजित होने पर मित्र-राष्ट्रा ने जमनी मे उदारवाद पर आधारित लोकतन्त्रीय सस्थाओ की स्थापना का निश्चय किया। 11 अगस्त, 1919 ई को नवीन सविधान लागू किया गया। इसे वीमर सविधान (Weimer Constitution) कहते है। इस सविधान द्वारा जमनी म ससदीय प्रणाली की सवप्रथम स्थापना की गयी।[33]

वीमर सविधान (1919 ई) के अन्तगत कायपालिका

सविधान के अनुसार राष्ट्रपति मे औपचारिक कायपालिका निहित थी। वह जनता द्वारा सात वष के लिए प्रत्यक्ष रीति से चुना जाता था एव पुन निर्वाचित हो सकता था। 1919 ई से 1933 ई के मध्य तक जमनी म दो राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे—फ्रेडरिक एवट एव माशल हिण्डेनबग। रीस्टाग के दो तिहाई बहुमत द्वारा प्रस्तावित करने पर एव जनता द्वारा उसका समथन करने पर राष्ट्रपति को वापस भी बुलाया जा सकता था। लेकिन ऐसा कोई अवसर कभी उपस्थित नही हुआ। राष्ट्रपति रीस्टाग (Reichstag) का सदस्य नही हो सकता था।

शक्तियाँ

राष्ट्रपति का सविधान द्वारा व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी थी। उसे जमन चासलर को नियुक्त करने एव पदच्युत करने का अधिकार था। वह सघीय सना का सर्वोच्च सेनापति था। उसे सभी सनिक तथा असनिक अधिकारियो को नियुक्त करने का अधिकार था। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे वह जमन सघ का प्रतिनिधित्व करता था, राजदूतो का स्वागत करता था एव विदेशा स समझौते एव सन्धियाँ करता था। लेकिन युद्ध एव शान्ति सम्बन्धी शक्ति जमन विधानमण्डल को प्राप्त थी। राष्ट्रपति को क्षमादान की व्यापक शक्ति प्राप्त थी। उसे सकटकालीन शक्तियाँ भी प्रदान की गयी थी। सविधान के अनुसार जमन राष्ट्र की सावजनिक शान्ति एव सुरक्षा हेतु आवश्यकतानुसार उस सशस्त्र सना के प्रयोग तक का अधिकार प्राप्त था। यदि कोई घटक

32 Finer *op cit*, p 647

33 Strong *Modern Political Constitutions*, p 254

राज्य राष्ट्रीय सविधान या राष्ट्रीय विधिजनित दायित्वा के सम्पादन मे असफल रहता था तो राष्ट्रपति को उस राज्य के विरुद्ध सशस्त्र सेना का प्रयोग करने का अधिकार था ।[34] 1919 ई से 1925 ई के बीच म जमन राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 48 अर्थात सकटकालीन शक्ति के अधीन 130 आज्ञप्तिया जारी की थी ।

स्थिति

वीमर सविधान के अधीन राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष था। गूच (Gooch) के अनुसार, "राष्ट्रपति राष्ट्र की एकता एव अक्षुण्णता का प्रतीक है । वह समारोहो का अध्यक्ष है । सवैधानिकतन्त्र का एक चक्र है राजनीतिक दृष्टि से वह शून्य है ।" स्ट्राग के अनुसार, "जमन राष्ट्रपति की स्थिति फ्रास के राष्ट्रपति स भी दयनीय है क्योकि उस पर दो प्रतिबन्ध हैं प्रथम, लोकप्रिय निर्वाचन, एव द्वितीय, असम्बली के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल ।" सविधान के अनुसार जमन राष्ट्रपति के सभी कार्यो का अनुमोदन चान्सलर या किसी न किसी मन्त्री के प्रति हस्ताक्षरा (counter sig nature) द्वारा होना आवश्यक है । चान्सलर या मन्त्री द्वारा प्रतिहस्ताक्षर का यह अथ था कि मन्त्री राष्ट्रपति के कार्यो के लिए विधिक दृष्टि से उत्तरदायी होता था ।[35] अत जमन राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष था ।

मन्त्रिमण्डल

वीमर सविधान के अन्तगत मन्त्रिमण्डल यथाथ कायपालिका थी । सविधान के अनुसार चान्सलर की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती थी और उसके परामश स अन्य मन्त्रिया की नियुक्ति की जाती थी । मन्त्री पद के लिए विधानमण्डल की सद स्यता अनिवाय नही थी । राष्ट्रपति विधानमण्डल के विश्वास प्राप्त मन्त्रिमण्डल को भग कर सकता था । स्पष्ट है, उपरोक्त दोनो प्रावधान स्वीकृत ब्रिटिश ससदीय प्रणाली के विपरीत थे ।

जमन मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का आधार (1) सविधान (अनुच्छेद 52 स 59 तक), (2) बजट सम्बन्धी विधियाँ (प्रधानत अनुच्छेद 21), एव (3) शासन की काय-पद्धति एव आचरण सम्बन्धी नियम थे । मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की व्याख्या अनुच्छेद 54 म की गयी थी। चान्सलर एव मन्त्रिमण्डल का रीस्टाग का विश्वास प्राप्त करना आवश्यक था । रीस्टाग के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पारित करने पर चान्सलर या मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडता था ।

लेकिन वीमर सविधान म सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव था । चान्सलर एव मन्त्रिमण्डल के सदस्य व्यक्तिगत रूप स तो उत्तरदायी थ, सामूहिक रूप स उत्तरदायी नहीं थे । यह ब्रिटिश प्रणाली स एक अन्य महत्वपूर्ण अन्तर था ।

---

34 अनुच्छेद 48
35 अनुच्छेद 50

चासलर अर्थात् प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता था। उसका प्रमुख दायित्व देश की नीति निर्धारित करना था। इसके लिए वह रीस्टाग के प्रति उत्तरदायी था। उसकी स्थिति बहुत कुछ ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के समान थी।

वीमर सविधान द्वारा समानुपातिक निर्वाचन पद्धति का अनुगमन किया गया था। अत रीस्टाग म किसी एक दल का बहुमत नही हो पाता था और बहुदलीय पद्धति का विकास हुआ था। 1919 ई से 1933 ई तक 20 मन्त्रिमण्डलो का गठन हुआ था। प्रत्येक मन्त्रिमण्डल का औसत कायकाल 8 माह था। कुछ मन्त्री प्रत्येक मन्त्रिमण्डल के सदस्य थे। मन्त्रिमण्डल के उत्थान-पतन के लिए विदेशी शक्तियो का प्रभाव भी उत्तरदायी हुआ करता था। 1930 ई की विश्वव्यापी मन्दी ने जमन राष्ट्र के मेरुदण्ड को ही तोड दिया। वीमर सविधान का अन्त समीप दिखायी देने लगा था। इसके कई कारण थे। इसम प्रमुख थे जमनी मे लोकतन्त्रीय व्यवस्था का अभाव, नौकरशाही तथा न्यायपालिका द्वारा लोकतन्त्र के उदात्त आदर्शों को आत्मसात न कर सकना, तथा बहुदलीय पद्धति का विकास। राष्ट्रपति सम्बन्धी अनुच्छेद 48 वह चट्टान प्रमाणित हुआ जिससे टकराकर वीमर सविधान चकनाचूर हो गया। शासन ने इस व्यवस्था के नाम पर 1932 ई तक 233 आज्ञाप्तिया (decrees) जारी की थी। 1930 ई के पश्चात जमन सरकार ने पूरी तरह सकटकालीन शक्तियो के आधार पर शासन चलाया था। अनुच्छेद 48 जो लोकतन्त्र की रक्षा के लिए बनाया गया था, जमनी म अधिनायकतन्त्र की स्थापना के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हुआ। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण विरोधाभास था।

तीसरे रीक (Reich) का शासन

सीलेसर (Schleicher) के पश्चात वॉन पपन के परामश पर जमन राष्ट्रपति हिण्डेनबग ने एडोल्फ हिटलर को चासलर नियुक्त किया था। उसने 30 जनवरी, 1933 ई को पद ग्रहण किया। स्मरणीय है हिटलर को रीस्टाग म स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही था। 1932 ई (नवम्बर) के चुनावो म नाजी दल रीस्टाग म सबसे बडा दल होते हुए भी उसे स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही था। हिटलर ने पदारूढ होने के पश्चात राष्ट्रपति हिण्डेनबग को रीस्टाग को विघटित करने एव नवीन चुनावो का आदेश देने को तयार कर लिया। निर्वाचन के प्रारम्भ होने के पूव ही रीस्टाग का भवन जला दिया गया। नाजी दल ने इस काय के लिए अपने विरोधी साम्यवादी दल को उत्तरदायी ठहराया और विरोधी दल के नेताओ को बन्दी बना लिया गया, प्रेस की स्वतन्त्रता सीमित कर दी गयी तथा नागरिक स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया गया। परिणामस्वरूप नाजी दल को चुनावो म स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने मे कोई कठिनाई नही हुई। साम्यवादियो को उन्होने पृथक रखने का प्रयत्न किया। माच 24, 1933 ई को एक ही बैठक म रीस्टाग से The Enabling Act पारित कराने मे हिटलर सफल हुआ। इस विधेयक द्वारा शासन को वित्त विधेयको सहित सभी प्रकार के विधेयको के

निमाण का अधिकार प्राप्त हो गया था, मले ही इस प्रकार पारित विधेयका का सवधानिक या असवैधानिक प्रकृति से ही सम्बन्ध क्यो न रहा हो। यह विधेयक वीमर सविधान मे एक सशोधन मात्र था। परन्तु इस सशोधन ने सविधान को ही समाप्त कर दिया। हिटलर और उसके मन्त्रिमण्डल को सभी प्रकार की विधियाँ पारित करने के अधिकार प्राप्त हो गये। मन्त्रिमण्डल को रीस्टाग या रीचस्रेट (Reichsrat) की स्वीकृति के बिना ही विदेशो से सन्धियाँ करने का अधिकार प्राप्त हो गया। यह विधि प्रारम्भ मे केवल 4 वष के लिए पारित की गयी थी परन्तु इस अवधि के बीतने पर उसे पुन पारित कर दिया जाता था। राष्ट्रपति की शक्तियो को इस अधिनियम द्वारा सीमित नही किया गया। हिण्डेनबग की 1934 ई म मृत्यु हो गयी और इसके बाद हिटलर राष्ट्रपति बन बैठा। वह जीवन भर के लिए राष्ट्रपति नियुक्त किया गया और वह राष्ट्रपति एव चान्सलर दोनो की शक्तियो का ही प्रयोग करता रहा।

हिटलर जमनी का सर्वेसर्वा बन गया था। उसे Fuhrer कहा जाता था। अपने मन्त्रियो को वह स्वय नियुक्त करता था। वे रीस्टाग के प्रति उत्तरदायी न होकर उसके प्रति ही उत्तरदायी होते थे। मन्त्री उसके सहयोगी न होकर उसके अधीनस्थ थे। मन्त्रिमण्डल की बहुत कम बठके होती थी। हिटलर ने एक आदेश से व्यक्तिगत मन्त्रि मण्डल का निर्माण कर लिया था और वह स्वयम् सुरक्षा एव विदेश नीति सम्बन्धी अन्तिम निणय करता था। सभी आदेशा पर हिटलर के हस्ताक्षर होते थे, अन्य मन्त्रियो के प्रतिहस्ताक्षरा का कोई महत्व नही था।

हिटलर जमन राज्य व नाजी दल दोना का नेता था। सभी उसी के प्रति उत्तरदायी थे—वही सत्ता का स्रोत था। उच्चसदन रीचस्रेट (Reichsrat) को 14 फरवरी, 1934 ई को समाप्त कर दिया गया। रीस्टाग (निम्न सदन) नाजी दल का गढ बन गया था। जमनी म अनुत्तरदायी शासन व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। हिटलर के आतकवादी निरकुश शासनतन्त्र मे नौकरशाही का कठोर एव पूण नियन्त्रण था, न्याय-पालिका नियन्त्रित थी एव सवत्र गुप्तचर पुलिस का साम्राज्य था। इसके अतिरिक्त दल एव राज्य म कोई अन्तर नही रह गया था। देश की राजनीति पर नाजी दल का एकाधिकार था। रीस्टाग के निर्वाचन के लिए नाजीदल के द्वारा एक सूची तयार की जाती थी। मतदाताओ को केवल इस सूची को स्वीकृत एव अस्वीकृत करने का अधिकार था। वे अपनी सफलता के सम्बन्ध म पूण आश्वस्त रहते थे। नाजी जमनी म नागरिक स्वतन्त्रता पूणरूपेण समाप्त हो गयी थी। यहूदिया का कठोरतापूवक दमन किया गया था। वृहद जमन राष्ट्र के निर्माण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नतिकता का बिना किसी झिझक के उल्लघन किया गया।

जमनी म हिटलर के उदय के साथ उदारवादी लोकतन्त्रीय वीमर सविधान

दफना दिया गया एव नाजी दल द्वारा समर्थित हिटलर का अधिनायकतन्त्र स्थापित हुआ। हिटलर के समय जमन राज्य को तीसरा रीक (Third Reich) कहते थे। यह Fuhrestat या नेता का राज्य कहा जाता था। नेता की आज्ञाओ का पूण पालन किया जाता था एव नेता ही जनता का पूण एव सवकालिक प्रतिनिधि था। राज्य ही जनता का सच्चा प्रतिनिधि था।

हिटलर की आक्रामक, साम्राज्यवादी, फासिस्टवादी, युद्धप्रिय एव नस्लवादी नीतिया का स्वाभाविक परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध था एव इस विश्व-युद्ध म जमनी मित्र राष्ट्रा से पराजित हो गया था।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद जर्मन शासन

जमनी ने जून 1945 ई म बिना शत आत्मसमपण कर दिया था। सयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रास, सोवियत रूस एव ग्रेट ब्रिटेन के सैनिक नियन्त्रण मे जमनी को चार भागा मे विभाजित कर दिया गया और चारा राष्ट्रो का जमनी के चार भागा पर पृथक-पृथक अधिकार था। सयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रास एव इगलैण्ड के तीनो क्षेत्रा को मिलाकर स्वतन्त्र राज्य के रूप म मा यता दी गयी। इसे पश्चिमी जमनी का सघीय गणतन्त्र (West German Federal Republic) कहते है। सोवियत रूस के अधिकार मे जमनी का जो भाग था वह पूर्वी जमनी या जमन लोकतन्त्रीय गणराज्य के रूप म स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया। हमारे अध्ययन का विषय पश्चिमी जमनी का सघीय गणराज्य है।

पश्चिमी जमनी के सविधान को मूलभूत विधि (Basic Law) कहत हैं। इसका निर्माण 1948 49 ई मे बोन (Bonn) म आयोजित 65 सदस्यीय ससदीय परिषद (Parliamentary Council) द्वारा हुआ था। यह सदस्य पश्चिमी भाग के 11 राज्या (Landers) का प्रतिनिधित्व करते थे। तीन बडे राज्यो का प्रभाव सविधान पर स्पष्ट है। पश्चिमी जमनी का बोन सविधान निम्न सिद्धान्तो पर आधारित है (1) द्विसदनीय व्यवस्थापिका, (2) सीमित कायपालिका, (3) सघीय शासन, (4) यायिक पुनर्रीक्षण के अधिकार से युक्त निष्पक्ष एव स्वतन्त्र यायपालिका। स्पष्ट है, सविधान बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया था कि पुन शक्तिशाली केन्द्रकृत निरकुश शासनत त्र की स्थापना न हो सके।

बोन का सविधान सितम्बर 1949 ई से लागू हुआ है। सविधान द्वारा सस-दीय प्रणाली की स्थापना की गयी है। कायपालिका के दो अग हैं—राष्ट्रपति एव मन्त्रिमण्डल।

राष्ट्रपति को वीमर सविधान की भाँति प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित नही किया जाता है अपितु एक सघीय सम्मेलन म आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर उसका निर्वाचन होता है। सघीय सम्मेलन म निम्न सदन (Bundestag) के

सदस्य एव 11 राज्या द्वारा निर्वाचित उतने ही सदस्य भाग लेते है ।[36] उसका काय काल 5 वप है एव वह एक बार पुन निर्वाचित किया जा सकता है । वह नाममात्र का अध्यक्ष है । उसे चान्सलर को चुनने का अधिकार प्राप्त है । परन्तु बुन्डस्टाग (निम्न सदन) के द्वारा उसके नाम को स्वीकृत किया जाता है। यदि राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित नाम बुन्डस्टाग को मान्य नही होता तो राष्ट्रपति पुन नाम प्रस्तावित नही करता अपितु बुन्डस्टाग 14 दिन के भीतर अपने कुल सदस्यो के बहुमत से चान्सलर का निर्वाचन करता है। यदि किसी उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही होता तो सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को चान्सलर नियुक्त कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था म राष्ट्रपति को या तो प्रस्तावित नाम को स्वीकार कर लेना चाहिए अथवा बुन्डस्टाग को विघटित करके नवीन निर्वाचन का आदेश देना चाहिए । राष्ट्रपति को महाभियोग लगाकर पदच्युत किया जा सकता है ।[37] उसे रक्षित (*Reserved*) शक्तियां भी प्राप्त है ।[38]

बोन सविधान मे सघीय मन्त्रिमण्डल की भी व्यवस्था है । उसका प्रमुख चान्सलर या प्रधानमन्त्री होता है। वीमर सविधान की अपेक्षा चान्सलर की शक्तियाँ अधिक है । वह अब अधिक शक्तिशाली है । सामान्यत चान्सलर का कायकाल 4 वर्ष होता है । प्रधानमन्त्री को उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर अप

---

36 यदि द्वितीय मतदान के पश्चात भी किसी प्रत्याशी को पूण बहुमत प्राप्त नही होता तो तीसरे मतदान मे सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को राष्ट्रपति चुन लिया जाता है । अवधि के पूव राष्ट्रपति के पद के रिक्त होने पर सघीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन (Bundestag) के अध्यक्ष द्वारा उसके दायित्वो को सम्पादित किया जाता है ।

37 जानबूझकर सविधान का उल्लघन करने पर सवैधानिक न्यायालय के समक्ष राष्ट्रपति के विरुद्ध कायवाही की जा सकती है। महाभियोग प्रस्ताव पर तभी विचार किया जा सकता है जबकि दोनो सदनो के कम से कम एक चौथाई सदस्य उसके पक्ष म मत देते है एव दोनो सदनो के दो तिहाई सदस्यो का बहुमत पृथक पृथक रूप म प्रस्ताव का समथन करे। सवैधानिक न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति को दोषी पाने पर उसे अपदस्थ किया जा सकता है ।

38 राष्ट्रपति को निम्न रक्षित शक्तियां प्राप्त हैं

(अ) रीस्टाग का अधिवेशन न होने की स्थिति म चान्सलर के प्रति हस्ताक्षर से युद्ध की घोपणा करना ।

(आ) चान्सलर को बहुमत से निर्वाचित करने की दशा म रीस्टाग को विघटित करना ।

(इ) चान्सलर का नाम प्रस्तावित करना ।

(ई) सघीय सरकार की प्राथना पर सवैधानिक सकट की घोपणा एव निम्न सदन का विघटन करना ।

दस्य किया जा सकता है। अविश्वास के प्रस्ताव म उत्तराधिकार का उल्लेख होता है तथा प्रस्ताव उपस्थित करन के कम से कम 48 घण्टे पश्चात उसका नाम प्रस्तावित कर दिया जाता ह। यह प्रस्ताव निम्न सदन के कुल सदस्या के स्पष्ट बहुमत से पारित होना चाहिए। एसी स्थिति म पुराना चान्सलर तुरत अपदस्थ हो जाता है एव नवीन प्रधानमन्त्री को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया जाता है। यदि पुराने चासलर को रीस्टाग के आधे स कम सदस्या का समथन प्राप्त होता है तो वह राष्ट्रपति को रीस्टाग को विघटित करन का परामश दे सकता है।[39] स्पष्ट है, वीमर सविधान के दौरान जो मन्त्रिमण्डलीय अस्थिरता थी उसे इस व्यवस्था से दूर करन का प्रयत्न किया गया है।

व्यवहार म चासलर ही मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को चुनता और पदच्युत करता है। प्रथम राष्ट्रपति एडिनआर (Adenauer) ने अनेक बार मन्त्रिमण्डल से बिना पूछे अनक महत्वपूण निणय लिये थे। मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को दोना सदना की प्राथना पर उनको बठका म भाग लेने का अधिकार है। परतु अधिकाश मन्त्री सदना की बैठको स अनुपस्थित ही रहते है।

राष्ट्रपति की सभी आज्ञाप्तियो एव आदेशा पर चासलर या अय सम्बधित सघीय मत्रियो के प्रति हस्ताक्षर होते है। इसके केवल तीन अपवाद हैं (1) चासलर को नियुक्त करने एव पदच्युत करन सम्बधी आदेश, (2) बुडस्टाग द्वारा चासलर को बहुमत स निर्वाचित करने म असफल रहने पर सदन को विघटित करने सम्बधी आदेश, एव (3) कायकारी चासलर एव मन्त्रिमण्डल को नये उत्तराधिकारी की नियुक्ति तक कार्य करने सम्बधी आदेश।

चासलर यथाथ कायपालिका है एव राष्ट्रपति नाममात्र की कायपालिका है। चासलर देश की नीति को निर्धारित करता है, युद्ध एव युद्धजनित सकटकाल की घोषणा करता है, सेनाओ पर उसका नियत्रण होता है, सुरक्षा मत्री शातिकाल म सर्वाच्च सेनापति होता है तथा वह प्रधानमत्री के अधीन होता है। युद्धकाल म सभी सेनाओ की कमान चासलर के हाथो मे होती है। वह सघीय मन्त्रिमण्डल के सदस्यो म विभागो का वितरण करता है तथा मन्त्रिमण्डल का गठन करता है। चासलर का पद राष्ट्रपति की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है।

पश्चिमी जमनी म कायपालिका को रीस्टाग के प्रति उत्तरदायी एव राष्ट्रपति को नाममात्र का अध्यक्ष बनाकर तथा मन्त्रिया को उसके कार्यों के सम्बध म प्रति हस्ताक्षर के अधिकार देकर निस्सदेह ससदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गयी है।

सोवियत कार्यपालिका
[SOVIET EXECUTIVE]

सोवियत रूस की सर्वोच्च कायपालिका एव प्रशासनिक अग मन्त्रि-परिषद

39 अनुच्छेद 67

(Ministry) है ।[40] मार्च 1946 ई के पूर्व तक इसे काउन्सल ऑफ दी पीपुल्स कमीसार (Council of the Peoples Commissars) के नाम से पुकारा जाता था। उसके पश्चात मन्त्रि-परिषद को काउसल ऑफ मिनिस्टर्स (Council of Ministers) की सज्ञा दी गयी है ।

स्टालिन सविधान के अनुसार मन्त्रि-परिषद सोवियत रूस की सरकार है। (अनुच्छेद 56)

रचना एव सगठन

रूस म मन्त्रि-परिषद सर्वोच्च सोवियत के दोनो सदना—सोवियत ऑफ यूनियन एव सोवियत ऑफ नेशनल्टीज—की सयुक्त बैठक म चुनी जाती है । यदि सर्वोच्च सोवियत का अधिवेशन न हो रहा हो तो सोवियत रूस की प्रेसीडियम को मन्त्रि-परिषद के अध्यक्ष अथात प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर मन्त्रियो को नियुक्त एव पदच्युत करने तथा मन्त्रालया को समाप्त करने या उनका पुनगठन करने की शक्ति प्राप्त है। लेकिन प्रेसीडियम के द्वारा किये जाने वाले कार्यों का बाद म सर्वोच्च सोवियत द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक होता है । मन्त्रि परिषद सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी होती है और उसके सत्रावसान काल मे वह प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होती है ।

प्रधानमन्त्री मन्त्रि-परिषद का अध्यक्ष होता है । प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त एक वरिष्ठ उप प्रधान, उप प्रधान राज्य नियोजन आयोग का अध्यक्ष, सोवियत नियन्त्रण आयोग का अध्यक्ष, स्टेट बक बोड का अध्यक्ष, कला समिति, उच्च शिक्षा सम्बन्धी समिति, निर्माण काय समिति के अध्यक्षगण एव मन्त्रीगण मन्त्रि परिषद क सदस्य होत हैं (अनुच्छेद 70) । मन्त्रि परिषद की सदस्य सख्या समय समय पर बदलती रही है। 1924 ई मे इसकी सदस्य-सख्या 10, 1936 ई म 32, 1947 ई मे 59, 1950 ई मे 51, 1955 ई म 59 एव 1952 ई म 69 थी । स्टालिन की मृत्यु क समय पुनगठित मन्त्रि परिषद की सदस्य-सख्या 30 थी।

सोवियत रूस मे दो प्रकार के मन्त्रालय हैं—अखिल सघीय मन्त्रालय (All Union Ministries), एव सघ गणराज्यीय मन्त्रालय (Union Republic Ministries) । अखिल सघीय मन्त्रालया का सम्बन्ध सघीय विषया स होता है एव इनका क्षेत्राधिकार देशव्यापी होता है । इनकी सख्या 1950 ई म 30 निश्चित कर दी गयी थी । सघ गणराज्यीय मन्त्रालया का सम्बन्ध सामान्य क्षेत्र के ऐस विषयां स होता है जिन पर राष्ट्रीय सरकार एव सघ की घटक इकाइयो—सघ गणराज्य की सरकारा—का सयुक्त क्षत्राधिकार प्राप्त होता है । इनका प्रशासन विभिन्न गणराज्या के सम्बन्धित मन्त्रालयो के द्वारा किया जाता है । यह अन्तर सदव सुनिश्चित नहीं होता। अनक

---

40 Article 79

मन्त्रालया को एक स दूसर वग म हस्ता तरित किया जाता रहा है। मुनरो ने दोना के अन्तर को स्पष्ट करत हुए कहा है कि अखिल सघीय मन्त्रालया का प्रशासन रूस की राजधानी मास्को म केन्द्रित है जबकि सघ गणराज्यीय मन्त्रालया म प्रशासकीय कार्यों का नियन्त्रण केन्द्रित है लेकिन क्रियान्वयन बहुत सीमा तक विकेन्द्रित होता है।

अखिल सघीय मन्त्रालयो की सख्या प्रारम्भ म केवल 5 थी। 1936 ई मे स्टालिन सविधान के अन्तगत 8, 1942 ई म 13, एव 1947 ई म 36 थी। 1950 ई म इनकी सख्या 50 निश्चित कर दी गयी। (अनुच्छेद 77)

प्रमुख अखिल सघीय मन्त्रालय निम्नत हैं

विदश व्यापार, कागज एव लकडी उद्योग, तल, मोटर, ट्रेक्टर, एव वायुयान उद्योग नौसेना, शस्त्रास्त्र, रल, कृषि-यन्त्र, यातायात, लोहा एव इस्पात उद्योग, कोयला रसायन, बिजली उद्योग आदि।

प्रमुख सघ गणराज्यीय मन्त्रालय निम्न हैं (अनुच्छेद 78)

आन्तरिक मामले, सेना, उच्च शिक्षा, सावजनिक स्वास्थ्य, वैदेशिक मामले, वन-सम्पदा कृषि, व्यापार, वित्त, न्याय, खाद्य उद्योग, लघु उद्योग आदि।

मन्त्रालया की सख्या म वद्धि के कारण एक प्रकार के आन्तरिक मन्त्रिमण्डल (Inner Cabinet) का विकास हुआ है। मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष अर्थात प्रधानमन्त्री एव उपाध्यक्ष आन्तरिक मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं। इसके द्वारा मन्त्रि-परिषद के विभिन्न मन्त्रालया क कार्यों का निरीक्षण एव आवश्यक समन्वय किया जाता है। आन्तरिक मन्त्रि-परिषद के सदस्य सामान्यत साम्यवादी दल के प्रमुख नेता एव दलीय प्रेसीडियम के सदस्य होते हैं। दलीय प्रेसीडियम देश की नीति निर्माण करन वाली प्रमुख सस्था है। अत आन्तरिक मन्त्रिमण्डल दल एव शासन को जोडने वाली एक कडी की भाति है।

शक्तियाँ

मन्त्रि परिषद की शक्तिया निम्नवत हैं

(1) सभी अखिल सघीय एव सघ गणराज्यीय मन्त्रालयो एव सघीय शासन की अन्य सस्थाओ के कार्यों का निर्देशन एव समन्वय करना।

(2) राज्य के आय व्यय विवरण एव राष्ट्रीय आर्थिक विकास योजना का तैयार करना तथा उसके क्रियान्वयन हेतु उचित एव आवश्यक व्यवस्था करना।

(3) सावजनिक व्यवस्था एव देश की सुरक्षा तथा नागरिक अधिकारो एव राज्य के हितो की रक्षा।

(4) वदेशिक मन्त्रालया का प्रबन्ध।

(5) सुरक्षा हेतु वार्षिक सनिक सेवा एव देश की सेना के सामान्य सगठन की व्यवस्था करना। सघीय मन्त्रालय अनुच्छेद 66 के अधीन पारित विधियो के

आधार पर निणय एव आदेश जारी करते है एव विधिया के क्रियान्वयन का निरीक्षण करते है।

(6) सुरक्षा, सास्कृतिक एव आर्थिक कार्यों के सम्पादन हेतु समय समय पर विशेष समितिया एव केन्द्रीय प्रशासन की स्थापना करना। (अनुच्छेद 68)

(7) अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तगत मन्त्रि-परिषद को सघीय गणराज्यीय मन्त्रियो एव सघीय मन्त्रिया के निणयो एव आदशा को निलम्बित करने का अधिकार प्राप्त है। (अनुच्छेद 69)

(8) सघीय मन्त्रिया को राज्य के प्रशासन को निर्देशित करने का अधिकार है (अनुच्छेद 72 एव 75)। अनुच्छेद 76 के अधीन सघीय मन्त्रियो को राज्य प्रशासन को सम्बन्धित सघ गणराज्यीय मन्त्रालया के माध्यम से निर्देश देने का अधिकार प्राप्त है।

(9) सघीय मन्त्रियो को अपने क्षेत्राधिकार के अन्तगत मन्त्रि परिषद के निणया को क्रियान्वित करने के अधिकार भी प्राप्त है। (अनुच्छेद 76)

क्या सोवियत मन्त्रि परिषद ससदीय प्रणाली का उदाहरण है ?

सोवियत मन्त्र परिषद को अन्य ससदीय प्रणालियो वाले देशो की भाति 'Council of Ministers' की सना दी जाती है। वे सुप्रीम सोवियत के सदस्य होते है एव उसी के प्रति अपने कार्यों एव नीतियो के लिए उत्तरदायी होते है। सुप्रीम सोवियत के सत्रावसान काल म वे प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होते हैं (अनुच्छेद 65)। सुप्रीम सोवियत के सदस्य मन्त्रि परिषद से प्रश्न पूछते है एव उनका उत्तर मौखिक या लिखित रूप मे तीन दिन म मन्त्रिया के लिए देना अनिवाय होता है। सोवियत मन्त्र परिषद के सभी सदस्य एक ही राजनीतिक विचारधारा के होते हैं। यह व्यवस्था स्वत ही एक अनिवायता है क्योकि सोवियत रूस म केवल साम्यवादी दल का ही अस्तित्व है। सोवियत मन्त्रि परिषद के अध्यक्ष को प्रधानमन्त्री कहते हैं।

सोवियत प्रधानमन्त्री की स्थिति रूस म सर्वोच्च है। स्तालिन, मेलिनकोव, बुलगानिन तथा ख्रुश्चेव जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्वो ने इस पद को सुशोभित किया है। सामान्यत दल म प्रधानमन्त्री की स्थिति केन्द्रीय होती है। अत वह अन्य शक्तिधारी पदाधिकारी होता है। लेकिन सोवियत सघ के प्रधानमन्त्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व पर निभर करती है। कभी भी प्रधानमन्त्री को इस उच्च स्थिति से बरबस हटना भी पडता है। उदाहरणाथ, 1924 स 1930 ई तक रिकोव (Rekov) रूस का प्रधानमन्त्री था लेकिन 1938 ई म देशद्रोह का आरोप लगाकर उस पदच्युत कर दिया गया।

सोवियत मन्त्रि-परिषद की उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ ससदीय व्यवस्थापिका की वाछनीय विशेषताओ को पूण करती हैं। अत बाह्य रूप स ऐसा लगता है कि रूस म ससदीय कायपालिका है। लेकिन आलोचको का यह मत है कि रूस की मन्त्रि-परिषद

ससदीय कायपालिका का उदाहरण नही मानी जा सकती । इस कथन के पक्ष मे निम्न तक प्रस्तुत किय जाते है

(1) सोवियत रूस म एक दलीय व्यवस्था है । साम्यवादी दल एकमात्र दल है । एकदलीय व्यवस्था म म त्रि परिषद का निर्माण पूव निश्चित तथ्य है । सोवियत रूस मे मन्त्रि-परिषद का निमाण बहुमत दल के नेता द्वारा नही किया जाता अपितु साम्यवादी दल को प्रेसीडियम द्वारा म त्रियो की सूची तैयार की जाती है । म त्रि-परिषद सिद्धा त रूप मे सुप्रीम सोवियत पर तु व्यवहार मे दलीय प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होती है । सोवियत रूस म सभी निणय दलीय स्तर पर लिये जाते हैं एव व्यवस्थापिका तथा कायपालिका उ ह अनुमोदित मात्र करती हैं ।

(2) प्रधानम त्री ससदीय दल द्वारा नही चुना जाता है । उसकी तुलना हम ससदीय शासन प्रणाली के प्रधानम त्री से नही कर सकते । इगलण्ड का प्रधानम त्री अनिवायत कामस सभा मे अपने दल का नेता होता है । लेकिन सोवियत प्रधान-म त्री के लिए यह आवश्यक नही कि वह सोवियत आफ दी यूनियन मे अपने दल का नेता हो । स्टालिन का दल एव शासन दोना पर एकाधिकार था । उसकी मत्यु के पश्चात मेलिनकोव व बुलगानिन साम्यवादी दल के उसी के समान असदिग्ध नेता नही थे ।

(3) विरोधी दल का अस्तित्व ससदीय प्रणाली की अनिवाय विशेपता है । *लेकिन रूस मे एकदलीय व्यवस्था के कारण विरोधी दल का वहा पूण अभाव है ।*

(4) सुप्रीम सोवियत के सदस्या को मन्त्रियो से प्रश्न पूछने के अधिकार प्राप्त है । लेकिन म त्रीगण केवल सूचना मात्र देते है । अविश्वास के प्रस्ताव का साम्यवादी दल के फौलादी अनुशासन के कारण पारित होना एव वकल्पिक सरकार का निर्माण निता त असम्भव है ।

स्ट्राग के अनुसार *सोवियत मन्त्रि परिषद सवैधानिक कायपालिका नही है,* फलस्वरूप यह ससदीय न होकर असंसदीय कायपालिका है ।[41] 1936 ई के स्टालिन *सविधान (1947 ई मे सशोधित) के अनुसार राज्य शक्ति का सर्वोच्च अग यू एस* एस आर की सुप्रीम सोवियत है (अनुच्छेद 30) । लेकिन सुप्रीम सोवियत की प्रेसी-डियम को उसके सत्रावसान-काल म आदेश जारी करके विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है । सोवियत रूस की मन्त्रि-परिषद राज्य शक्ति का सर्वोच्च अग है (अनुच्छद 64) । मत्रि परिषद सुप्रीम सोवियत द्वारा अपने सयुक्त अधिवेशन म नियुक्त की जाती है और सुप्रीम सोवियत के प्रति ही उत्तरदायी होती है एव सत्रावसान-काल म प्रेसीडियम के प्रति । लेकिन तथ्य यह है कि मन्त्रि परिषद के काय कायपालिका तक ही सीमित नही हैं । वह आदश द्वारा विधि निर्माण कर सकती है । हर स्थिति म दोना

41 Strong *Modern Political Constitutions*, pp 260-61

संस्थाएं—प्रेसीडियम एवं मन्त्रि परिषद—को साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति के सहयोग से कार्य करना पड़ता है। इसका आंशिक कारण, जैसा कि स्टालिन ने स्वयं कहा है, यह है कि सर्वहारा का अधिनायकत्व यथार्थ में साम्यवादी दल का अधिनायकत्व है और दल सर्वहारा का मार्गदर्शन करता है।

फाइनर के अनुसार सोवियत कार्यपालिका प्रणाली में एक प्रकार की द्वैधता (duality) पायी जाती है। कार्यपालिका के कार्य प्रेसीडियम एवं मन्त्रि परिषद (Council of Ministers) में विभाजित हैं। प्रेसीडियम को मन्त्रियों सहित सभी पदाधिकारियों को सुप्रीम सोवियत के सत्रावसान-काल में नियुक्त एवं पदच्युत करने की शक्तियां प्राप्त हैं। केवल औपचारिक स्वीकृति को छोड़कर मन्त्रि-परिषद का गठन एवं उसका नियन्त्रण भी प्रेसीडियम के हाथों में होता है। मन्त्रि परिषद ही मन्त्रिमण्डल (Cabinet) है। इसके सामूहिक उद्देश्य होते हैं परन्तु मन्त्री अपने विशिष्ट विभागों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं।' सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रेसीडियम काउंसिल एवं साम्यवादी दल की पोलिटब्यूरो श्रेष्ठ संगठनात्मक सूत्रों से इस प्रकार गठित है कि आवश्यक गतिशीलता होने के साथ-साथ दल का सम्पदा के ऊपर अर्थात उन पर दलीय व्यवस्था द्वारा नियन्त्रण स्थापित किया गया है।[42]

मुनरो ने निम्न शब्दों में सोवियत परिषद के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किये हैं क्या वास्तव में रूस में नवीन संविधान द्वारा मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर आधारित उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी है? इसका तर्कसंगत उत्तर तो सकारात्मक ही हो सकता है। मन्त्रि परिषद सर्वोच्च सोवियत द्वारा नियुक्त एवं उसी के प्रति उत्तरदायी होती है। कागज पर सोवियत एवं फ्रांस मन्त्रिमण्डलों में मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की दृष्टि से विशेष भेद नहीं है। लेकिन व्यवहार में बहुत अन्तर है। सोवियत मन्त्रीगण व्यवस्थापिका सभा द्वारा नहीं चुने जाते हैं। वे तो साम्यवादी दल की राजनीतिक समिति द्वारा निर्वाचित होते हैं और राजनीतिक समिति दल के महासचिव द्वारा नियुक्त की जाती है। सिद्धान्ततः वे सर्वोच्च सोवियत एवं प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होते हैं। कोई भी मन्त्री पदारूढ़ रहता है या पद से पृथक होता है यह उस मन्त्री के दलीय नेताओं न कि संसदीय नेताओं के साथ सम्बन्धों पर निर्भर करता है।[43]

सोवियत रूस की सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम

प्रेसीडियम सोवियत रूस के संविधान की अनोखी संस्था है। सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet) के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में इसका चुनाव किया जाता है। प्रारम्भ में प्रेसीडियम में एक अध्यक्ष (Chairman) 16 उपाध्यक्ष (Vice

42 Finer *op cit* pp 666 67
43 Munro *Governments of Europe*, pp 748 49

Chairman) होते थे। प्रत्येक सघ गणराज्य म से एक अध्यक्ष चुना जाता था। इसके अतिरिक्त 24 अतिरिक्त सदस्य भी होते थे। 1946 ई मे अतिरिक्त सदस्यो की सरया घटाकर 16 कर दी गयी है। इस प्रकार इसकी कुल सदस्य सरया 33 थी परन्तु 1966 ई मे इसकी सदस्य सख्या को बढाकर 37 कर दिया गया है, जिसमे एक अध्यक्ष, 15 गणराज्या के प्रतिनिधि के रूप मे 15 उपाध्यक्ष (Vice Presidents) तथा 20 साधारण सदस्य होते है।[44] 1919 ई से 1946 ई तक प्रेसीडियम के अध्यक्ष एम आई कालिनिन (M I Kalinin) थे। उसके पश्चात एन एम शिवरीनक (N M Shverink) के वारोशिलोव (K Voroshilov) एव मिकोयान (Mikoyan) क्रमश अध्यक्ष रहे। प्रेसीडियम के सदस्य सर्वोच्च सोवियत के सदस्य (Deputies) होत हैं। प्रेसीडियम सिद्धान्तत अपने कार्यों के लिए सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी होती है।

प्रेसीडियम का सामान्य कायकाल 4 वष है। लेकिन सुप्रीम सोवियत के अपने कायकाल स पूव ही विघटित होने पर प्रेसीडियम भी उसी के साथ विघटित हो जाती है। पुरानी प्रेसीडियम उस समय तक काय करती रहती है जब तक कि नवीन सुप्रीम सोवियत का निर्वाचन नही हो जाता। नवीन सुप्रीम सोवियत का सत्र पुरानी प्रेसीडियम के द्वारा निर्वाचन के तीन माह के भीतर बुलाया जाता है (अनुच्छेद 55)। सुप्रीम सोवियत के निर्वाचन सम्बन्धी आदेश उसके कायकाल की समाप्ति या विघटन के दो माह के भीतर प्रेसीडियम द्वारा ही जारी किय जात हैं।

सोवियत रूस म सर्वोच्च सोवियत राज्य शक्ति का सर्वोच्च [illegible] है। देश के शासन का समस्त दायित्व उसी पर होता है। सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनो का आकार बृहद है। उनकी सदस्य सख्या बहुत अधिक है। [illegible] केवल दो ही सत्र हाते हैं। प्रत्येक सत्र का कायकाल सामान्यत 10-12 दिन [illegible] जो उसके दायित्व को देखते हुए निश्चय ही अपर्याप्त है। [illegible] की आवश्यकता अनुभव करना स्वाभाविक था जो सुप्रीम सोवियत के [illegible] उसके दायित्वों को सम्पादित कर सके। फलत प्रेसीडियम की [illegible]। प्रेसीडियम सर्वोच्च सोवियत की एक स्थायी समिति है जिसके [illegible] होते हैं [illegible] सुप्रीम सोवियत के दायित्वा का उसके [illegible] अन्य दनिक कार्यों को भी करती है।

प्रेसीडियम की शक्तियाँ

सविधान द्वारा प्रेसीडियम [illegible] (अनुच्छेद 49) [illegible] है। वे निम्नत ह

(1) सर्वोच्च सोवियत के [illegible]

44 अनुच्छेद 48

के दोनों सदनों में मतभेद होने की स्थिति में उसे भंग करके नव निर्वाचन का आदेश देना।

(2) आज्ञप्तियाँ जारी करना, सोवियत संघ की प्रचलित विधियों की व्याख्या करना तथा संघीय मन्त्रि-परिषद् अथवा किसी गणराज्य के संविधान विरोधी निर्णयों एवं आज्ञाओं को अस्वीकृत करना।

(3) स्वेच्छा या किसी गणराज्य द्वारा माँग करने पर जनमत-संग्रह की व्यवस्था करना, लेकिन आज तक सोवियत रूस में कोई जनमत-संग्रह नहीं हुआ है।

(4) सुप्रीम सोवियत के सत्रावसान-काल में प्रेसीडियम को मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति एवं पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त है। नवीन मन्त्रालयों के निर्माण एवं उनकी समाप्ति तथा नवीन क्षेत्रों के निर्माण एवं विद्यमान क्षेत्रों में व्यवस्था और सुधार करने सम्बन्धी अधिकार भी प्रेसीडियम को प्राप्त हैं। लेकिन इन सब कार्यों का सर्वोच्च सोवियत द्वारा अनुमोदन आवश्यक है।

(5) सुप्रीम सोवियत के सत्रावसान-काल में बाह्य आक्रमण या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के दायित्वों की पूर्ति के लिए युद्ध की घोषणा करने का अधिकार प्रेसीडियम को प्राप्त है। सेना के उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त एवं पदच्युत करने, सेना में आंशिक एवं अनिवार्य भर्ती सम्बन्धी स्थानीय या देशव्यापी आदेश जारी करने, सैनिक कानून (Martial Law) की घोषणा करने तथा सैनिक न्यायालयों की स्थापना के भी अधिकार प्रेसीडियम को प्राप्त हैं।

(6) प्रेसीडियम अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों को स्वीकृत एवं अस्वीकृत करती है। वह दूसरे देशों में राजदूतों की नियुक्ति करती है एवं विदेशी राजदूतों का स्वागत करती है।

(7) प्रेसीडियम द्वारा सैनिक उपाधियाँ, राजनयिक पद एवं अन्य सम्मानसूचक एवं विशेष उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। उसे क्षमादान के भी अधिकार हैं।

(8) सुप्रीम सोवियत के सदस्यों को बन्दी बनाने के विरुद्ध उन्मुक्तियाँ (immunity) प्राप्त हैं। सुप्रीम सोवियत की सहमति या उसके सत्रावसान-काल में प्रेसीडियम की सहमति से ही वे बन्दी बनाये जा सकते हैं।

प्रेसीडियम का अध्यक्ष

प्रेसीडियम का अध्यक्ष ही सोवियत संघ का अध्यक्ष होता है। वह राज्य के अध्यक्ष के दायित्व एवं कार्यों को सम्पादित करता है, यद्यपि संविधान या सुप्रीम सोवियत का किसी विधि के द्वारा उसे ये दायित्व प्रदान नहीं किये गये हैं। वह सर्वोच्च सोवियत द्वारा घोषित विधियों एवं प्रेसीडियम के आदेशों पर हस्ताक्षर करके उनकी घोषणा करता है। वह प्रेसीडियम के कुछ कर्तव्यों को भी सम्पादित करता है यद्यपि ऐसा कोई संवैधानिक उपबन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए, वह विदेशी राजदूतों एवं राजनयिकों का स्वागत करता है एवं अन्य राज्याध्यक्षों के साथ समानता के स्तर पर

सन्देशा का आदान प्रदान करता है। प्रेसीडियम का अध्यक्ष एक प्रकार से राज्य का नाममात्र का अध्यक्ष होता है। उसके पद का औपचारिक महत्व है, राजनीतिक नही। कार्टर के अनुसार उसका प्रमुख काय अन्य देशो के राज्याध्यक्षो की भाँति सामान्य नागरिको से सम्पर्क रखना है। जन हित म वह शासन का पितृ-तुल्य सजीव मानवीय सम्बन्धो का प्रतीक मात्र है।[45]

प्रेसीडियम की यथाथ स्थिति

प्रेसीडियम को सावियत रूस की शासन व्यवस्था म महत्वपूण स्थान है। उसे विधायी एव कायपालक अधिकार प्राप्त हैं। प्रेसीडियम का अध्यक्ष राज्याध्यक्ष के कुछ औपचारिक कतव्यो को निभाता है। उसके कुछ काय यायिक भी है। रूस म यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति न्यायपालिका को प्राप्त नही है। प्रेसीडियम को सघ एव राज्यो के सविधान विरोधी आदेशो को अवैध घोषित करने एव विधियो की व्याख्या करने का अधिकार है। अत प्रेसीडियम उन कतव्यो को सम्पादित करती है जो लोकतन्त्रीय देशो म न्यायपालिका द्वारा किये जाते हैं। सघीय शासन एव घटक शासनो के मध्य उत्पन्न विवादो के निपटाने का अधिकार अन्य सघीय देशो म सघीय न्यायपालिका को प्राप्त है। सोवियत रूस मे इन अधिकारो का प्रयोग प्रेसीडियम द्वारा किया जाता है। प्रेसीडियम की इन शक्तियो पर केवल यही प्रतिबन्ध है कि सर्वोच्च सोवियत द्वारा इन कार्यों का अनुमोदन होना चाहिए। लेकिन यह औपचारिक व्यवस्था मात्र है। रूस म साम्यवादी दल एकमात्र दल है एव उसके फौलादी अनुशासन के कारण प्रेसीडियम की स्थिति केन्द्रीय है। अत व्यवहार मे प्रेसीडियम सोवियत रूस के सविधान का मुख्य व्याख्याकार (interpreter) एव सरक्षक है।

प्रेसीडियम की स्थिति के सम्बन्ध म विद्वानो म तीव्र मतभेद है। प्रश्न यह है कि क्या प्रेसीडियम को सोवियत रूस की कायपालिका माना जाय ? यदि नही, तो प्रेसीडियम की वास्तविक स्थिति क्या है ? मुनरो प्रेसीडियम को रूस की औपचारिक कायपालिका नही मानते। उनके अनुसार सोवियत सघ बिना अध्यक्ष का सघ है। इगलण्ड या अमेरिका की भाति वहाँ कोई अध्यक्ष नही है। मुनरो के शब्दो म, '1936 ई के सविधान द्वारा सोवियत रूस म अध्यक्ष की व्यवस्था नही की गयी है।' प्रेसीडियम एव इगलण्ड के राजा की तुलना करना प्रासगिक होगा। ब्रिटिश राजा का पद वश परम्परागत है और वह जीवनपयन्त पदारूढ रहता है। इसके विपरीत, प्रेसीडियम केवल 4 वष के लिए निर्वाचित लघु समिति है और अपने कार्यो के लिए सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी होती है। इगलैण्ड का राजा नाममात्र का अध्यक्ष है एव उसके नाम पर किये जाने वाले कार्यों के लिए मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। ब्रिटिश राजा एक व्यक्ति है, जबकि प्रेसीडियम एक समिति है।

45 Carter, Renny & Hez *The Government of Soviet Union*, 1954, p 1

प्रेसीडियम एव अमरिकी राष्ट्रपति म कायकाल की समानता है। दोना म शप सभी असमानताएँ है। अमरिकी राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित है, प्रेसीडियम सुप्रीम सोवियत द्वारा। अमरिकी राष्ट्रपति कांग्रेस क प्रति उत्तरदायी नही है, जबकि प्रेसीडियम सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी होती है। स्पष्ट है कि सोवियत रूस की शासन प्रणाली शक्ति पृथक्करण पर आधारित नही है, वहाँ सिद्धान्तत इगलैण्ड की भाँति ससद—सुप्रीम सोवियत—की सम्प्रभुता है। अमरिका का राष्ट्रपति इगलैण्ड क राजा की भाँति एकल कायपालिका का उदाहरण है, प्रेसीडियम एक सामूहिक सस्था है।

मुनरो के मत क विपरीत हापर एव थामसन उन विचारका म हैं जो प्रेसीडियम को नियमित कायपालिका स्वीकारत हैं। उनके अनुसार, प्रेसीडियम उसी रूप म (बहुल) कायपालिका है जिस रूप म फास का राष्ट्रपति या इगलण्ड का राजा कायपालिका है। लकिन हापर का उपरोक्त कथन मान्य नही है। रूस के सविधान म मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व है एव मन्त्रि परिषद सुप्रीम सोवियत और उसके सत्रावसान काल म प्रेसीडियम क प्रति उत्तरदायी होती है। इससे हापर के मत की गम्भीरता समाप्त हो जाती है और मुनरो क मत का समथन होता है।

प्रेसीडियम की स्थिति सम्बन्धी उपरोक्त दोनो मत अतिशयोक्तिपूण हैं। प्रेसीडियम की लघु सख्या एव उसे प्राप्त शक्तिया के कारण उसका विशेष महत्व है एव मन्त्रिमण्डल के समान ही देश के शासनतन्त्र म उसकी स्थिति केन्द्रीय है। रूस की प्रेसीडियम को पूववर्ती दलीय केन्द्रीय कायपालिका समिति (C E C) के समकक्ष मान सकते है। यह उसकी सन्तान है। फाइनर ने सोवियत रूस की प्रेसीडियम को विधि एव व्यवहार मे सतत सरकार की सज्ञा दी है।[46] विधि निर्माण की यथाथ शक्ति तथा मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण करने की पूण शक्ति प्रेसीडियम म निहित है। एक दूसर स्थान पर फाइनर प्रेसीडियम को दल एव राज्य का तानाबाना मानता है।[47] प्रेसीडियम के सभी सदस्य साम्यवादी दल के सदस्य होते है। अत साम्यवादी दल एव सोवियत शासन म प्रेसीडियम के माध्यम से समन्वय हो सका है। विशिन्सकी क अनुसार, प्रेसीडियम सामूहिक राष्ट्रपति है। पूजीवादी देशो के राष्ट्रपतिया की भाँति

46 'Presidium is the continuous government of the Soviet Union in fact as well as in law (p 542) The virtual power of law making is thus in the hands of the Presidium Further it interprets the laws It has the power of removing and appointing officials including the Council of Ministers between sessions of the Soviet the shaping of the Cabinet and its entire control therefore lies with the Presidium ' —Finer *op cit* pp 666 67

47 'The Presidium is the inter-personal web of Party and State " —Finer *Governments of Greater European Powers*, p 680

उसके कोई विशेष अधिकार नही है । उसके अधिकारो का आधार उसकी राष्ट्रपति की स्थिति है जो सामूहिक सस्था के रूप म विशेष सत्तायुक्त होता है ।[48]

पूंजीवादी देशो म रूस की प्रेसीडियम की भाति राज्य शक्ति का प्रयोग करने वाला शासन का कोई अग नही होता है । इन देशो म राज्याध्यक्ष एक व्यक्ति—राजा या राष्ट्रपति—होता है । वह ससद के प्रति उत्तरदायी नही होता । वह ससद स ऊपर होता है । उसे ससद द्वारा पारित विधिया पर निषेधाधिकार एव ससद के विघटन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त होते ह । सोवियत रूस मे राज्याध्यक्ष एक व्यक्ति नही अपितु सुप्रीम सोवियत की एक समिति होती है । स्टालिन इसे रूस का 'सामूहिक राष्ट्रपति कहता था ।

लेकिन **जुलियन टाउस्टर** के अनुसार, प्रेसीडियम सोवियत राज्य का सामूहिक राष्ट्रपति नही है ।' सत्य तो यह है कि प्रेसीडियम न सोवियत शासनतन्त्र के विधायी अग के रूप म अधिक काय किया है । इसके काय अनेक प्रकार के है ।[49] **एल जी चचवुड** के अनुसार, 'प्रेसीडियम की व्याख्या हम यह कह कर अच्छी प्रकार कर सकते ह कि वह व्यवस्थापिका एव सामूहिक राष्ट्रपति पद का समन्वय है । [50] सत्य तो यह है कि प्रेसीडियम रूस की सर्वोच्च व्यवस्थापिका का सर्वोच्च रूप ह जो राष्ट्रपति एव मन्त्रिमण्डल के अनेक कत या को सम्पादित करता है । **आग एव जिक** ने प्रेसीडियम के महत्व के सम्बन्ध म कहा है कि उपलब्ध प्रमाणा से यह स्पष्ट होता है कि प्रेसीडियम ने शासन काय के सम्पादन म अपने जन्मदाता सुप्रीम सोवियत स कही अधिक सक्रिय भूमिका निभायी है । लेकिन प्रेसीडियम को भी वही स्थिति है जो सोवियत मन्त्र परिषद की है । महत्वपूण मामलो पर पहले ही (साम्यवादी दल की) राजनीतिक समिति मे विचार विमश एव निणय कर लिय जाते है । अत वैदशिक मामलो, राष्ट्रीय सुरक्षा एव आन्तरिक नीतिया मे सत्ता का सही अर्थो मे प्रेसीडियम द्वारा प्रयोग असम्भव है ।[51] सत्य ता यह है कि प्रेसीडियम ने सभी व्यावहारिक अर्थो म सुप्रीम सोवियत का आच्छादित कर लिया है । हैरल्ड जिक के अनुसार, ' प्रेसीडियम

---

48 ' The Presidium of the Supreme Soviet is a collegiate President He has no such special rights as characterize the individual presidents of burgeois states His rights flow out of his position as president of a collegium institution of Specialist Authority ' A Y Vyshinsky *The Law of the Soviet State* Chap V, pp 329 336

49 Julian Towster *Political Power in the U S S R* p 272

50 'The Presidium may be best described as a combination of the legislative and collective presidency '—Churchwood L G *Contemporary Soviet Covernment* 1964, p 133

51 Ogg & Zink *Modern Foreign Governments* p 861

विधानमण्डलीय एव प्रशासकीय दोनो ही प्रकार का अभिकरण है। एक तरफ प्रेसीडियम अन्य देशो मे मन्त्रिमण्डल द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को सम्पादित करती है तो दूसरी तरफ उसके द्वारा उच्च सदन या कार्यपालिका परिषद के दायित्वो का सम्पादन किया जाता है।"[52]

52 'It may be seen that the Presidium is both a legislative body and an administrative agency It combines some of the functions performed in other countries by a Cabinet with those closely associated with an Upper Chamber or Executive Council'
—Harold Zink *Modern Governments*, 1962, p 605

20

कुछ अन्य देशो की कार्यपालिकाएँ

[EXECUTIVES OF SOME OTHER COUNTRIES]

जापान[1] की कार्यपालिका

19वी सदी के प्रारम्भ म जापान मे साम-ती ढग की राजनीतिक एव सामाजिक व्यवस्था थी । जापान का वर्तमान सम्राट 600 ईसा पूव जिम्मू द्वारा स्थापित राज वश से सीधे सम्बन्धित है एव उसका वशधर है । 1892 ई म मिनामोटी वश का एक व्यक्ति वास्तविक शासक बन बैठा । उसने सम्राट से 'सोगुन (Shogun) की उपाधि प्राप्त की जिसका अथ था महान् जनरल । सभी साम-त उसक प्रति भक्ति रखत थे । 'सोगुन' सम्राट से परामश किये बिना ही देश पर शासन करता था । बाद म यही पद एक प्रकार की सस्था बन गया था । 17वी सदी के प्रारम्भ म तोकुगोवा जाति के सदस्या न वतमान टाकियो को, जिसे उस समय यीदो (Yedo) कहा जाता था,

1 जापान 20वी सदी के प्रथम चालीस वर्षों म विश्व की एक बडी शक्ति बन गया था । 1930 ई के पश्चात इसके शासका की नीति साम्राज्यवादी बन गयी थी । 1931 ई म जापान ने मचूरिया पर आक्रमण किया था । बाद म चीन क साथ उसका युद्ध छिड गया । 1939 ई म उसके साम्राज्य का क्षेत्रफल 2,60,000 वगमील था । द्वितीय विश्वयुद्ध म धुरी राष्ट्रा (जमनी एव इटली) क साथ मिल कर मित्रराष्ट्रा के विरुद्ध जापान न युद्ध घोषित कर दिया था । प्रारम्भ म उस बडी सफलता प्राप्त हुई थी सम्पूण दक्षिण पूर्वी एशिया एव बमा आदि पर जापान का प्रभुत्व स्थापित हो गया था, परन्तु बाद मे जापान युद्ध म हार गया । सयुक्त राज्य अमरिका द्वारा अगस्त 1945 ई म अणु-बम के प्रयाग न उस 10 अगस्त, 1945 ई को आत्मसमपण करने क लिए बाध्य कर दिया था ।

जापानी बडे परिश्रमी एव लगनशील होत हैं । उनकी 75% जनसख्या कृषि पर निभर है परन्तु प्रति व्यक्ति क पास औसत 2 5 एकड स अधिक भूमि नही ह । जापान न अभूतपूव वैज्ञानिक एव औद्योगिक उन्नति की है । द्वितीय विश्वयुद्ध म विनाश के कगार पर पहुँच चुकन क बाद भी आज जापान विश्व क समृद्ध राष्ट्रा म गिना जाता है ।

अपनी राजधानी बनाया। 1867 ई तक यही स्थिति बनी रही। सामुन तन्त्र द्वारा विदेशियों को कुछ सुविधाएं एवं रियायतें प्रदान की गयी थी। फलतः उनका तीव्र विरोध प्रारम्भ हो गया और 1888 ई में सामन्तवाद को समाप्त कर दिया गया तथा सम्पूर्ण भूमि को सामन्तों के स्वामित्व से सम्राट के स्वामित्व में हस्तान्तरित कर दिया गया। सभी जापानियों को विधिक दृष्टि में समानता प्राप्त हुई एवं वर्गीय विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया गया तथा सामन्तों को व्यापार करने की छूट दी गयी।

1882 ई में सम्राट ने राजकुमार ईटो को जापान में अच्छे शासन हेतु पश्चिमी शासन की संस्थाओं की समीक्षा का कार्य भार सौंपा था। उसके प्रतिवेदन पर 1889 ई के संविधान का निर्माण हुआ। इसे मीजी संविधान भी कहते हैं। यह संविधान प्रशा (Prussia) के संविधान पर आधारित था एवं 1945 ई में जापान के पराजित होने तक चलता रहा। 1945 ई में जापान के वर्तमान संविधान का निर्माण हुआ था।

मीजी संविधान (1889 ई) के अन्तर्गत कार्यपालिका

कार्यपालिका के अन्तर्गत तीन संस्थाएँ थी—सम्राट, मन्त्रिमण्डल एवं प्रीवी काउन्सल। जापान का सम्राट राज्य का अध्यक्ष था। उसमें सम्प्रभुता के व सभी अधिकार केन्द्रित थे जिनका वह संविधान के अनुसार प्रयोग करता था। संविधान के अनुसार एक मन्त्रि-परिषद भी थी। इसका अध्यक्ष—प्रधानमन्त्री—सम्राट के द्वारा जापान के वरिष्ठ राजनीतिज्ञों जिन्हें जिनरो (Genro) कहते थे, के परामर्श पर चुना जाता था। प्रधानमन्त्री अपने सहयोगियों को चुनता था। मन्त्रियों के लिए जापानी संसद—डाइट (Diet)—का सदस्य होना आवश्यक नहीं था। जापान के राजनीतिक जीवन पर सैनिक वर्ग का प्राधान्य था क्योंकि सैनिक या नौसैनिक अधिकारियों में से ही मन्त्रियों को नियुक्त करने सम्बन्धी अभिसमय स्थापित हो चुका था।

जापानी सम्राट की स्थिति संविधान के अनुसार निरकुंश शासक की थी। वह ब्रिटिश सम्राट की भांति संवधानिक अध्यक्ष मात्र नहीं था और न विधि के अधीन ही था। उसे अपदस्थ नहीं किया जा सकता था। उसे संसद को नियन्त्रित करने की शक्ति प्राप्त थी। वह सशस्त्र सेनाओं का अध्यक्ष था, युद्ध एवं शान्ति तथा सन्धियां करने एवं क्षमादान सम्बन्धी व्यापक शक्तियां उसे प्राप्त थी। वह मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार काम नहीं करता था, केवल सेना के विभागाध्यक्षों से ही परामर्श करता था। जिस प्रकार शरीर मस्तिष्क के नियन्त्रण में होता है उसी प्रकार जापानी सम्राट का आदेशों के अनुसार जापानी शासनतन्त्र पर नियन्त्रण था। परन्तु कुछ विचारक इससे भिन्न मत रखते हैं। किरसावा के अनुसार वह संवधानिक अध्यक्ष था, यद्यपि उसके अनुसार जापान के सम्राट में शासन की नैतिक शक्ति ब्रिटिश राजा से कहीं

अधिक है। सम्राट राज्य का अध्यक्ष था न कि शासन का। शासन के अधिकार मन्त्रि-मण्डल को प्राप्त थे।

यनागा (Yanaga) के अनुसार, 'यद्यपि संविधान द्वारा जापानी सम्राट को निरंकुश शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, परन्तु वह स्वयं उनका प्रयोग नहीं करता। उसने सदैव ही मन्त्रियों के परामर्श से कार्य किया है। जापानी सम्राट ब्रिटिश सम्राट से भी अधिक राज्य करता है न कि शासन।'[2]

सम्राट को संक्षेप में पाँच प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त थीं (1) अपने परिवार सम्बन्धी, (2) स्थल व नौसेना के अध्यक्ष के रूप में, (3) उपाधि वितरण सम्बन्धी, (4) धार्मिक एवं समारोहात्मक, एवं (5) शासन सम्बन्धी। वह स्वयं जापानी संसद—डाइट—का सत्र आहूत करता था, तथा उसका उद्घाटन करता था। उसे प्रतिनिधि सदन को विघटित करने का अधिकार था। वह विधेयकों को स्वीकृति प्रदान करता था एवं अध्यादेश जारी करता था तथा अधिकारियों को नियुक्त एवं उनका वेतन निश्चित करता था। वह न्याय का अन्तिम स्रोत था। सभी न्यायालय सम्राट के नाम पर न्यायिक कार्य करते थे।

सामाजिक जीवन में उसका बड़ा प्रभाव था एवं समाज में उसका महत्वपूर्ण स्थान था। जापानी विद्यार्थियों को स्कूलों में उसके प्रति निष्ठा एवं भक्ति की शिक्षा दी जाती थी तथा प्रत्येक शिक्षा संस्था में उसका चित्र टंगा रहता था।

प्रीवी काउंसिल

इसमें एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष एवं 24 सदस्य होते थे जिन्हें सम्राट प्रधान मन्त्री के परामर्श से नियुक्त करता था। सम्राट द्वारा परामर्श मांगने पर यह परिषद उसे परामर्श देती थी। इसे संविधान की व्यवस्था करने तथा मन्त्रियों एवं कुछ साम्राज्यीय आदेशों पर विचार करने का अधिकार प्राप्त था। मन्त्रिमण्डल के सदस्य प्रीवी काउन्सिल के सदस्य होते थे। लेकिन प्रीवी पार्षद के रूप में वे सम्राट को परामर्श नहीं देते थे। प्रीवी काउन्सिल जापानी डाइट के प्रति उत्तरदायी नहीं होती थी। मेजी संविधान के अन्तर्गत प्रशा के ढंग की संसदीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी थी जिसके अन्तर्गत प्रधानमन्त्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। जापानी मन्त्रिमण्डल की यदि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से तुलना की जाये तो दोनों में अनेक अन्तर स्पष्ट हैं। यथा—जापान में प्रधानमन्त्री के लिए बहुमत दल का नेता होना आवश्यक नहीं था और न निम्न सदन—प्रतिनिधि सदन—में विपरीत मत आने पर प्रधानमन्त्री को त्यागपत्र देना ही आवश्यक था। लेकिन व्यवहार में जापानी विधानमण्डल के विरोध के कारण अनेक मन्त्रियों एवं मन्त्रिमण्डलों को पदत्याग करना पड़ा था। जापानी राजनीतिक जीवन में 'सर्वोच्च युद्ध समिति' (Supreme War

2 C Yanaga *Japanese People and Politics*, p 137

Council) का बड़ा प्रभाव था। सेना एवं नौसेना के अध्यक्ष इसके सदस्य होते थे। मन्त्रिमण्डल में क्रमशः एक एक स्थान सेवारत जनरल एवं एडमिरल को प्रदान किया जाता था। इसमें जापानी मन्त्रिमण्डल में सेना को असीमित विशेषाधिकार प्राप्त हो गये थे। सर्वोच्च युद्ध समिति द्वारा यदि इन दो सदस्यों को पदत्याग के आदेश दे दिये जाते थे तो उसके फलस्वरूप सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना पड़ता था। जापानी सेना में पारस्परिक सहयोग की विशिष्ट भावना विद्यमान थी। सैनिक अधिकारी द्वारा मन्त्री पद तभी ग्रहण किया जाता था जबकि उसके बहुसंख्यक सैनिक सहयोगी उसका समर्थन करते थे। सर्वोच्च युद्ध समिति को विदेशमन्त्री से परामर्श किये बिना ही सम्राट के नाम पर सेना को युद्ध हेतु तैयार होने या आक्रमण का आदेश देने के अधिकार प्राप्त थे। सेना का जापानी शासनतन्त्र पर पूर्ण नियन्त्रण था।

जापान का नवीन संविधान

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त जापान के आत्मसमर्पण के पश्चात अमेरिका सेनाध्यक्ष जनरल मेकार्थर द्वारा जापानियों को अपने देश के लिए उदार एवं लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप नवीन संविधान बनाने की प्रेरणा प्रदान की गयी थी जिसके फलस्वरूप जापान का नवीन संविधान 1946 ई में बनकर तैयार हुआ और 3 मई, 1946 ई से उसे क्रियान्वित कर दिया गया है। जापान के वर्तमान संविधान में अमेरिका की अध्यक्षात्मक एवं ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली का समन्वय है, परन्तु ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का इस पर विशेष प्रभाव है। कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित है। जापानी सम्राट संवैधानिक अध्यक्ष मात्र है। राजतन्त्र के दैवी अधिकार का उन्मूलन करके जन प्रभुत्व की स्थापना की गयी है। जापानी संसद (डाइट) राज्य का सर्वोच्च शक्तिशाली अंग है।

सम्राट

सम्राट राज्य का प्रतीक है। उसकी शक्ति का स्रोत जनता है जिसमें सम्प्रभुता निवास करती है।[3] सम्राट का पद वंशानुगत है एवं उत्तराधिकार का निर्धारण जापानी संसदीय विधि द्वारा किये जाने की व्यवस्था की गयी है। संविधान में व्यवस्था है कि सम्राट मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार कार्य करेगा एवं मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे।[4] राज्य सम्बन्धी केवल उन्हीं कार्यों को सम्राट द्वारा सम्पादित किया जायेगा जिनकी संविधान ने व्यवस्था की है। शासन के सम्बन्ध में उसको कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।[5] सम्राट को मन्त्रिमण्डल के परामर्श एवं स्वीकृति से जनता के नाम पर निम्न कार्य करने का अधिकार है संविधान, विधियाँ,

---

3 अनुच्छेद 1

4 अनुच्छेद 3

5 अनुच्छेद 4

मन्त्रिमण्डलीय आदेशो एव सन्धिया के सशोधन की घोषणा, डाइट को आहूत करना, प्रतिनिधि सदन का विघटन, सामान्य निर्वाचन की घोषणा, राज्य मन्त्रियो की नियुक्ति एव पदच्युति तथा राजदूतो एव मन्त्रियो के अधिकारा तथा उनके परिचय-पत्रा का प्रमाणीकरण, सामान्य एव विशेष क्षमादान, दण्ड को कम और स्थगित करना तथा अधिकारो को पुन प्रदान करने पर प्रमाणित करना, सम्मान प्रदान करना, पुष्टीकरण एव अन्य राजनयक आलेखा को प्रमाणित करना, राजदूतो एव अन्य मन्त्रियो का स्वागत करना एव अनेक शिष्टाचार सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करना।[6]

उपरोक्त विवरण स यह स्पष्ट है कि सम्राट का पद औपचारिक है। उसकी स्थिति भारत के राष्ट्रपति या ब्रिटिश सम्राट जैसी है। वह सवैधानिक अध्यक्ष मात्र है। *मीजी सविधान के अन्तगत राजा का पद दवी था।* वह *ईश्वर की प्रतिमूर्ति माना* जाता था। इस मध्ययुगीन धारणा का अब अन्त हो गया है। आज वह सम्पूण राजनीतिक या नतिक अधिकारा का स्रोत नही है। नवीन सविधान के अन्तगत वह शासन-तन्त्र म प्रतीक मात्र रह गया है। ब्रिटिश सम्राट की भाति वह प्रधानमन्त्री की नियुक्ति नही करता अपितु जापानी सम्राट डाइट द्वारा नियुक्त प्रधानमन्त्री को औपचारिक रूप मे नियुक्त करके एक रस्म अदा करता है। राजवश से सम्बन्धित मामला एव वित्त पर जापानी डाइट का नियन्त्रण है। जापानी सम्राट नाममात्र का अध्यक्ष है। परन्तु वार्ड का मत है कि यह निष्कष गलत होगा कि जापान की राजनीतिक पद्धति म *उसकी भूमिका महत्वपूण नही है। किसी भी राष्ट्र को राष्ट्रीय एकता हेतु प्रभावा-*त्पादक राष्ट्रीय भावना प्रदान करने वाले प्रतीका की आवश्यकता होती है। जापान का राज-परिवार ऐसा ही प्रतीक है। वह दो हजार वष पुरानी जापानी राष्ट्रीयता एव सास्कृतिक एकता का प्रतीक है।[7] जापान के सम्राट की शासन सम्बन्धी शक्तिया के लुप्त हो जाने पर आज भी जापान के सामाजिक जीवन म उसका मान-सम्मान कायम है। युद्ध के पश्चात सम्राट न जनता के मध्य घूमना प्रारम्भ कर दिया है। मीजी सविधान के अन्तगत राजनीतिक निणय सम्राट द्वारा स्वय नही किये जात थे। अत व्यवहार म उसकी स्थिति मे कोई विशेष अन्तर नही हुआ है। एक महत्वपूण अन्तर यह अवश्य पडा है कि अब मन्त्री उसके नाम पर शासन नही करत हैं। उत्तर दायित्व की रेखाएँ पहले की अपेक्षा अब अधिक स्पष्ट हो गयी हैं।

मन्त्रिमण्डल

नवीन जापानी सविधान क अन्तगत कायपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल म निहित है। सविधान के अनुसार मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है एव उसक अतिरिक्त अन्य मन्त्री हात हैं। यह व्यवस्था की गयी है कि मन्त्रिमण्डल क सभी सदस्य

---

6 अनुच्छेद 7

7 Macridis and Ward *Modern Political System—Asia*, p 91

जापानी नागरिक होंग । कार्यपालिका शक्ति क प्रयोग के लिए मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से डाइट क प्रति उत्तरदायी है । स्पष्ट है जापान म मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की स्थापना की गयी है ।

जापानी डाइट क सदस्यगण अपन म स किसी एक सदस्य को प्रस्ताव पारित करक प्रधानमन्त्री मनोनीत करत है । नवीन ससद क अधिवेशन क प्रारम्भ होने पर सवप्रथम यह काय सम्पन्न किया जाता है । यदि डाइट के प्रतिनिधि सदन एव पापद सदन अथात दोना सदनो म इस प्रश्न पर कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो दोना सदनो का सयुक्त अधिवेशन आहूत किया जाता है और यदि दोना सदन फिर भी किसी निणय पर नही पहुचते या पापद सदन विश्राम काल को छोडकर कोई नवीन नाम प्रस्तावित करन म असफल रहता है तो प्रतिनिधि सदन के निणय को डाइट का ही निणय माना जाता है । प्रधानमन्त्री द्वारा अन्य मन्त्रीगण नियुक्त किये जाते हैं । वह मन्त्रियो को पदच्युत भी कर सकता है । अनुच्छेद 68 क अनुसार अधिकाश निर्वाचित मन्त्रियो को डाइट का सदस्य होना चाहिए लेकिन व्यवहारत मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य डाइट क सदस्यो म से ही चुन जाते हैं । सविधान क द्वारा मन्त्रिमण्डल की सदस्य सख्या निर्धारित नही की गयी है । अनेक वर्षों से प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिमण्डल क सदस्यो की सख्या 17 रही है । प्रधानमन्त्री का पद रिक्त होने या नव-निर्वाचन क पश्चात डाइट का सम्मेलन बुलाने पर सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना पडता है । यदि प्रतिनिधि सदन द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दिया जाता है या विश्वास प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जाता है और प्रतिनिधि सदन प्रस्ताव पारित होने क दस दिन क भीतर विघटित नही होता तो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल पदत्याग कर देता है । उपरोक्त दोनो स्थितियो म पुराना मन्त्रिमण्डल नवीन प्रधानमन्त्री के चयन तक काय करता रहता है । मन्त्रियो क विरुद्ध उनके कायकाल म प्रधानमन्त्री की अनुमति क बिना कोई विधिक कार्यवाही नही की जा सकती । मन्त्रिमण्डल क सभी निणय सवसम्मति स किये जाते हैं । यदि कोई मन्त्री असहमत होता है तो उसके समक्ष त्यागपत्र क अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नही है ।

मन्त्रिमण्डल के काय—प्रशासन सम्बन्धी सामान्य काय मन्त्रिमण्डल करता है । कायपालिका सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण निणय मन्त्रिमण्डल द्वारा ही लिय जाते हैं । मन्त्रिमण्डल ही शासन की नीति निर्धारित करता है एव विधियो को निष्ठापूर्वक क्रियान्वित करता है । इसक अतिरिक्त राज्यकाय का सचालन वदेशिक सम्बन्धो का निर्धारण सन्धियाँ करना देश का आय व्यय सम्बन्धी विवरण तयार करना एव उस डाइट के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करना लोकसेवा प्रशासन के नियमो एव मानको को निर्धारित करना सविधान एव राष्ट्रीय विधियो के क्रियान्वयन सम्बन्धी आदेश देना, सामान्य एव विशेष क्षमा प्रदान करना मन्त्रिमण्डल के अन्य दायित्व हैं ।

इसक अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल ही अधिकाश विधेयको को डाइट म स्वीकृति हेतु

एव विचाराथ प्रस्तुत करती है। म त्रीगण उ ह पारित करान के लिए भी उत्तरदायी होते है।

प्रधानम त्री म त्रिमण्डलीय पिरामिड के शीप पर स्थित है। वह म त्रिमण्डल का अध्यक्ष है एव उसकी बठका की अध्यक्षता करता है। उसकी स्थिति म त्रियों के जीवन मरण एव ज म की दष्टि से केद्रीय है। उसका त्यागपत्र सम्पूण म त्रिमण्डल का त्यागपत्र माना जाता है। डाइट के समक्ष वह विधेयको एव विभि न राष्ट्रीय व वदेशिक मामलो पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, विभि न प्रशासनिक विभागा के कार्यों का निरीक्षण एव निय त्रण करता है, सभी विधियो एव म त्रिमण्डलीय आदेशो पर सम्ब धित म त्री के हस्ताक्षर के अतिरिक्त प्रधानम त्री भी प्रति हस्ताक्षर करता है, विभि न म त्रालया म सामजस्य स्थापित करता है एव म त्रिमण्डल का एक टीम की भाँति नतृत्व करता है।

प्रधानम त्री के पद के लिए निम्न विधिक योग्यताआ का होना अनिवाय है (1) वह असनिक जापानी नागरिक होना चाहिए, (2) उस जापानी डाइट का सदस्य होना चाहिए एव (3) उसे निम्न सदन व प्रतिनिधि सदन का बहुमत प्राप्त होना चाहिए। यदि निम्न सदन म किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है तो प्रधानम त्री को उसका नेता होना चाहिए या अ य दला का सहयोग प्राप्त करके उसे अपना बहुमत स्थापित करना चाहिए। अत देश का कोई प्रमुख नेता जिसे राजनीतिक सूझबूझ, प्रशासनिक क्षमता, लोकप्रियता, दलीय विश्वास आदि प्रचुर मात्रा म प्राप्त हो, प्रधानम त्री पद का स्वप्न देख सकता है। अपने दल म उसकी स्थिति केद्रीय होती है। शासन का वह प्रमुख प्रवक्ता होता है। वह कायपालिका का प्रमुख है। उनकी स्थिति ब्रिटिश प्रधानम त्री के समान होती है। वह देश को सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करता है।

नवीन जापानी सविधान द्वारा ससदीय कायपालिका की स्थापना की गयी है।

प्रधानम त्री का अपना सचिवालय होता है। प्रधानमन्त्री के सरकारी निवास-स्थान पर म त्रिमण्डल की बठके होती हैं। प्रधानम त्री की अनुपस्थिति में उप प्रधान-म त्री अध्यक्षता करता है। म त्रिमण्डल की बठकें गुप्त होती हैं तथा कोई गणपूर्ति आवश्यक नही है। ब्रिटेन एव भारत की नाति जापान में भी म त्रिमण्डलीय समितिया होती हैं। म त्रीय परिषद एव राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद भी प्रमुख मन्त्रिमण्डलीय समितिया है।

साम्यवादी चीन की कार्यपालिका[8]

1949 ई म सार चीन पर साम्यवादियों का आधिपत्य स्थापित हो गया [illegible] सितम्बर 1949 ई म साम्यवादी दल ने चीन में जनवादी गणतन्त्र की स्थापना

8 चीन एक विशाल जनसख्या एव क्षेत्रफल वाला देश है।

घोषणा की थी। 1950 ई म चीनी जनवादी सरकार न अधिकाश तटवर्ती द्वीपो पर भी अधिकार कर लिया। सितम्बर 1949 ई म सितम्बर 1954 ई तक शासन चीन क जनवादी गणतन्त्र की जनता के केन्द्रीय शासन के सावयवी नियम (Organic Law) के अनुसार होता रहा।[9] इस काल म चीन किसानो एव श्रमिको तथा सभी लोकतान्त्रिक वर्गों एव जातियो का जनवादी लोकतान्त्रिक अधिनायकतन्त्र था। शासन लोकतान्त्रिक केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त पर आधारित था। नवीन सविधान का निर्माण केन्द्रीय जनवादी शासन द्वारा नियुक्त एक समिति ने किया था और सम्पूर्ण देश म उस पर विचार हुआ था। सितम्बर 1954 ई म राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा इसको कुछ सशोधना सहित स्वीकार किया गया था। चीनी जनवादी गणतन्त्र की कार्यपालिका शक्ति चीनी गण राज्य के अध्यक्ष म निहित है। इसके अतिरिक्त राज्य परिषद (*State Council*) नामक एक अन्य सस्था भी है जो सविधान क अनुसार केन्द्रीय शासन है एव राज्यसत्ता का सर्वोच्च कार्यपालक तथा सर्वोच्च प्रशासनिक अग है।

गणराज्य का अध्यक्ष

गणराज्य के अध्यक्ष को राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है। प्रत्येक चीनी नागरिक जो राजनीतिक अधिकारो का उपभोग करता है तथा 35 वर्ष की अवस्था प्राप्त कर चुकता है, गणराज्य के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हो सकता है। एक उपाध्यक्ष भी होता है जो अध्यक्ष को उसके कार्यों म सहयोग देता है एव वह ऐसे सभी कार्यों को सम्पादित करता है जो अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपे जाते है। उपाध्यक्ष पद के लिए वही योग्यताएँ हैं जो अध्यक्ष पद के लिए हैं। अध्यक्ष की अनुपस्थिति म या दीर्घकाल तक उसके अस्वस्थ रहने पर उपाध्यक्ष उसके स्थान पर कार्य करता है। यदि अध्यक्ष का पद किसी कारणवश उसके कार्यकाल के मध्य म ही रिक्त हो जाता है तो उपाध्यक्ष उसका स्थान ग्रहण कर लेता है।

कार्य एव शक्तियाँ—चीनी जनवादी गणराज्य के अध्यक्ष को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है। वह राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस या उसकी स्थायी समिति के निर्णयो को क्रियान्वित करता है, प्रधानमन्त्री, उप प्रधानमन्त्री, मन्त्रियो, समितियो के अध्यक्षो एव मन्त्रिमण्डल के सचिवालय के प्रमुख का नियुक्त एव पदच्युत करता है, उपाधियाँ, पदक एव सम्मान प्रदान करता है, सामान्य क्षमादान एव क्षमा के आदेशो, मार्शल ला एव युद्धावस्था की घोषणा करता है तथा सामान्य सैनिक भर्ती के आदेश देता है।[10] विदेशी राज्यो के साथ चीन के सम्बन्धो म वह अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है, विदेशी राजदूतो का स्वागत एव विदेशो म चीनी

---

9 The organic law of the central people's government of the People's Republic of China

10 अनुच्छेद 40

राजदूतो को नियुक्त करता है, सर्वाधिकारी राजदूतो को वापस बुलाता है एव विदेशो म की गयी सधियो की पुष्टि करता है ।[11] चीन की सनिक कमान उसके हाथो म होती है एव वह राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का अध्यक्ष होता है ।[12] वह राज्य के सर्वोच्च सम्मेलन को स्वेच्छा से आहूत करता है एव उसकी अध्यक्षता करता है । (अनुच्छेद 43)

समीक्षा—चीनी जनवादी गणतन्त्र के अध्यक्ष को सविधान के अधीन विशिष्ट स्थिति प्रदान की गयी है । अन्य देशो का कोई भी पदाधिकारी इसके समकक्ष नही है । अमरिकी या फ्रासीसी राष्ट्रपतियो से उसकी तुलना करना कठिन है । सोवियत सघ मे राष्ट्रपति का कोई स्वतन्त्र पद नही है न उसे कोई शक्तियाँ ही प्राप्त है। सोवियत रूस म राष्ट्रपति के पद की चीनी गणतन्त्र की भांति पृथक से कोई व्यवस्था नही की गयी है अपितु प्रेसीडियम का अध्यक्ष ही सोवियत रूस का राष्ट्रपति होता है । चीनी गणराज्य के अध्यक्ष को कुछ विशिष्ट काय एव शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। वह सर्वोच्च सनाओ का भी अध्यक्ष है । सर्वोच्च राज्य सम्मलन[13] एव राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद[14] के अध्यक्ष के रूप मे वह देश के राजनीतिक एव सनिक मामलो पर नियन्त्रण रखने म सफल होता है । चीन के प्रधानमन्त्री की स्थिति चीनी गणतन्त्र के अध्यक्ष की स्थिति की तुलना म गौण है ।

राज्य परिषद

राज्य परिषद चीन का केन्द्रीय शासन है । यह कार्यपालिका का सर्वोच्च प्रशासनिक अग है ।[15] सामान्य भाषा म यही चीन का मन्त्रिमण्डल है । इसका सगठन विधि द्वारा निर्धारित है ।[16] प्रधानमन्त्री, उप-प्रधानमन्त्री, मन्त्री, आयोगो के अध्यक्ष एव

---

11 अनुच्छेद 41

12 अनुच्छेद 42

13 सर्वोच्च राज्य सम्मेलन (Supreme State Conference) की बठक चीन के अध्यक्ष द्वारा ही बुलायी जाती है । वह इसकी अध्यक्षता करता है । इसके अतिरिक्त गणतन्त्र का अध्यक्ष, जनकाग्रेस की स्थायी समिति का सभापति, प्रधानमन्त्री, राज्य परिषद का सभापति, तथा अध्यक्ष द्वारा मनोनीत दो अन्य व्यक्ति इस सम्मेलन के सदस्य होते है । इसम राष्ट्र के महत्वपूर्ण मामलो पर विचार किया जाता है । यह विचार अभिव्यक्ति का सावजनिक स्थान है । इसमे अध्यक्ष को सीधे अपने विचार जनता के समक्ष रखने का अवसर होता है ।

14 यह चीन के सर्वोच्च सनिक अधिकारियो का निकाय है। इसमे गणतन्त्र के अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष के अतिरिक्त 15 उपाध्यक्ष एव 81 साधारण सदस्य होते है ।

15 अनुच्छेद 47

16 अनुच्छेद 48

सचिवालय के प्रधान इसके सदस्य होते हैं। प्रधानमन्त्री राज्य परिषद का सचालन करता है एव उसके अधिवेशनो की अध्यक्षता करता है। उप प्रधानमन्त्री प्रधानमन्त्री के कार्यों म सहयोग प्रदान करता है।[17] मन्त्री एव आयोगो के अध्यक्षो का काय अपने विभागो की देखभाल करना है। अपने विभागीय क्षेत्रो म वे राज्य परिषद के निणयो, आदेशो एव विधियो क अनुरूप आदेश जारी कर सकते हैं।[18] राज्य परिषद राष्ट्रीय जनकांग्रेस क प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होती है और उसक समक्ष अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है।[19] राष्ट्रीय जनकांग्रेस के सदस्यो को परिषद या उसके सत्रावसान काल म उसकी स्थायी समिति से प्रश्न पूछने का अधिकार प्राप्त है।

परिषद क काय एव शक्तियाँ—सक्षेप म, राज्य परिषद क काय एव शक्तियाँ निम्नवत हैं[20]

(1) प्रशासकीय मामलो को निर्धारित करना, आदेश एव आज्ञाएँ जारी करना तथा उनके क्रिया वयन का निरीक्षण करना।

(2) राष्ट्रीय जनकांग्रेस या उसकी स्थायी समिति के समक्ष विधेयको को प्रस्तुत करना।

(3) विभिन्न विभागो के कार्यों मे समन्वय करना एव उनका मागदशन करना।

(4) विभिन्न मन्त्रियो या आयोगो एव राज्य के स्थानीय शासन क अगो के अनुचित आदेशो को सशोधित या समाप्त घोषित करना।

(5) राष्ट्रीय आर्थिक योजना और बजट को क्रियान्वित करना।

(6) विदेशी एव आन्तरिक व्यापार का नियन्त्रित करना।

(7) सास्कृतिक शक्षणिक एव स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों का सचालन।

(8) विभिन्न राष्ट्रीयताओ सम्बन्धी कार्यों का सचालन।

(9) प्रवासी चीनियो एव तत्सम्बन्धी मामलो का प्रशासन।

(10) राज्य हित एव सावजनिक शान्ति तथा नागरिक अधिकारो की रक्षा।

(11) विदेशी मामलो का सचालन।

(12) सशस्त्र शक्ति का निर्माण।

(13) प्रशासकीय अधिकारियो का नियमानुसार नियुक्त एव पदच्युत करना।

(14) स्वशासित जिला, क्षेत्र एव नगरपालिकाओ के पद तथा क्षत्रो को मान्यता देना।

---

17 अनुच्छेद 50
18 अनुच्छेद 51
19 अनुच्छेद 52
20 अनुच्छेद 49

(15) राष्ट्रीय कांग्रेस या उसकी स्थायी समिति द्वारा सौंप गये अन्य कार्यों का सम्पादन।

प्रति माह राज्य परिषद का एक सामान्य सम्मेलन होता है परन्तु परिषद के अधिवशन सामान्यत होते ही रहते हैं। परिषद के अधिवेशनों की अध्यक्षता एवं उसका काय-संचालन प्रधानमन्त्री करता है। कार्यकारिणी की बैठकों में केवल प्रधानमन्त्री, उप प्रधानमन्त्री, मन्त्रीगण एवं महासचिव ही भाग लेते है। इसके विपरीत परिषद के मासिक सामान्य सम्मेलनों में प्रधानमन्त्री एवं उप प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त अन्य सभी मन्त्रीगण एवं आयोगों के अध्यक्ष भी भाग लेते हैं। राज्य परिषद का एक अपना सचिवालय होता है जिसका प्रमुख महासचिव होता है।

समीक्षा—राज्य परिषद को व्यापक एवं प्रभावी शक्तियाँ प्राप्त हैं। सम्पूर्ण *प्रशासन उसके निर्देशन एवं नियन्त्रण में चलता है।* परिषद मन्त्रिमण्डल जैसी एवं संस्था है। परिषद का राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायित्व एवं परिषद से प्रश्न पूछने के *अधिकार से ऐसा लगता है कि साम्यवादी चीन में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया* है। परन्तु यह केवल भ्रम है। इन व्यवस्थाओं के कारण चीन की शासन व्यवस्था को उत्तरदायी शासन नहीं कहा जा सकता। प्रधानमन्त्री शासन का अध्यक्ष नहीं है, न सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को ही मान्यता दी गयी है। परिषद के सदस्य संसदीय सरकार की भाँति एक टीम की तरह प्रधानमन्त्री का नेतृत्व स्वीकार नहीं करते और न उसके प्रति उत्तरदायी ही होते है। परिषद के सदस्यों के निर्वाचन में प्रधानमन्त्री का कोई हाथ नहीं होता। सभी सदस्य साम्यवादी दल के प्रभावशाली सदस्य होते हैं। अन्य संसदीय देशों की भाँति प्रधानमन्त्री को विधानमण्डल को विघटित करने के अधिकार प्राप्त नहीं हैं। संविधान के अनुसार मन्त्रियों के लिए प्रधानमन्त्री की सहायता करना अनिवार्य है। परन्तु सत्य यह है कि प्रधानमन्त्री एवं अन्य सभी मन्त्री तो साम्यवादी दल के शीर्षस्थ नेताओं के इशारे पर नाचते हैं। चीन का शासन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर गठित है। अन्य साम्यवादी देशों की भाँति चीन में भी लोकतन्त्र की अपेक्षा दलीय केन्द्रीकरण का प्राबल्य है। अतः चीन में भी साम्यवादी दल का अधिनायकतन्त्र है। देश में साम्यवादी दल ही एकमात्र दल है। विरोधी दल की कल्पना ही नहीं की जा सकती। सत्य तो यह है कि चीन में संसदीय शासन की छाया मात्र भी नहीं है।

चीन में दल एवं शासन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सभी निर्णय दल की पोलिट-ब्यूरो द्वारा लिये जाते हैं एवं शासन केवल उनको विधिक रूप प्रदान करता है।

कनाडा में कार्यपालिका

कनाडा की संघीय कार्यपालिका में तीन अंग है—क्राउन, गवर्नर जनरल एवं मन्त्रिमण्डल। इनको दो भागों में वर्गीकृत कर सकते है (1) नाममात्र की काय-

पालिका, एव (2) वास्तविक कार्यपालिका। क्राउन एव गवनर जनरल कनाडा की नाममात्र की कार्यपालिका है, मन्त्रिमण्डल वहा की वास्तविक कार्यपालिका है।

क्राउन एव गवनर जनरल

कनाडा के सविधान—ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका अधिनियम—के अनुसार कनाडा की कार्यकारिणी शक्ति क्राउन मे निहित है। ब्रिटिश राजा या रानी कनाडा के भी राजा या रानी होते है। ब्रिटेन का शासक होने के कारण ब्रिटिश राजा कनाडा का राजा नही है अपितु ब्रिटिश राजा या रानी को कनाडा का राजा या रानी मानना राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को कनाडा द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार करने का द्योतक है। ब्रिटिश क्राउन ग्रेट ब्रिटेन को उसके उपनिवेशो से जोडने वाला स्वर्णिम सूत्र है। कनाडा की ससद द्वारा पारित विधियो को गवनर जनरल के समक्ष रानी की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जाता था। जिन विधेयको को रानी के हस्ताक्षरो के लिए रोक लिया जाता था वे तभी पारित होते थे जबकि आगामी दो वर्षों की अवधि म गवनर जनरल उन्हे अपने हस्ताक्षर युक्त सन्देश से प्रमाणित कर देता था कि इन विधेयकों को सपरिषद रानी ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है। आज भी सभी विधेयक सिद्धान्त मे राजा सहित ससद ही पारित करती है परन्तु व्यवहार म राजा के निषेधाधिकार का दीघकाल से प्रयोग न होने के कारण वह निरस्त हो चुका है। वतमान म कनाडा की ससद हर प्रकार की विधि बनाने की क्षमता रखती है।

क्राउन के काय ब्रिटिश राजा जैसे है। कनाडा म क्राउन के इन कार्यो को गवनर जनरल सम्पादित करता है। वह (गवनर जनरल) क्राउन का प्रतिनिधि होता है। कनाडा से सम्बन्धित कुछ विशेषाधिकारो—जैसे सम्मान एव पुरस्कार प्रदान करना सर्वाधिकार सम्पन्न राजदूतो या मन्त्रियो की नियुक्ति आदि—को क्राउन स्वय ही करता है। लेकिन अधिकाश म क्राउन की शक्तियो का प्रयोग गवनर जनरल द्वारा किया जाता है। परन्तु इन दोनो ही स्थितियो म कनाडा की सरकार से परामर्श आवश्यक होता है। पहले गवनर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश शासन द्वारा की जाती थी परन्तु 1930 ई म साम्राज्यीय सम्मेलन (Imperial Conference) के निश्चयानुसार गवनर जनरल को कनाडा के शासन की इच्छानुसार ही चुना जाता है। इस व्यवस्था के अनुसार लॉर्ड बेसबरो (Lord Bessbourgh) को 9 फरवरी, 1931 ई को कनाडा की सरकार के उत्तरदायित्व पर गवनर जनरल नियुक्त किया गया था। स्मरणीय है कि आज भी गवनर जनरल एव अन्य पदाधिकारी ब्रिटिश सम्राट के प्रति स्वामिभक्ति की शपथ लेते है।

गवनर जनरल का कार्यकाल सामान्यत पाँच वर्ष है, यद्यपि कनाडा के शासन को गवनर जनरल को पदच्युत करने अथवा वापस बुलाने की माँग करने का अधिकार प्राप्त है। सामान्यत वह अपने पूरे कालपर्यन्त अर्थात् 5 वर्ष तक पदारूढ रहता है।

गवर्नर जनरल की शक्तियाँ—क्राउन के प्रतिनिधि के रूप मे गवनर जनरल को ससद को आहूत एव स्थगित करने तथा विघटित करने[21] के अधिकार प्राप्त है। वह सीनेट के सदस्यो का चयन करता है एव रिक्त स्थानो की पूर्ति करता है। उसी की सिफारिश पर कॉमन्स सभा मे कर प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते है। वह कायपालिका का अध्यक्ष है। *सयुक्त राष्ट्र सघ मे वह कनाडा के प्रतिनिधि की नियुक्ति करता है।* उसे दूसरे देशा से कम महत्व की सन्धिया करने का अधिकार प्राप्त है। उसे कनाडा के प्रान्तो के उप-राज्यपालो तथा सीनेट के अध्यक्ष (Speaker) को नियुक्त एव पदच्युत करने के अधिकार प्राप्त हैं। सर्वोच्च एव प्रान्तीय न्यायालया के न्यायाधीशो को भी वह नियुक्त करता है एव सीनेट और प्रतिनिधि सदन के सम्बोधन पर उन्ह पदच्युत कर सकता है। उसे प्रान्तीय विधिया को अस्वीकार करने तथा विधिया को क्राउन की स्वीकृति हेतु रोकने के अधिकार प्राप्त ह। शान्ति-काल मे वह थल, नभ एव नौसेना के उद्देश्य निर्धारित करता है। *उसे क्षमादान एव दण्ड कम करने के अधिकार प्राप्त है।*

वह अनक सामाजिक कार्यों एव समारोहो मे भाग लेता है। समय समय पर सयुक्त राज्य अमेरिका के साथ देश के कूटनीतिक सम्बन्धा को सुधारने म उसका विशेष योगदान रहा है। उसके अनेक महत्वपूण कार्या म स एक महत्वपूण काय प्रधानमन्त्री का चयन करना है। अल्पसख्यको द्वारा अपन अधिकारो की रक्षा के लिए गवनर जनरल से ही प्राथना की जाती है।

गवनर जनरल को सविधान की रक्षा के लिए हस्तक्षेप करने का अधिकार भी प्राप्त है। प्रधानमन्त्री द्वारा रिश्वत लेने अथवा पद-त्याग से इन्कार करने या किसी समस्या पर विचार हेतु ससद को आहूत करने सम्बन्धी गवनर जनरल के परामश को न मानने पर गवनर जनरल को प्रधानमन्त्री को पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त है। प्रधानमन्त्री क आग्रह पर यदि वह ससद को एक बार विघटित कर देता है और नवनिर्वाचित ससद मे भी प्रधानमन्त्री अल्पमत म रहता है तो मन्त्रिमण्डल द्वारा ससद का पुन विघटित करने की प्राथना को गवनर जनरल अस्वीकार कर सकता है। *भले ही ऐसे अवसर कम हो, परन्तु इस तथ्य की जानकारी कि गवनर जनरल को प्रधानमन्त्री की इस प्रकार की प्राथना को अस्वीकार करन का अधिकार है, एसी स्थिति* के उत्पन्न होने के अवसर ही नही रहत। गवनर जनरल द्वारा राजनीतिक विवादा म मध्यस्थता की जाती है और उन्ह हल करन मे वह अपन प्रभाव का उपयोग करता है। चूकि गवनर जनरल की राजनीतिक शक्ति प्राय नगण्य होती है अत उसकी मध्यस्थता का स्वागत किया जाता है।

---

21 1926 ई के बाइग काण्ड (Bying episode) स यह अन्तिम रूप म तय हो चुका है कि विघटन की शक्ति प्रधानमन्त्री को प्राप्त है और गवनर जनरल इस सम्बन्ध म उसकी प्राथना को अस्वीकार नही कर सकता।

स्थिति—यद्यपि गवनर जनरल कायपालिका का अध्यक्ष होता है परन्तु वह अपनी शक्तिया का प्रयोग मन्त्रिमण्डल क परामश से ही करता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्यो एव मन्त्रिमण्डल क कार्यों म वह हस्तक्षेप नही करता। मन्त्रिमण्डल ही उसक नाम पर किय जाने वाले समस्त कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल क विचार विमश म वह भाग नही लेता है। ड्यूक आफ अगल (Duke of Argyle) ने, जो 1878 ई स 1883 ई तक कनाडा क गवर्नर जनरल रहे थे, मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनो म भाग लेना छोड दिया था। उसके पश्चात यह एक परम्परा हो गयी है और अर्गल के सभी उत्तराधिकारियो द्वारा इसका अनुगमन किया गया है। वह दलीय पक्षपात स दूर रहता है। उसका दृष्टिकोण विशुद्ध निदलीय होता है। कामन्स सभा म जिस दल का बहुमत होता है उसी के नेता को वह प्रधानमन्त्री एव उसी दल म से मन्त्रिमण्डल क सदस्यो को नियुक्त करता है। उसे समकालीन राजनीति या आर्थिक समस्याओ पर विचार व्यक्त करने के बहुत कम अवसर प्राप्त होते हैं। 1926 ई के पश्चात गवनर जनरल को समस्त राजनयिक दायित्वो स पृथक कर दिया गया है और अब उन कार्यों को हाई कमिश्नर द्वारा सम्पादित किया जाता है।

गवनर जनरल वस्तुत सवैधानिक अध्यक्ष है। उसकी तुलना ब्रिटिश राजा से की जाती है तथा उस उसके समकक्ष माना जाता है। लेकिन दोनो की स्थिति म पर्याप्त अन्तर है। कनाडा का गवनर जनरल वहा की सरकार द्वारा मनोनीत होता है तथा उसका कायकाल निश्चित होता है। उसका पद ब्रिटिश राजा की भाति वशानुगत नही है, फलस्वरूप वह ब्रिटिश राजा की भाँति राष्ट्रीय सम्मान का पात्र नही है और न वह ब्रिटिश राजा की भाति राज्य का अध्यक्ष ही है। ब्रिटिश राजा ब्रिटिश राज्य एव साम्राज्य का प्रतीक है। वह देशभक्ति का केन्द्र है। इसके विपरीत, कनाडा का गवनर जनरल **सर राबट बोर्डन** के शब्दो म, मनोनीत राष्ट्रपति है जो ब्रिटिश राजा की भाति शायद ही भक्ति एव जनभावनाओ को उद्वेलित कर सके। गवनर जनरल को ब्रिटिश राजा की भाति शासन का दीघकालीन अनुभव नही होता। गवनर जनरल के पद पर अपने म स ही किसी कनाडावासी की नियुक्ति को अनेक कनाडावासियो द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है और इसे वे एक अच्छी परम्परा नही मानते। इसक कारण गवनर जनरल की निदलीय स्थिति के समाप्त होने की अधिक सम्भावना है। 1952 ई मे नियुक्त गवनर जनरल श्री विनसेन्ट मसी प्रथम कनाडावासी थे। उदार दल स उनके दीघकालीन सम्बन्ध रहे थ। वे एक बार उदारदलीय मन्त्रिमण्डल क सदस्य भी रह चुके थे। इसे स्वस्थ परम्परा नही माना गया है एव यह सन्देह व्यक्त किया जाने लगा है कि गवनर जनरल देश की दलीय राजनीति एव विकारो से अपने को पृथक नही रख सकेगा।

प्रीवी काउन्सल

सविधान द्वारा एक प्रीवी परिषद का निर्माण किया गया है। इसका काय

गवनर जनरल को देश के प्रशासन काय मे सहायता एव परामश देना है। इसके सदस्यो को गवनर जनरल समय समय पर चुनकर मनोनीत करता है एव वे प्रीवी पापदा के रूप म शपथ लेत हैं। गवनर जनरल ही इन्हे पदच्युत कर सकता है।[22] अत प्रीवी परिषद सहायता एव परामश देने वाला एकमात्र विधिक निकाय है। परन्तु व्यवहार मे सम्पूण प्रीवी परिषद परामश नही देती, न पूरी परिषद कभी पद-मुक्त ही होती है। 1867 ई के पश्चात सम्पूण प्रीवी परिषद की दो अवसरो के अतिरिक्त कोई बठक नही हुई है। इसकी सदस्य सख्या 113 है और सदस्यता का काल जीवनपय त होता है। मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य परिषद के सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित महानुभाव जसे प्रिंस ऑफ वेल्स, ब्रिटिश प्रधानमन्त्री, भूतपूव मन्त्रीगण लन्दन स्थित कनाडा का हाइ कमिश्नर आदि भी इसके सदस्य होते है। 1953 ई के पश्चात कनाडा के मुख्य न्यायाधीश, कामन्स सभा एव सीनेट के अध्यक्षो तथा विरोधी दल के नेताओ को भी प्रीवी पापद नियुक्त किया जाने लगा है।

एक कायकारी निकाय के रूप म प्रीवी परिषद की कभी कोई बैठक नही होती है। परिषद के सवधानिक दायित्वो को मन्त्रिमण्डल द्वारा सम्पादित किया जाता है। मन्त्रिमण्डल एव प्रीवी परिषद के अन्तर को इस कथन द्वारा व्यक्त किया जा सकता है कि हर मन्त्री प्रीवी पापद है परन्तु हर प्रीवी पापद मन्त्री नही होता है। दूसरे शब्दो मे, मन्त्रिमण्डल प्रीवी परिषद की एक उपसमिति होती है।

मन्त्रिमण्डल

मन्त्रिमण्डल कनाडा की वास्तविक एव राजनीतिक कायपालिका तथा राजनीतिक शक्ति का चालक चक्र है। यह नीति निर्माता एव सर्वोच्च निर्देशक शक्ति है तथा समस्त प्रशासनिक कार्यो को नियन्त्रित एव निर्देशित करती है। कनाडा के मन्त्रिमण्डल का ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाति कोई विधिक आधार नही है। यह एक अतिरिक्त सवैधानिक (Extra Constitutional) सस्था है, यह प्रीवी परिषद की एक समिति है। इसके कार्यो को प्रीवी परिषद के कार्यों के रूप म वैधता प्राप्त है। कनाडा म सम्पूण मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था अभिसमय पर आधारित है।

कनाडा मे मन्त्रिमण्डल (Cabinet) एव मन्त्रिपरिषद (Ministry) का प्रयोग समानार्थी शब्दो के रूप म होता है परन्तु दोनो म अन्तर है। मन्त्रिमण्डल एक लघु वृत्त है जबकि मन्त्र-परिषद एक वहद वत्त है जिसके सभी मन्त्रीगण सदस्य होते हैं। उनम से सभी मन्त्रिमण्डल के सदस्य नही होते हैं। मन्त्रिमण्डलीय सदस्यो का अधिक महत्व होता है। इनकी सदस्य सख्या सामान्यत 20 होती है। मन्त्र-परिषद म 27 से 31 तक सदस्य होते है। मन्त्रिमण्डल म 14-15 विभागाध्यक्ष मन्त्री होते है। वे प्रधानमन्त्री के घनिष्ट सहयोगी होते हैं। 3 या 4 मन्त्री बिना विभाग के

22 Section II of the North British America Act

म त्री होत हं । इसके अतिरिक्त ससदीय सहायक (Parliamentary Assistants) भी होते ह जो मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनो मे भाग नही लेते । नीति निणय से इनका कोई सम्ब ध नहीं होता और न वे विभाग की अध्यक्षता ही करते हैं । यह इगलण्ड के उप म नियो की भाति होते है ।

म त्रिमण्डल का गठन—गवनर जनरल नवनिर्वाचन या काम स सभा म म त्रिमण्डल के पतन के पश्चात बहुमत दल के नेता को प्रधानम त्री के पद पर आम त्रित करता है । सदन में यदि स्पष्ट बहुमत है तो प्रधानम त्री का चयन अत्य त सरल होता है, परन्तु स्पष्ट बहुमत के अभाव या दलीय मतभेदो की स्थिति म गवनर जनरल को प्रधानम त्री के चुनाव मे पर्याप्त स्वत त्रता प्राप्त हो जाती है । ऐसी स्थिति म गवनर जनरल स्थायी एव दृढ सरकार के निर्माण के लिए जिनसे चाहे परामश कर सकता ह । प्रधानम त्री सर जान थॉमसन के उत्तराधिकारी की खोज म गवनर जन रल लॉड एबरडीन ने 1897 ई म यही किया था। वह अ य तरीका भी अपना सकता है । वह सम्भावित नेताओ से विचार विमश करके प्रधानमन्त्री का चुनाव कर सकता है । लाड एबरडीन ने सवप्रथम सर डोनाल्ड स्मिथ से वार्ता की थी पर तु सर चाल्स टप्पर को प्रधानम त्री नियुक्त किया था । उपरोक्त दो अवसरा के अतिरिक्त कनाडा मे गवर्नर जनरल को प्रधानम त्री के चयन म स्वविवेक के प्रयोग का कभी अवसर प्राप्त नही हुआ है । म त्रिमण्डल के सदस्यो क चयन म गवनर जनरल प्रधान म त्री के परामश को अनिवायत स्वीकार करता है ।

कनाडा का प्रधानमन्त्री अपने सहयोगिया के चुनाव म ब्रिटिश प्रधानम त्री की भाति स्वत त्र नही है । उसे अपने म त्रिमण्डल म सभी प्रमुख जातिया, धर्मों एव क्षेत्रो के प्रतिनिधित्व को ध्यान म रखना पडता है । अत अपने सहयोगियों का चुनाव करते समय उसे फ्रेंच, कनाडा गर फ्रेंच रोमन कथोलिक जनता, आठो प्रा तो तथा क्यूबेक क आग्ल भाषी निवासियो का विशेप ध्यान रखना पडता है । सामा यत तीन या चार म त्री फ्रेंच कनाडा के, चार या पाच ओ टोरियो के तथा नोवोस्कोशिया, न्यू ब्रुसविक, मानीटोबा, सस्कचवान, अलबटा एव ब्रिटिश कोलम्बिया का एक-एक प्रति निधि म त्रिमण्डल में शामिल किये जाते है । इसक अतिरिक्त प्रधानम त्री प्रा तीय शासना के प्रधानम त्रियो या काम स सभा के विरोधी दल क नेताओ को मन्त्रिमण्डल म आम त्रित करता है । परम्परा के अनुसार म त्री पद पर सीनेट के सदस्यो की नियुक्ति आवश्यक नही है । पर तु प्रधानम त्री को मोन्ट्रियल या टारण्टो क वित्तीय हितो का विशेष ध्यान रखना पडता ह । यह दोनो नगर वित्तम त्री क चुनाव को प्रभावित करते है । फलस्वरूप कभी कभी योग्यता की उपेक्षा करक भी म त्रियो को नियुक्त किया जाता ह । फलत डासन (Dawson) के अनुसार सहयोगियो क चुनाव म प्रधानम त्री की स्वय की इच्छा अत्यधिक सीमित होती है। कनाडा म यह एक स्वीकृत अभिसमय है कि प्रत्यक प्रा त या क द्रीय म त्रिमण्डल म एक एक प्रतिनिधि अवश्य होना चाहिए,

बडे प्रा ता के एक से अधिक प्रतिनिधि भी हो सक्ते है। अधिकाशत सभी म त्री कॉम स सभा के सदस्य होते हैं।

समीक्षा—कनाडा की म त्रिमण्डलीय व्यवस्था ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित है। कनाडा के सविधान की प्रस्तावना के शब्दो म, "कनाडा के प्रा ता ने युनाइटेड किंगडम (ग्रेट ब्रिटेन) के क्राउन के अधीन सघीय रूप म सगठित होकर ग्रेट ब्रिटेन के समान सिद्धा तो पर सविधान का निर्माण किया है।" दानो देशो की म त्रिमण्डलीय व्यवस्था म पर्याप्त साम्य है यद्यपि दोनो देशो के म त्रिमण्डलो के गठन मे अ तर है। ब्रिटिश ससदीय व्यवस्था के मुख्य सिद्धा त—राजनीतिक एकरसता, सामूहिक उत्तरदायित्व गोपनीयता एव प्रधानम त्री की प्रधानता—कनाडा की म त्रिमण्डलीय व्यवस्था म भी पाये जाते है। ग्रेट ब्रिटेन की भाति कनाडा म नाममात्र एव वास्तविक कायपालिका का भी भेद है। कनाडा म भी इगलैण्ड की तरह सयुक्त म त्रिमण्डलो को स देह एव घणा की दृष्टि से देखा जाता है। कनाडा मे 1867 ई से आज तक केवल एक बार प्रथम विश्वयुद्ध काल मे सयुक्त म त्रिमण्डल का निर्माण हुआ है। व्यवहार म राजनीतिक एकरसता कनाडा की ससदीय प्रणाली की एक महत्वपूण विशेषता रही है।

इगलैण्ड की भाति कनाडा म भी म त्रिमण्डलीय सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धा त मा य है। सभी म त्रियो को एक दूसरे की सहायता एव सहयोग करना पडता है। सावजनिक रूप म वे अपन मतभेदो को व्यक्त नही करते ह। म त्रिमण्डल के निणयो से मतभेद रखने वाले म त्रियो को अपने पद से त्यागपत्र देना पडता है। ऐसे विवादो को ससद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। म त्री अपने त्यागपत्र मे पद त्याग के कारणा का उल्लेख कर सकते हैं एव प्रधानम त्री को ससद म स्थिति स्पष्ट करने के लिए वक्तव्य दने का अधिकार है। प्रधानम त्री की माग पर कामन्स सभा को अनिवायत विघटित किया जाता है। इसस म त्रिमण्डल की स्थिति काफी दृढ हुई है।

म त्रमण्डल के अधिवेशन गुप्त होत ह एव निणया का भी गोपनीय रखा जाता है। गवनर जनरल म त्रिमण्डलो के अधिवेशनो मे भाग नही लेता है लेकिन समस्त सरकारी सूचना उसे प्रधानम त्री द्वारा प्राप्त होती रहती है। कनाडा का म त्रमण्डल देश के प्रशासन का चालक चक्र है। सिद्धा तत म त्रिमण्डल कॉम स सभा के प्रति उत्तरदायी होता है पर तु व्यवहार म ब्रिटिश म त्रमण्डल की भाति वह कॉम स सभा का नतृत्व करता है।

कनाडा म प्रधानम त्री की स्थिति के द्रीय है। डॉ जेनिंग्स का ब्रिटिश प्रधान म त्री के सम्ब ध म व्यक्त यह मत कि 'प्रधानम त्री सविधान का आधार स्तम्भ होता है' कनाडा के प्रधानम त्री के स दभ म भी पूणत सत्य है। कनाडा व ग्रेट ब्रिटेन के प्रधानम त्री की स्थिति एक सी ही है। वह देश का सवाधिक शक्तिशाली प्रशासक है।

वह मन्त्रिमण्डल का निर्माण एवं विघटन करता है। वह देश व शासन का स्वामी है। परन्तु प्रधानमन्त्री के पद का कोई विधिक आधार नहीं है। उसकी शक्ति पर कोई विधिक सीमा भी नहीं है। यदि प्रधानमन्त्री के पद को समाप्त कर दिया जाता है तो देश का सम्पूर्ण राजनीतिक संगठन धराशायी हो जायगा। प्रधानमन्त्री के व्यक्तित्व पर उसके पद की गरिमा एवं प्रतिष्ठा निर्भर करती है। वह शासन का निर्माण करता है पदाधिकारियों को नियुक्त करता है एवं मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के मध्य विभागों का वितरण एवं पुनर्वितरण करता है। सदस्यों के चयन में उसकी स्थिति निर्णायक होती है। वह किसी भी सदस्य को पदत्याग के आदेश दे सकता है। विदेश नीति के निर्माण में वह विशेष रूप से उत्तरदायी होता है। गवर्नर जनरल एवं मन्त्रिमण्डल के मध्य वह एक कड़ी का कार्य करता है। वह मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता करता है और विवाद की स्थिति में निर्णायक मत देता है, विभिन्न मन्त्रियों के मध्य समन्वय करता है विभागों का निरीक्षण एवं उन पर नियन्त्रण करता है। संसद में वह अपने दल का नेता एवं संसद के वाद विवाद में वह शासन का प्रमुख प्रवक्ता होता है। महत्वपूर्ण विधेयकों को संसद के समक्ष उसकी स्वीकृति पर ही रखा जाता है। वह गवर्नर जनरल का विशेष परामर्शदाता है। महत्वपूर्ण पदों जैसे उप राज्यपाल, मन्त्रियों आदि की नियुक्तियाँ वह स्वयं करता है। डाउसन (Dawson) के अनुसार, कनाडा के प्रधानमन्त्री का कोई समकक्ष नहीं है। अतः समकक्षों में प्रथम होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।[23] वह सूर्य की भाँति है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते रहते हैं। परन्तु उसकी स्थिति संसद में उसके दल की स्थिति एवं दल में उसके नेतृत्व की स्थिति पर निर्भर करती है। प्रधानमन्त्री का जितना दृढ़ नियन्त्रण अपने दल पर होता है शासन में उसकी स्थिति उतनी ही दृढ़ होती है तथा अन्ततोगत्वा उसकी स्थिति एवं शक्ति उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है।

आयर गणराज्य की कार्यपालिका[24]

आयर स्वतन्त्र राज्य की मुख्य कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। वह जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से 7 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है एवं पुनः निर्वा-

23 Dawson *The Government of Canada* p 221

24 एक लम्बे संघर्ष के बाद 1921 ई. में आयरलैण्ड को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी। 1921 ई. की दिसम्बर सन्धि के द्वारा आयरलैण्ड की स्थिति को स्पष्ट किया गया था। आयरलैण्ड की स्थिति कनाडा एवं आस्ट्रेलिया आदि अन्य उपनिवेशों के समान ही थी एवं उसका नाम बदलकर आयर स्वतन्त्र राज्य रख दिया गया। 14 जून 1937 ई. को आयरिश संसद ने नवीन संविधान को स्वीकार किया। जनता ने भी जनमत संग्रह द्वारा इसे अपनी स्वीकृति प्रदान की तथा 29 दिसम्बर 1937 ई. को नवीन संविधान लागू हुआ। आयरलैण्ड को स्वतन्त्र एवं सम्प्रभु लोकतन्त्र घोषित किया गया। नवीन संविधान में ब्रिटिश ताज के साथ सम्बन्धों का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया गया। इस प्रकार

चित हो सकता है। वह सशस्त्र सेनाओं का भी प्रमुख होता है। डायल (Dail)—आयरिश संसद—द्वारा मनोनीत व्यक्ति को उसके द्वारा प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है तथा प्रधानमन्त्री के परामर्श पर वह अन्य मन्त्रियों को नियुक्त एवं पदच्युत करता है। वह निम्न सदन—डायल इरियान (Dail Eireann) या प्रतिनिधि सदन—के अधिवेशन आहूत करता है एवं उसे विघटित करता है। संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों पर वह अपने हस्ताक्षर प्रदान करता है। उसे क्षमादान के अधिकार प्राप्त हैं। दण्ड को कम करने के उसे अनियमित अधिकार प्राप्त हैं। संविधान द्वारा प्रदत्त अन्य शक्तियों का भी वह प्रयोग करता है। संविधान की धाराओं के विपरीत किसी भी विधेयक को वह मन्त्रिमण्डल की सलाह पर सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति के लिए भेज सकता है। यदि सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिवेदन में विधेयक को असंवैधानिक ठहराया जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अपने हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर सकता है।

यदि उच्च सदन (Second Eireann) सीनेट का बहुमत एवं डायल इरियान के एक तिहाई सदस्य संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अस्वीकार करने की राष्ट्रपति से प्रार्थना करते हैं तो राष्ट्रपति को उस विधेयक को जनमत संग्रह के लिए प्रचारित करने या नवीन निर्वाचन के आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है। वह काउन्सिल ऑफ स्टेट के लिए सात सदस्यों को मनोनीत करता है।

सामान्यतः वह मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर ही कार्य करता है। कुछ अवसरों पर वह काउन्सिल आफ स्टेट से भी परामर्श कर सकता है जिसमें प्रधानमन्त्री, उपप्रधानमन्त्री, मुख्य न्यायाधीश, संसद के दोनों सदनों के अध्यक्ष, अटॉर्नी जनरल एवं कुछ अन्य सदस्य होते हैं। स्मरणीय है काउन्सिल ऑफ स्टेट राष्ट्रपति को सहयोग प्रदान करती है, न कि उस पर नियन्त्रण स्थापित करती है।

राष्ट्रपति को डायल के बहुमत का समर्थन प्राप्त करने वाले किसी भी मन्त्रिमण्डल को विघटित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यदि प्रधानमन्त्री डायल का विश्वास खो चुकता है और उसके विघटन की माँग करता है तो उसे ऐसी असंवैधानिक माँग को अस्वीकार करने का अधिकार है। आयरिश राष्ट्रपति फ्रेंच राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली होता है लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना में उसकी शक्तियाँ कम हैं। प्रधानमन्त्री उसके प्रति उत्तरदायी नहीं होता अपितु लोकप्रिय प्रधानमन्त्री तो उसका प्रतिस्पर्धी हो सकता है। महान आयरिश राष्ट्रवादी नेता डी वलेरा दीर्घकाल तक राष्ट्र-

---

आयर-गणराज्य का जन्म हुआ। आयरलण्ड का प्रमुख राष्ट्रवादी नेता, डी वलेरा, ब्रिटेन से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद का समर्थक था। उसने ब्रिटिश राजा के नाम पर शपथ लेने से इन्कार कर दिया। इस पर गवर्नर जनरल को पदत्याग के लिए बाध्य किया गया तथा एक ग्रामीण को राष्ट्रपति बनाया गया। 1948 ई० में संसदीय विधि के द्वारा आयरलैण्ड ने ब्रिटेन से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।

पति रहा था। फलस्वरूप इस पद का विशिष्ट महत्व हो गया है। आयरिश प्रधानमन्त्री ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भांति अपने सहयोगियों का चुनाव करता है। वही राष्ट्रपति को संसद के विघटन का परामर्श देता है। राष्ट्रपति को संसद को आहूत करने का यदि प्रधानमन्त्री द्वारा परामर्श नहीं दिया जाता तो राष्ट्रपति को स्वयं ही संसद को आहूत करने का अधिकार है। निर्वाचन या संसद में पराजित होने के पश्चात यदि प्रधान मन्त्री अपने पद से त्यागपत्र प्रस्तुत नहीं करता है तो राष्ट्रपति उसे पदच्युत कर सकता है।

आयरिश राष्ट्रपति अमरिकी राष्ट्रपति की भाँति प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होता है। अतः वह जनता का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु आयरलैण्ड में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त मान्य न होने के कारण आयरिश राष्ट्रपति अमरिकी राष्ट्रपति की प्रतिमूर्ति नहीं बन सका है।

आस्ट्रेलिया की कार्यपालिका

आस्ट्रेलिया की कार्यपालिका कनाडा के समान ही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आस्ट्रेलिया भी कनाडा की भांति ही ब्रिटिश साम्राज्य का अंग था एवं दोनों ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत औपनिवेशिक राज्य बने रहे और आज भी उन्होंने राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया है। 1900 ई. का कामनवल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट (The Commonwealth of Australia Act 1900) आस्ट्रेलिया का संविधान है। यह 1 जनवरी, 1901 ई. से लागू हुआ है।

आस्ट्रेलिया की कार्यपालिका के तीन अंग हैं—क्राउन, गवर्नर जनरल तथा मन्त्रिमण्डल। क्राउन एवं गवर्नर जनरल नाममात्र की कार्यपालिका है मन्त्रिमण्डल वास्तविक या राजनीतिक कार्यपालिका है। आस्ट्रेलियन कार्यपालिका का स्वरूप संसदीय है।

क्राउन एवं गवर्नर जनरल

संविधान द्वारा कार्यपालिका शक्ति क्राउन—राजा या रानी—में अधिष्ठित की गयी है जिसका प्रयोग रानी के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर जनरल करता है।[25] ब्रिटिश रानी इंगलैण्ड की रानी होने के नाते आस्ट्रेलिया की रानी नहीं है अपितु पृथक रूप में वह आस्ट्रेलिया की रानी है। गवर्नर जनरल को आस्ट्रेलिया की सरकार के परामर्श पर क्राउन द्वारा नियुक्त किया जाता है[26] और उसी के परामर्श पर उसे वापस

25 अनुच्छेद 61

26 1924 ई. से पूर्व गवर्नर जनरल को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर ब्रिटिश क्राउन द्वारा नियुक्त किया जाता था। 1926 ई. में बालफोर रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया कि उसे केवल राजा का प्रतिनिधि होना चाहिए न कि सरकार का। 1930 ई. के साम्राज्यीय सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि गवर्नर जनरल की नियुक्ति डोमीनियन मन्त्रियों के परामर्श पर ही होनी चाहिए।

भी बुलाया जा सकता है। वास्तव में वह शासन द्वारा मनोनीत अधिकारी है अत उसका कार्यकाल क्राउन के प्रसाद पर्यन्त है। गवर्नर जनरल क्राउन का प्रतिनिधि है।[27] अत आस्ट्रेलिया की वह मुख्य कार्यपालिका है।

गवर्नर जनरल आस्ट्रेलिया की सशक्त सेनाओं का प्रधान सेनापति होता है।[28] वह बहुमत दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करता है एव उसे शपथ दिलाता है। उसे राष्ट्रीय ससद का आहूत, स्थगित एव विघटित करने के अधिकार प्राप्त है। वित्त विधेयकों का ससद के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व वह उन्हे प्रमाणित करता है। ससद द्वारा विधेयकों के पारित किये जाने पर उन्हे गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है और उन्हे स्वीकृति प्रदान करने अथवा अपने मत के साथ पुर्नविचार हेतु ससद को लौटाने का उसे अधिकार प्राप्त है। गवनर जनरल किसी भी विधेयक को रानी के विचारार्थ रोक सकता है।[29] वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करता है एव ससद के दोनो सदनो के अनुमोदन पर उन्हे पदच्युत कर सकता है। यदि ससद के दोनो सदन—सीनेट एव प्रतिनिधि आगार—में किसी प्रश्न पर कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो गवनर जनरल दोनो सदनो के विघटन का आदेश दे सकता है।

लेकिन गवर्नर जनरल इन शक्तियो का प्रयोग मन्त्रिमण्डल की सलाह पर करता है। वह इगलैण्ड के राजा की भाति सवैधानिक अध्यक्ष है। वह स्वविवेक एव स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण नही करता। मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर ही वह नियुक्त किया जाता है एव वापस भी बुलाया जा सकता है, फलत उसकी स्थिति कमजोर हो गयी है। अत वह मन्त्रिमण्डल के समक्ष शक्तिहीन है। वह ब्रिटिश क्राउन की सरकार का अभिकर्ता नही है। आस्ट्रेलिया में ब्रिटिश हितो के सरक्षण हेतु एक हाई कमिश्नर रहता है। गवनर जनरल की स्थिति रबड की मोहर के सदृश्य है।

मन्त्रिमण्डल

यह देश की राजनीतिक एव वास्तविक कार्यपालिका है। सविधान ने सघीय कार्यकारिणी परिषद को ही कार्यपालिका अधिकारी के रूप मे मान्यता दी है एव इसका कार्य गवनर जनरल को परामर्श देना है।[30] सविधान में जहा कही सपरिषद गवनर जनरल का प्रयोग किया गया है, उसका आशय कार्यकारिणी परिषद से है।[31]

---

27 धारा 2।

28 धारा 68।

29 धारा 58, 59, 60।

30 धारा 62।

31 इसकी बैठक में गवनर जनरल अध्यक्षता करता है एव सदस्यगण उसके प्रसाद-पर्यन्त जीवन भर अपने पदो पर बने रहते है।

इसके विपरीत मन्त्रिमण्डल एक अनौपचारिक संस्था है एव इसका कोई निश्चित विधिक आधार नही है। यह कनाडा और ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल की भाति अभिसमय पर आधारित है। फिर भी यह शासन का सर्वाधिक शक्तिशाली कार्यपालक अग है। मन्त्रिमण्डल म प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त अन्य मन्त्री भी होते हैं। उनम प्रमुख हैं वदेशिक मामले आन्तरिक मामले वित्त स्वास्थ्य उद्योग, व्यापार सीमा शुल्क, सेना नौसेना एव वायु विभागो के मन्त्री तथा एटार्नी जनरल एव पोस्टमास्टर जनरल प्रारम्भ म मन्त्रियो की संख्या 7 से अधिक नही हो सकती थी (धारा 65) किन्तु अब बढ कर 28 तक पहुँच गयी है।

प्रत्येक मन्त्री ससद के दोनो सदनो म से किसी एक सदन का अनिवार्यत सदस्य होता है। यदि कोई मन्त्री ससद का सदस्य नही है तो पद ग्रहण के तीन मास के भीतर उस सदस्यता प्राप्त कर लेना आवश्यक है। सिद्धान्त म मन्त्री गवनर जनरल के प्रसाद पर्यन्त पदारूढ रहते है। किन्तु व्यवहार म उन्हे प्रतिनिधि सदन के सदस्यो के बहुमत का विश्वास एव समथन प्राप्त होना चाहिए। सभी मन्त्री कायकारिणी परिषद के सदस्य होते हैं।

आस्ट्रेलिया म भी प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल की रचना करते समय सभी प्रदेशो को प्रतिनिधित्व देने का प्रयत्न करता है। मन्त्रिमण्डल म स्थान प्राप्त करने के लिए न्यू साउथ वेल्स एव विक्टोरिया राज्य के मध्य सदैव प्रतिद्वन्द्विता होती रहती है। यह अभिसमय विकसित हुआ है कि मन्त्रिमण्डल म सभी प्रदेशो के प्रतिनिधि होने चाहिए। यदि श्रम दल का बहुमत होता है तो उस दल का प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रियो के चयन म स्वतन्त्र नही होता अपितु उसे श्रमदलीय नेताओ की एक लघु समिति द्वारा चुने गये मन्त्रियो को मन्त्रिमण्डल म स्थान देना पडता है। ससद की श्रमदलीय समिति सम्भावित मन्त्रियो के नामो की सूची तैयार करती है एव इसी सूची म से ससद म बहुमत प्राप्त श्रमदलीय नेता अपने मन्त्रियो का चयन करता है। अत यह सम्भव है कि उसे ऐसे व्यक्तियो का चुनाव करना पडे जिन्हे वह पसन्द न करता हो। ऐसी स्थिति म व्यक्तिगत रूप से मन्त्री भी प्रधानमन्त्री के प्रति भक्ति नही रखते हैं क्योकि वे यह समझते हैं कि उनको दलीय नेताओ की कृपा एव सहयोग से चुना गया है। निर्वाचन की इस रीति का एक अन्य दुष्परिणाम भी है। दलीय समिति कभी कभी प्रधानमन्त्री को अपना समथन प्रदान करना बन्द कर देती है, फलस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। 1901 ई से 1943 ई तक के काल म आस्ट्रेलिया म 24 मन्त्रिमण्डल एव 13 प्रधानमन्त्री बने थ जबकि इसी काल म कनाडा म 9 मन्त्रिमण्डल एव 5 प्रधानमन्त्री हुए हैं। श्रमदलीय प्रधानमन्त्री भी दलीय नेताओ द्वारा ही चुना जाता है। इसके अतिरिक्त ससदीय शासन की अन्य विशेषता—गोपनीयता—का भी आस्ट्रेलिया म पूर्ण पालन नहीं किया जाता। बजट की मुख्य

सूचनाएँ ससद म प्रस्तुत करने के पूव ही प्रकट हो जाती है। यही मन्त्रिमण्डल न्य महत्वपूण निणयो के सन्दम म भी सत्य है।

प्रधानमन्त्री ससद के विघटन की माग करने के पूव अपने सहयोगियो से परा करता है। 1914 ई के पूव 3 अवसरो पर गवर्नर जनरल ने ससद के विघटन ाग को अस्वीकार कर दिया था।

नमन्त्री

वह मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है। श्रमदलीय प्रधानमन्त्रियो को छोडकर ट्रेलिया के प्रधानमन्त्री की स्थिति ब्रिटिश या भारतीय प्रधानमन्त्री जसी होती श्रमदलीय मन्त्रिमण्डल के सभी मन्त्री व्यवहार म दलीय समिति के प्रति दायी होते हैं, न कि प्रधानमन्त्री के प्रति। अन्य दल के प्रधानमन्त्रियो के सन्दम ह बात सत्य नही है। आस्ट्रेलिया मे प्रधानमन्त्री तानाशाह नही होता। उसका कालीन अनुभव, दल मे उसकी स्थिति, ससद म उसके दल की स्थिति आदि देश ाजनीति एव शासन मे उसे महत्वपूण स्थान प्रदान करते है। प्रधानमन्त्री की वास्त- स्थिति उसकी क्षमता, योग्यता, बुद्धिमत्ता एव व्यक्तित्व पर निभर करती है।

ब्रिटन की भाति ही आस्ट्रेलिया म ससदीय प्रणाली की तीव्र आलोचना की ा है। कुछ आलोचको का मत है कि आस्ट्रेलिया म मन्त्रिमण्डल के निणयो मे काशत विलम्ब एव अस्थिरता होती है। म न्त्रीगण लोकसेवको के हाथो मे खड नोहर के समान हैं। मन्त्रिमण्डल ऐसे विभागाध्यक्षो का समूह है जो अपने स्थायी ारियो के निणया को स्वीकृति प्रदान करके ही सन्तुष्ट हो जाता है। ससद एव धिक दक्ष नौकरशाही के हाथा मे मन्त्रिमण्डल बन्दी-जैसा है। आस्ट्रेलिया के राज ाक जीवन म मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था मे सामाजिक आवश्यकता एव उपरोक्त दोषो रिमाजन हेतु सशोधन की चर्चा होन लगी है।

यूगोस्लाविया की कार्यपालिका

यूगोस्लाविया साम्यवादी देश है। माच 1945 ई म माशल टीटो के व म समाजवादी क्रान्ति की सफलता के पश्चात वहा नवीन शासन की स्थापना हुई नवीन सविधान 31 जनवरी, 1946 ई को लागू हुआ था। कायपालिका शक्ति ाज्य के राष्ट्रपति एव सघीय कायकारिणी परिषद (Federal Executive uncil) मे निहित है। यूगास्लाविया की कायकारिणी का स्वरूप बाह्य रूप म ीय सा प्रतीत हाता है। लेकिन यूगास्लाविया म एकदलीय व्यवस्था है अत व्यवहार हाँ साम्यवादी दल का शासन है।

ष्पति

यूगोस्लाविया गणराज्य के राष्ट्रपति का कायकाल चार वष है। वह फेडरल बली द्वारा निर्वाचित किया जाता है।[32] वह कवल एक बार पुन निवाचित

[32] अनुच्छेद 221

हो सकता है परन्तु मार्शल टीटो पर अवधि सम्बन्धी यह सीमा लागू नहीं होती।[33] राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति के एक माह पूर्व फेडरल असेम्बली राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है। फेडरल असेम्बली के तीस सदस्यों द्वारा स्वेच्छा से या यूगोस्लाविया के श्रमिकों के समाजवादी संघ (alliance) की संघीय समिति द्वारा नाम प्रस्तावित किये जाने पर राष्ट्रपति पद के लिए नाम प्रस्तुत किया जाता है। इन तीस सदस्य प्रस्तावकों में से 5 प्रस्तावकों को प्रत्येक गणराज्य का निवासी होना चाहिए एवं 15 प्रस्तावक संघीय विधानमण्डल के सदस्य होने चाहिए।[34] जिस प्रत्याशी को संघीय विधान मण्डल के सदस्यों का बहुमत प्राप्त होता है वह राष्ट्रपति निर्वाचित कर लिया जाता है एवं तत्पश्चात शपथ ग्रहण करता है। वह सभी सदनों के संयुक्त अधिवेशन में निर्वाचित किया जाता है।

मूल संविधान में उपराष्ट्रपति की भी व्यवस्था थी। उसे राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उसके कर्तव्य सम्पादित करने का अधिकार प्रदान किया गया था। उसका कार्यकाल चार वर्ष था एवं वह राष्ट्रपति की भांति ही निर्वाचित किया जाता था। परन्तु पांचवें संवैधानिक संशोधन (1967 ई.) द्वारा उपराष्ट्रपति का पद समाप्त कर दिया गया है।[35] अब राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में फेडरल असेम्बली का अध्यक्ष उसके कार्यों को सम्पादित करता है।

राष्ट्रपति के कार्य एवं शक्तियां—राष्ट्रपति देश एवं विदेशों में यूगोस्लाविया के समाजवादी संघीय गणराज्य का प्रतिनिधित्व करता है। वह यूगोस्लाविया की सशस्त्र सेनाओं का सेनापति है।[36] उसी के प्रस्ताव पर संघीय कार्यकारिणी परिषद का अध्यक्ष संघीय सभा द्वारा निर्वाचित किया जाता है। कार्यकारिणी परिषद के प्रधान के प्रस्ताव पर उसके अन्य सदस्यों को निर्वाचित किया जाता है।[37] वह संघीय विधियों को आज्ञापित करता है, राजदूतों एवं अन्य राजनयिक अधिकारियों को नियुक्त करता है, उन्हें वापस बुला सकता है, विदेशी राजदूतों से परिचय पत्र प्राप्त करता है, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों को अनुमोदित करता है एवं सम्मानसूचक पदवियाँ प्रदान करता है तथा संघीय कार्यकारिणी परिषद के निर्णयों को आज्ञापित करता है। वह यूगोस्लाविया के संवैधानिक न्यायालयों के न्यायाधीशों एवं उसके अध्यक्ष का नाम प्रस्तावित करता है।

---

33 अनुच्छेद 220 मार्शल टीटो को 1964 ई. में चौथी बार राष्ट्रपति चुना गया था। अब मार्शल टीटो को जीवन भर के लिए राष्ट्रपति चुन लिया गया है एवं वे जीवन भर के लिए साम्यवादी दल के अध्यक्ष भी चुन लिये गये हैं।

34 अनुच्छेद 221

35 अनुच्छेद 223 224

36 अनुच्छेद 215

37 अनुच्छेद 216

है तथा उपसेनापति को नियुक्त एवं पदच्युत करता है। सघीय परिषद (Council of Federation) के सदस्यो के निर्वाचन एवं पदच्युत करने सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। सघीय विधियां सम्बन्धी फौजदारी अपराधो के सम्बन्ध मे क्षमादान प्रदान करता है। फेडरल असेम्बली के सत्रावसान-काल मे युद्ध की घोषणा करता है, आवश्यक कर्मचारियों एवं अधिकारियो की नियुक्ति करता है तथा सविधान द्वारा प्रदत्त अन्य अधिकारों एवं दायित्वों को सम्पादित करता है। युद्ध काल या युद्ध की आशंका की स्थिति मे सघीय कार्यकारिणी परिषद द्वारा मांग किये जाने पर सघीय सभा के अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी मामलों के सम्बन्ध मे आदेश दे सकता है जिनका विधि के सदृश्य महत्व होता है। ऐसे आदेशों को राष्ट्रपति सघीय सभा के समक्ष अधिवेशन के आरम्भ होने पर स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता है। वह युद्ध काल मे नागरिक अधिकारो को देश की सुरक्षा के लिए निलम्बित कर सकता है।[38] सघीय कार्यकारिणी परिषद द्वारा पारित आज्ञाप्तियां एवं सामान्य राजनीतिक महत्व के अन्य विनियमों को प्रकाशित होने के पूर्व रोकने का अधिकार राष्ट्रपति को है। इस प्रकार रोके गये विनियम या आज्ञाप्ति सम्बन्धी विवाद को राष्ट्र जातियों की सभा के समक्ष तुरन्त ही उपस्थित किया जाना चाहिए।[39]

राष्ट्रपति अपने कार्यों एवं दायित्वों के लिए सघीय सभा (Federal Assembly) के प्रति उत्तरदायी होता है। उसे पद सम्बन्धी अनेक उन्मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं।[40] यह राष्ट्रपति का दायित्व है कि सघीय सभा को आन्तरिक एवं वैदेशिक समस्याओ के सम्बन्ध मे वह निरन्तर सूचित करे एवं विशेष मामले को सभा मे विचारार्थ उपस्थित करे।[41] वह राज्य की नीतियों एवं राजनीतिक, कार्यपालक एवं प्रशासनिक अंगों के कार्यों पर विचार करने के लिए सघ परिषद का अधिवेशन आहूत करता है। सघ परिषद के सदस्यो का निर्वाचन राष्ट्रपति के प्रस्ताव पर ही किया जाता है लेकिन 9वें सवैधानिक सशोधन द्वारा सघीय परिषद के इन दायित्वों को राष्ट्रजाति सभा को हस्तान्तरित कर दिया गया है।[42] सघ परिषद एक परामर्शदायी निकाय है।

राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष है एवं सघीय शासन मे उसके विशेष दायित्व एवं कर्तव्य है। वह अपने सवैधानिक अधिकारो का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करता है। *सघीय कार्यकारिणी परिषद से उसके विशेष सम्बन्ध होते है। परन्तु वह कार्यपालिका*

38 अनुच्छेद 217
39 अनुच्छेद 218
40 अनुच्छेद 219
41 अनुच्छेद 222
42 अनुच्छेद 224

का प्रधान नही है। राष्ट्रपति की सहायता के लिए उपरोक्त उल्लिखित एक राजनीतिक निकाय—सघ परिषद (Council of Federation)—का निर्माण किया गया है।

सघीय कायकारिणी परिषद

सविधान द्वारा सघीय कायकारिणी परिषद को कायपालक शक्तियाँ प्रदान की गयी है। यह फेडरल असेम्बली द्वारा निश्चित मूलभूत सिद्धान्तो पर आधारित नीति को क्रियान्वित करती है।[43] इसका एक प्रधान एव अन्य सदस्यगण होते हैं। वे सघीय सभा द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। प्रधान के नाम को राष्ट्रपति प्रस्तावित करता है एव वह सघीय सभा का सदस्य होता है।[44] परिषद के प्रधान द्वारा उसका प्रतिनिधित्व किया जाता है तथा उसके निणयो एव नीति को क्रियान्वित करने के लिए वह हर प्रकार का प्रयत्न करता है। किसी गणराज्य या 5 सदस्या द्वारा माग किये जाने पर राष्ट्रपति को परिषद का अधिवेशन आहूत करने का अधिकार प्राप्त है। वह विभिन्न प्रशासनिक अगो के कार्यों म सम वय स्थापित करता है।[45] परिषद अपने कार्यों के लिए सघीय सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। परिषद द्वारा प्रस्तावित किसी भी विधयक या विनियम के सविधान विरोधी होने पर सघीय सभा उसे अस्वीकार कर सकती है। परिषद को अपने क्षेत्राधिकार सम्बन्धी दायित्वा को वतमान सविधान एव विधियो की सीमा के अ तगत ही पालन करना चाहिए।[46] परिषद को निरन्तर अपने काय क सम्बन्ध मे सघीय सभा को सूचित रखना चाहिए। कायकारिणी परिषद सघीय सभा के किसी भी सदन को किसी विधेयक पर विचार न करने या उसे पारित न करने सम्बन्धी आदेश दे सकती है। सघीय सभा परिषद के उचित विचारा के विपरीत यदि किसी विधेयक को पारित कर देती है और वह यह अनुभव करती है कि उस विधयक को वह नियान्वित न कर सकेगी[47] तो कायकारिणी परिषद सामूहिक रूप म त्यागपत्र प्रस्तुत कर सकती है।

गणराज्या की कायकारिणी परिषदो के अध्यक्ष, सघीय कायकारिणी के सचिव एव सघीय सभा द्वारा प्रस्तावित सघीय अधिकारीगण कायकारिणी परिपद के पदेन सदस्य होते है।[48] सघीय सदन को अपने किसी एक सदस्य को परिषद का प्रधान या सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त है। परिपद क प्रधान को किसी सदस्य

---

43 अनुच्छेद 225
44 अनुच्छेद 226
45 अनुच्छेद 230
46 अनुच्छद 231
47 अनुच्छद 232
48 अनुच्छद 226

को पदच्युत करन एव उसके स्थान पर किसी नवीन सदस्य को निर्वाचित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का भी अधिकार प्राप्त है। परिषद के प्रधान को पदच्युत करन या परिषद के बहुसंख्यक सदस्या के त्यागपत्र का अथ सम्पूण परिषद का त्यागपत्र होता है।[49] कायकारिणी परिषद क द्वारा निम्नलिखित कतव्य सम्पादित किय जाते हैं [50]

(1) आन्तरिक एव वदशिक नीति का निमाण, नीतियो एव विधिया तथा सघीय वजट, सामाजिक योजना एव सघीय सभा के अन्य विधेयका का क्रियान्वयन।

(2) सघीय सभा म विधेयका को प्रस्तुत करना एव अन्य प्रस्तावित विधेयका पर अपनी राय प्रकट करना।

(3) सघीय बजट एव सामाजिक योजना का निर्माण।

(4) सघीय सभा द्वारा पारित विधियो के अधीन उनके क्रियान्वयन हतु निणय, आदेश एव निर्देश देना।

(5) सघीय प्रशासनिक निकाया के आन्तरिक सगठन सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्ता को निर्धारित करना।

(6) सघीय सभा की विधिया के अधीन सघीय प्रशासनिक निकायो सम्बन्धी निणय करना।

(7) सघीय विधि विरोधी सघीय प्रशासनिक निकाया द्वारा पारित नियमो को निष्प्रभावी घोषित करना।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय सन्धिया का अनुमोदन।

(9) सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान एव न्यायाधीशा तथा आर्थिक न्यायालय एव सघीय पब्लिक प्रोसीक्यूटर के निर्वाचन एव पदच्युत का प्रस्ताव करना।

(10) प्रशासनिक एव अन्य अधिकारियो की नियुक्ति करना।

(11) सघीय विधियो तथा कुछ सघीय कोषा का प्रबन्ध करना।

(12) सघीय विधिया द्वारा सौप गये दायित्वो को सम्पादित करना।

कायकारिणी परिषद के विशेष दायित्व हैं। वह सघीय सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। इसके सदस्य सघीय सभा के सदस्य होते हैं। कायकारिणी परिषद की स्थिति मन्त्रिमण्डल जसी होती है। मन्त्रिमण्डल की भाति इसका एक प्रधान होता है। यदि कायकारिणी परिषद की नीतिया एव कायपद्धति सघीय सभा द्वारा स्वीकार नही की जाती ता वह सामूहिक रूप से पदत्याग कर देती है। इन उपबन्धा से यह प्रतीत होता है कि यूगोस्लाविया के वतमान सविधान म ससदीय कायपालिका के इस मूल सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है कि कायपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी

---

49 अनुच्छेद 227

50 अनुच्छेद 228

होती है । सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को भी मान्यता दी गयी है । परन्तु एक दलीय व्यवस्था के कारण इसमे सन्देह है कि परिषद मन्त्रिमण्डल की भाति काय करती है या नही । एकदलीय व्यवस्था मे कठोर दलीय नियन्त्रण का होना स्वाभाविक है । इसके अतिरिक्त यूगोस्लाविया म राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष नही है । उसे व्यापक शक्तिया प्राप्त है । वह राज्य व कायपालिका दोनो का अध्यक्ष होता है । माशल टीटो अपन देश के लोकप्रिय नेता है एव व्यवहार म सत्ता उनम केन्द्रित है । राष्ट्रपति ही उच्चाधिकारियो को नियुक्त करता है । वह ग्रेट ब्रिटेन और भारत आदि ससदीय देशा की भाँति नाममात्र का अध्यक्ष नही है । सघीय कायकारिणी परिषद के प्रधान की स्थिति प्रधानमन्त्री जसी होती है । लेकिन उसकी स्थिति ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की अपेक्षा पाचवे गणराज्य के फ्रेन्च प्रधानमन्त्री जसी है । माशल टीटो विश्व के शक्तिशाली राज्याध्यक्षो मे स है परन्तु यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति की शक्ति सवधानिक सीमाओ से मर्यादित है । विधानमण्डल को काफी व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं ।

नेपाल की कार्यपालिका

नेपाल की कायपालिका म तीन अग है (1) सम्राट, (2) राजसभा, एव (3) मन्त्रि परिषद (Council of Ministers) । नेपाली कायपालिका की विशपता यह है कि वह न तो ससदीय है और न अध्यक्षात्मक, अपितु वह इन दोना के मिश्रण का परिणाम है ।

सम्राट

नेपाल म सम्राट शासन शक्ति का स्रोत है । वह ब्रिटिश राजा की भाँति वशानुगत राजा है ।[51] राज्य की सावभौम सत्ता नेपाली नरेश म निहित है [52] और वह ब्रिटिश राजा की भाँति सवैधानिक अध्यक्ष नही है, अपितु वास्तविक प्रधान है । वह राज्य व शासन दोनो का अध्यक्ष है । नेपाल का सविधान सम्राट द्वारा प्रदत्त उपहार है ।, सविधान की प्रस्तावना के अनुसार 'मैं सम्राट महेन्द्रवीर विक्रम शाह देव निहित सावभौम सत्ता एव विशेपाधिकारो क द्वारा सविधान को अधिनियमित एव उदघोषित करता हूँ ।'

सम्राट की शक्तियाँ पर्याप्तत विस्तृत है

(1) कायपालिका शक्ति—समस्त कायपालिका शक्ति सम्राट म अधिष्ठित है । इसका प्रयोग वह स्वय अथवा मन्त्रियो या अधीनस्थ कमचारियो द्वारा करता है ।

---

51 Art 21 म उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमा का उल्लेख है । सम्राट को उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमा को परिवर्तित सशोधित एव समाप्त करन का अधिकार है । सविधान के अनुसार सम्राट पृथ्वी नरायण शाह का वशज एव आय सस्कृति तथा हिन्दू धर्मावलम्बी ही नेपाल का सम्राट हो सकता है ।

52 Article 20 (2) of the Fundamental Law of Nepal

राज्य एवं शासन के समस्त कार्य सम्राट के नाम पर किये जाते हैं और किसी न्याया-लय में इन कार्यों को चुनौती नहीं दी जा सकती। वह देश की सशक्त सेना का सर्वोच्च अध्यक्ष होता है। वह विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है एवं उनके परिचय पत्र प्राप्त करता है, नागरिकों एवं अन्य व्यक्तियों को सम्मान एवं उपाधियाँ प्रदान करता है, विदेशों से सन्धियाँ करता है एवं युद्ध की घोषणा का उसे अधिकार है। वह मन्त्रि परिषद का प्रधान होता है तथा उसके अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है। मन्त्रि-परिषद के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की नियुक्ति करता है। मन्त्रिपरिषद उसके प्रति उत्तरदायी होती है और उसके प्रसाद-पर्यन्त पदारूढ़ रहती है। सम्राट सभी उच्च पदाधिकारियों जैसे महालेखा परीक्षक, लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों आदि को नियुक्त करता है।

(2) **विधायी शक्ति**—वह राष्ट्रीय पंचायत के अधिवेशन में भाषण करता है एवं शासन की नीतियों का उल्लेख करता है। उसके अधिवेशनों को आहूत करता है एवं उन्हें स्थगित करता है। वह राष्ट्रीय पंचायत को सन्देश भेजता है तथा पंचायत के 15% सदस्यों को मनोनीत करता है। राष्ट्रीय पंचायत द्वारा पारित सभी विधेयक उसकी स्वीकृति के पश्चात ही विधि बनते हैं। विधियों की स्वीकृति सम्बन्धी उसकी शक्ति निर्णायक होती है। उसे अध्यादेश जारी करने का भी अधिकार है। ये अध्यादेश राष्ट्रीय पंचायत की विधि की भाँति ही प्रभावकारी होते हैं। वित्त मन्त्री के अतिरिक्त राष्ट्रीय पंचायत के अन्य सदस्यों द्वारा कर, आय-व्यय राष्ट्रीय ऋण, सशस्त्र सेना सम्बन्धी एवं मौलिक अधिकारों को सीमित करने वाले विधेयकों को उपस्थित करने के लिए सम्राट की पूर्व-स्वीकृति आवश्यक होती है।

(3) **न्यायिक शक्ति**—वह न्याय का स्रोत है एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों एवं महान्यायवादी की नियुक्ति करता है। वह किसी भी दण्ड को क्षमा, कम या स्थगित या परिवर्तित कर सकता है एवं न्याय समिति के परामर्श पर सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णय पर पुनर्विचार का आदेश दे सकता है।

(4) **संकटकालीन शक्ति**—सम्राट को यदि यह विश्वास हो जाय कि युद्ध, बाह्य आक्रमण एवं आन्तरिक अशान्ति के कारण देश में संकटकालीन स्थिति उत्पन्न हो गयी है तो वह सम्पूर्ण देश या उसके किसी भाग में संकट काल की घोषणा कर सकता है। इस घोषणा के फलस्वरूप संविधान की संकटकालीन धाराओं को छोड़कर शेष सभी धाराएँ निलम्बित हो जाती हैं और सम्राट राष्ट्रीय पंचायत, शासकीय संस्थाओं तथा अधिकारियों के अधिकारों को स्वयं वहन कर लेता है। संकटकालीन स्थिति को सम्राट एक अन्य उद्घोषणा द्वारा समाप्त कर सकता है। सम्राट के द्वारा ही संकट काल की स्थिति को समाप्त करने के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय किया जाता है। यदि वह उचित समझे तो इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय पंचायत एवं राजसभा की

स्थायी समितियां से परामर्श कर सकता है। अवशिष्ट शक्तियां सम्राट में अस्थायी रूप से निहित है।

मूल्यांकन—नेपाल का सम्राट सिद्धान्त एवं व्यवहार में राज्य का सर्वोच्च सत्ताधारी है। वह राज्य शक्ति की केन्द्रीय धुरी है जिसके चारों तरफ सम्पूर्ण शासन तन्त्र घूमता है। वह सम्प्रभु सत्ता का आदि स्रोत है। संविधान उसके द्वारा अधिनियमित एवं उद्घोषित है। मन्त्रिमण्डल उसके प्रति उत्तरदायी होता है। वह अमेरिकी राष्ट्रपति की भाँति राज्य एवं शासन का अध्यक्ष है और ब्रिटिश सम्राट की भांति वंशानुगत रीति से नियुक्त होता है। समस्त राजसत्ता का प्रयोग सम्राट के नाम पर किया जाता है। मन्त्रि परिषद के सदस्य उसके अधीनस्थ सेवक होते हैं। वह अमेरिकी राष्ट्रपति की भांति मन्त्रिमण्डलों के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है। उसकी स्थिति ब्रिटिश सम्राट एवं अमेरिकी राष्ट्रपति दोनों से ही श्रेष्ठ है। ब्रिटिश सम्राट की भांति नेपाल नरेश की भी दोहरी स्थिति है—(1) व्यक्ति के रूप में, एवं (2) संस्था के रूप में। संस्था के रूप में नेपाल नरेश की तुलना ब्रिटिश सम्राट से की जा सकती है। लेकिन वह ब्रिटिश सम्राट की भांति नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है। वह राज्य व शासन दोनों का प्रधान है। ब्रिटिश सम्राट राज्याध्यक्ष होने के कारण दलीय राजनीति से ऊपर होता है परन्तु नेपाल नरेश के शासन का वास्तविक अध्यक्ष होने के कारण दलगत राजनीति में फँसने की आशंका है। भारतीय राष्ट्रपति की भांति वह संवैधानिक अध्यक्ष नहीं है। भारतीय संविधान के अनुसार संकटकालीन शक्तियों का भी प्रयोग केन्द्रीय शासन (संसद) में अधिष्ठित है। अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हैं परन्तु नेपाली संविधान के अनुसार यह दोनों शक्तियाँ नेपाल नरेश में अधिष्ठित हैं। उसकी शक्तियां को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह वीमर संविधान के पूर्व के जर्मन सम्राट से कम शक्तिशाली नहीं है। प्रतिनिधि संस्थाएँ उसकी छाया मात्र हैं। संकटकालीन शक्तियाँ उसे तानाशाह बना देती हैं। मन्त्रिमण्डल ही नहीं न्यायपालिका भी उसकी छाया मात्र है। सभी महत्वपूर्ण निर्णय उसकी सहमति से लिये जाते हैं।[53]

राजसभा

नेपाल के वर्तमान संविधान की इस संस्था—राजसभा (Raj Sabha)—की तुलना ग्रेट ब्रिटेन की प्रीवी परिषद (Privy Council) से की जा सकती है। राजसभा मन्त्रि-परिषद की भांति कार्यकारिणी संस्था है। यह विचार विमर्श करने वाली एक स्थायी संस्था है। इसमें दो प्रकार के सदस्य होते हैं—(1) पदेन, एवं (2) मनोनीत। मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रीय पंचायत का अध्यक्ष, मन्त्रि परिषद के सदस्य, राजपुरोहित सर्वोच्च सेनापति, महालेखा परीक्षक, लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष,

53 Prithvis Chakravarti *op cit* March 25, 1970

सविधान म राजसभा की स्थापना की गयी है। स्मरणीय है कि राजसभा द्वितीय के रूप म काय नही करती है। यह विशुद्ध परामशदायी निकाय है जिससे स... द्वारा आवश्यकतानुसार अपन कार्यों क सम्पादन के सम्बन्ध म परामश कि... जाता है।[54]

मन्त्रि परिषद

सविधान द्वारा सम्राट की अध्यक्षता म एक मन्त्रि परिषद की व्यवस्था की गयी है जिसम सम्राट द्वारा नियुक्त मन्त्री होते हैं। मन्त्रीगण सम्राट को दायित्व सम्पादन म सहयोग एव सहायता देते है। सम्राट द्वारा मन्त्रि-परिषद का निर्माण किया जाता है। सम्राट को मन्त्रियो की नियुक्ति सम्बन्धी अनियन्त्रित अधिकार प्राप्त है। लेकिन प्रथम सवधानिक सशोधन (1967 ई) के अनुसार यदि सम्राट चाहे तो प्रधानमन्त्री एव उप प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के सदभ मे वह राष्ट्रीय पचायत से परामश कर सकता है। प्रथम सशोधन के पूव प्रधानमन्त्री एव उप प्रधानमन्त्री को मन्त्रि-परिषद का अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष कहा जाता था। सम्राट मन्त्रि परिषद का अध्यक्ष होता है। वह अपनी अनुपस्थिति म किसी अन्य सदस्य को मन्त्रि-परिषद के अधिवेशना की अध्यक्षता के लिए नियुक्त कर सकता है।

प्रथम सशोधन (1967 ई) के अन्तगत मन्त्रि-परिषद का सगठन सम्राट की बजाय प्रधानमन्त्री की अधीनता म होता है। कभी-कभी तो सम्राट ने स्वय प्रधानमन्त्री का पद भी ग्रहण किया है। उदाहरणाथ, 1960 ई म सम्राट स्वय तीन वष तक प्रधानमन्त्री बने रहे थे। अप्रल 1970 ई म मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र पर सम्राट ने अपनी अध्यक्षता म मन्त्रिमण्डल का गठन किया था। अत सम्राट प्रधानमन्त्री के दायित्व एव पद ग्रहण करता है। यह स्थिति समस्त ससदीय देशा म प्रचलित व्यवस्था के विपरीत है। नेपाली प्रधानमन्त्री का कायकाल 5 वष है। वह इस अवधि क पूव भी पदत्याग कर सकता है। उसके पदत्याग के साथ सम्पूण मन्त्रि-परिषद को पदत्याग करना पडता है।

मन्त्रि-परिषद की सदस्य सख्या सविधान द्वारा निश्चित नही है। मन्त्रि परिषद म दो प्रकार के मन्त्री होते हैं—(1) सम्राट के मन्त्री, तथा (2) सहायक मन्त्री।[56] सभी मन्त्रिगण राष्ट्रीय पचायत के सदस्य होते हैं। यदि कोई मन्त्री अपनी नियुक्ति क समय राष्ट्रीय पचायत का सदस्य नही है तो 6 माह की अवधि म उसे राष्ट्रीय पचायत का सदस्य हो जाना चाहिए। सभी मन्त्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी हाते हैं वे इगलण्ड एव भारत आदि ससदीय देशो की भाँति राष्ट्रीय पचायत के प्रति ...

---

54 S Narayan *India & Nepal* 1971, p 83

55 Article 25 (1)

56 सहायक मन्त्री सम्राट द्वारा सम्राट क मन्त्रिया की सहायतार्थ नियुक्त किय जाते हैं।

उत्तरदायी नही होते है । म त्रीगण त्यागपत्र दे सकते हैं । वे राष्ट्रीय पचायत की सदस्यता के समाप्त होने या पदच्युत हो जाने पर अपने पद से हट जाते हैं । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय पचायत के कुल सदस्या के बहुमत द्वारा पदच्युत किये जाने की माग करने और सम्राट द्वारा उसके स्वीकृत होने पर म न्त्रियो को पदत्याग करना पडता है ।

म न्त्र परिषद के काय—म न्त्र-परिषद देश की कायपालिका शक्तियो का उपभोग करता है । सविधान मे इसके कार्यो का कोई उल्लेख नही है । सामा यत म त्र परिषद शासन की नीति निर्धारित करती है, राष्ट्रीय पचायत के विधायी कायक्रम को निश्चित करती है एव उसके द्वारा विधेयक प्रस्तावित किये जाते है । वार्षिक आय व्यय प्रपत्र एव आर्थिक नीतिया भी निर्धारित करती है । विभागीय अधिकारिया एव उनके कार्या के मध्य सम वय स्थापित करती है । वह देश म शा ति एव व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है । देश के प्रशासन का भार उसी पर होता है ।

मूल्याकन—नेपाली म न्त्र परिषद म ससदीय व्यवस्था की मुख्य अवधारणा म न्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का अभाव है । नेपाली म न्त्रिमण्डल सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता है, न कि राष्ट्रीय पचायत के प्रति । नेपाली प्रधानम न्त्री की स्थिति ब्रिटिश प्रधानम त्री की भाँति के द्रीय नही होती है, वह म न्त्रिमण्डल का प्रमुख होता है *पर तु देश का वास्तविक कायपालिका प्रमुख सम्राट ही होता है* । *वह सूत्रधार होता है* । सम्राट स्वय प्रधानम न्त्री बन सकता है । यह व्यवस्था ससदीय व्यवस्था के स्वीकृत सिद्धा त के विपरीत है । सम्राट ही म न्त्रिमण्डल का नियुक्त करता है । नपाल के म न्त्रीगण सम्राट के सेवक होते है ।

पाक कायपालिका

पाकिस्तान के ज म (1947 ई) से 1956 ई म पाकिस्तान के इस्लामी गणराज्य के सविधान के उदघाटन तक, भारत शासन अधिनियम 1935 ई के अनुसार देश का शासन चलता रहा था । क द्रीय कायपालिका म दो अग थे—*गवनर जनरल एव म न्त्रिमण्डल । गवनर जनरल राज्याध्यक्ष था । श्री मोहम्मद अली* जिन्ना जब तक गवनर जनरल रहे वे ही सत्ता के के द्र थे । उनकी मृत्यु (11 सितम्बर, 1948 ई) के पश्चात सत्ता का के द्रीकरण प्रधानम न्त्री के पद मे होता चला गया । श्री लियाकत अली खा पाकिस्तान के प्रथम प्रधानम न्त्री थे । वे देश म अत्यधिक प्रभावशाली थे । श्री जिन्ना की मृत्यु के पश्चात वे सत्ता के क द्र बन गय थे । उस समय पाकिस्तान म ससदीय कायपालिका थी । म न्त्रिमण्डल विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता था, सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धा त मा य था एव प्रधानम न्त्री म न्त्रिमण्डल का नता होता था । श्री माहम्मद अली जि ना की मृत्यु के पश्चात ख्वाजा निजामुद्दीन गवनर जनरल बन और लियाकत अली की हत्या के पश्चात वे पाकिस्तान के प्रधानम त्री और श्री गुलाम मोहम्मद पाकिस्तान के गवनर जनरल बन थ ।

17 अप्रैल 1953 ई को निजामुद्दीन को पदच्युत कर दिया गया और श्री मोहम्मद अली बोगरा को उनके स्थान पर प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया। 11 अगस्त, 1955 ई को बोगरा ने त्यागपत्र दे दिया एवं श्री मोहम्मद अली प्रधानमन्त्री बने। लियाकत अली के पश्चात सभी प्रधानमन्त्री कमजोर थे। गवर्नर जनरल की शक्ति में क्रमश वृद्धि होती गयी थी। नियमित मुस्लिम लीग में गुटबन्दी एवं 1954 ई के पूर्वी बंगाल के निर्वाचनों में लीग की पराजय ने देश में राजनीतिक अस्थिरता का जन्म दिया। 23 मार्च 1956 ई को पाकिस्तान के इस्लामी गणराज्य के संविधान को लागू किया गया जो 8 अक्टूबर 1958 ई को समाप्त हो गया।

इस संविधान के अन्तर्गत गवर्नर जनरल का स्थान निर्वाचित राष्ट्रपति ने ले लिया। लेकिन शासन का स्वरूप संसदीय ही बना रहा। राष्ट्रपति पद के लिए जो अहर्ताएँ निश्चित की गयी थी उनके अनुसार प्रत्याशी का मुसलमान एवं कम से कम 40 वर्ष की आयु का होना आवश्यक था। उसका कार्यकाल 5 वर्ष था। कोई भी दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं हो सकता था। राष्ट्रीय सभा अपने दो तिहाई बहुमत से महाभियोग द्वारा राष्ट्रपति को पदच्युत कर सकती थी। राष्ट्रपति के अशक्त होने या उसके पद के रिक्त होने पर राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष उसका स्थान ग्रहण कर लेता था।

राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार कार्य करना आवश्यक था। प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता होता था। राष्ट्रीय सभा में बहुमत दल का नेता प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता था। मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी होता था।

अक्टूबर 1958 ई की सैनिक क्रान्ति के फलस्वरूप मेजर जनरल अयूब खाँ के हाथों में सत्ता आ गयी थी। संसदीय प्रणाली का अन्त कर दिया गया था एवं अयूब द्वारा राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया गया जिसमें तीन सैनिक व आठ असैनिक अधिकारी थे। दोनों प्रान्तों के राज्यपाल इस मन्त्रिमण्डल के पदेन सदस्य थे। असैनिक अधिकारियों की संख्या बाद में बढ़ाकर 10 कर दी गयी थी। 1962 ई के संविधान के क्रियान्वित होने तक यह मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति की अधीनता में कार्य करता रहा।

1962 ई के संविधान के अधीन कार्यपालिका

इस संविधान द्वारा पाकिस्तान में गणराज्य की स्थापना की गयी। कार्यपालिका का स्वरूप कुछ अध्यक्षात्मक सा था। संसदीय व्यवस्था का परित्याग कर दिया गया एवं पाकिस्तान के राष्ट्रपति को निर्वाचक मण्डल द्वारा चुने जाने की व्यवस्था की गयी थी। राष्ट्रपति द्वारा ही प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता था एवं उसी के प्रति वह उत्तरदायी भी होता था। वे अमेरिकी मन्त्रियों की भाँति राष्ट्रपति

के सेवक थे। मन्त्रीगण राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी नही थे । मन्त्रिमण्डल की स्थिति बहुत कुछ ब्रिटिश भारत के गवर्नर जनरल की कायकारिणी परिषद के समान थी। पाक राष्ट्रपति के पद मे अमेरिकी एव फ्रासीसी राष्ट्रपतियो एव ब्रिटिशकालीन भारतीय गवनर जनरल की शक्तियो और स्थितिया का समन्वय था। राष्ट्रपति राज्य तथा शासन दोनो का प्रधान था।

निर्वाचन—पाक राष्ट्रपति को एक निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित किया जाता था। दोनो पाक प्रान्तो को समान जनसख्या वाले समान निर्वाचक क्षेत्रीय इकाइयो म विभाजित किया गया था। प्रत्येक प्रान्त को कम से कम 40 हजार निर्वाचक क्षेत्रो म विभाजित किये जाने की व्यवस्था थी। लेकिन प्रान्ता मे निर्वाचक क्षेत्रो की समान सख्या आवश्यक नही थी। प्रत्येक क्षेत्र की एक निर्वाचक सूची होती थी। प्रत्येक 21 वर्षीय पाक नागरिक जो किसी निर्वाचन क्षेत्र का निवासी हुआ करता था तथा जिसकी मानसिक स्थिति ठीक होती थी, अपना नाम निर्वाचक सूची मे दज कराने का *अधिकारी होता था। निर्वाचक सूची के सदस्य अपने मे से ही एक सदस्य को* चुनते थे। निर्वाचित सदस्य को 25 वष से कम आयु का नही होना चाहिए था।

दोनो प्रान्ता के निवाचन क्षेत्रो के निर्वाचक सामूहिक रूप मे राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल क सदस्य कहे जाते थे। इन्ह ही राष्ट्रपति को निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त था। अत पाक राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप म चुना जाता था। राष्ट्रपति *के कायकाल की समाप्ति के 120 दिन पूव उसको निर्वाचित करना आवश्यक था।* यदि राष्ट्रीय सभा भग हो जाती थी तो 120 दिन मे राष्ट्रपति का निर्वाचन होना आवश्यक था और यदि राष्ट्रपति अपने कायकाल की समाप्ति के पूव ही पदमुक्त होना चाहता था तो ऐसी अवस्था मे 90 दिन मे ही निर्वाचन का विधान था।

अहताएँ—राष्ट्रपति पद की निम्नलिखित अहताएँ निर्धारित की गयी थी

(1) राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी को मुसलमान होना चाहिए।

(2) उसकी आयु 35 वष या उससे अधिक होनी चाहिए।

(3) राष्ट्रीय सभा की सदस्यता सम्बन्धी सभी योग्यताओ को उसे पूण करना चाहिए।

(4) राष्ट्रपति पद के लिए अधिक से अधिक तीन प्रत्याशी हो सकते थे। यदि प्रत्याशियो की सख्या 3 से अधिक होती थी तो निवाचन आयुक्त राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष को तत्सम्बन्धी सूचना देता था और तुरन्त ही राष्ट्रीय सभा एव प्रान्तीय विधानमण्डलो का सयुक्त अधिवेशन आहूत किया जाता था और उसम गुप्त मतदान द्वारा तीन प्रत्याशिया का चयन किया जाता था। शेष सभी प्रत्याशिया को राष्ट्रपति पद के निर्वाचन हेतु अयोग्य ठहरा दिया जाता था।

(5) आठ वर्षों से अधिक समय तक राष्ट्रपति पद पर निरन्तर पदासीन रहने वाला व्यक्ति पुन उस पद का प्रत्याशी नही हो सकता था। यदि कोई राष्ट्रपति

दुबारा चुनाव लडता था तो ऐसी अवस्था म वह तभी प्रत्याशी हो सकता था जबक राष्ट्रीय सभा एव प्रान्तीय सभाओं क सयुक्त अधिवेशन म उस दुबारा निर्वाचन म भाग लेन की अनुमति दी गयी हो। राष्ट्रपति का कायकाल 5 वर्ष निश्चित किया गया था। पदत्याग करक वह अपन पद से पृथक हो सकता था। राष्ट्रपति द्वारा अपना त्यागपत्र राष्ट्रीय सभा क अध्यक्ष को प्रेषित किया जाता था। राष्ट्रपति की अशक्तता या अक्षमता तथा गम्भीर दुराचार क दोषी होने की स्थिति म उस पद से पृथक करन की भी व्यवस्था थी। राष्ट्रीय सभा म राष्ट्रपति पर सभा के एक तिहाई सदस्यो द्वारा सविधान के अतिक्रमण एव दुराचार के आरोपो पर महाभियोग का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता था। महाभियोग क प्रस्ताव पर विचार हेतु अध्यक्ष द्वारा राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन बुलाया जाता था। यदि महाभियोग प्रस्ताव को तीन चौथाई बहुमत स राष्ट्रीय सभा स्वीकार कर लेती थी तो राष्ट्रपति को पदच्युत किया जा सकता था।

शक्तियाँ एव अधिकार—राष्ट्रपति की निम्न शक्तियाँ थी

(1) कायपालिका शक्तियाँ—वह देश की प्रमुख कायपालिका था एव स्वय या अपने अधीनस्थ अधिकारियो के माध्यम से इन शक्तियों का प्रयोग करता था। वह पार सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति था तथा सैनिक अधिकारियो को सेना का कमीशन प्रदान करता था। वह मन्त्रि परिषद का निमाण करता था तथा प्रान्तीय राज्यपालो को नियुक्त करता था। वे सभी उसक निर्देशन मे काय करत थे। मन्त्रियो या गवनरो को कत्तव्य सम्बन्धी गम्भीर दुराचार के आधार पर राष्ट्रपति पदच्युत कर सकता था। उस अन्य उच्च पदाधिकारियो जस कि महालेखा परीक्षक, महान्यायवादी एव ससदीय सचिवो को नियुक्त करने का भी अधिकार प्राप्त था। वह इन अधिकारियों को बिना कारण बताये हुए पदच्युत कर सकता था। राष्ट्रपति की सहमति के अभाव म प्रान्तीय राज्यपालो को पदच्युत नही किया जा सकता था। वह शासन के कार्यों का विभाजन तथा नवीन विभागो का निर्माण करता था।

(2) विधायी शक्तिया—राष्ट्रीय सभा द्वारा पारित विधेयको को राष्ट्रपति स्वीकृति प्रदान करता था। वह विधेयको को रोक सकता था या उन्ह पुन विचार हेतु सदन को वापस भेज सकता था। यदि राष्ट्रपति 30 दिन क अन्दर उपरोक्त कदमो म से कोई कदम उठाने मे असमथ रहता था तो विधेयक पारित माना जाता था। राष्ट्रीय सभा को राष्ट्रपति को सन्देश भेजने का अधिकार था वह उस सम्बोधित कर सकता था एव किसी समय भी राष्ट्रीय सभा को विघटित कर सकता था। मन्त्रि परिषद के सदस्य या महान्यायवादी को राष्ट्रीय सभा और उसकी समितियो म विचार व्यक्त करने एव उसकी कायवाही म भाग लेने के अधिकार प्राप्त थे लेकिन व मतदान नही कर सकते थे। निवारक निरोध सम्बन्धी विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व-स्वीकृति से ही सदन म प्रस्तुत किये जा सकते थे। किसी विषय पर राष्ट्रपति एव राष्ट्रीय सभा

म मतभेद की अवस्था म विवादास्पद विषय पर जनमत सग्रह लिया जाता था। जनमत सग्रह मे केवल राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल के सदस्य ही भाग ले सकते थे। राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार था लेकिन उन्ह राष्ट्रीय सभा के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करना आवश्यक होता था।

(3) न्यायिक शक्तियाँ—राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति प्राप्त थी। वह किसी भी न्यायालय द्वारा दण्डित अपराधी को क्षमा प्रदान कर सकता था या उसे दिये गये दण्ड को निलम्बित अथवा स्थगित कर सकता था।

(4) सकटकालीन शक्तियाँ—पाक राष्ट्रपति को युद्ध अथवा वाह्य आक्रमण या उसकी सम्भावना एव आन्तरिक सुरक्षा तथा आर्थिक जीवन को सकट उत्पन्न होने या प्रान्तीय शासन के ठीक प्रकार से न चलन की स्थिति म सकटकाल की घोषणा करने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु ऐसी सभी घोषणाओं का शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रीय सभा के समक्ष उपस्थित किया जाना आवश्यक होता था यद्यपि उसके द्वारा अनुमोदन अनिवार्य नही था। सकटकाल को राष्ट्रपति अन्य घोषणा से समाप्त कर सकता था। सकटकाल मे उसे राष्ट्रीय सभा के सत्रकाल मे ही अध्यादेश जारी करने का अधिकार प्राप्त था। ऐसे आदेश सकटकाल पर्यन्त ही प्रभावी होते थे।

राष्ट्रपति की मन्त्रिपरिषद

राष्ट्रपति ही अपने मन्त्रियो की नियुक्ति करता था। मन्त्रियों के लिए राष्ट्रीय सभा का सदस्य होना आवश्यक नही था। परन्तु उन्ह स्विटजरलण्ड की सघीय परिषद के सदस्यो की भाति राष्ट्रीय सभा म भाग लेने का अधिकार प्राप्त था यद्यपि वे सभा मे मतदान नही कर सकते थे। प्रत्येक विभाग का एक ससदीय सचिव होता था जो राष्ट्रीय सभा के अधिवेशनो मे अनिवार्यत भाग लेता था और उसमे मतदान भी करता था। मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त ही पदारूढ रहते थे। उनके परामर्श को स्वीकार या अस्वीकार करना राष्ट्रपति का अधिकार था। स्पष्ट है, पाक मन्त्रिमण्डल के सदस्य ससदीय मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था एव अमेरिकी मन्त्रियो स भिन्न थे। ससदीय मन्त्रिमण्डलो से उनका कोई साम्य नही था। पाक मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाँति राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी नही होता था।

राष्ट्रपति की स्थिति

पाक राष्ट्रपति ससदीय देशो के सवैधानिक अध्यक्षो की स्थिति नही रखता था। उसे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त थी। प्रतिरक्षा एव वित्त पर राष्ट्रीय सभा को कोई अधिकार नही थे। वे राष्ट्रपति के सीधे नियन्त्रण म थे। राष्ट्रपति अयूब ने स्वय अपने ही प्रथम मन्त्रिमण्डल म सुरक्षा विभाग सम्भाला था। राष्ट्रपति को पदच्युत करने की व्यवस्था अत्यधिक जटिल एव कठोर थी। अत उसकी सफलता की कोई आशा नही थी। जनरल अयूब 1962 ई के सविधान के अन्तर्गत जनवरी 1965 ई म प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे।

21

भारतीय ससदीय कार्यपालिका
[INDIAN PARLIAMENTARY EXECUTIVE]

भारत म ससदीय कायपालिका स्थापित की गयी है । ग्रेट ब्रिटेन के सविधान का भारतीय सविधान पर व्यापक प्रभाव है तथा भारत म भी ब्रिटिश ससदीय प्रणाली का ही अनुगमन किया गया है । राष्ट्रपति नाममात्र की कायपालिका है, मन्त्रिमण्डल वास्तविक कायपालिका है । प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता होता है अत वह केन्द्रीय कायपालिका शक्ति का चालक चक्र है । राज्यो मे राज्यपाल नाममात्र की कायपालिका एव राज्य का मन्त्रिमण्डल वास्तविक कायपालिका होते हैं ।

भारतीय राष्ट्रपति

सविधान के अनुसार सघ की कायपालिका शक्ति राष्ट्रपति म निहित है । व सशस्त्र सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति है ।[1] लेकिन राष्ट्रपति द्वारा कायपालिका शक्ति का प्रयोग सविधान क अनुसार किया जाता है ।[2] सविधान म यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एक मन्त्रि परिषद होगी जो राष्ट्रपति को उसक कार्यो म सहायता एव परामश प्रदान करेगी तथा प्रधानमन्त्री मन्त्रि परिषद का अध्यक्ष होगा ।[3] अय अनुच्छेदो के सन्दभ म इस अनुच्छेद का अध्ययन करने पर राष्ट्रपति की शक्ति एव स्थिति स्पष्ट हो जाती है । मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी नही है अपितु ससद के निम्न सदन—लोकसभा—के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है ।[4] मन्त्रिपरिषद के निणयो की सूचना राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री द्वारा दिये जाने का प्रावधान है ।[5] सविधान के अनुसार यदि राष्ट्रपति किसी ऐसे विषय सम्बन्धी प्रस्ताव को मन्त्रि

1 अनुच्छेद 52
2 अनुच्छेद 53 (1)
3 अनुच्छेद 74 (1)
4 अनुच्छेद 75 (3)
5 अनुच्छेद 78 (अ) ।

परिषद के विचाराथ रखवाना चाहता है जिस पर केवल किसी मन्त्री न ही निणय लिया है परन्तु मन्त्रि परिषद न उस पर विचार नही किया है, तो उक्त प्रस्ताव को मन्त्रि परिषद के समक्ष रखना प्रधानमन्त्री का कतव्य होगा।[6]

इन उपबन्धा से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के परामश को मानने क लिए वाध्य है। मन्त्रिमण्डल उसके प्रति उत्तरदायी नही है। कायपालिका के सभी दायित्व राष्ट्रपति के नाम पर मन्त्रिमण्डल द्वारा ही सम्पादित किये जाने का विधान है [अनुच्छेद 77 (1)]। सविधान म एसी काई धारा नही है जो राष्ट्रपति को शासन के कार्यो के लिए उत्तरदायी ठहराती हो। यही नही, राष्ट्रपति के नाम पर किये जाने वाले समस्त कार्यो के लिए केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी होता है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन

भारतीय राष्ट्रपति का कायकाल पद ग्रहण की तिथि से पाच वष है। वह पुन निर्वाचित हो सकता है। राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी को भारत का नागरिक हाना चाहिए। उसकी आयु भी 35 वष स अधिक होनी चाहिए और उसमे ससद क निम्न सदन (लोकसभा) के लिए निर्वाचित होने की योग्यताएँ होनी चाहिए। शासकीय अधिकारियो को राष्ट्रपति नही चुना जा सकता। राष्ट्रपति ससद या किसी राज्य विधानमण्डल का सदस्य नही हो सकता और न भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन लाभ का कोई पद ही ग्रहण कर सकता है। उसका निर्वाचन समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली[8] एव एकल सक्रमणीय मत के आधार पर एक निर्वाचक मण्डल द्वारा होता है जिसमे ससद के दोनो सदना तथा राज्य विधान-परिषदा क निर्वाचित सदस्य होते हैं। विभिन्न राज्यो के प्रतिनिधित्व मे समानता का प्रयास किया गया है[9] तथा समस्त राज्या के मतो एव सम्पूण सघ क मतो म समानता स्थापित की गयी है। इस उद्देश्य हतु राष्ट्रपति क निर्वाचन मे प्राप्त मता का मूल्याकन करने के लिए एक विधि का उल्लेख किया गया है।

राज्य विधानसभा के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य उस राज्य की जनसख्या म निर्वाचित सदस्यो की सख्या का भाग देने पर प्राप्त भजनफल म पुन 1000 का भाग देने पर प्राप्त मतो के बराबर होता है, अर्थात $\frac{\text{राज्य की जनसख्या}}{\text{निर्वाचित सदस्यो की सख्या}} - 1000$।

ससद के एक निर्वाचित सदस्य के मत का मूल्य राज्या के कुल निर्वाचित सदस्या के मता मे दोना सदनो के निर्वाचित सदस्यो का भाग देने पर जो भजनफल आता है उसक

6 अनुच्छेद 78 (ब)।
7 अनुच्छेद 54
8 अनुच्छेद 55
9 अनुच्छेद 55 (1) एव (2)

बराबर होता है। मई 1952 ई म प्रथम राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय निर्वाचक मण्डल के 4057 सदस्यो मे से 3486 ने मतदान मे भाग लिया था। 539 ससद सदस्यो एव 2357 राज्य विधानमण्डलो के सदस्या ने डॉ राजेन्द्रप्रसाद, विजयी प्रत्याशी, को मत दिये थे।

राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति को समानुपातिक पद्धति की सज्ञा दी जाती है, लेकिन यह गलत है। केवल एक प्रतिनिधि का चुनते समय समानुपातिक पद्धति का प्रयोग सम्भव ही नही है। वस्तुत यह वैकल्पिक मत प्रणाली (Alternative Vote System) है। लेकिन डॉ भीमराव अम्बेडकर ने सविधान सभा म राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति के लिए 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व' शब्द के प्रयोग को उचित मानते हुए यह मत व्यक्त किया था कि इस पद्धति के अधीन अल्पसख्यको को भी राज्य के अध्यक्ष के निर्वाचन को प्रभावित करने के उचित अवसर प्राप्त होगे। राष्ट्रपति को केवल बहुमत से ही नहीं चुना जाना चाहिए। अत इस उद्देश्य की प्राप्ति समानुपातिक प्रणाली द्वारा ही सम्भव है।[10] उनके इस मत की सविधान सभा मे ही आलोचना हुई थी। 1952 ई म भारतीय ससद ने राष्ट्रपति एव उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी विधि का निर्माण किया था। इसके अनुसार विजयी प्रत्याशी के लिए कोटा के बराबर मत प्राप्त करना आवश्यक है। कोटा का निर्धारण कुल प्राप्त सही मतो म दो का भाग देने पर प्राप्त भाज्यफल मे 1 जोड देने स होता है। प्रथम बार म ही कोटा के बराबर मत प्राप्त करने पर प्रत्याशी को विजयी घोषित कर दिया जाता है अन्यथा दूसरी पस दगी के आधार पर मत गिने जाते हैं और इस बार मतो की गणना करने पर कोटा के बराबर मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को विजयी घोषित किया जाता है। श्री वी वी गिरि प्रथम गणना म विजयी न होकर दूसरी गणना म निर्वाचित हुए थे। राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवारी शर्तें ससदीय विधि द्वारा कडी की गयी है। अब राष्ट्रपति का नाम ससद एव विधानमण्डल के कम से कम 20 सदस्यो द्वारा प्रस्तावित किया जाना चाहिए। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय यदि कोई राज्य विधानसभा भग है तो इससे राष्ट्रपति के निर्वाचन पर कोई विपरीत प्रभाव नही पडता क्योकि ऐसी दशा म निर्वाचन प्रक्रिया म केवल एक स्थान रिक्त होता है।

राष्ट्रपति त्यागपत्र देकर अपने पद स पृथक हो सकता है। उसे महाभियोग द्वारा दुराचार के लिए भी पदच्युत किया जा सकता है। महाभियोग के नोटिस के 14 दिन पश्चात ही उस पर लोकसभा या राज्यसभा विचार कर सकती है। इस महाभियोग पत्र पर महाभियोग प्रस्तुत करने वाले सदन के एक तिहाई सदस्यो के हस्ताक्षर अपेक्षित हैं। उसे अपने बचाव म सदन मे उपस्थित होने का अधिकार प्राप्त

10 *Constituent Assembly Debates*, Vol VII, p 1017

है। ससद के एक सदन म आरोप प्रस्तुत करने और दूसरे सदन द्वारा आरोप की जाँच किये जाने की व्यवस्था है। यदि दोना सदन—लोकसभा तथा राज्यसभा—प्रस्ताव को अपन कुल सदस्या के दो तिहाई बहुमत से पारित कर देते है तो राष्ट्रपति को अपने पद से पृथक होना पडता है।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ

इ हे निम्न श्रेणिया म वर्गीकृत कर सकते हैं

कायपालक शक्तियाँ—राष्ट्रपति देश की मुख्य कायपालिका है, सशस्त्र सेनाओ का अध्यक्ष है, प्रधानम त्री एव प्रधानम त्री के परामश पर म त्रियो को नियुक्त करता है, अटोर्नी जनरल उसी के द्वारा नियुक्त किया जाता है एव उसी के प्रसाद पय त पदारूढ रहता है। वह म त्रिमण्डल के सदस्यो को गोपनीयता की शपथ दिलाता है और भारत सरकार के सभी निणय उसी के नाम पर लिये जाते हैं। उसे शासन सचालन हेतु आवश्यक नियम एव म त्रिमण्डल मे काय विभाजन सम्ब धी नियम बनाने का अधिकार प्राप्त है।

प्रधानम त्री का यह कर्तव्य है कि वह म त्रिमण्डल के सभी निणयो की राष्ट्रपति को सूचना देता रहे। वह राज्यपाला, सर्वाच्च यायालय एव उच्च यायालयो के यायाधीशो, वित्त-आयोग के सदस्यो, सघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एव सदस्यो परिगणित जाति के विशेषाधिकारी एव परिगणित जाति आयोग को नियुक्त करता है। कुछ विशेष परिस्थितिया मे वह सर्वोच्च यायालय के मुख्य यायाधीश एव अ य यायाधीशो एव उच्च यायालय के यायाधीशो को पद से पृथक भी कर सकता है। सर्वाच्च यायालय द्वारा अपन काय सम्पादन के लिए निर्मित नियमा को वह मा यता प्रदान करता है। राज्याध्यक्ष के रूप म वह विदेशी राजदूता का स्वागत करता है।

कुछ विचारका के अनुसार राष्ट्रपति को युद्ध एव शा ति तथा स धियाँ करने के अधिकार भी प्राप्त हैं क्योकि ये काय कायपालक शक्ति के ही अग हैं। पर तु इसके विपरीत यह तक दिया जाता है कि यह शक्तिया ससद को प्राप्त हैं। सविधान ने स्पष्ट रूप म यह शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान नही की है। इनका उल्लेख केवल सघीय सूची म है और ससद को सघ सूची पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है, पर तु इसका यह अर्थ नही है कि वदेशिक सम्ब धो, युद्ध, शा ति एव स धि का काय ससद को ही सम्पादित करना चाहिए। कायपालिका ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती है कि ससद के लिए युद्ध-घोषणा अनिवाय हो जाय।

राष्ट्रपति को राज्य के स दभ म निर्देशन, निय त्रण एव सम वय की शक्तिया प्राप्त है। सघीय कायपालिका इन उद्देश्यो के लिए राज्या को आवश्यक निर्देश दे सकती है। राष्ट्रीय एव सनिक मार्गों के निर्माण एव इनके निरीक्षण सम्ब धी कार्यो को सघीय सरकार राज्यो को सौपे जाने सम्ब धी तथा रेल माग की रक्षा के लिए राज्यो के अपने-अपने क्षेत्र मे आवश्यक कदम उठाने के लिए आदेश दे

सकती है। राष्ट्रपति राज्यों में समन्वय हेतु एक 'अन्तःराज्यीय-परिषद' की स्थापना कर सकता है। केन्द्र प्रशासित प्रदेशों का प्रशासन राष्ट्रपति का दायित्व होता है, वह प्रशासकों द्वारा उनका प्रशासन कराता है।[11] वह किसी राज्य के राज्यपाल को समीपस्थ केन्द्र प्रशासित प्रदेश का प्रशासक नियुक्त कर सकता है।

विधायी शक्तियाँ—विधायी क्षेत्र में राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। राष्ट्रपति संसद को आहूत, स्थगित एवं विघटित कर सकता है, परन्तु संसद के दो सत्रों में 6 माह से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। वह दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकता है एवं उन्हें सन्देश भेज सकता है। नव निर्वाचन के पश्चात नवीन संसद के प्रथम सत्र एवं प्रति वर्ष के प्रथम अधिवेशन में वह भाषण देता है एवं संसद को आहूत करने के कारणों पर प्रकाश डालता है।

संसद द्वारा पारित समस्त विधेयकों पर वह हस्ताक्षर करता है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के अभाव में कोई विधेयक विधि नहीं बन सकता। वह विधेयक को स्वीकृत एवं अस्वीकृत कर सकता है तथा पुनर्विचार के लिए उस सदन को लौटा सकता है। यदि विधेयक को संशोधन सहित या बिना संशोधन के पुनः पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति के लिए उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करना अनिवार्य होता है। धन विधेयक संसद में विचारार्थ प्रस्तुत करने के पूर्व राष्ट्रपति द्वारा प्रमाणित किये जाते हैं। किसी राज्य के क्षेत्रफल, सीमा एवं नाम परिवर्तन से सम्बन्धित विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।[12] वह दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। वह अध्यादेश जारी कर सकता है।[13] किसी राज्य या प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के पश्चात उस राज्य या प्रदेश का प्रशासन राष्ट्रपति के हाथ में आ जाता है।

वित्तीय शक्तियाँ—बजट सहित समस्त वित्त विधेयकों का संसद में राष्ट्रपति द्वारा प्रमाणित किये जाने के पश्चात ही प्रस्तुत किया जाता है। वित्त आयोग एवं लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों को संविधान के अनुसार संसद के समक्ष प्रस्तुत करना राष्ट्रपति का ही कार्य है। संचित निधि में से व्यय राष्ट्रपति के अधिकार से ही किया जा सकता है। आय-कर एवं अन्य करों से प्राप्त राजस्व में राज्यों के भाग को राष्ट्रपति ही निर्धारित करता है।

न्यायिक शक्तियाँ—राष्ट्रपति को क्षमा प्रदान करने, दण्ड को कम करने या पूर्णरूपेण समाप्त करने का अधिकार होता है। सैनिक न्यायालय द्वारा दिये गये मृत्यु दण्ड को भी वह कम या समाप्त कर सकता है। स्मरणीय है कि संघीय विधि

---

11 अनुच्छेद 239

12 अनुच्छेद 3

13 अनुच्छेद 123

के उल्लघन हेतु प्राप्त दण्ड के सम्बन्ध म राष्ट्रपति को ही क्षमादान आदि का अधिकार प्राप्त है।

सकटकालीन शक्तियाँ[14]—सविधान म तीन प्रकार की आपातकालीन या सकटकालीन स्थितिया का उल्लेख किया गया है—(1) युद्ध या आन्तरिक विद्रोह से उत्पन्न सकट[15], (2) राज्य या राज्या मे सवैधानिक शासनतन्त्र की असफलता के कारण उत्पन्न सकट[16], एव (3) वित्तीय सकट।[17]

युद्ध एव आन्तरिक विद्रोह क कारण या उसकी सम्भावना स यदि देश या उसके किसी भाग को असुरक्षा उत्पन्न हो जाय तो राष्ट्रपति सकट काल की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा को बाद म राष्ट्रपति समाप्त भी कर सकता है। घोषणा को ससद के दोना सदना के समक्ष स्वीकृति हेतु रखना आवश्यक है। यदि ससद के दोना सदना के द्वारा सकटकालीन घोषणा की प्रस्तावो द्वारा पुष्टि नही की जाती है तो वह दो माह के पश्चात स्वत ही निष्प्रभावी हो जाती है। लोकसभा के विघटित होने क पश्चात यदि ऐसी घोषणा की जाती है या घोषणा के दो माह के भीतर लोकसभा विघटित हो जाती है तथा राज्यसभा सकटकालीन घोषणा सम्बन्धी प्रस्ताव पारित कर देती है तो नवनिर्मित लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन के तीस दिन पश्चात घोषणा स्वत ही निष्प्रभावी हो जाती है, यदि लोकसभा द्वारा इसके पूव घोषणा की पुष्टि सम्बन्धी कोई प्रस्ताव पारित नही किया जाता।[18]

इस घोषणा के फलस्वरूप केन्द्र की कायपालिका शक्ति का क्षेत्र राज्यो तक विस्तृत हो जाता है एव वह राज्या का उनकी कायपालिका शक्ति के प्रयोग सम्बन्धी निर्देश दे सकती है। इस प्रकार केन्द्रीय ससद का सघ सूची के अतिरिक्त अन्य विषया के सन्दभ मे विधि बनाने या कर लगाने या केन्द्रीय अधिकारियो को इन अन्य विषयो मे अधिकार देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।[19] 268 स 279 तक के अनुच्छेद स्वत ही निलम्बित हो जाते हैं या राष्ट्रपति के निर्देशानुसार क्रियान्वित होते है।[20] बाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति से राज्यो की रक्षा का दायित्व केन्द्र पर होता है।[21] विभिन्न प्रकार के स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 19) सकट-काल म

14 भाग 18
15 अनुच्छेद 352
16 अनुच्छेद 355
17 अनुच्छेद 360
18 अनुच्छेद 352
19 अनुच्छेद 353
20 अनुच्छेद 354
21 अनुच्छेद 355

निलम्बित हो जाते हैं तथा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका द्वारा इनका अतिक्रमण किये जाने पर सर्वोच्च न्यायालय एव उच्च न्यायालय से इनकी रक्षा का कोई अधिकार प्राप्त नहीं रह जाता है।

राज्यो मे सवधानिक शासनतन्त्र की विफलता—इसके फलस्वरूप द्वितीय प्रकार की सकटकालीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है। राज्य के राज्यपाल से यह प्रतिवेदन प्राप्त होने पर कि सविधान की धाराओ के अनुसार राज्य का शासन नही चल सकता, सम्बन्धित राज्य म राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर दी जाती है और राष्ट्रपति का शासन लागू हो जाता है तथा राज्यपाल के कर्तव्य राष्ट्रपति वहन कर लेता है। राष्ट्रपति को यह घोषणा करने का भी अधिकार है कि विधानमण्डल की शक्तियाँ ससद के अधिकार के अनुसार प्रयुक्त की जायेंगी। राष्ट्रपति को इस प्रकार की घोषणा को प्रभावी करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अधिकार है परन्तु उच्च न्यायालय सम्बन्धी शक्तियाँ राष्ट्रपति स्वय वहन नही कर सकता है और न उच्च न्यायालय सम्बन्धी किसी सवधानिक प्रावधान को निलम्बित ही कर सकता है। इस प्रकार की घोषणा को राष्ट्रपति किसी अन्य परिवर्ती घोषणा द्वारा समाप्त कर सकता है। यह घोषणा प्रारम्भ म 6 माह के लिए की जाती है और 6 6 माह करके इसे अधिकतम तीन वर्ष की अवधि के लिए बढाया जा सकता है।

राष्ट्रपति शासन-काल म राज्य विधानमण्डल की शक्तिया का प्रयोग ससद के आदेशानुसार किया जा सकता है। ससद इन शक्तियो को राष्ट्रपति को प्रदान कर सकती है या इन शक्तियो को वह जिसे चाहे प्रदत्त करने का अधिकार दे सकती है। राष्ट्रपति लोकसभा के सत्रावसान काल मे सचित निधि म से व्यय के लिए धन स्वीकृत कर सकता है परन्तु बाद म ससद द्वारा उसकी पुष्टि आवश्यक है।[22] शासन द्वारा अनुच्छेद 19 के अधीन प्राप्त स्वतन्त्रताओ को इस सकट काल मे निलम्बित किया जा सकता है और न्यायालयो को प्राप्त मौलिक अधिकारो के रक्षा सम्बन्धी अधिकारो को भी निलम्बित किया जा सकता है।[23]

सर्वप्रथम 1951 ई मे पजाब म और उसके पश्चात अनेक राज्यो म राष्ट्रपति शासन लागू किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश मे राष्ट्रपति शासन अभी तक तीन बार लागू हो चुका है।

वित्तीय सकटकालीन घोषणा—यह विश्वास होने पर कि भारत या उसके किसी भाग की वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है, राष्ट्रपति सकट-काल की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति की परिवर्ती घोषणा के द्वारा ऐसी सकटकालीन व्यवस्था निरस्त भी की जा सकती है। वित्तीय घोषणा सम्बन्धी आदेश को ससद के दोनो

22 अनुच्छेद 357
23 अनुच्छेद 358

सदना के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है। वित्तीय सकट-काल म के द्र अपनी काय-पालिका शक्ति के अ तगत किसी भी राज्य का निर्धारित वित्तीय नियमा एव अ य निर्देशा क पालन हेतु आवश्यक निर्देश द सकता है। सर्वोच्च न्यायालया के न्याया-धीशा सहित राज्या एव सघीय कमचारिया क वेतन एव भत्ते कम करन सम्ब धी आदेश राष्ट्रपति द्वारा दिये जा सकत हैं। राज्य विधानमण्डला द्वारा पारित समस्त धन-विधेयका का राष्ट्रपति के विचारार्थ प्रस्तुत करन के आदेश भी दिय जा सकत है।

राष्ट्रपति की स्थिति

भारतीय सवधानिक प्रणाली म राष्ट्रपति की स्थिति को लेकर सविधान के प्रारम्भ स ही गम्भीर विवाद उठ खडा हुआ है। अधिवक्तागण (Lawyers) सवधानिक विधि की सीमाआ के परे देखने म विश्वास नही करते हैं और सविधान की भाषा के आधार पर ही उसकी भावना का भी निर्धारण करत हैं। उनकी दृष्टि म राष्ट्रपति अधिनायक (despot) है तथा सविधान के अ तगत विशेष अवस्थाओ म वह एक अधिनायक या तानाशाह बन सकता है। श्री बनर्जी की दृष्टि म यह अधिवक्ता-वादी दृष्टिकोण अत्यधिक सकीण एव विधिक होता है और अधिकाश सवैधानिक मामला की तरह यह दृष्टिकाण भी तथ्या के विपरीत होता है।[24] इसके ठीक विपरीत राजनीति के यथायवादी विचारका या राजनीति शास्त्रिया का दृष्टिकाण है। इनकी दृष्टि म किसी देश के सविधान का केवल लिखित रूप ही नही होता है। अभिसमय एव परम्पराएँ जा सवधानिक नतिकता के नियम माने जाते हैं, सविधान का अत्यधिक महत्वपूण भाग होत हैं। अत सविधान की व्याख्या करते समय उसके बाह्य रूप का ही नही अपितु प्रशासकीय यथायता (Administrative realities) एव उसकी आन्तरिक कायपद्धति को भी ध्यान मे रखना चाहिए। इस मत का अनेक न्यायशास्त्रियो न भी समथन किया है। अत सविधान को पूणरूपेण सवैधानिक परम्पराआ एव सवधानिक विधि क स दभ म ही समझा जा सकता है। फलत राजनीति के यथाथवादी विचारका की दृष्टि म देश की महत्वपूण राजनीतिक सस्थाओ का अध्ययन करते समय हम सविधान की केवल विशुद्ध विधिक व्यवस्था का ही अध्ययन नही करना चाहिए अपितु प्रयोगा, परम्पराओ, रीति रिवाजो अभिसमया का भी पूरी तरह से ध्यान म रखना चाहिए। य सविधान के अविधिक (non legal) नियम होते हैं, न कि अविधिक (illegal) नियम।

राष्ट्रपति की यथाथ स्थिति जानने के लिए विगत 25 वर्षों म उसके व्यावहारिक स्वरूप का अध्ययन वाछनीय है। पर तु पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नही है जिस पर हम कोई निश्चित निष्कर्ष निर्धारित कर सके। केवल एक बार राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए सघष हुआ है। विगत 25 वर्षीय सवधानिक इतिहास के आधार

24 Banerjee, D N *Some Aspects of Indian Constitution*, 1962, p 94

पर यह कहा जा सकता है कि भूतपूर्व तीन राष्ट्रपतियों एवं वर्तमान राष्ट्रपति ने अपनी शक्तियों की विधिक धारणा को मान्यता नहीं दी है। अपितु वे सभी संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे हैं। संसदीय प्रणाली के मान्य सिद्धान्त के अनुसार कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति के नाम पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल करता है। यही अधिकांश संविधान-निर्माताओं का भी मत था। वे भारतीय राष्ट्रपति को ब्रिटिश क्राउन के समकक्ष मानते थे। संविधान के प्रारूप को प्रस्तुत करते समय डा. भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि "संविधान द्वारा शासन के किस स्वरूप की कल्पना की गयी है? ... भारतीय संघ का अध्यक्ष संघ का राष्ट्रपति नामक पदाधिकारी है। यह नाम हमें संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की याद दिलाता है। लेकिन दोनों के नामों में समानता के अतिरिक्त अमरिका के प्रचलित शासन तथा प्रारूप में प्रस्तावित शासन में कोई समानता नहीं है। दोनों में मौलिक भेद हैं।' अमेरिकी राष्ट्रपति कार्यपालिका एवं प्रशासन का प्रमुख होता है। "प्रारूप के अधीन भारतीय राष्ट्रपति की स्थिति इंगलैण्ड के संविधान के अन्तर्गत राजा जैसी है। वह राज्य का अध्यक्ष है, शासन का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतीक है, राष्ट्र पर शासन नहीं करता। प्रशासन में उसकी स्थिति औपचारिक है। ... भारतीय राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य होगा। वह न तो उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करेगा, न कुछ कर सकेगा। जब तक मन्त्रियों का संसद में बहुमत है, भारतीय राष्ट्रपति को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। अमेरिकी शासन कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के शक्ति पृथक्करण पर आधारित है। (भारतीय) संविधान का प्रारूप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। संसदीय प्रणाली में उत्तरदायित्व पर अधिक बल दिया जाता है। इसकी अपेक्षा असंसदीय प्रणाली में स्थायित्व पर अधिक बल दिया जाता है। प्रारूप समिति ने संसदीय कार्यपालिका के प्रावधान द्वारा स्थायित्व की अपेक्षा उत्तरदायित्व को अधिक महत्त्व दिया है। एक दूसरे अवसर पर डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि 'ऐसा कोई मामला नहीं है जिसके बारे में राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री या उसके मन्त्रिमण्डल के परामर्श के बिना कार्य कर सके।"[26] डा अम्बेडकर के इस मत का कि भारत का संविधान संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है, अनेक सदस्यों ने समर्थन किया था। उदाहरणार्थ, श्री कृष्णमाचारी ने कहा था कि (संविधान) सभा ने राज्यों व केन्द्र में उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को स्वीकार किया है।[27] श्री कृष्णमाचारी ने यह भी कहा था कि संविधान का एक दोष यह बताया गया है कि कहीं भी राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष नहीं कहा गया है, इसमे भविष्य

---

25 *Constituent Assembly Debates* Vol VII, pp 31 33

26 *Ibid*, pp 1157 1160

27 *Ibid*, pp 834-36

म राष्ट्रपति की शक्तिया क बारे म सन्देह उत्पन्न होगा। राष्ट्रपति की स्थिति अमेरिकी राष्टपति की तरह नही है। राष्ट्रपति को तो प्रधानमन्त्री के परामश पर काय करना पडेगा अत वह निरकुश नही हो सकता।"[8] श्री के सन्थानम का मत था कि सविधान सभा ने ससदीय प्रणाली की स्थापना की है और इसी को आधार मानकर सम्पूण सविधान रचा गया है।[29] डॉ राजेन्द्रप्रसाद न जो सविधान सभा के अध्यक्ष थे एव भारत के प्रथम राष्टपति बने, स्वय कहा था कि अमेरिका म कायपालिका एव व्यवस्थापिका दोना ही निर्वाचित होती हैं और दोनो की समान शक्तिया होती हैं। ब्रिटिश प्रणाली म वशानुगत राजा होता है जो सम्मान एव शक्ति का स्रोत है परन्तु वह सभी शक्तिया का उपभोग नही करता। "हमे निर्वाचित राष्ट्रपति एव निर्वाचित कायपालिका मे सम्बन्ध स्थापित करना है और इस प्रयत्न म हमने ब्रिटिश सम्राट की स्थिति को राष्ट्रपति की स्थिति स्वीकार किया है। राष्ट्रपति की स्थिति सवधानिक राष्ट्रपति की है।' राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का परामश मानने के लिए बाध्य है। जहा तक मुझे ज्ञात है सविधान मे ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान नही है कि राष्ट्रपति के लिए प्रधानमन्त्री की राय मानना आवश्यक है। परन्तु यह आशा की जाती है कि इगलैण्ड का राजा जिस प्रकार *अपने मन्त्रियों के परामश पर काय करता है, वही अभिसमय* इस देश मे स्थापित होगा और सविधान के शब्दो के कारण नही अपितु स्वस्थ अभिसमयो के विकास के कारण वह सवैधानिक राष्ट्रपति होगा।[30] भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री प जवाहरलाल नेहरू ने भी समय समय पर यही मत व्यक्त किया है। उनके अनुसार, "*हमारा सविधान अमरिकी प्रणाली पर आधारित नही है अपितु ब्रिटिश प्रणाली पर* आधारित है।'[31] एक दूसरे अवसर पर नेहरू जी ने कहा था कि हमारे दश का सविधान ससदीय प्रजातन्त्र की स्थापना करता है।'[32] इगलण्ड की ब्रिटिश ससदीय प्रणाली से अपने दीघकालीन सम्पक के कारण हम ब्रिटिश ससदीय सस्थाओ की दृष्टि से सोचने के लिए बाध्य थे।[33] हमने *ससदीय प्रणाली का चुनाव जान बूझकर किया* है क्योकि हम इस प्रणाली स पूव परिचित हैं। हमारी दृष्टि म नवीन परिस्थितिया हमारी परम्पराओ के अनुरूप हैं और यह प्रणाली अन्य दशा विशेष कर इगलण्ड म सफलतापूवक चलती रही है।[34] प्रारूप समिति के एक अन्य सदस्य श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुशी ने सविधान सभा म कहा था कि सघीय सविधान समिति के

---

28 *Ibid*, pp 956 57
29 *Ibid* pp 965 66
30 *Ibid*, p 988
31 *Loksabha Debates*, 5th July, 1952
32 *Loksabha Debates* 25th Feb, 1955
33 *Speeches of Jawahar Lal Nehru* Vol VII, 1953 57, p 142
34 *Ibid* pp 155 56

प्रारम्भिक अधिवशना म ही एक-दो सदस्यो के विरोध से यह तय हो चुका था कि हमारा केन्द्रीय शासन ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित होगा और हमने अमेरिकी प्रणाली को अस्वीकार कर दिया था । इगलण्ड की कायपालिका सर्वाधिक शक्तिशाली एव अत्यधिक नमनीय है, कायपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल म निहित है जिसे निम्न सदन का बहुमत प्राप्त होता है तथा सविधान क अधीन वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं।[35] स्पष्ट है कि सविधान सभा ने ससदीय प्रणाली की स्थापना की थी और डॉ अम्बेडकर की दृष्टि म सविधान के अनुसार राष्ट्रपति के लिए मन्त्रिमण्डल के परामर्शानु काय करना बन्धनकारी है ।[36]

समय समय पर राष्ट्रपति की स्थिति के सम्बन्ध म तीव्र विवाद उत्पन्न हु रहे हैं । अवकाश ग्रहण करने के कुछ समय पूव डा राजेन्द्रप्रसाद ने सावजनिक रू से कहा था कि राष्ट्रपति की शक्तियाँ ब्रिटिश सम्राट के समकक्ष मानना सविधान की गलत व्याख्या है । सविधान मे ऐसी कोई धारा नही है जो स्पष्ट शब्दा म मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार ही कार्य करना राष्ट्रपति के लिए आवश्यक बनाती हो । इगलैण्ड की व्याख्या का अनुगमन करना हमारे लिए आवश्यक नही है क्योकि दोना देशा की परिस्थितियो मे अन्तर है ।[37]

उनके द्वारा व्यक्त इन विचारो ने सवैधानिक द्वन्द्व प्रारम्भ कर दिया । परस्पर विरोधी विचार प्रस्तुत किये गये । राष्ट्रपति को सवधानिक अध्यक्ष मानने वालो ने अपने पक्ष म निम्न तक प्रस्तुत किये हैं

(1) वे डॉ अम्बेडकर डा राजेन्द्रप्रसाद एव सविधान सभा के अन्य सदस्यो के उपरोक्त उल्लिखित तर्कों को अपने समर्थन मे उपस्थित करते है ।

(2) मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है [अनु 75 (3)] ।

(3) शासन की नीतियो के लिए राष्ट्रपति लोकसभा के प्रति उत्तरदायी नही है ।

(4) अनुच्छेद 78 के अन्तगत प्रधानमन्त्री का यह दायित्व है कि सघीय प्रशासकीय मामला एव विधान सम्बन्धी निणयो (decisions) की सूचना उसके द्वारा राष्ट्रपति को दी जाय । यहा 'निणय शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि निणय मन्त्रिमण्डल करेगा, न कि राष्ट्रपति ।

(5) राष्ट्रपति को कोई स्वविवेकीय शक्तियाँ प्रदान नही की गयी है [अनुच्छेद

---

35 *Constituent Assembly Debates*, p 984

36 *Ibid* p 974

37 भारतीय विधि सस्थान के उदघाटन-अवसर पर दिया गया भाषण (नवम्बर 28, 1960) ।

74 (1) ।] म त्रिमण्डल का परामश मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य है । स्मरणीय है कि राज्यपाल को अनुच्छेद 163 (2) के अ तगत कुछ स्वविवेकीय शक्तिया प्रदान की गयी है । राष्ट्रपति को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नही है ।

(6) सविधान निर्माता भारत शासन अधिनियम, 1935 एव उसकी काय-पद्धति से प्रभावित थे । भारत शासन अधिनियम, 1935 के अ तगत गवनर जनरल को प्राप्त सभी स्वविवेकीय शक्तिया नवीन सविधान मे राष्ट्रपति को प्रदान नही की गयी है, यद्यपि राष्ट्रपति के स दभ मे यह व्यवस्था स्वीकार की गयी है कि वह म त्रिमण्डल के परामर्शानुसार काय करेगा ।

दूसरे पक्ष अर्थात जो राष्ट्रपति के लिए म त्रिमण्डल का परामश मानना आवश्यक नही मानते, अपने पक्ष मे निम्न तक प्रस्तुत करते है

(1) अनुच्छेद 74 (1) मे यह कहा गया है कि प्रधानम त्री की अध्यक्षता मे एक म त्रि परिषद होगी जो राष्ट्रपति को उसके कार्यो मे परामश देगी । इस या अ य अनुच्छेदो मे यह नही कहा गया है कि राष्ट्रपति के लिए म त्रिमण्डल का परामर्श मानना ब धनकारी है ।

(2) सविधान द्वारा राष्ट्रपति को कुछ ऐसी शक्तिया दी गयी हैं जिनका प्रयोग उसे स्वविवेक से करना चाहिए । उदाहरणाथ—

(क) अनुच्छेद 111 के अनुसार धन विधेयको के अतिरिक्त अ य विधेयको को राष्ट्रपति अस्वीकृत कर सकता है । प्रश्न यह है कि ससदीय प्रणाली म जब म त्रिमण्डल क समथन के बिना कोई विधेयक पारित नही हो सक्ता है, तो फिर राष्ट्रपति को निषेधाधिकार प्रदान करने की क्या आवश्यकता थी ?

(ख) अनुच्छेद 78 (ब) के अनुसार राष्ट्रपति को प्रधानम त्री से सूचना प्राप्त करने का अधिकार है । इस शक्ति को राष्ट्रपति प्रधानम त्री के परामश से प्रयोग नही करेगा ।

(ग) प्रधानम त्री का चुनन का अधिकार राष्ट्रपति को है। किसी दल के स्पष्ट बहुमत के अभाव मे राष्ट्रपति का विवेक ही इस निणय मे निर्णायक हो सकता है ।

(घ) *यदि कोई विधेयक राष्ट्रपति की दृष्टि म नीति निर्देशक तत्वो के विपरीत* है ता वह म त्रिमण्डल के परामश के बिना ही उसे अस्वीकृत कर सकता है।

(ड) राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक पर जो पुन पारित किया गया हो, निषेधाधिकार का प्रयोग नही कर सकता ।[38] इसका अथ यह हुआ कि प्रथम बार किसी विधेयक को अस्वीकार करने की उसको शक्ति वास्तविक है । सविधान द्वारा राष्ट्रपति को निषेधाधिकार देन का यही अथ है कि उसे इस शक्ति का स्वविवेक से प्रयोग करन की स्वत त्रता है ।

---

38 अनुच्छेद 111

(२) ससद के विघटन के पश्चात होने वाले नव निर्वाचनो म मन्त्रिमण्डल के पराजित होने पर मन्त्रिमण्डल द्वारा ससद को पुन विघटित करने सम्बन्धी परामर्श को अस्वीकार करने के लिए क्या राष्ट्रपति स्वतन्त्र नहीं है ? वस्तुत वह मन्त्रिमण्डल की ऐसी अनुचित माँग को अस्वीकार करने की पूर्ण शक्ति रखता है और मन्त्रिमण्डल के निर्माण म भी पूर्ण स्वतन्त्र होगा।

(3) ब्रिटिश सविधान की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। अत ब्रिटिश सविधान अनुसार भारतीय राष्ट्रपति को नाममात्र का अध्यक्ष मानना उचित नहीं है। लिखित सविधान प्रधान देश भारत म अलिखित ब्रिटिश अभिसमयो की कल्पना एव अनुगमन भ्रामक है।

(4) भारतीय राष्ट्रपति निर्वाचित अध्यक्ष है जबकि ब्रिटिश राजा वशानुगत है। निर्वाचित भारतीय राष्ट्रपति को केवल नाममात्र का अध्यक्ष मात्र समझना भूल है।

(5) भारतीय सघीय प्रणाली म राष्ट्रपति से केन्द्र व राज्यो के मध्य समन्वयकर्ता के रूप म प्रभावशाली भूमिका निभाने की आशा की जाती है। यह सम्भव है कि वह इस भूमिका को निभाते समय अपने मन्त्रिमण्डल की राय को स्वीकार न कर सके। उदाहरण के लिए केन्द्र म किसी एक दल का बहुमत है और राज्य या राज्यो म दूसरे दल का। क्या राष्ट्रपति को किसी राज्य म नाममात्र के राजनीतिक कारणो से प्रेरित केन्द्रीय शासन के राष्ट्रपति शासन की स्थापना सम्बन्धी सुझाव को मान लेना चाहिए ? ऐसे अवसरो पर उससे स्वविवेक के प्रयोग की आशा की जाती है।

(6) पिछड़ी तथा परिगणित जातियो की दशा को जाचने के लिए आयोग की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। सविधान म 'as he thinks fit' शब्दो का प्रयोग किया गया है।[39] सविधान निर्माताओ ने इस सम्बन्ध म राष्ट्रपति को स्वविवेकीय शक्ति देना इस कारण आवश्यक समझा था जिससे कि राष्ट्रपति परिगणित जातियो के हितार्थ निष्पक्षतापूर्वक कार्य कर सके। अनुच्छेद 339 म as you think fit शब्दो का प्रयोग नहीं किया गया है। इससे उपरोक्त मत की पुष्टि होती है।

(7) राष्ट्रपति को आन्ध्र प्रदेश एव पजाब के लिए क्षेत्रीय समितिया नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। क्या इस शक्ति का प्रयोग भी उसे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार ही करना चाहिए ?

(8) सविधान म स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति की स्वविवेकीय शक्तियो का उल्लेख

39 अनुच्छेद 340

न होने का यह अथ नही कि उस कोई स्वविवेकीय शक्तिया प्राप्त ही नही है । श्री के एम मुशी के अनुसार राष्ट्रपति सविधान को निष्ठापूवक क्रियान्वित करने तथा उसकी रक्षा एव सुरक्षा को शपथ ग्रहण करता है।[40] अत वह भारत की एकता, कल्याण एव सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। इस दायित्व के निर्वाह के लिए उसे स्वविवेकीय शक्तियाँ प्राप्त है। इसके अतिरिक्त महत्वपूण मामलो मे सर्वोच्च न्यायालय का परामश लेने तथा सकट काल म सविधान के अशो को निलम्बित करने के सन्दभ म उसे स्वविवेकीय शक्तिया प्राप्त हैं। महाधिवक्ता (अटोर्नी जनरल) की नियुक्ति के सम्बन्ध मे उसे स्वविवेकीय अधिकार है।[41]

(9) यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि राज्य की जनसख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उस राज्य म बोली जान वाली किसी भाषा को मान्यता दी जाय तो उस भाषा को उस राज्य या उसके किसी भाग मे शासकीय मान्यता दी जानी चाहिए।[4] स्पष्ट है, राष्ट्रपति का यह शक्ति स्वविवेकानुसार प्रयोग करनी चाहिए।

(10) राष्ट्रपति पर सविधान के उल्लघन के लिए महाभियोग लगाया जा सकता है। प्रश्न यह है कि जब सभी काय राष्ट्रपति मन्त्रि परिषद के परामर्शानुसार करता है तो उस पर महाभियोग लगाने की व्यवस्था ही क्या की गयी है ?

श्री के एम मुशी ने राष्ट्रपति की स्थिति की तकपूण समीक्षा की है। उसका सार निम्नवत है[43]

'सविधान सभा प्रारम्भ स ही ससदीय शासन क पक्ष म थी । सरदार पटेल तथा श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने ससदीय प्रणाली का समथन किया था। केवल श्री के टी शाह अमरिकी ढग की शासन प्रणाली के पक्ष म थ। इस मत को स्वीकार नही किया गया। सविधान सभा का मत था कि मन्त्रीगण बहुमत म से चुन जायँ एव सविधान के अनुसार काय करे। परन्तु यह सब विचार उस समय व्यक्त किय गये थे जब मन्त्रिमण्डल तथा राष्ट्रपति के सम्बन्धो पर विचार नही हो रहा था। [44]

"सविधान सभा का मत था कि राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष नही है। प जवाहरलाल नेहरू ने सविधान सभा मे स्वय कहा था कि हम राष्ट्रपति को फ्रेंच

---

40 उप राष्ट्रपति एव मन्त्रीगण केवल सविधान के अनुसार काय करने की शपथ लेते है। अत राष्ट्रपति और मन्त्रियो की शपथ से दायित्व सम्बन्धी भेद स्पष्ट है।

41 Munshi, K M *President under the Indian Constitution* 1967, p 35

42 अनुच्छेद 347

43 श्री मुशी सविधान सभा के सदस्य एव प्रसिद्ध अधिवक्ता थे । देखिए उनकी पुस्तक '*The President under the Indian Constitution*, (1967)

44 *Ibid* pp 2, 3 and 6

राष्ट्रपति की भाँति नाममात्र का अध्यक्ष नहीं बनाना चाहते। उसका पद महान् शक्ति एवं अधिकार का है।"[45] मुंशी के अनुसार अधिकार (Authority) का अर्थ नाममात्र की सत्ता से नहीं है।"[46]

"डॉ अम्बेडकर भी राष्ट्रपति की स्थिति (position) के बारे में स्थिर एवं स्पष्ट मत नहीं रखते थे। एक अवसर पर उन्होंने भारतीय राष्ट्रपति को इंगलैण्ड राजा के समकक्ष माना था।[47] दूसरे अवसर पर उनके अनुसार राष्ट्रपति नाममात्र अध्यक्ष है एवं मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर ही केवल कार्य करेगा।[48] एक तीसरे अ सर पर डॉ अम्बेडकर ने भारतीय राष्ट्रपति को इंगलैण्ड के राजा की भाँति ती शक्तियों—परामर्श देने, प्रोत्साहित करने एवं चेतावनी देने—के अधिकार से युक्त बताया है।'[49]

"संविधान सभा के अनेक सदस्यों की राय थी कि राष्ट्रपति को अधिक शक्तियाँ दी जा रही हैं।" इसके अतिरिक्त 'डा अम्बेडकर एवं डॉ अल्लादी स्वामी अय्यर के राष्ट्रपति के सम्बन्ध में जो मत है वे उनके व्यक्तिगत मत हैं, न कि संविधान सभा के।"[50]

"संविधान सभा में दो बार यह प्रश्न उठा था कि क्या राष्ट्रपति संविधानानुसार राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल का परामर्श मानने के लिए बाध्य है? स्वयं डा राजेन्द्रप्रसाद ने पूछा था कि क्या राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की राय मानने को बाध्य है? डा अम्बेडकर का मत था कि 'aid and advise' शब्द इस सम्बन्ध में पर्याप्त हैं। फिर भी डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने इस बात पर बल दिया था कि हम संविधान में यह स्पष्ट कर देना इस पर डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि संविधान में राष्ट्रपति सम्बन्धी ment of Instructions (निर्देशों) की व्यवस्था की जायेगी। परन्तु प्रारूप को निर्देशों का विचार स्वीकार्य नहीं था।[51]

"दूसरी बार श्री हरिविष्णु कामथ ने यह मत व्यक्त किया था कि संविध यह कहीं स्पष्ट नहीं है कि राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की राय मानने को बाध्य है। अ

---

45 *Constituent Assembly Debates*, Vol IV, p 734

46 "Authority is something more than command something th combines with reason —Munshi K M *op cit*, p 7

47 *Constituent Assembly Debates*, Vol VII p 32

48 *Ibid*, Vol VIII, p 215

49 *Ibid*, Vol VII, p 1158

50 Munshi K M *op cit*, p 9

51 *Constituent Assembly Debates*, Vol X pp 269 71

डॉ राजेन्द्रप्रसाद ने अपने अन्तिम भाषण म यह कहा था कि कुछ व्यक्ति राष्ट्रपति को अधिक शक्ति देने की शिकायत करते हैं।"

"श्री के एम मुशी के अनुसार सविधान निर्माताओ ने राष्ट्रपति को ब्रिटिश राजा के समकक्ष कभी नही माना था, भले ही भारत मे ब्रिटिश ससदीय प्रणाली को स्वीकार किया हो। अपने मत की पुष्टि मे उन्होने निम्न तक दिये हैं

(क) निर्वाचित भारतीय राष्ट्रपति की स्थिति वशानुगत ब्रिटिश राजा के समान नही हो सकती।

(ख) भारतीय राष्ट्रपति की स्थिति सुस्पष्ट सवैधानिक उपबन्धो पर आधारित है, न कि ब्रिटिश राजा की तरह ऐतिहासिक विकास पर।

(ग) भारतीय राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जा सकता है लेकिन ब्रिटिश सम्राट पर नही।"[53]

श्री मुशी के अनुसार राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का परामर्श केवल कार्यपालक शक्तियो के सम्बन्ध मे ही मानने को बाध्य है। स्वविवेकीय शक्तियो के सम्पादन म मन्त्रिमण्डल का परामश बन्धनकारी नही है। कुछ मामलो म राष्ट्रपति सीधे अर्थात् मन्त्रिमण्डल के परामश विना ही काय कर सकता है, जैसे—

(क) मन्त्रिमण्डल के न होने की अवस्था मे।[54]

(ख) जव राष्ट्रपति परमाधिकार का प्रयोग कर रहा हो।

(ग) जव देश सकट मे हो।

(घ) जब सविधान को खतरा हो।

(ङ) जब शपथ के अनुसार आचरण करना आवश्यक हो।

"सविधान के अनेक उपबन्धो मे राष्ट्रपति की शक्ति एव उसके सन्दभ म ऐसे शब्दा का प्रयोग किया गया है जिनसे राष्ट्रपति म स्वविवेक का निहित होना स्पष्ट होता है। जैसे अनु 123, 347, 352, 356, 357 मे 'is saitsfied' शब्द, 'is of opinion' [अनु 124 (3)], 'consent' (अनुच्छेद 127) 'determine (अनु 128), 'deem necessary [अनु 124 (2)] 'decision' (अनु 103) 'pleasure' [अनु 72 (2)], 'previous sanction' (अनु 304 एव 309) आदि।"

श्री मुशी के अनुसार, "राष्ट्रपति की कुछ शक्तियाँ मन्त्रीमण्डलेत्तर (supra ministerial) हैं। ये ऐसे मामले है जिनम मन्त्रिमण्डल की राय एव परामश पर विश्वास नही किया जा सकता। जैसे—

52 *Constituent Assembly Debates*, Vol XI, p 988

53 *Munshi, K M op cit p 13*

54 लेकिन ऐसी कल्पना नही की जा सकती क्योकि पदत्याग के पश्चात भी मन्त्रिमण्डल नवीन मन्त्रिमण्डल के पद ग्रहण करने तक काय करता रहता है।

(क) सदन का विश्वास प्राप्त न कर सकने वाले प्रधानमन्त्री एव मन्त्रिमण्डल को पदच्युत करने के सम्बन्ध म,

(ख) जनता का सही अर्थों म प्रतिनिधित्व न करने वाली लोकसभा के विघटन के सम्बन्ध म,

(ग) सकट काल म मन्त्रिमण्डल का देश की रक्षा मे असफल रहने पर सर्वोच्च सेनापति की शक्तियो क उपयोग के सम्बन्ध म।'

मुशी का मत है कि राष्ट्रपति को जनता के प्रति एव मन्त्रिमण्डल को ससद के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया है।" अत आवश्यकतानुसार राष्ट्रपति, श्री सथानम क शब्दो मे, सभी शक्तियो का प्रयोग कर सकता है। सविधान निर्माता राष्ट्रपति को राष्ट्रीय एकता की रक्षाथ एव राजनीतिक शक्ति बनाना चाहते थे। उसे वे दलीय व्यवस्था से ऊपर रख कर सविधान के रक्षक का पद देने के इच्छुक थ। उसका प्रधान दायित्व ससदीय लोकतन्त्र को अत्याचारतन्त्र मे परिणत होने स रोकना है।[55]

उपरोक्त विश्लेषण सविधान क उपबन्धो की विधिक एव तकपूर्ण व्याख्या पर आधारित है। व्यवहार मे विगत 25 वर्षों मे राष्ट्रपतियो ने सवधानिक अध्यक्ष की भूमिका निभायी है। प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसाद दश के प्रमुख एव गणमान्य नेता थे। उन्होने अपने राष्ट्रपतित्व-काल म वास्तविक शक्तियो क उपभोग का कभी प्रयत्न नही किया और सदव मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार ही काय किया था। हिन्दू कोड बिल पर उन्होने मन्त्रिमण्डल को अपने निणय पर पुनर्विचार के लिए कहा था। यह मन्त्रिमण्डल का परामर्श था, न कि आदेश। फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल न हिन्दू कोड बिल को अपने मूल रूप म पारित नही किया। डा राजेन्द्रप्रसाद न गम्भीरतापूवक नाममात्र या सवैधानिक अध्यक्ष की भूमिका निभायी थी। यदि मन्त्रिमण्डल स व असहमत रहे तो भी उन्होने मन्त्रिमण्डल—प्रधानमन्त्री—का कभी विरोध नही किया। अत राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद न सवधानिक अध्यक्ष की भूमिका निभाते हुए स्वस्थ अभिसमय का निर्माण किया था। परवर्ती राष्ट्रपतियो डा राधाकृष्णन् डॉ जाकिर हुसन एव श्री वी वी गिरि न उसी का अनुसरण किया है। यह अभिसमय भारत क सविधान की मूल भावना एव सामान्य योजना क अनुरूप ही है। राष्ट्रपति को यथार्थ शक्ति देने का अथ है एक म्यान म दो तलवार (प्रधानमन्त्री एव राष्ट्रपति)। फिर राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित है। प्रत्यक्ष रूप स निर्वाचित एव निरन्तर ससद के प्रति उत्तरदायी शासन-व्यवस्था म अप्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित राज्याध्यक्ष को वास्तविक शक्तियाँ प्रदान करना लोकतन्त्र पर रोक (brake) लगाने क समान होगा। यही नही, भारतवष म जहाँ व्यक्ति-पूजा की परम्परा समाप्त नही हुई है शक्तिशाली राष्ट्रपति का अथ निरकुशतन्त्र के विकास हेतु अवसर प्रदान करना है। जहाँ तक विधेयको की

55 Munshi K M *op cit*, p 26

अस्वीकार करने की शक्ति का प्रश्न है, इसका प्रयोग अभी तक केवल एक वार 1954 ई म किया गया है। 8 माच, 1954 को ससद ने पेप्सू राज्य—पटियाला एव पूर्वी पजाव राज्य सघ—का विनियोग विधेयक पारित किया था। पर तु 7 माच को ही पेप्सू म राष्ट्रपति शासन को समाप्त करने की घोषणा की जा चुकी थी । ससद को उक्त विधेयक पारित करने का अधिकार ही नही था। स्पष्ट है, इस मामले मे राष्ट्रपति न स्वविवेक स निषेधाधिकार का प्रयोग नही किया । यही विघटन की शक्ति के सम्ब ध मे है। श्रीमती इ दिरा गांधी के परामश पर ही राष्ट्रपति गिरि ने लोकसभा को विघटित किया था एव 1971 ई के मध्यावधि चुनाव हुए थे। अत इस सम्ब ध म यह घटना एक अभिसमय है जिसका भविष्य मे पालन किया जायेगा । यह अ य ससदीय देशा मे स्वीकृत परम्परा के भी अनुरूप है।

राष्ट्रपति के सशक्त व्यक्तित्वधारी होने की दशा म स्थिति भिन्न हो सकती है। निर्वाचित प्रतिनिधि होने के कारण वह म न्त्रिमण्डल को अनेक प्रकार से प्रभावित कर सकता है। इसके अतिरिक्त ससद म किसी भी दल के स्पष्ट वहुमत के अभाव म प्रधानम त्री की नियुक्ति मे उसकी भूमिका निश्चय ही निर्णायक हागी। एसी स्थिति म उस प्रधानम त्री क चयन म पर्याप्त स्वत त्रता प्राप्त हा जायगी और वह स्वेच्छा पूवक प्रधानम त्री को चुनकर म न्त्रिमण्डल के सगठन एव स्वरूप को प्रभावित कर सकेगा।

अ त मे निष्कष के रूप म हम यह कह सकते है कि भारतीय राष्ट्रपति वास्त विक कायपालिका नही है। उसका पद सम्मान एव प्रभाव का है। वह अपने दीघ राजनीतिक अनुभव एव सवधानिक शक्तिया से म त्रिमण्डल को परामश व चेतावनी दे सकता है एव उससे सूचना प्राप्त करके प्रभावित कर सकता है। उसका पद सिद्धा त म शक्ति का है पर तु व्यवहार मे प्रभाव (influence) का है, और यह प्रभाव भी अत्य त कारगर एव निणायक है। यदि राष्ट्रपति दलीय दृष्टिकोण का परित्याग करके सवैधानिक कार्यो म पूण निष्पक्षता का प्रदशन करता है तो भारतीय सवधानिक शासनत त्र म वह प्रभावशाली एव सम्मानीय भूमिका निभा सकेगा।

भारतीय के द्रीय मन्त्रिमण्डल

के द्रीय म न्त्रिमण्डल वास्तविक सघीय कार्यपालिका है। राष्ट्रपति को अपने दायित्वो के सम्पादन मे सहायता एव परामश देने के लिए सविधान के अनुच्छेद 74 के अनुसार प्रधानम त्री की अध्यक्षता मे एक म न्त्रिमण्डल की स्थापना की व्यवस्था है। म त्रिमण्डल द्वारा राष्ट्रपति का दिय जान वाले परामश की किसी यायालय द्वारा जाच सम्भव नही है। राष्ट्रपति द्वारा प्रधानम त्री की नियुक्ति एव प्रधानम त्री के परामश पर अ य म त्रियो की नियुक्ति का प्रावधान है । म त्रमण्डल सामूहिक रूप स लोकसभा क प्रति उत्तरदायी होता है। म त्रीगण राष्ट्रपति के प्रसाद पय त ही पदा-

रूढ़ रहते हैं । यदि कोई मन्त्री अपनी नियुक्ति क 6 माह के भीतर ससद क दोन सदनो म से किसी एक सदन की सदस्यता प्राप्त करने म असफल रहता है तो इस अवधि के पूण होते ही उसे मन्त्री पद स हट जाना पडता है ।[56] राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल को अपने पद एव गोपनीयता की शपथ दिलाता है । मन्त्रियो के वेतन एव भत्त समय समय पर ससदीय विधि द्वारा निश्चित किये जाते हैं और जब तक ससद द्वारा इनका निर्धारण न किया जाय उस समय तक की अवधि के लिए सविधान के द्वितीय शड्यूल (Schedule) म इसकी व्यवस्था की गयी थी । 1952 ई म ससद ने मन्त्रियो के वेतन एव भत्ता अधिनियम द्वारा प्रत्येक मन्त्री का वेतन एव भत्ता निर्धारित कर दिया गया है ।

केन्द्रीय मन्त्रि परिषद म तीन प्रकार क मन्त्री होते है ।[57] प्रथम, मन्त्रिमण्डलीय स्तर के मन्त्री । यह अपने विभागो के अध्यक्ष होते हैं और मन्त्रिमण्डल की बठको मे भाग लेते हैं । द्वितीय, राज्य-मन्त्री (Ministers of State) जो कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से किसी विभाग के अध्यक्ष भी होते है परन्तु सामान्यत विभागीय मन्त्री के अधीन काय करते हैं । इन्ह सम्बन्धित मामलो पर विचार के समय मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनो मे आमन्त्रित किया जाता है । ततीय श्रेणी उप मन्त्रियो (Deputy Ministers) की है ।[58] उप मन्त्री विभागीय मन्त्रियो को उनके काय म सहायता देते हैं । इसके अतिरिक्त सचिव भी होते हैं । वे किसी प्रकार की शक्ति का उपभोग नही करते हैं ।

भारत म उप-प्रधानमन्त्री का पद भी रहा है । प्रथम उप प्रधानमन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल थ । उनकी मृत्यु के पश्चात यह पद समाप्त हो गया था । श्री लालबहादुर शास्त्री के प्रधानमन्त्रित्व काल म श्री मोरारजी देसाई को पुन उप प्रधानमन्त्री बनाया गया । श्री मोरारजी देसाई के हटने के पश्चात यह पद पुन समाप्त हो गया है । वस्तुत यह पद तभी निर्मित किया जाता है जब मन्त्रिमण्डल मे

56 इस प्रावधान के अधीन सवश्री डा जान मथाई, सी डी देशमुख चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, श्रीप्रकाश, श्री स्वर्णसिंह, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री एम सी चागला एव श्रीमती इन्दिरा गाँधी को मन्त्री बनाया गया और बाद म वे व्यवस्थापिका के सदस्य निर्वाचित हुए थे ।

57 स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात मन्त्रि परिषद (ministry) एव मन्त्रिमण्डल (cabinet) का भेद इतना स्पष्ट नही था । प्रधानमन्त्री को छोडकर सभी मन्त्रियो का स्तर समान था । 1949 ई म श्री गोपालस्वामी आयगर को मन्त्रिमण्डलीय सगठन के सम्बन्ध म प्रतिवदन दने क लिए आदेश हुए थे । उन्होन इस प्रतिवेदन म मन्त्रियो के वर्गीकरण का सुझाव दिया था । फलत नवीन सविधान के अधीन गठित प्रथम मन्त्रि परिषद (council of ministers) म 14 मन्त्रिमण्डलीय मन्त्री एव 5 राज्य मन्त्री नियुक्त किये गय थ ।

58 भारत के उपमन्त्री ग्रेट ब्रिटेन के ससदीय सचिव या अवर सचिवो (कनिष्ठ मन्त्रियो—Junior Ministers) के समकक्ष होते हैं ।

राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली कोई वरिष्ठ नेता शामिल होता है। उपरोक्त दोना उदाहरण इसका प्रमाण है।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाति भारत मे भी आ तरिक मन्त्रिमण्डल (Inner Cabinet) का विकास हुआ है। प जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व काल मे प्रारम्भ म नेहरू, पटेल, आजाद आन्तरिक मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते थे। सरदार पटेल की मृत्यु के पश्चात मौलाना आजाद का नेहरू पर अपेक्षाकृत प्रभाव अधिक बढ गया था तथा गोविन्दवल्लभ पन्त एव लालबहादुर शास्त्री आन्तरिक मन्त्रिमण्डल के सदस्य बन गये थे। आन्तरिक मन्त्रिमण्डल का कोई सवैधानिक आधार नही है। प्रधानमन्त्री के विश्वस्त एव प्रभावशाली सहयोगी मन्त्रियो की अनौपचारिक बठक एव विचार विमश को ही आ तरिक मन्त्रिमण्डल की सज्ञा दी जाती है। श्री कृष्ण मनन, श्री नन्दा, श्री चह्वाण एव श्री जगजीवनराम समय समय पर आन्तरिक मन्त्रिमण्डल के प्रभावशाली सदस्य रहे हैं। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के काल म स्वर्गीय डी पी धर, स्वर्गीय कुमारमगलम, श्री उमाशकर दीक्षित आन्तरिक मन्त्रिमण्टल के सदस्य रहे है। सामान्यत प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री वित्तमन्त्री एव सुरक्षा मन्त्री आन्तरिक मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते है।

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की सख्या औसतन 15 होती है। मन्त्रिमण्डल विभिन्न समितिया के माध्यम से अपने कार्यों को सम्पादित करता है। दस स्थायी समितिया ह। इनम मुख्य हैं—आर्थिक समिति, भारी उद्योग समिति, सुरक्षा, वैदेशिक, ससदीय एव विधिक मामला सम्बन्धी समितिया, सूचना एव ब्राडकास्टिंग समिति, मानव शक्ति समिति (Man Power Committee), वज्ञानिक समिति तथा नियुक्ति समिति। यह विभिन्न समितिया सम्बन्धित मामलो पर केवल विचार विमश ही नही करती वरन निणय भी लेती है। इनके निणयो को मन्त्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। मन्त्रिमण्डल इन निणयो को सामान्यत स्वीकार कर लेता है। समितियो की अध्यक्षता अधिकाश मामलो मे प्रधानमन्त्री द्वारा ही की जाती है। अत यह समितिया पर्याप्त शक्तिशाली होती हैं। आलोचको का मत है कि ये विभिन्न समितिया मन्त्रिमण्डल की प्रतिस्पर्धी सस्थाएँ बन गयी हैं। यह स्वस्थ परम्परा नही है। विभिन्न समितिया का सगठन एक-सा नही है। नियुक्ति समिति म जहा केवल तीन सदस्य हैं, वहा भारी उद्योग समिति म 12 सदस्य हैं।

काय एव शक्तियाँ

भारतीय मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाति देश की नीति निर्धारित करता है, वित्त पर नियन्त्रण रखता है और व्यापक कायपालक एव प्रशासकीय शक्तिया का उपभोग करता है। यही देश की कायपालिका है।

विभिन्न मामलो से सम्बन्धित सामान्य नीति का निर्माण मन्त्रिमण्डल करता है तथा उनसे सम्बन्धित विभागो एव मन्त्रालय के कार्यों का समन्वय करता है।

विधायी कायक्रम को निर्धारित करता है। अधिकाश विधेयक मन्त्रियो द्वारा ही प्रस्तावित किये जाते हैं। लोकसभा म मन्त्रिमण्डल का बहुमत होता है अत मन्त्रिमण्डल के सहयोग के अभाव म व्यक्तिगत सदस्या के द्वारा प्रस्तुत विधयको का पारित होना कठिन ही नही वरन असम्भव होता है। वित्त विधेयको पर मन्त्रिमण्डल को एकाधिकार प्राप्त है। वार्षिक बजट—आय व्यय प्रपत्र—मन्त्रिमण्डल के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। नवीन करा एव पुराने करा के उन्मूलन सम्बन्धी प्रस्ताव भी मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किय जाते हैं। देश की विदश नीति को भी मन्त्रिमण्डल ही निर्धारित करता है। देश क सम्पूण प्रशासनिक ढाचे पर मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण होता है। राष्ट्रपति के नाम पर की जाने वाली नियुक्तियाँ मन्त्रिमण्डल के द्वारा ही प्रस्तावित की जाती हैं अर्थात राज्यपाल विदेशो म राजदूत, सभी आयोगा क अध्यक्षो एव सदस्यो की नियुक्तियाँ मन्त्रिमण्डल द्वारा की जाती हैं।

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व

भारतीय मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसका यह अथ है कि मन्त्रिमण्डल अपने पद पर लोकसभा के प्रसाद-पयन्त ही रह सकता है। भारत मे उत्तरदायित्व का आधार सविधान है।[59] मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व निम्न प्रकार के हैं

(1) सामूहिक उत्तरदायित्व अर्थात ससद क प्रति सम्पूण मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व। मन्त्रिमण्डल व्यवहार म लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। राज्यसभा म यदि मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित कोई विधेयक गिर जाता है तो मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देने की आवश्यकता नही है। परन्तु लोकसभा किसी प्रस्ताव यदि अस्वीकृत कर देती है या मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पा कर देती है या किसी विभाग की अनुदान माग को अस्वीकृत कर देती है, तो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडता है। सम्पूण मन्त्रिमण्डल एक साथ पद ग्रहण करता है और एक साथ पद त्याग करता है। एक मन्त्री के प्रति अविश्वास का अर्थ सम्पूण मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास होता है। एक मन्त्री द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव मन्त्रिमण्डल का प्रस्ताव माना जाता है। यही कारण है कि नीति विपयक मामलो पर सम्पूण मन्त्रिमण्डल विचार करता है। यदि कोई मन्त्री मन्त्रिमण्डल की नीति से

---

59 अनुच्छेद 75। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का आधार भारत म सविधान है जबकि ग्रेट ब्रिटेन कनाडा, आस्ट्रेलिया एव दक्षिणी अफ्रीका के सविधान उत्तरदायित्व क सम्बन्ध मे मौन है। इन देशों म मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व अभिसमय पर आधारित हैं। इसके विपरीत आयर गणराज्य, चतुथ एव पचम फ्रेंच गणराज्य, जापान, बर्मा एव यूगोस्लाविया के सविधानो म उत्तरदायित्व का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

असहमत होता है तो उसको तुर त पद-त्याग कर देना चाहिए ।[60] यदि म त्री पद-त्याग नही करता है तो उस उस नीति का समथन करना चाहिए । किसी म त्री द्वारा साव-जनिक रूप से एसा कोई वक्तव्य नही दिया जा सकता जो म त्रिमण्डल की स्वीकृत नीति के विपरीत हो । न वह अपने सहयोगियो से परामश किये बिना शासन की ओर से कोई आश्वासन ही दे सकता है । यदि कोई म त्री शासन की नीति मे असहमत है तो प्रधानम त्री उसे त्यागपत्र देकर पद से पृथक हो जाने के लिए कह सकता है ।[61]

(2) सामूहिक उत्तरदायित्व का यह तात्पय भी नही है कि म त्रिमण्डल किसी म त्री के अनुचित एव कुशासन सम्ब धी कार्यों का समथन करे और न म त्री के किसी भ्रष्ट आचरण के लिए सम्पूण म त्रिमण्डल उत्तरदायी ही होता है।[62] यह म त्री का व्यक्ति गत उत्तरदायित्व होता है पर तु सविधान मे इसका स्पष्ट उल्लेख नही है। म त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रकट होने पर प्रधानम त्री लोकसभा को विघटित करने तथा नवीन निर्वाचन की माग कर सकता है जिसे राष्ट्रपति को स्वीकार कर लेना चाहिए । यदि नवीन निर्वाचनो म म त्रिमण्डल को पुन बहुमत प्राप्त हो जाता है तो वह पदा-रूढ रहता है अ यथा उसे पद-त्याग करना पडता है ।

(3) इसके अतिरिक्त म त्री राष्ट्रपति के प्रसाद-पय त ही अपन पद पर रह सकते हैं । राष्ट्रपति किसी भी म त्री को पदच्युत कर सकता है ।[63] यह विधिक स्थिति है । व्यवहार म ऐसी स्थिति के उत्प न होने की कोई सम्भावना नही है । कोई भी राष्ट्रपति बहुमत द्वारा समर्थित म त्री से प्रधानम त्री के परामश के बिना त्यागपत्र देने अथवा पदत्याग सम्ब धी आदेश नही दे सकता । यदि राष्ट्रपति इसके विपरीत काय करता है तो सवैधानिक सकट के उत्प न होने की हर सम्भावना रहती है । इस व्यवस्था का केवल यही एक व्यावहारिक मूल्य है कि म त्रिमण्डल का यदि कोई सदस्य प्रधान

---

60 श्री वी वी गिरि ने श्रम यायालय के निणय से असहमत होने के कारण तथा सी डी देशमुख ने बम्बई के प्रश्न पर के द्रीय म त्रिमण्डल से त्यागपत्र दिये थे । श्री सुब्रह्मण्यम एव श्री अलगेसन ने (फरवरी 1965 ई) भाषा के प्रश्न पर त्यागपत्र दिये थे । पर तु बाद म इन दोनो ने अपन त्यागपत्र वापस ले लिये थे और अपने पदो पर बने रहे थे ।

61 सवश्री षणमुख चट्टी, जॉन मथाई, श्यामाप्रसाद मुकर्जी के सी नियोगी, एच सी भाभा, मोहनलाल, अजितप्रसाद जन एव कृष्ण मेनन ने प्रधानम त्री के सकेत पर त्यागपत्र दिये थे ।

62 मूदडा काण्ड के लिए श्री टी टी कृष्णमाचारी न अपने को उत्तरदायी मानते हुए व्यक्तिगत रूप से त्यागपत्र दिया था ।

63 इसका एक अर्थ यह भी है कि म त्री लोकसभा के विघटित हो जाने के पश्चात भी म त्री रह सकत है । म त्रिमण्डल अपने पद से पदच्युत होने या त्यागपत्र दने पर ही हटता है ।

मन्त्री की आज्ञा का पालन नही करता तो प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति को ऐसे मन्त्री को पदच्युत करने का परामर्श दे सकता है।

(4) राष्ट्रपति के नाम पर किये जाने वाले सभी कार्यों के लिए मन्त्रिमण्डल का विधिक उत्तरदायित्व होता है। अनुच्छेद 77 (2) के अधीन राष्ट्रपति के नाम पर दिये जाने वाले आदेश एव निर्देश राष्ट्रपति द्वारा इस सम्बन्ध म निर्मित नियमो के अधीन अधिकृत होते हैं और इस आधार पर उनके विरुद्ध आपत्ति नही की जा सकती कि वे राष्ट्रपति द्वारा जारी नही किये गये हैं। अनुच्छेद 361 के अनुसार राष्ट्रपति के कार्यों को राष्ट्रपति के नाम पर सम्पादित करने के लिए भारत सरकार उत्तरदायी है। इन उपबन्धो के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के कार्यों के लिए विधिक रूप से उत्तरदायी होते है। ग्रेट ब्रिटेन म राजा के नाम पर दिया गया आदेश तभी वैध माना जाता है जब किसी मन्त्री द्वारा उस पर प्रति हस्ताक्षर किये गये हो। स्पष्ट है कि ब्रिटिश राजा मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर काय करता है। भारतीय सविधान द्वारा स्पष्ट रूप से विधिक उत्तरदायित्व निर्धारित नही किया गया है परन्तु 'Aid and Advice' शब्दो का प्रयोग करके तथा अनुच्छेद 77 (2) एव 361 की व्यवस्था करके सविधान निर्माताओ ने विधिक उत्तरदायित्व को सुनिश्चित कर दिया है।[64]

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व पर डॉ अम्बेडकर के विचार निम्नवत हैं 'हमारे सविधान मे सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को स्थान दिया गया है। अत प्रधान मन्त्री के ऊपर किसी ऐसे व्यक्ति को जो किसी विशिष्ट समुदाय का सदस्य हो अथवा प्रधानमन्त्री और उसके दल के नीति विषयक मूल सिद्धान्तो से असहमत सदस्य को थोपना उचित नही होगा। किसी भी अवस्था म राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के परामर्श के बिना काय नही कर सकता। सामूहिक उत्तरदायित्व की रक्षा दो सिद्धान्तो के पालन से सम्भव है। प्रथम कोई भी व्यक्ति बिना प्रधानमन्त्री के परामर्श के मन्त्री नियुक्त नही किया जाना चाहिए। द्वितीय यदि प्रधानमन्त्री किसी मन्त्री से पदच्युत करने की माग करता है तो उसे मन्त्री नही बना रहना चाहिए। सामूहिक उत्तरदायित्व के आदर्श की उपलब्धि तभी सम्भव है जबकि मन्त्रियो की नियुक्ति एव उनको पदच्युत करना प्रधानमन्त्री का अधिकार हो। प्रधानमन्त्री यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मन्त्री नियुक्त करता है जो उसके योग्य नही है तो व्यवस्थापिका

---

64 सविधान सभा म यह प्रस्ताव किया गया था कि राष्ट्रपति के लिए निर्देश नियमावली होनी चाहिए और प्रधानमन्त्री द्वारा 1935 ई के भारत शासन अधिनियम की तरह मन्त्रिमण्डल म अल्पसंख्यक सदस्यो को शामिल करने पर बल देने का सुझाव दिया गया था। इसी सन्दर्भ म डा अम्बेडकर ने सामूहिक उत्तरदायित्व की व्याख्या की थी। सौभाग्य से यह प्रयत्न असफल रहा। यदि यह नियम स्वीकृत हो गया होता तो सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त ध्वस्त हो जाता और मन्त्रिमण्डल की स्थिति केन्द्रीय न रहती।

अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उस प्रधानमन्त्री एव मन्त्री दोनो स ही मुक्त हो सकती है ।[65]

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का विकास इगलैण्ड मे हुआ है । इस सिद्धान्त के फलस्वरूप ब्रिटिश राजा के वे मन्त्री जो उसके ही प्रति उत्तरदायी होते थे, राष्ट्र के सेवक बन गये हैं । पहले व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का विकास हुआ है । भारतीय सविधान निर्माता इस सम्बन्ध मे ग्रेट ब्रिटेन से ही प्रभावित थे ।

भारत मे सामूहिक मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के क्रियान्वयन के सम्बन्ध म श्री के वी राव का कथन है कि "वीमर सविधान (Weimer Constitution) के जनक प्रूज (Pruesz) के इस मत को भारत ने सिद्ध कर दिया है कि सामूहिक उत्तरदायित्व एक भ्रम (myth) है । मन्त्रियो की अनेक ऐसी व्यक्तिगत भूलो को, जिनके फलस्वरूप इगलैण्ड मे मन्त्रियो को त्यागपत्र प्रस्तुत करने पडते, प्रधानमन्त्री ने यह कह कर कि वे उनकी पूरी जिम्मेदारी वहन करते है, हवा म उडा दिया है । प्रधानमन्त्री के इस प्रकार कहने का यह अर्थ हुआ कि यह मामला प्रधानमन्त्री अर्थात मन्त्रिमण्डल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है और लोकसभा के बहुमत का प्रयोग मामले पर भावी विवाद को रोकने के लिए किया जायेगा ।"[66] "इगलैण्ड मे सामूहिक उत्तरदायित्व विभिन्न परिस्थितिया एव शक्तिया का परिणाम है, न कि उनके कारणो का, परन्तु भारत मे हमने घोडे के आगे गाडी लगा दी है ।" अर्थात यहा सामूहिक उत्तरदायित्व के विकास की परिस्थितियो का अभाव है ।[67]

डॉ राव के उपरोक्त मत को पूणरूपेण स्वीकार नही किया जा सकता । सामूहिक उत्तरदायित्व की जिन परिस्थितियो एव शक्तियो की ओर वे सकेत कर रहे हैं वे है भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एव उसका इतिहास, जिसका परिणाम है भारत की स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र भारत का लोकतन्त्रीय गणतन्त्रात्मक सविधान । सविधान मे ससदीय प्रणाली को स्वीकार किया गया है और ससदीय प्रणाली की सर्वाधिक सशक्त विशेषता सामूहिक उत्तरदायित्व है । इसका स्पष्ट उल्लेख सविधान म किया गया है । राष्ट्रपति के सहायताथ एव सहयोग के लिए मन्त्रिमण्डल होगा और वह सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा—यह उपबन्ध ही ससदीय प्रणाली की स्थापना करता है । सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार हमारा सविधान सघीय होते हुए भी ससदीय प्रणाली की स्थापना करता है इगलैण्ड की भाति भारत म भी कायपालिका व्यवस्थापिका के नियन्त्रण मे काय करती है । राष्ट्रपति नाममात्र की सवधानिक कायपालिका है । वास्तविक कायपालिका शक्तिया मन्त्रिमण्डल मे निहित हैं । अत

65 *Constituent Assembly Debates*, Vol VII, pp 1157 58

66 जीप एव तयार मकानो का घाटाला सम्बन्धी मामला पर इसी प्रकार आवरण डाला गया था ।

67 Rao, K V *Parliamentary Democracy in India* pp 70 71

भारतीय संविधान में ब्रिटेन की भाँति ही संसदीय प्रणाली है और मन्त्रिमण्डल, जिसमें व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाँति एक कड़ा एवं बक्सुआ है जो व्यवस्थापन अंग को कार्यपालिका से जोड़ता है मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापिका के बहुमत का विश्वास प्राप्त होने के कारण दोनों ही विधायी एवं कार्यपालक दायित्वों पर उसका नियन्त्रण होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य चूँकि मूल बातों में एकमत होते हैं और सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं अतः नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों का वे ही निर्धारण करते हैं।[68]

समीक्षा—भारतीय मन्त्रिमण्डल भी इंगलैण्ड की भाँति अभिसमय या विकास का परिणाम है। संविधान मन्त्रि परिषद अर्थात् काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स (Council of Ministers) का विधान करता है। मन्त्रि-परिषद (ministry) में सभी प्रकार के मन्त्री होते हैं। 'Cabinet' शब्द का प्रयोग संविधान में कहीं नहीं किया गया है। 1952 ई. के प्रथम निर्वाचन के पश्चात् प्रथम बार प्रधानमन्त्री पं. नेहरू ने 14 मन्त्रिमण्डलीय मन्त्रियों की नियुक्ति की थी।

यद्यपि मन्त्रिमण्डल एक अतिरिक्त संवैधानिक विकास है परन्तु यह भारतीय संवैधानिक प्रणाली का आधार है। यह सर्वोच्च नीति निर्देशक शक्ति है। यह नीति-निर्माता एवं कार्यपालिका विभागों के कार्यों का समन्वयकर्ता एवं विधानमण्डल का मार्ग-दर्शक है। मन्त्रिमण्डल का एक निकाय के रूप में अधिवेशन होता है। इंगलैण्ड की भाँति भारत में भी मन्त्रि-परिषद की कभी बैठक नहीं होती और न वह नीति निर्माण ही करती है। अतः मन्त्रिमण्डल एक बड़े वृत्त (मन्त्रि-परिषद) के भीतर एक लघु वृत्त है। यह शासन की चालक एवं निर्देशक शक्ति है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 एवं 75 के द्वारा उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी है। परन्तु ये सांविधानिक उपबन्ध अपूर्ण हैं। एक प्रश्न अभिसमय एवं परम्पराओं द्वारा निर्णीत किये जाने के लिए रह गया है। यह कमी नहीं है अपितु गुण ही है। अभिसमयों के विकास के फलस्वरूप मन्त्रिमण्डलीय कार्यपद्धति में अवसर एवं परिस्थितियों के फलस्वरूप नमनीयता ही आयेगी।

भारतीय मन्त्रिमण्डल की विशेषताएँ ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के समान ही हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व, गोपनीयता एवं राजनीतिक एकरसता के सिद्धान्त पर मन्त्रिमण्डल आधारित है। मन्त्रिमण्डल के अधिवेशन गुप्त होते हैं कार्यवाही भी गुप्त होती है, सभी सदस्यों को मन्त्रिमण्डल के अधिवेशन में अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु वे उसका सार्वजनिक रूप से उल्लेख नहीं कर सकते। प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता होता है और मन्त्रिमण्डल का विधानमण्डल से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। पण्डित नेहरू के प्रथम मन्त्रिमण्डल में अनेक स्वतन्त्र एवं निर्दलीय सदस्य

68 *Rai Saheb Ram Jawaya Kapur & Others v The State of Punjab*, 1955, 2 SCR, pp 230 37

थे। व काग्रेस दल के सदस्य नही थे—जैसे श्री अम्बेडकर, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, सरदार बलदेव सिंह, गोपालस्वामी आयगर एव षणमुख चेट्टी। देश के विभाजन के तुरन्त बाद पुनर्निर्माण के लिए इस प्रकार की व्यापक एक प्रकार स राष्ट्रीय सरकार, की राष्ट्रीय एकता हेतु आवश्यकता भी थी पर तु इसके पश्चात मं त्रिमण्डल म राज नीतिक एकरूपता निर तर पायी गयी है। 1962 ई के चीनी आक्रमण के सकटपूण समय म भी श्री नेहरू न अनेक सुभावो के बावजूद भी मं त्रिमण्डल को राष्ट्रीय सरकार का रूप प्रदान नहीं किया था।

यह कहा जाता है कि योजना आयोग एव राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना स मन्त्रिमण्डल की शक्तिया एव स्थिति पर प्रभाव पडा है। योजना आयोग को सुपर केबिनेट, आर्थिक मं त्रिमण्डल आदि की सज्ञा दी जाती है। भूतपूव वित्त-सचिव का यह कथन है कि योजना आयोग अत्यधिक शक्तिशाली हो गया है तथा निर तर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के दायित्वो एव शक्तियो का अतिक्रमण करता रहता है। श्री ए के च द्रा ने इसी मत का समथन करते हुए कहा था कि योजना आयोग की स्थिति मं त्रिमण्ड लीय व्यवस्था क अनुरूप नही है। आलोचको का यह भी मत है कि राष्ट्रीय विकास परिषद के द्रीय मन्त्रिमण्डल की शक्तिया का अपहरण कर रही है। पर तु ये तक अतिशयोक्तिपूण है। राष्ट्रीय विकास परिषद के द्र एव राज्यो के मध्य विचार विमश का एक फोरम मात्र है। योजना आयोग की कोई सविधिक (statutory) या सव-धानिक स्थिति नही है। इसकी स्थापना कायपालिका क आदेश पर हुई है।

भारतीय प्रधानमन्त्री

प्रधानम त्री मन्त्रिमण्डल का प्रधान तथा के द्रीय शासन का प्रमुख है। सिद्धा त म मन्त्रियो की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है पर तु वास्तव म वे प्रधानम त्री द्वारा ही नियुक्त किय जात ह। प्रधानम त्री के चुनाव को राष्ट्रपति केवल स्वीकृति प्रदान करता है। मन्त्रियो को पदच्युत करने की शक्ति भी व्यवहारत प्रधानम त्री म ही निहित है। सविधान के अनुसार राष्ट्रपति को मं त्रियो को पदच्युत करने का अधिकार है पर तु इस अधिकार का प्रयोग वह प्रधानम त्री के परामश पर करता है। अत मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को नियुक्त एव पदच्युत करने के अधिकार प्रधानम त्री को ही प्राप्त है। भारतीय प्रधानम त्री ब्रिटिश प्रधानम त्री की भाति, लास्की के शब्दो म, मन्त्रिमण्डल क निर्माण, जीवन एव मत्यु के सम्ब ध म के द्रीय स्थिति रखता है। वह मन्त्रिमण्डल के निमाण के अतिरिक्त उसक सदस्यो मे परिवतन भी कर सकता है। प्रधानम त्री का त्यागपत्र मं त्रिमण्डल का त्यागपत्र होता है। वह लोकसभा के विघटन की माँग कर सकता है।[69]

---

69 श्रीमती इ दिरा गा धी ने 1970 ई म ससद क विघटन की माग की थी जिसे राष्ट्रपति ने स्वीकार किया था।

भारतीय प्रधानमन्त्री ससदीय प्रणाली का केन्द्र बिन्दु एव आधार स्तम्भ है। डॉ अम्बेडकर के अनुसार प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल रूपी महराब का आधार प्रस्तर है।[70] ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध म कहे गये सभी कथन भारतीय प्रधानमन्त्री पर पूर्णरूपेण लागू होते हैं।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

सविधान के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री की नियुक्ति की व्यवस्था है परन्तु राष्ट्रपति लोकसभा म बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित करता है। यह अभिसमय भारत म भी मान्य हैं। विगत 24 वर्षों म भारतीय ससद म कांग्रेस दल का बहुमत रहा है अत इस काल म कांग्रेस दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता रहा है। प जवाहरलाल नेहरू प्रथम, द्वितीय एव तृतीय निर्वाचनो के पश्चात प्रधानमन्त्री बने थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात वे देश के प्रधानमन्त्री बने और मृत्युपर्यन्त इस पद पर बने रहे। उनके बाद श्री लालबहादुर शास्त्री एव श्रीमती इन्दिरा गान्धी क्रमश प्रधानमन्त्री बने। लोकसभा म स्पष्ट बहुमत की अवस्था म प्रधानमन्त्री की नियुक्ति म राष्ट्रपति को कोई अधिकार प्राप्त नही है। उसे अनिवार्यत बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त करना पडता है परन्तु लोकसभा मे स्पष्ट बहुमत के अभाव म राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री का अपनी इच्छानुसार चयन का अवसर प्राप्त हो जाता है। सविधान इस सम्बन्ध मे मौन है कि राष्ट्रपति लोकसभा के सदस्यो मे से एव लोकसभा के बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री चुनेगा। लेकिन सविधान के इस मौन का कोई महत्व नही है। ब्रिटेन म 1923 ई के पश्चात लोकसभा के सदस्य एव नेता को ही प्रधानमन्त्री नियुक्त करने की परम्परा स्थापित हुई है। यह लोकतन्त्रीय सिद्धान्त के अधिक अनुरूप ही है। भारत मे हम इसी परम्परा को मान्यता देनी चाहिए। क्या किसी एसे व्यक्ति का जो लोकसभा का सदस्य न हो प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाय? क्या यह उचित होगा? क्या यह ससदीय प्रणाली के अनुरूप है? यद्यपि राज्यो म मुख्यमन्त्री के पद पर उच्च सदन के मनोनीत सदस्यो एव ऐसे व्यक्तियो को मुख्यमन्त्री बनाया गया है जो कि विधानमण्डल के किसी भी सदन के सदस्य नही थे लेकिन यह स्वस्थ परम्परा नही है। अत प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध मे इस अलोकतान्त्रिक परम्परा का अनुगमन नही होना चाहिए। किसी ऐसे व्यक्ति को जो जनता का प्रतिनिधि न हो, प्रधानमन्त्री नियुक्त करना उचित नही होगा और न सविधान की एसी इच्छा ही है।

---

70 'The Prime Minister is really the keystone of the arch of cabinet'—Dr B R Ambedkar *Constituent Assembly Debates*, p 1159 स्मरणीय है, लार्ड मोर्ले ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध म यही मत व्यक्त किया है।

प्रधानमन्त्री के कार्य एवं दायित्व

प्रधानमन्त्री को व्यापक शक्तियां एवं दायित्व प्राप्त हैं। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को कभी कभी एक तानाशाह की सज्ञा दी जाती है। उदाहरणार्थ, ग्रीव्स का कथन है कि प्रधानमन्त्री की औपचारिक शक्तियां निरंकुश शासक से मिलती है।[71]

वह शासन का निर्माण करता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का चुनाव करता है। मन्त्रिमण्डल के आकार को निश्चित करता है। प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के चयन में स्वतन्त्र नहीं होता—उस पर अनेक व्यावहारिक प्रतिबन्ध होते हैं। प. जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्ति को भी अपने मन्त्रिमण्डल की सदस्यता निर्धारित करते समय अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता था। दलीय एकता, प्रशासनिक कुशलता, क्षमता, योग्यता तथा क्षेत्रीय, भाषायी, जातीय एवं अल्पसख्यकों के प्रतिनिधित्व को सदैव ध्यान में रखना पड़ता है। प्रधानमन्त्री को दल के वरिष्ठ एवं प्रभावशाली सदस्यों को मन्त्रिमण्डल में अनिवार्यतः शामिल करना पड़ता है। पुराने मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यों को भी उसे शामिल करना पड़ता है। भारतीय मन्त्रिमण्डलों के कुछ सदस्य तो निरन्तर कई मन्त्रिमण्डल के सदस्य रहे हैं। श्री जगजीवनराम 1947 ई. से केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सदस्य हैं। विभागों का वितरण भी भारतीय प्रधानमन्त्री ही करता है परन्तु उसे वरिष्ठ एवं प्रभावशाली सहयोगियों की स्थिति को ध्यान में रख कर ही विभागों का वितरण करना पड़ता है। श्री वल्लभभाई पटेल एवं मोरारजी देसाई को प. जवाहरलाल नेहरू एवं श्री लालबहादुर शास्त्री ने क्रमशः अपने मन्त्रिमण्डल में उप प्रधानमन्त्री का पद प्रदान किया था।

प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है। वह मन्त्रिमण्डल की अधिकांश समितियों की भी अध्यक्षता करता है। मन्त्रिमण्डल के विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने वाले मामलों को तय करता है। प्रत्येक मन्त्री किसी प्रस्ताव को मन्त्रिमण्डल के विचारार्थ उपस्थित करने के पूर्व उससे परामर्श करता है। वह विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। शासन के विभिन्न कार्यों का वह निरीक्षण करता है। मन्त्रिमण्डल के हर कार्य के लिए अन्ततः प्रधानमन्त्री ही उत्तरदायी होता है।

प्रधानमन्त्री लोकसभा का नेता होता है। इंगलैण्ड में प्रधानमन्त्री इस दायित्व को किसी अन्य मन्त्री को भी सौंप सकता है। लेकिन उत्तरदायित्व प्रधानमन्त्री का ही रहता है। ससद में वह शासन का प्रमुख वक्ता होता है। प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में उसका मत शासन का मत माना जाता है। श्री कृष्णमेनन के अनुसार, प. नेहरू जब ठीक एवं उचित समझते थे विभिन्न विभागों के बारे में ससद में स्पष्टीकरण हेतु हस्तक्षेप करते थे। कभी-कभी इससे सम्बन्धित मन्त्रियों को दुविधा भी होती थी। व

---

71 "The formal powers of the Prime Minister of England resemble closely those of an autocrat"—Greaves *The British Constitution* 1951, p 74

विरोधी दल के प्रति याय की भावना स प्रेरित होकर अधिक सहिष्णु हो जाते थे। जब व समभते थे कि प्रश्नो का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा रहा है वे स्वय अपने सहयोगियो स पूछ जान वाले प्रश्नो का उत्तर देने लगते थ।'

प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति एव मन्त्रिमण्डल के मध्य कडी है। वह मन्त्रिमण्डल के सभी निणयो से राष्ट्रपति को सूचित करता है, एव उस विधि प्रस्तावो की सूचना देता है। राष्ट्रपति द्वारा मांगी गयी सूचनाओ एव विधि प्रस्तावो को वह उसके विचाराथ प्रस्तुत करता है तथा एक मन्त्री के निणय का राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिमण्डल के विचाराथ उपस्थित करने की माँग का प्रधानमन्त्री ही क्रियान्वित करता है।[2] कोई मन्त्री राष्ट्रपति का बिना प्रधानमन्त्री की अनुमति के कोई सूचना प्रेषित नहीं कर सकता। प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति का सर्वोच्च सलाहकार होता है।

वह शासन के महत्वपूण पदो—राज्यपाल मन्त्री राजदूतो, वाणिज्य दूतो, मन्त्रियो, विभिन्न आयोगो के अध्यक्षो एव सदस्यो को नियुक्त करता है।

वह विदेश नीति का निमाता होता है। युद्ध एव शान्ति सम्बन्धी मामलो म उसका निणय अन्तिम होता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे वह देश का प्रतिनिधित्व करता है।

स्थिति

प्रधानमन्त्री का पद सर्वोच्च है। वह समकक्षो म प्रथम होता है। प जवाहर लाल नेहरू एव श्रीमती इन्दिरा गाधी तो अपने मन्त्रिमण्डल के नेता ही नहीं अपितु स्वामी हैं। मन्त्रिमण्डल मे उसकी स्थिति प्रमुख एव प्रधान है। प्रधानमन्त्री राष्ट्र का नेता एव मागदशक होता है। वह देश की राजनीति का सूत्रधार है। लेकिन वह निरकुश शासक नहीं है। उसकी शक्ति सविधान द्वारा मर्यादित है। फिर भी उसे व्यापक शक्तियां प्राप्त है एव उसकी स्थिति प्रभावपूण होती है। देश के सामान्य निर्वाचन वास्तव मे प्रधानमन्त्री के ही निर्वाचन होते हैं। विगत चुनावो म एक ही नारा था काग्रेस को वोट देकर नेहरू के हाथ मजबूत कीजिए।' अब भारतीय राजनीति म सारा चक्र प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी के चारो ओर घूमता है। प नेहरू व काग्रेस एक दूसरे के पर्यायवाची बन गय थ। यही स्थिति आज श्रीमती इन्दिरा गान्धी एव शासकीय कांग्रेस की है। प्रधानमन्त्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व पर निभर करती है। प जवाहरलाल नेहरू का प्रभावशाली व्यक्तित्व था। देश की राजनीति म उनका प्रमुख स्थान था फलस्वरूप व भारतीय राजनीति के ध्रुवी केन्द्र थे। सम्पूण घटना चक्र उनकी परिधि म था। व दल एव शासक के एकक्षत्र नेता थे। श्रीमती इन्दिरा गाधी की भी यही स्थिति है।

प जवाहरलाल नेहरू एव इन्दिरा गाधी के मध्य के काल म प्रधानमन्त्री

---

72 अनुच्छेद 78

की स्थिति कुछ धूमिल पड गयी थी। परन्तु 1965 ई मे भारत पाक युद्ध के पश्च
प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री की प्रतिष्ठा जब अपनी चरम सीमा पर थी त
उनका निधन हो गया था।

भारतीय राजनीति मे प्रधानमन्त्री सपूर्ण शासनतन्त्र पर छाया रहता है।
केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का प्रधान तो है ही जिन राज्यो मे काग्रेसी मन्त्रिमण
होते हैं उनका भी वह अन्तिम शासक होता है। दलीय व्यवस्था के माध्यम से वह
पर नियन्त्रण रखता है। अनेक राज्यो के मुख्यमन्त्रियो की नियुक्ति मे उसका नि
अन्तिम रहा है। प रविशकर शुक्ल की मत्यु के पश्चात डॉ कैलाशनाथ काटजू
प्रधानमन्त्री का विश्वासपात्र होने के कारण ही मध्य प्रदेश के मुख्यमन्त्री पद पर प
रूढ किया गया था। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। यही नही, राज्या के मन्त्रिमण्डला की स
भी हाई कमाण्ड के परामश से ही तय होती है। स्मरणीय है प्रधानमन्त्री की दल
शीष पर केन्द्रीय स्थिति है।

कई मन्त्रिमण्डलीय सदस्यो को प्रधानमन्त्री से असहमत होने के कारण अपने
से हटना पडा है। भूतपूर्व वित्तमन्त्री **श्री सी डी देशमुख** ने भाषा सम्बन्धी विव
के समय कहा था कि बम्बई के प्रश्न पर मन्त्रिमण्डल ने कोई निणय नही लिया है
इस पर **श्री नेहरू** ने लोकसभा मे कहा था कि मै प्रधानमन्त्री के कतव्यो को जान
हूँ। आखिर मैं भी कुछ हूँ। मै भारत का प्रधानमन्त्री हूँ एव प्रधानमन्त्री प्रधानम
है। मैं यह समझता हूँ कि प्रधानमन्त्री के क्या कतव्य हैं। यह कहना कि प्रधानम
कोई वक्तव्य नही दे सकता स्वय एक शैतानी वक्तव्य है।"[3] भारतीय प्रधानमन्त्री
सन्दभ मे **जेनिंग्स** का यह कथन पूणत सत्य है कि वह सूय है जिसके चारो तरफ अ
नक्षत्र घूमते हैं। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति एव पदच्युत सम्बन्धी शक्ति से ही, डा अम्बे
कर के शब्दो म सामूहिक उत्तरदायित्व के आदश की उपलब्धि सम्भव है। कि
मन्त्री के द्वारा शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की सत्ता एव अधिकार के विरुद्ध विद्रोह उ
मन्त्री के राजनीतिक जीवन के अन्त के लिए उत्तरदायी हो सकता है।

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू की शक्ति का कारण उनका व्यक्तित्व था। वे स्वय ए
सस्था थे एव दल तथा शासन पर उनका एकक्षत्र राज्य था। वे प्रमुख राष्ट्रीय नेत
प्रबल दलीय सगठनकर्ता तथा लोकप्रिय जननायक थे। ऐसे सशक्त व्यक्तित्व के प्रधा
मन्त्री होने के कारण *उस पद को अपरिमित प्रतिष्ठा एव गरिमा प्राप्त हुई है।*

लेकिन प्रधानमन्त्री निरकुश नही हो सकता। श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्य
का इस सम्बन्ध मे कथन है कि "इसमे कुछ सत्य हो सकता है कि प्रधानमन्त्री नि
कुश हो सकता है। (लेकिन) यह तभी सम्भव है जबकि उसको चुनने वाली ससद ए
दल दोनो ही निष्क्रिय हो जायें।"[4] फिर आगामी निर्वाचनो का भय, दल के अलोक

73 *Lok Sabha Debates*, July 30th, 1956
74 Sir A Krishnaswami Ayyer *Constituent Assembly* r
pp 956 57

प्रिय हो जाने की सम्भावना तथा गलत नीतियों के फलस्वरूप दल में ही प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा विद्रोह प्रधानमन्त्री पर प्रभावशाली नियन्त्रण के रूप में कार्य करते हैं। संक्षेप में प्रधानमन्त्री ही सरकार है वह आन्तरिक एवं विदेश नीति का निर्माता है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाँति वह दल एवं शासन का अध्यक्ष होता है। युद्ध-काल में उसकी शक्तियाँ अधिक व्यापक हो जाती हैं। श्री एन वी गाडगिल का कथन है कि प्रधानमन्त्री को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं और यदि वह स्वयं लोकतन्त्रीय प्रकृति का व्यक्ति नहीं है तो उसके अधिनायक हो जाने की सम्भावना है। यदि नेहरू के स्थान पर कोई कमजोर व्यक्तित्व का व्यक्ति प्रथम प्रधानमन्त्री हुआ होता तो सम्भवत राष्ट्रपति के प्रभाव में आकर उसकी स्थिति गौण हो गयी होती।

भारतीय संघ में राज्यपाल

भारतीय संघ के प्रत्येक राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति की जाती है।[75] वह कार्यपालिका का प्रमुख है एवं राज्य की कार्यपालक शक्ति का स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से क्रियान्वित करता है।[76] राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की जाती है एवं उसी के प्रसाद पर्यन्त वह पदारूढ़ रहता है।[77] यद्यपि उसका सामान्य कार्यकाल 5 वर्ष है। प्रारम्भ में संविधान सभा निर्वाचित राज्यपाल के पक्ष में थी। परन्तु उसकी तीव्र आलोचना हुई थी। राज्यपाल एवं मन्त्रिमण्डल दोनों के ही निर्वाचित होने की अवस्था में संवैधानिक गतिरोध की हर सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। राज्यपाल के पद पर वही व्यक्ति नियुक्त किया जा सकता है जो कि भारतीय नागरिक हो तथा 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।[78] राज्यपाल को किसी राज्य विधानमण्डल या संसद के दोनों सदनों में से किसी सदन का भी सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधानमण्डल या भारतीय संसद का सदस्य होता है तो वह राज्यपाल के पद को ग्रहण करने की तिथि से स्वत ही इन पदों से हट जाता है।[79] राज्यपाल का उसके कार्यों के लिए किसी न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता और उसकी पदावधि काल में उसके विरुद्ध कोई फौजदारी मुकदमा नहीं

75 सातवें संवैधानिक संशोधन (1956) द्वारा अनु 153 के अधीन आवश्यकता पड़ने पर दो या अधिक राज्यों के लिए एक ही राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है। श्री विष्णु सहाय असम व नागालैण्ड दोनों के गवर्नर हैं। एक ही राज्यपाल होते हुए भी राज्य पृथक विधिक इकाइयाँ होती हैं।

76 अनुच्छेद 154—संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यपाल प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा चुना जाता है और राज्य विधानमण्डल द्वारा महाभियोग लगाकर हटाया जा सकता है।

77 अनुच्छेद 155 एवं 156।

78 अनुच्छेद 153।

79 अनुच्छेद 158।

चलाया जा सकता । उसे बन्दी भी नही बनाया जा सकता । व्यक्तिगत रूप से राज्यपाल पर दीवानी अदालत मे कोई मुकदमा दो माह पूव नोटिस देने के पश्चात ही दायर किया जा सकता है ।

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध मे दो स्वस्थ परम्पराओ का विकास हुआ है। सामान्यत दूसरे राज्यो के निवासी को ही किसी राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया जाता है । इसके केवल दो अपवाद हैं। डॉ एच सी मुखर्जी को पश्चिमी बगाल का राज्यपाल तथा मैसूर के महाराजा को मैसूर (वतमान कर्नाटक राज्य) का राज्यपाल नियुक्त किया गया था । सामान्यत लोकसभा के सदस्य, पदनिवृत्त न्यायाधीश जनरल एव राजनीतिज्ञ राज्यपाल नियुक्त किये जाते रहे हैं । राज्यपाल के पद पर सत्तारूढ दल ने ऐसे राजनीतिज्ञो को भी नियुक्त किया है जो सावजनिक निर्वाचनो मे पराजित हो गये थे या सावजनिक जीवन मे लोकप्रियता खो चुके थे । अत राज्यपाल का पद सत्तारूढ दल के ऐसे नेताओ के लिए आश्रय स्थल बन गया है ।

काय एव शक्तिया

राज्यपाल को निम्नलिखित शक्तिया प्राप्त है

कायपालक शक्तिया—सविधान के अनुसार राज्य के सभी कायपालिका सम्बन्धी काय राज्यपाल के नाम पर सम्पादित किये जाते है ।[80] राज्यपाल को मुख्य मन्त्री की अध्यक्षता मे मन्त्रिपरिषद नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है । मन्त्रिपरिषद का काय राज्यपाल को स्वविवेकीय कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों मे सहयोग व सहायता देना है । स्वविवेकीय कार्यों के सम्बन्ध मे राज्यपाल का निणय अन्तिम होता है एव तत्सम्बन्धी निणय को किसी न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकती । मन्त्रिपरिषद द्वारा दिया गया परामश गुप्त होता है और कोई न्यायालय उसकी जाच नही कर सकता ।[81] सिद्धान्त मे मन्त्रिपरिषद राज्यपाल के प्रसाद-पयन्त पदारूढ रहती है परन्तु व्यवहार मे मन्त्रिमण्डल राज्य विधानमण्डल के निम्न सदन—विधानसभा—के प्रति उत्तरदायी होता है और उसी के प्रसाद पयन्त पदारूढ रहता है ।

मुख्यमन्त्री का यह कतव्य है कि वह मन्त्रि-परिषद के राज्य प्रशासन एव विधि प्रस्तावो सम्बन्धी समस्त निणयो की सूचना राज्यपाल को दे ।[82] आवश्यक होने पर राज्यपाल अन्य किसी भी सूचना की माग मुख्यमन्त्री से कर सकता है । राज्यपाल मन्त्रिपरिषद के किसी सदस्य के निणय को मन्त्रिपरिषद के समक्ष विचाराथ प्रस्तुत करने का निर्देश मुख्य मन्त्री को दे सकता है ।[83] आन्ध्र प्रदेश एव पजाब मे

80 अनुच्छेद 156 (1)
81 अनुच्छेद 163 (1)
82 अनुच्छेद 167 (अ)
83 अनुच्छेद 167 (स)

क्षेत्रीय समितियाँ हैं। उनके परामर्श को शासन एवं विधानमण्डल द्वारा सामान्यत स्वीकार किया जाता है परन्तु दोनों—समिति एवं शासन तथा विधानमण्डल—में विवाद की स्थिति में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होता है।[84] महाराष्ट्र एवं गुजरात के राज्यपालों को भी राज्य के सभी भागों में समान आर्थिक एवं शैक्षणिक विकास के लिए कुछ विशेष दायित्व सौंपे गये हैं। अमरनन्दी के अनुसार, विशेष दायित्वों के सम्पादन में राज्यपालों को मन्त्रि परिषद की सलाह से स्वतन्त्र रहकर कार्य करने का अधिकार है।[85]

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा नहीं की जाती है परन्तु राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति किये जाने के पूर्व उससे परामर्श अवश्य लिया जाता है।[86] राज्य के महाधिवक्ता एवं राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को वह नियुक्त करता है।[87] शासन एवं राज्य के कार्यों के सुसंचालन के लिए नियमादि बनाने का उसे अधिकार प्राप्त है।

विधायी शक्तियाँ—राज्यपाल राज्य के विधानमण्डल का अभिन्न अंग है। विधानमण्डल को आहूत[88] एवं स्थगित करने का उसे अधिकार है परन्तु विधानमण्डल के दो अधिवेशनों के मध्य 6 माह से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। वह विधान सभा को विघटित कर सकता है एवं एक सदन या दोनों सदनों की सम्मिलित बैठकों में भाषण दे सकता है।[89] विधानमण्डल के विचारार्थ प्रस्तुत विधेयकों के सम्बन्ध में सन्देश भेज सकता है। वह सामान्य निर्वाचन के पश्चात विधानमण्डल के प्रथम अधिवेशन एवं वर्ष के प्रथम सत्र के अधिवेशन में भाषण देता है।[90] विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयकों को राज्यपाल की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। वह विधेयक को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता है या उसे राष्ट्रपति को विचारार्थ प्रेषित कर सकता है। धन विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयकों को वह सदन या सदनों को संशोधन या संशोधन सहित विचारार्थ लौटा सकता है। विधानमण्डल के सत्रावसान काल में राज्यपाल को अध्यादेश जारी रखने का अधिकार है।[91] विधानमण्डल का अधिवेशन प्रारम्भ होने के 6 सप्ताह के भीतर यदि विधानमण्डल द्वारा अध्यादेशों का अनुमोदन

84 अनुच्छेद 371
85 Amarnandi *The Constitution of India*, 1962 p 198
86 अनुच्छेद 217 (1)
87 अनुच्छेद 216 (1)
88 अनुच्छेद 174
89 अनुच्छेद 175
90 अनुच्छेद 176
91 अनुच्छेद 213

नही किया जाता तो वे स्वत ही निष्प्रभावी हो जाते है । यदि अध्यादेश को विधान मण्डल अस्वीकृत कर देता है तो व समाप्त हो जाते है । परन्तु राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना ऐसे किसी अध्यादेश को जारी नही कर सकता जिससे सम्बन्धित विधेयक पर विधानमण्डल मे प्रस्तुत करने के पूव राष्ट्रपति की स्वीकृति अनिवाय हो या राज्यपाल ने सम्बन्धित उपबन्धा विषयक विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रोक रखा हो या राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रोके गये उन उपबन्धो सम्बन्धी राज्य विधानमण्डल के विधेयक को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत कर दिया गया हो ।

वित्तीय शक्तियाँ—कोई धन या वित्त विधेयक या वित्तीय मामला म सशोधन सम्बन्धी विधेयक राज्यपाल की अनुमति के अभाव म राज्य विधानमण्डल म प्रस्तुत नही किया जा सकता । परन्तु किसी कर को कम या समाप्त करने वाले विधेयक पर राज्यपाल को एसी किसी सस्तुति की आवश्यकता नही है । राज्यपाल का दायित्व यह देखना भी है कि प्रत्येक वित्तीय वष के आय व्यय विवरण को विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है ।[92] सभी प्रकार की अनुदान की मांगे, चाहे वे पूरक, अतिरिक्त अथवा बढी हुई अनुदान सम्बन्धी मागे ही क्या न हो, राज्यपाल की सस्तुति पर ही विधानमण्डल म प्रस्तुत की जा सकती है ।[93]

न्यायिक शक्तियाँ—राज्यपाल को राज्य विधि सम्बन्धी अपराधो के लिए दण्ड को कम, स्थगित या क्षमा करने के अधिकार प्राप्त है ।[94] बम्बई उच्च न्यायालय के अनुसार राज्यपाल की यह शक्ति प्रकृति एव प्रभाव म ब्रिटिश क्राउन या अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्ति के समान ही है । राज्यपाल इस शक्ति का प्रयोग, मुकदम के दौरान या समाप्ति पर कर सकता है, परन्तु उसे निरकुश ढग से इसका प्रयोग नही करना चाहिए ।[95]

अन्य शक्तियाँ—लोक सेवा आयोग अपने काय का वार्षिक प्रतिवेदन एव महालेखा परीक्षक द्वारा आय व्यय के लेख परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदन राज्यपाल को प्रस्तुत किया जाता है जो उन्ह मन्त्रि परिषद को भेज देता है । प्रतिवेदना पर मन्त्रि परिषद की टिप्पणियाँ प्राप्त होने पर राज्यपाल उन्ह विधानसभा के अध्यक्ष को विधानमण्डल म प्रस्तुत करन के लिए भेज देता है ।

स्थिति

राज्यपाल की सवधानिक स्थिति—राज्यपाल की दोहरी स्थिति है । एक

92 अनुच्छेद 202
93 अनुच्छेद 205
94 अनुच्छेद 161
95 नानावती विवाद म बम्बई उच्च न्यायालय के निणय पर आधारित ।

तरफ तो वह राज्य का सवैधानिक अध्यक्ष है तो दूसरी तरफ वह केन्द्र का प्रतिनिधि या अभिकर्ता है। सामान्य काल में राज्यपाल राज्य के सवैधानिक अध्यक्ष के रूप म काय करता है। राज्यो म भी केन्द्र की तरह ससदीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी है। 'सहायता एव परामश' (Aid and Advice) शब्दो का अथ यह है कि राज्यपाल मन्त्रि-परिषद के परामर्शानुसार काय करेगा। परन्तु स्वविवेकीय मामलो के सम्बन्ध मे वह स्वतन्त्र है। सविधान द्वारा स्वविवेकीय शक्तियो की कोई परिभाषा प्रस्तुत नही की गयी है। राज्यपाल का विवेक ही अन्तिम निर्णायक है। दो प्रावधान इसका अपवाद है। वे सामान्य महत्व के है। प्रथम, असम के राज्यपाल को राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप मे सीमान्त क्षेत्र के प्रशासन का अधिकार दिया गया है। इसके अतिरिक्त असम सरकार एव जन-जाति क्षेत्र की जिला परिषद के मध्य खदान रॉयल्टी सम्बन्धी विवाद का निणय राज्यपाल स्वविवेक से करता है। द्वितीय, राष्ट्रपति द्वारा जब किसी राज्यपाल को अधीनस्थ केन्द्र प्रशासित प्रदश का प्रशासक नियुक्त किया जाता है तो राज्यपाल राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप मे काय करता है और उसका निणय अन्तिम होता है। श्री दुर्गादास बसु क अनुसार, 'चूकि स्वविवकीय शक्ति असम के राज्यपाल को केवल दो सामान्य मामलो मे प्राप्त है अत सविधान मे 'स्वविवेक से काय करे' शब्दो का उल्लेख एक सीमा तक सम्पादन का ही दोष है।'[96] अत राज्यपाल को मन्त्रि परिषद के परामश पर ही काय करना चाहिए। न्यायालय के अनुसार राज्यपाल बिना अपने मन्त्रियो के परामश के काय कर ही नही सकता[97] और तत्सम्बन्धी अभिसमयो का भी विकास हुआ है।

राज्यपाल एव केन्द्र—राज्य की राजनीतिक स्थिति एसी हो सकती है जबकि राज्यपाल के लिए मन्त्रिमण्डल की सलाह मानना सम्भव ही न हो। यदि राज्य का शासन सविधान के अनुसार नही चलता है या मुख्यमन्त्री का विधानमण्डल के बहुमत का विश्वास प्राप्त नही है या मुख्यमन्त्री को प्राप्त बहुमत के समथन के सम्बन्ध म विवाद है तो यह प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति म राज्यपाल को क्या करना चाहिए। यदि राज्य मन्त्रि परिषद एसी कोई विधि पारित करने या एसा कदम उठाने पर बल देता है जिससे सविधान का उल्लघन होता है तो क्या राज्यपाल क लिए मन्त्रि परिषद के एसे परामश को मानना आवश्यक है ? कुछ परिस्थितियाँ एसी हो सकती हैं जबकि वह राष्ट्रपति से ऐसे आदेश प्राप्त करे जो कि राज्य मन्त्रि-परिषद को स्वीकार न हो। एसी स्थिति म राज्यपाल को क्या करना चाहिए ? अत राज्यपाल की स्थिति विवाद का प्रश्न बन गयी है। सविधान सभा म श्री नेहरू न कहा था कि निर्वाचित राज्यपाल मनोनीत राज्यपाल की अपेक्षा पृथक्तावादी (एव) प्रान्तीयता की भावनाओ को

96 Basu, D D *Commentary on the Constitution of India*, Vol 19, p 475
97 सुनीलकुमार बास बनाम पश्चिमी बगाल क मुख्य सचिव।

बढावा देने वाला हो सकता है ऐसी स्थिति म केन्द्र के उसके साथ कम सम्बन्ध होगे।[98] अत राज्यपाल से केन्द्र के अभिकर्ता या प्रतिनिधि के रूप म महत्वपूण भूमिका निभाने की आशा की गयी है। सवधानिक असफलता की स्थिति म उसे स्व-विवेक से काय करने का अधिकार प्राप्त है। ऐसी स्थिति मे मन्त्रि-परिषद से परामश करना उसके लिए आवश्यक नही है। तब वह केन्द्र का अभिकर्ता होता है तथा सवैधानिक विफलता सम्बन्धी जो प्रतिवेदन वह केन्द्र को प्रस्तुत करता है उसे गुप्त रखना उसका कतव्य है। तत्पश्चात के द्र के निर्देश के अनुसार ही उसे आचरण करना चाहिए। लेकिन जब तक राज्य मे सविधान के अनुसार सामान्य स्थिति बनी रहती है तब तक वह विशुद्ध सवधानिक अध्यक्ष है और उस अवस्था म मन्त्रि-परिषद का परामश मानना उसका कतव्य है। सविधान सभा के सदस्यो के राज्यपाल तथा केन्द्रीय शासन के सम्ब धो पर परस्पर विरोधी मत थे। **श्री टी टी कृष्णमाचारी** जिनके मत से **डॉ अम्बेडकर** सहमत थे का कथन था कि 'मैं इन समस्त विचारो का खण्डन करता हूँ कि इस *सदन के सदस्य मनोनीत गवनर को राष्ट्रपति का अभिकर्ता बनाना चाहते हैं।*"[99] परन्तु डॉ अम्बेडकर ने बाद म एक प्रश्न का उत्तर देते हुए अपने पूव मत का खण्डन करते हुए कहा था कि "प्रान्तीय शासनो को केन्द्रीय शासन के अधीन काय करना चाहिए। फलत राज्यपाल को कुछ बातें राष्ट्रपति के विचाराथ रोकनी पडेगी जिससे कि यह पता चल सके कि प्रान्तीय शासन को जिन नियमा के अधीन काय करना है वे सविधान या केन्द्रीय शासन की अधीनता म हैं और उनका पालन हो रहा है।[100] **श्री महावीर त्यागी** का मत इसी से मिलता-जुलता है। उनका कथन था कि राज्यपाल *केन्द्र का अभिकर्ता या माध्यम है जिसके द्वारा केन्द्रीय नीति को लागू किया जायेगा या* रक्षा की जायेगी। राज्यपाल को एक ओर के द्रीय नीति के सरक्षक, तो दूसरी ओर सविधान के सरक्षक के रूप मे काय करना चाहिए।[101]

व्यवहार मे गवनर का पद—राज्यपाल के पद पर अधिकाशत सत्तारूढ दल द्वारा अपने ही दल के व्यक्तियो को नियुक्त किया गया है। विभिन्न राज्यपालो के अपने कायकाल सम्बन्धी भिन्न भिन्न अनुभव हैं। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री एच पी मोदी की अपन कायकाल सम्बन्धी स्मृतियाँ सुखद है। वे विभागीय सचिवो एव मुख्य सचिव से सीधा सम्पक रखते थे। तत्कालीन मुख्यम त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त को इसम कोइ आपत्ति नही थी। पर तु अन्य राज्या म ऐसा नही था। श्री श्रीप्रकाश (जो लगातार 12 वर्षों तक तीन राज्यो मे राज्यपाल पद पर रहे) का कथन है कि वे सदव सवैधानिक अध्यक्ष के रूप मे काय करते रहे हैं। श्री वी वी गिरि उत्तर प्रदेश म राज्य-

98 *Constituent Assembly Debates*, Vol VIII p 455
99 *Ibid* p 460
100 *Ibid*, p 502
101 *Ibid*, pp 494 95

पाल थे। उस समय श्री सम्पूर्णानन्द जी मुख्यमन्त्री थे। श्री गिरि का कथन था कि राज्यपाल सुसुप्त सहयोगी नहीं है। वह ठीक प्रकार से तभी कार्य कर सकता है जब कि वह दूसरों पर हावी हुए बिना गलतियों को रोके। श्री वी पी मेनन के अनुसार राज्यपाल की स्थिति नाममात्र के अध्यक्ष जैसी है। श्री पाटस्कर के अनुसार गवर्नर संविधान का रक्षक है।

दो तीन अवसरों पर गवर्नर के आचरणों की तीव्र निन्दा हुई थी एवं वे तीव्र विवाद का विषय बन गये थे। फलस्वरूप राज्यपाल के पद तक को समाप्त करने की बात की गयी। 1959 ई में केरल शिक्षा विधेयक के विरोध में राज्यव्यापी आन्दोलन चला था। राज्य में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। यह आन्दोलन साम्यवादी शासन के विरुद्ध हुआ था। राज्यपाल ने मन्त्रिमण्डल के परामर्श के बिना ही संवैधानिक शासन की विफलता की घोषणा की थी फलत राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। कुछ ने राज्यपाल के इस कार्य को असंवैधानिक ठहराया तो दूसरों ने इसे उचित बताया था। स्मरणीय है कि केरल की नम्बूदरीपाद की सरकार को विधान सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त था। ऐसी स्थिति में राज्यपाल को राज्य-मन्त्रिमण्डल के परामर्श के बिना राष्ट्रपति को प्रतिवेदन नहीं देना चाहिए था। केरल के साम्यवादी शासन के मतानुसार राज्यपाल को मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही प्रतिवेदन भेजना चाहिए था जबकि केन्द्र का मत था कि राज्यपाल को स्वतन्त्र रूप से ज्ञापन देने का अधिकार प्राप्त है।

दूसरा विवाद पश्चिमी बंगाल से सम्बन्धित है। श्री अजय मुकर्जी की सरकार राज्य में व्याप्त अराजकता को रोकने में असमर्थ थी। राज्यपाल श्री धर्मवीर ने मुख्यमन्त्री को शीघ्र ही विधान सभा को आहूत करके अपना बहुमत प्रमाणित करने का निर्देश दिया था। लेकिन मुख्यमन्त्री ने राज्यपाल द्वारा प्रस्तावित तिथि के कुछ दिन पश्चात विधानसभा का सत्र आहूत करने का निश्चय किया था। इस पर राज्यपाल ने विधानसभा एवं मन्त्रिमण्डल दोनों को भंग कर दिया और राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।

अत यह स्पष्ट है कि राज्यपाल की स्थिति एवं उसकी शक्ति से सम्बन्धित कई बातें विवादास्पद हैं। उनमें से मुख्य निम्नवत हैं

(1) **राज्यपाल एवं मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध**—क्या राज्यपाल मुख्यमन्त्री के चुनाव में स्वतन्त्र है? क्या मुख्यमन्त्री को वह स्वविवेकानुसार पदच्युत कर सकता है?

(2) **राज्यपाल एवं व्यवस्थापिका के सम्बन्ध**—क्या राज्यपाल को विधान सभा को विघटित एवं आहूत करने सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त हैं? किन स्थितियों में वह उनका प्रयोग स्वविवेकानुसार कर सकता है?

(3) **संवैधानिक असफलता की अवस्था में राज्यपाल की स्थिति क्या है?**

साराश—केन्द्र व राज्यो म एक ही दल कांग्रेस के दीघकाल तक पदारूढ रहने के कारण राज्यपाल का पद परोक्ष म पड गया है। केन्द्रीय मन्त्रिया एव राज्या के मन्त्रिया म सीधे सम्पक स्थापित हा गय हैं। चतुथ निर्वाचन के पश्चात स्थिति म कुछ परिवतन हुआ था लेकिन वह भी थाडे समय के लिए। अत राज्यपाल की स्थिति पर इसका कोई प्रभाव नही पडा। राज्यपाल की दुहरी स्थिति है। वह जहा राज्य का सवधानिक अध्यक्ष है वहाँ केन्द्र का अभिकर्ता भी है। उसस यह अपेक्षा की जाती है कि दलवदलू राजनीति एव सावजनिक नैतिक मानदण्ड के निरन्तर गिरते वातावरण म वह सविधान के सरक्षक एव लोकतन्त्र के सजग प्रहरी की भूमिका निभाय। राज्य पाल के पद को प्रभावी एव अधिक उपयोगी बनाने के लिए निम्न सुझाव लाभदायक हो सकत हैं

(1) राज्यपाल के पद पर निर्वाचना म पराजित दलीय राजनीतिना की ही नियुक्ति नही की जानी चाहिए।

(2) राज्यपाल की नियुक्ति मे मुख्य मन्त्रियो का स्पष्ट परामश लिया जाना चाहिए। स्मरणीय है कि केन्द्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति करते समय सम्बन्धित राज्य के मुख्यमन्त्री के विचार ज्ञात कर लिय जाते हैं। यह स्वस्थ परम्परा है।

(3) राज्यपाल को नाममात्र के अध्यक्ष के स्थान पर सही अर्थो म सवधानिक अध्यक्ष की भूमिका निभान के अवसर दिये जाने चाहिए।

(4) राज्यपाल को निष्पक्षतापूवक आचरण करना चाहिए। उसे केन्द्र से परामश के लिए निरन्तर नही दौडना चाहिए।

(5) राज्यपाल तथा विधानसभा एव मन्त्रिमण्डल के सम्बन्धो को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। राज्यपाल के आदेश पर विधानसभा का तुरन्त अधिवेशन बुलाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(6) राज्यपाल के सम्भावित स्वविवेकी अधिकारो की स्पष्ट व्याख्या की जानी चाहिए।

राज्य की राजनीति मे राज्यपाल की भूमिका उसक व्यक्तित्व तथा मुख्यमन्त्री एव उसके सम्बन्धा पर निभर करती है।

राज्य मन्त्रिमण्डल

राज्यो म सविधान के अनुसार मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता मे एक मन्त्र परिषद का विधान किया गया है जा राज्यपाल को उसके स्वविवेकीय कार्यों का छाडकर शेष सभी कार्यों के सम्पादन मे 'सहयोग एव परामश' प्रदान करेगा।[102] मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायगी। शेष मन्त्रिया की नियुक्ति मुख्यमन्त्री के परामश से राज्यपाल करेगा।[103] मन्त्रीगण राज्यपाल के प्रसाद पयन्त अपने पदो पर रहत है।

102 अनुच्छेद 163
103 अनुच्छेद 164

मन्त्रि-परिषद राज्य विधानसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।[104] मन्त्रियो के राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पदारूढ रहने का यह अर्थ है कि राज्यपाल मुख्यमन्त्री के परामर्श पर व्यक्तिगत रूप से मन्त्री को पदच्युत कर सकता है।[105] यदि मुख्यमन्त्री विधानसभा का विश्वास खोने के पश्चात भी पदत्याग के लिए तयार नही होता है तो राज्यपाल मुख्यमन्त्री सहित मन्त्रि-परिषद को पदच्युत कर सकता है। कुछ विद्वानो का यह मत है कि मन्त्रिमण्डल को राज्यपाल भग नही कर सकता। लेकिन यह उसी अवस्था मे सम्भव है जबकि मन्त्रिमण्डल वैधानिक तरीके से सत्ता का प्रयोग करता है और बहुमत का समर्थन उसे प्राप्त होता है।

यदि कोई मन्त्री नियुक्ति के 6 माह के भीतर विधानमण्डल के लिए नही चुना जाता तो उसे मन्त्रिमण्डल से पदत्याग करना पडता है।[106] सविधान के अनुसार बिहार, मध्य प्रदेश एव उडीसा मे एक एक जनजातीय विषयक मन्त्री होता है।[107] मन्त्रियो के वेतन एव भत्ता आदि का निर्धारण विधानमण्डल द्वारा किया जाता है। विधानमण्डल के दोनो सदनो के निर्वाचित एव मनोनीत सदस्यो को मन्त्री पद पर नियुक्त किया जा सकता है।

सामान्य काल मे राज्य का मन्त्रिमण्डल वास्तविक कार्यपालिका होती है।

मुख्यमन्त्री

राज्यो के मुख्यमन्त्री की स्थिति केन्द्र मे प्रधानमन्त्री के ही समकक्ष है। वह मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष एव विधानसभा मे बहुमत दल का नेता होता है। उसी के परामर्श पर राज्य के मन्त्रि परिषद के अन्य सदस्य राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। मुख्यमन्त्री के पदत्याग के साथ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना पडता है। वह राज्य के मन्त्रिमण्डल के जन्म, जीवन एव मृत्यु के लिए उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल की बैठको की वह अध्यक्षता करता है। वह राज्य की सामान्य नीति का निर्धारण करता है। वह प्रमुख प्रशासक एव शासकीय विभागो का निरीक्षक तथा समन्वयकर्ता भी होता है।

वह राज्य के शासन का चालक चक्र है। उसकी क्षमता एव योग्यता पर शासन की सफलता निर्भर करती है। विधानमण्डल मे वह शासन का प्रमुख प्रवक्ता होता है। वह मन्त्रियो के मध्य उत्पन्न विवादो को तय करता है। इस सम्बन्ध मे उसका निर्णय अन्तिम होता है। जो मन्त्री उससे सहमत नही होते उन्हे पदत्याग करना पडता है।

---

104 अनुच्छेद 164 (2)

105 महाराष्ट्र प्रान्त मे श्री डी जड पलामपगार को उनके पदत्याग न करने पर पदच्युत किया गया था। आन्ध्र मे एक मन्त्री को भी पदच्युत किया गया था।

106 अनुच्छेद 164 (4)

107 अनुच्छेद 164 (1)

उस नियुक्ति सम्ब धी व्यापक अधिकार हैं । राज्य के महाधिवक्ता एव लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष एव सदस्यो की नियुक्ति मुख्यम त्री के परामश पर ही की जाती है । सम्पूण प्रशासन पर उसका निय त्रण होता है । वह म न्त्रिमण्डल एव राज्यपाल के मध्य कडी के रूप म काय करता है । मुख्यम त्री की अनुमति के बिना कोई म त्री राज्यपाल से सीधा सम्पक स्थापित नही कर सकता । म न्त्रिमण्डल के निणय मुख्यम त्री द्वारा ही राज्यपाल को प्रेषित किये जाते हैं । मुख्यम त्री को राज्य विधानसभा के विघटन की माँग करने का अधिकार प्राप्त है ।

वही वास्तव मे राज्य की मुख्य कायपालिका है । वह मन्त्रि परिषद रूपी मेहराब की *आधारशिला है । मुख्यम त्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व एव उसे प्राप्त* दलीय समथन पर निभर करती है । काग्रेस हाई कमान का समथन काग्रेसी मुख्यम त्री को स्थिति के निर्धारण मे निर्णायक होता है । प गोवि दवल्लभ प त, विहार के श्री श्रीकृष्ण सि हा बगाल के विधानच द्रराय, मद्रास के कामराज नाडर वडे सशक्त एव प्रभावशाली मुख्यम त्री माने जाते थे । पर तु बहुत से मुख्यम न्त्रियो का अपना कोई आधार ही नही था । वे काग्रेस हाईकमान के मनोनीत प्रत्याशी मर होते थे । काग्रेस हाईकमान के निर्देश पर अनेक राज्यो के मुख्यम त्रयो की नियुक्ति होती रही है । उदाहरण के लिए, पजाब के स्वर्गीय भीमसेन सच्चर, मध्य प्रदेश के भूतपूव मुख्यमन्त्री कलाशनाथ काटजू एव वतमान मुख्यम त्री श्री पी सी सेठी । श्री सच्चर के पश्चात श्री प्रतापसिह करो काग्रेस हाईकमान के आदेश पर ही मुख्यम त्री बने थे । करो के त्यागपत्र के बाद 1964 ई मे श्री रामकिशन पजाब क मुख्यम त्री काग्रेस हाईकमान के द्वारा ही बनाये गय ये । यही नही, राज्यो के काग्रेसी म न्त्रिमण्डलो के सदस्या का निश्चय भी काग्रेस हाईकमान ही करता रहा है ।

प्रतापसिह करो क विरुद्ध आरोपो की जाच के लिए एक आयोग की नियुक्ति के द्रीय शासन द्वारा की गयी थी । स्मरणीय है कि मुख्यम त्री राज्य की कायपालिका है । सविधान की किसी व्यवस्था के अनुसार के द्रीय म न्त्रिमण्डल को राज्य के मुख्यम त्री के विरुद्ध कायवाही का कोई अधिकार नही है। यह दूसरी बात है कि राज्यपाल के माध्यम स के द्रीय सरकार कोई कायवाही करे । यह प्रश्न निश्चय ही वडा नाजुक है । अत प नहरू ने कमीशस इनक्वायरी एक्ट, 1953 के अधीन मुख्यम त्री करो के विरुद्ध जांच का आदेश दिया था ।

मुख्यम त्री की नियुक्ति को लेकर अनेक बार ऐसी घटनाएँ हुई जो चिन्ता का विषय बन गयी हैं । उत्तरदायी शासन के स्थापित एव मान्य अभिसमया का इन घटनाआ से उल्लघन हुआ है । बहुमत दल के नेता को ही मुख्यमन्त्री पद के लिए राज्यपाल द्वारा *आम न्त्रित किया जाना चाहिए ।* यदि किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राज्यपाल को स्वविवेक का अधिकार प्राप्त हो जाता है । यदि मुख्यम त्री के म न्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त किया जाता है तो राज्यपाल को

या तो नवीन निर्वाचन का आदेश देना चाहिए अथवा विरोधी दल के नेता को वैकल्पिक सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करना चाहिए। परन्तु कभी कभी राज्यपालों ने इन मामलों में इन मान्य परम्पराओं का पूर्ण निष्पक्षता के साथ पालन नहीं किया है। 1952 ई में मद्रास के कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के पदत्याग करने से पूर्व श्री राजाजी (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) को अनुच्छेद 173 (3) (e) एवं 5 के अधीन विधान परिषद का सदस्य मनोनीत करने के लिए राज्यपाल से सिफारिश की गयी थी। विधान परिषद का सदस्य मनोनीत होने के पश्चात श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को राज्यपाल ने मुख्यमन्त्री पद पर नियुक्त कर दिया था। इस घटना की तीव्र आलोचना हुई थी। इसी प्रकार श्री मोरारजी देसाई को बम्बई का मुख्यमन्त्री नियुक्त किया गया, जबकि वे निर्वाचनों में विधानसभा का चुनाव हार चुके थे। श्री मोरारजी देसाई की नियुक्ति समस्त नैतिक एवं संवैधानिक औचित्य का उल्लंघन था। 1957 ई में उड़ीसा के मन्त्रिमण्डल के निर्माण के सम्बन्ध में काफी घोटाला हुआ था। 1958 ई में उड़ीसा के राज्यपाल श्री वाई एन सुखतंकर ने श्री हरेकृष्ण महताब के त्यागपत्र को तुरन्त स्वीकार न करके उचित कार्य नहीं किया था। उन्होंने विरोधी दल के नेता से वैकल्पिक सरकार की वार्ता शुरू कर दी थी और इसी बीच में महताब को समझा-बुझाकर उनका त्यागपत्र वापस करवा दिया था।

राज्यों में भी संसदीय शासन का अनुगमन किया गया है और केन्द्र की भांति ही मन्त्रिमण्डल अपने कार्यों के लिए राज्य विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल एक साथ पदत्याग करता है और एक साथ पद ग्रहण करता है।

22

सयुक्त राज्य अमेरिका की कार्यपालिका—राष्ट्रपति

[AMERICAN PRESIDENTIAL EXECUTIVE]

ससदीय कायपालिका के विपरीत अध्यक्षात्मक या असंसदीय कायपालिका शक्ति पृथक्करण के सिद्धा त पर आधारित है। स्ट्राग क अनुसार सयुक्त राज्य अम रिका की कायपालिका—राष्ट्रपति—अध्यक्षात्मक कायपालिका का सवश्रेष्ठ उदाहरण है। असंसदीय कायपालिका को स्थायी (fixed) कायपालिका की भी सज्ञा दी जाती है।[1] इसे व्यवस्थापिका द्वारा अपने पद से पृथक नही किया जा सकता।

अमेरिकी राष्ट्रपति विश्व के महान शासनाधिकारियो मे गिना जाता है। इस पद के विकास मे ऐतिहासिक आवश्यकता का प्रमुख योग है। अमेरिकी परिसघ के सविधान (Articles of Confederation, 1777) का एक बडा दोष यह था कि उसम काग्रेस के निणया एव सन्धियो के क्रिया वयन हेतु के द्रीय कायपालिका का अभाव था। अत फिलाडेलफिया सम्मेलन के समक्ष व्यवस्थापिका के समान ही कायपालिका के पद का निर्माण एक प्रमुख काय था। सम्मेलन म एक वग कायपालिका को पर्याप्त शक्ति-सम्पन्न बनाने के पक्ष मे था ताकि शासन को स्थायित्व प्राप्त हा सके तो दूसरे वग का यह मत था कि यदि कायपालिका को अधिक शक्तिशाली बनाया गया ता जनता ऐसी व्यवस्था की आलोचना करेगी। कुछ व्यक्ति एकल कायपालिका क तो दूसर समान सत्ताधारी दो या तीन व्यक्तियो की बहुल कायपालिका के पक्ष म थे। अन्त म सम्मेलन ने यह निणय किया कि एक ही व्यक्ति राष्ट्रपति होना चाहिए परन्तु उस व्यवस्थापिका स स्वत त्र होना चाहिए। सम्मेलन म यह भी प्रस्तावित किया गया था कि राष्ट्रपति के लिए एक कायकारिणी परिषद की स्थापना की जाय जा कुछ महत्व पूण मामलो म कायपालिका शक्ति क प्रयोग म भागीदार हो। लेकिन यह प्रस्ताव

---

1 Strong *op cit*, pp 260-61

2 अध्यक्षात्मक कायपालिका क लिए देखिए अध्याय 17

स्वीकार न हो सका। सीनेट को सन्धियों एव नियुक्तियों के सम्बन्ध में कार्यकारिणी परिषद के रूप में काय करने के अधिकार प्रदान किये गये। सन्धियों एव नियुक्तियों के सम्बन्ध में सीनेट की स्वीकृति की व्यवस्था करके अवरोध और सन्तुलन की प्रणाली के द्वारा राष्ट्रपति की कार्यपालक शक्तियों को सीमित कर दिया गया है। एक तरफ सीनेट का प्रतिबन्ध स्थापित करके जहाँ राष्ट्रपति की निरकुशता को प्रतिबंधित किया गया, वहाँ दूसरी तरफ उसे व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र तथा उसके पुन निर्वाचन की व्यवस्था करके राष्ट्रपति के पद को स्थायी बनाया गया है।

लास्की के अनुसार अमरिकी राष्ट्रपति ब्रिटिश राजा से बड़ा भी है और छोटा भी है प्रधानमन्त्री से भी वह बड़ा एव छोटा है। उसके पद का जितना सतर्कता से अध्ययन किया जाता है उतना ही अधिक वह अनोखा प्रतीत होता है।[3] उसमें ब्रिटिश राजा एव प्रधानमन्त्री दोनो के पदो का समावेश है। वह नाममात्र एव यथार्थ दोनो ही प्रकार की कार्यपालिका के दायित्वो को पूर्ण करता है। अमरिकी राष्ट्रपति को सविधान एव परम्परा से इतने अधिक महत्वपूर्ण दायित्व एव कर्तव्य प्राप्त हैं कि लिण्डसे रोगर के अनुसार उसका पूर्णरूपेण सफल प्रशासक होना सन्देहजनक है। लास्की के अनुसार, सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति से अधिक दायित्व विश्व में किसी पदाधिकारी के नहीं है।[4] प्रेसीडेन्ट जान केनेडी के अनुसार वह अकेला ही राज्य का प्रमुख है। वह मुख्य कार्यपालिका ही नहीं अपितु मुख्य सेनापति, औपचारिक प्रमुख एव विधायी तथा दलीय नेता भी है।

अमरिकी राष्ट्रपति पद के लिए सविधान के अनुसार वही व्यक्ति निर्वाचित हो सकता है जो सयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो और जो 35 वर्ष से कम आयु का न हो तथा जो 14 वर्षों से सयुक्त राज्य अमेरिका में निवास कर रहा हो। साथ ही साथ उसमें वे सभी योग्यताएँ भी होनी चाहिए जो एक मतदाता के लिए आवश्यक होती है। राष्ट्रपति का वेतन एव अन्य भत्ते सविधान द्वारा निर्धारित है। उन्हें उसके पदावधिकाल में कम नहीं किया जा सकता। 1909 ई से 1949 ई तक अमरिकी राष्ट्रपति का वेतन 75 हजार डालर प्रति वर्ष था। 1949 ई मे उसे बढ़ा कर 1 लाख डालर वार्षिक कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त उसे 50 हजार डालर वार्षिक की करमुक्त धनराशि भत्ते आदि के रूप में भी प्राप्त होती है।

राष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष है। वह अपने पद पर पुन निर्वाचित हो सकता

---

3 The President of the United States is both more and less than a king, he is, also both more and less than a Prime Minister The more carefully his office is studied, the more does his unique character appear "—Laski *American Presidency*, 1943 p 23

4 Laski *op cit* p 37

है। लेकिन यह अभिसमय या परम्परा स्थापित हो चुकी थी कि कोई भी राष्ट्रपति निरन्तर तीसरे काल के लिए चुनाव नहीं लडेगा। इस परम्परा की स्थापना का श्रेय प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन को था जिन्होंने तीसरी बार राष्ट्रपति पद पर चुना जाना स्वीकार नहीं किया था। 1875 ई में जनरल ग्राण्ट ने तीसरी बार राष्ट्रपति चुने जाने की इच्छा व्यक्त की थी लेकिन कांग्रेस ने इस पर यह प्रस्ताव पारित किया था कि दो बार राष्ट्रपति रहने के पश्चात तीसरी बार राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी न होने की सुनिश्चित परम्परा मान्य है एवं इसके विपरीत कार्य अविवेकपूर्ण, देशभक्ति विरोधी तथा देश की स्वतन्त्र संस्थाओं के लिए घातक है। फलस्वरूप जनरल ग्राण्ट ने तीसरी बार चुनाव नहीं लडा। राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने तीसरी बार चुनाव लडा था परन्तु वे निर्वाचन में हार गये थे। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने इस परम्परा का उल्लंघन करते हुए 1940 ई में तीसरी बार चुनाव लडा था। इसमें वे विजयी हुए तथा तीसरी बार राष्ट्रपति बने। 1944 ई में वे चौथी बार राष्ट्रपति चुने गये। परन्तु 1945 ई में उनकी मृत्यु हो गयी। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण उत्पन्न संकट राष्ट्रपति सम्बन्धी इस परम्परा के उल्लंघन के लिए उत्तरदायी था। भविष्य में इस प्रकार की सम्भावना को रोकने के लिए 22वें संशोधन (1951 ई) द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि दो बार से अधिक कोई व्यक्ति राष्ट्रपति पद ग्रहण नहीं कर सकेगा और यदि राष्ट्रपति की मृत्यु उसके कार्यकाल के दौरान में हो जाती है तो उप राष्ट्रपति शेष अवधि के लिए राष्ट्रपति पद ग्रहण कर सकेगा और वह केवल दो बार राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी हो सकेगा परन्तु दोनों बार सफल होने पर भी उसका कुल कार्यकाल 10 वर्ष से अधिक नहीं हो सकेगा।

राष्ट्रपति का निर्वाचन

राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति को फिलाडेल्फिया सम्मेलन में अस्वीकार कर दिया था क्योंकि इससे राष्ट्रपति के राजनीतिक दलबन्दी में फंसने की सम्भावना थी। हेमिल्टन का मत था कि राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे हिंसा और अव्यवस्था उत्पन्न न हो तथा अधिक से अधिक व्यवस्था बनी रहे। यदि कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति निर्वाचित किया जाता तो राष्ट्रपति कांग्रेस के हाथ का खिलौना बन जाता तथा यह व्यवस्था शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के भी विपरीत होती। अतः सिद्धान्ततः कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति का निर्वाचन संविधान निर्माताओं को मान्य नहीं था। फलस्वरूप राष्ट्रपति को अप्रत्यक्ष रीति से एक निर्वाचक-मण्डल द्वारा निर्वाचित करने का फिलाडेलफिया सम्मेलन ने निश्चय किया था। प्रत्येक राज्य को निर्वाचक मण्डल में उतने ही सदस्य भेजने का अधिकार प्रदान किया गया है जितने उस राज्य से सीनेट तथा प्रतिनिधि सदन के लिए सदस्य निर्वाचित किये जाते हैं, अर्थात प्रत्येक राज्य को कांग्रेस में प्राप्त प्रतिनिधित्व के बराबर निर्वाचक

दो-दो मत देने का अधिकार प्रदान किया गया है।[4] राष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों में से किसी दो को निर्वाचक मण्डल के सदस्यों द्वारा मत दिये जाते हैं। इनमें से एक मत किसी एक ऐसे उम्मीदवार को दिया जाता है जो निर्वाचक मण्डल के सदस्य के राज्य का निवासी नहीं होता। अधिकतम मत पाने वाले को राष्ट्रपति तथा उससे कम मत पाने वाले को उप राष्ट्रपति चुना जाता था। लेकिन 20वें संशोधन (1804 ई) द्वारा इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया एवं दोनों पदों के लिए पृथक-पृथक मतदान की व्यवस्था की गयी है।

परन्तु उपरोक्त व्यवस्था भी केवल 8 वर्ष तक ही चल सकी। 1796 ई में संयुक्त राज्य में दो राजनीतिक दलों का उदय हो गया और इस वर्ष के निर्वाचन में यह स्पष्ट था कि निर्वाचकगण एडम्स (Adams) या जेफरसन (Jefferson) में से एक को अपना मत देंगे। 1800 ई के पश्चात निर्वाचक मण्डल के सभी सदस्य दलीय आधार पर निर्वाचित होने लगे तथा वे अपने दल के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को ही अपना मत प्रदान करते हैं। इस परम्परा के विकास के फलस्वरूप राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष के स्थान पर व्यवहारतः प्रत्यक्ष हो गया है। राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का अब कोई स्वतन्त्र अधिकार एवं अस्तित्व नहीं रह गया है। दोनों प्रमुख अमरिकी राजनीतिक दलों के द्वारा राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन से काफी समय पूर्व दलीय प्रत्याशियों के नामों की घोषणा कर दी जाती है। दलों के द्वारा निर्वाचक मण्डल की सदस्यता के लिए भी अपने उम्मीदवार खड़े किये जाते हैं। अतः निर्वाचक मण्डल के सदस्यों के निर्वाचन के साथ यह निश्चित हो जाता है कि किस दल का उम्मीदवार राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होगा। सामान्यतः किसी राज्य में जिस दल को निर्वाचक मण्डल की सदस्यता के चुनाव में अधिकतम मत प्राप्त होते हैं वह दल राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति पद के लिए उस राज्य के सभी निर्वाचक मतों को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। उदाहरण के लिए[6] न्यूयार्क राज्य से, जिसकी जनसंख्या 1 करोड 70 लाख है 1961 ई में 41 सदस्य प्रतिनिधि सदन एवं 2 सदस्य सीनेट के लिए चुने गये थे। मेन (Maine) राज्य का, जिसकी जनसंख्या 1 लाख के करीब है 4 सदस्य (2 सदस्य प्रतिनिधि सदन तथा 2 सदस्य सीनेट) काँग्रेस में प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल में न्यूयार्क राज्य को 43 सदस्य और मेन राज्य को चार सदस्य भेजने का अधिकार है। परन्तु निर्वाचक मण्डल के सदस्यों के निर्वाचन में जिस दल के प्रत्याशियों को अधिक मत प्राप्त होंगे, उसी दल के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को

---

5 1972 ई के राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल की सदस्य संख्या 538 थी।

6 Strong *op cit* p 263

उस राज्य के सभी निर्वाचक मण्डल के सदस्यो के मत प्राप्त होगे। इसस यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति पद के निर्वाचन मे उम्मीदवार बडे राज्यो के सहयोग पर ही अधिकतर निभर रहता है। इस व्यवस्था का एक गम्भीर दोप यह है कि कुछ बडे राज्या का समथन प्राप्त करने वाले, लेकिन कुल जनता के कम मत प्राप्त करने वाले, उम्मीदवार विजयी हो जाते हैं। स्ट्राग ने कुछ प्रमाण इस मत की पुष्टि मे दिये है 1860 ई म अब्राहम लिंकन को 180 निर्वाचक मत और उसके तीन विरोधिया को 123 मत प्राप्न हुए थे। लिंकन के निर्वाचको को 18,60 000 मतदाताआ ने चुना था, जबकि उनके विरोधियो को 28,10 000 मतदाताआ द्वारा चुना गया था। स्पष्ट है लिंकन देश के 40% मतदाताओ के समथन पर ही चुन लिये गये थे। 1888 ई मे हेरीसन को 223 निर्वाचक मत प्राप्त हुए थे और उनके विरोधी क्लीवलैण्ड को 168 मत, जबकि क्लीवलैण्ड के निर्वाचको को 96 हजार स भी अधिक अतिरिक्त मतदाताओ का समथन प्राप्त था। क्लीवलैण्ड का समथन दक्षिणी राज्यो ने किया था जिनकी जनसख्या अधिक थी पर तु निर्वाचक मण्डल मे इन राज्यो के सदस्यो की सख्या कम थी। 1912 ई मे राष्ट्रपति विल्सन को 435 निर्वाचक मत प्राप्त हुए थे, जबकि उनके तीन विरोधिया को 96 मत मिले थे लेकिन विल्सन को अपने विरोधियो की तुलना मे 23 22,453 मत कम मिले थे। यह दोप हाल के निर्वाचना मे और भी स्पष्ट हो गया है। 1940 ई मे रूजवेल्ट को 449 निर्वाचक मत प्राप्त हुए थे, जबकि वेण्डले विलकी को 82 मत मिले थे, लेकिन 4 करोड 90 मतदाताओ मे से रूजवेल्ट को केवल 5 लाख मत अधिक प्राप्त हुए थ। 1948 ई मे राष्ट्रपति ट्रूमैन को 189 के विपरीत 304 निवाचक मत प्राप्त हुए थे, जबकि उन्हे केवल 21 लाख मत अधिक प्राप्त हुए थे। 1960 ई म जान एफ केनेडी ने रिपब्लिकन दल के विरोधी प्रत्याशी निक्सन का 87 निवाचक मतो स पराजित किया था, जबकि 6 करोड 80 लाख कुल जनता के मतो मे से उसे केवल 1,12,881 मत ही अधिक मिल थे।[7]

उपरोक्त दोष को दूर करने के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति क स्थान पर प्रत्यक्ष प्रणाली अपनाने के कई बार सुझाव आये हैं। सविधान निर्माताआ ने यह कभी कल्पना नही की थी कि राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता की इच्छा पर निभर रहने लगेगा एव उसमे राजनीतिक दलो द्वारा महत्वपूण भूमिका निभाई जायेगी। उपरोक्त दोप

7 1972 ई के अमरिकी राष्ट्रपति निर्वाचन के कुछ तथ्य बडे रोचक हैं। निक्सन को प्रचण्ड बहुमत प्राप्त हुआ था। 50 मे से 49 राज्या म निक्सन के पक्ष म मतदान हुआ था। केवल एक राज्य मसाच्युसटस न मक्गवन के पक्ष म मतदान किया था। 538 निर्वाचको म स 521 मत निक्सन को तथा 17 मक्गवन का प्राप्त हुए थे। 1968 ई के राष्ट्रपति चुनावा म जहाँ 73% मतदाताआ न मतदान किया था, वहाँ 1972 ई म कवल 55% मतदाताओ ने ही भाग लिया था।

के बावजूद भी यह एक स्वीकृत तथ्य है कि अमेरिकी राष्ट्रपति संविधान निर्माताओं की इच्छा के विपरीत अब व्यवहार में प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होने लगा है जो अपेक्षाकृत अधिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था है।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं अधिकार

अमेरिकी राष्ट्रपति व्यापक शक्तियों से युक्त विश्व का प्रमुख शासनाधिकारी है। यह शक्तियाँ उसे संविधान, काँग्रेस की विधियों, परम्पराओं एवं न्यायिक निर्णयों से प्राप्त हुई हैं।

कार्यपालिका शक्तियाँ

संयुक्त राज्य अमरिका का राष्ट्रपति राज्य और कार्यपालिका दोनों का ही अध्यक्ष है। वह देश का प्रमुख प्रशासक है। राज्य की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। मुख्य कार्यपालिका के रूप में देश के संविधान, विधियों एवं संधियों तथा संघीय न्यायपालिका के निर्णयों को देश भर में क्रियान्वित करना राष्ट्रपति का ही दायित्व है। वह काँग्रेस की विधियों द्वारा निर्धारित कार्यों के क्रियान्वयन हेतु विभागाध्यक्षों तथा अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देता है। संविधान की धारा 2 (उपभाग 2, क्लॉज 1) के अनुसार विधियों का भली भाँति क्रियान्वयन उसका दायित्व है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार यह देखना भी राष्ट्रपति का ही दायित्व है कि प्रत्येक अधिकारी अपने कर्तव्य का भली प्रकार सम्पादन करता है। वह संघीय प्रशासकीय अधिकारियों एवं संघीय न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। लेकिन इन नियुक्तियों को सीनेट के दो तिहाई बहुमत से अनुमोदित होना चाहिए। उच्च पदों, जैसे, मन्त्रीगण, राजदूत, उप राजदूत, संघीय न्यायाधीश एवं संघीय आयोगों के अध्यक्षों एवं सदस्यों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति सीनेट के अनुमोदन से ही करता है। लेकिन देश की 80% शासकीय नियुक्तियाँ लोकसेवा आयोग द्वारा की जाती हैं।

कभी कभी सीनेट ने राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियों को अस्वीकृत किया है। परन्तु कुछ राष्ट्रपति सीनेट द्वारा अस्वीकृत पदाधिकारियों को अपने पद पर बनाये रखने में सफल रहे थे। सीनेट जिन नियुक्तियों का अनुमोदित नहीं करती वे केवल सीनेट के सत्र के अन्त तक ही चलती हैं। इन्हें अवकाशकालीन नियुक्तियाँ या अस्थायी नियुक्तियाँ कहते हैं। सीनेट के सत्र की समाप्ति के पश्चात राष्ट्रपति यदि चाहे तो पुनः उसी व्यक्ति को उसी पद पर नियुक्त कर सकता है और इस प्रकार सीनेट की इच्छा के विपरीत भी नियुक्ति को जारी रख सकता है। राष्ट्रपति कूलिज ने इसी प्रकार चार्ल्स बी वारेन को अटॉर्नी जनरल के पद पर कायम रखा था। लेकिन इससे सीनेट के असन्तुष्ट हो जाने का भय रहता है।

नियुक्तियों के सम्बन्ध में सीनेट के सौजन्य (Senetorial Courtesy) नामक प्रथा का विकास हुआ है। इस प्रथा के फलस्वरूप राष्ट्रपति के द्वारा की जाने

वाली नियुक्तिया को सीनेट स्वीकृति प्रदान कर देती है और राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तिया का कदाचित ही विरोध किया जाता है। सीनेट के सौजन्य का यह अथ है कि राष्ट्रपति जब किसी सघीय अधिकारी की किसी राज्य के क्षेत्र मे नियुक्ति करता है अर्थात स्थायी नियुक्तियाँ करता है तो उसे उस राज्य के सीनेटर से नियुक्ति के पूव परामश कर लेना चाहिए। यदि सीनेटर राष्ट्रपति के प्रस्ताव स सहमत है तो सीनेट के अन्य सदस्यगण भी अपने सहयोगी के हित म उस नियुक्ति को सहज ही स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। लेकिन राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित नियुक्ति सीनेट द्वारा अनिवायत अस्वीकृत कर दी जाती है, यदि सम्बन्धित राज्य के राष्ट्रपति के दल के सीनेटर को ही नियुक्ति पर आपत्ति हो। उदाहरण के लिए, राष्ट्रपति रूजवल्ट ने वेस्ट वर्जीनिया के सघीय जिला न्यायालय म फ्लाइड एच रावट की न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति की थी। उस राज्य का गवनर इस नियुक्ति के पक्ष म था परन्तु दोनो सीनेटरो द्वारा आपत्ति किये जान के कारण सीनेट ने इस नियुक्ति को अस्वीकृत कर दिया था।

सविधान निर्माता सीनेट द्वारा नियुक्तिया की स्वीकृति को राष्ट्रपति की शक्तिया पर एक प्रतिबन्ध मानते थे। परन्तु यह व्यवस्था शीघ्र ही राष्ट्रपति को अवाछनीय रूप स प्रभावित करने के लिए सगठित राजनीतिक दबाव के रूप म प्रयोग की जाने लगी है।

राष्ट्रपति को पदाधिकारिया को पदच्युत करने की शक्ति भी प्राप्त है। न्याया धीशो को छोडकर वह उन समस्त अधिकारियो को जिन्हे वह नियुक्त करता है, पदच्युत कर सकता है। 1876 ई मे प्रेसीडेण्ट जानसन एव काग्रेस मे इस सम्बन्ध मे एक विवाद उत्पन्न हुआ था। फलस्वरूप काग्रेस ने एक विधि द्वारा यह व्यवस्था की थी कि राष्ट्रपति सीनेट की अनुमति बिना अधिकारियो को पदच्युत नही कर सकता। राष्ट्रपति विल्सन ने एक पोस्ट मास्टर मिस्टर मेयस को पदच्युत कर दिया। न्यायालय ने 1876 ई की काग्रेस की उपयुक्त विधि को मयस बनाम सयुक्त राज्य अमरिका के विवाद म अवधानिक घोषित किया था। अत राष्ट्रपति सभी प्रशासकीय पदाधिकारियो को अपनी इच्छानुसार पदच्युत कर सकता है। लेकिन नियामकीय आयुक्तो (Regulatory Commissioners) की स्थिति इससे भिन्न है। उनके अद्ध-न्यायिक अधिकारी होने के कारण उन्हे विधि का सरक्षण प्राप्त है।

वैदेशिक मामलो म अमेरिकी राष्ट्रपति को अत्यधिक विस्तृत एव व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है। वह राजदूतो की नियुक्ति करता है एव विदेशी राजदूतो का स्वागत करता है। वह देश की विदेश नीति का निर्माता है। सीनेट की सहमति से वह सन्धियाँ करता है। इसके लिए सीनेट के दो तिहाई बहुमत का अनुसमथन आवश्यक है। लेकिन राष्ट्रपति को सीनट की सहमति क बिना ही कायकारिणी

समझौते (executive arrangements) करने का अधिकार है।[8] यह समझौते व्यवहार में सन्धियों की भाँति ही प्रभावशाली होते हैं। व्यापारिक समझौते भी कार्यकारिणी समझौतों की श्रेणी में ही आते हैं। ये समझौते सीनेट की सहमति को प्राप्त करने में होने वाली कठिनाइयों से बचने के लिए किए जाते हैं। 1937 ई में अमरीकी राष्ट्रपति द्वारा 10 सन्धियाँ तथा 27 कार्यकारिणी समझौते किए गये। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का अध्ययन एवं तत्सम्बन्धी आवश्यक सूचना प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति विशेष राजदूतों की नियुक्ति भी करता है।

राष्ट्रपति विदेश नीति का अधिकृत निर्माता एवं व्याख्याता होता है यद्यपि संविधान में स्पष्ट शब्दों में यह उल्लिखित नहीं है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त संवैधानिक व्याख्याओं में राष्ट्रपति को विदेश नीति का निर्माता माना गया है तथा तत्सम्बन्धी अधिकार भी उसे प्रदान किए गए हैं। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार राष्ट्रपति को संघीय शासन के मुख्य अधिकारी के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में संविधान की धाराओं के अधीन शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए।[9] राष्ट्रपति के राजदूतों को नियुक्त करने एवं दूसरे देशों के राजदूतों का स्वागत करने के अधिकार में अन्य देशों को मान्यता देने की शक्ति निहित है। किसी देश को मान्यता देना या न देना राष्ट्रपति के स्वविवेक पर निर्भर करता है।

राष्ट्रपति को अन्य देशों के साथ समझौते करने का अधिकार कांग्रेस दे सकती है। उदाहरणार्थ, 1938 ई के Reciprocal Trade Act द्वारा राष्ट्रपति को विदेशों से व्यापारिक समझौते करने का अधिकार दिया गया था जिसके अधीन वह सीनेट की स्वीकृति के बिना ही करों में 50% तक की कमी कर सकता है।

राष्ट्रपति को सैनिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। वह देश की जल थल एवं वायु सेनाओं का मुख्य सेनापति है। उसे सीनेट की अनुमति से सैनिक एवं नौसैनिक अधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार है एवं युद्धकाल में वह उन्हें इच्छानुसार पदच्युत कर सकता है। मुख्य सेनापति के रूप में राष्ट्रपति को देश की रक्षा एवं शत्रुओं को परास्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अधिकार होता है।

कांग्रेस को युद्ध की घोषणा का अधिकार प्राप्त है लेकिन युद्ध को स्थगित करने एवं समाप्त करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। राष्ट्रपति विदेश नीति के संचालन के द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है कि युद्ध अनिवार्य हो जाये। उदाहरणार्थ द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ के पूर्व तथा बाद में राष्ट्रपति

8 इस प्रकार के कार्यकारिणी समझौते के कुछ उदाहरण हैं प्रोटोकोल (1901 ई) अटलाण्टिक चार्टर (1941), विध्वंसक अड्डा (Destroyer's Base) समझौता।
9 Curtis Wright Case U S 1936

रूजवेल्ट ने धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध भाषण दिये थे। राष्ट्रपति मैंकिनले न हवाना के लिए एक जगी जहाज भेज दिया था। इस घटना ने स्पन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा को अनिवाय बना दिया था। 1918 ई मे राष्ट्रपति विल्सन ने साइबेरिया मे मित्र राष्ट्रा की सेना के सहायताथ अमेरिकी सैनिक भेजे थे जब कि रूस व अमेरिका मे युद्ध की स्थिति नही थी। राष्टपति विल्सन ने जमन राजदूत की चेतावनी के बावजूद भी लूसीटानिया जहाज को इगलण्ड भेजा था। राष्ट्रपति हार्डिज एव कूलिज ने करेवियन देशो मे अराजकता को दबाने के लिए सना भेजी थी। 1941 ई मे राष्ट्रपति रूजवेल्ट के काल मे जमनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के पूव ही अमेरिकी नौसेना न 1940 ई म ही जमन पनडुब्बियो पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। 1950 ई मे राष्ट्रपति ट्रूमैंन ने अमेरिकी फौजो को कोरिया मे आक्रमणकर्ताओ के प्रतिरोध के आदेश काग्रेस से अधिकृत किये जान के पूव ही दे दिये थे। युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर राष्ट्रपति की कायपालिका एव सैनिक शक्ति म असीमित वद्धि हो जाती है। सेनापति के रूप म वह युद्ध राजनीति सम्बन्धी अन्तिम निणय करता है। अब राष्ट्रपति को अणु बम के प्रयोग के असीमित अधिकार प्राप्त हो गये हैं। काग्रेस उसकी सत्ता म वद्धि कर सकती है। प्रथम युद्ध काल मे प्रेसीडेण्ट विल्सन को काग्रेस ने उत्पादन नियन्त्रित करने, युद्ध हतु विभिन्न वस्तुओ के मूल्य निधारित करने एव सेना के लिए खाद्य सामग्री को उपलब्ध करने के लिए अधिकार प्रदान किये थे। द्वितीय विश्वयुद्ध काल मे राष्ट्रपति रूजवेल्ट को व्यापक अधिकार दिये गये थे जिनके फलस्वरूप वह कम बढ सवधानिक तानाशाह ही बन गये थे। कांग्रेस की विधि के अधीन विजित प्रदेशा म सैनिक शासन स्थापित करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। उदाहरण के लिए, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात इटली एव जापान मे सैनिक शासन की स्थापना की गयी थी। राष्ट्रपति देश म सघीय विधिया को क्रियान्वित करने क लिए भी सेना का प्रयोग कर सकता है।

सकट-काल म कांग्रेस राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान करती है। सकट-काल की व्याख्या करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा इन शक्तिया के अधीन अधिकोषो (बैंका) की छुटिटया घोषित की गयी थी एव स्वण का आयात व निर्यात निषिद्ध कर दिया गया था। द्वितीय विश्व-युद्ध की घोषणा के पश्चात अनेक विधियाँ काग्रेस द्वारा पारित की गयी थी जिनके फलस्वरूप राष्ट्रपति को सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म नियत्रण सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त हो गय थे।

विधायी शक्तियाँ

कांग्रेस का सदस्य न होते हुए भी राष्ट्रपति को व्यापक विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। राष्ट्रपति कांग्रेस के नाम सन्देश भेजता है और विधि निमाण म महत्वपूण भूमिका निभाता है। कभी कभी इन सन्देशा के माध्यम से राष्ट्रपति विधि विशेष को पारित करने की आवश्यक्ता एव वाछनीयता पर बल दता है। कांग्रेस के नाम राष्ट्रपति

के सन्देशों का अमरीकी राजनीति में विशेष महत्व है। इन सन्देशों के माध्यम से, जो मुख्य समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते हैं, राष्ट्रपति जनता को प्रभावित करता है। कभी-कभी सन्देशों का उद्देश्य विदेशी राज्यों को सम्बोधित करना होता है तथा उनके द्वारा देश की विदेश नीति के मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है, जैसे, मुनरो सिद्धान्त। राष्ट्रपति के सन्देशों की उपेक्षा किसी कांग्रेस के लिए कर सकना सम्भव नहीं है।

राष्ट्रपति को कांग्रेस के विशेष अधिवेशन आहूत करने का अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रपति कांग्रेस की सामान्य अवधि को आवश्यक विधि निर्माण हेतु बढ़ाने की माँग कर सकता है। यदि कांग्रेस स्वीकार नहीं करती तो वह विशेष अधिवेशन आहूत कर सकता है। कांग्रेस के विशेष अधिवेशन आहूत करने के लिए राष्ट्रपति एक घोषणा करता है तथा उसके उद्देश्य को स्पष्ट करता है। स्मरणीय है कि सामान्यतः राष्ट्रपति को कांग्रेस के अधिवेशन को स्थगित करने का अधिकार नहीं है लेकिन दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में वह कांग्रेस का अधिवेशन स्थगित कर सकता है। इस शक्ति के प्रयोग का अभी तक अवसर नहीं आया है क्योंकि कांग्रेस का सदैव ही इस सम्बन्ध में एकमत है।

कार्यकारिणी आज्ञाप्तियाँ (Executive Orders) जारी करने का अधिकार राष्ट्रपति को कांग्रेस ने प्रदान किया है। इनकी तुलना हम प्रदत्त विधान (delegated legislation) से कर सकते हैं। कांग्रेस के पास विधि निर्माण सम्बन्धी अत्यधिक कार्य रहता है अतः वह राष्ट्रपति को विधि के अधीन आदेश जारी करने का अधिकार प्रदान कर देती है। राष्ट्रपति द्वारा इस अधिकार का व्यापक रूप में प्रयोग किया जाता है।

राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों पर हस्ताक्षर करके उन्हें स्वीकृति प्रदान करता है। तत्पश्चात् ही वे विधि बनते हैं। वह कांग्रेस द्वारा पारित समस्त विधेयकों को स्वीकृत करने के लिए बाध्य नहीं है। विधियों को अस्वीकृत करने की शक्ति को निषेधाधिकार (Veto) की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्रपति को दो प्रकार के निषेधाधिकार प्राप्त हैं—'पूर्ण' तथा 'अस्थायी' निषेधाधिकार। यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक को 10 दिन के भीतर अपनी आपत्तियों सहित उस सदन को जिसमें वह सर्वप्रथम प्रस्तावित किया गया था लौटा देता है और कांग्रेस के दोनों सदन 2/3 बहुमत से पृथक-पृथक रूप में उस विधेयक को पुनः पारित कर देते हैं तो वह विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के अभाव में भी विधि बन जाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति यदि किसी विधि प्रस्ताव को प्राप्त करने के 10 दिन के भीतर अस्वीकृत नहीं करता और न उसे पुनर्विचार हेतु कांग्रेस को ही लौटाता है तो वह विधेयक स्वयमेव ही विधि बन जाता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है लेकिन वह उसके सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाता तथा राष्ट्रपति को

विधेयक भेजने के 10 दिन म ही कांग्रेस का अधिवेशन भी स्थगित हो जाता है तो वह विधेयक स्वत ही समाप्त हो जाता है। इसे जेबी निषेधाधिकार या पॉकिट वीटो (Pocket Veto) कहते है। यह पूर्णरूपेण निरपेक्ष (absolute) होता है। बहुधा कांग्रेस क सत्र क अन्तिम दिनो म बहुत से विधेयक काय समाप्ति के लिए शीघ्रता मे पारित कर दिये जाते है। राष्ट्रपति ऐसे विधेयको पर, जिनके वह विरुद्ध होता है तथा जिनकी असफलता का दायित्व वह स्वय वहन नही करना चाहता, कोई कायवाही नही करता है अर्थात् न तो हस्ताक्षर करता है और न कांग्रेस को ही लौटाता है। फलस्वरूप वे विधेयक स्वयमेव ही समाप्त हो जाते है।

राष्ट्रपति निषेधाधिकार का प्रयोग सम्पूर्ण विधेयक पर करता है, उसके किसी अश पर नही। सवैधानिक सशोधना पर निषेधाधिकार का प्रयोग नही किया जा सकता है।

प्रारम्भिक राष्ट्रपतियो, वाशिगटन आदि ने निषेधाधिकार का प्रयोग केवल असवैधानिक विधियो के विरुद्ध ही किया था। राष्ट्रपति जैक्सन ने सवप्रथम इस अधिकार का प्रयोग कायपालिका के अधिकारो को व्यवस्थापिका के अतिक्रमण से बचाने के लिए किया था। अब निषेधाधिकार का अधिक प्रयोग किया जाता है। प्रथम छ राष्ट्रपतिया न केवल 3 विधेयका को अस्वीकृत किया था। इसके विपरीत, राष्ट्पति फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट ने 631 विधेयको पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया था। राष्ट्रपति द्वारा जो विधेयक पुनर्विचार क लिए कांग्रेस को भेजे जाते है, वे शायद ही कांग्रेस द्वारा पुन पारित किय जाते हो क्योकि कांग्रेस के पास सदव ही समय का अभाव रहता है। राष्ट्रपति आइजनहोवर के पूव तक 1190 बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया था। इनमे से केवल 71 निषेधाधिकार कांग्रेस द्वारा विधेयको के पुन पारित करने के कारण निष्प्रभावी हो गय थे।

न्यायिक शक्तिया

राष्ट्रपति को क्षमा प्रदान करने एव प्राणदण्ड को स्थगित करने के अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारो का प्रयोग वह मानवीय आधार पर करता है। उसकी यह शक्ति निरपेक्ष है। किसी के सहयोग एव स्वीकृति से वह इसका प्रयोग नही करता। परन्तु वह केवल सघीय विधिया से सम्बन्धित अपराधियो को ही क्षमा प्रदान कर सकता है। महाभियोग के दोषी और राज्य विधियो के उल्लघन के दोषी अपराधियो को वह क्षमा नही कर सकता है। उसे सावजनिक क्षमा प्रदान करने का भी अधिकार है। समय-समय पर अनेक राष्ट्रपतिया द्वारा इस शक्ति का प्रयोग किया गया है। सावजनिक क्षमादान के अन्तगत ही Sedition Act, 1798 के अधीन दण्डित सभी अपराधिया को राष्टपति ने क्षमा किया था। 1865 ई मे सयुक्त राज्य के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करने वाले सभी व्यक्तियो को कुछ शर्तों पर राष्ट्रपति जॉनसन ने क्षमा प्रदान की थी। दण्ड के पूव एव पश्चात दोना ही अवस्थाओ म राष्टपति

क्षमा कर सकता है। व्यवहार म राष्ट्रपति सामान्यत इस अधिकार का प्रयोग स्वयं न करके न्याय विभाग की सिफारिश पर काम करता है।

राष्ट्रपति सविधान की रक्षा की शपथ लेता है अत सविधान की रक्षा करना उसका दायित्व है। लेकिन सयुक्त राज्य अमरिका के सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा वास्तव में सविधान क सरक्षक का दायित्व निभाया जाता है। कार्यपालिका क रूप मे राष्ट्रपति के कार्यों का सविधान विरोधी होने पर सर्वोच्च न्यायालय उन्हे असवधानिक घोषित कर सकता है।[10]

कॉंग्रेस एव राष्ट्रपति

अमरिकी सविधान निर्माता राष्ट्रपति को महत्त्वाकाक्षा तथा दलबन्दी से मुक्त रखकर, हेमिल्टन के शब्दो मे, उसे अराजकता के विरुद्ध प्रधान अवरोध बनाना चाहते थे। इसीलिए उसके अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गयी थी। वे कार्यपालिका को शक्तिशाली बनाना चाहते थे जिससे कि राष्ट्रीय सरकार स्थायी, शक्तिशाली एव सक्षम हो सके। सविधान निर्माता कार्यपालिका का अत्यधिक शक्तिशाली बनाने के दोषो से भली प्रकार परिचित थे। अत राष्ट्रपति की शक्तियो पर सीनेट व सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिबन्ध स्थापित किये गये हैं। राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली सभी नियुक्तियो एव सन्धियो के अनुसमर्थन का अधिकार सीनेट को दिया गया है तथा कॉंग्रेस को शासन के तीनो अगो की शक्तियो के प्रयोग के सम्बन्ध म विधि निर्माण क अधिकार हैं। अत विधि निर्माण एव कार्यपालिका विभाग क अन्य अधीनस्थ अगो के निर्माण के लिए राष्ट्रपति कॉंग्रेस पर निर्भर है।[11] लेकिन शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण कांग्रेस एव राष्ट्रपति दोनो ही एक दूसरे से पर्याप्त स्वतन्त्र है। दोनो का कार्यकाल सुनिश्चित है। कांग्रेस भले ही राष्ट्रपति से असन्तुष्ट हो लेकिन महाभियोग के अतिरिक्त किसी अन्य रीति से राष्ट्रपति को अपने पद स पृथक नही कर सकती। यह महाभियोग की व्यवस्था भी बडी जटिल है। व्यवहार म इसका प्रयोग केवल एक बार 1868 ई मे राष्ट्रपति एण्ड्रू जक्सन के विरुद्ध किया गया था वह भी असफल रहा और महाभियोग पारित न हो सका। राष्ट्रपति के विरुद्ध देशद्रोह, उत्कोच या ऐसे ही किसी अपराध या महापातक सम्बन्धी आरोप प्रतिनिधि आगार द्वारा लगाये जाने तथा सीनेट द्वारा जाँच के पश्चात 2/3 बहुमत स आरोपो क सिद्ध होने पर राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग पारित हो सकता है एव उसे पदच्युत किया जा सकता है।[12]

---

10 सयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार व कर्तव्य के लिए देखिए अध्याय 29।

11 Beard *American Government & Politics* 1949, p 200

12 राष्ट्रपति रिचार्ड निक्सन के विरुद्ध महाभियोग की चर्चा काफी गरम रही थी, लेकिन उन्होने त्यागपत्र दे दिया।

राष्ट्रपति एव काग्रेस म प्रशासकीय प्रश्नो पर सघर्ष होते रहे है और राष्ट्रपति द्वारा अधिकाधिक शक्ति हथियाने के प्रयत्न का काग्रेस ने समय समय पर विरोध किया है । राष्ट्रपति जैक्सन एव काग्रेस मे ट्रेजरी के प्रश्न पर तीव्र मतभेद उत्पन्न हुआ था । राष्ट्रपति जनसन का मत था कि ट्रेजरी विभाग की नीति को उन्हे काग्रेस की विधि के बिना ही नियन्त्रित करने का अधिकार है । राष्ट्रपति क्लीवलैण्ड ने शासकीय कर्मचारियो के निष्कासन सम्बन्धी कागजो को काग्रेस को दिखाने से इन्कार कर दिया था । 1954 ई मे सीनेटर मकार्थी ने यह माग की थी कि कार्यपालिका कर्मचारियो एव उनसे सम्बन्धित निर्णयो को राष्ट्रपति द्वारा कांग्रेस की समितियो के समक्ष प्रस्तुत करने से नही रोका जाना चाहिए । लेकिन राष्ट्रपति आइजनहोवर ने इस माग को अस्वीकार कर दिया था । इस प्रयत्न को उन्होने राष्ट्रपति की सविधान प्रदत्त शक्तियो को काग्रेस द्वारा हडपने की सज्ञा दी । राष्ट्रपति एव कॉग्रेस मे विरोध का मुख्य कारण यह है कि राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित होने के कारण अपने को सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि मानता है । इसके विपरीत, काग्रेस के सदस्य विभिन्न क्षेत्रो (मतदान-क्षेत्रो) से चुने जाते है । *यदि काग्रेस मे राष्ट्रपति के दल का बहुमत नही होता तो* दोनो मे विरोध अपेक्षाकृत बढ जाता है । सकट काल म कांग्रेस सामान्यत राष्ट्रपति का नेतृत्व स्वीकार कर लेती है । लेकिन सकट के समाप्त होने पर काग्रेस राष्ट्रपति के नेतृत्व को अस्वीकार कर देती है । उदाहरण के लिए, फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के राष्ट्रपति बनने के समय अमेरिका 1930 के दशक की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के अभिशापो से सत्रस्त था । अत सत्तारूढ होने के 100 दिन तक कांग्रेस ने उन सभी विधेयको को पारित किया जिन्हे राष्ट्रपति चाहता था । लेकिन बाद म स्थिति बदल गयी । प्रथम विश्वयुद्ध काल मे राष्ट्रपति विल्सन का काग्रेस द्वारा विरोध नही *किया गया लेकिन युद्धोपरान्त ही राष्ट्रपति विल्सन द्वारा की गयी वार्साई सन्धि का* अनुमोदन सीनेट ने अस्वीकार कर दिया था ।

राष्ट्रपति दल के नेता के रूप मे

राष्ट्रपति अपने दल का नेता होता है । वह जिस दल का नेतृत्व करता है उसका प्रमुख प्रवक्ता होता है । दलीय नेता के रूप मे उसे व्यापक अधिकार प्राप्त होते है तथा उसकी स्थिति काफी दृढ होती है । प्रो आग (Ogg) ने इस स्थिति को विशेष मान्यता दी है । निर्वाचन के पश्चात वह अपने दल की घोषित नीति एव कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है तथा अपने दल से घनिष्ठ सम्बन्ध *बनाये रखता है । राष्ट्रपति के रूप म उसके पास व्यापक अधिकार होते हैं जिनसे* वह लाखो व्यक्तियो को लाभ पहुँचाकर उपकृत कर सकता है । उसके द्वारा हजारो नियुक्तियाँ की जाती हैं, अत दल मे उसकी स्थिति केन्द्रीय हो जाती है । वह दल का अनुगमन नही करता अपितु यथार्थ म उसका नेतृत्व करता है । राष्ट्रपति टाफ्ट का

कथन था कि "राष्ट्रपति दल का नेता है। उसके लिए दल की नीतियों का परित्याग करना सम्भव नही है।"

प्रारम्भ मे राष्ट्रपति दलीय व्यक्ति नही होता था। राष्ट्रपति वाशिंगटन निर्दलीय व्यक्ति थे। लेकिन राजनीतिक दलो के उदय के पश्चात विशेषकर राष्ट्रपति जेफरसन के समय से राष्ट्रपति दलीय आधार पर निर्वाचित होने लगे है। दलीय दायित्व राष्ट्रपति के प्रमुख कर्तव्य बन गये हैं। उसकी दलीय स्थिति ने सविधान प्रदत्त अधिकारो को अधिक सशक्त बना दिया है। अपने दलीय विचारो के समर्थको मे से ही वह अधिकाशत अपने परामर्शदाताओ को नियुक्त करता है। अपने दलीय प्रभाव का उपयोग करके वह अपने दल के सदस्यो के माध्यम से दलीय कार्यक्रम एव नीतियो के क्रियान्वयन के लिए काग्रेस से आवश्यक विधियो का निर्माण कराता है।

मूल्याकन—सयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति केवल अमरिका गणराज्य का कार्यपालिका अध्यक्ष ही नही है अपितु वह राज्य का भी प्रमुख है। राष्ट्रपति जान एफ केनेडी के अनुसार राष्ट्रपति ही राज्याध्यक्ष है। उसका कार्यक्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। राज्य के औपचारिक प्रमुख के रूप म उसे विशेष दायित्व निभाने पडते है। विधि निर्माण म उसकी स्थिति केन्द्रीय है। अधिकाश विधियाँ उसके ही द्वारा प्रस्तावित की जाती हैं। विदेश नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय वही करता है। वह अपने दल का नेता होता है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। किसी भी अन्य देश के अध्यक्ष की अपेक्षा अपने दायित्वो के सम्पादन म उसे व्यापक क्षमता की आवश्यकता होती है। 'वह केवल शासन ही नही अपितु राज्य भी करता है।" राज्याध्यक्ष के औपचारिक दायित्वो म वह विदेशी राजदूतो एव राज्याध्यक्षो का स्वागत करता है। इसके अतिरिक्त छोटे बडे सामाजिक उत्सवो एव समारोहो म भी वह भाग लेता है। कार्यपालिका के प्रमुख के रूप म वह उन सभी दायित्वो का निभाता है जो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। औपचारिक प्रमुख के रूप म वह ब्रिटिश क्राउन के दायित्वो का सम्पादन करता है।

हरमन फाइनर के अनुसार अमरिकी कार्यपालिका—राष्ट्रपति—की 6 मुख्य विशेषताएँ हैं। "यह एक निर्मित कार्यपालिका है लेकिन इसका विकास भी हुआ है, यह एकल कार्यपालिका है, बहुल या सामूहिक नही, यह व्यवहार म जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित है, यह कार्यपालिका से अधिक है, यह काग्रेस से पृथक है, इसका सुधार नही किया जा सकता भले ही इसकी मरम्मत की जा सके।'[13] ब्रोगन के अनुसार, 'अमरिकी राष्ट्रपति राष्ट्र का सम्मानित मूर्तिमान रूप है।'[14] राष्ट्रीय एकता को

13 Finer *op cit*, p 669

14 President is a dignified embodiment of the nation' —Brogan, D W, *An Introduction to American Politics*, p 273

सुदृढ बनाने मे राष्ट्रपति ने महत्वपूण भूमिका निभाइ है, फलस्वरूप उसकी शक्तियो का असाधारण विकास हुआ है।

अमेरिकी राष्ट्रपति का प्रभाव केवल सयुक्त राज्य तक ही सीमित नही है। वह राष्ट्र का तो नतृत्व करता ही है, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति म भी उसका विशिष्ट स्थान है। वह अपने व्यक्तित्व एव नीतिया स परोक्ष रूप म सभी देशा को प्रभावित करता है।

लास्की के अनुसार अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियो पर प्रतिब ध के तीन मुख्य कारण है। प्रथम राष्ट्रपति की सवैधानिक स्थिति उसकी शक्तिया पर एक प्रतिब ध है। वह काग्रेस को नीति का निर्देश मात्र कर सकता है, लेकिन स्वय काँग्रेस को किसी नीति की उपयोगिता एव वाछनीयता के सम्ब ध मे स तुष्ट नही कर सकता। वह काग्रस का सदस्य नही होता। वह राष्ट्र का भले ही नेतृत्व करे परन्तु काग्रेस का वह नेता नही है। उसके अपने दल का काँग्रेस मे बहुमत होने पर भी उसे काग्रेस का सहयाग प्राप्त करने क लिए प्रयत्न करना पडता है। यह सम्भव है कि जिस काग्रस म उसके दल का बहुमत हो वह उसका ही विधेयक अस्वीकार कर दे। वह काग्रेस म नीति का सूत्रपात कर सकता है लेकिन इसक पश्चात उसका उस पर कोई निय त्रण नही होता।

द्वितीय, 1789 ई की परिस्थितिया मे निर्मित अमेरिकी सविधान तत्कालीन अमेरिकी समाज की इस प्रवृत्ति को परिलक्षित करता है कि उन्ह शक्तिशाली शासन की आवश्यकता नही थी। शक्तिशाली कायपालिका का तात्पय है वाशिगटन (राजधानी) का अधिक हस्तक्षेप। अधिक हस्तक्षेप का अथ उस विश्वास का हिला देना है जो व्यापारी वग का आधार होता है। यही कारण है कि अमेरिकी समाज शक्तिशाली राष्ट्रपति के पश्चात बहुधा कमजोर राष्ट्रपति को पस द करता है, विशेषकर एसे राष्ट्रपतिया को जिन्होने निय त्रण की नीति का परित्याग कर दिया हो।

राजनीतिक सत्ता पर अमरिकी व्यापारी वग के बढ़ते हुए आधिपत्य के विरुद्ध सावजनिक अस तोष शक्तिशाली कायपालिका के विरुद्ध तीसरा कारण है। इसके अतिरिक्त शक्तियो का विभाजन, शासकीय निय त्रण द्वारा व्यवस्था की स्थापना के प्रति स देह नवीन करो का व्यवसाय पर विपरीत प्रभाव तथा सास्कृतिक परम्पराएँ शक्तिशाली राष्ट्रपति की धारणा के विरुद्ध अन्य कारण हैं। सास्कृतिक परम्पराएँ समाज एव राज्य के सम्ब धो को निर्धारित करती हैं। अमेरिकी सविधान एक कृषि-प्रधान समाज के लिए निर्मित हुआ था। आज का समाज उद्याग प्रधान है। उस समय कृषि प्रधान समाज म वतमान औद्योगिक समाज की समस्याआ की कल्पना तक नही थी। आज राष्ट्रपति की समस्याएँ सवथा भिन्न हैं। इस परिवर्तित स्थिति मे अमेरिकी जनता यह समझने म असमथ रही है कि राष्ट्रपति राजनीतिक महराब की आधारशिला है। लास्की के

अनुसार कांग्रेस की इच्छाओं से मर्यादित राष्ट्रपति अथाह समुद्र में एक ऐसे नाविक के समान है जो पूर्ण निश्चय के साथ आगे नहीं बढ़ सकता।[15] राष्ट्रपति का एक चार साल उसे अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त समय प्रदान नहीं करता है। जहाँ सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक अमरिकी सर्वोच्च न्यायालय अमरिकी राष्ट्रपति पर एक नियन्त्रण है वहाँ व्यवस्थापिका एवं प्रशासन से पूर्ण सहयोग का अभाव राष्ट्रपति को अपने दायित्व के पूर्ण सम्पादन में एक बड़ी बाधा है। स्मरणीय है राष्ट्रपति टाफ्ट ने राष्ट्रपति के कार्यकाल को 6 या 7 वर्ष करने तथा उसके पुनर्निर्वाचन की सिफारिश की थी। संकट-काल में शक्तिशाली राष्ट्रपतियों का निर्वाचन किया गया है तथा राष्ट्र एवं कांग्रेस ने उनका नेतृत्व स्वीकार किया है। उदाहरण के लिए, लिंकन एवं विल्सन ने कम बढ़ तानाशाही की शक्तियों का प्रयोग किया था। वे संकट-काल में ही पदारूढ़ हुए थे लेकिन संकट की समाप्ति के पश्चात् कांग्रेस ने राष्ट्रपति की शक्तियों को सीमित करने का प्रयत्न किया है। कांग्रेस ने राष्ट्रपति विल्सन द्वारा स्वीकृत वार्साई सन्धि को अस्वीकार कर दिया था। फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट ने प्रथम बार राष्ट्रपति बनने (1932 ई) के तुरन्त बाद कांग्रेस के दोनों सदनों का निर्देशन किया था। लेकिन 1933 ई की गर्मियों के पश्चात् ही कांग्रेस ने राष्ट्रपति की शक्ति को चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया था।

संविधान निर्माता राष्ट्रपति को इतना शक्तिशाली नहीं बनाना चाहते थे। वास्तव में उसकी शक्तियों का निरन्तर विकास हुआ है। इसके निम्न कारण हैं प्रथम, राष्ट्रपति का निर्वाचन व्यवहारतः प्रत्यक्ष हो गया है। वह जनता का प्रमुख नेता तथा देश की प्रमुख कार्यपालिका एवं शासन का प्रमुख प्रवक्ता है। द्वितीय, संघीय शासन की शक्तियों में वृद्धि। तृतीय कांग्रेस की असफलता। चतुर्थ, दल का प्रमुख नेता होने के कारण भी राष्ट्रपति की शक्ति में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण भी राष्ट्रपति के पद का महत्व बढ़ा है। अत्यधिक शक्ति-सम्पन्न होने के कारण, ब्रोगन के अनुसार, राष्ट्रपति तृतीय सदन बन गया है। वह उन मामलों में भी जो परम्परागत रूप में व्यवस्थापिका का क्षेत्र है कांग्रेस के विपरीत मत रखता है।

राष्ट्रपति की शक्ति-सम्पन्नता के सम्बन्ध में एक कटु सत्य यह है कि उसकी शक्ति एवं क्षमता उस पद के धारण करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करती है। विल्सन का कथन था कि राष्ट्रपति का पद एक समय में कुछ तो दूसरे में कुछ रहा है। इसका कारण राष्ट्रपतियों के विभिन्न व्यक्तित्व एवं तत्कालीन भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ हैं। एक तरफ जहाँ जक्सन, विल्सन थियोडोर रूजवेल्ट एवं फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट जैसे सशक्त राष्ट्रपतियों की परम्परा है वहाँ दूसरी ओर कमजोर राष्ट्रपतियों की भी परम्परा है। उप

---

15 Laski *The American Presidency*, 1943 p 30

रोक्त सशक्त राष्ट्रपति अमेरिकी इतिहास के युग-निर्माता रहे हैं एव उन्होने काग्रेस का नेतृत्व किया है, तो दूसरी तरफ हूवर जसे कमजोर राष्ट्रपति थे जिन्होने काग्रेस का विनम्रतापूवक अनुगमन किया था। 1836 ई से 1861 ई एव 1865 ई से 1898 ई तक का काल विशेष रूप से कमजोर राष्ट्रपतिया का काल था।

लास्की के अनुसार, "अमेरिकी राष्ट्रपति के काय व्यापक है, वह राज्य का औपचारिक अध्यक्ष है, विधि निर्माण का व्यापक स्रोत है, सभी कायपालक निणयो का अन्तिम स्रोत है एव देश की विदेश नीति का अधिकृत प्रवक्ता है।"[16]

राष्ट्रपति एव उसका मन्त्रिमण्डल

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल प्रतिनिधि शासन की परम्परागत मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था से सवथा भिन्न है। अमेरिकी सविधान मे केवल यह व्यवस्था है कि "कायपालिका विभागो से सम्बन्धित मामला मे राष्ट्रपति लिखित परामश प्राप्त कर सकता है।"[17] इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति वाशिगटन के समय की कुछ घटनाओ ने अमेरिका की वतमान मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के लिए भूमिका तयार की थी। यद्यपि सविधान निर्माता कायपालिका द्वारा परामश की आवश्यकता को अनुभव करते थे परन्तु इस सम्बन्ध मे उन्होने कोई स्पष्ट व्यवस्था नही की। सीनेट को नियुक्तिया एव सन्धिया के सन्दभ म अनुसमथन की शक्ति देकर सविधान निर्माताआ ने राष्ट्रपति को शासन मे परामश की आवश्यकता की पूर्ति की थी। राष्ट्रपति वाशिगटन ने अमेरिका के मूल निवासियो के विषय मे सीनेट स परामश मागा था क्योकि वाशिगटन की धारणा थी कि सीनेट उपनिवेशो के उच्च सदनो की भाँति एक परामशदायी सदन के रूप म काय करेगा। लेकिन सीनेट ने राष्ट्रपति वाशिगटन के आग्रह की उपेक्षा कर दी। इसके पश्चात ब्रिटिश एव औपनिवेशिक न्यायालयो का अनुगमन करते हुए राष्ट्रपति न सर्वोच्च न्यायालय से परामशदायी निणय के रूप म सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने भी कोई परामश देना अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप राष्ट्रपति वाशिगटन अपने दस प्रशासनिक विभागा के प्रमुख अधिकारिया के सम्मेलन बुलाने एव उनसे परामश करने लगे थ। प्रारम्भ म विभागाध्यक्षो के इस प्रकार के सम्मेलन अनियमित होते थे, लेकिन 1793 ई म विदेशी आक्रमण के भय के कारण राष्ट्रपति ने प्रमुख अधिकारिया की नियमित बैठकें बुलाना प्रारम्भ कर दिया। उसी समय से विभागाध्यक्षा के सम्मेलन को मन्त्रिमण्डल की सज्ञा दी गयी है।

---

16 'The range of the President s function is enormous He is ceremonial head of the State He is a vital source of legislative suggestion He is the final source of all executive decisions He is the authoritative exponent of the nation s foreign policy"— Laski *The American Presidency*, 1943 p 37

17 Article II, Section 2 Clause (1)

आज मन्त्रिमण्डल अमरिकी शासनतन्त्र का एक अनिवार्य एव अभिन्न अंग बन गया है। इसका सविधान म कही उल्लेख नहीं है। इसका विकास 170 वर्षों म हुआ है। अत यह एक अनौपचारिक सस्था है जिसका विकास सुविधा एव परम्परा का परिणाम है।

सगठन

1789 ई म केवल तीन—राज्य, सुरक्षा तथा कोषागार—प्रशासनिक विभाग थ, लेकिन आज इनकी सख्या दस है। उपरोक्त तीनो विभागो क अतिरिक्त शेष सात विभाग हैं व्यापार, श्रम, आन्तरिक मामलो सम्बन्धी, कृषि, डाक, न्याय एव शिक्षा तथा जन कल्याण। मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट क 2/3 बहुमत के समथन से की जाती है। सामान्यत राष्ट्रपति द्वारा जो नाम प्रस्तावित किय जाते हैं उन्ह सीनट स्वीकृति प्रदान कर देती है। लेकिन राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति करते समय अनेक बातो को ध्यान म रखता है, जैसे—विभिन्न क्षेत्रो के भौगोलिक, आर्थिक एव धार्मिक हित, निर्वाचन म सहयोग देने वाले व्यक्ति एव वर्ग, व्यक्तिगत मित्रता एव दलीय सहयोग। वह इन सभी तत्वो को मन्त्रिमण्डल म शामिल करने का प्रयास करता है। 1795 ई से विभिन्न राष्ट्रपतियो ने मन्त्रिमण्डल म अधिकाशत अपने ही दल क सदस्यो को नियुक्त किया है। स्मरणीय है कि राष्ट्रपति वाशिंगटन ने श्री जेफरसन को विदेश सचिव और हैमिल्टन को वित्त सचिव नियुक्त किया था परन्तु उनमे मतभेद उत्पन्न हो गये थे। फलस्वरूप यह अनुभव किया गया कि विभागाध्यक्ष ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो राजनीतिक मामलो म मतभेद न रखते हो। यह आवश्यक नही है कि राष्ट्रपति अपने दल के सदस्य को ही विभागाध्यक्षो के रूप म नियुक्त करे। उदाहरणार्थ, राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 1941 ई म अपने मन्त्रिमण्डल म रिपब्लिकन दल के सदस्यो—हैराल्ड लीवस, हेनरी वालास एव एच एल स्टिमसन—को नियुक्त किया था। 1928 ई म राष्ट्रपति कूलिज ने न्यायाधीश स्टोन (Justice Stone) को अटोर्नी जनरल नियुक्त किया था। थियोडोर रूजवेल्ट एव टाफ्ट दोनो ने डेमाक्रेटिक दल के एक एक सदस्य को अपने मन्त्रिमण्डल म नियुक्त किया था। फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट ने रिपब्लिकन दल के सदस्य स्टिमसन (Stimson) को विदेश-सचिव एव फ्राक नाक्स (Frank Knox) को नौसेना-सचिव नियुक्त किया था। राष्ट्रपति जान एफ केनेडी ने रिपब्लिकन दल के सदस्य डीन रस्क को विदेश सचिव बनाये रखा था। स्मरणीय है कि डीन रस्क को जॉन फोस्टर डलेस की मृत्यु के पश्चात राष्ट्रपति केनेडी के पूर्वगामी राष्ट्रपति आइजनहोवर ने विदेश-सचिव नियुक्त किया था। सचिवो की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति अन्य व्यक्तियो से भी परामर्श कर सकता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति विल्सन ने अपने सचिव टयूमलटी (Tumulty) से किसी व्यक्ति का नाम मन्त्रिमण्डल की सदस्यता के लिए प्रस्तावित करने को कहा था। टयूमलटी ने

राष्ट्रपति विल्सन को लिण्डसे गैरीसन (Lindsey Garrison) का नाम प्रस्तावित किया जिससे उसके बहुत कम सम्ब ध थे। राष्ट्रपति विल्सन न गैरीसन को अपने मन्त्रिमण्डल म युद्ध म त्री नियुक्त किया था। राष्ट्रपति विल्सन का गैरीसन से कोई पूव परिचय नही था। यह भी आवश्यक नही कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को राजनीतिक अनुभव हो। राष्ट्रपति हूवर ने राजनीतिक जीवन से पूण अनविज्ञ चार्ल्स आदम (Charles Adam) को नौसना सचिव नियुक्त किया था। अमेरिकी राष्ट्रपति को अपने सचिवो को नियुक्त करते समय उन सब बातो का ध्यान नही रखना पडता है जो ब्रिटिश प्रधानम त्री रखता है। ब्रिटिश प्रधानम त्री के मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके सहयोगी होते ह। स्मरणीय है, अमेरिकी राष्ट्रपति अपने सहयोगियो की एक टीम का चयन नही करता हे। यह सम्भव है कि वह जिनको चुनता है उन्ह वह जानता भी न हो। कम से कम यह तो निश्चित ही है कि नियुक्त मन्त्रियो मे से कुछ तो एक दूसरे को निश्चय ही नही जानते। लास्की के अनुसार मन्त्रिमण्डल का चुनाव करते समय वह कम से कम एक या दो ऐसे व्यक्तियो का चयन अवश्य करता है जिनका काग्रेस म प्रभाव होता है। मन्त्रिमण्डल मे एक सदस्य अनिवायत दल की देखभाल एव व्यवस्था करने वाला होता है। राष्ट्रपति देश के विभि न क्षेत्रो एव धार्मिक तत्वो का भी मन्त्रिमण्डल मे प्रतिनिधित्व देन का प्रयत्न करता है। वह यहूदी समाज के मतो को प्राप्त करन के लिए एक यहूदी सदस्य को अवश्य नियुक्त करता है। इसके अतिरिक्त, स्त्रिया एव मजदूर दलो को भी मन्त्रिमण्डल मे प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्यगण राष्ट्रपति के प्रसाद पयन्त ही अपने पद पर रहते हैं।

प्रकृति

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाति काग्रेस के दोनो म से किसी सदन के भी सदस्य नही होते। वे काग्रेस के सत्रो एव वाद विवादो मे भाग नही लेते है, वे कवल काग्रेस की समितियो के समक्ष प्रस्तावित विधेयको क समथन म उपस्थित हो सकत हैं। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के केन्द्रीय सिद्धान्त —मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व—का पूण अभाव होता है। राष्ट्रपति हार्डिंग के मन्त्रिमण्डल म हूवर (Hoover) एव ह्यूस (Huges) म त्री थे जो तेल घोटाला काण्ड स सम्बन्धित थ। लेकिन न तो जनता, न सम्बन्धित मन्त्रियो और न राष्ट्रपति को ही इसकी कोई चिन्ता थी। ऐसा यदि इगलण्ड म हुआ होता तो उसका प्रभाव सम्पूण मन्त्रिमण्डल की स्थिति पर पडता। प्रशासनिक नीतियो के सम्ब ध म सचिवो द्वारा जनता म विचार व्यक्त किये जाते है। उनसे यह आशा की जाती है कि वे मन्त्रिमण्डल की गोपनीयता को भग नही करेंग। राष्ट्रपति विल्सन ने कृषि म त्री हाउस्टन (Houston) को लिखा था कि 'मुझे आश्चय है कि एक या दो मन्त्री मन्त्रिमण्डल की बैठको की हर बात हर एक से कहते फिरत है। मैं मन्त्रिमण्डल से स्वतन्त्रतापूवक विचार

विमर्श करना चाहता हूँ। हर बात तत्क्षण जनता को नही बतायी जा सकती। यह मेरा विशेषाधिकार है कि मैं ही यह निर्धारित करूँ कि क्या कब और कैसे कहा जायगा। सभी विचार विमर्श मन्त्रिमण्डल म पूरी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक होने चाहिए। यदि ऐसा सम्भव नही है तो मेरे लिए सभी गोपनीय बाता पर मन्त्रिमण्डल म विचार करना सम्भव नहीं होगा।"

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति की अनुमति से नवीन नीतियाँ प्रारम्भ कर सकते हैं।

मन्त्रिमण्डल के निर्णय राष्ट्रपति के लिए केवल परामर्श या सलाह के रूप म होते हैं। उन्हें किसी सामूहिक मण्डल के सयुक्त कार्यों की स्थिति प्रदान नही की जा सकती। राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के निर्णयो को मानने के लिए भी बाध्य नही है। वह मन्त्रियो के परामर्श को अस्वीकार कर सकता है। यह भी सम्भव है कि वह मन्त्रियो से परामर्श ही न करे। सम्भव है कि किसी मन्त्री से महत्वपूर्ण विषय म परामर्श ही न किया गया हो। निर्णय करने मे मन्त्री से अधिक सहायक कोई प्रभावशाली सीनेटर या कांग्रेस का सदस्य हो सकता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य के रूप मे वे कभी कभी राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित निर्णयो को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेते हैं। राष्ट्रपति के निर्णयो को स्वीकार करने के अतिरिक्त उनके समक्ष अन्य कोई विकल्प भी नही होता। राष्ट्रपति पर मन्त्रिमण्डल का या उसके बहुमत का निर्णय बन्धनकारी नही है। राष्ट्रपति लिंकन ने एक बार एक मामला मन्त्रिमण्डल के समक्ष उपस्थित किया था। मन्त्रिमण्डल के सातो सदस्यो ने उसका विरोध किया। राष्ट्रपति लिंकन ने इस पर कहा था कि "सात विपक्ष म है लेकिन एक पक्ष मे है, अत एक ही की विजय है।"

मन्त्रिमण्डल के समस्त सदस्यो को राष्ट्रपति की आज्ञा का पालन करना होता है और जो सदस्य ऐसा नही करते हैं उन्ह मन्त्री पद से त्यागपत्र देना पडता है। कोई भी मन्त्री राष्ट्रपति का प्रतिस्पर्द्धी नही हो सकता। राष्ट्रपति विल्सन एव उसके विदेशमन्त्री लेंगसिंग मे मतभेदो के उग्र होने पर लेंगसिंग को ही त्यागपत्र देना पडा था। राष्ट्रपति विल्सन 1920 ई म अस्वस्थ थे। लेंगसिंग ने मन्त्रिमण्डल का वरिष्ठ सदस्य होने के नाते मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाई थी। राष्ट्रपति न लेंगसिंग के इस कृत्य की भर्त्सना करते हुए उन्ह लिखा था कि 'क्या यह सत्य है कि मेरी अस्वस्थता के दौरान तुमने कार्यकारी प्रधानो के सम्मेलन आयोजित किये हैं? हमारी सवैधानिक व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति (केवल राष्ट्रपति और कांग्रेस) को ही सार्वजनिक मामलो के सम्बन्ध म कार्यकारिणी के प्रधानो के विचार जानने का अधिकार है। राष्ट्रपति की सत्ता को इस प्रकार हस्तगत करने के औचित्य का कोई कारण मैं तुम्हारे पत्रो मे नही पाता हूँ।"

लास्की ने अमेरिकी मन्त्रिमण्डल की प्रकृति का निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति का परामर्शदाता है। वह सहयोगियों की समिति नहीं है जिनके साथ राष्ट्रपति को कार्य करना पड़ता हो और जिनकी सहमति पर वह निर्भर हो। सयुक्त राज्य अमरिका में मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का अभाव है।'[18] मन्त्रिमण्डल के प्रति सप्ताह सम्मेलन होते हैं जिसमें केवल उन्ही प्रश्नों पर विचार-विमर्श होता है जिन्हें राष्ट्रपति उपस्थित करता है। महत्वपूर्ण विषयों का मन्त्रिमण्डल के समक्ष उपस्थित नहीं किया जाता है। राष्ट्रपति की इच्छा के विपरीत सारे मन्त्रिमण्डल की बात भी नहीं चल सकती है। ऐसा कोई विभाग नहीं है जिसके नीति निर्धारण में राष्ट्रपति का स्थान प्रमुख न हो। वह सभी (मन्त्रियों) के निर्णयों का पुनरावेदनीय न्यायालय है। उसका निर्णय अन्तिम है। सामूहिक रूप से मन्त्रिमण्डल का राष्ट्रपति की भाँति राष्ट्र या कांग्रेस पर कोई प्रभाव नहीं होता। कुछ मन्त्री निस्सन्देह राष्ट्रपति को प्रभावित करने में सफल होते हैं लेकिन कभी कोई मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति को नियन्त्रित नहीं कर सका है। सामान्यत मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य यह जानते हैं कि वे राष्ट्रपति की छत्रछाया में ही अपने पद पर रह सकते हैं। मन्त्री की स्थिति राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करती है।[19] स्पष्ट है, अमेरिकी केबिनेट ब्रिटिश अर्थों में मन्त्रिमण्डल नहीं है।[20]

मन्त्रिमण्डल तथा राष्ट्रपति के सम्बन्ध बहुत कुछ दोनों के व्यक्तित्वों पर निर्भर करते हैं। फलस्वरूप विभिन्न समयों में उनके सम्बन्धों में अन्तर रहा है। बुचनान (Buchnnan) एव हार्डिंज (Hardinge) जैसे कमजोर राष्ट्रपतियों ने अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को बहुत अधिक छूट दी थी। इसके परिणाम कभी कभी हानिकारिक भी होते हैं। शक्तिशाली राष्ट्रपति इसके विपरीत, सम्भव है, किसी एक सदस्य पर बहुत अधिक विश्वास करता हो। किसी भी मन्त्री के लिए दृढ निश्चयी राष्ट्रपति को नियन्त्रित करना असम्भव होता है। कुछ राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को सहयोगी मानते थे तो दूसरे अधीनस्थ कर्मचारी। कुछ राष्ट्रपति योग्य एव क्षमतायुक्त व्यक्तियों को मन्त्री पद देने में विश्वास करते थे तो कुछ मन्त्री राष्ट्रपति को निर्देशन एव क्षमता का एकमात्र स्रोत मानते थे। राष्ट्रपति जैक्सन ने दो वर्षों तक मन्त्रिमण्डल का कोई सम्मेलन ही नहीं बुलाया था। वे उसे एक कष्टसाध्य दायित्व मानते थे। एण्ड्रू जैक्सन के अपने व्यक्तिगत सलाहकार थे जिन्हे 'पाकशाला मन्त्रिमण्डल' (Kitchen Cabinet) की सज्ञा दी

18 The Cabinet is a body of advisors to the President, it is not a Council of colleagues with whom he has to work and upon whose approval he depends In United States, collective cabinet responsibility does not exist '—Laski *op cit*, p 82

19 *Ibid*, pp 82 97

20 "American Cabinet is not a Government, as is the British' —Bailey, S D *Aspects of American Government*, p 30

विमर्श करना चाहता हूँ । हर बात तत्क्षण जनता को नही बतायी जा सकती । यह मेरा विशेषाधिकार है कि मैं ही यह निर्धारित करूँ कि क्या कब और कैसे कहा जायगा । सभी विचार विमर्श मन्त्रिमण्डल म पूरी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक होने चाहिए । यदि ऐसा सम्भव नही है तो मेरे लिए सभी गोपनीय बातो पर मन्त्रिमण्डल म विचार करना सम्भव नही होगा ।"

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति की अनुमति से नवीन नीतियाँ प्रारम्भ कर सकते हैं ।

मन्त्रिमण्डल के निर्णय राष्ट्रपति के लिए केवल परामर्श या सलाह के रूप म होते हैं । उन्ह किसी सामूहिक मण्डल के संयुक्त कार्यों की स्थिति प्रदान नही की जा सकती । राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के निर्णयो को मानने के लिए भी बाध्य नही है । वह मन्त्रियो के परामर्श को अस्वीकार कर सकता है । यह भी सम्भव है कि वह मन्त्रियो से परामर्श ही न करे । सम्भव है कि किसी मन्त्री से महत्वपूर्ण विषय मे परामर्श ही न किया गया हो । निर्णय करने मे मन्त्री से अधिक सहायक कोई प्रभावशाली सीनेटर या कांग्रेस का सदस्य हो सकता है । मन्त्रिमण्डल के सदस्य के रूप मे वे कभी कभी राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित निर्णयो को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेते हैं । राष्ट्रपति के निर्णयो को स्वीकार करने के अतिरिक्त उनके समक्ष अन्य कोई विकल्प भी नही होता । राष्ट्रपति पर मन्त्रिमण्डल का या उसके बहुमत का निर्णय बन्धनकारी नही है । राष्ट्रपति लिंकन ने एक बार एक मामला मन्त्रिमण्डल के समक्ष उपस्थित किया था । मन्त्रिमण्डल के सातो सदस्यो ने उसका विरोध किया । राष्ट्रपति लिंकन ने इस पर कहा था कि "सात विपक्ष म है लेकिन एक पक्ष म है, अत एक ही की विजय है ।"[1]

मन्त्रिमण्डल के समस्त सदस्यो को राष्ट्रपति की आज्ञा का पालन करना होता है और जो सदस्य ऐसा नही करते है उन्हे मन्त्री पद से त्यागपत्र देना पडता है । कोई भी मन्त्री राष्ट्रपति का प्रतिस्पर्द्धी नही हो सकता । राष्ट्रपति विल्सन एव उसके विदेशमन्त्री लेंगसिंग मे मतभेदो के उग्र होने पर लेंगसिंग को ही त्यागपत्र देना पडा था । राष्ट्रपति विल्सन 1920 ई म अस्वस्थ थे । लेंगसिंग ने मन्त्रिमण्डल का वरिष्ठ सदस्य होने के नाते मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाई थी । राष्ट्रपति ने लेंगसिंग के इस कृत्य की भर्त्सना करते हुए उन्ह लिखा था कि 'क्या यह सत्य है कि मेरी अस्वस्थता के दौरान तुमने कार्यकारी प्रधानो के सम्मेलन आयोजित किये है ? हमारी संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति (केवल राष्ट्रपति और कांग्रेस) को ही सार्वजनिक मामलो के सम्बन्ध म कार्यकारिणी के प्रधानो के विचार जानने का अधिकार है । राष्ट्रपति की सत्ता को इस प्रकार हस्तगत करने के औचित्य का कोई कारण मैं तुम्हारे पत्रो म नही पाता हूँ ।"

लास्की न अमेरिकी मन्त्रिमण्डल की प्रकृति को निम्न शब्दो मे व्यक्त किया है "मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति का परामर्शदाता है। वह सहयोगियो की समिति नही है जिनके साथ राष्ट्रपति को काय करना पडता हो और जिनकी सहमति पर वह निभर हो। सयुक्त राज्य अमरिका म मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का अभाव है।'[18] मन्त्रिमण्डल के प्रति सप्ताह सम्मेलन होते हैं जिसम केवल उन्ही प्रश्नो पर विचार विमश होता है जिन्ह राष्ट्रपति उपस्थित करता है। महत्वपूण विषयो को मन्त्रिमण्डल के समक्ष उपस्थित नही किया जाता है। राष्ट्रपति की इच्छा के विपरीत सारे मन्त्रिमण्डल की बात भी नही चल सकती है। ऐसा कोई विभाग नही है जिसके नीति निर्धारण म राष्ट्रपति का स्थान प्रमुख न हो। वह सभी (मन्त्रियो) के निणयो का पुनरावेदनीय न्यायालय है। उसका निणय अन्तिम है। सामूहिक रूप से मन्त्रिमण्डल का राष्ट्रपति की भाति राष्ट्र या काग्रेस पर कोई प्रभाव नही होता। कुछ मन्त्री निस्सन्देह राष्ट्रपति को प्रभावित करने मे सफल होते हैं लेकिन कभी कोई मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति को नियन्त्रित नही कर सका है। सामान्यत मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य यह जानते है कि वे राष्ट्रपति की छत्रछाया मे ही अपने पद पर रह सकते है। मन्त्री की स्थिति राष्ट्रपति की इच्छा पर निभर करती है।[19] स्पष्ट है, अमेरिकी केबिनेट ब्रिटिश अर्थो मे मन्त्रिमण्डल नही है।[20]

मन्त्रिमण्डल तथा राष्ट्रपति के सम्बन्ध बहुत कुछ दोनो के व्यक्तित्वो पर निभर करते हैं। फलस्वरूप विभिन्न समयो मे उनके सम्बन्धो मे अन्तर रहा है। बुचनान (Buchnnan) एव हार्डिज (Hardinge) जसे कमजोर राष्ट्रपतियो ने अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को बहुत अधिक छूट दी थी। इसके परिणाम कभी कभी हानिकारिक भी होते है। शक्तिशाली राष्ट्रपति इसके विपरीत, सम्भव है, किसी एक सदस्य पर बहुत अधिक विश्वास करता हो। किसी भी मन्त्री के लिए दृढ निश्चयी राष्ट्रपति को नियन्त्रित करना असम्भव होता है। कुछ राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को सहयोगी मानते थे तो दूसरे अधीनस्थ कमचारी। कुछ राष्ट्रपति योग्य एव क्षमतायुक्त व्यक्तियो को मन्त्री पद देने मे विश्वास करते थे तो कुछ मन्त्री राष्ट्रपति को निर्देशन एव क्षमता का एकमात्र स्रोत मानते थे। राष्ट्रपति जैक्सन ने दो वर्षो तक मन्त्रिमण्डल का कोई सम्मेलन ही नही बुलाया था। वे उसे एक कष्टसाध्य दायित्व मानते थे। एण्ड्रू जैक्सन के अपन व्यक्तिगत सलाहकार थे जिन्ह 'पाकशाला मन्त्रिमण्डल' (Kitchen Cabinet) की सज्ञा दी

18 'The Cabinet is a body of advisors to the President, it is not a Council of colleagues with whom he has to work and upon whose approval he depends In United States, collective cabinet responsibility does not exist '—Laski *op cit*, p 82

19 *Ibid* pp 82 97

20 "American Cabinet is not a Government, as is the British '—Bailey, S D *Aspects of American Government*, p 30

गयी थीं। इस 'पाकशाला मन्त्रिमण्डल' के उक्त व्यक्तिगत मित्र मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा राष्ट्रपति पर अधिक प्रभाव रखते थे। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट के बारे में भी यही बात सत्य है। वे अपने व्यक्तिगत मित्रों से जिन्हें 'Brains Trust' कहा जाता था, प्राय परामर्श करते थे।[21] राष्ट्रपति जनरल ग्राण्ट मन्त्रिमण्डल को सहायक (Second Lieutenant) मात्र समझता था। राष्ट्रपति क्लीवलैण्ड इसके विपरीत मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के विचारों को विशेष महत्व प्रदान करते थे। वुडरो विल्सन एवं फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट ने कभी भी अपने मन्त्रियों को अपने विश्वास में नहीं लिया। राष्ट्रपति विल्सन ने जो युद्ध सन्देश दिया था वह उन्होंने अपने मन्त्रिमण्डल को संशोधन की सम्भावना के कारण दिखाया तक नहीं था। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के समय में भी मन्त्रिमण्डल का विशेष महत्व नहीं रहा। विल्सन एवं फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उनके सचिवों को तो बहुत सी सूचनाएं समाचार पत्रों से ही ज्ञात होती थीं। थियोडोर रूजवेल्ट पहले निर्णय कर लेते थे एवं मन्त्रिमण्डल को उनकी सूचना मात्र देते थे। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के युद्धमन्त्री स्टिमसन का कथन था कि "मन्त्रियों का उपयोग बैठकों के समाप्त होने के पश्चात राष्ट्रपति से व्यक्तिगत वार्ता के लिए व्हाइट हाउस जाना भर रह गया है। राष्ट्रपति ट्रूमैन एवं विदेश मन्त्री डीन एचिसन के मध्य यदि सम्बन्ध अच्छे थे तो इसका कारण यह था कि डीन एचिसन राष्ट्रपति के अनुकूल परामर्शदाता एवं नीतियों को क्रियान्वित करने वाले व्यक्ति थे।"[22] राष्ट्रपति आइजनहोवर एवं विदेश मन्त्री जॉन फोस्टर डलेस के सम्बन्ध सर्वथा भिन्न थे। राष्ट्रपति आइजनहोवर ने डलेस को आवश्यक अधिकार प्रदान कर रखे थे तथा डलेस की अथक तत्परता एवं उद्योग ने उसे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बना दिया था। उसके किसी अन्य पूर्वाधिकारी को ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं हुई थी।[23]

अमरीकी मन्त्रिमण्डल [illegible] भिन्न है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सदस्य सार्वजनि[illegible] है। वे एक ही दल के सदस्य होते हैं, उन्हें जनता [illegible] के सदस्य होते हैं तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होते [illegible] पद पर रहने है। मन्त्रिमण्डलीय एवं सामूहिक उ[illegible]

21 विि[illegible] द्वारा योग्य [illegible] किये [illegible]
हैं। [illegible] कनल [illegible]
हैं ए[illegible]
तरह [illegible]
सकीर्णत[illegible]

22 Max Bel[illegible]

23 Max Bel[illegible]

आधार है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री सहयोगियों की टीम का नेता होता है। वह समकक्षों में प्रथम है। इसके विपरीत, अमरिकी मंत्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। वे उसके परामर्शदाता होते हैं। राष्ट्रपति के वे अधीनस्थ कर्मचारी हैं। उनके परामर्श एवं विचारों को मानना या न मानना राष्ट्रपति पर निर्भर करता है। यह आवश्यक नहीं है कि वे सब एक ही राजनीतिक विचारधारा के सदस्य हों। अमरिकी राष्ट्रपति की शक्ति एवं व्यक्तित्व में उनकी सम्पूर्ण प्रतिमा आच्छादित रहती है। मन्त्रि-मण्डल के निर्णय राष्ट्रपति के लिए परामर्श मात्र हैं। अमेरिकी व्यवस्था में मन्त्रि-मण्डलीय सामूहिक उत्तरदायित्व का पूर्ण अभाव है। सचिवगण कांग्रेस के सदस्य नहीं होते। मन्त्री पद अमरिकी राजनीतिक जीवन से अस्थायी अवकाश माना जाता है। उनकी तुलना में सीनेटर की स्थिति अधिक प्रभावशाली एवं दृढ़ होती है। बहुत से राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों से परामर्श करने की अपेक्षा सीनेटरों से परामर्श करना अधिक लाभप्रद समझते थे। अमेरिकी मन्त्रीगण अपने पद से त्यागपत्र देकर अपनी स्थिति को बढ़ा नहीं सकते, अपितु त्यागपत्र के साथ उनके राजनीतिक जीवन का अन्त हो जाता है। अमरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य ब्रिटिश मन्त्रियों की भाँति कांग्रेस के नेता नहीं होते और न ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाँति वह नीति का निर्माण ही करते हैं। राष्ट्रपति मन्त्रियों का स्वामी है और उन सब में सर्वोच्च है। अमेरिका में ब्रिटन की भाँति मन्त्रिमण्डल को शासन की असफलता के लिए दोषी नहीं ठहराया जाता अपितु राष्ट्रपति ही प्रशासनिक असफलता के लिए उत्तरदायी होता है। ब्रिटिश मन्त्रियों की तुलना में अमेरिकी मन्त्री का स्थान निस्सन्देह नीचा है। राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश का प्रतीक है। अपने कार्यकाल में वह अन्य किसी प्रतिस्पर्धी अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। उसके स्वर की तुलना में उसके मन्त्री की आवाज भुनभुनाहट मात्र होती है जिसे सुना भी जा सकता है और नहीं भी।

मन्त्रिमण्डल की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए राष्ट्रपति टाफ्ट (Taft) का निम्न कथन महत्वपूर्ण है "मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति की कृति है। यह एक अविधिक एवं असंवैधानिक निकाय है। यह परम्परा पर आधारित है। यदि राष्ट्रपति इसे समाप्त करना चाहे तो कर सकता है।"[24] लेकिन 25वें संवैधानिक संशोधन (1967 ई.) के पारित होने के कारण मन्त्रिमण्डल को संवैधानिक आधार प्राप्त हो गया है क्योंकि इस सांविधानिक संशोधन द्वारा मन्त्रिमण्डल को कार्यपालिका विभागों के प्रमुख अधिकारियों के निकाय की संज्ञा दी गयी है।[25]

---

24 "Cabinet is a mere creation of the President's will, it is an extra statutory and extra constitutional body It exists only by custom If the President desired to dispense with it, he could do so"—Taft W H *Our Chief Magistrate and His Powers*, p 30

25 25वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था भी की गयी है कि राष्ट्रपति की मृत्यु या मानसिक

गयी थी। इस 'पाकशाला मन्त्रिमण्डल' के उनके व्यक्तिगत मित्र मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा राष्ट्रपति पर अधिक प्रभाव रखते थे। राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के बार म भी यही बात सत्य है। वे अपने व्यक्तिगत मित्रो से जिन्हे Brains Trust' कहा जाता था, प्राय परामर्श करते थे।"[1] राष्ट्रपति जनरल ग्राण्ट मन्त्रिमण्डल को सहायक (Second Lieutenant) मात्र समझता था। राष्ट्रपति क्लीवलण्ड इसके विपरीत मन्त्रिमण्डल के सदस्यो के विचारो को विशेष महत्व प्रदान करते थे। वुडरो विल्सन एव फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट ने कभी भी अपने मन्त्रियो को अपने विश्वास मे नही लिया। राष्ट्रपति विल्सन ने जो युद्ध सन्देश दिया था वह उन्होने अपने मन्त्रिमण्डल को सशोधन की सम्भावना के कारण दिखाया तक नही था। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट के समय म भी मन्त्रिमण्डल का विशेष महत्व नही रहा। विल्सन एव फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के सम्बन्ध म यह कहा जाता है कि उनके सचिवो को तो बहुत सी सूचनाए समाचार-पत्रो से ही ज्ञात होती थी। थियोडोर रूजवेल्ट पहले निर्णय कर लेते थे एव मन्त्रिमण्डल को उनकी सूचना मात्र देत थ। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट के युद्धमन्त्री स्टिमसन का कथन था कि "मन्त्रियो का उपयोग बठको के समाप्त होन के पश्चात राष्ट्रपति से व्यक्तिगत वार्ता के लिए ह्वाइट हाउस जाना भर रह गया है। राष्ट्रपति ट्रूमैन एव विदेश मन्त्री डीन एचिसन के मध्य यदि सम्बन्ध अच्छे थ तो इसका कारण यह था कि डीन एचिसन राष्ट्रपति के अनुकूल परामर्शदाता एव नीतियो को क्रियान्वित करन वाले व्यक्ति थे।"[2] राष्ट्रपति आइजनहोवर एव विदेश मन्त्री जान फोस्टर डलेस के सम्बन्ध सर्वथा भिन्न थे। राष्ट्रपति आइजनहोवर ने डलेस को आवश्यक अधिकार प्रदान कर रखे थे तथा डलेस की अथक तत्परता एव उद्योग ने उस अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बना दिया था। उसके किसी अन्य पूर्वाधिकारी को ऐसी स्थिति प्राप्त नही हुई थी।[3]

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल स पूर्णरूपेण भिन्न है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सदस्य सार्वजनिक जीवन के सक्रिय राजनीतिज्ञ होत हैं। व एक ही दल के सदस्य होत हैं, उन्हे जनता का समर्थन भी प्राप्त होता है, व ससद के सदस्य होत हैं तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होते है और ससद के प्रसादपर्यन्त अपन पद पर रहते है। मन्त्रिमण्डलीय एव सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त ब्रिटिश ससदीय व्यवस्था का

---

21 विभिन्न राष्ट्रपतियो द्वारा योग्य व्यक्तियो स समय-समय पर परामर्श किये गये हैं। इसम से कुछ जसे कर्नल हाउस एव हेरी होपकिन्स के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं एव उनका प्रभाव तत्कालीन घटनाओ पर पडा है। राष्ट्रपतियो द्वारा इस तरह अन्य व्यक्तियो स परामर्श करने का कारण मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की सकीर्णता तथा उनम व राष्ट्रपति म असहयोग है।

22 Max Beloff *The American Federal Government* 1959, p 93

23 Max Beloff *op cit* p 93

आधार है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री सहयोगियो की टीम का नेता होता है। वह समकक्षो मे प्रथम है। इसके विपरीत, अमरिकी मंत्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। वे उसके परामर्शदाता होते हैं। राष्ट्रपति के वे अधीनस्थ कर्मचारी है। उनके परामर्श एव विचारो को मानना या न मानना राष्ट्रपति पर निर्भर करता है। यह आवश्यक नही है कि वे सब एक ही राजनीतिक विचारधारा के सदस्य हो। अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्ति एव व्यक्तित्व मे उनकी सम्पूर्ण प्रतिभा आच्छादित रहती है। मंत्रिमण्डल के निर्णय राष्ट्रपति के लिए परामर्श मात्र है। अमेरिकी व्यवस्था मे मंत्रिमण्डलीय सामूहिक उत्तरदायित्व का पूर्ण अभाव है। सचिवगण कांग्रेस के सदस्य नही होते। मन्त्री पद अमेरिकी राजनीतिक जीवन से अस्थायी अवकाश माना जाता है। उनकी तुलना मे सीनेटर की स्थिति अधिक प्रभावशाली एव दृढ होती है। बहुत से राष्ट्रपति अपने मन्त्रियो से परामर्श करने की अपेक्षा सीनेटरो से परामर्श करना अधिक लाभप्रद समझते थे। अमेरिकी मन्त्रीगण अपने पद से त्यागपत्र देकर अपनी स्थिति को बढा नही सकते, अपितु त्यागपत्र के साथ उनके राजनीतिक जीवन का अन्त हो जाता है। अमेरिकी मंत्रिमण्डल के सदस्य ब्रिटिश मन्त्रियो की भाति कांग्रेस के नेता नही होते और न ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की भाति वह नीति का निर्माण ही करते है। राष्ट्रपति मन्त्रियो का स्वामी है और उन सब मे सर्वोच्च है। अमेरिका मे ब्रिटेन की भाति मन्त्रिमण्डल को शासन की असफलता के लिए दोषी नही ठहराया जाता अपितु राष्ट्रपति ही प्रशासनिक असफलता के लिए उत्तरदायी होता है। ब्रिटिश मन्त्रियो की तुलना मे अमरिकी मन्त्री का स्थान निस्सन्देह नीचा है। राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश का प्रतीक है। अपने कार्यकाल मे वह अन्य किसी प्रतिस्पर्धी अस्तित्व को स्वीकार नही करता है। उसके स्वर की तुलना मे उसके मन्त्री की आवाज भुनभुनाहट मात्र होती है जिसे सुना भी जा सकता है और नही भी।

मन्त्रिमण्डल की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए राष्ट्रपति टाफ्ट (Taft) का निम्न कथन महत्वपूर्ण है "मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति की कृति है। यह एक अविधिक एव असवैधानिक निकाय है। यह परम्परा पर आधारित है। यदि राष्ट्रपति इसे समाप्त करना चाहे तो कर सकता है।"[24] लेकिन 25वे सवैधानिक सशोधन (1967 ई) के पारित होने के कारण मंत्रिमण्डल को सवैधानिक आधार प्राप्त हो गया है क्योकि इस सांविधानिक सशोधन द्वारा मन्त्रिमण्डल को कार्यपालिका विभागो के प्रमुख अधिकारियो के निकाय की सज्ञा दी गयी है।[25]

---

24 'Cabinet is a mere creation of the President's will, it is an extra statutory and extra constitutional body It exists only by custom If the President desired to dispense with it, he could do so' —Taft, W H *Our Chief Magistrate and His Powers* p 30

25 *25वे सशोधन द्वारा यह व्यवस्था भी की गयी है कि राष्ट्रपति की मृत्यु या मानसिक*

अमेरिकी राष्ट्रपति एव ब्रिटिश राजा

ब्रिटिश राजा नाममात्र की कार्यपालिका है। वह देश का संवैधानिक अध्यक्ष होता है। वह वंशानुगत आधार पर नियुक्त होता है। संवैधानिक अध्यक्ष होने के कारण देश के प्रशासन मे उसका कोई हाथ नही होता। सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिमण्डल मे निहित होती है और वह ही वास्तविक कार्यपालिका है। अमेरिकी राष्ट्रपति ब्रिटिश राजा के विपरीत वास्तविक एव प्रमुख कार्यपालिका है तथा राज्य का निर्वाचित अध्यक्ष है।

सिद्धान्त मे ब्रिटिश सम्राट अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है लेकिन व्यवहार मे अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियाँ एव अधिकार ब्रिटिश क्राउन से कही अधिक हैं। क्राउन ससद के अधिवेशन का आहूत, स्थगित एव भग करता है। परन्तु अमेरिकी राष्ट्रपति को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नही है। विधि-निर्माण मे अमेरिकी राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रूप से योग देने की स्थिति मे ही नही है। ब्रिटिश क्राउन के मन्त्री विधि-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ब्रिटिश क्राउन का सिद्धान्तत पूर्ण निषेधाधिकार प्राप्त है लेकिन क्राउन ने व्यवहार मे कभी इस शक्ति का प्रयोग नही किया है। अमेरिकी राष्ट्रपति को प्राप्त निषेधाधिकार आशिक (Suspensive Veto) है। कार्यपालिका एव प्रशासनिक क्षेत्र मे भी ब्रिटिश क्राउन की शक्तिया सिद्धान्तत राष्ट्रपति से अधिक हैं। क्राउन द्वारा की गयी नियुक्तियो की पुष्टि किसी अन्य संस्था के द्वारा नही की जाती है लेकिन क्राउन के नाम पर सभी नियुक्तियाँ प्रधानमन्त्री के द्वारा की जाती हैं। इसके विपरीत, अमेरिकी राष्ट्रपति को नियुक्तियो एव सन्धियो के सन्दर्भ मे सीनेट के 2/3 बहुमत के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है। ब्रिटिश राजा नाममात्र का अध्यक्ष है, स्वर्णिम शून्य है। समस्त शक्तिया मन्त्रिमण्डल एव ब्रिटिश ससद को क्रमश हस्तान्तरित हो गयी हैं। अत ब्रिटिश क्राउन के नाम पर तो केवल शासन चलता है। मन्त्रिमण्डल कार्यपालिका है एव प्रधानमन्त्री कार्यपालिका अध्यक्ष। लास्की के इस कथन मे पर्याप्त सत्य है कि "ब्रिटिश क्राउन अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक प्रभावशाली भी है और कम भी।" यही सत्य इन शब्दो द्वारा व्यक्त होता है कि अमेरिकी राष्ट्रपति शासन करता है जबकि ब्रिटिश क्राउन राज्य करता है।

अमेरिकी राष्ट्रपति एव ब्रिटिश प्रधानमन्त्री[26]

ब्रिटिश क्राउन के साथ अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना करने की अपेक्षा उसकी

अस्वस्थता के कारण उप राष्ट्रपति के राष्ट्रपति बनने पर वह किसी अन्य व्यक्ति को उप राष्ट्रपति नियुक्त कर सकता है। पूर्व व्यवस्था के अन्तर्गत उप राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर आगामी चुनाव तक रिक्त ही रहता था।

26 देखिए अध्याय 18

तुलना ब्रिटिश प्रधानम त्री से करना वाछनीय है क्योंकि प्रधानम त्री म त्रिमण्डल सहित देश की वास्तविक कायपालिका है। एक अथ मे यदि राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश प्रधानम त्री से श्रेष्ठ है, तो दूसरे अर्थों मे हेय है। उसकी स्थिति इस अथ म श्रेष्ठ है कि अमेरिकी राष्ट्रपति सच्चे अर्थो म म त्रिमण्डल का स्वामी है। इसके विप रीत, ब्रिटिश प्रधानम त्री केवल समकक्षो मे प्रथम है। उसे अपने म त्रिमण्डल को साथ लेकर चलना पडता है। ब्रिटिश प्रधानम त्री अमेरिकी राष्ट्रपति की भाति अपने म त्रि-मण्डल की हर स दभ म उपक्षा नही कर सकता। उसे अपने म त्रिमण्डल के मत को स्वीकार करना पडता है। अत म त्रिमण्डल प्रधानम त्री के ऊपर एक निय त्रण है। अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति इससे सवथा भि न है। उसके म त्रिमण्डल के सदस्य उसके अधीनस्थ कमचारी हैं। व उसके द्वारा मनोनीत हैं। उनके परामश को न मानने के लिए वह पूण स्वत त्र है।

उपरोक्त अ तर के अतिरिक्त दोनो म निम्नलिखित मुख्य असमानताएँ हैं

(1) प्रधानम त्री म त्रिमण्डल का नेता होता है। वह लोकसभा का सदस्य होता है एव ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। वह हमशा ही अपनी जेब मे त्यागपत्र लिये फिरता है। उसका काय काल निश्चित नही है। वह ससद के विश्वास पयन्त पदारूढ रहता है, स्पष्ट है कि इगलैण्ड मे शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त नही है। इसके विपरीत, अमरिकी सविधान शक्ति पृथक्करण पर आधा-रित है। राष्ट्रपति कांग्रेस का सदस्य नही है और न उसके प्रति उत्तरदायी ही है। उसके म त्री उसके सेवक हैं। उसका कायकाल निश्चित है। वह चार वष के लिए निर्वाचित होता है। कांग्रेस राष्ट्रपति को केवल महाभियोग लगाकर ही उसके पद स हटा सकती ह।

(2) विधि निर्माण के क्षेत्र म अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियाँ अत्यधिक सीमित हैं। ब्रिटिश प्रधानम त्री का इसके विपरीत विधि निर्माण मे महत्वपूण हाथ होता है। देश का वार्षिक आय-व्यय पत्र—बजट—प्रधानम त्री की सहमति स वित्तम त्री द्वारा तैयार किया जाता है एव ससद म उसे पारित कराने म म त्रिमण्डल सहित प्रधान-म त्री महत्वपूर्ण योग दता है। इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति को बजट की स्वीकृति के लिए सीनेट म अपने दल के नताओ एव सीनेट के सदस्यो के सहयोग पर निभर रहना पडता है।

(3) ब्रिटिश प्रधानम त्री बहुमत दल का नेता होन के कारण ब्रिटिश ससद का नेता होता है। ससद के विद्रोह करने पर ब्रिटिश प्रधानम त्री उसके भग करने की माग कर सकता है जिस क्राउन अनिवायत स्वीकार कर लता है। इसके विपरीत, अमेरिकी राष्ट्रपति कांग्रेस का समकक्ष है। उसका प्रतिद्वन्द्वी है। वह उसको भग करने की शक्ति नही रखता, दोनो सदनो म मतभेद की स्थिति म वह कांग्रेस के अधिवशन केवल स्थगित कर सकता है। सकट काल म ब्रिटिश प्रधानम त्री की शक्तियो म वद्धि

हो जाती है। वे उसकी शक्तिया न होकर मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ होती हैं। दूसरी तरफ अमेरिकी राष्ट्रपति सकट-काल मे कम वढ तानाशाह वन जाता है । ब्रिटिश प्रधान मन्त्री की तुलना म सकट काल म उसकी शक्तियाँ बहुत बढ जाती हैं।

(4) अमेरिकी राष्ट्रपति देश की सेनाओ का प्रमुख सेनापति है। यह शक्ति ब्रिटेन म क्राउन मे निहित है। राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति प्राप्त है। इगलैण्ड म सिद्धान्त मे यह प्रधानमन्त्री को प्राप्त न होकर क्राउन को प्राप्त है। लेकिन व्यवहार म इन शक्तियो का प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है।

(5) राष्ट्रपति राज्य एव शासन दोनो का प्रधान है, प्रधानमन्त्री केवल शासन का अध्यक्ष है।

लास्की ने दोनो की स्थितिया पर निम्न टिप्पणी की है[27] "अमेरिकी राष्ट्रपति को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की विधायी शक्ति से ईर्ष्या होनी चाहिए। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री निश्चित ससदीय बहुमत का प्रधान होता है। जब तक प्रधानमन्त्री कोई भयकर भूल नही करता तब तक उसके प्रस्ताव अस्वीकृत नही होते। आजकल विधि प्रस्ताव ससद द्वारा नहीं अपितु मतदाताओ द्वारा अस्वीकृत होते हैं। विधि निर्माण विशेषकर वित्तीय मामलो मे उसे तथा उसके मन्त्रिमण्डल को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होते हैं। विशेष परिस्थितियो के अतिरिक्त दलीय दबाव की उसे कोई आशका नही होती। प्राय सभी प्रश्नो के निर्धारण म वह मौलिक भूमिका अदा करता है। प्रधानमन्त्री रहते हुए वह दलीय यन्त्र का प्रमुख होता है। वह कॉमन्स सभा का प्रमुख है। वह कामन्स सभा को विघटित कर सकता है एव निर्वाचन के लिए उपयुक्त समय निधारित कर सकता है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री अपनी इच्छा पर ही दलीय नेतत्व से प्रथक हो सकता है।" इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति काग्रेस का कभी स्वामी नही होता, न वह उसे भग ही कर सकता। काग्रेस के दोनो सदन राष्ट्रपति के निर्देश म कार्य नही करते। काग्रेस का मुख्य काय विधि-निर्माण है।

लास्की का यह भी मत था कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति जसी है। लेकिन यह मत मान्य नही है। प्रधानमन्त्री चर्चिल को भी वे शक्तिया प्राप्त नही थी जिनका उपयोग राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने किया था। यद्यपि प्रधानमन्त्री चर्चिल को मन्त्रिमण्डल ससद एव राष्ट्र का पूर्ण समर्थन प्राप्त था परन्तु वह राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट की भाँति मन्त्रिमण्डल की उपेक्षा करके काय नही कर सकता था।

स्पष्ट है कि कुछ क्षेत्रो म जसे विधि निर्माण एव वित्त व्यवस्था म ब्रिटिश प्रधानमन्त्री अमेरिकी राष्ट्रपति स अधिक शक्तिशाली है । लेकिन प्रशासनिक एव कार्यपालिका सम्बन्धी मामलो म राष्ट्रपति की स्थिति श्रेष्ठ है। प्रधानमन्त्री एव राष्ट्रपति का पद बहुत कुछ उन व्यक्तियो के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है जो उसे धारण करते है।

---

27 Laski *American Presidency* 1943 p 118

23

स्विस सघीय कार्यपालिका
[SWISS FEDERAL EXECUTIVE]

प्रेसीडेण्ट लावेल ने स्विस सघीय कायपालिका—सघीय परिषद (Federal Council)[1] को राष्ट्रीय शासन की मुरय धुरी (Main Spring) एव स तुलन चक्र की सज्ञा दी है।[2] स्विस सामूहिक कायपालिका, आर जी घोष के शब्दो म, आधुनिक लोकतन्त्र की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक सस्था है।

स्विट्जरलैण्ड की सघीय कायपालिका म ससदीय एव अध्यक्षात्मक काय पालिकाओ की विशेषताओ का समन्वय पाया जाता है। इसे हम इगलैण्ड की ससदीय प्रणाली एव सयुक्त राज्य अमेरिका की अध्यक्षात्मक प्रणाली के मध्य की व्यवस्था कह सकते हैं। लॉर्ड ब्राइस न इसकी विशेषता को व्यक्त करते हुए कहा है कि 'किसी भी अन्य स्वतन्त्र देश म कायपालिका शक्ति एक व्यक्ति को न सौपकर समिति म अधिष्ठित नही की गयी है और न अन्य कायपालिका का राजनीति से इतना कम सम्बन्ध है। काउन्सल इगलैण्ड एव उसका अनुगमन करने वाले अन्य देशो के मन्त्रिमण्डलो की तरह नही है क्योकि वह व्यवस्थापिका का नेतत्व नही करती है और न व्यवस्थापिका द्वारा उसे अपदस्थ ही किया जा सकता है। यह सयुक्त राज्य अमरिका एव अन्य गणराज्यो, जिन्होने अध्यक्षात्मक प्रणाली को स्वीकार किया है, की कार्यपालिकाओ की भाति व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र भी नही है। यद्यपि इसम दोनो की कुछ विशेषताएँ पायी जाती है परन्तु यह दोनो से इस कारण भिन्न है कि इसका स्वरूप दलीय नही है। यह दल से पृथक है, यह दलीय काय क्रम [illegible] चुनी जाती है और

---

1 स्विस सविधान म इसे Bundesrat की सज्ञा दी गयी है।

2 The Federal Council may almost be regarded as the ma[illegible] and is certainly the balance wheel of the National Gov[illegible] —Lowell *Greater European Government*, 1926, p 316

न दलीय नीति निर्धारित करती है, परन्तु फिर भी पूर्णरूपेण दलीय रंग से मुक्त नहीं होती है।'[3]

स्विस संघीय कार्यपालिका (फेडरल काउन्सल) सात सदस्यों की एक समिति है जो चार वर्ष के लिए संघीय सभा (Federal Assembly) द्वारा चुनी जाती है। यदि नेशनल काउन्सल (संघीय व्यवस्थापिका का निम्न सदन) अपनी चार वर्षीय अवधि के पूर्व भंग हो जाती है तो फेडरल काउन्सल का कार्यकाल भी उसी के साथ समाप्त हो जाता है। लेकिन सामान्यतः ऐसा होता नहीं है।

फेडरल काउन्सल के लिए वह प्रत्येक स्विस नागरिक चुना जा सकता है जो राष्ट्रीय परिषद (National Council) की सदस्यता के लिए निर्वाचन की योग्यता रखता है। लेकिन एक कण्टन से केवल एक सदस्य ही फेडरल काउन्सल के लिए चुना जा सकता है। संघीय असेम्बली के सदस्यों को भी फेडरल काउन्सल (संघीय परिषद) का सदस्य चुना जाता है। यद्यपि व्यवस्थापिका के बाहर से संघीय परिषद के सदस्यों को चुनने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है लेकिन संघीय असेम्बली के सदस्यों को संघीय परिषद का सदस्य चुन जाने पर व्यवस्थापिका की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ता है। इससे कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका में पूर्ण पृथक्करण सम्भव होता है। सदस्यता सम्बन्धी एक अन्य प्रतिबन्ध यह है कि कुछ विशेष प्रकार से विवाह करने वाले व्यक्ति संघीय परिषद के सदस्य नहीं हो सकते। परम्परा के अनुसार बर्न (Berne), ज्यूरिच (Zurich) एवं वाड (Vand) नामक तीन प्रमुख कण्टनों का फेडरल काउन्सल में एक एक सदस्य होता है। चार अन्य सदस्य शेष कण्टनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामान्यतः सात सदस्यों में से चार जर्मन भाषा भाषी, दो फ्रेंच भाषा भाषी एवं एक इतालवी भाषा भाषी होता है।

संघीय पार्षद प्रायः जितनी बार चुना जाना चाहता है, पुनः निर्वाचित कर लिया जाता है। यह एक परम्परा सी है। फलस्वरूप कुछ सदस्यों का कार्यकाल 20 से 32 वर्षों तक रहा है। इसका एक कारण यह भी है कि संघीय पार्षद दलीय दृष्टिकोण से कार्य नहीं करते हैं। दलीय भक्ति के कारण सदस्यों को नियुक्त नहीं किया जाता अपितु प्रशासकीय योग्यता, मानसिक उत्कृष्टता, श्रेष्ठ स्वभाव, प्रतिभा, कार्य-कुशलता आदि गुणों के कारण उन्हें निर्वाचित किया जाता है। सभी सदस्यों की समान शक्तियां एवं अधिकार होते हैं। परिसंघ (Confederation) के अध्यक्ष को उनके निर्वाचन में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। वे किसी एक विशेष दल के सदस्य नहीं होते, अपितु फेडरल असेम्बली (संघीय सभा) द्वारा उनका चुनाव सभी प्रमुख दलों में से किया जाता है। उनमें मतभेद स्वाभाविक होते हैं। संघीय सभा में वे एक दूसरे का विरोध करते हैं। एक सदस्य के द्वारा प्रस्तुत विधि प्रस्ताव की आलोचना दूसरे

3 Bryce *Modern Democracies*, Vol I, 1929, pp 393 94

सदस्यो द्वारा की जाती है। अत वे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की भाति सामूहिक रूप से काय नही करते है। वे इगलैण्ड की भाति प्रस्तावित विधेयक के अस्वीकृत होन पर अपने पद से त्यागपत्र नही देते वरन् अपने पद पर बने रहते है, न सभी सदस्यो द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धा त के आधार पर एक साथ त्यागपत्र दिये जाते हैं। 1934 ई म हेवरलीन (Haeberlin) ने सावजनिक व्यवस्था सम्ब धी अपने विधेयक के जनमत सग्रह मे अस्वीकृत होने पर परिषद की सदस्यता स त्याग पत्र दे दिया था।

फेडरल काउन्सल (सघीय परिषद) की शक्तियाँ

कायपालक काय—फेडरल काउ सल देश म शा त एव व्यवस्था की स्थापना के लिए उत्तरदायी है। सघीय सभा द्वारा पारित विधिया को यह क्रिया वित करती है। विदेश नीति का निर्धारण एव क्रिया वयन भी उसका दायित्व है। देश की सुरक्षा की व्यवस्था एव उसके लिए सेना की स्थापना तथा निय त्रण, कण्टनो के साथ परस्पर अच्छे सम्ब ध रखना, बजट निर्माण एव सघीय सभा द्वारा उसकी स्वीकृति परिषद के अ य कायपालक दायित्व हैं।

सघीय परिषद द्वारा वैदेशिक एव आन्तरिक मामलो सम्ब धी एक प्रतिवेदन सघीय सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। कैण्टनो द्वारा परस्पर एव विदेशो से की गयी स धियो की परिषद जाच करती है। यदि कोई कैण्टन सघ शासन के साथ सहयोग नही करता है तो सघीय परिषद को इस सम्ब ध मे आवश्यक कायवाही करने का अधिकार है। कण्टनो के सविधानो पर भी सघीय परिषद निगरानी रखती है। अर्थात सघीय परिषद का यह दायित्व है कि वह देखे कि कण्टनो के सविधान स्वरूप मे लोक त त्रीय एव गणत त्रीय है तथा उनके सविधानो म सघीय सविधान विरोधी कोई व्यवस्था नही है।

सभी सघीय नियुक्तिया, केवल कुछ को छोडकर, सघीय परिषद द्वारा ही की जाती हैं। सघीय प्रशासनिक अधिकारियो के आचरण का निरीक्षण करना भी परिषद का काय है। विशेष परिस्थितियो मे अर्थात सघीय सभा के सत्रावसान काल मे या सकट काल में, सघीय परिषद को सेना के प्रयोग का भी अधिकार है। लेकिन परिषद को सघीय सभा का शीघ्रातिशीघ्र अधिवेशन आहूत करके ऐसे मामलो को उसके समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत कर देना चाहिए।

सघीय सविधान का पालन एव रक्षा तथा सघीय यायालयो के निणयो एव कण्टनो के विवादो सम्ब धी समझौतो एव पच फैसलो को क्रिया वित करना परिषद का ही दायित्व है।

विधायी काय—विधि निर्माण काय म भी सघीय परिषद के सदस्य महत्वपूण भूमिका निभाते हैं। सघीय सभा के समक्ष 95% विधि प्रस्ताव परिषद द्वारा ही उप

स्थित किये जाते है और परिषद के सदस्य उनको पारित कराने म महत्वपूर्ण योग देते है। सामान्य नियम यह है कि परिषद विधि-प्रस्ताव के प्रारूप को सन्देश या प्रतिवदन के रूप म प्रस्तुत करती है। अत सघीय परिषद द्वारा विधियाँ प्रस्तावित की जाती हैं। सामान्यत सघीय सभा इन्हे केवल सशोधित करती है। सघीय सभा द्वारा किसी प्रस्ताव या मामले मे परामर्श माँगने पर सघीय परिषद सम्बन्धित विषय पर परामर्श भी देती है। अध्यादेश जारी करने एव प्रदत्त विधान (delegated legislation) के अन्तगत विधि बनाने का अधिकार भी परिषद को प्राप्त है।

न्यायिक कार्य—विभिन्न प्रशासनिक विभागो एव सघीय रलवे प्रशासन के निर्णयो के विरुद्ध अपीले सघीय परिषद म की जा सकती हैं। कैण्टनों के कुछ निर्णयो के विरुद्ध भी सघीय परिषद म पुनरावेदन किया जा सकता है—जसे धार्मिक आधार पर विद्यालयो म भेदभाव, निर्वाचन, कण्टनो के मध्य पारस्परिक सन्धियो, व्यापार, सीमा शुल्क पटेन्ट सम्बन्धी मामले। लेकिन इन विषयो म सघीय परिषद के निर्णय के विरुद्ध सघीय न्यायालय तथा सघीय सभा म आवेदन किया जा सकता है। सघीय अधिकारियो के आचरण सम्बन्धी मामलो का निर्णय सघीय परिषद न्यायिक सस्था के रूप म करती है।

परिसघ का अध्यक्ष

सघीय कार्यपालिका के सात सदस्यो म से एक सदस्य को सघीय सभा द्वारा एक वर्ष के लिए स्विस परिसघ (Swiss Confederation) का राष्ट्रपति (President) निर्वाचित किया जाता है। परिसघ का एक उपाध्यक्ष भी होता है। दोनो पुन निर्वाचित किये जा सकते हैं परन्तु लगातार एक ही क्रम मे नही।[4] परिषद के उपाध्यक्ष को अभिसमयानुसार आगामी वर्ष अध्यक्ष चुन लिया जाता है। राष्ट्रपति पद पर परिषद के सदस्यो की वरिष्ठता के क्रम से नियुक्ति की जाती है।

परिसघ क राष्ट्रपति की स्थिति सघीय परिषद क अन्य सदस्यो के समान ही होती है। ब्राइस के अनुसार उसे राष्ट्रपति या परिषद के अध्यक्ष क रूप मे कोई विशेष शक्तियाँ प्राप्त नही है।[5] उसे केवल विवाद की स्थिति म निर्णायक मत प्राप्त है। वह अन्य सदस्यो की भाँति ही एक विभाग का अध्यक्ष होता है। परिषद क अन्य सदस्यो के निर्णयो को परिवर्तित करने का उस कोई अधिकार प्राप्त नही है। वह परिषद के अधिवेशनो की अध्यक्षता करता है एव समारोहो तथा अन्य अवसरो पर औपचारिक रूप म देश के अध्यक्ष की भूमिका निभाता है। विदेशी शासको एव राजदूतो का स्वागत सघीय परिषद सामूहिक रूप से करती है।

---

4 एम जीयूसेपी मोटा (M Giuseppe Motta) 5 बार, हरमूलर (Herr-Muller) 3 बार (1899, 1907 एव 1913) तथा डॉ फिलिप इटर 4 बार (1939, 1942, 1947 एव 1953) राष्ट्रपति चुने गये थे।

5 Bryce *Modern Democracies, op cit*, p 399

अत स्विस परिसघ का राष्ट्रपति केवल समकक्षो म प्रथम है । उसे 'महत्वहीन राष्ट्रपति' की सज्ञा दी जाती है । उसकी स्थिति इगलण्ड के प्रधानमन्त्री एव अमेरिकी राष्ट्रपति जैसी नही है । इगलैण्ड के प्रधानमन्त्री की तरह वह सघीय परिषद का नेता नही है । वह ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की तरह सघीय परिषद के निर्माण, जीवन एव मृत्यु के लिए केन्द्रीय स्थिति नही रखता है । वह ब्रिटेन के राजा या भारतीय राष्ट्रपति की भाति नाममात्र का ही कायपालिका-अध्यक्ष है । वह ब्रिटिश सम्राट जसी शान शौकत नही रखता और न उसकी भाति वशानुगत आधार पर नियुक्त ही किया जाता है । यद्यपि उसकी नियुक्ति सघीय सभा द्वारा की जाती है पर तु भारतीय राष्ट्रपति का निर्वाचन करने वाले निर्वाचक मण्डल की भाति स्विस सघीय सभा किसी निर्वाचक मण्डल का अग नही है । ब्रिटेन के राजा या भारतीय राष्ट्रपति की भाति स्विस राष्ट्रपति किसी प्रशासनिक विभाग की अध्यक्षता नही करते है । अमेरिकी राष्ट्रपति की तरह वह कायपालिका का प्रमुख या मुख्य प्रशासनिक अधिकारी भी नही है और न परिषद के सदस्य उसके सेवक ही होते है । परिषद के सभी सदस्यो का स्तर समान होता है एव वह परिषद के अन्य सदस्यो की भाँति ही एक सीमा तक उत्तरदायी होता है । सभी निणय सघीय परिषद द्वारा सामूहिक रूप मे लिये जाते ह । परिषद के विभिन्न सदस्यो के मध्य वह एक कडी का काय करता है ।

स्विस राष्ट्रपति का पद भले ही शक्ति व प्रभाव का न हो पर तु सम्मान का अवश्य है । उसे सघीय परिषद के अपने सहयोगी सदस्यो की तुलना म प्राथमिकता एव वरीयता प्राप्त है । प्राय प्रत्येक स्विस राजनीतिज्ञ इस सर्वोच्च पद का प्राप्त करने की कामना करता है और उसे सावजनिक जीवन की महान् उपलब्धि माना जाता है । लावेल के अनुसार, "वह केवल राष्ट्र की कायपालिका समिति का अध्यक्ष है अत उसे सदस्यो द्वारा किय जाने वाले कार्यों की सूचना रहती है तथा वह राज्य के नाममात्र के समारोह सम्बधी कतव्यो को पूण करता है ।'[6] स्विस सघीय परिषद बहुल (Plural or Collegiative) कायपालिका है एव अध्यक्ष के पद का कोई विशेष महत्व नही है । अत हास हूबर ने तो यहाँ तक कहा है कि 'परिसघ का कोई अध्यक्ष नही है और न कण्टनो मे कोई गवनर ही है । सामूहिक प्रणाली शासन की परम्परागत प्रणाली है एव मात्र स्विट्जरलैंड मे ही इसका प्रयोग होता है ।'[7]

स्विस सघीय परिषद एव सघीय सभा (अर्थात् व्यवस्थापिका)

सघीय परिषद को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं । लेकिन विधिक दृष्टि से स्विस कायपालिका सघीय सभा से स्वतन्त्र एव उसके समकक्ष नही है । परिषद सघीय

---

6 Lowell *Greater European Governments*, 1926, p 319

7 'The confederation has no President, the cantons have no Governors The Collegial system is the traditional form of government and the only one use in Switzerland "—Hans Huber *How Switzerland is Governed*, 1946, p 51

सभा की सेवक है। उसकी स्थिति एक अधीनस्थ जैसी है। इसका कारण यह है कि स्विस संविधान शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। संघीय व्यवस्थापिका द्वारा परिषद के सात सदस्यो एव अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचित किया जाता है। संघीय सभा की स्थिति प्रमुख एव प्रधान है। नीति निर्धारण म उसका स्थान प्रमुख है। संविधान की धारा 71 के अनुसार परिषद की सर्वोच्च सत्ता व्यवस्थापिका म निहित है। संघीय परिषद की शक्तिया केवल निरीक्षणात्मक हैं। उसे प्रत्येक कदम पर संघीय सभा से आदेश ग्रहण करने पडते हैं। यदि परिषद के विचार या मत मे संघीय सभा असहमत होती है तो परिषद के सदस्यो को ही झुकना पडता है। परिषद के द्वारा प्रति वर्ष संघीय सभा या व्यवस्थापिका के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाते है। संकट काल मे व्यवस्थापिका द्वारा संघीय परिषद को व्यापक शक्तिया प्रदान की जाती हैं। इन प्रदत्त शक्तियो को उसके द्वारा वापस भी लिया जा है। समय-समय पर संघीय सभा प्रस्तावो एव आदेशों के रूप मे परिषद को अपने दायित्वो का सम्पादित करने के सम्बन्ध मे आदेश देती रहती है। परिषद के सदस्य संघीय व्यवस्थापिका के सदस्य नही होते परन्तु वे संघीय सभा के अधिवेशनो म भाग लेते है, प्रश्नो का उत्तर देते है एव आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं। परिषद द्वारा संघीय सभा के आदेशो का राष्ट्र के आदेश के रूप म उसी प्रकार क्रियान्वित किया जाता है जिस प्रकार एक सेवक अपने स्वामी के आदेशो को क्रियान्वित करता है। स्ट्राग के अनुसार, मन्त्रीगण सदन के नेता नही होते अपितु सेवक ही होते हैं।[8] लावेल ने इसी विचार को दूसरे शब्दो म प्रस्तुत करते हुए कहा है कि 'स्विटजरलण्ड के सार्वजनिक जीवन का यह एक मान्य सिद्धान्त है कि पार्षदों (councillors) द्वारा एक वकील अथवा शिल्पकार की भाँति परामर्श दिया जाता है। यदि उनके परामर्श को स्वीकार नही किया जाता है तो वे पदत्याग के लिए बाध्य नही है।'[9]

विधिक दृष्टि से परिषद संघीय सभा के अधीन है। लेकिन व्यवहार म ऐसा नही है। परिषद मे अनुभवी राजनीतिज्ञ होते हैं अत वे व्यवस्थापिका का नेतृत्व करते है। लॉर्ड ब्राइस का मत है कि 'वैधानिक दृष्टि से परिषद व्यवस्थापिका की सेवक है परन्तु व्यवहार म वह इंगलैण्ड के मन्त्रिमण्डल की भाँति लेकिन फ्रांस के मन्त्रिमण्डल से अधिक शक्ति का प्रयोग करती है।'[10]

---

8 "The Ministers are not the leaders of the Houses but are their servants' —Strong *op cit* p 268

9 'It is a general maxim of public life in Switzerland that on official affairs, he gives his advice, but like a lawyer or an architect, he does not feel obliged to throw up his position because his advice is not followed —Lowell *Greater European Governments* 1926 pp 319 20

10 Bryce *Modern Democracies*, Vol I 1929, p 397

इसे अध्यक्षात्मक प्रणाली भी नही कह सकते। अध्यक्षात्मक व्यवस्था म शासन मे शक्ति पृथक्करण, व्यवस्थापिका के प्रति कायपालिका के उत्तरदायित्व का अभाव एव कायपालिका तथा व्यवस्थापिका का कायकाल निश्चित होता है। राज्य का अध्यक्ष ही कायपालिका का प्रमुख होता है। स्विस सघीय परिपद अमेरिकी राष्ट्रपति की भाँति शासन का एक पृथक अग नही है। स्विस परिपद बहुल कायपालिका है। अमेरिका म एकल कायपालिका है। स्विस परिपद के अध्यक्ष की स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना म नगण्य है। अमेरिकी राष्ट्रपति को काग्रेस द्वारा नही चुना जाता। इसके विप रीत, स्विस परिपद के सदस्यगण व्यवस्थापिका द्वारा चुने जाते हैं। स्विस परिपद के सदस्यो की माति अमेरिकी राष्ट्रपति के म त्रीगण व्यवस्थापिका क अधिवेशना म भाग नही लेते हैं। वे राष्ट्रपति क द्वारा नियुक्त किय जाते है और उसी के प्रति उत्तरदायी होते है। स्विस सघीय परिपद के सदस्या की भाँति उनका चयन व्यवस्थापिका द्वारा नही होता। अमेरिका क सचिव राष्ट्रपति के परामशदाता हैं—उनके परामश को स्वीकार या अस्वीकार करना राष्ट्रपति की इच्छा पर निभर करता है। अमेरिकी राष्ट्रपति व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नही है, उसका कायकाल निश्चित होता है। परिपद का कायकाल भी निश्चित है। उसके सदस्य भले ही व्यवस्थापिका द्वारा चुने जाते हो लेकिन व्यवस्थापिका उ हे उनके पदा स पृथक नही कर सकती है। अत स्विस सघीय परिपद क सगठन म ससदीय प्रणाली के प्रधान लक्षण—व्यवस्थापिका तथा कायपालिका के मध्य घनिष्ठ सम्ब ध—तथा अध्यक्षात्मक प्रणाली की विशेपता—स्थायी कायकाल—को सयुक्त करना सम्भव हो सका है। स्विस परिपद अमेरिकी राष्ट्रपति की भाँति स्वत त्र सत्ता नही रखती है, उसके कार्यों पर सघीय व्यवस्थापिका का निय त्रण होता है।

अत स्विस सघीय परिपद स्वरूप मे न तो ससदीय है और न ही अध्यक्षात्मक। यह ससदीय एव अध्यक्षात्मक प्रणालिया का मिश्रण या मध्यमाग है। इसम दोनो के गुणा का सम वय एव उनके दोपा के प्रतिकार का सफल प्रयत्न किया गया है।

24

लोक-सेवा

[THE CIVIL SERVICE]

लोक सेवा ही आधुनिक राज्यो की स्थायी कार्यपालिका है। मन्त्रिमण्डल एव राष्ट्रपति जनता द्वारा एक निश्चित समय के लिए निर्वाचित किये जाते है परन्तु लोक-सेवा के सदस्यो का कार्यकाल निश्चित होता है। मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था मे मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपने पदो पर ससद के प्रसाद पर्यन्त ही रहते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित है लेकिन उसके अधीन कार्य करने वाले शासकीय कर्मचारियो की स्थिति इससे भिन्न होती है। उनका पद स्थायी होता है। शासन की नीतियाँ *मन्त्रिमण्डल एव राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती हैं परन्तु उनके क्रियान्वयन का* दायित्व लोक सेवा के सदस्यो के विशाल समूह पर ही होता है। सामान्य जनता का लोक सेवा के साथ ही सम्बन्ध एव सम्पर्क होता है। अत लोक सेवा शासन तन्त्र का महत्वपूर्ण एव प्रभावशाली अग है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य विभाग के राजनीतिक अध्यक्ष होते हैं। उनके अधीन लोक-सेवा के सदस्य उस विभाग के स्थायी कर्मचारी होते हैं। उन्हे स्थायी कार्यपालिका (Permanent Executive) की भी सज्ञा दी जाती है।

हरमन फाइनर के अनुसार, "लोक सेवा पशेवर अधिकारियो का एक समुदाय है जो स्थायी वेतनभोगी एव कुशल (दक्ष) होते हैं।"[1] 1931 ई के लोक-सेवा सम्बन्धी शाही आयोग ने ब्रिटिश लोक-सेवा की परिभाषा निम्न शब्दो मे इस प्रकार दी है "क्राउन के राजनीतिक एव न्यायिक पदाधिकारियो के अतिरिक्त असैनिक पदो पर नियुक्त क्राउन के सेवक लोक सेवा के अन्तर्गत आते हैं और उन्हे वेतन सीधे ससद *द्वारा स्वीकृत धन मे से प्राप्त होता है।"*[2] *इसका अर्थ यह है कि सैनिक एव न्यायिक*

---

1 The Civil Service is a professional body of officials, permanent, paid and skilled' —Finer *op cit*, p 709

2 'The British Civil Service has been defined as those servants of the Crown, other than holders of political and judicial offices

अधिकारी लोक सेवा क अन्तगत नही आत हैं। सयुक्त राज्य अमरिका एव ग्रेट ब्रिटन सहश देश म वैनानिक एव अन्य पेशा स सम्बन्धित सेवाओ को लोक-सवा म माना गया है। आर्थिक क्रियाएँ भी अत्यधिक तकनीकी होती जा रही हैं अत एक सुभाव यह भी है कि इन क्रियाओ क लिए पथक स आर्थिक सवा का गठन किया जाना चाहिए। सक्षेप म, लोक सवा का अथ गर-तकनीकी (non technical) सेवाएँ हैं।[3] लोक सेवा क लिए दूसरा प्रचलित शब्द 'ब्यूरोक्रेसी' (Bureaucracy) है। यह फ्रेंच भाषा का शब्द ह। ब्यूरो (Bureau) का अथ मज या डस्क है। अत ब्यूरोक्रसी का अथ मज या डस्क क शासन स है। हिन्दी भाषा म ब्यूरोक्रसी क लिए हम 'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग करग। नौकरशाही का प्रयोग अच्छे अथ म नही किया जाता, अपितु नौकरशाही को घणा की दृष्टि स देखा जाता है। सामान्यत नौकरशाही म निरकुशता, अफसरशाही एव विलम्ब जस दोष निहित हैं। यूरोप म इस शब्द का प्रयोग सामान्यत शासकीय कमचारियो के लिए किया जाता है। अधिकारियो म एक विशेष अकड तथा वर्गीय भावना होती है और व जनता से अधिक मलजोल नही बढात हैं। नियम का अक्षरश पालन, निणय म विलम्ब, नवीन प्रयोगो क प्रति अनास्था नौकरशाही की विशेषताए होती हैं। लास्की क अनुसार, "यह शासन की एक ऐसी पद्धति है जिसम अधिकारियो के हाथो म नियन्त्रण होता है जिससे सामान्य नागरिक की स्वतन्त्रता को क्षति होती है।"[4] नौकरशाही को यदि पेशेवर कमचारी मान लिया जाय तो वे शासन के लिए अपरिहाय बन जात हैं। विलोबी न प्रशा क राज्य कमचारियो के लिए नौकरशाही (Bureaucracy) शब्द का प्रयोग किया है।

लोक सेवा के काय

लोक सवा के विभिन्न प्रकार के काय हैं। शासन की नीतियो को क्रियान्वित करना उनका प्रमुख काय है। नीति निर्माण म वरिष्ठ एव उच्च कमचारियो द्वारा सहयोग भी किया जाता है। सचिव एव उप सचिवो द्वारा नीति के सम्बन्ध म मन्त्रियो को परामश दिय जाते हैं। नीति के क्रियान्वयन के सम्बन्ध मे अधीनस्थ कमचारियो को निर्देश देने तथा नियन्त्रण और निरीक्षण (direction, control and supervision) के अधिकार होते हैं। प्रदत्त विधि निर्माण एव प्रशासकीय न्यायिक सम्बन्धी कार्यों को भी लोक सेवक सम्पादित करते हैं। उदाहरण के लिए, विभागाध्यक्ष क रूप म उन्हे अपन अधीनस्थ के लिए नियम बनाने का अधिकार प्राप्त है। आय कर आयुक्त

---

who are employed in a civil capacity and whose remuneration is paid wholly and directly of the money voted by the Parliament —The British Civil Service, BIS Pumphlet No R 4985, July 1961 p 1

3 Tyagi, A R *Public Administration* 1972, p 352

4 Laski, quoted by Avasthi and Maheshwari in *Public Administration*, 1971, p 242

द्वारा आय-कर अधिकारी के निणय के विरुद्ध अपील सुनी जाती है। यह उसका न्यायिक कतव्य है। वे जनता से सम्पक स्थापित करते हैं तथा शासन की नीतियों के उद्देश्य को स्पष्ट करत ह एव सम्बन्धित भ्रान्तिया का निवारण करत हैं। शासकीय नीति के क्रियान्वयन म जन सहयोग प्राप्त करना उनका महत्वपूर्ण काय होता है। सावजनिक सेवा, दनिक शासकीय काय, करो का एकत्रीकरण, शासन-काय, वैज्ञानिक शोध आदि *कार्यों पर निरीक्षण रखना लोक सेवा का ही दायित्व है।*

भारत म जिला अधिकारी (District Magistrate) की स्थिति लोक-सेवक (Civil Servant) की तुलना म भिन्न है। वह करो को एकत्र करने वाला राजस्व अधिकारी भी है तथा जिला का प्रमुख दण्डाधिकारी (Magistrate) भी। स्वतन्त्रता के पूव तक वह जिले की सरकार था। वह राजस्व एव फौजदारी मामलो म अपने क्षेत्र म सर्वोच्च अधिकारी होता था। अब न्यायिक अधिकारी उसके क्षेत्राधिकार मे नही हैं। वह जिले म नियोजन के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी होता है।

लोक सेवा की मुख्य विशेषताएं[5]

ई एन ग्लेडन के अनुसार लोक सेवा के सदस्यो का निष्पक्षतापूवक चयन किया जाना चाहिए तथा राजनीतिक निष्पक्षता, प्रशासकीय पटुता एव सामाजिक सेवा भाव से उन्हे परिपूर्ण होना चाहिए।[6] लोक सेवा की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत हैं

(1) लोक सेवा वृत्ति रूप मे—लोक सवा एक वत्ति (पेशा) है एव लोक सेवक (Public Servants) पेशेवर कमचारी (professionals) होत हैं अर्थात् लोक सवा के सदस्य सरकारी नौकरी को जीवन यापन के साधन के रूप म अपनात है। लेकिन इसका यह अथ नही है कि लोक सेवा के विभिन्न श्रेणी के कमचारियो को एक ही प्रकार की योग्यता एव कुशलता की आवश्यक्ता होती है। अपितु विभिन्न पदो पर नियुक्त विभिन्न लोक सेवको म विभिन्न प्रकार की कुशलता एव योग्यता की आवश्यकता होती है। लोक सेवा एक ही प्रकार का पेशा नही है, अपितु विभिन्न प्रकार की सेवाओ एव कार्यों (professions) का सामूहिक नाम है जो राज्य की नीतियों को क्रियान्वित करने के एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति मे सलग्न हैं। अत लोक सेवा के सदस्यो की भर्ती, प्रशिक्षण एव सेवा की शर्तों के सम्बन्ध मे उचित प्रणाली के विकास की आवश्यकता है।

(2) अति आवश्यक—लोक सेवाएँ अति आवश्यक (urgent) होती हैं। प्रश्न यह है कि इन कार्यों को राज्य द्वारा सम्पादित करने की क्या आवश्यकता है?

5 Based on Finer *op cit*, pp 714 720

6 "Briefly summarized, the requirements of the Civil Services are that it shall be impartially selected administratively competent politically natural and imbued with the spirit of service to the community "—Gladden *The Civil Service* 1956, p 35

भारत में यह काम तथा नागरिक जीवन के अधिकार एवं सुरक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है। अब अहंकार, विभिन्न जाति एवं धर्म आदि अनेक बातों ने आश्चर्यजनक ढंग से विभिन्न लोगों में व्यक्तियों को प्रभावित किया है और सेवाओं के व्यापक सामाजिक एवं स्थायी संगठनों को स्थानों को भीड़ समूह में उठ खड़ा हुआ। लोक-सेवाएँ शान्ति और व्यवस्था की रक्षा एवं व्यवस्था के लिए अनिवार्य आवश्यकता हैं।

(3) व्यापक संगठन—लोक सेवा अपने में व्यापक (a large scale) संगठन है और उन पर राज्य का पूर्ण एकाधिकार (monopoly) है। लोकसेवीय कर्मचारी इस प्रकार काम करते हैं कि सभी व्यक्तियों को आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध हो सकें। चूँकि राज्य का लोक सेवाओं पर एकाधिकार होता है अतः उनका मूल्यांकन हम राज्य नियन्त्रण से स्वतन्त्र एवं निजी उद्योगों के कार्यों की भाँति नहीं कर सकते। लोक-सेवाओं का उद्देश्य व्यापारिक संस्थाओं की भाँति लाभार्जन न होकर जनसेवा होता है।

(4) जनता के साथ समान व्यवहार—जनता के साथ लोक-सेवा समान व्यवहार करती है (Equality of Treatment)। लोक-सेवकों का अपना आचरण में पूर्ण निष्पक्ष होना चाहिए। उन्हें किसी के साथ कोई रियायत या पक्षपात नहीं करना चाहिए और विधि का पालन बिना किसी भेदभाव के क्रियान्वित करना चाहिए। उनका आचरण अनाम (anonymous) होना चाहिए। फ्रांस एवं जर्मनी में गृह मन्त्रालय एवं पुलिस अधिकारियों में कमी इसका स्पष्ट उदाहरण था। उन्हें प्रशंसा एवं बदनामी से निरपेक्ष रहकर गुप्त आचरण करना चाहिए तथा प्रशंसा या यश की कामना किए बिना निष्ठापूर्वक शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करना चाहिए चाहे व्यक्तिगत रूप से वे उससे सहमत हों अथवा न हों।

राज्य-कर्मचारी केवल कर्मचारी होते हैं, वे राजनीतिज्ञ या विधायक नहीं होते। उन्हें केवल परामर्श देना चाहिए एवं शासकीय नीति को क्रियान्वित करना चाहिए। वे व्यापारियों की भाँति अपनी सेवाओं का मूल्य जनता से नहीं ले सकते। वे राज्य के नियमों द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत काम करते हैं। उन्हें एक सामान्य विधियों के अन्तर्गत स्वविवेकीय अधिकार प्राप्त होते हैं परन्तु उनके विरुद्ध जनता को स्वयं ही विधायी एवं न्यायिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

(5) जनता के प्रति उत्तरदायित्व—लोक-सेवाएँ अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं (Public Accountability)। लोकतन्त्रीय देशों में ऐसे तरीकों का विकास हुआ है जिनके द्वारा कर्मचारियों को जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। वे काँच के बर्तन में तैरती हुई मछली की तरह हैं और उनकी हर क्रिया दिखायी देती है और उनके कार्यों के लिए उन्हें दण्डित किया जा सकता है। फलतः राज्य-कर्मचारी अत्यन्त चौकन्ना रहते हैं। वे सदैव इसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उनसे कोई भूल न हो जाय। वे कोई निर्णय करने के पूर्व सम्बन्धित कागजों तथा विधि का सूक्ष्मतम अध्ययन कर लेते हैं। उत्तरदायित्व के

फलस्वरूप अधीनता एव पदसोपान प्रणाली (hierarchy) का विकास होता है । वरिष्ठ अधिकारी अपने अधीनस्था के केवल उसी परामश को स्वीकार करते हैं जिसकी वह रक्षा कर सकते हैं । फलस्वरूप विभाग के युवक कमचारियो को नीति निर्माण मे योग देने के वाछित अवसर प्राप्त नही हो पाते और लालफीताशाही का दाष उत्पन्न हो जाता है ।

(6) **पद सोपानीय सगठन** (Hierarchical Establishment)—राज्य की प्रकृति एव सुनिश्चित कायक्षेत्र के फलस्वरूप पद सोपान पद्धति पर आधारित विभागीय सगठनो का विकास हुआ है । विभाग क विभिन्न कमचारियो को पद, कार्य एव वेतन की दृष्टि से श्रेणिया मे वर्गीकृत कर दिया गया है । पद सोपान प्रणाली का मुख्य सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक कमचारी अपने स उच्च कमचारी के अधीन होता है एव आदेश के कारण एकता के सूत्र मे आबद्ध रहता है । निम्न अधिकारी अपन स वरिष्ठ अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होते है । विभागीय सगठन सैनिक सगठन की तरह होते है और सभी काय उचित क्रमानुसार (through proper channel) होते हैं ।

(7) **जनता से सम्पक**—लोक सवा के सदस्या का जनता से सीधा सम्पक होता है । इसक फलस्वरूप लोक सवा के प्रति जनता मे अपेक्षाकृत अधिक घृणा पायी जाती है । व्यवस्थापिका एव कायपालिका की गलत नीतियो एव विधिया के लिए सामान्य जनता राज्य कमचारियो को ही दोषी ठहराती ह । उन्ह शासन की नीतिया को क्रियान्वित करत समय औपचारिक *एव कठोर आचरण करना पडता है । यदि* वे किसी व्यक्ति का हित करना चाहते है या उसे लाभ पहुँचाना चाहते हे तो उन्ह यह काय भी धीरे धीरे एव अनिच्छापूवक ही करना पडता है । फलत शासकीय कमचारिया के प्रति जनता म विरोधी भावना व्याप्त हो जाती है । लोक सेवक को किसी भी प्रकार निदयी या क्रूर (ruthless) नही होना चाहिए[7] तथा उनका दृष्टिकोण परोपकारी होना चाहिए । यह सामान्य विश्वास है कि राज्य एक आदश मालिक (employer) है । लोक सेवा मे व्यक्तिगत प्रतिस्पर्द्धा के लिए काई स्थान नही होता है । अत जो एक बार शासकीय सेवा म भर्ती हो जाता है वह जीवन भर उसमे बना रहता है । सहयोगी व वरिष्ठ अधिकारिया द्वारा परस्पर एक-दूसर के लिए कठोर शब्दो का प्रयोग नही किया जाता है । अनुशासनात्मक कायवाही बहुत कम ही जाती है एव सरकारी सेवा मे स बहुत कम व्यक्तियो का ही निकाला जाता है । अत इन सीमाओ के अधीन काम की उचित (workable) परिस्थितिया का निर्माण लोक-सेवा के लिए महत्व का विषय बन गया है ।

लोक-सेवा का इतिहास

प्राचीन मिस्र म लोक सवा के किसी न किसी रूप मे प्रचलित होने के प्रमाण

7 Finer *op cit*, p 719

मिलते हैं। प्राचीन भारत एव चीन म भी राज्य कमचारिया की नियुक्ति की प्रथा प्रचलित थी, लेकिन प्राचीन यूनान म लोक सेवको का वग नही पाया जाता था। एथेन्स मे अधिकाश कमचारी जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते थे और वहाँ गण तन्त्रीय रोम की तरह की कोई लोक सेवा नही थी। रोमन साम्राज्य म अनक प्रकार के प्रशासको की नियुक्ति की गयी और महत्वपूर्ण पदा पर केवल कुलीनतन्त्रीय वग के व्यक्तियो को ही नियुक्त किया जाता था। मध्ययुगीन यूरोप म पशेवर राज्य-कमचारियो का उदय हुआ जिनम अधिकाश कमचारी मध्यम वग म स भर्ती किये जाते थे।

डा व्हाइट के अनुसार फ्रा स मे रिचलू (Richlieu), ब्रिटेन म हेनरी अष्टम एव महारानी ऐलिजावथ प्रथम तथा प्रशा म इलेक्टर महान् (The Great Elector) वे प्रमुख शासक है जिन्होने मध्ययुगीन सामन्ती व्यवस्था के मध्य से राज्य, पद, नागरिक-जीवन एव स्थायी पदाधिकारियो की धारणा का विकास किया था।[8]

प्रशा की लोक सेवा (*Prussian Civil Service*)

लोक सेवा का आधुनिक युग मे सवप्रथम विकास प्रशा म हुआ था। 1640 से 1786 ई तक प्रशा पर चार राजाओ का शासन रहा था। इनम से तीन राजा महान इलेक्टर फ्रेडरिक विलियम एव फ्रेडरिक महान् योग्य एव विलक्षण प्रशासनिक क्षमता से युक्त थ। प्रशा म लोक सेवा की स्थापना एव विकास उपरोक्त शासकों का काय था।[9] तीस वर्षीय युद्ध से जन, धन एव सस्थाओ की अत्यधिक हानि हुई थी तथा युद्ध के पश्चात राजस्व एव सैनिक प्रणाली का पुनगठन एक समस्या थी। राज्य के क्षेत्रफल तथा जनसख्या मे वृद्धि के साथ राज्य कमचारियो की सख्या म भी वद्धि हुई थी। आर्थिक विकास के लिए शीघ्र निणय की क्षमता, ईमानदारी एव प्रशासनिक शक्ति स युक्त राज्य-कमचारियो की आवश्यकता थी। फलस्वरूप प्रशिक्षित लोक-सेवा का महत्व अनुभव किया जाने लगा और शक्तिशाली लोक सेवा ने प्रशा के एकीकरण म भी योग दिया। केन्द्रीय शासन म विभिन्न विभागो की स्थापना की गयी। प्रशा म स्थायी सेना थी जिसकी भर्ती सीधे केन्द्रीय शासन द्वारा की जाती थी। जिला मे भी राज्य द्वारा अधिकारियो की नियुक्ति की गयी थी। जिला अधिकारियो (Kreisdirektors) की नियुक्ति प्रारम्भ मे सनिक उद्देश्य से की गयी थी पर तु शीघ्र ही व जिलो मे केन्द्रीय शासन के सीधे प्रतिनिधि के रूप म काय करने लगे। अवकाश, काम के घण्टे, पद्धति, गोपनीयता एव अनुशासन आदि के सम्बन्ध म नियम बनाय गय। जनता से सम्पक रखने वाले कमचारिया को विनम्रतापूवक आचरण के आदेश दिये गये। व्यापारिया को अपमानित करने पर प्रथम अपराध के लिए कर दण्ड एव बाद म

---

8 White *The Civil Service in Modern States, 1930* p 11
9 Finer *op cit* p 727

ब्रिटिश लोक सेवा (The British Civil Service)

ब्रिटिश लोक सेवा को विश्व की सवश्रेष्ठ लाक सवा माना जाता है। फाइनर ने इसकी वडी प्रशसा की है। उसके अनुसार ब्रिटिश लोक सवा सदृश तकनीकी क्षमता एव मानवीय सेवा का समन्वय अय सेवाओ म नही मिलता है।[14] ग्राह्म वालास के अनुसार लोक सेवा का सगठन 19वी सदी के इगलण्ड का एक महान् राजनीतिक आविष्कार है।[15] राज्य के मत्रियो, सचिवा एव परामशदाताओ द्वारा जो कमचारी नियुक्त किये जाते थे व उनके द्वारा व्यक्तिगत रूप से नियुक्त किये जाते थे। वे मत्रियो के व्यक्तिगत सवक हुआ करते थे और उनके द्वारा ही पदच्युत किये जाते थे। व्यक्तिगत सवा की यह व्यवस्था आगे चलकर लोक सेवा में परिणत हो गयी। धीरे धीरे स्थायित्व एव पदो नति की प्रथा का भी विकास हुआ। महारानी विक्टोरिया के सिहासनारूढ होने के 150 वर्षों पूव से राजनीतिज्ञो एव शासकीय कमचारियो म भेद किया जाने लगा था। 1832 ई तक ब्रिटन म लोक सेवा मे 21 हजार व्यक्ति थे।

19वी सदी के उत्तराद्ध म लोक सेवा मे सुधार हुए थे, फलस्वरूप उस आधार भूत पद्धति का विकास हुआ जो वतमान ब्रिटिश लोक सेवा का आधार है। आधुनिक लोक सेवा के सम्बन्ध मे 1854 ई म नॉथकोट एव ट्रेविलियन[16] ने स्थायी लोक सेवा सगठन सम्बन्धी एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इन्ही सुझावो पर ब्रिटिश लोक सवा आधारित है। इस आयोग की मुख्य सिफारिशे इस प्रकार हैं—परीक्षा की उचित प्रणाली द्वारा योग्य व्यक्तियो का चयन, योग्यता के आधार पर पदोन्नति, सभी कमचारियो को एक सेवा मे सगठित करना एव सभी कमचारियो को विभिन्न विभागो म पदोन्नति के अवसर देना तथा लिपिक वग की स्थापना जिससे सामान्य रूप से उनकी सेवाएँ सभी विभागा को उपलब्ध हो सके। इन सुधारो को धीरे धीरे कुछ वर्षों म क्रियान्वित किया गया था।

1855 ई म लोक सेवा आयोग (Civil Service Commission) की स्थापना की गयी थी। इससे पूव प्रत्येक विभाग को अपने कमचारियो का चयन एव नियुक्त करने की स्वतन्त्रता थी। सामान्यत स्वीकृत न्यूनतम योग्यता सम्बन्धी कोई मानदण्ड नही था, न कोई परीक्षा ही होती थी। काम तो चल रहा था परन्तु लोक सेवाओ मे अव्यवस्था व्याप्त थी। लोक सेवा आयोग के काय विभागाध्यक्षा द्वारा छोटे पदो के लिए मनोनीत नामो की समीक्षा करना तथा यह देखना था कि वे पद के दायित्व क अनुरूप आवश्यक न्यूनतम योग्यता रखते है या नही। विभिन्न विभागो

---

14 Quoted by E Asirvatham *Political Theory op cit*, pp 384 85

15 *Ibid*

16 Northcote Trevelyan Report on the Organisation of the Permanent Civil Service, 1854

द्वारा जो पृथक पृथक परीक्षाएँ ली जाती थी उनके स्थान पर आयोग द्वारा एक परीक्षा सचालित की थी।

1870 ई का आदेश लोक सेवा के इतिहास मे महत्वपूण स्थान रखता है। इसके द्वारा विभागीय नौकरियो के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ अनिवाय कर दी गयी। 1874 ई मे प्लेफेयर आयोग (Playfair Commission) द्वारा कमचारियो के चयन, हस्तान्तरण एव वर्गीकरण के सम्बन्ध म अधिक विस्तृत सुधारो के प्रस्ताव रखे गये। लोक सेवा मे तीन श्रेणिया बनायी गयी—प्रशासकीय या स्टाफ अधिकारी, उच्च तथा निम्न सम्भागीय कमचारी। रीडले आयोग (1886 90) (Ridley Commission) द्वारा पृथक रूप से कुछ विभागो के सगठन आदि के सम्बन्ध म सिफारिशे प्रस्तुत की गयी। आयोग ने काय विभाजन तथा हर प्रकार के काय के लिए पृथक व्यक्तिया की भर्ती का भी सुझाव दिया। मक्डोनल आयोग, 1912-15 (MacDonnell Commission) ने देश की शिक्षा प्रणाली एव लोक सेवा की परीक्षाओ म घनिष्ट समन्वय का सुझाव दिया। ग्लैडस्टोन समिति (Gladstone Committee, 1918) एव टोमलिन आयोग, 1931 (Tomlin Commission) द्वारा भी महत्वपूण सुझाव दिये गये थे। टोमलिन आयोग ने राज्य कमचारियो की चार प्रमुख श्रेणियो—प्रशासकीय, कायपालिका, लिपिक (clerical) एव सहायक लिपिक—के निर्माण का सुझाव दिया था। समस्त शासकीय पद स्त्री एव पुरुषो के लिए समान रूप से खोल देने का भी सुझाव दिया गया था। द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त राज्य-कमचारिया की सेवा सम्बन्धी शर्तों (service conditions) के सम्बन्ध म विचार-विमश हेतु प्रीस्टले आयोग (Priestley Commission, 1953 55) की स्थापना की गयी थी। आयोग ने काम के घण्टो को कम करने, एक सप्ताह मे पाच दिन करने, काय अवकाश भत्तो को कम करने एव वेतन वृद्धि का सुझाव दिया।

ब्रिटिश लोक सेवा म तीन प्रकार की श्रेणियाँ (classes) हैं

(1) सामान्य सेवा श्रेणिया (General Service Classes)—इसम प्रशासकीय, कायपालक, लिपिक एव अन्य लघु वेतनभागी कमचारी होते है।

(2) विशेषज्ञ श्रेणियाँ (Specialist Classes)—इसम वैज्ञानिक, तकनीकी एव विशेष रोजगारो से सम्बन्धित कमचारी शामिल होते है।

(3) विभागीय श्रेणिया (Departmental Classes)—इसका सम्बन्ध एक विभाग के कमचारिया से होता है, यथा—राजस्व मण्डल के कर निरीक्षण कार्यालय (Tax Inspectorate)।

वैदेशिक सेवा (Foreign Service), समुद्र पार लोक सेवा (Oversea Civil Service) एव उत्तरी आयरलैण्ड की लोक सेवा उपरोक्त श्रेणिया से पृथक हैं।[17]

---

17 The British Civil Service *op cit*, pp 7 10

ब्रिटिश लोक सेवा पर कोषागार या ट्रेजरी विभाग का निय त्रण होता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे लोक सेवा (The U S Civil Service)

सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रशासन मे लूट प्रथा (Spoils System) प्रचलित थी। इसके अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचन के पश्चात विभिन्न शासकीय पदो पर सैकडो की सख्या मे विजयी दल के व्यक्तियो को नियुक्त कर दिया जाता था। इस प्रथा के लिए प्रधान रूप मे राष्ट्रपति एण्ड्रू जकसन (Andrew Jackson) उत्तरदायी थे, यद्यपि लघु रूप से यह कुप्रथा वाशिगटन, जैफरसन एव एडम्स के समय से ही प्रचलित थी। 1829 ई से 1883 ई तक अमरिकी सावजनिक जीवन म इसका बडा जोर रहा था और सभी शासकीय पदा पर विजयी राष्ट्रपति द्वारा अपने राजनीतिक दल के व्यक्तियो की नियुक्तियाँ की जाती थी। इस लूट प्रणाली के गम्भीर दुष्परिणाम हुए [18] (i) प्रशासन म अक्षमता (inefficiency) का साम्राज्य व्याप्त हुआ था। (ii) राजकीय पदा की सख्या मे वद्धि हुई थी। (iii) राजनीतिक भ्रष्टाचार न व्यापक रूप धारण कर लिया था। (iv) नियुक्तियो को लेकर राष्ट्रपति व सीनेट मे गम्भीर मतभेद एव द्व द्व उत्प न हो गये थे। (v) राष्ट्रपति एव अ य विभागाध्यक्षा के समय एव शक्ति का अत्यधिक अपव्यय होने लगा था। पदाधिकारियो का चयन कांग्रेसजन एव दलीय नेताओ द्वारा सयुक्त रूप मे किया जाता था। दला द्वारा जिन व्यक्तियो को नियुक्त किया जाता था उनसे दलीय निर्वाचन कोष के लिए वेतन का कुछ प्रतिशत निश्चित कर लिया जाता था। फलस्वरूप कमचारियो द्वारा अधिक वेतन की माँग की जाती थी। इस प्रकार लूट प्रणाली के अ तगत दला को राज्य स अप्रत्यक्ष रूप से धन प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था के अधीन जो कमचारी नियुक्त किये जाते थे वे पूरी तरह राजनीतिक दृष्टिकोण म रगे होते थे। तत्कालीन जनता की दृष्टि म राजनीति एव प्रशासन घृणित काय थे एव शायद ही कभी कोई राज्य इतना भ्रष्ट रहा हो जितना कि लूट प्रणाली के युग का अमेरिका।[19] क्षमता का अभाव, भ्रष्टाचार, घूसखोरी एव दलीय भावना की प्रधानता लूट प्रथा क कुत्सित दुष्परिणाम थे।

1880 ई म लूट प्रथा के विरुद्ध तीव्र जनमत बन चुका था। 1883 ई म सीनट न सिविल सर्विस अधिनियम (The Civil Service Act) पारित किया था। इसे पारित करान म सीनेटर पिडलटन का प्रमुख हाथ था। अत इसे Pendleton Act भी कहते हैं। इसके अनुसार—

---

18 Finer *op cit* p 832

19 Never had a State been so debauched and worse still politics and administration fell into public contempt."—Finer *Ibid*, p 832

(1) सीनेट के परामश से राष्ट्रपति को त्रिसदस्यीय लोक-सेवा आयोग के गठन का अधिकार प्रदान किया गया,

(2) लोक सेवा आयोग का यह् कतव्य निर्धारित किया गया कि इस विधेयक को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक नियमादि का निर्माण करके वह् राष्ट्रपति का सहयोग प्रदान कर, तथा

(3) सुप्रशासन के लिए वाछित परिस्थितियो के निर्माण, प्रत्याशियो की योग्यता के निर्धारण हतु *खुली प्रतियोगी परीक्षाओ की व्यवस्था, सेवा सम्बन्धी शर्तों* एव सेवाओ की श्रेणियो के वर्गीकरण आदि के सम्बन्ध मे लोक सेवा आयोग को नियमादि के निर्माण का अधिकार प्रदान किया गया।

लेकिन लूट प्रथा पूणत समाप्त नही हुई है। लोक सेवा आयोग म दोनो दलो को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। राष्ट्रपति को अनेक महत्वपूण प्रशासकीय एव तकनीकी पदो पर नियुक्ति का एकाधिकार बना हुआ है। 1905 ई मे लोक सेवाओ मे सुधार के लिए देश म एक बार पुन जागृति उत्पन्न हुई थी। लेकिन लूट प्रथा को पूरी तरह् समाप्त नही किया जा सका। 1916 ई तक लगभग आधे पदो पर प्रतियोगी परीक्षाओ द्वारा नियुक्तियाँ होने लगी थी। 1930 ई तक लूट-प्रथा प्राय पूरी तरह् समाप्त हो चुकी है। अब केवल कुछ उच्च पदो को छोडकर सभी शासकीय पदो पर नियुक्तियाँ लोक-सेवा आयोग के द्वारा ही होती है।

हरमन फाइनर क अनुसार अमेरिकी उच्च सेवा म योग्य कमचारियो के अभाव के दो निम्न कारण है प्रथम, प्रशासकीय श्रेणी या प्रशासकीय विश मण्डल (administrative braintrust) को कोइ मान्यता नही दी गयी है। ब्रिटेन एव फ्रास की उच्च प्रशासकीय सेवाओ की भाँति पूरी तरह प्रशासन को समर्पित प्रशासको का निर्माण नही किया जा सका है। सघीय कमचारियो के वर्गीकरण म ऐसे प्रशासकीय *अधिकारियो को कोई स्थान नही है। अधिकाश व्यक्ति जिन्ह परीक्षा के माध्यम से* भर्ती किया जाता है वे सेविवर्ग एव वित्तीय मामलो तथा प्रशासकीय सगठन आदि के विशेषज्ञ होत हैं। उन्ह सामान्य प्रशासन अर्थात नीति का साध्य एव साधन के रूप म निर्माण म परामश का कोई अनुभव नही होता। द्वितीय, लोक सेवा की परीक्षाओ म गहराई एव दाशनिक या तार्किक सघष के लिए स्थान नही है अपितु उसकी परीक्षाएँ अनावश्यक हैं। अत आवश्यकता इस बात की है कि लोक-सेवाओ की अहता सम्बन्धी आवश्यकताओ तथा शिक्षा प्रणाली म निकट सम्पक होना चाहिए।[20] हूवर आयाग के सदस्यो को अमरिकी लोक सेवा व्यवस्था के प्रति काफी असन्तोष था। आयोग का मत था कि कनिष्ठ (junior) वैज्ञानिक, तकनीकी एव प्रशासकीय पदो की भर्ती

---

20 Finer *op cit*, pp 842 43

के सम्बन्ध मे न तो पर्याप्त प्रयत्न किया जाता है और न ही इस ओर पर्याप्त समय दिया जाता है।[21]

फाइनर हूवर आयोग की इस सिफारिश को उचित नही मानते कि प्रत्येक विभाग को लोक सेवा आयोग के अधीन अपनी आवश्यकतानुसार भर्ती की निजी योजना बनानी चाहिए। इस व्यवस्था से एकल प्रशासकीय सेवा का विकास नही हो सकेगा।[22]

सयुक्त राज्य अमेरिका म शासकीय कमचारियो को निजी व्यवसायो के कमचारियो की अपक्षा कम वेतन मिलता है अत योग्य व्यक्ति सरकारी सेवा म आकर्षित नही होते है और जो आते भी हैं वे अवसर पाते ही शासकीय सेवा को छोड देते हैं। अमेरिकी लोक सेवा मे सामान्यत 35 वप एव कुछ सेवाओ म 40 वप की आयु तक के व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं। अन्य व्यवसायो म असफल होने पर अनेक व्यक्ति शासकीय सेवाओ मे चले आते ह। फलस्वरूप लोक सेवा म कुशलता का अभाव होता है। इस व्यवस्था के अन्तगत प्रशासकीय सेवा को स्थायी जीवन-वृत्ति (permanent carrer) बनाने की प्रवृत्ति विकसित नही होती है।

अमेरिकी लोक सेवा मे सुधार की आवश्यकता है और इस सम्बन्ध मे निम्न सुझाव प्रस्तावित किये गये हैं ब्रिटेन एव फ्रान्स की भाति प्रशासकीय वग का निर्माण किया जाय, योग्यतम एव बुद्धिमान व्यक्तियो को सेवा मे चुना जाय, लोक सेवा का स्थायी जीवन वृत्ति के रूप मे विकास किया जाय, वेतन म वद्धि, प्रगति एव पदोन्नति की उचित व्यवस्था की जाय। प्रतियोगी परीक्षाओ के द्वारा विशिष्ट योग्यता की अपक्षा सामान्य ज्ञान की परीक्षा भी ली जानी चाहिए।

भारत मे लोक सेवा (Civil Service in India)

आधुनिक अथ मे प्रशासन का विकास ब्रिटिश काल से हुआ है। इस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल मे कमचारी अप्रशिक्षित एव अपर्याप्त वेतनभोगी होते थे। गवनर लॉड क्लाइव न अपने द्वितीय कायकाल म इस सम्बन्ध मे सुधार का प्रयत्न किया था। उसने कमचारियो को कम्पनी के साथ अनुबन्ध (contract) करने के लिए बाध्य किया और निजी व्यापार तथा भारतीयो से उपहार लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिये। फलस्वरूप अनुबन्धीय लोक सेवा (Covenanted Civil Service) का विकास हुआ। लेकिन इन व्यवस्थाओ से कोई विशेष लाभ नही हुआ। लाड कार्नवालिस ने देश के सम्पूण प्रशासन तन्त्र म व्यापक परिवतन किये थे। उच्च पदो पर अग्रेजो की एव निम्न पदो पर भारतीयो की नियुक्तियाँ की गयी। उसने कमचारियो के निजी व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया परन्तु उनके वेतन मे वद्धि कर दी तथा पदोन्नति

---

21 Finer *Ibid*, p 843
22 *Ibid*

के लिए वरिष्ठता के सिद्धा त को मा यता प्रदान की । लॉड वेलेजली ने अपने समय मे फोट विलियम म एक विद्यालय की स्थापना की जिसमे प्रत्येक नवीन कमचारी को कम्पनी की सेवा म आने पर तीन वष तक भारतीय इतिहास, भाषा एव विधि की शिक्षा दी जाती थी । लेकिन कम्पनी के डायरेक्टरा न इस विद्यालय को बाद म ब द कर दिया और 1813 ई म हेलबरी (Haileybury) मे एक विद्यालय की स्थापना की जो 1858 ई तक चलता रहा । भारतीय लाक सवा के लिए मनोनीत व्यक्तियो को चार वष तक इस विद्यालय म शिक्षा दी जाती थी और कठिन परीक्षा होती थी । विद्यालय का प्रशिक्षण-स्तर ऊँचा तथा अनुशासन कठोर था । इस समय कम्पनी मे सरक्षण प्रणाली (patronage system) प्रचलित थी । कोट आफ डायरेक्टस द्वारा नियुक्तियाँ की जाती थी और जिस वे चाहत थे उसे नियुक्त करते थे । 1853 ई के चाटर अधिनियम के द्वारा सरक्षण प्रणाली को समाप्त करके खुली प्रतियोगी परीक्षा की व्यवस्था की गयी । मकॉले ने खुली प्रतियोगी परीक्षा का सुभाव दिया था और ब्रिटिश ससद ने उसे स्वीकार कर लिया था । मकॉल न लोक सेवा मे भर्ती के लिए किसी विशेष शिक्षा पर बल न देकर केवल प्रत्याशिया को मानसिक जागरूकता एव क्षमता के परीक्षण पर बल दिया था ।

1833 ई के चाटर अधिनियम द्वारा कम्पनी की सेवाओ मे भारतीयो के साथ समानता के व्यवहार का आश्वासन दिया गया था पर तु 1870 ई तक केवल एक भारतीय को ही कम्पनी की अनुब धीय लोक सेवा म भर्ती किया गया था । भारतीय लोक सेवा की अधिकतम आयु सीमा 23 वष निर्धारित की गयी थी । इसे 1860 ई म 22 वष, 1866 ई म 21 वष एव 1878 ई म 19 वष कर दिया गया था। इतनी अल्पायु म भारतीया के लिए इगलैण्ड जाकर प्रतियोगी परीक्षाआ मे भाग ले सकना कठिन हो गया । अत भारतीय लोक सेवा म 1870 ई से 1914 ई तक केवल 14 भारतीय प्रत्याशी ही सफल हो सके। 1858 ई मे कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और भारतीय शासन क्राउन के अधीन आ गया । भारतीय लोक सेवा मे नियुक्ति के अधिकार भारत म त्री को प्राप्त हो गये । 1870 ई म भारतीयो को लाक-सेवा म नियुक्त करन के उद्देश्य से ब्रिटिश ससद ने विधि द्वारा भारत सरकार को इस सम्ब ध म नियम बनाने का अधिकार प्रदान कर दिया । भारत सरकार न इन नियमा के बनाने म 9 वष लगा दिये । इन नियमो के अधीन गवनर जनरल को समाज मे प्रतिष्ठित एव सम्मानित परिवारो के सदस्या को लोक सेवा मे भारत म त्री द्वारा प्रति वष की गयी नियुक्तिया के छठवें भाग के बराबर नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया था । फलस्वरूप सविधिक लोक सेवा (Statutory Civil Service) का विकास हुआ ।

लोक सेवा सम्ब धी इस व्यवस्था के प्रति भारतीय जनता म तीव्र अस तोष था । भारत एव इगलैण्ड मे एक साथ प्रतियोगी परीक्षाएँ करने की माँग श्री सुरे द्रनाथ

बनर्जी द्वारा प्रस्तुत की गयी। अपने मत के प्रचार एवं समर्थन हेतु उन्होंने सम्पूर्ण भारत का दौरा किया। इस समय तक अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। कांग्रेस ने प्रतियोगी परीक्षाओं की आयु सीमा बढ़ाने एवं भारत तथा इंगलैण्ड में साथ साथ प्रतियोगी परीक्षाओं की व्यवस्था करने की माँग की।

एचीसन आयोग (Aitchison Commission)—लॉर्ड डफरिन ने 1886 ई मे चार्ल्स एचीसन (Sir Charles Aitchison) की अध्यक्षता में भारतीयों की लोक सेवा सम्बन्धी माँगों पर विचार करने हेतु एक आयोग की स्थापना की। आयोग ने (1) इंगलैण्ड एवं भारत मे साथ-साथ परीक्षा के विचार को अस्वीकार कर दिया, (2) अधिकतम आयु 23 वर्ष कर देने का सुझाव दिया, तथा (3) अनुबन्धीय एवं गैर अनुबन्धीय सेवाओं के स्थान पर साम्राज्ञीय, प्रान्तीय एवं अधीनस्थ सेवाओं का वर्गीकरण प्रस्तावित किया। एचीसन आयोग का प्रतिवेदन एक लेख मात्र रह गया क्योंकि उस पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी। भारतीय नागरिक सेवा के अतिरिक्त इसी बीच में अनेक नयी अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना की गयी। इनमे प्रमुख थी भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय स्वास्थ्य सेवा एवं भारतीय शिक्षा सेवा।

1909 ई के अधिनियम द्वारा भारतीयों की माँगों को और अधिक बल प्राप्त हुआ। फलस्वरूप 1912 ई मे लोक सेवा मे भारतीय माँगो पर विचार हेतु एक आयोग की स्थापना लॉर्ड इस्लिंग्टन (Lord Islington) की अध्यक्षता में की गयी।[23] परन्तु आयोग के प्रतिवेदन देने के पूर्व ही आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घट चुकी थी। फलत लोक सेवा मे सुधार सम्बन्धी अगला कदम 1918 ई की मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट (Montford Report) के आधार पर ही उठाया गया।

मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें निम्नवत् थी

(1) भारत एवं इंगलण्ड में साथ-साथ प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जायें।

(2) अखिल भारतीय सेवाओं के 33% पदों पर भारतीयों की नियुक्ति की जाय तथा इस संख्या मे प्रति वर्ष $1\frac{1}{2}$% की वृद्धि की जाय।

(3) अखिल भारतीय सेवा के कर्मचारियों को उच्च पदों पर वेतन, पेंशन, अवकाश एवं समुद्र पार जाने के भत्ते दिये जायें।

भारत शासन अधिनियम (1919 ई)—भारत शासन अधिनियम (1919 ई) के द्वारा इन सिफारिशों को क्रियान्वित किया गया तथा केन्द्रीय सेवाओं की भर्ती के लिए एक लोक सेवा आयोग की स्थापना को स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त लोक सेवाओं में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया था

---

23 श्री गोपालकृष्ण गोखले इस आयोग के एक सदस्य थे। आयोग ने अपना प्रतिवेदन *1915 ई में दिया था परन्तु वह 1917 ई में* प्रकाशित हुआ था।

अत लोक तथा अन्य सेवाओं म मुसलमानों को पृथक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। लोक सेवा के यूरोपियन सदस्यों के अधिकारों एव हितों की रक्षा का अधिकार गवनर को प्रदान किया गया।

ली आयोग (Lee Commission)—1923 ई म लार्ड ली (*Lord Lee* of Fareham) की अध्यक्षता मे एक अन्य शाही आयोग की स्थापना की गयी। उसके मुख्य सुझाव निम्नवत थे

(1) 1919 ई के अधिनियम मे उल्लिखित लोक सेवा आयोग की तुरन्त स्थापना किये जाने पर बल दिया,

(2) अखिल भारतीय लोक सेवाओं की कुछ श्रेणियों—यथा, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा इजीनियरिंग सेवा की सडक एव भवन शाखा को भारत मन्त्री के स्थान पर लोकप्रिय प्रान्तीय मन्त्रियों के नियन्त्रण म हस्तान्तरित करने का सुझाव दिया

(3) लोक-सेवा म 20% उच्च पदों पर प्रान्तीय सेवाओं के अधिकारियों की पदोन्नति करने एव सीधी भर्ती म आधे भारतीयों एव आधे यूरोपियनों को लेने का प्रस्ताव किया,

(4) पुलिस सेवा म यूरोपियन एव भारतीयों का अनुपात क्रमश 5 एव 3 का रखा गया, तथा

(5) साम्राज्यीय (Imperial), प्रान्तीय (Provincial) एव अधीनस्थ (Subordinate) श्रेणियों मे लोक सेवा का वर्गीकरण प्रस्तावित किया।

भारत शासन अधिनियम (1935 ई)—इस अधिनियम द्वारा लोक सेवा प्रणाली मे सशोधन एव सुधार के निम्नलिखित प्रयत्न किये गय थे

(1) भारतीय नागरिक (Civil) पुलिस एव स्वास्थ्य सेवाओं के अतिरिक्त शेष सभी सेवाएँ भारत मन्त्री के नियन्त्रण से हटाकर गवनर जनरल एव गवनरों के नियन्त्रण मे कर दी गयी।

(2) भारतीय नागरिक (लोक) सेवा के पदों के अतिरिक्त सभी पदों पर विधानमण्डल का नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया।

(3) सघीय एव प्रान्तीय लोक-सेवा आयोगों की स्थापना पर बल दिया गया और यह व्यवस्था की गयी कि सघीय एव प्रान्तीय शासन भर्ती पद्धति, नियुक्तियों, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अनुशासन आदि के सिद्धान्तों के निर्धारण म लोक सेवा आयोग से परामर्श लें।

(4) लोक-सेवाओं के यूरोपीय सदस्यों के हितों की रक्षा का दायित्व गवनर-जनरल एव गवनरों को प्रदान किया गया।

उपरोक्त विवरण स यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के पूर्व 1919 ई तक लोक सेवाओं के भारतीयकरण की गति अत्यन्त धीमी थी।

स्वतन्त्रता के पश्चात (After Independence)—भारत के स्वतंत्र होने पर लोक सेवा के बहुत से अँग्रेज पदाधिकारियों ने पूर्वावकाश ले लिया एवं बहुत से मुसलमान सदस्यों ने पाकिस्तान जाने का निर्णय किया, फलस्वरूप यकायक उच्च लोक सेवकों का अभाव हो गया। करीब 600 उच्च भारतीय नागरिक सेवा (I C S) के सदस्य कम हो गये। यही स्थिति भारतीय पुलिस सेवा में थी। इधर स्वतन्त्रता के फलस्वरूप राजकीय दायित्वों में वृद्धि हुई थी और लोक-कल्याणकारी एवं विभिन्न राजकीय दायित्वों को सम्भालने हेतु प्रशिक्षित एवं अनुभवी अधिकारियों की आवश्यकता थी। अतः भारत के तत्कालीन गृहमन्त्री स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने अक्टूबर 1946 ई में मुख्य मन्त्रियों का एक सम्मेलन नई दिल्ली में आमन्त्रित किया जिसमें अखिल भारतीय प्रशासकीय एवं भारतीय पुलिस सेवा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में प्रान्तों के मुख्य मन्त्रियों की सहमति प्राप्त करने में वे सफल हो गये थे। तत्पश्चात भारत सरकार द्वारा एक विशेष भर्ती मण्डल की स्थापना की गयी एवं खुली प्रतियोगिता से बहुत से पदों के लिए व्यक्तियों की भर्ती की गयी। अब इनके प्रशिक्षण का प्रश्न सामने था। द्वितीय विश्वयुद्ध-काल में ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में द्विवर्षीय प्रशिक्षण प्रणाली को अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण स्थगित कर दिया गया था। अब देहरादून में एक अस्थायी प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया गया। 1947 ई में भारत सरकार ने नई दिल्ली में भारतीय प्रशासकीय सेवा (I A S) के लिए स्थायी प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना की। 1955 ई में इस प्रशिक्षण संस्थान में अंशकालिक (part time) प्राचार्यों के स्थान पर पूर्णकालिक (full time) प्राचार्य एवं उप प्राचार्य (Vice Principal) की नियुक्ति की गयी। परन्तु इस व्यवस्था को भी अपर्याप्त एवं अपूर्ण माना गया और मसूरी में राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय (National Academy of Administrators) की स्थापना की गयी। अब यही विद्यालय लाल बहादुर शास्त्री प्रशासन विद्यालय के नाम से विख्यात है।

लोक सेवा की प्रशासनिक समस्याएँ

लोक सेवा की प्रमुख प्रशासनिक समस्याएँ हैं भर्ती (recruitment), पदोन्नति (promotion), अनुशासन (discipline) एवं सेवा सम्बन्धी अन्य शर्तें (जैसे, पदावकाश, पेंशन आदि)। अग्रिम पृष्ठों में इन पर विचार किया गया है।

भर्ती (Recruitment)

शासकीय पदों पर भर्ती से तात्पर्य विशिष्ट पदों के लिए योग्य एवं उपयुक्त व्यक्ति की खोज से है। भर्ती करने के लिए कर्मचारियों के पदों के विज्ञापन किये जाते हैं या मुख्य पदों के लिए उच्च प्रशिक्षित व्यक्तियों की खोज की जाती है।[24] प्रायः सभी देशों में सरकारी पदों के लिए विज्ञापन निकाले जाते हैं एवं उनमें से योग्य

24 Dimock *Public Administration* 1961, p 282

व्यक्तियो का चयन किया जाता है। सभी लोकतन्त्रीय देशा मे इस काय के लिए लोक सेवा आयोगा की स्थापना की गयी है। आयोग योग्य प्रत्याशियो के नामा का चयन करके शासन को भेज देते हैं और शासन उनको नियुक्त करता है। 'लूट प्रणाली' अब प्राय पूणत समाप्त हा गयी है।

भर्ती के दो तरीके ह प्रथम, सीधी भर्ती (direct recruitment), एव द्वितीय, पदोन्नति (promotion) द्वारा भर्ती। यह दोनो तरीके ही हर देश मे प्रच लित हैं। प्रत्यक देश मे विभिन्न पदो के लिए पूर्वापेक्षित (prerequisite) योग्यताएँ निर्धारित कर दी जाती हैं। योग्यताएँ दा प्रकार की होती है (1) सामान्य (general), एव (2) विशिष्ट (special)। सामान्य योग्यताआ या अहृताआ के अन्तगत नागरिकता, आवास, लिंग, आयु, आदि सम्बन्धी अर्हताएँ हाती ह। विशिष्ट अहृताआ के अन्तगत शिक्षा, अनुभव एव वैयक्तिक गुण सम्बन्धी अहृताएँ होती है।

कमचारियो की योग्यताओ की जाच करने के लिए परीक्षा एव साक्षात्कार की पद्धति का अनुगमन किया जाता है। परीक्षाएँ दो प्रकार की होती हैं—प्रतियोगी (competitive) एव अप्रतियोगी (non-competitive)। प्रतियोगी परीक्षाओ के माध्यम से सभी उम्मीदवारा म से वाछित स्तर के प्रत्याशियो की छाट की जाती है एव उनकी सापेक्षिक स्थितिया (relative positions) का निर्धारण किया जाता है। निम्न प्रकार की परीक्षाएँ होती है (1) लिखित परीक्षा (written examination), (2) मौखिक परीक्षा (oral examination), (3) काय प्रदशन (performance demonstration), एव (4) शिक्षा और अनुभव का मूल्याकन (evaluation of education and experience)।

लिखित परीक्षा का अनुगमन प्राय सभी देशो म किया जाता है। भारत व ब्रिटेन मे इन परीक्षाओ का उद्देश्य परीक्षार्थियो की सामान्य बुद्धि (general intelligence) एव श्रेष्ठ ज्ञान (superior mind) का पता लगाना है। महाविद्यालयो एव विश्वविद्यालयो मे पढाये जाने वाले विषयो म परीक्षा ली जाती है। प्राय यह विश्वास किया जाता है कि जो विद्यालय म अपनी बौद्धिक एव अन्य श्रेष्ठता व्यक्त करता ह वह सभी परिस्थितियो मे अनिवायत सफल होता है। भारत म भी उच्च नागरिक (लोक) सेवा के लिए उन्ही विषयो म परीक्षा ली जाती है *जिनकी शिक्षा विद्यालयो* एव विश्वविद्यालयो म दी जाती है।

सयुक्त राज्य अमेरिका म इसके विपरीत लिखित परीक्षा क द्वारा पद सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान का पता लगाया जाता है।

लिखित परीक्षा दो प्रकार की होती है निबन्धात्मक (Essay type) एव लघु उत्तरात्मक वस्तुनिष्ठ प्रणाली (Short Answer Objective type)। उच्च पदो के लिए निबन्धात्मक परीक्षा श्रेष्ठ होती है। लघु-उत्तरात्मक परीक्षा स केवल प्रत्याशी के तथ्य सम्बन्धी ज्ञान का ही पता चलता है।

मौखिक परीक्षा द्वारा प्रत्याशी के व्यक्तित्व आदि गुणों या अर्थात नेतृत्व की क्षमता एवं चरित्र बल का मूल्यांकन किया जाता है। मौखिक परीक्षा का प्रयोग सर्व प्रथम 1909 ई में इंगलैण्ड में किया गया था। दूसरे युद्ध समय पश्चात प्रशासकीय पदों पर चयन के लिए मौखिक परीक्षा अनिवार्य कर दी गयी थी। मौखिक परीक्षा में प्रत्याशी की सतर्कता, बुद्धिमता, प्रत्युत्पन्नमति, शीघ्र निर्णय एवं क्षिप्रग्राहता (sharpness) आदि गुणों का पता चलता है।

भारत में प्रशासनिक सेवा (I A S) के लिए 300 अंक, भारतीय विदेश सेवा के लिए 400 अंक तथा अन्य केन्द्रीय सेवाओं के लिए 200 अंक साक्षात्कार के लिए निर्धारित है। मौखिक परीक्षा के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत हैं। इसके दो प्रमुख दोष हैं (1) यह प्रणाली प्रभावात्मक, एवं (2) चित्तनिष्ठ (subjective) है। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं। चित्तनिष्ठ होने के कारण प्रत्याशी की क्षमता का आकलन करने का यह अत्यधिक अविश्वसनीय तरीका है। परेशानी, भय, घबराहट एवं कृत्रिम वातावरण में दिये गये अंकों में बड़ा अन्तर देखा गया है। अत फाइनर ने साक्षात्कार के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये हैं

(1) साक्षात्कार की अवधि आधे घण्टे की होनी चाहिए।

(2) साक्षात्कार में परीक्षा में पाठ्यक्रम में उल्लिखित प्रत्याशी के रुचि के विषयों पर ही वाद विवाद होना चाहिए।

(3) साक्षात्कार एक पूरक परीक्षा के रूप में होना चाहिए।

(4) साक्षात्कार मण्डल में व्यावसायिक संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के प्रशासक भी होने चाहिए।

(5) साक्षात्कार लिखित परीक्षा के बाद होना चाहिए।

(6) विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के प्रतिवेदन पर विचार करके ही अंक प्रदान किये जाने चाहिए।

(7) साक्षात्कार के अंकों की संख्या घटाकर अधिकतम 150 कर देनी चाहिए।[25]

भारतीय लोक सेवा में साक्षात्कार के 400 अंक होते हैं। इसकी कटु आलोचना की गयी है। संयुक्त राज्य अमरिका में साक्षात्कार को अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। साक्षात्कार लेने वालों के द्वारा विशेष फार्म (rating forms) का प्रयोग किया जाता है एवं सम्पूर्ण वार्ता टेप रिकॉर्ड की जाती है। इसके अतिरिक्त समूह साक्षात्कार की पद्धति का भी विकास हो रहा है। इसमें 10 12 प्रत्याशियों को वाद विवाद के लिए एक विषय दे दिया जाता है।

लोक सेवाओं की भर्ती का दायित्व लोक सेवा आयोग का है। ये अपने क्षेत्र में

---

25 Finer *op cit*, p 779

स्वायत्त सम्पन्न होते है और सविधान द्वारा इसकी स्वायत्तता सरक्षित होती है। वे
कार्यपालिका के निय त्रण एव हस्तक्षेप से मुक्त होते है। लोक सेवा आयोग के सदस्यो
की नियुक्तियाँ मुख्य कायपालिका द्वारा की जाती है। विभि न देशा मे लोक सेवा
आयोगो के सगठन म भि नता है। भारत म के द्रीय लोक सेवा आयोग के सदस्य
राष्ट्रपति एव राज्यो के लोक सेवा आयोग के सदस्य राज्यपालो द्वारा नियुक्त किये जाते
हैं। दो या अधिक राज्य मिलकर सयुक्त लोक सेवा आयोग का भी गठन कर सकते है।
आयोगो के लगभग आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जो कम से कम 10 वष तक शासन
की सेवा कर चुके हो। इनका कायकाल 6 वष होता है या सघीय लोक-सेवा आयोग
के सदस्य 65 वष एव राज्यो के लोक सेवा आयोग के सदस्य 60 वष की आयु तक
अपने पदो पर रह सकते हैं। आयोग के अध्यक्षो एव सदस्या को दुराचार के आरोप
पर सर्वोच्च यायालय की जाच एव प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रपति उ ह उनके पद
से पृथक कर सकता है।[6]

ब्रिटेन मे लोक सेवा आयोग की स्थापना 1855 ई मे की गयी थी। इनर्व
सदस्य सरया समय-समय पर बदलती रहती है। 1953 ई मे इसमे अध्यक्ष (जिसे प्रथ
आयुक्त (First Commissioner) कहा जाता है) के अतिरिक्त 5 सदस्य होते र
इनमे दो अल्पकालिक सदस्य होते है। 1961 ई मे भी केवल 5 सदस्य थे। ब्रिटेन
आयोग की सुरक्षा एव स्वत त्रता सम्ब धी कोई विशेष व्यवस्था नही है कि तु र
देशो मे जो सुरक्षा आयोग को सविधान द्वारा प्राप्त हुई है वह ब्रिटेन म दीघका
परम्परा एव जनमत के प्रभाव से प्राप्त है। इनकी नियुक्तियाँ रानी द्वारा प्रधान
के परामश स की जाती हैं। प्रधानम त्री लोक सेवा के प्रमुख (ट्रेजरी के सयुक्त र
सचिव) से इस सम्ब ध म अनिवायत परामश करता है। ब्रिटेन म लोक सेवा के
सदस्यो की वतमान स्थिति का वास्तविक आधार विभि न राजनीतिक दलो का लोक
सेवा आयोग की निष्पक्षता एव स्वत त्रता की रक्षा के सम्ब ध म एकमत होना है।
ब्रिटिश लोक सेवा आयोग अस्थायी कमचारियो एव तकनीकी सेवा के सदस्यो का
चयन नही करता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका के सघीय लोक-सेवा आयाग म तीन सदस्य होते हैं जो
अनिश्चित काल के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा सीनेट की सहमति से नियुक्त किय
जाते हैं। इसके सदस्य दोना प्रमुख अमेरिकी राजनीतिक दला के होते हैं। व्यवहार म
दो सदस्य एक दल क एव एक सदस्य दूसरे दल का होता है। राष्ट्रपति सदस्या को
पदमुक्त कर सकता है। अमेरिकी लोक-सेवा आयाग भी अपनी ईमानदारी एव निष्प
क्षता के लिए विख्यात है। अमेरिकी सघीय लोक-सेवा आयोग एक वृहद सगठन है।
बड़े नगरा म इसके 13 जिला कार्यालय तथा 500 स्थायी परीक्षा मण्डल एव 150

---

26 Indian Constitution Articles 315 to 317

रेटिंग मण्डल (Rating Boards) हैं। स्थानीय मण्डल अपने-अपने क्षेत्र म प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करत हैं।

लोक सेवा आयोग के काय एव दायित्वा को तीन भागो म वर्गीकृत किया जाता है—(1) प्रत्याशिया का चयन, (2) पदोन्नति एव अनुशासन सम्बन्धी विवादा व अपीलो को सुनना, तथा (3) वेतन निर्धारण, पद-वर्गीकरण, सेवा शर्तों का निर्धारण तथा कमचारियो की सभा एव समुदाय, सगठन एव प्रबन्ध, प्रशिक्षण एव सविवग की समस्याओ सम्बन्धी अन्वेषण करना।

ब्रिटन में लोक सेवा आयोग केवल कमचारिया के चयन से ही सम्बन्धित है। पदोन्नति एव अनुशासन सम्बन्धी काय प्रत्येक विभाग एव उसके कमचारिया द्वारा सम्पादित किय जाते है। आयोग एक वग से दूसरे वग (Class to Class) म पदोन्नति से भी सम्बन्धित होता है। शेष सभी काम कोषागार (Treasury) विभाग का दायित्व होते है।

भारत म लोक सेवा आयोगा का मुख्य रूप से उपरोक्त उल्लिखित प्रथम प्रकार के कार्यों अर्थात् प्रत्याशिया के चयन से ही सम्बन्ध होता है। ब्रिटन की तरह दूसरे प्रकार के काय विभागो द्वारा सम्पादित किये जाते हैं यद्यपि इन मामलो म भी आयोगो का परामश लिया जाता है। पदोन्नति, अनुशासन एव क्षति-पूर्ति के मामला म भी शासन को आयोग से परामश लेना चाहिए। ततीय प्रकार के मामले भारत म आयोगो के क्षेत्राधिकार मे नही आते हैं।

सयुक्त राज्य अमरिका एव कुछ राष्ट्रमण्डलीय देशा म उपरोक्त उल्लिखित तीनो प्रकार के काय लोक-सेवा आयोगो का ही दायित्व है। अत अमेरिकी लोक सेवा आयोगो का कायक्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक है। भारतीयो को ऐसा प्रतीत हो सकता है कि अमेरिकी लोक-सेवा आयोग अनेक ऐसे कार्यों को करता है जो कि ब्रिटेन म ट्रेजरी एव भारत म गृह मन्त्रालय द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। लोक सेवा के दायित्व एव कार्यों सम्बन्धी अमेरिकी दृष्टिकोण भिन्न है। वे लोक सेवा आयोग को सेविवग प्रशासन से सम्बन्धित सभी कार्यों को सम्पादित करने वाला प्रशासकीय अभिकरण मानते हैं। अमेरिकी लोक सेवा आयोग का प्रथम दायित्व अमरिका मे प्रचलित 'लूट प्रथा' का उन्मूलन करके योग्यता प्रणाली को प्रतिष्ठित करना था। स्मरणीय है कि प्रारम्भ मे अमेरिकी लोक सेवा आयोग का काय योग्यता प्रणाली के माध्यम से दुजनो को लोक सेवा से दूर रखना था। निषेधात्मक कार्यों के कारण शीघ्र ही लोक-सेवा आयोगो की तीव्र आलोचना होने लगी थी। श्रेष्ठ सेविवग प्रशासन (personnel administration) के स्थापनाथ अमेरिकी लोक सेवा आयोग ने पदाधिकारिया के चुनाव के अतिरिक्त सेवाआ का वर्गीकरण, प्रशासकीय अधिकारियो के निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनना एव वृद्धावस्था (superannuation) सम्बन्धी मामला को सम्पादित करना

प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन सयुक्त राज्य अमेरिका म इस दृष्टिकोण के विरुद्ध शीघ्र ही प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गयी। यह अनुभव किया जाने लगा कि सेविवर्ग समस्याओ का ज्ञान विभागीय प्रशासन को ही हो सकता है और किसी बाह्य सस्था को इन मामलो का पर्याप्त ज्ञान नही हो सकता। फलस्वरूप 1938 ई मे प्रत्येक विभाग मे सेविवर्ग निरीक्षण एव प्रबन्ध शाखा सेविवर्ग निर्देशक (Director of Personnel) के अधीन स्थापित की गयी। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश ट्रेजरी विभाग के स्थापना सम्भाग (Establishment Division) या भारतीय गृह मन्त्रालय के विभिन्न विभागो के सेविवर्ग निर्देशको की भाति अन्त विभागीय सेविवर्ग प्रशासन परिषद (Inter developmental Council of Personnel Department) की स्थापना की गयी है। अमेरिका म भी इस सम्बन्ध मे अन्य देशो की पद्धतिया के अनुरूप परिवतन हो रहे हैं।

लोक सेवा आयोगो के द्वारा भर्ती की कुछ विद्वानो ने आलोचना की है। उनका तक है कि लोक सेवा आयोग प्रधान रूप म प्रत्याशी की बौद्धिक उपलब्धि को ध्यान मे रखकर उसका चयन करता है। यह लोक सेवक क दायित्वो को देखते हुए ठीक नही है। चुने गये प्रत्याशियो को शासन की नीतिया एव कायक्रमो से सक्रिय सहानुभूति होनी चाहिए। इसे समर्पित लोक-सेवा (Committed Services) कहते है। भारत म भी आजकल यह विवाद चल रहा है और ऐसी मान्यता है कि लोक-सेवा को प्रगतिशील एव समाजवादी कायक्रम से सहानुभूति नही है और अनजाने ही लोक-सेवा प्रतिक्रियावादी तत्वो से गठबन्धन कर बठी है। अत उपरोक्त विचारधारा के समथकों का कथन है कि विभागाध्यक्ष को अपन विभागीय कमचारिया को चुनने का अधिकार होना चाहिए एव बाद मे इन नियुक्तिया की जाँच लोक सेवा आयोगा द्वारा की जानी चाहिए। उन्हे केवल यह देखना चाहिए कि नियुक्तियाँ न्यूनतम निधारित योग्यता तथा नियमानुकूल हुई है या नही। डॉ एम पी शर्मा का मत है कि इस मत को यदि क्रियान्वित किया जाय तो 'लूट प्रणाली' की पुनरावृत्ति हो सकती है।[27] सयुक्त राज्य अमेरिका मे आयोगा द्वारा तीन प्रत्याशिया को प्रस्तावित किया जाता है। शासन उनमे से एक को चुन लेता है। ग्रेट ब्रिटेन एव भारत म केवल योग्यतम प्रत्याशी का नाम ही प्रस्तावित किये जाते है एव शासन सामान्यत उन्हे स्वीकार कर लेता है। ब्रिटेन एव भारत म शासन द्वारा आयोगो की सिफारिशो की उपेक्षा करने पर उसकी तीव्र आलोचना की जाती है।

भारतीय भर्ती प्रणाली की निम्न आलोचना की जाती है। डॉ एपिलब्वी के अनुसार भारतीय भर्ती प्रणाली पर्याप्त कल्पनाशील और आक्रामक नही है अपितु इसम सेविवर्ग के अधिकारा की बहुत अधिक सुरक्षा की व्यवस्था है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विज्ञापन वकीलो द्वारा लिखे गय हो, न कि किसी प्रशिक्षित जन सम्पक

27 M P Sharma *Public Administration in Theory & Practice*, 197
p 311

अधिकारी या प्रचारक द्वारा ।[28] इसके अतिरिक्त परीक्षा पद्धति भी अद्यतिन उन्होंने मौखिक परीक्षा की प्रशंसा की है परन्तु उसकी धारणा है कि साक्ष शास्त्रीय बातें अधिक पूछी जाती हैं ।[29] ए डी गोरेवाला के अनुसार विभिन्न वेतनमानों के लिए भर्ती की पृथक पृथक पद्धतियाँ होनी चाहिए ।[30] साक्षात्का भी विश्वसनीय नहीं है । थोडे समय के वार्तालाप द्वारा प्रत्याशी का सही सम्भव नहीं है । इसके लिए विशिष्ट मनोवैज्ञानिक परीक्षण की आवश्यकता है अतिरिक्त लोक सेवा आयोगों एवं विश्वविद्यालयों के मध्य और निकट सम्पर्क आवश्यकता है ।[31]

प्रशासकीय सुधार आयोग (Administrative Reforms Commissi भी भर्ती प्रणाली के अनेक दोषों की तरफ संकेत किया है एवं उनके निव अनेक सुझाव दिये है—(1) प्रत्येक सेवा के लिए पर्याप्त कर्मचारी होने चाहि पाँच वर्ष पूर्व ही कर्मचारियों की आवश्यकता सम्बन्धी योजना का निर्माण चाहिए । (2) सभी अखिल भारतीय एवं गैर-तकनीकी केन्द्रीय सेवाओं के लि ही सम्मिलित परीक्षा होनी चाहिए । (3) प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए अधि आयु 26 वर्ष होनी चाहिए । (4) प्रथम श्रेणी के उत्तीर्ण स्नातकों को लोक स आकर्षित करने के लिए विशेष प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जानी चाहिए ।

पद वर्गीकरण (Position Classification)

पद वर्गीकरण का अर्थ उत्तरदायित्व के आधार पर पदों को एकत्रित क वर्गों में विभाजित करना है । समान कर्तव्यों एवं दायित्वों से सम्बन्धित पदों को वर्ग में रखा जाता है, भले ही वे विभिन्न विभागों से सम्बन्धित हों । इसी क समस्त लिपिक पद एक ही वर्ग में होते हैं । उत्तरदायित्व के अतिरिक्त शैक्ष योग्यता, वेतन एवं विभागों के आधार पर भी वर्गीकरण किया जाता है । लेकिन वर्गीकरण अधिक महत्व के नहीं होते हैं । वर्गीकरण पद का होता है, न कि धिकारी का ।

वर्गीकरण के तीन प्रकार हैं (1) सेवा (Service), (2) श्रेणी (Cla एवं (3) पदक्रम (Grade) । सेवा वर्गीकरण का सबसे व्यापक प्रकार है ।

ब्रिटेन में 19वीं सदी के अन्तिम 25 वर्षों में समान सेवाओं का वर्गीक

---

28 Paul H Appleby *Public Administration in India*, Report of Survey 1953, pp 11 and 29

29 *Ibid* p 29

30 A D Gorewala Report on Public Administration, 1951, p 63

31 *Ibid* p 64

32 Administrative Reforms Commission s Report on Personn Administration, pp 40 45

प्रारम्भ हुआ था। प्लेफेयर आयोग (Playfair Commission) एव रिडले आयोग (Ridley Commission) की सिफारिशो के आधार पर द्वितीय सम्भाग लिपिक सहायक, बालक लिपिक (boy clerk) एव मध्यम वग (intermediate class) की स्थापना की गयी थी। मैक्डोनल्ड आयोग (1914 ई) ने सभी सेवाओ के लिए तीन श्रेणिया—वरिष्ठ लिपिक, सहायक लिपिक एव प्रशासकीय श्रेणी के निर्माण का सुझाव दिया था। परन्तु प्रथम विश्व युद्ध के कारण इस सम्ब ध मे कोई कायवाही न की जा जा सकी। *ह्वीटले परिषद सम्बन्धी समिति ने 6 श्रेणियो की सिफारिश की* (1) प्रशासकीय, (2) कायपालक, (3) लिपिक, (4) सहायक लेखक लिपिक (writing assistant clerk) (5) आशुलिपिक, एव (6) टाइपिस्ट। इसे कोषागार वर्गीकरण (Treasury Classification) भी कहते ह। यह वर्गीकरण सभी सवाओ पर समान रूप म लागू नही है। श्रम, युद्ध, वायु एव आन्तरिक राजस्व सम्बन्धी विभागा के अपने वर्गीकरण है। उपरोक्त कोषागार वर्गीकरण के अतिरिक्त वैज्ञानिक, तकनीकी एव अन्य विशेषज्ञो, औद्योगिक कमचारियो तथा छोटी सवाओ स सम्बन्धित अतिरिक्त वग हैं।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे 1923 ई मे सवप्रथम लोक सेवाओ का वर्गीकरण किया गया है। सघीय कमचारियो को पाच सेवाओ म वगीकृत किया गया है (1) व्यावसायिक एव वज्ञानिक (professional and scientific), (2) लघु व्यावसायिक (sub professional) (3) लिपिक—प्रशासकीय एव राजस्व सम्बन्धी (clerical administrative and fiscal), (4) सरक्षकीय (custodial), (5) लिपिक यान्त्रिक (clerical mechanical)। इन सेवाओ को वर्गा एव वेतनमानो मे विभाजित किया जाता है।

भारत मे इस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल म अनुबन्धीय एव गैर अनुबन्धीय (covenanted and uncovenanted) सेवाओ के रूप मे पहला वर्गीकरण किया गया था। एचिसन समिति (Atichison Committee) ने सेवाओ को साम्राज्ञीय (Imperial), प्रान्तीय (Provincial) एव अधीनस्थ (Subordinate) श्रेणिया म वर्गीकृत किया था। इस्लिंग्टन समिति (Islington Committee) ने साम्राज्ञीय एव प्रान्तीय श्रेणियो को मिलाकर एक साम्राज्ञीय सेवा बनाने और उस उच्च एव निम्न श्रेणिया मे वर्गीकृत कर देने का सुझाव दिया। साम्राज्ञीय सेवाओ को बाद मे भारतीय एव केन्द्रीय सेवाओ की सज्ञा प्रदान की गयी। भारतमन्त्री द्वारा भर्ती किये गय कमचारियो को भारतीय सवा तथा गवनर जनरल द्वारा भर्ती कमचारियो को केन्द्रीय सेवा कहा गया। इसके अतिरिक्त सवाओ को राजपत्रित (gazetted) एव अराजपत्रित (non gazetted) मे वर्गीकृत किया गया है।

1930 ई के पश्चात भारत शासन के अधीन सेवाओ को अखिल भारतीय केन्द्रीय सवाओ मे वर्गीकृत किया गया है। अखिल भारतीय सवाओ मे दो सेवाएँ

भारतीय नागरिक सेवा (I C S Indian Civil Service) एव भारतीय विदेश सेवा (I F S Indian Foreign Service) थी। केन्द्रीय सेवाओ म क्रमश प्रथम, द्वितीय एव अधीनस्थ तथा निम्न श्रेणियाँ (Class I, Class II, Subordinate and Inferior Classes) है। प्रान्तीय सवाए प्रथम, द्वितीय एव अधीनस्थ श्रेणियो म वर्गीकृत हैं। 1947 ई के पश्चात अधीनस्थ एव निम्न श्रेणियो को क्रमश तृतीय एव चतुथ श्रेणियो पुकारा जाने लगा। आज कल भारतीय सेवाओ का वर्गीकरण निम्नवत हैं

(1) अखिल भारतीय सेवाएँ।
(2) केन्द्रीय (सघीय) सेवा—प्रथम श्रेणी।
(3) केन्द्रीय (सघीय) सेवा—द्वितीय श्रेणी।
(4) प्रान्तीय राज्य सेवा।
(5) विशेषज्ञ सेवाए।
(6) केन्द्रीय सेवाएँ—ततीय श्रेणी।
(7) केन्द्रीय सेवाएँ—चतुथ श्रेणी।
(8) केन्द्रीय सचिवालय सेवाएँ—प्रथम, द्वितीय, ततीय एव चतुथ श्रेणियाँ।

अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services)—सविधान के अनुच्छेद 312 के अधीन अखिल भारतीय सेवाओ की व्यवस्था की गयी है। भारतीय प्रशासनिक सेवा (I A S) एव भारतीय पुलिस सेवा (I P S) का सविधान म स्पष्ट उल्लेख है। अन्य अखिल भारतीय सेवाओ के निर्माण का अधिकार भारतीय ससद को प्राप्त है परन्तु किसी नवीन अखिल भारतीय सेवा की स्थापना के लिए राज्य सभा को अपने 2/3 बहुमत से उक्त सेवा को आवश्यक घोषित करना चाहिए। 1962-63 ई मे भारतीय अभियान्त्रिक सेवा (Indian Service of Engineers), भारतीय चिकित्सा एव स्वास्थ्य सेवा (Indian Medical and Health Service) एव भारतीय वन सेवा (Indian Forest Service) की स्थापना की गयी है। मार्च 1965 ई म दो अन्य सेवाओ—भारतीय कृषि सेवा तथा भारतीय शिक्षा सेवा—के निर्माण का प्रस्ताव किया गया था। परन्तु इनका निर्माण अधिकाश राज्यो की असहमति के कारण नही हो सका है। भारतीय प्रशासनिक सेवा (I A S), भारतीय पुलिस सेवा (I P S) एव भारतीय विदेश सेवा (I F S) यह तीनो भारतीय लोक (असनिक) सवा का उच्च वग हैं। इनकी भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है। भारतीय प्रशासन एव पुलिस सेवा के अधिकारियो को निर्धारित अशदान (fixed quota) के अनुसार विभिन्न राज्यो मे बाट दिया जाता है। इसे राज्य केडर (State Cadre) कहते हैं।

प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के अधिकारी अपने अपने विभागो म उच्च पदो पर काय करते हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा, भारतीय लेखा परीक्षण एव लेखा सेवा,

भारतीय डाक सेवा, भारतीय राजस्व सेवा, भारतीय प्रतिरक्षा लोक सेवा प्रमुख केन्द्रीय सेवाएँ—प्रथम श्रेणी—हैं।

भारतीय वर्गीकरण व्यवस्था की आलोचना की जाती है। मुख्य आलोचना यह है कि इससे सेवाओं म वग भेद उत्पन्न होता है। लोक सवाओ म एक प्रकार स जाति-प्रथा जैसी कट्टरता का प्रचलन हो गया है जिसके कारण सहज सहयोगपूवक काय म बाधा उत्पन्न होती है। वेतन आयोग (1957-59 ई) ने इसके उन्मूलन का सुझाव दिया था। आयोग का मत था कि वर्गीकरण का कोई ऐसा व्यावहारिक उद्देश्य नही है जो इसक अभाव म पूण न हो सके। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण का कमचारियो पर अस्वस्थ मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। आयोग ने यह सुझाव दिया था कि लोक सेवा के सभी सदस्यो म यह भावना उत्पन्न की जानी चाहिए कि व एक सामान्य सेवा के सदस्य हैं। वतमान वर्गीकरण इस भावना के विकास म बाधक है।[33] दूसरी आलोचना यह की जाती है कि प्रथम एव द्वितीय श्रेणी के भेद को समाप्त कर देना चाहिए, क्योकि द्वितीय श्रेणी क कमचारियो क काय एव दायित्व वही हैं जो प्रथम श्रेणी के कनिष्ठ वेतनक्रम (Junior Scale) के पदाधिकारियो को सौंपे जाते हैं। कुछ विद्वान इन आलोचनाओ को स्वीकार नही करते। उनके अनुसार पद-वर्गीकरण के बिना प्रशासन की वैज्ञानिक परिभाषा सम्भव नही होती है। काय एव दायित्व के आधार पर कमचारियो म अन्तर होना चाहिए। पद वर्गीकरण का इस कारण त्याग नही किया जा सकता कि कुछ कमचारी इसके कारण हीनता की भावना का अनुभव करते हैं। प्रथम एव द्वितीय श्रेणी के मध्य भेद कायम रखने क पक्ष मे यह तक दिया जाता है कि प्रथम श्रेणी के कनिष्ठ वेतनक्रम के अधिकारियो की भर्ती उच्च दायित्व वहन करने के लिए की जाती है और कनिष्ठ वेतनक्रम म काय करते हुए वे केवल उच्चतर दायित्वो को वहन करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो की भर्ती चाहे वह पदोन्नति द्वारा हो या सीधे की गयी हो, उस पदक्रम (grade) से सम्बन्धित कतव्यो को सम्पन्न करने के लिए की जाती है। इसका यह अथ नही है कि एक समय मे किया गया पद-वर्गीकरण स्थायी होता है। लेकिन उसम परिवतन तभी किया जाना चाहिए जबकि वह नय तथ्यो एव परिस्थितियो के कारण आवश्यक हो गया हो।

प्रशिक्षण (Training)

लोक प्रशासन म प्रशिक्षण का तात्पय ऐसी क्रिया से है जिसस निर्दिष्ट दिशा मे शासकीय कमचारियों की क्षमता शक्ति एव बुद्धि तथा रुचि एव मूल्यो को विक

---

33 Commission on Enquiry of Emoluments and Conditions of Service of Central Government Employees (1957 59) Report, Govt. of India, p 562

सित किया जा सके । प्रशिक्षण एव शिक्षा म अन्तर है । प्रशिक्षण का क्षेत्र शिक्षा स सीमित होता है परन्तु दाना एक दूसरे स सम्बन्धित होत हैं । प्रशिक्षण का सम्बन्ध किसी एक कार्य से होता है जबकि शिक्षा व्यक्ति के सवागीण विकास स सम्बन्धित है। प्रशिक्षण के निम्न उद्देश्य हैं (1) कमचारी म विश्वसनीय कायक्षमता का विकास, (2) नमनीयता या लाच उत्पन्न करना, (3) सामाजिक चेतना क प्रति सजगता का विकास, (4) उच्च दायित्वा एव कार्यों के उपयुक्त बनाना, तथा (5) मानसिक विकास करना और यह भावना उत्पन्न करना कि शासकीय कमचारी स्वामी नही होता अपितु जनता का सेवक होता है ।[34] पद्धति अवधि एव स्तर की दृष्टि से प्रशिक्षण की पद्धतिया निम्नवत हैं

(1) अनौपचारिक एव औपचारिक प्रशिक्षण (Informal and Formal Training),

(2) अल्पकालीन एव दीघकालीन प्रशिक्षण (Short term and Long term Training),

(3) भर्ती के पूव एव वाद म प्रशिक्षण (Pre entry and Post entry Training),

(4) विभागीय एव केन्द्रीय प्रशिक्षण, एव

(5) कला प्रशिक्षण एव पृष्ठभूमि प्रशिक्षण ।

ब्रिटेन[35] मे एसीटन कमेटी (Assheton Committee, 1944) की सिफारिश के अनुसार कोपागार प्रशिक्षण एव शिक्षा सम्भाग (Treasury Training and Education Division) की स्थापना की गयी थी। इस शाखा के दो मुख्य काय हैं (1) सम्पूण लोक सेवा के प्रशिक्षण कार्यक्रम का समन्वय तथा निर्देशन करना, एव (2) विभिन्न प्रशिक्षण कायक्रमो को आयोजित करना ।

प्रशासकीय श्रेणी के कमचारियो के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था अधिकाशत विभागा द्वारा ही की गयी है । नये कमचारी थाडे समय के लिए वरिष्ठ अधिकारियो के निरीक्षण मे विभिन्न पदो पर काय करते हुए विभाग के कार्यों एव दायित्वो का ज्ञान प्राप्त करते है। कोपागार विभाग द्वारा एक सक्षिप्त कोस भी चालू किया जाता है जिससे कमचारी को सेवा सम्बन्धी दायित्वो का व्यापक ज्ञान हो सके । सभी कनिष्ठ अधिकारी इसम भाग लेते हैं । नये कमचारियो को दो या तीन सप्ताह के लिए पश्चिमी यूरोप के देशा के प्रशासन का ज्ञान कराने हेतु उन देशो म भेजा जाता है । 10 15 वष के सेवा सम्बन्धी अनुभव प्राप्त अधिकारियो म से कुछ को चुन कर

34 Report of British Committee on the Training of Civil Servant (Assheton Committee) 1944 p 6

35 The British Civil Service B I S Pamphlet No R 4985, July 1961 pp 14 16

कोपागार विभाग के वरिष्ठ प्रशासकीय पाठचर्या के शिक्षण हेतु भेजा जाता है। एक सप्ताह का यह पाठचर्या सगठन तथा प्रब ध की सामा य समस्याओ से सम्ब धित होता है। इगलैण्ड म हेनले स्थित प्रशासकीय स्टाफ कालेज है। इसम उच्च पदाधिकारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है। शासन तथा उससे सम्ब धित समस्याओ के अध्ययन के लिए कुछ अधिकारियो को एक वप तक का अवकाश भी प्रदान किया जाता है। प्रति-वप कुछ चुने हुए सचिवो एव समानपदीय वैज्ञानिक, व्यावसायिक एव कायपालक अधिकारियो के तीन आवासी 9 दिवसीय सम्मेलन होते है जिनम प्रब ध एव सगठन सम्ब धी समस्याओ पर चर्चा की जाती है।

ब्रिटेन म कायपालक लिपिक एव अ य श्रणियो के कमचारियो के प्रशिक्षण का दायित्व विभाग का होता है। विभाग के प्रशिक्षण के अतिरिक्त इनके लिए विशप पाठ्यक्रम (course) भी प्रशिक्षण के द्रो पर आयोजित किये जाते है। व्यावसायिक वैज्ञानिक एव तकनीकी कमचारियो को विभाग के बाहर सस्थाओ म प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त कोपागार विभाग ने प्रशिक्षण सम्ब धी सामा य नीति निर्धारित की है जिसके अ तगत कमचारियो को प्रशिक्षण के लिए आवश्यक सवतन अवकाश दिया जाता है। वरिष्ठ विभागीय कमचारियो द्वारा भी प्रब ध एव सगठन के सम्ब ध म प्रशिक्षण दिया जाता है।

कमचारियो को सवा काल म शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधा होती है। यह ह्वीटले परिपदो का दायित्व है। बहुत स विभाग अपने कमचारियो क लिए अवकाश-काल म शिक्षा का प्रब ध करत है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे लोक सेवा को विभिन्न महाविद्यालयो या विश्व विद्यालयो द्वारा सेवा म प्रवश के लिए तयारी करते समय प्रशिक्षण दिया जाता है। पूव-प्रवेश प्रशिक्षण विश्वविद्यालय काल म ही प्रारम्भ हो जाता है। सामा यत अमेरिका म शासकीय सेवा क इच्छुक व्यक्ति राजनीति विज्ञान एव लोक-प्रशासन म स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का विशेष रूप स अध्ययन करत हैं। विश्वविद्यालयो द्वारा तकनीकी पाठ्यक्रमो म डिप्लोमा प्रदान किया जाता है तथा सवाकालीन प्रशिक्षण भी दिया जाता है। विभिन्न विश्वविद्यालय नगर नियोजन (Town Planning) वजट-निर्माण, सावजनिक स्वास्थ्य, पुलिस शासन आदि म प्रशिक्षण दत हैं। कमचारियो को प्रवशोत्तर प्रशिक्षण प्रदान करन की व्यवस्था विश्वविद्यालय म ही होती है। अमरिका म अनक विश्वविद्यालय, जस शिकागो विश्वविद्यालय, हावड लोक-प्रशासन विद्यालय सिराक्यूज विश्वविद्यालय स्थित मैक्सवल स्कूल एव मिशीगन विश्वविद्यालय का [illegible] प्रशासन सस्थान विभिन्न पाठ्यक्रमो म प्रशिक्षण दत है। हावड स्कूल के [illegible] नीति एव निणय करन (decision-making) पर विशेष बल दिया जाता है [illegible] गन विश्वविद्यालय क स्कूल ने [illegible] सम्ब धी प्रशिक्षण दि[illegible] 1937 ई म स्थापित ब्रुकिंग्स स[illegible] (Brookings Institution) [illegible]

प्रशिक्षण मे बहुत सहायता दी जाती है । यह सस्था केवल प्रशासकीय काय प्रणालिया की ही शिक्षा नही देती वरन कमचारी की दूरदर्शिता एव विवेक शक्ति को विकसित करने का भी प्रयत्न करती है । विश्वविद्यालयो के अतिरिक्त सघीय अभिकरण, राज्य सरकारे एव स्थानीय शासन की विशेष सस्थाएँ प्रशिक्षण के काय मे लगी हुई हैं । जुलाई 1958 ई म अमेरिकी कांग्रेस द्वारा शासकीय कमचारी प्रशिक्षण अधिनियम पारित किया गया है । इस अधिनियम द्वारा शासन को सघीय अभिकरणो (agencies) के प्रशिक्षण पर अपने कुल बजट का 10% तक धन व्यय करने का अधिकार दिया गया है लेकिन कोई कमचारी एक वष से अधिक अवधि के प्रशिक्षण कायक्रम म भाग नही ले सकता है । अमेरिका म अधिकाशत विशेषज्ञो की लोक सेवा म भर्ती की जाती है अत कार्यालय के सगठन एव काय-विधि से परिचित करान के लिए प्रशिक्षण आवश्यक होता है । इस प्रशिक्षण की व्यवस्था विभाग द्वारा की जाती है । लाक सवा आयोग भी अन्त विभागीय आधार पर प्रबन्ध, सगठन, वित्तीय प्रबन्ध, सवि वग प्रबन्ध आदि विषयो के सम्बन्ध मे प्रशिक्षण कायक्रम आयोजित करता है ।

भारतीय प्रशासन मे उच्च सेवाओ की व्यवस्था है । भारतीय प्रशासकीय सेवा भारतीय पुलिस सेवा के परिवीक्षार्थिया (probationers) के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था, है । 1947 ई के पूव दिल्ली मे एक प्रशिक्षण सस्थान था । कुछ वर्षों बाद उसे बन्द करके मन्सूरी मे राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी की स्थापना की गयी है । अब इसका नाम बदल कर लालबहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी कर दिया गया है । भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यो को छटवे वष जिलाधीश के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है । प्रशिक्षण काल के दौरान उसे भारत-भ्रमण के लिए भी भेजा जाता है। अकादमी म प्रशिक्षण 9 माह का होता है । इसमे 5 माह तक मौलिक पाठ्यक्रम के विषयो म शिक्षा दी जाती है । भारतीय प्रशासनिक सेवा के परिवीक्षार्थियो को जिला के विभिन्न कार्यालया से सलग्न कर दिया जाता है जिससे वह काम द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें । करीब 18 माह तक वह अपर सचिव (under secretary) के रूप से सचिवालय म काय करता है । इस काल म मुख्य बल काम द्वारा प्रशिक्षण (job training) पर होता है । जिला एव सचिवालय स्तर पर विभिन्न पदो पर काय करने का ध्येय नवीन अधिकारी को शासन के किसी विभाग म भी उत्तरदायित्वपूण पद को सभालने योग्य बनाना होता है । विदेश सेवा के परिवीक्षार्थियो को मसूरी के राष्ट्रीय सस्थान म चार माह एव दिल्ली के अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल मे 4 माह का प्रशिक्षण दिया जाता है । इसके अतिरिक्त वे विदेश मन्त्रालय म 6 माह काय करते है, सनिक इकाइयो एव भारत की दशन-यात्रा करते है तथा किसी विदेशी मिशन म 1 वष तक काय करते है ताकि वे विदेशी भाषा का अध्ययन एव सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त कर सके ।

भारतीय पुलिस सेवा (I P S) का प्रशिक्षण माउण्ट आबू स्थित केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज म होता है एव दण्ड विधान दण्ड प्रक्रिया, अस्त्र शस्त्र एव

ड्रिल तथा मेलजूद का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षणार्थियो को सनिक कम्पनो म भी कुछ समय के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। तत्पश्चात एक वप तक किसी जिला म वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की अधीनता म अनक अधीनस्थ पदा पर काय करके काम का अनुभव प्राप्त करत हैं।

भारतीय लेखा-परीक्षण एव लेखा सेवा का प्रशिक्षण शिमला म विभागीय प्रशिक्षण स्कूल म होता ह। आय-कर अधिकारियो का 18 माह का प्रशिक्षण नागपुर म दिया जाता है। रलव मण्डल द्वारा बडोदा म एक स्टाफ कॉलेज सचालित किया जाता है। केन्द्रीय सचिवालय सेवा क नवीन कमचारियो को दिल्ली स्थित सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल म प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्ह सगठन एव प्रबन्ध तथा पद्धति, कार्यालय की कायविधियो, वित्तीय नियमो एव विनियमो आदि म प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा की प्रशिक्षण प्रणाली की आलोचना की जाती है। यह कहा जाता है कि यह अपेक्षाकृत अधिक सैद्धान्तिक है। कक्षा म पढाये जाने वाले विषयो पर अधिक बल दिया जाता है। इसके विपरीत, पयटन, न्यायालयो, जिला परगना या ताल्लुका, तहसील के प्रधान कार्यालयो के निरीक्षणो एव भ्रमण पर अध्ययन हेतु अधिक बल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण की आधुनिक तकनीकी प्रगति से सगति होनी चाहिए। अत भौतिक एव सामाजिक विषयो का ऐसा समन्वित प्रशिक्षण कायक्रम होना चाहिए जिसमे कि विद्यालय की कमी को दूर किया जा सके। इसक अतिरिक्त सेवा म प्रवेश के पश्चात प्रशिक्षण (post entry training) की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। विभिन्न पदाधिकारियो के लिए नवीनीकरण पाठ्यक्रम की भी व्यवस्था होनी चाहिए। अनुमान समिति (1965 66 ई) द्वारा यह सिफारिश की गयी है कि भारतीय लोक सेवा के सदस्यो का उद्योग एव वाणिज्य से सम्बन्धित मामलो का भी ज्ञान कराया जाना चाहिए जिससे कि नय अधिकारी विकासोन्मुख भारतीय अथ व्यवस्था की समस्याओ से परिचित हो सकें। 'प्रशिक्षण काल म मुख्य बल इस बात पर होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी मे सेवाभाव उत्पन्न हो एव साहबी अथवा नौकरशाही की प्रवृत्ति का विकास न हो सके।'[36]

मन्त्रियो एव लोक सेवा के सम्बन्ध

लोक-सेवा एव मन्त्रियो म परस्पर क्या सम्बन्ध होने चाहिए ? यह ससदीय व्यवस्था की एक प्रमुख समस्या है। ब्रिटिश शासन प्रणाली को अनुभवहीन व्यक्तियो (amateurs) का शासन कहा जाता है। मन्त्रीगण साधारण व्यक्ति (layman) और लोक सेवा के सदस्य विशेषज्ञ (expert) होत हैं। मन्त्री राजनीतिक व्यक्ति हैं। वे

---

36 Estimates Committee (1965 66) 93rd Report, 1966 pp 81 82

साधारणतया अपने विभाग के कार्यों से अनभिज्ञ होते हैं। उनसे यह आशा भी नही की जाती है कि उन्हे विभागीय कार्यों का ज्ञान हो। अत वे अनुभवहीन होते हैं। व पेशेवर प्रशासक नही होते। इसके विपरीत, उनके अधीन काय करने वाले अन्य विभागीय कर्मचारियो—लोक सेवा के सदस्यो—को अपने विभाग के कार्यों का पूण ज्ञान हाता है। दीघकाल से प्रशासन काय से सम्बन्धित होने के कारण वे विभागीय समस्याओ से परिचित होते हैं। वे अनुभवी होते हैं एव मन्त्रियो की तुलना मे स्थायी कमचारी कहे जाते हैं। सिडनी लो का कथन है कि 'ब्रिटेन का शासन अनुभवहीन व्यक्तियो का शासन है। अधीनस्थ कमचारी प्रशिक्षित होते ह एव उच्च अधिकारी अप्रशिक्षित। अधीनस्थ कमचारियो से उनकी योग्यता एव काय से परिचयात्मक प्रमाणपत्र की माग की जाती है लेकिन उत्तरदायी प्रमुख (मन्त्रियो) से किसी प्रमाणपत्र की माग नही की जाती है।"[37] "वित्त मन्त्रालय म द्वितीय श्रेणी के लिपिक का पद प्राप्त करने के लिए एक नवयुवक को अकगणित की परीक्षा मे अनिवायत उत्तीण होना ही चाहिए, पर वित्त मन्त्री अधेड आयु का ऐसा सासारिक व्यक्ति भी हो सकता है जो अका के विषय म अपनी उस जानकारी को भी विस्मृत कर चुका हो जो उसने ईडन या आक्सफोड मे प्राप्त की हो एव जो दशमलव के बिन्दुआ को कोषागार के हिसाब के सन्दभ म देखकर उनका अथ जानने के लिए उत्सुक हो।"[38]

मन्त्रियो की अनुभवहीनता एव लोक सेवका की विशष योग्यता के कारण सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उनके मध्य क्या सम्बन्ध होने चाहिए। मन्त्री राजनीतिक व्यक्ति होते है। उन्हे जनता की समस्याओ का ज्ञान होता है लकिन उनके पास इतना समय नही है कि वे प्रशासनिक क्षमता को पूणरूपेण आत्मसात कर सकें। इसके कई कारण ह

(1) मन्त्री का दायित्व ही ऐसा है कि वह विशेषज्ञ की दृष्टि अर्जित नही कर सकता। वह नीति का निर्माता है। इस सम्बन्ध म वह अपने अधीनस्थ कमचारियो (लोक सेवका) से परामश करता है। अत लोक सेवक का काय परामश देना एव नीति के निर्धारण के पश्चात उसका क्रियान्वयन करना है।

---

37 'Government in England is government by amateurs The subordinates are trained the superiors are untrained We require some acquiantance with the technicalities of their work from the subordinate officials but none from responsible chiefs'—Sidney Low *Government of England*, 1914, p 201

38 'A youth must pass an examination in Arithmetic before he can hold a second class clerkship in the Treasury but a Chancellor of Exchequer may be a middle aged man of the world who has forgotten what little he ever learnt about figures at Eton or Oxford'—Sidney Low *Ibid* pp 201-202

(2) किसी मन्त्री को किसी विभाग का अध्यक्ष विशेष ज्ञान या योग्यताके आधार पर नही बनाया जाता है।

(3) मन्त्री का पद अस्थायी है अर्थात वह अपने विभाग का स्थायी अध्यक्ष नही होता है। ससद म उसके दल को बहुमत प्राप्त होने के कारण वह पद ग्रहण करता है और जब तक ससद म उसका दल बहुमत म रहता है, वह पदारूढ रहता है। बहुमत के समाप्त होने पर उसे पदत्याग करना पडता है। कोइ मन्त्री एक ही विभाग से सम्बन्धित नही होता। उसे विभिन्न विभागो म मन्त्री का पद ग्रहण करना पडता है। इसके अतिरिक्त उस अनेक दलीय काय भी करने पडत है। मन्त्री ससद का सदस्य है, वह ससद म उपस्थित रहता है प्रश्नो का उत्तर देता है एव बहस म भाग लेता है। इसके साथ साथ वह अपने निर्वाचन क्षेत्र का भी ध्यान रखता है। फलत उसके पास इतना समय शेष नही रहता कि वह अपने विभाग सम्बन्धी कार्यों म विशेष योग्यता अजित कर सके।

विभाग वितरण के समय मन्त्रियो को एस विभाग दे दिये जाते है जिनका उन्हे कोई ज्ञान नही होता। विश्वविद्यालय का प्रोफसर उद्योग मन्त्री एव वकील युद्ध मन्त्री नियुक्त किया जा सकता है। मन्त्रियो के मध्य विभागो का वितरण उनके विभाग सम्बन्धी ज्ञान या योग्यता के आधार पर नही किया जाता है अपितु राजनीतिक जीवन एव दल म उसके स्थान एव स्थिति तथा उसकी सामान्य प्रशासकीय पटुता एव कायकुशलता के आधार पर किया जाता है। इगलैण्ड मे लाड पामस्टन (Lord Palmerston) को औपनिवेशिक मन्त्री बनाया गया था परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशो का उसे कोई ज्ञान नही था। मन्त्रीपद ग्रहण करने पर उसने अपने अधीनस्थ सहायक से यह पूछा था कि नक्शा म ब्रिटेन के उपनिवेश जहा जहा हैं उन्हे वह बताये। स्पष्ट है मन्त्रियो को प्रशासकीय बारीकियो के लिए अपने अधीनस्थ स्थायी सहयोगियो पर निभर रहना पडता है।

लोक सेवा की कुछ अनिवाय विशेषताएँ होती हैं, वे स्थायी होते है, दीर्घकाल तक विभाग स सम्बन्धित होने के कारण विभाग के विशेषज्ञ होत हैं एव राजनीतिक मामला म तटस्थ होत हैं। किसी दल का भी मन्त्रिमण्डल हो व पूण तटस्थता एव निष्पक्षता स अपने विभागीय मन्त्री को परामश देत हैं। उन्हे इस बात की चिन्ता नही रहती कि उनका परामश स्वीकार ही किया जाना चाहिए। यदि उनका परामश स्वीकार भी नही किया जाता तो भी व उसे पूण निष्ठा म क्रियान्वित करते हैं। यह लोक सेवा की तटस्थता विषयक ब्रिटिश धारणा है। मन्त्री एव प्रशासक के सम्बन्धो पर **सर वारेन फिशर** ने अपना मत व्यक्त करत हुए कहा है कि 'नीति का निर्माण मन्त्रियो का काय है एक बार नीति निश्चित होने पर लोक सेवक का यह निश्चित एव स्पष्ट काय है कि वह उस नीति का, चाहे वह उसस सहमत हो अथवा नहीं, पूरी इच्छा से क्रियान्वित करे। यह एक प्रमाणित तथ्य है एव इस पर कोई विवाद नही हो सकता

साथ ही साथ लोक सेवक का परम्परागत कतव्य यह है कि जब निणय किये जा रहे हो, वह अपने राजनीतिक अध्यक्ष के समक्ष सभी सूचनाएँ एव अनुभव बिना किसी भय या पक्षपात के उपस्थित कर दे, भले ही उसकी राय म त्री के विचार के अनुकूल हो या प्रतिकूल।"[39] अत लोक सेवा को राजनीतिक दृष्टि से पूणत निरपेक्ष एव तटस्थ रहते हुए काय करना चाहिए। यही राजनीतिक तटस्थता ब्रिटिश लोकतन्त्रीय शासन का आधारभूत तत्व है एव उसके सक्षम सचालन के लिए उत्तरदायी है।[40] लाड मोरीसन के अनुसार लोक सेवा शासन के प्रति पूण निष्ठा रखती है। वे चाहे शासन को पस द करे या न करे लेकिन श्रेष्ठ यही है कि वे ऐसा न कह। मैंने अपने लोक सेवक एव नगरपालिका अधिकारियो से सदैव यही कहा है कि "मै तुम्हारी राजनीति नही जानना चाहता। न तुम मुझे बताओ । मैं यह चाहता हूँ कि तुम्ह राजनीति का ज्ञान होना चाहिए पर तु मैं चाहूँगा कि तुम दलीय राजनीतिज्ञ न बनो। तुम जो उचित समझो मुझे परामश दो एव मैं तुम्ह जो उचित समझूगा निणय दूगा।"[41] ब्रिटिश लोक सेवा की तटस्थता का उदाहरण देते हुए उ होने कहा है कि 'पोस्टडाम सम्मेलन मे प्रधानमन्त्री चर्चिल के पश्चात जब एटली ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री क रूप म भाग लिया और जब पुराने लोक सेवको को उन्ह परामश देते हुए देखा तो अमरीकी चकित रह गय। [42] लाड मोरीसन के अनुसार जो मन्त्री एक व्यापारी की भाति अपने अधीनस्थो के विचारो को नही सुनता है वह मूख होता है। उनको बहस करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए पर तु निणय स्वय मन्त्री को ही करने चाहिए।[43]

39 ' Determination of policy is the function of Ministers, and once a policy is determined, it is the unquestioned and unquestionable business of the Civil Servant to strive to carry out that policy with precisely the same goodwill whether he agrees with it or not That is axiomatic and will never be indispute At the same time it is the traditional duty of Civil Servants while decisions are being formulated, to make available to their political chiefs all the information and experience at their disposal, and to do this without fear or favour irrespective of whether the advice thus tendered, may accord or not with Minister's initial view —Sir Warren Fisher Permanent Secretary to the Treasury and Head of Home Civil Service, evidence given before the Royal Commission on the Civil Service (1929 31) (Minutes of Evidence HMSO 1931 p 1264)

40 The political neutrality of Civil Service is a fundamental feature of British Democratic Government and is essential for its efficient operation "—Report of the Committee on the Political Activities of Civil Servants, Cmd 7718 HMSO 1949, p 30

41 Lord Morrison *British Parliamentary Democracy* 1962, p 20

42 *Ibid* pp 19 20

43 *Ibid*, p 18

वहुधा यह कहा जाता कि है चूकि म त्री विभागीय मामला में अनुभवहीन होते है और मन्त्रिमण्डलीय, ससदीय एव दलीय दायित्वा को सम्पादित करन के पश्चात उनके पास प्रशासकीय कार्यों के लिए समय ही नही वच पाता अत वास्तव मे निणय उनके नाम पर लोक-सेवका द्वारा ही लिय जाते है। अत यह सुझाव रखे गये ह कि जिन विभागा क सम्ब ध म म त्रिया को जानकारी हा वही विभाग उ ह सौपे जाने चाहिए। फ्रा स तथा अन्य यूरोपियन देशा मे सेना एव नौसेना विभागा के मन्त्री सैनिक व्यक्ति ही होत है। सयुक्त राज्य अमरिका म कायपालिका विभागा के अध्यक्ष के रूप मे विशेषज्ञा का नियुक्त किया जाता है। क्या न इसका ही अनुसरण ससदीय दशो म भी किया जाय ? पर तु ससदीय देशो की समस्याएँ भिन्न है। ससदीय शासन उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर आधारित है। मन्त्रिमण्डल सामा य निर्वाचन के समय जनता को दिये गये वचना के पालन के लिए वचनवद्ध होता है। अत ससदीय शासन के स दभ म बेजहाट द्वारा उदधृत सर जॉज कार्नवेल (Sir George Cornewell) का निम्न कथन चरिताथ होता है—"विभागीय काय करना म त्री का काय नही है अपितु उसका काय तो यह देखना है कि विभाग ठीक प्रकार से काय करता है।'[44] रेमजे मक्डोनल्ड के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल तो एक पुल की भाँति है जो जनता को विशेषज्ञ से तथा सिद्धा त को व्यवहार से सम्वद्ध करता है। वह विभाग को निर्दिष्ट दिशा मे अग्रसर करता है।"[45] लास्की के शब्दो म सभी निणय मन्त्री के हाते है। लोक सेवका का काय तो मामला स सम्बन्धित सामग्री एकत्रित करना है जिसके आधार पर ठीक निणय किया जा सके।[46]

लोक सेवा के सदस्या द्वारा म त्रिया को अत्यधिक प्रभावित किया जाता है एव म त्रीगण सामा यत उनकी वाता को मानन के लिए बाध्य हात है। कहा जाता है कि म त्रीगण स्थायी अधिकारियो के हाथा म य त्र की भाँति हैं।[47] रेमजे म्योर का कथन है कि म त्रीगण 99% मामलो मे लोक सेवा के सदस्या के विचारो को स्वीकार करत है एव उनकी सस्तुति पर हस्ताक्षर मात्र कर देते हैं।[48] इगलैण्ड की लोक सेवा के स दभ म व्यक्त उपरोक्त विचार सभी ससदीय दशा पर लागू हाते ह। पर तु रैमजे म्योर के कथन को पूणरूपेण स्वीकार नही किया जा सकता। म त्री एव

44 It is not the business of Cabinet Minister to work his department His business is to see that it is properly worked —Sir George Cornewett, quoted by Walter Bagehot *The English Constitution*, cited in V D Mahajan *op cit*, p 50

45 'The Cabinet is the bridge, linking up the people with the expert, joining principle to practice' —Ramsay Mcdonald, cited *Ibid* p 50

46 Laski *Parliamentary Covernment in England*, p 313

47 Laski *Ibid* p 313

48 Ramsay Muir *How Britain is Governed op cit*, p 43

सम्बन्धित स्थायी कर्मचारी के व्यक्तित्व तथा योग्यता पर दोनों के सम्बन्ध निर्भर करते है। यदि मन्त्री योग्य, प्रभावशाली एव शीघ्र निर्णय बुद्धि से युक्त है तो वह इच्छानुसार काय कर सकता है, परन्तु जिस मन्त्री मे योग्यता एव काय को समझने की क्षमता नही होती है उन पर स्थायी कर्मचारियो का प्रभाव स्थापित होना स्वाभाविक है। इगलैण्ड म लॉयड जॉर्ज, चर्चिल, रेमजे मैक्डोनल्ड ऐसे ही प्रभावशाली प्रधानमन्त्री थे एव भारत म नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, गोविन्दवल्लभ पन्त, कृष्ण मेनन, कृष्णमाचारी ऐसे ही मन्त्री थे। शासन मे लास्की के अनुसार, "राजनीतिक यन्त्र को लोकप्रिय इच्छा के निस्पृह एव निष्पक्ष अनुभव स सम्बद्ध करके शासन को गतिशील बनाते है। लोकसेवकों की सत्ता प्रभाव की है, शक्ति की नही। वे परिणामो को इगित करते है, आदेश नही देते। जो भी निर्णय है वह मन्त्री का निर्णय होता है।"[49]

भारत मे मन्त्री एव लोक सेवा मे सम्बन्ध

भारत मे मन्त्रियो एव लोक सेवा के सम्बन्ध ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित हैं। भारत मे मन्त्री एव सचिव सम्बन्धी तीन प्रमुख विवाद विचारणीय हैं। प्रथम, टी टी कृष्णमाचारी तथा एच एम पटेल विवाद, द्वितीय, सुरक्षा मन्त्री के रूप म कृष्ण मेनन सम्बन्धी विवाद, एव तृतीय, गुलजारीलाल नन्दा तथा एल पी सिंह स सम्बन्धित विवाद।

टी टी कृष्णमाचारी वित्त मन्त्री थे और एच एम पटेल उस विभाग के मुख्य सचिव। मूदडा काण्ड से दोनो ही मन्त्री तथा मुख्य सचिव सम्बन्धित थे। टी टी कृष्णमाचारी ने छागला जाच आयोग द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने पर वित्तमन्त्री के पद से त्यागपत्र दे दिया था। आयोग ने जीवन बीमा निगम द्वारा मूदडा उद्योग म धन लगाने के निर्णय को शीघ्रता म लिया गया निर्णय घोषित किया था। जीवन बीमा निगम ने यह सारा सौदा मूदडा को आर्थिक दृष्टि से सहायता पहुँचाने के लिए किया था। छागला आयोग ने इस सौदेबाजी को विधिक एव सामान्य व्यापारिक आचरण के विपरीत ठहराते हुए कहा था कि "यद्यपि यह सौदेबाजी जीवन बीमा निगम के निर्देशक कामथ द्वारा मुख्य सचिव एच एम पटेल के निर्देश पर की गयी थी" किन्तु मन्त्री को अपने सचिव के काय के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी ठहराते हुए आयोग ने मत व्यक्त किया कि 'अधीनस्थ के कार्यों के लिए मन्त्री को उत्तरदायित्व वहन करना ही चाहिए।'[50] इस प्रतिवेदन के प्रकाशित होने के पश्चात ही श्री टी टी कृष्णमाचारी ने पद से त्यागपत्र दिया जिसे स्वीकार कर लिया गया था।

---

49 Laski *op cit* p 313

50 In my opinion, in any case it is clear that constitutionally the minister is responsible for the action taken by his secretary with regard to this transaction It is quite clear that a minister must

श्री कृष्ण मेनन के सुरक्षा मन्त्री बनने पर सुरक्षा विभाग एकदम प्रकाश म आ गया था। कृष्ण मेनन ने सुरक्षा मन्त्रालय का पुनगठन एव उसके कार्यों का वर्गीकरण प्रारम्भ कर दिया था। जनरल थिमैया एव सुरक्षा म त्री म सेनाध्यक्ष के चुनाव पर मतभेद उत्पन्न हो गये थे। जनरल थिमया न तीन नाम प्रस्तावित किये थे। क्रम मे जनरल कौल का नाम तीसरे नम्बर पर था लेकिन कृष्ण मेनन ने ज्ञानी एव कुमारमगलम को न चुन कर कौल को सेनाध्यक्ष चुना। थिमैया ने इस पर त्यागपत्र दे दिया जिसे प नेहरू के कहने पर उन्होंने वापस ले लिया था। प नेहरू ने कृष्ण मेनन का समथन किया। उनका कथन था कि हमारे सविधान व व्यवहार मे नागरिक अधिकारी सर्वोच्च है एव उन्हे रहना भी चाहिए।[51] नेहरू न कृष्ण मेनन की सुरक्षा विभाग मे अच्छे काय की प्रशसा की। 1962 ई चीन द्वारा भारतीय सेना के पराजित होने पर मेनन का तीव्र विरोध किया जाने लगा था। उन्हे इस पराजय के लिए उत्तरदायी ठहराया गया। काग्रेस ससदीय दल की कायकारिणी ने भी नेहरू पर मेनन का पदच्युत करने के लिए दबाव डाला। श्री नेहरू ने मेनन का पक्षपोषण किया परन्तु नेहरू जी को अन्त म दल के तीव्र विरोध के कारण मेनन को मन्त्रिमण्डल से हटाना पडा।

तीसरा विवाद श्री गुलजारीलाल नन्दा, एव श्री एल पी सिंह म सम्बन्धित है।[52] गुलजारीलाल नन्दा गृह मन्त्री थे। नवम्बर 1966 ई म सवदलीय गोरक्षा महा अभियान समिति के तत्वावधान मे एक आन्दोलन चलाया गया। नवम्बर 6, 1966 ई को दिल्ली म एक जलूस निकाला गया जो हिंसक हो उठा। पुलिस की गोली से 7 व्यक्ति मारे गये एव 148 व्यक्ति घायल हुए। लोकसभा एव राज्यसभा ने व्यवस्था एव शान्ति की स्थापना म असफलता के लिए गृह मन्त्रालय की तीव्र आलोचना की। काग्रेस दल मे भी श्री नन्दा की तीव्र आलोचना की गयी। 8 नवम्बर को प्रधानमन्त्री ने श्री नन्दा को विभाग परिवतन की सूचना दी। नन्दाजी ने इस पर त्यागपत्र दे दिया। अपने त्यागपत्र म प्रधानमन्त्री से उन्होंने यह शिकायत की कि सचिवालय से पूरा सहयोग न मिल पाने के कारण नीति निर्धारण सम्बन्धी उनके निणय अन्तिम नही होते थे। 'क्या आपने कभी यह कल्पना की है कि आपने जो उपकरण प्रदान किये है उनमे मैं कैसे काम कर सकता हूँ।' उन्होंने दो उदाहरण भी प्रस्तुत किये "प्रथम, जलूस सम्बन्धी निर्देशों की प्रति मांगने पर वह मन्त्री के पास

---

take the responsibility for action done by his subordinates "—Chagla Commission quoted by C P Bhambhari *Bureaucracy and Politics in India*, 1971, p 135

51 *Lok Sabha Debates*, Sept 1959, Col 5857

52 Bhambhari *Bureaucracy and Politics in India*, *op cit*, Ch V pp 236 251

एकमाह पश्चात सचिव द्वारा भेजी गयी थी। द्वितीय, जलूस निकलने वाले दिन प्रात ही मन्त्री ने उप राज्यपाल, सचिव एव अन्य अधिकारियो को व्यवस्था के सम्बन्ध म विचार करने के लिए बुलाया था और तब मुझे यह आश्वासन दिया गया कि सभी उचित प्रबन्ध कर लिये गये हैं।" इससे अधिक मन्त्री से क्या अपेक्षा की जाती है ? नन्दाजी ने इस घटना के पूव अपने विभागीय सचिव के परिवतन की माग की थी जिसे अस्वीकार कर दिया गया था। उनका कहना था कि सचिव महोदय ने वाछित सहयोग नही दिया अपितु दायित्वा के सम्पादन मे बाधा उत्पन्न की। नन्दाजी के त्यागपत्र पर लोकसभा एव राज्यसभा मे ध्यानाकषण एव कामरोको प्रस्ताव उपस्थित किय गये। उस समय प्रधानमन्त्री ने मन्त्री एव सचिव के सम्बन्धो पर मत व्यक्त करते हुए कहा था कि 'नीति का अनुगमन किया जा रहा है या नही, यह देखना मन्त्री का दायित्व है। सचिव द्वारा प्रस्तुत सुझावो का समथन करना या न करना मन्त्री का काय है।" वह सचिव को भिन्न निर्देश दे सकता है। प्रधानमन्त्री ने अपने सहयोगी मन्त्री की अपेक्षा लोकसभा के सदस्यो का पक्षपोषण किया था। यदि यह घटना किसी प्रभावशाली मन्त्री के साथ घटी होती तो मन्त्रिमण्डलीय अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। ससदीय शासन व्यवस्था की दृष्टि से मन्त्री बनाम सचिव के सन्दर्भ म प्रधानमन्त्री द्वारा साथी सदस्य मन्त्री की उपेक्षा किया जाना उचित नही है। मन्त्री व सचिव म परस्पर विश्वास एव सहयोग होना चाहिए। यदि किसी मन्त्री को किसी सचिव म विश्वास नही है तो उसे परिवतन की माग करने का न्यायोचित अधिकार है। सचिव को लोक सेवा की स्वस्थ परम्पराओ के अनुसार अपनी व्यक्तिगत अरुचि एव दृष्टि को विभागीय दायित्वा के सम्पादन म बाधक नही होने देना चाहिए। निस्सन्देह नन्दाजी सवैधानिक रूप से अपने विभाग के कार्यों एव नीतियो के लिए उत्तरदायी थे। इस घटना के सन्दभ म यह विचारणीय है कि उप राज्यपाल एव गृह मन्त्रालय के सचिव ने दो भिन्न एव परस्पर विरोधी वक्तव्य दिये थे। प्रश्न यह है कि स्थायी लोक सेवा के सदस्या को वक्तव्य देने की क्या आवश्यकता थी जब कि उनसे नीति एव विभागीय काय के सन्दभ म सावजनिक वक्तव्य देने की अपेक्षा नही की जाती और न यही आशा की जाती है कि सचिव मन्त्री की उपेक्षा करते हुए विभागीय प्रस्तावा के रूप मे मन्त्री से भिन्न अपने वैकल्पिक प्रस्ताव मन्त्री की जानकारी के बिना ही मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनो मे उपस्थित करे, जैसा कि उपरोक्त उल्लिखित गृह सचिव ने किया था। लोक सेवा का यह आचरण तो ससदीय व्यवस्था की जड ही खोद देता है। यह तो विभाग के राजनीतिक अध्यक्ष (मन्त्री) एव स्थायी अध्यक्ष (सचिव) को प्रतिस्पर्धी समान स्थितियाँ प्रदान करने के समान है। सत्य तो यह है कि मन्त्री का निणय विभाग का निणय होना चाहिए। सचिव का काय तो मन्त्री को परामश देना होना चाहिए। यदि सचिव को मन्त्री के विरुद्ध निणय करने की

परम्परा का विकास होता है तो वह ससदीय व्यवस्था क उत्तरदायि व के आधारभूत सिद्धा त को ही जड से उखाड फेकना होगा। क्या सचिव की उसके परामश के लिए आलोचना की जा सकती है ? नही ! म त्री का ही उसका दायित्व वहन करना पडता है। भारत म न दा सिह् विवाद से रैम्जे म्योर के इस कथन की पुष्टि होती है कि लोक सेवा के सदस्य म त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के आवरण मे पनपत रहत हैं।" भारत मे अधिकाश सचिव आई सी एस या आई ए एस होते है। जब भी इस वग के एक सदस्य के विरुद्ध कोई काय किया जाता है, व सब एक गुट हो जाते है। यदि किसी सचिव के विरुद्ध काई कदम उठाया जाय तो यह कहा जाता है कि इससे सम्पूण लोक-सेवा का साहस गिर जायगा। सत्य तो यह है कि भारत म कमजोर एव मतभेदो से युक्त विभाजित म त्रिमण्डल आई सी एस एव आइ ए एस अधिकारियो के लिए वरदान है। राजनीतिज्ञो एव उच्च लोक सेवा म यदि अपवित्र गठबन्धन हो जाते हैं तो लोकतन्त्र के लिए वह अभिशाप ही है। दलीय मतभेद लोक सेवा को और अधिक सशक्त बना देते हैं।

लोक-सेवा से सम्बन्धित अन्य बातें

प्राय सभी देशो मे वरिष्ठता एव योग्यता के आधार पर पदोन्नति की जाती है। फिफनर के मतानुसार, केवल वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति का अथ है—उच्च पदो पर अयोग्य एव असमथ व्यक्तियो की नियुक्ति। इससे कमचारियो म महत्वाकाक्षा समाप्त हो जाती है।[53] अत पदोन्नति के लिए योग्यता (merit) को महत्व दिया जाना चाहिए। उच्च प्रशासकीय पदो पर यद्यपि योग्यता एव गुणो के आधार पर ही पदोन्नति की जानी चाहिए पर तु आयु एव ज्येष्ठता को भी व्यवहार म पर्याप्त मा यता दी जानी चाहिए। सयुक्त राज्य अमेरिका मे कमचारी की कायक्षमता का माप करना एक व्यापक काय बन गया है। प्रत्येक कर्मचारी का सेवा-अभिलेख एव कायक्षमता माप (Service Records and Efficiency Ratings) रखा जाता है। ब्रिटेन मे 700 पौण्ड वार्षिक से अधिक वेतन पाने वालो की सेवा का ही वार्षिक विवरण रखा जाता है। भारत म प्रत्येक कमचारी का सेवा विवरण रखा जाता है। सामा यत पदोन्नति के लिए परीक्षाएँ एव साक्षात्कार, सेवा अभिलेखो, कायक्षमता मापो एव विभागाध्यक्ष या पदोन्नति मण्डल के निणय आदि पद्धतियो का प्रयोग किया जाता है।

सयुक्त राज्य अमरिका म उच्च प्रशासकीय अधिकारियो एव विभागाध्यक्षो की पदोन्नति परीक्षाओ एव कायक्षमता अभिलेखो के आधार पर होती है। काय क्षमता पद्धति का अमेरिका म विकास हुआ है तथा व्यापक रूप म उसका प्रयोग भी किया जा रहा है। हूवर आयोग के अनुसार यह पद्धति अत्यधिक जटिल एव

53 Pfiffner *Public Administration*, pp 303 304

हुई है। आयोग ने कार्यक्षमता माप के स्थान पर योग्यता एव सेवा अभिलेख माप (Ability and Service Record Rating) के प्रयोग की सिफारिश की थी। इस सम्ब ध मे अमेरिकी डाक विभाग की पद्धति सवश्रेष्ठ तथा अनुकरणीय है। वाशिंगटन के केवल कुछ प्रथम, द्वितीय एव ततीय श्रेणी के पोस्ट मास्टरो को छोडकर सभी कम चारियो को प्रारम्भ म डाकियो एव लिपिको के रूप म भर्ती किया जाता है। वे प्राद शिक अधीक्षक के पद पर पदो नति करते हुए अर्थात विभिन्न पदो पर काय करते हुए ही पहुँचत हैं।

ग्रेट ब्रिटेन मे सेवा विवरण (Service Record) के आधार पर ही पदोन्नति होती है। प्रत्यक विभाग म पदो नति मण्डल होते है। मण्डल द्वारा कमचारियो के वार्षिक विवरण पर विचार किया जाता है तथा उसका साक्षात्कार होता है। तत्पश्चात ही पदोन्नति की सिफारिश की जाती है और विभागाध्यक्ष अन्तिम आदेश जारी करता है। केवल ज्येष्ठता के आधार पर ही पदोन्नति नही की जाती है। पदो नति मण्डल के निणय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। यदि राष्ट्रीय परिषद द्वारा स्वीकृत एव अनुमोदित सिद्धान्त का उल्लघन किया गया हो तो विभागीय ह्वीटले परिषद किसी भी पदोन्नति पर विचार कर सकती है।

भारत म विभिन्न सेवाओ म रिक्त स्थानो मे से निश्चित सख्या के पदा क लिए भर्ती निम्न पद-क्रम (grade) एव सेवा म काय करने वाले कमचारियो म स ही की जाती है। उदाहरण के लिए प्रथम श्रेणी की सेवा म 55 प्रतिशत व्यक्ति सीधी भर्ती से एव शेष पदोन्नति से लिये जाते हैं। केन्द्रीय सचिवालय के कुछ उच्च पदो पर सीधी भर्ती नही की जाती है। भारतीय विदेश सेवा की 'ए' शाखा म दस प्रतिशत स्थान पदोन्नति से भर जाते हैं। द्वितीय श्रणी की राजपत्रित सवाओ म 65 प्रतिशत पद तृतीय श्रेणी के कमचारियो को पदोन्नति करके भर जात हैं। चतुथ श्रणी के कमचारियो की बहुत कम पदोन्नति की जाती है। पदोन्नति के सम्बन्ध म सघीय लोक-सवा आयोग से परामश लिया जाना चाहिए। लेकिन सविधान क अनुच्छद 320 (3) क अन्तगत निर्मित नियमो के अनुसार तृतीय एव चतुथ श्रेणी के कम चारियो की पदोन्नति आयोग क क्षेत्राधिकार क अन्तगत नही है। पदोन्नति सामा यत योग्यता योग्यता एव वरीयता (seniority) या केवल वरीयता के आधार पर ही की जाती है। विभिन्न विभागो क पदोन्नति सम्बन्धी नियम पृथक पृथक होते हैं। विशेष पदो (selection posts) के लिए 1957 ई म गृह मन्त्रालय द्वारा पदोन्नति सम्बन्धी कुछ नियम बनाय गय थे। योग्यता निर्धारण क लिए सवा-अभिलेख, प्रति योगी परीक्षा, समयता परीक्षा क परिणामो पर विचार किया जाता है। विभागीय नियमो क अनुसार उच्च एव मध्य स्तरीय पदो के लिए योग्यता एव निम्न पदो क लिए ज्यष्ठता एव पात्रता (seniority and fitness) पर बल दिया जाता है। विभिन्न विभागो म पदोन्नति के नियमो म कोई एकरूपता नही पायी जाती। वतन

भ्रष्टाचार को रोकना एक कठिन काय है। हमार देश म रिश्वत लेन व दन वाल दोनो दोषी होते हैं। फलत भ्रष्ट अधिकारिया के विरुद्ध कोई सरक्षण उपलब्ध नही है। अनुच्छेद 311 की यायालय द्वारा की गयी व्याख्या के अनुसार शासकीय कम चारियो को भ्रष्टाचार के लिए दण्डित करना कठिन है। अत शासकीय कमचारियो को पद सम्ब धी बहुत अधिक सुरक्षा प्राप्त है। सविधान के 15वें सशोधन (1962 ई) द्वारा इस स्थिति म कुछ सुधार हुआ है तथा सरकारी कमचारियो के विरुद्ध आचरण सम्ब धी जाँच को शीघ्रतापूवक निपटाने की व्यवस्था की गयी है।

व्यापक भ्रष्टाचार से जनता का प्रशासन म विश्वास हिल जाता है और राज नीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती ह तथा आर्थिक विकास के काय अवरुद्ध हो जात हैं। सभी देशो म भ्रष्टाचार भी एकसा नही होता है। ग्रेट ब्रिटेन एव स्वीडन म भ्रष्टाचार नाममात्र का है।

भ्रष्टाचार का सीधा-साधा अथ यह है कि शासकीय कमचारी अपन दायित्व को सम्पादित करने के लिए धन या अ य वस्तुएँ स्वीकार करता है तथा अपने अधिकार के अनुचित प्रयोग द्वारा अवाछनीय लाभ पहुँचाता है। भ्रष्टाचार के अनेक रूप हैं। केवल धन स्वीकार करना तो भ्रष्टाचार का एक रूप मात्र है। स्वय या अ य अपने किसी परिचित या सम्ब धी के द्वारा धन लेना, अपने किसी सम्ब धी या आश्रित की किसी प्रमुख या प्रधान औद्योगिक प्रतिष्ठान म नियुक्ति करा देना, राजनीतिक दल के लिए च दे के रूप मे धन लेना एव सेवा निवत्ति के पश्चात किसी प्रतिष्ठान मे ऊचे वेतन पर कोई पद ग्रहण कर लेना भ्रष्टाचार के विभि न रूप हैं। बडे-बडे उद्योग पतियो एव व्यापारियो द्वारा म त्रियो एव शासकीय कमचारियो को विभिन्न सुवि धाएँ प्रदान की जाती है, उदाहरणाथ, बडे नगरो म अपने आवास गहो मे निवास की सुविधा प्रदान करना। यही नही, उच्च विभागीय अधिकारिया के दौरे का खर्चा सम्ब धित विभाग के निम्न कमचारी उठाते हैं। प्राय प्रत्येक सरकारी ठेके एव क्रय तथा विक्रय सम्ब धी मामलो म कुछ प्रतिशत कमीशन प्रत्येक सम्ब धित अधिकारी का निश्चित हुआ करता है, इसे 'हक' कहत है। कुछ शासकीय विभागा म मुख्य कायालय के लिपिका को बिना धन दिये स्थाना तरण ही नही हो सकता। सरकारी कार्यालया म फाइल को आगे बढाने के लिए प्रत्येक स्तर पर रिश्वत की दरें निश्चित होती हैं। आज स्थिति यह है कि उचित काय के लिए भी रिश्वत देनी पडती है अ यथा सम्ब धित फाइल आगे बढती ही नही है। भारतीय के द्रीय सतकता आयोग (The Central Vigilance Commission) द्वारा भ्रष्टाचार के विभि न 27 तरीको का उल्लेख किया गया है। इन तरीको म सावजनिक धन एव सम्पत्ति के अनुचित प्रयोग से लेकर झूठे यात्रा भत्ते वसूल करना, पद का दुरुपयोग करना, उपहार ग्रहण करना एव शास कीय क्वाटरो पर अवधानिक कब्जा करने तक के काय शामिल है।

समाजवादी देशो मे भी भ्रष्टाचार का प्रकोप है। पूजीवादी लोकत त्रात्मक देशो के सन्दभ म अधिकृत सूचना उपलब्ध होती है परन्तु समाजवादी देशो के सन्दभ म विस्तृत सूचना उपलब्ध ही नही है। नवोदित स्वतन्त्र अफ्रो एशियाई देशा मे सरकारी प्रशासन तन्त्र म व्यापक भ्रष्टाचार व्याप्त है। भारत म इस समस्या के समाधान के लिए विभिन्न आयोगा एव समितियो की स्थापना की गयी है। बगाल प्रशासन जाँच समिति (1945 ई), रलवे भ्रष्टाचार जाँच समिति (1953 55 ई) एव सथानम् समिति (1962 ई) इनम प्रमुख हैं। सथानम् समिति मे सात सदस्य थे जिनमे से पाँच ससद सदस्य एव दो गह मन्त्रालय के वरिष्ठ अधिकारी थे। इस समिति का प्रतिवेदन भारत मे भ्रष्टाचार एव उसके निदान हेतु प्रस्तुत प्रतिवेदनो मे सबसे अधिकृत प्रतिवेदन माना जाता है। मन्त्रिया मे व्याप्त भ्रष्टाचार इस समिति के क्षेत्राधिकार के अन्तगत नही था। यही इसका सबस बडा दोष था। इसन अनेक महत्वपूण सुझाव दिये हैं, जसे, अनुच्छेद 311 को सशोधित किया जाना चाहिए जिससे भ्रष्टाचार सम्बन्धी मामला का शीघ्र एव सरलतापूवक निबटारा हो सके, केन्द्रीय सतकता आयोग की स्थापना की जानी चाहिए और उसे निरीक्षण सम्बन्धी व्यापक शक्तिया प्रदान की जानी चाहिए, शासकीय कमचारिया के आचरण सम्बन्धी नियमो को इस प्रकार सशोधित किया जाना चाहिए जिससे कि पद निवृत्ति के पश्चात कोई शासकीय कमचारी निजी व्यापार एव उद्योगा म नौकरी प्राप्त न कर सके एव भारत सुरक्षा अधिनियम (1962 ई) को भी सशोधित किया जाना चाहिए। सथानम समिति की इन सिफारिशा के आधार पर केन्द्र एव राज्या म सतकता आयोगो की स्थापना की गयी है। प्रशासकीय सुधार आयोग न लोकपाल एव लोकायुक्त की स्थापना का सुझाव दिया है। 1971 ई मे इन पदाधिकारिया की स्थापना सम्बन्धी विधेयक ससद म प्रस्तुत किया गया था। लेकिन भारत मे भ्रष्टाचार उन्मूलन की इन सस्थागत व्यवस्थाआ का वाछित प्रभाव नही हुआ है।

लोक सेवा एव राजनीति

लोक सेवको से आदश एव अनुकरणीय आचरण एव अनुशासन की अपेक्षा की जाती है। व शासन द्वारा प्रदत्त व्यापक अधिकारो का प्रयोग करते हैं अत यह वाछनीय है कि उनके आचरण सम्बन्धी नियम हा जिससे कि वे सत्ता का दुरुपयोग न कर सक। राजनीति से पृथकता अर्थात् पूण तटस्थता या निरपक्षता आधुनिक लोक सेवा की एक अनिवाय विशेषता मानी जाती है। यह लोक सेवा के आचरण सम्बन्धी प्रधान नियम है। प्राय सभी देशो म सामान्यत लोक-सेवाआ के आचरण सम्बन्धी निम्नलिखित नियम प्रचलित है

(1) शासकीय कमचारी को राज्य के प्रति भक्ति रखनी चाहिए एव उ अधिकारियो के प्रति उचित व्यवहार करना चाहिए।

(2) वे निजी व्यवसाय व व्यापार नही कर सकते हैं। उन पर अनैतिक एव गलत सस्थानो से सम्पत्ति अर्जित करने अथवा कज लेने पर कठोर प्रतिबन्ध होते हैं।[54]

(3) शासकीय, व्यक्तिगत एव पारिवारिक जीवन मे उन्हे स्वीकृत नतिक्ता के अनुसार जीवन व्यतीत करना पडता है, यथा—भारत मे शासकीय कमचारी एक से अधिक शादी नही कर सकता।

(4) लोक-सेवको की राजनीतिक गतिविधिया—भाषण, विचार, लेखन प्रकाशन सम्बन्धी आचरण—स्पष्ट नियमानुसार होनी चाहिए।

इन आचरण सम्बन्धी नियमा के कारण शासकीय कमचारियो की स्वतन्त्रता से नागरिक अधिकारो का सीमित हो जाना असम्भव नही है परन्तु लोक सेवा के दायित्वो को दखते हुए इसे अनुचित नही माना जाना चाहिए। भारत म लोक सेवा के आचरण सम्ब धी नियम पर्याप्त कठोर है। 1954 ई के अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम इसका प्रमाण हैं। लोक सेवा के सदस्यो पर राजनीति मे सक्रिय भाग लेने एव भाषण, वक्तव्य व प्रकाशन द्वारा शासन की आलोचना करने पर प्रतिबन्ध है यद्यपि उन्हे समाचार पत्र या रेडियो के माध्यम से अपने विचारो को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। आचरण सम्बन्धी यह नियम तीव्र विवाद का विषय बन गया है। लोक सेवा की तटस्थता जहा लोकतन्त्र का एक सबल आधार है और उसकी क्षमता व दक्षता की दृष्टि से आवश्यक है, वही इस नियम के परिणामस्वरूप लोक सेवको का प्रबुद्ध एव जागरूक समुदाय राजनीतिक अधिकार से वचित हो जाता है। अत लोक सेवको सम्बन्धी एक प्रधान समस्या यह है कि लोक-सेवा की राजनीतिक निष्पक्षता तथा उनके द्वारा सामान्य नागरिक अधिकारो के प्रयोग के मध्य समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जाय। ब्रिटेन की लोक सेवका की राजनीतिक क्रियाक्लाप सम्बन्धी समिति (Masterman Committee) ने अपने प्रतिवेदन (1949 ई) म इस समस्या का गम्भीर विश्लेषण किया है।[55]

इस समिति द्वारा लोक सेवका सम्बन्धी निम्न तीन क्रियाओ का उल्लेख किया गया है

(1) क्या लोक सेवको को ससद की सदस्यता के लिए प्रत्याशी होने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए ?

(2) क्या लोक सेवको को व्यक्तिगत रूप से अथवा लोक सेवा कमचारी सघो के सदस्या के रूप म राष्ट्रीय स्तर पर दलीय या गैर दलीय राजनीतिक कार्यों म भाग लेने का अधिकार होना चाहिए ?

---

54 भारत म अखिल भारतीय सेवा के सदस्यो को प्रति वष अर्जित की गयी अचल सम्पत्ति का विवरण देना पडता है।

55 Report of the Committee on the Political Activities of the Civil Servants, 1949

(3) क्या लोक सेवको को स्थानीय शासन मे भाग लेने का अधिकार होना चाहिए ?

(1) ग्रेट ब्रिटेन म 1927 ई तक लोक सेवा के सदस्यो को ससदीय निर्वाचनो मे चुनाव लडने की कोई स्वत त्रता प्राप्त नही थी । ससद की सदस्यता के लिए चुनाव लडने के पूव उ ह अपने पद से त्यागपत्र देना पडता था । लेकिन 1957 ई म विभिन्न विभागा के औद्योगिक कमचारिया को ससदीय सदस्यता के लिए चुनाव लडने की स्वत त्रता प्रदान की गयी है । मास्टरमैन समिति (1948 49 ई) के द्वारा लोक सेवाआ को दो भागा मे वर्गीकृत किया गया है—(i) ऐसी सेवाएँ जिनके सदस्या द्वारा राजनीतिक कार्यो म भाग लेने से सावजनिक विश्वास एव लोक-सेवा की क्षमता मे सहज ह्रास हो जाता है, और (ii) ऐसी सेवाए जिनमे इस प्रकार की आशका की कोई सम्भावना नही है । समिति ने प्रशासकीय, वज्ञानिक, तक्नीकी, व्यावसायिक, लिपिक श्रेणी के नीचे की सेवाएँ एव निम्न औद्योगिक एव दक्षता-प्रधान (manipulative) सेवाआ स ऊपर की सेवाओ के मध्य विभाजक रेखा खीच दी है । उच्च सेवाआ पर राजनीतिक कार्यो म भाग न लेने का प्रतिब ध लगा हुआ है । समिति का तक था कि जिन अधिकारियो को नीति निर्माण, निर्देशन एव उसके क्रिया वयन सम्ब धी व्यापक स्वविवेकीय शक्तिया प्राप्त हैं तथा जि ह शासन के गोपनीय प्रपत्रो का निरीक्षण करने का अधिकार है, उ ह ससद की सदस्यता के लिए प्रत्याशी होने पर त्यागपत्र देना चाहिए । अपने पद पर रहते हुए उ ह ससद की सदस्यता के लिए चुनाव लडने का अधिकार नही है । इससे लोक सेवा मे सावजनिक विश्वास के समाप्त हो जाने की हर सम्भावना है । इसके विपरीत, समिति के अनुसार जिन अधिकारियो का काय औद्योगिक एव प्रब धकीय प्रवृत्ति का है उ ह राजनीतिक गतिविधियो म भाग लेने की पूर्ण स्वत त्रता होनी चाहिए । समिति न यह भी प्रस्तावित किया था कि औद्योगिक एव प्रब धकीय श्रेणियो के लोक कमचारिया को ससदीय निर्वाचन काल मे प्रत्याशी होन पर एक माह का अवकाश दिया जाना चाहिए और निर्वाचित होने पर उ ह पद से त्यागपत्र देना चाहिए । लेकिन ससदीय सदस्यता के समाप्त होने पर उ ह पुन अपने पद पर लौट आने का अधिकार होना चाहिए, यदि सम्ब धित अधिकारी ने कम से कम 10 वष तक सेवा-काय किया हो ।

भारत म शासकीय कमचारियो को पद त्याग के पश्चात ही ससद की सदस्यता से लिए *चुनाव लडने का अधिकार प्राप्त है ।*

(2) लोक सेवका की अन्य राजनीतिक क्रियाओ से सम्बन्धित प्रश्न हैं—क्या शासकीय कर्मचारियो को राजनीतिक दलीय सगठन म किसी पद को धारण करना चाहिए ? क्या उ ह दलीय प्रश्नो पर वक्तव्य या दलीय प्रचार करना चाहिए ? क्या शासन की आलोचना करते हुए उ ह दलीय मामलो से सम्बन्धित लेख

अथवा अन्य प्रचार सामग्री समाचार पत्रों में प्रकाशित करनी चाहिए? ब्रिटेन में शासकीय कर्मचारियों को दलीय सदस्यता ग्रहण करने एवं मतदान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है लेकिन शासकीय कर्मचारियों को राजनीतिक विवाद से दूर रहने पर बल दिया गया है। उन्हें शासकीय नीति की आलोचना भी नहीं करनी चाहिए। ब्रिटेन में शासकीय कर्मचारी द्वारा दलीय पद ग्रहण करने, सार्वजनिक रूप से शासन की नीतियों की आलोचना करने या दल का प्रचार करने पर प्रतिबन्ध हैं। लेकिन यह प्रतिबन्ध औद्योगिक कर्मचारियों पर लागू नहीं होते। उन पर केवल यह प्रतिबन्ध है कि वे शासकीय कार्यालय में तथा कार्य के समय अधिकृत पोशाक को धारण करके दलीय प्रचार का कार्य नहीं कर सकते। भारत में कोई शासकीय कर्मचारी उपरोक्त उल्लिखित राजनीतिक कार्यों में भाग नहीं ले सकता यद्यपि उन्हें राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण करने एवं इच्छानुसार मतदान करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। मास्टरमैन समिति ने गैर-दलीय मामलों पर शासकीय कर्मचारियों को व्यक्तिगत रूप से सार्वजनिक हित में अपने मत को प्रकट करने की स्वतन्त्रता का समर्थन किया था। लेकिन समिति ने इस सन्दर्भ में भी कुछ सुझाव दिये थे एवं उनके पालन पर बल दिया था, जैसे शासकीय कर्मचारी को अपने विभाग के राजनीतिक कार्यों की आलोचना नहीं करनी चाहिए, उसे सम्मेलन एवं वाद विवाद में भाग लेने के लिए विभागाध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए, वाद विवाद में उसका सम्बन्ध केवल तथ्यों से ही होना चाहिए, उसका आचरण संयमित होना चाहिए एवं पद सम्बन्धी गोपनीय व्यवस्थाओं (Official Secrets Acts) का उसे ध्यान में रखना चाहिए।

(3) ग्रेट ब्रिटेन में शासकीय कर्मचारियों को 1909 ई. से स्थानीय शासन में विभागाध्यक्ष की अनुमति से भाग लेने का अधिकार प्राप्त है। मास्टरमैन समिति ने 1949 ई. में इस व्यवस्था को आगामी 5 वर्षों तक कायम रखने एवं तत्पश्चात् स्थिति के पुनर्विचार का सुझाव दिया था। भारत में 1919 ई. के पूर्व शासकीय कर्मचारियों को स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचनों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। लेकिन नये नगरपालिका एवं अन्य स्थानीय शासन सम्बन्धी अधिनियमों के अन्तर्गत शासकीय कर्मचारियों को स्थानीय निकायों की सदस्यता के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है।

लोक सेवकों से सम्बन्धित एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शासकीय कर्मचारियों एवं शासन के मध्य क्या सम्बन्ध होने चाहिए? शासन को आदर्श मालिक (Employees) की भूमिका निभानी चाहिए एवं उसका यह कर्तव्य है कि वह शासकीय कर्मचारियों की कठिनाइयों के निवारणार्थ उचित व्यवस्था करे। क्या शासकीय कर्मचारियों को समुदाय के निर्माण तथा हड़ताल करने के अधिकार प्राप्त होने चाहिए? शासन एवं उसके कर्मचारियों के मध्य उत्पन्न विवादों का हल किस प्रकार किया जाना चाहिए?

समुदाय के अधिकार (Right of Association) मे तीन प्रश्न निहित हैं क्या सरकारी कमचारी अपने समुदाय बना सकता है ? क्या यह समुदाय किसी वाह्य श्रमिक-सघ स सम्बधित हो सकत है ? विभिन्न देशा म इस सम्बन्ध मे भिन्न भिन्न व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। ग्रेट ब्रिटन म कमचारियो को 'कमचारी सघ (Service Association) बनाने की पूण स्वत त्रता है तथा वे इन सघो के सदस्य भी हो सकते हैं, चाह ये सघ शासन द्वारा मान्यता प्राप्त हा अथवा नही। उनके ये कमचारी सघ किसी वाह्य श्रम सगठन के भी सदस्य हो सकते है। एक प्रश्न यह भी है—क्या कम चारी सघ किसी राजनीतिक दल से भी सम्बधित हो सकते हैं ? ब्रिटेन मे केवल डाक कमचारी सघ श्रम दल से सम्बधित है। अन्य कोई कमचारी सघ किसी दल से सम्ब न्धित नही है। इस सम्बन्ध म निश्चित नियम यह है कि शासकीय कमचारी सघो द्वारा अपना कोष राजनीतिक लक्ष्यो के लिए प्रयोग नही किया जा सकता। सयुक्त राज्य अमरिका म सरकारी कमचारियो को अपने कमचारी सघा का सदस्य होने का अधिकार प्राप्त है, लेकिन इस सम्बन्ध म शत यह है कि ऐसे सघ अपने सदस्या को हडताल की प्रेरणा नही दे सकेंगे।[56] सयुक्त राज्य अमेरिका म सरकारी कमचारी सघो ने अपनी सदस्यता कुछ निश्चित वग तक ही सीमित कर रखी है। भारत मे सरकारी कमचारी केवल मान्यता प्राप्त सेवा सगठना (Service Organisations) के ही सदस्य बन सकते है। यह मान्यता शासन द्वारा सगठन की स्थापना के 6 माह के भीतर प्राप्त हो जानी चाहिए। शासन द्वारा निम्न शर्तों के पूण किये जाने पर ही इन सेवा सगठना को मान्यता प्रदान की जाती है (1) ऐसा कोई व्यक्ति इन सगठनो का सदस्य नही हो सकता जो शासकीय कमचारी न हो। (2) सगठन की कायकारिणी का चुनाव सदस्या म से ही होना चाहिए। (3) सघ द्वारा किसी सदस्य के व्यक्तिगत मामले का समथन नही किया जाना चाहिए एव (4) सेवा सगठनो का कोई राजनीतिक कोष नही होना चाहिए और न उसके द्वारा किसी राजनीतिक दल या विचार का प्रचार ही किया जाना चाहिए। स्पष्ट है, भारत म शासकीय कमचारियो के 'सेवा सगठनो' सम्बन्धी नियम कठोर है।

हडताल का अधिकार

प्रश्न यह है कि क्या शासकीय कमचारी को हडताल का अधिकार दिया जाय ? ग्रेट ब्रिटेन मे शासकीय कमचारी द्वारा हडताल करना कोई दण्डनीय अपराध नही माना जाता, वहा हडताल के लिए शासकीय कमचारी के विरुद्ध केवल अनुशासनात्मक कायवाही ही की जा सकती है। व्यवहार म ग्रेट ब्रिटन म सरकारी कमचारियो द्वारा हडताल कम ही की जाती है और आये दिन वे हडताल की धमकी भी

56 Refer to Sec 6(e) of the Lloydla Follete Act of 1912

नहीं देते है । सयुक्त राज्य अमरिका म सरकारी कमचारियो द्वारा हडताल करने पर कानून द्वारा प्रतिबन्ध है । टाफ्ट-हार्टले अधिनियम (1947 ई) द्वारा यह प्रतिबन्ध शासकीय कमचारियो पर स्थापित किया गया है तथा हडताल करने पर शासकीय कर्मचारियो को सेवा से पदच्युत करने या तीन वष तक निष्कासित करने का दण्ड दिया जा सकता है । 1955 ई म कांग्रेस ने एक अन्य विधि द्वारा सम्बन्धित दण्ड व्यवस्था को और कठोर बना दिया है ।

भारत मे ग्रेट ब्रिटेन की भाँति शासकीय कमचारियो द्वारा हडताल विधि द्वारा निषिद्ध घोषित नही की गयी है । अत हडताल स केवल अनुशासन भग होता है । केन्द्रीय लोक सेवा आचरण नियम (1955 ई) के अन्तगत शासकीय कमचारिया के हडताल करने पर प्रतिब ध है लेकिन यह व्यवस्था केवल गैर-औद्योगिक कमचारिया पर ही लागू होती है । रेलवे कमचारियो के अलावा अन्य औद्योगिक कर्मचारिया पर यह लागू ही नही होती है । आस्ट्रेलिया, जापान एव स्विटजरलण्ड म शासकीय कमचारियो द्वारा हडताल गैर कानूनी है । आस्ट्रेलिया मे तो यह दण्डनीय अपराध है और हडताल करने पर कमचारी का सेवा से निष्कासन का दण्ड तक दिया जा सकता है । कनाडा मे स्थिति पूणरूपण स्पष्ट नही है । कनाडा के क्यूबक प्रान्त मे प्रत्येक परिस्थिति म शासकीय कमचारिया की हडताल पर प्रतिबन्ध है । फ्रास ही केवल एकमात्र महत्वपूण पश्चिमी देश है जिसम शासकीय कमचारिया को हडताल का अधिकार प्रदान किया गया है ।

विश्व के अधिकाश देशा मे शासकीय कर्मचारिया द्वारा हडताल का समथन नही किया जाता है क्योकि शासकीय कर्मचारिया द्वारा हडताल का अथ उसी जनता को पिस्तौल दिखाना है जिसकी सेवा करना उसका प्रधान दायित्व है । सरकारी कमचारिया द्वारा हडताल करन पर जनता के हितो का हनन होता है और समाज म अव्यवस्था व अशान्ति उत्पन्न हो जाती है । लेकिन कुछ विचारक सभी सरकारी कमचारियो को श्रमिक सगठन सम्बन्धी अधिकार देन का समथन करत हैं । उनक अनुसार यही एकमात्र वह अस्त्र है जिससे श्रमिक दासता से मुक्त हो सकता है । यह स्वीकार करना पडेगा कि उग्र हडताली तरीका का शासकीय कमचारियो द्वारा प्रयोग अवाछनीय है । अत यह आवश्यक है कि शासकीय कमचारियो को अपनी कठिनाइयो को दूर करन के लिए किसी मशीनरी या व्यवस्था के निर्माण का अधिकार होना चाहिए । ग्रेट ब्रिटेन म प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात ह्विटले समितियो का निर्माण इसी उद्देश्य से किया गया है । सयुक्त राज्य अमेरिका मे ह्विटले समितियो के सदृश्य कोई व्यवस्था नही है और वहाँ शासन तथा उसके कमचारिया के मध्य उत्पन्न विवादा का विचार विमश से हल करने के लिए किसी सस्था का विकास नही हुआ है, अपितु अन्य तरीका का विकास हुआ है । भारत म 1957 ई म स्टाफ समितिया की स्थापना की

गयी। 1960 ई म भारत सरकार ने स्टाफ समितियो को ह्वीटले समितिया के समकक्ष लान का प्रयत्न किया था तथा इस सन्दभ म एक योजना प्रस्तावित की थी। इसके अन्तगत स्थानीय, क्षेत्रीय एव राष्ट्रीय परिषदा के निर्माण का सुझाव दिया गया था। इसके अतिरिक्त याजना मे एक पच फैसला समिति (Arbitration Committee) की स्थापना की भी व्यवस्था थी जिसका काय दोना पक्षा का सुनकर विवाद के सम्बध म निणय देना है। राष्ट्रीय समिति जब किसी विवाद को निबटाने मे असफल रहती है तो वह विवाद पच-फसला समिति को निणयाथ भेज दिया जाता है। 1963 ई म इस योजना को शासन ने क्रियान्वित करने की घोषणा इस शत पर की थी कि शासकीय कमचारी हडताल के माग का अनुसरण न करने की घोषणा करें। 1966 ई म केन्द्रीय कमचारिया के लिए सयुक्त परामश एव अनिवाय पच फैसले की योजना प्रस्तुत की गयी है।

समीक्षा— आधुनिक शासन प्रणाली म लाक सवका या सरकारी कमचारिया के दायित्व नकारात्मक न रह कर सकारात्मक हो गय ह। उन्ह अब केवल व्यवस्था एव शान्ति की स्थापना मे ही योग नही देना है। आधुनिक राज्य आर्थिक, सामाजिक एव सास्कृतिक प्रकृति के अनेक कार्यों को करता है। मुक्त व्यापार नीति का युग बीत चुका है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा है। नियोजन द्वारा आर्थिक उन्नति अधिकाश देशो का आदर्श है। यह सभी दायित्व शासकीय कमचारियो का ही सम्पादित करने पडते हैं। अत शासकीय कमचारिया के दृष्टिकाण मे व्यापक परिवतन अपेक्षित है। लोक-सेवका को आज अधिक निष्ठावान, सजग, कर्तव्य परायण एव योग्य होने की आवश्यकता है। अब जनता पर निरकुश ढग स शासन करने का समय बीत चुका है अपितु उसका समथन अपेक्षित है।

विभिन्न देशा की लोक-सेवाआ म (1) सरकारी कमचारिया की सख्या म तीव्र वद्धि हो रही है, (2) अधिकाधिक सख्या म तकनीकी याग्यता से युक्त व्यक्तिया एव विशेषज्ञो को शासकीय कमचारी नियुक्त किया जा रहा है, फलस्वरूप लोक सेवा म विभिन्न नवीन सेवाएँ (diversification) विकसित हो रही है, (3) लाक सेवा की शक्ति मे वृद्धि हो रही है, (4) परम्परागत तटस्थता की धारणा म भी परिवतन हो रहा है, तथा (5) नैतिक आचरण एव दायित्वा सम्बन्धी मानदण्डा के पालन पर अधिकाधिक बल दिया जा रहा है।

शासन के दायित्व एव काय म वृद्धि के साथ सरकारी कमचारिया की सख्या एव शक्ति मे वृद्धि स्वाभाविक है। पारकिन्सन के अनुसार लोक-सेवको की सख्या मे प्रति वष 5 75 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। ब्रिटेन म 1797 ई मे केवल 16 हजार कमचारी थे। 1957 ई मे उनकी सख्या 6,37,423 हो गयी थी। 1817 ई म सयुक्त राज्य अमरिका के सघीय कमचारिया की सख्या 6,500 थी, 1957 ई म न

23 लाख थे। भारत म 1947 ई एव 1957 ई के मध्य सरकारी कमचारियो की वद्धि का अनुपात 23% है। इसके अतिरिक्त अब शासकीय कमचारियो म तकनीशियनो एव विशेषज्ञो की भरमार है, केवल साधारण प्रशासक एव लिपिक ही नियुक्त नही किये जाते हैं। लोक सेवा की शक्ति मे भी असाधारण वद्धि हुई है। सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, भारत एव अन्य देशो मे यह प्रवृत्ति सुस्पष्ट है। रमजे म्योर ने ब्रिटिश लोक सेवा के सन्दर्भ मे यह कहा है कि "नौकरशाही की शक्ति मे असाधारण वद्धि हुई है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के आवरण मे नौकरशाही फलती फूलती है एव मन्त्रिमण्डल के अधिनायकत्व के अधीन यह निरन्तर विकसित होती जा रही है।"[57] नौकरशाही अग्नि की भाति है जो सेवक के रूप मे महत्वपूर्ण है लेकिन स्वामी के रूप मे विनाशकारी है।[58] भारत मे यही स्थिति है। भारत म यदि लोकतन्त्र असफल होता है तो उसका मुख्य दायित्व लोक सेवको एव उनकी उत्तरदायित्वहीनता की निरन्तर बढती प्रवत्ति पर होगा। इसके अतिरिक्त नियोजित अर्थव्यवस्था द्वारा समाजवादी समाज के निर्माण के लिए कृतसकल्प होने के कारण शासकीय कमचारियो के दायित्वो म असाधारण वद्धि हुई है। आज लोक सेवा का सदस्य अफसर नही है, वह जन सेवक है। हमारी योजना की सफलता शासकीय कमचारियो मे अफसरशाही, भ्रष्टाचार एव अन्य कमजोरियो के हटने पर ही सम्भव है।

लोक सेवा की विशेषता उनकी निष्पक्षता एव तटस्थता है। इसका अथ है कि व राजनीतिक मामलो म तटस्थ होते हे। ब्रिटिश विचारधारा के अनुसार लोक सेवा के सदस्यो की राजनीतिक तटस्थता का अथ है कि लोक-सेवा का राजनीतिक निष्पक्षता मे विश्वास होना चाहिए, लोक सेवा के सदस्यो को प्रत्येक सरकार की पूरी निष्ठा से सेवा करनी चाहिए चाहे वह सरकार किसी भी दल की क्या न हो, एव शासकीय कमचारियो को योग्यता के आधार पर तरक्की एव अन्य पारितोषिक प्राप्त होते रहने चाहिए। सयुक्त राज्य अमेरिका म भी तटस्थता की यही धारणा मान्य है अर्थात लोक सेवा के सदस्यो को सभी राजनीतिक गतिविधियो से दूर रहना चाहिए, उन्हे व्यक्तिगत या सावजनिक रूप स कोई वक्तव्य नही देना चाहिए और न दलीय या विवादास्पद मामलो पर विचार ही व्यक्त करने चाहिए। लेकिन राजनीतिक तटस्थता की धारणा तीव्र आलोचना का विषय बन गयी है। यह कहा जाता है कि नीति निर्माण एक व्यापक एव सहयोगी प्रक्रिया है, न कि किसी मन्त्री या कमचारी का कोई व्यक्तिगत काय। अत लोक-सेवा के सदस्यो का काय केवल नीति को क्रियान्वित करना ही नही है। लोक सेवको को दलगत राजनीति से दूर रहना चाहिए परन्तु शासकीय नीति को क्रियान्वित करने म उन्हे पूरी निष्ठा से काय करना चाहिए।

57 Ramsay Muir *op cit*, Ch II, pp 51 60

58 *Ibid* p 53

लेकिन लोकतन्त्र म लोक सेवा लोकप्रिय शासन का अभिन्न अग होती है। लोक सेवा के काय नकारात्मक न होकर अब सकारात्मक हो गये हैं। सफलतापूवक किसी नीति को क्रियान्वित करने के लिए उस नीति मे पूण निष्ठा भी वाछनीय है। अत कहा जाता है कि लोकसेवा को राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ नही होना चाहिए। समर्पित लोक सवा (Committed Services) की चर्चा अब भारत म भी सुनी जाती है। तटस्थ लोक सेवा के विरुद्ध यह तक दिया जा रहा है कि समाजवादी व्यवस्था के निर्माण मे वह पूणत असफल रहेगी क्योकि समाजवादी आदर्शों के साथ उसका कोई रागात्मक सामजस्य नही है।

25

न्यायपालिका

[JUDICIARY]

'यदि विधि का प्रशासन बेईमानीपूर्वक किया जाता है तो उसका वांछित प्रभाव नहीं होता और यदि शिथिलतापूर्वक या आवेश में विधि को क्रियान्वित किया जाता है तो व्यवस्था सम्बन्धी प्राप्त प्रतिभू समाप्त हो जाती है क्योंकि अपराधों को दण्ड की कठोरता की अपेक्षा उसकी निश्चितता से ही रोका जा सकता है। यदि अन्धकार में न्याय का दीप बुझ जाता है तो वह अन्धकार भयानक होता है।'[1]

आधुनिक राज्यों में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर बहुत बल दिया गया है। लोकतन्त्र में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का विशेष महत्व है। व्यक्ति के स्वतन्त्रता एवं समानता के आधारभूत अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका आधुनिक समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। न्यायपालिका निरंकुश शासन से व्यक्तियों की रक्षा का प्रभावशाली साधन माना जाता है। यह सभ्य शासन-व्यवस्था की एक अनिवार्य शर्त है। लार्ड ब्राइस के अनुसार, "किसी भी देश की श्रेष्ठता का मापदण्ड उस देश की श्रेष्ठ न्यायपालिका होती है।"[2] डॉ आशीर्वादम का कथन है कि किसी देश में अच्छी व्यवस्थापिका एवं कुशल कार्यपालिका भले ही हो परन्तु स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका के अभाव में उस देश के संविधान का विशेष महत्व नहीं है।[3]

---

1 'If the law be dishonestly administered the salt has lost its flavour if it be weakly or fitfully enforced, the guarantees of order fail for it is more by the certainty than by the severity of punishment that offences are repressed If the lamp of justice goes out in darkness how great is that darkness' —Lord Bryce *Modern Democracies*, Vol II, 1929, p 421

2 Lord Bryce *Ibid*

3 Dr E Asirvatham *Political Theory*, 8th edn , p 428

न्यायपालिका का विकास

यायपालिका का विकास अत्य त धीमी गति से हुआ है। आधुनिक राज्या म याय का सम्पादन सावभौम रूप से यायपालिका का एकाधिकार है। पर तु ऐसा सदैव नही था। आदिकाल मे याय राज्य का दायित्व न होकर व्यक्ति का निजी दायित्व था। इसके अतिरिक्त उस समय यह आवश्यक नही था कि अपराधी को ही दण्ड दिया जाये। अपराधी के कबीले या गोत्र के किसी अ य व्यक्ति को दण्ड या हानि पहुँचाकर भी याय की पूर्ति हो सकती थी। उस समय 'आँख के बदले आँख' और 'खून के बदले खून' का सिद्धा त प्रचलित था। धीरे धीरे आर्थिक क्षतिपूर्ति का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। पर तु क्षतिपूर्ति (Wergild) के लिए कोई प्रशासकीय व्यवस्था नही थी तथा दण्ड एव अपराध म भी कोई अनुपात नही था। समाज से बहिष्कृत करने के कठोर दण्ड का प्रचलन था। धीरे धीरे राजा द्वारा याय (Kings peace) की धारणा का विकास हुआ था। प्रारम्भ म राजा केवल उ ही विवादा म निणय देता था जिनमे क्षतिपूर्ति किया जाना असम्भव था, बाद मे चोरी एव अ य अपराधो के लिए भी राजा याय करन लगा। पाश्चात्य समाज मे साम तो एव चर्चों द्वारा एक लम्बे समय तक याय सम्पादित किया गया था। भारतवप म ब्रिटिश शासन काल के प्रारम्भ तक पचायते याय करती थी। आधुनिक समाज म याय राज्य का एकाधिकार है और याय सम्पादित करना राज्य का एक महत्वपूण काय है। आधुनिक समय मे सभी अपराध राज्य के विरुद्ध माने जात हैं। भले ही विभिन्न सस्थाओं या सामाजिक सगठनो द्वारा व्यक्ति पर नैतिक दबाव एव सामाजिक प्रतिब ध लगाये जाते हो पर तु व्यक्तियो को अपराधो के लिए कारावास, मत्यु दण्ड जसे दण्ड देने का अधिकार केवल राज्य को ही है।

कतव्यो एव दायित्व के आधार पर यायपालिका की दो महत्वपूण विशेषताएँ है (1) स्वत त्रता, एव (2) निष्पक्षता। ये दोना यायपालिका के सगठन, यायाधीशो की योग्यता एव उनकी सेवा सम्ब धी शर्तों पर निभर करती ह। यायपालिका के काय एव दायित्वो की दृष्टि से यायपालिका की स्वत त्रता एक अनिवाय सामाजिक आवश्यकता है।

न्यायपालिका के कार्य

आधुनिक राज्या म यायपालिका का प्रमुख काय याय का सम्पादन है, लेकिन उसके द्वारा अ य काय या दायित्व भी सम्पादित किये जाते है। उसके दायित्वा को यायिक एव अ य मे वर्गीकृत किया जा सकता है। यायिक दायित्व निम्नवत हैं

(1) व्यक्ति एव व्यक्ति तथा व्यक्ति एव राज्य के मध्य उत्प न समस्त दीवानी एव फौजदारी विवादो मे निणय देना एव अपराधियो को दण्डित करना, तथा निर्दोष व्यक्तियो की हिंसा, हानि एव अपहरण से रक्षा करना।

(2) किसी विवाद मे विधि के अस्पष्ट होने पर उसकी व्याख्या करना। इस

प्रकार की विधि को Case law या न्यायाधीश द्वारा निर्मित विधि कहते हैं। इगलैण्ड की सामान्य विधि—कॉमन लॉ—न्यायाधीशों के निर्णयों पर ही आधारित विधि है। ब्रिटिश विधि व्यवस्था वाले देशों में विधि के अभाव या अस्पष्टता की दशा में न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णय नजीरों (Precedents) का रूप धारण कर लेते हैं। फ्रांस व जर्मनी आदि देशों में यह नजीरें सामान्य न्यायालयों पर बन्धनकारी नहीं होती है। न्यायपालिका ही संविधान की व्याख्या करती है एवं संविधान तथा मौलिक अधिकारों की संरक्षक होती है। संविधान विरोधी विधि को न्यायालय अवैधानिक घोषित करते हैं।

(3) कभी कभी न्यायालयों के समक्ष ऐसे विवाद आते हैं जिनके सम्बन्ध में विधि मौन होती है। ऐसी अवस्था में न्यायाधीश सामान्य विवेक, नैतिकता के सामान्य सिद्धान्तों तथा सामाजिक न्याय के आधार पर उचितानुचित का निर्णय करते हैं। फ्रांस की सम्पूर्ण प्रशासकीय विधि देश के सर्वोच्च प्रशासकीय न्यायालय—राज्य परिषद (Council of State)—के द्वारा दिये गये न्यायिक निर्णयों का ही संग्रह है।

(4) राज्य के हस्तक्षेप या अतिक्रमण से व्यक्ति की रक्षा करना न्यायपालिका का महत्वपूर्ण दायित्व है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का संरक्षक कहा जाता है।

(5) संघीय राज्यों में न्यायपालिका एकात्मक राज्यों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संघीय राज्य में न्यायपालिका केन्द्र व राज्य, राज्य व राज्य तथा केन्द्रीय या अन्य राज्य/राज्यों, व्यक्ति या व्यक्तियों के मध्य उत्पन्न विवादों के सम्बन्ध में निर्णय करती है। संविधान सम्बन्धी विवादों में न्यायपालिका द्वारा संविधान की व्याख्या की जाती है तथा शासन के विभिन्न अंगों के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों में निर्णय देती है।

न्यायपालिका के 'अन्य कार्यों' को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(1) राजनीतिक, एवं (2) कार्यपालक।

(6) राजनीतिक दायित्व के अन्तर्गत व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधियों एवं कार्यपालिका के कार्यों की वैधानिकता के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार न्यायपालिका को प्राप्त है। इसे न्यायिक पुनर्रीक्षण या न्यायिक समीक्षा (Judicial review) की शक्ति कहते हैं। संयुक्त राज्य अमरिका के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्रीक्षण की व्यापक शक्ति प्राप्त है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की सीमा के अन्तर्गत ही यह शक्ति प्राप्त है परन्तु ब्रिटिश न्यायालयों को न्यायिक पुनर्रीक्षण सम्बन्धी कोई शक्ति नहीं है।

(7) न्यायपालिका को अनेक छोटे मोटे कार्यपालक दायित्वों को सम्पादित करने का अधिकार है। जैसे—

(अ) न्यायालय विभिन्न प्रकार की निषेधाज्ञाएँ (Writs) जारी कर सकते हैं।

(आ) किसी मामले म सम्बंधित पक्षो के आग्रह पर घोषणात्मक निणय (declaratory judgments) द सकते हैं।

(इ) कायपालिका या व्यवस्थापिका द्वारा प्राथना करने पर किसी विषय पर परामशदायी मत व्यक्त करने का अधिकार है।

(ई) अनक प्रकार की व्यक्तिगत एव सावजनिक सम्पत्ति तथा ट्रस्टो के प्रबंध का भार वहन कर सकत हैं।

(उ) यायालयो क अनक छोटे मोटे कमचारियो की नियुक्ति करने, लाइस स देने, अल्पसख्यको क सरक्षको को नियुक्त करने, वसीयतें स्वीकरने एव नि सन्तान मृत व्यक्तियो की सम्पत्ति की देखभाल के अधिकार प्राप्त हैं। यायपालिका के उपरोक्त दो कार्यों पर अग्रिम पृष्ठो म विस्तार से विचार किया गया है।

(1) राज्य के अतिक्रमण से व्यक्ति की रक्षा करना—राज्य के अनुचित एव अवधानिक कार्यों से व्यक्ति की रक्षा के सम्बन्ध मे एक प्रचलित धारणा यह है कि सविधान म अधिकारो की व्यवस्था के माध्यम स ही व्यक्ति की रक्षा सम्भव है। सयुक्त राज्य अमेरिका एव भारत के सविधानो म नागरिक अधिकारो का उल्लेख किया गया है। दोनो ही देशो म न्यायपालिका सविधान एव मौलिक अधिकारो की सरक्षक है। अमेरिकी यायपालिका को इस सम्बन्ध मे यायिक पुनर्रीक्षण की व्यापक शक्तियां प्राप्त है। इसका आधार अमेरिकी सविधान म प्रयुक्त 'विधि की उचित प्रक्रिया' (due process of law) वाक्यांश का प्रयोग है। इस वाक्यांश का अथ शाश्वत विवेकाश्रित याय के मूलभूत सिद्धान्त है। भारत के सर्वोच्च यायालय को इतने व्यापक अधिकार प्राप्त नही हैं। भारतीय सविधान म विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure established by law) वाक्यांश का प्रयोग किया गया है। स्मरणीय है कि भारतीय सर्वोच्च यायालय ने दो आधारो पर यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति अर्जित की है—(1) सविधान की भाषा, एव (2) मौलिक अधिकारो पर उचित प्रतिबंध (reasonable restriction) की व्याख्या करके।[4] भारतीय उच्च यायालयो एव सर्वोच्च यायालय ने मौलिक अधिकारो पर शासन द्वारा लगाये गये प्रतिबंधो के औचित्य के सम्बन्ध मे निर्धारण को यायालय का अधिकार माना है, फलस्वरूप भारतीय न्यायपालिका को यायिक पुनर्रीक्षण के व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये हैं।

सोवियत रूस के सविधान मे भी मौलिक अधिकारो का उल्लेख है, परन्तु वहा यायपालिका को यायिक पुनरीक्षण की कोई शक्ति प्राप्त नही है।

ब्रिटेन, कनाडा आदि देशो म मौलिक अधिकारो का सविधान म उल्लेख नही किया गया है। ब्रिटिश सविधान अलिखित एव विकास का परिणाम है। भले ही ब्रिटिश सविधान म सयुक्त राज्य अमेरिका एव भारतीय सविधान की भांति मौलिक

---

4 मौलिक अधिकारो की विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए अध्याय 33

अधिकारों का उल्लेख नहीं है परन्तु व्यक्ति की स्वतन्त्रता ब्रिटेन में अधिक अक्षुण्ण है। 'ब्रिटेन में विधि का शासन है व्यक्ति का नहीं।' स्वयं ब्रिटिश संविधान ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता का परिणाम है। मौलिक अधिकारों की आवश्यकता एवं रक्षा के प्रयत्नों का ही परिणाम ब्रिटिश संविधान है। ब्रिटेन में संसद सम्प्रभु है और वहां के न्यायालयों को किसी संसदीय विधि को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार नहीं है। वह विधि की उसकी भाषा के आधार पर केवल व्याख्या करने की शक्ति है, परन्तु ब्रिटिश न्यायालय ब्रिटिश प्रजाजनों के अधिकारों की रक्षा के लिए कृत-संकल्प हैं। मकिलवेन (MacIlwain) के अनुसार "इंगलैण्ड में लिखित संवैधानिक अधिकारों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वहां 'विधि के शासन' (Rule of Law) की परम्परा अति प्राचीन है।

स्विस संविधान में भी लिखित अधिकार-पत्र नहीं है परन्तु संविधान में अनेक ऐसे अनुच्छेद हैं जो नागरिकों को अनेक स्वतन्त्रताएँ प्रदान करते हैं। स्विस संघीय न्यायालय को संघीय व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधियों को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार नहीं है और न उसे कार्यपालिका के किसी कार्य को ही अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। लेकिन संघीय न्यायालय कैण्टनों की विधियों को संघीय संविधान के विरुद्ध होने पर अवैधानिक घोषित कर सकता है।

फ्रान्स, जर्मनी, इटली एवं अन्य महाद्वीपीय देशों ने प्रशासकीय विधि एवं प्रशासकीय न्याय व्यवस्था प्रचलित है। अतः इन देशों में शासकीय कर्मचारियों सम्बन्धी पृथक् विधि न्यायालय हैं जो सामान्य जनता से सम्बन्धित विधि एवं न्यायालयों से पृथक् होते हैं।

(2) संघीय शासन-व्यवस्था में न्यायपालिका के दायित्व—संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत न्यायपालिका संविधान की संरक्षक होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं भारत के सर्वोच्च न्यायालयों को संघीय शासन तथा राज्यों के शासन के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों में मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं अर्थात् संघीय सर्वोच्च न्यायालय केन्द्र एवं राज्यों में उनके क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों के सम्बन्ध में निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र निर्णायक के दायित्व का सम्पादन करता है। स्विट्जरलैण्ड में संविधान की व्याख्या का अधिकार स्विस संघीय न्यायालय (federal tribunal) को प्राप्त नहीं है अपितु संघीय सभा (Federal Assembly) को प्राप्त है।

न्यायपालिका का संगठन

सभी देशों में न्याय व्यवस्था का संगठन एक समान नहीं है। हर देश में अपने अनुभव एवं परम्पराओं तथा राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुसार उनका विकास हुआ है, फिर भी इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों में अनेक बातों में सादृश्य मिलता है। हर देश में न्यायालयों का संगठन एक शृंखला के रूप में होता है। सबसे शीर्ष पर सर्वोच्च

न्यायालय और सबसे नीचे छोटे छोटे न्यायालय होते है। इन छोटे यायालयो के ऊपर उनस बडे न्यायालय होते हैं और छोटे न्यायालयों की अपेक्षा कुछ अधिक गम्भीर मुक्दमा क निणय का अधिकार प्राप्त होता है। उच्चतम न्यायालय विशेष विवादा का निणय करत है एव नीचे के न्यायालया के निणयो के विरुद्ध उनके द्वारा अपीला की भी सुनवाई होती है।

ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था से प्रभावित देशो म अपीली न्यायालयो को छोडकर अन्य प्रत्यक न्यायालय म सामान्यत एक न्यायाधीश होता है, परन्तु फ्रास, जमनी एव अन्य यूरोपीय दशो म नीचे की अदालतो म अनेक न्यायाधीश होते हैं एव एक साथ मुक्दमे की सुनवाई करत हैं। यह व्यवस्था अत्यन्त खर्चीली होती है यद्यपि कई यायाधीशा को उपस्थिति के कारण वाह्य दवाव का भय कुछ कम हो जाता है एव न्यायाधीशा के लिए मनमानी करन के भी अवसर नही रहते हैं। नीचे की अदालतो म ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमेरिका म अपेक्षाकृत न्यायाधीशो की सख्या कम होती है।

सामान्यत दीवानी एव फौजदारी न्यायालय पृथक पृथक होते है। गानर दो प्रकार के न्यायालयो—सामान्य एव विशेष—का उल्लेख करते हैं। विशेष प्रकार के न्यायालय के अन्तगत सनिक न्यायालय, औद्योगिक यायालय, श्रम न्यायालय, महाभियोग यायालय, धार्मिक न्यायालय आदि आते हैं। इनम से अधिकाश न्यायालय केवल ऐक्षिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं। फ्रा स के प्रशासकीय यायालय भी विशेष प्रकार के न्यायालया की श्रेणी म ही आते हैं। इनकी प्रक्रिया एव सम्बन्धित विधि विशेष प्रकार की होती है।

ब्रिटेन एव यूरोप महाद्वीप के अन्य देशो की याय व्यवस्था मे आधारभूत अन्तर है। अमरिका एव ब्रिटिश प्रणाली म यायाधीश प्राय दौरा करत हैं अर्थात् विभिन्न स्थाना मे वे जाकर मुकदमे सुनते है, पर तु यूरोप के देशा म यायालय एक ही स्थान पर स्थित होत हैं और सम्बन्धित पक्षा को वही जाना पडता है। अम रिकी एव यूरोपीय देशो के न्यायालयो के सगठनो म एक अन्य समानता भी है। यूरोपीय देशा के न्यायालया की व्यवस्था एकीकृत है, जवकि सयुक्त राज्य अमेरिका मे दोहरी याय व्यवस्था अर्थात राज्यो एव सघ की पृथक पथक याय व्यवस्था होती हैं। अमेरिका की दोहरी न्याय व्यवस्था को सभी सघीय देशो ने स्वीकार नही किया है। उदाहरण के लिए जमनी के वीमर सविधान के अन्तगत सघ एव राज्या की न्याय व्यवस्था एकीकृत थी। भारतीय गणराज्य को न्याय व्यवस्था भी एकीकृत है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे सघ एव राज्यो के न्यायालयो के क्षेत्राधिकार क्रमश सघीय कानूना एव विषयो तथा राज्यो के कानूनो एव विषया तक सीमित होते हैं, परन्तु भारत मे ऐसा नही है। भारतीय न्याय-व्यवस्था के न्यायालया को केन्द्र एव राज्य दोनो ही विधियो एव विषयो म क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

न्यायाधीशों की नियुक्ति की तीन प्रधान पद्धतियां प्रचलित हैं—(1) व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचन, (2) जनता द्वारा निर्वाचन, एव (3) कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति।

(1) व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचन—सयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों में यह प्रणाली प्रचलित थी और चार राज्यों में आज भी इसका प्रचलन है। स्विटजरलण्ड के सघीय न्यायालय के 24 न्यायाधीशों को स्विस व्यवस्थापिका के दोनों सदनों द्वारा 6 वर्ष के लिए सयुक्त अधिवेशन में निर्वाचित किया जाता है। यह पद्धति दोषपूर्ण है। व्यवस्थापिका के सदस्यों से यद्यपि यह आशा की जाती है कि वे योग्य एव ईमानदार व्यक्तियों को ही न्यायाधीश के रूप में चुनें परन्तु प्राय ऐसा सम्भव नहीं है। सदव ही बहुमत दल के सदस्य चुने जाते हैं। योग्य एव ईमानदार व्यक्तियों का चुना जाना प्राय असम्भव होता है और ऐसे न्यायाधीशों के लिए दलीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त होना सम्भव नहीं होता है। ससदीय प्रणाली में कार्यपालिका व्यवस्थापिका का नेतृत्व करती है अत व्यवहार में इस पद्धति के अनुसार व्यवस्थापिका द्वारा न्यायाधीश के चयन का अर्थ कार्यपालिका द्वारा उनकी नियुक्ति है। स्विटजरलण्ड में यह पद्धति सफल रही है। इसका कारण यह है कि स्विस सघीय व्यवस्थापिका के सदस्यों की संख्या कम है तथा स्विटजरलैण्ड में राजनीतिक दलीय व्यवस्था कठोर नहीं है।

(2) जनता द्वारा निर्वाचन—सयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों एव कुछ स्विस कैण्टनों में आज भी इसका प्रचलन है। फ्रान्स की क्रान्ति के द्वारा लोक प्रभुत्व के सिद्धान्त का प्रचार हुआ था। फलस्वरूप जनता द्वारा निर्वाचित न्यायाधीशों का समयन किया गया। फ्रान्स में भी इस पद्धति का कुछ समय तक प्रचलन रहा था। लेकिन 1793 ई में इसका बहुत दुरुपयोग हुआ था, शगतरास, लिपिक, माली एव सामान्य श्रमिक न्यायाधीश निर्वाचित हुए थे। नैपोलियन ने इस पद्धति को समाप्त कर दिया। स्विटजरलैण्ड में छोटी अदालतों के न्यायाधीश जनता द्वारा ही निर्वाचित होते हैं। यह पद्धति निश्चय ही विशुद्ध लोकतन्त्रीय पद्धति है परन्तु व्यवहार में इसमें अनेक दोष हैं—(1) जनता सामान्यत विधि विशेषज्ञ एव चरित्रवान न्यायाधीशों का चयन करने में असफल रहती है। (2) प्राय जो प्रत्याशी जनता को बहकाने में असफल हो जाते हैं वे ही निर्वाचनों में चुन लिये जाते हैं। (3) जनता केवल योग्यता से प्रभावित नहीं होती। निर्वाचन में जीतने के लिए न्यायाधीश को सभी प्रकार के हथकण्डों का प्रयोग करना पड़ता है अत निर्वाचित होने के पश्चात उनसे पूर्ण ईमानदारी की आशा नहीं की जा सकती। सयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायाधीशों के चयन के लिए निर्दलीय समितियाँ नियुक्ति की गयी हैं। उनके द्वारा योग्य प्रत्याशियों के नाम ही न्यायाधीशों के पदों के लिए प्रस्तावित किये जाते हैं। इस व्यवस्था से इस पद्धति के दोषों पर कुछ प्रतिबन्ध लग गया है। ऑग एव रे का कथन है कि

38 राज्यो मे से, जिनमे यह प्रणाली प्रचलित है, केवल 3 राज्यो म ही यह प्रणाली कुछ स तोषप्रद रही है ।[5] गिलक्राइस्ट के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका म अनक ऐसे उदाहरण है कि निर्वाचनो मे योग्य प्रत्याशी हार गये है । जहाँ न्यायाधीशो का काय-काल अल्प होता है तथा यायाधीश पुन निर्वाचित हो सकते है, वहा जनता द्वारा निर्वाचन की पद्धति के परिणाम और भी बुरे होते है । ऐसी स्थिति मे न्यायाधीश से निष्पक्षता की आशा नही की जा सकती ।[6]

(3) **कायपालिका द्वारा नियुक्ति**—अधिकाश देशो मे न्यायाधीशो को काय-पालिका द्वारा नियुक्त किया जाता है । यह पद्धति उपरोक्त दोनो पद्धतियो की तुलना मे अधिक श्रेष्ठ है । पर तु इसे भी हम निर्दाप नही कह सकते । कायपालिका द्वारा सदैव ही योग्य एव अनुभवी व्यक्तिया की निष्पक्षतापूवक नियुक्ति नही की जाती है और न कायपालिका दलगत भावना से ऊपर उठकर ही सदैव आचरण करती है । एक बार नियुक्त हो जाने पर न्यायाधीश पर्याप्त स्वत त्रतापूवक कायपालिका के प्रभाव से मुक्त होकर काय करते हैं । जीवनपय त या सदाचरण पय त नियुक्ति की व्यवस्या कार्यपालिका द्वारा नियुक्त यायाधीशो को एक बडी सीमा तक स्वत न्त्रता प्रदान करती है । ब्रिटेन, राष्ट्रमण्डलीय देशो तथा उपनिवेशो, सयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया एव उसके 6 घटक राज्या एव भारत म यायाधीशो को कायपालिका द्वारा ही नियुक्त किया जाता है । भारत म छोटी अदालतो के न्यायाधीशो की प्रतियोगी परीक्षाआ के माध्यम से नियुक्ति की जाती है । फ्रा स मे भी निम्न अदालतो के न्यायाधीश इसी रीति से नियुक्त किये जात हैं । भारत एव फ्रा स म निम्न या छोटी अदालता क न्यायाधीशो की वरिष्टता के आधार पर पदो नति होती रहती है । फ्रान्स म सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की नियुक्ति न्यायम त्री द्वारा की जाती है । फ्रेंच व्यवस्थापिका के सदस्य न्यायम त्री को प्रभावित करने का प्रयत्न करत हैं । अत यह सुझाव दिया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तावित नामावली म स ही कायपालिका द्वारा न्यायाधीशा का चयन किया जाना चाहिए ।

न्यायाधीशो की नियुक्ति के सम्ब ध म कुछ सुझाव दिय गय हैं । लॉस्की का कथन था कि "न्यायाधीशो की नियुक्ति न्यायम त्री को न्यायाधीशा की एक स्थायी समिति (जिसम न्यायिक कार्यों का प्रतिनिधित्व करन वाल न्यायाधीश हो) की सिफारिश पर ही करनी चाहिए क्याकि वकीला क बार म जितना व जानत हैं उतना ज्ञान बहुत ही कम लोगा को होता है तथा उनक राजनीतिक प्रतिष्ठा स प्रभावित होन की भी आशा नही है ।"[7] भारतीय सविधान निमाता सम्भवत लास्की क इस विचार से

5 Ogg & Ray *Introduction to American Government*, 8th edn p

6 Gilchrist *Principles of Political Science*, 1930 p 316

7 Laski *Grammar of Politics*, 1941, p 548

आंशिक रूप से प्रभावित हुए थे। भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि भारतीय राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय सर्वोच्च न्यायाधीश से परामर्श करेगा तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश से परामर्श करेगा। इन व्यवस्थाओं द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्तियों के सम्बन्ध में कार्यपालिका की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध लग जाता है।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता

न्यायपालिका की श्रेष्ठता उसकी स्वतन्त्रता, निष्पक्षता एवं दक्षता पर निर्भर करती है और न्यायिक निष्पक्षता तथा दक्षता न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर निर्भर होती है। स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका के अभाव में शासन पूर्णरूपेण निरंकुश होता है तथा संविधान एवं मौलिक अधिकारों का संरक्षण भी न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के अभाव में असम्भव ही है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि न्यायाधीश भय एवं आतंक रहित होकर आचरण करें तथा अपने दायित्व के सम्पादन में किसी व्यक्ति अथवा संस्था से प्रभावित न हों। अतः यह आवश्यक है कि न्यायाधीशों की निष्पक्षतापूर्वक नियुक्ति की जानी चाहिए, उनका कार्यकाल निश्चित होना चाहिए तथा उनको समुचित वेतन प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि वे आर्थिक दुश्चिन्ताओं से मुक्त रहकर अपने दायित्व का सम्पादन कर सकें। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिए निम्न बातें भी आवश्यक हैं :

(1) न्याय के कुछ निश्चित सिद्धान्त होने चाहिए जिनका पालन पूर्ण ईमानदारी से किया जाना चाहिए,

(2) न्यायिक कार्यपद्धति के नियम होने चाहिए, तथा

(3) न्यायालयों एवं वकीलों का अपना नैतिक स्तर होना चाहिए।

न्याय के कुछ प्रमुख निश्चित सिद्धान्त निम्नवत् हैं : (1) खुली अदालत में ही मुकदमा चलाया जाना चाहिए, (2) अपने से सम्बन्धित पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए वकीलों को नियुक्त करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, (3) प्रमाण का दायित्व आरोप लगाने वाले पक्ष पर होना चाहिए, (4) जूरी व्यवस्था भी होनी चाहिए, एवं (5) प्रमाण के आधार पर ही दण्ड दिया जाना चाहिए।

न्यायालयों की कार्यपद्धति ऐसी होनी चाहिए कि न्याय शीघ्रतापूर्वक सम्पादित किया जा सके एवं कोई विलम्ब न हो। न्याय में विलम्ब का अर्थ न्याय की हत्या है। अतः यह आवश्यक है कि सभी विवादों को निपटाने के लिए पर्याप्त न्यायालय एवं न्यायाधीश होने चाहिए जिससे कि उनके अभाव में कोई विलम्ब न हो। न्याय व्यवस्था महँगी भी नहीं होनी चाहिए। विधियों एवं न्यायिक व्यवस्था में अनेक कमियाँ हुआ करती हैं जिनका लाभ उठाकर प्रायः वकील एवं सम्बन्धित पक्ष मुकदमों का निर्णय होने में विलम्ब उत्पन्न करते रहते हैं। विधि एवं विधि व्यवस्था के इन दोषों

को समाप्त करना चाहिए। यायिक पद्वति सीधी, सरल एव कम खर्चीली होनी चाहिए तथा यायिक भूलो के सुधार के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त होने चाहिए। अत विवादो के फैसलो के विरुद्ध आहत पक्षो को ऊँची अदालता से अपील या पुनरावेदन की पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए।

कायपालिका को किसी भी अवस्था म यायपालिका को प्रभावित करने के अवसर नही होने चाहिए। यायाधीशो को विधि म पारगत एव निर्भीक होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वकील समुदाय का भी उच्च नैतिक स्तर यायालया की स्वत त्रता एव निष्पक्षता के लिए आवश्यक है।

सभी सवैधानिक राज्यो मे शक्ति पथक्करण के सिद्धा त की यायपालिका के स दभ म पूण मा यता दी गयी है। स्ट्राग के अनुसार, "सविधानवाद का यह सुनिश्चित सिद्धा त है कि यायपालिका को अपने विभागीय निय त्रण के स दभ मे स्वत त्र होना चाहिए यद्यपि यह प्रश्न (स्वाभाविक) है कि उस विभाग के निय त्रण की सीमा क्या होनी चाहिए?"[8] प्राय सभी सवैधानिक सविधानो मे यायाधीशा की स्वत त्रता की समुचित व्यवस्था है। कायपालिका द्वारा यायाधीशा को अपनी इच्छानुसार पद च्युत नही किया जा सकता और न कायकाल के दौरान मे उनका वेतन ही कम किया जा सकता है। ग्रेट ब्रिटेन मे यायाधीशा को ससद के दोनो सदना द्वारा उनके विरुद्ध प्रतिवदन प्रस्तुत करने पर ही क्राउन द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। सयुक्त राज्य अमरिका मे सघीय यायपालिका के यायाधीशो की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के अनुमोदन से की जाती है। लेकिन दुराचार या गम्भीर अपराध के लिए प्रतिनिधि सदन को यायाधीशा पर महाभियोग लगाने का अधिकार है जिसकी जाच सीनेट द्वारा की जाती है और उसके स्वीकृत होन पर ही सघीय यायाधीशो को पदच्युत किया जा सकता है।[9] भारत म सर्वोच्च एव उच्च यायलयो के यायाधीशा को अपने कायकाल के मध्य म पद से ससद के दोना सदना द्वारा 2/3 बहुमत से पृथक-पृथक रूप मे दुर्व्यवहार एव अयोग्यता विषयक प्रस्ताव पारित करने एव राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने पर ही पदच्युत किया जा सकता है।[10] भारतीय सविधान के अनुसार किसी भी यायाधीश का वतन तथा उसके भत्ते उसके कायकाल म, नियुक्ति के पश्चात, इस प्रकार परिवर्तित नही किये जा सकते कि यायाधीश को कोई हानि हो।[11] आर्थिक सुरक्षा सम्ब धी उपरोक्त उल्लिखित आश्वासन यायिक निष्पक्षता की

8 "It remains one of the maxims of constitutionalism that judiciary ought to be free from control in its own department, though the question arises what are the limits of that department — Strong *op cit*, p 277

9 Ogg & Ray *Essentials of American Government*, 1964, p 300

10 Articles 124 (4) and 217 (1) (b)

11 Article 125

धुरी है। इस सम्बन्ध म केण्ट का कथन है कि "यायाधीशा को अपने दायित्व एव कतव्य को सम्पादित करने के लिए जिस साहस एव दृढता की आवश्यकता है उस हेतु यह आवश्यक है कि उन्हे अपने वेतन एव पद की सुरक्षा के सम्बन्ध म पूण आश्वासन प्राप्त होना चाहिए।"[12] विलोबी के अनुसार, "स्वतन्त्र यायपालिका के लिए यायाधीशो को उनके राजनीतिक विचारो को ध्यान मे रखे बिना ही नियुक्त किया जाना चाहिए, एक बार नियुक्त किये जाने पर उनको दीघकाल तक अर्थात जीवनपयन्त या सदाचरण पयन्त पदारूढ रहने देना चाहिए एव कायपालिका को उन्ह पदच्युत करने सम्बन्धी कोई अधिकार नही होने चाहिए। विधान मण्डल के दोना सदनो द्वारा स्वीकृत महाभियोग पद्धति के अनुसार ही प्रस्ताव पारित किये जाने पर उन्ह पदच्युत किया जाना चाहिए तथा उनके कायकाल के दौरान उनके वेतन को न तो रोका जाना चाहिए और न ही कम किया जाना चाहिए।"[13]

गानर ने कुछ अमेरिकी राज्यो मे जनता की माग पर यायाधीशा के प्रत्यावतन (Recall) की व्यवस्था को निकटभूत मे स्वीकृत किये जाने का उल्लेख किया है। अरिजोना, केलिफोर्निया, कोलारेडो, केनसास, नेविदा, उत्तरी डेकोटा एव ओरिगिन नामक सात राज्यो ने अपने सविधाना म सशोधन करके इस व्यवस्था का स्वीकार किया है। लेकिन अधिकाश अमेरिकी विधिशास्त्रियो ने इस व्यवस्था का यह कह कर विरोध किया कि इससे यायपालिका की स्वतन्त्रता एव सम्मान को धक्का लगेगा अतएव इस व्यवस्था के स्वीकार किये जान की कम ही सम्भावना है।[14]

यायिक निष्पक्षता की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि यायाधीशा को अपने पदावकाश के पश्चात किसी भी राजकीय पद पर नियुक्त नही किया जाना चाहिए अयथा अपने कायकाल मे वह पूण निष्पक्षता एव निर्भीकता से काय नही कर सकेंगे। भार

---

12 'To give the judges the courage and firmness to do their duty fearlessly they ought to be confident of the security of their salaries and station —Kent, quoted by A Appadorai *Substance of Politics* 1967, pp 77-78

13 The means of securing an independent judiciary lie "in the provision that judges shall be selected without regard to their political affiliations and that once selected they shall hold office, for a long term, for life or during good behaviour, that they shall not be subject to dismissal by executive may be removed only for misconduct as established by a formal process of impeachment address on the part of both the houses of Legislature and that their compensation shall not be withheld or diminished during their term of office —Willoughby *Government of Modern States*, 1936 p 434

14 Garner *Political Science and Government* 1951 (Indian edn), p 731

तीय सविधान म यह व्यवस्था है कि सर्वोच्च ायालय म ायाधीश के पद पर रह चुकने के पश्चात कोई भी व्यक्ति भारत म किसी भी ायालय मे या किसी अधिकारी के समक्ष पैरवी या काय नही करेगा।[15] इस अनुच्छेद से केवल यह प्रतिब ध है कि पदावकाश क पश्चात कोई ायाधीश किसी अदालत म वकालत या पैरवी नही कर सकता। स्मरणीय है कि ायाधीश भी राजनीतिक महत्वाकाक्षा से सवथा मुक्त नही होते हैं। अनक राजनीतिज्ञ ायाधीश बनत हैं। वे भी सत्ता, ख्याति एव प्रशसा के भूखे होत है। हमारे सविधान म एसी महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए खुली छूट है। अपने कायकाल तथा अवकाश ग्रहण करन के पश्चात ायाधीशो को काय-पालिका के क्षेत्राधिकार के अधीन किसी भी पद को प्राप्त करने की आकाक्षा पर प्रतिब धी सम्ब धी सविधान म कोई व्यवस्था नही ह। स्वत त्रता के पश्चात अनेक ायाधीशो को विभिन्न पदो पर नियुक्त किया गया। 1950 ई म भूतपूव ाया-धीश सी सी विश्वास को अल्पसख्यक मामला का म त्री एव 1952 ई मे केन्द्रीय विधि म त्री नियुक्त किया गया था। भूतपूव ायाधीश सयद फजल अली को पदा-वकाश के पश्चात पहले अस्थायी ायाधीश नियुक्त किया गया था (अनुच्छेद 128) और 1952 ई मे उ ह उडीसा का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। भूतपूव ाया-धीश बी एन राव को 1948 ई म सयुक्त राष्ट्र सघ म स्थायी भारतीय प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। भूतपूव ायाधीश वर्धाचारी को 1948 ई मे आय कर जाच ायाधिकरण का अध्यक्ष बनाया गया। बम्बई उच्च ायालय के भूतपूव ायाधीश श्री एम सी छागला को 1948 ई म सयुक्त राष्ट्र सघ म भारतीय दल का नता, 1958 ई मे अमेरिका म भारतीय राजदूत एव तत्पश्चात् केन्द्रीय म त्री नियुक्त किया गया था। श्री हरी रामच द्र गोखले विधि म त्री नियुक्त किये जाने के पूव ायाधीश रह चुके हैं। अनक ायाधीशो को विभिन्न जाच-आयोगो का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। स्मरणीय है कि इस सम्भावना की तरफ प्रो के टी शाह न सविधान सभा के सदस्यो का ध्यान आकर्षित करते हुए मूल अनुच्छेद 103 म सशोधन को प्रस्तावित किया था। पर तु डा अम्बेडकर ने उनका विरोध करते हुए कहा था कि ायाधीशो का शासन द्वारा प्रभावित करने के कम ही अवसर होते हैं।[16] स्पष्ट है डॉ अम्बेडकर ायपालिका के यथाथ दायित्व क स दभ म ायाधीशो की इस प्रकार पुनर्नियुक्ति की सम्भा-वनाओ के दुष्परिणामो का सही मूल्याकन न कर सके। वतमान समय मे किसी भी शासन की सफलता का आधार उसका कायक्रम विशेषकर आर्थिक योजनाओ का सफल क्रिया वयन है। यदि उसक कायक्रम स सम्बन्धित कोई विवाद ायालय म जाते हैं तो एसी दशा म ायपालिका म कायपालिका की [illegible]

---

15 Article 124 (7)

16 *Constituent Assembly Debates*, Vol. III, p 259

विक होता है। 1930 40 के दशक मे इसी प्रकार का एक सघर्ष सयुक्त राज्य अमरिका मे राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के न्यू डील कार्यक्रम सम्बन्धी विधिया को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैधानिक घोषित करने पर उठ खडा हुआ था। अधिकोषीय (बैंक) राष्ट्रीयकरण एव प्रीवीपर्स उन्मूलन विवाद भारतीय राजनीति म ऐसे ही विवाद हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निणया के फलस्वरूप निष्प्रभावी विधिया को वैधानिकता का जामा पहनाने के लिए शासन को भारतीय सविधान मे चार सवैधानिक सशोधन पारित करने पडे हैं। यह भी सम्भव है कि सत्तारूढ दल अपने विपक्षियो को दबाने एव स्वय सत्ता मे बने रहने के लिए दमनकारी एव अवाछनीय विधिया का निमाण करे। कायपालिका द्वारा न्यायाधीशा की नियुक्ति के अधिकार के कारण अनेक यायाधीशा म राजनीति के प्रति रुचि उत्पन्न हो सकती है और वे दलीय नेताओ एव शासन को सन्तुष्ट करने के लिए प्रयत्नशील हो सकते है। यह सम्भावना न्यायपालिका की निष्पक्षता मे जन-विश्वास को हिला देती है। अत यह नितान्त आवश्यक है कि पदावकाश के पश्चात किसी भी न्यायाधीश को किसी पद पर नियुक्त करने का अधिकार कायपालिका को प्राप्त नही होना चाहिए।[17] इस हेतु यदि आवश्यक्ता हो तो सविधान मे सशोधन किया जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि न्यायाधीशो द्वारा बडे सयत रूप म अपने विचारा को प्रकट करना चाहिए। उदाहरण के लिए, उन्हे राजनीतिक नेताओ तथा कायपालिका की प्रशसा नही करनी चाहिए और न समकालीन किसी विषय पर अपना मत ही प्रकट करना चाहिए।[18] राज्यो के उच्च न्यायालयो के मुख्य यायाधीशो को स्थानापन्न राज्यपाल नियुक्त करन की प्रथा को भी प्रश्रय नही दिया जाना चाहिए।

न्यायाधीशो का कार्यकाल एव अवकाश ग्रहण करने की आयु

न्यायपालिका की निष्पक्षता, ईमानदारी एव स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि न्यायाधीशा का कायकाल दीघ अर्थात कम बढ रूप म स्थायी होना चाहिए। दीघ कायकाल के फलस्वरूप न्यायाधीशो को विधि सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान हो जाता है और वे निश्चिन्त होकर निर्भीकतापूवक अपने दायित्वा का सम्पादन कर सकते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो को सदाचरण-पयन्त जीवन भर के लिए नियुक्त किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन एव अधिकाश राष्ट्रमण्डलीय देशो म भी यही प्रथा है। भारत मे सर्वोच्च एव उच्च न्यायालयो के यायाधीशो को निश्चित काल अर्थात् निर्धारित पद निवत्ति की आयु तक सदाचरण के आधार पर

17 भूतपूव मुख्य न्यायाधीश पातजलि शास्त्री ने मद्रास म एक बार कहा था कि भारत मे कायपालिका द्वारा हस्तक्षेप की प्रवृत्ति प्रतीत होती है।—*Hindustan Standard*, Dak edition, 18th May, 1954

18 Refer to Dr K V Rao *Parliamentary Dem[illegible] of India*, 1961, p 219

नियुक्त किया जाता है। इस प्रथा के विपरीत सयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यो मे ्यायाधीशा का कायकाल अल्प होता है जा औसतन 6 ने 9 वप तक होता है। वीमोण्ट राज्य मे ्यायाधीश दो वप के लिए तो पे सलवेनिया मे 21 वप के निए नियुक्त किये जाते हैं।[19] स्विट्जरलैण्ड म सधीय ्यायाधीशा का कायकाल 6 वप है पर तु अधिकाशत वे पुन निर्वाचित कर लिये जाते है। सोवियत रूस के सर्वाच्च न्यायालय के ्यायाधीश सुप्रीम सोवियत द्वारा केवल 5 वप के लिए ही निर्वाचित किय जाते हैं। मैक्सिको मे सदाचरण-पय त कायकाल के लिए ्यायाधीशा को नियुक्त किया जाता है। हैमिल्टन ्यायाधीशा के लिए सदाचरण पय त कायकाल सम्ब धी व्यवस्था को आधुनिक शासन मे महत्वपूण विकास मानते थे।

यायपालिका से सम्बंधित एक अ य विचारणीय प्रश्न यह है कि यायाधीश को किस आयु पर पदावकाश ग्रहण करना चाहिए। सदाचरण पय त कायकाल की आलोचना यह कहकर की जाती है कि यायाधीश परिवतनशील समाज के दृष्टिकोण के साथ गतिशीलता बनाये रखने म असमथ रहते है। वृद्धावस्था म ्यायाधीश की कायक्षमता भी अपेक्षाकृत समाप्त हा जाती है। अत सदाचरण पय त कायकाल की दशा मे भी एक निश्चित आयु प्राप्त होने पर ्यायाधीश को अवकाश ग्रहण कर लेना चाहिए। यह अवस्था क्या होनी चाहिए? लास्की के अनुसार सत्तर वप की आयु न्यायाधीश के लिए पदावकाश की आयु मीमा निर्धारित की जानी चाहिए।[20] 70 वप की आयु के पश्चात ्यायाधीशो म अपने दायित्व को सभालने की शक्ति नही रह जाती है, भले ही कुछ ्यायाधीश इसके अपवाद हो। ्यायाधीश श्री होम्स[21] (Mr Justice Holmes) का मत था कि "यायाधीश सामा यत वद्ध व्यक्ति होते है। वे सम्भवत किसी ऐसे विश्लेषण को देखते ही घृणास्पद समझने लगते हैं जो उनकी रुचि के अनुकूल नही है और जिसे वे समझने के अभ्यस्त नही होते हैं।' यह कथन महत्वपूण है क्योकि यायाधीश अपने जीवन के आधार पर ही विधि की समस्याओ के स दभ म अपना दृष्टिकोण बनाते है एव जो दृष्टिकोण एक बार बन जाता है उसे वद्धावस्था म परिवर्तित करना नितान्त कठिन हो जाता है। अत वे अपने विचारो एव समाज के परिवर्तित दृष्टिकोण के साथ सामजस्य स्थापित नही कर पात है।

---

19 Garner *op cit*, p 729

20 Laski *Grammar of Politics op cit* p 550

21 Mr Justice Holmes *Collected Papers*, p 230 cited in Laski *op cit*, p 550

26

विधि का शासन तथा प्रशासकीय विधि
[RULE OF LAW AND ADMINISTRATIVE LAW]

विधि का शासन

समस्त आग्ल सक्शन देशो मे (इगलैण्ड, राष्ट्रमण्डलीय एव उपनिवेशीय देश तथा सयुक्त राज्य अमेरिका) की विधि व्यवस्था का प्रमुख सिद्धात विधि का शासन (Rule of Law) है। इसके विपरीत, यूरोप के महाद्वीपीय देशो जसे फ्रास, जमनी आदि मे प्रशासनिक याय (Administrative law) का सिद्धात मा य है। आग्ल भाषाभाषी देशो मे यह धारणा बलवती है कि राज्य के कमचारियो से जनता की स्वत त्रता की रक्षा विधि के शासन के अ तगत ही हो सकती है।

विधि का शासन ब्रिटिश सविधान की अत्यधिक महत्वपूण विशेषता है। विधि के शासन का सीधासाधा अथ यह है कि इगलैण्ड म विधियो का शासन है, न कि किसी व्यक्ति की निरकुश इच्छा का। विधि ही सर्वोच्च है। विधि के निय त्रण स कोई व्यक्ति मुक्त नही है। ए वी डायसी को 'विधि के शासन' की अधिकृत व्याख्या का श्रेय प्राप्त है।[1] डायसी के अनुसार विधि का शासन या उसकी सर्वोच्चता ब्रिटिश व्यवस्था की दूसरी प्रमुख विशेषता है। प्रथम विशेषता सम्पूण देश (ब्रिटेन) म के द्रीय शासन की सर्वोच्चता या ससदीय सम्प्रभुता है।

विदेशी प्रेक्षक (यथा—वाल्टेयर, डी लोलमी, डी तोकेवेली) ग्रेट ब्रिटेन क 'विधि के शासन' की धारणा से अत्यधिक प्रभावित थे। डी तोकेवेली ने 1836 ई मे स्विस एव ब्रिटिश प्रणालियो की तुलना की थी। वह ब्रिटिश याय प्रणाली से अत्यधिक प्रभावित था। उसके विचारा का सार निम्न है "विधि की सर्वोच्चता इगलैण्ड की सस्थाओ की प्रधान विशेषता है।"[2] डायसी ने विधि के शासन की व्याख्या करत हुए उसके परस्पर सम्बधित तीन स्पष्ट अथ किय हैं।

1 Dicey *The Law of Constitution*, Ch IV (1959), pp 183 206

2 'De Tocqueville s words point in the clearest manner to the rule predominance or supremacy of the law as the distinguishing characteristic of English Institution —Dicey *op cit*, p 187

(क) विधि के शासन का प्रथम अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को किसी कानून को भंग करने के लिए देश के किसी सामान्य न्यायालय द्वारा सामान्य विधिक रीति से अपराधी प्रमाणित किये जाने के अभाव में कोई शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड नहीं भुगतना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि ग्रेट ब्रिटेन में कोई भी व्यक्ति तब तक दण्डित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसने देश की किसी विधि का उल्लंघन न किया हो। देश के शासन को स्वेच्छापूर्वक आचरण तथा मनमानी करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यह व्यवस्था इस अर्थ में प्रत्येक ऐसी व्यवस्था से भिन्न है जिसमें शासन के अधिकारियों को व्यापक निरंकुश सत्ता या नियंत्रण सम्बन्धी स्वविवेकी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।[3] अतः क्राउन के हाथों निरंकुश शक्ति का अभाव विधि के शासन का प्रथम अर्थ है।

यूरोपीय देशों में कार्यपालिका को इंगलैण्ड की तुलना में व्यक्तियों को बन्दी बनाने, कारावास का दण्ड देने एवं देश से निष्कासित करने की व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

(ख) विधि के शासन का दूसरा अर्थ यह है कि देश के छोटे एवं बड़े सभी शासकीय कर्मचारी एवं अशासकीय कर्मचारी एक ही विधि व्यवस्था एवं एक ही प्रकार के न्यायालयों के अधीन हैं। कोई भी व्यक्ति विधि के ऊपर नहीं है। विधि की दृष्टि में सभी व्यक्ति बराबर हैं।[4] अतः इंगलैण्ड में विधिक समानता (legal equality) का सिद्धान्त मान्य है। प्रधानमन्त्री से लेकर साधारण सिपाही एवं कर एकत्रित करने वाले अधिकारी तक सभी किसी कार्य (जिसका कोई विधिक औचित्य नहीं है) के लिए किसी भी अन्य व्यक्ति की भाँति ही उत्तरदायी होते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण हैं जबकि न्यायालयों द्वारा अधिकारियों को विधिक अधिकार क्षेत्र की सीमा का अतिक्रमण करने वाले उनके कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से दोषी ठहराया गया है तथा उन्हें उन कार्यों के लिए दण्डित किया गया या क्षतिपूर्ति करायी गयी है। प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी की आज्ञापालन के दौरान किये गये अपने

---

3 "We mean in the first place that no man is punishable or can be lawfully made to suffer in body or goods except for a distinct breach of law established in ordinary legal manner before the ordinary courts of the land In this sense, the rule of the law is contrasted with every system of government based on the exercise by persons in authority of wide arbitrary or discretionary powers of constraint "—Dicey *op cit*, p 188

4 'We mean in the second place that with us no man is above the law but (what is a different thing) that here everyman whatever be his condition is subject to the ordinary law of the realm and amenable to the jurisdiction of the ordinary tribunals "—Dicey *op cit*, p 193

किसी गैर कानूनी काय के लिए अन्य किसी भी साधारण व्यक्ति की भाँति ही उत्तर दायी होता है। इगलैण्ड म सनिका एव पादरिया का एसी विधिया एव यायाधि करणो से सम्बध होता है जिनका सामान्य नागरिका से कोई सम्बध नही होता। लेकिन यह व्यवस्था इस तथ्य से किसी प्रकार भी असगत नही है कि देश म सभी के लिए एक से ही कानून हैं। सैनिका एव पादरिया के अपन पद सम्बन्धी कुछ दायित्व होते है परन्तु इसका अथ यह नही है कि वह सामान्य नागरिक के दायित्व से बच सकता है।

स्मरणीय है, यूरापीय देशो की व्यवस्था ग्रेट ब्रिटन से भिन्न है। उदाहरणाथ, फ्रास मे नागरिका के आपसी विवादा के निणय दश की सामान्य विधि के अनुसार साधारण यायालया द्वारा किय जाते हैं परन्तु नागरिक और शासन या किसी शास कीय अधिकारी से सम्बन्धित यदि कोई विवाद होता है तो उसका निणय विशष प्रकार के न्यायालया एव विधि—प्रशासकीय यायालयो तथा प्रशासकीय विधि—द्वारा किया जाता है। स्पष्ट है कि फ्रास मे ब्रिटेन की भाँति एक विधि व्यवस्था नही है और न वहा विधि एव न्यायालय विषयक समानता ही पायी जाती है।

इस सन्दभ मे एक विवाद का उल्लेख वाछनीय है। 1763 ई म *नाथ ब्रिटन* (The North Briton) नामक समाचार पत्र के सम्पादक *विलकेस* (*Wilkes*) ने इगलैण्ड के राजा के भाषण पर टिप्पणी करते हुएकहा था कि राजा का भाषण मानवता पर थोपी जाने वाली मन्त्रिमण्डलीय धृष्टता या निलज्जता का उदाहरण है। लाड हैलीफक्स राज्य मन्त्री थे। उन्हाने नॉथ ब्रिटन के लेखक, प्रकाशक एव मुद्रक को बन्दी बनाने एव समाचार-पत्र की प्रतियाँ जब्त करने के लिए वारण्ट जारी कर दिय। उप सचिव श्री वुड (Mr Wood) की देखभाल म गिरफ्तारियाँ हुइ। कुल 49 व्यक्ति बन्दी बनाय गये। इनम सम्पादक श्री विलकेस एव प्रकाशक लीच (Mr Leach) के अतिरिक्त अन्य सभी निर्दोष थे। विलकेस ने लॉड हैलीफेक्स एव वुड पर मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया। यायालय ने राज्यमन्त्री हेलीफक्स उपसचिव वुड को दोषी ठहराया एव 4 हजार पौण्ड व 800 पौण्ड हर्जाने के रूप म देने का आदेश दिया तथा वारण्ट का गर कानूनी ठहराया।

विधि के शासन क इस अथ का विशेष महत्व है। मेण्टलण्ड[5] क अनुसार विधि के शासन के इस अथ म मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व को विधिक दृष्टि से निश्चित किया गया है। दोनो सदनो या किसी सदन को राजा के मन्त्रियो को पदच्युत करन की विधिक शक्ति प्राप्त नही है। अत मन्त्री विधिक रूप म ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी नही हैं। लेकिन सभी मन्त्रीगण यायालयो क प्रति उत्तरदायी हैं। उन पर

5 Maitland *The Constitutional History of England* p 484

राज्य सम्बन्धी किसी भी काय के लिए कोई मुकदमा या अभियोग चलाया जा सकता है ।

(ग) विधि के शासन का तीसरा अथ यह है कि ब्रिटेन मे नागरिका के अधिकार सविधान द्वारा नियमित नही होते हैं अपितु स्वय सविधान ही नागरिको के अधिकारो द्वारा नियमित होता है । डायसी के शब्दा मे, "सविधान विधि के शासन की भावना से ओतप्रोत है क्योकि सविधान के सामान्य सिद्धान्त (यथा—वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार या सावजनिक सम्मेलन का अधिकार) न्यायिक निणयो के परिणाम हैं जिन्हे न्यायालयो ने व्यक्तिगत विवादा के निणया के मध्य व्यक्त किया है । विदेशी सविधाना मे इसके विपरीत व्यक्तिया के अधिकार सविधान के सामान्य सिद्धान्तो के परिणाम होते हैं ।'[6] अमेरिका और भारत मे नागरिको के मौलिक अधिकारो का सविधान म उल्लेख है । इसका अथ यह है कि इन देशो म सविधान नागरिक के मौलिक अधिकारो की जड है । परन्तु ब्रिटेन मे स्थिति बिलकुल इसके विपरीत है । यहा नागरिको के अधिकार परम्परा द्वारा पहले ही निश्चित हो गये है और इन्ही अधिकारो की रक्षा से सम्बन्धित नियमा के समूह से सविधान का निमाण हुआ है । ब्रिटेन म प्राथमिकता नागरिक अधिकारा को है, न कि सविधान को । सविधान का मूल नागरिक अधिकारा म है । उदाहरण के लिए, इगलैण्ड के सामान्य कानून अथात कामन लॉ (Common Law) का यह सिद्धान्त था कि किसी भी व्यक्ति को सामान्य अधिपत्र (General Warrant) के आधार पर बन्दी नही बनाया जा सकता था लेकिन विलकेस विवाद के निणय न इसको न्यायिक मान्यता प्रदान की । स्पष्ट है, ब्रिटेन मे नागरिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकारा को अन्य देशा की अपक्षा कही अधिक महत्व प्राप्त है।

सविधान के द्वारा मौलिक अधिकारा की प्रतिभू दोषपूण होती है । डायसी के अनुसार जिन देशा मे वयक्तिक स्वतन्त्रता सविधान का परिणाम है वहा अधिकारो को निलम्बित या समाप्त करने की सम्भावना बनी रहती है, लेकिन जहा वैयक्तिक स्वतन्त्रता सविधान का भाग होती है एव देश के सामान्य कानून म निहित

---

6 A third and a different sense in which the rule of law or the predominance of the legal spirit is considered a special attribute, is defined by A V Dicey in the following words ' We may say that the constitution is pervaded by the rule of law on the ground that the general principles of the constitution (as for example, the right to personal liberty or the right of public meeting) are with us as the result of judicial decisions determining the rights of private persons in particular cases brought before the courts where as under many foreign constitutions the security (such as it is) given to the rights of individuals results, or appear to result f the general principles of the constitution ' —*The Law of C tion op cit* pp 195 196

होती है, वहाँ अधिकारों को देश की संस्थाओं एवं पद्धतियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन के अभाव में नष्ट करना असम्भव होता है।[7] उदाहरणार्थ, गैर-कानूनी ढंग से किसी भी व्यक्ति को वन्दी नहीं बनाया जा सकता। यह अधिकार वन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (Habeas Corpus Act, 1679) द्वारा सुरक्षित है। इसी प्रकार, अस्त्र-शस्त्र धारण करने का अधिकार अधिकार-पत्र (Bill of Rights, 1689) द्वारा सुरक्षित है। इन दोनों विधेयकों को संकट काल में पूर्णतः स्थगित नहीं किया जा सकता है।

संक्षेप में, विधि के शासन के तीन अर्थ हैं

(1) निरंकुश सत्ता का अभाव एवं कानून की सर्वोच्चता। 'विधि के शासन' के अन्तर्गत शासन एवं उसके अधिकारियों को विशेषाधिकार एवं व्यापक स्वविवेकी निरंकुश अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। इंगलैण्ड में 'विधि के शासन' के अधीन व्यक्ति को केवल किसी विधि के उल्लंघन के लिए ही दण्डित किया जा सकता है।

(2) विधिक समानता या विधि के समक्ष समानता। इसका अर्थ यह है कि देश के सभी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के एक प्रकार की विधि के अधीन होते हैं एवं वे एक ही प्रकार के न्यायालयों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। फ्रान्स में प्रचलित प्रशासकीय विधि एवं प्रशासकीय न्यायालयों की व्यवस्था के लिए, डायसी के अनुसार, इंगलैण्ड में कोई स्थान नहीं है।

(3) इंगलैण्ड में संविधानिक विधि व्यक्तियों के अधिकारों का स्रोत नहीं है अपितु वह व्यक्तियों के अधिकारों का परिणाम है। इन अधिकारों की समय-समय पर न्यायालयों द्वारा व्याख्या की गयी है एवं उन्हें क्रियान्वित किया गया है।[8] अंग्रेज न्यायाधीशों ने व्यक्तियों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं की रक्षा में इस प्रकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। प्रो. डायसी 19वीं सदी का उदारवादी था। उदारवादी न्यायाधीशों ने अंग्रेज जनता के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जो सराहनीय प्रयत्न किये थे डायसी ने उपरोक्त मत व्यक्त करते हुए उनकी प्रशंसा की है।

'विधि के शासन' के परिणामों की व्याख्या करते हुए डायसी ने कहा है कि विधि का शासन शासकीय कर्मचारियों की निरंकुश प्रवृत्तियों पर प्रतिबन्ध स्थापित करता है। किसी विधिक आधार के अभाव में किसी अंग्रेज अधिकारी द्वारा किसी भी व्यक्ति को वन्दी नहीं बनाया जा सकता क्योंकि वह यह भली प्रकार जानता है कि यदि न्यायालय द्वारा उसके कार्यों को गैर-कानूनी घोषित किया जाता है तो उसे क्षति-

---

7 Dicey *op cit* p 201

8 The Rule of Law is with us the law of the constitution, the rules which in foreign countries naturally form part of a constitutional code are not the source but the consequence of the right of individuals as defined and enforced by the court. —Dicey *op. cit*, p 203

पूर्ति करनी पड़ेगी। अपने वरिष्ठ अधिकारी के आदेश का पालन करते समय भी अधीनस्थ कर्मचारी इस बात के लिए सजग रहते हैं कि वरिष्ठ अधिकारी के आज्ञापालन के दौरान कहीं किसी विधि का उल्लंघन न हो जावे। यदि किसी सिपाही को किसी जन समूह को तितर बितर करने का आदेश दिया जाता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि अनावश्यक रूप से वह व्यक्तियों का वध कर दे। यदि वह कर्तव्य पालन के दौरान में किसी व्यक्ति को कोई शारीरिक या आर्थिक हानि पहुँचाता है या किसी व्यक्ति का वध कर देता है और वह उसके लिए दोषी पाया जाता है तो न्यायालय उसको अनिवार्यतः दण्डित करेगा। इस व्यवस्था का शासकीय कर्मचारियों पर वांछित प्रभाव पड़ा है। अतः विधि के शासन की धारणा ने अप्रत्यक्ष रूप में ब्रिटिश समाज की स्वतन्त्रता की रक्षा में योग दिया है।

विधि के शासन के गुण एवं दोष[9]

डायसी के अनुसार विधि का शासन व्यक्ति की स्वतन्त्रता का संरक्षक है। अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में इंगलण्ड में व्यक्ति की स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत अधिक रक्षित है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश द्वारा न केवल नागरिकों को अपितु विदेशियों को भी अवैधिक ढंग से बन्दी बनाये जाने के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त है। सैनिक विधि का क्षेत्र सीमित है एवं न्यायालयों का इस विधि पर भी नियन्त्रण होता है। इंगलण्ड में ज्यूरी प्रथा प्रचलित है। निर्वाचन सम्बन्धी विवादों का निर्णय न्याय के उच्च न्यायालय (High Court of Justice) द्वारा किया जाता है। गम्भीर श्रमिक विवादों के निर्णय भी उच्च न्यायालय द्वारा किये जाते हैं। इंगलैण्ड के न्यायाधीशों को बड़ी श्रद्धा से देखा जाता है एवं वे विशेष आदर के पात्र होते हैं।

विधि के शासन का प्रमुख परन्तु कम गम्भीर दोष यह है कि इसके अन्तर्गत कार्यपद्धति जटिल एवं विधिकता युक्त (legalism) होती है। इससे पर्याप्त हानि की सम्भावना रहती है।

आलोचना—प्रो. डायसी ने विधि के शासन की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की है। आलोचकों के अनुसार इंगलण्ड में डायसी के अर्थों में विधि का शासन नहीं पाया जाता, अपितु उसके अनेक अपवाद व्याप्त हैं। श्री वेड (Mr Wade), सर आइवर जेनिंग्स (Sir Ivor Jennings) एवं डब्लू. ए. राबसन (W A Robson) ने डायसी द्वारा प्रतिपादित विधि के शासन की धारणा की तीव्र आलोचना की है। वर्तमान-कालीन इंगलण्ड में व्याप्त विधि के शासन की सीमाएँ स्पष्ट हैं। शासन के कार्यक्षेत्र में असाधारण वृद्धि हुई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, बेकारों का संरक्षण, नगर नियोजन आदि कार्य राज्य के दायित्व के अन्तर्गत आते हैं। फलस्वरूप अनेक कार्यपालिका अधिकारियों को न्यायिक दायित्व सौंपे गये हैं। यदि विधि के शासन को विशुद्ध अर्थ में देखा जाय

9 Refer to Dicey *op cit*, pp 394-398

तो न्यायिक काय न्यायालयो के द्वारा ही सम्पादित किये जाने चाहिए परन्तु ऐसा है नही। उदाहरणाथ,—

(1) 1920 ई के सडक अधिनियम के अ तगत यातायात म न्त्री को अधीनस्थ कमचारियो द्वारा वसा के लाइसे स न देने सम्ब न्धी निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार प्रदान किया गया है। इसी प्रकार, नवीन विद्यालय खोलने के सम्ब ध म अपीलो को सुनने का अधिकार शिक्षा मण्डल (Board of Education) को है। काउण्टी काउ सल के निणयो के विरुद्ध अपीले सामान्य यायालय मे न होकर स्वास्थ्य म न्त्री के यहा होती हैं। यह व्यवस्थाएँ विधि के शासन की धारणा का उल्लघन है।

(2) शासकीय कमचारियो को 1893 ई के सावजनिक कमचारी सरक्षण अधिनियम के अधीन विशेष सरक्षण प्रदान किया गया है। इस विधि के अनुसार किसी भी शासकीय कमचारी के विरुद्ध घटना घटित होने के 6 माह के भीतर नागरिक को मुकदमा दायर कर देना चाहिए अन्यथा मामला बेरूममियाद माना जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था है कि यदि शासकीय कमचारी के विरुद्ध अभियोग प्रमाणित नही होता है तो अभियोग लगाने वाले व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करनी पडेगी। स्पष्ट है, इन व्यवस्थाओ का उद्देश्य शासकीय कमचारियो के विरुद्ध कायवाही करने के लिए साधारण जनता को हतोत्साहित करना है। अन्य अधिनियम भी शासकीय कमचारिया को विशेष अधिकार एव सरक्षण प्रदान करते है। ऐसे कुछ अधिनियम हैं 1902 ई का शिक्षा अधिनियम, 1919 ई का वित्त अधिनियम एव 1933 ई का सावजनिक अधिकारी सुरक्षा अधिनियम।

(3) न्यायपालिका की शक्ति को भी अनेक विवादा के सम्ब ध म सीमित कर दिया गया है। जसे गृहम न्त्री को ब्रिटिश नागरिकता के देशीकरण (Naturalisation) सम्ब न्धी प्रमाण-पत्र देने का निरपेक्ष अधिकार प्राप्त है। राज्य को किसी भी व्यक्ति को पारपत्र प्रदान करन या अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। अधिकारिया के इन निणया को न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकती है। विदेशी शासका एव राजदूता, अन्तर्राष्ट्रीय सगठन एव उनक कमचारियो तथा विदेशी व्यापारिक जहाजो को न्यायालया के क्षेत्राधिकार से उन्मुक्ति प्राप्त है। यदि वे किसी ब्रिटिश विधि का उल्लघन करत हैं तो उन पर ब्रिटिश न्यायालयो म कोई मुकदमा नही चलाया जा सकता। किसी भी श्रम सघ (Trade Union) एव उसके किसी अधिकारी या कमचारी के विरुद्ध उसक किसी काय (जा किसी उचित श्रम विवाद के सम्ब ध म उनके द्वारा किया गया हो) क लिए कोई मुकदमा चालू नही किया जा सकता है। सावजनिक अधिनियम (1936 ई) के अधीन पुलिस का सावजनिक सभाओ एव जलूसा को निषिद्ध घोषित करन का अधिकार प्राप्त है। पहले साम ता (Peers) सम्ब न्धी विवादा का निणय उनक द्वारा ही किया जाता था लेकिन विधि सुधार अधिनियम (1947 ई)

के द्वारा सामन्तो के इस विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया गया है। लॉड चैम्बरलेन को नाटको आदि पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है और उसके इन निणया को न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकती है। गृहमन्त्री को पत्रो को रोकन एव खोलने अर्थात सेन्सर करने का अधिकार प्राप्त है। उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ विधि के शासन की परम्परागत धारणा के विपरीत हैं।

(4) इगलैण्ड म न्यायाधीशो एव कुछ अन्य अधिकारियो को विशेष स्थिति प्राप्त है। उदाहरणाथ, न्यायाधीशो को उनके उन कार्यों के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता जो वे अपने पद सम्बन्धी दायित्वो के सम्पादन मे करते है। इसका यह नियम अपवाद है कि यदि कोई अवकाशकालीन न्यायाधीश (Vacation Judge) अविधिक तरीके से बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश को अस्वीकार कर देता है तो उस पर पाच सौ पौण्ड क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है। सीमा शुल्क एव एक्साइज अधिकारियो को किसी व्यापारिक विवाद को सुलझाने के सम्बन्ध मे उनके किसी काय के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। यह सरक्षण उन्हे सीमाशुल्क (Customs) अधिनियम (1866 ई) एव एक्साइज अधिनियम (1890 ई) के अधीन प्राप्त है। इसी प्रकार, क्राउन द्वारा किसी भी अनुबन्ध (contract) को भग किया जा सकता है और सेवा सम्बन्धी किसी अनुबन्ध (contract of services) से वह बँधा हुआ भी नही होता ह। स्पष्ट है, अनुबन्ध सम्बन्धी नियम या विधि क्राउन पर समान रूप से बन्धनकारी नही है। 1947 ई के पूव तक क्राउन टोट (Tort)[10] के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नही होता था परन्तु 1947 ई के क्राउन प्रोसीडिंग्स अधिनियम (Crown Proceedings Act, 1947) के अन्तगत टोट सम्बन्धी सभी दायित्वो के लिए क्राउन को भी उत्तरदायी ठहराया गया है और सामान्य व्यक्ति शासन के विरुद्ध सामान्य व्यक्ति की भाँति ही मुकदमा दायर कर सकता है।

(5) सामान्य न्यायालयो के अतिरिक्त अनेक विशेष प्रकार के न्यायालयो की स्थापना की गयी है। इन विशेष न्यायालयो के द्वारा ऐसे निणय दिये जाते है जो नागरिको के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारा को भी प्रभावित करते हैं। मन्त्रिया के द्वारा नियुक्ति अनेक विशेष न्यायाधिकरणा द्वारा बीमा सम्बन्धी मामलो का निणय किया जाता है। शासन द्वारा भूमि हस्तगत करने पर तत्सम्बन्धी क्षतिपूर्ति का निर्धारण भी यही न्यायालय करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रशासकीय मण्डलो (Boards) की स्थापना की गयी जिनके निणया के विपरीत सामान्य न्यायालयो म कोई अपील नही की जा सकती। विशेष न्यायालयो की स्थापना एव प्रशासकीय मण्डला को प्रदत्त न्यायिक अधिकार विधि के शासन की इस मूल धारणा का अतिक्रमण करते हैं कि एक ही प्रकार

10 Tort means the breach of a duty imposed by law whereby some person acquires a right of action for damages

तो न्यायिक काय न्यायालयो के द्वारा ही सम्पादित किये जाने चाहिए परन्तु ऐसा है नही । उदाहरणाथ,—

(1) 1920 ई के सडक अधिनियम के अ तगत यातायात मन्त्री को अधीनस्थ कमचारियो द्वारा बसो के लाइसेन्स न देने सम्बन्धी निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार प्रदान किया गया है । इसी प्रकार, नवीन विद्यालय खोलने के सम्बन्ध म अपीलो को सुनने का अधिकार शिक्षा मण्डल (Board of Education) को है । काउण्टी काउन्सिल के निणयो के विरुद्ध अपीलें सामान्य न्यायालय मे न होकर स्वास्थ्य मन्त्री के यहाँ होती हैं । यह व्यवस्थाएँ विधि के शासन की धारणा का उल्लघन है ।

(2) शासकीय कमचारियो को 1893 ई के सावजनिक कमचारी सरक्षण अधिनियम के अधीन विशेष सरक्षण प्रदान किया गया है । इस विधि के अनुसार किसी भी शासकीय कमचारी के विरुद्ध घटना घटित होने के 6 माह के भीतर नागरिक को मुकदमा दायर कर देना चाहिए अन्यथा मामला बेरूममियाद माना जायेगा । इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था है कि यदि शासकीय कमचारी के विरुद्ध अभियोग प्रमाणित नही होता है तो अभियोग लगाने वाले व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करनी पडगी । स्पष्ट है, इन व्यवस्थाओ का उद्देश्य शासकीय कमचारियो के विरुद्ध कायवाही करने के लिए साधारण जनता को हतोत्साहित करना है । अन्य अधिनियम भी शासकीय कमचारियो को विशेष अधिकार एव सरक्षण प्रदान करते है । ऐसे कुछ अधिनियम हैं 1902 ई का शिक्षा अधिनियम, 1919 ई का वित्त अधिनियम एव 1933 ई का सावजनिक अधिकारी सुरक्षा अधिनियम ।

(3) न्यायपालिका की शक्ति को भी अनेक विवादो के सम्बन्ध म सीमित कर दिया गया है । जैसे गहमन्त्री को ब्रिटिश नागरिकता के देशीकरण (Naturalisation) सम्बन्धी प्रमाण-पत्र देने का निरपेक्ष अधिकार प्राप्त है । राज्य को किसी भी व्यक्ति को पारपत्र प्रदान करने या अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है । अधिकारियो के इन निणयो को न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकती है । विदेशी शासको एव राजदूतो, अन्तर्राष्ट्रीय सगठन एव उनके कमचारियो तथा विदेशी व्यापारिक जहाजो को न्यायालयो के क्षेत्राधिकार से उन्मुक्ति प्राप्त है । यदि वे किसी ब्रिटिश विधि का उल्लघन करते हैं तो उन पर ब्रिटिश न्यायालयो म कोई मुकदमा नही चलाया जा सकता । किसी भी श्रम सघ (Trade Union) एव उसके किसी अधिकारी या कमचारी के विरुद्ध उसके किसी काय (जो किसी उचित श्रम विवाद के सम्बन्ध मे उनके द्वारा किया गया हो) के लिए कोई मुकदमा चालू नही किया जा सकता है । सावजनिक अधिनियम (1936 ई) के अधीन पुलिस को सावजनिक सभाओ एव जलूसो को निषिद्ध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है । पहले सामन्तो (Peers) सम्बन्धी विवादो का निणय उनके द्वारा ही किया जाता था लेकिन विधि सुधार अधिनियम (1947 ई)

के द्वारा सामन्तो के इस विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया गया है। लॉड चैम्बरलेन को नाटका आदि पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है और उसके इन निणयो को न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकती है। गहमन्त्री को पत्रो को रोकने एव खोलन अर्थात् सन्सर करने का अधिकार प्राप्त है। उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ विधि के शासन की परम्परागत धारणा के विपरीत है।

(4) इगलण्ड म न्यायाधीशो एव कुछ अन्य अधिकारियो का विशेष स्थिति प्राप्त है। उदाहरणाथ, न्यायाधीशो को उनके उन कार्यों के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता जो वे अपन पद सम्बन्धी दायित्वो के सम्पादन मे करते है। इसका यह नियम अपवाद है कि यदि कोई अवकाशकालीन न्यायाधीश (Vacation Judge) अविधिक तरीके से बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश को अस्वीकार कर देता है तो उस पर पाच सौ पौण्ड क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है। सीमा शुल्क एव एक्साइज अधिकारियो को किसी व्यापारिक विवाद को सुलझाने के सम्बन्ध मे उनके किसी काय के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है। यह सरक्षण उन्ह सीमाशुल्क (Customs) अधिनियम (1866 ई) एव एक्साइज अधिनियम (1890 ई) के अधीन प्राप्त है। इसी प्रकार, क्राउन द्वारा किसी भी अनुबन्ध (contract) को भग किया जा सकता है और सेवा सम्बन्धी किसी अनुबन्ध (contract of services) से वह बँधा हुआ भी नही होता है। स्पष्ट है, अनुबन्ध सम्बन्धी नियम या विधि क्राउन पर समान रूप से बन्धनकारी नही है। 1947 ई के पूव तक क्राउन टाट (Tort)[10] के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नही होता था परन्तु 1947 ई के क्राउन प्रोसीडिंग्स अधिनियम (Crown Proceedings Act, 1947) के अन्तगत टोट सम्बन्धी सभी दायित्वा के लिए क्राउन को भी उत्तरदायी ठहराया गया है और सामान्य व्यक्ति शासन के विरुद्ध सामान्य व्यक्ति की भाति ही मुकदमा दायर कर सकता है।

(5) सामान्य न्यायालया के अतिरिक्त अनेक विशेप प्रकार के न्यायालया की स्थापना की गयी है। इन विशेष न्यायालयो के द्वारा ऐसे निणय दिये जाते है जो नागरिको के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारा को भी प्रभावित करते है। मन्त्रियो के द्वारा नियुक्ति अनेक विशेप न्यायाधिकरणा द्वारा बीमा सम्बन्धी मामलो का निणय किया जाता है। शासन द्वारा भूमि हस्तगत करने पर तत्सम्बन्धी क्षतिपूर्ति का निर्धारण भी यही न्यायालय करत हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रशासकीय मण्डला (Boards) की स्थापना की गयी जिनके निणया के विपरीत सामान्य न्यायालया मे कोई अपील नही की जा सकती। विशेप न्यायालया की स्थापना एव प्रशासकीय मण्डला को प्रदत्त न्यायिक अधिकार विधि के शासन की इस मूल धारणा का अतिक्रमण करते हैं कि एक ही प्रकार

---

10 Tort means the breach of a duty imposed by law whereby some person acquires a right of action for damages

तो न्यायिक काय न्यायालयो के द्वारा ही सम्पादित किये जान चाहिए परन्तु ऐसा है नही । उदाहरणाथ,—

(1) 1920 ई के सडक अधिनियम के अन्तगत यातायात मन्त्री को अधीनस्थ कमचारियो द्वारा बसो के लाइसे स न देने सम्बन्धी निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनन का अधिकार प्रदान किया गया है । इसी प्रकार, नवीन विद्यालय खोलने के सम्बन्ध मे अपीलो का सुनने का अधिकार शिक्षा मण्डल (Board of Educatıon) को है । काउण्टी काउ सल के निणया के विरुद्ध अपीले सामान्य न्यायालय मे न होकर स्वास्थ्य मन्त्री के यहाँ होती हैं । यह व्यवस्थाएँ विधि के शासन की धारणा का उल्लघन हैं ।

(2) शासकीय कमचारिया को 1893 ई के सावजनिक कमचारी सरक्षण अधिनियम के अधीन विशेष सरक्षण प्रदान किया गया है । इस विधि के अनुसार किसी भी शासकीय कर्मचारी के विरुद्ध घटना घटित होन के 6 माह के भीतर नागरिक को मुकदमा दायर कर देना चाहिए अन्यथा मामला बेरूममियाद माना जायेगा । इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था है कि यदि शासकीय कमचारी के विरुद्ध अभियोग प्रमाणित नही होता है तो अभियाग लगाने वाले व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करनी पडेगी । स्पष्ट है, इन व्यवस्थाओ का उद्देश्य शासकीय कमचारियो के विरुद्ध कायवाही करने के लिए साधारण जनता को हतोत्साहित करना है । अन्य अधिनियम भी शासकीय कमचारिया को विशेष अधिकार एव सरक्षण प्रदान करते है । ऐसे कुछ अधिनियम हैं 1902 ई का शिक्षा अधिनियम, 1919 ई का वित्त अधिनियम एव 1933 ई का सावजनिक अधिकारी सुरक्षा अधिनियम ।

(3) न्यायपालिका की शक्ति को भी अनेक विवादा के सम्बन्ध मे सीमित कर दिया गया है । जैसे गहमन्त्री को ब्रिटिश नागरिकता के देशीकरण (Naturalısatıon) सम्बन्धी प्रमाण पत्र देने का निरपेक्ष अधिकार प्राप्त है । राज्य को किसी भी व्यक्ति को पारपत्र प्रदान करन या अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है । अधिकारियो के इन निणयो को न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकती है । विदेशी शासको एव राजदूता, अन्तर्राष्ट्रीय सगठन एव उनके कमचारियो तथा विदेशी व्यापारिक जहाजो को न्यायालयो के क्षेत्राधिकार से उन्मुक्ति प्राप्त है । यदि वे किसी ब्रिटिश विधि का उल्लघन करत हैं तो उन पर ब्रिटिश न्यायालयो मे कोइ मुकदमा नही चलाया जा सकता । किसी भी श्रम सघ (Trade Unıon) एव उसके किसी अधिकारी या कमचारी के विरुद्ध उसके किसी काय (जो किसी उचित श्रम विवाद के सम्बन्ध मे उनके द्वारा किया गया हो) के लिए कोई मुकदमा चालू नही किया जा सकता है । सावजनिक अधिनियम (1936 ई) के अधीन पुलिस को सावजनिक सभाओ एव जलूसो को निषिद्ध घोषित करन का अधिकार प्राप्त है । पहले सामन्ता (Peers) सम्बन्धी विवादा का निणय उनके द्वारा ही किया जाता था लेकिन विधि सुधार अधिनियम (1947 ई)

के द्वारा सामन्ता के इस विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया गया है। लार्ड चैम्बरलेन को नाटको आदि पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है और उसके इन निर्णयो को न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकती है। गृहमन्त्री को पत्रो को रोकने एव खोलने अर्थात सेन्सर करने का अधिकार प्राप्त है। उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ विधि के शासन की परम्परागत धारणा के विपरीत हैं।

(4) इगलैण्ड मे न्यायाधीशो एव कुछ अन्य अधिकारियो को विशेष स्थिति प्राप्त है। उदाहरणार्थ, न्यायाधीशो को उनके उन कार्यों के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता जो वे अपने पद सम्बन्धी दायित्वो के सम्पादन मे करते हैं। इसका यह नियम अपवाद है कि यदि कोई अवकाशकालीन न्यायाधीश (Vacation Judge) अविधिक तरीके से बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश को अस्वीकार कर देता है तो उस पर पाँच सौ पौण्ड क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है। सीमा शुल्क एव एक्साइज अधिकारियो को किसी व्यापारिक विवाद को सुलझाने के सम्बन्ध मे उनके किसी कार्य के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है। यह सरक्षण उन्हे सीमाशुल्क (Customs) अधिनियम (1866 ई) एव एक्साइज अधिनियम (1890 ई) के अधीन प्राप्त है। इसी प्रकार, क्राउन द्वारा किसी भी अनुबन्ध (contract) को भग किया जा सकता है और सेवा सम्बन्धी किसी अनुबन्ध (contract of services) से वह बँधा हुआ भी नही होता है। स्पष्ट है, अनुबन्ध सम्बन्धी नियम या विधि क्राउन पर समान रूप से बन्धनकारी नही है। 1947 ई के पूर्व तक क्राउन टोर्ट (Tort)[10] के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नही होता था परन्तु 1947 ई के क्राउन प्रोसीडिंग्स अधिनियम (Crown Proceedings Act, 1947) के अन्तगत टोर्ट सम्बन्धी सभी दायित्वो के लिए क्राउन को भी उत्तरदायी ठहराया गया है और सामान्य व्यक्ति शासन के विरुद्ध सामान्य व्यक्ति की भाँति ही मुकदमा दायर कर सकता है।

(5) सामान्य न्यायालयो के अतिरिक्त अनेक विशेष प्रकार के न्यायालयो की स्थापना की गयी है। इन विशेष न्यायालयो के द्वारा ऐसे निर्णय दिये जाते है जो नागरिको के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो को भी प्रभावित करते हैं। मन्त्रियो के द्वारा नियुक्त अनेक विशेष न्यायाधिकरणो द्वारा बीमा सम्बन्धी मामलो का निर्णय किया जाता है। शासन द्वारा भूमि हस्तगत करने पर तत्सम्बन्धी क्षतिपूर्ति का निर्धारण भी यही न्यायालय करते है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रशासकीय मण्डलो (Boards) की स्थापना की गयी जिनके निर्णयो के विपरीत सामान्य न्यायालयो मे कोई अपील नही की जा सकती। विशेष न्यायालयो की स्थापना एव प्रशासकीय मण्डलो को प्रदत्त न्यायिक अधिकार विधि के शासन की इस मूल धारणा का अतिक्रमण करते हैं कि एक ही प्रकार

10 Tort means the breach of a duty imposed by law whereby some person acquires a right of action for damages

तो न्यायिक काय न्यायालयों के द्वारा ही सम्पादित किये जाने चाहिए परन्तु ऐसा है नहीं। उदाहरणाथ,—

(1) 1920 ई के सडक अधिनियम के अन्तर्गत यातायात मन्त्री को अधीनस्थ कमचारियो द्वारा बसो के लाइसेंस न देने सम्बन्धी निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार प्रदान किया गया है। इसी प्रकार, नवीन विद्यालय खोलने के सम्बन्ध मे अपीलो को सुनने का अधिकार शिक्षा मण्डल (Board of Education) को है। काउण्टी काउन्सिल के निणयो के विरुद्ध अपीलें सामान्य न्यायालय मे न होकर स्वास्थ्य मन्त्री के यहाँ होती हैं। यह व्यवस्थाएँ विधि के शासन की धारणा का उल्लघन है।

(2) शासकीय कमचारियो को 1893 ई के सावजनिक कमचारी सरक्षण अधिनियम के अधीन विशेष सरक्षण प्रदान किया गया है। इस विधि के अनुसार किसी भी शासकीय कमचारी के विरुद्ध घटना घटित होने के 6 माह के भीतर नागरिक को मुकदमा दायर कर देना चाहिए अन्यथा मामला बेम्मियाद माना जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था है कि यदि शासकीय कमचारी के विरुद्ध अभियोग प्रमाणित नहीं होता है तो अभियोग लगाने वाले व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी। स्पष्ट है, इन व्यवस्थाओं का उद्देश्य शासकीय कमचारियो के विरुद्ध कायवाही करने के लिए साधारण जनता को हतोत्साहित करना है। अन्य अधिनियम भी शासकीय कमचारियो को विशेष अधिकार एव सरक्षण प्रदान करते है। ऐसे कुछ अधिनियम है 1902 ई का शिक्षा अधिनियम, 1919 ई का वित्त अधिनियम एव 1933 ई का सावजनिक अधिकारी सुरक्षा अधिनियम।

(3) न्यायपालिका की शक्ति को भी अनेक विवादो के सम्बन्ध म सीमित कर दिया गया है। जैसे गहमन्त्री का ब्रिटिश नागरिकता के देशीकरण (Naturalisation) सम्बन्धी प्रमाण पत्र देने का निरपेक्ष अधिकार प्राप्त है। राज्य को किसी भी व्यक्ति को पारपत्र प्रदान करने या अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। अधिकारियो के इन निणयो को न्यायालय म चुनौती नही दी जा सकती है। विदेशी शासको एव राजदूतो, अन्तर्राष्ट्रीय सगठन एव उनके कमचारियो तथा विदेशी व्यापारिक जहाजो को न्यायालयो के क्षेत्राधिकार से उन्मुक्ति प्राप्त है। यदि वे किसी ब्रिटिश विधि का उल्लघन करते हैं तो उन पर ब्रिटिश न्यायालयो म कोई मुकदमा नही चलाया जा सकता। किसी भी श्रम सघ (Trade Union) एव उसके किसी अधिकारी या कमचारी के विरुद्ध उसके किसी काय (जो किसी उचित श्रम विवाद के सम्बन्ध मे उनके द्वारा किया गया हो) के लिए कोई मुकदमा चालू नही किया जा सकता है। सावजनिक अधिनियम (1936 ई) के अधीन पुलिस को सावजनिक सभाओ एव जलूसो को निषिद्ध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। पहले सामन्तो (Peers) सम्बन्धी विवादो का निणय उनके द्वारा ही किया जाता था लेकिन विधि सुधार अधिनियम (1947 ई)

के द्वारा सामन्ता के इस विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया गया है। लॉर्ड चम्बरलेन को नाटकों आदि पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है और उसके इन निर्णयों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। गृहमन्त्री को पत्रों को रोकने एवं खोलने अर्थात् सेंसर करने का अधिकार प्राप्त है। उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ विधि के शासन की परम्परागत धारणा के विपरीत हैं।

(4) इंगलण्ड में न्यायाधीशों एवं कुछ अन्य अधिकारियों को विशेष स्थिति प्राप्त है। उदाहरणार्थ, न्यायाधीशों को उनके उन कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता जो वे अपने पद सम्बन्धी दायित्वों के सम्पादन में करते हैं। इसका यह नियम अपवाद है कि यदि कोई अवकाशकालीन न्यायाधीश (Vacation Judge) अविधिक तरीके से बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश को अस्वीकार कर देता है तो उस पर पाँच सौ पौण्ड क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है। सीमा शुल्क एवं एक्साइज अधिकारियों को किसी व्यापारिक विवाद को सुलझाने के सम्बन्ध में उनके किसी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। यह संरक्षण उन्हें सीमाशुल्क (Customs) अधिनियम (1866 ई) एवं एक्साइज अधिनियम (1890 ई) के अधीन प्राप्त है। इसी प्रकार, क्राउन द्वारा किसी भी अनुबन्ध (contract) को भंग किया जा सकता है और सेवा सम्बन्धी किसी अनुबन्ध (contract of services) से वह बँधा हुआ भी नहीं होता है। स्पष्ट है, अनुबन्ध सम्बन्धी नियम या विधि क्राउन पर समान रूप से बन्धनकारी नहीं है। 1947 ई से पूर्व तक क्राउन टॉर्ट (Tort)[10] के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होता था परन्तु 1947 ई के क्राउन प्रोसीडिंग्स अधिनियम (Crown Proceedings Act, 1947) के अन्तर्गत टॉर्ट सम्बन्धी सभी दायित्वों के लिए क्राउन को भी उत्तरदायी ठहराया गया है और सामान्य व्यक्ति शासन के विरुद्ध सामान्य व्यक्ति की भाँति ही मुकदमा दायर कर सकता है।

(5) सामान्य न्यायालयों के अतिरिक्त अनेक विशेष प्रकार के न्यायालयों की स्थापना की गयी है। इन विशेष न्यायालयों के द्वारा ऐसे निर्णय दिये जाते हैं जो नागरिकों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों को भी प्रभावित करते हैं। मन्त्रियों के द्वारा नियुक्त अनेक विशेष न्यायाधिकरणों द्वारा बीमा सम्बन्धी मामलों का निर्णय किया जाता है। शासन द्वारा भूमि हस्तगत करने पर तत्सम्बन्धी क्षतिपूर्ति का निर्धारण भी यही न्यायालय करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रशासकीय मण्डलों (Boards) की स्थापना की गयी जिनके निर्णयों के विपरीत सामान्य न्यायालयों में कोई अपील नहीं की जा सकती। विशेष न्यायालयों की स्थापना एवं प्रशासकीय मण्डलों को प्रदत्त न्यायिक अधिकार विधि के शासन की इस मूल धारणा का अतिक्रमण करते हैं कि एक ही प्रकार

10 Tort means the breach of a duty imposed by law whereby some person acquires a right of action for damages

विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि से होता है तो वे अपने निर्माणकर्ता निकायों के हितों की रक्षा के साधनमात्र होते हैं। सभी विधानमण्डलों में उच्च मध्यम वर्ग का बहुमत रहता है अतः विधि की दृष्टि में समानता का अर्थ मुक्त व्यापार सिद्धान्त का विधिक प्रतिरूप (legal counterpart) है। यही बात बन्दी प्रत्यक्षीकरण के सन्दर्भ में सत्य है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा उसी अवस्था में सम्भव हो सकती है जबकि व्यक्ति विधि का (जो कि सम्पत्ति का सहायक है) उल्लंघन नहीं करता है। डायसी ने इस परिप्रेक्ष्य में विधि के शासन का उत्साहपूर्वक प्रतिपादन किया है और वह उतनी ही तीव्रता से प्रशासकीय न्याय की निन्दा करता है।[16] लास्की ने इन्हीं विचारों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "डायसी के विधि के शासन का सिद्धान्त एवं प्रशासकीय विधि के प्रति तीव्र घृणा बीते हुए ऐतिहासिक युग के प्रमुख तत्त्वों पर आधारित है। डायसी का विधि के शासन का सिद्धान्त एक आणविक व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति है जिसमें राज्य एवं नागरिक परस्पर विरोधी वाद संवाद के रूप में हैं एवं निष्पक्ष न्यायालय सामान्य विधि के शाश्वत सिद्धान्तों के आधार पर सन्तुलन बनाये रखता है। लेकिन यह शाश्वत सिद्धान्त तो वास्तव में राज्य के निरंकुश हस्तक्षेप से सम्पत्तिशाली की सम्पत्ति की रक्षा का साधनमात्र थे। इन सिद्धान्तों के तत्त्व (characters) स्थायी नहीं थे। इनके स्वरूप में सामाजिक दबावों के फलस्वरूप परिवर्तन आते रहे, जैसा कि टार्ट (tort) सम्बन्धी विधि के विकास में स्पष्ट है।[17]

प्रशासकीय विधि सम्बन्धी सूचनाएँ डायसी-कालीन समाज की अपेक्षा आज अधिक उपलब्ध हैं। डायसी की इस आलोचना में विशेष बल नहीं है कि प्रशासकीय विधि के अन्तर्गत व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं हो पाती है। प्रशासकीय विधि एवं न्यायालयों के अर्थ अनिवार्यतः निरंकुश शासन नहीं है और न इस तथ्य में ही कोई बल है कि प्रशासकीय विधि प्रणाली के अन्तर्गत प्रशासनिक सुविधा एवं अधिकारियों के प्रति विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रशासकीय न्यायालयों के न्यायाधीश केवल विधि में ही पारंगत नहीं होते हैं अपितु उन्हें प्रशासकीय अनुभव भी होता है

---

16 Refer to Dicey *op cit*, Introduction pp CIII IV and p CXLVI, quoted by M G Gupta *Modern Governments*, 1967, pp 407 408

17 The truth is that Prof Dicey's conception of the rule of law and his profound hostility to droit administratif were both based on the postulates of an historic period which have now passed away His rule of law was the expression of an atomic individualism His account moreover, of droit administratif was a caricature '—Laski *Parliamentary Government in England*, 1952, p 355

जिसके फलस्वरूप समस्या के वैयक्तिक एव सावजनिक पक्षो के मूल्याकन मे सरलता होती है। फ्रान्स म जहाँ प्रशासकीय विधि प्रणाली है, समय व्यतीत होने के साथ साथ प्रशासकीय न्यायालय शासन एव प्रशासकीय अधिकारिया के निरकुश एव अविधिक कार्यो से व्यक्ति की रक्षा के सबल साधन प्रमाणित हुए है। स्वय प्रो डायसी के 'विधि के शासन' सम्बन्धी विचारो मे समय व्यतीत होने के साथ साथ परिवतन आने लगा था। अपनी पुस्तक के आठवें सस्करण की भूमिका मे डायसी ने 'विधि के शासन' के प्रति निष्ठा मे क्रमिक ह्रास के प्रति शिकायत का है। उन्होने दलीय शासन की दोषपूण पद्धति के विकास को विधिहीनता का एक कारण माना है। उनके अनुसार, "दलीय शासन को राष्ट्र की स्थायी सत्ता या देशभक्ति के स्थायी आदशो का प्रतिरूप नही माना जा सकता है।" स्मरणीय है, डायसी न उक्त विचार उदारवादी शासन-काल मे व्यक्त किये थे। प्रशासकीय विधि के सम्बन्ध म भी उनके विचारो म परिवतन हुआ था एव उन्होने फ्रान्स की काउन्सल ऑफ स्टट (Council of State) के न्यायिक कार्यों को मान्यता प्रदान की थी। उन्होने यह भी स्वीकार किया था कि सामान्य न्यायालय सभी प्रकार के विवादा मे लोक सेवा के अधिकारिया की त्रुटियो एव अपराधो के सम्बन्ध म निणय लेने वाले उपयुक्त एव श्रेष्ठ निकाय नही हो सकते। अत ऐसे निकाय की आवश्यकता है जो विधिक ज्ञान एव प्रशासकीय अनुभव स युक्त हो तथा शासन से पूण स्वतन्त्र रहते हुए उसके सदस्यगण काय कर सकें।[18] डायसी ने यह स्वीकार किया था कि समष्टिवाद के विकास (1906 13 ई) के साथ साथ प्रशासकीय विधि का भी विकास हुआ है। वह समष्टिवाद को सच्चे लोकतन्त्र के विपरीत मानता था एव व्यक्तिवाद म उसकी पूण आस्था थी। वह समाजवाद के विकास के फलस्वरूप बढते वाले आर्थिक दायित्वो का घोर विरोधी था तथा मन्त्रि-मण्डलीय उत्तरदायित्व उसकी दृष्टि म प्रशासकीय अव्यवस्थाओ के लिए न्यायालयो की अपेक्षा एक घटिया सरक्षण व्यवस्था थी।

वेड (Prof Wade) न समीक्षा के रूप म कहा है कि भाषण एव समुदाय की स्वतन्त्रता लोकतन्त्र म व्यक्ति की स्वतन्त्रता की भाँति ही महत्वपूण होती है क्योकि इनके अभाव म राजनीतिक-सस्थाओ एव सामाजिक अवस्था की आलोचना असम्भव है। निश्चय ही ससद को भाषण की स्वतन्त्रता को सीमित करने के अधिकार हैं। उदाहरण के लिए ससद द्वारा व्यक्ति की सम्पत्ति की स्वतन्त्रता को सीमित किया जा सकता है। लेकिन वैयक्तिक स्वतन्त्रता का समथन सामान्य विधि (Common Law) एव प्रशासन ये विरुद्ध बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश द्वारा होता है। इस अथ म डायसी का 'विधि के शासन' का सिद्धान्त आज भी सक्रिय है। इसन राजनीतिक स्वतन्त्रता की परम्परा को जो, हमारी ससदीय शासन व्यवस्था का आधार है, सशक्त बनाने मे योग

18 Dicey *op cit*, Introduction, p CXIV

प्रशासकीय विधि के सिद्धान्त

डायसी[6] के अनुसार प्रशासकीय विधि के दो प्रधान या प्रमुख सिद्धान्त हैं

(1) शासन एव उसके कमचारियो को राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप म विशेषाधिकार (special rights) एव उन्मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो व्यक्तियो को नागरिको के रूप म प्राप्त अधिकारो एव उन्मुक्तियो से पृथक होती है। इन विशेषाधिकारो को नागरिको के अधिकारा एव कतव्या सम्बन्धी आधार से भिन्न सिद्धान्तो पर निर्धारित किया जाना चाहिए। फ्रासीसी दृष्टिकोण के अनुसार नागरिक एव अधिकारियो की स्थिति एक स्तर की नही होती जैसे कि नागरिक एव नागरिक की स्थिति समानस्तरीय होती है।

(2) इन सामान्य विचारो की स्वाभाविक परिणति शक्ति पृथक्करण म होती है, अर्थात शासन के तीन अगो—विधानमण्डल, कार्यपालिका एव न्यायपालिका—को एक दूसरे के क्षेत्राधिकार मे हस्तक्षेप के अधिकार नही होने चाहिए। अग्रेजो द्वारा इस सिद्धान्त की जो व्याख्या की गयी है उसके अनुसार न्यायाधीश कायपालिका से स्वतन्त्र होते है क्योकि न्यायाधीशो को उनके पद मे कायपालिका द्वारा पृथक नही किया जा सकता है। फ्रान्स मे इसके विपरीत शक्ति पृथक्करण का यह अर्थ है कि जहा तक सम्भव हो, शासन एव अधिकारियो को सामान्य न्यायालयो के क्षेत्राधिकार से स्वतन्त्र होना चाहिए और उनके जन कल्याण सम्बन्धी कार्यों म न्यायपालिका को हस्तक्षेप नही करना चाहिए। 1790 ई की एक फ्रेंच विधि म इसी सिद्धान्त को मान्यता दी गयी थी। इस विधि के अनुसार न्यायाधीशो को प्रशासकीय अधिकारियो के काय मे किसी तरह का हस्तक्षेप करने, कमचारियो एव शासकीय कार्यों के विरुद्ध कोई कायवाही करने से निषिद्ध कर दिया गया था। उस समय से ही यह सिद्धान्त मान्य है।[27]

डायसी ने फ्रासीसी प्रशासकीय विधि की चार प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख किया है[28]

(1) राज्य के कमचारियो एव व्यक्तियो के सम्बन्ध एक पृथक विधि द्वारा नियमित किये जाते हैं जो नागरिको के पारस्परिक सम्बन्धो को निर्धारित करने वाली विधि से भिन्न होती है। यही प्रशासकीय विधि है। अत प्रशासकीय विधि एव सामान्य विधि म अन्तर है जो 1800 ई से ही मान्य है तथा फ्रेंच सावजनिक विधि का अनिवाय अग है।

(2) राज्य एव प्रशासन सम्बन्धी सभी प्रकार के विवादो म देश के सामान्य न्याया-

26 Dicey op cit pp 336 338
pp 341 342
pp 339 346

लयों को किसी प्रकार का कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। अपितु ऐसे सभी विवादों के निर्णय प्रशासकीय न्यायालयों द्वारा ही किये जाते हैं। न्यायालयों को प्रशासकीय विवादों के निर्णय सम्बन्धी अधिकार प्रदान करने का अर्थ सामान्य फ्रांसीसी की दृष्टि में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अतिक्रमण है। इसके अतिरिक्त फ्रांस में न्यायाधीशों के प्रति सन्देह की यह भावना व्याप्त थी कि "न्यायाधीश राज्य के सेवकों के शत्रु होते हैं और इस बात की सदैव सम्भावना है कि वे सार्वजनिक हितों की उपेक्षा करते हुए शासन की सामान्य कार्यपद्धति में हस्तक्षेप करें। क्रान्ति के पश्चात न्यायाधीशों ने शासन के प्रति अत्यन्त विनम्र एवं दासतापूर्ण अधीनता व्यक्त की थी। न्यायाधीशों को राज्य से सम्बन्धित विवादों में आज भी कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। शासकीय कर्मचारियों सम्बन्धी समस्त विवाद प्रशासकीय न्यायालयों द्वारा ही निर्णीत किये जाते हैं और शासन की अनुमति से ही ऐसे विवादों को सामान्य न्यायालय के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है।"[29]

(3) प्रशासकीय न्यायालयों एवं सामान्य न्यायालयों के मध्य क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों के उत्पन्न होने की प्रायः सम्भावना होती है। फ्रांस में इस प्रकार के विवाद का निर्णय विवाद न्यायालय (Court of Conflicts) द्वारा किया जाता है। इसमें काउन्सल ऑफ स्टेट (Council of State) एवं सर्वोच्च न्यायालय—कोर्ट ऑफ कासेसन (Court of Cassation)—को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है एवं न्याय-मन्त्री इस न्यायालय की अध्यक्षता करता है। नेपोलियन के समय में इस प्रकार के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों का निर्णय करने का अधिकार सिद्धान्ततः राज्याध्यक्ष को प्राप्त था परन्तु व्यवहार में 'काउन्सल आफ स्टेट' ही सर्वोच्च प्रशासकीय न्यायालय था।

फ्रांस में राज्य कर्मचारी द्वारा अपने किसी वरिष्ठ अधिकारी के उचित ढंग से आज्ञापालन एवं शासकीय कर्तव्य के सम्पादन में किसी गलत कार्य को करने के अपराधी होने पर भी देश के सामान्य न्यायालयों को उस पर नियन्त्रण एवं निरीक्षण के अधिकार प्राप्त नहीं हैं अर्थात राज्य-कर्मचारी राज्य सम्बन्धी दायित्व एवं कार्य के लिए किसी भी न्यायालय—न्यायिक या प्रशासकीय—के समक्ष उत्तरदायी नहीं होता है। इसके अतिरिक्त फ्रेन्च दण्ड संहिता के अनुच्छेद 114 के अनुसार राज्य-कार्य के सन्दर्भ में किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने के लिए किसी राज्य-कर्मचारी को कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त काउन्सल आफ स्टेट की अनुमति के बिना किसी राज्य-कर्मचारी के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती है।

'विधि का शासन' बनाम प्रशासकीय विधि

डायसी[30] ने 'विधि के शासन' एवं 'प्रशासकीय विधि' की तुलना करते हुए

29 Dicey *op cit*, pp 341-43
30 Dicey *op cit*, Ch XII, p 369

प्रतिनिधि के रूप मे प्रशासन के सम्बन्धो को नियन्त्रित किया जाता है।[31] इगलैण्ड म क्राउन एव उसके सेवको (अधिकारियो) की शक्ति मे समय समय पर वृद्धि या ह्रास हो सकता है पर तु इन शक्तियो का प्रयोग सामान्य कानून के उन सिद्धान्तो के अनुसार किया जाना आवश्यक है जो अग्रेजो के पारस्परिक सम्बन्धो को नियन्त्रित करते है। यदि कोई शासकीय कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी के आदेश पर ससद द्वारा प्रदत्त अधिकारो का अतिक्रमण करता है तो वह इस त्रुटि एव प्रमाद के लिए स्वय उत्तरदायी होता है और वह यह कह कर नही बच सकता कि उसने अमुक काय का अपने वरिष्ठ अधिकारी की आज्ञापालन क लिए किया है। ऐसी किसी भी त्रुटि के लिए इगलैण्ड म शासकीय कर्मचारी सामान्य न्यायालयो के प्रति उत्तरदायी होता है। लेकिन फ्रास म राज्य एव नागरिक के मध्य सम्बन्ध एक व्यक्ति एव दूसरे व्यक्ति के मध्य सम्बन्धो का निर्धारित करने वाले सिद्धान्त से भिन्न सिद्धान्त पर आधारित है। अत प्रशासकीय विधि ब्रिटिश विधि व्यवस्था से सवथा भिन्न है। इगलण्ड मे सामान्य न्यायालयो एव प्रशासकीय न्यायालयो तथा सामान्य एव प्रशासकीय विधि मे अन्तर फ्रास की भाति स्वीकार नही किया गया है।

(2) डायसी का मत था कि निकट भूत म ब्रिटिश विधि मे प्रशासकीय विधि का कोई समावेश नही हुआ है। राज्य की शक्तियो म वद्धि हुई है तथा राज्य के काय क्षेत्र मे भी अनक नवीन कार्यो का समावेश हुआ है परन्तु इन कार्यो से ब्रिटिश विधि व्यवस्था मे प्रशासकीय विधि का विकास नही हुआ है। यदि कोई ब्रिटिश अधिकारी ससदीय विधि द्वारा प्रदत्त किसी शक्ति का अतिक्रमण करता है तो वह सामान्य न्यायालयो के प्रति ही उत्तरदायी है एव इन अदालतों को उसकी विधिक सत्ता को निर्धारित करन का अधिकार प्राप्त है। अत इगलण्ड के सामान्य न्यायालयो को प्रशासन की सत्ता को सीमित एव उनके क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने के अधिकार प्राप्त है। अत डायसी की दृष्टि मे इगलैण्ड म ठीक अर्थो मे कोई प्रशासकीय विधि नही है परन्तु 20वी सदी के आठवें दशक के डायसी के इस मत से सहमत होना कठिन है। डायसी ने यह मत आज स 60 70 वष पूव प्रगट किया था। इस बीच म इगलण्ड मे भी पृथक से प्रशासकीय विधि एव न्यायालयो का विकास हो चुका है।

प्रशासकीय विधि के गुण दोष की व्याख्या करते हुए डायसी[32] ने काउन्सिल ऑफ स्टेट के निष्पक्ष एव महत्वपूर्ण काय की प्रशसा की है। इसकी सत्ता एव क्षेत्र म प्रति वष विस्तार होता गया है। इस न्यायालय म प्राय प्रत्येक फ्रेंच नागरिक का

---

31 Droit Administratif as it exists in France is the sum of the principles which govern the relation between French citizens as individuals and the administration as the representative of the c —Dicey op cit, p 387

[32] op cit, pp 398 405

शासन के विरुद्ध आवेदन के अधिकार प्रदान किये गये हैं ताकि किसी भी प्रशासनिक अधिकारी के किसी अवैधानिक काय से उसकी रक्षा हो सके। लेकिन काउन्सल ऑफ स्टट के क्षेत्राधिकार एव शक्ति म विकास के फलस्वरूप यायिक यायालयो (Judicial Courts) के सम्मान एव स्थिति मे ह्रास हुआ है। डायसी की दष्टि मे काउ सल के क्षेत्राधिकार म वद्धि कितनी ही लाभदायक हो परन्तु उससे यायिक यायाधिकरणो (Judicial Tribunals) की सत्ता का ह्रास होना स्वाभाविक है।

समीक्षा—प्रशासकीय विधि एव 'विधि के शासन' म कौन सी व्यवस्था श्रेष्ठ है ? आज भी विधि के शासन को अंग्रेजो द्वारा स्वत त्रता का आधार-स्तम्भ माना जाता है। परन्तु डायसी ने विधि के शासन के गुणो तथा प्रशासकीय विधि के दोषो का जो उल्लेख किया है वह अतिशयोक्तिपूण है। सिद्धान्तत यह सत्य है कि प्रशासकीय यायालयो म याय प्राप्त करना सम्भव नही है तथा व्यक्ति के अधिकारो की रक्षा भी सम्भव नही हो सकती क्योकि प्रशासन विवाद म एक पक्ष म है और वही यायकर्ता के कतव्य का सम्पादन करता है। फ्रास म प्रशासकीय याय व्यवस्था के क्रिया वयन के अनुभव डायसी के उपरोक्त मत से भिन्न हैं। डायसी के समय की अपेक्षा प्रशासकीय याय-व्यवस्था सम्ब धी सूचनाएँ आज अधिक उपलब्ध है। उनके आधार पर यह निर्विवाद सत्य ह कि डायसी के इस कथन मे कोई सार नही है कि प्रशासकीय विधि के अधीन व्यक्ति की स्वत त्रता अरक्षित होती है। फ्रा सीसी प्रशासकीय विधि को वैयक्तिक स्वत त्रता के लिए आवश्यक मानते है। फ्रा स के प्रशासकीय यायालयो के न्यायाधीश केवल विधि म ही पारगत नही होते अपितु उ ह पर्याप्त प्रशासकीय अनुभव भी होता है। फ्रा स मे काउ सल ऑफ स्टट सर्वोच्च प्रशासकीय यायालय है। प्रारम्भ म प्रशासकीय यायालयो का उद्देश्य प्रशासन सम्ब धी विवादो की सामा य यायालयो के क्षेत्राधिकार स रक्षा करना था। लेकिन गानर[33] के अनुसार फ्रा स के वतमान प्रशासकीय यायालयो का काय शासन एव उसके अधिकारियो के निरकुश एव अविधिक कार्यों से व्यक्ति की रक्षा करना है। प्रशासकीय यायालयो म अधिकारी के पक्ष म किसी रियायत की गुजाइश नही होती है। विवादो म अपेक्षाकृत व्यय कम होता है तथा निणय भी शीघ्र दिये जाते है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय यायालयो की काय-पद्धति भी सरल होती है। **सी के ऐलन** के अनुसार राज्य के विरुद्ध नागरिको को प्राप्त प्रतिकार के साधन फ्रा स म इगलैण्ड की अपेक्षा सरल, शीघ्रगामी एव कम खर्चीले है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय यायालयो ने शासन के विरुद्ध निणय देने मे कोई सकाच या हिचकिचाहट का प्रदशन नही किया है। दीघकाल तक फ्रा सीसी प्रशासकीय यायालयो द्वारा हानि के लिए जो क्षतिपूर्ति दिलायी जाती थी वह अधिक नही हुआ करती थी पर तु अब उसम भी वृद्धि हो गयी है।[34]

33 Garner *op cit* p 717

34 Gaudemet, quoted in Dicey *op cit*, p 491

अमेरिका म आहत व्यक्ति सामा यत शासन के विरुद्ध कोई मुकदमा प्रस्तुत नही करत हैं अपितु सम्बं धित अधिकारियो के विरुद्ध मुकदमा दायर किया जाता है। फ्रास म काउ सल आफ स्टेट म हजारा ऐसे मुकदमो को शीघ्रतापूर्वक एव कम खच म ही निपटा दिया जाता है। 'काउ सल आफ स्टेट अपनी निष्पक्षता के लिए विख्यात है तथा जनता को उसकी निष्पक्षता म कोई स देह नही है।

आग के अनुसार ब्रिटिश नागरिको को सामा य यायालयो की अपेक्षा फ्रासीसी नागरिको को प्रशासकीय यायालयो से यथाथ सरक्षण प्राप्त होता है क्योकि फ्रास मे हानि पूर्ति के लिए डिग्री शासन के विरुद्ध होती है जबकि इगलण्ड मे निणय या डिग्री यक्तिगत रूप से अधिकारी के विरुद्ध दी जाती है और ऐसी स्थिति मे उससे वास्तविक हानि की क्षतिपूर्ति कठिन हो जाती है।[35] इस दृष्टि से प्रशासकीय विधि ब्रिटिश विधि के शासन से श्रेष्ठ है। प्रो मोगन (Morgan) के अनुसार इगलण्ड म प्रशासकीय विधि के सम्ब ध मे भ्रम व्याप्त है। सत्य तो यह है कि फ्रास एव जमनी मे राज्य के निरकुश एव गैर-कानूनी कार्यों से इगलण्ड की अपेक्षा अधिक सरक्षण प्राप्त है।[36] प्रसिद्ध विद्वान **श्री गुडनोव** ने इसी कारण यह कहा है कि प्रशासकीय यायालय व्यक्ति के अधिकारो की रक्षा की दृष्टि से सामा य यायालयो की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हैं।[37] प्रशासकीय याय व्यवस्था के विरुद्ध किसी समय आग्ल-सक्सन देशा मे जो स देह एव अस तोप व्याप्त था वह अब नही पाया जाता है। गानर[38] के अनुसार फ्रेंच जनता की दृष्टि म काउ सल ऑफ स्टेट (Council of State) की स्थिति अमेरिकी सर्वोच्च यायालय की भाँति ही है जो कि स्वत त्रता का सरक्षक माना जाता है। काउ सल आफ स्टेट को ऐसे सभी नियमो एव अध्यादेशो के सम्ब ध म यायिक पुनरीक्षण का अधिकार है जो विधानमण्डल द्वारा निर्मित नही हैं। काउ सल आफ स्टेट क यायाधीशा के अ य प्रशासकीय यायालया के यायाधीशा की भाँति अपने पद स पृथक नही किया जा सकता है परन्तु उ हे याय म त्री के द्वारा पदच्युत अवश्य किया जा सकता है। सिद्धा त यद्यपि फ्रासीसी प्रशासकीय विधि व्यवस्था म यायाधीश स्वत त्र नही होत हैं परन्तु व्यवहारत उन पर कोई निय त्रण नही होता अपितु वे पूण स्वत त्र होते है।

इधर कुछ वर्षों स दोनो ही अर्थात प्रशासकीय विधि एव विधि का शासन एक दूसरे क प्रति आकर्षित हो रहे है। इगलण्ड मे अनेक प्रशासकीय यायालया का उदय हुआ है। फ्रास म प्रशासकीय यायालयो ने यायिक यायालयो (Judicial

35 Ogg *English Government and Politics*, p 611
36 Prof Morgan quoted by Garner *op cit*, Footnote 93, p 721
37 Goodnow *Comparative Administration Law*, Vol II pp 220 21
[38] ...*litical Science and Government* p 722

Courts) की काय पद्धति का अनुगमन प्रारम्भ कर दिया है। फ्रासीसी विधि शास्त्री श्री पी एम गोडमेट के निम्न मत को उपसहार के रूप म उदधत करना तकसगत होगा "प्रशासकीय विधि लोक प्रशासन के नवीन निरकुशतन्त्र म फ्रेंच नागरिको की सुरक्षा का श्रेष्ठतम साधन है। काउन्सल ऑफ स्टेट प्रशासकीय न्यायालय के रूप म नागरिक स्वतन्त्रता की रक्षा पंक्ति (bulwark) है। (फ्रान्स म भी) इगलैण्ड के कॉमन लॉ की भांति निर्मित विधि सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध नागरिको को न्यायाधीश सवश्रेष्ठ सुरक्षा प्रदान करते ह।"[39]

39 Droit Administratif ' is one of the best protections of French citizen against the 'new despotism of Public Administration The conseild Etat has succeeded in establishing 'a droit administratif which is the bulwark of civil liberties Here like common law in England, judge made law gives to the private citizens the best security against the abuse of power '—Prof Gaudemet *Droit Administration in France,* quoted by Dicey *op cit*, p 491

27

कुछ प्रमुख देशो की न्यायपालिकाएँ
[THE JUDICIARIES OF SOME MAJOR COUNTRIES]

ग्रेट ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था

ग्रेट ब्रिटेन की न्याय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत है

(1) 'विधि के शासन' का सिद्धान्त ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का प्रमुख सिद्धान्त है, जिसका अर्थ है निरकुशता का अभाव एव विधिक समानता। ग्रेट ब्रिटेन का सविधान मौलिक अधिकारो का परिणाम है। सभी व्यक्ति वहाँ एक ही प्रकार की विधि एव न्यायालयो के प्रति उत्तरदायी होते हैं। ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था के अन्तगत फ्रास की भाति पृथक प्रशासकीय न्यायालय नही हैं।[1]

(2) ब्रिटिश न्याय व्यवस्था म न्यायिक पुनरीक्षण (judicial review) की व्यवस्था का अभाव है। न्यायिक पुनरीक्षण के अधिकार[2] के अन्तगत न्यायपालिका का विधानमण्डल की विधियो एव कायपालिका के कार्यों के बारे म सवैधानिक औचित्य सम्बन्धी निणय देने का अधिकार होता है तथा सविधान विरोधी विधि एव काय को वहाँ अवैधानिक घोषित कर दिया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका एव भारत म न्यायालयो को न्यायिक पुनरीक्षण का अधिकार प्राप्त है लेकिन ब्रिटिश ससदीय विधि के सवधानिक औचित्य सम्बन्धी समीक्षा का अधिकार ब्रिटिश न्यायपालिका को प्राप्त नही है। ब्रिटिश ससद सम्प्रभु है और वह अपनी इच्छानुसार किसी भी विधि को पारित कर सकती है।

(3) ब्रिटिश न्यायपालिका का नागरिकों के अधिकारो एव स्वतन्त्रता की रक्षा म महत्वपूर्ण हाथ रहा है। भारत व सयुक्त राज्य अमरिका की भाँति ब्रिटेन म

---

1 विधि के शासन' एव प्रशासकीय विधि के विस्तृत विवरण क लिए देखिए अध्याय 26।

[2] ...षण के लिए देखिए अध्याय 28।

मौलिक अधिकार सविधान द्वारा प्रदान नही किये गये है अपितु ग्रेट ब्रिटेन मे नागरिको सम्बन्धी मौलिक अधिकारो एव विभिन्न स्वतन्त्रताओ का उल्लेख समय समय पर दिये गय न्यायालयो के विभिन्न न्यायिक निणयो मे प्राप्त है। ब्रिटेन मे न्यायालयो ने ब्रिटिश नागरिको की स्वतन्त्रताओ के सरक्षण का महत्वपूण काय किया है। कायपालिका के निरकुश कार्यो के विरुद्ध ब्रिटिश न्यायपालिका ने निणय देने म कभी कोई सकोच नही किया है। सकट काल मे ससदीय अधिनियम द्वारा ब्रिटिश नागरिको की वैयक्तिक स्वतन्त्रताओ को समय समय पर स्थगित किया गया है और ऐसी स्थिति म न्यायपालिका निरीह या मूक दशक मात्र बनी रहती है परन्तु ऐसे अवसर बहुत कम समय के लिए ही आये है।

(4) जूरी व्यवस्था ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की एक अन्य विशेषता है। जूरी व्यवस्था के माध्यम से न्याय सम्पादन मे न्यायाधीश को सहयोग देने के लिए समाज के प्रतिष्ठित सदस्यो का न्यायालयो के साथ सलग्न कर दिया जाता है। इन्हे जूरी सदस्य कहते है एव न्यायाधीश सम्बन्धित विवाद के सम्बन्ध म जूरी के सदस्यो की राय निणय देने के पूव ज्ञात कर लेता है। अधिकाशत फौजदारी मामला म ही जूरी सदस्य नियुक्त किये जाते है। यह आवश्यक नही है कि न्यायाधीश जूरी की राय को स्वीकार करे ही। ब्रिटिश न्याय व्यवस्था मे जूरी प्रणाली को महत्वपूण स्थान प्राप्त है। जूरी के सदस्य अपनी निष्पक्षता, निर्भीकता, अनुभव एव सामान्य ज्ञान के लिए विख्यात होते है। अनक अवसरो पर जूरी सदस्यो ने शासन के विरुद्ध भी निणय दिये है।

(5) ब्रिटिश न्यायालय निष्पक्षता, स्वतन्त्रता एव निर्भीकतापूवक न्याय के शीघ्र सम्पादन के लिए विख्यात हैं। वहाँ के न्यायाधीश सामान्यत भ्रष्ट नही होते है और उन पर न्याय एव सच्चाई के अतिरिक्त अन्य किसी बात का प्रभाव भी नही होता है। यह न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के कारण है। 1701 ई के सेटलमेन्ट अधिनियम (The Settelment Act, 1701) के अन्तगत न्यायाधीशो को सदाचरणपयन्त अपने पद पर रहने का अधिकार प्रदान किया गया है। स्थायी कायकाल के कारण ही ब्रिटिश न्यायाधीश किसी भय या पक्षपात के बिना ही दायित्व को सम्पादित करत आ रहे है। ब्रिटिश न्यायाधीशो को अच्छा वेतनादि भी प्रदान किया जाता है।

(6) ब्रिटिश न्यायाधीशो की कायपद्धति भी सरल है। न्यायाधीशो को यह अधिकार प्राप्त है कि वे न्याय के सम्पादन की कायपद्धति सम्बन्धी किसी बाधा को स्वय ही हटा सकत है। सामान्यत फौजदारी मामलो म वादी पर अपने पक्ष का सिद्ध करने का दायित्व होता है। अपराधी से बलपूवक बयान नही कराय जा सकत। गवाहो को सत्य एव देखी हुई बात ही कहनी चाहिए। उनसे जिरह की जाती है। न्यायालय विवादो को खुली अदालत म सुनत हैं।

(7) ब्रिटिश न्यायपालिका के अधीन सम्पूर्ण देश मे एक स ही न्यायालय नही है। इगलैण्ड एव वेल्स (Wales) का न्यायिक सगठन एक समान है। इसके विपरीत, स्काटलण्ड (Scotland) म न्यायपालिका के सिद्धान्त एव व्यवहार म काफी अन्तर है। फलस्वरूप वहाँ के न्यायालयो का सगठन भी भिन्न है। उत्तरी आयरलण्ड मे न्यायालयो का सगठन यद्यपि इगलैण्ड के न्यायालयों से काफी मिलता-जुलता है परन्तु फिर भी भिन्न है। इगलण्ड एव वेल्स के न्यायालय एकीकृत नही हैं। दो पीढियो पूव ब्रिटन म विभिन्न प्रकार क न्यायालय थे जिनके क्षेत्राधिकार भी परस्पर विरोधी थ। इनमे स अनेक न्यायालय अनुपयोगी थे। प्रत्येक न्यायालय की अपनी कायपद्धति हुआ करती थी। 1873 76 ई के न्यायालय सम्बन्धी अधिनियमा द्वारा ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का पुनगठन किया गया है। अब सभी न्यायालय एकल केन्द्रीय प्रणाली क अधीन हैं और प्राचीन असगतियाँ एव क्षेत्राधिकार सम्बन्धी पारस्परिक विरोध का अन्त हो गया है।

(8) वकीलो की श्रेणियाँ एव न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रश्न भी ब्रिटिश न्याय व्यवस्था से ही सम्बन्धित है। प्राय सभी न्यायाधीश विख्यात अधिवक्ताओ एव विधिवेत्ताओ म से प्रौढावस्था प्राप्त करने पर ही नियुक्त किये जाते हैं। ब्रिटेन म न्यायाधीशो के पद पर किसी व्यक्ति को उसक जीवन के आरम्भिक वर्षों म नियुक्त नही किया जाता और न उनकी पदोन्नति की क्रमिक व्यवस्था ही है। निम्न न्यायालयो के न्यायाधीशो को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के कोइ अवसर नही होत हैं। ऐसी स्थिति म ब्रिटिश न्यायाधीश को कायपालिका से किन्ही रियायतो एव लाभो को प्राप्त करने की कोई आशा नही होती है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो को पुनरावेदनीय न्यायालय या लाड सभा (Court of Appeal or House of Lords) के लिए पदोन्नति होने के अवसर होते है परन्तु इससे उनकी प्रतिष्ठा या वेतन मे थोडी सी ही वृद्धि होती है। फलस्वरूप ब्रिटिश न्यायाधीश शासन के अधीन नही होत और वे शासन की आलोचना करने म भी नही हिचकते है। इसी कारण व सामान्य जनता के सरक्षक माने जाते है।

अधिवक्ताओ (Lawyers) की ग्रेट ब्रिटन म दो श्रणियाँ है विधिक परामर्श देन वाले सालिसिटर (Solicitors), एव बैरिस्टर (Barrister)। बरिस्टर सोलिसिटरो द्वारा तयार मामलो को न्यायालयो मे उपस्थित करते हैं और वादविवाद एव तक करते है। सोलिसिटर अदालतो म भाग नही लेत।

ब्रिटिश विधि के प्रकार

ब्रिटन म तीन प्रकार की विधियाँ है (1) सामान्य विधि या कॉमन लॉ (Common Law), (2) सुनीति (Equity) एव (3) सविधियाँ (Statute Law)।

सामान्य विधि या कॉमन लॉ (Common Law) का विकास लगभग आठ पूव प्राचीन रीति रिवाजो के कारण हुआ है। नॉमन विजय के पूव ब्रिटन

मे कोई एक सामान्य विधि प्रणाली नही थी। विभिन्न स्थानो पर भिन्न भिन्न विधियाँ प्रचलित थी। न्यायालय स्थानीय सस्थाएँ मात्र थे। नॉमन तथा अन्य अग्रेज राजाओ ने देश को एकता के सूत्र मे बाधने का निश्चय किया था जिससे उनके आदेश एव आज्ञाएँ सारे देश म मान्य हो सके। न्यायिक शक्ति को ही इस उद्देश्य की पूर्ति का वे सबल एव सफल साधन मानते थे। अत भ्रमणशील न्यायालय (Assizes Courts) तथा न्यायाधीशो की नियुक्तियाँ की गयी और वे विभिन्न स्थानो पर जाकर न्याय काय सम्पादित करने लगे। प्रारम्भ म स्थानीय अदालतो म स्थानीय रीति रिवाजो के अनुसार ही विवादो का निणय किया जाता था किन्तु बाद म इन न्यायाधीशो ने स्थानीय रीति रिवाजो की उपेक्षा करते हुए विभिन्न स्थानो के विवादो का निणय सामान्य सिद्धान्तो के आधार पर करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार ऐसे नियमो का विकास हुआ जो सम्पूण देश मे समान रूप स लागू किये गये। यही कॉमन लॉ के उदय एव विकास का इतिहास है। कामन लॉ को भ्रमणशील न्यायाधीशो द्वारा विकसित किया गया था। विधि के इस एकीकरण के फलस्वरूप ब्रिटेन म सबल विधि व्यवस्था का सूत्रपात हुआ और इससे देश की जनता म विधि के प्रति आस्था का जन्म हुआ एव न्यायाधीशो को सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

कामन लॉ न्यायाधीशो द्वारा निर्मित विधि है। एक न्यायाधीश के द्वारा दिये गये निणय समान प्रकार के विवादो म न्यायाधीशो के लिए नजीरें बन जाती थी। य राजा या विधानमण्डल द्वारा निर्मित नियम नही हैं। यह तो न्यायिक निणयो का परिणाम है। यह ब्रिटिश प्रणाली की मूल विधि है। अनुबन्धीय विधि (Contract Law) एव दीवानी विधि के सामान्य सिद्धान्तो का कामन लॉ आधार है। पहले फौजदारी विधि भी कामन लॉ का ही अग थी परन्तु अब अधिकाश फौजदारी विधि को लिपिबद्ध करके सविधियो म परिणित कर दिया गया है। मुनरो के अनुसार, 'कॉमन लॉ का भी सविधियो की भाँति ही न्यायिक निणयो के विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप क्रमिक विकास हुआ है।'[3] डॉ ऑग के अनुसार "कॉमन लॉ शब्द उन विधिक नियमो (precepts) एव परम्पराओ के लिए प्रयोग किया जाता है जिन्हें दीघकाल स बन्धनकारी एव अपरिवतनशील या स्थिर (immutable) स्वरूप प्राप्त हो गया है।[4] कामन लॉ ही क्राउन के विशेषाधिकारो, भाषण एव सम्मेलनो की स्वतन्त्रता, शासकीय अधिकारियो के विरुद्ध कठिनाइयो की अभिव्यक्ति एव फौजदारी मामलो म जूरी-व्यवस्था के अधिकारो का आधार है।

---

3 'The common law like statutory law, is continual in the by process of development by judicial decisions —Munro, W B *The Governments of Europe*, 1954, p 22.

4 Common law is the vast body of legal precept and usage which through the centuries has acquired binding and almost immutable character' —Ogg cited V D Mahajan p 3

सुनीति (Equity) ब्रिटिश विधि का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत है, सुनीति से अथ 'उन सिद्धान्तो के समूह से है जो एक दूसरे से क्रमिक रूप से सम्बन्धित नही हैं लेकिन प्रत्येक सुनीति सामान्य विधि (कामन ला) के किसी न किसी नियम को अधिक उचित या समान बनाने मे योग देती है।'[5] समय बीतने के साथ साथ सामान्य विधि (कामन ला) जटिल एव अपरिवतनीय होती गयी। न्यायाधीश उस परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल सशोधित न कर सके। अनेक विवादो मे सामान्य विधि कोई निदान न सुझा सकी। उलटे कामन लॉ की जटिलता के कारण अनेक विवादो मे सम्बन्धित पक्षो के साथ गम्भीर अन्याय हुए थे। पन्द्रहवी सदी के करीब सामन्तवाद का अन्त हो रहा था एव नवीन अथ व्यवस्था का उदय हो रहा था। फल स्वरूप सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक जीवन मे अस्थिरता व्याप्त हो गयी थी। न्यायाधीश सामान्य विधि के आधार पर ऐसी परिस्थितियो मे विवादो का समाधान करने मे असफल रहे थे। कॉमन ला की इस कमी को सुनीति के विकास ने पूर्ण किया था। सुनीति परम्परा पर आधारित न होकर अन्त करण पर आधारित होती है। यह इस धारणा पर आधारित होती है कि विधि को समाज के नैतिक मानदण्डो के अनुकूल होना चाहिए। सुनीति सामान्य विधि की पूरक है, न कि उसकी विरोधी। स्मरणीय है कि इगलैण्ड के राजा को न्याय का स्रोत (fountain of justice) माना जाता है। यदि कोई पक्ष न्यायालय के निणय से असन्तुष्ट होता है तो उसके विरुद्ध राजा के समक्ष अपील की जा सकती है। प्रारम्भ मे राजा स्वय इस प्रकार की प्राथनाओ को सुनता था परन्तु पुनरावेदनीय प्राथनाओ की सख्या मे वद्धि के कारण राजा ने चान्सलर को इस पर विचार करने का अधिकार दे दिया। चान्सलर आज की भाति उस समय भी न्यायाधीश तथा राजा की परिषद का विधिक सदस्य हुआ करता था। इस प्रकार चान्सरी अदालत (Chancery Court) का विकास हुआ। चान्सरी अदालत प्रारम्भ मे न्यायालय न होकर प्रशासनिक विभाग की भाति थी। इसके द्वारा सम्बन्धित पक्षो को सुनकर स्वीकृत विचारो एव सामान्य ज्ञान के आधार पर निणय दिये जाते थे। धीरे धीरे इसके द्वारा दिये गये निणयो के फलस्वरूप कुछ नियमो के समूह का उदय हुआ। यही सुनीति कहलाते हैं। सुनीति के सिद्धान्त 18वी शताब्दी के प्रारम्भ तक सुनिश्चित हो चुके थे। चान्सलर की स्थिति न्यायाधीश की हो चुकी थी एव चान्सरी विभाग ने न्यायालय का रूप धारण कर लिया था। ब्रिटेन मे इस प्रकार दो प्रकार की विधियाँ एव दो प्रकार के न्यायालयो का उदय हुआ और 1873 ई तक ब्रिटेन मे यही स्थिति बनी रही। 1873 ई मे पारित न्याय व्यवस्था अधि

---

5 Equity consists of a miscellaneous collection of principles 'not systematically related to one another but each tending to make this or that rule of common law more equitable than it would otherwise be' —Brier J L *Law and Government* p 180

नियम (Judicature Act) द्वारा एकल यायिक प्रणाली की स्थापना की गयी है। इस अधिनियम के अनुसार सामा य विधि एव सुनीति को सयुक्त नही किया गया है अपितु यह व्यवस्था की गयी कि सुनीति एव सामा य विधि मे विरोध की स्थिति म सुनीति मा य होगी।

सुनीति एव सामा य विधि म अनक समानताएँ हैं, जैसे—दोना ही याया-धीशा के द्वारा निर्मित विधिया हैं। दाना का विकास अपने समय की परिस्थितिया के फलस्वरूप हुआ है यद्यपि यह परिस्थितियाँ भिन्न थी। सुनीति द्वारा सामा य विधि को अधिक समीचीन वनाने एव उसकी कठोरता तथा अभाव को कम करने के लिए सामा य विधि के नियमा ने योग दिया है।

सविधि (Statutes) से अथ ससद द्वारा निर्मित विधियो स है। यह विधि का प्रमुख स्रोत है। 19वी सदी तक सभी दीवानी एव फौजदारी नियमो का आधार सामा य विधि एव सुनीति थी। सविधि विकास का परिणाम नही है अपितु लिखित एव निर्मित है। प्रारम्भ म राजा के द्वारा विधियो का निर्माण किया जाता था। आज यह कार्य 'ससद राजा सहित' (King in Parliament) द्वारा किया जाता है। सविधि का स्थान सामा य विधि की तुलना मे प्रमुख एव प्रधान है एव दोनो मे विरोध की स्थिति म सविधि मा य होती है। प्राचीन विधि, सामा य विधि सुनीति एव अ य यायिक निणया को नवीन ससदीय विधि द्वारा सशोधित, परिवर्तित या समाप्त किया जा सकता है। सविधि का निमाण परस्पर विरोधी यायिक निणयो के कारण उत्प न गतिरोधो एव नवीन समाज की आवश्यकता एव मानदण्डो की पूर्ति हेतु किया जाता है।

ब्रिटिश यायपालिका का सगठन

ब्रिटिश यायपालिका मे 1873 ई तक एकल प्रणाली का अभाव था। 1873 स 1879 ई के मध्य ब्रिटिश ससद ने याय व्यवस्था से सम्ब धित अनेक विधियो को पारित किया जिनके फलस्वरूप विभिन्न यायालयो का उचित सगठन किया गया तथा समान कायपद्धति की व्यवस्था की गयी। ब्रिटिश याय व्यवस्था म तीन प्रकार के याया लय है (1) दीवानी यायालय (Civil Courts), (2) फौजदारी यायालय (Criminal Courts), एव (3) विशेष यायालय अर्थात प्रीवी परिषद की यायिक समिति (The Judicial Committee of the Privy Council)।

ब्रिटेन म दीवानी एव फौजदारी यायालया के मध्य मोटे रूप म ही अतर किया गया है। अनेक फौजदारी मामला की सुनवाई दीवानी यायालयो एव दीवानी मामलो की सुनवाई फौजदारी यायालयो मे होती है। इसके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन के सभी क्षेत्रा मे एक समान याय व्यवस्था नही है। इगलैण्ड एव वेलस के यायालयो का सगठन स्कॉटलैण्ड एव उत्तरी आयरलैण्ड स भिन्न है।

1 **दीवानी न्यायालय (Civil Courts)**—दीवानी न्यायालयों में सबसे छोटी अदालत काउण्टी न्यायालय (County Courts) है। इस प्रकार के न्यायालयों की स्थापना सर्वप्रथम 1742 ई में की गयी थी। सम्पूर्ण इंगलैण्ड एवं वेल्स को 500 जिलों (Counties) में विभाजित किया गया है। इन सभी जिलों को 55 क्षेत्रों (circuits) में बांटा गया है। प्रत्येक सर्किट में एक काउण्टी न्यायालय होता है। प्रत्येक न्यायालय में एक न्यायाधीश लार्ड चांसलर द्वारा 7 वर्ष के अनुभव प्राप्त अधिवेत्ताओं में से नियुक्त किया जाता है। काउण्टी न्यायाधीश की सहायतार्थ दो स्थायी कर्मचारी—रजिस्ट्रार (Registrar) एवं बेलिफ (Bailiff)—होते हैं। रजिस्ट्रार न्यायालय के लिपिक का कार्य करता है एवं बेलिफ का कार्य न्यायालय के आदेशों को तामील करना होता है। काउण्टी न्यायालय भ्रमणशील न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं एवं नम से प्रत्येक काउण्टी में इनके सम्मेलन होते हैं। काउण्टी न्यायालय को निम्न क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं

(i) सौ पौण्ड तक के मूल्य या धन सम्बन्धी या 20 पौण्ड वार्षिक मूल्य सम्बन्धी सम्पत्ति एवं श्रमिकों की क्षतिपूर्ति सम्बन्धी विवाद।

(ii) 10 हजार पौण्ड से कम पूंजी के दिवालियापन सम्बन्धी विवाद।

काउण्टी न्यायालयों के ऊपर 'न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च न्यायालय' (Supreme Court of Judicature) है। इसके दो भाग हैं प्रथम, पुनरावेदनीय न्यायालय (Court of Appeals) एवं द्वितीय, उच्च न्यायालय (High Court of Justice)।

(1) **पुनरावेदनीय न्यायालय**—काउण्टी न्यायालयों एवं उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध इस न्यायालय द्वारा अपील सुनी जाती हैं। पुनरावेदनीय न्यायालय में मास्टर ऑफ रोल्स (Master of Rolls), लार्ड चांसलर एवं उच्च न्यायालय की तीन शाखाओं या विभागों के तीन अध्यक्ष न्यायाधीश पीठ के रूप में कार्य करते हैं। लॉर्ड चांसलर इसकी अध्यक्षता करता है। इस न्यायालय में विधि एवं तथ्य के प्रश्न पर ही अपील हो सकती है तथा न्यायालय की विशेष आज्ञा से दीवानी विवादों की अंतिम अपील लार्डसभा में हो सकती है।

(2) **उच्च न्यायालय**—इसकी स्थापना 1873 ई के न्यायपालिका सम्बन्धी अधिनियम (Judicature Act) द्वारा की गयी है। 1875 ई के अधिनियम द्वारा इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार में परिवर्तन किया गया है। यह न्यायालय प्राचीन आठ प्रकार के न्यायालयों से मिलकर बना है। उच्च न्यायालय के तीन निम्न विभाग हैं

(i) **चांसरी विभाग (Chancery Division)**—इस न्यायालय द्वारा उन विवादों के निर्णय किये जाते हैं जो पहले सुनीति न्यायालयों द्वारा सम्पादित किये जाते थे। इसमें लार्ड चांसलर सहित 6 न्यायाधीश होते हैं एवं लार्ड चांसलर इसकी अध्यक्षता करता है।

(ii) **राजा का पीठ न्यायालय** (The King's Bench for the Common

Law Cases)—इसम 19 न्यायाधीश एव एक प्रधान न्यायाधीश होता है । प्रधान न्यायाधीश को लॉड चीफ जॉफ जस्टिस (Lord Chief of Justice) कहते है । न्यायालय की यही शाखा भ्रमणशील न्यायालय (Assizes Court) के रूप मे फौजदारी विवादो की सुनवाई करती है ।

(iii) **वसीयत, तलाक एव सामुद्रिक डिवीजन** (Probates, Divorce and Admiralty Division)—पुनरावेदनीय न्यायालय तथा उच्च न्यायालय का मुख्य कार्यालय लन्दन मे है । लेकिन राजा का पीठ न्यायालय भ्रमणशील न्यायालय के रूप मे फौजदारी विवादो की सुनवाई विभिन्न स्थानो पर करता है । जिस जगह न्यायालय की बठक होती है उस स्थान का यह उच्च न्यायालय माना जाता है । काउण्टी न्यायालयो से अपीलें उच्च न्यायालय एव उच्च न्यायालय से पुनरावेदनीय न्यायालय मे भेजी जाती हैं । उच्च न्यायालय को अधिक धनराशि सम्बन्धी विवादो मे मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है ।

उच्च न्यायालय के ऊपर लाडसभा है । यह ब्रिटिश साम्राज्य का दीवानी एव फौजदारी मामला मे सर्वोच्च पुनरावेदनीय न्यायालय है । लाडसभा का कभी कोई अधिवेशन न्यायालय के रूप मे नही होता है । 1876 ई म 7 आजीवन सदस्यो की नियुक्ति की गयी थी । इन्हे विधिक लॉड (Law Lords) या सामान्य पुनरावेदनीय लाड—लॉड आफ अपील इन ऑर्डिनरी (Lords of Appeal in Ordinary)—की सज्ञा दी जाती है । 1947 ई Appellate Jurisdiction Act के अधीन इनकी सख्या बढाकर 7 स 9 कर दी गयी है । इसकी अध्यक्षता लॉड चान्सलर करता है, शेष नौ न्यायाधीश निश्चित रूप से विधि मे पूण पारगत, विधि विज्ञ या प्रमुख न्यायाधीश या अधिवेत्ता होते है ।

2 **फौजदारी न्यायालय** (Criminal Courts)—इगलैण्ड मे फौजदारी न्यायालयो का सगठन निम्नवत् है

(1) पैटी सशन्स या कोट ऑफ समरी ज्यूरिसडिक्सन (Petty Sessions or Courts of Summary Jurisdiction) । यह सबस छोटे न्यायालय होते है । ग्रामीण क्षेत्रो एव छोटे नगरा मे इन न्यायालयो की अध्यक्षता जस्टिस आफ पीस (Justice of the Peace) एव बडे शहरा मे वेतनभोगी दण्डाधिकारिया द्वारा की जाती है । दण्डाधिकारियो की नियुक्ति 7 वष के अनुभव प्राप्त अधिवक्ताओ मे से गह मन्त्री द्वारा की जाती है, जबकि जस्टिस ऑफ पीस की नियुक्ति लॉड चान्सलर काउण्टी के लाड लेफ्टीनन्टो की सिफारिश पर या डची ऑफ लकास्टर का चान्सलर करता है । दण्डाधिकारियो को जस्टिस आफ पीस के समान ही क्षेत्राधिकार प्राप्त है । इसके अतिरिक्त उन्हे कुछ अतिरिक्त शक्तिया भी प्राप्त होती है ।

जस्टिस आफ पीस एव दण्डाधिकारियो को अकेले छोटे-छोटे विवादो का निणय करने का अधिकार होता है । वे 20 शिलिंग तक का जुर्माना एव अधिकतम 14 दिन

का कारावास-दण्ड दे सकते है। गम्भीर अपराधा की सुनवाई दो या अधिक जस्टिस आफ पीस या दण्डाधिकारिया द्वारा की जाती है। जब दो न्यायाधीश सयुक्त रूप से बठते है तो उसे Court of Petty Session कहते है। इस न्यायालय को 50 से 100 पौण्ड तक एव विशिष्ट विवादा म 500 पौण्ड तक का जुर्माना एव 6 माह तक के कारावास तथा कुछ मामलो म 1 वष के कारावास का दण्ड दने का अधिकार होता है। किसी अपराध के लिए यदि तीन माह के दण्ड का विधान है तो एस मामलो की सुनवाई जूरी के सहयोग स की जाती है।

काउण्टी न्यायालय के ऊपर क्वाटर सैशन्स का न्यायालय होता है। इस न्यायालय म जूरी काउण्टी के दो या अधिक जस्टिस ऑफ पीस शामिल होते हैं। बडे नगरा म क्वाटर सैशन्स न्यायालयो की अध्यक्षता वेतनभोगी दण्डाधिकारी करता है। गम्भीर अपराधो की सुनवाई इन न्यायालयो म होती है एव निम्न न्यायालयो के निणया के विरुद्ध अपीले सुनी जाती है। क्वाटर सशन्स न्यायालय के एक वष म चार सत्र होते हैं।

(2) **भ्रमणशील न्यायालय** (Courts of Assizes)—ये उच्च न्यायालय की शाखाएँ हैं एव वष म तीन वार प्रत्येक काउण्टी नगर एव बडे नगरो म चक्कर लगाते है तथा वहा न्याय करते हैं। सम्पूण देश को इस काय के लिए आठ जिलो या सर्किटो म विभक्त किया जाता है। इन न्यायाधीशो की अध्यक्षता उच्च न्यायालय की राजा की पीठ शाखा के न्यायाधीश करते हैं एव जूरिया द्वारा उनकी सहायता की जाती है। लन्दन म केन्द्रीय अपराधिक न्यायालय (Central Criminal Court) की बठक वष मे 10 बार होती है।

इन न्यायालया का क्षेत्राधिकार निम्नवत है

(i) अपराधिक मामलो म क्वाटर सशन्स की अपील सुनना तथा

(ii) बदनामी (Slander), भ्रष्टाचार (Corruption) आदि दीवानी विवादो की सुनवाई।

अपराधिक या फौजदारी मामला म न्यायाधीश की स्थिति एक निणायक (Umpire) की होती है। ब्रिटिश विधि-व्यवस्था म सत्य का पता लगाना न्यायाधीश का काय नही है। उसका उद्देश्य तो केवल यह देखना है कि नियम का पालन किया जाता है तथा दोना पक्षा को निष्पक्ष न्याय प्राप्त होता है। जूरी के द्वारा निणय दिये जान पर सत्य तो प्रकाश म आ ही जाता है। यदि जूरी के सदस्य अपराधी को निर्दोष समझते हैं तो विवाद वही समाप्त हो जाता है और यदि अपराधी को दोषी ठहराया जाता है तो न्यायाधीश द्वारा निणय दिया जाता है। यदि न्यायाधीश के निणय स जूरी के सदस्य असहमत होते हैं तो नये जूरी सदस्या के सहयोग स पुन विवाद की सुनवाई की जाती है।

(3) **अपराधिक अपीलीय न्यायालय** (Court of Criminal Appeals)—

क्वाटर सैशन्स एव भ्रमणशील न्यायालयो के निणय के विरुद्ध अपीले फौजदारी या अपराधिक अपील न्यायालयो मे की जाती है। इसकी स्थापना अपराधिक अपील अधिनियम (Criminal Appeal Court) के अधीन की गयी है। इस न्यायालय मे लॉड प्रधान न्यायाधीश (Lord Chief Justice) एव उच्च न्यायालय की राजा की पीठ न्यायालय के कम स कम तीन न्यायाधीश होते है। प्रशासकीय न्याय अधिनियम, 1960 के अधीन इस न्यायालय द्वारा यह प्रमाण-पत्र दने पर कि अमुक विवाद म सावजनिक महत्व सम्बन्धी विधि का प्रश्न निहित है और लॉडसभा भी ऐसा ही अनुभव करती है, इस न्यायालय के अपराधिक मामला के निणय के विरुद्ध लार्डसभा म अपील हो सकती है।

लॉडसभा देश का दीवानी एव अपराधिक (फौजदारी) मामलो का सर्वोच्च न्यायालय है। 1948 ई स लॉडसभा ने अपने सदस्यो पर देशद्रोह एव एस ही अन्य अपराधो के लिए दण्ड दने का परित्याग कर दिया है। अत लॉडसभा को अब कोई मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त नही है। अपीलीय न्यायालय के रूप मे लाडसभा की अध्यक्षता लाड चान्सलर करता है। लाडसभा के केवल अपीलीय लॉड या विधि लॉड ही उसके न्यायिक कार्यो मे भाग लेते ह।

3 **प्रीवी परिषद की न्यायिक समिति** (Judicial Committee of the Privy Council)—प्रीवी परिषद की न्यायिक समिति उच्चस्तरीय अपीलीय सस्था या निकाय है। न्यायिक समिति का अपना इतिहास है। 1641 ई म दीघ ससद (The Long Parliament) द्वारा स्टार चम्बर (Star Chamber) को समाप्त कर दिया गया था तथा प्रीवी परिषद के ब्रिटिश न्यायालयो के निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनने के अधिकार को समाप्त कर दिया था परन्तु उपनिवेशा की अपीले सुनन के उसके अधिकार को अक्षुण्ण रखा था। आज भी प्रीवी परिषद समुद्र पार के उपनिवेशो के लिए सर्वोच्च पुनरावेदनीय (Appellate) न्यायालय है। न्यूजीलैण्ड को छोडकर सभी उपनिवेशो ने प्रीवी परिषद की न्यायिक समिति के पुनरावदनीय अधिकार को सीमित कर दिया है। प्रीवी परिषद की न्यायिक समिति की स्थापना 1833 ई के अधिनियम के अधीन की गयी है। लॉड चान्सलर इसकी अध्यक्षता करता है। इसके अतिरिक्त लॉडसभा क विधि लॉड इसके सदस्य होते हैं। एक न्यायाधीश विवाद स सम्बन्धित उपनिवेश का होता है तथा कुछ ऐसे सदस्य भी होते ह जो पहले न्यायिक पदो पर काय चुकते है। लॉडसभा के विधि लाड इस समिति की सदस्यता के कारण प्रीवी पाषद (Privy Councillors) के नाम से पुकारे जाते हैं। युद्ध काल म सम्पूण साम्राज्य के नौ सनिक न्यायालयो का यह सर्वोच्च न्यायालय भी होता है। इसक अतिरिक्त धार्मिक न्यायालय (Ecclesiastical Courts) भी इसके क्षेत्राधीन होते है। प्रीवी परिषद की न्यायिक समिति एतिहासिक दृष्टि से न्यायालय नही है अपितु एक

ऐसी सस्था है जो राजा को न्याय काय म परामश देती है। व्यवहार म उसके परामश को ब्रिटिश राजा अनिवायत स्वीकार कर लेते हैं।

समीक्षा—ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की निष्पक्षता एव दक्षता की प्रशसा की जाती है। यह प्रशसा एक सीमा तक ही सही है। यह सत्य है कि अग्रेजो को वैयक्तिक एव राजनीतिक स्वतन्त्रता जिस सीमा तक प्राप्त है वह अन्य देशो के नागरिको को प्राप्त नही है पर तु न्याय एव विधि प्रक्रिया का ही कवल महत्व नही होता है असली महत्व तो विधि का होता है। ब्रिटिश विधि एव न्याय व्यवस्था की ब्रिटिश वामपथी विचारको एव लेखको (जिनम लास्की एव ग्रीव्स के नाम अग्रणी हैं) ने तीव्र आलोचना की है।[6] उनके अनुसार ब्रिटिश विधि एव न्याय व्यवस्था का मूलाधार सम्पत्ति धारण का सिद्धान्त है। ब्रिटिश विधि पूजीवादी अथ व्यवस्था पर आधारित है। प्रमुख अधिकार सम्पत्ति का है। सम्पत्ति सम्बन्धी कानून महत्वपूण विधि है। विधि के निर्माता एव व्याख्याता पूजीपति हाते हैं तथा उनका आधार एव तत्त्व व आदश सम्पत्ति प्रधान होता है। ब्रिटिश विधायी व न्यायिक शक्ति पूजीपति वग एव उनके प्रतिनिधियो के हाथो म होती है। ब्रिटिश वकील समाज का दृष्टिकोण भी पूँजीवादी होता है। व पूजीवादी विधि व्यवस्था को प्राकृतिक एव स्थायी मानते हैं। उनकी दृष्टि म वैयक्तिक सम्पत्ति अक्षुण्ण है एव शासन को उसम हस्तक्षप का कोइ अधिकार नही है।

ब्रिटिश विधि पूजीवादी भौतिक सम्बन्धा पर आधारित है एव पूजीपतियो को सरक्षण प्रदान करती है। अत ब्रिटिश विधि का स्वरूप वर्गीय है। यह समाज म सम्पत्ति के स्वामियो को सरक्षण प्रदान करती है और सम्पत्तिशाली वग एव उसके स्वार्थों को सरक्षण प्रदान करती है। लास्की एव ग्रीन्स ने ब्रिटिश विधि एव न्याय-व्यवस्था के वर्गीय चरित्र का उल्लेख किया है। स्मरणीय है कि विधि के वर्गीय चरित्र का यह तात्पय नही है कि विधि का कोई सामाजिक पक्ष ही नही होता है। ब्रिटेन के सन्दभ म विधि के वर्गीय चरित्र से यह अथ है कि ब्रिटिश विधि द्वारा बहुसख्यक वग के हिता को केवल आशिक सरक्षण प्रदान किया जाता है तथा कुछ रियायते भी जाती है जिससे कि समाज मे विद्रोह एव क्रान्ति न उठ खडी हो। अधिकाश विधिया पूजीपतिया के हिता के अनुरूप सुधार किया जाता रहा है। स्टुअटकालीन इगलण्ड म निरकुश राजतन्त्र के विरुद्ध मध्यम वग के विद्रोह के फलस्वरूप बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) को स्वीकार किया गया था। जूरी प्रथा एव न्यायाधीशा की स्वतन्त्रता सामन्ती एव निरकुश राजतन्त्र के विरुद्ध मध्यम वग की सफल क्रान्ति के परिणाम थे। ब्रिटिश विधि का अधिकाश भाग उन्नीसवी सदी के औद्योगिक विकास का परिणाम है। आधुनिक पूजीवादी राज्य की स्थापना एव विकास के दौरान ही ब्रिटिश विधि की प्रक्रिया भी निर्धारित हुई थी। ब्रिटिश विधि व्यवस्था मुख्य रूप स पूजीवादी वग सम्बन्धो एव

6 Laski *Parliamentary Government in England* 1952 Ch VII, pp 360 87, and Greaves *The British Constitution*

व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों की सुरक्षा पर आधारित है एवं सामान्य विधि (Common Law) का भी सम्पत्ति के अधिकार के रक्षार्थ ही उपयोग किया गया है। सम्पत्ति के अधिकार की रक्षा की चिन्ता संसद की अपेक्षा न्यायालयों को अधिक रही है। पुराने निर्णयों में वे सम्पत्ति के अधिकार की रक्षा में सहायक नजीरों को खोजते रहते हैं। न्यायालयों ने श्रमिकों की अपेक्षा सम्पत्ति के स्वामियों का ही अधिक पक्ष लिया है तथा श्रमिकों की परम्परागत कानून में सुधार की मांग को अस्वीकार किया है। आवश्यकता पड़ने पर सम्पत्ति के स्वामियों के पक्ष में विधि में परिवर्तन तक किये गये हैं, उदाहरणार्थ—प्रीस्टले बनाम फाउलर विवाद।[7] स्मरणीय है कि ब्रिटिश साम्राज्य विधि के अनुसार नौकर की गलती से होने वाली हानि का हर्जाना मालिक को भरना पड़ता था। परन्तु उक्त विवाद में न्यायपालिका ने यह निर्णय दिया था कि प्रीस्टले अपने नौकर फाउलर की गलती के लिए हर्जाने का देनदार नहीं है क्योंकि उक्त नियम से स्वामियों पर नवीन एवं अनिश्चित दायित्व आ जाते हैं। यह निर्णय एक शताब्दी तक नजीर बना रहा। 1948 ई० में श्रमदलीय शासन ने एक विधि बनाकर इस नियम का अन्त कर दिया है। सम्पत्तिशालियों के पक्ष में एक दूसरे निर्णय से एकाधिकारी (monopoly) संगठन को मान्य ठहराया गया है।[8] टेम्परटन बनाम रसेल विवाद में न्यायालय ने श्रमिकों की हड़ताल को गैर कानूनी साजिश ठहराते हुए उद्योगपति को ट्रेड यूनियन से हर्जाना दिलवाया था।[9] ब्रिटिश विधि व्यवस्था की दृष्टि में श्रमिकों द्वारा हड़ताल को अनुचित एवं एकाधिकारी व्यवस्था को न्यायसंगत ठहराया गया है।

ब्रिटिश सामान्य विधि[10] एवं न्याय-व्यवस्था में निहित सम्पत्तिशाली वर्ग के पक्ष में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। न्यायालयों द्वारा संसदीय विधियों की समीक्षा व्यापारिक एकता की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर की जाती रही है। उपरोक्त कुछ उदाहरणों के अतिरिक्त 1910 ई० का ओस्बोर्न[11] विवाद (Osborne Case) इसी प्रकार का उदाहरण है। इस विवाद में न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि श्रमिक-संघों के कोष से राजनीतिक उद्देश्यों के लिए धन व्यय नहीं किया जा

7 *Priestley v Fowler*
8 *Mogul Steamship Co v Mac-Gregor*
9 *Taft Valve Case*, (1901) A. C 426
10 'The tradition of common law, it is important to note, has been predominantly shaped by the need to serve the wants of a business civilization founded upon a doubt of positive action by government Acts of Parliament are scrutinized in terms of that tradition' Laski *op cit*, p 363
11 Osborne Case, (1910) A C 87 इस फैसले के निर्णय को 1913 संसदीय विधि द्वारा रद्द कर दिया गया।

सकता । स्मरणीय है कि पूजीपतिया के सस्थाना द्वारा टोरी एव लिबरल दला क निर्वाचन कोष म धन दना उनकी दृष्टि म अनुचित नही था । एक दूसरे विवाद राबट बनाम हुप[12] म न्यायालय ने पापुलर बरो काउन्सल (Popular Borough Council) द्वारा सामान्य विधि क अनुसार श्रमिका क लिए वतन निर्धारित करन क अधिकार के सम्बन्ध म यह निणय दिया था कि चार पौण्ड साप्ताहिक का न्यूनतम वतन निधारित करना अनुचित है । इसका अथ हुआ कि व्यवहार म ससदीय विधि द्वारा बरो को प्रदत्त श्रमिका के न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के अधिकार का प्रयोग हाउस आफ लाड द्वारा किया गया ।[13] उपरोक्त उदाहरणा स यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका का लक्ष्य नवीन विधियो को प्राचीन विचारो से जोडना रहा है । 1933 स 1935 ई म पास्मोर बनाम एलिस[14], डकन बनाम जोन्स एव थामस बनाम सान्स विवादा म न्यायालयो ने पुलिस को नयी शक्तियाँ प्रदान की ताकि श्रमिक आन्दोलना को दबाया जा सके ।

ब्रिटिश न्यायाधीशो के विचार भी अनुदार रहे हैं । 1935 ई क एक विवरण के अनुसार 58 न्यायाधीशो म से केवल 8 न सामान्य स्कूला म शिक्षा पायी थी, शेष सभी पब्लिक स्कूला की उपज थे । न्यायाधीश बनने क पूव अधिकाश सावजनिक राजनीतिक जीवन बिता चुके थे । 1951 ई म लाड सिमोन्ड्स (जो पुनरावदनीय न्यायालय क न्यायाधीश थे) न न्यायाधीश के पद स इस्तीफा देकर अनुदारदलीय मन्त्रिमण्डल म लाड चान्सलर का पद ग्रहण किया था । लास्की क अनुसार ब्रिटिश न्यायाधीशो का 'आधुनिक प्रशासन के प्रति दृष्टिकोण' शत्रुतापूण है । विधि के शासन की उन्होने इस प्रकार व्याख्या की है जैसे वे ही उच्च विधि के स्वामी है, न कि सर्वोच्च विधानमण्डल ।[15] वे ही इसकी स्वीकृति एव उद्दश्य को निर्धारित करते हैं । यह कहना अतिशयोक्तिपूण नही होगा कि वे (न्यायाधीश) आधुनिक राज्य की व्याख्या करते हैं और उनकी व्याख्या की आदत तथा पद्धति ऐसी होती है जो उन अनेक उद्देश्यो के औचित्य को अस्वीकार कर देती है जिनके लिए राजसत्ता प्रयत्नशील होती है ।

ब्रिटिश न्यायाधीशा ने लास्की क अनुसार अपने निणया द्वारा सामाजिक परिवतन की गति को धीमा किया है । उदाहरण क लिए, उनक द्वारा आवास विधान के

---

12 *Roberts* v *Hopwood*, (1925) A C 578
13 Laski *op cit* p 364
14 *Pasmore* v *Elus* (1932) 2 K B 134
15 The whole ethics of their approach is one of hostility to the process of modern administration They interpret rule of law as though they are themselves the masters of a higher law than that of a sovereign legislature' —Laski *op cit* p 368

क्षेत्र को पर्याप्तत सीमित कर दिया गया है। उनका सिद्धा त नये अत्याचारत त्र (New Despotism) से नागरिक स्वत त्रता की रक्षा करना रहता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति के मुरय कारण निम्नत है

(1) अधिकाश यायाधीशो का चुनाव सफल वकीलो म से किया जाता है और सफ्ल वकील वही व्यक्ति होता है जो अपना अधिकाश जीवन सम्पत्तिशालियो के हितो की रक्षा म व्यतीत करता है।

(2) इगलैण्ड म वकीलो की शिक्षा बौद्धिक उपलब्धि की अपेक्षा सामाजिक काय अधिक है। आस्टिन के पश्चात ब्रिटिश यायशास्त्र मे कोई विकास नही हुआ है और न यायिक सस्थाओ के पुनगठन का प्रयास ही किया गया है।

(3) इगलैण्ड म यायाधीश ब्रिटिश समाज मे व्याप्त एक शताब्दी पुरानी मनोवृत्ति को ही अभिव्यक्त करत है।[16]

उपरोक्त आलोचना के होते हुए भी यह स्वीकार करना होगा कि 1688 ई के पश्चात ब्रिटिश यायाधीशो की स्वत त्रता एव चरित्र स देह से परे रहे है। एक यायाधीश लाड मैकलिसफील्ड, को छोडकर किसी भी यायाधीश का चरित्र 1701 ई के पश्चात स देहजनक नही रहा। स्वय लास्की यह स्वीकार करता है कि व्यक्तिगत रूप से यायाधीशो द्वारा पश्चात्ताप के मामलो की सख्या आधे दजन से अधिक नहीं है।[17] भाषण, प्रशासन एव राजनीतिक स्वत त्रताओ की दृष्टि स इगलण्ड आज भी अग्रगणी है। इगलण्ड म अमेरिका की तरह सीनेटर मैकार्थी के युग जैसा समय कभी नही आया है। साम्यवादी दल को वहा अनेक देशो मे अधिक स्वत त्रता प्राप्त है। ब्रिटिश याय व्यवस्था म ब दी प्रत्यक्षीकरण तथा जूरी प्रणाली का के द्रीय महत्व है। यह दोनो सस्थाएँ लोकत त्र की रक्षक हैं। इगलैण्ड म ब दी प्रत्यक्षीकरण की व्यवस्था 1679 ई से है। आपातकाल, उदाहरण के लिए दो विश्वयुद्धो का काल, मे ब दी प्रत्यक्षीकरण की व्यवस्था को स्थगित कर दिया गया था। जूरी व्यवस्था ने नागरिक आजादी की रक्षा की है। पर तु कुछ विचारक इसकी तीव्र आलोचना यह कह कर करते हैं कि अधिकाश सदस्य प्रौढ मध्यममार्गी एव मध्यमवर्गीय होते हैं। व उच्चवर्गीय सामाजिक व्यवस्था स प्रभावित होते है अत उनके विचारा म भी यही प्रवृत्ति झलकती है।

ब्रिटेन मे प्रशासकीय याय व्यवस्था

डायसी के कथनानुसार ब्रिटेन म प्रशासकीय विधि नही है। पर तु डायसी का यह कथन सत्य नही है। फाइनर का कथन है कि जहा प्रशासन तथा विधि होगी वहाँ प्रशासकीय विधि का होना अनिवाय है।[18] रोबसन के अनुसार ब्रिटन म ऐसी अर्थात

16 Laski *op cit* pp 372 374
17 *Ibid* p 361
18 Finer *op cit*, p 924

प्रशासकीय विधि है । इसक मुख्य स्रात हैं सविधि या सामान्य विधि, सुनीति एव कायपालिका क अगा द्वारा अपन दायित्व-सम्पादन के दौरान निर्मित विधियाँ । अभि समय एव परम्पराएँ भी प्रशासकीय विधि की सवैधानिक विधि की भाँति ही महत्व पूण भाग हैं ।[19]

ग्रेट ब्रिटेन म बहुत स प्रशासकीय न्यायालय हैं जिनका आकस्मिक विकास हुआ है । य न्यायालय फ्रासीसी न्याय व्यवस्था की भाँति ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था क अभिन्न अग नही है । ग्रेट ब्रिटेन म प्रशासकीय न्याय-व्यवस्था का प्रारम्भ 1875 ई के सावजनिक स्वास्थ्य अधिनियम की सामाजिक विधि स होता है । 1873 ई एव 1888 ई म गठित रेलवे एव नहर आयोग की स्थापना से रोबसन के अनुसार, प्रशासकीय न्याय व्यवस्था का प्रवाह प्रारम्भ हुआ है । वतमान सदी के प्रारम्भ से शासन के कार्या एव दायित्वा म वृद्धि हुई है । शासन का समाज के आर्थिक एव सामाजिक जीवन सम्बन्धी समस्याओ स अधिकाधिक सम्बन्ध स्थापित होता गया । ब्रिटिश ससद इन समस्याआ के सम्बन्ध म समयाभाव क कारण विधि नही बना सकी थी । 1920 ई तक विभिन्न प्रशासकीय न्यायाधिकरणा (यथा—स्वास्थ्य मन्त्री, व्यापार मण्डल (Board of Trade), शिक्षा मन्त्रालय, गृहमन्त्री, विद्युत आयोग, जिला लेखा परीक्षक) को अनेक न्यायिक दायित्व सौंपे गये थे । इसके अतिरिक्त त्रिसदस्यी न्यायाधिकरणा की स्थापना भी हुई थी । ब्रिटिश ससद ने नगर एव ग्रामीण नियोजन शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, पुलिस आदि मामलो मे सम्बन्धित विभागीय मन्त्रिया को ससदीय विधि के अधीन व्यापक शक्तियाँ प्रदान कर दी हैं । प्रशासकीय लयो की सख्या दो हजार से भी अधिक है एव विगत कुछ वर्षों म उनके कार्यो वृद्धि हुई है । ब्रिटिश ससदीय सविधि द्वारा गठित प्रशासकीय न्यायालया के निण विरुद्ध सामान्यत कोई अपील नही होती है । परन्तु 1958 ई के न्यायाधिकरण जाँच अधिनियम (Tribunals and Enquiries Act 1958) के अन्तगत इगलण्ड उच्च न्यायालय म एव स्काटलण्ड के सशन न्यायालय (Court of Session) प्रशासकीय न्यायालयो क निणयो म विधि सम्बन्धी प्रश्न निहित होने पर पुनरावे (Appeal) की व्यवस्था है । मन्त्री के निणया क विरुद्ध विशिष्ट पुनरावेदनीय न्याय लयो म अपीलें की जा सकती हैं । विभिन्न न्यायाधिकरणा तथा उनके प्रतिवेदनो का न्यायाधिकरण समिति (Council of Tribunals) द्वारा निरीक्षण किया जाता है ।

ग्रेट ब्रिटेन म निम्न प्रकार के प्रशासकीय न्यायालय पाये जाते हैं

(1) यातायात एव भूमि न्यायाधिकरण (Transport Tribunal and Lands Tribunals)—इसकी सदस्यता स्थायी है एव सदस्यगण विशेष योग्यता सम्पन्न होते हैं ।

---

19 W A Robson *Administrative Law in England (1919 1948)* p 89

(2) कुछ न्यायाधिकरण विशुद्ध रूप से प्रशासकीय होते हैं, जैसे—आय-कर के विशेष आयुक्त (Special Commissioners of Income tax)। यह अधिकारी केवल आय-कर सम्बन्धी विवादो का ही निणय करते है।

(3) ऐसे न्यायाधिकरण जिनका सम्बन्ध एक ही शासकीय विभाग से होता है। उदाहरणाथ—पेशन अपील न्यायाधिकरण आदि।

(4) सामान्य व्यक्तियो से सम्बन्धित विवादो के निणय हेतु मन्त्रिया द्वारा गठित न्यायाधिकरण, जसे—किराया न्यायालय।

वतमान परिस्थितियो मे प्रशासकीय विधि एव न्याय व्यवस्था की अनिवायता को स्वीकार करते हुए भी ब्रिटिश प्रशासकीय न्याय व्यवस्था मे सुधार के प्रयत्न किये गये हैं। प्रशासकीय विधि व्यवस्था के सामा य दोष निम्नवत है प्रशासकीय न्यायालय मे सामान्य न्यायालयो की न्यायिक पद्धति एव नियमो का अनुमगन नही किया जाता है, *निणय प्रकाशित नही किये जाते है और अधिकारी को अपने निणय के स दम मे* कारण बताने की आवश्यक्ता नही होती। प्रशासकीय यायाधिकरणा के निणया के विरुद्ध अपील की वाछित सुविधाएँ नही है। इन दोषा के रहते हुए याय की आशा करना व्यथ है।

1929 ई मे **लाड होवट** ने अपनी पुस्तक 'नवीन निरकुशवाद' (*New Despotism*) एव **पोट** की पुस्तक 'प्रशासकीय विधि' (*Administrative Law*) तथा **ऐलन** की पुस्तक 'विजयी नौकरशाही' (*Bureaucracy Triumphant*) मे प्रशासकीय याय एव विधि की तीव्र आलोचना की गयी है। फलस्वरूप 1929 ई मे शासन द्वारा मन्त्रियो की शक्ति सम्बन्धी समिति (Committee on Ministers Powers, 1929) की स्थापना की गयी थी। इसका काय प्रदत्त विधान एव न्यायिक कार्यो सम्बन्धी मन्त्रियो की शक्तिया एव ससदीय एव विधि की सर्वाच्चता की दृष्टि से आवश्यक सुरक्षा सम्बन्धी सुझाव देना था।

समिति ने अपने प्रतिवदन मे प्रदत्त विधान एव प्रशासकीय न्याय की अनिवायता को स्वीकार किया था परन्तु कुछ सुरक्षात्मक सुझाव प्रस्तुत किये ये। समिति का मत था विशुद्ध यायिक काय मन्त्रियो को नही सौपे जाने चाहिए अपितु उन्हे अद्ध न्यायिक प्रकृति के कार्यो को ही करने का अधिकार दिया जाना चाहिए, विधि के प्रश्न पर आहत पक्ष को उच्च न्यायालय (High Court) म अपील का अधिकार होना चाहिए, किसी मन्त्री या मन्त्रिमण्डलीय अभिकरण को विधिक शक्तियो के अतिक्रमण की अवस्था म रोकने के अधिकार उच्च न्यायालय को प्रदान किये जाने चाहिए तथा प्रशासकीय न्यायालयो की कायपद्धति प्राकृतिक सिद्धान्तो के अनुकूल होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सम्बन्धित पक्षो को निणयो के कारण ज्ञात करने का अधिकार होना चाहिए। निणय के साथ साथ निरीक्षक की रिपोट भी प्रकाशित होनी चाहिए। समिति ने प्रशासकीय न्यायालयो के पुनगठन एव उनके समन्वय के सम्बन्ध म कोई सुझाव नही

दिया था। समिति के सदस्य प्रो रोबसन ने तो प्रशासकीय न्यायालयों की स्थापना के सुझाव को ही स्वीकार नहीं किया। समिति ने अपना प्रतिवेदन 1932 ई में प्रस्तुत किया था। उसके बाद तो प्रशासकीय न्याय के क्षेत्र में बहुत विकास हो चुका है।

1955 ई में सर ओलिवर फ्रैंक्स (Sir Oliver Franks) की अध्यक्षता में प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की कार्यपद्धति पर प्रतिवेदन देने का दायित्व एक समिति को सौंपा गया। 1957 ई में इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में विचार व्यक्त किये। समिति के निर्णय तीन तत्वों पर आधारित हैं

(1) विधि के सन्दर्भ में प्रशासकीय न्यायालयों के सभी निर्णयों की समीक्षा का अधिकार सामान्य न्यायालयों को होना चाहिए।

(2) निर्णय का दायित्व न्यायाधिकरण (Tribunal) की अपेक्षा न्यायालयों को एवं विभागीय मन्त्रियों की अपेक्षा न्यायाधिकरणों को सौंपा जाना चाहिए।

(3) न्यायालय द्वारा सुनवाई के स्थान पर मन्त्रिमण्डल अथवा न्यायाधिकरण के द्वारा जांच के कारण किसी व्यक्ति के विधिक अधिकारों की सुरक्षा को कोई खतरा उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

संक्षेप में समिति का मत था कि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को प्रशासकीय हित में कार्य नहीं करना चाहिए अपितु व्यक्ति के अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य करना चाहिए। समिति की दृष्टि में प्रशासकीय न्यायाधिकरण व्यक्ति की मांगों के बारे में निर्णय करने वाली एक निष्पक्ष संस्था है। समिति ने ट्रेजरी विभाग के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया कि प्रशासकीय अभिकरण शासनतन्त्र के अंग होते हैं अतः वे न्यायिक संस्थाएँ नहीं हैं। समिति ने प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की कार्यपद्धति के सन्दर्भ में खुली जांच सुनवाई एवं निष्पक्षता एवं ईमानदारी का सुझाव दिया है। समिति के अनुसार इन अभिकरणों के अध्यक्ष की नियुक्ति मन्त्री द्वारा नहीं की जानी चाहिए अपितु लार्ड चान्सलर को यह अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। सम्बन्धित पक्षों को मुकदमे की सुनवाई की सूचना पर्याप्त समय रहते दी जानी चाहिए जिससे वह अपना पक्ष प्रस्तुत कर सके। न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय देते समय उपलब्ध सम्बन्धित साक्ष्यों एवं कानूनों का उल्लेख करना चाहिए।

फ्रांस की तरह ब्रिटेन में प्रशासकीय न्यायालयों के विकास की सम्भावना कम है। क्रमशः परिवर्तन एवं सुझावों द्वारा प्रशासकीय विधि एवं न्याय व्यवस्था के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में न्यायिक दृष्टिकोण का विकास होना चाहिए। यह स्पष्ट एवं सुनिश्चित कार्यपद्धति एवं मौलिक अधिकारों के प्रति आस्था से ही सम्भव है।

स्विस न्यायपालिका

स्विटजरलैण्ड एक संघात्मक देश है। संघीय न्यायपालिका के अतिरिक्त प्रत्येक कैण्टन की अपनी पृथक न्यायिक व्यवस्था है। अधिकांश न्यायिक न्याय कैण्टनों के

न्यायालयो द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। कैण्टनो की याय व्यवस्था के अ तगत तीन प्रकार के न्यायालय ह। शिखर पर कैण्टनो के उच्च यायालय (High Courts) हैं उनके नीचे जिला न्यायालय (District Courts) एव सबसे नीचे जस्टिस ऑफ पीस (Justice of Peace) के न्यायालय है।

सघीय न्यायालय (फेडरल टिब्यूनल Federal Tribunal) एकमात्र राष्ट्रीय न्यायालय है। अमेरिका की भाति स्विट्जरलैण्ड के सघीय न्यायालय के अधीन क्षेत्रीय तथा जिला सघीय यायालय नही होते हैं। लेकिन अपराधिक मामलो के लिए क्षेत्रीय भ्रमणशील सघीय यायालय होते हैं। कैण्टनो के न्यायालयो द्वारा ही सघीय विधिया क्रिया वित की जाती है। सघीय विधियो से सम्बधित कैण्टनों के न्यायालया के निणयो के विरुद्ध फेडरल ट्रिब्यूनल मे अपील की जा सकती है। इस दृष्टि से स्विस याय व्यवस्था एव भारतीय न्याय व्यवस्था म एक सीमा तक साम्य है। अमेरिकी *न्याय व्यवस्था की भाति स्विस सघीय न्यायालय के अधीन अपने निणयो को क्रिया वित* करने के लिए पृथक सघीय कमचारी नही होते हैं।

स्विटजरलैण्ड मे फ्रास की तरह पथक प्रशासकीय न्यायालय नही है यद्यपि सवधानिक सशोधन (1914 ई) द्वारा एक सघीय प्रशासकीय यायालय की स्थापना की गयी थी तथा उसे प्रशासकीय विवादो, सघीय अधिकारियो से सम्बधित अनुशासनात्मक मामलो एव कैण्टना के प्रशासकीय मामलो के सम्बध मे निणय करने का अधिकार प्रदान किया गया था। 1925 ई म इस यायालय के दायित्व एव कतव्य सघीय यायालय को सौप दिये गये। अत फ्रास या यूरोपीय महाद्वीप के अय देशो के प्रशासकीय न्यायालया अथवा स्विटजरलैण्ड के बीमा यायाधिकरण की तरह पृथक प्रशासकीय यायालय नही है। प्रशासकीय न्यायालय तो वहाँ सघीय न्यायालय का ही एक कक्ष है। अत प्रशासकीय यायालय भी सामा य यायालया की भाति ही एक न्यायालय है यद्यपि वह सघीय न्यायालय द्वारा प्रयुक्त कायपद्धति से भिन्न पद्धति का प्रयोग करता है।

स्विस सघीय न्यायालय

स्विस सघीय न्यायालय का नाम Bundesgericht है। न्यायालय का विधान 1874 ई के सविधान मे किया गया है। 1848 ई के सविधान म भी एक सघीय यायालय की स्थापना की गयी थी पर तु उसे बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त थी। एक प्रकार से वह शक्तिहीन था। उस परिसघ एव कैण्टना की विधियो या कण्टना की विधिया के परस्पर विरोधी होने की स्थिति म कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नही या। यह अधिकार सघीय परिषद (Federal Council) एव फेडरल असेम्बली (Federal Assembly) को प्राप्त थे। सघीय न्यायालय द्वारा नागरिक अधिकारा सम्बधी विवादो की सुनवाई उसी समय की जा सकती थी जबकि सघीय परिषद या सघीय सभा सघीय न्यायालय को इस सम्ब ध म सम्बोधित करती थी। उस सविधान की

व्याख्या करने का अधिकार नही था और न सघीय असम्बली द्वारा पारित विधि को वह असवैधानिक घोषित ही कर सकता था। वास्तविक अर्थो म वह सर्वोच्च यायालय नही था। वह पूणतया सघीय असम्बेली एव परिषद पर निभर था। यायाधीशा सम्बन्धी कोई अहताएँ भी निर्धारित नही की गयी थी। कवल एक यह प्रतिबन्ध था कि सघीय परिषद का कोइ सदस्य या उसके द्वारा नियुक्त कोई अधिकारी यायाधीश नही हो सकता था। असम्बली तीन वप क लिए यायाधीशा को निर्वाचित करती थी। 1874 ई म सविधान के सशोधन क समय सघीय न्यायालय की शक्तियो मे परिवतन किय गये। इसक पश्चात समय समय पर इसकी शक्तियो म वद्धि होती रही है। 1893 ई म सघीय यायालय को सविधान दिवालियापन एव प्रशासकीय विधि सम्बन्धी कुछ विवादो म शक्ति प्रदान की गयी थी। 1898 ई म सघीय यायालय के दीवानी एव अपराधिक क्षत्राधिकार म वद्धि की गयी। सत्य तो यह है कि 1874 ई क पूण सवधानिक सशोधन के फलस्वरूप सघीय न्यायालय की शक्तिया म असाधारण वद्धि हुई है। सी हग्स के अनुसार 1875 ई म वतमान सघीय न्यायालय की स्थापना के समय से उसके क्षेत्राधिकार म अनेक वार वद्धि मुरयत सघीय परिषद के मूल्य पर होती रही है।[20]

स्विस सघीय न्यायालय वाण्ड (Vand) नामक कण्टन की राजधानी लुसान (Lausanne) म स्थित है। लुसाने म सघीय न्यायालय की स्थापना का कारण फ्रेच भाषाभाषी जनता की भावनाओ को सन्तुष्ट करना था। सघीय शासन की अधिकाश सस्थाओ की स्थापना जमन भाषाभाषी कण्टन के बन नगर मे की गयी है।

सघीय न्यायालय का सगठन—सघीय न्यायालय के न्यायाधीशा की अहता सम्बन्धी कोई व्यवस्था सविधान म नही की गयी है। सविधान म केवल यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक जो राष्ट्रीय परिषद (National Council) का सदस्य होने की योग्यता रखता है, सघीय न्यायालय के लिए नियुक्त किया जा सकता है।[21] सविधान द्वारा केवल एक यह शत निश्चित की गयी है कि सघीय यायालय के लिए यायाधीश एव उप न्यायाधीशो को नियुक्त करते समय यह ध्यान म रखा जाय कि परिसघ की तीना भाषाओ को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है।[22] सघीय यायालय के न्यायाधीश फेडरल असेम्बली द्वारा 6 वप क लिए निर्वाचित होते हैं तथा सघीय न्यायालय का एक अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष भी निर्वाचित किया जाता है जिसका काय काल 2 वप होता है। इन्हे तुरन्त ही दूसरे सत्र के लिए पुन निर्वाचित नही किया जा सकता। परम्परा या अभिसमय के अनुसार यायाधीश जब तक चाहते हैं पुन

---

20 Hughes C *The Federal Constitution of Switzerland* 1954 p 119
21 Article 108
22 Article 107 (1)

निर्वाचित होते रहते है। यद्यपि सविधान द्वारा यायाधीशो के लिए कोई विधिक अहता निर्धारित नही की गयी है परन्तु उच्च विधिविज्ञ ही न्यायाधीश नियुक्त किये जाते है। न्यायाधीशो की पुन निवाचन सम्बन्धी परम्परा एव व्यवस्था के कारण न्याया धीशो का कायकाल जीवन भर के लिए स्थायी सा हो गया है, फलत निर्वाचन व्यवस्था से उत्पन्न न्यायाधीशो की स्वतन्त्रता के नष्ट होने सम्बन्धी भय निर्मूल हो गया है। न्यायालय के निणयो मे कभी कभी राजनीतिक दवाव झलकता है परन्तु इस कारण न्यायालय पर निष्पक्षता के अन्त का दोपारोपण नही किया जा सकता। राजनीतिक दबाव की समान मात्रा की अनुभूति तो कभी कभी ब्रिटिश एव सयुक्त राज्य अमेरिकी यायालय के सन्दभ मे भी अनुभव की जाती है।

स्विस सघीय न्यायालय के न्यायाधीशो की सख्या 26 है। इसके अतिरिक्त 11 उप या वैकल्पिक न्यायाधीश (Alternative or Substitutive or Deputy Judges) होते है। 1943 ई के यायिक सगठन विधि (Law on Judicial Orga nisation) के अधीन सघीय यायालय का सगठन निर्धारित किया गया है। इस विधि के अधीन न्यायाधीशो की अधिकतम सख्या 26 से 28 तक एव वैकल्पिक न्यायाधीशा की सख्या 11 से 13 तक निश्चित कर दी गयी है।

सघीय न्यायालय की शक्तिया एव क्षेत्राधिकार—स्विस सघीय न्यायालयो को दीवानी, अपराधिक, सवैधानिक एव प्रशासकीय विवादो मे मौलिक एव पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

(अ) दीवानी क्षेत्राधिकार—परिसघ एव कैण्टनो, कैण्टनो के मध्य एव परिसघ तथा कैण्टन और कैण्टनो एव नागरिको के मध्य 4000 फ्रेंक से अधिक मूल्य के दीवानी विवादो मे सघीय यायालय को क्षेत्राधिकार प्राप्त है। कुछ विशेष प्रकार के नागरिका के पारस्परिक विवादा (यथा—राष्ट्रीयता एव नागरिकता सम्बन्धी विवाद) म भी न्यायालय को मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

परिसघ को अन्य विवादो के सम्बन्ध मे न्यायालय के क्षेत्राधिकार को वढाने का अधिकार सविधान द्वारा प्रदान किया गया है (अनुच्छेद 144)। इसके अतिरिक्त व्यापार एव चल सम्पत्ति, ऋण दिवालियापन, कॉपीराइट सरक्षण एव औद्योगिक आविष्कारो सम्ब धी सभी विधियो को देश म समान रूप से क्रियान्वित करना सघीय न्यायालय का दायित्व है। कैण्टनो के उच्च न्यायालया के 4 हजार फ्रेंक से अधिक मूल्य के सघीय विवादो के निणयो के विरुद्ध अपील सघीय न्यायालय म हो सकती है (अनुच्छेद 111)।

(ब) अपराधिक क्षत्राधिकार—सघीय न्यायालय को निम्न विवादो मे फौजदारी या अपराधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं

(1) परिसघ के विरुद्ध देशद्रोह एव सघीय अधिकारियो के विरुद्ध विद्रोह एव हिंसा सम्बन्धी विवाद।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध अपराध एव अभियोग।

(3) राजनीतिक अपराध एव दुराचार के ऐसे मामले जिनके कारण अव्यवस्था के व्याप्त होने स सघीय हस्तक्षप आवश्यक हो जाय।

(4) सघीय उच्च प्राधिकारी (authority) द्वारा नियुक्त किसी अधीनस्थ अधिकारी से सम्बन्धित अपराधिक मामला यदि सघीय प्राधिकारी द्वारा न्यायालय के समक्ष विवाद को प्रस्तुत किया जाता है।

न्यायालय के फौजदारी क्षेत्राधिकार म परिसघ को वृद्धि का अधिकार प्राप्त है।

फौजदारी न्याय काय के लिए सघीय न्यायालय को चार कक्षा—सघीय फौजदारी न्यायालय (Federal Criminal Courts) अभियोग न्यायालय (Court of Accusation) सुनवाई न्यायालय (Court of Caussation) एव सुनवाई का सप्त न्यायाधीश असाधारण न्यायालय (Extraordinary Court of Caussation of Seven Judges) म विभाजित किया गया है। फौजदारी विवादो को निपटाने के लिए सघीय न्यायालय का फौजदारी कक्ष समय समय पर भ्रमणशील न्यायालय के रूप म देश के पाच विभिन्न केन्द्रो पर अपने सम्मेलन करता है एव विवादो मे निणय देता है। सम्बन्धित क्षेत्र की जनता द्वारा जूरी के सदस्यो को 6 वष के लिए निर्वाचित किया जाता है। किसी अपराधी व्यक्ति को दण्ड देने के लिए 5/6 जूरियो का समथन आवश्यक होता है।

(स) सवधानिक क्षेत्राधिकार—सघीय न्यायालय को निम्न सविधानिक माम म क्षेत्राधिकार प्राप्त है

(1) परिसघ एव कण्टनो के अधिकारियो के मध्य क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवाद।

(2) कैण्टनो के मध्य विधि सम्बन्धी विवाद।

(3) सघ एव कण्टनो क सविधानो तथा कण्टनो के मध्य सन्धियो या समझौतो के फलस्वरूप नागरिक को प्राप्त अधिकारो के अतिक्रमण सम्बन्धी विवाद।

परिसघ एव कण्टनो के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादो म सघीय न्यायालय का यह कतव्य है कि वह कण्टन के सविधान की तुलना म सघीय सविधान एव कण्टनो की सामान्य विधियो एव आदेशो की तुलना म कण्टनो के सविधानो को महत्व एव प्राथमिकता प्रदान करे।

(द) प्रशासकीय क्षेत्राधिकार—1928 ई से सघीय न्यायालय को सीमित प्रशासकीय क्षेत्राधिकार प्राप्त हो गया है। उसे सावजनिक अधिकारियो की विधिक क्षमता सम्बन्धी विवादो का निणय करने के साथ साथ रलवे एव करो सम्बन्धी अनेक विवादो को निणय करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

सघीय यायालय की स्थिति—सघीय देशा की यायपालिका को सामा यत सौपे जान वाला प्रमुख दायित्व सविधान का निवचन स्विस सघीय यायालय को नही सौपा गया है और लिखित सविधान वाले देशो मे व्यक्तिगत स्वत त्रता हेतु प्रदत्त अनियन्त्रित यायिक पुनर्रीक्षण का अधिकार भी प्रदान नही किया गया है। सयुक्त राज्य अमेरिका एव स्विस सघीय याय-व्यवस्था मे पर्याप्त अ तर है। स्विस सघीय यायालय राष्ट्रीय यायालय है पर तु सयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च यायालय की भाति इस यायालय के अधीन सघीय अधीनस्थ यायालयो की देशव्यापी शृखला नही है। स्विस सघीय यायालय को अपने निणया को क्रिया वित करने के लिए कैण्टनो के अधिकारो पर निभर रहना पडता है। दोना यायालया म मुख्य भेद तो शक्तिया सम्ब धी है। अमेरिकी सर्वोच्च यायालय को काग्रेस एव राज्यो की विधियो को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है लेकिन स्विस सघीय यायालय को इनती व्यापक यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति प्राप्त नही है। वह केवल कैण्टनो की विधियो को ही अवैधानिक घोषित कर सकता है। सघीय सभा की विधियो के स दभ मे उस यह शक्ति प्राप्त नही है। सविधान द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सघीय यायालय सघीय सभा द्वारा पारित प्रत्येक विधि को लागू करेगा (अनुच्छेद 113) तथा स्वीकृत प्रत्यक स धि एव समझौत को मा यता प्रदान करेगा। सविधान की व्याख्या एव सघीय विधियो के निवचन का अधिकार सघीय सभा को प्रदान किया गया है। अमेरिकी विधिवेत्ताओ को यह स्थिति किसी अवस्था मे भी स्वीकाय नही हो सकती क्योकि उनके मतानुसार सविधान द्वारा प्रदत्त शक्तिया का अतिक्रमण विधानमण्डल किसी भी अवस्था मे नही कर सकता। विधानमण्डल को विधिया के निवचन का अधिकार प्रदान करना अधिकारो का अतिक्रमण करने वाले अधिकारी को स्वय अपने ही मामले मे यायाधीश के दायित्व सौप देने के समान है। अमरिकी सर्वोच्च यायालय को प्रशासनिक अधिकारिया से सम्ब धित मामलो मे स्विस सघीय यायालय की अपेक्षा व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है।

स्मरणीय है कि महाद्वीपीय देशो म यायपालिका कायपालिका एव व्यवस्थापिका के अधीन होती है। स्विस सविधान मे इसी मा यता को स्वीकार किया गया है। जनमत सग्रह की प्रत्यक्ष प्रजात त्रीय व्यवस्था के कारण स्विटजरलण्ड म यायिक पुनर्रीक्षण की कोई व्यावहारिक उपयोगिता भी नहा है। इसके अतिरिक्त अनेक महत्वपूण मामले स्विस सघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार मे नही हैं। उदाहरणाथ, सघीय कार्यपालिका एव सघीय यायालया के मध्य विवादा का निणय सघीय सभा करती है। स्पष्ट है स्विस सघीय यायालय को अमेरिकी सर्वोच्च यायालय की भाँति अपने अधिकार सम्ब धी मामला म निणय की शक्ति प्राप्त नही है। रेपाड ने स्विस सघीय न्यायालय के स दभ म कहा है कि सघीय न्यायालय को सघीय विधिया का अवैध घोषित करन के अधिकार दने का अथ एक अत्यन्त कमजोर यायपालिका

पर ऐसा मार डालना है जिसके कारण कमी-कमी अमेरिकी यायपालिका लडखडाती हुई प्रतीत होती है।[23]

यायाधीशा की नियुक्ति एव कायकाल तथा यायालय के सगठन की दृष्टि से मी स्विस एव अमेरिकी सर्वोच्च यायालया म अन्तर है। स्विस यायाधीश सघीय विधानमण्डल द्वारा चुने जाते हैं। अमेरिकी सर्वोच्च यायालय के यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के अनुमोदन से नियुक्त किये जाते हैं। व्यवहार म मले ही स्विस यायाधीशा का कायकाल जीवनपयन्त हो परन्तु विधिक दृष्टि स वे कवल 6 वप के लिए ही नियुक्त किय जात हैं। अमेरिकी यायाधीश सदाचरणपयन्त अपने पद पर आसीन रहते हैं। यह स्पष्ट है कि स्विस सघीय यायालय अमरिका एव मारतीय सर्वोच्च यायालय की मांति शक्तिशाली नही है। अमेरिका म यायिक प्रधानता को स्वीकार किया गया है जबकि इगलण्ड म ससदीय सप्रमुता को। इसके विपरीत, स्विटजरलैण्ड म प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र अर्थात जन प्रमुत्व का सिद्धान्त मान्य है। स्विटजरलैण्ड म यायालय एव विधानमण्डल के सन्दम म ससदीय सप्रमुता को मान्यता दी गयी है। मारत म यायिक एव ससदीय प्रधानता के मध्य के माग का अनुसरण किया गया है। जचर का मत है कि स्विस सघीय यायालय को यदि यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति दे मी दी जाती तो मी अपने सीमित एव अव्यवस्थित क्षेत्राधिकार के कारण वह सघीय विधियो के पुनर्रीक्षण का प्रमावशाली यन्त्र नही हो सकता था।[24]

सक्षेप म स्विस शासन म सघीय यायालय का वह महत्व नही है जो अमेरिका एव मारतीय शासन व्यवस्थाओ म इन देशो के सर्वोच्च यायालयो का है

कनाडा की न्यायपालिका

कनाडा सघीय देश है। कनाडा म सघीय एव प्रान्तीय यायपालिकाएँ हैं, परन्तु वे पृथक यायपालिकाएँ नही हैं क्योकि उनके मध्य विमाजन रखा लम्बाकार न होकर समानान्तर (horizontal) है। सघीय शासन को सामान्य पुनरावेदनीय एव अय अतिरिक्त यायालयो की विधि द्वारा स्थापना का अधिकार है।[25] सघीय यायपालिका

---

23 To endow it with the right of disavowing Federal statute would therefore be to impose on a much weaker court a much heavier burden than that under the American Judiciary some times seems to be staggering today'—Rappard, W F *The Government of Switzerland* 1936 p 91

24 In view of the Tribunal s limited and unsystematic jurisdiction, it could hardly serve as an effective instrument of reviewing Federal legislation judicially even if such a power was inhered in it —Zurcher cited by V D Mahajan *Select Modern Governments*, 1964 p 237

25 Section 101

मे दो यायालय है प्रथम, सर्वोच्च न्यायालय, और द्वितीय, वित्तीय एव नौ सैनिक न्यायालय (Court of Exchequer and Admiralty)। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त म उच्च जिला एव काउण्टी यायालय होते है। सघीय यायालयो को सघीय विधिया एव प्रान्तीय विधियो सम्बन्धी विवादो को सुनने का अधिकार होता है। प्रान्तीय उच्च न्यायालयो का सगठन विभिन्न प्रान्तो मे भिन्न भिन्न है, उदाहरणाय नोवोस्कोशिया म एक उच्च न्यायालय है तथा एक एक न्यायाधीश स्थान-स्थान पर जाकर उच्च पुनरावेदनीय न्यायालय के रूप मे काय करते है, ओ टोरियो मे उच्च यायालय की दो शाखाएँ है—पुनरावेदनीय यायालय (Court of Appeal) एव उच्च न्यायालय (High Courts)। सभी प्रान्तीय न्यायाधीशो को सम्बन्धित मन्त्रिमण्डलो की सलाह पर नियुक्त किया जाता है। वे सदाचरणपयन्त अपने पद पर काय करते है।[6] उनका वेतन, भत्ता एव पदनिवत्ति वेतन सदन द्वारा निश्चित किये जाते है तथा उनके पदावधि-काल मे उन्ह कम नही किया जा सकता।

सर्वोच्च यायालय की स्थापना 1875 ई मे की गयी थी। 1952 ई मे इस न्यायालय के सगठन, शक्तियो आदि के सम्बन्ध मे नवीन विधि पारित की गयी है। सर्वोच्च यायालय म एक मुख्य न्यायाधीश एव आठ अन्य न्यायाधीश होते ह।[27] वे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामश पर गवनर जनरल (राज्याध्यक्ष) द्वारा नियुक्त किये जाते है। सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य कार्यालय ओटावा (Ottawa) मे ह। सभी यायाधीश सदाचरणपयन्त अपने पद पर रहते हैं परन्तु 75 वप की आयु पर वे अनिवायत अवकाश ग्रहण कर लेते है। न्यायाधीशो को ससद के दोना सदनो द्वारा प्रस्ताव पारित करने पर ही पदच्युत किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय एव परामशदायी क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उसे दीवानी एव अपराधिक दोना ही मामलो म पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। अपराधिक मामला मे अपील सर्वोच्च यायालय मे तभी की जा सकती है जबकि प्रान्तीय पुनरावेदनीय यायालय (Court of Appeal of the Province) ने सवसम्मत निणय न दिया हो। सर्वोच्च न्यायालय को विभिन्न प्रान्तो क सन्दभ म भिन्न पुनरावदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सघीय शासन का विधि द्वारा अपीलीय क्षेत्राधिकार को कम करने या बढान के अधिकार प्राप्त हैं। प्रान्तीय विधानमण्डला को इस सम्बन्ध म कोई अधिकार प्राप्त नही है। इसके अतिरिक्त निर्वाचन सम्बन्धी अपीलो का निणय भी सर्वोच्च न्यायालय ही करता है। गवनर जनरल को किसी विधि या घटना के सम्बन्ध म सर्वोच्च न्यायालय से परामश करन का भी अधिकार ह। इसके अतिरिक्त कॉमन्स

26 Section 99

27 प्रारम्भ मे सर्वोच्च न्यायालय म कुल 6 न्यायाधीश थे। 1927 ई म यह सख्या 6 थी परन्तु 1949 ई म बढकर 8 हो गयी थी।

सभा एव सीनेट द्वारा व्यक्तिगत विधेयका को परामश हेतु यदि यायालय को भेजा जाता है तो उन्हे यायालय परामश देता है । 1933 ई तक अपराधिक मामला की अपीले इगलण्ड की प्रीवी परिषद की यायिक समिति द्वारा सुनी जाती थी । 1939 ई म दीवानी मामला की अपीला को इगलण्ड की प्रीवी परिषद की यायिक समिति को भेजन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है । अत सर्वोच्च न्यायालय कनाडा का सर्वोच्च सघीय पुनरावदनीय यायालय है । इस यायालय को यायिक पुनर्रीक्षण (Judicial review) की शक्ति भी प्राप्त है । सघीय एव प्रान्तीय विधानमण्डल द्वारा पारित विधिया को उनके सविधान विरोधी होने की अवस्था म असवधानिक घोषित करन का अधिकार प्राप्त है ।

वित्तीय एव नौसनिक यायालय

इस यायालय की स्थापना 1875 ई म सर्वोच्च यायालय के अग क रूप म हुई थी । 1952 ई म Exchequer Act के अन्तगत इस यायालय को पृथक यायालय का स्तर प्रदान किया गया है । इसम एक अध्यक्ष एव पाँच यायाधीश होत हैं जो सपरिषद गवनर जनरल द्वारा नियुक्त किय जाते हैं । इन यायाधीशा का कायकाल सदाचरणपयन्त होता है परन्तु 75 वष की आयु प्राप्त करने पर वे अनिवायत अवकाश ग्रहण कर लेते है ।[28] वे गवनर जनरल द्वारा कॉमन्स सभा एव सीनेट के प्रस्ताव पर पदच्युत किय जा सकते है । इस यायालय को क्राउन के विरुद्ध दायर किये जाने वाले सभी सघीय विषयो सम्बन्धी मुकदमो म मौलिक क्षेत्राधिकार तथा नौसेना सम्बन्धी विवादो मे मौलिक एव पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। पेटेन्ट कापीराइट, ट्रेड माक एव औद्योगिक मामला सम्बन्धी विवाद भी इसी यायालय के क्षेत्राधीन हैं । इस यायालय के विशिष्ट दायित्व हैं अत यह यायालय अमेरिकी सघीय यायालय की भाँति का यायालय नही है । 500 पौण्ड से अधिक मूल्य के विवादा म ही इस यायालय क निणयो के विरुद्ध अपील सर्वोच्च यायालय म सम्भव है । इसके अतिरिक्त निम्न विवादा म भी इस यायालय के निणयो के विरुद्ध अपील की जा सकती है (1) किसी सघीय या प्रान्तीय विधेयक की वधता सम्बन्धी प्रश्न पर, एव (2) शासन क किसी पद क शुल्क एव कतव्य, किराया, राजस्व आदि विवादो स सम्बन्धित प्रशासनिक निणय । इन विवादो मे अपील तभी सम्भव है जब सर्वोच्च यायालय द्वारा विशष अपील (Special leave to Appeal) की अनुमति प्रदान की गयी हो ।

कनाडा की डोमीनियन या सघीय सरकार को ही सघीय एव प्रान्तीय यायालयो के यायाधीशा की नियुक्ति वेतन एव पदच्युति के सम्बन्ध म निणय लेने के अधिकार हैं ।[29] इसक कुछ ही अपवाद है । इसके अतिरिक्त अपराधिक विवादो के

---

28 Section 99 of the British North America Act 1867

29 Section 92 (14) नोवोस्कोशिया एव न्यू ब्रुशविक क Courts of Probate क यायाधीशो को गवनर जनरल नियुक्त नही करता ।

सम्बन्ध म पद्धति निधारित करने का अधिकार डामीनियन शासन को प्राप्त है। कनाडा का सर्वोच्च न्यायालय कुछ मामला म ता अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक शक्तिशाली है। उस विशुद्ध प्रान्तीय विषया सम्बन्धी विवादा म प्रान्तीय न्यायालया व निणया के विरुद्ध अपीलें सुनन का अधिकार है। लेकिन अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भाँति इस न्यायालय को सविधान की व्याख्या का अधिकार प्राप्त नही है क्योकि कनाडा की सघीय सरकार को प्रान्तीय विधेयका को अस्वीकार करने का अधिकार है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ सघीय शासन म निहित हैं।[30] भारत एव आयरिश सर्वोच्च न्यायालय की भाँति ही कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय को परामशदायी क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

आस्ट्रेलिया की न्यायपालिका

आस्ट्रेलिया एक सघीय राज्य है। आस्ट्रेलिया की न्यायिक शक्ति आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय (High Court of Australia) एव उन अन्य सघीय न्यायालया मे निहित है जिनकी समद स्थापना करती है। *उच्च न्यायालय के अतिरिक्त दो अन्य* सघीय न्यायालय हैं (1) सघीय दिवालिया न्यायालय (Federal Court of Bankruptcy)[31], एव (2) राज्य का औद्योगिक न्यायालय (Commonwealth Industrial Court)[32]। राज्यो की अपनी न्यायपालिका होती है जिनमे विभिन्न न्यायालय हैं। इनक न्यायाधीशा को राज्यो के गवनरो द्वारा नियुक्त किया जाता है।

आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय सघीय न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च न्यायालय है। मन्त्रियो के परामश पर गवनर जनरल द्वारा इसके न्यायाधीशो को नियुक्त किया जाता है। उनका कायकाल सदाचरणपयन्त होता है। इस समय उच्च न्यायालय मे एक मुख्य न्यायाधीश एव 6 अन्य न्यायाधीश है। दुराचार का आरोप प्रमाणित होने पर तथा ससद के दोना सदनो द्वारा एक ही सत्र मे तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पारित करने पर गवनर जनरल न्यायाधीशो का उनके पद से पृथक कर सकता है। उनके वेतन एव अन्य भत्तो को उनके *कायकाल म इस प्रकार कम नही किया जा सकता है कि उन्हे हानि पहुँचे।* निम्नलिखित विवादा मे उच्च न्यायालय को मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है[33]

किसी सन्धि अथवा अन्य देशा के प्रतिनिधियो एव मन्त्री से सम्बन्धित विवाद, राज्यो के मध्य या विभिन्न राज्यो के नागरिको के मध्य या एक राज्य एव अन्य राज्य के नागरिको के मध्य विवाद, व सभी विवाद जिनमे केन्द्रीय शासन एक पक्ष मे हो तथा केन्द्रीय राज्याधिकारी के विरुद्ध न्यायालय से निषेधाज्ञा की माग की गयी हो,

---

30 Strong *Modern Political Constitutions op cit* p 122

31 यह न्यायालय समस्त दिवालिया सम्पत्ति सम्बन्धी विवादा पर निणय देता है।

32 यह प्रमुख औद्योगिक विवादा सम्बन्धी न्यायालय है।

33 Section 75

बन्दी प्रत्यक्षीकरण तथा परमादेश (Mandamus) सम्बन्धी लेख (writs) सम्बन्धी विवाद, सविधान एव उसकी व्याख्या सम्बन्धी सभी विवादा तथा प्रशासकीय न्यायाधिकरणा क निणया के विरुद्ध अपीला को निश्चित करन के सम्बन्ध म उच्च न्यायालय को मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय को सभी सघीय न्यायालया क निणया एव अपने एस निणया एव आदेशा तथा दण्ड जिनका सम्बन्ध मौलिक क्षेत्राधिकार से होता है के विरुद्ध अपील सुनन का अधिकार है। इसके अतिरिक्त अन्य न्यायालया द्वारा जो सघीय क्षेत्राधिकार के अधीन हो, राज्य क उच्च न्यायालय या अन्य किसी राज्य क न्यायालय या अन्त राज्यीय आयोगा के निणयो के विरुद्ध अपीलें उच्च न्यायालय म की जाती हैं यदि उन विवादो म विधि का कोइ प्रश्न निहित होता है। ऐस समस्त विवादा म उच्च न्यायालय का निणय अन्तिम एव निर्णायक होता है। सक्षप म, उच्च न्यायालय राज्य के न्यायालयो का सामान्य पुनरावदनीय न्यायालय है। केवल छोटे विवादा की अपीलें वहाँ नही हो सकती हैं।

आस्ट्रेलिया की सघीय ससद (कामनवेल्थ की ससद) को उच्च न्यायालय के मौलिक क्षेत्राधिकार मे विधि द्वारा वद्धि का अधिकार है। सविधान ससदीय प्रतिनिधित्व, नौ सेना, जलीय यातायात सम्बन्धी विवादो एव ऐसे सभी विषया म (जिनसे सम्बन्धित विभिन्न राज्या म भिन्न भिन्न विधियाँ प्रचलित हैं) के बारे म उच्च न्यायालय को नवीन मौलिक क्षेत्राधिकार प्रदान कर सकती है।

उच्च न्यायालय को सवधानिक प्रश्ना के निणय का एकाधिकार प्राप्त है एव राज्यो के न्यायालयो एव प्रीवी परिषद की तुलना मे सवधानिक प्रश्नो के बारे म उच्च न्यायालय की स्थिति विशिष्ट है। यद्यपि राज्या की न्यायपालिका को सघीय क्षेत्राधिकार एव सविधान तथा उसकी व्याख्या से सम्बन्धित विवादो को सुनने का अधिकार है परन्तु उच्च न्यायालय ऐसे विवादो को राज्य क न्यायालयो स अपने समक्ष मँगाकर स्वय निणय कर सकता है। केन्द्र एव राज्यो के मध्य शक्तिया के विभाजन सम्बन्धी मामले म राज्य की न्यायपालिका को कोई अधिकार प्राप्त नही है। इसके अतिरिक्त सविधान की धारा 74 के अधीन सवधानिक प्रश्नो के मामले म स्वय न्यायालय के निणय क विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय की विशेष अनुमति के बिना नही हो सकती है। ऐसा अवसर भी केवल एक ही बार आया है जबकि उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार की अनुमति प्रदान की गयी है। आस्ट्रेलिया मे यह मान्यता है कि सवैधानिक प्रश्न आस्ट्रेलिया म ही तय होना चाहिए। अत केन्द्र एव राज्या के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादो म उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायाधिकरण है।

आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भाति ही सविधान का सरक्षक है। स्ट्रांग क अनुसार, आस्ट्रलिया की सघीय न्यायपालिका के उच्च न्यायालय को अमरिका की भाँति ही सविधान की व्याख्या एव राज्यो एव सघ

तथा राज्या के पारस्परिक विवादो का निणय करने का अधिकार है।[34] लेकिन इन न्यायालयो म दो मुख्य भेद हैं (क) अमेरिकी सर्वोच्च यायालय के निणय के विरुद्ध कोई अपील नही की जा सकती जबकि आस्ट्रेलिया के उच्च यायालय के निणय के विरुद्ध विशेष परिस्थितियो मे अपील प्रीवी परिषद मे की जा सकती है। (ख) आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय को राज्या के सर्वोच्च यायालयो के राज्य विधि सम्ब धी विवादो के निणयो के सम्ब ध मे अपीले सुनने का अधिकार है पर तु अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नही है।[35]

इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया मे अमेरिकी सघीय याय व्यवस्था जसी व्यापक यायालयो की शृखला नही है। आस्ट्रेलिया मे राज्य न्यायालय ही सघीय विवादो के निणय करते है। प्रत्येक राज्य की अपनी पृथक यायपालिका है। आस्ट्रेलिया की सघीय तथा राज्यीय न्याय व्यवस्था के शीष पर प्रीवी परिषद की यायिक समिति है। राज्यो के क्षेत्राधिकार सम्ब धी विवादो की अपीलें राज्या के उच्च यायालयो से प्रीवी परिषद मे की जा सकती है।

आयरलैण्ड (आयरिश स्वतन्त्र गणराज्य) की न्यायपालिका

आयरिश गणत त्रीय सविधान मे सावजनिक न्यायालयो द्वारा याय के सम्पादन की व्यवस्था है। शासन के परामश पर न्यायाधीशो की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। सभी न्यायाधीशो को काय सम्पादन म पूण स्वत त्रता प्राप्त है। उनका वेतन उनके कायकाल के मध्य मे कम नही किया जा सकता और दुराचार एव अयोग्यता के अतिरिक्त अ य किसी कारण यायाधीश को पदच्युत नही किया जा सकता। यह तभी सम्भव है जबकि ससद के दोनो सदनो द्वारा तत्सम्ब धी प्रस्ताव पारित किया जाय।

आयरलण्ड का सर्वोच्च यायालय सर्वोच्च न्यायिक निकाय है। इसमे एक मुख्य यायाधीश एव चार अ य न्यायाधीश होते है। इसे मौलिक एव पुनरावेदनीय, दोनो ही प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च यायालय राष्ट्रपति को सवधानिक प्रश्नो पर परामश प्रदान करता है। उच्च न्यायालय (High Court) क निणया के विरुद्ध अपीलें सर्वोच्च न्यायालय म सुनी जाती है। क्षेत्रीय न्यायालयो के केवल उ ही निणयो के विरुद्ध अपील सर्वोच्च न्यायालय म की जा सकती है जिनम विधि का कोई प्रश्न निहित होता है।

आयरिश न्यायिक सगठन के शीष पर सर्वोच्च न्यायालय है। उसके नीचे उच्च न्यायालय (High Court), फौजदारी पुनरावेदनीय न्यायालय (Court of Criminal Appeal) एव क्षत्रीय तथा जिला न्यायालय होत हैं।

---

34 Strong *op cit*, p 118
35 *Ibid*

उच्च न्यायालय को दीवानी एवं फौजदारी (अपराधिक) दोनों ही विवादों में मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। किसी विधि की वैधानिकता के परीक्षण का इस न्यायालय को मौलिक क्षेत्राधिकार होता है। क्षेत्रीय न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें उच्च न्यायालय में सुनी जाती है। इसका एक अध्यक्ष होता है जो सर्वोच्च न्यायालय का पदेन सदस्य होता है। इसके अतिरिक्त 6 अन्य न्यायाधीश होते हैं। **फौजदारी पुनरावेदनीय न्यायालय** में एक मुख्य न्यायाधीश या सर्वोच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश होते हैं। सार्वजनिक विधि से सम्बन्धित मामलों को छोड़कर शेष सभी मामलों में इस न्यायालय के निर्णय अन्तिम होते हैं। सार्वजनिक विधि सम्बन्धी विवादों की अपीलें सर्वोच्च न्यायालय में की जाती हैं। क्षेत्रीय एवं जिला न्यायालय स्थानीय अदालतें हैं एवं उनके क्षेत्राधिकार भी सीमित होते हैं।

जापान की न्यायपालिका[36]

नवीन संविधान के पूर्व जापानी न्याय व्यवस्था पर जर्मन न्याय व्यवस्था का प्रभाव था। न्यायपालिका स्वतन्त्र नहीं थी। वह कार्यपालिका का एक अंगमात्र थी। लेकिन नवीन संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। देश की सम्पूर्ण न्यायिक सत्ता सर्वोच्च न्यायालय एवं विधि द्वारा स्थापित अन्य अधीनस्थ न्यायालयों में निहित है। किसी अन्य विशिष्ट न्यायालय की स्थापना नहीं की जा सकती और संविधान के अनुसार अन्तिम रूप में न्यायिक सत्ता किसी कार्यपालिका अभिकरण को नहीं दी जा सकती है।

सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश होता है तथा अन्य न्यायाधीशों की संख्या संसद को विधि द्वारा निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है। संसदीय विधि के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा 14 अन्य न्यायाधीश हैं। इनमें 10 न्यायाधीश उच्च विधिक योग्यता के आधार पर चुने जाते हैं तथा शेष न्यायाधीशों का विभिन्न क्षेत्रों में से निर्वाचित किया जा सकता है। मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त शेष सभी न्यायाधीश मन्त्रिमण्डल द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। संविधान के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति के पश्चात प्रतिनिधि आगार के लिए होने वाले प्रथम निर्वाचन के समय उनकी नियुक्ति की समीक्षा जनता द्वारा की जाती है एवं प्रति 10 वर्ष की अवधि के समाप्त होने पर प्रतिनिधि आगार के निर्वाचन के समय जनता द्वारा न्यायाधीशों के कार्य की समीक्षा की व्यवस्था है। यदि जनता बहुमत द्वारा किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने का समर्थन करती है तो उसे पदच्युत किया जा सकता है।[37] समीक्षा के सम्बन्ध में जापानी डाइट (संसद) को व्यापक विधियाँ बनाने का

---

36 Refer to Chapter VI of the Japanese Constitution Articles 76 82

37 Article 79

अधिकार प्रदान किया गया है। संसद को पदनिवृत्ति सम्बन्धी आयु सीमा निर्धारित करने का अधिकार दिया गया है। संसदीय विधि द्वारा यह आयु 70 वर्ष निश्चित की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय व न्यायाधीशों का वेतन एवं भत्ता उनके कार्य-काल के दौरान कम नहीं किया जा सकता है। कार्यपालिका या उसके किसी अभिकरण या अंग को न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासन सम्बन्धी कोई कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को सार्वजनिक महाभियोग के आधार पर पद से पृथक किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय जापानी न्याय व्यवस्था के शिखर पर अधिष्ठित है। इसे केवल पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है तथा यह न्यायालय विधि सम्बन्धी अपीलों की सुनवाई करता है। इसे विधि, आदेश, नियम एवं शासकीय कार्यों की वैधानिकता के सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार है।[38] संविधान सर्वोच्च विधि है तथा राज्य की विधियों, अधिनियमों, साम्राज्ञीय आज्ञाओं एवं शासन के अनेक अन्य कार्यों को जो संविधान की किसी धारा के विपरीत होते हैं, सर्वोच्च न्यायालय उन्हें अवैधानिक घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय अधिवक्ताओं, न्यायालयों के आन्तरिक संगठन एवं प्रशासन तथा न्यायिक कार्यपद्धति सम्बन्धी नियमों का निर्माण करता है।[39] अधीनस्थ अदालतों के न्यायाधीशों की नियुक्ति मन्त्रिमण्डल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तैयार की गयी न्यायाधीश की सूची में से करता है। ऐसे सभी न्यायाधीश दस वर्ष के लिए नियुक्त किये जाते हैं। वे पुनः नियुक्त किये जा सकते हैं। उन्हें समुचित पारिश्रमिक दिये जाने की व्यवस्था है और वह उनके कार्यकाल के दौरान कम नहीं किया जा सकता।[40] स्पष्ट है, जापान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गयी है। ब्रिटेन की भाँति ही जापान में न्यायपालिका के सन्दर्भ में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अनुगमन किया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय के अधीन आठ उच्च न्यायालय हैं। सम्पूर्ण जापान को आठ प्रधान न्यायिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। इन न्यायालयों को अधिकांशतः पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। अधिकांश मामलों में इनके निर्णय अन्तिम होते हैं। उच्च न्यायालयों के अधीन 50 जिला न्यायालय हैं। इसके अतिरिक्त जापान में निम्न न्यायालय एवं घरेलू न्यायालय (Summary Courts and Domestic Courts) नामक अधीनस्थ अदालतें भी हैं।

समीक्षा—नवीन जापानी संविधान की न्यायिक व्यवस्था परम्परागत जापानी व्यवस्था के ठीक विपरीत है। फलस्वरूप न्यायालय कार्यपालिका की भाँति अपना

38 Article 81
39 Article 77
40 Article 80

काय करते है। नवीन व्यवस्था का आधार आंग्ल अमरिकी न्यायिक व्यवस्था है जिसमे न्यायिक पुनर्रीक्षण का विचार अन्तर्निहित है। यह सिद्धान्त जापान मे हजारो वर्षों से प्रचलित कन्फ्यूशियन नतिक व राजनीतिक परम्पराओ के प्रतिकूल है। सर्वोच्च न्यायालय सवधानिकता सम्बन्धी निणय देने वाला सर्वोच्च न्यायालय है। अत जापान का सर्वोच्च न्यायालय अमरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भाँति ही न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्तियो से युक्त है। परन्तु अनुच्छेद 41 मे इसके विपरीत व्यवस्था है। अनुच्छेद 41 के अन्तगत जापानी ससद (डाइट) राजकीय शक्ति का सर्वोच्च अग है। इसका अथ है जापान मे ब्रिटिश ससद की भाँति ही ससदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त मान्य है। अत न्यायालय उसके द्वारा पारित विधि की समीक्षा नही कर सकता। लेकिन दूसरी तरफ सर्वोच्च न्यायालय को राजकीय विधि, आदश, नियम एव कार्यों की वधानिकता सम्बन्धी निणय देने वाला अन्तिम अधिकृत न्यायालय कहा गया है। यह दोनो व्यवस्थाए परस्पर विरोधी हैं। यह विरोध जापान की न्यायपालिका के जीवन मे स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है। लेकिन जापानी न्यायपालिका नागरिक अधिकारो एव सुविधाओ की रक्षा करने मे पर्याप्त सजग एव सफल है। डाइट के सन्दभ मे सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति बडी नाजुक है। सम्भवत इसी कारण जापानी सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति का प्रयोग नही किया है और किसी शासकीय नियम आदेश कायवाही एव विधि को अवध घोषित नही किया है। ससदीय सर्वोच्चता एव न्यायिक पुनर्रीक्षण के सिद्धान्त परस्पर विरोधी है। एक साथ दोनो की व्यवस्था जापानी सविधान का एक विरोधाभास है। यदि भविष्य मे जापानी सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति का प्रयोग करता है तो ससद एव न्यायपालिका मे वधानिक सकट उत्पन्न हो सकता है।

फ्रान्स की न्याय व्यवस्था

फ्रास की न्याय व्यवस्था की मुख्य विशषताएँ निम्नवत है

(1) फ्रास मे दो प्रकार के न्यायालय है—प्रशासकीय न्यायालय एव सामान्य न्यायालय। प्रशासकीय न्यायालयो मे शासन से सम्बन्धित विवादो के निणय किये जात है। सामान्य न्यायालयो मे सामान्य जनता से सम्बन्धित दीवानी एव फौजदारी मामलो के निणय होते हैं।

(2) सामान्य न्यायालयो मे विवादो के निणय तीन न्यायाधीशो की एक पीठ द्वारा किये जाते हैं क्योकि एक न्यायाधीश के सरलतापूवक प्रभावित होने की आशका रहती है।

(3) फ्रास मे न्यायाधीशो को समुचित पारिश्रमिक नही दिया जाता है फलत न्यायपालिका की तरफ श्रेष्ठ एव बुद्धिमान व्यक्ति नही होते है।[41]

---

41 *Ibid*, p 228

(4) फ्रास की विधि सहितावद्ध है। विभिन्न सहिताओ के अनुच्छेद न्यायिक निणय के आधार होते है। इगलैण्ड की भाति फ्रास मे कॉमन लॉ जैसी कोई विधि नही है। अपितु फ्रास मे एक भी ऐसी विधि नही है जो सहितावद्ध न हो।[4]

सहितावद्ध विधि (code law) एव केस लॉ (case law) पर आधारित निणयो मे आधारभूत अन्तर होता है। आग्ल-सेक्सन देशो मे नजीरो (precedents) पर विशेष वल दिया जाता है परन्तु फ्रास मे न्यायाधीश प्रत्येक मामले के अनुसार स्वतन्त्र रीति से विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि के अनुसार निणय देते हैं। इसीलिए न्यूमन ने कहा है कि फ्रास के न्यायिक निणयो मे सामाजिक एव आर्थिक परिवतन सहज ही परिलक्षित नही होते है। तत्सम्बन्धी परिवतन न्यायालय द्वारा न होकर विधानमण्डल द्वारा किये जाते है। अत कॉमन लॉ पद्धति की अपेक्षा फ्रेंच प्रणाली कही अधिक कठोर है।

(5) फ्रास मे न्यायाधीश सावजनिक हितो के रक्षाथ सदव तत्पर रहते हैं फलत अपराधी दण्ड के बिना बच नही सकता है। इगलैण्ड मे प्रचलित इस मान्यता मे उनका विश्वास नही है कि 99 अपराधियो को मुक्त करने मे कोई दोष नही है परन्तु कही ऐसा न हो कि कोई निर्दोष व्यक्ति दण्डित हो जाय। किन्तु इसका यह भी अथ नही है कि फ्रेंच न्यायाधीश अपराधियो को दण्डित करने के लिए तत्पर रहते हैं।

(6) फ्रास मे न्यायाधीशो का चुनाव ब्रिटिश न्याय-प्रणाली से भिन्न तरह से होता है।[43] इगलैण्ड एव भारत मे न्यायाधीश वकील वग मे से चुने जाते हैं। भारत मे निम्न न्यायपालिका के न्यायाधीशो का चयन लोक-सेवा आयोग करता है। जो फ्रासीसी अपने जीवन के प्रारम्भिककाल मे न्यायाधीश होने का निश्चय करते हैं एव प्रतियोगी परीक्षा मे भाग लेते हैं वे उपयुक्त पाये जाने पर न्यायपालिका के लिए चुन लिये जाते हैं। उनके पश्चात वे एक के पश्चात दूसरे उच्च न्यायिक पदो को पदोन्नति द्वारा प्राप्त करते चले जाते हैं। फ्रेंच न्यायाधीशो को ब्रिटिश या भारतीय न्यायाधीशो की भाँति स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती। उसका कारण यह है कि वे न्याय-मन्त्रालय के अधिकारी होते हैं तथा न्यायाधीशो की सर्वोच्च परिषद (Supreme Council of Magistrature) द्वारा उनकी नियुक्ति एव पदोन्नति की जाती है। कार्टर एव रेने का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार सर्वोच्च परिषद के सदस्यो मे राजनीतिक एव विधिक योग्यता के समान सदस्य होते हैं। 6 सदस्य राष्ट्रीय असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं और 4 पदेन न्यायाधीश होते हैं। दो सदस्यो का राष्ट्रपति द्वारा चयन किया जाता है। इनके अतिरिक्त राष्ट्रपति एव न्यायमन्त्री भी परिषद के सदस्य

42 Carter Ranney and Hertz *The Government of France*, p 220
43 *Ibid*, p 224

होते है । अत इस बात की हर सम्भावना है कि सर्वोच्च परिषद दलीय दृष्टिकोण से विचार करे । परन्तु सर्वोच्च परिषद न जो प्रथम नियुक्तियाँ की थी उनम उसने योग्य न्यायाधीशो को ही नियुक्त किया था । अत सर्वोच्च परिषद फासीसी न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का एक सबल साधन प्रमाणित हो सका है ।[44] ततीय गणराज्य म न्याया-धीशो की नियुक्ति न्यायमन्त्री द्वारा की जाती थी । चतुथ गणतन्त्रीय सविधान म सर्वोच्च परिषद की व्यवस्था की गयी थी । फास म अनेक प्रकार क विशेष न्यायालय है यथा—न्यापारिक न्यायाधिकरण, औद्योगिक विकास परिषदें (Industrial Disputes Councils) आदि । इन अदालता क सदस्य न्यायाधीश नही होते । यह न्यायालय पच फसला एव समझौता करात हैं निणय नही देते ।[45]

फास के न्यायालयो का सगठन

फास म दो प्रकार क न्यायालय होते हैं—सामान्य न्यायालयो का सगठन सरल एव एकीकृत है । सवस छोटे न्यायालय Justice of Peace के न्यायालय कहलाते हैं । इनको साधारण दीवानी एव फौजदारी विवादो मे क्षत्राधिकार प्राप्त है । कुछ मामलो म इनका निणय अन्तिम होता है और कुछ निणयो क विरुद्ध अपील की जा सकती है । द्वितीय श्रेणी क न्यायालयो को करेक्शनल कोट (Correctional Courts) कहते हैं । इनको कुछ अधिक महत्वपूण फौजदारी मामला म क्षत्राधिकार प्राप्त होता है । इन न्यायालयो म तीन न्यायाधीश होत हैं । दीवानी मामलो से सम्बन्धित प्रारम्भिक न्याया-लयो को Tribunal of First Instance कहते है । इन अदालतो को औद्योगिक विकास परिषदो एव Juges de paix की अपील सुनने का अधिकार होता है । इनको मौलिक एव पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है । इन न्यायालया के दीवानी मामलो सम्बन्ध निणयो की अपील अपीलीय अदालता (Court of Appeal) एव फौजदारी मामलो के निणयो की अपीलें भ्रमणशील न्यायालयो (Court of Assizes) म की जाती हैं । इन दोनो अदालता को मौलिक एव पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं । फास म 27 अपीलीय न्यायालय हैं । प्रत्येक डिपाटमा (फास का जिला) म एक भ्रमणशील न्यायालय होता है । प्रति तीन माह मे इन न्यायालयो का एक अधिवशन डिपार्टमा क मुख्य क्षत्र म होता है । भ्रमणशील न्यायालयो एव पुनरावदनीय न्यायालयो के कार्यो म अन्तर होता है न कि उनके न्यायाधीशा म ।[46] आज भी जब किसी अपीलीय न्यायालय के मुख्यालय के नगर मे न्यायालयो के अधिवेशन होते हैं तो पुनरावेदनीय न्यायालय के न्यायाधीश ही भ्रमणशील न्यायालय के न्यायाधीशो के रूप म काय करते हैं । पुनरावेदनीय या अपीलीय न्यायालय म पाच न्यायाधीश होते हैं एव भ्रमणशील

44 *Ibid* pp 224 225
45 *Ibid*, pp 230 231
46 *Ibid*, p 235

न्यायालया म तीन न्यायाधीश एव अध्यक्ष होता है। व्यापारिक न्यायाधिकरणो के निणयो के विरुद्ध अपीलें पुनरावेदनीय न्यायालयो मे होती है।

सबसे शीष पर Court of Cessation है। यह सर्वोच्च पुनरावेदनीय न्याया-लय है। वास्तव मे यह पुनरावेदनीय न्यायालय न होकर सशोधन न्यायालय (Court of Revision) है।[47] इसका काय पुनरावेदनीय एव भ्रमणशील न्यायालया के निणयो की विधि सम्बन्धी प्रश्न के आधार पर समीक्षा के पश्चात उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करना है। यह अत्यन्त ही व्यस्त न्यायालय है। फलस्वरूप विवाद को तय होने मे इस न्यायालय मे वर्षों लग जाते है। प्रोक्यूरेटर जनरल, जो अभियोग शाखा का प्रमुख होता है, किसी भी विवाद मे विधि सम्बन्धी प्रश्न पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर सकता है। यह न्यायालय केवल विधि सम्बन्धी तर्कों को सुनता है। इसके तीन विभाग हैं आवेदन (Petition), दीवानी (Civil) एव फौजदारी (Criminal) विभाग। प्रत्येक विभाग म 16 न्यायाधीश होते है।

पचम गणतन्त्र मे न्यायपालिका

फ्रास के पाचवे गणतन्त्रीय सविधान की न्यायिक व्यवस्था मे निम्न दो सस्थाओ की ओर व्यवस्था की गयी है

(i) **न्यायपालिका की उच्च परिषद** (High Council of Judiciary)—फ्रास का राष्ट्रपति इस परिषद का अध्यक्ष होता है तथा न्याय मन्त्री परिषद का पदेन उपाध्यक्ष है। न्याय-मन्त्री राष्ट्रपति के स्थान पर इस परिषद की अध्यक्षता कर सकता है। इसके अतिरिक्त परिषद मे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त नौ अन्य सदस्य होते है। इस परिषद का काय पुनरावेदनीय न्यायालय एव Court of Cessation के न्यायाधीशा के नाम प्रस्तावित करना है। अन्य न्यायाधीशा के सन्दर्भ मे न्याय मन्त्री द्वारा प्रस्ता-वित नामो पर यह परिषद अपना मत व्यक्त करती है। क्षमादान के सम्बन्ध मे परिषद का परामश लेना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त परिषद न्यायाधीशो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कायवाही भी करती है। परिषद फ्रैंच राष्ट्रपति को न्यायिक सत्ता की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने मे सहयोग देती है (अनुच्छेद 54)।

(ii) **उच्च न्यायालय** (High Court of Justice)—एक उच्च न्यायालय की भी व्यवस्था की गयी है। हर निर्वाचन या आशिक निर्वाचन के पश्चात राष्ट्रीय सभा एव सीनेट समान सख्या म इस न्यायालय के सदस्या को निर्वाचित करती है। सदस्यो द्वारा अपने अध्यक्ष को निर्वाचित किया जाता है। दोनो सदना द्वारा राष्ट्रपति पर अभियोग लगाये जाने पर उच्च न्यायालय को निणय का अधिकार है। यह एक प्रकार से राजनीतिक न्यायाधिकरण है।

प्रशासकीय न्यायालय

फ्रास के प्रशासकीय न्यायालया का सगठन सरल है। 1926 ई के पूव प्रति

47 Carter etc *op cit*, p 235

डिपाटमा (जिला) म एक प्रशासकीय न्यायालय होता था। लेकिन प्रत्यक जिला प्रशासकीय न्यायालय क लिए काय के अभाव क कारण अनक जिला को मिलाकर अन्त जिला प्रीफेक्चुरल परिषदो (Inter Departmental Prefectural Councils) की स्थापना की गयी है। यह प्रारम्भिक प्रशासकीय न्यायालय है। इनका क्षत्राधिकार सीमित है। इनका सम्बन्ध केवल स्थानीय अधिकारियो के कार्यों या आदेशो से होता है। पेरिस जिले की एक पृथक परिषद होती है। इसके अतिरिक्त 22 अन्य परिषद है। प्रत्येक परिषद म एक अध्यक्ष एव तीन या चार सदस्य होते हैं। इन परिषदो का 90% काय स्थानीय कर निर्धारण से सम्बन्धित होता है। इसके अतिरिक्त सावजनिक राजमार्गों आदि पर घटित होने वाली घटनाओ की सुनवाई भी इन्ही न्यायालया म होती है।

राज्य परिषद (Council of State) सर्वोच्च प्रशासकीय न्यायालय है। अन्त-जिला प्रशासकीय न्यायालयो से निणयो के विरुद्ध अपीलें राज्य परिषद द्वारा सुनी जाती है। राज्य परिषद से विधियो एव अध्यादेशो के प्रारूप तैयार करने मे शासन परामश करता है। यह एक महत्वपूण न्यायिक सस्था भी है।[48] राज्य परिषद काय दो विभागो म विभाजित है। मुकदमो सम्बन्धी शाखा (Litigation Section) प्रशासकीय मामलो से सम्बन्धित होती है। इस काय को 30 वरिष्ठ अधिकारियो व परिषद करती है। एक चौथाई सदस्य जिलो के अध्यक्षो (Prefects) तथा दो तिहाई सदस्य परिषदो के कनिष्ठ सदस्यो म स पदोन्नति की रीति से चुने जाते है। परिषद क गठन की उपरोक्त रीति के कारण उसके सदस्यो म प्रशासकीय अनुभव प्राप्त अधिकारियो एव न्यायिक योग्यता से सम्पन्न न्यायाधीशो का समन्वय है। मुकदमो सम्बन्धी शाखा के अत्यधिक कायभार के कारण उसे कई उप विभागो म विभाजित कर दिया गया है।

प्रत्येक व्यक्ति को राज्य परिषद मे शिकायत करने का अधिकार है। शिकायत करने के कई आधार हो सकते हैं, शक्ति का दुरुपयोग एव शक्ति का अत्यधिक प्रयोग भी शिकायत का एक आधार बन सकता है। राज्य परिषद को मौलिक एव पुनरावदनीय दोनो ही प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। डूवजर के अनुसार परिषद म एक ही दोष है। इसके निणयो मे अत्यधिक विलम्ब होता है, दो से तीन वष तक एक विवाद म लग जाना साधारण बात है।[49] इसके विपरीत, काटर एव रेने राज्य परिषद को अनेक कारणो से सावजनिक हितो का प्रभावशाली सरक्षक मानते हैं। परिषद की कायपद्धति कम खर्चीली एव सरल है। उच्च अधिकारियो के विरुद्ध निणय देने म परिषद ने सकोच नही किया है। इसके अतिरिक्त परिषद ने

48 Carter etc *op cit*, p 242
49 M Duverger *The French Political System*, p 160

उदारतापूवक व्यक्तिया को क्षतिपूर्ति दिलायी है। प्रशासकीय यायालय फास म अत्य-धिक लोकप्रिय हैं। प्रशासकीय निरकुशता पर प्रशासकीय यायालय सुनिश्चित अव-रोधक का काय करते है। व्यवहार मे प्रशासकीय याय प्रणाली व्यक्तियो के हितो का रक्षा कवच एव अधिकारियो की नैतिकता का सरक्षक प्रमाणित हुई है।[50]

फास मे यायिक पुनर्रीक्षण की व्यवस्था का अभाव है। पाँचवें फ्रेंच गण-तन्त्रीय सविधान मे एक सवैधानिक परिषद की व्यवस्था है (अनुच्छेद 5 से 63 तक)। सवधानिक परिषद को सावयवी विधि (organic laws) एव अन्य विधियो की वैधानिकता के बारे मे निणय करने का अधिकार है। किसी विधि के क्रियान्वित होने के एक माह के अन्दर परिषद अपना निणय दे देती है। यदि विधि का कोई अश परिषद द्वारा अवधानिक घोषित किया जाता है तो वह क्रियान्वित नही किया जाता। सवधानिक परिषद के निणय के विरुद्ध कोई अपील नही हो सकती है। इसके निणय सभी प्रशासनिक एव यायिक अधिकारियो के लिए मान्य होते है। इस परिषद मे 9 सदस्य होते है जो 9 वष के लिए नियुक्त किये जाते हैं। एक तिहाई सदस्य प्रति तीन वष पश्चात अवकाश ग्रहण करते हैं। 3 सदस्य राष्ट्रपति, 3 सदस्य सीनेट एव शेष 3 सदस्य राष्ट्रीय सभा द्वारा नियुक्त किय जाते हैं।

नेपाल की न्यायपालिका

नेपाल मे यायपालिका का सगठन पिरामिड की भाति है जिसके तल पर जिला यायालय एव शीष पर सर्वोच्च यायालय अधिष्ठित है। सविधान द्वारा एकल यायपालिका का निर्माण किया गया है। गाँवो म ग्राम-पचायते हैं। वे देश के सबसे छोटे यायालय हैं। इनके द्वारा स्थानीय एव छोटे यायिक विवादो म निणय दिये जाते हैं।

सर्वोच्च यायालय

इस यायालय मे एक मुख्य यायाधीश एव छ अन्य यायाधीश होते है। मुख्य यायाधीश की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है। वह इस सम्बध मे राजसभा के कुछेक सदस्यो एव सर्वोच्च यायालय के यायाधीशो से परामश कर सकता है। अन्य यायाधीशो की नियुक्ति सम्राट मुख्य यायाधीश के परामश पर करता है। तदथ एव अन्य यायाधीशो की नियुक्ति भी सम्राट द्वारा आवश्यकतानुसार की जा सकती है। मुख्य एव अन्य यायाधीशो के पद सम्बन्धी अहताएँ निम्नवत हैं

(1) वह कम से कम 5 वष तक जिला यायाधीश या अन्य किसी समान यायिक पद पर काय कर चुका हो, अथवा

(2) वह कम से कम 7 वष तक अधिवक्ता के रूप मे कार्य कर चुका हो, अथवा

50 Carter etc *op cit*, p 247

(3) सम्राट की दृष्टि म न्यायविद् हो ।

सभी न्यायाधीश 65 वष की आयु तक अपने पद पर काय करत हैं । अवधि के पूव न्यायाधीशा को स्वेच्छा से पद त्याग का अधिकार है । सविधान म न्यायाधीश को पदच्युत करने की विशेष प्रक्रिया का उल्लेख है । सम्राट स्वेच्छापूवक या राष्ट्रीय पचायत के प्रस्ताव पर एक या अधिक सदस्यीय एक आयोग नियुक्त करता है जो सम्बन्धित न्यायाधीश की अक्षमता एव दुराचार सम्बन्धी आरोपो की जाँच करता है। इस आयोग के सदस्यो की योग्यता सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशा के समान होती है । आयोग द्वारा यदि अपन प्रतिवेदन म किसी न्यायाधीश को दुराचार एव अक्षमता का दोषी होने के कारण उसे दायित्व सम्पादन म असमथ ठहराया जाता है तो सम्राट उसे पदच्युत कर सकता है । न्यायाधीशो के कायकाल म उनक वेतन एव सेवा सम्बन्धी शर्तों म कोई हानिकारक परिवतन नही किया जा सकता । पदनिवृत्ति के पश्चात स्थायी न्यायाधीश किसी न्यायालय अथवा अधिकारी के समक्ष अधिवक्ता के रूप म पैरवी व काय नही कर सकता ।

क्षेत्राधिकार—नेपाल के सर्वोच्च न्यायालय को निम्न क्षेत्राधिकार प्राप्त

(1) यह **अभिलेख** न्यायालय है । यह किसी भी व्यक्ति अथवा न्यायालय अपमान के लिए दण्डित कर सकता है तथा इसके निणय एव अभिलेख अन्य अधीनस्थ न्यायालया के लिए प्रामाणिक होते है ।

(2) **प्रारम्भिक या मौलिक क्षेत्राधिकार**—सर्वोच्च न्यायालय को मौलि अधिकार सम्बन्धी विवादो एव लोक सवा के राजपत्रित शासनाधिकारियो के शास के विरुद्ध वेतन, पदच्युति एव निलम्बन सम्बन्धी मामला म मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है । यह न्यायालय मौलिक अधिकारा का सरक्षक माना जाता है और प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकारो के अतिक्रमण की दशा म सर्वोच्च न्यायालय मे आवेदन करने का अधिकार है । न्यायालय मौलिक अधिकारो के रक्षाथ आदेश, आना एव बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश प्रतिरोध अधिकार पृच्छा एव उत्प्रेषण के लेख जारी कर सकता है ।

(3) **अपीलीय या पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार**—यह सभी प्रकार के सवधानिक, अपराधिक एव दीवानी विवादा में देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है ।

(अ) सवैधानिक विवादा के सम्बन्ध म क्षत्रीय न्यायालया के निणय के विरुद्ध उनके द्वारा यह प्रमाणित करने पर कि विवाद म विधि सम्बन्धी महत्वपूण प्रश्न निहित है अथवा सर्वोच्च न्यायालय के स्वय इस सम्बन्ध म सन्तुष्ट होने पर पुनरावेदन किया जा सकता है ।

(आ) अपराधिक विवादो मे अचल न्यायालया के निणया के विरुद्ध अपील की जा सकती है, यदि अधीनस्थ न्यायालय ने 3 वष से अधिक समय का कारावास या 3000 रुपये जुर्माना का दण्ड दिया हो ।

(इ) दीवानी विवादो म सर्वोच्च न्यायालय म अपील निम्न अवस्थाओ मे सम्भव है

(1) जब विवाद सम्बन्धी राशि 5 हजार रुपय से कम न हो तथा क्षेत्रीय न्यायालय ने तत्सम्बन्ध म प्रमाण पत्र दिया हो ।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय को यह विश्वास हो जाय कि विवाद म कोई विधि सम्बन्धी प्रश्न निहित है ।

(iii) विवाद की राशि 3000 रुपय से अधिक हो तथा क्षेत्रीय और जिला न्यायालय के निणय समान न हो ।

(4) सर्वोच्च न्यायालय को निम्न यायालय के उन विवादो की समीक्षा (revision) के अधिकार भी प्राप्त है जिनके सम्बन्ध म अपील की कोई व्यवस्था नही है । उसे अपने निणय पर पुनर्विचार करने अथवा पूणत उसे निरस्त करन के अधिकार भी प्राप्त हैं । यायालय केवल दो स्थितिया म ही पुनर्विचार कर सकता है ।

उपयुक्त क्षेत्राधिकार को सविधान द्वारा अनुच्छेद 70 एव 71 के अधीन दो भागो—(अ) साधारण क्षेत्राधिकार, एव (आ) असाधारण क्षेत्राधिकार—मे वर्गीकृत किया गया है । मौलिक अधिकारा का सरक्षण उसका असाधारण क्षेत्राधिकार है ।

निष्कष—सर्वोच्च न्यायालय न्याय व्यवस्था के शीष पर स्थित देश का सबसे उच्च यायालय है । इस न्यायालय की स्वतन्त्रता एव निष्पक्षता सम्बन्धी आवश्यक व्यवस्था सविधान द्वारा की गयी है । सर्वोच्च यायालय सविधान एव मौलिक अधिकारो का सरक्षक है । उसे सविधान विरोधी विधियो को अवैधानिक घोषित करन का अधिकार है । न्यायाधीशो का कायकाल निश्चित एव निर्धारित किया गया है । 65 वष की आयु पर उनके द्वारा अवकाश ग्रहण किया जाता है । पदनिवत्ति के पश्चात वे देश के किसी न्यायालय या अधिकारी के समक्ष वकालत नही कर सकते हं । उनके वेतन एव भत्तो को भी उनके कायकाल मे कम नही किया जा सकता तथा उनके वेतन सचित निधि पर भार है । यह सब व्यवस्थाएँ न्यायाधीशो को वाछित स्वतन्त्रता एव निर्भीकता प्रदान करने की दृष्टि से महत्वपूण है । लेकिन नेपाल के न्यायिक रक्षा-कवच मे एक छेद फिर भी रह गया जिसके कारण वह अभेद्य नही है । यायाधीशो के कार्यों एव आचरण सम्बन्धी अक्षमता एव दुराचार की जाच के लिए आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था है । यह व्यवस्था बाहर से देखने पर सन्तोषप्रद प्रतीत होती है परन्तु इसम तीन भयकर दोष है । सम्राट स्वेच्छा से आयोग नियुक्त करता है तथा आयोग के प्रतिवेदन पर वह स्वय ही न्यायाधीश को पदच्युत करने सम्बन्धी निणय लेता है । सविधान द्वारा राष्ट्रीय पचायत को अन्तिम निणय का अधिकार प्राप्त नही है । यह व्यवस्था इस सम्बन्ध मे अन्य लोकतन्त्रीय देश म न्यायपालिका सम्बन्धी स्वीकृत मानदण्डो का स्पष्ट उल्लघन है । नेपाल म कायपालिका को ही न्यायाधीशो

को पदच्युत करने का अधिकार है। ब्रिटेन, भारत एवं संयुक्त राज्य अमरिका की कार्यपालिका अपने इस अधिकार का प्रयोग विधानमण्डल के निर्णय के अनुसार करती हैं। इन देशों में विधानमण्डल द्वारा न्यायाधीशों की जाँच एवं पदच्युति के सम्बन्ध में उन कर्तव्यों को सम्पादित किया जाता है जो नेपाल में आयोग द्वारा निभाये जाते हैं। ऐसे महत्वपूर्ण मामले के सम्बन्ध में एक स्थायी आयोग की नियुक्ति उपयुक्त नहीं है क्योंकि एक सदस्य के अवांछनीय रूप से प्रभावित होने की अधिक सम्भावना होती है। कुछ प्रेक्षकों का तो यह मत है कि नेपाल में सभी शक्तियाँ सम्राट में केन्द्रित हैं और राष्ट्रीय पंचायत, मन्त्रिमण्डल और यहाँ तक कि न्यायपालिका भी केवल सम्राट की छाया मात्र है। सभी छोटे बड़े निर्णय उसके द्वारा किये जाते हैं। नेपाली सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री भगवतीप्रसाद सिंह योग्य एवं अत्यधिक सम्मानित व्यक्ति हैं। उनकी देख रेख में सर्वोच्च न्यायालय निरन्तर सम्मान एवं शक्ति अर्जित करता जा रहा है। कुछ वर्ष पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने श्री के आई सिंह को विधि एवं पद्धति सम्बन्धी कुछेक त्रुटियों के कारण नजरबन्दी से मुक्त कर दिया था। स्मरणीय है कि श्री सिंह को सम्राट की सरकार ने पूर्ण विनाश एवं कानून के उल्लंघन सम्बन्धी आरोपों पर बन्दी बनाया था।

पाकिस्तान की न्यायपालिका

1962 ई के संविधान के अन्तर्गत पाक न्यायपालिका में सर्वोच्च न्यायालय, प्रान्तीय उच्च न्यायालय एवं पाकिस्तान की न्यायिक समिति शामिल थे। सर्वोच्च न्यायालय पाक न्यायपालिका के शिखर पर स्थित उच्चतम न्यायालय था। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीश होते थे जो विधि द्वारा निर्धारित किये जाते थे। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति करता था एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा की जाती थी। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पद की अर्हताएँ निम्नवत थीं—(1) वह पाक नागरिक हो, (2) वह 5 वर्ष तक पाक उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में अथवा 15 वर्ष तक उच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में कार्य कर चुका हो। न्यायालय में अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति की भी व्यवस्था थी। न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक पदासीन रहते थे एवं संविधानानुसार उन्हें पदच्युत किया जा सकता था।

शक्तियाँ एवं क्षेत्राधिकार—सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक पुनरावेदनीय एवं परामर्शदायी क्षेत्राधिकार प्राप्त थे।

(i) **मौलिक क्षेत्राधिकार** के अन्तर्गत उसे एक या अन्य शासनों—प्रान्तीय एवं केन्द्रीय—सम्बन्धी विवादों का निर्णय करने का अधिकार प्राप्त था।

(ii) **पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार** निम्नतः हैं—उच्च न्यायालयों के निर्णयों एवं आदेशों के विरुद्ध अपीलें सर्वोच्च न्यायालय में होती थीं, जबकि वह यह प्रमाणित करे कि विवाद में विधि सम्बन्धी तथा संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रश्न

निहित है या उच्च न्यायालय द्वारा मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया हो अथवा न्यायालय की कायवाही म बाधा डालन के कारण किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय ने दण्डित किया हो । सर्वोच्च न्यायालय की विशेष अनुमति से भी उसके समक्ष अपील प्रस्तुत की जा सकती थी ।

(iii) **परामशदायी क्षेत्राधिकार** के अ तगत सर्वोच्च न्यायालय से विधि सम्ब धी मामले म राष्ट्रपति परामश ले सकता था । विधि द्वारा सर्वोच्च यायालय के क्षेत्राधिकार म वृद्धि की जा सकती थी (अनुच्छेद 60) ।

समीक्षा—सर्वोच्च एव उच्च न्यायालय का गठन बहुत कुछ स्वत त्रता के पूव प्रचलित न्यायिक व्यवस्था पर आधारित था । न्यायाधीशा को स्वत त्रता प्रदान करने की व्यवस्था की गयी थी । उदाहरणाथ, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशा का कायकाल निश्चित था, उन्ह केवल निर्धारित रीति से ही पदच्युत किया जा सकता था, न्यायाधीश अपने सेवा काल के दौरान मे अन्य किसी न्यायिक पद को ग्रहण नही कर सकते थे एव पदनिवत्ति के दो वप पश्चात ही शासन म किसी यायिक पद पर नियुक्त किये जा सकते थे । उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 60 वप तक पदासीन रहते थे । सर्वोच्च न्यायालय के निणय एव उच्च न्यायालयो के निणय विधि का प्रश्न निहित होने की सीमा तक अन्य अधीनस्थ न्यायालयो पर ब धनकारी होते थे । सर्वोच्च न्यायालय को केन्द्रीय व्यवस्थापिका एव सर्वोच्च यायालय द्वारा निर्मित नियमा के अधीन न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति प्रदान की गयी थी । पाक सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति सयुक्त राज्य अमेरिका या भारतीय सर्वोच्च न्यायालयो की तुलना म कम थी । विधि सम्ब धी प्रश्नो मे पाक न्यायालय अन्तिम निर्णायक नही था । सविधान द्वारा न्यायालया को पर्याप्त शक्तिशाली नही बनाया गया था । जनरल अयूब का यह मत था कि यदि विधिया के सम्ब ध मे यायपालिका को अन्तिम निर्णायक के अधिकार दिये जाते है तो पाक जैसा नवीन देश विकास की आशा नही कर सकता । स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय की यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति सीमित थी । उसके द्वारा मौलिक अधिकारो के आधार पर विधियो को अवधानिक घोपित नही किया जा सकता था । यायाधीशो को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता था । ऐसी स्थिति म इस बात की सम्भावना रहती थी कि राष्ट्रपति अपने ही व्यक्तियो को न्यायाधीश के पदो पर नियुक्त करे ।

पाक मे **सर्वोच्च न्यायिक परिषद** की भी व्यवस्था की गयी थी । सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एव उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश इस समिति के सदस्य होते थे । समिति को सर्वोच्च न्यायालय एव उच्च यायालयो के यायाधीशो की आचरण सम्ब धी सहिता के निर्माण का अधिकार प्रदान किया गया था । न्यायाधीशो के शारीरिक या मानसिक रूप म अस्वस्थ होने अथवा राष्ट्रपति द्वारा सूचित किये जाने पर समिति को जाँच के अधिकार प्राप्त थे । यदि समिति के अनुसार सम्ब धित न्याया-

धीश अपने दायित्व सम्पादन के अयोग्य होता था तो राष्ट्रपति उसे पद से पृथक कर सकता था। पाक न्यायाधीशों को उक्त रीति से ही पदच्युत किया जा सकता था।

प्रान्तो में उच्च न्यायालय की व्यवस्था थी। 1962 ई. के संविधान के अन्तर्गत पाकिस्तान में पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान नामक दो प्रान्त थे और प्रत्येक प्रान्त के लिए पृथक पृथक एक उच्च न्यायालय था जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश एवं राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते थे। उच्च न्यायालयों में वे ही पाक नागरिक न्यायाधीश नियुक्त हो सकते थे जो कम से कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता या लोक सेवा के सदस्य रहे हों। उच्च न्यायालय को विधि द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार प्राप्त थे। इन न्यायालयों को बन्दी-प्रत्यक्षीकरण आदि लेख (writs) जारी करने के भी अधिकार थे।

सोवियत न्यायपालिका[51]

1917 ई. की रूसी क्रान्ति के फलस्वरूप रूस में साम्यवादी शासन की स्थापना के पश्चात जार कालीन विधि एवं न्याय व्यवस्था का परित्याग कर दिया गया। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि पाश्चात्य परम्परागत तथा साम्यवादी विधि एवं न्याय व्यवस्थाओं की धारणाओं में आधारभूत अन्तर है। परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार विधि मानवीय आचरण के सार्वभौम नियम हैं। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं के रक्षा-कवच के रूप में आवश्यक है। लेकिन मार्क्सवादी इस धारणा को स्वीकार नहीं करते। उनके लिए विधि राज्य की भाँति एक वर्गीय संस्था है। सामाजिक व्यवस्था विशेष में विधि प्रमुख एवं शोषक वर्ग के वर्गीय हितों एवं सम्बन्धों की रक्षा का साधन है। पूँजीवादी समाज में विधि सम्पत्तिशालियों के हितों की रक्षा करती है और वर्गभेद—बुर्जुआ एवं सर्वहारा—को कायम रखती है। मार्क्स के अनुसार बुर्जुआ राज्य की विधि बुर्जुआ वर्ग की इच्छा है, जिसकी मुख्य विशेषता एवं लक्षण उस वर्ग की आर्थिक परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होती है।[52] बुर्जुआ समाज में विधि की समानता का नारा तो समाज में व्याप्त असमानता को आवृत करने का एक साधन मात्र है। पूँजीवादी व्यवस्था में विधि का उद्देश्य आर्थिक दृष्टि से सबल वर्ग के हितों की रक्षा करना है। मार्क्स एवं ऐंजिल्स ने पूँजीवादी देशों के विधि के प्रशासन की तीव्र आलोचना की है। विशिन्सकी[53] के अनुसार विधि सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग की वह इच्छा है जो संविधि का रूप धारण कर चुकी है। अतः सोवियत न्याय व्यवस्था में पूँजीवादी विधिक धारणा को स्वीकार नहीं किया गया है। साम्यवादियों की दृष्टि में व्यवहारतः विधि शासक वर्ग की इच्छा होती है। साम्यवादी

---

51 *The Constitution and the Law of the Judiciary of the U S S R* 1938, Ch IV

52 कार्ल मार्क्स, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र 1967

53 The law is merely the will of the dominant class elevated into a statute '—Vyshinsky, A Y *The Law of the Soviet State*, p 13

राज्यो मे सवहारा वग शासक वग होता है अत विधि को सवहारा के हितो की रक्षा एव शत्रुओ से उसका सरक्षण करना चाहिए। वह (विधि) नवीन समाजवादी समाज के निर्माण का साधन है और राज्य के लुप्त होने पर विधि का भी लुप्त हो जाना स्वाभाविक है। साम्यवादियो के अनुसार जब तक राज्य लुप्त नही होता है सोवियत विधि व्यवस्था को सबल एव सुदृढ करना आवश्यक है जिससे पूजीवादी व्यवस्था का अन्त करके समाजवादी समाज के निर्माण का माग प्रशस्त किया जा सके। मार्क्सवादी भाषा म विधि सवहारा के अधिनायकत्व की नीति का साधन है। न्याय का औचित्य उसके परिणामो पर निमर होता है। मार्क्सवादियो की दृष्टि मे विधि एव न्याय व्यवस्था क्रान्ति के सवद्धन का साधन हैं। विधि के समक्ष समानता, निष्पक्षता, 'विधि की उचित प्रक्रिया' पूजीवादी लोकतन्त्रीय देशो की विधि सम्बन्धी धारणाएँ आत्मगत ह और समाजवादी समाज के निर्माण म उनकी भूमिका प्रमुख नही होती है, अधिक से अधिक वे केवल द्वितीय महत्व की धारणाएँ है।

लाल क्रान्ति के पश्चात सोवियत रूस मे जन न्यायालयो[54] की स्थापना की गयी थी। जन न्यायालय विवादो का निणय परिस्थितिया को देखते हुए सामान्य बुद्धि के आधार पर करते थे। सभी समाजवादी देशो की भाति सोवियत विधि एव न्याय व्यवस्था का लक्ष्य साम्यवाद की प्राप्ति म योग देना है। सोवियत न्यायालयो का यह दायित्व है कि वह सोवियत नागरिको मे समाजवादी विचारधारा एव पितृभूमि रूस के प्रति भक्ति की भावना उत्पन्न करे[55] तथा सोवियत विधि को निष्ठापूवक क्रियान्वित करे। सोवियत न्यायालयो का यह कतव्य है कि वे समाजवादी सम्पत्ति, श्रम अनुशासन, ईमानदारी, राज्य एव सावजनिक कतव्यो की रक्षा करे। सोवियत रूस की समाजवादी एव आर्थिक व्यवस्था अर्थात समाजवादी अथ व्यवस्था की रक्षा करना सोवियत न्यायालयो का प्रमुख दायित्व है। इसके अतिरिक्त न्यायालयो का यह भी काय है कि वे समाजवाद और जनता के शत्रुओ, देशद्रोहियो, षडयन्त्रकारियो एव भेद लेने वालो स देश की रक्षा कर, उनसे सघष करे एव श्रमिक वग की एकता के लिए प्रयत्न करे। सोवियत न्यायालय को ऐसे सभी अपराधियो को कठोर दण्ड देना चाहिए जो अपने समाजवाद विरोधी कार्यों से समाजवाद की स्थापना मे बाधक है और ऐसे अपराधियो को दण्डित कर समाजवाद को उखाडने वाले तत्वो को निष्क्रिय एव निमूल करना चाहिए।

सोवियत न्याय व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत हैं

(1) सोवियत न्यायापालिका अन्य विभागो (यथा—गृह एव विदेश विभाग) की भाति ही प्रशासन का एक भाग है। यह लोकतन्त्रीय देशो की भाति निष्पक्ष एव स्वतन्त्र नही है। न्यायपालिका द्वारा न्याय सम्पादन का काय प्रोक्यूरेटर जनरल एव

54 Peoples' Courts

55 The Law of August 1938

उसके अधीन अन्य अधिकारियों के सहयोग से सम्पादित किया जाता है। प्रोक्यूरेटर जनरल को हम सोवियत रूस का महान्यायवादी कह सकते हैं।

(2) सभी न्यायालयों के न्यायाधीश निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित होते हैं। उदाहरणार्थ, सोवियत रूस के सर्वोच्च न्यायालय एवं विशेष न्यायालय के न्यायाधीश 5 वर्ष के लिए सुप्रीम सोवियत द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। जनता न्याय के न्यायाधीश सबसे छोटे होते हैं, जनता द्वारा तीन वर्ष के लिए चुने जाते विविध गणतन्त्रीय एवं क्षेत्रीय न्यायालयों के न्यायाधीश उनकी सोवियतों द्वारा 5 व के लिए निर्वाचित किये जाते हैं।[56]

(3) न्यायालयों की एक सी व्यवस्था है। न्यायालयों के समक्ष विधिक दृष्टि से सभी नागरिक समान होते हैं।

(4) प्रत्येक न्यायालय में न्यायाधीश के अलावा जन निर्धारक या असेसर (Assessor)[57] भी होते हैं। वे निर्वाचित होते हैं। न्यायाधीश का पद निश्चित अवधि के लिए स्थायी होता है जबकि जन निर्धारक विवादों की सुनवाई के समय ही कार्य करते हैं। अपराधिक मामलों में सामान्यतः दो असेसर एवं एक स्थायी न्यायाधीश होता है। न्यायाधीश विधि विशेषज्ञ होते हैं एवं वे अध्यक्षता करते हैं। असेसर विधि एवं तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में न्यायाधीश के सहयोग से निर्णय करते हैं। वाद विवाद में भी वे भाग लेते हैं। यद्यपि निर्णय बहुमत से लिये जाते हैं लेकिन न्यायाधीश का मत मान्य होता है। निर्वाचित न्यायाधीशों एवं असेसरों को अपने कार्य का प्रतिवेदन अपने निर्वाचन क्षेत्र को देना होता है।

(5) न्यायाधीश एवं असेसर एक ही पद्धति द्वारा एक ही अवधि के लिए चुने जाते हैं। दोनों के प्रत्यावर्तन (recall) की व्यवस्था है। सोवियत रूस में न्यायाधीशों एवं असेसरों के लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं है, परन्तु न्यायाधीश विधि विशेषज्ञ होते हैं। न्यायाधीश का पद स्थायी है। परन्तु असेसरों का पद अस्थायी है। वे वर्ष में केवल 10 दिन कार्य करते हैं। किसी विवाद में आवश्यकता पड़ने पर इस अवधि में वृद्धि भी की जा सकती है। निम्न न्यायालयों के न्यायाधीशों एवं असेसरों के विरुद्ध अपराधिक कार्यवाही जिला प्रोक्यूरेटर द्वारा गणतन्त्रीय प्रेसीडियम की अनुमति से प्रारम्भ की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध संघीय प्रेसीडियम की अनुमति से प्रोक्यूरेटर जनरल के आदेश पर अपराधिक कार्यवाही की जा सकती है।

(6) सभी विवाद खुली अदालत में सुने जाते हैं। अपराधी को अपने बचाव

---

56 Articles 105 109

57 Assessors को People's Assessors या Pay Judges भी कहते हैं। इनकी स्थिति इंगलैण्ड के जूरी के सदस्यों जैसी नहीं होती है।

का पूण अधिकार प्राप्त है।[58] सभी न्यायिक कायवाही क्षेत्रीय भाषा म होती है। यदि कोई व्यक्ति क्षेत्रीय भाषा से अनविज्ञ होता है तो उसे अपनी भाषा के प्रयोग का अधिकार प्राप्त है और ऐसी स्थिति मे दुभाषिए की व्यवस्था होती है (अनुच्छेद 110)।

(7) सोवियत न्याय व्यवस्था मे अराजनीतिक अपराधो के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था नही है, अत अराजनीतिक कार्यों की दृष्टि से यह व्यवस्था श्रेष्ठ है। परन्तु राजनीतिक या समाजवादी क्रान्ति विरोधी कार्यों का कठोरता एव निममता-पूवक दबाया जाता है (अनुच्छद 133)। देशद्रोह के अपराधा का भी निममतापूवक दमन किया जाता है। जनता एव समाजवादी सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध करने वाले को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था है (अनुच्छेद 131)।

न्यायालयों का सगठन

सोवियत रूस मे न्याय व्यवस्था के शीष पर सोवियत सघ का सर्वोच्च न्याया-लय है। उसके नीचे सघ गणतन्त्रीय सर्वोच्च न्यायालय, क्षेत्रो, स्वायत्त गणराज्या, एव प्रदेशो के न्यायालय तथा सोवियत सघ द्वारा स्थापित विशेष न्यायालय होत है। सबसे नीचे जन न्यायालय (People's Court) होते हैं।

सोवियत सघ का सर्वोच्च न्यायालय—सोवियत रूस का यह सर्वोच्च न्याया लय है। इसके न्यायाधीश सुप्रीम सोवियत के सयुक्त अधिवेशन मे 5 वष के लिए निर्वाचित किये जाते है एव इसके मुख्य दायित्व निम्नत है

(1) सम्पूण सोवियत सघ के न्यायिक कार्यो का निरीक्षण करना।

(2) अखिल सघीय एव महत्वपूण दीवानी तथा अपराधिक मामला (जसे—सोवियत सघ की सुरक्षा एव सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध) मे इस न्यायालय को मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। कम महत्व क दीवानी एव अपराधिक मामलो मे इस न्यायालय का पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय का अधिकाश समय अपील सुनने म व्यतीत होता है। दोना पक्षो को अपील दायर करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एव सोवियत सघ के महान्याय वादी को यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी भी निम्न न्यायालय म चल रह विवाद का अपने समक्ष निणय हेतु प्रस्तुत करने तथा किसी अन्य न्यायालय के निणय पर पुनर्विचार करन का आदेश दे सकता है। सघ गणराज्यो के सर्वोच्च एव अन्य न्यायालयो तथा सोवियत सघ के विशिष्ट न्यायालया के निणया के विरुद्ध अपीला पर विचार करके वह अन्तिम निणय देता है। सर्वोच्च न्यायालय की पूरी पीठ (full bench) को किसी मण्डल के निणय पर पुनर्विचार का अधिकार प्राप्त है। सरकारी कमचारियो द्वारा कतव्य-पालन के दौरान होन वाले अपराधा के सम्बन्ध म निणय का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को है। उच्च सनिक अधिकारिया

58 Articles 111

के मामले भी इसी न्यायालय के क्षेत्रान्तगत हैं। संघीय गणराज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादों का यह न्यायालय निर्णय करता है।

सर्वोच्च न्यायालय का एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं अन्य सदस्यगण होते हैं। 1938 ई. में इसकी सदस्य संख्या 45 थी। 1946 ई. में यह संख्या बढ़कर 68 हो गयी थी। इसके अतिरिक्त जन निर्धारक (assessors) भी होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के 5 मुख्य मण्डल (division) हैं—दीवानी, फौजदारी या अपराधिक, सैनिक, रेलवे एवं जलीय यातायात सम्बन्धी। इन मण्डलों के अध्यक्ष अपने अपने मण्डलों की बैठकों की अध्यक्षता करते हैं एवं कार्यों का निर्देशन करते हैं। प्रत्येक मण्डल सर्वोच्च न्यायालय को अपने कार्यों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन देता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या संविधान द्वारा निश्चित नहीं है अपितु सर्वोच्च सोवियत द्वारा निश्चित की जाती है। गणराज्यों (Union Republics) के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय के पदेन सदस्य होते हैं। न्यायाधीश पद के लिए किसी विशेष योग्यता का उल्लेख नहीं है, परन्तु विधि विशेषज्ञ एवं अनुभवी व्यक्ति ही न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किये जाते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय जब मौलिक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी किसी विवाद पर विचार करता है तो उसकी सुनवाई एक न्यायाधीश एवं दो जन निर्धारकों द्वारा की जाती है। अपीलें आठ न्यायाधीशों की पीठ (bench) द्वारा सुनी जाती हैं। राजस्व न्यायालय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के अधिवेशन में तीन न्यायाधीश भाग लेते हैं।

सोवियत रूस के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति प्राप्त नहीं है। वह किसी विधि या मन्त्रिमण्डल के किसी कार्य को अवैधानिक घोषित नहीं कर सकता है। संयुक्त राज्य अमरिका जैसे संघीय देशों की भांति सोवियत रूस का न्यायालय संविधान का संरक्षक भी नहीं है और न उसे संविधान की व्याख्या का अधिकार ही प्राप्त है। रूस में संविधान के संरक्षण एवं व्याख्या का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को न होकर सुप्रीम सोवियत की प्रेसीडियम को है।

संघीय गणराज्यों के सर्वोच्च न्यायालय—संघ गणराज्य सोवियत संघ के घटक इकाइयां हैं। प्रत्येक संघ गणराज्य में एक सर्वोच्च न्यायालय होता है। यह न्यायालय संघ गणराज्य की न्याय व्यवस्था के शिखर पर स्थित है। इसमें एक अध्यक्ष एवं कई उपाध्यक्ष सदस्य एवं जन निर्धारक (assessors) होते हैं। न्यायालय का अध्यक्ष मुख्य न्यायाधीश होता है। न्यायाधीश एवं जन निर्धारकों को संघीय गणराज्य की सर्वोच्च सोवियत पांच वर्ष के लिए निर्वाचित करती है।

इस न्यायालय को दीवानी एवं अपराधिक मामलों में मौलिक एवं पुनरावेदनीय (अपीलीय) क्षेत्राधिकार प्राप्त है। गणराज्य की सर्वोच्च प्रशासकीय संस्थाओं के अधिकारियों, गणराज्य की प्रेसीडियम एवं न्यायवादी (Procurator) तथा मन्त्री के विरुद्ध अभियोग जैसे गम्भीर मामलों में संघ गणराज्य के न्यायालय को मौलिक

क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उसे गणराज्य के अन्य न्यायालयों के निर्णयों को निरस्त करने का भी अधिकार है। यह न्यायालय गणराज्य एव उसकी अन्य इकाइयो के न्याय प्रशासन का निरीक्षण करता है।

सोवियत सघ म 15 सघीय गणराज्यो के सर्वोच्च न्यायालय हैं। इसी प्रकार प्रत्येक स्वायत्त गणराज्य (Autonomous Republic) मे एक सर्वोच्च न्यायालय होता है। इसके न्यायधीशो को स्वायत्त गणराज्य की सुप्रीम सोवियत द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इन न्यायालयो को दीवानी एव अपराधिक मामलो म मौलिक तथा पुनरावेदनीय दोनो ही प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

विशिष्ट न्यायालय एव पच फसला न्यायाधिकरण—सोवियत रूस मे अनेक प्रकार के विशिष्ट न्यायालय है, यथा—बाल न्यायालय (Juvenile Courts), भू न्यायालय (Land Courts), सैनिक न्यायालय एव पच फैसला न्यायाधिकरण (Courts of Arbitration)। विशेष सैनिक न्यायालयो की आवश्यकता सोवियत रूस की सुरक्षा एव सैनिक अनुशासन के रक्षार्थ की जाती है। रलवे एव जलीय यातायात प्रणाली एव तत्सम्बन्धी परिस्थितियो के फलस्वरूप विशेष लाइन न्यायालयो (Special Line Courts) की स्थापना की गयी है। अनेक विवादो को पच फैसला न्याया धिकरण द्वारा तय किया जाता है। यह न्यायाधिकरण शासन द्वारा दो या अधिक राज्य सस्थानो म उत्पन्न विवादो के सम्बन्ध म निर्णय हेतु स्थापित किये जाते हैं।

जन न्यायालय—सोवियत रूस म जन न्यायालयो (People's Courts) के न्यायाधीशो का निर्वाचन जिला के नागरिको द्वारा सार्वभौम प्रत्यक्ष एव समान मताधिकार के आधार पर तीन वर्ष के लिए किया जाता है। इन न्यायालयो को केवल मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। दीवानी और फौजदारी विवाद सर्वप्रथम इन्ही न्यायालयो म दायर किये जाते हैं। सम्पत्ति, श्रमिक विधि एव उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद, दीवानी क्षेत्राधिकार के अधीन और हत्या, बलात्कार, सम्पत्ति की चोरी, डाके, कपट, सत्ता एव अधिकार के दुरुपयोग सम्बन्धी मामले और शासन के विरुद्ध अपराध फौजदारी क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं। यह सोवियत रूस के जिला स्तरीय न्यायालय हैं। एक जिले मे कितने जन न्यायालय स्थापित किये जायें, इस सम्बन्ध म निर्णय सम्बन्धित सघ गणराज्य एव स्वायत्त गणराज्य की परिषदो द्वारा किया जाता है। एक जन न्यायालय म एक न्यायाधीश एव दो जन निर्धारक (assessors) होते हैं। प्रत्येक जन निर्धारक केवल 10 दिन ही न्यायालय म कार्य करता है। न्यायाधीशो के लिए कोई योग्यता निर्धारित नही की गयी है, परन्तु विधि का सामान्य ज्ञान रखने वाले व्यक्ति ही न्यायाधीश नियुक्त किये जाते है। जनता द्वारा न्यायाधीशो एव जन निर्धारको के प्रत्यावर्तन (recall) की माँग की जा सकती है।

साथी न्यायालय (Comradely Courts) सबसे निम्न न्यायालय हैं, न्यायालयो के न्यायाधीशो का निर्वाचन सम्बन्धित व्यक्ति-समूह द्वारा किया

इन न्यायालयो के न्यायाधीश विधि के ज्ञाता नही होते । इनकी स्थापना प्रत्येक कार खाने, जेल, आदि अन्य सस्थाओ म की जाती है एव ये उस सस्था विशेष से सम्ब न्धित व्यक्तियो के विवादो म निणय देते है । यह न्यायालय भारत की न्याय-पचायतो के समान हैं ।

सोवियत सघ का प्रोक्यूरेटर जनरल (महान्यायवादी)

सोवियत सविधान द्वारा विधि पालन को सुनिश्चित करने के लिए सर्वो निरीक्षणात्मक शक्तिया प्रोक्यूरेटर जनरल या महान्यायवादी को प्रदान की ग हैं ।[59] महान्यायवादी का प्रमुख दायित्व एव काय यह देखना है कि सोवियत सघ के सभ मन्त्रालयो एव सस्थाओ तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियो एव नागरिको द्वारा सोवियत विधि का पालन किया जाता है । इसके अतिरिक्त किसी भी राजकीय सस्था एव पदाधिकारी के अवैधानिक निणय के विरुद्ध उसे अपील करने का अधिकार प्राप्त है । उसे अपराधिक कायवाही प्रारम्भ करने मामलो की जाँच करने तथा अपराधो के कारण एव परिस्थितियो की जाच का अधिकार प्राप्त है । न्यायालयो के अनुचित एव भ्रामक निणयो के विरुद्ध वह अपील करता है । अपराध के सन्देह पर किसी नाग रिक को बन्दी बनाये जाने का वह आदेश दे सकता है एव न्यायालयो के निणयो को क्रियान्वित करता है ।

सोवियत समाजवादी सघीय रूसी गणराज्य म सवप्रथम 1922 ई म इस पद की व्यवस्था की गयी थी । 1946 ई के पूव इसे एटोर्नी जनरल कहा जाता था परन्तु इसके पश्चात इसका नाम बदलकर प्रोक्यूरेटर जनरल कर दिया गया है । महा-न्यायवादी सुप्रीम सोवियत के द्वारा 7 वप के लिए निर्वाचित किया जाता है । इ अधीन अनेक प्रोक्यूरटर या न्यायवादी होत हैं । प्रत्येक सघ गणराज्य, स्वायत्त ग राज्य, क्षत्र या प्रदेश म एक न्यायवादी (प्रोक्यूरेटर) होता है । इनकी नियुक्तियाँ वप के लिए की जाती हैं ।

सोवियत सघ म विधि की एकरूपता स्थापित करन म सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक महान्यायवादी का योग है । व्यवहार म सोवियत महान्यायवादी सवशक्तिमान (omnipotent) है ।[60] विशिन्सकी[61] के अनुसार वह समाजवादी विधि का रक्षक, समाजवादी दल एव सोवियत सत्ता का नेता तथा समाजवाद का प्रबल समथक होता है । टाउस्टर के अनुसार प्रोक्यूरटर जनरल साम्यवादी दल द्वारा निर्देशित सवहारा अधिनायकत्व की प्रमुख अन्त शक्ति है ।[62]

---

59 Articles 113-117
60 Carter, Renney & Hez *The Government of Soviet Union*, op cit, p 185
61 Vishinsky *The Law of the Soviet State* op cit, p 537
62 'Procurator General is an integral lever of the proletariat dicta

साम्यवादी चीन मे न्यायपालिका

साम्यवादी चीन मे न्यायालयो का मुख्य काय सोवियत न्यायालयो की भाँति समाजवादी व्यवस्था की रक्षा एव उसके शत्रुओ का विनाश करना है। श्रमिक एव राज्य के अनुशासन तथा व्यवस्था का उल्लघन करने वाले व्यक्तियो को उनके समाजवाद विरोधी कायो के लिए कठोर दण्ड देना न्यायपालिका का प्रमुख दायित्व है। चीन म नागरिको का यह सवैधानिक कतव्य है कि वे सविधान एव विधि का पालन करें श्रमिक अनुशासन को माने तथा सामाजिक नैतिकता की रक्षा करते हुए व्यवस्था एव शान्ति बनाये रखे। जनवादी चीनी गणराज्य मे न्यायपालिका शासन का पृथक एव स्वतन्त्र अग नही है अपितु प्रशासन का अभिन्न अग है। कोमिटाग चीन के अन्तगत भारत या अमेरिकी न्याय-व्यवस्था जसी न्याय प्रणाली नही थी। विधि के शासन का भी चीन मे अभाव था। न्याय थोडे से व्यक्तियो की दृष्टि से सम्पादित किया जाता था। 1949 ई मे साम्यवादियो के हाथो मे सत्ता आने पर कोमिटाग चीन की न्याय व्यवस्था तथा विभिन्न विधि सहिताओ को समाप्त कर दिया गया। नवीन समाजवादी एव राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप विधि के सहिताकरण हेतु एक आयोग की स्थापना की गयी। 1949 ई से 1954 ई तक चीन का शासन अस्थायी सविधान (Common Programme) के अनुसार चलता रहा। 1954 ई मे नवीन सविधान[63] प्रारम्भ हुआ।

साम्यवादी चीन की न्याय व्यवस्था की विशेषताएँ निम्नवत् है

(1) साम्यवादी चीन की न्यायपालिका स्वतन्त्र है।[64] वह केवल विधि के अधीन है। हर नागरिक विधि की दृष्टि से समान है। लेकिन साम्यवादी चीन म न्यायालयो को विधानमण्डल की विधियो को अवधानिक घोषित करने की स्वतन्त्रता नही है और न वे विधियो की व्याख्या ही कर सकते हैं।

(2) सभी न्यायालयो क न्यायाधीश सम्बन्धित जन काँग्रेसो द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। अन्य न्यायाधीशो को उस स्तर की सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय क न्यायाधीश केन्द्रीय शासन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं अपितु वे स्थायी समिति (Standing Committee) द्वारा नियुक्त नही किये जाते हैं। कुछ न्यायाधीशो को क्रान्तिकारी नताओ और शेष को विधि विशेषज्ञो म से चुना जाता है। नवीन न्यायाधीशो को प्रारम्भ म प्रशिक्षण भी दिया जाता है। चीन म न्यायाधीशो को बहुत ऊँचा वतन नही दिया जाता है।

(3) साम्यवादी चीन के न्यायालयो म जन निर्धारको (Assessors) की नियुक्ति भी की जाती है। इनकी नियुक्तियो के दो लाभ हैं—(1) न्याय प्रशासन का

---

torship directed by the party '—J Towster *Political Power in the U S S R., 1917-47*

63 1954 ई के सविधान को Organic law की सज्ञा दी जाती है।

64 Articles 73 78

जनता स सम्पर्क हो जाने के कारण न्यायालयो म रचनात्मक प्रवत्ति का उदय होता है, एव (2) न्यायाधीशो पर सावजनिक नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। सभी जन निर्धारक स्थायी एव निर्वाचित होते हैं। उन्ह उत्पादन सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान होता है। आधे जन निर्धारक स्त्रियाँ होती हैं। प्रत्येक का कायकाल दो वर्ष होता है। एक वर्ष म वे केवल 10 दिन काय करते हैं। निर्णय बहुमत से लिये जाते हैं।

(4) अपराधी को आत्मरक्षा का अधिकार प्राप्त है। वे स्वय या वकील द्वारा अपनी पैरवी कर सकते हैं (अनुच्छेद 76)। लेकिन साम्यवादी चीन मे निजी वकील नही हैं। सरकारी वकीलो की एक लम्बी सूची शासन द्वारा तैयार की जाती है, अभियुक्त को इनम से ही किसी को अपनी आत्मरक्षा (परवी) के लिए चुनने की स्वतन्त्रता है। चीन म अधिवक्ता (वकील) राज्य एव जनता के हितो को ध्यान मे रखकर ही अभियुक्त के बचाव की पैरवी करते हैं और न्यायालय को अपने दायित्व के सम्पादन म योग देते हैं।

(5) राज्य की सुरक्षा सम्बन्धी विवादो को छोडकर शेष सभी विवादो की जन न्यायालय म सावजनिक सुनवाई होती है (अनुच्छेद 76)।

(6) न्यायिक कायपद्धति सरल है। निर्णय शीघ्र दिये जाते हैं। चीन म न्यायालय शिक्षा एव सुधार के कर्तव्य सम्पादित करता है। अधिकतर मध्यस्थता एव समझौते पर बल दिया जाता है।

(7) अधिकाश मामलो म कठोर दण्ड नही दिया जाता लेकिन क्रान्ति विरोधी कार्यों को कठोरतापूर्वक अवश्य दबा दिया जाता है। अन्य अपराधो के लिए दण्ड एव सुधार की नीति का अनुगमन किया जाता है। मत्युदण्ड के सम्बन्ध म उच्च न्यायालय का अनुमोदन आवश्यक होता है।

(8) चीन के सभी न्यायालय जिस जन काग्रस द्वारा चुने जाते हैं उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिए सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रीय जन-काँग्रेस या स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होता है। इसी प्रकार, स्थानीय जन न्यायालय स्थानीय जन-काग्रस के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उनके समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं।[65] इस अथ म चीन म न्यायपालिका विधानमण्डल का सहायक अग है। सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष राष्ट्रीय जन काग्रेस के अधिवेशनो एव उसके बाद विवादो म भाग लेता है। प्रत्यक न्यायालय के अध्यक्ष को उसे निर्वाचित करने वाली जन काग्रेस साधारण बहुमत स पदच्युत कर सकती है।

साम्यवादी चीन का न्यायिक सगठन

सविधान के अनुसार चीन म तीन प्रकार के न्यायालय हैं

(1) सर्वोच्च जन न्यायालय (The Supreme People's Courts),

---

65 Articles 79 80

(2) स्थानीय जन न्यायालय (The Local People's Court) और
(3) विशिष्ट जन न्यायालय (The Special People's Court)।

सर्वोच्च जन न्यायालय—यह साम्यवादी चीन का सर्वोच्च न्यायालय है तथा न्यायिक पिरामिड के शिखर पर आसीन है। देश के सभी न्यायालयों पर इसे निरीक्षणात्मक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसका एक अध्यक्ष होता है, वही मुख्य न्यायाधीश कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ उपाध्यक्ष, शाखाओं के मुख्य न्यायाधीश एवं उप-मुख्य न्यायाधीश, न्यायाधीश एवं उप न्यायाधीश होते हैं। न्यायालय का अध्यक्ष राष्ट्रीय जन-कांग्रेस द्वारा निर्वाचित होता है और उसी के द्वारा साधारण बहुमत से पदच्युत किया जाता है। शेष न्यायाधीशों को न्यायालय की न्यायिक समिति के सदस्यों या स्थायी समिति (Standing Committee) द्वारा निर्वाचित किया जाता है एवं वे उसी के द्वारा पदच्युत किये जा सकते हैं। उप-न्यायाधीश न्याय मन्त्रालय (Ministry of Justice) द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

सर्वोच्च जन-न्यायालय के दीवानी एवं फौजदारी दो विभाग होते हैं। इस न्यायालय को दोनों—मौलिक एवं पुनरावेदनीय—क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। उच्च न्यायालयों एवं विशिष्ट न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सर्वोच्च न्यायालय में होती है। इसके अतिरिक्त न्यायिक निरीक्षण की पद्धति के अधीन सर्वोच्च जनवादी प्रोक्यूरेटर द्वारा जिन विवादों की सूचना दी जाती है उनकी सुनवाई न्यायालय द्वारा की जाती है। विधि द्वारा कुछ अन्य मामले भी मौलिक रूप में इसके क्षेत्राधिकार में आते हैं।

स्थानीय जन न्यायालय—स्थानीय जन-न्यायालयों के तीन प्रकार हैं—उच्च, मध्य एवं प्रारम्भिक जन न्यायालय। उच्च न्यायालय की संख्या 28 है। यह भारत के उच्च न्यायालयों के समकक्ष है। मध्य जन न्यायालय जिनकी संख्या 200 है, भारत के जिला न्यायालयों के समान होते हैं। प्रारम्भिक जन न्यायालयों (Basic People's Courts) की संख्या 3000 है। ये छोटी अदालतें हैं। उच्च न्यायालयों की स्थापना केन्द्रीय सरकार करती है। जिला एवं प्रारम्भिक जन न्यायालयों की स्थापना प्रान्तीय शासन द्वारा की जाती है।

प्रारम्भिक जन न्यायालयों को काउण्टी, नगर न्यायालयों एवं जिला न्यायालयों तथा स्वायत्त काउण्टी न्यायालयों में वर्गीकृत किया गया है। विशेष विवादों के लिए जन न्यायाधिकरणों (People's Tribunals) की भी स्थापना की जाती है। स्थानीय जन न्यायालयों के अध्यक्षों को समान स्तरीय जन-कांग्रेस द्वारा निर्वाचित किया जाता है और उपाध्यक्ष तथा अन्य न्यायाधीशों को समान स्तरीय प्रशासनिक शासन द्वारा नियुक्त एवं पदच्युत किया जाता है। इन्हें दीवानी एवं फौजदारी दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

विशिष्ट जन न्यायालय—इनके अन्तर्गत सैनिक, रेलवे, यातायात एवं जलीय यातायात न्यायालय आते हैं। इन न्यायालयों का सगठन राष्ट्रीय जन-कांग्रेस द्वारा

इनकी स्थापना के समय निर्धारित कर दिया जाता है। 1953 ई म 'साथी श्रमिक न्यायालय' (Comrade Workers Courts) की स्थापना की गयी है। यह न्यायालय किसी कारखान या सस्था क श्रमिका एव सहयोगी कमचारिया द्वारा सगठित किया जाता है।

जन प्रोक्यूरेटरेट (The People s Procuratorate) (महान्यायवादी)

प्रोक्यूरटरेट की सस्था चीन गणराज्य म सोवियत रूस की भांति विशिष्ट स्थान रखती है। मुख्य प्रोक्यूरेटर की शक्तियाँ अत्यन्त व्यापक हैं एव उसके क्षेत्राधिकार के अधीन शासन क सभी अग एव व्यक्ति आ जाते हैं। विशिसकी के अनुसार सोवियत प्रोक्यूरेटर सम्पूण सोवियत विधि-व्यवस्था का निरीक्षक साम्यवादी दल एव सोवियत मत्ता का नेता तथा समाजवाद का समथक होता है। चीन क मुख्य प्रोक्यूरेटर की स्थिति भी ऐसी ही है।

चीनी गणराज्य का सर्वोच्च जनवादी प्रोक्यूरेटर का एक कार्यालय है। प्रोक्यूरेटर इसका अध्यक्ष होता है। प्रमुख प्राक्यूरेटर राष्ट्रीय जन कांग्रस द्वारा 4 वप के लिए निर्वाचित होता है और वह उसी के द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। मुख्य प्राक्यूरेटर के अतिरिक्त इस कार्यालय म उप मुख्य प्रोक्यूरेटर, प्रोक्यूरेटरगण एव प्रोक्यूरेटर समिति के अन्य सदस्य होते हैं जो राष्ट्रीय जन-कांग्रेस की स्थायी जन-समिति द्वारा नियुक्त एव पदच्युत किये जाते हैं। सर्वोच्च जनवादी प्रोक्यूरेटर का काय दखना है कि राज्य परिषद के सभी विभागो, राज्य के स्थानीय अगा राज्य के विभि अगो म काय करने वाले व्यक्तियो एव नागरिका द्वारा विधि का पालन किया जात है। प्राक्यूरेटर जन-काग्रेस के प्रति उत्तरदायी होता है एव उसे या सत्रावसान काल मे स्थायी समिति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।[66] प्रमुख या केन्द्रीय प्रोक्यूरेटर के अतिरिक्त स्थानीय एव विशेष प्रोक्यूरेटर भी होते है। इनका कायक्षेत्र विधि द्वारा निर्धारित होता है। स्थानीय एव क्षेत्रीय प्रोक्यूरेटर कार्यालय सर्वोच्च प्रोक्यूरटर कार्यालय के निरीक्षण एव निर्देशन मे काय करते है। स्थानीय प्रोक्यूरेटर स्थानीय शासन के हस्तक्षेप से स्वतन्त्र होते ह।

प्रोक्यूरेटर न्यायालया से सम्बन्धित होते हैं। यह विधि का अधिकृत सरक्षक है। अत यह उन सभी अपराधो एव मामलो की छानबीन करते हैं जिनका सम्बन्ध क्रान्ति विरोधी कार्यों से होता है। यह व्यक्तियो के अधिकारा का रक्षक भी हैं। चीन म जन न्यायालय या जन प्रोक्यूरेटर कार्यालय के निर्देश पर ही कोई व्यक्ति बन्दी बनाया जा सकता है।

क्या साम्यवादी देशो (सोवियत रूस एव चीन) मे न्यायपालिका स्वतन्त्र है?

साम्यवादी देशो म न्यायपालिका प्रशासन का एक अग होती है और उसका

66 Articles 81 84

मुख्य उद्देश्य समाजवाद की उसके शत्रुओं से रक्षा करना है। सोवियत रूस के संविधान के अनुच्छेद 112 म यह कहा गया है कि न्यायाधीश स्वतन्त्र है और वे केवल विधि के ही अधीन होते हैं। परन्तु पश्चिमी विचारको के अनुसार यह व्यवस्था सन्देहास्पद है। साम्यवादी देशा म लोकतन्त्रीय देशो की भाँति न्यायपालिका की स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा म विश्वास नही किया जाता और न न्यायपालिका स्वतन्त्र ही होती है। न्यायाधीश साम्यवादी दल के सदस्य होते हैं और दल की विचारधारा म उनका पूण विश्वास होता है। न्यायाधीश पोलियान्स्की के अनुसार, "न्यायपालिका राजसत्ता का एक अग है और इस कारण वह राजनीति से पृथक नही हो सकती। न्यायपालिका का राजनीति से पृथक रखने की माँग कभी भी किसी परिस्थिति म पूरी नही होती है।"[67] सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की नियुक्ति विधिक योग्यता के आधार पर नही होती है। वे निर्वाचित होते है। उनके प्रत्यावतन की भी व्यवस्था है। अत उनका कायकाल सुनिश्चित नही हैं। ऐसी स्थिति म न्यायाधीश के लिए निष्पक्षता एव स्वतन्त्रतापूवक काय कर सकना सम्भव नही है। प्रोक्यूरेटर जनरल एव प्रोक्यूरेटरो के कारण सोवियत रूस क सर्वोच्च न्यायालय की स्वतन्त्रता अत्यधिक सीमित है। यही कथन चीन के सर्वोच्च न्यायालय पर लागू होता है। सोवियत रूस म न्यायमन्त्री न्यायपालिका के अधिवेशनो मे उपस्थित होकर उसका माग निर्देशन करता है। न्यायपालिका के क्षेत्र म कायपालिका का इस प्रकार का हस्तक्षेप न्यायिक स्वतन्त्रता का निषेध है। चीन व रूस मे सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश एव अन्य न्यायाधीश अनिवाय रूप से साम्यवादी दल के प्रमुख नेता होते हैं। डायबलो (Diablo) के अनुसार सोवियत सर्वोच्च न्यायालय के निणयो का कोई स्वतन्त्र महत्व नही होता है क्योकि सोवियत रूस की केन्द्रीय कायकारिणी परिषद की प्रेसीडियम उन्हे अनुमोदित करती है। संविधान की रक्षा एव विधियो की वैधानिकता का दायित्व सयुक्त राज्य अमेरिका म सर्वोच्च न्यायालय पर है जबकि सोवियत रूस मे टूरुवाइनर (Turubiner) के अनुसार (दल) की केन्द्रीय कायकारिणी परिषद एव उसकी प्रसीडियम को प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय तो केवल मत (opinions) व्यक्त करता है। चीन म भी यही स्थिति है। न्यायाधीशो द्वारा शासकीय नीति का अनुगमन किया जाता है। आग के अनुसार सोवियत सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की तुलना म बहुत कम स्वतन्त्रता प्राप्त है।[68]

साम्यवादी देशो म 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण' की कोई व्यवस्था नही है यद्यपि संवि-

---

67 'Judiciary is an organ of State power and therefore cannot be outside politics The demand that judiciary remains outside of politics, is no where and under no circumstances realised "
—*Polıansky*

68 Ogg & Zink *Modern Foreign Governments*, p 876

धान प्रत्येक अपराधी का अपने बचाव का अधिकार प्रदान करता है। इसका परिणाम यह है कि सोवियत रूस तथा चीन के साम्यवादी शासनों के कोपभाजन जेलों एव शिविरो म सड़ते रहते हैं।

यूगोस्लाविया की न्याय-व्यवस्था

यूगोस्लाविया की न्यायपालिका एकीकृत है।[69] विभिन्न विवादों को हल करने के लिए विधि द्वारा स्थापित विशेष न्यायालयों की व्यवस्था है। यूगोस्लाविया म कम्यून न्यायालय, क्षेत्रीय न्यायालय (Circuit Courts), गणतन्त्रीय सर्वोच्च न्यायालय एव सर्वोच्च न्यायालय हैं। इन न्यायालयों का सम्बन्ध सामान्य विवादों से होता है। कम्यून एव क्षेत्रीय न्यायालयों को मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।[70] सर्वोच्च न्यायालय सबसे उच्च न्यायालय है। आर्थिक विवादों का निर्णय व्यापारिक न्यायालयों (Commercial Courts) द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त सैनिक न्यायालय भी हैं। पंच फैसला न्यायालयों की भी व्यवस्था संघीय विधि द्वारा की जा सकती है। इन न्यायालयों के अतिरिक्त संवैधानिक न्यायालय हैं।[71] न्यायालय के क्षेत्राधिकार निर्धारित हैं एव उनमें परिवर्तन किया जा सकता है।[72] अपने कर्तव्य सम्पादन म न्यायालय पूर्ण स्वतन्त्र है और संविधान तथा विधि के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हैं।[73]

न्यायालयों म न्यायाधीशों के अतिरिक्त जन निर्धारक (assessors) भी होते हैं। न्यायाधीश एव जन निर्धारक सम्बन्धित सामाजिक एव राजनीतिक समुदाय की परिषद द्वारा निर्वाचित एव निर्धारित रीति से पदच्युत किये जा सकते हैं। प्रत्यक्ष निर्वाचन का भी विधान सम्भव है।[74] विवादों को खुली अदालत म सुना जाता है।[75] न्यायालयों मे न्यायाधीश पीठ (bench) के रूप म बैठते है।[76]

यूगोस्लाविया का सर्वोच्च न्यायालय

संविधान के अनुच्छेद 240 के अनुसार यूगोस्लाविया म सर्वोच्च न्यायालय का सगठन एव क्षेत्राधिकार विधि द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस न्यायालय के दायित्व अग्रवत हैं[77]

---

69 Article 132
70 Article 139
71 Chapter XIII of the Constitution
72 Article 134
73 Article 136
74 Article 137
75 Article 141
76 Article 140
77 Article 139

(1) महत्वपूण मामला सम्बन्धी सिद्धान्तो एव उनके बारे म सामान्य परामशदायी मत व्यक्त करना ।

(2) सघीय विधि-व्यवस्था के अनुसार गणतन्त्रीय सर्वोच्च न्यायालया के निणयो के विरुद्ध अपीलें सुनना।

(3) सघीय विधि का उल्लघन करने वाले वैध न्यायालयो के निणया की विधिक व्यवस्था करना ।

(4) प्रशासकीय विवादा की सुनवाई करना ।

(5) विभिन्न गणराज्या के न्यायालया के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादो का निणय करना ।

(6) सघीय विधि द्वारा निर्धारित अन्य दायित्वो का सम्पादन ।

सवधानिक न्यायालय

यह न्यायालय विधियो के सवैधानिक औचित्य के सम्बन्ध म निणय देता है। न्यायालय द्वारा सवैधानिकता एव वधानिकता सम्बन्धी मामला की समीक्षा की जाती है । यह सघीय सभा को अपना प्रतिवदन देता है और सवैधानिकता वैधानिकता एव मौलिक अधिकारो के रक्षाथ आवश्यक विधियो के निणय का सुझाव देता है ।[78] इस न्यायालय म 1 अध्यक्ष एव 10 अन्य न्यायाधीश होते हैं । न्यायालय के अध्यक्ष एव अन्य न्यायाधीशा का आठ वष के लिए निर्वाचित किया जाता है । वे पुन केवल एक बार आठ वष की अवधि के लिए और निर्वाचित हो सकते है। आधे न्यायाधीश प्रति चार वष पश्चात निर्वाचित होते हैं। इस न्यायालय के न्यायाधीश किसी गणतन्त्रीय परिषद या अन्य किसी राजनीतिक एव कायपालिका अभिकरण के सदस्य नही हो सकते और न कोई अन्य राजकीय पद ही ग्रहण कर सकते है । न्यायाधीशो को अपने कायकाल के पूव पदत्याग की स्वतन्त्रता प्राप्त है । किसी न्यायालय द्वारा न्यायाधीश को यदि फौजदारी अपराध का दोषी पाया जाता है और कारावास का दण्ड दिया जाता है या शारीरिक दृष्टि से वे स्थायी रूप के अशक्त हो जाते हैं तो उन्हे पदच्युत किया जा सकता है ।[79]

इस न्यायालय क निम्न काय हैं [80]

(1) सघीय विधि, गणतन्त्रीय विधि तथा अन्य नियमो का क्रमश सघीय विधि एव अधिनियम की दृष्टि से औचित्य निर्धारण ।

(2) सघीय शासन एव गणराज्यो, परस्पर गणराज्या के मध्य एव अन्य समुदाया तथा क्षेत्रा के अधिकार एव कतव्य सम्बन्धी विवादा का निर्धारण ।

---

78 Article 242

79 Article 243

80 Article 241

(3) यायालया एव सघीय अभिकरणा, यायालया तथा विभिन्न क्षत्रा राजकीय अभिकरणा क मध्य विवादो का निणय करना।

(4) सविधान या सघीय विधि द्वारा निर्धारित किसी काय को सम्पादि करना।

(5) सघीय विधि की सवधानिकता की परीक्षा करना। यदि कोइ विधि सविधान के अनुकूल नही है तो सघीय सभा को 6 माह के अदर उस विधि म आवश्यक सशोधन कर देना चाहिए।

वैधानिकता एव सवैधानिकता (legality and constitutionality) सम्बधी प्रश्नो को सघीय सभा गणतत्रीय परिषदा, सघीय एव गणराज्या की कायकारिणी परिषदो, सर्वोच्च यायालय तथा अय सघीय यायालयो, गणतत्रीय यायालयो, सघीय जन-अधिवक्ताआ गणतत्रीय सवधानिक यायालया एव सामाजिक व राजनीतिक समुदाया की परिषदो द्वारा उठाया जा सकता है।[81] यायालयो को सघीय विधियो की व्याख्या करने एव उनका अर्थ निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है[82] तथा सवधानिक यायालय को[83] अपने सगठन एव कायपद्धति को निर्धारित करने की स्वतत्रता है।

जन-अधिवक्ता

जन-अधिवक्ता (Public Prosecutor) अपराधिक विवादा सम्बधी कार्यों को सम्पादित करने के लिए पूणरूपेण उत्तरदायी होते हैं। इसके अतिरिक्त विधि के क्रिया वयन एव वैधानिकता (legality) की रक्षाथ भी वे उत्तरदायी होते है विधि एव सघीय सभा की नीति ... उनके द्वारा अपने कतव्यो को सम्पादि किया जाता है। यूगोस्लाविया ... अधिवक्ताआ द्वारा सम्पादित f ... दायित्वो को सनिक जन जन अधिवक्ता को नियुक्त एव प ... (Federal Assembly) सघीय जन अधिवक्ता की ... जन अधिवक्ताओ को है।[85] ... से नियुक्त करता

की रक्षा आवश्यक है । इसके अतिरिक्त विधि-प्रणाली की एकता को अक्षुण्ण रखना, नागरिको के सगठनो एव सामाजिक व राजनीतिक समुदाया की सवैधानिक सुरक्षा सभी "यायालयो विशेषकर सवैधानिक न्यायालय का दायित्व है ।[87] सभी विधिया एव नियमो का यूगोस्लाविया के सविधान के अनुकूल होना आवश्यक है ।[88] गणराज्यो की विधियो को गणत"त्रीय सविधान के अनुकूल होना चाहिए और गणत"त्रीय सविधानो को न तो यूगोस्लाविया के सविधान और न गणत"त्रीय विधियो को सघीय सविधान के विपरीत होना चाहिए ।[89] यदि गणत त्रीय सविधान सघीय सविधान एव गणत"त्रीय विधि सघीय विधि के विपरीत है तो ऐसी अवस्था मे सघीय सविधान एव विधि मा"य होगी । सभी विधियो एव नियमो के प्रभावी होने के पूव प्रकाशित कर देने की व्यवस्था है प्रत्येक व्यक्ति को यायालय मे अपनी भाषा मे बचाव करने एव निम्न यायालयो के निणयो के विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्राप्त है । इसके अतिरिक्त विधि द्वारा ही अधिकारो एव स्वत"त्रताओ को निलम्बित किया जा सकता है ।[90]

87 Article 146
88 Article 148
89 Article 148
90 Article 158

(3) न्यायालयो एव सघीय अभिकरणो, न्यायालयो तथा विभिन्न क्षेत्रो के राजकीय अभिकरणो के मध्य विवादो का निर्णय करना।

(4) सविधान या सघीय विधि द्वारा निर्धारित किसी काय को सम्पादित करना।

(5) सघीय विधि की सवधानिकता की परीक्षा करना। यदि कोई विधि सविधान के अनुकूल नही है तो सघीय सभा को 6 माह के अन्दर उस विधि में आवश्यक सशोधन कर देना चाहिए।

वधानिकता एव सवैधानिकता (legality and constitutionality) सम्बन्धी प्रश्नो को सघीय सभा, गणतन्त्रीय परिषदो, सघीय एव गणराज्यो की कायकारिणी परिषदो, सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य सघीय न्यायालयो, गणतन्त्रीय न्यायालयो, सघीय जन-अधिवक्ताओ, गणतन्त्रीय सवैधानिक न्यायालयो एव सामाजिक व राजनीतिक समुदायो की परिषदो द्वारा उठाया जा सकता है।[81] न्यायालयो को सघीय विधियो की व्याख्या करने एव उनका अर्थ निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है[82] तथा सवधानिक न्यायालय को[83] अपने सगठन एव कायपद्धति को निर्धारित करने की स्वतन्त्रता है।

जन अधिवक्ता

जन-अधिवक्ता (Public Prosecutor) अपराधिक विवादो सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करने के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी होते हैं। इसके अतिरिक्त विधि के क्रियान्वयन एव वधानिकता (legality) की रक्षार्थ भी वे उत्तरदायी होते हैं। विधि एव सघीय सभा की नीति के अनुकूल उनके द्वारा अपने कर्तव्यो को सम्पादित किया जाता है। यूगोस्लाविया की सेना सम्बन्धी समान दायित्वो को सनिक जन अधिवक्ताओ द्वारा सम्पादित किया जाता है।[84] सघीय सभा (Federal Assembly) जन अधिवक्ता को नियुक्त एव पदच्युत करती है। गणतन्त्रो के जन अधिवक्ताओ को सघीय जन अधिवक्ता गणतन्त्र की कायकारिणी परिषद के परामर्श से नियुक्त करता है।[85]

सवधानिकता एव वधानिकता[86]

सविधान एव सविधियो के द्वारा जिस सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक सम्बन्धो की कल्पना की गयी है उनकी प्राप्ति के लिए सविधान तथा विधिक व्यवस्था

---

81 Article 249
82 Article 250
83 Article 251
84 Article 142
85 Article 143
86 Chapter VII

को रक्षा आवश्यक है । इसके अतिरिक्त विधि प्रणाली की एकता को अक्षुण्ण रखना, नागरिको के सगठनो एव सामाजिक व राजनीतिक समुदायो की सवैधानिक सुरक्षा सभी ‍न्यायालयो विशेषकर सवैधानिक ‍न्यायालय का दायित्व है।[87] सभी विधियो एव नियमा का यूगोस्लाविया के सविधान के अनुकूल होना आवश्यक है।[88] गणराज्यो की विधियो को गणत‍न्त्रीय सविधान के अनुकूल होना चाहिए और गणत‍न्त्रीय सविधाना को न तो यूगोस्लाविया के सविधान और न गणत‍न्त्रीय विधियो को सघीय सविधान के विपरीत होना चाहिए।[89] यदि गणत न्त्रीय सविधान सघीय सविधान एव गणत‍न्त्रीय विधि सघीय विधि के विपरीत है तो ऐसी अवस्था मे सघीय सविधान एव विधि मा‍न्य होगी । सभी विधिया एव नियमो के प्रभावी होने के पूव प्रकाशित कर देने की व्यवस्था है प्रत्येक व्यक्ति को ‍न्यायालय मे अपनी भाषा म बचाव करने एव निम्न ‍न्यायालयो के निणयो क विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त विधि द्वारा ही अधिकारो एव स्वत‍न्त्रताओ को निलम्बित किया जा सकता है।[90]

---

87 Article 146
88 Article 148
89 Article 148
90 Article 158

28

सयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायपालिका
[THE JUDICIAL SYSTEM OF THE UNITED STATES OF AMERICA]

सयुक्त राज्य अमरिका म सघ एव घटक राज्या की पृथक-पृथक न्यायपालिकाएँ हैं, अत इस दोहरी न्यायपालिका (Dual Judiciary) भी कहते हैं। प्रत्येक राज्य की अपनी पृथक न्यायपालिका होती है जिसका गठन एव क्षेत्राधिकार उस राज्य के सविधान द्वारा निर्धारित है। अमरिकी सघीय न्याय-व्यवस्था के शीर्ष पर सघीय सर्वोच्च न्यायालय अधिष्ठित है। सघीय न्यायपालिका म सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त 11 सर्किट (भ्रमणशील) न्यायालय एव 90 जिला (डिस्ट्रिक्ट) न्यायालय हैं। सारे सयुक्त राज्य अमरिका को भ्रमणशील न्यायालयो की स्थापनार्थ 11 क्षेत्रो म, एव जिला न्यायालयो की दृष्टि से 90 क्षेत्रो म विभाजित किया गया है। प्रत्यक भ्रमणशील न्यायालय म 3 से 9 तक न्यायाधीश होत हैं एव विवाद की सुनवाई के समय कम से कम दो न्यायाधीशों की उपस्थिति अनिवार्य होती है। लकिन सवधानिक प्रश्नो से सम्बन्धित विवादो की सुनवाई 3 न्यायाधीशो की पीठ (bench) द्वारा की जाती है। जिला न्यायालय सघीय न्यायपालिका के सबसे छोटे न्यायालय हैं। इन्हे कवल प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है, यद्यपि कभी-कभी राज्यो के न्यायालयो से सम्बन्धित विवाद इनके विचारार्थ भेज दिये जाते हैं। सवधानिक मामलो सम्बन्धी अपीलें इन न्यायालयो स सीधे सर्वोच्च न्यायालय म की जा सकती हैं। जिला न्यायालयो म कम से कम एक और अधिक स अधिक 6 न्यायाधीश होते है। कम जनसख्या वाले राज्यो म एक जिला न्यायालय होता है और अधिक जनसख्या वाले राज्यो मे अधिक जिला न्यायालय होते हैं। उदाहरण के लिए, न्यूयार्क राज्य मे 4 जिला न्यायालय हैं। भ्रमणशील सघीय न्यायालय पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार सम्पन्न होत हैं। 1948 ई तक इन न्यायालयो को (सर्किट) भ्रमणशील अपीलीय न्यायालय की सज्ञा दी जाती थी लेकिन इसी वर्ष से इन्हे सघीय पुनरावेदनीय न्यायालय (Federal Courts of

Appeal) के नाम से पुकारा जाने लगा है। सवप्रथम इन न्यायालयो की स्थापना 1891 ई म सर्वोच्च न्यायालय के पुनरावेदनीय (appellate) कायभार का कम करने के लिए की गयी थी। इन न्यायालया द्वारा पहले की भाति अब स्थान स्थान के दौरे नही किये जाते हैं अपितु वे बहुत ही कम दौरे करते हैं। इन्हे सघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission), राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध मण्डल (National Labour Relations Board) एव अन्य विविध राष्ट्रीय सस्थानो के निणया के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार प्राप्त है। सघीय पुनरावेदनीय न्यायालयो की तुलना मे जिला न्यायालय अपेक्षाकृत अधिक व्यस्त रहते है।

उपरोक्त तीना प्रकार के सघीय न्यायालय सवधानिक न्यायालय (Constitutional Courts) कहे जाते हैं क्योकि ये सविधान के आधार पर निर्मित है। इनके अतिरिक्त विशेष न्यायालय है। इन विशेष न्यायालया की स्थापना समय समय पर कांग्रेस द्वारा की गयी है। विशेष न्यायालय तीन प्रकार के होते हैं प्रथम, दावो का न्यायालय (Court of Claims), द्वितीय, सयुक्त राज्य का सीमा शुल्क न्यायालय (United States Customs Courts), ततीय, सीमा शुल्क एव एकस्व पुनरावेदनीय न्यायालय (United States Courts of Customs and Patent Appeals)। दावो के न्यायालय (Court of Claims) की स्थापना 1855 ई मे की गयी थी। इस न्यायालय को शासन के विरुद्ध धन सम्बन्धी दावो (claims) को सुनने का एकाधिकार प्रदान किया गया है। इसके पूव शासन के विरुद्ध धन सम्बन्धी दावो की सुनवाई करने वाला कोई न्यायालय नही था। 1926 ई मे दूसरा विशेष न्यायालय स्थापित किया गया। यह सयुक्त राज्य का सीमा शुल्क (कस्टम) न्यायालय है एव वस्तुओ के सीमा शुल्क सम्बन्धी विवादा का निणय करता है। तीसरा न्यायालय सीमा शुल्क एव एकस्व अपील न्यायालय सीमा शुल्क सम्बन्धी विवादा का पुनरावेदनीय न्यायालय है। यदि कोई आविष्कारक यह अनुभव करता है कि वाणिज्य विभाग न उसके आविष्कार का अनुचित रूप स एकस्व (patent) किया जाना अस्वीकृत किया है तो इस न्यायालय मे वह विवाद को निणय हेतु प्रस्तुत कर सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य विशेष न्यायालय भी है। इन विशेष न्यायालया का काय उन विधिया के क्रियान्वयन म प्रशासन की सहायता करना है जो काग्रेस द्वारा अपनी निहित शक्तिया या प्रदत्त शक्तिया के अधीन निर्मित की जाती हैं। वे सघीय न्यायालय उपरोक्त वर्णित सवैधानिक न्यायालयो स भिन्न है। इनकी स्थापना कांग्रेस अपनी विधायनी शक्ति के अधीन करती है, न कि सवधानिक प्रदत्त शक्तियो के आधार पर। इन न्यायालयो के न्यायाधीशो को निश्चित पदावधि के लिए नियुक्त किया जाता है तथा पदच्युत करने के लिए सवैधानिक न्यायालया की भाति उन पर महाभियोग लगाने की आवश्यकता नही होती है, लेकिन इन न्यायालया के निणया के विरुद्ध अपीले सघीय सवैधानिक न्यायालयो म की जा सकती हैं। अमेरिकी सविधान के अनुच्छेद 3 व द्वारा सघीय न्यायपालिका की व्यवस्था की गयी है। सघीय न्यायपालिका को अपने

क्षेत्र म व्यवस्था एव कायपालिका क समान ही (coordinate) शक्तिया प्राप्त हैं। सविधान म कोई विस्तत उपव"ध नही किया गया है अपितु केवल यही उल्लिखित है कि "यायिक शक्तियाँ एक सर्वोच्च "यायालय एव अ य अधीनस्थ यायालयो मे निहित होगी जिनकी स्थापना समय समय पर काग्रेस क द्वारा की जायेगी।[1] अत सविधान द्वारा सघीय यायपालिका के अ"य यायालयो की आवश्यकतानुसार स्थापना तथा सर्वोच्च यायालय सहित सघीय यायालयो के "यायाधीशा की सख्या निर्धारित करने का अधिकार काग्रेस को प्रदान किया गया है।

स्मरणीय है कि परिसघ के सविधान (Articles of the Confederation) म राष्ट्रीय यायपालिका की कोई व्यवस्था नही थी। परिसघ काल म सभी "यायिक विवादा का निणय राज्या के "यायालयो द्वारा किया जाता था। प्रत्येक राज्य की अपनी पथक एव स्वतन्त्र "याय व्यवस्था थी। इस काल म राज्यो के यायालयो द्वारा परस्पर विरोधी निणय दिये जाते थे। फलस्वरूप अस्थिरता एव अनेक प्रकार की जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती थी। परिसघ म राष्ट्रीय "यायालय का अभाव हैमिल्टन की दृष्टि मे उसका प्रधान दोष था। हैमिल्टन का कथन था कि विधियो को क्रिया-न्वित करने वाले यायालय के अभाव म विधि का कोई मूल्य नही होता है वह मृत पत्र के सदृश्य है। अत अमेरिकी सविधान निर्माता ऐसी "याय व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे जिससे कि परिसघकालीन अराजकता एव अस्थिरता की पुनरा-वत्ति न हो एव स्थायी शासन की स्थापना हो सके। इसके अतिरिक्त 1789 ई मे अमेरिकी सविधान द्वारा सघीय व्यवस्था को अपनाया गया था। अत सघीय शासन एव राज्या के मध्य विवादो का निणय करने हेतु एक स्वत"त्र निकाय जो निष्पक्ष पच की भूमिका निभा सके, का होना प[illegible] था। यह दायित्व सविधान निर्मा-ताओ ने सर्वोच्च यायालय को सौपा ह[illegible]
दायित्व राजनीतिक दृष्टि स राज्या क [illegible] ो के निणयो का
सविधान लिखित है। उसकी भाषा एव [illegible] ो था। अमरिकी
प्रश्ना का उठना स्वाभाविक [illegible]। राज्या म [illegible] स्था सम्बन्धी
का दायित्व सौपा [illegible] के [illegible] ो व्याख्या
निणय दिय जात [illegible]
नही हाता। अमे[illegible]
के निर्माण क लिए [illegible]
अनिवायता थी।

1 'Judicial power [illegible] inferior courts as [illegible] establish,' —Artic[illegible]
W B Munro, 194[illegible]

सर्वोच्च न्यायालय का सगठन

अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना 1789 ई म काग्रेस की विधि के द्वारा की गयी थी। प्रारम्भ मे मुख्य न्यायाधीश सहित इस न्यायालय मे केवल 6 न्यायाधीश थे। स्मरणीय है, अमेरिकी सविधान द्वारा न्यायाधीशो की सख्या निश्चित नही की गयी है। वह समय-समय पर परिवर्तित होती रही है। 1801 ई म न्यायाधीशो की सख्या 5, 1807 ई म 7, 1837 ई म 9 एव 1863 ई म 10 थी। सन 1866 म इसे कम करके पुन 7 कर दिया गया था। 1869 ई मे इसे बढाकर 9—एक मुख्य न्यायाधीश एव 8 अन्य न्यायाधीश—निश्चित कर दिया था। उस समय से यही सख्या चली आ रही है।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के अनुमोदन से की जाती है। न्यायाधीशो की नियुक्ति के सन्दर्भ मे 'सीनेट का शिष्टाचार नही निभाया जाता है। सीनेट ने न्यायाधीशो की नियुक्ति सम्बन्धी राष्ट्रपति की सभी सिफारिशो को स्वीकार भी नही किया है। 1930 ई म राष्ट्रपति हूवर के द्वारा की गयी जॉन पाकर की नियुक्ति को सीनेट ने उनके श्रम सघ विरोधी दृष्टिकोण एव नीग्रो विरोधी भावना के कारण अस्वीकृत कर दिया था। राष्ट्रपति न्यायाधीशो की नियुक्ति करते समय केवल विधिक योग्यता को ही ध्यान मे नही रखता अपितु क्षेत्रीय एव धार्मिक भावनाओ तथा राजनीतिक विचारो को भी ध्यान में रखता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो को सदाचरणपर्यन्त काल के लिए नियुक्त किया जाता है। 10 वष तक न्यायाधीश के पद पर काय कर चुकने तथा 70 वष की अवस्था प्राप्त करने पर न्यायाधीशो को स्वेच्छा स पद से त्यागपत्र देने की स्वतन्त्रता है परन्तु महाभियोग द्वारा उन्हे पद से पृथक किया जा सकता है। अभी तक केवल एक बार 1804-5 ई म समुअल चेस नामक न्यायाधीश पर महाभियोग लगाया गया है और वह भी असफल रहा था। न्यायाधीशो को समुचित वेतन दिया जाता है। अमेरिकी मुख्य न्यायाधीश को कोई विशेष अधिकार प्राप्त नही हैं। वह केवल न्यायाधीशो की अध्यक्षता करता है।

सर्वोच्च न्यायालय का वष म केवल एक ही सत्र अक्टूबर के प्रथम सोमवार स जून के मध्य तक होता है। विवादो की सुनवाई महीने के एक पखवाडे म मगलवार, बुधवार, वहस्पतिवार एव शुक्रवार को होती है। शनिवार को सभी न्यायाधीश आपस मे मिलकर विवादो पर विचार विमश करते हैं और सोमवार को निणय सुनाये जाते है। निणय बहुमत से किये जाते हैं। दूसरा पखवाडा न्यायाधीश अध्ययन एव निणय लिखने म व्यतीत करते हैं। निणय से असहमति रखने वाले न्यायाधीश अपना विमत (dissenting judgment) दे सकते है।

क्षेत्र म व्यवस्था एव कार्यपालिका के समान ही (coordinate) शक्तिया प्राप्त हैं। सविधान मे कोई विस्तृत उपबन्ध नही किया गया है अपितु केवल यही उल्लिखित है कि न्यायिक शक्तिया एक सर्वोच्च न्यायालय एव अन्य अधीनस्थ न्यायालयो म निहित होगी जिनकी स्थापना समय समय पर कांग्रेस के द्वारा की जायेगी।[1] अत सविधान द्वारा सघीय न्यायपालिका के अन्य न्यायालयो की आवश्यकतानुसार स्थापना तथा सर्वोच्च न्यायालय सहित सघीय न्यायालयो के न्यायाधीशो की सख्या निर्धारित करने का अधिकार कांग्रेस को प्रदान किया गया है।

स्मरणीय है कि परिसघ के सविधान (Articles of the Confederation) मे राष्ट्रीय न्यायपालिका की कोई व्यवस्था नही थी। परिसघ काल म सभी न्यायिक विवादो का निर्णय राज्यो के न्यायालयो द्वारा किया जाता था। प्रत्येक राज्य की अपनी पृथक एव स्वतन्त्र न्याय व्यवस्था थी। इस काल मे राज्यो के न्यायालयो द्वारा परस्पर विरोधी निर्णय दिये जाते थे। फलस्वरूप अस्थिरता एव अनेक प्रकार की जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती थी। परिसघ म राष्ट्रीय न्यायालय का अभाव हैमिल्टन की दृष्टि म उसका प्रधान दोष था। हैमिल्टन का कथन था कि विधियो को क्रियान्वित करने वाले न्यायालय के अभाव मे विधि का कोई मूल्य नही होता है, वह मृत पत्र के सदृश्य है। अत अमेरिकी सविधान निर्माता ऐसी न्याय व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे जिससे कि परिसघकालीन अराजकता एव अस्थिरता की पुनरावृत्ति न हो एव स्थायी शासन की स्थापना हो सके। इसके अतिरिक्त 1789 ई के अमेरिकी सविधान द्वारा सघीय व्यवस्था को अपनाया गया था। अत सघीय शासन एव राज्यो के मध्य विवादो का निर्णय करने हेतु एक स्वतन्त्र निकाय जो निष्पक्ष पच की भूमिका निभा सके, का होना परमावश्यक था। यह दायित्व सविधान निर्माताओ ने सर्वोच्च न्यायालय को सौपा है। सधियो सम्बन्धी विवादो के निर्णयो का दायित्व राजनीतिक दृष्टि से राज्यो के न्यायालयो का देना उचित नही था। अमरिकी सविधान लिखित है। उसकी भाषा एव विभिन्न उपबन्धो के अर्थ एव व्याख्या सम्बन्धी प्रश्नो का उठना स्वाभाविक है। राज्यो के न्यायालयो को यदि सविधान की व्याख्या का दायित्व सौपा जाता तो प्रत्येक राज्य के न्यायालय द्वारा भिन्न-भिन्न व्याख्या सम्बन्धी निर्णय दिये जाते। इससे गतिरोध एव अराजकता का उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक नही होता। अमरिकी सविधान निर्माता जिस न्यायपूर्ण समाज एव पूर्ण राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिए दृढसकल्प थे, उस दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना एक अनिवार्यता थी।

---

1 'Judicial power will be vested in one Supreme Court and such inferior courts as the Congress may from time to time ordain and establish "—Article 3 The Constitution of the United States W B Munro 1947 pp 95 96

सर्वोच्च न्यायालय का सगठन

अमेरिकी सर्वाच्च न्यायालय की स्थापना 1789 ई म कांग्रेस की विधि के द्वारा की गयी थी। प्रारम्भ मे मुख्य न्यायाधीश सहित इस न्यायालय मे केवल 6 न्यायाधीश थे। स्मरणीय है, अमेरिकी सविधान द्वारा न्यायाधीशो की सख्या निश्चित नही की गयी है। वह समय-समय पर परिवर्तित होती रही है। 1801 ई म न्यायाधीशा की सख्या 5, 1807 ई मे 7, 1837 ई मे 9 एव 1863 ई मे 10 थी। सन 1866 म इसे कम करके पुन 7 कर दिया गया था। 1869 ई म इसे बढाकर 9—एक मुख्य न्यायाधीश एव 8 अन्य न्यायाधीश—निश्चित कर दिया था। उस समय से यही सख्या चली आ रही है।

सर्वाच्च न्यायालय के न्यायाधीशा की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के अनुमोदन से की जाती है। न्यायाधीशो की नियुक्ति के सन्दर्भ मे 'सीनेट का शिष्टाचार' नही निभाया जाता है। सीनट ने न्यायाधीशो की नियुक्ति सम्बन्धी राष्ट्रपति की सभी सिफारिशा को स्वीकार भी नही किया है। 1930 ई मे राष्ट्रपति हूवर के द्वारा की गयी जॉन पाकर की नियुक्ति को सीनेट ने उनके श्रम सघ विरोधी दृष्टिकोण एव नीग्रो विरोधी भावना के कारण अस्वीकृत कर दिया था। राष्ट्रपति न्यायाधीशो की नियुक्ति करते समय केवल विधिक योग्यता को ही ध्यान मे नही रखता अपितु क्षेत्रीय एव धार्मिक भावनाओ तथा राजनीतिक विचारो को भी ध्यान मे रखता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशा को सदाचरणपयन्त काल के लिए नियुक्त किया जाता है। 10 वष तक न्यायाधीश के पद पर काय कर चुकने तथा 70 वष की अवस्था प्राप्त करन पर न्यायाधीशो को स्वेच्छा से पद से त्यागपत्र देने की स्वतन्त्रता है परन्तु महाभियोग द्वारा उन्हे पद स पृथक किया जा सकता है। अभी तक केवल एक बार 1804 5 ई म समुअल चेस नामक न्यायाधीश पर महाभियोग लगाया गया है और वह भी असफल रहा था। न्यायाधीशो को समुचित वेतन दिया जाता है। अमेरिकी मुख्य न्यायाधीश को कोई विशेष अधिकार प्राप्त नही है। वह केवल न्यायाधीशा की अध्यक्षता करता है।

सर्वोच्च न्यायालय का वष म कवल एक ही सत्र अक्टूबर के प्रथम सोमवार से जून के मध्य तक होता है। विवादो की सुनवाई महीने के एक पखवाडे मे मगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार एव शुक्रवार को होती है। शनिवार को सभी न्यायाधीश आपस म मिलकर विवादा पर विचार विमश करते हैं और सोमवार को निणय सुनाये जाते है। निणय वहुमत से किये जाते है। दूसरा पखवाडा न्यायाधीश अध्ययन एव निणय लिखने म व्यतीत करते हैं। निणय से असहमति रखने वाले न्यायाधीश अपना विमत (dissenting judgment) दे सकते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार[2]

सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक एव पुनरावेदनीय (appellate) दोनों ही प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त है ।

मौलिक या प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तगत निम्नलिखित विवाद आते हैं

(1) राजदूतो, अन्य सावजनिक मन्त्रियो एव राजनयिक अधिकारियो (Public Ministers and Consuls) से सम्बन्धित विवाद ।

(2) ऐसे समस्त विवाद जिनमे कोई एक राज्य एक पक्ष मे हो । अत वे सभी विवाद जिनमे सयुक्त राज्य अमेरिका एक पक्ष मे हो दो या अधिक राज्यो के मध्य विवाद, एक राज्य तथा विदेशी राज्य एव नागरिक तथा प्रजाजनो के मध्य विवाद सर्वोच्च न्यायालय के मौलिक क्षेत्राधिकार के अन्तगत आते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य सभी निम्नांकित विवाद सर्वोच्च न्यायालय के पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार के अधीन हैं ।

(1) सविधान के अधीन विधि एव सुनीति (equity), सघीय विधियो एव सयुक्त राज्य अमरिका द्वारा सम्पादित सन्धियाँ एव भविष्य मे की जाने वाली सन्धियो सम्बन्धी विवाद ।

(2) नौ सेना एव जलीय यातायात सम्बन्धी विवाद ।

(3) विभिन्न राज्यो के नागरिको के मध्य विवाद, अन्य किसी राज्य के अनुदान के सम्बन्ध मे एक राज्य मे विभिन्न नागरिको के मध्य विवाद ।

सर्वोच्च न्यायालय को उपरोक्त सभी विवादो मे विधि तथा तथ्यो (law and facts) के सम्बन्ध मे पुनरावदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है । परन्तु निम्न सघीय न्यायालयो के निणयो अथवा राज्यो के उच्च न्यायालयो के सभी निणयो के विरुद्ध सम्बन्धित पक्षो को स्वेच्छापूवक सर्वोच्च न्यायालय मे पुनरावदन की सुविधा प्राप्त नहीं है । सम्बन्धित पक्षो को राज्यो के न्यायालयो के विरुद्ध निम्न अवस्थाओ मे कवल अपील का अधिकार प्राप्त है (1) उच्च न्यायालय द्वारा जब किसी ऐसी राज्य विधि को वध ठहराया गया हो जो सघीय सविधान या कांग्रेस की विधि या सयुक्त राज्य अमरिका द्वारा सम्पादित किसी सन्धि के विपरीत हो, या (2) राज्यो के उच्च न्यायालय ने किसी सघीय सन्धि या विधि को अवैध घोषित कर दिया हो। सर्वोच्च न्यायालय का पुनरावदनीय क्षेत्राधिकार सवैधानिक विवादो तक ही सीमित है परन्तु राज्य के उच्च न्यायालयो द्वारा जिन विवादो मे सीधे सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की अनुमति प्रदान कर दी जाती है उन विवादो मे सर्वोच्च न्यायालय मे सीधे अपील हो

---

2 Section 2, Article 3 of the Constitution of the United States, 'A Government by the People' U S I S Publications, p 98 and Munro *op cit*, pp 99 113

सकती है । सर्वोच्च ायालय के पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार को नियमित करन का अधिकार काग्रेस को प्राप्त है ।

सर्वोच्च ायालय को स्वविवेक स उत्प्रेषण आदश (certiorari orders) जारी करके निम्न ायालया से विवाद को अपने समक्ष विचाराथ मँगाने का भी अधिकार है ।

अमेरिकी सर्वोच्च ायालय भारतीय ायालय की भांति परामशदायी काय सम्पादित नही करता । ायाधीश माशल न कायपालिका को किसी अमूत प्रश्न या विषय पर परामश देने से इकार कर दिया था । उनका मत था कि सर्वोच्च ायालय द्वारा राष्ट्रपति को परामश देन का अथ यह है कि ायपालिका कायपालिका के अधीन है । इसके अतिरिक्त सर्वोच्च ायालय द्वारा परामश दना शक्ति-पृथक्करण के सिद्धात के भी विपरीत है ।

मौलिक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवाद सर्वोच्च ायालय मे कम ही आते है । राजनयिक अधिकारी (diplomatic personnel) अ तर्राष्ट्रीय विधि के नियमा के कारण ायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन नही हाते ह । राजनयिक उ मुक्तियो (diplomatic immunities) से वचित कुछ निम्न राजनयिक अधिकारियो पर अ य सघीय यायालयो म मुकदमे चलाये जा सकते है जिनको समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त होता है । 1925 ई के सुधारो के पश्चात सर्वोच्च ायालय मे पुनरावेदनीय विवादो का आना कम हो गया है । सर्वोच्च ायालय को सभी अधीनस्थ सघीय यायालयो के कार्यो के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है ।

अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय एव न्यायिक पुनर्रीक्षण

व्यवस्थापिका एव कायपालिका के कार्यो के सविधान के विपरीत होन की दशा म ायालयो को उ ह अवैधानिक घोपित करने की शक्ति होती है । ायालयो के इस अधिकार को यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति या अधिकार कहत हैं । इस कभी कभी ायिक निषेधाधिकार (Judicial Veto) की भी सज्ञा दी जाती है । बथ के अनुसार सवैधानिक आधार पर शासन के अ य अभिकरणा के कार्यों को अवधानिक घोपित करने की सर्वोच्च ायालय की शक्ति को यायिक पुनर्रीक्षण कहते हैं ।[3] सरल शब्दो मे यायिक पुनर्रीक्षण से अथ विधिया एव शासन के कार्यों का सविधान की व्यवस्था के आधार पर यायालय द्वारा परीक्षण है । अमेरिकी सर्वोच्च ायालय को प्राप्त यायिक पुनर्रीक्षण के अधिकार से ब्रिटिश ससद की सर्वोच्चता की भांति ायिक सर्वोच्चता (judicial supremacy) का भ्रम उत्पन्न नही होना चाहिए । कभी-कभी

3 Judicial review is 'the power of the highest court of jurisdiction to invalidate, on constitutional grounds the acts of other govern mental agency within that jurisdiction '—Berth, L P *The Constitution & The Supreme Court*, 1962 p 16

आदेश जारी किय थ परन्तु मारबरी की नियुक्ति सम्बन्धी उक्त आदेश को भेजन के पूव ही राष्ट्रपति एडम्स का कायकाल समाप्त हो गया था। नवीन राष्ट्रपति जैफरसन एव सचिव मडीमन ने मारबरी को नियुक्ति सम्बन्धी आदेश को भजना अस्वीकार कर दिया। इस पर मारबरी न सर्वोच्च न्यायालय स राष्ट्रपति के विरुद्ध परमादेश जारी करने की प्राथना की। इस विवाद म 1803 ई म निणय देते हुए मुख्य न्यायाधीश मार्शल न कहा था कि "मारबरी को अपनी नियुक्ति सम्बन्धी आदेश प्राप्त करन का अधिकार है परन्तु सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार नही है कि वह मारबरी को नियुक्ति सम्बन्धी आदश दिय जान हेतु परमादश जारी करे। इसका कारण यह है कि 1789 ई का जुडीशियल एक्ट सविधान क अनुच्छेद 3 के विपरीत है क्योकि इस अधिनियम द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के मौलिक क्षेत्राधिकार को अनुच्छेद 3 म उल्लिखित क्षेत्राधिकार की तुलना म वृद्धि की है। अत उक्त अधिनियम अवधानिक है।' न्यायाधीश मार्शल का यह तर्क था कि "यह निश्चय करना निस्सन्देह न्याय विभाग का क्षेत्र एव दायित्व है कि विधियाँ क्या ह।" इसके अतिरिक्त सविधान लिखित तथा देश की सर्वोच्च विधि है और कांग्रेस की सामान्य विधिया स श्रेष्ठ है। अत न्यायाधीशा का यह कतव्य है कि वे सविधान का आदर करन हुए विधियो को क्रियान्वित करें। यदि कांग्रेस की कोई विधि सविधान की किसी धारा का अतिक्रमण करती है तो वह असवधानिक है एव स्वत ही प्रभावहीन हो जाती है।[8] इस निणय न पूरी तरह यह निश्चित कर दिया कि न्यायपालिका का यह अधिकार एव कतव्य है कि वह विधानमण्डल एव कायपालिका के कार्यों को सविधान की धाराओ की कसौटी पर कस कर उनकी वधानिकता के सम्बन्ध म निर्णय दे और यदि कोई विधि या काय सविधान की किसी धारा क प्रतिकूल है, तो उस अवैध घोषित कर दे।

इसी तरह का एक अन्य महत्वपूण विवाद मकलाउच बनाम मेरीलण्ड (1819) (*McCulloch* v *Maryland*, 1819) है। 1791 ई मे कांग्रस न कुछेक राज्यो के तीव्र विरोध क बावजूद भी बक स्थापना सम्बन्धी आदेश पारित किया था। इस आदेश क अनुसार राष्ट्रीय बैंक को देशव्यापी क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया था एव इसी के आधार पर मेरीलण्ड राज्य के बाल्टीमोर नामक नगर मे राष्ट्रीय बैंक की एक शाखा स्थापित भी की गयी। 1818 ई मे मेरीलण्ड राज्य ने अपने राज्य मे प्रचलित तथा उस समस्त पत्रमुद्रा पर स्टाम्प कर लगाने की घोषणा की जो मेरीलैण्ड की बको या उनकी शाखाओ द्वारा राज्य म आदेश के समय जारी किये गये थे। सघीय बक की बाल्टीमोर शाखा ने स्टाम्प कर देना अस्वीकार कर दिया। इस पर मेरी

8 "It is emphatically the province and duty of the judicial department to say what the law is If two laws conflict each other the courts must decide on the operation of each" *Marbury* v *Madison* (U S I) S C (1808) Cranch 137

1935 ई मे सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय औद्योगिक पुनर्व्यवस्था अधिनियम, 1933 ई (National Industrial Recovery Act, 1933) को उस सीमा तक अवधानिक ठहराया था जहा तक कि विधेयक का राज्यो के उद्योगो से सम्बन्ध था। उक्त एक्ट राष्ट्रपति रूजवेल्ट के न्यू डील कायक्रम का अग था। इसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को नियम निर्माण की व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी थी। इस पर यह आपत्ति की गयी कि कांग्रेस द्वारा कायपालिका को नियम निर्माण की विधायी शक्ति प्रदान कर दी गयी है जो वस्तुत सविधान द्वारा कांग्रेस मे अधिष्ठित की गयी है। दूसरे पक्ष ने इसे अधीनस्थ विधि निर्माण बताया और विधायी शक्ति का प्रदत्तिकरण नही माना। सर्वोच्च न्यायालय ने सवसम्मति से इस व्यवस्था को विधायी शक्ति का प्रदत्तिकरण (delegation) मानते हुए अधिनियम को असवैधानिक (unconstitutional) घोषित कर दिया था।[13]

अमरिकी सविधान के पाँचवे सशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि किसी व्यक्ति को विधि की उचित प्रक्रिया (due process of law) के बिना जीवन, स्वतन्त्रता एव सम्पत्ति से वचित नही किया जायेगा। यह सशोधन विशुद्ध रूप मे सघीय शासन से सम्बन्धित है। 14वें सशोधन द्वारा राज्यो की सरकारो पर भी यह प्रतिबन्ध लगाया गया है। इस सशोधन का लक्ष्य स्वतन्त्र नागरिको के रूप मे नीग्रो लोगो के अधिकारो की रक्षा करना था। इसके पश्चात अनेक विवाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होते रहे है और उसने जीवन, स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, व्यक्ति एव विधि की उचित प्रक्रिया की व्याख्या करके राज्यो एव केन्द्रीय सरकारो के कायक्षेत्र को आश्चयजनक रूप से सीमित किया है। स्मरणीय है, 1870 ई एव 1880 ई म राष्ट्रपति एव कांग्रेस के कार्यों का, जिनके द्वारा नीग्रो जाति के लोगो की रक्षा के प्रयत्न किये गये थे, सर्वोच्च न्यायालय ने अवैधानिक ठहराया था।

सर्वोच्च न्यायालय न अभी तक 80 विवादो म कांग्रेस की विधिया एव उनसे सम्बन्धित विभिन्न उपबन्धो को अवधानिक घोषित किया है और उनम स भी केवल 8 या 10 विधिया को पूरी तरह अवधानिक ठहराया है। स्मरणीय है, कांग्रेस न 1789 ई के पश्चात करीब 70 हजार स भी अधिक विधिया पारित की हैं। करीब 30 हजार विधियाँ इनम से सावजनिक विषयो स सम्बन्धित है। स्पष्ट है कि न्यायिक पुनर्रीक्षण का सम्बन्ध यद्यपि थोडी सी विधियो से ही रहा है, परन्तु अमरिकी राजनीतिक जीवन म इसका अप्रत्यक्ष रूप से व्यापक प्रभाव पडा है।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्रीक्षण का सम्बन्ध केन्द्र एव राज्या के क्षेत्र एव अधिकारा तथा मौलिक अधिकारो से है। सर्वोच्च न्यायालय न वाणिज्य उपबन्ध (Commerce Clause) की व्याख्या तथा निहित शक्तिया के सिद्धान्त को विकसित

13 *Schechter Poultry Corporation* v *U S*, (1935), 295 U S 495

नगरा के कार्यों से अधिक है । 1938 ई के पश्चात धार्मिक स्वत त्रता सम्बन्धी अनेक विवादा म सर्वोच्च यायालय न यह निणय दिय हैं कि नगरा एव राज्या क द्वारा धार्मिक स्वत त्रता का अतिक्रमण किया गया है । सर्वोच्च यायालय न अपन एक निणय म कहा है कि न तो राज्या की सरकारें और न सघीय सरकार ही चच की स्थापना कर सकती है और न व एसी विधियाँ पारित कर सकती हैं जो एक तथा अनेक धर्मों की सहायता और एक धम को दूसर स प्राथमिकता दती हा । सर्वोच्च यायालय के एक दूसरे निणय क अनुसार राज्या के विद्यालया म विभिन्न धर्मा क प्रतिनिधिया को शिक्षा क दौरान धार्मिक शिक्षा नही दी जा सकती है ।

विचार एव भाषण, धम एव समुदाय की स्वत त्रताओ क सम्बन्ध म सर्वोच्च यायालय का विगत 20 वर्षा म यह दृष्टिकोण रहा है कि इन स्वत त्रताओ म हस्तक्षेप एव इन्हे सीमित करन वाली विधिया का उसी अवस्था म अवधानिक घोषित किया जाना चाहिए जबकि स्पष्ट एव तात्कालिक सावजनिक सुरक्षा हेतु हस्तक्षेप की अनिवार्यता सिद्ध न होती हो । यायाधीश होम्स (Justice Holmes) इस सिद्धा त क सूत्राधार थे । उनक अनुसार ' इस स्वत त्रताओ को सावजनिक हित म ही सीमित करने का स्पष्ट औचित्य हो सकता है। ' अत यह मौलिक अधिकार अधिक सुदृढ आधार पर आधारित ह । उदाहरणाथ, 1952 ई म सर्वोच्च यायालय ने चलचित्रा क माध्यम से अभिव्यक्ति (expression) को भाषण एव प्रेस की स्वतन्त्रता के अ तगत स्वीकार किया था । सर्वोच्च यायालय क अनेक निणयो का सम्बन्ध रगभेद से है । सर्वोच्च यायालय के निणया क फलस्वरूप अमरिकी समाज म नीग्रो जनता की स्थिति म सुधार हुआ है । अमरिका म काल गोर—श्वेत अमरिकी एव नीग्रो जनता के मध्य भेद व्याप्त है । नीग्रो जनता क लिए समाज म पृथक होटल, विद्यालय आदि है । नीग्रो के लिए इस प्रकार की पृथक व्यवस्थाओ को सर्वोच्च यायालय ने अवैधानिक ठहराया है । "स्कूला म नीग्रो बालका के लिए पृथक व्यवस्था का अथ सर्वोच्च यायालय की दष्टि म इन बालका का समान शक्षणिक सुविधाओ से वचित कर देना है।' "पृथकता एव समानता क सिद्धा त के लिए एक साथ कोई स्थान नही है। पृथक शिक्षा सुविधाएँ निश्चय ही असमान होनी है।" पृथकता की व्यवस्था विभेद को सिद्ध करती है, यह मत ब्राउन बनाम शिक्षा बोड नामक विवाद म सर्वोच्च यायालय द्वारा यक्त किया गया था । नीग्रो स्वत त्रता एव मुक्ति क इतिहास म यह निणय युगा तरकारी है । इसके पश्चात सयुक्त राज्य अमरिका म विधि द्वारा पृथकता की व्यवस्था का वस्तुत अ त हो गया है ।

सर्वोच्च न्यायालय का महत्व

अमरिकी सर्वोच्च यायालय ने अमरीकी राष्ट्र के विकास म महत्वपूण भूमिका अदा की है। 1780 ई के दशक म लघु कृषि प्रधान समाज क लिए जो सविधान निर्मित किया गया था, वह वतमान अमरिकी समाज (जो 13 के स्थान पर 50 राज्या का

औद्योगिक सघ है) के हितो की पूर्ति कर रहा है। अमेरिका की जनसख्या म भी कई गुना वद्धि हो गयी है। वतमान परिस्थितियो के अनुकूल सविधान को ढालन म सर्वोच्च न्यायालय का सराहनीय योग है। सघीय शासन की शक्तिया मे भी वद्धि हुई है। यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विकसित 'निहित शक्तियो के सिद्धान्त' द्वारा ही सम्भव हुआ है। सघीय बैंक को कर लगाने, ऋण देने, कांग्रेस द्वारा मूल्या को निर्धारित करने का अधिकार इसी सिद्धान्त का परिणाम है। मूल सवैधानिक व्यवस्था के अनुसार सघ की इकाइयाँ—राज्य—अधिक शक्तिशाली थी और केन्द्र अपेक्षाकृत कमजोर था। लेकिन आज स्थिति उलट गयी है। इसका श्रेय सर्वोच्च न्यायालय के निणयो को है। वाणिज्य धारा सम्बन्धी विवादो म सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निणया मे कांग्रेस द्वारा पारित अन्त राज्यीय एव विदेशी सभी प्रकार के व्यापार सम्बन्धी विधियो को वैधानिक ठहराया है, भले ही व्यापार रेल, तार, रेडियो, हवाई जहाज, जलपोत द्वारा किया गया हो। सक्षेप मे, सर्वोच्च न्यायालय ने सविधान को परिवर्तित परिस्थितिया के अनुकूल विकसित किया है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय सविधान का सरक्षक एव मौलिक अधिकारो का जागरूक रक्षक है और उसने व्यवस्थापिका क अतिक्रमण से कायपालिका के अधिकारो की रक्षा की है।

परन्तु 19वी सदी एव 1935 ई तक अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय मध्यम वग के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो की रक्षा करता रहा था और साधारण जनता के अधिकारो की तुलना म सर्वोच्च न्यायालय सम्पत्ति एव सम्पत्तिशालियो का गढ सिद्ध हुआ था। इस काल मे सर्वोच्च न्यायालय ने आय-कर, न्यूनतम वेतन एव काम के सीमित घण्टो सम्बन्धी विधियो को अवधानिक घोषित करते हुए दासता को उचित ठहराया था। आलोचको का मत है कि सर्वोच्च न्यायालय न प्रगतिशील विधेयको का विरोध किया था। वस्तुत इस काल म वह लोकतन्त्रीय कम रूढ़िवादी अधिक था।

ब्रोगन, लास्की, लुई बोर्दा एव एडम ब्रुक्स ने सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्रीक्षण के अधिकार की तीव्र आलोचना की है। न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति के कारण सर्वोच्च न्यायालय तृतीय सदन (Third Chamber) बन गया है। न्यायालय को सविधान की व्याख्या के अधिकार प्राप्त होने के कारण न्यायाधीश ह्यूस (Hughes) के अनुसार सविधान वही है जो न्यायाधीश उसे कहते हैं।[15] न्यायाधीश फ्रैंकफटर ने तो यहाँ तक कहा था कि सर्वोच्च न्यायालय ही सविधान है।[16] अमरिकी सर्वोच्च न्यायालय की अत्यधिक शक्ति को न्यायिक अत्याचार (judicial tyranny) की

15 "We are under a Constitution but the Constitution is what the judges say it is"—Hughes, cited by A C Kapoor *Select Constitutions*, 1965, p 357

16 The Supreme Court is the Constitution '—Justice Frankfurter, cited by A C Kapoor *op cit*, p 357

सज्ञा दी गयी है। इस अत्याचार का एक बडा कारण यह है कि यायाधीश अपने को परिवर्तित सामाजिक परिस्थितिया एव तदजनित आवश्यकताओ के अनुकूल परिवर्तित या ढालने म असफल रहत है। अधिकाश यायाधीश वद्ध होत हैं, वे पूव निर्धारित सामाजिक एव आर्थिक धारणाओ मे बँधे होते हैं। उनका परित्याग करना उनके लिए सम्भव नही होता है, फलस्वरूप वे सामाजिक आवश्यकता को समभने म असफल रहते हैं और प्रगतिशीलता के मार्ग मे अवरोध बन जात हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के सुधार के प्रयत्न

सर्वोच्च यायालय और कांग्रेस या राष्ट्रपति के मध्य कशमकश कमी-कमी अवाछनीय स्थिति उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार का एक सघष 1895 ई म हुआ था। उस समय यायालय ने यह निणय दिया था कि शासन आय कर नही लगा सकता है। सर्वोच्च यायालय की इस निणय के कारण तीव्र आलोचना हुई है। ड्रेड स्काट (Dred Scott) विवाद[17] म दिय गये निणय म सर्वोच्च यायालय ने नीग्रो की स्वतन्त्रता को स्वीकार नही किया था। अब्राहम लिंकन ने इस निणय को विवेकहीन, असगत एव राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रेरित बताया था। इन सब कारणो से यह अनुभव किया गया था कि यायाधीशो की स्वतन्त्रता एव लोकमत को समन्वित एव सम्बन्धित करने की किसी न किसी प्रकार की कोई व्यवस्था होनी चाहिए। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने न्यू डील कायक्रम के सन्दभ मे ऐसा ही मत व्यक्त किया था। उनका कथन था कि यदि सर्वोच्च यायालय यायिक पुनरीक्षण के अधिकार के कारण ततीय सदन बना रहा तो देश की प्रगति तथा लोक कल्याणकारी राज्य के विकास के अवरुद्ध हो जाने की सम्भावना है। सर्वोच्च यायालय की उपरोक्त उल्लिखित आय कर सम्बन्धी निणय का निष्प्रभावी करने के लिए 16वा सशोधन पारित करना पडा था। सर्वोच्च यायालय के निणय सदैव वैधानिकता से सम्बन्धित नही होते। अनेक अवसरो पर सर्वोच्च यायालय के निणयो मे राजनीतिक पुट होता है। इस स्थिति को रोकने के लिए सर्वोच्च यायालय के सगठन एव कायपद्धति सम्बन्धी सुधार के बारे म अनेक सुभाव दिये गये हैं, यथा—विधिया को अवधानिक घोषित करने वाले निणय सर्वोच्च यायालय द्वारा बहुमत की अपेक्षा कुल सदस्या के दो तिहाई बहुमत से दिये जान चाहिए। एक अन्य सुभाव के अनुसार सर्वोच्च यायालय द्वारा अवधानिक घोषित की गयी विधिया को कांग्रेस को पुन उसी प्रकार पारित करने का अधिकार होना चाहिए जिस प्रकार कि राष्ट्रपति द्वारा अस्वीकृत विधियो को काग्रेस पुन पारित कर सकती है। यायिक पुनरीक्षण की शक्ति को ही समाप्त कर दन के भी सुभाव दिये गय है। यह सभी सुभाव क्रियान्वित नही हो सके हैं और न इनके क्रियान्वित हान की काई आशा ही है क्याकि अमेरिकी जनता को बहुमत म कोई आस्था नही है। अत बर्न

---

17 *Dred Scott* v *Sandford* (1857)

एव पेल्टासन न्यायिक पुनर्रीक्षण से युक्त स्वतन्त्र न्यायपालिका का विधानमण्डल एव जनता के बहुमत के सम्भावित हस्तक्षेप के विरुद्ध एक सस्थागत व्यवस्था मानते हैं।

1937 ई म अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सर्वोच्च न्यायालय के सुधार के सम्बन्ध म प्रस्ताव उपस्थित किये थे। 1933 ई म फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट राष्ट्रपति बने थे। उस समय विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के सम्भावनाओं से अमेरिकी अर्थ व्यवस्था जर्जर हो रही थी। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इस स्थिति का सामना करने के लिए एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। यही न्यू डील कार्यक्रम कहलाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत काग्रेस ने अनेक विधियाँ पारित की थी। इस कार्यक्रम से सम्बन्धित विधियों का इनसे प्रभावित विभिन्न हितो द्वारा न्यायालय मे चुनौती दी गयी तथा सर्वोच्च न्यायालय ने इनम से बारह विधियों को अवधानिक घोषित किया था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट इससे क्षुब्ध हो गये। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के विरोध को निष्प्रभावी करने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसके अनुसार प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश के स्थान पर जो 10 वर्ष तक पद पर कार्य कर चुका हो तथा 70 वर्ष की आयु पार कर चुका हो, एक अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार राष्ट्रपति को देने का प्रस्ताव था, बशर्ते न्यायाधीशों की कुल सदस्य सख्या 15 से अधिक न हो जाय। इस प्रस्ताव का उद्देश्य सर्वोच्च न्यायालय म नवीन रक्त का समावेश करना तथा उसे रूढ़िवादी होने स रोकना था। राष्ट्रपति के प्रस्तावो का तीव्र विरोध किया गया और अन्त म वे अस्वीकार कर दिये गये। परन्तु काँग्रेस ने एक विधि पारित की जिसके अनुसार न्यायाधीशो को 10 वर्ष की सेवा के पश्चात 70 वर्ष की आयु पर सवेतन पदनिवृत्ति की व्यवस्था थी। यद्यपि रूजवेल्ट अपने प्रस्ताव को पारित न करा सके परन्तु उपरोक्त विधि से उनका उद्देश्य पूर्ण हो गया। यह सत्य है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अमेरिकी जनता एव राष्ट्र की प्रशसनीय सेवा की है। वह शासनतन्त्र का सन्तुलन चक्र है। उसने सविधान की देश का सर्वोच्च विधि के रूप म रक्षा एव व्याख्या की है। यह विश्व का महानतम न्यायिक सगठन एव अमेरिकी राजनीतिक प्रणाली का एक सशक्त तत्व है। लास्की के अनुसार अमेरिकी सघीय न्यायालय विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय का जितना सम्मान है उतना ही सयुक्त राज्य अमरिका के जीवन म उसका प्रभाव भी है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा कि अमेरिकी इतिहास (सर्वोच्च न्यायालय) द्वारा दिये गये सघीय निर्णयों पर विचार के अभाव म अपूर्ण रहेगा।[18]

18 'The respect in which the federal courts and above all, the Supreme Court are held is hardly surpassed by the influence they exert on the life of the United States It is not excessive to say that American history would be incomplete without a careful consideration of them"—Laski *The American Democracy*, 1953, p 110

29

भारतीय न्यायपालिका

[THE INDIAN JUDICIARY]

संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति भारत में केन्द्र एवं राज्यों की पृथक एवं दुहरी न्यायपालिका नहीं है। भारतीय न्यायपालिका एकीकृत (integrated) है जिसके शीर्ष पर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय है और उसके नीचे प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय तथा राज्यों में जिला-स्तर पर जिला न्यायालय एवं उप जिला न्यायालय होते हैं। मुन्सिफ की अदालतें न्यायपालिका की छोटी अदालतें हैं। इसके अतिरिक्त अन्य मजिस्ट्रेट भी अपराधिक विवादों का निर्णय करते हैं। जिला न्यायालय के न्यायाधीश एवं मुन्सिफ तथा अन्य दण्डाधिकारी (प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी) लोक सेवा आयोग द्वारा प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। जिला न्यायालय तक मुन्सिफ अधिकारियों की पदोन्नति होती रहती है। वरिष्ठता एवं योग्यता पदोन्नति के मुख्य आधार हैं। ग्राम पंचायत न्यायालय सबसे छोटी अदालत है।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय देश की न्यायपालिका के शीर्ष पर स्थित है तथा यह सर्वोच्च एवं एकमात्र संघीय न्यायालय है। संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या मुख्य न्यायाधीश सहित 8 निर्धारित थी और संसद को इस संख्या में वृद्धि का अधिकार दिया गया था। 1960 ई० के संशोधन के अनुसार मुख्य न्यायाधीश सहित कुल न्यायाधीशों की संख्या 14 निश्चित की गयी है। अस्थायी न्यायाधीशों की नियुक्ति की भी व्यवस्था है। सभी न्यायाधीशों को राष्ट्रपति नियुक्त करता है। लेकिन मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श लेता है जिनसे वह इस सम्बन्ध में परामर्श करना उचित समझता है तथा मुख्य न्यायाधीश से वह अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सन्दर्भ में परामर्श करता है। संविधान द्वारा निर्धारित न्याया-

धीश की योग्यताएँ निम्नवत् हैं [1] वह भारत का नागरिक हो, कम स कम 5 वष तक किसी उच्च न्यायालय मे न्यायाधीश रह चुका हो अथवा किसी उच्च न्यायालय म कम से कम 10 वष तक अधिवक्ता के रूप मे काम कर चुका हो या राष्ट्रपति की दृष्टि म विख्यात विधिविज (Eminent Jurist) हो। सर्वोच्च न्यायालय का न्याया धीश 65 वष तक पदासीन रहता है। इसके पूव उसे स्वय त्यागपत्र देकर पद से पृथक होने का अधिकार है। कदाचार एव असमथता के कारण ससद महाभियोग लगाकर न्यायाधीशो को पदच्युत कर सकती है। महाभियोग के स्वीकृत होने के लिए तत्सम्बन्धी प्रस्ताव को ससद के एक ही सत्र मे दोनो सदना द्वारा पृथक पृथक रूप मे सदनो के कुल सदस्यो की सख्या के स्पष्ट बहुमत एव उपस्थित सदस्या के दो तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए। इस प्रकार महाभियोग प्रस्ताव के पारित होने पर भारतीय न्यायाधीश का पद से पृथक करने का अधिकार राष्ट्रपति का प्राप्त हो जाता है। मुख्य न्यायाधीश को 5 हजार एव अन्य न्यायाधीशो को 4 हजार रुपये मासिक वेतन दिया जाता है, बिना किराये का सरकारी आवास प्राप्त होता है तथा समुचित भत्ते की व्यवस्था होती है एव अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त ह। न्यायाधीशो के वतन, भत्ते एव अन्य सुविधाओ मे उनके कायकाल मे कोई कमी नही की जा सकती। अवकाश ग्रहण करने के पश्चात सर्वोच्च न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश किसी भी भारतीय न्यायालय मे वकालत नही कर सकता। उनके वेतनादि भारतीय सचित निधि पर भार होते हैं। महाभियोग की कठिन व्यवस्था करके न्यायाधीशो को कायकाल सम्बन्धी सुरक्षा प्रदान की गयी है। अन्य व्यवस्थाओ से न्यायाधीशो को आर्थिक चिन्ताओ स मुक्त होकर स्वतन्त्रता एव निर्भीकतापूवक अपने दायित्व को सम्पादित करने के अवसर प्रदान किये गये है।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार एव शक्तियाँ

सर्वोच्च न्यायालय को व्यापक क्षेत्राधिकार एव अनन्य शक्तियाँ प्राप्त हैं

1 मौलिक या प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

उस निम्न प्रकार के विवादा म मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है

(i) भारत सरकार तथा एक या एक स अधिक राज्या के मध्य विवाद,

(ii) राज्य या राज्या तथा एक या अधिक राज्या के मध्य विवाद

(iii) राज्या के मध्य सवधानिक विषया सम्बन्धी विवाद, एव

(iv) सविधान के क्रियान्वयन के पूव सम्पादित सन्धि या सनद की व्यवस्था स सम्बन्धित विवाद।[2]

उपराक्त विवादा म केवल सर्वोच्च न्यायालय को ही मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त

---

1 *The Union Judiciary*, Ch IV Articles 124, 126 and 127

2 *अनुच्छेद 131*

है, परन्तु मौलिक अधिकारो सम्बन्धी विवादो मे सर्वोच्च न्यायालय के साथ साथ उच्च न्यायालयो को भी मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। यदि वादी चाहे तो मौलिक अधिकारो सम्बन्धी विवाद को सवप्रथम उच्च न्यायालय म या सर्वोच्च न्यायालय मे भी प्रस्तुत कर सकता है। अत मौलिक अधिकारो के सम्बन्ध मे सर्वोच्च न्यायालय को राज्यो के उच्च न्यायालयो के साथ समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारो के रक्षाथ न्यायालय विभिन्न प्रकार के लेख (Writs) अर्थात बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिशेष (Prohibition), अधिकार पृच्छा (Quo warranto) एव उत्प्रेषण (Certiorari) जारी करने का अधिकार प्राप्त है।

2 पुनरावेदनीय (अपीलीय) क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय देश का अन्तिम पुनरावेदनीय न्यायालय है।[3] इसे राज्यो के उच्च न्यायालयो के निणयो के विरुद्ध दीवानी एव फौजदारी विवादो मे अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है। स्वत त्रता के पूव उच्च न्यायालयो के निणयो के विरुद्ध अपीलें प्रीवी परिषद द्वारा सुनी जाती थी। परन्तु 1949 ई मे प्रीवी परिषद के क्षेत्राधिकार के उन्मूलन के फलस्वरूप वहा अपीले जाना बन्द हो गया है तथा सविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को सभी विवादो मे अन्तिम अपीलीय क्षेत्राधिकार प्रदान किये गये हैं। सर्वोच्च न्यायालय स्वय अपने आदेशो एव निणयो पर पुनर्विचार कर सकता है परन्तु उसके निणय के विरुद्ध अपील नही की जा सकती है। इसके अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्न चार भागो म विभाजित किया जाता है दीवानी, अपराधिक (फौजदारी), सवधानिक एव विशिष्ट।

(i) दीवानी—केवल उन्ही दीवानी विवादो की अपील की जा सकती है जिनका सम्बन्ध 20 हजार रुपये की धनराशि या जायदाद से हो तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तत्सम्बन्धी प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया हो। लेकिन उच्च न्यायालय के किसी ऐसे निणय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय मे अपील नही की जा सकती जो केवल एक न्यायाधीश द्वारा दिया गया है।

(ii) अपराधिक—उच्च न्यायालयो के निम्न अपराधिक विवादो के निणयो के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय मे अपील सम्भव है—(अ) ऐसा विवाद जिसमे उच्च न्यायालय द्वारा नीचे की अदालत के ऐसे निणय को जिसम अपराधी को अपराध से मुक्त किया गया हो, रद्द करके अभियुक्त को मृत्युदण्ड दिया हो, (ब) किसी अधीन एव निम्न न्यायालय म चल रहे विवाद को अपने यहाँ मँगाकर उच्च न्यायालय ने मत्युदण्ड दिया हो, या (स) उच्च न्यायालय ने विवाद को सर्वोच्च न्यायालय म अपील

---

3 अनुच्छेद 137

के योग्य प्रमाणित किया हो । समद या सर्वोच्च यायालय के क्षेत्राधिकार को विस्तृत करने की शक्ति प्राप्त है ।

(iii) सवधानिक—सर्वोच्च यायालय मे ऐसे सभी दीवानी, अपराधिक या अय विवादो के उच्च यायालयो के निणयो के विरुद्ध अपीले हो सकती हैं जिनके सम्ब ध म उच्च यायालय न यह प्रमाणित किया हो कि सम्बन्धित विवाद म विधि एव सविधान की व्याख्या सम्बन्धी कोई महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है ।[4] यदि उच्च याया लय द्वारा ऐसा प्रमाणपत्र देना अस्वीकार कर दिया गया है और सर्वोच्च यायालय यह अनुभव करता है कि सम्बन्धित विवाद म सविधान सम्बन्धी विधि का कोई प्रश्न निहित है तो वह अपील की विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है ।[5] जब उच्च याया-लय के निणय के विरुद्ध सर्वोच्च यायालय विशेष अपील की अनुमति प्रदान कर देता है ता सम्बन्धित पक्ष इस आधार पर अपील कर सकता है कि उच्च यायालय द्वारा सविधान सम्बन्धी विधि की गलत व्याख्या की गयी है । नवीन आधारो पर भी सर्वोच्च यायालय विशेष अनुमति देने का पक्षपोषण कर सकता है । स्पष्ट है, सवि धान की व्याख्या का अन्तिम अधिकार सर्वोच्च यायालय को है । स्मरणीय है कि तथ्यो एव किसी ऐसी विधि की व्याख्या (जो सविधान की व्याख्या स सम्बन्धित नही है) के सम्बन्ध म विशेष अपील की अनुमति के आधार पर सर्वोच्च यायालय म अपील नही की जा सकती है । किसी सवधानिक प्रश्न सम्बन्धी विवाद की सुनवाई 5 यायाधीशो की पीठ के द्वारा की जाती है ।

(iv) विशिष्ट—सर्वोच्च यायालय को यह अधिकार भी है कि वह सनिक यायालयो (Courts Martial) के अतिरिक्त भारत के किसी भी यायालय या याया धिकरण के विरुद्ध अपील की विशेषानुमति प्रदान कर सकता है एव अपील को सुन सकता है ।[6]

उपरोक्त अपीलीय क्षेत्राधिकार के अध्ययन स यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च याया-लय म अपील के तीन माग हैं (1) उच्च यायालय के प्रमाण पत्र द्वारा, (2) सर्वोच्च यायालय की विशेषानुमति द्वारा (special leave to appeal) एव (3) स्वाधिकार द्वारा (as a matter of right) ।

सर्वोच्च यायालय के द्वारा अपील की विशेषानुमति—सर्वोच्च यायालय को भारत के किसी भी यायालय या यायाधिकरण के विरुद्ध अपील की अनुमति देन का स्वविवेकीय अधिकार प्राप्त है, फलस्वरूप सर्वोच्च यायालय का व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये हैं । इस अधिकार का अथ यह है कि पुनरावेदनीय व्यवस्था के अधीन

---

4 अनुच्छेद 132 (i)
5 अनुच्छेद 132 (ii)
6 अनुच्छेद 136

अपील न कर सकने पर[7] एव उच्च यायालय द्वारा पुनरावदन के लिए प्रमाण पत्र अस्वीकृत करने पर भी सर्वोच्च न्यायालय को अपील की अनुमति देन का अधिकार प्राप्त है । यायालय द्वारा विशेषानुमति प्रदान करने पर कोई सवैधानिक प्रतिब ध नही है और यह पूणत सर्वोच्च न्यायालय के स्वविवेक पर आधारित है । सर्वोच्च न्यायालय ने भारत बैंक कमचारी विवाद के स दभ म इस पर विचार किया था कि पुनरावेदन की विशेषानुमति के अ तगत औद्योगिक न्यायाधिकरण भी आते हैं या नही ? इस सम्ब ध मे सर्वोच्च न्यायालय का यह मत था कि न्यायाधिकरण से तात्पय न्यायिक काय सम्पादित करने वाले निकाय से है । सर्वोच्च न्यायालय ने **रामकृष्ण बोस** बनाम **विनोद कानूनगो** नामक विवाद म राज्य विधानमण्डल के इस निणय का अस्वीकार कर दिया था कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम जैसे अधिनियमो के अ तगत गठित न्याया-धिकरणो के निणय अ तिम होगे । सर्वोच्च न्यायालय के मतानुसार अनुच्छेद 136 के अ तगत उसे प्राप्त क्षेत्राधिकार को राज्य विधानमण्डलो द्वारा सीमित नही किया जा सकता ।

विशेषानुमति सम्ब धी अनुच्छेद का क्षेत्र व्यापक है और इसकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित नही की जा सकती । इसका प्रयाग विचारपूवक किया जाना अपे-क्षित है अत सर्वोच्च न्यायालय अपील की विशेषानुमति विशिष्ट परिस्थितियो तथा गम्भीर अ याय की अवस्था मे ही प्रदान करता है ।

3 **परामशदायी क्षेत्राधिकार** (Advisory Jurisdiction)

राष्ट्रपति को सावजनिक महत्व से सम्ब धित किसी तथ्य या विधि सम्ब धी प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय का परामश प्राप्त करने का अधिकार है एव ऐसे प्रश्नो को वह सर्वोच्च यायालय का मत जानने के लिए भेज सकता है ।[8] भाग 'ख राज्यो मे हुई किसी भी स धि, सनद एव अ य शासकीय पत्र (document) सम्ब धी विवाद पर राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय स परामश ले सकता है । न्यायालय के द्वारा प्रदत्त परा-मश राष्ट्रपति पर ब धनकारी नही है । अभी तक राष्ट्रपति द्वारा निम्न अवसरो पर सर्वोच्च न्यायालय से परामश मागा गया है (1) 1951 ई म दिल्ली विधि अधि नियम (1912), अजमेर मारवाड (एक्सटेंशन ऑफ लॉज) अधिनियम (1947) तथा भाग 'ख' राज्य अधिनियम (1950) की वैधता के सम्ब ध म मत, (2) केरल शिक्षा विधेयक 1957 ई की वधता सम्ब धी मत, (3) 1958 ई म भारत एव पाक प्रधान म त्रियो के मध्य बेरूबारी क्षेत्र का पाकिस्तान को हस्ता तरित करने सम्ब धी समझौते सम्ब धी मत । प्रश्न यह था कि क्या इस समझौते के क्रिया वयन के लिए सवैधानिक

---

7 अनुच्छेद 132–135

8 अनुच्छेद 143

न माग प्रमाणित किया हो । सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को विस्तृत करने की शक्ति प्राप्त है।

(iii) संवैधानिक—सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे सभी दीवानी, अपराधिक या अन्य विवादों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें हो सकती हैं जिनके सम्बन्ध में उच्च न्यायालय ने यह प्रमाणित किया हो कि सम्बन्धित विवाद में विधि एवं संविधान की व्याख्या सम्बन्धी कोई महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है।[4] यदि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा प्रमाणपत्र देना अस्वीकार कर दिया गया है और सर्वोच्च न्यायालय यह अनुभव करता है कि सम्बन्धित विवाद में संविधान सम्बन्धी विधि का कोई प्रश्न निहित है तो यह अपील की विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है।[5] जब उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय विशेष अपील की अनुमति प्रदान कर देता है तो सम्बन्धित पक्ष इस आधार पर अपील कर सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा संविधान सम्बन्धी विधि की गलत व्याख्या की गयी है। नवीन आधारों पर भी सर्वोच्च न्यायालय विशेष अनुमति देने का पक्षपोषण कर सकता है। स्पष्ट है, संविधान की व्याख्या का अन्तिम अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को है। स्मरणीय है कि तथ्यों एवं किसी ऐसी विधि की व्याख्या (जो संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित नहीं है) के सम्बन्ध में विशेष अपील की अनुमति के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है। किसी संवैधानिक प्रश्न सम्बन्धी विवाद की सुनवाई 5 न्यायाधीशों की पीठ के द्वारा की जाती है।

(iv) विशिष्ट—सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार भी है कि वह सैनिक न्यायालयों (Courts Martial) के अतिरिक्त भारत के किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के विरुद्ध अपील की विशेषानुमति प्रदान कर सकता है एवं अपील को सुन सकता है।[6]

उपरोक्त अपीलीय क्षेत्राधिकार के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील के तीन मार्ग हैं (1) उच्च न्यायालय के प्रमाण पत्र द्वारा (2) सर्वोच्च न्यायालय की विशेषानुमति द्वारा (special leave to appeal) एवं (3) स्वाधिकार द्वारा (as a matter of right)।

सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा अपील की विशेषानुमति—सर्वोच्च न्यायालय को भारत के किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के विरुद्ध अपील की अनुमति देने का स्वविवेकीय अधिकार प्राप्त है, फलस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय को व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। इस अधिकार का अर्थ यह है कि पुनरावेदनीय व्यवस्था के अधीन

4 अनुच्छेद 132 (i)
5 अनुच्छेद 132 (ii)
6 अनुच्छेद 136

अपील न कर सकने पर[7] एव उच्च यायालय द्वारा पुनरावेदन के लिए प्रमाण पत्र अस्वीकृत करने पर भी सर्वोच्च यायालय को अपील की अनुमति देन का अधिकार प्राप्त है। यायालय द्वारा विशेषानुमति प्रदान करने पर कोई सवैधानिक प्रतिबन्ध नही है और यह पूर्णत सर्वोच्च यायालय क स्वविवेक पर आधारित है। सर्वोच्च यायालय ने भारत वैक कमचारी विवाद के सदर्भ मे इस पर विचार किया था कि पुनरावेदन की विशेषानुमति क अतगत औद्योगिक यायाधिकरण भी आते हैं या नही ? इस सम्बन्ध मे सर्वोच्च यायालय का यह मत था कि यायाधिकरण से तात्पय यायिक काय सम्पादित करने वाले निकाय से है। सर्वच्च यायालय ने **रामकृष्ण बोस बनाम विनोद कानूनगो** नामक विवाद म राज्य विधानमण्डल के इस निणय को अस्वीकार कर दिया था कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम जसे अधिनियमा के अन्तगत गठित यायाधिकरणो के निणय अतिम होगे। सर्वोच्च यायालय के मतानुसार अनुच्छेद 136 के अन्तगत उसे प्राप्त क्षेत्राधिकार को राज्य विधानमण्डला द्वारा सीमित नही किया जा सकता।

विशेषानुमति सम्बन्धी अनुच्छेद का क्षेत्र व्यापक है और इसकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित नही की जा सकती। इसका प्रयोग विचारपुवक किया जाना अपेक्षित है अत सर्वोच्च यायालय अपील की विशेषानुमति विशिष्ट परिस्थितिया तथा गम्भीर अयाय की अवस्था म ही प्रदान करता है।

3 **परामशदायी क्षेत्राधिकार** (Advisory Jurisdiction)

राष्ट्रपति का सावजनिक महत्व से सम्बन्धित किसी तथ्य या विधि सम्बन्धी प्रश्न पर सर्वोच्च यायालय का परामश प्राप्त करने का अधिकार है एव ऐसे प्रश्ना को वह सर्वोच्च यायालय का मत जानने के लिए भेज सकता है।[8] भाग 'ख' राज्यो से हुई किसी भी सन्धि, सनद एव अय शासकीय पत्र (document) सम्बन्धी विवाद पर राष्ट्रपति सर्वोच्च यायालय से परामश ले सकता है। यायालय के द्वारा प्रदत्त परामश राष्ट्रपति पर ब धनकारी नही है। अभी तक राष्ट्रपति द्वारा निम्न अवसरा पर सर्वोच्च यायालय से परामश माँगा गया है (1) 1951 ई म दिल्ली विधि अधिनियम (1912), अजमेर मारवाड (एक्सटेशन ऑफ लॉज) अधिनियम (1947) तथा भाग 'ख' राज्य अधिनियम (1950) की वधता के सम्बन्ध म मत, (2) केरल शिक्षा विधेयक 1957 ई की वैधता सम्बन्धी मत, (3) 1958 ई म भारत एव पाक प्रधानमत्रिया क मध्य बेरुवारी क्षेत्र को पाकिस्तान को हस्तान्तरित करने सम्बन्धी समभौते सम्बन्धी मत। प्रश्न यह था कि क्या इस समभौते के क्रियान्वयन के लिए सवधानिक

---

7 अनुच्छेद 132–135

8 अनुच्छेद 143

सशोधन आवश्यक है ? (4) 1964 ई म उत्तर प्रदेश म व्यवस्थापिका एव उच्च
न्यायालय के मध्य उत्पन्न विवाद के स दर्भ म ।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परामर्शदायी विवादो म खुली अदालत म बहुमत क
आधार पर निर्णय दिय जाते हैं । यदि कोई न्यायाधीश बहुमत क निर्णय स असहमत
रहता है तो वह अपना पृथक निर्णय द सकता है । एस विवादो की सुनवाई सर्वोच्च
न्यायालय के पाँच न्यायाधीशो की पीठ (Bench) द्वारा की जाती है ।

सर्वोच्च न्यायालय का परामर्शदायी क्षेत्राधिकार प्रदान करना तीव्र विवाद
का विषय रहा है । सविधान निर्माताओ न सभी तर्कों की समीक्षा करन के पश्चात
ही इसके पक्ष म निर्णय लिया था । महत्व की बात यह है कि सर्वोच्च न्यायालय क
परामर्शदायी निर्णय राष्ट्रपति पर बन्धनकारी नही हैं परन्तु न्यायालय द्वारा जो भी
निर्णय दिय गये हैं उन्ह शासन द्वारा समुचित मान्यता प्रदान की गयी है । देश क
सभी न्यायालयो के लिए इन निर्णयो का विशेष महत्व होता है ।

4 अभिलेख न्यायालय (Court of Record)

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है एव ऐसे न्यायालय को
प्राप्त सभी शक्तियाँ इस न्यायालय को भी प्राप्त हैं ।[9] अभिलेख न्यायालय के दो आशय
होते हैं (1) अभिलेख न्यायालय के सभी निर्णय एव कार्य समस्त न्यायालयो के लिए
सदा साक्षी के रूप म स्वीकार किये जाते हैं एव अभिलेखो (records) की सत्यता एव
प्रमाणिकता के सम्बन्ध म किसी न्यायालय मे कोई प्रश्न नही उठाया जा सकता । अभि-
लेख न्यायालय को अपने अभिलेखो एव पत्रो म साधारण भूलो एव त्रुटियो के सशो
धन का स्वय अधिकार होता है । (2) न्यायालय के अपमान के लिए अभिलेख न्याया
लय दण्ड दे सकता है । सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय नजीरो का कार्य करते हैं तथा
सुरक्षित रखे जाते है जिससे आवश्यकतानुसार उनका अध्ययन किया जा सके ।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार

सविधान ने ससद को विधि बनाकर सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकारो को
विस्तृत करन का अधिकार दिया है । मौलिक अधिकारो की रक्षा के लिए सर्वोच्च
न्यायालय को आदेश, निर्देश या लेख (writs) जारी करने का अधिकार है ।[10]
सविधान द्वारा प्रदत्त दायित्वो को सम्पादित करने के लिए ससद को सर्वोच्च न्याया
लय को अन्य अतिरिक्त शक्तियाँ प्रदान करने का भी अधिकार प्राप्त है लेकिन ऐसी
किसी विधि को सविधान की किसी धारा के विपरीत नही होना चाहिए ।[11] सर्वोच्च
न्यायालय किसी व्यक्ति या कागजात को अपने समक्ष प्रस्तुत करने की आज्ञा दे सकता

9 अनुच्छेद 138
10 अनुच्छेद 139
1 अनुच्छेद 140

है। राष्ट्रपति एव शासन के अय अधिकारियो का यह क्तव्य है कि वे सर्वोच्च यायालय के आदेशा एव निर्देशो को क्रियान्वित करे।

सर्वोच्च न्यायालय एव मौलिक अधिकार[12]

मौलिक अधिकारो की रक्षा का दायित्व सर्वोच्च यायालय पर है।[13] उसे अधिकारो की रक्षा के लिए आदश, निर्देश एव लेख (writs) जारी करने का अधिकार है। लेख जारी करने का अधिकार उच्च यायालया को भी प्राप्त है,[14] लेकिन अनुच्छेद 32 (1) के अतगत मौलिक अधिकारो की रक्षा सर्वोच्च यायालय का विशेष दायित्व है। **रमेश थापर वनाम मद्रास राज्य** नामक विवाद मे निणय देते हुए सर्वोच्च यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि "मौलिक अधिकारो के रक्षाथ प्रत्येक नागरिक को उच्च यायालय की अपेक्षा सीधे सर्वोच्च यायालय म आवेदन करने का अधिकार है। इस दृष्टि मे सर्वोच्च यायालय मौलिक अधिकारो का सरक्षक है, अत वह मौलिक अधिकार का अतिक्रमण होने की दशा म उसके सरक्षण से इकार नही कर सकता।" एक अय विवाद (**रामजीलाल वनाम इनकम टक्स अधिकारी**) म सर्वोच्च यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 32 के अतगत मौलिक अधिकार क अतिक्रमण की अवस्था म ही आवश्यक सरक्षण प्राप्त हो सकता है, अय किसी सवैधानिक अधिकार के सरक्षण के लिए इस अनुच्छेद (अनु 32) का उपयोग सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त **चरनजीत लाल वनाम भारतीय सघ** नामक विवाद मे सर्वोच्च यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 32 के अतगत प्रस्तुत किय जाने वाले आवेदन पत्र मे यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए कि किस विधि द्वारा मौलिक अधिकार का अतिक्रमण होता है तथा उस विधि द्वारा आवेदक के मौलिक अधिकार का निश्चित रूप स अतिक्रमण हुआ है।

मौलिक अधिकारो के सदभ मे सर्वोच्च यायालय का दृष्टिकोण एव भूमिका प्रशसनीय है। समानता के अधिकार सम्बधी सबसे अधिक विवाद यायालय के समक्ष आये हैं।[15] **मद्रास वनाम चम्पाकम दोराईरजन** नामक विवाद मे सर्वोच्च यायालय ने यह निणय दिया था कि राज्य शासन को जाति या धम के आधार पर राज्य की शासकीय शिक्षण सस्थाओ म प्रवेश हेतु स्थान सुरक्षित करने का अधिकार नही है। कर-अधिनियमा की कायपद्धति के सदभ मे विधि के समक्ष समानता की प्रतिभू सर्वोच्च यायालय द्वारा प्रदान की गयी है। **शोलापुर स्पिनिग एव वीविंग मिल** कम्पनी मे कुप्रबध के लिए शासकीय नियत्रण को सर्वोच्च यायालय ने उचित ठह

12 इस सदभ म मौलिक अधिकारो सम्बधी अध्याय 33 को भी दखिए।
13 अनुच्छेद 32 (2)
14 अनुच्छेद 226
15 S R Sharma *The Supreme Court in the Indian Constitution*, p 124

राया था। सम्बन्धित कम्पनी के एक भागीदार का यह दावा था कि मेत्र क अन्य कारखानो पर नियन्त्रण स्थापित न करके शासन ने उसके साथ समानता का व्यवहार नहीं किया है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने बाद मे सम्बन्धित विधि को पुन चुनौती दिये जान पर इस आधार पर अवैधानिक घोषित किया था कि मालिको को क्षतिपूर्ति देने की कोई व्यवस्था नही थी। फलत 1955 ई मे चतुर्थ सवधानिक सशोधन अधिनियम इस कठिनाई के निवारणार्थ पारित करना पडा था।

धार्मिक एव सास्कृतिक अधिकारा सम्बन्धी अनेक विवाद न्यायालय के समक्ष आये हैं। ऐसे ही एक विवाद मद्रास हिन्दू रिलीजियस एव चेरीटेबिल एण्डाउमेन्ट अधिनियम 1951 ई की धारा 21 को तथा उडीसा राज्य के एक समान अधिनियम (1939 ई) की धारा 38, 39 एव 46 की एक उप धारा को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैधानिक ठहराया गया था।

सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारा के सम्बन्ध म सर्वोच्च न्यायालय के निणयो ने सवैधानिक सशोधन अनिवाय बना दिये है। कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य विवाद के निणय म बिहार क जमीदारी उन्मूलन अधिनियमो को अवधानिक घोषित किया गया था। फलस्वरूप 1951 ई मे प्रथम सवधानिक सशोधन पारित किया गया। कुल मिलाकर इसका परिणाम यह हुआ कि जमीदरी उन्मूलन सम्बन्धी क्षतिपूर्ति की समस्त विधियाँ न्यायालया के क्षेत्राधिकार से मुक्त कर दी गयी।

मार्च 1967 ई म मुख्य न्यायाधीश श्री के सुब्बाराव न गोलकनाथ बनाम पजाब राज्य विवाद म निणय देते हुए कहा था कि सविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारा म ससद को सशोधन या परिवतन करन की शक्ति नही है। यह निणय विवाद का विषय बन गया। स्मरणीय है कि मौलिक अधिकारो के सरक्षण क सम्बन्ध म सर्वोच्च न्याया-लय द्वारा सदव ही यह विचार किया गया कि किसी विधि क द्वारा जो प्रतिबन्ध स्थापित किया जा रहा है, वह उचित (reasonable) है या नही। गोलकनाथ विवाद क निणय ने ससद को मौलिक अधिकारा म सशोधन द्वारा परिवतन करने से वचित कर दिया। फलस्वरूप यह सवधानिक प्रश्न उठ खडा हुआ कि क्या ससद को सशोधन सम्बन्धी सम्प्रभु अधिकार नही है? इस गतिरोध क समाधान हेतु शासन को 24वाँ एव 25वाँ सवैधानिक सशोधन पारित करन पडे।[16]

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय एव न्यायिक पुनर्रीक्षण

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को सविधान की व्याख्या का अधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना सघीय सविधान के मान्य सिद्धान्ता के अनुकूल है। जिन देशो मे शासन की शक्तिया का विभाजन किया जाता है वहाँ सामान्यत सविधान की व्याख्या का अधिकार एक निष्पक्ष निकाय—सर्वोच्च न्यायालय—को ही दिया जाता

16 देखिए अध्याय 33—'मौलिक अधिकार'।

है। अत सर्वोच्च यायालय सविधान का सरक्षक माना जाता है। यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति सर्वोच्च यायालय को विधानमण्डल द्वारा पारित विधियो एव कायपालिका के कार्यों को सविधान विरोधी होने की दशा म असवैधानिक घोषित करने का अधिकार प्रदान करती है।

भारतीय सविधान म कोई एसा अनुच्छेद नही जो सविधान को देश की सर्वोच्च विधि घोषित करता हो। सविधान निर्माता इस प्रकार की व्यवस्था को अनावश्यक समझते थे क्योकि के द्र एव राज्यो की सरकारो का स्पष्ट उल्लेख सविधान म किया गया है। इनक निर्माण एव शक्तिया का आधार सविधान है। इसके अतिरिक्त सविधान म सवधानिक सशोधन विधि का स्पष्ट उल्लेख है। अत उपरोक्त व्यवस्थाओ के अनुसार सविधान सम्प्रभु है। इसके अतिरिक्त सविधान द्वारा यायालया को विधि को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार भी प्रदान नही किया गया है। लेकिन किसी स्पष्ट अधिकार के अभाव मे यायालय को पुनर्रीक्षण की शक्ति से वचित नही किया जा सका। भारतीय सविधान लिखित एव सघीय है तथा उसम के द्रीय एव राज्यो के शासनो की शक्तियो का स्पष्ट विभाजन किया गया है। मौलिक अधिकारो का सविधान म उल्लेख है। यह चारो व्यवस्थाएँ भारतीय सर्वोच्च यायालय को सविधान की व्याख्या का अधिकारी एव सविधान तथा मौलिक अधिकारो का सरक्षक बना देती हैं। शक्ति विभाजन से सविधान ने विभिन्न शासनो पर सवैधानिक सीमाए निर्धारित कर दी ह। इन सीमाओ के अतिक्रमण का अथ उन समस्त विधियो को यायालय द्वारा अवधानिक घोषित करना है जो सविधान विरोधी हो। यायाधीश मुकर्जी ने भारतीय सर्वोच्च यायालय की यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति के स दभ मे कहा है कि "भारत का सविधान लिखित है यद्यपि इसमे ब्रिटिश ससदीय प्रणाली के अनेक सिद्धा तो को अपनाया गया है, पर तु विधि-निर्माण के स दभ मे ससदीय सम्प्रभुता के सिद्धा त को मा यता नही दी गयी है। इस सम्ब ध मे इसने अमेरिकी सविधान एव उस पर आधारित अ य सविधानो का अनुगमन किया है। राजनीतिक सस्थाओ के प्रतिनिधिमूलक होने पर भी अमेरिकी लोग सविधान द्वारा शासन, विधानमण्डल एव कायपालिका पर निर्धारित प्रतिब धो को सार्वजनिक एव वैयक्तिक अधिकारो की रक्षा के लिए आवश्यक मानते है। ये (प्रतिब ध) बहुमत की निरकुशता पर अवरोध का काय करत ह " मुख्य यायाधीश कौनिया ने गोपालन बनाम मद्रास राज्य विवाद म निणय दते हुए कहा था कि 'यदि मौलिक अधिकारो का किसी विधायी अधिनियम (legislative enactment) द्वारा अतिक्रमण होता है तो यायालया को उस अधिनियम को अतिक्रमण की सीमा तक अवध घोषित करने का अधिकार है।' भारतीय विधानमण्डलो पर सविधान द्वारा विधायी क्षमता एव मौलिक अधिकार सम्ब धी सीमाएँ निर्धारित की गयी ह।

विधायी क्षमता (legislative competence) के अधीन सघीय एव राज्य

सूची के विषयो पर क्रमश केन्द्रीय एव राज्य शासनो को विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है। भारतीय ससद को सविधान द्वारा निर्धारित सीमा क अ तगत सम्पूण दश के लिए विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि केन्द्र या राज्य के द्वारा अन्य सूचो स सम्बधित विषयो के मामलो म विधि बनायी जाती है तो न्यायालय का यह कतव्य है कि वह ऐसी विधि को अवैधानिक घोषित करे। समवर्ती सूची के विषयो के स दभ मे केन्द्रीय विधि को राज्य की विधि की अपेक्षा प्राथमिकता प्राप्त है एव राज्य की विधि उस सीमा तक निष्प्रभावी होती है जिस सीमा तक वह केन्द्रीय विधि के विरुद्ध है।

मौलिक अधिकारो के कारण भारतीय ससद एव राज्यो के विधानमण्डलो की शक्तियाँ सीमित हो गयी है। सविधान के अनुसार विधि के द्वारा मौलिक अधिकारो का अतिक्रमण होने पर सम्बधित विधि अवैध होगी (अनुच्छेद 13)। इस उपब ध के अभाव म भी मौलिक अधिकारो के सरक्षण का दायित्व सर्वोच्च न्यायालय पर होने के कारण उसे मौलिक अधिकारो का अतिक्रमण करने वाली विधियो को अवै धानिक घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकार निरपेक्ष नही हैं, सवि धान द्वारा उन पर जो अनेक प्रतिब ध लगाये गये है वे उचित (reasonable) है या नही, यह निणय करना यायालय का काय है। सर्वोच्च यायालय का यह भी क्तव्य है कि वह देखे कि सविधान प्रदत्त अधिकार मौलिक है न कि प्रतिबन्ध। अत सर्वोच्च न्यायालय को प्रतिब धो (limitations) की वधता एव औचित्य के परीक्षण का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

भारत मे सविधान की सर्वोच्चता है न कि ग्रेट ब्रिटेन की भाति ससदीय सर्वोच्चता। भारतीय ससद एव राज्यो के विधानमण्डलो को अपन अपने क्षेत्रो म विधि निर्माण का अधिकार है। ऐसी स्थिति म स्पष्टत भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को स्वत ही यायिक पुनरीक्षण की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो के द्वारा सविधान के सरक्षण की शपथ ली जाती है। ऐसी शपथ भारत के राष्ट्रपति द्वारा नही ली जाती अत सविधान की रक्षा न्यायाधीशो का दायित्व है। सविधान निर्माताओ ने सर्वोच्च न्यायालय क लिए 'सवि धान के सरक्षक', 'लोकत त्र के रक्षक' एव 'स्वत त्रताओ का समथक' आदि सम्बोधनो का प्रयोग किया था। स्पष्ट है कि सविधान निर्माता सर्वोच्च न्यायालय से व्यक्ति एव समाज की विधियो एव कायपालिका के कार्यों से अतिक्रमण की रक्षा की अपेक्षा करते थे। अत भारतीय न्यायपालिका (सर्वोच्च न्यायालय एव उच्च न्यायालयो) को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति है और उसके प्रयोग के सम्ब ध म कोई विवाद नही उठता।

भारत मे न्यायिक पुनरावलोकन का क्षेत्र

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भाँति व्यापक

पुनर्रीक्षण की शक्ति प्राप्त नही है । अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी विधि की सवैंधानिकता एव असवधानिकता सम्बन्धी परीक्षण के लिए दो कसौटियो का प्रयोग किया जाता है (1) क्या विधि उसका निर्माण करने वाले विधानमण्डल के क्षेत्राधिकार मे है, अर्थात् विधायी क्षमता के आधार पर। (2) क्या विधि 'विधि की उचित प्रक्रिया' (due process of law) की शर्तो के अनुरूप है ? सयुक्त राज्य अमेरिका मे विधायी क्षमता का आधार शक्तियो का विभाजन है । अमेरिका के सविधान म 'विधि की उचित प्रक्रिया' वाक्याश के प्रयोग से सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति प्राप्त हो गयी है । विधि की उचित प्रक्रिया से तात्पय प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के कुछ सवमान्य सिद्धान्तो एव मापदण्डो से है। 'जो विधि इनके प्रतिकूल होती है वह अमेरिकी न्यायालय की दृष्टि मे असवैधानिक है।" अमेरिका म विधि की उचित प्रक्रिया' की कोई पूण परिभाषा कभी नही दी जा सकी है । इस शब्दावली क अभिप्राय सम्बन्धी बहुत सी व्यापक बातो पर सवसम्मत विचार हैं। 'विधि की उचित प्रक्रिया' के दो अथ हैं अर्थात् पद्धति सम्बन्धी (procedural) और मूल सिद्धान्त सम्बन्धी (substantive)। उदाहरणाथ पद्धति की उचित प्रक्रिया (procedural due process) का फौजदारी विवादो म यह अथ होता है कि अभियुक्त को अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त कानूनी सहायता प्राप्त होनी चाहिए। बलपूवक प्राप्त स्वीकारोक्ति (*confession*) के आधार पर अपराधी को दण्डित नही किया जाना चाहिए खुली अदालत मे एव निष्पक्षतापूवक विवाद पर विचार होना चाहिए इसके अतिरिक्त जिस विधि के आधार पर न्याय किया जाय वह विधि भी तकसगत होनी चाहिए । यदि कोई विधि युक्तिसगत नही है या निरकुश है तो न्यायपालिका उसे अवैध एव निष्प्रभावी घोषित कर सकती है । 'विधि की उचित प्रक्रिया' निरकुशता, अतकसगतता एव अनौचित्य का विलोम है । किसी भी विवाद मे इसका निणय न्यायाधीश ही कर सकता है कि क्या निरकुश और अनुचित है और क्या नही है । इसी आधार पर अमरिका मे न्यायिक सम्प्रभुता (judicial supremacy) के सिद्धान्त का विकास हुआ है । *सयुक्त राज्य अमेरिका म सविधान वही है जो न्यायाधीश कहते हैं । "किसी विधि की सवधानिकता एव असवैधानिकता* का निणय न्यायालय अपनी बौद्धिक एव सामाजिक धारणाओ के अनुसार करता है। इस प्रकार वह (अमरिकी सर्वोच्च न्यायालय) व्यक्ति स्वातन्त्र्य एव सामाजिक नियन्त्रण के बीच समुचित सन्तुलन स्थापित करने मे समथ है।'[17]

भारत मे स्थिति इससे भिन्न है । भारतीय सविधान मे 'विधि की उचित प्रक्रिया' वाक्याश का प्रयोग न करके नवीन जापानी सविधान के आधार पर 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (procedure established by law) वाक्याश का

17 डॉ महादेवप्रसाद शर्मा भारतीय गणतन्त्र का सविधान, 1959, पृ 223 24 ।

प्रयोग किया गया है। इससे स्थिति भिन्न हो गयी है। अतः दोनों देशों के संविधानों में एक मौलिक अन्तर है। भारतीय न्यायपालिका को किसी विधि की वैधानिकता, औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार करने अथवा उसे अवैधानिक घोषित करने का अधिकार नहीं है बशर्ते सम्बन्धित विधि जिस विधानमण्डल (राज्य या संघीय) द्वारा पारित की गयी है उसकी विधायनी शक्ति एवं क्षमता के अन्तर्गत है। इस स्थिति का एकमात्र अपवाद 'मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित विधियाँ हैं। मौलिक अधिकारों पर संसद को केवल उचित या तर्कसंगत (reasonable) प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय को संसद द्वारा मौलिक अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबन्धों के तर्कपूर्ण होने का निर्णय सहज बुद्धि (commonsense) एवं नैसर्गिक—प्राकृतिक— न्याय के सिद्धान्तों (Principles of Natural Justice) के अनुसार' करने का अधिकार प्राप्त है।[18] स्पष्ट है हमारे देश में न्यायिक सर्वोच्चता नहीं है अपितु एक प्रकार की सीमित विधानमण्डलीय सर्वोच्चता (limited legislative supremacy) है। यदि विधानमण्डल अपनी सीमा अर्थात् निर्दिष्ट शक्ति' के अधीन विधि निर्माण करते हैं तो उनकी विधियों के असंवैधानिक घोषित किये जाने का भय नहीं है। (अतः) भारतीय सर्वोच्च न्यायालय अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय की भाँति विधानमण्डल का तृतीय सदन नहीं बन सकता।[19]

सर्वोच्च न्यायालय का मूल्यांकन

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय संविधान एवं मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। इसे केन्द्र एवं राज्यों सम्बन्धी विवादों में मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इस न्यायालय के द्वारा न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति का प्रयोग किया जाता है। यह देश का सर्वोच्च न्यायालय है। यह अपनी निष्पक्षता एवं स्वतन्त्रता के लिए विश्व में विख्यात है। **श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर** के अनुसार यह देश का अभिलेख न्यायालय है। इसे व्यापक अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। अपील की विशेष अनुभूति प्रदान करने की उसकी शक्ति पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है और इस सम्बन्ध में उसे निर्णय करने का पूर्ण अधिकार है। यह कथन कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को विश्व के सभी संविधानों से अधिक व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं, पूर्णतः सत्य नहीं है। इस सम्बन्ध में भारतीय एवं अमरीकी सर्वोच्च न्यायालयों की शक्तियाँ एवं स्थिति की तुलना रोचक एवं शिक्षाप्रद है। वह निम्नवत् है

(1) संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को व्यापक न्यायिक पुनर्रीक्षण की शक्ति प्राप्त है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की यह शक्ति अपेक्षाकृत सीमित है।[20]

---

18 डा. महादेवप्रसाद शर्मा भारतीय गणतन्त्र का संविधान पृ. 223
19 डा. महादेवप्रसाद शर्मा भारतीय गणतन्त्र का संविधान, पृ. 224
20 पूर्व पृष्ठों में तत्सम्बन्धी विश्लेषण को देखिए।

(2) मौलिक अधिकारों की दृष्टि में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार अपेक्षाकृत विस्तृत है। संघ एवं राज्यों के मध्य विवादों के अतिरिक्त उसे राजदूतों, मन्त्रियों, काउंसलरों, सन्धियों, नौसेना, जलीय यातायात सम्बन्धी विवादों में भी मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को (क) संघ एवं किसी राज्य या राज्यों, (ख) संघ तथा एक राज्य या कुछ राज्य एक पक्ष हों एवं एक या कुछ राज्य दूसरे पक्ष में हों, तथा (ग) दो या अधिक राज्यों के मध्य विधि सम्बन्धी अथवा अन्य विवादों एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

(3) भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की तुलना में अधिक पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक, फौजदारी, दीवानी एवं विशिष्ट मामलों में पुनरावेदनीय (appellate) क्षेत्राधिकार प्राप्त है। पुनरावेदन के लिए विशेष अनुमति प्रदान करने के उसे असीमित अधिकार हैं। संसद इस अधिकार में वृद्धि कर सकती है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय को केवल संवैधानिक मामलों में ही पुनरावेदनीय अधिकार है। उसका पुनरावेदनीय क्षेत्राधिकार 1925 ई. में पारित एवं 1937 ई. में संशोधित क्षेत्राधिकार अधिनियम के अधीन सीमित एवं निश्चित है। दीवानी एवं अपराधिक विवादों में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय को पुनरावेदनीय अधिकार प्राप्त नहीं है। अमेरिकी न्यायालय में निम्न अवस्थाओं में ही पुनरावेदन सम्भव है (क) किसी राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा किसी सन्धि को अवैधानिक घोषित करने या किसी राज्य की विधि को संघीय संविधान या विधि या सन्धि के विपरीत ठहराने की व्यवस्था में, (ख) भ्रमणशील संघीय न्यायालय द्वारा राज्य-विधि को संघीय संविधान, विधि या सन्धि के विपरीत ठहराने की अवस्था में, तथा (ग) कम से कम 3 हजार डालर के हर्जाने या क्षति से सम्बन्धित विवादों में। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय में कुछ विवादों की अपीलें सीधे जिला न्यायालय से हो सकती हैं। उत्प्रेषण लेख के आदेश के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय राज्य-न्यायालयों से ऐसे विवादों को अपने समक्ष मँगा सकता है जिनका सम्बन्ध संविधान की व्यवस्था या किसी सन्धि की व्याख्या से होता है।

(4) अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय शासन को विधिक परामर्श देने के लिए बाध्य नहीं है। कट्टर अमेरिकी विधिवेत्ताओं की धारणा थी कि न्यायालय का कार्य उसके समक्ष उपस्थित वास्तविक विवादों में न्याय करना है, न कि कार्यपालिका को काल्पनिक स्थिति के सम्बन्ध में परामर्श या अपने विचार देना। अतः अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यपालिका को विधि सम्बन्धी परामर्श देना सदैव अस्वीकृत किया है। लेकिन भारत में सर्वोच्च न्यायालय का यह एक कर्तव्य है एवं राष्ट्रपति के द्वारा किसी विधि या प्रश्न के सम्बन्ध में परामर्श माँगने पर अपना मत देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय बाध्य है।

भारतीय न्यायपालिका की स्थिति पर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री एस आर दास ने गोपालन बनाम मद्रास राज्य विवाद म निणय देते हुए कहा था कि "भारत म न्यायालयो की स्थिति इगलैण्ड एव संयुक्त राज्य अमरिका के मध्य की है। भारत म संयुक्त राज्य अमरिका के सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका के लिए क्षेत्र नही है।" मौलिक अधिकारो की रक्षा के लिए न्यायालय को लेख (writs) जारी करने का अधिकार है। संक्षेप म, जनता को सर्वोच्च न्यायालय म आस्था है। सर्वोच्च न्यायालय नागरिक अधिकारो की रक्षा के लिए सतत् जागरूक रहा है एव विवेक तथा सम्मानपूवक अपने दायित्व को सम्पादित करता है।

न्यायाधीशो की स्वतन्त्रता

सर्वोच्च न्यायालय की स्वतन्त्रता हेतु यह आवश्यक है कि न्यायाधीशो की *नियुक्ति एव पदच्युति सम्बन्धी पूण शक्ति कायपालिका या व्यवस्थापिका के अधिकार म* नही होनी चाहिए। पदनिवृत्ति के पश्चात न्यायाधीशो को पुन किसी पद पर नियुक्त नही किया जाना चाहिए। न्यायाधीशो के कायकाल, पदोन्नति एव हस्तान्तरण के सम्बन्ध मे सुनिश्चित व्यवस्था होनी चाहिए। भारत म न्यायाधीशो की नियुक्ति कायपालिका द्वारा की जाती है। सविधान निर्माताओ ने न्यायाधीशो को नियुक्ति की व्यवस्था के माध्यम से अधिकाधिक स्वतन्त्र बनाने का प्रयत्न किया है। उन्हे काय पालिका द्वारा स्वेच्छापूवक पदच्युत भी नही किया जा सकता। यह महाभियोग द्वारा ही सम्भव है। लेकिन पदोन्नति के मामलो मे वे पूरी तरह कायपालिका के हस्तक्षेप एव प्रभाव से स्वतन्त्र एव मुक्त नही हैं। मुख्य न्यायाधीश के पद पर पदोन्नति, उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय म स्थानान्तरण की सम्भावना एव पदनिवृत्ति के पश्चात कायपालिका की कृपा-दृष्टि के कारण न्यायाधीश से अनुचित या पक्षपातपूण आचरण की सम्भावना हो सकती है। अनुच्छेद 126 के अनुसार कायकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति की व्यवस्था है। परन्तु कायकारी मुख्य न्यायाधीश से काय-पालिका से पूण स्वतन्त्रतापूवक काय करने की आशा असम्भव नहीं तो सन्देहजनक अवश्य है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति को लेकर एक विवाद 1973 ई मे उठा था। दो वरिष्ठ न्यायाधीशो— न्यायमूर्ति ग्रोवर एव हेगडे—की उपेक्षा करते हुए न्यायमूर्ति सीकरी के मुख्य न्यायाधीश पद से अवकाश ग्रहण करने पर श्री ए एन राय को राष्ट्रपति ने मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर दिया था। इस नियुक्ति की तीव्र आलोचना हुई है और यह तक दिया गया है कि इससे न्यायाधीशो म शासन को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति विकसित हो सकती है। इससे वरिष्ठता के सुस्थापित अभिसमय का उन्मूलन हुआ है। बार काउसल ने भी इस नियुक्ति के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया था। निस्सन्देह न्याया धीशो की नियुक्ति मे इस प्रकार की घटनाए दु खद एव न्यायपालिका की प्रतिष्ठा एव स्वतन्त्रता के प्रति जन-आस्था को हिलाने वाली होती हैं। परन्तु इस प्रकार की घट नाओ की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए यह वाछनीय है कि न्यायाधीशो को भी परि

वर्तित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था एव सामाजिक दर्शन को ध्यान मे रखते हुए ससदीय विधियो की व्याख्या करनी चाहिए। जब न्यायपालिका सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल सविधान एव विधियो की व्याख्या मे असफल रहती है और नीरस तथा शुष्क विधिकता का शिकार होकर उनकी व्याख्या करती है तो सवधानिक सशोधन अनिवार्य हो जाते है और कभी कभी कार्यपालिका को न्यायपालिका के सुधार हेतु कदम उठाने पडते हैं। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट का अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव ऐसा ही एक प्रयास था। भारत मे सर्वोच्च न्यायालय एव उच्च न्यायालयो के न्यायाधीशो को पद मुक्ति के पश्चात मन्त्री, राज्यपाल, राजदूतो तथा विभिन्न आयोगो के अध्यक्षो के पद पर नियुक्त किया जाता रहा है। यह न्यायिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से उचित नही है। डॉ के वी राव[21] ने न्यायाधीशो की निष्पक्षता एव स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु निम्न सुझाव दिये हैं

(1) राष्ट्रपति द्वारा सभी न्यायाधीशो की नियुक्ति एक सूची मे से की जानी चाहिए।

(2) सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशो को समान वेतन एव भत्ता दिया जाना चाहिए। मुख्य न्यायाधीशो की नियुक्ति वरिष्ठता के आधार पर क्रमवार होनी चाहिए। मुख्य न्यायाधीशो को अन्य न्यायाधीशो से केवल पद सम्बन्धी भत्ता अधिक दिया जाना चाहिए।

(3) सभी न्यायाधीशो को सविधान मे व्यक्त महाभियोग की रीति से ही पदच्युत किया चाहिए।

(4) पद निवृत्ति के पश्चात करीब करीब वेतन के बराबर ही पैंशन दी जानी चाहिए।

(5) न्यायाधीशो को पद निवृत्ति के पश्चात देश की राजनीति म भाग नही लेना चाहिए, न उन्हे किसी कार्यपालक पद पर ही नियुक्त किया जाना चाहिए, न उन्हे अपने कार्यकाल के दौरान कार्यपालिका एव नेताओ की प्रशसा करनी चाहिए और न किसी तात्कालिक राजनीतिक प्रश्न पर उन्हे अपने विचार व्यक्त करने चाहिए।

उपरोक्त सभी सुझाव अत्यन्त सामयिक हैं एव इनके अनुगमन से न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एव प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने म निस्सन्देह सहायता मिलगी।

---

21 Rao, K V *Parliamentary Democracy in India*, 1961 p

30

निर्वाचन एव प्रतिनिधित्व

[ELECTIONS AND REPRESENTATION]

आधुनिक युग लोकतन्त्र का युग है। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र जिसम जनता स्वय शासन करती है, आधुनिक युग मे असम्भव एव अव्यावहारिक है। स्विटजरलैण्ड एव सयुक्त राज्य अमेरिका के कुछेक राज्यो मे आधुनिक काल मे प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय व्यवस्था पायी जाती है। अत प्रतिनिधि या अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र ही लोकतन्त्र का वतमान काल मे प्रचलित एव स्वीकाय रूप है। इसम जनता अपने प्रतिनिधियो को एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित करती है और जनता के प्रतिनिधि जनता के नाम पर शासन करते है। सिद्धान्तत जनता अर्थात् निर्वाचक—सम्प्रभु है। उन्हे 'राजनीतिक सम्प्रभु' भी कहते हैं। वतमान समय मे लोकतन्त्र से तात्पय प्रतिनिधि शासन या उत्तरदायी शासन से है अर्थात शासन प्रतिनिधियो द्वारा किया जाता है और वे अपने कार्यों एव नीतियो के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रतिनिधियो का किस प्रकार निर्वाचन हो और कौन उनको निर्वाचित करे अर्थात् निर्वाचन एव मताधिकार प्रजातन्त्र की महत्वपूण एव जटिल समस्याएँ है। प्रतिनिधि को निर्वाचित करने वाले व्यक्तियो को सामूहिक रूप स मतदाता या निर्वाचक (Elector or Voter) एव प्रतिनिधि निर्वाचित करने के अधिकार को मताधिकार कहते हैं। मताधिकार राजनीतिक अधिकारो म सर्वाधिक महत्वपूण अधिकार है। प्राय सभी लोकतान्त्रिक देशो म एक निश्चित आयु-सीमा के पार करने पर स्वस्थ चित्त एव देश के स्थायी निवासियो अर्थात् नागरिको को मताधिकार प्रदान किया जाता है।

आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्यो मे मतदाता की स्थिति केन्द्रीय है। अन्तत वे ही राज्य एव शासन का स्वरूप निश्चित करते है। सविधान उनकी इच्छा की अभिव्यक्ति है और शासन का निर्माण एव सचालन उनके निर्देशन पर होता है। निर्वाचको द्वारा प्रतिनिधि चुने जाते हैं और वे शासन का निर्माण करते हैं। वे विधानमण्डल के सदस्य होते हैं। विधानमण्डल द्वारा ही सम्पूण शासनतन्त्र को सचालित एव व्यवस्थित किया

जाता है। कुछ देशा म विधानमण्डल के सदस्या को निर्वाचित करन क अलावा मत-दाताआ द्वारा अन्य प्रशासकीय एव न्यायिक अधिकारियो को भी चुना जाता है। अत मतदाताआ को राज्य के सक्रिय नागरिका क निकाय की सना द सकते है। प्रतिनिधि लोकतन्त्र या जन शासन निम्न तीन बाता पर निभर है (1) मताधिकार किन व्यक्तिया को प्रदान किया जाय ? (2) राज्य द्वारा मतदाताओ पर कौन से प्रतिबन्ध लगाय जाते हैं ? एव (3) मतदाताआ तथा शासन म क्या सम्बन्ध है ?

मताधिकार

आधुनिक लाकतन्त्रा मे वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त मान्य है। इसके अधीन प्रत्यक वयस्क स्त्री एव पुरुष को मताधिकार प्राप्त होता है। मताधिकार मम्ब धी उन पर अन्य कोई प्रतिबन्ध नही होता। फ्रेच क्रान्ति क विचारक मताधिकार को मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार मानत थे। मताधिकार मनुष्य की स्वतन्त्रता के लिए नितान्त आवश्यक है। समाज के सदस्य के रूप म व्यक्ति का सामाजिक बन्धनो को स्वीकार करना पडता है। वह स्वय तो अपना शासक नही हो सकता परन्तु उसे स्वय अपने शासका को निर्वाचित करने का अधिकार तो होना ही चाहिए। इस अधिकार के अभाव म उसकी स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नही है। वह समाप्त हो जाती है। अत मताधिकार स्वतन्त्रता प्राप्ति का एक अपरिहार्य साधन है। इस दृष्टि म यह एक प्राकृतिक अर्थात अनिवार्य एव आवश्यक अधिकार है। प्राकृतिक होते हुए भी मताधिकार समाज प्रदत्त अधिकार है। प्रत्येक अधिकार जहाँ वयक्तिक एव नतिक माँग होती है वहा वह समाज की स्वीकृति के पश्चात ही यथार्थ रूप म अधिकार का रूप धारण करता है। अत मताधिकार का प्रयोग प्रत्यक व्यक्ति को विवेकानुसार समाज हित म ही करना चाहिए। इस दृष्टि से मताधिकार एक सामाजिक और नतिक कतव्य तथा दायित्व है।

प्राचीन एव मध्य युग मे वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त प्रचलित नही था। यूनानी एव रोमन काल म जनजातीय आधार पर मताधिकार की व्यवस्था थी। मध्य युग मे मताधिकार केवल धनी भू स्वामिया को ही प्राप्त था। आधुनिक युग क प्रारम्भ म सविदा सिद्धान्त क विकास के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को मत देने के अधिकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया और आधुनिक युग म ही मताधिकार का क्रमिक विकास हुआ है। स्टीफेन लीकॉक ने प्रतिनिधि प्रणाली के विकास के सन्दर्भ में निम्न विचार व्यक्त किय हैं 'जनता रूपी सामान्य निकाय क प्रतिनिधिया क लिए मत देने के अधिकार का आधार ग्रेट ब्रिटेन एव अमेरिका की स्वतन्त्र सस्थाएँ है। इन प्रतिनिधि सस्थाआ की उत्पत्ति क अकुर प्रारम्भिक आग्ल सक्सन सस्थाओ म छिपे पडे है। सक्सन कालीन इगलण्ड म प्रत्येक कस्ब द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करन के लिए एक निर्वाचित रीवी (reeve) एव चार व्यक्ति दरबार या शायर (Shire) की सामान्य सभा मे भेजे जाते थे। अनुमानत इगलण्ड म हर स्वतन्त्र व्यक्ति को प्रारम्भिक निर्वाचना म भाग लने का अधिकार प्राप्त था। ससदीय शासन के प्रारम्भ म मता-

भू स्वामियों तक ही सीमित था । 15वी सदी में इगलण्ड जैसे देश म जहाँ सम्पत्ति, सामाजिक स्तर एव भू स्वामित्व समानार्थी मान जाते थे, ऐसा होना स्वाभाविक भी था । हेनरी चतुर्थ क काल म एक विधि द्वारा काउण्टी निर्वाचनों म 40 शिलिंग प्रति वर्ष लगान की भूमि के स्वामियो को मताधिकार प्रदान किया गया था । आगामी 400 वर्षों तक यही विधि इगलैण्ड म मताधिकार का आधार बना रही, यद्यपि आवासी अर्हता कुछ समय पश्चात समाप्त हो गयी थी । सम्पत्ति के स्वामित्व का समाज म व्यक्ति का आधार माना जाता था । उसके मत को उसकी सम्पत्ति क बजाय उसकी व्यक्तिगत नागरिकता का परिणाम माना जाता था । स्वतन्त्रता के प्रारम्भिक वर्षों म अमेरिकी राज्यो म भी यही सिद्धान्त प्रचलित था । मताधिकार एव निर्वाचित होने का अधिकार पर्याप्त सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता पर निर्भर था । 1791 ई के प्रथम फ्रेंच सविधान म सक्रिय नागरिको को मताधिकार प्रदान किया गया और सक्रिय नागरिकों म केवल उन व्यक्तियो को शामिल किया गया था जो प्रति वर्ष अपने तीन दिन के श्रम के बराबर प्रत्यक्ष कर देते थे ।"[1]

ग्रेट ब्रिटेन

औद्योगिक क्रान्ति एव नेपोलियन के युद्धो के फलस्वरूप 1832 ई म इगलण्ड मे मताधिकार सम्बन्धी प्रथम सुधार किये गये । कामन्स सभा के निर्वाचन क्षेत्रो का प्रथम बार पूर्णरूपेण पुन वर्गीकरण किया गया था और उन सभी व्यक्तियो को मताधिकार प्रदान किया गया जो 50 पौण्ड प्रति वर्ष लगान की भूमि के स्वामी थे । इसके फल स्वरूप प्रथम बार मध्यम एव उच्चवर्गीय सदस्यो को मताधिकार प्राप्त हुआ था । 1867 ई म मताधिकार म पुन वृद्धि की गयी एव बरो (Borough) के प्रत्येक मकान मालिक या 10 पौण्ड प्रति वर्ष लगान के पट्टे की भूमि के मालिक या 12 पौण्ड वार्षिक मकान के किरायेदारो को मताधिकार प्रदान किया गया था । 1884 ई के तृतीय सुधार बिल के द्वारा मताधिकार की व्यवस्था को और अधिक उदार बनाया गया । 1918 ई मे मताधिकार सम्बन्धी बड़े व्यापक सुधार किये गये थे और सम्पत्ति सम्बन्धी सभी योग्यताएँ समाप्त कर दी गयी थी । सिद्धान्तत स्त्रियो को इगलण्ड म प्रथम बार मताधिकार देना स्वीकार किया गया लेकिन 30 वर्ष और उससे अधिक आयु की स्नातिकाओ तथा गृह स्वामिनियो को ही मताधिकार प्रदान किया गया था । 1929 ई मे सभी स्त्रियो को मताधिकार प्रदान किया गया और इस प्रकार इगलण्ड मे पूर्ण मताधिकार की स्थापना हुई थी ।

सयुक्त राज्य अमेरिका

अमेरिका मे मताधिकार का निर्धारण राज्यो के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत है ।

---

1 Leacock *Elements of Political Science*, 1929, pp 209 210

प्रारम्भ म प्रत्येक अमेरिकी राज्य मे मताधिकार सम्पत्ति पर आधारित होने के कारण भूमि या मकान के स्वामियो को प्राप्त था। 1820 से 1840 ई तक अमेरिका मे प्रवाहित लोकतान्त्रिक विचारो के तीव्र प्रवाह के फलस्वरूप वहा वयस्क मताधिकार की स्थापना हुई थी। स्त्रियो को सवप्रथम मताधिकार व्योमिंग (Wyoming) नामक क्षेत्र मे प्रदान किया गया था और धीरे-धीरे सभी राज्यो न इसका अनुसरण किया। 1911 ई म काग्रेस द्वारा सविधान मे एक सशोधन प्रस्तावित करके प्रत्येक जगह स्त्रियो को मताधिकार दिया गया था। इस सशोधन को आवश्यक सख्या मे राज्य विधानमण्डलो ने 1920 ई मे स्वीकृति प्रदान की थी और उसके पश्चात ही यह सशोधन प्रभावी हो सका। सयुक्त राज्य म 1856 ई तक केवल गोरे पुरुषो को ही मताधिकार प्राप्त था। नीग्रो (काले) लोगो के लिए मताधिकार का माग अमेरिकी गहयुद्ध के पश्चात 15वे एव 16वे सशोधनो द्वारा खोला गया एव 1867 ई मे दक्षिणी राज्यो के नीग्रो लोगो को काग्रेस की विधि द्वारा मताधिकार प्रदान किया गया था। 1870 ई के 15वे सशोधन द्वारा अमेरिकी नागरिक के साथ जाति, रग एव दासता के आधार पर मताधिकार सम्बन्धी विभेद को निषिद्ध घोषित किया गया था। कई राज्या ने नीग्रो लोगो पर आवासी एव पोल कर (Poll Tax) सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगा रखे थे। आज यद्यपि नीग्रो जाति को मताधिकार प्राप्त हो गया है और इस अधिकार के सरक्षण की उनम तीव्र चेतना भी है परन्तु श्वेत जाति द्वारा उन्हे मतदान से पृथक रखने का प्रयत्न किया जाता है। अमेरिका मे अभी तक मताधिकार 21 वर्षीय नागरिक को ही प्राप्त था परन्तु काग्रेस ने आयु सीमा को घटा-कर 18 वष कर दिया है।

स्विटजरलण्ड

आधुनिक काल मे स्विटजरलण्ड को प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की पाठशाला कहा जाता है। मताधिकार कैण्टनो के क्षेत्राधिकार के अन्तगत है। 1971 ई तक स्विट जरलैण्ड मे केवल वयस्क पुरुष मताधिकार प्रचलित था। स्त्रिया को मताधिकार केवल इसी वष दिया गया है।

फ्रास

1810 ई म फ्रास म राजतन्त्र की पुनर्स्थापना के फलस्वरूप 300 फ्रैंक वार्षिक कर दने वाले 30 वर्षीय पुरुषा को ही मताधिकार प्रदान किया गया था। 1830 ई की क्रान्ति के पश्चात 300 फ्रैंक की राशि को घटाकर 200 फ्रैंक कर दिया गया। 1840 ई म फ्रास म सावभौम मताधिकार के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और 1848 ई म इसे सफलता प्राप्त हुई। द्वितीय गणराज्य की स्थापना पर फ्रास म प्रत्यक्ष एव सावभौमिक मताधिकार की स्थापना की गयी और प्रत्यक 21 वर्षीय फ्रैंच नागरिक को मताधिकार प्रदान किया गया। तब स यही व्यवस्था चली आ रही

अन्य देश

कुछ समय पूव तक यूराप के विभिन्न देशा म मताधिकार पर अनेक प्रतिबन्ध थ। 1871 ई के **साम्राज्यीय जमनी** क सविधान क अन्तगत समस्त 25 वर्षीय पुरुष नागरिका का केन्द्रीय सदन रीस्टाग के लिए मताधिकार प्राप्त था। परन्तु राज्य निर्वाचन के सन्दभ म मताधिकार सीमित, असमान एव अप्रत्यक्ष था। आस्ट्रिया म 1907 ई तक निम्न सदन के केवल कुछ सदस्य ही सावभौम मताधिकार पर चुने जाते थे। हगरी म मताधिकार सम्पत्ति, कर एव शिक्षा सम्बन्धी जटिल योग्यताओं पर आधारित था। नार्वे म 1898 ई म वयस्क मताधिकार प्रारम्भ हुआ था। बेल जियम म 1893 ई तक मताधिकार पर सम्पत्ति सम्बन्धी भारी प्रतिबन्ध थे। 1912 ई म इटली म मताधिकार के लिए कर देन एव शिक्षा सम्बन्धी योग्यताएँ प्रचलित थी। जापान म 1925 ई तक मताधिकार क लिए कर सम्बन्धी योग्यता प्रचलित थी, फलस्वरूप एक बडी सख्या म वयस्क पुरुष नागरिका को कोई मता धिकार प्राप्त नही था।[2] 1947 ई मे जापान मे प्रथम बार स्त्रिया का मताधिकार प्रदान किया गया। नवीन सविधान म वयस्क एव सावभौम मताधिकार की व्यवस्था है। प्रत्येक 20 वर्षीय जापानी नागरिक को मताधिकार प्राप्त है लेकिन उस निर्वाचन क्षेत्र म तीन माह क निवास सम्बन्धी योग्यता को पूण करना पडता है।

सोवियत रूस म 1936 ई क सविधान के अन्तगत पूण वयस्क मताधिकार की स्थापना की गयी है। इसके पूव प्रचलित समस्त विभेदकारी नियमा का समाप्त कर दिया गया है। प्रत्येक 18 वर्षीय सोवियत नागरिक को बिना किसी भेदभाव क मताधिकार प्राप्त है। पागल एव दण्डित नागरिक इसके अपवाद है। मशस्त्र सनाओ के सदस्या का भी मताधिकार एव निर्वाचित होने का अधिकार है।

साम्यवादी **चीन** म किसी भेदभाव के बिना प्रत्येक 18 वर्षीय वयस्क स्त्री एव पुरुष नागरिक को जो पागल न हो और जिसे किसी विधि द्वारा इस अधिकार स वचित न किया गया हो, मताधिकार प्राप्त है।

भारत क गणतन्त्रीय सविधान (1950 ई) द्वारा वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक 21 वर्षीय भारतीय नागरिक को बिना किसी भेदभाव के मताधिकार प्राप्त है। स्वतन्त्रता के पूव भारत म मताधिकार सम्बन्धी साम्प्रदायिक, सम्पत्ति एव शक्षणिक सम्बन्धी व्यवस्थाए थी जिन्हे स्वतन्त्रता के पश्चात पूणरूपण समाप्त कर दिया गया है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सावभौम वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) प्राय सभी देशा द्वारा स्वीकार किया जा चुका है।

---

2 Garner *Political Science and Government* 1951, pp 510 511

पक्ष मे तक निम्नवत है

(1) प्रत्यक व्यक्ति को शासन के निर्माण म अधिकार प्राप्त होना चाहिए। सभी व्यक्ति प्रकृति से समान एव स्वतन्त्र है। अत किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को शेष व्यक्तिया पर बिना उनकी सहमति के शासन का अधिकार नही होना चाहिए। सामाजिक समझौतावादी विचारक प्राकृतिक अधिकारो के सिद्धान्त के आधार पर सावभौम मताधिकार का समथन करते थे। व्यक्तित्व क पूण विकास के लिए सावभौम मताधिकार एक अनिवाय शत है।

(2) जॉन स्टुअट मिल[3] का यह मत था कि किसी व्यक्ति को सावजनिक मामला क सम्पादन म अन्य व्यक्तिया की भाँति उसके सम्पादन के अवसर न दना उसका अपमान करना है। यदि किसी व्यक्ति को कर देन अथवा युद्ध करने के लिए वाध्य किया जाता है तो उसे विधिक रूप से यह जानने का भी अधिकार है कि वह क्यो लडे एव क्यो कर दे? इसके अतिरिक्त उससे भी स्वीकृति तथा परामश लिया जाना चाहिए।

(3) यदि कुछ व्यक्तिया को मताधिकार नही दिया जाता है तो यह सम्भव है कि विधानमण्डल उनके हितो की उपक्षा कर दे।

(4) सीमित मताधिकार के फलस्वरूप राजनीतिक समानता के सिद्धान्त का सहज ही अतिक्रमण हो जाता है।

(5) सावभौम मताधिकार के फलस्वरूप विद्रोहो एव क्रान्तियो की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

(6) सावभौम मताधिकार क फलस्वरूप नागरिको की सावजनिक कार्यो म रुचि उत्पन्न होती है और उनके अनुभव एव आत्मसम्मान म वद्धि होती है।

विपक्ष मे तक—लेकिन सावभौम मताधिकार का विरोध भी कम नही हुआ है। लोकतन्त्र के समथको ने भी सीमित मताधिकार का समथन किया है। सावभौम मताधिकार के विपक्ष म निम्नलिखित तक प्रस्तुत किये जाते है

लाड मकाले (Lord Macaulay) को इससे व्यापक अपहरण प्रारम्भ हो जान का भय था—'कुछ अद्धनग्न मछेरे यूरोप के महानगरो के ध्वसावशेषो को मूर्खो (उल्लुओ) एव चालाको (लोमडियो) के साथ बाटकर खा जायेंगे।' लेकी (Lecky) का मत था कि इससे अज्ञानियो के शासन की आशका बढ जायेगी। जेम्स स्टीफेन का मत था कि सावभौम मताधिकार के फलस्वरूप विवेक एव मूखता के सही एव स्वाभाविक सम्बन्धो के उलट जाने की सम्भावना है। सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) भी सावभौम मताधिकार के विरोधी थे। ईमाइल लेवले (Emile Lava

3 Mill *Representative Government*, Ch VIII

lcyc) के अनुसार अज्ञानियों को मताधिकार देने का अर्थ आज अराजकता तथा कल निरंकुशता म फँसना है।[4] अत इन विद्वानों ने सीमित मताधिकार का समर्थन किया था। सार्वभौम मताधिकार का प्रसार निर्विरोध नहीं हुआ है। पश्चिमी देशों म स्त्रियों को मताधिकार 20वीं सदी म दिया गया है। ग्रेट ब्रिटेन म 1918 ई म सर्व प्रथम 30 वर्षीय या उससे अधिक आयु की स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया था। सौभाग्य स स्वतन्त्र भारत म सार्वभौम मताधिकार को प्रारम्भ स ही स्वीकार कर लिया गया है।

स्त्री मताधिकार क समर्थन म अनेक तर्क दिये गये हैं। इनम से कुछ निम्न लिखित हैं

(1) लिंग भेद से मताधिकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

(2) स्त्रियों को शारीरिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण कानून एव सामाजिक सरक्षण की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता है।

(3) राजनीतिक जीवन म स्त्रियों का प्रवेश राजनीति को शुद्ध एव परिष्कृत करने मे सहायक होगा। मताधिकार न देने का अर्थ समाज को उसके लगभग आधे सदस्यों की योग्यताओं तथा गुणों से वंचित कर देना है।

(4) पुरुषों के अत्याचार से उनकी रक्षा हेतु स्त्रियों को मताधिकार देना अपेक्षित है।

(5) स्त्री पुरुष मे विभेद अनैतिक है तथा समता के सिद्धान्त के विरुद्ध है। अत स्त्रियों को मताधिकार देना एक नैतिक आवश्यकता है।

स्त्री मताधिकार का समर्थन जान स्टुअर्ट मिल सिजविक एव एस्मिन आदि लेखकों ने किया है। जान स्टुअर्ट मिल स्त्रियों की स्वतन्त्रता तथा मताधिकार का तीव्र समर्थक था। स्विटजरलैण्ड मे स्त्रियों को मताधिकार 1971 ई म ही प्रदान किया गया है।

सार्वभौम मताधिकार के प्रति व्यक्त अधिकांश आशकाएँ निर्मूल सिद्ध हुई हैं। फिर भी सार्वभौम मताधिकार के दोषों को कम करने के लिए बहुल मतदान (plural voting) एव अतिरिक्त मताधिकार प्रणाली (Weightage System) का प्रयोग किया गया। मिल ने मतदान के सम्बन्ध म साक्षरता एव कर देने सम्बन्धी योग्यताएँ निर्धारित करने का प्रस्ताव किया था। उसका मत था कि जो व्यक्ति पढ लिख नहीं सकता एव प्रारम्भिक गणित के प्रश्न हल नहीं कर सकता, वह मतदान का अधिकारी नहीं माना जा सकता है। मिल तो विश्व की प्राकृतिक एव राजनीतिक सरचना एव विभाजन तथा सामान्य इतिहास का कुछ ज्ञान भी मतदान के लिए आवश्यक मानता था।[5]

---

4 Refer to E Asirvatham *op cit*, pp 415 16, Garner *op cit*, pp 511 13

5 Mill *Representative Government*, pp 160 162

(4) निर्वाचन क्षेत्रो का निर्माण किन आधारो पर होना चाहिए ?
(5) अल्पसंख्यको के प्रतिनिधित्व की समस्या ।

प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष निर्वाचन

निर्वाचन से सम्बन्धित एक विवादास्पद प्रश्न यह है कि वह प्रत्यक्ष होना चाहिए या अप्रत्यक्ष । मतदाता स्वय मतदान करके जब अपने प्रतिनिधियो को निर्वाचित करता है तो इस पद्धति को प्रत्यक्ष मतदान (Direct Election) कहते हैं। इसके विपरीत मतदाता अपने प्रतिनिधियो को निर्वाचित करने के लिए मध्यवर्ती निर्वाचको को चुनते हैं और इनके द्वारा जनता के प्रतिनिधियो को निर्वाचित किया जाता है तो इसे अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Election) कहते हैं। प्राय विश्व के सभी देशो के विधानमण्डल के निम्न सदनो के सदस्यो को प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किया जाता है । सयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित द्वितीय सदन है ।[7] आस्ट्रेलिया की सीनेट के सदस्यो को जनता प्रत्यक्ष रीति से समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनती है । इसके विपरीत प्राय सभी द्वितीय सदन अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित या मनोनीत होते है । उदाहरण के लिए, फ्रास की काउन्सिल, दक्षिणी अफ्रीका की सीनेट, आयरलण्ड की सीनेट भारत की राज्यसभा[8], सोवियत रूस की राष्ट्रीय सोवियत, स्विटजरलण्ड की राज्य परिषद अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन है । लेकिन इगलण्ड की लार्डसभा वशानुगत एव मनोनीत है। कनाडा का द्वितीय सदन—सीनेट—मनोनीत सदन है । अमरिकी एव भारतीय राष्ट्रपति एक निर्वाचक मण्डल द्वारा चुने जाते है अत वे अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होते है ।[9]

प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति लोकतन्त्र का पर्यायवाची है । लेकिन जान स्टुअर्ट मिल सदृश विद्वानो को बुद्धिमत्ता, साधारण जनता की योग्यता तथा विवेकशीलता मे पूर्ण विश्वास नही है । वे लोकतन्त्र मे अज्ञान के अत्याचार से आतकित हैं। अत लोकतन्त्र मे सार्वभौमिक मताधिकार के यथार्थ एव सम्भावित दोषो को दूर करने के लिए निर्वाचन का अप्रत्यक्ष एव प्रत्यक्ष पद्धतियो मे विभाजित करने का वे समर्थन करते हैं। अप्रत्यक्ष निर्वाचनो के पक्षधर अपने समर्थन मे यह सबल तर्क प्रस्तुत करते हैं कि

---

7 अमरिकी सीनेट 1913 ई के पूर्व तक अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन था । प्रशा का निम्न सदन एव 1905 ई के पूर्व नार्वे का एक सदन स्टार्थिग (Storthing) अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होता था ।—Garner *Political Science and Government, op cit*, p 529

8 भारतीय द्वितीय सदन—राज्य सभा—के 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होते हैं ।

9 नेपाल का एकमात्र सदन 'राष्ट्रीय पचायत' के सदस्य अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किये जाते हैं । पाकिस्तान मे जनरल अयूब के समय मे गठित सदन 'राष्ट्रीय सभा' भी अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित सदन था ।

विधायकों के दायित्वों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उनका निर्वाचन सामान्य नागरिकों से अधिक योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए। उनकी संख्या भी कम होनी चाहिए जिससे कि वे सामान्य जनता के उद्वेग एवं भावना से मुक्त रह सकें। उन्हें सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी सजग एवं बुद्धिमान होना चाहिए। ऐसे निर्वाचकों के द्वारा निर्वाचित विधानमण्डल निस्सन्देह अधिक उत्तरदायित्वपूर्वक कार्य करेंगे।[10]

लेकिन अप्रत्यक्ष निर्वाचन के उपरोक्त तर्कों के विरुद्ध अनेक तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं और सिद्धान्ततः इससे अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हुए हैं

(1) अप्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत मतदातागण राजनीतिक शिक्षा से वंचित हो जाते हैं और उनमें सार्वजनिक भावना का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।

(2) यह पद्धति प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति की अपेक्षा जटिल है।

(3) मध्यवर्ती निर्वाचकों की संख्या कम होने के कारण उनके भ्रष्ट होने, तथा रिश्वत, छल कपट एवं दबाव से सरलतापूर्वक प्रभावित होने की अधिक सम्भावना रहती है। मध्यवर्ती निर्वाचकों का कोई स्थायी पद नहीं होता। उन्हें अधिक हानि का भय नहीं है, अधिक से अधिक वे पुनः निर्वाचित नहीं हो सकते। अतः उनके भ्रष्ट होने की अधिक गुंजाइश होती है।

(4) अप्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली लोकतन्त्रीय सिद्धान्त के विपरीत है। जनता चूंकि अन्तिम रूप में अपने प्रतिनिधि को चुनने में असफल रहती है अतः जनता की निर्वाचनों में कोई आस्था नहीं रहती।

(5) गार्नर के अनुसार सुसंगठित एवं सुदृढ़ राजनीतिक दलों के उदय एवं विकास के कारण अप्रत्यक्ष निर्वाचन नाममात्र के लिए ही अप्रत्यक्ष होता है।[11] 'मध्यवर्ती निर्वाचकों' के लिए दलीय प्रत्याशियों को खड़ा किया जाता है और विजयी होने पर वे अपने दल के प्रत्याशी के लिए ही मतदान करते हैं। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरिका के राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति पद के सम्बन्ध में यह पूर्णतः सत्य है। भारत में राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल के सदस्य दलीय प्रत्याशी को ही अपना मत देते हैं। अतः दलीय व्यवस्था के विकास के कारण अप्रत्यक्ष निर्वाचन केवल संवैधानिक व्यवस्था मात्र बन कर रह गया है।

गुप्त या सार्वजनिक मतदान

निर्वाचन से सम्बन्धित एक अन्य प्रश्न यह है कि मतदान गुप्त या सार्वजनिक या खुला (public or open) होना चाहिए। गुप्त मतदान (vote by ballot) आजकल सर्वमान्य एवं स्वीकृत सिद्धान्त है लेकिन सदैव ऐसा नहीं था। सार्वजनिक

10 Mill *Representative Governments*, p 294
11 Garner *op cit* p 531

मतदान 20वी सदी के प्रारम्भ तक केवल कुछ देशा म (यथा—डेनमाक म 1901, प्रशा म 1920, एव सोवियत रूस म 1936 ई तक) ही प्रचलित था। 1914 ई तक फ्रास म भी पूरी तरह गुप्त मतदान प्रणाली प्रचलित नही थी। मिल, मोन्टेस्क्यू एव ट्रीटस्के सावजनिक मतदान के पक्षपाती थे। 18वी तथा 19वी सदी म गुप्त मत दान की प्रथा नही थी। मोन्टेस्क्यू ने सावजनिक मतदान का समथन इस आधार पर किया था कि इससे सामान्य व्यक्ति को अपने मत के प्रयोग म अपेक्षाकृत योग्य एव बुद्धिमान व्यक्तियो से सहायता एव निर्देश प्राप्त हो सकेगा।[12] मिल ने इसका सम थन करते हुए कहा कि मतदान सम्बन्धी कतव्य अन्य सावजनिक कतव्यो की भाँति सावजनिक आलोचना एव देखभाल मे ही सम्पादित किया जाना चाहिए।[13] श्री ट्रीटस्के के अनुसार "गुप्त मतदान उदारवाद के नाम पर वास्तव म एक धोखा है।" यह अनुचित एव अनैतिक है। मतदान एक सावजनिक कतव्य है और इसका प्रयोग भी सावजनिक रूप म ही किया जाना चाहिए। ऐसे किसी व्यक्ति को सच्चे अर्थों म राजनीतिक सम्मान प्राप्त नही हो सकता जो मतपटी के पास पहुँच कर मत देते समय (अपने मताधिकार के गलत प्रयाग के लिए स्वय को) अपमानित महसूस नही करता।[14]

सावजनिक मतदान का सबसे बडा दोष यह है कि मतदाता निर्भीकतापूवक अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रतापूवक अपने मत का सावजनिक रूप से प्रयोग नही कर सकता है। लोकतन्त्र के वाछित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्रता एव निर्भीकतापूवक मताधिकार का प्रयोग वाछनीय है। सामान्य मतदाताओ पर अनेक प्रकार के दबाव पडते हैं। अत सावजनिक एव खुले रूप म हाथ उठाकर मतदान करने म वह पूर्णत स्वतन्त्र हो सकता। हैरिंगटन (Harrington) उन कुछ सवप्रथम विचारको मे था जिन्होने स्वतन्त्र एव निष्पक्ष मतदान के लिए गुप्त रीति का समथन किया है। बेन्थम भी गुप्त मतदान का समथक था। दीघ एव लम्बे विवाद के पश्चात ही फ्रास म गुप्त मत दान सम्बन्धी विधि पारित हो सकी थी। अब सभी देशो म गुप्त मतदान की व्यवस्था को पूणरूपण मान्यता प्राप्त हो गयी है।

क्या मतदान अनिवाय होना चाहिए?

इस प्रश्न का उत्तर इस प्रश्न के उत्तर पर निभर है कि मताधिकार एक दायित्व है या काय? राजनीति शास्त्र के प्राय सभी लेखक यह स्वीकार करते ह कि मताधिकार एक दायित्व है जो राज्य द्वारा ऐसे सभी व्यक्तियो को प्रदान किया जाता है जो उस सम्पादित करने क योग्य हाते ह। यह एक विधिक अधिकार है, न कि प्राकृतिक अधिकार। यदि मतदान सावजनिक हित म एक दायित्व है तो इसका तक

12 *Ibid*, p 532
13 Mill *Representative Government*, Ch X
14 Treitschke, cited by J W Garner *op cit*, p 532

सगत निष्कष यह निकलता है कि निर्वाचक का अपने कतव्य को अनिवायत सम्पादित करना चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या विधि द्वारा मतदाता को मतदान रूपी दायित्व के सम्पादन के लिए वाध्य किया जा सकता है ? क्या विधि द्वारा अनिवाय मतदान की व्यवस्था करनी चाहिए ? क्या इस कतव्य के सम्पादन म असफल रहने वाले व्यक्तियो को दण्डित किया जाना चाहिए ? विभिन्न विचारको एव राजनीतिनो ने अनिवाय मतदान का समथन किया है। कुछ देशो म तो अनिवाय मतदान की व्यवस्था को अपनाया भी गया था। 1893 ई के बेलजियम के सविधान म अनिवाय मतदान का विधान था और मतदान न करने पर एक से तीन फ्रेंक तक के आर्थिक दण्ड की व्यवस्था थी। चार वार मतदान का प्रयोग न करने पर नागरिक को मताधिकार से वचित कर देने सम्बन्धी नियम था। 1907 ई म स्पेन म अनिवाय मतदान प्रारम्भ किया गया था और मतदान न करने पर दण्ड की व्यवस्था थी। गानर के अनुसार स्पेन म अनिवाय मतदान सम्बन्धी विधि एक मत पत्र मात्र बना रहा *क्योंकि ग्रामीण निर्वाचन क्षेत्रो म 80 प्रतिशत मतदाता निर्वाचनो म अनुपस्थित रहते थे।*[15]

1912 ई म अर्जेंटाइना, 1917 ई म नीदरलैण्ड एव 1950 ई म चेकोस्लोवाकिया म अनिवाय मतदान व्यवस्था को प्रारम्भ किया गया। फ्रास म 1875 ई म सीनेट के मतदाताओ के लिए अनिवाय मतदान की व्यवस्था थी। 1921 ई मे प्रो जोसेफ वारथेलिमे (Joseph Barthelemy) ने फ्रास के निम्न सदन के सदस्यो को निर्वाचित करने के लिए अनिवाय मतदान सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत किया था लेकिन वह पारित न हो सका।

अनिवाय मतदान का प्राय सभी राजनीतिक विद्वानो तथा राजनीतिनो ने निम्नाकित आधार पर विरोध किया है

(1) राजनीति शास्त्र एव सावजनिक नीति क सुदृढ सिद्धान्तो के आधार पर अनिवाय मतदान का समथन नही किया जा सकता।

(2) अनिवार्य मतदान इस धारणा पर आधारित है कि मताधिकार एक *विधिक कतव्य है जबकि वास्तव म मताधिकार एक विशेषाधिकार और नतिक कतव्य* है। अत राज्य यदि नागरिक को मताधिकार के प्रयोग के लिए वाध्य करता है तो उसके दुरुपयोग की अधिक सम्भावना है।

(3) गानर का मत है कि अनिवाय मतदान की व्यवस्था के फलस्वरूप मतो की खरीद करना सरल हो जायेगा। अनिच्छुक मतदाताओ को धन के लोभ म सरलता से फुसलाया जा सकेगा।

(4) अनिवाय मतदान का एक सहज परिणाम यह भी होगा कि मतदाता

---

15 Garner *op cit*, p 501

अनुत्तरदायी ढग से अपने मत का प्रयोग करेंगे। मतदाता की दृष्टि म किसी उम्मीदवार के उपयुक्त न होने पर यदि वह अपने मत का प्रयोग करता है तो उसके मत का कोई व्यावहारिक मूल्य नही होता।

वतमान समय म अधिकाश देश, यथा—सयुक्त राज्य अमरिका, कनाडा इगलण्ड, स्विट्जरलण्ड, भारत आदि—म अनिवाय मतदान व्यवस्था प्रचलित नही है।

निर्वाचन क्षेत्रो का निर्माण

निर्वाचन क्षेत्रा के निर्माण का प्रश्न प्रतिनिधित्व से घनिष्ठ रूप स सम्बन्धित है। प्रतिनिधित्व स सम्बन्धित दो मुख्य प्रश्न ह (1) प्रतिनिधित्व का उचित आधार क्या होना चाहिए ? (2) प्रतिनिधित्व किसका होना चाहिए ? प्रतिनिधित्व के उचित आधार के निश्चित हो जाने पर ही निर्वाचन क्षेत्रो का निर्माण निभर करता है। क्षेत्र या प्रदेश, व्यवसाय या पशा तथा समुदाय या सम्प्रदाय प्रतिनिधित्व के विभिन्न एव मान्य आधार हैं। इन्हे क्रमश क्षेत्रीय या प्रादेशिक, व्यावसायिक एव साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की सज्ञा दी जाती है। अधिकाश देशा म प्रादशिक या क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त मान्य है। क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के अन्तगत सारे दश को प्रतिनिधित्व की दृष्टि से निर्वाचन क्षेत्रा म विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र स सर्वाधिक मत या बहुमत प्राप्त करन वाले सदस्य को जनता अपने प्रतिनिधि के रूप म निर्वाचित करती है। इस 'एक निर्वाचन क्षेत्र एव एक सदस्य' का सिद्धान्त भी कहत है। इसके विपरीत, व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के अन्तगत विभिन्न व्यवसायो एव धन्धो म सलग्न व्यक्तियो के पृथक पृथक समुदाय होते हैं और इन व्यावसायिक समुदायो द्वारा *प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रो का स्थान ग्रहण किया जाता है। एक व्यवसाय मे सलग्न सभी* व्यक्तिया द्वारा एक या अधिक व्यक्ति प्रतिनिधि के रूप मे चुने जाते हैं। अत व्यावसायिक प्रतिनिधित्व मे 'एक निर्वाचन क्षेत्र तथा अनेक प्रतिनिधिया' का विचार मान्य है। प्रादशिक निर्वाचन क्षेत्र एकसदस्यी होत हैं, व्यावसायिक या समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अन्तगत बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्रा का निर्माण किया जाता है।

एकसदस्यी (क्षेत्रीय) निर्वाचन-क्षत्र

सम्पूण राज्य म स जितने प्रतिनिधिया को चुनने का निश्चय किया जाता है, उतने निर्वाचन क्षेत्रो मे उसे विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र म निर्धारित जनसख्या से अधिक व्यक्ति नही होत है। एक निर्वाचन क्षेत्र से सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाला कवल एक ही प्रतिनिधि चुना जाता है। भारत, इगलैण्ड, सयुक्त राज्य अमरिका सोवियत रूस, कनाडा, आस्ट्रेलिया, नेपाल, पाकिस्तान आदि देशो म क्षेत्रीय अर्थात एकसदस्यी निर्वाचन पद्धति प्रचलित है। इसके गुण निम्नवत है

(1) यह सुविधाजनक पद्धति है। इसम निर्वाचन क्षेत्र छोटे होते हैं, फलस्वरूप मतदातागण सभी उम्मीदवारो स सरलता स परिचित हो सकत ह।

(2) प्रतिनिधि के लिए स्थानीय समस्याओ का अध्ययन करना सरल हाता

है, निर्वाचन का प्रब ध आसानी से किया जा सकता है तथा मतदाताओ को भी मत देने म सरलता होती है।

(3) निर्वाचन म व्यय भी कम होता है तथा निर्वाचन के पश्चात मतगणना एव परिणामो की घोषणा करना सरल होता है।

(4) इस प्रणाली के अ तगत अल्पसख्यक वर्गो एव दलो का भी समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है।

(5) इस प्रणाली के अ तगत दश के सभी क्षेत्रो को विधानमण्डल म प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है।

एकसदस्यी निर्वाचन प्रणाली के दोष निम्नांकित है

(1) इस प्रणाली के द्वारा स्थानीयता की भावना म वृद्धि होती है। प्रति निधिया म सम्पूण देश की अपक्षा एक क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करने की प्रवत्ति विकसित हो जाती है। व राष्ट्रीय हिता की अपेक्षा स्थानीय हितो पर अधिक बल दने लगत है। इस मत का समथन फ्रा स तथा इटली की एकदलीय प्रणाली के व्यावहारिक अनुभवो स भी होता है।[16]

(2) निर्वाचन क्षेत्रा की जनसख्या सदव एक समान नही रहती, वह घटती-बढती रहती है। अत क्षेत्र को निर्वाचन का आधार मानना ही त्रुटिपूर्ण है। जनसख्या म परिवतन होने के कारण निर्वाचन क्षेत्रा के पुन विभाजन की सम्भावना सदैव बनी रहती है और पुन वर्गीकरण के समय सत्तारूढ दल निर्वाचन क्षेत्रा का विभाजन इस प्रकार करते हैं कि उसे सबसे अधिक लाभ प्राप्त हो सके। विरोधी दल के समथका को प्रत्यक निवाचन क्षेत्र म अल्प-सख्या म कर दिया जाता है। यही नही, विरोधी दलो की शक्ति को सीमित करने के उद्देश्य से उसके समथका के क्षेत्रो को एक या कुछ निर्वाचन क्षेत्रो म सीमित कर दिया जाता है, फलस्वरूप विभि न आकार के निर्वाचन क्षेत्रो का निर्माण हो जाता है। इससे निर्वाचनो म विरोधी दलो को केवल थोडे स क्षेत्रो म ही सफलता प्राप्त हो पाती है। इस प्रथा को गरीमेंडरिंग (Gerrymander ing) कहते है। इसका प्रयाग सवप्रथम 1812 इ मे सयुक्त राज्य अमेरिका म मसाच्यूसेट्स राज्य के राज्यपाल ऐल्ब्रिज गरी ने किया था।

(3) कभी कभी किसी निर्वाचन क्षेत्र म योग्य उम्मीदवारा के अभाव मे मतदाता साधारण व्यक्ति को या निर्वाचन क्षेत्र के बाहर के किसी योग्य व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि चुनत हैं। इस दोष की सम्भावना केवल उन निवाचन क्षेत्रो म ही होती है जहा स्थायी निवास सम्ब धी योग्यता निर्धारित नही की जाती। अमेरिका म निवाचन क्षेत्र मे स्थायी निवास सम्ब धी अनिवाय योग्यता का विधान है। इसके विपरीत भारत म किसी निवाचन क्षेत्र से कोई भी नागरिक निर्वाचन सम्ब धी योग्यताओ क पूण

---

16 Garner, cited by A Appadorai *The Substance of Politics* p 475

होने पर चुनाव लड सकता है। निर्वाचन क्षेत्र म निवास सम्बन्धी कोई योग्यता भारत म निर्धारित नही की गयी है।

(4) क्षेत्रीय पद्धति के अधीन कुल निर्वाचको के अल्प मत का ही प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति निर्वाचित हो जाते हैं। भारत एव ब्रिटेन के ससदीय निर्वाचनो के आंकडे इस मत की पुष्टि करते है।[17] असफल उम्मीदवारो को जो मत प्राप्त होते है वे व्यर्थ चले जाते है और उन्हे कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता है। ससद या विधानमण्डल म विभिन्न दलो को निर्वाचनो मे प्राप्त मतो के अनुपात म प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता और जब निर्वाचन म त्रिकोणात्मक सघर्ष होता है तो सफल उम्मीदवार को निश्चय ही कुल मतदाताओ का स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही होता, वह अल्पमत के समर्थन से ही विजयी हो जाता है। अत इस पद्धति का एक दुष्परिणाम यह होता है कि अल्पमत विधानमण्डल मे प्रतिनिधित्व से वचित हो जाता है। इस पद्धति के आलोचको द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का समर्थन किया जाता है।

(5) एकसदस्यी निर्वाचन-क्षेत्र बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्रो की अपेक्षा छोटे होते है। अत शासक वर्ग निर्वाचनो को नियन्त्रित करने म सफल होता है। इन दोषो के कारण ही 1918 ई म फ्रास ने एकसदस्यी निर्वाचन प्रणाली का परित्याग कर दिया था।

बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली

बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली सामान्य टिकट प्रणाली (General Ticket System) का सशोधित रूप है। 'सामान्य टिकट प्रणाली' के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश को एक निर्वाचन क्षेत्र मान लिया जाता है और मतदाताओ द्वारा सभी सदस्यो के निर्वाचनो मे भाग लिया जाता है। प्रत्येक मतदाता को उतने मत प्राप्त होते है जितने सदस्यो को निर्वाचित किया जाना है। 1867 ई से 1885 ई तक ग्रेट ब्रिटेन म 13 *निर्वाचन क्षेत्रो म एव सयुक्त राज्य अमेरिका म 1842 ई तक कांग्रेस के निर्वाचनो*

17 1924 ई के ब्रिटिश निर्वाचनो म अनुदार दल को केवल 48% मत प्राप्त होने पर भी 615 स्थानो म से 412 स्थान प्राप्त हुए थे, श्रम दल को 25% मत परन्तु 34% अर्थात 151 स्थान और उदार दल को 20% मत परन्तु केवल 8% अर्थात् 46 स्थान प्राप्त हुए थे। 1951-52 ई के प्रथम भारतीय निर्वाचनो म कांग्रेस दल को 44 85% मत प्राप्त हुए परन्तु लोकसभा म 489 स्थानो म 362 स्थान प्राप्त हुए थे। इसी निर्वाचन म समाजवादी दल को 10 5% मत प्राप्त हुए परन्तु लोकसभा मे 50 स्थानो की अपेक्षा उसे केवल 12 स्थान प्राप्त हुए थे। 1957 ई के निर्वाचनो म कांग्रेस को 47 8% मत और लोकसभा म 75 1% स्थान, 1962 ई मे कांग्रेस को 44 5% मत और 72 8% स्थान, 1967 ई म 40 7% मत और 53 5% स्थान प्राप्त हुए थे। देखिए चन्द्रप्रकाश भामरी "भारत म निर्वाचन सुधार एव दल प्रणाली", लोकतन्त्र समीक्षा, अक 4, अप्रैल जून 1972, पृ 36

के लिए 'सामा य टिकट प्रणाली' ही प्रचलित थी। लेकिन आधुनिक विशाल राज्या क लिए यह प्रणाली अव्यावहारिक है। अल्पसख्यको को इस पद्धति के अ तगत प्रति निधित्व प्राप्त होने की कोई आशा नही रहती। बहुसख्यक मत पाने वाले दल के प्रत्याशी ही विजयी होते ह फलस्वरूप शेप दलो को प्राप्त मत व्यथ चले जाते ह। यह निर्वाचन प्रणाली कठोर एव जटिल है। प्रतिनिधियो का मतदाताओ से सीधा सम्पक नही होता है और प्रतिनिधि भी अपने क्षेत्र की समस्याओ का उचित प्रतिनिधित्व करने म असफल रहते ह।

बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली एकसदस्यी एव सामा य टिकट प्रणाली के मध्य का माग ह। इसके अ तगत सारे देश को बहु निर्वाचन क्षेत्रो म विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि दो या अधिक सदस्या को उस निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि रूप मे चुना जा सके। समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अ तगत निर्वाचन क्षेत्र बहुसदस्यी होते ह। वीमर जमनी (1919 33), फ्रा स, स्विटजरलण्ड आदि देशो म बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली प्रचलित है। भारत मे एकसदस्यी एव बहुसदस्यी दोनो ही प्रकार के निवाचन क्षेत्र पाये जाते है। बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्रो का लक्ष्य मतदाताओ के सभी वर्गो एव अल्पसख्यको को उचित प्रतिनिधित्व देना है।

इन दोनो प्रणालियो म 'एकसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र' प्रणाली अधिक श्रेष्ठ है और प्रचलित भी है। इसका सबसे बडा गुण यह है कि इसके अधीन दृढ एव स्थायी सरकार का निर्माण सम्भव होता है। इसके विपरीत, बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्रो के अन्तगत देश म छोटे-छोटे राजनीतिक दलो का उदय हो जाता है और किसी भी दल को विधानमण्डल म स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही हो पाता। फलस्वरूप ससदीय कायपालिका स्थायी रूप से दृढतापूवक काय नही कर पाती है। अधिकाशत बहुसदस्यी निर्वाचन-क्षेत्रीय प्रणाली के अधीन सयुक्त म त्रिमण्डलो का निर्माण होता है। फ्रा स इसका प्रमुख उदाहरण ह। इसके ही कारण फ्रा स का चतुथ गणत त्रीय सविधान असफल रहा था और पचम गणत त्रीय सविधान का निमाण अनिवाय हो गया था।

अल्पसख्यको को प्रतिनिधित्व

प्राय हर देश म विभि न प्रकार के अल्पसख्यक पाय जात ह। इनके प्रतिनिधित्व का प्रश्न राजनीति शास्त्र की एक महत्वपूण समस्या है। क्षेत्रीय निवाचन प्रणाली क अधीन अल्पसख्यको को अपनी जनसख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता और निवाचनो म बहुत बडी सख्या म मत व्यथ चले जात हैं। विधान (Legislation) के सम्ब ध म सम्पूण जनता को निणय और विचार विमश करन का अधिकार लोकत त्र का एक मा य सिद्धा त है। अत विधानमण्डलो म अल्पसख्यको का प्रतिनिधित्व एव उनक प्रतिनिधियो के विचारो का सुना जाना लोकत त्र म अति आवश्यक है। विधि को व्यापक जन-समथन प्राप्त होना चाहिए, तभी उसका पूण या अधिकाधिक पालन सम्भव है। अत

यह आवश्यक है कि अल्पसख्यको को विचार विमर्श क उचित अवसर प्राप्त होन चाहिए। साथ ही साथ उनकी उचित इच्छाओ का मा यता भी प्राप्त हानी चाहिए। जहाँ अल्प सख्यको की उपक्षा की जाती है वहाँ उनम अस तोष एव आक्रोश उत्प न हो जाता है। अल्पसख्यको को प्रतिनिधित्व देने एव क्षेत्रीय निर्वाचन प्रणाली क दोषो को दूर करने के लिए प्रस्तावित विभि न निर्वाचन सम्ब धी उपायो म समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रमुख स्थान ह।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

इस प्रणाली का सुझाव सवप्रथम 1851 ई म इगलण्ड क एक निवासी थामस हेयर (Thomas Hare) न अपनी पुस्तक 'निर्वाचन एव प्रतिनिधित्व' (*Election and Representation*) मे दिया था। यह निर्वाचन पद्धति समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के नाम स विख्यात है। इसके दो रूप ह (1) एकल सक्रमणीय प्रणाली (Single Transferable Vote System), एव (2) सूची प्रणाली (List System)

(1) **एकल सक्रमणीय प्रणाली**—हेयर प्रणाली को एकल सक्रमणीय मत प्रणाली की भी सजा दी जाती है। यह इस सिद्धा त पर आधारित है कि सच्चे लोकत त्रीय देशो के विधानमण्डलो म देश के विभिन्न वर्गों को जनसख्या के अनुपात म प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए।

एकल सक्रमणीय मत-प्रणाली की कुछ मौलिक विशेषताएँ ह, जो निम्नाकित हैं

(1) इस प्रणाली के अ तगत निर्वाचन क्षेत्र बहुसदस्यी होत हैं अर्थात् एक निर्वाचन क्षेत्र स कम से कम तीन सदस्य तो निर्वाचित होन ही चाहिए।

(2) प्रत्यक मतदाता को केवल एक मत प्राप्त होता है पर तु निवाचन क्षेत्र से चुने जाने वाले प्रतिनिधियो की सख्या के बराबर अपनी पस दगी व्यक्त करने का अधिकार होता है। अत मतदाता का मत तो एक ही होता है पर तु उसके प्रयोग के सम्ब ध म वह अपनी पस दगी (preference) व्यक्त कर सकता है। उदाहरणाथ, किसी निर्वाचन क्षेत्र से तीन सदस्य चुन जाने है लेकिन 6 व्यक्ति चुनाव लड रह ह तो ऐसी स्थिति म मतदाताओ को इन 6 उम्मीदवारो म से अपनी पस द के उम्मीदवारो के समक्ष प्रथम, द्वितीय एव ततीय पस दगी को व्यक्त करने का अधिकार होता है। यदि प्रथम पस दगी पाने वाला व्यक्ति विजयी नही होता तो मतदाता का मत व्यथ नही जाता, वह द्वितीय एव यदि आवश्यक्ता हुई तो तृतीय पस दगी के रूप म हस्ता तरित (transfer) हो जाता है।

(3) इस प्रणाली क अ तगत निवाचित होन के लिए एक निश्चित सख्या अर्थात मतो के निर्धारित कोटा के बराबर मत प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस कोटा को निर्धारित करन की रीति अग्राकित ह

$$\frac{\text{डाले गय मता की कुल सख्या}}{\text{निर्वाचित हान वाल सदस्या की सख्या} + 1} = \text{कोटा}$$

अर्थात निर्वाचन म डाले गय कुल मता की सख्या म निर्वाचित होने वाले सदस्या की सख्या म 1 को जोडकर उसका भाग दे दिया जाता है और जो भाज्यफल आता है वही काटा होता ह। ड्रूप (Droop) ने इसम थोडा सशोधन कर दिया है। उ हाने कोटा निधारित करन के लिए भाज्यफल म 1 की सख्या को और जोड दिया है। उदाहरण के लिए, 'क' निर्वाचन क्षेत्र स 3 प्रतिनिधि चुन जाने ह और निर्वाचन म कुल 8 000 मतदाताआ न मतदान किया है। इस स्थिति मे हेयर तथा एण्ड्रे के अनुसार निर्वाचित होन के लिए 2 000 मता का निर्धारित कोटा है पर तु ड्रूप के अनुसार 2,001 मत निर्धारित्त कोटा होगा। ड्रूप का सिद्धा त ही आजकल मा य है।

(4) यदि किसी उम्मीदवार को कोटा स अधिक मत प्राप्त होते हैं तो निर्धारित कोटा से प्राप्त अधिक मतो को उनकी द्वितीय एव उसके पश्चात तृतीय पस दगी के अनुसार अ य उम्मीदवारो म वितरित कर दिया जाता है।

मतगणना के समय सवप्रथम प्रथम पस दगी के मता की गणना कर ली जाती ह। जिस उम्मीदवार को प्रथम गणना म निर्धारित कोटा के बराबर मत प्राप्त हो जाते हैं वह विजयी घोपित कर दिया जाता है। यदि प्रथम मतगणना म ही प्रथम पस दगी के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाने वाले सभी उम्मीदवारो को निर्धारित कोटा के अनुपात मे मत प्राप्त हो जाते है तो उ ह विजयी घोपित कर दिया जाता है तथा निर्वाचन पूण हो जाता है। पर तु यह भी सम्भव है कि प्रथम मतगणना म सभी सदस्य न चुन जायँ। ऐसी स्थिति म सफल उम्मीदवारो के अतिरिक्त मता को उनकी द्वितीय पस दगी के अनुसार वितरित कर दिया जाता है तथा पुन मतगणना होती है। यह क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक कि सभी सदस्या का चुनाव नही कर लिया जाता। यदि फिर भी काई स्थान रिक्त रह जाता ह या प्रथम मतगणना म कोई उम्मीदवार निर्धारित कोटा के बराबर मत प्राप्त नही करता है तो सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार के मता को रद्द करके उ ह शेप उम्मीदवारा म वितरित कर दिया जाता है। सामा यत नीचे की तरफ से मता का हस्ता तरण ऊपर की अपक्षा मतगणना प्रक्रिया के अ त म ही किया जाता है।

(2) सूची प्रणाली—समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह एक दूसरा तरीका है। इस प्रणाली के अ तगत भी बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र होते है, प्रत्येक मतदाता को उतन ही मत प्राप्त होते हैं जितने कि उस निर्वाचन क्षेत्र से सदस्य चुने जाने ह। किसी मतदाता द्वारा किसी एक व्यक्ति को एक से अधिक मत नही दिया जा सकता। इस प्रणाली मे एकल सक्रमणीय पद्धति की तरह ही निर्वाचन कोटा निर्धारित किया जाता हैं, पर तु उम्मीदवारो की उनके दलीय आधार पर सूचिया तैयार की जाती हैं। निर्वाचन म एक दल को प्राप्त कुल मतो के अनुपात म उस दल के उम्मीदवार चुने

है। दल की सूची म स सबस अधिक मत पान वाल उम्मीदवारा का क्रमानुसार चुन लिया जाता है। जमनी के वीमर सविधान के अ तगत इस प्रणाली का प्रयोग किया गया था।

समानुपातिक प्रणाली के पक्ष मे तक—यह प्रणाली अ य प्रणालिया की अपक्षा समाज के विभिन्न वर्गों एव समूहा को उनकी जनसख्या क अनुपात म उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने म सफल होती ह। अत यह प्रतिनिधित्व की याययुक्त पद्धति है। किसी का मत व्यथ नही जाता है। विधानमण्डल म किसी दल का इतना निरकुश बहुमत भी प्राप्त नही होता कि वह अल्पमत की उपक्षा कर सक। बहुमत की निरकुशता के विरुद्ध यह पद्धति एक सरल अवरोध है। विधानमण्डल सच्चे अर्थों म लोकत त्र के अनुरूप देश का दपण होता है। जनता म राजनीतिक चेतना जागत होती है और किसी मतदाता का मत व्यथ नही जाता है। सभी यह जानते हैं कि उनके मत का व्यावहारिक मूल्य है। निर्वाचन क्षेत्र के समस्त दोषो का इस प्रणाली द्वारा परिहार हो जाता है और 'गैरीमे डरिंग' जसे दोषा की कोई सम्भावना नही रहती। इस प्रणाली के अ तगत सभी राजनीतिक दला को देश के राजनीतिक जीवन म काय करन के अवसर प्राप्त हो जाते हैं। यह पद्धति राजनीतिक सत्ता को समान रूप से विभाजित करने की एक प्रत्याभूति है। जॉन स्टुअट मिल एव रमजे म्योर इसके प्रमुख समथक हैं। मिल के अनुसार इस प्रणाली द्वारा निर्वाचका एव निर्वाचिता मे निकट एव सुदृढ सम्ब ध स्थापित हो जाते है क्योकि हर प्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र म जन-सम्मति से ही चुना जाता है।[18] इसके अतिरिक्त समानुपातिक प्रतिनिधित्व पर आधारित विधानमण्डल का बौद्धिक एव नतिक स्तर भी ऊँचा हो जाता है। बुद्धिजीविया को सफलता की सम्भावना उ ह निर्वाचना म भाग लेने के लिए प्रेरित करती है। इसके अतिरिक्त बहुमत दल भी निर्वाचन म अपन उम्मीदवारा का सोच समझकर खडा करता है। वे चरित्रवान एव बुद्धिमान उम्मीदवारो को मनोनीत करने के लिए बाध्य होते हैं। निदलीय एव स्वत त्र उम्मीदवार भी इस पद्धति के अधीन निर्वाचित हो जात हैं। लॉड एक्टन (Lord Acton) ने समानुपातिक पद्धति का समथन किया है। उनके अनुसार यह पद्धति अत्यधिक लोकत त्रीय है और हजारा एसे व्यक्तियो के प्रभाव का सम्भव बनाती है जिनकी शासन म इस पद्धति के अभाव मे कोई आवाज न होती। इस प्रणाली म कोई मत व्यथ नही जाता है। हैलेट (Hallet) समानुपातिक प्रतिनिधित्व को लोकत त्र की कुजी मानता है। ए बी कीथ ने ब्रिटिश म त्रिमण्डलीय प्रणाली के सम्ब ध म समानुपातिक पद्धति का समथन करते हुए उसके चार गुणो का उल्लेख किया है

(1) इस पद्धति के अ तगत कॉम स सभा म निर्वाचना म विभिन्न दला की शक्ति के अनुपात म सदस्य चुने जायेंगे।

18 Mill *On Liberty etc* pp 256 257

(2) एकसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र की अपक्षा मतदाताआ को उम्मीदवारा के चयन म अपक्षाकृत अधिक स्वत न्तता प्राप्त हागी ।

(3) मतदाता स्वत त्र एव चरित्रवान लोगा को सरलता स चुनन म सफल हा सकेंग ।

(4) निदलीय मतदाताआ का प्रभाव प्राय शू य हो जायगा ।[19] रैमजे म्योर क अनुसार एकसदस्यीय निवाचन क्षेत्र के दोषा को समानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली से ही दूर करना सम्भव है ।[20] म्योर ने भी ब्रिटन मे एकल-सक्रमणीय मत प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया था । उसका मत था कि इसके अ तगत वतमान पद्धति की अपक्षा कॉम स सभा म राष्ट्र का अधिक उचित प्रतिनिधित्व सम्भव होगा । मतदाताआ को विभिन्न उम्मीदवारा म से अपन प्रतिनिधि को चुनने की वास्तविक स्वत न्तता प्राप्त होगी । *यह पद्धति मतदान मे अनुचित एव भ्रष्ट तरीका के प्रयोग को* हतोत्साहित करती ह । मतदाता अपने अ त करण के अनुसार मतदान करने क लिए स्वत त्र होते हैं । इस पद्धति म वतमान प्रणाली के सयोग के तत्व के लिए कोई स्थान नही होता है ।[21]

समानुपातिक प्रणालो के विरोध मे तक—समानुपातिक पद्धति के उपरोक्त गुणा के होते हुए उसके विरोधियो न उसकी तीव्र आलोचना की है । इस पद्धति के प्रमुख दोप निम्नलिखित ह [22]

(1) यह पद्धति अत्यधिक जटिल है एव उसकी प्रक्रिया कठोर है और सामा य मतदाता की समझ के बाहर है । जिन देशा की बहुसख्यक जनता अशिक्षित है, वहा तो इसकी असफलता निश्चित है । मतगणना के लिए भी विशेप योग्यता की आवश्य कता हाती है । इसके अतिरिक्त मतगणना म अनुचित साधना के प्रयोग की भी सम्भा वना होती है ।

(2) इसक अ तगत निवाचन क्षेत्र वहुत बडे या विस्तृत होते ह । अत सदस्या और मतदाताआ म प्रत्यक्ष एव निकट के सम्पक की कोई आशा नही होती ।

(3) सिजविक के अनुसार यह पद्धति ससदीय भ्रष्टाचार की वृद्धि म सहायक होती है । विधि निर्माण म अमेरिका म प्रचलित लॉगरोलिंग (Logrolling) एव पोक बैरल (Pork Bereel) जसी बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं तथा राष्ट्रीय हित की अपेक्षा वर्गीय हित की दृष्टि से विधिया का निमाण किया जाता है ।

(4) इस पद्धति का सबसे बडा दोप यह है कि देश म छोटे छोट दलो एव

---

19 Keith *The British Cabinet System*, pp 335 336
20 Ramsay Muir *How Britain is Governed*, 1951, pp 134 35
21 *Ibid*, pp 139 40
22 Ramsay Muir *op cit*, pp 140 143

सगठनो अर्थात बहुदलीय पद्धति का विकास होने लगता है और राजनीतिक अस्थिरता के लिए माग प्रशस्त हो जाता है। देश म गुटबन्दी की महामारी फल जाती है। विधानमण्डल मे अनक दलो के होने के कारण ससदीय शासन स्थिरता एव सफलता पूवक नही चल पाता। बहुदलीय पद्धति के अन्तगत सयुक्त या मिश्रित मन्त्रिमण्डला के निर्माण होते है तथा राजनीतिक सौदेबाजी एव भ्रष्टाचार के लिए माग खुल जाता है। छोटे छोटे विभिन्न दल अपन हिता की दृष्टि स सोचने लगते हैं। अल्पसख्यको के सगठन अपने वर्गीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहत है। विधानमण्डल परस्पर विरोधी विचारा एव हितो का अखाडा बन जाता है। फ्रा स इसका उदाहरण है। समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली मे उप निर्वाचन सम्भव नही है क्योकि इस हेतु *एकसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र का निर्माण करना आवश्यक होता है। यदि यह असम्भव* नही तो कठिन अवश्य ह एव इससे सम्बन्धित अनेक प्रश्न उठ खडे होत ह।

सिजविक, डायसी, लास्की एव **फाइनर** इस पद्धति क तीव्र आलोचक थे। **डायसी** का मत था कि समानुपातिक प्रणाली म दला का प्रभाव बहुत बढ जाता है और मतदाताओ को नाममात्र की स्वत त्रता प्राप्त होती है। डायसी की यह भी मान्यता थी कि जितनी अधिक जटिल निर्वाचन-पद्धति होगी, मतदाता पर उतना ही अधिक राजनीतिक दलो का प्रभाव भी होगा। प्रो **लास्की**[23] समानुपातिक पद्धति के सम्बन्ध म **रमजे म्योर** के विचारो स सहमत नही है। **रमजे म्योर** के तर्कों को सबल एव *प्रभावशाली मानते हुए भी व समानुपातिक पद्धति को पूणत त्रुटिपूण मानते हैं।* लास्की के अनुसार "इस बात का काई प्रमाण नही है कि फ्रान्स म जहाँ समूह प्रणाली प्रचलित है, विधानमण्डल की स्थिति हमारे यहा स श्रेष्ठ है।' रमजे म्योर ने ससद का राष्ट्रीय विचारा का दपण बनाने हेतु समानुपातिक पद्धति की वाछनीयता का उल्लेख किया है। यदि म्योर के इन विचारो को मान भी लिया जाय तो म्योर द्वारा सम थित दलीय पद्धति क अन्तगत भी समानुपातिक प्रणाली क अधीन किसी दल का स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही हो सकता और कोई दल बिना अपन विपक्षी क सहयोग के स्थायी मन्त्रिमण्डल या शासन नही बना सकेगा। द्वितीय, बहुदलीय पद्धति क फलस्वरूप मिश्रित या अल्पसख्यक मन्त्रिमण्डला के ही निर्माण सम्भव हैं। अल्पसख्यक शासन के दोपा पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नही है। इसमे नीति का स्थान षड्यन्त्र ले लेता है। मन्त्रिमण्डल की सहायता करन वाला दल एक प्रकार स स्वामी क रूप म आचरण करता है। शासन के द्वारा अन्य दला का सहयोग अजित करने के लिए सिद्धान्ता का परित्याग कर दिया जाता है। अत उसक कार्यों म सदव साहस एव सगति का अभाव रहता है।[24] इगलैण्ड क सन्दभ म समानुपातिक प्रतिनिधित्व की अवाछनीयता की

---

23 Laski *Parliamentary Government in England, op cit*, p 77
24 Laski *Ibid*, p 78

चचा करते हुए लास्की ने कहा है कि वहुदलीय व्यवस्था या समानुपातिक प्रतिनिधित्व के फलस्वरूप म त्रिमण्डलीय एव दलीय निय त्रण नष्ट हो जाता है जिसके फलस्वरूप शासन काय वहुत कम स तोपजनक होता है।[5] समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली या म त्रिमण्डल तथा कॉम स सभा के सम्ब धो म परिवतन करके यदि कॉम स सभा के सुधार का प्रयत्न किया जाता ह तो लास्की के अनुसार यह प्रयत्न महामारी को साधारण औपधि से ठीक करन के समान ही ह। समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से जमनी की रक्षा नही हो सकी थी और फ्रा स मे निदलीय सदस्यो म व्याप्त अपने विचारा के अनुसार शासन को अपदस्थ करने की प्रवत्ति वहुत कुछ वैसी ही है जिसका हम सामना कर रह है।'[6] लास्की की यह मा यता थी कि समाज म सामा यत तीन विचारधाराएँ होती ह (1) वे जो सामाजिक व्यवस्था म कोई विशप परिवतन नही चाहते, (2) जो समाजवादी विचारधारा के आधार पर परिवतन के पक्षपाती होत है, एव (3) जो पूरी तरह व्यक्तिवादी पूजीवादी व्यवस्था के पक्षधर होते है। अपरिवतनवादी एव व्यक्तिवादी एक ही श्रेणी मे रखे जा सकते ह। अत व्यवहार म समाज म केवल दो अर्थात् व्यक्तिवादी एव समाजवादी विचारधाराएँ ही होती ह। अत लास्की, रेमजे म्योर द्वारा प्रतिपादित त्रिदलीय—दक्षिणपथी, वामपथी एव के द्रीय—धारणा को जन मत की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक नही मानता। उसके अनुसार उपरोक्त दो विचारधारा‌ओ के आधार पर ससदीय व्यवस्था म द्विदलीय पद्धति ही शासन के स्थायित्व एव उ नति के लिए आवश्यक है।

फाइनर[7] न समानुपातिक प्रतिनिधित्व की आलोचना करत हुए कहा है कि यद्यपि यह पद्धति गणितीय दृष्टि स समान प्रतिनिधित्व प्रदान करन म असफल होती ह पर तु इसके अन्तगत मतदाता‌ओ एव प्रतिनिधियो म घनिष्ठ सम्ब ध नही हो पात है। इसके अतिरिक्त शासन की स्थिरता एव दृढता के लिए सकट उत्पन हो जाता है। 'यह प्रणाली वडे दलो का विघटित करके स्वत त्र एव पृथक समूहो के निर्माण को वढावा देती है।' "समानुपातिक प्रतिनिधित्व निस्स देह सफल समूहवाद की वद्धि के लिए उत्तरदायी होता है।" जमनी मे वीमर सविधान (1919 ई) के अधीन समानुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति को अपनाया गया था। 1918 ई म जमनी म केवल 7 वडे दल थे 1932 ई मे इनकी सख्या 20 के करीव हो गयी थी और दलीय विघटन की यह प्रवत्ति वद्धि की ओर थी। सूची प्रणाली के अ तगत निहित स्वाथ एव हित विभिन दलो पर निय त्रण करने म सरलता स सफल हो जात थे। दलीय परिषदो द्वारा तैयार की गयी लम्बी सूची म से निर्वाचन क्षेत्रो क उम्मीदवारो का चयन करना सूची प्रणाली की एक मुख्य कठिनाई है।

---

25 Laski *op cit* p 218
26 *Ibid*, p 220
27 Finer *The Theory & Practice of Modern Government*, *op cit*, p 554

समानुपातिक प्रतिनिधित्व क विरुद्ध लगाय गय उपरोक्त सभी आरोपा का उत्तर उसके समथका रमजे म्योर, फोय तथा हुम्फ्रेज न दिया है । उनके द्वारा इन आरोपा को स्वीकार नही किया जाता है कि यह प्रणाली जटिल और असुविधाजनक है । उनके अनुसार इन तर्कों म भी कोई सार नही है कि प्रतिनिधित्व पद्धति मे निर्वाचको एव निर्वाचिता म कोई सम्बध नही रहता है और निर्वाचन काय म वद्धि हो जाती है । समानुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति का फ्रास, इटली, वीमर जमनी तथा आस्ट्रेलिया मे प्रयोग किया गया है । ग्रेट ब्रिटेन म इगलण्ड क चच की राष्ट्रीय परिषद के सदस्यो का निर्वाचन, स्कॉटलण्ट म शिक्षा अधिकारियो का चयन, उत्तरी आयरलण्ड की ससद के दोनो सदनो, आयर के निम्न सदन तथा दक्षिणी अमरिका मे सीनेट एव कुछ नगरपालिकाओ के निर्वाचन, कनाडा म कुछ नगरपालिकाओ क निर्वाचना तथा भारत म राष्ट्रपति के निर्वाचन [8] म इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है । सयुक्त राज्य म समानुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रचलन नगर निर्वाचना तक ही सीमित रहा है । [9] भारत म 1956 ई के पूव भाग 'क' एव 'ख' राज्या क राज्यसभा के प्रतिनिधि समानुपातिक प्रतिनिधित्व एव एकल सक्रमणीय मतानुसार चुन जात थ । बेलजियम, चकोस्लोवाकिया, फिनलण्ट, जमनी (वीमर सविधान), लिटेविया लिथोनिया, पोलैण्ड एव यूगोस्लाविया म कमी सूची प्रणाली का प्रचलन था ।[30] सोवियत रूस म समानुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रचलन नही है ।

फ्रास मे समानुपातिक प्रतिनिधित्व

फ्रास के चतुथ गणतन्त्रीय सविधान म समानुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रचलन था । एकसदस्यी निवाचन-क्षेत्रा एव द्वितीय मतदान प्रणाली को कायम रखने के पक्ष म कोई दल नही था । सभी ने न्यायपूण निर्वाचनो पर वल दिया था । वसे तो सभी दल समानुपातिक प्रतिनिधित्व की ओर उसके गुणा के कारण आकर्षित थे, परन्तु साम्यवादी दल इस पद्धति का विशेष रूप स पक्षपाती था यहा तक कि वे एक ही राष्ट्रीय सूची के निर्माण के पक्ष मे थे । उन्होने एम आर पी (M R P) के इस सुभाव का

---

28 Article 55(3) । डॉ महादेवप्रसाद शर्मा क अनुसार भारतीय राष्ट्रपति का निर्वाचन समानुपातिक प्रतिनिधित्व का सही प्रयोग नही है । यह तो पसन्दगी के अनुसार या वैकल्पिक मतदान प्रणाली (Preferential or Alternative Vote System) है ।—*The Government of the Indian Republic*, 1972, pp 129-130 । डा जनिंग्स क मतानुसार अनुच्छेद 55(3) की भाषा दोषपूण है । इसमे उल्लिखित पद्धति समानुपातिक पद्धति नही है, इसे एकल सक्रमणीय मत कहा जाना चाहिए ।—Cited by Dr Asirvatham *op cit*, p 421

29 Strong *Modern Political Constitutions*, *op cit* (1963), p 186

30 A J Zurcher, cited by A Appadorai *The Substance of Politics*, 9th edn, 1961 p 478

दृढतापूवक विरोध किया कि मतदाताओ को उन उम्मीदवारो के नाम जो सूची मे नही हो, स्वत लिखने का अधिकार होना चाहिए। अक्टूबर 1946 ई की विधि के अ तगत प्रत्येक डिपाटमेण्ट[31] को निर्वाचन क्षेत्र घोषित किया गया था, पर तु 6 बडे डिपाटमेण्टो को सुविधानुसार अधिक निर्वाचन क्षेत्रा म विभाजित कर दिया गया था। हर निर्वाचन क्षेत्र म प्रत्येक दल अपने उम्मीदवारो की सूची प्रस्तुत करता था। कोई सूची पूण नही होती थी। मतदाताओ को उसमे नाम लिखन का अधिकार नही दिया गया था, मतपत्र म उम्मीदवारो के नाम दलीय पस दगी के अनुसार लिखे जाते थे, मतदाताओ द्वारा मतपत्र पर अपनी पस दगी व्यक्त की जाती थी, मतदाता केवल एक सूची के लिए ही मतदान कर सकता था। प्राप्त मता के अनुपात के आधार पर प्रत्येक दलीय सूची को सदस्य-सख्या प्रदान की जाती थी और सूची मे से व्यक्त नामो या पस दगी के आधार पर सदस्यो का चयन कर लिया जाता था।

फ्रा स म सुदृढ दलीय सगठन एव दलीय भक्ति के अभाव क कारण इस पद्धति को अपनाया गया था। एकसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र के दोष द्वितीय मतदान प्रणाली के कारण और अधिक बढ गय थे। फाइनर[32] के अनुसार फ्रा स म समानुपातिक प्रतिनिधित्व को अपनाने का मुख्य कारण बहुदलीय पद्धति थी, पर तु इसका प्रभाव उल्टा हुआ। दलो की सख्या म और अधिक वृद्धि हो गयी। समानुपातिक प्रति निधित्व को अपनाने का समथन सबसे अधिक तत्परता से फ्रेंच साम्यवादी दल ने किया था। इसका एक मुख्य कारण यह था कि दल का अपने समस्त ससदीय सदस्यो पर निश्चित एव पूण निय त्रण था।

अल्पसख्यक प्रतिनिधित्व सम्ब धी अ य निर्वाचन पद्धतियाँ

अल्पसख्यको को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए निम्न पद्धतिया का और प्रयोग किया जाता है

(1) **सीमित मत प्रणाली (Limited Vote System)**—इस प्रणाली के अ तगत बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र होते ह और कम स कम तीन सदस्यो का चुना जाना आवश्यक होता है। निर्वाचन क्षेत्र के सदस्यो की सख्या से एक कम मत प्रत्येक मत-दाता को प्राप्त होता है अथात् यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र से 5 सदस्य चुने जाने ह तो प्रत्येक मतदाता को 4 मत प्राप्त होते है। इस प्रणाली म मतदाता द्वारा एक ही उम्मीदवार को अपन सभी मत नही दिये जा सकते ह। वह एक उम्मीदवार को केवल एक ही मत दे सकता है। मतदाता को सदस्या की सख्या से कम सदस्या को मत देन का अधिकार होता ह अत इसे सीमित मतदान प्रणाली कहते हैं। इस व्यवस्था मे किसी दल के लिए सभी स्थानो पर अधिकार करना सम्भव नही होता कम से कम एक

---

31 फ्रा स के प्रशासनिक क्षेत्र जस कि भारत म जिला या कमिश्नरी।

32 Finer *op cit*, p 559

स्थान तो अल्पसंख्यकों को प्राप्त हो ही सकता है। यह प्रणाली पुर्तगाल एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों में प्रचलित है। इस प्रणाली का भी यह दोष है कि अल्पसंख्यकों को अपने अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त इस पद्धति के अन्तर्गत निर्वाचन क्षेत्र में अल्पसंख्यक मतदाताओं की संख्या भी इतनी कम नहीं होनी चाहिए कि वे प्रभावी सिद्ध न हो सकें।

(2) **सामूहिक मत प्रणाली (Cumulative Vote System)**—इस पद्धति में भी बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र होते हैं। मतदाता को उतने ही मत प्राप्त होते हैं जितने कि निर्वाचन क्षेत्र से प्रतिनिधि निर्वाचित किये जाने हैं। इसके अतिरिक्त मतदाता को अपने सभी मत एक ही उम्मीदवार को देने का अधिकार होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत कमजोर एवं छोटे अल्पसंख्यक वर्ग के समर्थकों को एकत्रित होकर प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की सम्भावना रहती है। इस पद्धति का इंगलैण्ड में विद्यालय मण्डलों एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों में स्थानीय अधिकारियों के निर्वाचन के लिए प्रयोग किया जाता है। इस प्रणाली का यह दोष है कि इसमें बहुत से मतों के व्यर्थ जाने की सम्भावना होती है। यह भी सम्भव है कि अल्पसंख्यकों को अपनी संख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाय। इसके अतिरिक्त मतदाताओं पर दलीय अनुशासन बढ़ जाता है तथा दलबन्दी की बुराइयों को प्रोत्साहन मिलता है और अल्पसंख्यकों को संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पाता है।

(3) **एकल असंक्रमणीय मत प्रणाली (Single Non transferable Vote System)**—इस पद्धति की विशेषता यह है कि मतदाता केवल एक ही मत का प्रयोग कर सकता है, भले ही बहुसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र ही क्यों न हो। इसका प्रयोग कुछ वर्षों तक जापान में किया गया था, अतः इसे जापानी प्रणाली भी कहते हैं। जापान में विभिन्न दल इस पद्धति के अधीन अपनी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में सफल हुए थे। कुछ क्षेत्रों में तो स्वतन्त्र उम्मीदवारों को भी सफलता प्राप्त हुई थी। यह पद्धति भी सामूहिक मतदान प्रणाली की भाँति दलबन्दी को प्रोत्साहित करती है। इसके अतिरिक्त यह अवैधानिक भी है।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रयोग भारत में अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के लिए किया गया था। भारतीय मुसलिम सम्प्रदाय द्वारा पृथक मतदान की माँग करने पर ब्रिटिश शासन द्वारा 1909 ई. में सर्वप्रथम इसका प्रारम्भ किया गया। भारतीयों ने विधानमण्डलों में प्रतिनिधित्व की माँग की थी, जिसके प्रत्युत्तर में 'फूट डालो एवं शासन करो' नीति का अनुगमन करते हुए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का श्रीगणेश किया गया। भारत में हिन्दू बहुमत में है। मुसलमान, ईसाई एवं सिख प्रमुख अल्पसंख्यक सम्प्रदाय हैं। 1919 ई. में ईसाइयों, सिखों एवं बाद में अनुसूचित जातियों को भी पृथक साम्प्रदायिक मताधिकार प्रदान किया गया। डा. अप्पादुराई के अनुसार

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के अ तगत (1) प्रत्येक सम्प्रदाय के मतदाता अपनी जाति क उम्मीदवार अर्थात हि दू हि दू को और मुसलमान मुसलमान को मत देता है। हर सम्प्रदाय के लिए उसकी जनसख्या के अनुपात मे विधानमण्डल मे स्थान निश्चित कर दिये जाते हैं। (11) सामूहिक मतदाताओ मे ही अल्पसख्यक सम्प्रदाय के लिए भी स्थान सुरक्षित कर दिये जाते हैं। मतदाताओ को अ य सम्प्रदाय के उम्मीदवारो का भी मत देने का अधिकार होता है। लेकिन सुरक्षित सम्प्रदाय के उम्मीदवारो मे से अपने सम्प्रदाय क अधिकतम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को विजयी घोषित किया जाता है, भले ही उसे अ य सम्प्रदाय के उम्मीदवारो से कम मत प्राप्त हुए हो। मद्रास के 'सामा य स्थानो म परिगणित जातियो के लिए इसी भाति स्थान, सुरक्षित किये जाते थे।'[33] साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के समर्थको का मत है कि यह जीवन की वास्तविकताओ के अधिक समीप है और कोरे आदशवाद से पर है। जब सम्प्रदायो म परस्पर विश्वास एव सहयोग का अभाव हो तो यह कही अधिक उचित है कि उ ह पृथक प्रतिनिधित्व दिया जाय। राजनीतिक दृष्टि मे अविकसित या कम विकसित समाजो के लिए यह एक स्वस्थ अनिवायता है।

लेकिन पृथक या साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व राष्ट्रीय एकता एव स्थिरता क लिए घातक है। वाछित राष्ट्रीय विकास का रथ साम्प्रदायिकता के विरोध रूपी चट्टान क समक्ष गतिहीन हो जाता है। साम्प्रदायिक एव वर्गीय दृष्टि से लोगो की सोचने की आदत पड जाती है। उत्तरदायी शासन की सफलता के लिए सामा य हिता सम्ब धी दृष्टिकोण होना आवश्यक है। स्वशासित देशो का इतिहास पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन का समथन नही करता है। 1947 मे भारत का विभाजन पृथक निर्वाचन पद्धति का अवश्यम्भावी परिणाम था।

समीक्षा—अल्पसख्यको के प्रतिनिधित्व की समस्या ज्यो की त्यो बनी हुई है। इस सम्ब ध म डॉ अप्पादुराई का मत उपसहार के रूप मे प्रस्तुत करना उचित है। उनका कथन है कि "सामूहिक मताधिकार (unqualified joint electorates) ही आदर्श है। सक्रमणकाल के लिए अर्थात जब बहुमत के औचित्य म अल्पमत को विश्वास नही होता तो सामूहिक मताधिकार मे स्थानो के सरक्षण की रीति को विश्वास अर्जित करने की दृष्टि स अपनाना हितकर है। इसक विरुद्ध यह सामा यत तक दिया जाता है कि इस प्रणाली के अ तगत जो प्रत्याशी विजयी होता है उसम निश्चित ही साम्प्रदायिकता कम होती है क्योकि उसे सभी सम्प्रदायो क मतो पर निभर रहना पडता है। यह इसक पक्ष म सबल तक है।" भारत म 1921 स 1947 ई तक पृथक मताधिकार को अपनाया गया था। भारत म साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व सम्ब धी यह प्रयोग इस तक के विरुद्ध एक सबल प्रमाण है जो अल्पसख्यक प्रतिनिधित्व एव सरक्षण के लिए इसे आवश्यक

---

33 A Appadorai *The Substance of Politics op cit*, p 479

मानते हैं। 1950 ई के संविधान के अन्तर्गत भारत ने सामूहिक मताधिकार के पक्ष में इस अवांछनीय पद्धति का परित्याग कर दिया है तथा परिगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की पद्धति को अपनाकर राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से उचित ही किया है।[34]

निर्वाचन की कुछ अन्य पद्धतियाँ

द्वितीय मतदान प्रणाली (Second Ballot)

इस पद्धति के अन्तर्गत एकसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र होते हैं। इन निर्वाचन क्षेत्रों से केवल एक सदस्य ही चुना जा सकता है, परन्तु उसे पूर्ण या स्पष्ट बहुमत से विजयी होना आवश्यक होता है। स्मरणीय है कि एकसदस्यी निर्वाचन क्षेत्रों में त्रिकोणात्मक संघर्ष में कम मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी भी विजयी होते देखे गये है। द्वितीय मतदान द्वारा इस दोष को दूर करने का प्रयास किया गया है। इस पद्धति के अन्तर्गत यदि प्रथम निर्वाचन में कोई उम्मीदवार स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में सफल नहीं होता तो पुनः मतदान होता है। इस दोबारा मतदान में प्रथम निर्वाचन में सबसे कम मत पाने वाला उम्मीदवार चुनाव नहीं लड़ सकता है और प्रथम निर्वाचन में जिन मतदाताओं ने उसे मत दिये हैं उन्हें वे अन्य प्रत्याशियों को देते हैं। द्वितीय मतदान में जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक मत प्राप्त होते है वह विजयी घोषित किया जाता है।

इस पद्धति में भी दोष हैं (1) यह पद्धति व्यय-साध्य है एवं इसमें अपव्यय भी बहुत होता है (2) अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है, (3) रमजे म्योर के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि द्वितीय मतदान में मतदाता अनिवार्य रूप से मतदान करें ही। यह भी सम्भव है कि पराजित उम्मीदवार अपने समर्थकों को अन्य प्रत्याशी के पक्ष में मतदान करने के लिए आर्थिक प्रलोभन प्रदान करे।

फ्रांस के चैम्बर सदन ने अपने प्रतिवेदन में द्वितीय मतदान की आलोचना में कहा है कि (1) इसके फलस्वरूप सदन में दलीय स्थिति दोषपूर्ण एवं गलत हो जाती है तथा विचारों एवं कार्यक्रम की दृष्टि से सदन में गलत एवं हानिकारक सौदेबाजी होने लगती है। (2) इन सौदेबाजियों का राजनीतिक मामलों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। (3) द्वितीय मतदान की सम्भावना के कारण प्रथम मतदान के परिणाम असत्य होते हैं। अधिकांश मतदाता प्रथम मतदान में सहानुभूति एवं वैयक्तिक दृष्टि से मतदान करते हैं। द्वितीय मतदान में वे अपने राजनीतिक विचारों के अनुसार मतदान करते हैं। (4) द्वितीय निर्वाचन के फलस्वरूप हिंसा को पुनः प्रोत्साहन मिलता है। (5) द्वितीय मतदान अतिरिक्त व्यय का एक कारण होता है। द्वितीय मतदान की सम्भावना के कारण फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्र में निर्धन उम्मीदवार निर्वाचनों से दूर रहते थे।[35] उपरोक्त सभी दोष फ्रांस पर विशेष रूप से लागू होते हैं।

---

34 A Appadorai *The Substance of Politics, op cit*, pp 480 481

35 Finer *op cit*, pp 553 554

बहुदलीय पद्धति के परिणामस्वरूप निवाचनो म प्रचलित भ्रष्टाचार के कारण फ्रा स म राजनीतिक स्थिति बडी दयनीय थी। प्रथम एव द्वितीय मतदान के बीच म विभि न दलो मे अनुचित चुनाव गठब धन हो जाते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण है। फ्रा स म निवा चित सदस्य को 'अल्पसरयक का ब दी' (Prisoner of the Minority) की स ा दी जाती है। 1919 ई के पूव जमनी म विधायको के लिए 'कूह डेल' (Kuhhandel) शब्द प्रचलित था। इसका अथ 'राजनीतिक दलो के (मध्य) पशुओ की सौदेबाजी' है। फ्रान्स म द्वितीय मतदान का अत्यधिक प्रचलन है। उदाहरण के लिए, 1889 ई म 211 बार 1896 म 178 बार, 1902 म 174 बार, 1928 म 425 बार, तथा 1936 मे 424 बार द्वितीय मतदान हुआ था।[36] इसके दोषो को दूर करने के लिए वैकल्पिक मत (Alternate vote) प्रणाली का आविष्कार किया गया है।

वकल्पिक मत प्रणाली (Alternate Vote System)

इस प्रणाली के अ तगत केवल एक ही निवाचन होता ह। मतदाताओ को विभि न उम्मीदवारो म से अपनी पस दगी यक्त करने की सुविधा होती है। यदि प्रथम पस दगी का उम्मीदवार सफल नही होता है तो उसकी द्वितीय एव ततीय पस दगी को सबसे अधिक मत पाने वाले उम्मीदवारो मे विभाजित कर दिया जाता है। एक ही निर्वाचन मे दो मतदान होते हैं। इससे दुहरे खच एव निर्वाचन के झझटो स तो बच जाते है पर तु निर्वाचन के पूव विभि न दलो म जो दलीय सौदेबाजी होती है उसका अ त नही होता है। लेकिन इस पद्धति से अल्पसरयको की स्थिति दृढ हो जाती है।[37]

व्यावसायिक प्रतिनिधित्व

प्रादेशिक एव क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व की तीव्र आलोचना की गयी ह। कुछ विचारको ने उसके विपरीत व्यावसायिक प्रतिनिधित्व का समयन किया है। इसके पक्षधर विधानमण्डल म क्षेत्रो के स्थान पर व्यवसायो को प्रतिनिधित्व का आधार बनाने के समथक हैं। व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के पक्षधरो का तर्क यह है कि एक क्षेत्र के विभि न व्यवसायो एव पेशो म सलग्न सभी व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व क्षेत्र का एक प्रतिनिधि नही कर सकता है। विभि न व्यवसाय एव पशे होत हैं। इनम सलग्न व्यक्तियो के अपन पृथक समुदाय होत ह। एक पशे के व्यक्ति अपन स सम्ब धित सभी समस्याओ को भली प्रकार जानत ह अत प्रतिनिधित्व का सही आधार पशा, ध धा, वग या व्यवसाय ही हो सकता ह। यवसाय ही प्रतिनिधि का स्वाभाविक आधार है, क्षेत्र तो कृत्रिम एव राजनीतिक आधार है। अत व्यावसायिक प्रतिनिधित्व क समयक निर्वाचन क्षेत्रो के स्थानो पर व्यावसायिक समूहो के प्रतिनिधित्व के समथक

---

36 *Ibid*, p 554
37 *Ibid*

है। गिल्ड समाजवादी विचारक जी डी एच कोल के अनुसार "व्यावसायिक प्रति निधित्व ही सच्चा लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व है।"[38] क्षत्रीय निर्वाचन निश्चय ही अलोकत श्रोय है।[39] ससद समस्त नागरिका का सभी विपया म प्रतिनिधित्व का दावा करती है। लेकिन वास्तव म वह किसी का प्रतिनिधित्व नही करती।[40] वह राज नीतिक लोकतन्त्र क स्थान पर व्यावसायिक लोकतन्त्र का प्रतिपादक था।

व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की धारणा बहुत पुरानी नही है। फ्रेंच राजनीतिज्ञ मिराबू एव विद्वान सेईज (Seiyes) व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के समर्थक थे। राज नीतिक रूप म इसक विचार रूसो के 'सामाजिक समझौत' म मिलते हैं।[41] वतमान समय म दुगुई (Leon Duguit), कोल, ग्राहम वालास, वेब-दम्पत्ति (सिडनी एव बेट्रिस वब) इसके समथक थे। गिल्ड समाजवाद एव उसका प्रमुख विचारक कोल इसके प्रमुख प्रतिपादक थ। कोल आर्थिक जीवन का राजनीतिक जीवन स पूणत पृथक करने एव व्यावसायिक एव आर्थिक कार्यों को व्यावसायिक सघा का सौपने का पक्ष पाती था। उसने प्रत्यक व्यवसाय के स्थानीय और राष्ट्रीय सघ बनाने का सुझाव दिया था। प्रत्येक सघ अपने व्यवसाय का प्रबन्ध करने के लिए स्वतन्त्र था। गिल्ड समाजवादिया ने इन सब व्यावसायिक सघो के ऊपर उनके व्यावसायिक एव आर्थिक सम्बन्धो के नियन्त्रण हेतु एक नवीन सस्था 'व्यावसायिक याय की सर्वोच्च लोकतन्त्रीय न्यायालय (Democratic Supreme Court of Functional Equity) के निर्माण का सुझाव दिया है।'[42] ग्राहम वालास द्वितीय सदना म व्यवसाया का प्रतिनिधित्व देने का पक्षपाती था। दुगुई व्यवसाय, वाणिज्य, उद्योग ध धा को ही नही अपितु विज्ञान, धर्म आदि को भी प्रतिनिधित्व दिये जाने का समथक था। वेब दम्पत्ति दो ससदा—राजनीतिक एव आर्थिक—के निर्माण के पक्षपाती थे।

व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के दोष

(1) इसका क्रियान्वन कठिन है। व्यवसायो का वर्गीकरण एव व्यवसाया के आधार पर जनसख्या का विभाजन तथा प्रत्येक व्यवसाय का प्रतिनिधित्व एक समस्या है। अत यह प्रणाली भ्रान्तिपूण है।

(2) इस पद्धति का आधार ही गलत है। मनुष्य मूलत आर्थिक प्राणी नही है। आर्थिक हिता का जीवन म बहुत महत्व है, परन्तु वे ही सब कुछ नही हैं। इसक

---

38 G D H Cole Refer to Coker *Recent Political Thought*, 1934, pp 266 67
39 *Ibid*
40 Cole *Social Theory*, 1920 p 207
41 Finer *op cit*, p 222
42 Cocker F W *op cit*, p 278

अतिरिक्त राज्य का काय केवल आर्थिक हिता का सरक्षण करना ही नही है। प्रतिनिधित्व व्यक्ति के समग्र रूप अर्थात नागरिक का होना चाहिए। मेरियट के अनुसार व्यक्ति केवल डाक्टर, वकील अथवा लुहार नही है। एक नागरिक का तो इनसे अधिक महत्व है।[43]

(3) व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के फलस्वरूप वग हितो की प्रधानता एव प्रमुखता हा जाती है तथा राष्ट्रीय हित गौण हा जाते ह। विधानमण्डल वर्गीय स्वाथसाधन की पूर्ति हेतु सघप-स्थली वन जात है। इस पद्धति म सघप को वढावा मिलता है।

(4) दलीय पद्धति के विकास के कारण व्यावसायिक प्रतिनिधित्व का कोई व्यवहारिक महत्व नही है। प्रत्येक दल की आर्थिक नीतिया होती है, उनम विभिन्न व्यवसाया से सम्बधित व्यक्ति होते ह तथा व विभिन्न व्यवसाया के हिता की रक्षा करते ह।

सोवियत सविधान (1924 36) व्यावसायिक प्रतिनिधित्व पर आधारित था और नगरो के प्रत्येक उद्यम एव सस्था म निर्वाचन होते थे।[44]

---

43 Marriot *The Mechanism of Modern State*, Vol I, p 505
44 Finer *op cit*, p 222

31
लोकमत
[PUBLIC OPINION]

आधुनिक लोकतन्त्रीय पद्धति मे लोकमत का व्यापक महत्व है। सार्वभौम वयस्क मताधिकार, राजनीतिक दलीय पद्धति का विकास एव सगठन तथा लोकप्रिय आधार पर विधानमण्डलो के निर्माण के फलस्वरूप लोकमत का महत्व बहुत बढ गया है। लोकमत राजनीति शास्त्र का विगत अर्द्ध शताब्दी म अध्ययन का एक प्रधान विषय रहा है परन्तु उसकी कोई शास्त्रीय परिभाषा प्रस्तुत नही की जा सकी है। प्रसिद्ध स्पेनिश विचारक जोसी ओरटीगा ए गस्टेट (*Jose Ortega Y Gassett*)[1] का मत है कि विश्व म किसी न भी कभी लोकमत के अतिरिक्त किसी अन्य पर शासन को आधारित करके शासन नही किया है। यह एक कटु सत्य है। सभी सरकारे, चाहे वे कितनी ही भ्रष्ट क्यो न रही हो, अपनी सत्ता के लिए लोकमत पर निभर रहती हैं। लोकतन्त्रीय देशो म ही नही, निरकुश एव अधिनायकवादी शासन भी दीघकाल तक लोकमत की उपेक्षा करने म असफल रहते ह।

लोकमत का अथ

लोकमत का सामान्य भाषा मे 'सावजनिक प्रश्नो पर जनता की राय' कह सकते हैं परन्तु इससे लोकमत का वास्तविक अथ प्रकट नही होता। किसी समाज की सम्पूण जनता किसी सावजनिक प्रश्न पर निश्चित एव व्यवस्थित ढग से नही सोचती है। सत्य तो यह ह कि आधुनिक प्रतिस्पर्धी एव जटिल समाज म सामान्य जनता को सोचने का अवकाश ही नही है। यदि थोडे से व्यक्ति सावजनिक समस्याओ पर विचार भी करते है तो उनक पृथक पथक—जातीय, साम्प्रदायिक, वर्गीय—दृष्टिकोणो के कारण उनके विचारो म एकता का अभाव होता है। कभी कभी तो अपने निजी हित को ही व सम्पूण समाज या राष्ट्र का हित मान बैठते है। हर व्यक्ति एव वग अपनी बुद्धि क

1 Jose O Y Gassett *The Revolt of the Masses*, cited by E Asirvatham *Political Theory* 1965, p 482

अनुसार राय प्रकट करता है और अपने मत पर दृढ बना रहता है। प्राय इस प्रकार की मत विभिन्नता के कारण लोकमत का निर्माण नही हो पाता। प्रत्येक दल या वग अपने-अपन दृष्टिकोण से विचारो का प्रचार करता है। अपने मत क समथन म वह प्रत्यक प्रकार के सही एव गलत तरीका और आंकडा का सहारा लेता है तथा बहुमत को अपने पक्ष म प्रभावित करने का प्रयत्न करता है। जो प्रभावशाली ढग से अपन विचारो का प्रचार कर पाता है उसी की तरफ जनता अधिकाधिक उ मुख हो जाती है एव साधारणत ऐसा मत बहुसख्यक की राय बन जाती है और वही लोकमत कह लाने लगती है। पर तु बहुमत लोकमत नही होता है। लोकमत से तात्पय तो समाज की राय से होता है।

लोकमत की विभिन्न विद्वाना न भिन्न भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की है। ब्राइस[2] के अनुसार "लोकमत उन सब दृष्टिकोणा के योग के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो जनता द्वारा सावजनिक हितो से सम्बद्ध विषयो पर व्यक्त किये जात ह। इस अथ म वह सभी प्रकार के विश्वासा, धारणाआ, पूर्वाग्रहो एव आकाक्षाआ का सम्मिश्रण है।" एल डब्ल्यू डोब[3] के अनुसार "लोकमत से तात्पय किसी सामाजिक समूह के सदस्यो की किसी प्रश्न विशेष के प्रति प्रवत्ति स है। सार समूह से सम्बधित प्रश्ना के सम्बध मे अपेक्षाकृत प्राथमिक विचारा की सामूहिक अभिव्यक्ति ही लोकमत है।' अमरिकन मनोविज्ञान शास्त्री किम्बाल यग के अनुसार[4] "लोकमत से अथ किसी समय विशेष पर जनता के विचारा से है।" मौरिस जिंसबग के अनुसार "लोकमत अनेक व्यक्तिया के विचारो की प्रतिक्रिया का सामाजिक प्रतिफल है।'[5]

उपरोक्त परिभाषाआ के यह स्पष्ट है कि लोकमत की परिभाषा के सम्ब ध म विद्वान एकमत नही है। विलहेम बोयर (Wilhelm Bouer)[6] न 'वास्तविक लोक-मत' एव 'जनता म प्रचारित मत' मे भेद किया है। जनता म प्रचारित मत विशुद्धत वैयक्तिक होता है। लोकमत इसके विपरीत सामाजिक सावयवी शक्ति है। समूह

---

2 "Public opinion is the aggregate of the views men hold regarding matter that affect or interest the community '—Lord Bryce Quoted B B Majumdar *op cit*, p 283

3 "Public opinion refers to people's attitudes on an issue when they are members of the same social group"—L W Dobb *Public Opinion and Propaganda*, p 35

4 Public opinion consists of the opinions held by a public at a certain time"—Kimball Young *A Handbook of Social Psychology*, 1957 pp 431-32

5 Public opinion is a social product due to the interaction of many minds'—M Ginsberg *The Psychology of Society* p 145

6 Wilhelm Bauer *Public Opinion*, cited by E Asirvatham *op cit* (1965), p 483

विशेष की स्वार्थपरक क्षणिक भावनाओं के स्थान पर सामूहिक विवेक शक्ति एवं कल्याणकारी भावना व इच्छा की अभिव्यक्ति ही लोकमत है। जनता की क्षणिक वैयक्तिक एवं पृथक पृथक भावनाओं एवं आस्थाओं को लोकमत संशोधित करके समाज की इच्छा का रूप प्रदान करता है। अतः लोकमत केवल विचार एवं सिद्धान्त मात्र न होकर समूह विशेष की सामूहिक आस्था एवं विश्वास होता है। रौसेक (Roucek)[7] के अनुसार लोकमत के चार अनिवार्य तत्व हैं प्रथम, समूह या जनता, द्वितीय, जनसमूह के सदस्यों के समक्ष अपने सामान्य हितों से सम्बन्धित समस्या या समस्याएँ जिनके सम्बन्ध में वे आपस में विचार विमर्श कर सकें, तृतीय, समूह का नेता एवं नेताओं का वर्ग जो महत्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में सामूहिक मत के निर्माण में योग दे सके एवं जनता का ध्यान प्रस्तावित मत को स्वीकार करने के लिए आकर्षित कर सके, तथा चतुर्थ, जनता द्वारा समाज के नेता या नेताओं द्वारा प्रस्तावित मत की स्वीकृति एवं तदनुरूप कार्य को स्वीकृति प्रदान करना। संक्षेप में, लोकमत किसी विशिष्ट वर्ग का हित न होकर जनसाधारण का मत होता है। वह लोक कल्याण की भावना से प्रेरित विवेकी एवं स्थायी विचार है।

गेटेल[8] ने लोकमत की अत्यन्त तर्कपूर्ण समीक्षा की है। उसका कथन है कि जिसे लोकमत कहा जाता है वह न तो लोक या जन (public) ही है और न मत (opinion) ही है। समाज में जो मत प्रचलित एवं मान्य होता है वह वास्तव में समाज के अल्पसंख्यक या कुछ प्रमुख नेताओं या सम्बन्धित वर्ग विशेष का मत होता है। जनता अधिकतर सार्वजनिक प्रश्नों में विशेष रुचि नहीं लेती है। यह कहना अधिक ठीक है कि जनता तो अज्ञानी होती है या उसे पूर्व सूचना भी नहीं होती अतः इस दृष्टि से लोकमत जनता का मत हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त एक ही सार्वजनिक प्रश्न पर परस्पर विरोधी मत या विचार पाये जाते हैं जो एक दूसरे का खण्डन करते हैं। ऐसी स्थिति में जनता के सामान्य मत के निर्माण की आशा मृगमरीचिका है। यदि ऐसा कोई मत होता भी है तो उसे लोकमत की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यदि वह लोकमत है भी तो भी हम उसे जनता के अस्पष्ट एवं अव्यवस्थित विचारों का समूह कहेंगे। जनता विचार करते समय परम्परा एवं रीति रिवाज से प्रभावित होती है। थोड़े से ही व्यक्तियों में चिन्तन एवं मनन की वह प्रतिभा पायी जाती है जो सार्वजनिक समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक होती है। अतः अनेक तथाकथित लोकमत तो पूर्व धारणाएँ, विश्वास, शीघ्रगामी निष्कर्ष एवं परम्परागत विचार मात्र होते हैं। जनता का एक बड़ा भाग स्वयं समस्याओं पर विचार नहीं करता है अपितु दूसरों के विचारों को सहज रूप में स्वीकार कर लेता है। सत्य

---

7 Roucek J S *Twentieth Century Political Thought*, cited by E Asirvatham *op cit*, p 482

8 Gettell *Political Science*, 1956 pp 284 86

ता यह है कि लाकमत का निर्माण नेताओ का छोटा समूह करता हे एव जनता उनके निणय एव सुभावा को स्वीकार कर लेती है। लोकमत की श्रेष्ठता नेताओ की बुद्धिमत्ता एव निस्वाथता पर निभर करती है। एक सगठित अल्पमत सदैव ही यह प्रदर्शित करता रहता है कि उसका मत बहुमत का मत है या लोकमत है।

डॉ आशीर्वादम[9] न लोकमत का मूल्याकन करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि सच्चे एव झूठे लोकमत मे भेद करना लोकमत को दमन का अस्त्र बनने से रोकन एव उसे मगलदायक बनान के लिए आवश्यक है। आधुनिक समाज मे लोकमत के निर्माण के लिए अनेक कृत्रिम एव अवाछनीय साधनो का प्रयोग किया जाता है। दबाव एव हित समूहा द्वारा अपने स्वार्थों एव हितो की पूर्ति के लिए ऐसे अनेक काय एव प्रचार किये जाते ह कि जनता इन समूहा के वर्गीय एव निजी हिता को जनता का हित समझ बैठती है और अल्पवर्गीय हितो के विचारो का अनजाने ही समथन करने लगती है। इस प्रकार लोकमत का निर्माण करने वाले दबाव या हित-समूहो द्वारा जनता के समक्ष कल्पित भय, सम्भावनाओ, घृणा एव विचारा का प्रदशन इस प्रकार किया जाता है कि जनता सहज ही उनके प्रचार का शिकार हो जाती है। सामान्यत अनेक दल जो लोकतन्त्र म कोई आस्था नही रखते है, लोकतन्त्र की दुहाई देते हुए देखा जाता है। उनके द्वारा जनता की खुशामद की जाती है एव उसे जाल म फँसाने का हर सम्भव प्रयास किया जाता है।

लोकमत के निर्माण एव प्रसार के साधन

वतमान राज्यो मे लोकमत के निर्माण एव प्रसार के प्रमुख साधन निम्नत हैं

(1) **व्यक्ति का स्वज्ञान**—व्यक्ति परिवार का सदस्य होता हे। पारिवारिक सम्बन्धा एव सामाजिक जीवन क अनुभवा से व्यक्ति को वास्तविक जगत का ज्ञान होता है। हर व्यक्ति अपने जीवन म अपने पेशे एव अन्य कार्यों के दौरान अनेक प्रकार के व्यक्तिया के सम्पक म आता ह तथा अनुभव प्राप्त करता है। राजनीतिक सगठन, अधिकारिया, डाकखाना रेल, अन्य यातायात, पुलिस, सेना आदि के सम्बन्ध मे वह देखता एव अनुभव करता है। अनक बातें वह सुनता एव पढता है। इससे उसे इनका ज्ञान होता है। वह कर देता है, अदालता के सम्पक म आता है तथा राज्य के कानून का उल्लघन करने पर अपराधिया को दण्डित होते हुए देखता ह। सिनेमा, रेडियो आदि ज्ञान के आधुनिक महत्वपूण साधन है। व्यक्तिया को स्व अनुभव स प्राप्त यह ज्ञान उन्हे सावजनिक मामलो के सम्बन्ध म विचार या मत निर्धारित करन म योग देता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक समाज म विभिन्न योग्यताआ एव क्षमता वाले व्यक्ति होते ह, जैसे—दाशनिक, साहित्यकार, पत्रकार, विधायक, समाज सुधारक एव राजनीतिक नेता आदि। इनके द्वारा समय-समय पर सामयिक सामाजिक

---

9 E Asırvatham *Polıtıcal Theory*, 1965, pp 485 89

समस्याओ पर विचार प्रकट किय जाते है। जनसाधारण इन विचारा स भी सावजनिक समस्या के सम्बध म अपना मत निश्चित करने म प्रभावित होता है । समाज क सभी श्रेणी के मनुष्य लोकमत के निर्माण म अपना-अपना योग देते हैं । परिवार म व्यक्त विचार लोकमत के निर्माण म सहायक होत हैं। इस प्रकार क विचारा की दा मुख्य विशेषताएँ हैं—प्रथम यह स्वत व धनकारी (compulsive) होते ह, एव द्वितीय, यह कृपालु एव उपकारी (kindly) होत ह। समाज-सुधारका ने परिवार को लोकमत के निर्माण की एक प्रधान इकाई माना ह। फाइनर[10] का मत है कि इसी कारण या तो सोवियत रूस की भाति जिस प्रकार प्रारम्भ म परिवार का समाप्त करने का प्रयास किया गया था उसी प्रकार परिवार को नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता ह अथवा नाजी एव फासीवादिया की भाँति पारिवारिक अनुशासन को शिथिल करने के प्रयत्न किय जाते है। जो स्त्री एव पुरुष किसी उद्योग एव धधे या रोजगार म काय करके जीविकोपाजन करते है वे अपने काय क दौरान उसस सम्बधित अनक बातो एव सम्बधो का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। कमचारी सघा, सहकारिता सस्थाआ एव श्रमिक सघो की स्थापना ने उस ज्ञान के प्रसार म अथक योग दिया है जो सावजनिक कार्यो के सम्पादन म सहायक होता है। इन श्रमिक सघो एव हित समूहा ने साव जनिक क्षेत्र म जो भूमिका निभाई है उसके परिणामस्वरूप राजनीति शास्त्र म व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धात का विकास हुआ है। इस सिद्धात का प्रतिपादन श्रम सघवादिया (Guild Socialists) द्वारा किया गया था।

लेकिन सावजनिक मामला से सम्बधित मुख्य ज्ञान प्रतिवदनो एव सूचनाआ स प्राप्त होता है। आधुनिक समाज मे सावजनिक शिक्षा एव प्रचार के साधनो म राजनीतिक दला के पश्चात प्रमुख स्थान पुस्तको, समाचार पत्रा, विद्यालया, क्लबा, चच (धार्मिक सगठनो), सिनेमा, रेडियो एव जन चर्चा को प्राप्त है।[11]

(2) **राजनीतिक दल**—लोकमत के निर्माण म राजनीतिक दलो की भूमिका बहुत ही महत्वपूण है। आजकल लाकतन्त्रात्मक देशो म एक स अधिक दल होते ह। वे अपनी मान्यताओ एव अपन दृष्टिकाणो के अनुसार विभिन्न सावजनिक प्रश्ना पर सावजनिक रूप स दलीय सभाओ म विचार व्यक्त करके, समाचार पत्रा म लेख लिखकर एव विधानमण्डला म शासन की नीतिया की आलोचना करके जनमत का व्यवस्थित एव स्थिर बनाने मे सहायता करते है। हर दल प्रत्येक समस्या पर अपने विचार जनता के समक्ष रखता है। जनता विभिन्न पक्षा के विचारो को सुनकर सर लता से अपना मत निश्चित कर लेती है। निवाचना के समय म दलीय प्रचार अपनी चरम सीमा पर होता है एव इस समय प्रत्यक दल अत्यधिक सक्रिय होता है। आधु-

10 Finer *op cit*, 1956 p 261
11 Finer *op cit*, 1956, p 263

निक मतदाता के लिए वतमान सामाजिक परिस्थितिया के स दभ म राजनीतिक दलो के सहयोग के अभाव म सावजनिक समस्याओ म महत्वपूण योग दे सकना सम्भव भी नही है । सभी व्यक्ति वतमान प्रतिस्पर्धा प्रधान समाज म अपन जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति म इतन सलग्न होत हैं कि उन्ह सावजनिक समस्याओ सम्बन्धी सम्पूण सूचना प्राप्त करके निणय कर सकना कठिन होता है । राजनीतिक दलो द्वारा मतदाताओ क समक्ष सावजनिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नो पर आवश्यक सूचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं और मतदाता उन विभिन्न सूचनाओ के आधार पर अपना मत निश्चित करत ह । दलो के द्वारा विभिन्न सामाजिक एव राजनीतिक समस्याओ के सभी पहलुओ को जनता के समक्ष पूणरूपण स्पष्ट कर दिया जाता है ।

हरमन फाइनर ने दल को राजा की सज्ञा दी है।[12] दलो के द्वारा व्यक्तिगत विचारो एव मतो से पृथक सामूहिक रूप मे समस्या पर सामूहिक मतो एव विचारो को उपस्थित किया जाता है । विभिन्न दल वैकल्पिक मूल्य, मापदण्ड एव समाधान प्रस्तुत करते ह । विभिन्न विचारो म किसको प्राथमिकता दी जाय, यह भी उनक द्वारा सुझाया जाता है । राजनीतिक प्रश्नो पर मत निर्धारण विशिष्ट राजनीतिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त अनेक स्वाभाविक गुणो जिन्ह हम रुचियाँ (aptitudes) कहत हैं और जिनका अधिकाशत अभाव ही होता है, से अधिक सम्बन्धित है । जनता स्वचेतन नही होती है । उन्ह सजग एव चेतन बनाने के लिए किसी सस्था या अभिकरण की आवश्यकता होती है । निर्वाचन-काल म तो विचारो को केन्द्रित करने की विशेष रूप से आवश्यकता होती है । यह दायित्व राजनीतिक दलो द्वारा पूण किया जाता है । वे सम्पूण राष्ट्र को बन्धुत्व की डोरी म बाध देत हैं, व्यक्तिगत नागरिको को राष्ट्रव्यापी दष्टि प्रदान करते हैं, सावजनिक प्रश्नो से सम्बन्धित सम्पूण ज्ञान एव सूचना को एकत्रित करके जनता का लोकमत के निर्माण मे नेतत्व करते हैं । कुछ देशो म—जसे, सोवियत रूस, चीन आदि साम्यवादी देशो—म एक-दलीय पद्धति है । वहा दल की सदस्यता देश की कुल जनसख्या के थोडे से ही व्यक्तियो को प्राप्त है । इन देशो मे लोकमत शीपस्थ दलीय नेताओ के विचारो एव दृष्टिकोण का पयायवाची मात्र होता है । भारत के सम्बन्ध म यह सत्य नही है । लोकमत का अर्थ यहा केवल काग्रेस उच्च सत्ता के विचार एव नीतियां नही है ।

(3) **समाचार पत्र**—आधुनिक समाज म लोकमत के निमाण एव प्रसार म समाचार-पत्रो द्वारा प्रमुख भूमिका निभाई जाती है । समाज के शिक्षित व्यक्ति प्रतिदिन अखबार पढते है । प्राय हर पाठक अपनी रुचि के समाचार पत्र की विचारधारा से प्रभावित होता है। जनता को सावजनिक समस्याओ के सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक दष्टिकोणो के सम्बन्ध म विभिन्न समाचार-पत्रो द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है।

---

12 "Party is King"—Finer *op cit*, p 274

सार्वजनिक समस्याओं पर विभिन्न लेख एवं सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित होती हैं। यह पाठकों के विचारों को प्रभावित करते हैं, लेकिन स्वस्थ लोकमत के निर्माण के लिए स्वतन्त्र समाचार पत्रों की आवश्यकता है। अधिकांश देशों में स्थिति इससे भिन्न है। समाचार पत्र जगत में भी साम्राज्यों की स्थापना हुई है। भारत में सभी प्रमुख समाचार-पत्र बड़े-बड़े उद्योग परिवारों से सम्बन्धित हैं। बिरला ग्रुप के प्रमुख समाचार-पत्र हैं हिन्दुस्तान टाइम्स (अंग्रेजी), हिन्दुस्तान दैनिक एवं साप्ताहिक (हिन्दी)। टाइम्स ऑफ ग्रुप के कई अखबार हैं। इण्डियन एक्सप्रेस के कई संस्करण प्रकाशित होते हैं। उपरोक्त सभी पत्र पूंजीवादी लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतान्त्रिक समाजवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले स्वतन्त्र समाचार पत्रों का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजनीतिक दल का अपना समाचार-पत्र है। उदाहरण के लिए स्वराज्य (स्वतन्त्र दल), नेशनल हेराल्ड (कांग्रेस शासकीय), मदरलैण्ड पाञ्चजन्य (जनसंघ), पेट्रियट (साम्यवादी दल)। विभिन्न समाचार एजेन्सियों के द्वारा विभिन्न समाचार पत्रों के पाठकों के विचारों का समाचारों के तौर-तरीकों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। समाचार-पत्र के द्वारा जिस सीमा तक निष्पक्षता एवं स्वतन्त्रता का अनुगमन किया जाता है, उसी सीमा तक स्वस्थ लोकमत का निर्माण भी सम्भव है। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि समाचार पत्रों द्वारा स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए। उनमें प्रकाशित लेख उत्तरदायित्वपूर्ण एवं समाचार तथा सूचनाएँ प्रामाणिक होने चाहिए। समाचारों की सूचना इस प्रकार देनी चाहिए कि जनता उनका गलत अर्थ न लगाये और न भ्रमित हो। समाज में विद्वेष एवं कलह उत्पन्न करने वाली एवं समाज के नैतिक स्तर को गिराने वाली सूचनाओं को प्रकाशित नहीं करना चाहिए। वर्तमान काल में प्रेस की निष्पक्षता एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण से जनता का विश्वास हटता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि समाचार पत्रों पर कुछ विशिष्ट हितों का नियन्त्रण होता है और वे हित समाचार पत्रों का प्रयोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए करते हैं। वे कुछ सूचनाओं को पूर्णतः छोड़ देते हैं एवं कुछ को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करते हैं। इससे स्वस्थ लोकमत के निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है और जनता भ्रमित हो जाती है।

इसके अतिरिक्त धार्मिक संगठनों—चर्च, मसजिदें, धार्मिक समाज—का लोकमत के निर्माण एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भाग होता है। अनेक देशों में जहाँ धर्म को आज भी मान्यता प्राप्त है, लोकमत के निर्माण में इन संस्थाओं द्वारा सक्रिय भाग लिया जाता है। अनेक मुस्लिम देशों में आज भी राज्य, सम्पत्ति, विवाह, उत्तराधिकार, स्त्रियों एवं विधर्मियों के सम्बन्ध में मध्ययुगीन विचार प्रचलित हैं। अनेक मुस्लिम देशों में स्त्रियों की मुक्ति का आन्दोलन सक्रिय है परन्तु भारत में मुस्लिम समाज आज भी बहुपत्नी प्रथा के विरुद्ध विधि बनाये जाने का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है। मुस्लिम कानून में संशोधन के मौलिक विचार को अलोकतन्त्रीय कह कर अल्प

सम्यक पुरातन मुल्ला पन्थी मुस्लिम नतृत्व द्वारा विरोध किया जाता है, जबकि सत्य यह है कि प्रगतिशील धम निरपक्ष समाज म सामाजिक अत्याचार से व्यक्ति की रक्षा करना राज्य का प्रधान कतव्य है। हिन्दू समाज म जाति भेद का कलक आज भी विद्यमान है। मध्ययुगीन एव अप्रगतिशील आस्था एव विश्वास जनित समाज, जाति प्रथा, पुरातन प्रेम, कठमुल्लापन आदि स्थितियाँ स्वस्थ लोकमत क निर्माण म बाधक होती हैं।

(4) **दबाव या हित समूहो क द्वारा** भी लोकमत के निर्माण को प्रभावित किया जाता है। अमेरिका म दबाव समूहा द्वारा विभिन्न तरीका स सम्बन्धित विषया म विधि-निर्माण को प्रभावित करने के लिए प्रचार काय किया जाता है। इसे लाबीइग (Lobbying) कहते ह। सम्बन्धित समूहा द्वारा अपन हित विरोधी विधिया के निमाण को रोकन का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है एव एसी विधियो को पारित कराने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है जिनसे उनके हित का सवधन सम्भव है। सयुक्त राज्य अमेरिका म इस हेतु वैतनिक प्रचारक नियुक्त किये जात ह एव वे विधायका को प्रभावित करन का हर सम्भव प्रयत्न करते ह। सयुक्त राज्य अमेरिका मे व्यापार, उद्योग, कृषि, उत्पादको, श्रमिको, अल्पसख्यको आदि के सघ है जो अपने हिता के रक्षाथ सतत् रूप म क्रियाशील रहते ह। भारत म दबाव समूहो का सयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति उदय एव विकास नही हुआ है, फिर भी देश म उद्योगो एव कृषक वग क दबाव एव हित समूह सक्रिय हैं। व्यक्तिगत उद्योगा द्वारा पथक पथक लाबीइग की जाती है।

दबाव समूह की व्यवस्था हानिकारक नही होती है। सुशासन म शासनकी नीतिया के प्रति जनता की प्रतिक्रिया एव दृष्टिकोण को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है। इस दृष्टि स दबाव समूह पक्ष विशेष के हितो का प्रतिनिधित्व करते है। दबाव समूहा के विचारो को हम स्वस्थ लोकमत नही कह सकते हैं क्याकि वे समाज के एक वग विशेष का हित होते ह न कि जनसाधारण के हित।

इसके अतिरिक्त नागरिक सघ एव सस्थाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्व विद्यालय, शोध सस्थान, साहित्य, टेलीविजन, रेडियो एव सिनेमा, सावजनिक सभाए, सामान्य निर्वाचन एव विधानमण्डल भी लोकमत के निर्माण मे योग देते ह। साहित्य समाज का दपण होता है। शिक्षित नागरिका पर साहित्य का पयाप्त प्रभाव पडता है। टेलीविजन, रेडियो एव सिनेमा सचार एव प्रचार के आधुनिकतम साधन हैं। जनता इनस पर्याप्त प्रभावित होती है। सामान्य निर्वाचन काल म राजनीतिक दलीय प्रचार अपनी चरम सीमा पर होता है। जनता जिस दल के कायक्रम को उचित समझती है निर्वाचन म उसी दल के उम्मीदवार को मत देती है। विधानमण्डल मे बजट एव सामान्य प्रस्तावा पर होने वाली बहस भी लोकमत के निर्माण म सहायक होती है।

स्वस्थ लोकमत के निर्माण के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

स्वस्थ लोकमत के निर्माण में निम्नांकित परिस्थितियाँ योग प्रदान करती हैं

(1) सभी तथ्य एवं सूचनाएँ ठीक ठीक उपलब्ध होनी चाहिए।

(2) समाज व नेताओं का दृष्टिकोण सन्तुलित, शान्त एवं परिपक्व होना चाहिए।

(3) जनता सुशिक्षित, विचारवान, पूर्वाग्रहों एवं मान्यताओं से मुक्त तथा चिन्तन की प्रवृत्ति से युक्त होनी चाहिए। अशिक्षा एवं निर्धनता स्वस्थ लोकमत के निर्माण में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। समाज में आर्थिक समानता और शोषण का अभाव होना चाहिए।

(4) राजनीतिक दलों, श्रमिक संघों, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तथा भाषायी व जातीय संस्थाओं का अपने सदस्यों पर कठोर नियन्त्रण नहीं होना चाहिए।

(5) समाज में असामाजिक एवं जन विरोधी प्रवृत्तियों को नहीं पनपने देना चाहिए।

(6) समाचार पत्र स्वतन्त्र तथा सतत रूप में जागरूक एवं निष्पक्ष होने चाहिए।

(7) दलीय व्यवस्था लोकतन्त्रीय होनी चाहिए एवं उनकी कार्यपद्धति भी पूर्णरूपेण लोकतन्त्रीय होनी चाहिए। संकीर्ण, वर्गीय एवं साम्प्रदायिक दलों पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। विरोधी दलों को प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(8) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं विचार-अभिव्यक्ति की अनियन्त्रित स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

लोकमत का पता लगाना कठिन होता है परन्तु स्वस्थ लोकमत ही वह आधार शिला है जिस पर लोकतन्त्र के स्थायी भवन का निर्माण सम्भव है। लोकमत एवं सामान्य इच्छा समानार्थी होने चाहिए। यदि लोकमत का कोई महत्व एवं मूल्य हो सकता है तो वह प्रबुद्ध, बोधगम्य एवं व्यापक आधारयुक्त होना चाहिए।[13] लोकमत संगठित प्रचार (propaganda) है। संगठित प्रचार का पहले अर्थ धोखा (deceit) था, लेकिन प्रचार का अब अर्थ कुछ व्यक्तियों एवं समूहों द्वारा अन्य व्यक्तियों के विचारों एवं कार्यों को अपनी निश्चित पूर्व निर्धारित दृष्टि से अपने पक्ष में प्रभावित करने के प्रयत्न से है। फाइनर ने प्रचार की परिभाषा करते हुए कहा है कि वैयक्तिक या जन इच्छा का दमन या अन्त और नीति की उपलब्धि के लिए एक ही मार्ग को प्रस्तुत करना एवं उसे सर्वश्रेष्ठ मानना ही प्रचार है। संगठित प्रचार में प्रचारक जनता के समक्ष एक योजना एवं मार्ग प्रस्तावित करता है, वह उसकी दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ

---

13 "If public opinion is to have any meaning at all it should be intelligent intelligible and broad based' —E Asirvatham *Political Theory op cit* p 488

हाता है एव जनता को उस नीति या माग को स्वीकार करन क लिए हर प्रकार स प्रमावित किया जाता है। लेकिन इस प्रकार जनता का जो मत बनता है वह लोकमत नही होता है।

भारत मे लोकमत

भारतवष ने उदारवादी लोकतन्त्र के सिद्धान्ता को स्वीकार किया है। मौलिक अधिकारा एव विधि के शासन की व्यवस्था, न्यायपालिका की निष्पक्षता एव स्वतन्त्रता तथा ससदीय प्रणाली इसके प्रमाण ह। सविधान की प्रस्तावना म समानता, स्वतन्त्रता एव भ्रातृत्व प्रधान समाज के निर्माण का उदबोधन तथा समानता एव शोषण के विरुद्ध अधिकारो के द्वारा आर्थिक समानता का आश्वासन दिया गया है। नीति निर्देशक तत्वा का लक्ष्य सामाजिक कल्याण ह। इन लक्ष्यो की पूर्ति के लिए लोकतान्त्रिक पद्धति का वरण किया गया है। प्रश्न यह है कि क्या भारतीय मतदाताओ म इन दायित्वा को निभाने की क्षमता है ? क्या सावजनिक प्रश्ना पर भारतीय जनता स्वस्थ लोकमत का निर्धारण करन की क्षमता रखती है ?

करीव 150 वप तक विदेशी शासन काल म भारतीय जनता का शोषण होता रहा। ब्रिटिश काल म लोकमत के निर्माण का प्रश्न उठता ही नही था। सावजनिक मामला म कुछ थोडे स ही व्यक्तिया को मत व्यक्त करन क अधिकार प्राप्त थ। मताधिकार वगगत, सीमित एव सम्पत्ति और साम्प्रदायिक्ता पर आधारित था। सावभौम वयस्क मताधिकार तो स्वतन्त्रता के पश्चात ही देश म प्रारम्भ हुआ है। ब्रिटिश काल म काग्रेस दल एकमात्र प्रमुख राष्ट्रीय दल था और इसके अधिवेशना म दिये जाने वाले भाषणा एव प्रस्तावा मे भारतीय जनता के मत—लोकमत—की अभिव्यक्ति होती थी। मुस्लिम साम्प्रदायिक्ता ने स्वस्थ राष्ट्रीय लोकमत के निमाण म बाधा उत्पन्न की थी। भारतीय स्वतन्त्रता का जहाज अन्ततोगत्वा साम्प्रदायिक्ता एव सकीपवाद की चट्टान से टकराकर दो भागा म वॅट गया था। देश विभाजित हो गया।

वतमान स्वतन्त्र भारत म लोकमत के निमाण एव अभिव्यक्ति क लिए उपयुक्त वातावरण नही है अपितु अनेक बाधाएँ हैं। देश की अधिकाश जनता अशिक्षित है। विगत 25 वर्षों म अथक प्रयास किय जान के बावजूद भी केवल 20 प्रतिशत जनता शिक्षित हो सकी ह। साधारण भारतीय भाग्यवादी एव परलोकवादी होता है। उसम उस नागरिक चेतना का अभाव है जो कि स्वस्थ लोकमत क निमाण की आधारशिला क रूप म काय करती है। 80 प्रतिशत जनता गाँवो म रहती ह। आवागमन, यातायात एव सचार की समुचित व्यवस्था के अभाव म प्रत्येक गाँव एक दूसर स जुडा हुआ नही ह। ग्रामीण जनता अधिकाशत जातिवाद क भयानक रोग स पीडित है। आज भी गाँवो म ऊँच-नीच एव छुआछूत की भावना भयानक रूप स व्याप्त है यद्यपि उसकी तीव्रता म कुछ कमी अवश्य है। जो जाति जितनी पिछडी हुई है उतनी ही अधिक सगठित है। ग्रामीण क्षेत्रा म जातिवाद का बडा जोर है एव सावजनिक जीवन म भी उसका

महत्त्व है। निर्वाचनों में विभिन्न राजनीतिक दलों के द्वारा अपने दलीय उम्मीदवार का चयन करते समय सम्बन्धित निर्वाचन क्षेत्र में निवास करने वालों की जाति एवं सम्प्रदाय विशेष को अनिवार्यतः ध्यान में रखा जाता है। मुस्लिम या हरिजन प्रधान क्षेत्रों से अधिकांशतः प्रत्येक दल द्वारा मुस्लिम एवं परिगणित जाति विशेष के सदस्य को ही प्रत्याशी के रूप में चुना जाता है। शहरी क्षेत्रों में भी बहुधा यही देखा जाता है।

भारतीय शिक्षा-पद्धति भी दोषपूर्ण है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षा का मापदण्ड एवं स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। विद्यालय उत्पादन केन्द्र या फैक्टरियाँ बन गये हैं। चरित्र निर्माण, बुद्धिमानी, ईमानदारी, उत्तरदायित्व आदि गुणों के विकास की ओर वांछित ध्यान नहीं दिया जाता है अपितु पूर्णतः उदासीनता पायी जाती है। शिक्षा प्रसार की गति धीमी है। विद्यालयों में अनुशासनहीनता का साम्राज्य है। शिक्षा जीवनोपयोगी नहीं है।

भारतीय सामाजिक जीवन का एक सदा बहता नासूर साम्प्रदायिकता है। मुस्लिम लीग का पुनः उत्थान हो रहा है। इससे भारतीय समाज के हिन्दू एवं मुस्लिम दो खेमों में बँट जाने का भय है। अतः आवश्यकता यह है कि मुस्लिम लीग जैसी साम्प्रदायिक संस्था पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। स्थानीयता, क्षेत्रीयता एवं भाषावाद की संकीर्ण प्रवृत्तियाँ देश में अत्यधिक सक्रिय हैं।

देश में आर्थिक विषमता बढ़ रही है। धनी अधिक धनी एवं निर्धन अधिक निर्धन होता जा रहा है। मूल्य-वृद्धि एवं मुद्रा-स्फीति ने सामान्य जनता की कमर ही तोड़ दी है।

समाचार-पत्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है परन्तु प्रायः सभी समाचार-पत्र किसी न किसी गुट, राजनीतिक दल अथवा औद्योगिक परिवार से सम्बन्धित हैं।

सबसे अधिक शोचनीय तथ्य सार्वजनिक चरित्र का ह्रास है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुत्तरदायित्व एवं अवसरवादिता सफलता के मूल मन्त्र बन गये हैं। भ्रष्टाचार का सर्वत्र साम्राज्य है। प्रशासन भ्रष्ट हो गया है। सरकारी मशीनरी पूरी तरह भ्रष्ट है। बिना रिश्वत दिये किसी सरकारी कार्यालय में कोई काम नहीं कराया जा सकता। [illegible] का भय समाप्त हो गया है। ऊपर से लेकर नीचे तक सभी कर्मचारी अपनी सत्ता का दुरुपयोग करते हैं। यदि भारत के शासन में अपव्यय होता है तो यह अनिवार्यतः [illegible] के कारण नहीं होगा अपितु यह उच्च सरकारी कर्म-
चारियों [illegible] [illegible] के कारण हो गया। राजनीतिक
[illegible] [illegible] है। [illegible] राजनीति [illegible]
[illegible] [illegible] राजनीति।
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible]

बदलू राजनीति (Politics of Defection) म कांग्रेस के विभाजन के पश्चात कुछ कमी आयी है । परन्तु सामान्य राजनीतिक जीवन नतिकताहीन है । सावजनिक जीवन मे असत्य एव आचरणहीनता की प्रधानता है । चोरबाजारी, तस्करी, टैक्स चोरी दुर्भाग्यजनित वास्तविकताएँ बन गयी हं ।[14]

भारत के लोकतान्त्रिक दला की कायपद्धति पूणरूपेण लोकतान्त्रिक नही है । देश मे एकल प्रबल दलीय पद्धति है । काग्रेस (शासकीय) का देश मे प्राधान्य है । सबल एव सशक्त विरोधी दल का अभाव है । केन्द्र म वैकल्पिक शासन का निमाण कर सकने वाले दल का पूण अभाव है ।

उपरोक्त स्थिति म स्वस्थ लोकमत के निर्माण की आशा मग मारीचिका मात्र है । भारत वतमान म सक्रमण काल स गुजर रहा है । देश म शीघ्रता से सामाजिक एव आर्थिक परिवतन हो रहे है । पुराने जीवन मूल्यो एव मान्यताओ को अस्वीकार किया जा रहा है परन्तु उनका स्थान नवीन जीवन मूल्य एव मान्यताएँ उतनी ही तेजी से नही ले रहे है । सामाजिक विघटन की प्रक्रिया सक्रिय है । पुरानी सामाजिक व्यवस्था का स्थान नवीन व्यवस्था द्वारा लिया जाना स्वामाविक है । इस प्रकार के सामाजिक परिवतन के काल म नैराश्य की स्थिति स्वामाविक होती है । लेकिन अधिकाश म यह नराश्य यथास्थिति वनाये रखने वालो के लिए भयानक होता है । राममनोहर लोहिया के अनुसार प्रत्येक भारतीय की दनिक आमदनी 31 पसे प्रतिदिन स अधिक नही है । यह सोचनीय स्थिति है । ऐसी अवस्था म स्वस्थ लोकमत की चर्चा करना भी अमिशाप है । सविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार शो केस की दशनीय वस्तु मात्र हैं । इन सवधानिक मौलिक अधिकारा का सामान्य निधन मारतीय के लिए कोई महत्व नही है । शिक्षित परन्तु बेरोजगार भारतीय नवयुवक के समक्ष व्यक्तिवादी अथ व्यवस्था एव लोकतन्त्र के नारा का कोई मूल्य नही है । आवश्यकता है कि इस सक्रमण काल म शोपण विहीन समाज का निर्माण किया जाय एव आर्थिक सुरक्षा की गारण्टी प्रदान की जाय । इसके लिए यह आवश्यक है कि काम का अधिकार सभी मारतीया को प्रदान किया जाय और सम्पत्ति के शक्तिशाली दुर्गों को ढाह दिया जाय । उत्पादन के स्रोता पर समाज का नियन्त्रण होना चाहिए । राज्य समाज के अभिकर्ता के रूप मे इस दायित्व का निर्वाह करना चाहिए । भ्रष्टाचार कठोरतापूवक दमन किया जाना चाहिए । भ्रष्ट शासकीय कमचारिया एव व्यापारियो को सावजनिक शारीरिक दण्ड दिये जाने चाहिए ।

इतनी निराशा की स्थिति मे भी प्रत्यक भारतीय को उज्ज्वल भविष्य की आशा करनी चाहिए । वतमान भारत म लोकमत की जो भी अभिव्यक्ति होती है वह सामान्य निर्वाचन काल म ही होती है परन्तु वह भी पूरी स्पष्टता एव प्रबुद्धता स नही होती । फिर भी एशिया एव अफ्रीका क अनेक नवोदित स्वतन्त्र देशो की तुलना म भारत मे लोकमत की स्थिति अधिक सोचनीय नही है ।

---

14 आपातकालीन घोषणा के पश्चात स्थिति म सुधार हुआ है ।

32

दवाव (हित)-समूह
[PRESSURE GROUPS]

आधुनिक सामाजिक जीवन विभिन्न जटिलताओ एव विषमताओ से युक्त है। प्राय प्रत्येक देश मे समान हित वाले व्यक्ति अपने को समूहो मे सगठित करके अपने हितो एव स्वार्थों की रक्षा का प्रयत्न करते हैं। इहे दवाव-समूह (Pressure Groups) या हित समूह (Interest Groups) की सना दी जाती है। दवाव समूहो का महत्व दिन प्रतिदिन बढ रहा है। एक समय इन्हे सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। सामान्यजन एव राजनीति के गम्भीर विद्यार्थी दोनो ही इन्हे उपहास की दृष्टि से देखते थे। फ्रेडरिक का कथन है कि उन्हे ऐसी शैतानी शक्ति माना जाता था जो आधुनिक लोकतन्त्र एव प्रतिनिधि शासन की जडो को धीरे धीरे काट रही हो। 'लाबी' (Lobby) शब्द का अथ दोष, भ्रष्टाचार धोखाधडी आदि के समूह से समभा जाता था।[1] शन शन दवाव समूहो को सामाजिक मान्यता मिलने लगी और आज इन्हे आवश्यक बुराई न मानकर स्वस्थ सस्था एव राजनीतिक जीवन का एक स्वस्थ तत्व माना जाता है। आज से दो सौ वप पूव सयुक्त राज्य अमेरिका म वरनी (Verney) के अनुसार दवाव समूहो को आवश्यक नही समभा जाता था और काग्रेस के सदस्यो का हितो सम्ब धी ज्ञान ही पर्याप्त माना जाता था।[2] आज प्राय हर अमेरिकी

---

1 They were held upto scorn both by the muckrakers and by sane students of politics They were the sinisters forces gnawing at the foundations of modern democracy of representative government and the word Lobby' supposedly comprehended a whole congeries of abuses corruption fraud and the like ' —Carl J Freidrich *Constitutional Government and Democracy*, 1966 p 460

2 Verney, cited in M G Gupta *Modern Government Theory and Practice* 1966 p 206

विधायक किसी न किसी हित विशेष का अधिकृत प्रवक्ता होता है और उसका प्रतिनिधित्व करता है। दवाव समूहो द्वारा विधानमण्डलो को अपने हित म प्रभावित करने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है। दवाव समूह स्वय विधानमण्डल के पीछे लघु विधानमण्डल का रूप धारण कर चुके है। **प्रो फाइनर** ने इन दवाव समूहो को अज्ञात साम्राज्य की सना दी है।[3]

माईरन वीनर के अनुसार हित या दवाव समूह से अभिप्राय ऐच्छिक रूप से सगठित ऐसे समुदाय से है जो प्रशासकीय ढाचे से बाहर रहकर शासकीय अधिकारियो के निर्वाचन, मनोनयन तथा सावजनिक नीति के निर्माण एव क्रियान्वयन को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।"[4] **एम जी गुप्ता** के अनुसार दवाव या हित समूह एक ऐसा माध्यम है जिससे सामान्य उद्देश्य वाले व्यक्तियो द्वारा सावजनिक मामलो की कायविधि को प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता है। इस दृष्टि से हर सामाजिक समूह जो औपचारिक रूप स शासन पर नियन्त्रण करने की कोशिश किये बिना ही प्रशासकीय एव विधायी दोनो प्रकार के राजनीतिक पदाधिकारियो के आचरण को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है दवाव समूह या हित समूह कहलाता है।[5] दवाव समूह पूणरूपण राजनीतिक सगठन नही होते हैं। इनके द्वारा निर्वाचनो म प्रत्याशियो का भी खडा नही किया जाता और न इनका कोई राजनीतिक कायक्रम ही होता है। **फ्रासिस कसिल्स** के अनुसार 'दवाव समूह स तात्पय ऐसे व्यक्तियो के समूह से है जो शासकीय कायकलापो या उनके बिना ही राजनीतिक परिवतन लाने का प्रयत्न करते है। ऐसे दवाव समूहो को विधानमण्डल मे राजनीतिक दल के रूप म कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता।"[6]

दवाव समूह एव राजनीतिक दलो म अन्तर अग्रवत है

---

3 According to Herman Finer Pressure groups are 'anonymous empire —Cited by M G Gupta *Ibid*, p 206

4 By interest or pressure group we mean any voluntary organised group outside of the governmental structure which attempts to influence the nomination or appointment of governmental personnel the adoption of public policy its administration or its adjudication' Myron Weiner cited by P Saran *Political Institutions and Comparative Governments* (In Hindi) 1971 p 725

5 Pressure groups may therefore be defined as a medium through which people with common interests may endeavour to affect the course of public affairs In this sense any social group which seeks to influence the behaviour of political officers both administrative and legislative without attempting to gain formal control of government would be a pressure group"—M G Gupta *Modern Governments Theory and Practice*, 1967 pp 204 05

6 Cited by P Saran *op cit* p 725

(1) दबाव समूहो की अपेक्षा राजनीतिक दलो के सगठन व्यापक होते हैं। उनके राजनीतिक कार्यक्रम होते हैं जबकि दबाव समूहो का कोई राजनीतिक कार्यक्रम नही होता। दबाव समूह का प्रधान लक्ष्य अपने हितो की रक्षा करना होता है।

(2) राजनीतिक दलो मे शासन सत्ता को हस्तगत करने हेतु आपस मे तीव्र प्रतिस्पर्धा होती रहती है जबकि दबाव समूह का उद्देश्य अपने हितो के अनुकूल विधियो को पारित कराना एव विपरीत विधियो को पारित होने से रोकना है।

(3) राजनीतिक दलो की भाति दबाव समूह निर्वाचनो मे भाग नही लेते हैं।

(4) दबाव समूह विधानमण्डल के बाहर रहकर कार्य करते हैं। वे विधान मण्डल के अन्दर नही अपितु उसकी दीर्घा मे सक्रिय रहते है। विधायको से सम्पर्क स्थापित करना और उन्हे अपने हितो की रक्षा के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित करना उनका प्रमुख कार्य है।

दबाव-समूहो का देश के सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्ध होता है। प्राय हर उस देश मे दबाव समूह पाये जाते हैं जहा पर समुदायो के निर्माण की स्वतन्त्रता है। व्यापारियो, स्त्रियो अल्पसख्यको, श्रमिको, कृषि फार्मों, चर्च, व्यवसायो एव वृद्धो से सम्बन्धित दबाव या हित समूह पाये जाते हैं। ये हित-समूह अपने हितो की रक्षार्थ वेतनिक कर्मचारियो की नियुक्ति करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका मे इन्हे लॉबीइस्ट (Lobbyist) कहा जाता है। शासकीय कर्मचारियो एव कार्यालयो से अपने हितो के रक्षार्थ इनके द्वारा निकट का सम्बन्ध रखा जाता है। दबाव समूह शासन को अपने पक्ष मे प्रभावित करने के लिए सबल जनमत का निर्माण करते हैं और इस उद्देश्य हेतु वे पर्याप्त धन व्यय करते हैं। जनता मे अपने अनुकूल वातावरण बनाने के लिए ये समाचार पत्रो रेडियो, टेलीविजन एव लोक-सम्पर्क विशेषज्ञो की सेवाए प्राप्त करते हैं। सक्षेप मे, दबाव समूहो द्वारा हर सम्भव प्रचार एव साधन से अपने हित मे जनमत तैयार किया जाता है। शासन की प्रशासकीय एव विधायी नीतियो को वे प्रभावित करते हैं। देश के विधायको को अपने पक्ष मे करने का वे हर प्रयत्न करते हैं तथा शासकीय कर्मचारियो को अपने हित मे प्रभावित करते हैं।

ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा, फ्रास जापान आदि देशो मे विभिन्न दबाव या हित-समूह कार्य करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका मे दबाव समूह का प्रभाव अत्यधिक व्यापक है और इनकी सख्या सयुक्त राज्य मे तीन लाख से भी अधिक है। दबाव समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए, छोटे व बडे, शक्तिशाली एव कमजोर, स्थायी एव अस्थायी आर्थिक एव व्यावसायिक आदि।

दबाव-समूह के निरन्तर बढ़ते हुए महत्व के लिए उत्तरदायी तत्व

प्रत्येक देश मे दबाव-समूहो के महत्व मे वृद्धि के लिए पृथक तत्व उत्तरदायी हैं। परन्तु कुछ सामान्य तत्व प्राय प्रत्येक देश मे सक्रिय हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा एव आस्ट्रेलिया मे प्राय प्रत्येक दबाव या हित-समूह राजनीतिक दलो को

प्रभावित करता है । फास जैसे देश म जहा बहुदलीय पद्धति है, विभिन्न दवाव समूह अपने को विभिन्न दलो से सम्बद्ध कर लेते ह । अत फास म विभिन्न दल विभिन्न हित-समूहा से अभिन्न रूप मे सम्बन्धित हैं । फासीसी दलो के द्वारा इन वर्गीय एव विशिष्ट हितो को सामान्य राष्ट्रीय हितो के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है । सयुक्त राज्य अमेरिका म दवाव समूहो के विकास के लिए प्रधान रूप से देश का विशाल आकार, राजनीतिक दलो का अस्पष्ट कायक्रम एव ससदीय शासन व्यवस्था का अभाव उत्तर दायी है । इसके अतिरिक्त शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित अध्यक्षात्मक व्यवस्था के अन्तगत विधि निर्माण का दायित्व कायपालिका—राष्ट्रपति—के हाथो मे न होकर काग्रेसजनो के हाथा म केन्द्रित है । फलस्वरूप सयुक्त राज्य अमेरिका म ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी कि समान व्यवसाय या उद्योगो से सम्बन्धित व्यक्ति अपने हितो के रक्षाथ एक समूह मे सगठित होने लगे और अपने स्वार्थों के अनुकूल विधियो के निर्माण, विरोधी विधियो के निर्माण को रोकने तथा विधायको को प्रभावित करने के प्रयत्न करने लगे । ऐसी ही परिस्थिति म 1823 ई मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे पोक वेरल विधान (Pork barrel legislation) का विकास हुआ था । सयुक्त राज्य अमेरिका म जब किसी विशेप समूह या क्षेत्र को राजनीतिक उद्देश्य के लिए शासकीय अनुदान या धन प्रदान किया जाता है तो सम्बन्धित विधेयक को विरोधियो द्वारा पोक बेरल विधेयक की सज्ञा दी जाती थी । 1823 ई मे नदियो एव बन्दरगाहो के लिए धन-राशि स्वीकृत करने वाला ऐसा प्रथम विधेयक पारित किया गया था । उस समय की तुलना म दवाव या हित समूहा की सख्या मे असाधारण रूप से वद्धि हुई है और अब तो सयुक्त राज्य अमेरिका म दबाव समूहो को सावजनिक मान्यता प्राप्त हो गयी है ।

ग्रेट ब्रिटेन म 19वी सदी के सुधार आन्दोलना के परिणामस्वरूप दवाव समूहा का विकास हुआ है । वे थम, कॉब्डन एव मिल का इस प्रकार के हित समूहा से सम्बन्ध था । इस समय महाद्वीपीय देशो म निजी समूहो का भी अस्तित्व था । लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा क विकास तथा आर्थिक जीवन म राज्य के वढते हुए हस्तक्षेप के कारण दबाव समूहा की गतिविधियो मे असाधारण वृद्धि हुई है । राज्य के वढते हुए दायित्व के सम्पादन के लिए हर राज्य मे वडी सख्या मे कमचारिया की नियुक्ति की गयी है । आज राज्य द्वारा सबसे अधिक सख्या म कमचारियो को नियुक्त किया जाता है । शासन विभिन्न उद्योगो का, यहा तक कि निजी क्षेत्र के उद्योगा को भी आर्थिक अनुदान (subsidies) प्रदान करता है । यही नही, राज्य व्यापार, उद्योग एव कृपि का नियमन भी करता है । इस सवके फलस्वरूप व्यक्ति अधिकाधिक शासन पर निभर रहन लग है और उनम यह धारणा घर कर गयी है कि यदि वे समय रहते हुए ठीक ढग स प्रशासन पर दवाव डालने म सफल हो जात हैं तो उन्ह अपनी किसी त्रुटि या दाप के लिए अनावश्यक रूप से कोई हानि नहीं होगी । प्रत्यक

(1) दबाव-समूहों की अपेक्षा राजनीतिक दलों के संगठन व्यापक होते हैं। उनके राजनीतिक कार्यक्रम होते हैं जबकि दबाव समूहों का कोई राजनीतिक कार्यक्रम नहीं होता। दबाव समूह का प्रधान लक्ष्य अपने हितों की रक्षा करना होता है।

(2) राजनीतिक दलों में शासन सत्ता को हस्तगत करने हेतु आपस में तीव्र प्रतिस्पर्धा होती रहती है जबकि दबाव समूह का उद्देश्य अपने हितों के अनुकूल विधियों को पारित कराना एवं विपरीत विधियों को पारित होने से रोकना है।

(3) राजनीतिक दलों की भाँति दबाव समूह निर्वाचनों में भाग नहीं लेते हैं।

(4) दबाव समूह विधानमण्डल के बाहर रहकर कार्य करते हैं। वे विधान-मण्डल के अन्दर नहीं अपितु उसकी दीर्घा में सक्रिय रहते हैं। विधायकों से सम्पर्क स्थापित करना और उन्हें अपने हितों की रक्षा के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित करना उनका प्रमुख कार्य है।

दबाव समूहों का देश के सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्ध होता है। प्रायः हर उस देश में दबाव समूह पाये जाते हैं जहाँ पर समुदायों के निर्माण की स्वतन्त्रता है। व्यापारियों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों, श्रमिकों, कृषि फार्मों, चर्च, व्यवसायों एवं वृद्धों से सम्बन्धित दबाव या हित-समूह पाये जाते हैं। ये हित-समूह अपने हितों की रक्षार्थ वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति करते हैं। *संयुक्त राज्य अमेरिका में इन्हें* लॉबीइस्ट (Lobbyist) कहा जाता है। शासकीय कर्मचारियों एवं कार्यालयों से अपने हितों के रक्षार्थ इनके द्वारा निकट का सम्बन्ध रखा जाता है। दबाव समूह शासन को अपने पक्ष में प्रभावित करने के लिए सबल जनमत का निर्माण करते हैं और इस उद्देश्य हेतु वे पर्याप्त धन व्यय करते हैं। जनता में अपने अनुकूल वातावरण बनाने के लिए वे समाचार-पत्रों, रेडियो, टेलीविजन एवं लोक-सम्पर्क विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त करते हैं। संक्षेप में, दबाव समूहों द्वारा हर सम्भव प्रचार एवं साधन से अपने हित में जनमत तैयार किया जाता है। शासन की प्रशासकीय एवं विधायी नीतियों को वे प्रभावित करते हैं। देश के विधायकों को अपने पक्ष में करने का वे हर प्रयत्न करते हैं तथा शासकीय कर्मचारियों को अपने हित में प्रभावित करते हैं।

ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जापान आदि देशों में विभिन्न दबाव या हित समूह कार्य करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में दबाव समूह का प्रभाव अत्यधिक व्यापक है और इनकी संख्या संयुक्त राज्य में तीन लाख से भी अधिक है। दबाव समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए, छोटे व बड़े, शक्तिशाली एवं कमजोर, स्थायी एवं अस्थायी, आर्थिक एवं व्यावसायिक आदि।

दबाव-समूह के निरन्तर बढ़ते हुए महत्व के लिए उत्तरदायी तत्व

प्रत्येक देश में दबाव-समूहों के महत्व में वृद्धि के लिए पृथक तत्व उत्तरदायी हैं। परन्तु कुछ सामान्य तत्व प्रायः प्रत्येक देश में सक्रिय हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा एवं आस्ट्रेलिया में प्रायः प्रत्येक दबाव या हित-समूह राजनीतिक दलों को

प्रभावित करता है। फ्रास जैसे देश मे जहा बहुदलीय पद्धति है, विभिन्न दबाव समूह अपने को विभिन्न दलो से सम्बद्ध कर लेते है। अत फ्रास मे विभिन्न दल विभिन्न हित समूहो से अभिन्न रूप म सम्बन्धित हैं। फ्रासीसी दलो के द्वारा इन वर्गीय एव विशिष्ट हितो को सामान्य राष्ट्रीय हितो के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका म दबाव समूहो के विकास के लिए प्रधान रूप से देश का विशाल आकार, राजनीतिक दलो का अस्पष्ट कार्यक्रम एव ससदीय शासन व्यवस्था का अभाव उत्तर दायी है। इसके अतिरिक्त शक्ति पृथक्करण के सिद्धा तो पर आधारित अध्यक्षात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत विधि-निर्माण का दायित्व कार्यपालिका—राष्ट्रपति—के हाथो मे न होकर काग्रेसजनो के हाथो म केन्द्रित है। फलस्वरूप सयुक्त राज्य अमेरिका मे ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न हो गयी कि समान व्यवसाय या उद्योगो से सम्बन्धित व्यक्ति अपने हितो के रक्षार्थ एक समूह म सगठित होने लगे और अपने स्वार्थों के अनुकूल विधियो के निर्माण, विरोधी विधियो के निर्माण को रोकने तथा विधायको को प्रभावित करने के प्रयत्न करने लगे। ऐसी ही परिस्थिति मे 1823 ई म सयुक्त राज्य अमरिका म पोर्क-बैरल विधान (Pork barrel legislation) का विकास हुआ था। सयुक्त राज्य अमेरिका म जब किसी विशेष समूह या क्षेत्र को राजनीतिक उद्देश्य के लिए शासकीय अनुदान या धन प्रदान किया जाता है तो सम्बन्धित विधेयक को विरोधियो द्वारा पोर्क-बैरल विधेयक की सज्ञा दी जाती थी। 1823 ई म नदियो एव बन्दरगाहो के लिए धन-राशि स्वीकृत करने वाला ऐसा प्रथम विधेयक पारित किया गया था। उस समय की तुलना मे दबाव या हित समूहो की सख्या म असाधारण रूप म वृद्धि हुई है और अब तो सयुक्त राज्य अमेरिका मे दबाव समूहो को सार्वजनिक मान्यता प्राप्त हो गयी है।

ग्रेट ब्रिटेन म 19वी सदी के सुधार आन्दोलनो के परिणामस्वरूप दबाव-समूहो का विकास हुआ है। बेन्थम, कॉब्डन एव मिल का इस प्रकार के हित समूहो से सम्बन्ध था। इस समय महाद्वीपीय देशो म निजी समूहो का भी अस्तित्व था। लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा के विकास तथा आर्थिक जीवन मे राज्य के बढते हुए हस्तक्षेप के कारण दबाव समूहो की गतिविधिया म असाधारण वृद्धि हुई है। राज्य के बढते हुए दायित्व के सम्पादन के लिए हर राज्य म बडी सख्या में कर्मचारियो की नियुक्ति की गयी है। आज राज्य द्वारा सबसे अधिक सख्या म कर्मचारियो को नियुक्त किया जाता है। शासन विभिन्न उद्योगो का, यहाँ तक कि निजी क्षेत्र के उद्योगो को भी आर्थिक अनुदान (subsidies) प्रदान करता है। यही नही, राज्य व्यापार, उद्योग एव कृषि का नियमन भी करता है। इस सबके फलस्वरूप व्यक्ति अधिकाधिक शासन पर निर्भर रहने लगे है और उनम यह धारणा घर कर गयी है कि यदि वे समय रहते हुए ठीक ढग से प्रशासन पर दबाव डालने म सफल हो जाते हैं तो उन्ह अपनी किसी त्रुटि या दोष के लिए अनावश्यक रूप से कोई हानि नही होगी। प्रत्येक

व्यक्ति राज्य क विपरीत प्रभाव एव हस्तक्षेप स अपन हिता की रक्षा क लिए हर सम्भव प्रयत्न करता है ।

एक अन्य तथ्य बडा महत्वपूण है । जिस अनुपात मे शासन की शक्तियो म वद्धि हुई है उसी अनुपात म ससद की शक्ति का ह्रास हुआ है । राजनीतिक दला के विशेष हिता (interests) स सम्बद्ध हो जान पर विधानमण्डल भी उन्ही विशेष हिता के हाथा मे खेलने लगता है और विधायका पर इन विशेष हितो का इतना प्रभाव वढ जाता है कि वे उनकी उपेक्षा करन म असफल हो जाते हैं । फलस्वरूप विधानमण्डल के प्रतिनिधि स्वरूप मे अन्तर पड जाता है । इसके अतिरिक्त दलीय अनुशासन भी कठोर हो गया है और उसी अनुपात म प्रतिनिधि सभा के व्यक्तिगत सदस्यो के सम्मान का स्तर भी गिरता गया है । ब्रिटिश कॉमन्स सभा म होने वाले वाद विवादो एव मतदान मे अब जनता को पहले की भाति रुचि नही रही है । आज शासन एव विशेष हिता के मध्य होन वाले विचार विमश के परिणामो म जनता की कामन्स सभा के मतदाना एव निणया स अधिक रुचि होती है । इसी अथ म दबाव समूहा को विधानमण्डल के पीछे एक अन्य विधानमण्डल की सना दी जाती है । दबाव-समूहा को आधुनिक लोकतन्त्रो म उपलब्ध वैज्ञानिक प्रचार-साधनो की उपलब्धि के फलस्वरूप विशेष स्थिति प्राप्त हो गयी है । वे शासन के निमाता (King makers) बन गये हैं । विशेष स्थितिया मे उनके प्रभाव म असाधारण वद्धि हो जाती है । सयुक्त राज्य अमेरिका म तो इन्हे ततीय सदन (Third House) एव सहायक शासन (Assistant Government) कहा जाता है ।[7]

प्रो फाइनर के अनुसार जब राजनीतिक दला क सिद्धान्त एव सगठन म शिथिलता एव कमजोरी आ जाती है तब दबाव समूहा को फलने फूलने का अवसर प्राप्त हो जाता है और वे अधिक शक्तिशाली हो जाते है । जहा दबाव समूह शक्तिशाली होते हैं वहाँ पर राजनीतिक दल कमजोर होते हैं और जहा राजनीतिक दल शक्तिशाली होगे वहा दबाव समूह कमजोर हो जायेंगे ।[8] लेकिन हरमैन फाइनर का यह मत पूणरूपण सत्य नही है । ग्रेट ब्रिटन मे राजनीतिक दल सिद्धान्त एव सगठन की दृष्टि स पर्याप्त शक्तिशाली है, यहा तक कि सयुक्त राज्य अमरिका क राजनीतिक दला के सिद्धान्त एव सगठन म वह दृढता नही है जो ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिक दला म पायी जाती है । क्या इसका यह अथ है कि सयुक्त राज्य अमरिका की अपेक्षा ग्रेट ब्रिटेन के दबाव-समूह कम शक्तिशाली हैं ? ब्रिटेन म दबाव समूहा के अपक्षाकृत कम प्रभावशाली होने के अन्य कारण है । ग्रेट ब्रिटेन के विभिन्न हितो एव सम्बन्धित व्यावसायिक सस्थाआ

---

7 Finer *op cit* pp 458 and 460

8 Finer *Governments of Greater European Powers*, p 34, cited by M G Gupta *op cit*, p 207

तथा हित-समूहो को सम्बन्धित विधियो के निर्माण को स्व हित म प्रभावित करने के लिए अन्य तरीके उपलब्ध हैं। ब्रिटेन म राजनीतिक दलो के माध्यम से विभिन्न दबाव-समूह अपने पक्ष म सम्बन्धित विधान को प्रभावित करने म सफल होते हैं क्योंकि इन राजनीतिक दलो म विभिन्न हित समूह होते है। अत विभिन्न हित समूह दल के भीतर से या दलीय स्तर पर विधान (legislation) को अपने पक्ष म प्रभावित करने म सफल होते हैं। विधि निर्माण के दौरान म विभिन्न मन्त्रालयो को भी औपचारिक रूप से सम्बन्धित पक्षो द्वारा अपना मत प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार किसी प्रस्तावित विधि के अन्तिम रूप मे पारित होने तक सम्बन्धित पक्षो या हित-समूहो को अपने पक्ष मे प्रभावित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। अत स्पष्ट है कि मन्त्रालय स्तर पर भी विधान को प्रभावित किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि ग्रेट ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका की द्विदलीय पद्धति द्वारा विभिन्न दृष्टिकोणो तथा अनेक प्रकार की समस्याओ का निश्चित रूप से प्रतिनिधित्व सम्भव नही होता है। दबाव-समूहो द्वारा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली म सवथा भिन्न प्रकार की भूमिका निभायी जाती है जबकि ससदीय देशो म उनकी स्थिति भिन्न होती है। शक्ति पृथक्करण पर आधारित अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (यथा—संयुक्त राज्य अमेरिका) मे कार्यपालिका द्वारा विधि निर्माण के सन्दर्भ म प्रधान भूमिका नही निभायी जाती है। सभी विधि विधायको द्वारा प्रस्तावित की जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका म विधि निर्माण के क्षेत्र मे राष्ट्रपति की अपेक्षा कांग्रेस को अधिक अवसर प्राप्त हैं। अत वहाँ कांग्रेस के सदस्यो (कांग्रेसजन) एव सम्बन्धित समितियो के सदस्यो से सम्पर्क स्थापित करना एवं उन्हे अपने पक्ष म प्रभावित करना आवश्यक है। इसलिए संयुक्त राज्य अमेरिका म सम्बन्धित दबाव समूहो द्वारा कांग्रेसजनो को प्रभावित करने वाले कर्मचारियो (Lobbyists) की नियुक्ति की जाती है। ये सीनेटरो एव प्रतिनिधि सदन के सदस्यो तथा समितियो के सदस्यो का समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्हे घूस देते हैं और हर प्रकार के भ्रष्ट एव अवाछनीय साधनो को अपनाने म नही हिचकते है। ससदीय व्यवस्था म विधि निर्माण पर शासन (मन्त्रिमण्डल) का एकाधिकार होता है। मन्त्रिमण्डल के द्वारा 85 से 90 प्रतिशत तक विधेयक ससद मे स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किये जाते हैं। दलीय बहुमत के कारण उनका पारित हो जाना स्वाभाविक है। व्यक्तिगत सदस्यो द्वारा प्रस्तावित विधेयक मन्त्रिमण्डल के समर्थन से ही पारित हो सकते हैं। स्पष्ट है ससदीय व्यवस्था प्रधान देशो मे किसी समूह विशेष को अपने हित म वाछित विधि के निर्माण हेतु सम्बन्धित मन्त्री, मन्त्रालय एव मन्त्रिमण्डल को प्रभावित करना आवश्यक है। ससदीय व्यवस्था मे दलीय स्तर पर दलीय दबाव द्वारा भी वाछित विधि का निर्माण करा सकना सम्भव होता है। यदि किसी मन्त्री द्वारा कोई विधेयक किसी रूप म विधानमण्डल म प्रस्तुत किया जाता है तो इसका यह सहज अर्थ है कि उस रूप मे उस विधेयक को पारित करने का निश्चय मन्त्रिमण्डल ने

यदि उसम परिवर्तन या सशोधन कराना है तो वह विधानमण्डल के स्तर पर नही अपितु मन्त्रिमण्डलीय स्तर पर ही सम्भव है। अत सिद्धान्त एव सगठन की दृष्टि से राजनीतिक दलो की शक्ति या शक्तिहीनता का दबाव समूहो की शक्ति या शक्तिहीनता स कोई सम्बन्ध नही है।

सयुक्त राज्य अमेरिका एक वृहद् देश है। वहाँ के क्षेत्रीय हित भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न क्षेत्रो स सम्बन्धित हित अपने स्वार्थों के अनुरूप सघीय नीति को प्रभावित करने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं। इससे भी सयुक्त राज्य अमरिका म दबाव-समूहो की सख्या एव प्रभाव म असाधारण वृद्धि हुई है। ब्रिटेन म सयुक्त राज्य अमरिका की भाँति दबाव-समूहो द्वारा विधानमण्डल को सीधे प्रभावित नही किया जाता है। फ्रान्स म ब्रिटेन की अपेक्षा दबाव समूह अधिक शक्तिशाली हैं परन्तु उतने ही वे अनुत्तरदायी भी हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि फ्रान्स म ससदीय व्यवस्था होते हुए भी बहुदलीय पद्धति के कारण विधि निर्माण म कार्यपालिका की भूमिका प्रमुख नही है। फ्रेंच विधानमण्डल—असेम्बली—मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और विधि निर्माण म उसकी भूमिका प्रमुख है।

दबाव-समूहो के कार्य एव कार्यपद्धति

दबाव समूहो के कार्य

दबाव समूहो का क्या कार्य है? दूसरे शब्दो मे, वे देश की राजनीतिक प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करते है? प्रभावित करने के उनके साधन एव पद्धति क्या है? आधुनिक जटिल समाज मे व्यक्ति अकेले अपने हितो की रक्षा नही कर सकता है, अत विभिन्न प्रकार के समूहो, सगठनो का निर्माण हुआ है। उदाहरण के लिए, श्रमिको द्वारा अपनी मागें पूरी करने के लिए जब सुदृढ श्रमिक सगठन का निर्माण किया गया तो उद्योगपतियो ने भी मिलकर अपनी रक्षा के प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। अत यह स्पष्ट है कि आधुनिक औद्योगिक या विकासोन्मुख समाज म व्याप्त प्रतिस्पर्धा एव जटिलता के कारण विभिन्न समूहो का उदय हुआ है। एक हित-समूह म एक ही हित वाले व्यक्ति शामिल होते हैं। समूह जीवित रहने के लिए आवश्यक होते हैं। अत आधुनिक काल मे दबाव या हित समूह अनिवार्य ही नही, अपितु वाछनीय होते हैं।

दबाव समूहो के सामान्यत निम्न कार्य है

(1) अपने सदस्यो के हितो—आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक (जिन्ह प्राप्त करने के लिए हित समूह का निर्माण किया गया है)—को प्राप्त करने का प्रयत्न करना। राज्य के सकारात्मक स्वरूप एव नियोजन के कारण उसकी शक्तियो म असाधारण वृद्धि हुई है। शासन की सत्ता रूपी तलवार स हित समूह अपने सदस्यो की रक्षा के लिए ढाल का कार्य करते है।

(2) आधुनिक समाज मे हितो की विभिन्नता एव अधिकता पायी जाती है।

अनेक प्रकार के हित समाज मे पाये जाते है। हित वैभिन्य के फलस्वरूप मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक जीवन म विभिन्न क्षेत्र खुल जाते हैं। सामाजिक जीवन मे किसी एक हित की प्रधानता भी नही होती और न उसका एकाधिकार ही होता है। दवाव समूहो के द्वारा हितो की विविधता एव उनम प्रतिस्पर्धा को सहज ही प्रश्रय प्रदान किया जाता है जिसके फलस्वरूप वे अप्रत्यक्ष रूप म सामान्य मत (Con sensus) के निर्माण म सहायक होते हैं। लोकतन्त्र मे विचार विमर्श एव वाद विवाद की स्वतन्त्रता एक अनिवार्यता होती है अन्यथा उसे लोकतन्त्र कहना ही गलत है। यदि किसी समाज मे मतभेद एव विचार विमर्श की गुजाइश नही है तो वह सर्वाधिकारी समाज (Totalitarian Society) है। ऐसा समाज गतिहीन होता है तथा उसम मानव व्यक्तित्व के कुण्ठित होने की हर सम्भावना होती है। लोकतन्त्र म मतभेद एव मत वैभिन्य स्वाभाविक है। दवाव समूहो के द्वारा यह मतभेद एव मत वैभिन्य अभिव्यक्त होते रहते हैं। दबाव समूहा म पारस्परिक प्रतिस्पर्धा भी होती रहती है लेकिन उनकी यह प्रतिस्पर्धा आत्मघाती नही होती। वे एक दूसरे का केवल उस सीमा तक ही विरोध करते हैं जहाँ तक कि उनके हितो मे सघर्ष होता है।

(3) दवाव समूह लोकतन्त्र मे बाधक नही है, अपितु वे लोकतन्त्र की व्यवस्था म सहायक होते है। अत उन्हे लोकतन्त्र का पर्यायवाची कहने म कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। वर्तमान समाज मे व्यक्ति व समूहो के हिता मे कोई विरोध नही है। लोकतन्त्रीय समाज मे व्यक्तियो को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त है, विभिन्न विकल्प उपलब्ध होते हैं, कोई दबाव एव धास का वातावरण नही होता। समाज के विभिन्न हित समूहा द्वारा शासन की अनुचित नीतियो का विरोध समाज के असगठित जना की तरफ से किया जाता है।

(4) निर्वाचन काल म दवाव समूहो द्वारा लोकतान्त्रिक व्यवस्था को जीवित एव जागृत रखा जाता है। वे इस काल म कार्यपालिका की निरकुशता पर अवरोधक रूप म कार्य करते हैं। अपने हिता की रक्षार्थ अपने विशिष्ट ज्ञान तथा प्रभावित करने की असाधारण कला का उत्साहपूर्वक प्रयोग करके सदन एव समिति स्तर पर वे विधि निर्माण को प्रभावित करते है

(5) दवाव समूह सार्वजनिक हित की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत समूह हित म अधिक सक्रिय होते है, परन्तु दवाव समूहो के द्वारा सम्बन्धित विषयो म विशेषकर तकनीकी एव विशिष्ट मामलो मे जो आकडे और तथ्य उपस्थित किये जाते हैं वे प्रशासको एव विधायको के लिए विधि-निर्माण म पर्याप्त सहायक होते हैं।

(6) प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध म भी दवाव-समूहा द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। प्राय प्रत्येक देश म प्रतिनिधियो का निर्वाचन क्षेत्रीय आधार पर होता है लेकिन मतदाता का हित केवल एक क्षेत्र से ही सम्बन्धित नही उसके अनेक व्यावसायिक सामाजिक एव अन्य हित होते हैं। स्प...

यदि उसम परिवतन या सशोधन कराना है तो वह विधानमण्डल के स्तर पर नही अपितु मन्त्रिमण्डलीय स्तर पर ही सम्भव है । अत सिद्धान्त एव सगठन की दृष्टि स राजनीतिक दला की शक्ति या शक्तिहीनता का दबाव समूहा की शक्ति या शक्तिहीनता से कोई सम्बन्ध नही है ।

सयुक्त राज्य अमेरिका एक वृहद् देश है । वहाँ के क्षेत्रीय हित भिन्न भिन्न हैं । विभिन्न क्षेत्रा से सम्बन्धित हित अपने स्वार्थों के अनुरूप सघीय नीति को प्रभावित करन का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं । इससे भी सयुक्त राज्य अमरिका म दबाव-समूहो की सख्या एव प्रभाव म असाधारण वद्धि हुई है । ब्रिटेन म सयुक्त राज्य अमरिका की भाति दबाव-समूहा द्वारा विधानमण्डल को सीधे प्रभावित नही किया जाता है । फ्रास म ब्रिटेन की अपेक्षा दबाव समूह अधिक शक्तिशाली हैं परन्तु उतने ही वे अनुत्तरदायी भी हैं । इसका प्रधान कारण यह है कि फ्रास म ससदीय व्यवस्था होते हुए भी बहुदलीय पद्धति के कारण विधि निर्माण म कायपालिका की भूमिका प्रमुख नही है । फ्रेंच विधानमण्डल—असेम्बली—मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और विधि निर्माण म उसकी भूमिका प्रमुख है ।

दबाव-समूहो के कार्य एव कार्यपद्धति

दबाव समूहो के काय

दबाव समूहा का क्या काय है ? दूसरे शब्दो मे, वे देश की राजनीतिक प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करते है ? प्रभावित करने के उनके साधन एव पद्धति क्या है ? आधुनिक जटिल समाज मे व्यक्ति अकेले अपने हितो की रक्षा नही कर सकता है, अत विभिन्न प्रकार के समूहो, सगठनो का निर्माण हुआ है । उदाहरण के लिए श्रमिका द्वारा अपनी मागें पूरी करने के लिए जब सुदृढ श्रमिक सगठन का निर्माण किया गया तो उद्योगपतियो न भी मिलकर अपनी रक्षा के प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया । अत यह स्पष्ट है कि आधुनिक औद्योगिक या विकासो मुख समाज मे व्याप्त प्रतिस्पधा एव जटिलता के कारण विभिन्न समूहो का उदय हुआ है । एक हित-समूह म एक ही हित वाले व्यक्ति शामिल होते हैं । समूह जीवित रहने के लिए आवश्यक होते हैं । अत आधुनिक काल म दबाव या हित समूह अनिवाय ही नही, अपितु वाछनीय होते है ।

दबाव समूहा के सामा यत निम्न काय हैं

(1) अपने सदस्यो के हितो—आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, मास्कृतिक (जिन्हे प्राप्त करने के लिए हित समूह का निर्माण किया गया है)—को प्राप्त करने का प्रयत्न करना। राज्य के सकारात्मक स्वरूप एव नियोजन के कारण उसकी शक्तियो मे असाधारण वृद्धि हुई है । शासन की सत्ता रूपी तलवार स हित समूह अपने सदस्यो की रक्षा क लिए ढाल का काय करते है ।

(2) आधुनिक समाज मे हितो की विभिन्नता एव अधिकता पायी जाती है।

अनेक प्रकार के हित समाज मे पाय जाते हैं। हित वैभिन्य के फलस्वरूप मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक जीवन म विभिन्न क्षेत्र खुल जात हैं। सामाजिक जीवन म किसी एक हित की प्रधानता भी नही होती और न उसका एकाधिकार ही होता है। दबाव समूहा के द्वारा हितो की विविधता एव उनमे प्रतिस्पर्धा को सहज ही प्रश्रय प्रदान किया जाता है जिसके फलस्वरूप वे अप्रत्यक्ष रूप म सामान्य मत (Consensus) के निर्माण मे सहायक होत हैं। लोकतन्त्र मे विचार विमश एव वाद विवाद की स्वतन्त्रता एक अनिवायता होती है अन्यथा उसे लोकतन्त्र कहना ही गलत है। यदि किसी समाज म मतभेद एव विचार विमश की गुजाइश नही है तो वह सर्वाधिकारी समाज (Totalitarian Society) है। ऐसा समाज गतिहीन होता है तथा उसम मानव व्यक्तित्व के कुण्ठित होने की हर सम्भावना होती है। लोकतन्त्र मे मतभेद एव मत वभिन्य स्वाभाविक है। दबाव-समूहो के द्वारा यह मतभेद एव मत वैभिन्य अभिव्यक्त होते रहते हैं। दबाव समूहा म पारस्परिक प्रतिस्पर्धा भी होती रहती है लेकिन उनकी यह प्रतिस्पर्धा आत्मघाती नही होती। वे एक दूसरे का केवल उस सीमा तक ही विरोध करते हैं जहाँ तक कि उनके हिता मे सघप होता है।

(3) दबाव समूह लोकतन्त्र मे बाधक नही है अपितु वे लोकतन्त्र की व्यवस्था म सहायक होते है। अत उन्ह लोकतन्त्र का पर्यायवाची कहने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। वतमान समाज मे व्यक्ति व समूहो के हिता म कोई विरोध नही है। लोकतन्त्रीय समाज मे व्यक्तिया को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त है, विभिन्न विकल्प उपलब्ध होते हैं, कोई दबाव एव धौस का वातावरण नही होता। समाज के विभिन्न हित समूहो द्वारा शासन की अनुचित नीतियो का विरोध समाज के असगठित जना की तरफ से किया जाता है।

(4) निर्वाचन-काल म दबाव समूहो द्वारा लोकतान्त्रिक व्यवस्था को जीवित एव जागत रखा जाता है। वे इस काल म कायपालिका की निरकुशता पर अवरोधक रूप मे काय करते हैं। अपने हितो की रक्षाथ अपने विशिष्ट ज्ञान तथा प्रमावित करने की असाधारण कला का उत्साहपूवक प्रयोग करके सदन एव समिति स्तर पर वे विधि-निर्माण को प्रभावित करते हैं

(5) दबाव समूह सावजनिक हित की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत समूह हित म अधिक सक्रिय होते हैं, परन्तु दबाव समूहा के द्वारा सम्बन्धित विषयो म विशेषकर तकनीकी एव विशिष्ट मामलो म जो आकडे और तथ्य उपस्थित किये जाते हैं वे प्रशासका एव विधायका के लिए विधि-निर्माण मे पर्याप्त सहायक होते हैं।

(6) प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे भी दबाव-समूहा द्वारा महत्वपूण भूमिका निभाई जाती है। प्राय प्रत्यक दश म प्रतिनिधिया का निर्वाचन क्षेत्रीय आधार पर होता है लेकिन मतदाता का हित केवल एक क्षेत्र स ही सम्बन्धित नही होता है। उसके अनेक व्यावसायिक, सामाजिक एव अन्य हित हात हैं। स्मरणीय है कि

नीतिक दलो के माध्यम से उसव इन विभिन्न हितो की पूर्ति सम्भव नही होती ह। अत समान हित वाले व्यक्तियो द्वारा समूह या सघ का निर्माण किया जाता है जिसस कि वे शासकीय नीति को अपन हित म प्रभावित कर सक। अत दवाव समूह व्याव सायिक प्रतिनिधित्व के लाभो को पूण करते हैं। समाज के विशिष्ट हितो का प्रति निधित्व करने के कारण राजनीतिक व्यवस्था म दवाव-समूहो का प्रभावपूण स्थान होना स्वाभाविक होता है। इनके द्वारा शासकीय नीति एव सावजनिक आकाक्षा के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। दवाव-समूहो द्वारा विशेषकर समाज के औद्योगिक एव आर्थिक हितो का प्रतिनिधित्व किया जाता है। विधायका को अपन पक्ष म प्रभावित करके दबाव-समूह प्रत्यक्षत जनकल्याण की वद्धि मे योग देत हैं।

(7) निर्वाचन-काल म प्रतिनिधियो के चयन मे दवाव समूहो द्वारा महत्वपूण भूमिका निभाई जाती है। विभिन्न हित समूहो की विभिन्न दलो म प्रभावपूण स्थिति हुआ करती है क्योकि राजनीतिक दलो को वे समय समय पर आर्थिक सहायता प्रदान करते है। सामान्य निर्वाचन के समय दलीय प्रत्याशी के रूप म विभिन्न दवाव समूह अपने उम्मीदवारो के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं।

दबाव समूहो की कायपद्धति

अपने उद्देश्यो की पूर्ति एव अपनी प्रभावशीलता की वद्धि एव स्थायित्व के लिए दबाव समूहो द्वारा निम्न उपायो का अनुगमन किया जाता है

(1) इनके सगठन सुदृढ़ होते हैं। उनके द्वारा वतनिक प्रचारको (Lobby ists) की नियुक्ति की जाती है। उनके सुसज्जित एव विधिवत कार्यालय होते हैं। य प्रचारक सदव जागरूक रहते हुए विधायका से निकट सम्पक एव सम्बन्ध स्थापित करते है जिससे कि विधायको को समूह के हितो के सम्बन्ध म अवगत करने तथा उनकी सहायता प्राप्त करन मे सरलता हो सके।

(2) अपने हितो के सम्बन्ध म दवाव समूह प्रचार करते है जिससे कि जनमत को प्रभावित किया जा सक। प्रचार के आधुनिकतम साधनो जसे कि समाचार पत्रो मे विज्ञापनो एव लेखो का प्रकाशन, रेडियो एव टलीविजन द्वारा प्रचार पुस्तको तथा सूचना-पत्रिकाओ का प्रकाशन आदि का प्रयोग किया जाता है। दवाव समूहो द्वारा विधायक के निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओ से उसे अपने हित म प्रभावित करने के लिए पत्र भिजवाने की व्यवस्था की [illegible] है। [illegible] मण्डल को भी भेजने की वे व्यवस्था करते है। शास[illegible] [illegible] करते हैं। वाछित एव आवश्यक विधेयक की [illegible] समक्ष प्रस्तुत करते है। हित समूहो के द्वारा इस [illegible]

(3) विधानमण्डल [illegible]

करने का [illegible] द्वारा

सक्रिय रहते है। प्रमुख आर्थिक समूह अपने स्थायी एजेंट रखते है और आवश्यकता पडने पर प्रमुख वकीलो को इस काय के लिए नियुक्त करते हैं।

(4) विधायको को वे सम्बन्धित मामलो म आवश्यक सूचना एव आकडे प्रदान करते हैं।

(5) दबाव समूह अपने हितो से सहानुभूति एव सहयोग रखने वाले व्यक्तिया को, भले ही वे किसी भी दल के क्या न हो, निवाचनो म विधायक पद के लिए अपना प्रत्याशी मनोनीत करने का प्रयत्न करते हैं और विजयी बनाने के लिए हर प्रकार का प्रयत्न करते हैं। निर्वाचना मे दबाव समूहो द्वारा उम्मीदवारा का समथन एव विरोध इस बात को ध्यान मे रखकर किया जाता है कि उनके हिता के प्रति उसका क्या दृष्टिकोण है ? हितो के प्रति सहानुभूति रखने वाले प्रत्याशी को विजयी बनाने के लिए वे हर प्रकार का प्रयत्न करते है। निर्वाचन मे विजयी होने पर इन विधायको के लिए सहायता करने वाले हित समूहा के हित एव दबाव की उपेक्षा करना सरल नही होता है।

(6) दबाव समूहो द्वारा अपनी उचित एव न्यायसगत मागा को मनवाने के लिए वध एव खुले उपायो का सहारा लिया जाता है। लेकिन कभी-कभी इनके अभिकर्ता अपने स्वार्थों की उपलब्धि के लिए अनुचित एव भ्रष्ट साधना, रिश्वत एव अन्य कुत्सित उपाया, जसे स्त्रिया का भी उपयोग करते ह। विधायका से सम्पक स्थापित करने के लिए वे उन्ह भोज एव पार्टियो म आमन्त्रित करते हैं। यह ठीक है कि विधायको को केवल भोज देकर ही अपने पक्ष मे नही किया जा सकता है परन्तु इस प्रकार उनस घनिष्ठता बढाने के अवसर तो प्राप्त हो ही जाते है। सयुक्त राज्य अमेरिका म दबाव समूहो के द्वारा समितिया के सदस्यो को प्रभावित करने का भी प्रयत्न किया जाता है। ब्रिटेन मे दबाव समूहा क लिए ससद सदस्या को व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करना कठिन होता है क्योकि वहाँ दलीय सगठन अपेक्षाकृत कठोर एव शक्तिशाली है। अत ब्रिटन म हित समूहो के द्वारा दलो को प्रभावित करन का प्रयत्न किया जाता है या दबाव समूह दल के साथ सगठित हो जात हैं। उदाहरणाथ श्रमिक सघो ने श्रम दल के साथ गठबन्धन कर लिया है। इसके विपरीत, कृपक सघ अनुदार दल स सम्बन्धित है। ब्रिटिश दबाव-समूहा द्वारा मन्त्रिमण्डल एव सम्बन्धित विभाग के मन्त्री एव कमचारिया क विचाराधीन विधेयका को भी समूह के हिता के अनुरूप प्रभावित करने एव तदनुरूप सशोधित एव अस्वीकृत करन का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है।

विभिन्न देशो मे दबाव समूहो की स्थिति

सयुक्त राज्य अमेरिका मे दबाव-समूह

सयुक्त राज्य अमेरिका म दबाव समूहा को विशेष स्थान प्राप्त है आर देश की राजनीतिक व्यवस्था म उनकी स्थिति महत्वपूण है। श्री इ एस ग्रिफिथ्स क

अनुसार, संयुक्त राज्य अमरिका म चार प्रमुख दबाव समूह हैं। ये राजनीतिक दृष्टि से काफी प्रभावशाली हैं। ये दबाव-समूह हैं—व्यापार, कृषि, श्रमिक एव पेन्शन प्राप्त सैनिकों (Veterans) से सम्बन्धित समूह। वृद्धजनों (aged) से सम्बन्धित पाँचवें दबाव समूह का उदय हो रहा है। द्वितीय स्तर पर शासकीय कर्मचारियों, नीग्रो जाति,[9] उपभोक्ताओं अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों आदि के दबाव समूह हैं। इसके अतिरिक्त वकीलों (अधिवक्ताओं) एव डाक्टरों के भी हित समूह हैं परन्तु वे बहुत प्रभावशाली नहीं हैं। धार्मिक समुदायों से सम्बन्धित विभिन्न हित-समूह हैं जो केवल कभी कभी ही साव जनिक मामलों म रुचि लेते हैं। फेडरल काउंसल ऑफ चर्चेज ऑफ क्राइस्ट इन अम-रिका एव दी नेशनल कैथोलिक वेलफेयर धार्मिक सघ के उदाहरण हैं। स्त्रियों से सम्बन्धित अनेक हित समूह हैं यथा—स्त्री मतदाताओं की लीग, अमरिकी विश्व विद्यालयों की महिला समाज, व्यवसायों तथा सेवारत महिला मण्डल, आदि। यह सभी सगठन राजनीतिक मामलों म रुचि लेते हैं। सामाजिक मामलों म रुचि लेने वाले दबाव समूह (यथा—अमरिकन मद्यनिषेध सघ) इनसे पृथक है।

व्यापार एव व्यवसायों से सम्बन्धित मुख्य दबाव-समूहों म प्रमुख हैं—वाणिज्य-मण्डल (The Chamber of Commerce), निर्माताओं का राष्ट्रीय सघ (The National Association of Manufacturers), अमेरिकन श्रमिक सघ, रेल यातायात भ्रात सघ, खान कर्मचारी सघ, औद्योगिक सगठनों की कांग्रेस (The Congress of Industrial Organisations), अमेरिकन फार्म ब्यूरो, राष्ट्रीय कृषक सघ आदि। व्यावसायिक समूहों म प्रमुख हैं—अमेरिकन चिकित्सा सघ (American Medical Association) राष्ट्रीय शिक्षा सघ (National Education Association), इजी-नियरों का सघ तथा अमेरिकन बार एसोसियशन। इन व्यावसायिक समूहों म दो प्रकार के समूह होते हैं। प्रथम तो वे समूह हैं जो सम्पूर्ण व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करते हैं एव उसके हित की दृष्टि से काय करते हैं। इस प्रकार के समूहो का एक प्रसिद्ध उदाहरण उत्पादकों का राष्ट्रीय सघ है। द्वितीय वे व्यावसायिक सघ या समूह हैं जो कुछ विशिष्ट उद्योगों के हितों के लिए ही काय करते हैं, यथा—रेल यातायात सघ एव अमेरिकन पेट्रोलियम सस्थान। इस प्रकार के समूह अपने व्यावसायिक हितो की रक्षा एव सवधन के लिए सतत् रूप से सक्रिय होते हैं।

धार्मिक सघो के द्वारा भी सयुक्त राज्य अमेरिका म अपने विचारो के प्रचार एव प्रसार तथा हितो का रक्षाथ दबाव समूहो का निर्माण हुआ है, उदाहरणाथ, प्राटेस्टेन्ट चर्चों को राष्ट्रीय समिति ने रगभेद के मामला म रुचि ली थी। पेन्शन प्राप्त सैनिकों एव देशभक्तों के सघो (Patriotic Front) की सदस्य सख्या बहुत बडी है।

9 नीग्रो जाति के हितसमूह का एक उदाहरण काले व्यक्तियों एव स्त्रियों का राष्ट्रीय विकास सघ (The National Association for the Advancement of Coloured People and Women) है।

इस प्रकार के प्रमुख समूह हैं अमेरिकन लेजियन (American Legion) तथा विदेशी युद्ध के वद्ध सैनिक समूह (The Veterans of Foreign Wars)। दोनो प्रकार के उपरोक्त सघ देश की राजनीति म सक्रिय भाग लेते हैं। अमेरिका म कृषि से सम्बन्धित भी दो प्रकार के सघ या समुदाय हैं। एक जो सम्पूण उद्योग के हितो का सरक्षण एव प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार के समूहा के उदाहरण हैं अमेरिकन फाम ब्यूरो फेडरेशन (The American Farm Bureau Federation) एव राष्ट्रीय कृषक सघ (The National Farmers Union)। इन सघा का यह प्रयत्न रहता है कि सम्पूण कृषि उद्योग से सम्बन्धित हिता की रक्षा की जानी चाहिए और कृषि सम्बन्धी सामान्य नीति, जसे कि कृषि उत्पाद के न्यूनतम मूल्यो का निर्धारण एव अमेरिकी कृपको की विदेशी उत्पादन जनित प्रतियोगिता से सुरक्षा के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए। कृपि के विशिष्ट उत्पादनो एव वस्तुओ से सम्बन्धित भी कुछ समूह हाते हैं यथा—अमेरिकन सोयाबीन सघ। इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण दुग्ध उत्पादका का राष्ट्रीय सहयोगी सघ (The National Co operative Milk Producers Federation) है।

सभी प्रमुख दवाव समूहो क राष्ट्रीय एव राज्य स्तर पर सगठन होते है। इन दवाव समूहो की स्थानीय इकाइयाँ ग्राम या नगर-प्रबन्ध म सुधार के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। समाज विकास सघ (The Community Improvement Associations) ग्राम या नगर म प्रकाश एव पुलिस प्रबन्ध पर नजर रखते है। इन सघा के द्वारा जनता का अधिकतम सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रचार भी किया जाता है।

हजारा दवाव समूहा ने अमरिकी राजधानी वाशिंगटन म अपने कायालया की स्थापना कर रखी है। इनके द्वारा अपने हिता के सवद्धन के लिए जिन प्रचारको या अभिकर्ताओ को नियुक्त किया जाता है, वे विधि निर्माण और प्रशासनिक सगठन एव कायपद्धति की बारीकिया स भली प्रकार परिचित होते हैं। अधिकाश समूहा के अभिकर्ता पत्रकारो, वकीलो, भूतपूव काग्रेसजना एव अवकाश प्राप्त उच्च पदाधिकारियो के वग म से चुने जाते हैं और उन्ह पर्याप्त वेतन दिया जाता है।

अमेरिका मे दबाव समूहो के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण है और निम्नाकित तत्वा ने अमेरिकी राजनीतिक जीवन म इनके विकास म योग दिया है—(1) शिथिल दलीय सगठन, (2) विचार एव अभिव्यक्ति की स्वत त्रता, (3) स्वतन्त्र विधि निर्माण प्रक्रिया यानी सभी के लिए विधि निमाण प्रक्रिया को प्रभावित करने के अवसर, (4) शासन का व्यापक कायक्षेत्र। सयुक्त राज्य अमेरिका म ससद प्रधान देश की भाति विधि निर्माण एव सावजनिक नीतियो पर ससद के बहुमत दल का एकाधिकार नही है। अमेरिका म तो सभी विधयक कांग्रेस के सदस्यो द्वारा प्रस्तावित किये जाते है। समितिया उन पर विचार करती हैं और उनका स्वीकार या अस्वीकार करती हैं। अत ऐसी स्थिति मे विभिन्न दवाव-समूहा द्वारा विधि निर्माण को प्रभावित करना सरल होता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका म दवाव समूहा का विशेष महत्व है। उन्हे विधान मण्डल के ऐसे तृतीय सदन की सज्ञा दी जाती है जो सविधान की सीमा के बाहर काय करते है। वे अत्यधिक प्रभावशाली होते है। लास्की ने दबाव समूहो पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि दबाव समूहा मे स्पष्ट असगति होते हुए भी इनकी सत्ता को कम नही समझना चाहिए। सदन के सदस्य के लिए वे बहुत कुछ कर सकते है उसके भाषणो को तैयार करके वे उसकी सहायता कर सकते है, उसका ऐसा प्रचार कर सकते है *जिसकी उसे कोई आशा न हो। सभी प्रचारका का प्रमुख समाचार-पत्रो की* ऐजेन्सियो, पत्रकारो आदि स परिचय होना है। यदि प्रचारकगण चाहे तो विधायक को राष्ट्रीय ख्याति प्रदान करा सकत हैं यदि काग्रेस के किसी सदस्य को योग्य प्रचारका की सेवाएँ उपयुक्त समय पर उपलब्ध हो जाती है तो वे उसके राज नीतिक जीवन म निर्णायक प्रमाणित होती है।[10] अमेरिकी दबाव समूहो के द्वारा स्थायी रूप से किसी भी दल का समथन नही किया जाता है। उनके लिए उनके हित सर्वोपरि होते ह एव अपनी स्थिति को सुदृढ बनाये रखने के लिए वे दलो को परस्पर लडाने का भी प्रयास करते रहते हैं। दोनो दलो म अपनी स्थिति को सुदृढ रखने के लिए समय समय पर दोनो दला को आर्थिक सहायता प्रदान करत है।

ग्रेट ब्रिटेन मे दबाव समूह

ग्रेट ब्रिटेन म दबाव समूह नवीन नही हैं लेकिन सयुक्त राज्य अमेरिका की भांति दबाव समूहा का वहाँ महत्व नही है। 19वी सदी मे चार्टिस्ट आन्दोलन एव अनाज-विरोधी सघ (Anti Corn Law League) सशक्त एव क्रियाशील दबाव समूह थे। आधुनिक ब्रिटेन म इनकी सख्या म वद्धि हुई है। ह्वीयरे के अनुसार ब्रिटेन मे 'शायद ही ऐसा कोइ व्यवसाय है जिस पर देश की किसी समिति क विचार करने पर उस समिति के समक्ष उस व्यवसाय के हितो का प्रतिनिधित्व करन वाला कोई समुदाय न हो।' ब्रिटिश दवाव समूहा को वर्गीकृत करना कठिन है। विभिन्न आर्थिक हितो क सरक्षण करन वाले प्रमुख दबाव समूहा म ब्रिटिश औद्योगिक सघ (The Federation of British Industries), यातायात एव सामान्य श्रमिक सघ (Transport and General Worker's Union), खनिज श्रमिको का राष्ट्रीय सघ (The National Union of Mine Workers), जहाज निमाण कमचारी सघ वस्त्र कारखाना श्रमिक सघ आदि प्रमुख हैं। इन सघा की विभिन्न एव घटक इकाइयाँ भी हैं। इनस कम महत्व पूण दबाव समूहा मे 'ब्रुश निर्माताओ का राष्ट्रीय समाज या प्लम्बरो की राष्ट्रीय सोसाइटी आत हैं। ब्रिटेन म किसी व्यवसाय के मालिका द्वारा मिलकर भी सघ या सगठन का निर्माण कर [illegible] जाता है। [illegible] एव उद्योगा से सम्बधित ही केवल हित-समूह न [illegible] हितो स सम्बधित भी समूह

10 Laski Th [illegible]

पाये जाते हैं। कभी-कभी स्थानीय संस्थाएँ अन्य सार्वजनिक संस्थाओं या शासकीय विभागों से मिलकर किसी विशेष हित के संवर्द्धन के लिए संघ या संगठन का निर्माण कर लेती हैं, यथा—राष्ट्रीय आवास एवं नगर नियोजन समिति। ब्रिटेन में विचार-धाराओं से सम्बन्धित अनेक समूह हैं। इनका उद्देश्य किसी विश्वास या विचारधारा का प्रचार करना होता है, जैसे कि राष्ट्रीय धूम्र-पान निषेध समिति, जानवरों के प्रति कठोरता निषेध संघ। शिक्षकों का भी राष्ट्रीय संघ है। इसका उद्देश्य शिक्षकों के काम के घण्टे, वेतन एवं सेवा की परिस्थितियों में सुधार का प्रयत्न करना है।

ग्रेट ब्रिटेन में दबाव समूहों को मान्यता दी गयी है और वे शासन के अंग के रूप में स्वीकार किये गये हैं। शासकीय विभागों के समक्ष दबाव समूहों को उपस्थित होने एवं विचार प्रस्तुत करने के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं तथा इससे वे पूर्ण लाभ भी उठाते हैं। श्रमिकों से सम्बन्धित श्रम संघ एवं मालिकों के संघों की सूची श्रम मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित डायरेक्टरी में दी जाती है। सम्बन्धित संस्थाओं एवं संघों से शासन द्वारा सम्बन्धित प्रश्नों के सम्बन्ध में परामर्श किया जाता है और शासन एवं हित समूहों में आये दिन विचार विमर्श एवं परामर्श होते रहते हैं। ब्रिटेन में संसदीय व्यवस्था के कारण समूहों को विधायकों एवं समितियों के सदस्यों के मध्य प्रचार से किसी विशेष लाभ की कोई आशा नहीं होती है। मन्त्रिमण्डल नीति निर्धारित करता है अतः मन्त्रिमण्डल को ही ब्रिटिश दबाव समूह प्रभावित करते हैं और मन्त्रिमण्डल को ही वे प्रतिनिधि मण्डल भेजते हैं या अपना लिखित ज्ञापन प्रस्तुत करते हैं। ब्रिटिश हित-समूह दलों को भी प्रभावित करते हैं एवं उनके माध्यम से मन्त्रिमण्डल को अपने हित में प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक दबाव-समूहों का दलों से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, उदाहरणार्थ, श्रमिक संगठन श्रम दल से एवं कृषक संघ प्रधानतः अनुदार दल से सम्बन्धित है।

ब्रिटेन में अनेक दबाव समूहों के मुख्य कार्यालय ब्रिटिश संसद के समीप ही हैं। वे संसद या उनकी समितियों में उपस्थित नहीं होते हैं, परन्तु उन्हें शाही आयोगों के समक्ष विचार व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त है। वे निर्वाचन काल में प्रचार करके विधायकों को प्रभावित नहीं करते हैं। ब्रिटेन में राजनीतिक दलों का प्राधान्य है एवं उनका अपने सदस्यों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। कॉमन्स की समितियाँ अमेरिकी समितियों की अपेक्षा बड़ी होती हैं। किन्तु उनकी भाँति शक्तिशाली नहीं होती हैं। ब्रिटिश समितियों के कार्यों का निर्देशन भी दलों के द्वारा ही किया जाता है और मन्त्री उनका नेतृत्व एवं मार्ग दर्शन करते हैं। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त तथा मन्त्रिमण्डल के संगठन के कारण हित समूहों के लिए प्रचार की कोई गुंजाइश नहीं है। अतः ब्रिटिश दबाव समूह समाचार पत्रों के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। उनके समक्ष अपने हितों की पूर्ति सम्बन्धी तीन

विकल्प हैं (i) जनमत को प्रभावित करना, (ii) ससद मे अपना प्रतिनिधि भेजकर अपने हित का सरक्षण करना, एव (iii) शासन को प्रभावित करना।[11] अमेरिकन काग्रेस की भाँति कॉमन्स सभा के दबाव समूहो द्वारा अपने हित मे विधायका को प्रभावित करने हेतु प्रचार काय नही किया जाता है। अनेक अवसरो पर ससद एव उसकी दीर्घाओ मे हित समूहो के प्रचार (Lobbying) को ससदीय विशेषाधिकार का हनन घोषित किया गया है और यदि सदस्यो को प्रभावित करन के लिए रिश्वत, हिंसात्मक धमकी, अपशब्द, आर्थिक हानि पहुँचाने के प्रयत्न किये जाते है तो ऐस कार्यों को दण्ड नीय अपराध घोषित किया गया है। निश्चय ही कुछ ससद सदस्यो को वाह्य सस्थाओ द्वारा आर्थिक सहायता दी जाती है लेकिन ब्रिटिश ससद के नियमानुसार ऐसी स्थिति मे सम्बन्धित सदस्य सदन के समक्ष यह तथ्य स्वीकार करेगा कि वह अमुक निजी हित से सम्बन्धित है तथा कुछ अवस्थाओ मे वह सदन म मतदान स पृथक रहेगा।

प्रश्न यह है कि ब्रिटिश ससदीय सदस्य एव किसी बाह्य हित म क्या सम्बन्ध होने चाहिए ? इस सम्बन्ध म एक विवाद 1947 ई मे ब्रिटिश ससद के समक्ष आया था। एक ब्रिटिश ससदीय सदस्य लोकसेवा लिपिक सघ से सम्बन्धित था एव वह उसका स्थायी महामन्त्री था। बाद म कुछ मतभेद उत्पन्न हो जाने पर सघ ने उसे सवेतन एव बोनस पर अवकाश ग्रहण करने के लिए तैयार कर लिया। सघ के दबाव से अपने को बचाने के लिए उसन सदन से प्राथना की कि सघ द्वारा ससदीय सदस्य को अपन विचारो के विरुद्ध बोलने के लिए वाध्य करके सघ द्वारा ससदीय विशेषा धिकार का अतिक्रमण किया गया है। उसकी इस प्राथना पर कॉमन्स सभा की विशेषाधिकार समिति न विचार किया। समिति का मत था कि सघ द्वारा ससदीय विशेषा धिकार का उल्लघन नही किया गया है। साथ ही साथ समिति का यह भी मत था कि ससदीय सदस्यो को किसी बाह्य सघ से सम्बन्ध रखना एव आर्थिक लाभ प्राप्त करने से उसकी स्वतन्त्रता का अनुचित रूप मे हनन होता है। इस मामले के फल स्वरूप 1947 इ म कामन्स सभा ने एक शासकीय प्रस्ताव स्वीकार किया जिसके अनुसार ससदीय विशेषाधिकार एव भाषण की स्वतन्त्रता की दृष्टि से यह सवथा असगत माना गया कि ससद का कोई सदस्य किसी ऐसी वाह्य सस्था से सम्बन्ध रखे और जिसके फलस्वरूप उसकी स्वाधीनता एव काय की स्वतन्त्रता सीमित होती हो। दिसम्बर 1947 ई म कॉमन्स सभा ने एक अन्य प्रस्ताव पारित किया है। इसके अनुसार यदि कोई सदस्य रिश्वत लेकर गुप्त सूचना प्रगट करने एव प्रकाशित करने का दोषी ठहराया जाता है तो रिश्वत देने वाला भी सदन का कोपभाजन होता है एव परिस्थितियो के अनुकूल सदन को कायवाही करने का अधिकार प्रदान किया

---

11 Finer *op cit*, p 464

गया है। अत प्रचारको या दवाव समूहो के अभिकर्ताओ (Agents) को दण्डित करने की ब्रिटेन म उचित व्यवस्था है।[12]

फ्रास मे दवाव समूह

फ्रास म सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक विचारधाराओ से सम्बन्धित अनेक दवाव-समूहो का अस्तित्व है। फ्रास म केवल आर्थिक एव श्रमिक हितो का प्रतिनिधित्व करने वाले सघो को ही दवाव समूहो म शामिल नही किया जाता है अपितु प्राविधिक, प्रशासनिक एव समाचार-पत्र तथा चच एव विश्वविद्यालयो की विचारधाराओ स सम्बन्धित सघ भी दवाव समूहो की श्रेणी म आते हैं। चच स सम्बन्धित दवाव-समूहो का उदाहरण कैथोलिक चच सगठन है। विचारधाराओ से सम्बन्धित दवाव-समूह विभिन्न विचारो का समथन करके राजनीतिक जीवन को प्रभावित करते हैं। समाचार-पत्र भी इसी श्रेणी मे आते हैं। फ्रास म दवाव-समूहो का विकास सयुक्त राज्य अमेरिका एव ग्रेट ब्रिटेन से सवथा भिन्न रूप म हुआ है। बहुदलीय पद्धति इसका प्रधान कारण है। फ्रास मे अनेक छोटे-छोटे दलो का उदय हुआ है जिनके आधार क्षेत्रीय एव अन्य हित ह। अनेक छोटे दलो का अस्तित्व केवल ससद तक ही सीमित है। इन्हे छोटे राजनीतिक समूहो (Splinter groups) की सज्ञा दी जाती है। फ्रास म राजनीतिक दलो एव इन छोटे छोटे राजनीतिक समूहो के मध्य विभाजन-रेखा खीचना कठिन है। विभिन्न स्वार्थों एव हितो द्वारा इन छोटे-छोटे राजनीतिक दलो के साथ गठबन्धन कर लिये जाते हैं, उदाहरणार्थ, धार्मिक वर्गों का राजनीतिक दलो से घनिष्ठ सम्बन्ध ह। एम आर पी (Popular Republican Movement) मध्यम वर्ग एव कैथोलिक जनता के हितो की रक्षा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है अत उस वर्ग ही उनके समथन की पूर्ण आशा रहती है। ग्रामीण क्षेत्रो के हितो का प्रतिनिधित्व

अन्य देशो म व्यापार मण्डला (Chamber of Commerce) की स्थिति अद्ध शासकीय अधिकारी जसी है । व्यापार मण्डलो के अधिकारिया की स्थिति अद्ध शासकीय कमचारियो के समान थी और शासन द्वारा उन्हे महत्वपूण काय सौपे जाते थ ।[13] महाद्वीपीय दशो म एक अन्य प्रवत्ति का भी विकास हुआ है । शासन द्वारा इन समूहा या सघो को आर्थिक सहायता देन की व्यवस्था थी । य समूह अधिकारियो द्वारा स्वीकृत शासन की नीतियो का प्रचार तथा विपरीत नीतियो का विरोध क थे । फ्रासीसी सरकारो ने देशभक्ति एव समान कार्यों का प्रचार करने वाले समुदा को बढावा दिया है । उदाहरण के लिए, पेरिस म अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थी सघ को शासकीय सहायता दी गयी थी । अत स्पष्ट है कि फ्रास म दबाव समूह काफी सक्रिय एव प्रभावशाली हैं । पाँचवे गणराज्य क अन्तगत आर्थिक एव सामाजिक परिषद (The Economic and Social Council) की स्थापना दबाव समूहो की ही विजय है । सवप्रथम जमन आर्थिक परिषद के आधार पर फ्रास म एक आर्थिक परिषद की ही स्थापना हुई थी । चतुथ गणराज्य म इसे कायम रखा गया था (अनुच्छेद 25) । इसके अतिरिक्त फ्रास के चतुथ गणतन्त्रीय सविधान के अन्तगत असेम्बली म स्थानीय एव व्यावसायिक हितो या व्यक्ति के रक्षाथ हित-समूहो के निर्माण का निषेध किया गया था (अनुच्छेद 13) और अपने पद का दुरुपयोग करते हुए किसी वित्तीय या औद्योगिक सस्थान से लाभ प्राप्त करने का दोषी पाये जाने की अवस्था म विधायको के लिए दण्ड एव निष्कासन की व्यवस्था की गयी थी (अनुच्छेद 119) । फ्रास म दबाव-समूहो के प्रभाव के कारण उन्हे राज्यान्तगत राज्य, आर्थिक परिषद (Economic Congregation) एव नवीन सामन्ती लार्डों (Neo Feudal Lo की सना दी जाती है ।

जापान मे दबाव समूह

द्वितीय विश्वयुद्ध क पूव जापान की शासन व्यवस्था म सैनिक अधिकारि का विशेप प्रभाव था । सर्वोच्च युद्ध परिषद (Supreme War Council) का सम्पू शासन व्यवस्था पर एकाधिकार था । दोना सुरक्षा विभागा के अध्यक्षो मुख्य सनिक एव नौ सैनिक अधिकारियो (Chief of Staffs) तथा सम्राट द्वारा मनोनीत सदस्य सर्वोच्च युद्ध परिषद के सदस्य होते थे । धीरे धीरे यह परिषद अत्यधिक शक्तिशाली होती चली गयी और नागरिक शासन को सनिक एव असैनिक सभी क्षेत्रो मे प्रभावित करने लगी । सनिक एव नौ-सनिक विभागा के मन्त्री सैनिक अधिकारी ही हुआ करते थे । स्पष्ट है सना तथा नौ सेना को मन्त्रिमण्डल की नीतियो एव मन्त्रिमण्डल क निर्माण एव विघटन को प्रभावित करने के पर्याप्त अवसर थे । मुख्य सनिक

---

13 Carl J Frederick *Constitutional Governments and Democracy*, 1966, p 465

अधिकारिया को प्रधानमन्त्री के निणयो के विरुद्ध सम्राट से सीधे अपील करने का अधिकार था । स्पष्ट है, युद्धोत्तर-पूव जापान मे सेना सर्वाधिक प्रभावशाली दबाव-समूह था। सनिक अधिकारियो का औद्योगिक एव व्यापारिक हितो से घनिष्ठ सम्बन्ध था । जापान के चार प्रमुख औद्योगिक परिवार—मितसू, मित्सूबिसी, सूमितोमो एव यशोदा—जिन्हे सामूहिक रूप म ज़ियबत्सू (Ziabatsu) कहते थे तथा जो देश के प्रधान 150 औद्योगिक प्रतिष्ठानो के स्वामी थे सैनिक अधिकारियो एव शासन से घनिष्ठत सम्बन्धित थे। प्रधान राजनीतिक दला का भी इस सम्पत्तिशाली वग से सम्बन्ध होने के कारण उन्हे प्रभूत आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी । अत ज़ियबत्सू सेना के अतिरिक्त द्वितीय प्रधान दबाव समूह था ।

युद्धोत्तर काल, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात जापान मे इन सैनिक एव पूजीवादी केन्द्रा का खात्मा कर दिया गया तथा बडे औद्योगिक एव बैंकिंग सस्थाना को समाप्त घोषित किया गया । चार प्रमुख औद्योगिक परिवारा की सम्पत्ति छोटे छोटे भागो म विभाजित कर दी गयी । लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक न चल सकी । सयुक्त राज्य अमेरिका को 1947 ई मे अपनी इस नीति को परिवर्तित करना पडा एव औद्योगिक परिवारो ज़ियबत्सू की पुन स्थापना हुई । 1953 ई के अन्त म औद्योगिक फर्मों ने अपने को पहले की भाँति पुनगठित कर लिया है एव 1954 ई मे पुराने मित्सूबिसी औद्योगिक प्रतिष्ठान की पुन स्थापना हुई है । वतमान जापान के अनुदार एव उदारवादी लोकतान्त्रिक दल युद्ध के पूव के सियूकाई (Seiyukai) एव मिनसीटो (जन राजनीतिक दल Minseito) का प्रतिरूप है। इन दलो के औद्योगिक प्रतिष्ठानो से पहले की भाति ही सम्बन्ध स्थापित हो गये हैं। 1947 ई मे सेना का भी पुनगठन किया गया। अत आधुनिक जापान म युद्ध-पूर्व जापान के भाति के दबाव समूहा की स्थापना हुई है ।

जापान मे अनेक प्रमुख दबाव समूह है । इनम सबसे अधिक शक्तिशाली दबाव समूह ओयाबुन (Oyabun) है। सारे देश के गाँवा एव नगरो म इसके सगठन का जाल फैला हुआ है । नगरो मे इसके द्वारा श्रमिको, जूआघरा, निर्माण योजनाओ, राजनीतिक दलीय सगठनो एव असामाजिक तत्वो को नियन्त्रित किया जाता है । ग्रामीण क्षेत्रा मे यह सगठन कृपको पर नियन्त्रण रखता है। एक अन्य दबाव समूह 'हरित समीर समाज' (Green Breeze Society) है। यह अनुदारवादी विचारधारा का सगठन है । इसके अतिरिक्त आर्थिक सगठनो का सघ, कमचारी सघ, व्यापार एव वाणिज्यमण्डल, प्रबन्ध सघ आदि अन्य आर्थिक सघ हैं जो नियमित रूप से सम्बन्धित हितो के रक्षाथ शोध तथ्या का विश्लेषण एव प्रकाशन करत रहते हैं। विभिन्न श्रमिक सघ भी हैं। इनके अपने राष्ट्रीय सगठन भी हैं । इन श्रमिक सघा म लाखा की सख्या मे सदस्य हैं। 'जापानी श्रमिक सघ' एव 'जापान व्यापार कांग्रेस सघ प्रमुख श्रमिक

सगठन हैं। कृषि सहयोगी सघ कृषि हितो का प्रतिनिधित्व करन वाला प्रमुख हित समूह है। इसके 45 हजार स्थानीय कृषक सहयोगी सघ हैं। इसके अतिरिक्त पेन्शन प्राप्त अधिकारियो एव सनिको पत्नियो स्त्रियो आदि के पृथक-पृथक सामाजिक दवाव समूह ह। इन दवाव समूहो के राष्ट्रीय एव स्थानीय स्तर पर सगठन एव सभाएँ है। अपने हितो के रक्षाथ इनके द्वारा प्रचार, साहित्य वितरण एव प्रतिनिधि मण्डल आदि भेजकर शासन तथा विधायका को प्रभावित किया जाता है। जापान मे दवाव-समूहो को अदृश्य शासन (Unseen Government) की सज्ञा दी जाती है।

भारत मे दबाव समूह

भारत म दबाव-समूहो का विकास पाश्चात्य देशो की भाँति नही हुआ है और उनकी सख्या भी अधिक नही है। भारत म चार निम्न प्रकार के दबाव-समूह पाये जाते हैं

(1) विशेष हित-समूह—इस श्रेणी मे प्रधानत आर्थिक एव व्यावसायिक, श्रमिक वग, सहकारी सस्थाओ, कृषको समाज-कल्याण एजेंसियो, शिक्षक, विद्यार्थी एव सास्कृतिक हितो से सम्बन्धित हित-समूह आते है।

(2) साम्प्रदायिक एव धार्मिक सस्थाएँ।

(3) जाति एव भाषा पर आधारित समूह या सस्थाएँ।

(4) गाधीवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले सगठन।

श्रमिक सघ—विशेष हित समूहो क अन्तगत श्रमिक सघो का मुख्य स्थान है। इनकी सख्या बडी तेजी से बढ रही है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस, हिन्द मजदूर सभा एव यूनाइटेड ट्रेड यूनियन काग्रेस देश के चार प्रमुख श्रमिक सघ हैं। इनकी सदस्य सख्या 40 लाख से भी अधिक है तथा इन सगठनो की इकाइयो की सख्या 3500 के करीब है। यह सभी श्रमिक सघ देश के प्रमुख दलो स सम्बन्धित हैं। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रस भारतीय साम्यवादी दल से, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस स हिन्द मजदूर सभा समाज वादियो एव यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस साम्यवादियो स सम्बन्धित है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस इन सब म सबसे प्राचीन सगठन है। अपने प्रारम्भिक समय म यह कांग्रेस के प्रभाव म थी। महात्मा गाधी न अहमदाबाद मे वस्त्र उद्योग श्रमिक सघ की स्थापना की थी। 1929 ई मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस पर साम्यवादियो का नियन्त्रण स्थापित हो गया था। प्रो डेविड मोरिस का मत है कि भारतीय श्रमिक सघ (Trade Unions) न तो दबाव समूहो और न राजनीतिक दलो के रूप म ही काय करते हैं। उनका सगठन तो मध्यवर्गीय नेताओ द्वारा राजनीतिक दलो के अग के रूप मे किया जाता है। फलस्वरूप काग्रेस सरकारो को अनेक बार श्रमिको को अनुशासित करने एव उनक कल्याण के लिए राज्य-शक्ति का प्रयोग करना

पड़ा है ।[14] भारत मे श्रमिक सघो का नगरो के श्रमिक क्षेत्रो मे ही केवल व्यापक प्रभाव है ।

वाणिज्य, व्यावसायिक एव औद्योगिक सघ—उद्योगपतियो एव व्यापारियो के कुछ प्रमुख सघ हैं, यथा—फैडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर आफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज (F I C C I), मारवाडी चैम्बर ऑफ कामर्स, मुसलिम चैम्बर ऑफ कॉमर्स, उत्तर प्रदेश वाणिज्य व्यापार मण्डल आदि । F I C C I का मुख्य कार्यालय नई दिल्ली म है । उनका अपना शोध प्रतिष्ठान भी है । व्यापारिक सघो के कुछ उदाहरण है मिल मालिक सघ, भारतीय मालिकान सघ आदि । भारत मे कुछ प्रमुख व्यावसायिक समुदाय भी हैं, जसे—मारवाडी, पारसी, गुजराती समुदाय आदि । वे स्वय अपने आप मे काफी प्रभावशाली हैं । भारतीय उद्योग जगत पर कुछ परिवारो का आधिपत्य है, जैसे—बिरला, टाटा, वालचन्द जैन, सिघानिया, गोइनका एव डालमिया परिवार । यह परिवार स्वय अपने आप मे शासन की नीतियो को अपने हित मे प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं । इनके द्वारा मुक्तहस्त होकर सावजनिक कोषो म सहायता एव दान एव राजनीतिक दलो को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है । शासन के उच्चाधिकारियो एव मन्त्रियो के पुत्रो एव सम्बन्धियो को अपने प्रतिष्ठानो मे नौकरी आदि प्रदान करके वे उनसे निकट सम्पक स्थापित करने मे सफल होते हैं । इन परिवारो का देश के समाचार पत्रो पर पूण नियन्त्रण है । बहुत से ससद सदस्य इनके प्रभाव म होते है । फलस्वरूप ससद म इनकी बात ध्यानपूवक सुनी जाती है । भारत म समाजवादी व्यवस्था की स्थापना को लक्ष्य अपनाय जाने पर 1956 ई मे भारतीय व्यापारियो ने स्वतन्त्र उद्योग फोरम (Forum of Free Enterprise) की भी स्थापना की है ।

कृषक सघ—भारत म कृषक सगठन श्रमिक सघो की अपेक्षा कमजोर है । प्रथम किसान सभा की स्थापना 1936 ई मे हुई थी परन्तु यह सगठन सक्रिय नही रहा । चतुथ ससद काल म कृषक फोरम की स्थापना हुई थी । इसके द्वारा किसानो पर आय कर लगाये जान का विरोध किया गया है ।

विद्यार्थी सगठन—हर विद्यालय एव विश्वविद्यालय म विद्यार्थियो के सगठन हैं और अखिल भारतीय स्तर पर इन विद्यार्थी सगठना का गठन किया गया है । विभिन्न राजनीतिक दला से ये सगठन सम्बन्धित हैं । अखिल भारतीय विद्यार्थी सघ साम्यवादी दल से, विद्यार्थियो की राष्ट्रीय सभा कांग्रेस स एव विद्यार्थी परिषद जनसघ से सम्बन्धित है । विभिन्न राजनीतिक दलो स सम्बन्धित होन के कारण ये विद्यार्थी सगठन एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी सगठन बन गय हैं । सभी विद्यार्थी सगठन प्रादेशिक, क्षेत्रीय एव स्थानीय आधार पर सगठित हैं ।

---

14 M G Gupta *op cit*, p 227

सगठन हैं। कृषि सहयोगी सघ कृषि हिता का प्रतिनिधित्व करन वाला प्रमुख हित समूह है। इसके 45 हजार स्थानीय कृषक सहयोगी सघ हैं। इसके अतिरिक्त पेंशन प्राप्त अधिकारिया एव सैनिको, पत्नियो स्त्रियां आदि के पृथक-पृथक सामाजिक दवाव समूह हैं। इन दवाव समूहो के राष्ट्रीय एव स्थानीय स्तर पर सगठन एव समाएँ हैं। अपने हिता के रक्षाथ इनके द्वारा प्रचार, साहित्य वितरण एव प्रतिनिधि मण्डल आदि भेजकर शासन तथा विधायका को प्रभावित किया जाता है। जापान मे दवाव समूहा को अदृश्य शासन (Unseen Government) की सज्ञा दी जाती है।

भारत मे दबाव समूह

भारत म दवाव-समूहो का विकास पाश्चात्य देशो की भाँति नही हुआ है और उनकी सख्या भी अधिक नहीं है। भारत मे चार निम्न प्रकार के दवाव-समूह पाये जाते हैं

(1) **विशेष हित-समूह**—इस श्रेणी मे प्रधानत आर्थिक एव व्यावसायिक, श्रमिक वग, सहकारी सस्थाओ, कृषको समाज कल्याण एजेन्सियो, शिक्षक विद्यार्थी एव सास्कृतिक हितो से सम्बन्धित हित समूह आते है।

(2) साम्प्रदायिक एव धार्मिक सस्थाएँ।

(3) जाति एव भाषा पर आधारित समूह या सस्थाएँ।

(4) गाधीवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले सगठन।

श्रमिक सघ—विशेष हित समूहो के अन्तगत श्रमिक सघा का मुख्य स्थान है। इनकी सख्या वडी तेजी स वढ रही है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, हिन्द मजदूर सभा एव यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस देश के चार प्रमुख श्रमिक सघ है। इनकी सदस्य सख्या 40 लाख से भी अधिक है तथा इन सगठना की इकाइया की सख्या 3500 के करीव है। यह सभी श्रमिक सघ दश के प्रमुख दलो से सम्बन्धित है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस भारतीय साम्यवादी दल से, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस से, हिन्द मजदूर सभा समाजवादियो एव यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस साम्यवादिया से सम्बन्धित है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस इन सब म सबसे प्राचीन सगठन है। अपने प्रारम्भिक समय म यह काग्रेस के प्रभाव म थी। महात्मा गाधी न अहमदावाद मे वस्त्र उद्योग श्रमिक सघ की स्थापना की थी। 1929 ई मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस पर साम्यवादियो का नियन्त्रण स्थापित हो गया था। प्रो डविड मोरिस का मत है कि भारतीय श्रमिक सघ (Trade Unions) न ता दवाव समूहो और न राजनीतिक दलो के रूप म ही काय करते हैं। उनका सगठन तो मध्यवर्गीय नेताओ द्वारा राजनीतिक दलो के अग के रूप म किया जाता है। फलस्वरूप कांग्रेस सरकारा को अनेक वार श्रमिको को अनुशासित करने एव अनेक कल्याण के लिए राज्य-शक्ति का प्रयोग करना

उनको 'अदृश्य सरकार', 'विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल', 'अज्ञात साम्राज्य' एव 'सह-सरकार' की सज्ञाएँ दी जाती है। इन दवाव समूहो द्वारा अपने उद्देश्य पूर्ति के हर साधन, उचित एव अनुचित भ्रष्ट साधना, रिश्वत, स्त्रिया, धनादि का अपने हित साधन के लिए प्रयोग किया जाता है। समाज म विभिन्न वर्गों एव हिता की वृद्धि के फल-स्वरूप दवाव या हित समूहा का विकास स्वाभाविक एव वाछनीय है। लॉबीइग को आज अनुचित मानना समय के अनुरूप नही है। दवाव-समूहो के द्वारा प्रयोग किय जाने वाले अनुचित तरीको के प्रति आपत्ति का होना स्वाभाविक ह। परन्तु प्रश्न है कि वे ऐसा क्यो करते है? उनके द्वारा अनुचित, भ्रष्ट एव उत्कोच के साधना का प्रयोग क्यो किया जाता है? क्या इसका यह अथ नही है कि हित समूहो को नियन्त्रित एव सुधारने की आवश्यकता है। यह कहा जाता है कि दवाव समूहा द्वारा व्यक्तिगत हितो को प्रश्रय देकर राष्ट्र की आत्मा को खण्डित किया जाता है। क्या यह आरोप सत्य है? लोकतन्त्र का महत्वपूण सिद्धान्त विचार स्वातन्त्र्य एव समुदाय निर्माण का अधिकार है। स्मरणीय है कि विचार-स्वातन्त्र्य एव समुदाय के अधिकार को समाज-हित मे सीमित किया जा सकता है लेकिन उसे समाप्त नही किया जा सकता। व्यक्तियो की भिन्न प्रकार को इच्छाओ की अभिव्यक्ति विभिन्न समूहा के माध्यम से होती है। अत विभिन्न दवाव समूहो के रूप मे हितो के सघर्षों के द्वारा वे समाज म लोकतन्त्र का निर्माण करते हैं। अत यह कहना कि दवाव समूह राष्ट्रीयता का खण्डित करते हैं, सत्य नही है।

दवाव समूहा के दोपा को दूर करने के लिए उन पर सावजनिक नियन्त्रण की आवश्यक्ता होती है। जिससे वे खुले रूप मे उचित साधनो का प्रयोग करते हुए अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए काय करें। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि दवाव-समूहो द्वारा अपने सदस्यो के प्रति उचित व्यवहार किया जाता है। इस हेतु—

(1) उनके सगठन व्यवस्थित एव अधिकारी निर्वाचित तथा उनकी अपनी कायकारिणी होनी चाहिए।

(2) दवाव समूहो पर विधिक नियन्त्रण होना चाहिए जिससे वे अपेक्षाकृत अधिक उत्तरदायित्वपूण रीति से उद्देश्य को प्राप्त कर सके। उन्हे अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उनको व्यापक भी बनाया जाना चाहिए।

(3) दवाव-समूहा को लोकतान्त्रिक ढग से काय करना चाहिए अर्थात् उनके निणय वहुमत पर आधारित होने चाहिए, गुप्त निर्वाचन की व्यवस्था होनी चाहिए, उन्हे अपना आर्थिक लेखा-जोखा रखना चाहिए और उनकी अवाछनीय गतिविधियो पर प्रतिवन्ध होना चाहिए।

इसकी भी आवश्यकता है कि दवाव-समूह को समाज विरोधी, प्रतिक्रियावादी तथा भारत जसे देश की दृष्टि से अराष्ट्रीयता एव साम्प्रदायिकता का गढ नही होना चाहिए। सामाजिक एव दवाव समूह के हितो म उचित सन्तुलन एव व्यवस्था की

भारत मे अनेक सास्कृतिक समूह ह। विदशा से मैत्री सम्ब धा का बढान के लिए उनकी स्थापना की गयी है, जसे—भारत-सोवियत, भारत ईरान, भारत-यूगास्लाव सघ आदि। इस प्रकार के सगठनो द्वारा भारतीय नीति को प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता है। साम्प्रदायिक एव धार्मिक सगठन भी देश की नीति को अपने विचारा के अनुरूप प्रभावित करने का प्रयत्न करत हैं। व्यावसायिक समूहा म प्रमुख सघ हैं शिक्षको के सघ, विश्वविद्यालय शिक्षक सघ, भारतीय बार (वकील) एसोसियेशन, मैडिकल एसोसियेशन, अखिल भारतीय के द्रीय सरकारी कमचारियो के विभिन्न सघ, रेलवे कमचारी सघ एव राज्यो मे विभिन्न शासकीय कमचारियो के विभिन्न एव पृथक्-पृथक सघ।

प्रादेशिक सगठन के रूप म शिव सेना' का नाम लिया जा सकता है। गाधीवादी विचारधारा का देश मे प्रचार करने वाले अनेक सघ हैं। कुछ विश्वविद्यालयो म गाधी दशन की शिक्षा दी जाती है। विभिन्न गाधीवादी पुस्तकालया एव क्लबा की स्थापना की गयी है। सर्वोदय समाज देश का सबसे बडा गाधीवादी सगठन है। अकाली दल, हि दू महासभा, रिपब्लिकन पार्टी, अनेक मुसलिम दलो को सम्प्रदायिक समुदायो मे सम्मिलित किया जा सकता है। भारतीय ईसाइया का अखिल भारतीय सघ, आय प्रतिनिधि सभा, सनातन धमरक्षिणी सभा, धार्मिक सगठनो के प्रकार हैं। देश म जाति के आधार पर भी अनेक सघ पाय जाते हैं, यथा—कायस्थ सभा, ब्राह्मण सभा, जाट सभा, बगाली समाज, अग्रवाल सभा, वश्य सभा एव माथुर वश्य सभा आदि। निर्वाचन-काल मे सामा यत जातिवाद की भावना को खुलकर उभारा जाता है।

भारत म व्यावसायिक एव औद्योगिक हित-समूहो द्वारा शासन के उच्चा धिकारिया, विधायका, म त्रियो एव विधि निर्माण समितिया को अपने पक्ष म प्रभावित करने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है। प्राय इन समूहो द्वारा शासन की नीतियो का विश्लेषण किया जाता है, एव उनके दोषा को भी प्रकट करते हैं। श्रमिक सघो द्वारा दबाव डालने के लिए हडताल का ब्रह्मास्त्र आये दिन प्रयोग किया जाता है। भारत म दबाव समूहो की स्थिति ग्रेट ब्रिटेन एव कनाडा के हित समूहो के अधिक समीप है। विभि न दबाव-समूहो द्वारा विधायको को प्रभावित करने की अपक्षा अपने प्रभाव का उपयोग म त्रिमण्डल को प्रभावित करने मे किया जाता है। अनेक व्यापारिक हितो ने नई दिल्ली एव राज्यो की राजधानिया मे अपने कार्यालय स्थापित कर रखे है। उच्च वेतनधारी कमचारियो के माध्यम स वे म त्रियो एव उच्चाधिकारिया स सम्पक करके शासन की नीति को निय त्रित करने का प्रयत्न करते है। दबाव-समूहा के द्वारा भारत म शासन की नीति को प्रभावित करने की रीति का बडी शीघ्रतापूर्वक विकास हो रहा है।

निष्कष

दबाव समूहो का आधुनिक लोकता त्रिक समाजा म महत्वपूण स्थान है।

उनको 'अदृश्य सरकार', 'विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल', 'अज्ञात साम्राज्य' एव 'सह-सरकार' की सज्ञाएँ दी जाती हैं। इन दबाव समूहो द्वारा अपने उद्देश्य पूर्ति के हर साधन, उचित एव अनुचित भ्रष्ट साधना, रिश्वत, स्त्रियो, धनादि का अपने हित साधन के लिए प्रयोग किया जाता है। समाज म विभिन्न वर्गों एव हिता की वद्धि के फल स्वरूप दबाव या हित समूहो का विकास स्वाभाविक एव वाछनीय है। लॉबीइग को आज अनुचित मानना समय के अनुरूप नही है। दबाव-समूहा के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले अनुचित तरीका के प्रति आपत्ति का होना स्वाभाविक है। परन्तु प्रश्न है कि वे ऐसा क्यो करते है? उनके द्वारा अनुचित, भ्रष्ट एव उत्कोच के साधनो का प्रयोग क्या किया जाता है? क्या इसका यह अथ नही है कि हित समूहो को नियन्त्रित एव सुधारने की आवश्यकता है। यह कहा जाता है कि दबाव समूहो द्वारा व्यक्तिगत हितो को प्रश्रय देकर राष्ट्र की आत्मा को खण्डित किया जाता है। क्या यह आराप सत्य है? लोकतन्त्र का महत्वपूण सिद्धान्त विचार स्वातन्त्र्य एव समुदाय निर्माण का अधिकार है। स्मरणीय है कि विचार-स्वातन्त्र्य एव समुदाय के अधिकार को समाज-हित मे सीमित किया जा सकता है लेकिन उसे समाप्त नही किया जा सकता। व्यक्तियो की भिन्न प्रकार की इच्छाओ की अभिव्यक्ति विभिन्न समूहो के माध्यम से होती है। अत विभिन्न दबाव समूहो के रूप मे हितो के सघर्षों के द्वारा वे समाज मे लोकतन्त्र का निर्माण करते हैं। अत यह कहना कि दबाव समूह राष्ट्रीयता को खण्डित करते हैं, सत्य नही है।

दबाव समूहा के दोषा को दूर करने के लिए उन पर सावजनिक नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। जिससे वे खुले रूप मे उचित साधनो का प्रयोग करते हुए अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए काय करें। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि दबाव-समूहो द्वारा अपने सदस्या के प्रति उचित व्यवहार किया जाता है। इस हेतु—

(1) उनके सगठन व्यवस्थित एव अधिकारी निर्वाचित तथा उनकी अपनी कायकारिणी होनी चाहिए।

(2) दबाव समूहो पर विधिक नियन्त्रण होना चाहिए जिसस वे अपेक्षाकृत अधिक उत्तरदायित्वपूण रीति से उद्देश्य को प्राप्त कर सकें। उन्ह अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उनको व्यापक भी बनाया जाना चाहिए।

(3) दबाव समूहो को लोकतान्त्रिक ढग से काय करना चाहिए अथात् उनके निणय बहुमत पर आधारित होने चाहिए, गुप्त निर्वाचन की व्यवस्था होनी चाहिए उन्ह अपना आर्थिक लेखा जोखा रखना चाहिए और उनकी अवाछनीय गतिविधिया पर प्रतिबन्ध होना चाहिए।

इसकी भी आवश्यकता है कि दबाव-समूह को समाज विरोधी, प्रतिक्रियावादी तथा भारत जसे देश की दृष्टि से अराष्ट्रीयता एव साम्प्रदायिकता का गढ नही हाना चाहिए। सामाजिक एव दबाव समूह के हिता मे उचित सन्तुलन एव व्यवस्था की

आवश्यकता है । सयुक्त राज्य अमेरिका म 1946 ई म हित समूहो से सम्बन्धित एक विधेयक (Federal Regulation of Lobbying Act) पारित किया गया था । इसके अनुसार (1) सभी दबाव-समूहो के वैतनिक ऐजेण्टो (Lobbyists) को अपने नाम कांग्रेस म पजीकृत करना आवश्यक है, (2) प्रत्येक एजेण्ट को अपने द्वारा व्यय किय गय धन का हिसाब रखना चाहिए तथा किन्हे कितना धन दिया है इसका विवरण रखना चाहिए और प्रति तीन माह म लॉबीइग के लिए प्राप्त धन एव उसका विवरण देना चाहिए, तथा (3) अपन निजी सम्बन्धो का भी प्रत्येक ऐजेण्ट को विवरण देना पडता है ।

डॉ एम जी गुप्ता[15] के अनुसार बहुलवाद का अर्थ लोकतान्त्रिक ढग पर सगठित स्वायत्त एव निर्धारित मापदण्ड के अनुसार आचरण करने वाले दबाव समूहो को बढावा देना है । यह नव उपयोगितावाद या समूह उपयोगितावाद है जिसकी इकाई व्यक्ति न होकर ग्रुप या समूह है । इसमे व्यक्ति नही समूह कल्याण की इकाई होती है । समूह उपयोगितावाद राज्य अहस्तक्षेप म विश्वास नही करता अपितु सकारात्मक राज्य की धारणा म उसकी आस्था है । लेकिन दबाव समूहो के सकीण क्षेत्र एव निहित स्वार्थों के प्रति सतर्क रहना भी आवश्यक है । अधिकाश दबाव-समूह आर्थिक एव व्यावसायिक हितो से सम्बन्धित होते हैं और अपने हितो के लिए अवधानिक एव अनुचित साधनो का प्रयोग करने मे नही हिचकते है । अत उन्हें व्यवस्थित एव नियन्त्रित करने की आवश्यकता है । आधुनिक समय मे दबाव समूह लोकतन्त्र के विरोधी नही है ।

---

15 M G Gupta *op cit*, p 235

33

मौलिक अधिकार

[THE FUNDAMENTAL RIGHTS]

प्राय सभी आधुनिक सविधानो म मौलिक अधिकारो का उल्लेख एक अनिवाय विशेषता मानी जाती है। इससे शासन की निरकुशता पर प्रतिबन्ध लग जाता है। अधिकार से तात्पय व्यक्तियो को समाज एव राज्य द्वारा प्रदत्त कुछ ऐसी सुविधाओ स है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से आवश्यक है। अंग्रेज विद्वान मक्कन (*MacCan*) के अनुसार, 'अधिकार सामाजिक कल्याण की कुछ लाभदायक परिस्थितिया हैं जो नागरिक के यथाथ विकास के लिए अनिवाय हैं।' लास्की ने 'अधिकारो को सामाजिक जीवन की उन परिस्थितियो की सज्ञा दी है जिनके अभाव मे व्यक्ति का पूण विकास सम्भव नही है।"[1] अधिकार एव कतव्य दोनो का जोडा है। वे एक ही सिक्के के दो पाश्व हैं। हाबहाउस[2] (Hobhouse) के अनुसार, "अधिकार व कतव्य सामाजिक कल्याण की दशाएँ है।" समाज के प्रत्येक सदस्य का इस कल्याण के प्रति दुहरा दायित्व है। अधिकार एक माग है तो कतव्य दूसरी माग है। मेरे अधिकार समाज के सदस्यो पर कतव्य निर्धारित करते हैं और अन्य सदस्यो के अधिकार मेरे कतव्य को निश्चित करते है। अधिकारो से अथ व्यक्ति क नैतिक विकास के लिए आवश्यक सामाजिक परिस्थितियो एव सुविधाओ से ह जिनकी सृष्टि समाज द्वारा की जाती है। प्रत्येक काल एव युग मे इनके तत्व बदलत रहे हैं। अधिकार समाज की सृष्टि हैं परतु अधिकार के उपभोग के लिए राज्य अनिवाय है। राज्य विधि बनाकर प्रत्येक व्यक्ति का क्षेत्र सीमित रखता है। दूसरे शब्दो मे, अधिकारो के प्रयोग के लिए राज्य एक अनिवाय अवस्था है। अत राज्य अधिकारो का विरोधी नही होता अपितु सरक्षक है। जब राज्य इनको अस्वीकार कर देता है तो उसके लिए

---

1 Laslı *A Grammar of Politics*, 1941, p 91

2 Hobhouse *Elements of Social Justice*, p 39

सकट उत्पन्न हो जाता है। अमरिकी क्रान्ति, फ्रास की राज्यक्रान्ति, रूसी लाल क्रान्ति एव विभिन्न उपनिवेशा म राष्ट्रीय आन्दोलन इसक प्रमाण हैं।

अधिकारो के प्रकार

आधुनिक प्रगतिशील देशा मे दो प्रकार के अधिकार हाते हैं राजनीतिक अधिकार (Political rights) एव सामाजिक या नागरिक अधिकार (Civil rights)। राजनीतिक अधिकार का तात्पय उन अधिकारो से है जिनके आधार पर व्यक्तियो को शासन काय मे भाग लेन का अवसर प्राप्त होता है। लोकतान्त्रिक देशो मे यह अधिकार बिना किसी भेदभाव क सभी नागरिका का प्राप्त होत हैं। इन अधिकारा से तात्पय मत देने निर्वाचित होन एव शासन म पद ग्रहण करने क अधिकार से है। इन अधिकारो का प्रयोग सामान्यत अनिवाय नही है परन्तु कुछ राज्या म राजनीतिक कतव्य अर्थात मतदान एव सनिक सेवा को अनिवाय कर दिया गया है।

राजनीतिक अधिकारा के अतिरिक्त अनेक सामाजिक या नागरिक अधिकार व्यक्तियो को समान रूप से प्राप्त होते हैं। केवल राजनीतिक अधिकार ही व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक नही हैं। प्रमुख सामाजिक अधिकार है जीवन, वयक्तिक स्वतन्त्रता धर्म एव अन्त करण की स्वतन्त्रता, शिक्षा, सम्पत्ति, विचार लेखन भाषण की स्वतन्त्रता, सभा बनाने, सविदा करने, समानता एव राज्य क विरोध के अधिकार। जीवन के सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक, धार्मिक एव पारिवारिक पक्षा के विकास के लिए उपरोक्त अधिकारो का तीव्र समथन किया गया है। इन अधिकारो मे मानवीय सभ्यता के विकास के साथ साथ वृद्धि होती रही है। राजनीतिक एव सामाजिक अधिकारा क मध्य मे कोइ विभाजक रेखा नही खीची जा सकती। दोनो अन्यो याश्रित है। एक के बिना दूसरे का प्रयोग सम्भव नही है। सयुक्त राष्ट्र सघ की आर्थिक एव सामाजिक परिषद ने 1946 मे श्रीमती फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट के नेतृत्व म मानवीय अधिकार आयोग की स्थापना की थी। इस आयोग द्वारा प्रस्तावित मौलिक अधिकारो को सयुक्त राष्ट्र सघ की सामान्य सभा (General Assembly) ने व्यक्तियो के सावभौम अधिकारा (Universal Declaration of Rights of Men) के रूप मे 10 दिसम्बर, 1948 को स्वीकार किया था। इस घोषणा म निम्नलिखित मानवीय अधिकारो को मौलिक माना गया है जा प्रत्यक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त होने चाहिए।

"आवागमन एव आवास की स्वतन्त्रता, आश्रय एव राष्ट्रीयता प्राप्त करन की स्वतन्त्रता, चिन्तन, अन्त करण, धम, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, विवाह और परिवार की स्वतन्त्रता शक्तिपूवक सघ बनाने की स्वतन्त्रता, देश के शासन म प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीति स भाग लेने का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा, निश्चित जीवन स्तर एव शिक्षा क अधिकार काम की उचित परिस्थितियाँ, आराम और अवकाश का अधिकार आदि।'

मौलिक अधिकारा की इस घोषणा का विशेष महत्व है। यद्यपि इसे क्रियान्वित करन के लिए आवश्यक विधिक शक्ति सयुक्त राष्ट्र सघ को प्राप्त नही है परन्तु यह सत्य है कि इन अधिकारा को समस्त देशा द्वारा स्वीकार किये जान पर ही सच्चे मानव परिवार का उदय होगा। इन्ह स्वीकार करने वाले राज्यो द्वारा इनको अपने यहां क्रियान्वित किया गया है। उपरोक्त सभी अधिकारो म उचित जीवन-स्तर के अधिकार (अनुच्छेद 25) का भी उल्लेख है। यह नागरिका के व्यक्तित्व के विकास के लिए भौतिक आधार प्रदान करता है। इस अधिकार के अभाव म अन्य अधिकारो का कोई व्यावहारिक महत्व नही रहता है। लेकिन यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि यदि विचार, भाषण, धम, सभा, सघ, परिवार, आदि के अधिकारो को स्वीकार कर लिया जाता है तो जीवन स्तर का निर्माण देर अबेर से हो ही जाता है। सर्वाधिकारी राज्य म न्यूनतम जीवन स्तर स्थापित किया जा सकता है परन्तु इससे जीवन की इकाई क रूप मे व्यक्ति का निर्माण नही किया जा सकता। केवल स्वस्थ शरीर ही व्यक्तित्व का विकास नही है। हीनता, दन्यता भय आशका, अविश्वास से पीडित व्यक्ति का व्यक्तित्व कुण्ठित एव दलित होता है। व्यक्ति के नतिक व्यक्तित्व के निर्माण के लिए उपरोक्त स्वत न्रताएँ आवश्यक हैं एव यही उचित जीवन-स्तर का आधार बन सकती है। परन्तु उचित जीवन-स्तर का अधिकार उपेक्षणीय नही है। व्यक्ति के नतिक एव भौतिक दोनो ही प्रकार के विकास की आवश्यकता है। सयुक्त राष्ट्र की मानवीय अधिकारा की घोषणा मे इस पर बल दिया गया है। इन सभी अधिकारा का पालन सयुक्त राष्ट्र सघ के सदस्य राज्यो द्वारा समान रूप स नही किया जा रहा है। दक्षिणी अफ्रीका न अपने यहा रगभेद नीति का अनुगमन कर रखा है। अनेक बार महासभा ने निन्दा प्रस्ताव पारित किय परन्तु उनका कोई प्रभाव नही हुआ है अपितु दक्षिणी अफ्रीका सयुक्त राष्ट्र सघ से इस कारण स्वत ही पृथक हो गया है।

क्या अधिकारो का सविधान मे उल्लेख होना चाहिए ?

मौलिक अधिकारा को सविधान म लिपिवद्ध किया जाना चाहिए या नही, एक विवादास्पद प्रश्न है। ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका स्विटजरलण्ड मे पृथक मौलिक अधिकारा सम्बन्धी कोई व्यवस्था नही है। ततीय फ्रच गणराज्य मे भी मौलिक अधिकार लिपिवद्ध नही थे। 1960 ई तक कनाडा म भी मौलिक अधिकारो की व्यवस्था नही थी। लेकिन मौलिक अधिकारा को सविधान मे स्पष्ट रूप से उल्लिखित करना एक सामान्य प्रवत्ति है। सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान म मौलिक अधिकारा का उल्लेख है। भारतवष (1951), नवीन जापानी सविधान, सोवियत (स्टालिन) सविधान (1936) बर्मी सविधान पाक सविधान (1956) मे मौलिक अधिकारो का उल्लेख है। इसके पूव 1919 ई के वीमर जमन सविधान एव 1922 ई एव 1936 ई के आयरिश सविधानो म भी मौलिक अधिकारा का स्पष्ट उल्लख किया गया था।

ब्रिटिश राजनीतिज्ञ एव सविधानशास्त्रियो का मत है कि लिखित मौलिक अधिकारो का कोई व्यावहारिक महत्व नही है। केवल घोषणा मात्र से मौलिक अधि कार नही मिलते है। यह मत बहुत कुछ ठीक भी है। ब्रिटेन म नागरिका को सबसे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है यद्यपि वहाँ अधिकार लिपिवद्ध नही हैं। ब्रिटिश इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि स्वत त्रताओं को प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश जनता को निरकुश राजाओ के विरुद्ध दीघकाल तक सघप करना पडा और इस सघप के अन्तगत उसे सम्पत्ति और स्वतन्त्रता की बलि देनी पडी है। इसके अति रिक्त ब्रिटेन को वतमान स्थिति तक पहुँचने मे एक लम्बा समय लगा है। ससद ने महत्वपूर्ण विधेयको के माध्यम म व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा सम्बन्धी व्यवस्थाएँ की हैं। उदाहरणाथ 1215 ई का मैगना कार्टा, 1629 ई का अधिकार आवेदन-पत्र, 1679 ई का अधिकार पत्र (Bill of Rights) एव बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधि नियम। अधिकार क लिए ब्रिटिश जनता ने जो सघप किया था वह निरकुश राजाआ के प्रति था, न कि ससद के प्रति। ब्रिटिश जनता ने इस धारणा को कभी स्वीकार नही किया है कि विधानमण्डल द्वारा भी व्यक्ति की स्वतन्त्रताओ को सीमित किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि ब्रिटेन मे ससद की सम्प्रभुता है। इसके अतिरिक्त लिखित मौलिक अधिकार जनता म ऐसी आशाआ को जन्म देता है जिनके पूर्ण न होने पर जन अस तोप पनपता है।

मौलिक अधिकारो को सविधान के अन्तगत लिपिवद्ध करने क समथको का यह तक है कि इससे मौलिक अधिकारो को एक विशेष प्रकार की पवित्रता प्राप्त हो जाती है और विधि निर्माताओ द्वारा सहज ही उनकी उपेक्षा नही की जा सकती। वे शासन के लिए एक स्थायी स्मति के रूप मे काय करते हैं। मौलिक अधिकारो एव स्वतन्त्रताओ के उल्लेख के कारण राज्य का कायक्षेत्र सीमित हो जाता है। नवोदित लोकतान्त्रिक देशो मे मौलिक अधिकारो का उल्लेख वाछनीय है। सयुक्त राज्य अमे रिका के सविधान निर्माताओ ने ब्रिटिश परम्परा का अनुगमन नही किया हैं। उनका विधायी सम्प्रभुता म विश्वास नही था। अपितु मौलिक अधिकारा की रक्षा का दायित्व न्यायपालिका को सौप दिया है। अमेरिकी दृष्टिकोण के अनुसार मौलिक अधिकार राजनीतिक विवाद के परे हैं। उन्हे विवाद का विषय नही बनाया जा सकता और न उन्हे विधानमण्डल की इच्छा एव मनोदशा पर ही छोडा जा सकता है। उनके अनुसार कायपालिका एव व्यवस्थापिका से मौलिक अधिकारो की रक्षा का दायित्व न्यायपालिका का है।

विभिन्न देशो मे मौलिक अधिकार एव नागरिक स्वतन्त्रताएँ

ग्रेट ब्रिटेन मे नागरिक स्वतन्त्रताएँ

ग्रेट ब्रिटेन मे भारत, सयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशो की भाँति स्पष्ट रूप से अधिकारो एव स्वत त्रताओ की सविधान म कोई लिखित व्यवस्था नही है। परन्तु

ब्रिटिश जनता को भारत एव सयुक्त राज्य अमरिका की भाँति ही नागरिक स्वतन्त्रताएँ प्राप्त हैं। मतदान एव राजनीतिक पद ग्रहण करन के महत्वपूण राजनीतिक अधिकार ब्रिटिश नागरिका को भी प्राप्त ह। स्मरणीय है कि ब्रिटेन मे ससदीय सम्प्रभुता का सिद्धान्त मान्य है, ब्रिटिश सविधान विकास का परिणाम हैतथा वह प्रधानत अलिखित है। अत न्यायालया को ससदीय विधि को अवैधानिक घोषित करने की शक्ति प्राप्त नही है। ऐसी स्थिति म लिखित सविधान प्रधान देशा की जनता को यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि ब्रिटिश ससद विधियाँ पारित करके नागरिक स्वतन्त्रताओ को सीमित कर सकती है। लेकिन स्थिति इसके विपरीत है। ब्रिटिश नागरिक विश्व मे सबसे अधिक स्वतन्त्रताओ का उपभोग करत हैं।

ब्रिटिश जनता को कुछ अधिकार तो ससदीय विधिया द्वारा प्राप्त है। 1679 ई म बन्दी प्रत्यक्षीकरण के द्वारा बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार प्राप्त हुआ था। 1689 ई के अधिकार पत्र (Bill of Rights) द्वारा बन्दी प्रत्यक्षीकरण का पुन आश्वासन दिया गया। इसके अतिरिक्त याचिका का अधिकार, अत्यधिक जुर्माना एव अमानुषिक दण्ड से रक्षा, स्वतन्त्र निर्वाचन एव अपराधी घोषित किये जाने के पूव एव जब्ती से सुरक्षा सम्बन्धी अधिकार ब्रिटिश नागरिको का सामान्य कानून (Common Law) के आधार पर प्राप्त है। 'कॉमन ला' से तात्पय रीति रिवाज आश्रित उन वधानिक नियमो से है जिनका निर्माण ससद अथवा सम्राट द्वारा नही किया गया है, अपितु जो न्यायालया द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। अत कॉमन लॉ न्यायालय द्वारा स्वीकृत रीति रिवाज हैं। सामान्य विधि का नॉमन काल के पश्चात विकास हुआ है। भाषण एव प्रेस, सभा, समुदाय, धम एव निजी सम्पत्ति सम्बन्धी स्वतन्त्रताओ का आधार कॉमन लॉ हैं। ये स्वतन्त्रताएँ सामान्य विधि की इस धारणा पर आधारित है कि नागरिक इनका उपभोग उस समय तक कर सकता है जब तक कि वे किसी कानून को भग नही करत या नागरिका के समान अधिकारा को आघात नही पहुचाते हैं। उदाहरण के लिए, भाषण की स्वतन्त्रता का कोई लिखित आधार नही है परन्तु वह उस समय तक मान्य है जब तक कि स्पष्ट रूप से उसका निषेध नही किया जाता है। ब्रिटेन मे दोषारोपण, राजद्रोह आदि से सम्बन्धित विधियो के द्वारा भाषण की स्वतन्त्रता सीमित है।

इसके अतिरिक्त ब्रिटेन मे स्वतन्त्रताओ का आधार-विधि का शासन एव जनमत (Public Opinion) है। विधि के शासन का अथ है (1) निरकुश शासन का अभाव, (2) विधि के समक्ष समानता, एव (3) सवैधानिक सिद्धान्त न्यायिक निणया के परिणाम हैं। निरकुश शासन के अभाव का अथ यह है कि शासन जन-सहमति पर आधारित है अर्थात् देश म ससदीय शासन हैं और राजा के परमाधिकारो (Prerogatives) को सीमित कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त शासन को व्यक्ति के विचार, सविदा, व्यापार, सामाजिक आदतो आदि के सम्बन्ध म कम से कम

करना चाहिए। **विधिक समानता** से तात्पय यह है कि किसी भी व्यक्ति के साथ कोई भेदभाव न हो और सभी एक ही विधि के अधीन होने चाहिए। **विधि के शासन** का अथ यह है कि व्यक्तियो के अधिकारो की व्याख्या यायालयो द्वारा कॉमन लॉ के आधार पर की जाती है और अधिकारो के अनुसार एव अनुरूप ब्रिटिश ससद व यायालय काय करते है तथा शासन का कायक्षेत्र भी इन नागरिक स्वतन्त्रताओ के अनुसार निर्धारित किया जाता है। अत इगलण्ड म सविधान की जडे नागरिक अधिकारा मे है। विधि के शासन के अनुसार सम्पूण सविधान व्यक्ति के मौलिक अधिकारा के अनुरूप है। विधि के शासन के सिद्धान्त के अधीन ब्रिटिश जनो को निम्न स्वतन्त्रताएँ प्राप्त है वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार, किसी भी व्यक्ति को उस समय तक बन्दी नही बनाया जा सकता और न ही हिरासत म लिया जा सकता है जब तक कि उसने किसी विधि को निश्चित रूप से भग न किया हो, न्यायालय द्वारा अपराधी सिद्ध होने पर ही उसे दण्ड दिया जा सकता है, न्यायालय की कायवाही गुप्त नही हो सकती तथा अभियुक्त को वकील के द्वारा अपनी सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। अपराध प्रमाणित करने का भार अभियोग पक्ष पर होता है। फौजदारी मुकदमो के निणय जूरी के सहयोग द्वारा ही दिये जाते हैं एव अभियुक्त को उच्च न्यायालयो म अपील का अधिकार प्राप्त है। इन व्यवस्थाओ का उद्देश्य व्यक्ति की स्वेच्छाचारिता से रक्षा करना है। प्रत्येक अग्रेज का घर उसका दुग माना जाता है।

यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि ब्रिटेन मे मौलिक अधिकारो के अलिखित होने एव ससदीय सम्प्रभुता के सिद्धान्त के मान्य होने के कारण क्या ब्रिटिश जनो के मौलिक अधिकारा का हनन ससद द्वारा किया जाता है ? इस सम्बन्ध मे ससद पर क्या अकुश या नियन्त्रण हैं ? सिद्धान्तत ससद अधिकारो को सीमित, निलम्बित एव पूणत समाप्त करने की विधिक शक्ति रखती है। सकट काल म ब्रिटिश ससद ने स्वतन्त्रताओ को सीमित करन वाली अनेक विधिया पारित की हैं, उदाहरणाथ—दो विश्वयुद्धा के मध्य पारित साम्राज्य सुरक्षा अधिनियम। 1914-15 ई के साम्राज्य सुरक्षा अधिनियम (Defence of the Realm Act of 1914 15) एव 1939 ई के सकटकालीन शक्ति अधिनियम (Emergency Powers Defence Act, 1939) द्वारा व्यक्तिया के भाषण, सभा एव प्रेस की स्वतन्त्रताओ पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गय थे। लेकिन सकट-काल की समाप्ति क पश्चात इस प्रकार क प्रतिबन्ध ब्रिटिश जनता को स्वीकाय नही हैं। इसका कारण देश की परम्परा एव जनता म व्याप्त सामान्य राजनीतिक चेतना है। जनता शान्ति काल म स्वतन्त्रताओ पर इस प्रकार के प्रतिबन्धो के विरुद्ध रहती है। ब्रिटिश समाज म यह विचार सक्रिय है कि ससद स्वय विधि क शासन के अधीन है। अत ब्रिटिश ससद ऐसी किसी विधि का निर्माण नही करती है जो नागरिक स्वतन्त्रताओ को सीमित करती हो।

ब्रिटेन मे विधियो का उद्देश्य स्वत त्रताओ को सीमित करना नही अपितु उनका प्रसार करना होता है।

'विधि के शासन' का ब्रिटेन म वतमान काल मे ह्रास हो रहा है। इससे नागरिक स्वत त्रताओ के ह्रास की सम्भावना बढी है। कभी कभी ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न हो जाती हैं कि विधि के शासन को भी सीमित करना पडता है। डॉ गुप्ता[3] ने **सोबलिन विवाद** (Soblen's Case) का प्रमाणस्वरूप उल्लेख किया है। इस मामले मे डॉ रॉबट सोवलिन के देश से निष्कासन (deportation) सम्ब धी गृहमन्त्री के आदेश को यायालय द्वारा मा य ठहराया गया था। ब्रिटेन मे नागरिक स्वत त्रताएँ सदियो के यायिक निणयो एव यायाधीशो की निष्पक्षता, निर्भीकता एव ईमानदारी का परिणाम हैं। उपरोक्त विवाद म यायालय का निणय औपचारिक रूप में (technically) सही हो सकता है पर तु इसस यह भी स्पष्ट है कि ब्रिटिश यायालय किस सीमा तक कायपालिका की नीतियो का ध्यान रखते हैं। विधि के शासन को इस प्रवत्ति से खतरा है। यही नही शासन की बढती हुई शक्ति प्रदत्त विधि निर्माण एव प्रशासकीय यायालयो की स्थापना के फलस्वरूप म त्रियो को वयक्तिक स्वत त्रताओ के मामला म हस्तक्षेप के अनियन्त्रित अवसर प्राप्त हो गये हैं। यह ठीक है कि कायपालिका द्वारा शक्तियो का प्रयोग मनमाने ढग स नही किया जाना चाहिए पर तु यह भी एक कटु सत्य है कि याय प्राप्त करने के लिए आवश्यक मूल्य चुकाने की क्षमता भी सामा य नागरिक म नही होती है। इन सब आशकाओ एव सम्भावनाओ से ब्रिटेन मे नागरिक स्वत त्रताओ का रक्षक वहा का प्रबुद्ध एव जागरूक जनमत है। *निर्वाचक, दनिक समाचार पत्र एव जनमत ससद एव सरकार के विभिन्न अगो को* अपनी सीमा मे रहने के लिए बाध्य करते है। ब्रिटिश शासन जनता क प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धा त पर आधारित है। अत कायपालिका सदव ही जनमत का ध्यान रखती है। इसके अतिरिक्त 'विधि के शासन' के सिद्धा तो को यायालय मा यता *प्रदान करते हैं एव वे व्यक्तिया की स्वत त्रताओ एव अधिकारा के रक्षक के रूप म* कायशील रहते हैं।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे मौलिक अधिकार

सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान के मूल प्रारूप म जिसे राज्या को स्वीकृति *के लिए भेजा गया था, नागरिको के अधिकार पत्र का समावेश नही था। अत पट्रिक* **हेनरी, रिचाड हेनरी ली** एव अ य कुछ देशभक्तो न प्रस्तावित सविधान का इस आधार पर तीव्र विरोध किया कि उसम अधिकार पत्र (Bill of Rights) का समावेश नही है। उनका तक था कि अधिकार-पत्र के अभाव म सविधान जनता की स्वत त्रताओ की दृष्टि से खतरनाक सिद्ध हो सकता है। *फेडरलिस्टा—सघवादिना*

3 M G Gupta *Modern Government Theory & Practice*, 1967 p 5

ने इस पर नवीन शासन के सगठित होने पर अधिकार-पत्र के समावेश का वचन दिया। फलस्वरूप नवीन शासन द्वारा अमेरिकी सविधान म प्रथम दस सशोधनो के द्वारा मौलिक अधिकारा का समावेश किया गया। प्रथम आठ सशोधनो मे जिन स्वतन्त्रताओ का उल्लेख किया गया है वे इस प्रकार है

(1) प्रत्यक व्यक्ति को धम, भाषण, लेख, सभा एव प्राथना करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी और इनका विरोध या इह सीमित या निषिद्ध करने वाली विधियो के निर्माण से काग्रस को वचित कर दिया गया। (प्रथम सशोधन)

(2) प्रत्येक व्यक्ति को शस्त्र धारण करने का अधिकार प्रदान किया गया। (प्रथम सशोधन)

(3) शान्ति काल मे गहस्वामी की अनुमति के बिना किसी घर म सनिक ठहराने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और युद्ध-काल म भी विधि द्वारा निर्धारित रीति के विपरीत किसी घर मे सनिको को नही ठहराया जा सकता है। (द्वितीय सशोधन)

(4) प्रत्येक व्यक्ति को अपन जीवन, सम्पत्ति एव निवास स्थान की सुरक्षा प्राप्त है एव किसी की अनुचित रीति से तलाशी नही ली जा सकती और न उसकी सम्पत्ति को ही जब्त किया जा सकता है। किसी व्यक्ति के विरुद्ध आदेश-वारण्ट उचित कारण के बिना, जिसका समयन शपथ या दृढतापूर्वक नही किया गया हो, जारी नही किया जा सकता। वारण्ट मे तलाशी के स्थान, व्यक्ति एव वस्तुएँ जिह बन्दी बनाया जाना है या जिह जब्त करना है, का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। (ततीय सशोधन)

(5) जूरी द्वारा हत्या या ऐस ही अन्य गम्भीर अपराधो के निणय किये जाने की व्यवस्था है। शान्ति या युद्धकालीन सनिक एव नौ सनिक अपराध इस नियम के अपवाद है। किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दो बार दण्डित नही किया जा सकता है और न किसी व्यक्ति को फौजदारी विवादो म अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए ही बाध्य किया जा सकता है।

(6) किसी भी व्यक्ति को 'विधि की उचित प्रक्रिया' (due process of law) के बिना जीवन, स्वतन्त्रता एव सम्पत्ति से वचित नही किया जा सकता। निजी सम्पत्ति को बिना क्षतिपूर्ति के सावजनिक उपयाग के लिए नही लिया जा सकता है। फौजदारी विवादो म अभियुक्त को यह अधिकार प्राप्त है कि विवाद का निणय शीघ्रता पूवक किया जाना चाहिए तथा खुली अदालत मे निष्पक्ष जूरी के अधीन मुकद्दमो की सुनवाई होनी चाहिए। अभियुक्त को अपनी पसन्द के वकील की सहायता प्राप्त करन की सुविधा है। आरोपो की सूचा अभियुक्त का प्रदान की जाती है तथा उसके विरुद्ध साक्ष्य का उसकी उपस्थिति म ही सुना जाता है। (छठवाँ सशोधन)

(7) सामान्य विधि सम्बन्धी ऐस विवाद जिनका सम्बन्ध 20 डालर से अधिक होता है, जूरी के विचाराधीन होत हैं। (सातवाँ सशोधन)

(8) किसी अभियुक्त से न तो अत्यधिक जमानत मागी जा सकती है और न उस पर अत्यधिक जुमाना ही किया जा सकता है। उसे क्रूर एव असाधारण दण्ड भी नही दिया जा सकता। (आठवा सशोधन)

(9) यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रथम आठ सशोधनो मे उल्लिखित अधिकारो का अर्थ यह नही है कि अमेरिकी नागरिको को अन्य अधिकार प्राप्त नही[4] हैं। 10वे सशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि जो अधिकार सघीय एव राज्यो की सरकारो को नही दिये गये हैं वे सब राज्यो या व्यक्तियो के पास सुरक्षित हैं।

उपरोक्त अधिकारो के अतिरिक्त मूल सविधान म निम्न अधिकारो का भी उल्लेख है

(1) बन्दी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी आदेश का अधिकार सविधान द्वारा प्रदत्त है और इसे केवल विद्रोह या आक्रमण काल म ही सावजनिक हित मे निलम्बित किया जा सकता है। (अनुच्छेद 1 9 2)

(2) ऐसी कोई विधि जिसके अन्तगत बिना मुकद्दमा चलाये फासी की सजा दी जा सके (Bill of Attainder या ex post facto Law), पारित नही की जा सकती है। (अनुच्छेद 1 9 3)

(3) सयुक्त राज्य अमरिका मे कोई सामन्ती (Nobality) पद किसी को प्रदान नही किया जा सकता और न कोई अमेरिकी पदाधिकारी किसी राजा या विदेशी राज्य से काग्रेस की सहमति के बिना कोई सम्मानसूचक उपाधि ही ग्रहण कर सकता है। (अनुच्छेद 1 9 8)

समीक्षा—सविधान म उल्लिखित विषयो के सम्बन्ध म काग्रेस की विधि निर्माण शक्ति पर उपरोक्त उल्लिखित अधिकार प्रतिबन्ध के रूप म है। कांग्रेस ऐसी किसी विधि का निर्माण नही कर सकती जो इन अधिकारो का अतिक्रमण करती हो। सभी राज्यो मे निवास करने वाले प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त हैं। 14वें सशोधन द्वारा इन अधिकारो की रक्षा न केवल सघीय शासन एव कांग्रेस की विधिया से ही अपितु राज्यो के कार्यों से भी की गयी है और इस प्रकार ये अधिकार एक ऐसा क्षेत्र हैं जिसका कि कोई शासन विधिक दृष्टि से उल्लघन नही कर सकता। अधिकारा की रक्षा का दायित्व सर्वोच्च न्यायालय पर है। व्यक्ति की रक्षा की दृष्टि स अधिकारो की सीमाएँ औपचारिक रूप से सुनिश्चित हैं परन्तु इनकी भी व्यावहारिक सीमाएँ हैं। उदाहरण के लिए मामलो के शीघ्र फैसले की व्यवस्था है परन्तु विधि के कारण विलम्ब सम्बन्धी सम्भावना की उपेक्षा नही की जा सकती है, विद्रोह एव आक्रमणकाल मे बन्दी प्रत्यक्षीकरण को सावजनिक हित म निलम्बन की व्यवस्था है, जूरी द्वारा विचार केवल सघीय न्यायालयो म ही सम्भव है जबकि राज्य-न्यायालया म अधि-

---

4 आठवाँ सशोधन।

काश मामलो पर विचार होता है। इस सम्बन्ध मे सविधान केवल यह प्रत्याभूति देता है कि राज्य न्यायालयो मे 'विधि की उचित प्रक्रिया' का पालन किया जायेगा। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार दीवानी एव फौजदारी मामलो मे विधि की उचित प्रक्रिया के अधीन जूरी व्यवस्था आवश्यक नही है। 1945 ई के पश्चात मैकार्थी काल मे अमेरिका मे नागरिक स्वतन्त्रताएँ पर्याप्त कम हो गयी थी और एक सर्वाधिकारी वातावरण उत्पन्न हो गया था।[5]

अमेरिकी नागरिको के अधिकारो का आधार इगलण्ड का मैगना कार्टा, अधिकारो का आवेदन पत्र (1629 ई) एव 1689 ई का अधिकार पत्र है। इन अधिकारो के द्वारा नागरिको की शासन से रक्षा की गयी है। 20वी शताब्दी मे स्थिति बदल चुकी है। 1930 ई के दशक की विश्वव्यापी मन्दी के फलस्वरूप अमेरिका मे बेरोजगारी अत्यधिक बढ गयी थी। व्यक्ति काम करने के लिए तयार था पर काम पाना कठिन था। मुक्त व्यापार नीति मे अमेरिकावासियो का विश्वास हिल गया था। ऐसे ही समय राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट ने न्यूडील कार्यक्रम क्रियान्वित किया था जो तत्कालीन समस्याओ का एक व्यावहारिक समाधान था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषको, श्रमिको आदि के सम्बन्ध मे अनेक विधियो का निर्माण किया गया था। उदाहरणार्थ, 1933 ई के एक अधिनियम (Agricultural Adjustment Act) के द्वारा कृषि के उत्पादन मूल्यो मे वृद्धि कर दी गयी थी। इस अधिनियम को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैधानिक घोषित करने पर काग्रेस ने 1938 ई मे एक नवीन अधिनियम पारित किया था। 1935 ई मे काम विकास प्रशासन (Works Progress Administration) की स्थापना की गयी थी। सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (1935) द्वारा अभाव एव निधनता से विभिन्न स्तरो पर सुरक्षा की व्यवस्था की गयी। आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रो मे न्यूडील कार्यक्रम के अधीन सन्तोषजनक वृद्धि हुई थी। अमेरिका मे राज्य के कार्यक्षेत्र मे वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति के आर्थिक मामलो मे उसकी सुरक्षा की दृष्टि से राज्य का हस्तक्षेप बढ गया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध काल मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ और अधिक सीमित हुई हैं। नाजी खतरे का सामना करने के लिए काग्रेस ने एक विधि (Smith Act, 1940) पारित की थी। इसके अधीन हिंसा द्वारा शासन को बदलना एव तत्सम्बन्धी सगठनो को अवैध घोषित कर दिया गया था। साम्यवाद विरोधी धारणा के कारण वयक्तिक स्वतन्त्रता और सीमित की गयी थी। साम्यवादियो को कुछ सार्वजनिक पदो के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। अनेक राज्य विधियो द्वारा षड्यन्त्रकारी (subversive) सगठनो की सदस्यता को विभिन्न शासकीय पदो के लिए अयोग्य ठहरा दिया गया था। काग्रेस की जाच-समिति ने अनेक सरकारी कर्मचारियो को अयोग्य घोषित किया था। शिक्षको पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पडा था।

5 M G Gupta *op cit*, p 357

सयुक्त राज्य अमेरिका मे 'विधि के समक्ष' सभी नागरिक समान है। लेकिन वहाँ भी यहूदिया एव नीग्रो लोगो के साथ भेदभाव किया जाता है। नीग्रो लोगो को अमेरिकी समाज मे समानता का स्थान प्राप्त नही है। दक्षिणी राज्य मे नीग्रो लोगो की हालत आज भी खराब है। सघीय सरकार को इस सम्बन्ध मे दक्षिणी राज्यो के विरोध का सामना करना पडा है। आज भी अमेरिका मे अनेक ऐसे राज्य है जहा नीग्रो लोगा को श्वेत लोगो के साथ बराबरी का दर्जा नही दिया जाता है। 1962 ई म राष्ट्रपति कैनेडी को मिसीसिपी के राज्य विश्वविद्यालय मे एक नीग्रो को प्रवेश दिलाने के लिए विधिक एव सनिक हस्तक्षेप के माग का अनुसरण करना पडा था।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे व्यक्तिगत स्वत त्रताओ का क्षेत्र अ य देशो की अपेक्षा अधिक व्यापक है। 1941 ई मे परम्परागत स्वत त्रताओ की भय एव अभाव से रक्षा की चर्चा की गयी थी। 1947 ई मे राष्ट्रपति ट्रूमैन ने नागरिक अधिकार समिति की स्थापना की थी। 1957 ई के नागरिक अधिकार अधिनियम (Civil Rights Act of 1957) के द्वारा 6 सदस्यी समिति को कायपालिका से सम्बद्ध किया गया था। इसका उद्देश्य नागरिक अधिकारा की रक्षा करना था। 1964 ई मे नागरिक अधिकार अधिनियम पारित किया गया और इसके द्वारा नीग्रो जाति के अधिकारो को सुरक्षित किया गया है।

मौलिक अधिकारो का सविधान मे उल्लेख अमेरिकी सविधान की प्रमुख देन है एव प्राय सभी परिवर्ती लिखित सविधानो मे इसका अनुसरण किया गया है।

स्विटजरलण्ड

स्विट्जरलैण्ड म ग्रेट ब्रिटेन की भाति नागरिको के अधिकार-पत्र का अभाव है। सविधान मे अमेरिका एव भारत की भाति मौलिक अधिकारो का पथक से उल्लेख नही है परन्तु सविधान म यत्रतत्र कुछ अधिकारो की व्यवस्था है। कण्टना के सविधानो द्वारा भी नागरिका को अनेक स्वत त्रताएँ एव अधिकार प्रदान किये गय हैं उदाहरणाय, अनुच्छेद 4 मे विधि के समक्ष समानता की प्रत्याभूति दी गयी है। हास हूवर इस अधिकार को सवैधानिक अधिकारो मे सर्वाधिक महत्वपूण मानता है।[6] अनुच्छेद 27 के अनुसार नागरिको के लिए नि शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करना कण्टना के शासन का अनिवाय दायित्व है। धम-निरपेक्षता की भी व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 31 के अन्तगत व्यापार एव वाणिज्य का अधिकार एव अनुच्छेद 49 के अनुसार सभी नागरिको को अ त करण एव धम की स्वत त्रता प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 55 प्रेस की स्वत त्रता, अनुच्छेद 56 समुदाय एव सघ के निर्माण एव अनुच्छेद 56 याचिका का अधिकार नागरिको को प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 60 के अधीन स्विस नागरिका को स्वत त्रतापूवक किसी भी कैण्टन म निवास करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त

6 Hans Huber *The Federal Constitution of Switzerland*, pp 6 7

विवाह, निजी सम्पत्ति एव निवास गृहो सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्राप्त है। वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार अनुलघनीय है। प्रत्येक व्यक्ति को चारो राष्ट्रीय भाषाओं म से अपनी मातृभाषा के प्रयोग का अधिकार है। स्विस नागरिको को कम्यून के शासन म भाग लेने तथा कैण्टनो के अधिकारियो को चुनने के अधिकार भी होते है। कोई कैण्टन अन्य कण्टनो के निवासियो के साथ भेदभाव नही कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त है। मतदाताओ की योग्यता सघ एव कैण्टनो के शासन द्वारा निश्चित की जाती है लेकिन इसका यह अथ नहीं है कि सघ एव कैण्टन अपने-अपने क्षेत्र सम्बन्धी मतदान व्यवस्था निर्धारित करते हैं। इसके विपरीत, कुछ मामला म कण्टनो सम्बन्धी मतदान की योग्यताएँ सघीय शासन निश्चित करता है और कुछ सघीय मामलो मे कैण्टनो के नियमानुसार काय किया जाता है। अनुच्छेद 74 के अनुसार सघीय सभा के निर्वाचन एव जनमत-सग्रह तथा प्रस्तावक (initiative) मे भाग लेने का अधिकार प्रत्येक उस 21 वर्षीय स्विस नागरिक को प्राप्त है जो कण्टन के नियमो के अन्तगत नागरिकता से वचित नही किया गया है। दो वष (1971 ई) पूव तक स्त्रियो को मतदान का अधिकार नही था। अनेक बार स्त्रियो को मताधिकार देने के प्रयत्न किये गये परन्तु जनता ने जनमत सग्रह मे इन प्रस्तावो को स्वीकार नही किया था। 1959 ई मे स्त्रियो को मताधिकार देने के लिए सवैधानिक सशोधन पारित करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु जनता ने 2 1 से उसे अस्वीकृत कर दिया था। वाड न्यूचेल एव जेनेवा के कैण्टनो की जनता स्त्रिया को मताधिकार दिये जाने के पक्ष मे थी अत इन तीन कण्टनो म महिलाओ को मताधिकार प्रदान कर दिया गया था। 1971 ई म स्विटजरलैण्ड म प्रथम बार स्त्रियो को मताधिकार दिया गया है। भारत एव अमरिकी की भाति स्विटजरलैण्ड म भी अधिकारो की रक्षा के लिए नागरिक सघीय न्यायालय (Federal Tribunal) की शरण ले सकता है।[7] यदि किसी विधि या सघीय कायपालिका द्वारा किसी नागरिक के अधिकारा को सीमित किया जाता है तो सघीय न्यायालय आवेदन करने पर उन्हे निष्प्रभावी घोषित कर सकता है। स्विट्जरलण्ड म प्रत्येक स्वस्थ नागरिक के लिए सैनिक सेवा अनिवाय है।

स्विस सविधान पर उदारवादी विचारधारा का प्रभाव है। व्यक्ति की गरिमा एव महत्ता शासन व्यवस्था का आधार है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे व्यक्ति को अधिकतम सीमा तक स्वतन्त्रता प्राप्त है। राज्य व्यक्ति के मामलो म कम स कम हस्तक्षेप करता है। व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र म अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। परन्तु 20वी सदी के विचारो एव परिस्थितिया क फलस्वरूप स्विस उदारवाद म कुछ परिवतन आ गया है। 1930 इ की विश्वव्यापी मन्दी एव दो विश्वयुद्धो क कारण राजकोप पर अत्यधिक व्यय भार वढ़ गया था। कल्याणकारी राज्य की धारणा एव समिष्टवादी विचार

7 Hans Huber, *op cit* p 38

: उदय एव विकास के कारण स्विस राजनीतिक एव आर्थिक व्यवस्था मे कुछ
। अनिवाय बन गये थे और व्यापार एव वाणिज्य के क्षेत्रो मे राज्य द्वारा बहुत
्ध लगाये गये हैं। बडे औद्योगिक प्रतिष्ठानो (Cartels) के निर्माण के कारण
के क्षेत्र मे राज्य का हस्तक्षेप अनिवाय हो गया था।

स्विटजरलैण्ड म निजी सम्पत्ति, समानता, वयक्तिक एव निवास गहा की
ता सम्ब धी अधिकारा का क्षेत्र सयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति ही व्यापक है।
लैण्ड बहुराष्ट्रजातीय देश है। विभिन्न भाषा एव धम तथा रीति रिवाजो के
ो उसम निवास करते हैं। ऐस समाज मे मौलिक अधिकारो की व्यवस्था अल्प
—भाषायी धार्मिक, राजनीतिक एव सामाजिक—के लिए मुख्य आधार (sheet
r) के रूप मे है और लोकतन्त्रीय चेतना तथा सहिष्णुता की रक्षा के लिए
ा है।

। मौलिक अधिकार

1789 ई के फ्रा स के क्रान्तिकारियो ने मौलिक अधिकारा की घोषणा की
मरणीय है कि फ्रेंच क्रान्तिकारी अमेरिकी क्रान्ति से अत्यधिक प्रभावित थे।
कुछ नेता जैसे लफायत (Lafayette) ने अमरिकी स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग
ा था। वह अमरिकी स्वत त्रता की घोषणा एव वर्जीनिया (Virginia) के
रो की घोषणा से प्रभावित था। दोनो अर्थात् अमेरिकी एव फ्रेंच क्रान्तिकारियो
न लाक का प्रभाव था। फ्रा स की क्रान्ति के बौद्धिक कायक्रम के रचयिताओ
ा जेफरसन का सम्बन्ध था। फ्रेंच क्रान्तिकारियो के मध्य दो प्रकार के विचार
। थे, एक बुद्धिवादी विचारक और दूसरे रूसो के समथक। प्रथम विचारधारा
ो चिन्तन के अधिक निकट थी। वे विवेक को महत्व देते थे। बुद्धिवादियो का
विवेकवादी एव मानवतावादी था। वह मानव प्रगति एव उसके विकास मे
। था। रूसो भी निरकुश शासन का विरोधी था परन्तु वह विवेक की अपक्षा
। नागरिक की मूल प्रवृत्ति को अधिक महत्व देता था। उसके लिए अनुलघनीय
रो का महत्व नही था। वह व्यक्ति की अपक्षा समिष्टि को महत्व देता है।
ामा य इच्छा को सम्प्रभु माना है। रूसो क अनुसार यदि अल्पमत बहुमत से
नही है तो बहुमत अल्पमत को सहमत या स्वतन्त्र होने के लिए बाध्य कर
है। बुद्धिवादी विचारको का स्वत त्रता से, जबकि रूसो का राजनीतिक समा-
अधिक सम्ब ध है। फ्रेंच अधिकारा के घोषणा पत्र मे इन दोनो विचारा के
ा समावेश है।

अधिकारो के फ्रेंच घोषण-पत्र की प्रस्तावना म कहा गया है कि "विस्मृति एव
ावजनिक दुर्भाग्य एव शासनो के भ्रष्ट होने के कारण है।" "सभी व्यक्ति स्वतन्त्र
ते हैं तथा स्वतन्त्र रहते है और उनके अधिकार समान होते हैं। सामान्य
ाता पर ही सामाजिक भेद (social distinctions) आधारित हो सकत हैं।'

प्रत्येक राजनीतिक संगठन का लक्ष्य व्यक्ति के प्राकृतिक (imprescriptible) अधिकारों की रक्षा करना है। ये अधिकार हैं स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा तथा दमन एवं अन्याय के विरुद्ध अधिकार। उपरोक्त सभी कथन प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के अनुरूप हैं। इसके विपरीत, रूसो के विचारों का पुट फ्रेंच अधिकार सम्बन्धी निम्न अनुच्छेदों में स्पष्ट है

"सम्प्रभुता राष्ट्र में निवास करती है।" (अनुच्छेद 3)

"विधि सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। सभी व्यक्तियों को स्वयं या अपने प्रतिनिधि द्वारा उसके निर्माण में भाग लेने का अधिकार है। विधि सभी के लिए एक समान होनी चाहिए। सभी नागरिक विधि की दृष्टि में समान हैं। अतः सभी नागरिक समस्त सम्मान तथा सार्वजनिक पद समान रूप से अपनी योग्यतानुसार प्राप्त करने के अधिकारी हैं। इस सम्बन्ध में योग्यता एवं प्रतिभा के अतिरिक्त उनमें किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।' (अनुच्छेद 6)

अनुच्छेद 4 के अनुसार स्वतन्त्रता हर उस कार्य का करने में निहित है जिससे दूसरों को कोई हानि न हो। इस दृष्टि में मौलिक अधिकारों के प्रयोग की इसके अतिरिक्त और कोई सीमा नहीं है कि समाज के अन्य सदस्यों को भी समान अधिकारों के प्रयोग का अवसर प्राप्त होना चाहिए। इस सीमा का निर्धारण विधि द्वारा होना चाहिए। अनुच्छेद 6 प्रतिनिधि शासन की व्यवस्था करता है। अन्य अनुच्छेदों के द्वारा व्यक्ति को मनमाने ढंग से बन्दी बनाने, कारावास तथा दण्ड देने का निषेध किया गया है, प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक विचारों सहित स्वतन्त्रतापूर्वक भाषण, लेखन एवं प्रकाशन की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। सम्पत्ति को पवित्र एवं अनुल्लंघनीय अधिकार घोषित किया गया है और सामान्य सहमति से करारोपण का विधान किया गया है।

उपरोक्त अधिकारों का फ्रांस के क्रान्ति-काल में पूर्णरूपेण उल्लंघन किया गया था। लेकिन 1789 ई. के स्वतन्त्रता, समानता, लोक प्रभुत्व, योग्यतानुसार पद प्राप्त करना, विधि के अधीन शासन फ्रान्स के परम्परागत गणतन्त्रीय सिद्धान्तों के केन्द्रीय तत्व बने रहे। इन विचारों का महत्व चतुर्थ गणतन्त्रीय संविधान (1946 ई.) की निम्न प्रस्तावना से स्पष्ट है [8]

"प्रत्येक मनुष्य जाति, धर्म, विश्वास के भेदभाव के बिना अनुल्लंघनीय एवं पवित्र अधिकारों का उपयोग करता है।" 1789 ई. के घोषणा-पत्र में उल्लिखित स्वतन्त्रताओं एवं अधिकारों का प्रस्तावना में पुनः अनुसमर्थन किया गया है तथा उन्हें गणतन्त्रीय विधि के मूलाधार के रूप में स्वीकार किया है। संविधान में निम्न राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सिद्धान्तों को अत्यधिक महत्वपूर्ण घोषित किया गया है।

---

8 Carter, Ranney and Herz, *The Government of France*, 1954, p 62.

सभी क्षेत्रा म स्त्री एव पुरुषा को विधि के द्वारा समान अधिकारो की प्रत्याभूति दी गयी है। अत्याचार स पीडित प्रत्येक व्यक्ति को फ्रेच गणराज्य मे शरण का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक नागरिक को काम एव रोजगार का अधिकार है। इच्छानुसार श्रमिक सगठन के निर्माण तथा अधिकारा के सरक्षण का प्रत्येक नागरिक को अधिकार दिया गया है। ऐसी सभी सम्पत्ति जो राष्ट्रीय सामाजिक सेवा के योग्य होगी, समाज की सम्पत्ति होगी। व्यक्ति एव परिवार के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियो का सरक्षण राष्ट्र का दायित्व है। प्रत्येक व्यक्ति, विशेषकर वृद्ध, श्रमिक एव स्त्रिया को सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, विश्राम एव अवकाश तथा समान धम निरपेक्ष शिक्षा, एव व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा सस्कृति की प्रत्याभूति दी गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि के पालन, आक्रामक युद्ध और स्वत त्र जनता के विरुद्ध युद्ध न छेडने का वचन दिया गया है और समानता एव पारस्परिकता के आधार पर सम्प्रभुता की सीमाओ को मा यता दी गयी है। फ्रा स की सीमा के अ तगत समुद्र पार के उपनिवेश भी शामिल किये गये हैं एव वहा के निवासियो को बिना किसी भेदभाव के सविधान प्रदत्त सभी अधिकार समान रूप म प्रदान किये गये हैं।

फ्रा स के पाँचवे गणत त्रीय सविधान (1958 ई) की प्रस्तावना मे भी यह कहा गया है कि "फ्रेंच जनता मानव अधिकारो के प्रति 1789 ई के घोषणा पत्र म परिभाषित एव 1946 ई के सविधान की प्रस्तावना द्वारा अनुसमर्थित एव पूण रूप मे अपने को वचनबद्ध होने की घोषणा करती है।"

1958 ई के पचम गणत त्र के अ तगत भी वे समस्त अधिकार फ्रेच जनता को प्रदान किय गये है जो चतुथ गणत त्र के अधीन उसे प्राप्त थे। इसके अतिरिक्त चतुथ फ्रेच गणत त्र के अनुच्छेद 2 के अन्तगत फ्रान्स को धम निरपेक्ष लोकत त्रीय राज्य घोपित किया गया था। यह अवस्थाएँ महत्वपूण है। इसके अतिरिक्त गणत त्र का लक्ष्य स्वत त्रता, समानता एव भ्रातृत्व था। पाँचवे गणत त्र की प्रस्तावना म यह उल्लेख है।

लेकिन फ्रेच अधिकारो की तुलना अमेरिकी अधिकार-पत्र से नही की जा सकती। फ्रेच अधिकारो की घोपणा अमेरिकी स्वत त्रता की घोषणा के अधिक निकट है। यूमन के अनुसार, यह विधिक प्रपत्र नही है अपितु सिद्धान्तो का एक महान घोपणा पत्र[9] है। कादर का मत है कि 1789 ई के घोपणा-पत्र के निर्माताओ की मुख्य समस्या राजनीतिक न होकर आर्थिक अधिकार सम्बन्धी थी।[10] अमेरिकी एव फ्रेच अधिकारो म मुख्य भेद दोनो देशा के यायालयो की कायपद्धति पर आधारित है। फ्रान्स मे प्रत्येक मामले का उसके गुण-दोपा (merits) के आधार पर निणय

9 Newmann *European and Comparative Governments*, p 223

10 Carter and others *op cit*, p 62

किया जाता है। इगलैण्ड एव अमेरिका की भाँति विवादो एव नजीरो पर पूणत आश्रित नही रहा जाता। फ्रास म प्रशासकीय यायालय हैं। इनके द्वारा शीघ्र निर्णय किय जात है। फ्रास मे नागरिक अपने अधिकारो की रक्षा अपेक्षाकृत अधिक सरलता एव कम खच म कराने म सफल होता है।

सोवियत रूस मे मौलिक अधिकार[11]

सोवियत सविधान मे, आग एव जिक के अनुसार, इतिहास म नात सबसे अधिक असाधारण अधिकार पत्र (Bill of Right) का समावेश है।[12] स्टालिन सविधान की यह सर्वाधिक महत्वपूण विशेषता है। 1918 ई व 1924 ई के सविधानो म मौलिक अधिकारो का उल्लेख नही था। 1935 ई तक रूस म साम्यवादी व्यवस्था के सुदृढ रूप मे स्थापित होने पर ही सविधान का निर्माण किया गया। इस सविधान द्वारा नागरिको को निम्न अधिकार प्रदान किये गये हैं

(1) **काम का अधिकार** (Right to Work)—प्रत्येक नागरिक को काम का अधिकार प्राप्त है अर्थात काम की मात्रा एव गुण तथा रोजगार (Employment) के अनुसार पारिश्रमिक के अधिकार की प्रत्येक नागरिक को प्रतिभूति प्रदान की गयी है। (अनुच्छेद 118)

(2) **विश्राम व अवकाश का अधिकार** (Right to Rest and Leisure)—इसके अनुसार काम के घण्टे निश्चित कर दिये गये है, श्रमिको को सवेतन वार्षिक अवकाश प्रदान किया गया है, विभिन्न स्थानो पर अवकाश एव विश्राम हेतु आवास गह एव क्लवा का निर्माण किया गया है। (अनुच्छेद 119)

(3) **सामाजिक सुरक्षा का अधिकार**—इसके अन्तगत वद्धावस्था, रुग्णावस्था एव अशक्त होने पर राज्य द्वारा भरण-पोषण तथा व्यापक सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक बीमा, नि शुल्क चिकित्सा एव पेन्शन की व्यवस्था की गयी है। (अनुच्छेद 120)

(4) प्रत्येक स्त्री पुरुष को **शिक्षा का अधिकार** प्राप्त है। सोवियत रूस म शिक्षा पूणत नि शुल्क है। प्रत्येक रूसी बालक को आठ वप की आयु तक शिक्षा प्रारम्भ कर देना अनिवाय है। शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषा होती है। छात्र वत्तियो की समुचित व्यवस्था है। (अनुच्छेद 121)

(5) **स्त्रियों एव पुरुषो को समान अधिकार प्राप्त हैं।** अनुच्छेद 122 के अन्तगत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव शासकीय—के अन्तगत

---

11 Refer to chapter X Fundamental Rights and Duties of Citizens of the Soviet Constitution cited by Carter, Renney and Herz *Government of the Soviet Union* pp 229 30

12 'The Soviet Constitution carries one of the most extraordinary Bill of Rights known to the history' —Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1951, p 853

सभी स्त्रियो एव पुरुषो को समान अधिकार प्रदान किय गय है । इसके अतिरिक्त प्रसूति-गहृा एव वालको के लिए शिशु विद्यालया की व्यापक व्यवस्था है । अधिक वच्चो वाली माताओ एव अविवाहित महिलाआ के अधिकारो की विशेष रूप से रक्षा की जाती है ।

(6) **जातीय एव राष्ट्रीय समानता का अधिकार**—रूस के अ तगत निवास करने वाली सभी जातिया एव राष्ट्रजातियो को समानता प्राप्त है । वे अपन सास्कृतिक—भाषा एव अ य रीति-रिवाजा—तथा अ य सावजनिक मामलो मे पूण स्वत त्र होते हैं । (अनुच्छेद 123)

(7) **धम एव अ त करण की स्वत त्रता**—प्रत्येक नागरिक को धम की उपासना एव धम विरोधी प्रचार की पूण स्वत त्रता प्राप्त है । राज्य एव शिक्षा के क्षेत्रो को धम से स्वत त्र रखा गया है । (अनुच्छेद 124)

(8) सोवियत नागरिको को **भाषण एव अभिव्यक्ति** (अनुच्छेद 125), **समुदाय निर्माण** (अनुच्छेद 126) **एव व्यक्तिगत जीवन एव आवास गहो की स्वत त्रता** (अनुच्छेद 127) सम्ब धी अधिकार भी प्राप्त है । भाषण एव अभिव्यक्ति के अधिकार के अधीन एकत्रित होने, जलूस निकालने तथा प्रदशन करने की स्वत त्रता प्रदान की गयी है । इन सभी स्वत त्रताओ का उपयोग समाजवादी व्यवस्था को दृढ करने के लिए ही किया जा सकता है । समाजवाद का विरोध इन अधिकारो के आधार पर सम्भव नही है । समुदाया के निर्माण के अधिकार के अ तगत प्रत्येक व्यक्ति को श्रमिक-सगठन, सहकारी सस्थाएँ एव समितिया बनाने की स्वत त्रता है । पर तु इस अधिकार का प्रयोग श्रमिक वग के हिता के अनुकूल और समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ करने के लिए ही किया जा सक्ता है । इसके अतिरिक्त सोवियत रूस म एकमात्र दल साम्यवादी दल है । यही दल राजनीतिक सगठन का आधार है । साम्यवादी दल' सवहारा वग की क्रान्ति का अग्रदूत है । अनुच्छेद 127 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को यायालय के निणय एव प्रोक्यूरेटर की स्वीकृति के बिना ब दी नही बनाया जा सकता है । अनुच्छेद 128 क अनुसार नागरिका के घरा तथा उनके पत्र व्यवहार की गोपनीयता का उल्लघन नही किया जा सकता । विधि द्वारा इनकी रक्षा का विधान है । लेकिन व्यवहार म इन स्वत त्रताआ का उपयोग साम्यवादी विचारो एव सोवियत शासन के अनुकूल ही किया जा सकता हैं ।

(9) **निजी सम्पत्ति का अधिकार**—सोवियत सविधान नागरिका को अपने परिश्रम से अर्जित सम्पत्ति को रखने एव उत्तराधिकार म देने का अधिकार प्रदान करता है । अनुच्छेद 10 के अनुसार नागरिका को अपने काय से हुई आय एव बचत, रहने का मकान, घरेलू और निजी सुविधा एव प्रयोग की वस्तुएँ तथा सहायक खेती को अपनी निजी सम्पत्ति के रूप म रखन का अधिकार है । इस उत्तराधिकार

दिया जा सकता है। विधि द्वारा इन अधिकारो की रक्षा की व्यवस्था की गयी है। सोवियत रूस मे निजी सम्पत्ति का प्रयोग किसी का शोषण करने के लिए नही किया जा सकता। निजी सम्पत्ति के अन्तगत केवल सुविधा एव आराम की वस्तुएँ ही आती हैं।

(10) **मताधिकार**—सोवियत सघ मे प्रजाति, राष्ट्रीयता, सम्पत्ति, शिक्षा, लिंग, धम एव निवास-स्थान आदि के किसी भेदभाव के बिना प्रत्येक 18 वर्षीय सोवियत नागरिक को मताधिकार प्राप्त है। 23 वष की अवस्था पर प्रत्येक रूसी नागरिक को सर्वोच्च सोवियत की सहायता के लिए निर्वाचित होने का अधिकार प्राप्त है।

(11) **शरण प्राप्त करने का अधिकार**—सविधान के अनुच्छेद 129 के अन्तगत विदेशी नागरिको को जिन्हे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-सघष या वैज्ञानिक कार्यों म भाग लेने या श्रमिक वग के हितो की रक्षा के कारण कोई कष्ट या दण्ड दिया जाता है तो ऐसे विदेशियो को सोवियत रूस मे शरण (Asylum) लेने का अधिकार है।

सविधान मे सोवियत नागरिको के लिए उपरोक्त अधिकारो के साथ-साथ कुछ कतव्य भी निर्धारित किये गये हैं

श्रम सम्मान की वस्तु है अत काम करना प्रत्येक नागरिक का कतव्य है, जो काम नही करेगा उसे रोटी भी प्राप्त नही होगी (अनुच्छेद 12)। सोवियत सविधान एव विधि (अनुच्छेद 130), श्रमिक अनुशासन एव सावजनिक कतव्यो का पालन तथा समाजवादी समाज के नियमो का सम्मान (अनुच्छेद 130), सावजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा (अनुच्छेद 131), सैनिक सेवा (अनुच्छेद 132) तथा देश की रक्षा करना (अनुच्छेद 133) प्रत्येक नागरिक का कतव्य है।

मूल्याकन—रूस के सविधान म उल्लिखित मौलिक अधिकार जहा पश्चिम के लोकतन्त्रीय देशो के मौलिक अधिकारो से मिलते हैं, वहा उनम कुछ नवीनता भी है। सोवियत मौलिक अधिकारो की धारणा पश्चिमी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की देन है परन्तु सोवियत मौलिक अधिकारो का स्रोत साम्यवादी व्यवस्था है—न कि जान लाक द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक अधिकारो की धारणा। सोवियत मौलिक-अधिकारो का उद्देश्य व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध शाश्वत अनुल्लघनीय अधिकार प्रदान करना नही हैं अपितु उनका उद्देश्य साम्यवादी व्यवस्था को सुदृढ करना है। वे इस निमित्त साधनमात्र है। पश्चिमी लोकतान्त्रिक देशो के मौलिक अधिकारो की प्रकृति नकारात्मक है, लेकिन साम्यवादी रूस ने टाउस्टर के शब्दो म सकारात्मक स्वतन्त्रताओ (Positive freedom) का प्रतिपादन करके पश्चिमी लोकतान्त्रिक देशो का मागदशन किया है। सोवियत रूस म स्वतन्त्रताओ को समाप्त नही किया गया है अपितु बहुत स अधिकारो क भिन्न अथ करके उन पर बल दिया गया है।[13] सकारात्मक स्वतन्त्रताओ

13 ' In the Bill of Rights of the new Constitution, the Soviet Union has followed the Western democracies with regard to the nega

के अन्तगत वृद्धावस्था मे सहायता, विश्राम व अवकाश एव शिक्षा सम्ब धी अधिकार ह । भारतवप म इस प्रकार का प्रावधान मौलिक अधिकारा की अपेक्षा नीति निर्देशक तत्वो के अन्तगत किया गया है । सोवियत रूस म नागरिक एव राजनीतिक अधिकारा की अपेक्षा आर्थिक अधिकारो को प्राथमिकता दी गयी है । सम्पत्ति के अनियन्त्रित अधिकार को सोवियत रूस म स्वीकार नही किया गया है । पश्चिमी लोकतान्त्रिक देशो म उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व की व्यवस्था है । अत निजी सम्पत्ति शोषण तथा उत्पीडन का साधन बन गयी है । इसके विपरीत सोवियत रूस म सम्पत्ति एव उत्पादन के साधना पर सामाजिक स्वामित्व है । निजी सम्पत्ति मे जीवनोपयोगी सुविधा की वस्तुआ को ही शामिल किया जाता है । पश्चिमी लोकत त्रो म व्यक्तिया के अधिकारा की धूम हैं परन्तु कतव्य की कही कोई चर्चा नही है । सोवियत रूस एव चीन जसे समाजवादी देशो मे अधिकारो के साथ कतव्यो का भी उल्लेख किया गया है ।

सोवियत मौलिक अधिकारा की साम्यवादी विचारको द्वारा प्रशसा की गयी है । स्टालिन ने इन व्यवस्थाआ पर गव व्यक्त किया था । साम्यवादी विचारक लोकत त्रीय अधिकारो को कागजी घोषणाएँ मात्र मानते हैं। स्वत त्रता तथा समानता की घोषणा मात्र से उ ह प्राप्त नही किया जा सकता है । स्वत त्रता एव समानता की ऐसी 'सामाजिक परिस्थितियो' की आवश्यकता होती है जिनमे व्यक्तित्व समग्र रूप से विकसित हो सके । व्यक्तित्व के विकास का आधार ही आर्थिक स्वत त्रता है । रूस म इस आर्थिक अभाव एव शोषण से व्यक्ति की रक्षा की गयी है । कारपि सकी का कथन है कि "सावियत मौलिक अधिकार एव स्वत त्रताएँ न तो पूजीवादी देशो मे ह ही और न वे उनम हो ही सकती हैं।"[14] फाइनर, मुनरो, यूमन जसे *पश्चिमी विचारक सोवियत अधिकारो को* दिखावा मात्र मानते है क्योकि सोवियत शासन सवाधिकारवादी है। वहाँ साम्यवादी दल का अधिनायकत्व है । सोवियत रूस मे व्यक्ति की अपेक्षा सवहारा वग—श्रमिका एव कृषको—के हितो को प्रधानता दी गयी है । उपरोक्त अधिकारा म से कुछ के परीक्षण से इस मत की बहुत कुछ पुष्टि हो जाती है । सोवियत राज्य मे शिक्षा पर राज्य का *निय त्रण है और उसका आधार साम्यवादी दशन एव विचार हैं । अत* उदार शिक्षा के लिए रूस म कोई अवसर नही है । साम्यवादी दशन की दीक्षा दना ही शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है । सोवियत रूस मे विचार, भाषण एव अभि यक्ति की स्वत त्रता, विशि सको के अनुसार, समाजवाद के शत्रुआ को उपलब्ध नही है और श्रमिका के इन अधिकारो को हानि पहुँचान के प्रत्येक काय को 'क्रा ति विरोधी काय' माना जाता

---

tive freedom while it has pioneered in the introduction of positive Freedom"—Towster *Political Power in the USSR*, pp 380 81

14 V Karpinsky *The Law of the Soviet State*, pp 219 20

है । सोवियत रूस म बुर्जुआ, मैनशेविष्टा (Mensheviststs) एव शान्ति विरोधियो के समाचार पत्रो को समाप्त कर दिया गया है तथा समाजवाद विरोधी साहित्य एव साहित्यकारो को वहा कोई स्थान नही है । डॉ जिवागो' के लेखक डा पस्टरनायक को रूस म कोई स्थान नही था । स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना को भी साम्यवादी शासको से मतभेद होने की अवस्था म सोवियत रूस छोडना पडा था । धार्मिक आचरण सम्बन्धी स्वतन्त्रता के सम्बन्ध मे यह कहना अधिक ठीक है कि प्रत्येक नागरिक को धम विरोधी स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त है । व्यक्तिगत जीवन एव गृहो की स्वतन्त्रता का अधिकार व्यवहार म साम्यवादी दल के सदस्या एव उनके समथको को ही प्राप्त है । सोवियत रूस म मौलिक अधिकारो की रक्षा का दायित्व भारतवप एव सयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशो की भाँति सर्वोच्च न्यायालय पर नही है । स्मरणीय है कि पाश्चात्य सविधान शास्त्रियो की दृष्टि म न्यायिक सरक्षण के अभाव म मौलिक अधिकारो का कोई महत्व नही है । रूसी जनता को मत देने का अधिकार तो है परन्तु वे उसका स्वतन्त्रतापूवक उपभोग नही कर पाते है । क्योकि देश म एकमात्र साम्यवादी दल है, उसी के द्वारा प्राय उम्मीदवार खडे किये जाते हैं एव वे ही निर्वाचनो मे विजयी होते हैं । अत सोवियत नागरिको के समक्ष कोई वैकल्पिक शासन नही है । साम्यवादी दशन म राजनीतिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा आर्थिक स्वतन्त्रता को वैयक्तिक एव सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक माना जाता है । सोवियत रूस म व्यवहार मे मौलिक अधिकार, वास्तव म शासन द्वारा निश्चित किये जाते हैं । सोवियत रूस एव पश्चिमी प्रजातन्त्रा मे स्वतन्त्रता सम्बन्धी मुख्य भेद यह है कि सोवियत रूस मे स्वतन्त्रताओ का पूणरूपेण दमन करने के पश्चात उनके अनक भिन्न अथ किये गये है एव उन पर निरन्तर बल दिया जाता है ।[15]

उपरोक्त विश्लेषण स यह निर्विवाद रूप म स्पष्ट हो जाता है किसो वियत रूस मे आर्थिक अधिकारो की प्रधानता है । वयक्तिक स्वतन्त्रता या नागरिक स्वतन्त्रता को वहा अपेक्षाकृत कम मान्यता प्राप्त है । मनुष्य हाड मांस का पिण्ड मात्र नही है । व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए विचार एव अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा वकल्पिक शासन निर्माण सम्बन्धी अधिकार एव अवसर अनिवाय हाते है । रूस म एक बडी सीमा तक इनका अभाव है ।

जनवादी चीन मे मौलिक अधिकार

साम्यवादी चीन के सविधान द्वारा नागरिको को निम्नलिखित अधिकार एव कतव्य[16] प्रदान किय गये हैं

(1) विधि के समक्ष सभी नागरिक समान हैं । प्रत्येक वयस्क नागरिक—

---

15 Towster *op cit* p 380

16 अध्याय 3—अनुच्छेद 85, 99

स्त्रियो एव पुरुषो—को 18 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर बिना किसी भेद भाव के मतदान एव निर्वाचन मे भाग लेने के अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन साम तो एव बुर्जुआ पूजीपतिया को मताधिकार से वचित कर दिया गया है। किसी भी व्यक्ति को जन-यायालय के निणय या जन प्रोक्यूरेटर की अनुमति से ही ब दी बनाया जा सकता है। चीनी नागरिको के निवासगृहो के क्षेत्र का उल्लघन नही किया जा सकता है। उ हे आवास एव उसके परिवत्तन करने की स्वत त्रता प्राप्त होती है (अनुच्छेद 90)। पत्र-व्यवहार सम्ब धी गोपनीयता विधि द्वारा सरक्षित है। *ये व्यवस्थाएँ सोवियत सविधान* के समान ही है।[17] भाषा भी दोनो की समान है।

(2) **काम एव विश्राम का अधिकार**—श्रमिको एव अ य कमचारिया के काम एव छुट्टी के घण्टे निश्चित हैं। श्रमिको को अ य भौतिक सुविधाए भी प्राप्त हैं जिससे विश्राम करके वे स्वस्थ रह सकेंगे।

(3) प्रत्येक नागरिक को वृद्धावस्था, रूग्णावस्था एव असमथता की दशा मे भौतिक सहायता (Material) का अधिकार प्राप्त है। इस हेतु राज्य द्वारा सामाजिक बीमा, सामाजिक सहायता एव सामाजिक स्वास्थ्य सेवाओ की व्यवस्था की गयी है।

(4) **शिक्षा का अधिकार**—शिक्षा हतु सारे देश मे विभिन्न प्रकार के विद्यालयो, सास्कृतिक एव शक्षणिक सस्थाओ की स्थापना की गयी है। वज्ञानिक शोध, साहित्यिक, कलात्मक एव सास्कृतिक कार्यों को राज्य द्वारा प्रोत्साहन दिया जाता है तथा युवको के शारीरिक एव मानसिक विकास का राज्य विशेष ध्यान रखता है।

(5) **धार्मिक विश्वास की स्वत त्रता**—नागरिका को धार्मिक रूप से स्वत त्रता प्राप्त है। उपासना एव अ त करण की स्वत त्रता की दृष्टि स धार्मिक सस्थाना से राज्य एव शिक्षा को पृथक कर दिया है। धम के विरुद्ध प्रचार की स्वत त्रता सभी नागरिको को प्राप्त है।

(6) **स्त्रियो को समानता का स्तर** प्रदान किया गया है। जनवादी चीन म जीवन के सभी राजनीतिक, आर्थिक, सास्कृतिक, सामाजिक एव पारिवारिक क्षेत्रा म स्त्रिया को पुरुषा के समकक्ष स्थान प्राप्त है। राज्य द्वारा विवाह, परिवार, माताओ एव बालका को सरक्षण दिया जाता है।

(7) **कष्ट निवारण का अधिकार** प्रत्येक चीनी नागरिक को प्राप्त है। यदि किसी शासकीय विभाग या कार्यालय या अधिकारी द्वारा किसी विधि का उल्लघन किया जाता है अथवा कतव्य का सम्पादन नही किया जाता तो नागरिका को लिखित एव मौखिक शिकायत करन तथा हानि की क्षतिपूर्ति करने का अधिकार है।

प्रवासी चीनिया के उचित हितो एव अधिकारो की रक्षा का दायित्व जनवादी चीन के जनवादी गणराज्य पर है। उचित काय के लिए दण्डित विदेशिया या जनआन्दो

---

17 देखिए सोवियत सविधान के अनुच्छेद 127 एव 128

लनो अथवा वैज्ञानिक कार्यों म सलग्न व्यक्तियों को चीन मे शरण प्राप्त करने का अधि कार है । सभी नागरिका को भाषण, प्रेस, सभा आयोजन तथा सघ, जलूस एव प्रदशन करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है । राज्य के द्वारा इन स्वतन्त्रताओ के उपभोग की प्रत्या भूति आवश्यक भौतिक सुविधाएँ प्रदान करके दी गयी हैं । भाषण एव प्रेस की स्वत न्त्रता तथा उपरोक्त अन्य स्वतन्त्रताओ का उपभोग श्रमिको के हितो के अनुरूप ही किया जा सकता है । चीन के जनवादी लोकतन्त्र का लक्ष्य पूजीवाद को समाप्त कर समाजवाद की स्थापना करना है । अत उपरोक्त स्वतन्त्रताएँ केवल समाजवाद की स्थापना एव प्रसार के सन्दभ मे ही प्राप्त हैं । समाजवाद के विरोधिया को कोई सुविधा उपलब्ध नही है । उन्हे देशद्रोही एव क्रान्ति विरोधी होने की सजा दी जाती है ।

मौलिक कतव्य[18]—सोवियत सविधान की भांति चीन के सविधान म भी नागरिको के निम्न कतव्यो का उल्लेख है

नागरिका को सविधान एव विधि के अनुरूप कार्य करना चाहिए । अनुशासन को कायम रखना, सावजनिक व्यवस्था एव सामाजिक आचार की रक्षा, जन-गणराज्य की सम्पत्ति की सुरक्षा प्रत्येक चीनी नागरिक का कतव्य है । प्रत्येक नागरिक को विधिसम्मत कर अदा करना चाहिए । सनिक सवा एव देश की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का पवित्र कतव्य है ।

चीन के जनवादी सविधान मे मौलिक अधिकारो एव कतव्या सम्बन्धी एक पृथक अध्याय है । इसमे मताधिकार सहित अन्य नागरिक अधिकारो को प्रथम एव आर्थिक अधिकारो को द्वितीय स्थान प्रदान किया गया है। चीन म भी सोवियत रूस की भाति नागरिक अधिकारो (Civil rights) की व्यवस्था सुदृढ समाजवादी व्यवस्था के निर्माण एव अनुरक्षण की दृष्टि से की गयी है यद्यपि चीन के सविधान मे सोवियत सविधान की भाँति इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख नही है । सोवियत रूस की भाँति चीन मे भी साम्यवादी दल ही एकमात्र राजनीतिक दल है । शासन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण पर आधारित है। लोकतन्त्र पर कम और केन्द्रीकरण पर अधिक बल दिया गया है । देश की समाजवादी व्यवस्था के विरुद्ध काय क्रान्ति विरोधी षड्यन्त्र माना जाता है । लोकतान्त्रिक देशो की भाति भाषण एव विचार अभिव्यक्ति तथा सभा, सघ बनाने की स्वतन्त्रताएँ चीन जनता का प्राप्त नही हैं । यह स्वतन्त्रताएँ तभी तक मान्य हैं जब तक कि उनका साम्यवादी विचारधारा से कोई विरोध नही है । क्रान्ति विरोधी कार्यों को देशद्रोहात्मक काय माना जाता है और सविधान मे उसके दमन का आदेश है (अनुच्छेद 19) । मौलिक अधिकारो का चीन म कोई व्याव हारिक महत्व नही है । कतव्य के पालन के अभाव मे मौलिक अधिकारो का कोई अस्तित्व नही है । अकारण ही लाखो लोगो की चीन म हत्या की गयी है । विधि

18 अनुच्छेद 100 103

विश्वास पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। हर कोई अपने धर्म का प्रचार कर सकता है। राज्य चर्च के नियन्त्रण से स्वतन्त्र है (अनुच्छेद 47)। किसी व्यक्ति के जीवन एवं स्वतन्त्रता का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है (अनुच्छेद 47)। फौजदारी मामलों मे विधि के अनुसार ही किसी व्यक्ति को नजर बन्द किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को ऐसे किसी कार्य के लिए दण्डित नहीं किया जा सकता है जो किये जाने के समय अपराध न माना जाता हो (अनुच्छेद 48 एवं 49)। प्रत्येक व्यक्ति को न्याय के समक्ष अपनी रक्षा का अधिकार है। नागरिकों को देश में आवागमन एवं किसी भाग में बसने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। परन्तु शासन को स्वास्थ्य एवं देश की सुरक्षा की दृष्टि से प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार भी दिया गया है (अनुच्छेद 51)। घरों के क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है और बिना वारण्ट किसी मकान की तलाशी नहीं ली जा सकती है। इसी प्रकार पत्रों एवं पत्र व्यवहार की गोपनीयता का अतिक्रमण निषिद्ध है लेकिन देश की सुरक्षा हेतु इसे सीमित या निलम्बित किया जा सकता है (अनुच्छेद 52)।

प्रत्येक नागरिक की रक्षा के लिए गणराज्य कर्तव्यबद्ध है। किसी नागरिक को नागरिकता के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता और न उसे प्रत्यावर्तित ही किया जा सकता है। उत्तराधिकार एवं स्वास्थ्य रक्षा की प्रत्याभूति दी गयी है। माताओं एवं बच्चों को विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है। परिवार को मान्यता प्रदान की गयी है तथा उसे सामाजिक संरक्षण प्रदान किया गया है। विवाह एवं मातृत्व तथा पारिवारिक सम्बन्धों को विधि द्वारा नियमित किये जाने की व्यवस्था है (अनुच्छेद 58)।

कर्तव्य—देश की सुरक्षा प्रत्येक नागरिक का अधिकार एवं सर्वोच्च कर्तव्य है। सार्वजनिक पदों का पूर्ण निष्ठा से सम्पादन, संविधान एवं विधि का पालन, समाज की भौतिक समृद्धि में सामर्थ्यानुसार योगदान प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रताओं एवं अधिकारों को मनमाने ढंग से कम या सीमित करना अवधानिक एवं दण्डनीय अपराध माना गया है और इनके संरक्षण के लिए न्यायिक सुरक्षा की व्यवस्था है। अधिकारों के संरक्षण का दायित्व न्यायालय का है।

सोवियत रूस एवं चीन के संविधानों द्वारा प्रदत्त अधिकारों की तुलना में यूगोस्लाविया के संविधान द्वारा अधिक स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गयी हैं। यूगोस्लाविया में इनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है और न विधियों द्वारा ये सीमित ही की जा सकती है। अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायिक संरक्षण भी प्राप्त है। परन्तु यूगोस्लाविया में सोवियत रूस एवं चीन की भाँति एकमात्र दल साम्यवादी दल ही है। वहाँ पश्चिमी ढंग का लोकतन्त्र नहीं है। अतः इन स्वतन्त्रताओं की वास्तविकता में सन्देह है। सोवियत रूस की भाँति यूगोस्लाविया के संविधान में अधिकारों की पूर्ति हेतु आवश्यक स्थिति का उल्लेख नहीं है।

34
भारत मे मौलिक अधिकार[1]
[FUNDAMENTAL RIGHTS IN INDIA]

भारतीय सविधान मे मौलिक अधिकारो एव नीति निर्देशक तत्वो पर पृथक पृथक—तृतीय एव चतुथ—अध्याय हैं। इस सम्बन्ध मे भारतीय सविधान निर्माता अमेरिकी अधिकार पत्र, फ्रेंच मानव अधिकारो की घोषणा एव आयरिश सविधान (1935 ई) से प्रभावित थे।[2] सविधान निर्माणकाल के मध्य (1948 ई) म ही सयुक्त राष्ट्र सघ ने मानवीय अधिकारो सम्बन्धी घोषणा पत्र को स्वीकार किया था। कांग्रेस उदारवादिया, राष्ट्रीय जीवन के समस्त नरमदलीय क्षेत्रो एव धार्मिक अल्पसख्यको—मुसलमानो सिक्खो, ईसाइयो—ने सविधान मे मौलिक अधिकारो के उल्लेख को अल्पसख्यको के अधिकारो की रक्षा एव बहुसख्यक के विश्वास हेतु वाछनीय माना था।[3] सविधान सभा के सभी पक्षो ने भी सविधान म मौलिक अधिकारा के उल्लेख का स्वागत किया था। सविधान-निर्माताओ न तीन अन्य कारणा से मौलिक अधिकारा को सविधान मे लिपिबद्ध करने का निणय लिया था—प्रथम, ब्रिटिशकालीन निरकुशता एव असमानता सम्बन्धी अनुभव, द्वितीय, जाति प्रथा के परिणामस्वरूप अछूतो की दयनीय स्थिति, एव तृतीय, भारत म विभिन्न धार्मिक, भाषायी एव जातीय (racial) अल्पसख्यको का अस्तित्व तथा उनके सास्कृतिक अधिकारा की सुरक्षा की आवश्यकता।

भारतीय सविधान के अन्तगत प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित मौलिक अधिकार प्राप्त हैं

(1) समानता का अधिकार (Right to Equality) अनुच्छेद 14 से 18 तक।

---

1 भारतीय सविधान, अध्याय 3, अनुच्छेद 12 से 32 तक।

2 द्वितीय विश्वयुद्धोत्तरकालीन बर्मी एव जापानी सविधाना का भी प्रभाव पडा है। स्मरणीय है कि बर्मा एव भारत की समस्याएँ बहुत कुछ समान थी। जापानी सविधान पर अमेरिका का विशेष प्रभाव था।

3 Pylee, M V *India s Constitution*, p 79

(2) स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)—अनुच्छेद 19 से 22 तक।

(3) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)—अनुच्छेद 23 एव 24।

(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)—अनुच्छेद 25 से 28 तक।

(5) सास्कृतिक एव शैक्षणिक अधिकार (Cultural and Educational Rights)—अनुच्छेद 29 एव 30।

(6) सम्पत्ति का अधिकार (The Right to Property)—अनुच्छेद 31, 31 (अ) एव अनुच्छेद 31 (ब)।

(7) सवैधानिक उपचारो का अधिकार (The Right to Constitutional Remedies)—अनुच्छेद 32।

समानता का अधिकार

इस अधिकार का अर्थ है कि—

(1) प्रत्येक नागरिक विधि की दृष्टि म समान है तथा सभी को विधि का समान सरक्षण प्राप्त है।[4]

(2) सावजनिक मनोरजन के स्थाना पर जाने एव सावजनिक कुओ तालावा, घाटो, सडको के प्रयोग करने तथा राज्य के अन्तगत किसी पद या नियुक्ति के सम्बन्ध म किसी भी नागरिक क साथ रक्त वण, जाति लिग एव जन्मस्थान के आधार पर कोई अयोग्यता दायित्व, पूर्ति या प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता।[5] अस्पृश्यता को निषिद्ध करते हुए उसके आधार पर भेदभाव को अपराध घोषित किया गया है।

(3) सैनिक एव शैक्षणिक उपाधियो को छोडकर राज्य द्वारा अन्य कोई उपाधि प्रदान नही की जा सकती और न कोई भारतीय किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि ही स्वीकार कर सकता है। इसी प्रकार भारत सरकार के सेवारत विदेशी कमचारियो द्वारा बिना राष्ट्रपति की अनुमति के विदेशी राज्यो द्वारा प्रदत्त उपाधियाँ स्वीकार नही की जा सकती है।[6]

---

4 अनुच्छेद 14 (5) व 15 16

5 अनुच्छेद 17। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम (1955 ई) का निर्माण करके ससद ने इस सवैधानिक प्रावधान को और अधिक स्पष्ट कर दिया है। इसके अनुसार जो स्थान दुकान या सेवाएँ सामान्य जनता के लिए खुली हुई है, वे अनुसूचित जातियो क लिए भी खुली हैं तथा अनुसूचित जातियो के इन अधिकारो म हस्तक्षेप करने वाले काय को दण्डनीय अपराध माना गया है तथा अपराधी को 6 माह का कारावास या 500 रु तक का जुर्माना या दोनो दण्ड दिये जा सकते है।

6 अनुच्छेद 18

समानता का अधिकार असीमित नही है। कुछ राज्यो या स्थानीय क्षेत्रा म नौकरी सम्बन्धी आवासी योग्यता निर्धारित करन एव अनुसूचित जातिया के लिए स्थान सुरक्षित करन का अधिकार ससद को प्राप्त है। सावजनिक स्थानो म जाने के समान अधिकार के अन्तगत स्त्रिया एव बच्चा के लिए विशेष व्यवस्था करन का अधिकार राज्य को प्राप्त है और उसे इस अधिकार स वचित नही किया जा सकता।[8] इसक अतिरिक्त इस अधिकार क कारण धार्मिक सम्थाओ की प्रबन्धकारिणी के सदस्यो एव अन्य पदाधिकारिया पर धम के अनुयायी होन पर काई प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता है।[9] प्रथम सवधानिक सशोधन द्वारा इस अधिकार के सम्बन्ध म यह व्यवस्था की गयी है कि समता के अधिकार के फलस्वरूप सामाजिक एव शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे वर्गों एव नागरिका या परिगणित जातियो और जनजातिया हेतु विशेष प्रावधान करन के राज्य के प्रयत्नो पर काई प्रतिबन्ध नही लग जाता है।[10] मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तक्नीकी शिक्षा सस्थाओ मे विशेष जातियो एव समुदायो के लिए स्थान सुरक्षित करने वाले मद्रास राज्य के शासकीय आदेश को अवैधानिक घोषित कर दिये जाने पर यह सशोधन पारित किया गया था।[11] समता के मौलिक अधिकार मे उल्लिखित 'विधि के समक्ष समानता' शब्दावली को डायसी द्वारा उल्लिखित ब्रिटिश 'विधि के शासन' के सिद्धान्तो से ग्रहण किया गया है। इसका अथ निरकुश शासन का अभाव एव विधिक समानता अर्थात प्रशासकीय विधि का अभाव है। प्रत्येक नागरिक चाहे उसकी स्थिति कुछ भी क्यो न हो, एक ही विधि के अधीन है एव उसी के द्वारा शासित है। 'विधि का समान सरक्षण' (equal protection of law) शब्दावली अमरिका के 14वें सवैधानिक सशोधन की उपधारा मे से उदधृत की गयी है। अमेरिकी सवोच्च न्यायालय ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'सब व्यक्तियो को सुख एव सम्पत्ति प्राप्त करने तथा उसका उपयोग करने का समान अधिकार है। उन्हे अपने व्यक्तित्व एव सम्पत्ति के सरक्षण क लिए न्यायालयो एव अन्यायो के प्रतिकार तथा अनुबन्धा के क्रियान्वयन हेतु न्यायालय की शरण लेने के समान अधिकार होने चाहिए। किसी व्यक्ति के कार्यों पर ऐसे कोई प्रतिबन्ध नही होन चाहिए जो समान परिस्थितियो मे किन्ही अन्य व्यक्तियो पर न लगाये जायें तथा समान व्यवसाय एव परिस्थितिया मे अन्य लोगो पर आरोपित आर्थिक या कर भार से अधिक कर भार आरोपित नही किया जाना चाहिए। फौजदारी न्याय के प्रशासन म किसी व्यक्ति को

---

7 अनुच्छेद 16 (3) (4)

8 अनुच्छेद 15 (3)

9 अनुच्छेद 16 (5)

10 प्रथम सशाधन 1951 ई अनुच्छेद 15 (4)

11 *Champakaran Dorairanjan* vs *State of Madras*, A I R 1951 S 226

समान अपराध के लिए दूसरे स भिन्न अथवा अधिक दण्ड नही दिया जाना चाहिए ।'[12]

विधि के समक्ष समानता एव 'विधि का समान सरक्षण' दोना शब्दावलिया का उद्देश्य स्थिति (Status) एव अवसर (Opportunity) की समानता स्थापित करना है । 'विधि क समक्ष समानता वाक्याश नकारात्मक समानता सम्बन्धी आश्वासन है, जबकि 'विधि का समान सरक्षण' सकारात्मक या स्वीकारात्मक अर्थों म समानता का आश्वासन है ।

अनुच्छेद 14 द्वारा राज्य क भेदभाव सम्बन्धी कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाया गया है लेकिन व्यक्ति के कार्यों पर कोई प्रतिबन्ध नही है । व्यक्तिगत फर्मों म काय करने वाले कमचारियो क साथ यदि मालिक के द्वारा कोई भेदभाव किया जाता है तो इस प्रकार क विभेद स रक्षा के लिए किसी प्रकार क न्यायिक सरक्षण की कोई व्यवस्था नही है । यदि इस प्रकार के वैयक्तिक कार्यों सम्बन्धी भेदभाव के बारे म हस्तक्षेप की कोई व्यवस्था होती तो व्यक्ति की स्वतन्त्रता अत्यधिक सीमित हो जाती और मौलिक अधिकार स्वय म ही महत्वहीन हो जाते । यह इसका सकेत है कि व्यक्तिगत एव सामाजिक हिता की सीमाएँ होती है। व्यक्तिगत हित जहाँ सामाजिक हित का अतिक्रमण करने लगता है वही सविधान निर्माताओ न राजकीय हस्तक्षेप की व्यवस्था की है उदाहरणाथ, अस्पृश्यता को सविधान म दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है ।

स्वतन्त्रता का अधिकार

स्वतन्त्रता के अधिकार के अन्तगत प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित स्वतन्त्र प्रदान की गयी है

(अ) भाषण एव विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता ।
(ब) बिना शस्त्र शान्तिपूवक सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता ।
(स) समुदाय या सघ बनाने की स्वतन्त्रता ।
(द) भारत के किसी भी भाग मे निवास करने एव बस जाने की स्वतन्त्रता ।
(इ) सम्पत्ति के अर्जित करने, रखने एव विक्रय करने की स्वतन्त्रता ।
(ई) कोई वृत्ति अथवा व्यापार वाणिज्य या कारोबार करने की स्वतन्त्रता ।[13]

उपर्युक्त स्वतन्त्रताओ के दुरुपयोग को रोकने के लिए सविधान द्वारा सार्वभौमिक रूप मे इन पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये है

भाषण एव विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर सात प्रतिबन्ध हैं । मूल

12 Quoted in D N Banerjee *Our Fundamental Rights* Calcutta 1960 pp 55 60

13 अनुच्छेद 19 (1)

सविधान मे केवल चार प्रतिबन्ध ही थे। प्रथम सशोधन (1951) के द्वारा तीन अन्य प्रतिबन्धो को और जोड दिया गया है। ये प्रतिबन्ध है राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यो के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टता एव सदाचार या नैतिकता, न्यायालय का अपमान करना या उसे बदनाम करने के प्रयत्न एव हिंसात्मक क्रियाओ को उभारना। किसी व्यक्ति के भाषण एव विचार अभिव्यक्ति पर उपर्युक्त स्थितियो मे राज्य को उचित प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है।[14] स्मरणीय है रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य विवाद[15] म सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि जब तक भाषण एव विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का लक्ष्य राज्य की सुरक्षा को समाप्त करना और राज्य को उखाड फेकना नही है, तब तक प्रतिबन्ध निर्धारित करने वाली विधि को उचित प्रतिबन्ध नही माना जा सकता। इस व्याख्या के अनुरूप सर्वोच्च न्यायालय एव कुछ उच्च न्यायालयो ने अपने निर्णयो म यह मत व्यक्त किया है कि अनुच्छेद 19 (2) द्वारा निर्धारित सीमाओ के अन्तगत व्यक्तिगत हत्याओ एव असन्तोष को बढावा देने वाले कार्यों को सीमित नही किया जा सकता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रथम सवैधानिक सशोधन के माध्यम से सावजनिक व्यवस्था एव हस्तक्षेप के अन्य आधारो को अनुच्छेद 19 (2) मे और जोड दिया गया है। इस सशोधन से शासन को हस्तक्षेप के अधिक अवसर प्राप्त हो गये है परन्तु फिर भी प्रतिबन्ध के औचित्य सम्बन्धी परीक्षण का अवसर न्यायपालिका को ही प्राप्त है।

विचारो की अभिव्यक्ति के अन्तगत ही प्रेस की स्वतन्त्रता प्राप्त है। कोई पृथक प्रत्याभूति इस सम्बन्ध म सविधान द्वारा प्रदान नही की गयी है। इसकी तीव्र आलोचना की गयी है। इस सम्बन्ध मे डा अम्बेडकर का यह मत था कि प्रेस कोई पृथक व्यक्ति नही है। सम्पादक एव प्रेस के मैनेजर सभी नागरिक होते है। अत पृथक रूप म प्रेस की स्वतन्त्रता की आवश्यकता नही है और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मे ही प्रेस की स्वतन्त्रता भी निहित है।

सविधान के अधीन सार्वजनिक व्यवस्था एव नैतिकता के हित म राज्य को सम्मेलन करने एव समुदाय निर्माण की स्वतन्त्रता पर उचित प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है।[16] किसी भी नागरिक को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी समुदाय या सगठन का सदस्य बनाने के लिए बाध्य नही किया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने मद्रास राज्य बनाम जी एस राव (1952) नामक विवाद म यह मत व्यक्त किया है कि इस स्वतन्त्रता पर उस समय तक प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता जब तक कि प्रतिबन्ध के आधारो की किसी न्यायिक अधिकारी के द्वारा समुचित जाँच न हो

---

14 अनुच्छेद 19 (2)

15 *Ramesh Thappar vs State of Madras*, A I R 1950 S C 124

16 अनुच्छेद 19 (3) एव (4)

जाय। सविधान के अनुरूप भारत म स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने, किसी भाग म निवास करने एव स्थायी रूप से बस जाने तथा सम्पत्ति अर्जित करने, रखने एव बेचने पर सामान्य जनता अथवा किसी अनुसूचित जनजाति के हितो की रक्षाथ राज्य को उचित प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है। लेकिन जम्मू-कश्मीर राज्य के सम्बन्ध म राज्य की यह शक्ति सीमित है। वहाँ गैर कश्मीरियो को भूमि खरीदने का कोई अधिकार नही है। व्यवसाय की स्वतन्त्रता पर भी सावजनिक हित मे राज्य द्वारा उचित प्रतिबन्ध लगाये जा सकत हैं और कुछ व्यवसायो के सम्बन्ध म व्यावसायिक एव तकनीकी योग्यताएँ भी निर्धारित की जा सकती हैं। राज्य का स्वय या राज्य-स्वामित्व या उसके अधीन निगम द्वारा नियन्त्रित व्यापार उद्योग या सेवा के स्वामित्व को स्वय लेने या सचालन को स्वय ग्रहण करने के अधिकार हैं। ऐसी स्थिति म सम्बन्धित उद्योगा से राज्य कुछ नागरिको को आशिक या पूणरूपेण पृथक कर सकता है। उद्योग एव व्यवसाय की स्वत नता को नियन्त्रित करने की शक्ति का 1951 के प्रथम सवधानिक सशोधन द्वारा काफी विस्तार कर दिया गया है। इसके फलस्वरूप व्यवसायो एव उद्योगा के राष्ट्रीयकरण का माग खुल गया है।

व्यवसाय व्यापार एव वाणिज्य सम्बन्धी स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार स्वीकार करने के सम्बन्ध म सविधान सभा के सदस्यो म काफी सन्देह व्याप्त था। आयरलैण्ड एव स्विट्जरलैण्ड ही अन्य दो देश हैं जहाँ पर व्यवसाय सम्बन्धी स्वतन्त्रता को मौलिक अधिकार माना गया है। सविधान म तत्सम्बन्धी व्यवस्था देश के जटिल सामाजिक स्वरूप की दृष्टि से उचित ही है। भारत म व्यवसायो का आधार जाति प्रथा रही है। ऐसी स्थिति म व्यावसायिक स्वतन्त्रता के लिए सवैधानिक सरक्षण की विशेष रूप स आवश्यकता थी।

वयक्तिक स्वत त्रता[17]

सविधान के अनुसार[18] किसी व्यक्ति को उस समय तक दण्डित नही किया जा सकता जब तक कि उसने किसी विधि का उल्लघन न किया हो तथा अपराध के लिए किसी व्यक्ति का प्रचलित विधि द्वारा प्रस्तावित दण्ड स अधिक दण्ड नही दिया जा सकता। एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दो बार दण्डित नही किया जा सकता है। अभियुक्त को स्वय अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नही किया जा सकता। अनुच्छेद 21 के अनुसार व्यक्तियो को उनके जीवन एव वैयक्तिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित व्यवस्था (procedure established by law) से ही वचित किया जा सकता है, न कि अन्य किसी प्रकार स। सविधान क मूल प्रारूप म विधि की उचित प्रक्रिया' (due process of law) द्वारा ही किसी व्यक्ति को जीवन

17 Articles 20 22
18 Article 20

एव स्वतन्त्रता से वचित करने की व्यवस्था थी। लेकिन बाद मे 'विधि की प्रक्रिया' के स्थान पर 'विधि द्वारा स्थापित व्यवस्था' शब्दावली का प्रयोग किया गया। प्रारूप निर्मात्री परिषद ने इस परिवर्तन के दो कारण दिये है प्रथम, वैयक्तिक स्वतन्त्रता' शब्द केवल 'स्वतन्त्रता' शब्द की अपेक्षा अधिक निश्चित है एव विस्तृत व्याख्या सम्भव नही है। द्वितीय, 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया बिल्कुल स्पष्ट है। स्मरणीय है कि 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया शब्दावली' का प्रयोग जापान के सविधान (1946) मे किया गया है, जबकि ब्रिटिश एव अमेरिकी सविधानो म 'विधि की उचित प्रक्रिया' वाक्याश ही पाये जाते हैं। देश के विभाजन के पश्चात सविधान सभा के अधिकाश सदस्यो मे 'व्यक्तिगत स्वाधीनता' की अपेक्षा राष्ट्रीय एकता के लिए 'सामाजिक नियन्त्रण' को स्थापित करने की चिन्ता अधिक दिखायी दती थी। अत 'विधि की उचित प्रक्रिया' के स्थान पर 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' शब्दावली को मान्यता दी गयी है। इसके फलस्वरूप अन्यायपूर्ण विधियो के सम्बन्ध म न्यायालय हस्तक्षेप करने से वचित हो गया है। सविधान सभा ने 'विधि की स्थापित प्रक्रिया को दो अन्य कारणो से भी स्वीकार किया है। प्रथम 'विधि की उचित प्रक्रिया' वाक्याश का अर्थ अस्पष्ट है, द्वितीय, वे न्यायपालिका को तृतीय सदन नहा बनाना चाहते थे। आग्ल-सैक्सन देशो मे 'विधि की उचित प्रक्रिया शब्दावली का निश्चित अर्थ विकसित हो चुका है। इस अर्थ के अनुसार इस शब्दावली म वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अभाव निहित है, जसे कि किसी भी व्यक्ति की बिना वारण्ट के तलाशी नही ली जा सकती, न्यायालय म सभी का रक्षार्थ आवेदन का अधिकार प्राप्त है, नागरिको को प्रत्येक मामले म खुली अदालत म विचार का अधिकार है और यदि कोई विधि इन व्यवस्थाओ का उल्लघन करती है तो न्यायालय उसे अवधानिक घोषित कर सकती है। सक्षेप मे 'विधि की उचित प्रक्रिया' से अर्थ प्राकृतिक न्याय के सर्वमान्य स्वीकृत सिद्धान्तो से है। इन स्वीकृत सिद्धान्तो के अनुसार सम्बन्धित विधि की निहित अच्छाई एव बुराई की समीक्षा की जाती है। सयुक्त राज्य अमरिका मे 'विधि की उचित प्रक्रिया' शब्दावली की कभी पूर्णरूपेण परिभाषा नही की गयी है। लेकिन सामान्यत इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रत्येक अभियुक्त को सफाई का अवसर दिया जाना चाहिए, बलपूर्वक अपराधी से अपराध की स्वीकृति नही ली जानी चाहिए, खुले न्यायालय मे निष्पक्ष रीति से मुकद्दमा की सुनवाई होनी चाहिए तथा प्रत्येक अपराधी को विधिक सहायता उपलब्ध होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त विधि उचित होनी चाहिए और मनमाने ढग से निर्मित नही होनी चाहिए। स्मरणीय है सयुक्त राज्य अमेरिका मे सर्वोच्च न्यायालय ने 'विधि की उचित प्रक्रिया' शब्दावली का ऐसा अर्थ किया था जिसके फलस्वरूप श्रमिको एव अन्य सामाजिक विधियो को सर्वोच्च न्यायालय न अवैधानिक घोषित किया था। भारतीय सविधान निर्माता इस प्रकार की स्थिति से बचना चाहते थे अत उन्होने विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' का प्रयोग किया है इसके फलस्वरूप वैयक्तिक

स्वतन्त्रता सम्बन्धी अन्तिम निर्णय के अधिकार न्यायपालिका को प्राप्त न होकर व्यवस्थापिका को प्राप्त हो गये है। उपरोक्त अनुच्छेद मे विधि मुख्य शब्द है। 'विधि' शब्द का इस अनुच्छेद के सन्दर्भ में क्या अर्थ है ? राज्य निर्मित विधि, प्राकृतिक या मौलिक विधि। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार 'विधि की स्थापित प्रक्रिया से तात्पर्य राज्य विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही है।'[19]

अनुच्छेद 22 द्वारा स्वेच्छित गिरफ्तारी एव नजरबन्दी के विरुद्ध यह व्यवस्थाएँ की गयी हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को नजरबन्द किये जाने के शीघ्रातिशीघ्र बन्दी बनाये जाने के कारणो से अवगत किया जाय एव अपनी पसन्द के वकील से परामर्श करने एव बचाव की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त गिरफ्तारी के 24 घण्टे के अन्दर ही निकटस्थ दण्डाधिकारी के समक्ष सम्बन्धित बन्दी को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इससे अधिक समय के लिए बन्दी को मजिस्ट्रेट की आज्ञा पर ही हिरासत म रखा जा सकता है।[20] उपरोक्त अधिकारो के दो अपवाद हैं। यह अधिकार प्रथम, उन व्यक्तियो को प्राप्त नही होता है जो शत्रु राज्यो से सम्बन्धित होते हैं और द्वितीय जिन्ह किसी निवारक निरोध विधि अधिनियम के अन्तर्गत बन्दी बनाया जाता है। निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत किसी बन्दी को तीन माह से अधिक समय तक बिना मुकद्दमा चलाये बन्दी नही रखा जा सकता। लेकिन परामर्शदायी परिषद द्वारा नजरबन्दी के काल म वद्धि की सस्तुति किये जाने पर उसम वृद्धि की जा सकती है। इस परामर्शदायी परिषद म उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो के समान योग्य व्यक्ति सदस्य होते हैं। ससद को विधि बनाकर किसी भी व्यक्ति की नजरबन्दी को बढाने का अधिकार प्राप्त है। ससद को परामर्शदायी परिषद द्वारा नजरबन्दियो के मामलो की छानबीन सम्बन्धी पद्धति को विधि द्वारा निर्धारित करने का अधिकार है। सार्वजनिक हित मे नजरबन्दी अधिकारी नजरबन्दी के कारणो को न बताने का अधिकार रखता है।[21]

अनुच्छेद 22 समझौते का परिणाम था। 'विधि की उचित प्रक्रिया' शब्दावली को लेकर सविधान सभा के सदस्यो म दो गुट हो गये थे। श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुशी 'विधि की उचित प्रक्रिया शब्द के प्रयोग के समर्थक थे तो श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर 'विधि की स्थापित प्रक्रिया' के प्रयोग के समर्थक थे। डॉ अम्बेडकर का इस सम्बन्ध म कोई दृष्टिकोण नही था। 'विधि की स्थापित प्रक्रिया' क समर्थको को सन्तुष्ट करने के लिए अन्तत अनुच्छेद 22 म 'विधि की उचित प्रक्रिया' की मूल धारा के स्थान पर उसे स्वीकार किया गया।

---

19 A K Gopalan *vs* *State of Madras*, A I R 1950 S C 27
20 अनुच्छेद 22 (1) तथा (2)
21 अनुच्छेद 22 (4), (5), (6) एव (7)

भारतीय ससद द्वारा प्रथम निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) 1950 ई म प्रारम्भ म केवल एक वर्ष के लिए पारित किया था। 1951 ई म उसे सशोधन अधिनियम (Amending Act, 1951) द्वारा एक वप के लिए और वढा दिया गया। इस अधिनियम द्वारा सभी नजरबन्दी मामला को परामशदायी परिषद के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत करना आवश्यक कर दिया गया था। 1954 ई तक इस अधिनियम को प्रति वष वढाया जाता रहा और इस वष इस आगामी तीन वर्षों के लिए वढा दिया गया। इसके पश्चात 1957, 1960, 1963 एव 1966 ई मे आगामी तीन वष के लिए इसकी वद्धि की जाती रही है।

सविधान सभा के सदस्यगण वैयक्तिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी उपरोक्त व्यवस्थाओ की चर्चा करते समय अत्याधिक सचेत थे। उन्होने स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी व्यवस्थाओ की तीव्र आलोचना की है। डा अम्बेडकर ने इन प्रतिबन्धा का समथन किया था। उनका मत था कि वतमान परिस्थितिया म यह आवश्यक है कि काय पालिका ऐसे व्यक्तिया को नजरबन्द कर जिनसे सावजनिक हित को सकट अथवा देश की सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो सकता हो।[22] परन्तु सविधान सभा इस तक से सन्तुष्ट न हो सकी। सदस्यो ने इसकी तीव्र आलोचना की। न्यायाधीश बख्शी टेकचन्द का मत था कि ससार मे कोई ऐसा लिखित सविधान नही है जहा साधारण स्थिति मे मुकद्दमा चलाय बिना नजरबन्दी की व्यवस्था हो। सविधान का यह भाग उनकी दृष्टि मे 'दमन का आज्ञापत्र एव वैयक्तिक स्वतन्त्रता का हन्ता है।'[23] डा गोपीचन्द भागव के अनुसार यह हमारी असफलताओ का राजमुकुट है।[24] महावीर त्यागी[25] ने तो इन प्रतिबन्धो को मूलाधिकारो का ही निषेध बताया। निवारक निरोध अधिनियमो के अन्तगत नजरबन्दियो के आकडो के अध्ययन से उपरोक्त आलोचनाओ से उत्पन्न शकाओ का एक सीमा तक समाधान हो जाता है। 1950 ई म 11 हजार व्यक्ति निवारक निरोध अधिनियम के अन्तगत नजरबन्द थ। 1957 ई म इनकी सख्या 205 थी जिनम से काफी व्यक्ति केवल पजाब राज्य म ही नजरबन्द थे। परामशदायी परिषदा ने एसे नजरबन्दियो म से 60 प्रतिशत व्यक्तियो की मुक्ति के आदेश दिये थ। विगत 25 वर्षो की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि भारतीय जनता पर्याप्त वैयक्तिक स्वतन्त्रता का उपयोग करती है। निवारक निरोध अधिनियमो को प्रत्यक राज्य द्वारा पारित किया जाता है। अत भारत म शासन को इस प्रकार की शक्ति प्रदान न करना एक भूल ही होती। कुछ विचारको का यह मत है कि 21वें

22 *Constituent Assembly Debates*, V, p 1529
23 *Ibid*
24 *Ibid*
25 *Ibid*, p 1547

अनुच्छद ने गिरफ्तारी के पश्चात व्यक्ति को न्यायिक सरक्षण स लगभग वचित ही कर दिया है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार[26]

सविधान ने मनुष्यो के नय विक्रय बेगार एव इसी प्रकार के बलपूवक काय लेने के अन्य तरीको पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और इन व्यवस्थाओ के उल्लघन को विधि द्वारा दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया है।[27] लेकिन सावजनिक कल्याण के उद्देश्य से राज्य को नागरिको स अनिवाय सेवा (compulsory service) प्राप्त करने का अधिकार है। 14 वष स कम आयु के बालको को कारखाने या खान या सकटपूण सेवा सम्बन्धी काय म नही लगाया जा सकता है।[28] इन अनुच्छेदो की तुलना अमेरिकी सविधान के 13व सशोधन से कर सकते है जिसके द्वारा सयुक्त राज्य अमेरिका म दासता या बलपूवक प्राप्त सेवा (involuntary servitude) को समाप्त कर दिया गया है। भारत म हरिजनो या अछूतो से बेगार ली जाती थी। यह व्यवस्था सामन्ती युग का अवशेष तथा शोषण का कुत्सित रूप थी। धम के नाम पर देवदासी प्रथा प्रचलित थी। सविधान निर्माता इन स्थितियो को समाप्त करने क लिए कृत सकल्प थे। इनके रहत हुए 'विधि के समक्ष समानता तथा स्वतन्त्रता' के अधिकारो का कोई मूल्य नही था। कम आयु के बालको स भारी एव सकटपूण सेवा लेना अमानवीय शोषण है। इससे बालको का विकास रुक जाता है, वे आचरण भ्रष्ट हो जाते है एव अपराधो की तरफ उन्मुख होते हैं। अत ये व्यवस्थाएँ वाछनीय है और लोक-कल्याणकारी राज्य के आदर्शों के अनुकूल है।

धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार[29]

इस अधिनियम के अन्तगत सभी व्यक्तियो को सावजनिक व्यवस्था, सदाचार एव स्वास्थ्य तथा इस अध्याय क अन्य प्रावधानो के अधीन अन्त करण की स्वतन्त्रता तथा किसी धर्म को अबाध रूप स मानन, आचरण करने एव प्रचार करने की समान स्वतन्त्रता प्राप्त है। लेकिन इस व्यवस्था का किसी वतमान विधि के प्रवतन पर कोई विपरीत प्रभाव नही होगा और न राज्य द्वारा किसी भी आर्थिक वित्तीय एव राजनीतिक गतिविधियो का नियन्त्रित करने वाली विधियो के निर्माण पर या हिन्दुओ की सावजनिक धार्मिक सस्थाओ को हिन्दुओ के शेष सभी वर्गों के लिए खोलने पर ही कोई प्रतिबन्ध होगा। इस सन्दम म सिक्खो, जैनो एव बौद्धो, सभी को हिन्दुओ के

26 Right against exploitation (Articles 23 28)
27 अनुच्छेद 23 (1)
28 अनुच्छेद 23 (2) और अनुच्छेद 24
29 Right to freedom of religion (Articles 25 28)

अ तगत ही मानने की व्यवस्था है। सिक्खो को कृपाण धारण करने एव उसे लेकर चलने का अधिकार प्रदान किया गया है।[30]

प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी उप सम्प्रदाय को सावजनिक व्यवस्था, सदाचार एव स्वास्थ्य के अधीन (अ) धार्मिक और दान कार्यो के लिए धार्मिक सस्थाओ की स्थापना एव उनके सचालन, (व) धार्मिक कार्यो के प्रब ध, (स) स्थायी एव अस्थायी सम्पत्ति के अजन एव स्वामित्व, तथा (द) विधि के अधीन ऐसी सम्पत्ति की देखभाल करने के अधिकार प्रदान किये गये हैं।[31] किसी भी व्यक्ति को ऐसा कोई कर देने के लिए वाध्य नही किया जा सकता जिसकी आय किसी धम विशेष या सम्प्र दाय की उन्नति या व्यवस्था के लिए विशेष रूप स विनियुक्त कर दी गयी है।[3] राज्य विधि के अधीन पूणत या आशिक रूप मे सचालित किसी शिक्षण सस्था मे कोई धार्मिक शिक्षा नही दी जा सकती। लेकिन यह व्यवस्था उन शिक्षण सस्थाओ पर लागू नही होती है तो राज्य प्रशासन म होते है परन्तु जिनकी स्थापना किसी धार्मिक सघ या न्यास द्वारा की जाती है और ऐसी सस्थाओ म धार्मिक शिक्षा की छूट है। इसके अतिरिक्त राज्य से मा यता एव आर्थिक अनुदान प्राप्त किसी भी शिक्षण सस्था या उससे सलग्न स्थान मे धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना मे भाग लेने के लिए किसी विद्यार्थी को वाध्य नही किया जा सकता है।[33] उपरोक्त व्यवस्थाएँ पूण धार्मिक स्वत त्रता का आश्वासन देती हैं और धम निरपेक्षता का आधार है। राज्य धम के सम्ब ध मे तटस्थ है। लोकता त्रिक समाज मे धम निरपेक्षता लोकता त्रिक समाज की अनिवाय विशेषता है। भारत मे मुस्लिम साम्प्रदायिकता के ताण्डव नत्य का दु खद परिणाम भारत का विभाजन था। सविधान निर्माता इसे भूले नही थे। अत धम निरपक्ष भारतीय लोकत त्र के स्थापनाथ उपयुक्त प्रावधाना की व्यवस्था की गयी है।

सास्कृतिक एव शिक्षा सम्ब धी अधिकार[34]

भारत मे निवास करने वाले नागरिको के प्रत्यक भाग को जिनकी अपनी भाषा, लिपि एव सस्कृति है, उ ह उनके सरक्षण क अधिकार प्राप्त है।[35] किसी भी नागरिक को राज्य द्वारा सचालित या सहायता प्राप्त शिक्षण सस्थाआ म धम, मूल, वश, जाति, भाषा अथवा इनमे से किसी आधार पर भी प्रवेश स नही राका जा सकता।[36] सभी

30 अनुच्छेद 25 (1) (2)
31 अनुच्छेद 26
32 अनुच्छेद 27
33 अनुच्छेद 28।
34 Cultural and Educational Rights (Articles 29 30)
35 अनुच्छेद 29
36 अनुच्छेद 29 (2)

धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यकों को अपनी शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार है और राज्य ऐसी किसी संस्था के साथ अनुदान देने में धर्म या भाषा के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करेगा।[37] उपरोक्त प्रावधानों के माध्यम से अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण किया गया है तथा उन्हें अपनी भाषा, धर्म, लिपि एवं संस्कृति के रक्षार्थ शिक्षण संस्थाएं स्थापित करने एवं उनके प्रबन्ध करने के अधिकार दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में एक आपत्ति है। भाषायी अल्पसंख्यकों को संस्कृति के संरक्षण का अधिकार दिया जाना समझ में आ सकता है परन्तु धर्म के आधार पर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का अधिकार देना उचित नहीं है। भारतीय इतिहास इसका प्रमाण है। ऐसी शिक्षण संस्थाएं राष्ट्रीय एकता विरोधी संकीर्ण साम्प्रदायिकता का गढ़ बनी हैं और बनेंगी।

सम्पत्ति का अधिकार[38]

संविधान सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार करता है और किसी भी व्यक्ति को विधि की सत्ता के बिना उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।[39] सार्वजनिक उद्देश्य हेतु विधि की सत्ता के अधीन ही सम्पत्ति को क्षतिपूर्ति किये जाने पर अनिवार्यतः हस्तगत किया जा सकता है। राज्यों द्वारा सम्पत्ति को हस्तगत करने सम्बन्धी विधियां राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत की जाती हैं एवं उसके पश्चात् ही व प्रभावी होती है। यह व्यवस्था देश में इस प्रकार की विधियों में एकरूपता एवं सम्पत्ति के स्वामियों की राज्य विधानमण्डलों के हस्तक्षेप से रक्षा की दृष्टि से की गयी है।

'सम्पत्ति का अधिकार' सबसे अधिक विवादास्पद रहा है और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सम्पत्ति के अधिकार सम्बन्धी विवाद ही सबसे अधिक संख्या में पहुँचे भी हैं। संविधान के दो अनुच्छेद 19 एवं 31 सम्पत्ति से सम्बन्धित है। अनुच्छेद 19 के द्वारा एक प्रकार से 'सम्पत्ति की स्वतन्त्रता' की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 31 द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को राज्य द्वारा हस्तगत करने की व्यवस्था की गयी है और उस पद्धति का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार राज्य किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर सकता है। राज्य द्वारा वैयक्तिक सम्पत्ति के अनिवार्यतः हस्तगत करने की अवस्था में यद्यपि संविधान क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करता है परन्तु क्षतिपूर्ति के न्यायपूर्ण (fair) एवं समुचित (equitable) होने के सम्बन्ध में मौन हैं। संविधान में केवल यह व्यवस्था है कि क्षतिपूर्ति होगी परन्तु क्षतिपूर्ति की राशि एवं उसके निर्धारण के सिद्धान्तों को निश्चित करने का अधिकार विधानमण्डल को दिया

---

37 अनुच्छेद 30
38 Right to Property (Articles 31, 32A and 32B)
39 अनुच्छेद 31

गया है। उचित एव न्यायपूर्ण शब्दो का प्रयोग जानबूझ कर छोड दिया गया था क्यो कि इन शब्दो के प्रयोग स मुकदमेबाजी के बढने की सम्भावना थी । क्षतिपूर्ति के औचित्य एव अनौचित्य पर विचार करने का अधिकार यायपालिका को न देकर विधान-मण्डल को दिया गया है। न्यायालयो को केवल उसी अवस्था मे हस्तक्षेप करने का अधिकार है जबकि सम्पत्ति को हस्तगत करने वाली विधि क्षतिपूर्ति की कोई व्यवस्था न करती हो या उसके द्वारा नाममात्र की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की गयी हो। क्षतिपूर्ति सम्बन्धी सर्वैधानिक व्यवस्था शरणार्थी-सम्पत्ति पर लागू नही होती है। कुछ मामलो मे क्षति-पूर्ति की नाममात्र की अवस्था म न्यायालयो के हस्तक्षेप पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, उदाहरणाथ, कुछ विधियो के विरुद्ध क्षतिपूर्ति सम्बन्धी वैधानिक व्यवस्था के उल्लघन के आधार पर न्यायालय म कोई आपत्ति नही उठाई जा सकती है। ये विधियाँ हैं (i) सविधान के क्रियान्वयन के समय विधानमण्डल के विचाराधीन विधेयक तथा पारित होने पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षरो के लिए सुरक्षित विधेयक[40], (ii) सविधान के क्रियान्वयन के $1\frac{1}{2}$ वष पूव पारित विधियाँ एव नवीन सविधान के क्रियान्वयन के तीन माह के अन्दर राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत एव प्रमाणित विधियाँ।[41] सविधान सभा की बहस के दौरान यह स्पष्ट हो गया था कि उपरोक्त प्रावधाना का उद्देश्य उत्तर प्रदेश, बिहार, मद्रास आदि राज्यो के जमीदारी उन्मूलन विधेयको को सरक्षण प्रदान करना है।

परन्तु क्षतिपूर्ति सम्बन्धी उपर्युक्त कठोर प्रावधानो की व्यवस्था जमीदारी उन्मूलन विधेयको की न्यायालयो के हस्तक्षेप से रक्षा न कर सकी। पटना उच्च न्यायालय ने सवसम्मति स कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य[42] विवाद म निणय देते हुए बिहार जमीदारी उन्मूलन विधेयक (1950) को असवैधानिक घोषित किया था।[43] उच्च यायालय ने इस निणय म यह मत व्यक्त किया था कि क्षतिपूर्ति के प्रश्न के परीक्षण का अधिकार न्यायालय को इस दृष्टि से प्राप्त है कि सम्बन्धित विधि द्वारा अन्य मौलिक अधिकारो सम्बन्धी प्रावधाना—यथा, अनुच्छेद 14 (समता के अधिकार)—का अतिक्रमण तो नही होता है। बिहार जमीदारी उन्मूलन विधेयक को जिन आधारो पर उच्च न्यायालय ने अवैधानिक ठहराया था उन्हें सर्वोच्च यायालय ने उचित माना था।[44]

40 अनुच्छेद 31 (4)

41 अनुच्छेद 31 (6)

42 *Kameshwar Singh* vs *State of Bihar*

43 परन्तु इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश जमीदारी विधेयक एव नागपुर उच्च यायालय ने सी पी (Central Provinces) जमीदारी विधेयक को वैध घोषित किया था।

44 "Article 31(4) does not bar the jurisdiction of the court from enquiring whether the law relating to compulsory acquisition of property is valid to see whether the acquisition has been made for a public purpose"

इस प्रकार के न्यायिक हस्तक्षेप को भविष्य म रोकने के लिए प्रथम सवधानिक सशोधन (1951) द्वारा सविधान म सशोधन कर दिया गया और अनुच्छेद 31 म 31 (अ) एव 31 (ब) नामक दो नयी धाराएँ जोड दी गयी और एक नयी अनुसूची (Ninth Schedule) सयुक्त कर दी गयी।

अनुच्छेद 31 (अ) के द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य द्वारा किसी भू सम्पत्ति (estate) को हस्तगत करन या हस्तगत भू सम्पत्ति के अधिकारो को सम या परिवर्तित करने अथवा किसी सम्पत्ति का सावजनिक हित मे या कुछ समय लिए उचित प्रबन्ध हेतु उसका प्रबन्ध अपने हाथा मे लेने या दो या अधिक नियमा व सयुक्त करने आदि क अधिकार प्रदान करने वाली विधि को इस आधार पर अवधा निक घोषित नही किया जा सकता कि वह अनुच्छेद 14, 19 एव 31 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारो का अतिक्रमण करती है।

अनुच्छेद 31 (ब) के द्वारा नवी अनुसूची जोडी गयी है और इसमे उन विधियो का उल्लेख किया गया है जिनकी वैधता को किसी भी न्यायालय मे किसी प्रकार की कोई चुनौती नही दी जा सकती और ये विधियाँ किसी न्यायालय के प्रति कूल निणय या आदेश के होते हुए भी वध घोषित की गयी है। इन दोनो अनुच्छेदो क फलस्वरूप जमीदारी उन्मूलन सम्बन्धी सभी विधियाँ न्यायालय के क्षेत्राधिकार से स्वतन्त्र हो गयी है।

लेकिन प्रथम सवधानिक सशोधन स समस्या का समाधान नही हुआ। शी ही यह अनुभव किया जाने लगा कि जमीदारी विधिया के अतिरिक्त अन्य प्रकार कं सम्पत्ति को हस्तगत करन क सम्बन्ध म क्षतिपूर्ति का प्रश्न फिर भी विद्यमान है। शोलापुर स्पिनिंग एव वीविंग मिल को सरकार ने अपने नियन्त्रण म ले लिया था। कारखाने का प्रबन्ध बहुत बुरी अवस्था म था और प्रबन्ध मण्डल द्वारा अपनी शक्तियो का दुरुपयोग किया जा रहा था। अगस्त 1949 ई म किसी पूव सूचना के बिना ही उनके द्वारा मिल को बन्द कर दिया गया था जिसके फलस्वरूप 13000 मजदूर बेरोजगार हो गये थे। सर्वोच्च न्यायालय ने शोलापुर मिल सम्बन्धी इस विवाद म बम्बई उच्च न्यायालय के निणय को परिवर्तित करते हुए 1953 ई म इमरजेन्सी प्रोवीजन्स ऑर्डीनें स 1950 ई को अवध घोषित किया क्योकि उसम समुचित क्षति पूर्ति की व्यवस्था नही की गयी थी। इस विवाद म शासन ने यह तक प्रस्तुत किया था कि उसने केवल मिल के प्रबन्ध को अपने हाथा म ले लिया है अत क्षतिपूर्ति का प्रश्न उत्पन्न ही नही होता है। सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य के द्वारा शोलापुर मिल को अपन नियन्त्रण म लेना अनुच्छेद 31 (2) के विपरीत माना और शासन क इस काय को अवधानिक घोषित कर दिया। इस निणय के बडे दूरगामी परिणाम हुए। सवि धान म सशोधन हेतु चतुथ सशोधन अधिनियम (1955 ई) पारित किया गया और

31वें अनुच्छेद मे एक नवीन उपधारा 2 (अ) जोडी गयी। इसके द्वारा निम्न व्यवस्थाएँ की गयी

(1) अनिवायत हस्तगत की जाने वाली सम्पत्ति की क्षतिपूर्ति की धनराशि या तत्सम्बन्धी सिद्धान्त को राज्य निर्धारित कर सकता है तथा सम्पत्ति का अनिवायत हस्तगत करने वाली विधि का अपर्याप्त क्षतिपूर्ति के आधार पर न्यायालया मे चुनौती नही दी जा सकती है।

(2) शासन द्वारा जब किसी सम्पत्ति के स्वामित्व या तत्सम्बन्धी अधिकार ग्रहण नही किये जाते हैं अपितु राज्य केवल प्रबन्ध सम्बन्धी नियन्त्रण ही अपने हाथो म लेता है, जैसा कि शोलापुर वीविंग मिल के सम्बन्ध मे लिया था, तो यह सम्पत्ति का अनिवाय हस्तगत करना नही माना जायगा और एसी अवस्था म किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति का कोई प्रश्न उत्पन्न ही नही हो सकता।

(3) प्रथम सशोधन के द्वारा जमीदारी उन्मूलन विधियो के 9वी सूची मे शामिल करके उन्हे न्यायिक हस्तक्षेप से सरक्षण प्रदान किया गया था। इस सूची म 6 अन्य विधियो को और जोड दिया गया और उनको पूण सवधानिक सरक्षण प्रदान कर दिया गया। सक्षेप मे, सम्पत्ति सम्बन्धी ऐसी विधियो को जिनके द्वारा राज्य किसी सम्पत्ति को अनिवायत हस्तगत करने या उसकी सम्पत्ति म परिवतन की व्यवस्था, कुछ समय के लिए सुप्रबन्ध हेतु सम्पत्ति को हस्तगत करना या दो या अधिक निगमो का एकीकरण करना या जो प्रबन्धको, अभिकर्ताओ सचिवो या निगमो के प्रबन्धको एव हिस्सेदारो के मतदान अधिकार को सीमित या समाप्त करने की व्यवस्था करती हो, न्यायालया मे चुनौती नही दी जा सकती। इसके अतिरिक्त अवधि क पूर्व खनिज पदाथ या तेल के ठेको या लाइसे सो या समझौता को समाप्त करन या उनम परिवर्तन करने वाली विधियो की वैधानिकता को भी न्यायालया म चुनौती नही दी जा सकती है।

सम्पत्ति के अधिकार को सीमित करने वाला तीसरा महत्वपूण सवैधानिक सशोधन 17वाँ सशोधन है। इसके द्वारा अनुच्छेद 31 म प्रयुक्त शब्द 'estate' का अथ परिवर्तित कर दिया गया और उसके क्षेत्र को विस्तृत करत हुए भूमि सुधार अधिनियमो के अधीन आने वाली रैयतवाडी एव अन्य प्रकार की भू सम्पत्ति को भी उसम शामिल कर लिया है। 'भू सम्पत्ति' (estate) शब्द के अथ के सम्बन्ध म उत्पन्न विवाद के कारण इस सशोधन को पारित करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई थी। सर्वोच्च न्यायालय न एक विवाद[45] म निणय दत हुए केरल कृषि सम्बन्धी अधिनियम (Kerala Agrarian Relations Act) को अवैध घोषित कर दिया था। स्मरणीय है कि इस अधिनियम द्वारा सभी मध्यस्थो को समाप्त कर दिया गया था। अतिरिक्त

---

45 कुन्हीमोहन बनाम केरल राज्य।

भूमि को उन कृषको के मध्य वितरित करने की व्यवस्था की गयी थी जिनके पास निर्धारित सीमा से कम भूमि थी तथा भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी थी। अनुच्छेद 31 (2) की मापा[46] ऐसी थी कि उसके कारण यह अनुच्छेद रैयतवाडी भूमि पर लागू नही होता था। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार उक्त विधेयक अनुच्छेद 14—समानता के अधिकार—का अतिक्रमण करता था। शासन ने इस पर सविधान मे 17वा सशोधन कर दिया। इसके द्वारा निम्न व्यवस्थाएँ की गयी हैं

(1) राज्य द्वारा सम्पत्ति को अनिवायत हस्तगत करने पर उसे क्षतिपूर्ति की अपूर्णता के आधार पर न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकेगी। अनुच्छेद की प्रथम उपधारा मे तत्सम्बन्धी एक व्यवस्था सयुक्त कर दी गयी।

(2) अनुच्छेद 37 (2) (a) मे एक नयी उपधारा जोडकर मद्रास एव केरल राज्यो मे (i) जागीर, इनाम, मुफ्ती एव इसी प्रकार की अन्य अनेक भूमियो एव (ii) रयतवाडी बन्दोबस्त के अधीन भूमि को भी भू सम्पत्ति के अन्तगत माना तथा 9वी सूची मे आवश्यक परिवतन किये गये और 144 राज्य भूमि सुधार सम्बन्धी विधेयका को उसमे शामिल किया गया। इससे इन विधियो को न्यायालयो के हस्तक्षेप से सरक्षण प्राप्त हो गया।

सम्पत्ति के अधिकार मे उपरोक्त सशोधनो की यह कहकर तीव्र आलोचना की गयी है कि सम्पत्ति के अधिकारो को प्राप्त न्यायिक सरक्षण समाप्त हो गया है। इस आलोचना का परीक्षण गोलकनाथ विवाद मे हुआ था।

गोलकनाथ विवाद—9वी सूची मे जोडे गये उपरोक्त विधेयको मे से दो विधेयको[47] को गोलकनाथ एव अन्य ने तीन न्यायिक याचनाओ के माध्यम से न्यायालय मे चुनौती दी गयी।[48] लेकिन उक्त विधिया की वैधानिकता का परीक्षण न्यायालय द्वारा उस समय तक नही किया जा सकता था जब तक कि 17वाँ सवधानिक सशोधन वध था। अत आवेदक ने इस सशोधन को चुनौती देते हुए कहा कि मौलिक अधिकार पवित्र है एव अनुच्छेद 368 के अधीन भारतीय ससद को मौलिक अधिकारो को सीमित या समाप्त करने का अधिकार नही है। अनुच्छेद 368 के अधीन पारित सशोधन केवल विधियाँ हैं और सविधान के अनुच्छेद 13 (2) के अनु

---

46 Article 31(2) (a) reads—"Where a law does not provide for the transfer of ownership or right to possession of a property to the State or to a Corporation owned and controlled by the State, it shall not be deemed to provide for the compulsory acquisition or acquisitioning of property, notwithstanding that it deprives any person of his property"

47 Punjab Security of Land Tenures Act, 1953 and Mysore Land Reforms Act, 1953

48 *Golaknath vs State of Punjab* A I R 1967 S C 1543

सार जो विधि मौलिक अधिकार के विपरीत है वह अवैध है। अत जो सवैधानिक सशोधन मौलिक अधिकारो का अतिक्रमण करते है वे भी अवैध है। इसके विपरीत शासन ने यह तक प्रस्तुत किया था कि सवैधानिक सशोधन की वैधता का कोई प्रश्न उत्पन्न नही होता क्योकि सविधान का कोई ऐसा भाग नही है जिसम कि अनुच्छेद 368 के अनुसार सशोधन न किया जा सके। मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता म सर्वोच्च न्यायालय के 11 न्यायाधीशो की पूरी पीठ ने इस विवाद सम्बन्धी पक्ष एव विपक्ष के तर्कों को सुना था। मुख्य न्यायाधीश श्री सुब्बाराय ने मौलिक अधिकारो को विशिष्ट स्थान देते हुए ससद के अधिकार क्षेत्र से परे घोषित किया। यह निणय 6 5 के बहुमत स दिया गया था। अनुच्छेद 368 के अधीन सशोधन पद्धति को विधायी प्रक्रिया घोषित किया गया और उसे अनुच्छेद 13 (2) के द्वारा निर्धारित सीमा के अधीन माना। फलस्वरूप प्रत्येक सवैधानिक सशोधन को विधि मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषणा की कि अनुच्छेद 13 (2) का अतिक्रमण करने वाली सभी विधिया अवधानिक है। अत 17वे सवैधानिक सशोधन को भी अवैधानिक ठहराया गया। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने शकरी प्रसाद[49] एव सज्जन सिंह[50] नामक दो विवादा मे दिये गये अपने पूव निणया को बदल दिया। इन दोनो विवादो मे सर्वाच्च न्याया लय ने मौलिक अधिकारो विरोधी सवैधानिक सशोधन की वैधता को मा यता प्रदान की थी। इन निणयो का आधार यह था कि अनुच्छेद 13 (2) के अ तगत प्रयुक्त शब्द 'विधि से अथ सवैधानिक विधि से नही है। 368वे अनुच्छेद मे केवल सवैधानिक सशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख है। इसके द्वारा ससद को सशोधन करन की शक्ति प्रदान की गयी है। गोलक्नाथ विवाद के निणय ने ससद को सवधानिक सशोधनो द्वारा मौलिक अधिकारा मे परिवतन करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। परन्तु सर्वोच्च यायालय न अपने निणय म 1950 ई से 1967 ई तक हुए सभी सवधानिक सशोधनो को वध मानने की घोषणा की। स्मरणीय है कि इस बीच म जमीदारी उ मूलन एव भूमि सुधार सम्बन्धी अनेक विधियाँ पारित की गयी थी। यदि गोलकनाथ विवाद म दिया गया निणय पहले से ही प्रभावकारी होता तो देश म अव्यवस्था फल जाती और अनक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती।

गोलकनाथ विवाद के निणय के फलस्वरूप सामाजिक न्याय एव आर्थिक विकास सम्बन्धी विधिया के निर्माण पर रोक लग जाना स्वाभाविक था। इसक अतिरिक्त न्यायपालिका की शक्ति म ससद की तुलना म वृद्धि हो गयी थी। जनता द्वारा इस स्थिति की तीव्र आलोचना की गयी। सर्वाच्च न्यायालय ने गोलक्नाथ विवाद क पश्चात बका के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी विवाद म निणय देते हुए कहा है कि बैंका क मालिका

49 *Shankari Prasad Singh Deo* vs *Indian Union*, A I R 1951 S

50 *Sajjan Singh* vs *State of Rajasthan*

को बैंको के राष्ट्रीयकरण के लिए बाजार मूल्य पर पूर्ण क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए और उन्हें साख (goodwill) की भी क्षतिपूर्ति प्राप्त होनी चाहिए। संसद-सदस्य स्व नाथ पै ने मौलिक अधिकारों को सीमित करने सम्बन्धी एक विधेयक प्रस्तुत किया था। इस स्थिति का केवल एक ही समाधान था कि संविधान को संशोधन करके गोलकनाथ विवाद के निर्णय को निष्प्रभावी कर दिया जाय। फलस्वरूप शासन द्वारा 24वें एवं 25वें संवैधानिक संशोधन प्रस्तुत किये गये।

24वें संशोधन (1971) द्वारा संसद को मौलिक अधिकारों सहित संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 368—संविधान में संशोधन एवं उसकी प्रक्रिया—को इस प्रकार संशोधित किया गया कि मौलिक अधिकारों में भी इस रीति से परिवर्तन एवं संशोधन सम्भव हो सके। संशोधन द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी कि संसद के दोनों सदनों द्वारा संशोधन प्रस्ताव पारित होने पर राष्ट्रपति को उसे अपनी स्वीकृति अनिवार्यतः प्रदान करनी चाहिए। संसद को अपनी संवैधानिक शक्ति के अन्तर्गत संविधान के किसी भी भाग या अनुच्छेद को निर्धारित प्रक्रिया में संशोधित या परिवर्तन करने का अधिकार भी प्रदान किया गया और संवैधानिक संशोधन के अनुच्छेद 13 के विपरीत होने पर भी उसे न्यायालयों द्वारा अवैधानिक घोषित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस संशोधन द्वारा 368वें अनुच्छेद के शीर्षक में भी परिवर्तन कर दिया गया। मूल शीर्षक 'संविधान को संशोधित करने की प्रक्रिया' को परिवर्तित करते हुए उसका शीर्षक 'संविधान में संशोधन एवं उसकी प्रक्रिया को संशोधित करने की संसद की शक्ति' रख दिया है।

25वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न व्यवस्थाएं की गयीं

(1) राज्य को सार्वजनिक उद्देश्य से अनिवार्यतः हस्तगत किसी सम्पत्ति के सम्बन्ध में बाजार-दर से क्षतिपूर्ति देना आवश्यक नहीं है। संसद या राज्य विधानमण्डलों की विधियों को अन्तिम रूप में क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का अधिकार दिया गया है और क्षतिपूर्ति की अपर्याप्तता के आधार पर किसी विधि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

(2) किसी भी विधि को जिसके द्वारा अनुच्छेद 39 (ब) एवं (स) में निहित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों सम्बन्धी नीति के क्रियान्वयन की व्यवस्था की गयी हो, अनुच्छेद 14, 19 एवं 31 के विपरीत होने पर अनुच्छेद 13 के अधीन अवैध घोषित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक ऐसी विधि के साथ यह प्रमाणपत्र संलग्न होना चाहिए कि विधि नीति निर्देशक तत्व सम्बन्धी नीति को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से निर्मित की गयी है। राज्यों द्वारा निर्मित सभी विधियों को राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु अनिवार्यतः प्रस्तुत करने की व्यवस्था की गयी है।

इस संवैधानिक संशोधन की तीव्र आलोचना की गयी। इन दोनों संशोधनों द्वारा गोलकनाथ विवाद के निर्णय के पूर्व की स्थिति को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न

किया गया है। जो लोग सम्पत्ति के अधिकार को पवित्र एव अनुल्लघनीय मानते है उनको इन व्यवस्थाओ स अस तुष्ट हाना स्वामाविक है। सावजनिक हित म राज्य द्वारा सम्पत्ति को हस्तगत करने के अधिकार को सभी स्वीकार करते हैं। क्षतिपूर्ति का प्रश्न विवाद का विषय है। एक तरफ तो बाजार दर पर क्षतिपूर्ति दिये जाने के समथक हैं तो दूसरी तरफ साम्यवादी एव उग्र समाजवादी हैं जो क्षतिपूर्ति देने के बिलकुल विपरीत है।

सवधानिक उपचारो का अधिकार[1]

सविधान म केवल मौलिक अधिकारा की व्यवस्था उनकी रक्षा के अभाव म मूल्यहीन है। सविधान के अनुच्छेद 32 के द्वारा मौलिक अधिकारो की रक्षा की व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकारो के रक्षाथ उचित पद्धति के अनुसार सर्वोच्च यायालय म आवेदन का अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारो के रक्षाथ सर्वोच्च यायालय को विभि न आदेश (Writs)—ब दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)[52], परमादेश (Mandamus)[53] प्रतिषेध (Prohibition)[54], अधिकार पृच्छा (Quo Warranto)[55] एव उत्प्रेषण (Certiorari)[56]—जारी करन का

51 The Right to Constitutional Remedies (Art 32)

52 ब दी प्रत्यक्षीकरण का अथ 'सशरीर उपस्थित करना है। ब्रिटिश विधि के अनुसार अनुचित रूप से ब दी बनाये गये व्यक्ति को इस आदेश के आधार पर मुक्ति पाने का अधिकार है। ब्रिटेन मे 14वी सदी म इस आदेश का उल्लेख मिलता है। 1679 ई मे तो ब्रिटिश ससद ने Habeas Corpus Act पारित किया था। यायालया द्वारा इस आदेश को जारी करने की शक्ति को ब्रिटिश जनता स्वतत्रता के लिए आवश्यक मानती है। भारतीय सविधान द्वारा ब दी प्रत्यक्षीकरण आदेश जारी करन का अधिकार सर्वाच्च एव उच्च यायालय को प्रदान किया गया है। इस आदेश का उद्देश्य मात्र यही है कि अनुचित रीति से ब दी बनाय गये व्यक्ति को मुक्त किया जाय।

53 परमादेश (Mandamus) का अथ है कि 'हम आज्ञा देते है (we order)। इस प्रकार के समादेश के अधीन सर्वोच्च यायालय या उच्च यायालय किसी व्यक्ति या निकाय को उन कार्यों को करने का आदेश दे सकते हैं जो उनके कतव्य होते है।

54 प्रतिषेध (Prohibition) का आदेश सर्वाच्च या उच्च यायालयो द्वारा अधीनस्थ यायालयो के प्राकृतिक विधि के विपरीत कार्यों को रोकने के लिए उनके नाम म जारी किया जाता है।

55 उत्प्रेषण (Certiorari) का आदेश भी अधीन न्यायालया द्वारा अधीनस्थ यायालयो के नाम मे जारी किया जाता हे। इसका प्रयोग किसी विवाद को अधीनस्थ यायालय स उच्च यायालय मे हस्तान्तरित करने के लिए भी किया जाता है। इसका प्रयोग ऐस निणया को समाप्त करने के लिए किया जाता है जो सम्ब धित यायालय के क्षेत्राधिकार के अ तगत नही होते है अथवा प्राकृतिक याय क विपरीत होते हैं। यह एक अत्यन्त प्राचीन आदेश है।

56 अधिकार पृच्छा (Quo Warranto) का आदेश भी पुराना है। इसका शाब्दिक

अधिकार प्राप्त है। अन्य न्यायालयों को इन आदेशों को जारी करने की शक्ति प्रदान करने का अधिकार अनुच्छेद 32 (3) के अधीन संसद को प्रदान किया गया है। डा अम्बेडकर के अनुसार, अनुच्छेद 32 की उपरोक्त व्यवस्थाओं के द्वारा मौलिक अधिकार को यथार्थ रूप प्रदान किया गया है। 'यह अनुच्छेद संविधान की आत्मा एवं हृदय है।'[57] संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को 'आदेश' (Writs) जारी करने का अधिकार देकर मौलिक अधिकारों की रक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का संरक्षक बनाया गया है। सर्वोच्च न्यायालय को इस सम्बन्ध में मौलिक या प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। यह आवश्यक नहीं है कि मौलिक अधिकारों के रक्षार्थ पहले उच्च न्यायालय में ही आवेदन किया जाय। सीधे सर्वोच्च न्यायालय में भी आवेदन-पत्र दिया जा सकता है।[58] विशेष परिस्थितियों में संवैधानिक उपचारों के अधिकार को निलम्बित किया जा सकता है।[59] इस प्रकार की तीन विशेष परिस्थितियाँ हैं—वाह्य आक्रमण, आन्तरिक विद्रोह एवं राज्यों में संवैधानिक शासन की असफलता। इन स्थितियों में राष्ट्रपति को संकट-काल की घोषणा करने का अधिकार है एवं राष्ट्रपति मौलिक अधिकारों के रक्षार्थ न्यायिक उपचारों के अधिकार को संकट काल के लिए निलम्बित कर सकता है।[60] संकट काल में राज्य को स्वतन्त्रता के अधिकार—अनुच्छेद 19 के द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रताएँ—को सीमित करने का अधिकार है। संकट काल की समाप्ति पर ऐसे प्रतिबन्ध स्वतः ही अप्रभावकारी हो जाते हैं और वे विधियाँ ही प्रभावकारी रह जाती हैं जो मौलिक अधिकारों के विपरीत नहीं होती हैं।[61] संघीय संसद को सैनिकों के लिए मौलिक अधिकारों को सीमित करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त यदि किसी क्षेत्र में सैनिक कानून लागू है तो संसद विधि बनाकर उस क्षेत्र में मौलिक अधिकारों को सीमित कर सकती है।

समीक्षा

संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकारों की तीव्र आलोचना की गयी है। उसका सार अग्रवत् है

अर्थ 'किस अधिकार से' है ? इस आदेश के द्वारा सर्वोच्च या उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को ऐसे पद पर कार्य करने से रोक सकता है जिसका वह अधिकारी नहीं है और किसी विशेष पद को रिक्त भी घोषित कर सकता है। इस समादेश को जारी करने के सम्बन्ध में न्यायालय को स्वविवेकीय अधिकार प्राप्त हैं।

57 रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य में सर्वोच्च न्यायालय ने यही मत व्यक्त किया है।

58 *Ramesh Thappar vs State of Madras* A I R 1950 S C 124

59 अनुच्छेद 32 (4)

60 अनुच्छेद 359

61 अनुच्छेद 358

(1) अनेक महत्वपूण मौलिक अधिकारो—यथा, शिक्षा, काम एव भौतिक सुरक्षा—का उल्लेख ही नही किया गया है ।

(2) मौलिक अधिकारा पर निर्धारित विभिन्न प्रतिब धा के कारण वे सारहीन हो गये हैं । निवारक निरोध ब दीकरण एव सवैधानिक उपचारा को निलम्बित करने सम्ब धी उपब धा पर विशेष रूप से आपत्ति की जाती है ।[62] अत अधिकारो के स्थगित होने पर तानाशाही के उदय की सम्भावना को अस्वीकार नही किया जा सकता । मौलिक अधिकार एक हाथ स दिये गये हैं और दूसरे से वापस ले लिये गये हैं ।

(3) मौलिक अधिकार सम्ब धी भाषा अस्पष्ट है । 'यह बताना कठिन है कि व्यक्ति को मौलिक अधिकारो के अन्तगत क्या प्राप्त है ।' एक आलोचक ने तो मौलिक अधिकारा सम्ब धी अध्याय का 'मौलिक अधिकारा पर प्रतिब ध' की सज्ञा दी है। आइवर जेनिंग्स के अनुसार, 'भारतीय मौलिक अधिकारा की भाषा ठीक नही है । उसमे अनेक जटिल बाते हैं और अमेरिकी अधिकार पत्र की भाति वह स्पष्ट एव सक्षिप्त नही है ।'

(4) सविधान म अधिकारो के साथ साथ क्तव्यो का उल्लेख नही है ।

उपरोक्त आलोचना की समीक्षा वाछनीय है । रूस के सविधान की भाति मौलिक अधिकारो के अ तगत काम एव अनिवाय शिक्षा आदि अधिकारा को शामिल करने म व्यावहारिक कठिनाइया थी । यदि इन अधिकारो को भी स्वीकार किया गया होता तो इससे राज्य के वित्तीय दायित्वो मे असाधारण वृद्धि हो जाती और इस आर्थिक भार को नवोदित स्वत त्र राज्य के लिए झेल पाना असम्भव था। इसके अतिरिक्त सविधान मे राज्य के नीति निर्देशक तत्वा के रूप म इन अधिकारा को स्थान दिया गया है । अ तर केवल इतना है कि मौलिक अधिकारो की भाति राज्य के नीति निर्देशक तत्वो की न्यायालया के द्वारा रक्षा की व्यवस्था नही की गयी है । निवारक निरोध प्रतिब ध एव सकट काल मे मौलिक अधिकारा को निलम्बित करन की व्यवस्था प्रत्येक लोकत त्रीय देश म पायी जाती है । इगलण्ड[63] एव अमेरिका[64] म भी

---

62 श्री हरिविष्णु कामथ ने मौलिक अधिकारा को निलम्बित करन की व्यवस्था की तीव्र आलोचना करते हुए कहा है कि इससे समग्रवादी राज्य—पुलिस राज्य—की स्थापना की जा रही है । सविधान सभा ने जब इन प्रतिब धा को स्वीकार किया था उस समय भी कामथ न यह कहा था कि 'यह दु ख व शम का दिन है । भारतीय जनता की ईश्वर मदद करे ।'—Quoted by M V Pylee *Indian Constitution*, p 136

63 Refer to British Emergency Powers Act 1920

64 सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान के अनुसार अमेरिकी काग्रेस को ब ... प्रत्यक्षीकरण को निलम्बित करने का अधिकार प्राप्त है ।

35

स्थानीय शासन
[LOCAL-SELF GOVERNMENT]

अधिकाश आधुनिक राज्य व्यापक क्षेत्रफल एव विशाल जनसख्या वाले दश हैं एव प्राय सभी राज्यो के कायक्षेत्र म वृद्धि हो गयी है। केन्द्रीय शासन क लिए पूरे देश की व्यवस्था कर सकना सम्भव नही है। अत सत्ता का विकेन्द्रीकरण सुशासन क लिए वाछनीय हो गया है। केन्द्रीय शासन द्वारा शासन का अथ एकरूपता, विलम्ब एव स्थानीय समस्याओ के समुचित ज्ञान के अभाव मे उनके हितो की उपक्षा है। केन्द्रीकरण के दोषो को दूर करने का विकेन्द्रीकरण ही एकमात्र उपाय है। विकेन्द्रीकरण का यह अथ है कि देश मे विभिन्न स्तरो पर सत्ता के केन्द्र स्थापित किय जाय। केन्द्रीय सरकार द्वारा केवल राष्ट्रीय महत्व सम्बन्धी मामलो का प्रशासन किया जाना चाहिए तथा स्थानीय, जिला, ग्रामो एव नगरो की जनता को अपनी स्थानीय समस्याओ के प्रशासन का अधिकार होना चाहिए। यही स्थानीय शासन है। इसे स्थानीय स्व शासन (Local Self Government), सामुदायिक स्वायत्तता (Communal autonomy) भी कहते है। अत स्थानीय शासन से तात्पय जनता के निर्वाचित निकायो द्वारा शासन है। इसका दायित्व किसी जिले या क्षेत्र के निवासियो से सम्बन्धित विधायी एव कायपालक दायित्वो का सम्पादन करना है। इन्ह आवश्यक उपनियम बनान का अधिकार होता है।

स्थानीय शासन का एक अन्य प्रकार भी है। केन्द्रीय शासन द्वारा प्रशासन हेतु स्थानीय अधिकारियो की नियुक्ति की जाती है। ये अधिकारी केन्द्रीय विधियो को लागू करते है एव केन्द्रीय शासन के एजेण्ट होते हैं तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होते है। यह स्थानीय शासन का एक प्रकार होते हुए भी केन्द्रीय शासन का एक ही अग है। इसे प्रो हेरिस ने स्थानीय राज्य शासन (Local State Government) की सज्ञा दी है। यह उस स्थानीय शासन से भिन्न है जिसमे स्थानीय समस्याओ का प्रशासन स्थानीय जनता की प्रतिनिधि सस्थाओ द्वारा किया जाता है। ये स्थानीय निर्वाचित सस्थाएँ—यथा, निगम, नगरपालिकाएँ, जिला बोड, काउण्टी, परिस, ग्राम

पचायतें आदि—राष्ट्रीय शासन के अधीन होते हुए भी अपने क्षेत्र मे उच्च सत्ता के नियन्त्रण से स्वतन्त्र रहती हुई कुछ मामलो मे निर्देशन एव दायित्व के अधिकारो से युक्त होती हैं। स्थानीय सस्थाओ के अधिकार सीमित होते हैं। केन्द्रीय एव स्थानीय शासन की सवधानिक स्थिति एक दूसरे से सवथा भिन्न होती है। केन्द्रीय शासन का आधार सविधान है। स्थानीय स्वशासन की सस्थाओ की स्थापना केन्द्रीय शासन या राज्य शासन की विधियो के अधीन होती है।

स्थानीय शासन का महत्व

स्थानीय शासन लोकतन्त्र की पाठशाला है। व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास और सामाजिक नियन्त्रण, शान्ति एव विकास के मध्य समझौते का यह परिणाम है। फाइनर के शब्दो मे, "स्थानीय शासन सघवाद एव समानुपातिक प्रतिनिधित्व जैसी पद्धतिया की श्रेणी मे है और इनके द्वारा भीड के अत्याचार से रक्षा का काय किया जाता है।"[1] डी टाकविले के अनुसार, "नागरिको की स्थानीय सभाएँ राष्ट्र की शक्ति हैं। विज्ञान के लिए जो महत्व प्रारम्भिक पाठशालाओ का है वही महत्व नगर सभाओ का स्वतन्त्रता के लिए है। किसी राष्ट्र द्वारा स्वतन्त्र शासन की स्थापना की जा सकती है परन्तु स्थानीय स्वशासन की सस्थाओ के अभाव मे स्वतन्त्रता की भावना नही आ सकती।"[2] जॉन स्टुअर्ट मिल स्थानीय शासन की सस्थाओ की आवश्यकता के निम्न तीन कारण मानता है

(1) काय विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार केन्द्रीय एव स्थानीय अधिकारिया के मध्य दायित्वा का विभाजन आवश्यक है।

(2) समाज के निम्नतर स्तर की जनता को भी इन सस्थाओ के द्वारा राजनीतिक शिक्षा प्रदान की जाती है।

(3) जनता के हितो एव कार्यों का प्रबन्ध उनसे सम्बन्धित व्यक्तिया द्वारा ही भली प्रकार किया जा सकता है। स्पष्ट है स्थानीय शासन अधिनायकतन्त्र के विरुद्ध रक्षापक्ति है एव अत्यधिक केन्द्रीकरण तथा केन्द्रीय शासन के अत्याचारा के विरुद्ध एक गारण्टी है। यह लोकतन्त्र की सफलता की आवश्यक शत है। इसस केन्द्रीय शासन के कायभार म कमी होती है। शासन के कार्यों से सम्बन्धित होन क

---

1 Local Government 'falls into the same category as such devices as federalism and proportional representation They are safeguards against the tyranny of wholesale herd"—H Finer *English Local Government*, 1950, p 4

2 "Local assemblies of citizens constitute the strength of free nations Town meeting are to liberty what primary schools are to Science A nation may establish a system of free government but without the spirit of municipal institution, it cannot have the spirit of liberty' —De Tocquevelle *Democracy in America*

कारण जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है, स्थानीय समस्याओं का समाधान शीघ्रतापूर्वक सम्भव होता है एवं सामान्य नागरिकों में देश प्रेम, सहयोग, ईमानदारी, सच्चरित्रता, आत्मनिर्भरता आदि नागरिक गुणों का विकास होता है।

लेकिन स्थानीय शासन के उपरोक्त गुण वास्तविकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ व्यवहार में पक्षपात, भ्रष्टाचार, दलबन्दी एवं स्वार्थपरता का अखाड़ा बन गयी हैं। इनसे स्थानीयता की भावना को प्रश्रय मिलता है। शासन की शक्तियों को केन्द्रीय एवं स्थानीयता के मध्य विभाजित कर देने के फलस्वरूप प्रशासनिक उत्तरदायित्व विभाजित हो जाता है। स्थानीय शासन लोकतन्त्र की पाठशाला न रहकर वे लोकतन्त्र के स्वरूप को विकृत कर देते हैं। स्थानीय अधिकारियों में सत्ता के प्रति असाधारण लगाव होता है और स्थानीय अभावों के दबाव में आकर उनकी दृष्टि में स्थानीय हितों की तुलना में राष्ट्रीय हित गौण हो जाते हैं। सत्य तो यह है कि स्थानीय संस्थाएँ स्थानीय हितों व स्थानीयता के गढ़ बन जाते हैं। भारत में स्थानीय संस्थाएँ एवं उनका प्रशासन इसका प्रमाण है। नगरपालिकाओं में भ्रष्टाचार एवं दलगत राजनीति के कारण उनके क्षेत्र में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि स्थानीय शासन को समाप्त कर दिया जाय। स्थानीयता एवं विकेन्द्रीकरण के लिए हमें राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए। इन दोषों के होते हुए भी स्थानीय शासन यदि ठीक प्रकार से संगठित हो एवं सक्षमतापूर्वक कार्य करे तो वह राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक प्रगति एवं सुदृढ़ लोकतन्त्रीय व्यवस्था का आधार बन सकता है।

स्थानीय स्वशासन के कार्य एवं स्रोत

सामान्यतः सभी देशों में स्थानीय संस्थाओं के कार्य निम्नवत् हैं: शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, रोगों की रोकथाम, चिकित्सालयों, शिशु गृहों, सार्वजनिक स्वास्थ्य गृहों आदि की व्यवस्था करना; क्षेत्र की जनता के लिए यातायात एवं आवागमन की सुविधा के लिए पुलिस, बस, ट्राम, मनोरंजन, मेले तमाशों और बाग-बगीचों आदि की व्यवस्था एवं प्रबन्ध, बिजली, गैस, पानी, कृषि की उन्नति का प्रबन्ध, खाद्य-पदार्थों की देखभाल, आदि।

इन कार्यों को सम्पादित करने के लिए स्थानीय संस्थाओं को धन की आवश्यकता होती है। इनकी आय के प्रधान साधन गृहकर, जलकर, सीमाकर, व्यवसाय कर, साइकिलों, ठेलों, यातायात के अन्य वाहनों पर कर, मनोरंजन कर, मेलों एवं पशुओं के क्रय विक्रय आदि पर कर एवं शासन से प्राप्त अनुदान आदि हैं।

विभिन्न देशों में स्थानीय शासन

ग्रेट ब्रिटेन

ग्रेट ब्रिटेन की स्थानीय शासन की संस्थाएँ लोकतन्त्र की सफल आधारशिलाएँ

मानी जाती है। सही अर्थों म स्थानीय शासन लोकत त्रीय एव प्रतिनिधित्व प्रधान होता है। ऑग के अनुसार, ब्रिटिश स्थानीय शासन के निम्न तीन मौलिक तत्व है—(1) ब्रिटिश स्थानीय शासन अत्यन्त प्राचीन है। (2) यह समय एव परिस्थितियो के अनुसार विकसित होता रहा है। (3) यद्यपि स्थानीय सस्थाएँ अपनी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहती हैं परन्तु उनकी शक्तिया एव कार्यों म केन्द्रीय शासन द्वारा समान रूप से परिवतन किये जात है।[3] एडवड जवसन के अनुसार ब्रिटिश स्थानीय शासन का आधार विधि है न कि विशेषाधिकार। कोई स्थानीय कमचारी बिना वैध अधिकार के काय नही कर सकता। इसक अतिरिक्त ब्रिटिश स्थानीय शासन की सस्थाएँ अपने क्षेत्र मे पूणत स्वतन्त्र एव स्वायत्त सम्पन्न होती हैं। सत्ता का प्रवाह ऊपर स नीचे की तरफ नही है अपितु प्रत्येक स्थानीय शासन की इकाई को यदि वह सद्भावपूवक काय करती है, अपने क्षेत्र मे स्वतन्त्रतापूवक काय करन का अधिकार है।

ग्रेट ब्रिटेन की स्थानीय स्वशासन की सस्थाएँ लम्बे ऐतिहासिक विकास का परिणाम हैं। प्राय सभी देशो के स्थानीय शासन पर इनका प्रभाव पडा है। अत इसे 'स्थानीय शासन की जननी' कहा जाता है। दीघ ऐतिहासिक विकास का परिणाम होते हुए भी ब्रिटेन मे स्थानीय शासन का विकास पूव निर्धारित एव नियोजित ढग स नही हुआ है। सैक्सन राजाओ के काल से स्थानीय शासन की सस्थाएँ शाइर (Shire), हण्ड्रेडस (Hundreds) एव बरा (Boroughs) थी। नॉमन विजय के पश्चात यह सस्थाएँ काउण्टी (County), मेनर (Manor) तथा नगरपालिकाएँ (Municipalities) कही जाने लगी। इसी बीच मे परिश (Parish) एव टाउनशिप (Township) की स्थापना की गयी थी। एक हजार वर्षों से भी अधिक समय से ये सस्थाएँ स्वायत्तता का उपभोग करती रही है। ट्यूडर एव स्टुअट वशीय राजाओ ने इसकी सत्ता पर कभी प्रहार नही किया। 19वी सदी के प्रारम्भ मे इन विभिन्न स्थानीय सस्थाओ की सीमा एव अधिकारो तथा क्षत्राधिकार के सम्बन्ध म अराजकता की स्थिति थी। एक समय तो विभिन्न प्रकार के क्षेत्रो एव अधिकारो से युक्त 27 हजार स्थानीय सस्थाएँ थी। इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप सामाजिक सरचना मे गम्भीर परिवतन आने लगे थे। नवीन नगरो का उदय होने लगा था। इनकी सफाई, शिक्षा एव स्वास्थ्य, नगर सुधार एव निधन सहायता की समस्याएँ उठ खडी हुई थी। ससद द्वारा नवीन सस्थाओ की स्थापना की गयी थी। पुरानी सस्थाएँ भी बनी रही। अत कायक्षेत्र एव अधिकारा के सम्बन्ध म विवाद उत्पन्न हो गये थे। 1835 ई म ससद ने म्युनिसिपल कॉरपरेशन अधिनियम पारित किया। इसक द्वारा बरो के प्रशासन का पुनगठन किया गया। 1888 ई मे स्थानीय शासन अधिनियम (Local Government Act) पारित करके काउण्टियो क प्रशासन का पुनगठन

3 Ogg *European Governments and Politics*, 1939 pp 346 347

किया गया। 1893 ई मे ग्राम एव नगरीय जिला (Urban and Rural Districts) को व्यवस्थित करने के लिए एक अन्य विधि ससद ने पारित की। 1929 ई के अधिनियम द्वारा कुछ जिलो को एक सूत्र मे वाँध दिया गया एव स्थानीय सस्थाओ को आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गयी। 1933 ई के स्थानीय शासन अधिनियम द्वारा स्थानीय अधिकारियो की शक्तियो को एक सविधि (Statute) म सग्रहीत कर दिया गया। 1936 ई मे ट्रकमाग अधिनियम (Trunk Roads Act) एव 1946 ई के अन्य सम्बन्धित अधिनियमो द्वारा राष्ट्रीय मार्गों को यातायात मन्त्रालय (Transport Ministry) के अधीन कर दिया गया तथा उनका व्यय राष्ट्रीय कोष को दिये जाने की व्यवस्था की गयी। 1946 ई के एक अन्य अधिनियम द्वारा चिकित्सालयो की व्यवस्था क्षेत्रीय बोर्डों को सौंप दी गयी। 1945 ई मे स्थानीय सस्थाओ के सीमाकन के लिए स्थानीय शासन सीमा आयोग अधिनियम की स्थापना की गयी। परन्तु इसे 1949 ई मे समाप्त कर दिया गया। 1944 ई म ससद ने एक विधि पारित करके निराश्रित बालको के समुचित प्रबन्ध का दायित्व स्थानीय सस्थाओ को साप दिया। इसी प्रकार वृद्ध, अपगु, अन्धे एव बहरे तथा गूगा को सर क्षण का दायित्व ससदीय विधि द्वारा स्थानीय शासन को सौंप दिया गया है।

ब्रिटिश स्थानीय सस्थाएँ

ब्रिटेन म भिन्न भिन्न स्थानो पर विभिन्न प्रकार की स्थानीय सस्थाएँ प्रचलित हैं। लन्दन शहर की अपनी पृथक सस्था है। शेष ब्रिटेन मे 1933 ई के स्थानीय शासन अधिनियम के अनुसार 6 प्रकार की स्थानीय सस्थाएँ स्थापित की गयी हैं (1) प्रशासकीय काउण्टी (Administrative County), (2) काउण्टी बरो (County Borough), (3) नान काउण्टी बरा (Non County Borough), (4) शहरी जिला (Urban District), (5) ग्रामीण जिला (Rural District), एव (6) पैरिस (Parish)। कभी कभी एक ही क्षेत्र पर दो या तीन सस्थाओ का क्षेत्राधिकार होता है।

लन्दन को छोडकर सम्पूण देश काउण्टियो एव काउण्टी बरो मे विभाजित है। काउण्टी स्थानीय स्वशासन की सबसे उच्च सस्था है। काउण्टी दो प्रकार की होती है प्रशासकीय काउण्टी एव ऐतिहासिक काउण्टी। बडे शहरो की स्थानीय सस्था काउण्टी बरो है। प्रशासकीय काउण्टी के अन्तगत गर-काउण्टी बरो (Non County Borough), शहरी जिले (Urban Districts) एव ग्रामीण जिले होते हैं। ग्रामीण जिला म परिशो की भी अपनी निजी परिषदें होती हैं। अग्र रेखाचित्र उपरोक्त सग ठन का स्पष्ट करता है।
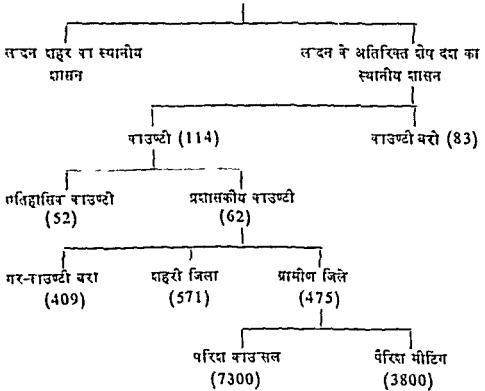
काउण्टी (County)—काउण्टी ब्रिटेन की सदियों पुरानी संस्था है एवं स्थानीय शासन की सर्वोच्च संस्था है। सम्पूर्ण देश को 114 भागों में विभाजित किया गया है। काउण्टी दो प्रकार की हैं प्रशासकीय एवं ऐतिहासिक। ऐतिहासिक काउण्टियों की संख्या 52 तथा प्रशासकीय काउण्टियों की 62 है। ऐतिहासिक काउण्टी प्राचीनकालीन अवशेष हैं एवं इनके कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हैं। ऐतिहासिक काउण्टियों में निर्वाचित परिषदें नहीं होतीं, केवल तीन प्रमुख अधिकारी होते हैं, लार्ड लेफ्टीनेन्ट, शेरिफ एवं जस्टिस ऑफ पीस। लार्ड लेफ्टीनेण्ट का पद बड़े सम्मान का होता है। उसी के द्वारा योग्य व्यक्तियों के नाम जस्टिस ऑफ पीस के पदों के लिए प्रस्तावित किये जाते हैं। वास्तव में ऐतिहासिक काउण्टियाँ न्यायिक क्षेत्र हैं। इनका लोकसभा की सदस्यता के लिए निर्वाचन क्षेत्रों के रूप में भी उपयोग किया जाता है।

प्रशासकीय काउण्टियों की स्थापना स्थानीय शासन अधिनियम (1888 ई.) के अन्तर्गत की गयी है। केन्द्रीय शासन को नवीन प्रशासकीय काउण्टियाँ स्थापित करने का अधिकार है। काउण्टी परिषद शासन-कार्य करती है। इसमें एक अध्यक्ष, एल्डरमन (Eldermen) एवं पार्षद या सदस्यगण होते हैं। पार्षदों (Councillors) को मतदाताओं द्वारा तीन वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। पार्षदों की संख्या

1/6 एल्डरमैन होते हैं। एल्डरमैन का कार्यकाल 6 वष है, लेकिन आधे एल्डरमन प्रति तीसरे वष पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। परिषद का अध्यक्ष पाषदो एव एल्डरमैनो द्वारा सयुक्त रूप मे एक वष के लिए चुना जाता है। अध्यक्ष को जस्टिस ऑफ पीस की भाँति काय करने का अधिकार प्राप्त है। परिषद अध्यक्ष का वेतन निर्धारित करती है। परिषद की वष म कम से कम चार बठकें होना आवश्यक है।

काउण्टी परिषद को पर्याप्त शक्ति एव दायित्व प्राप्त है। परिषद काउण्टी की देखभाल एव विभिन्न दायित्वो के सन्दभ म नीति निर्धारित करती है। उसकी शक्तिया एव काय निम्नलिखित हैं

"काउण्टी का बजट बनाना, ऋण लेना, मकानो, सडका पुलो का सरक्षण, अनाथालया एव सुधार गहो की स्थापना, मातृ गहो एव शिशु-कल्याण केन्द्रो, शिक्षा, स्वास्थ्य,[4] काउण्टी पुलिस[5] की व्यवस्था, लाइसेन्स देना, सक्रामक रोगा की रोकथाम, काउण्टी के कमचारियो—कोषाध्यक्ष, स्वास्थ्य अधिकारी, सर्वेक्षक—की व्यवस्था, अधीनस्थ स्थानीय सस्थाओ का निरीक्षण विस्फोटक पदार्थां, नापतौल के बाटो, आदि के बारे म नियम बनाना, आदि।"

काउण्टी के प्रशासन मे परिषद की समितियो द्वारा महत्वपूण भूमिका अदा की जाती है। विधि के अनुसार प्रत्येक काउण्टी परिषद मे 9 से 12 तक समितियाँ होती है, यथा—वित्त, शिक्षा, सावजनिक सहायता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, गृह, कृषि, मात एव शिशु-कल्याण आदि सम्बन्धी समितियाँ।

काउण्टी की आय के मुख्य स्रोत गृह कर, भूमि-कर, सम्पत्ति कर है। इन्ह केन्द्रीय शासन से विशेष कार्यों के लिए अनुदान प्राप्त होता है।

बरो (Borough)—बरो स तात्पय एसे शहरी क्षेत्रा से होता है जिन्ह 'नगर पालिका शासन पत्र' (चाटर) प्राप्त हो गया हो।[6] बरो तीन प्रकार के होते है (1) ससदीय बरो (Parliamentary Borough), (2) म्युनिसिपल बरो (3) काउण्टी बरो। ससदीय बरो कॉमन्स सभा के सदस्या क निर्वाचन की इकाई होत हैं। इनका स्थानीय शासन स कोई सम्बन्ध नही होता। म्युनिसिपल बरो प्रशासकीय काउण्टी का ही एक भाग होते हैं परन्तु उन्ह पृथक रूप से शासन से 'आज्ञापत्र' प्राप्त होता है। किसी म्युनिसिपल बरो की जनसख्या 75 हजार से अधिक हो जाने पर वह स्वास्थ्य मन्त्रालय को काउण्टी बरो का दर्जा प्रदान करने के लिए आवेदन कर सकती है।

---

4 1948 ई के शिक्षा अधिनियम एव 1944 ई एव 1947 ई के नगर नियोजन अधिनियम द्वारा काउण्टी के शिक्षा, स्वास्थ्य एव नगर नियोजन सम्बन्धी कार्यों म पर्याप्त वद्धि हुई है।

5 प्रत्यक काउण्टी म पुलिस व्यवस्था नही होती है।

6 "A borough is simply an urban area that has received a charter" —Ogg and Zink *op cit*, p 367

सामान्यत बरो की आबादी 1 लाख तक होती है, यद्यपि कुछ की जनसख्या 25000 तक है। बरो एव काउण्टी बरो मे शक्तिया सम्ब धी अन्तर होता है। प्रशासनिक ए भौगोलिक दृष्टि से बरो काउण्टी का भाग होते हैं पर तु उनकी शक्तिया एव अधि कार पृथक-पृथक होते है।

काउण्टी बरो—एक बडा पर तु घना वसा हुआ कस्बा, जिसके पास अपन क्षे से सम्ब धित विभि न सेवाओ के सम्पादन के लिए पर्याप्त साधन होते है काउण्ट बरो कहलाता है। म्युनिसिपल बरो एव काउण्टी बरो के काय एव अधिकार समा होते है। बरो के अधिकार बरो परिषद (Borough Council) म केन्द्रित होते है विधायी एव कायपालिका कतव्या का बरो म पृथक्करण नही होता। परिषद म एव मेयर, एल्डरमैन एव पाषद (Councillor) होते हैं। मेयर को एक वष के लिए परिषद निर्वाचित करती है। मेयर परिषद का अध्यक्ष होता है और विशेष अवसरो पर औपचारिक रूप स वह बरो का प्रतिनिधित्व करता है। स्थानीय शासन के किसी विभाग का वह अध्यक्ष होता है। उसे अधिकारिया का नियुक्त करने विभागो को नियन्त्रित करन और अध्यादशा को अस्वीकार करन की शक्ति प्राप्त नही है। सामान्यत मेयर पुनर्निर्वाचित कर लिय जाते हैं। अधिकाशत उनका पद अवैतनिक हाता है। पाषदो को प्रत्यक्ष रूप स जनता प्रति तीन वष के लिए निर्वाचित करती है। एक तिहाई सदस्य प्रति वष अवकाश ग्रहण करत हैं। प्रति वष नवम्बर के महीने म नगरपालिका म निर्वाचन होते हैं। अधिकाशत य निर्वाचन दलीय आधार पर नही होते लेकिन जिन बरो मे श्रम दल शक्तिशाली हाता है उनम बडा सघष एव स्पर्द्धा होती है। एल्डर मना की सख्या कुल पाषदा की एक तिहाई होती है तथा वे 6 वष के लिए निर्वाचित किय जात हैं। उनम स एक तिहाई प्रति दूसरे वष अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। बरो परिषद के काय-भार क अनुसार उसके साप्ताहिक, पाक्षिक एव मासिक अधिवशन हाते हैं। परिषद का अधिकाश काय समितिया द्वारा सम्पादित किया जाता है। मुख्य समितियाँ शिक्षा, वित्त, मात एव शिशु-कल्याण, वृद्धावस्था पेशन आदि स सम्बन्धित होती हैं। अस्थायी समितिया की भी स्थापना की जाती है। बरो की शक्तिया का तीन भागा—विधायी, कायपालक एव वित्तीय—म वर्गीकृत कर सकते हैं। उस उपनियम बनान का अधिकार होता है। इन नियमा को स्वास्थ्य एव कुछ अन्य सम्बन्धित अधिकारिया द्वारा अस्वीकृत किया जा सकता है। परिषद बरो के कोष की सरक्षिका होती है। इस अनक प्रकार क कर लगान एव एकत्रित करने का अधिकार होता है। सम्पूण नगरपालिका प्रशासन पर यह नियन्त्रण रखती है। वह अपने अधिकारिया जसे कि कोषाध्यक्ष, अभियन्ता (इजीनियर), मुख्य कान्स्टेबिल, स्वास्थ्य-अधिकारी आदि की नियुक्ति करती है। परिषद की बठका म बरो के स्थायी कमचारियो को भाग लेन का अधिकार हाता है परन्तु व मतदान करते हैं तथा परिषद एव कमचारीगण परस्पर पूण सहयोग स काय करत हैं

जिला (District)—ब्रिटेन के स्थानीय शासन म दो प्रकार क—ग्रामीण (Rural) एव शहरी (Urban)—जिले होत हैं। इनकी स्थापना जिला एव परिश परिषद अधिनियम (1894 ई) के अधीन की जाती है।

ग्रामीण जिले—ग्रामीण जिले कई परिशा (Parishes) स मिल कर बनत हैं। इगलण्ड एव वल्स म इनकी कुल सख्या 475 है। काउण्टी के द्वारा स्वास्थ्य, सफाई, प्रकाश आदि का प्रबन्ध क्षमतापूवक न कर सकने के कारण काउण्टिया को जिला म विभाजित कर दिया गया है। ग्रामीण एव शहरी जिले अपन क्षेत्रा म स्वास्थ्य, सफाई, एव प्रकाश आदि का प्रबन्ध करते हैं। प्रत्येक ग्राम्य जिले मे एक जिला परिषद होती है। 300 या अधिक व्यक्तिया की जनसख्या वाला प्रत्यक परिश इस परिषद म अपन सदस्य भेजता है। सदस्यगण सामान्यत तीन वप के लिए चुन जात हैं। उनम एक तिहाई प्रतिवप अवकाश ग्रहण कर लेत हैं। जिला परिषदा म एल्डरमन नही हाते हैं। परिषद अपना अध्यक्ष अपने सदस्या म से या बाहर स निर्वाचित कर सकती है। ग्राम परिषदो का सगठन एव कायपद्धति काउण्टी परिषदा जैसी होती है।

शहरी जिला—शहरी जिला की कुल सख्या 572 है। औद्योगिक विकास के फलस्वरूप जिस क्षेत्र की जनसख्या अधिक हो जाती है उसे सम्बन्धित काउण्टी काउन्सल द्वारा शहरी जिला बना दिया जाता है। बरो एव शहरी जिला नगरीय इकाईयाँ है। बडे शहरी जिला को बरो का दजा दे दिया जाता है। इस सम्बन्ध म कोई विधिक सीमा नही है। बरो एव जिला परिषद के सगठन म अन्तर तो है परन्तु शक्तियो मे कोई भेद नही है। किसी जनसमूह का पैरिश से ग्राम जिला एव उससे आगे की विकास की अवस्था शहरी जिला है। किसी शहरी जिले की सख्या 20 हजार स अधिक होने पर उसे प्रारम्भिक शिक्षा के नियन्त्रण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो जात है। इसके दायित्व व काय वही हैं जो ग्राम्य जिले क हाते हैं। ग्राम्य जिलो की तरह शहरी जिला की भी परिषदें होती है। प्राय शहरी जिला को जो काय सम्पादित करने पडते हैं उनकी दृष्टि से वे बहुत छोटे हात हैं।

परिश (Parish)—ग्रामीण क्षेत्रो की सबसे छोटी इकाई परिश होती है। 300 व्यक्तियो से अधिक जनसख्या वाले क्षेत्र म एक परिश की स्थापना की जाती है। पैरिश की एक परिषद होती है जिसमे 5 से 15 तक सदस्य होते हैं जो तीन वप के लिए निर्वाचित किये जाते है। इसकी शक्तिया व्यापक नही है। सडको की सुरक्षा, जल प्रबन्ध, प्रकाश मनोरजन स्थलो का निर्माण, सावजनिक वाचनालय एव सावजनिक कार्यालया तथा सम्मेलनो के लिए स्थान प्रदान करना आदि इसके प्रधान काय है। वप म परिषद के तीन या चार अधिवेशन होते हैं। 300 स कम जनसख्या वाले परिशो का प्रबन्ध करदाताओ की एक समिति द्वारा किया जाता है।

लन्दन शहर का प्रशासन (Government of London)—लन्दन शहर का स्थानीय प्रशासन देश के शेष भाग स पृथक है। 1855 ई एव 1899 ई म ससद

ने लन्दन प्रशासन सम्बन्धी पृथक अधिनियम पारित किये थे। स्थानीय शासन की दृष्टि से लन्दन नगर को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(1) लन्दन नगर (London City), (2) लन्दन काउण्टी (London County), एवं (3) लन्दन महानगरीय पुलिस जिला (London Metropolitan Police District)।

(1) लन्दन नगर का क्षेत्रफल केवल एक वर्गमील है। परन्तु सम्पूर्ण लन्दन नगर का क्षेत्रफल करीब 700 वर्गमील है। लन्दन शहर का शासन लॉर्ड एक महापौर (मेयर) एवं निम्नलिखित तीन परिषदों द्वारा होता है

(अ) कोर्ट आफ एल्डरमन (The Court of Eldermen)—यह नगर के वृद्ध जनों की सभा है। इसकी सदस्य संख्या 26 है। महापौर इसका अध्यक्ष होता है। इसके सदस्य जीवन भर के लिए निर्वाचित होते हैं। इस परिषद का कार्य दलालों को लाइसेन्स प्रदान करना और नगर के अभिलेखों को सुरक्षित रखना है।

(ब) कोर्ट आफ कॉमन कॉउंसिल (The Court of Common Council)—यह नगर की वास्तविक प्रशासकीय संस्था है। इसमें कोर्ट ऑफ एल्डरमन के 26 सदस्य एवं 206 अन्य पार्षद (काउंसलर) होते हैं जो प्रति वर्ष चुने जाते हैं। इसका कार्य पुलिस, सिविल एवं अपराधिक न्यायालयों का निरीक्षण, आवश्यक उपनियमों का निर्माण एवं पुलों का निरीक्षण करना होता है। परिषद समितियों के माध्यम से कार्य करती है।

(स) कोर्ट ऑफ कॉमन हाल (The Court of Common Hall)—इसमें कोर्ट ऑफ एल्डरमन के सदस्य एवं नगर की कम्पनियों के लिवरीमन (Liverymen) होते हैं। यह एक प्रकार की नगर सभा है। लार्ड मेयर का निर्वाचन कोर्ट आफ कॉमन हाल के द्वारा उन वरिष्ठ एल्डरमैनों में से होता है जो शैरिफ रह चुकते हैं। लार्ड मेयर के द्वारा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया जाता है। यह तीनों परिषदों की अध्यक्षता करता है एवं विशेष अवसरों पर लन्दन शहर का प्रतिनिधित्व करता है। उसका अधिकांश वेतन शासकीय समारोहों में ही व्यय हो जाता है। अतः यह पद केवल धनी व्यक्तियों के लिए ही उपयुक्त है। लॉर्ड मेयर के पद की आलोचना भी की जाती है तथा इस उच्च पद को समाप्त करने की माँग की गयी है ताकि लन्दन काउण्टी के सभापति को लन्दन की राजनीति में उपयुक्त स्थान प्राप्त हो सके।

(2) लन्दन काउण्टी—यह प्रशासकीय काउण्टी है। 1855 ई. के काउण्टी परिषद अधिनियम के अधीन लन्दन में एक काउण्टी परिषद की स्थापना की गयी है। इसमें 28 बरो हैं। इनमें प्रत्येक में अपनी परिषद है जिनका संगठन एवं शक्तियाँ अन्य बरो की भाँति है। इसका क्षेत्रफल 117 वर्गमील है। लन्दन काउण्टी परिषद में 124 निर्वाचित सदस्य एवं 20 नगरवृद्ध (एल्डरमैन) है। पार्षदों को जनता द्वारा तीन वर्ष एवं नगरवृद्धों को 9 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। एक-तिहाई नगरवृद्ध प्रति तीन वर्ष पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। पार्षद एवं नगर

वर्ढो द्वारा सम्मिलित रूप से परिषद के अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। इस परिषद की अध्यक्षता के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार प्राप्त नही है। परिषद का मुख्य काय सावजनिक स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा, सडके, रेलवे पाक, मनोरजन-स्थला आदि का प्रबन्ध करना है। नाट्यगहो को लाइसेन्स देना, गहो की व्यवस्था एव निरीक्षण, मकाना सम्बन्धी नियमो एव अनाथालयो की व्यवस्था भी परिषद के दायित्व हैं। काउण्टी परिषद की आय के मुख्य स्रोत—किराया, शुल्क, लाइसेन्स शुल्क, स्थानीय चुगी एव सीमा करो स प्राप्त आय एव शासकीय अनुदान है। परिषद को ससद की स्वीकृति से ऋण लेने का भी अधिकार है। इसका अपना पृथक वार्षिक बजट होता है। परिषद का अधिकाश काय समितियो द्वारा सम्पादित किया जाता है।

(3) लन्दन महानगरीय पुलिस जिला—लन्दन नगर क चारो ओर महानगरी का पुलिस जिला है जिसका क्षेत्रफल लगभग 700 वगमील है। 1829 ई मे सर रॉबट पील ने महानगरी पुलिस जिला की स्थापना की थी। पुलिस आयुक्त इसका प्रधान होता है जो क्राउन द्वारा नियुक्त किया जाता है। पुलिस आयुक्त का पद राजनीतिक पद नही है अपितु दीघ प्रशासकीय अनुभव का व्यक्ति ही इस पद पर नियुक्त किया जाता है। इसकी सहायता के लिए तीन सहायक आयुक्त होत हैं।

ब्रिटिश स्थानीय शासन पर केन्द्र का नियन्त्रण

एक सदी पूव स्थानीय सस्थाओ पर केन्द्रीय शासन का बहुत कम नियन्त्रण था। स्थानीय सस्थाए उस समय अपने क्षेत्र म पर्याप्त स्वायत्त सम्पन्न थी परन्तु आज स्थिति भिन्न है। अब केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण स्थानीय सस्थाओ पर बढ गया है और इसमे दिन प्रतिदिन वद्धि होती जा रही है। केन्द्रीय नियन्त्रण म वद्धि का कारण यह है कि स्थानीय सस्थाएँ ठीक एव नियन्त्रित ढग से अपने दायित्वो को सम्पादित नही करती है। प्रश्न यह है कि क्या स्थानीय सस्थाओ को अनियन्त्रित ढग से काय करने दिया जाय ? इस सन्दभ मे सामान्य धारणा यह है कि जहा स्थानीय सस्थाए पिछडी हुई हैं वहाँ केन्द्रीय शासन को उन्ह प्रोत्साहित करना चाहिए और जहाँ वे अपनी शक्ति का दुरुपयाग करती हैं वहाँ केन्द्रीय शासन को उन्ह रोकना चाहिए। स्थानीय शासन के सुधार की माग बढती गयी। फलत ससद द्वारा विधि पारित की गयी जिसके फलस्वरूप पुरानी सस्थाओ को समाप्त करके नवीन सस्थाओ का निर्माण किया गया और उन्हे अन्य शक्तियाँ तथा कर लगाने के अधिकार प्रदान किय गये।

स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियन्त्रण के निम्न तीन रूप हैं

(1) **विधायी नियन्त्रण**—ब्रिटिश ससद सम्प्रभु है। उस स्थानीय शासन के सम्बन्ध म सब प्रकार के विधि निर्माण उनके अधिकारो की व्याख्या तथा नवीन शक्तियाँ एव अधिकार भेन्न प्रदान करने, प्राचीन सस्थाओ के स्थान पर नवीन सस्थाओ के निर्माण आदि का अधिकार प्राप्त है। ससदीय विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियो का ही प्रयोग इन सस्थाओ के द्वारा किया जा सकता है।

लेखा परीक्षण केन्द्रीय लेखा-परीक्षकों (Auditors) का दायित्व होता है। अनुचित *व्ययों को रोकने का इन्हें अधिकार होता है तथा स्थानीय शासन के राजस्व में जिन* अधिकारियों के प्रमाद से हानि होती है उन्हें सरचार्ज देने के लिए बाध्य कर सकते हैं। स्मरणीय है कि करों व वित्तीय प्रशासन में केन्द्रीय अनुदान सम्बन्धी व्यय का लेखा परीक्षण केन्द्रीय परीक्षकों द्वारा किया जा सकता है। 1944 ई० के शिक्षा अधिनियम एवं 1945 ई० के जलीय अधिनियम द्वारा स्थानीय शासन को सम्बन्धित मामलों में हस्तक्षेप के व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। निर्धारित रीति के क्रियान्वयन के लिए सम्बन्धित मन्त्रियों को स्थानीय संस्थाओं को निर्देश देने एवं पहल करने के अधिकार प्राप्त होते हैं। बड़े खर्चों (Capital expenditure) के बारे में सम्बन्धित मन्त्री की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

(3) न्यायिक नियन्त्रण—स्थानीय संस्थाएँ एवं अधिकारियों द्वारा केवल उन्हीं शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है जो उन्हें मूल संसदीय विधियों तथा परवर्ती विधियों द्वारा प्रदान की गयी हैं। यदि कोई स्थानीय संस्था या अधिकारी अतिरिक्त शक्तियों का प्रयोग करता है तो न्यायालय को आवेदन किये जाने पर ऐसे कार्यों को *अवैधानिक एवं निष्प्रभावी घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार स्थानीय* संस्थाओं द्वारा निर्मित उपनियम यदि मूल संसदीय विधि के विपरीत होते हैं या वे उसका अतिक्रमण करते हैं तो न्यायालय उसे निष्प्रभावी घोषित कर सकता है। स्मरणीय है ब्रिटिश न्यायाधीशों का उपनियमों के प्रति उदार दृष्टिकोण होता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्थाओं के कुछ अनिवार्य दायित्व होते हैं। इन दायित्वों को सम्पादित करने में स्थानीय शासन यदि असफल होता है तो न्यायपालिका की शरण ली जा सकती है। न्यायालय स्थानीय शासन को कर्तव्य सम्पादन के लिए परमादेश का आदेश (Writ of Mandamus) जारी कर सकता है। परन्तु न्यायिक नियन्त्रण की व्यवस्था खर्चीली एवं विलम्बकारी होती है।

समीक्षा—ग्रेट ब्रिटेन स्थानीय संस्थाओं का गृह है। आज भी ब्रिटिश स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त है। केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण यद्यपि बढ़ता जा रहा है फिर भी नियन्त्रण काफी लचीला है। उसका उद्देश्य स्थानीय शासन के कार्यों में सुधार करना होता है। स्थानीय संस्थाएँ ही अपने कर्मचारियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति करती हैं, आय व्यय का वार्षिक विवरण (बजट) तैयार करती है, सम्बन्धित मामलों का प्रशासन करती है तथा उपनियम बनाती हैं। केन्द्रीय एवं स्थानीय शासन के पारस्परिक सम्बन्ध उच्च एवं अधीनस्थ निकायों के नहीं हैं अपितु साझीदारों (Partners) जैसे हैं।

स्थानीय शासन में सुधार के लिए समय समय पर सुझाव दिये गये हैं। ब्रिटिश संसद ने 1945 ई० में स्थानीय शासन सीमा आयोग अधिनियम पारित किया था। *इस अधिनियम द्वारा स्थानीय सीमा आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी।*

स्थापित आयोग का मत था कि काउण्टियो एव बरो की सीमाओ म आशिक सशोधन अथवा एक या दो काउण्टियो एव बरो के विभाजन या एकीकरण स समस्या का समाधान नही हो सकता है। अत आयोग न यह सुझाव दिया कि ससदीय विधि द्वारा नवीन प्रकार की स्थानीय इकाइयो का निर्माण किया जाना चाहिए और उनके दायित्वो एव कतव्यो को पुन निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त वतमान सस्थाओ क स्थान पर काउण्टी काउण्टी बरो एव काउण्टी जिलो की स्थापना का सुझाव दिया तथा एकल काउण्टी एव द्वि काउण्टी पद्धति का प्रस्ताव किया था। आयोग की सिफारिशो का मिश्रित स्वागत हुआ अर्थात तीव्र आलोचना क साथ-साथ समथन भी हुआ था। स्वास्थ्य म त्री एन्यूरिन बिवान (Anurin Bevan) न भी आयोग की सिफारिशो को पसन्द नही किया। फलत 1949 ई म 1945 ई का अधिनियम निरस्त कर दिया गया तथा आयोग का विघटित कर दिया गया। 1958 ई म ससद क स्थानीय शासन अधिनियम क अधीन इगलण्ड एव वल्स के लिए पृथक सीमा आयोग की स्थापना की गयी है। इन आयोगो के स्थानीय शासन के पुनर्रीक्षण एव नवीन प्रकार की सस्थाओ की स्थापना सम्बन्धी सुझावो का अधिकार दिया गया है। 1966 ई के शासन क स्थानीय शासन की वित्तीय स्थिति सम्बन्धी श्वेत पत्र म यह स्वीकार किया गया है कि स्थानीय शासन के कराधान की वतमान पद्धति दोषपूर्ण है। ब्रिटिश स्थानीय शासन म सुधार की आवश्यकता का अधिक अनुभव नही किया जा रहा है।

फ्रास मे स्थानीय शासन

फ्रास की स्थानीय शासन-व्यवस्था अपने ढग की अनूठी है। सम्पूर्ण फ्रास 90 डिपाटमण्टो (Departments) म विभाजित है। डिपाटमेण्ट कैण्टनो म, कण्टन अनेक अरेंडाईजमण्टो (Arrondissements) म विभाजित हैं। सबसे छोटी इकाई कम्यून है। अनेक कम्यून अरेंडाईजमण्ट म सगठित होते हैं। अत फ्रास म डिपाटमण्ट, कैण्टन, अरेंडाईजमेण्ट एव कम्यून स्थानीय शासन की इकाइयाँ हैं। एक कैण्टन म सामान्यत 35 कम्यून होते हैं।

डिपाटमेण्ट (Department)—फ्रास मे कुल 90 डिपाटमेण्ट (या डिपाटमा) हैं। डिपाटमेण्ट फ्रास की सबसे बडी प्रशासनिक इकाई है। एक डिपाटमेण्ट का सामान्य क्षेत्रफल 2363 वर्गमील होता है। सीन (Seine) का डिपाटमण्ट सबसे छोटा है। उसका क्षेत्रफल 185 वर्गमील एव सबसे बडे डिपाटमेण्ट बोरडेक्स (Bordeaux) का क्षेत्रफल 4140 वर्गमील है। सभी डिपाटमण्टो को 4 समूहो मे विभाजित किया जाता है (1) होर्स (Horz) वर्ग के डिपाटमण्ट जिनकी सख्या 15 है। इनमे फ्रास के प्रमुख नगर स्थित हैं। (2) प्रथम श्रेणी के 19 डिपाटमेण्ट जिनके अन्तर्गत प्रान्तीय राजधानियाँ आती हैं। (3) द्वितीय श्रेणी के 22 छोटे डिपाटमेण्ट, एव (4) तृतीय श्रेणी के 34 डिपाटमण्ट।

प्रत्येक डिपाटमेण्ट म एक सामान्य परिषद होती है। इसके अतिरिक्त प्रीफेक्ट (Prefect) डिपाटमेण्ट का कायपालिका प्रमुख होता है।

डिपाटमेण्ट की सामान्य परिषद—डिपाटमण्ट की सामान्य परिषद एक शक्तिशाली अग है। इस परिषद के लिए प्रत्येक कण्टन द्वारा एक पाषद (Councillor) चुना जाता है। डिपाटमण्टो के आकार एव क्षेत्र के अनुसार उनकी परिषदा की सदस्य-सख्या म अन्तर होता है। प्रत्येक पाषद 6 वष के लिए निर्वाचित किया जाता है, परन्तु एक-तिहाई सदस्य प्रति तीन वष पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। मताधिकार क लिए डिपाटमेण्ट मे सम्पत्ति या आवास सम्बन्धी योग्यता आवश्यक होती है। चौथाई पाषदा के लिए डिपाटमेन्ट का निवासी होना आवश्यक नही होता है। सामान्य परिषद राष्ट्रीय असेम्बली की स्वीकृति स शासन को विघटित कर सकती है। ऐसी स्थिति मे नवीन निर्वाचन तुरन्त ही होने चाहिए। परन्तु 1874 ई से किसी भी सामा य परिषद को विघटित नही किया गया है। गैर कानूनी काय के लिए अपने पाषद को सामान्य परिषद स्वय पदच्युत कर सकती है। सामान्य परिषद के वष म दो सामान्य अधिवेशन होते हैं। प्रीफेक्ट को दो तिहाई पाषदो की प्राथना पर विशेष अधिवेशन आहूत करने का अधिकार है। सामान्य परिषद अपन अध्यक्ष को एक वष के लिए निर्वाचित करती है। वह पुन निर्वाचित हो सकता है।

परिषद को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। उसे डिपाटमेण्ट के अतिरिक्त कम्यूना के शासन से सम्बन्धित शक्तियाँ भी प्राप्त है। राज्य प्रशासन की इमारतो की सुरक्षा, राज्य सेवाओ का सगठन, शिक्षा अधिकारियो की नियुक्ति शिक्षा का प्रशिक्षण, दीवानी, अपराधिक एव व्यापारिक तथा भ्रमणशील न्यायालयो की व्यवस्था करना सामान्य परिषद का ही दायित्व है। डिपाटमेण्ट द्वारा सचालित विभिन्न सेवाआ का सचालन तथा राजकीय मामलो का प्रशासन भी सामान्य परिषद के कायक्षेत्र म आते हैं। परिषद की सिफारिश पर ही राज्य द्वारा डिपाटमेण्ट के अन्तगत चच, कृषि सस्थाआ, प्राथमिक पाठशालाओ आदि के लिए अनुदान प्रदान किये जात हैं। आर्थिक नीति एव सामान्य प्रशासन के सम्बन्ध मे परिषद का प्रस्ताव पारित करने का अधिकार है। कम्यूनो की कुछ सेवाआ पर सामान्य परिषद को नियन्त्रण प्राप्त है। जनता को दी जाने वाली सहायता के सन्दभ म परिषद को व्यापक अधिकार हैं। कम्यूना म उत्पन्न विवादो का भी फसला वही करती है। वह डिपाटमेण्ट स सम्बन्धित सभी नीतियो को निश्चित करती है। वित्तीय व्यवस्था पर उसका पूण नियन्त्रण है, लेकिन सामा य परिषद द्वारा पारित वजट को गृह मन्त्री स्वीकृत करता है। सामा य परिषदो के निणया को विधिक औचित्य की दृष्टि स काउन्सल आफ स्टेट के समक्ष चुनौती देने का अधिकार प्रीफेक्ट को प्राप्त है।

सामान्य परिषद की एक स्थायी समिति होती है जिसे डिपाटमेण्ट का आयोग (Commission Departmentale) की सना दी जाती है। इसका मुख्य काय प्रीफेक्ट

के हिसाब किताब की जाच करना होता है। आयोग इसके अतिरिक्त अनक उपयोगी काय भी करता है। इससे सामाय परिषद की वहुत बचत होती है।

प्रीफेक्ट (Prefect)—डिपाटमेण्ट का कायकारी अध्यक्ष प्रीफेक्ट कहलाता है। इसकी नियुक्ति गहमन्त्री की सिफारिश पर फ्रेंच राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति ही उसे पदच्युत करता है। सामायत शासन जब किसी प्रीफेक्ट को पदच्युत करना चाहता है तो उसे किसी अय पद पर हस्तातरित कर दिया जाता है। उसे व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। व्यवस्था एव शाति स्थापित करना, सुरक्षा, अपने क्षेत्र म विधिया का क्रियावित करना उसका ही दायित्व है। वह अपने क्षेत्र मे पुलिस विभाग का अध्यक्ष होता है। अपराधिया को बदी बनाने एव तलाशी लेने के व्यापक अधिकार उसे प्राप्त ह। वह डिपाटमण्ट के अतगत राज्य की समस्त प्रशासनिक एव प्राविधिक सेवाओ मे समवय स्थापित करता है। राज्य कोष से धन उसी के अधिकार स दिया जा सकता है। वह निम्न अधिकारियो की नियुक्ति करता है। केद्रीय शासन के विभिन्न विभागा के मध्य सूचना प्रसारित करता है, कम्यूना एव अरेडाइजमेण्टो के सम्बध म उस व्यापक शक्तिया प्राप्त है। वह अपने क्षेत्र की सामाय परिषद का कायकारी अधिकारी होता है। कभी-कभी वह विभिन विभागो के अधिकारियो के बारे म भी निश्चय करता है।

प्रीफेक्ट को दोहरी भूमिका निभानी पडती है। उसकी द्वैध स्थिति है। एक तरफ वह डिपाटमेण्ट का प्रमुख कायकारी अधिकारी होता है तो दूसरी तरफ वह केद्रीय शासन का अभिकर्ता है। केद्रीय शासन के अभिकर्ता के रूप म वह केद्रीय विधिया एव आदेशा को क्रियावित करता है। शासन के विभिन्न विभागो (यथा—राजमाग, पुल, जेल, अनाथालय एव चिकित्सालय) का अध्यक्ष होता है। वह सेना म भर्ती क प्रबध का निरीक्षण करता है। अनेक अधिकारियो की नियुक्ति करता है। वह सक्रिय राजनीतिज्ञ भी होता है। सामाय निर्वाचन म वह अपने समथक मत्रिया के पक्ष म सक्रिय रहता है। डिपाटमेण्ट के अध्यक्ष के रूप मे वह सामाय परिषद के सभी काय सम्पादित करता है। प्रीफेक्ट के इन दोना दायित्वा म समवय करना कठिन काय है। वह फ्रेंच स्थानीय शासन की धुरी है। मत्री आते एव जाते रहते हैं परतु प्रीफेक्ट एव उसके अधीन कमचारी सम्पूण देश के प्रशासन को गतिमान रखते है।

कण्टन (Canton)—प्रशासनिक कार्यो की दृष्टि से कुछ कम्यूना को कैण्टना म गठित किया जाता है। फ्रास मे कण्टन सेना और न्यायपालिका की मुख्य प्रशासनिक इकाई है। कण्टन ही डिपाटमेण्ट के स्थानीय निवाचना की इकाइयाँ होती हैं।

अरेडाइजमेण्ट (Arrondissement)—यह मुख्य प्रशासकीय उपक्षेत्र है। इसकी कोई निवाचित परिषद नही होती है। एक डिपाटमेण्ट म तीन या चार अरडाइजमेण्ट होते है। इनका अध्यक्ष उप प्रीफेक्ट कहलाता है। प्रत्येक अरेडाइजमेण्ट एक लघु डिपाटमेण्ट के समान है। उप प्रीफेक्ट प्रीफेक्ट का अभिकर्ता मात्र होता है।

वह मन्त्रिमण्डल की उँगलियाँ ही नहीं अपितु आँख व कान भी होता है। यह कम्यून के अध्यक्षों तथा मेयरों का परामर्शदाता, मार्गदर्शक एवं प्राविधिक सलाहकार होता है। अरेंडाइजमेण्टों में पहले परिषदें हुआ करती थीं। अब उनके कार्य प्रीफेक्टों को हस्तान्तरित कर दिये गये हैं। *आग के अनुसार, फ्रांस के स्थानीय शासन में अब इनका* वह महत्व नहीं है जो इन्हें पहले प्राप्त था, अब यह केवल विधानमण्डल के सदस्यों के निर्वाचन क्षेत्र के रूप में रह गये हैं।

कम्यून (Communes)—फ्रांस में कम्यून से अर्थ नगर, शहर (Town), कस्बा या ग्राम से होता है। फ्रांस में शहरी एवं ग्राम्य स्थानीय शासन में कोई अन्तर नहीं है। फ्रांस में करीब 38 हजार कम्यून हैं। प्रत्येक कम्यून में एक नगरपालिका परिषद (Municipal Council) एवं एक मेयर होता है। जनसंख्या के आधार पर परिषद की सदस्य संख्या निश्चित की जाती है। मेयर कम्यून का कार्यकारी अधिकारी होता है। डिपार्टमेण्ट के प्रीफेक्टों की भाँति उसकी द्वैध स्थिति है। एक तरफ वह परिषद का कार्यकारी अध्यक्ष होता है तो दूसरी तरफ अपने उच्च अधिकारियों का अभिकर्ता होता है। उसे व्यापक अधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनके प्रयोग के सम्बन्ध में उसे व्यापक स्वविवेकीय अधिकार भी प्राप्त हैं।

पैरिस की अपनी पृथक शासन व्यवस्था है। अपनी पृथक नगर परिषद है। फ्रांस में स्थानीय संस्थाओं के राजस्व के तीन मुख्य स्रोत हैं चुंगी, सम्पत्ति-कर एवं स्थानीय कर। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय शासन द्वारा स्थानीय संस्थाओं को आर्थिक अनुदान दिया जाता है।

फ्रांस में स्थानीय शासन एवं केन्द्रीय शासन के सम्बन्ध

फ्रांस में स्थानीय शासन पर केन्द्रीय शासन एवं उच्च अधिकारियों के नियन्त्रण की विधिवत व्यवस्था की गयी है। केन्द्रीय नियन्त्रण या संरक्षण दो प्रकार का है (1) राजनीतिक एवं (2) वित्तीय। राजनीतिक संरक्षण के अन्तर्गत स्थानीय शासन के अधिकारियों को पदच्युत करने की शक्ति राज्य अधिकारियों को प्राप्त होती है। प्रीफेक्ट मेयर को एक माह एवं गृह-मन्त्री तीन माह के लिए निलम्बित कर सकता है। गम्भीर अपराधों के लिए गृह-मन्त्री उसे पदच्युत भी कर सकता है। अनेक बार मेयरों को इसलिए पदच्युत *किया गया था* कि उन्होंने विधि के अनुसार या सुशासन एवं व्यवस्थित रीति की दृष्टि से ठीक प्रकार कार्य नहीं किया है। नगर परिषदों (Municipal Councils) एवं प्रीफेक्टों की सामान्य परिषदों को भी प्रशासकीय आदेश द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

केन्द्रीय शासन निम्न तरीकों से स्थानीय शासन पर नियन्त्रण रखता है

(1) केन्द्रीय शासन स्थानीय निर्णयों की वैधानिकता सम्बन्धी परीक्षण करता है। कुछ निर्णयों के सम्बन्ध में स्थानीय निकायों को प्रीफेक्ट, मन्त्री एवं राज्यपरिषद (Council of State) की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

(2) अनेक मामलो मे स्थानीय इकाइयो को निणय करने के अधिकार उस समय तक प्राप्त नही होते जब तक कि सरक्षक सत्ता द्वारा तत्सम्बन्धी अधिकार प्रदान न कर दिये जायें।

(3) स्थानीय शासन के वित्त पर उच्चाधिकारियो एव मन्त्रिया का नियन्त्रण होता है। नगर परिषदो के बजट को उप प्रीफेक्टो तथा कम्यूनो के बजट को प्रीफेक्टो द्वारा स्वीकृत किया जाता है। बडे कम्यूना के बजट को गह मन्त्री स्वीकृत करता है। डिपाटमण्ट का बजट गह मन्त्री एव वित्त म त्री द्वारा स्वीकृत किया जाता है। कम्यूनो को ऋण लेन एव अपनी सम्पत्ति को 18 वप से अधिक समय के लिए पट्टे पर उठाने के लिए विशप अनुमति लेना आवश्यक होता है।

केन्द्रीय शासन का वित्तीय सरक्षण के अधीन स्थानीय सस्थाओ क बजट को स्वीकृत करने एव लेखा परीक्षण (auditing) के अधिकार प्राप्त है। निकट भूत म ही केन्द्रीकरण एव केन्द्रीय सरक्षण की इस प्रवृत्ति का विकास हुआ है। प्रीफेक्टो को कुछ शक्तिया से वचित करने के अधिकार मन्त्रिया को प्रदान किये गये हैं। एक नवीन अधिकारी Tresorier Bayeur General की नियुक्ति की गयी है। इसे सरक्षण सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त है। स्थानीय शासन के कमचारियो एव अधिकारया का शीपस्थ अधिकारी गह म त्री होता है। अत फ्रेंच स्थानीय शासन की सबसे महत्वपूण विशेषता 'सरक्षण मिश्रित केन्द्रीकरण' है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे स्थानीय शासन

सयुक्त राज्य अमेरिका म 91 हजार से भी अधिक स्थानीय सस्थाए है। विविधता यहा के स्थानीय शासन की एक प्रमुख विशेषता है। कोलम्बिया जिला सहित लगभग 48 प्रकार के स्थानीय शासन हे। इसकी प्रमुख इकाइयाँ है काउण्टी (County) टाउन (Town), टाउनशिप (Township), एव नगर (Cities)।

काउण्टी—स्थानीय शासन की सबसे बडी इकाई काउण्टी है। लासियाना (Louisiana) राज्य को छोडकर वाकी सभी राज्य काउण्टिया म विभाजित हैं। सभी राज्या म इनकी कुल सख्या 3049 है। डिलावरा राज्य म कवल तीन काउण्टियाँ है जब कि टक्सास म 250 हैं। सामान्यत प्रत्यक राज्य म 50 स 100 तक काउण्टियाँ होती है। काउण्टी सावजनिक कार्यों के लिए राज्य की प्रशासनिक इकाई होती है। राज्यो के सविधान द्वारा इन्ह विधिक मान्यता प्रदान की जाती है। काउण्टी का प्रशासन एक परिपद (Council) या आयुक्त या बोड करता है। परिपद क सदस्य निर्वाचित होते हैं।[7] सामान्यत इन परिपदा म 3 से 7 सदस्य होत है। परन्तु कुछ

---

7 'The authority in a country is centered in a group of elected officials known as a 'Council, Commissioners or Board' (p 334), or supervisors elected by the voters (p 295) —H Zink and others *American Government and Politics*, 1967

काउण्टियो की सदस्य सख्या अधिक होती है। समिति या परिषद के अतिरिक्त काउण्टी मे शैरिफ (Sheriff), लिपिक (Clerk), सरकारी (अभियोग) वकील (Prosecutor Attorney) एव कारोनर (Coroner) आदि कुछ प्रशासनिक अधिकारी होत है। यह सभी निर्वाचित हाते हैं। काउण्टियो म सामान्यत मेयर (Mayor) या स्पीकर या उपराज्यपाल (Lieutenant Governer) नही होते। यद्यपि कुछ बोर्डों के अध्यक्ष (Chairman) जनता द्वारा निर्वाचित होते है और नाममात्र की भूमिका निभाते है।[8] दक्षिणी राज्यो मे काउण्टी के कुछ अधिकारी—जसे न्यायाधीश, काउण्टी लिपिक आदि—परिषद के सदस्य होते है। काउण्टी परिषदो म समितियो की भूमिका नाममात्र की है।

काउण्टी के प्रमुख कार्य निम्नवत् हैं व्यवस्था एव शान्ति की स्थापना, सम्बन्धित कागजातो का सरक्षण, स्थानीय विद्यालयो का निरीक्षण, परमिट एव लाइसेन्स देना, जेल, ग्रामीण क्षेत्रो, सडको एव अन्य कल्याणकारी कार्यों का निर्देशन तथा अन्य वित्तीय दायित्वो का सम्पादन। इसके अतिरिक्त काउण्टी राज्य प्रशासन की इकाइयाँ हुआ करती हैं। काउण्टिया ही न्याय, निर्वाचन एव कर सगठन की इकाइयाँ होती हैं। अपने कार्यों के सम्बन्ध म काउण्टियो को नियम एव उपनियम बनाने का अधिकार होता है। प्रत्येक काउण्टी मे अनेक विभाग होत है। इनम प्रमुख कल्याणकारी विभाग है। काउण्टी के दायित्वो मे वृद्धि के साथ साथ कार्य-कुशलता का ह्रास हुआ है तथा अपव्यय एव बरबादी बढी है। काउण्टी के विभिन्न कार्यों म वाछित समन्वय एव सयुक्त निर्देशन का अभाव है।

टाउन (Town)—टाउन प्रमुख रूप से ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाई है। प्रधानत तीन प्रकार क टाउन होत हैं ग्राम, गाव एव आसपास के क्षेत्र, तथा कस्बा। यह व्यवस्था मूल रूप म अमरिका क न्यू इगलैण्ड म पायी जाती है। टाउन की एक समिति होती है। इसका वार्षिक अधिवेशन होता है। आवश्यकतानुसार इसके विशेष अधिवशन भी आहूत किय जा सकत हैं। कम जनसख्या वाली टाउन मीटिंग म सभी मतदाता भाग लेत है। वडे टाउन म क्षेत्रीय समितियो द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि भाग लेत हैं। नगर समितियो का स्थानीय मामलो की व्यवस्था का अधिकार होता है। इन समितियो द्वारा नियम बनाये जाते हैं, व्यय निधारित किया जाता है, कर लगाय जात हैं तथा ऋण की स्वीकृति दी जाती है। नवीन स्कूलो की स्थापना क सम्बन्ध म निणय लिय जात है। अपन क्षेत्र क लिए एक विशिष्ट परिषद (Board of Select men) जिस टाउन काउन्सल कहत हैं, तथा शिक्षा बोड क सदस्यो का निर्वाचित किया जाता है।

टाउनशिप (Township)—न्यू इगलण्ड को छाडकर अनेक राज्यो (ओहियो

8 *Ibid*, p 395

नदी के उत्तरी एव डेकोटाज (Dacotas) व कनसास (Kansas) के पूववर्ती क्षेत्र क ग्रामीण क्षेत्रो म स्थानीय शासन की इकाई टाउनशिप है । प्रत्यक टाउनशिप मे एक निर्वाचित परिषद या बोड होता है । इसका प्रमुख अध्यक्ष (President) या महापौर (Mayor) या सभापति (Chairman) कहलाता है । परिषद कमचारियो को नियुक्त करती है, बजट पारित करती है तथा नियमा का निर्माण करती है ।

टाउनशिप म अनेक कमचारी होते है । इनमे से बहुत से कमचारियो का कोइ दायित्व नही हाता है । लेकिन जिन कमचारिया के दायित्व होत है वे अपने क्षेत्र म तानाशाह होते हैं । टाउनशिप मे ट्रस्टी सबसे शक्तिशाली अधिकारी होता है । प्राय यह सामान्य मत है कि यदि टाउनशिप को समाप्त कर दिया जाय तो जनता को इससे लाभ ही होगा ।[9]

ग्राम सबसे छोटी स्थानीय इकाई है। इसका शासन ग्रामसभा (Village-Meeting) करती है । गाव मे एक परिषद, एक अध्यक्ष एव कुछ निर्वाचित अधिकारी होते हैं ।

नगर (Cities)—सयुक्त राज्य अमरिका मे विगत एव वतमान शताब्दी म नगरो की जनसख्या म असाधारण वृद्धि हुई है । देश की 65% से भी अधिक जनता नगरा मे निवास करती है । नगर अमरिका के स्थानीय शासन की महत्वपूण इकाई है । यह काउण्टी का शहरी उपविभाग है । इसकी स्थिति इगलण्ड के बरा (Borough) या काउण्टी बरो (County Borough) जसी है । अनेक बडे नगरो के चारा तरफ छोटे छोटे नगरो का उदय हो गया है । इसकी सफाई एव अन्य सेवाएँ, उनका प्रशासन तथा शान्ति एव व्यवस्था, नगर का प्रशासन आदि सम्बन्धित अनेक समस्या हैं । इसके अतिरिक्त इन दायित्वो क लिए वित्त की आवश्यक्ता भी है । इन सभी समस्याओ का पूणत समाधान नही हुआ है ।

काउण्टी की भाँति नगरो की भी स्थापना राज्यो द्वारा की जाती है । अत नगरा का शासकीय सगठन एव शक्ति प्रत्यक राज्यो की इच्छा पर निभर होती है । इस सम्बन्ध मे विभिन्न राज्यो द्वारा विभिन्न नियम बनाये गय ह ।

नगर शासन का सगठन—राज्या के द्वारा नगरा की स्थापता के लिए भिन्न-भिन्न नियम निधारित किय गये है । नगरपालिकाओ को भिन्न भिन्न शक्तिया प्रदान की गयी है लेकिन जहाँ तक उनके सगठन का प्रश्न है उसम कोइ विशेष अन्तर नही है । नगरपालिकाओ के सगठन के सम्पूण देश म निम्न तीन रूप हैं

(1) **मेयर काउन्सल शासन** (Mayor Council Government)—नगरा म यह स्थानीय शासन का सबस प्राचीन रूप है । इसम एक मेयर (महापौर) एव एक परिषद होती है । मयर मतदाताओ द्वारा निर्वाचित किया जाता है । उसका काय

---

9 Zink and others *op cit*, p 41

काल 2 से 4 वप तक होता है एव उसे मासिक वतन दिया जाता है। कुछ नगरो म मेयर निदलीय आधार पर चुन जाते हैं परन्तु सामा यत वे दलीय आधार पर निर्वाचित होते हैं। कुछ नगरो म मेयर शक्तिशाली होते हैं और परिषद कमजोर होती है, तो कुछ म परिषद शक्तिशाली और मेयर कमजोर होते है। मेयर चाहे परिषद की अध्यक्षता करे या न करे, वह परिषद से निकट सम्पक रखता है। कुछ परिषदो मे मेयर ही परिषद की अध्यक्षता करता है। अनेक नगरो मे वह बजट भी तैयार करता है। बडे नगरा म मेयर के बहुदायित्व होते हैं। उसे कुछ स्थितियो मे कमचारी को पदच्युत करने का अधिकार भी प्राप्त होता है।

19वी सदी के अन्त मे परिषद का स्वरूप द्विसदनीय था लेकिन अब एक सदनीय है। इसमे 5 से 50 तक सदस्य होत हैं जो मतदाताआ द्वारा निर्वाचित होते हैं। जिन परिषदो म मयर परिषद की अध्यक्षता नही करता है उनके अध्यक्ष चुने जाते है। सामान्यत परिषद का अधिवेशन माह मे दो बार होता है एव बडे नगरो मे प्रति सप्ताह। परिषद के काय स्वास्थ्य, सुरक्षा एव नैतिकता सम्बन्धी अधिनियमो का निर्माण करना, कर लगाना, ऋण लेना एव व्यय की व्यवस्था करना है। विभिन्न नगरा की परिषदो के दायित्वो मे भी भेद होता है।

(2) काउन्सल-मनेजर शासन (Council Manager Government)—इस प्रकार के स्थानीय शासन मे नगर परिषद (city council) प्रशासन के सम्पादन हेतु एक सवेतन प्रबन्धक या मैनेजर को नियुक्त कर देती है। वह नगर परिषद के प्रति उत्तरदायी होता है। वही प्रशासन का सचालन करता है। यह प्रणाली अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है। करीब 16 हजार से भी अधिक नगरा मे यह प्रणाली प्रचलित है। नगर परिषद द्वारा नीति निर्धारित की जाती है एव उस पर वह विचार विमश करती है। वह प्रबन्धक भी नियुक्त करती है। प्रबन्धक नीति का सचालन करता है। समिति का कायकाल प्राय 4 वप होता है इसमे सामान्यत 5 से 9 तक सदस्य होते है जो समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुन जाते है। यह प्रबन्धक प्रणाली व्यापार प्रणाली के सचालका (Board of Directors) एव मैनेजर के सम्बन्धो पर आधारित है।

समिति प्रस्ताव पारित करती है, व्यय को स्वीकृत करती है, ऋण एव करो की व्यवस्था करती है। समिति द्वारा प्रबन्धक को नियुक्त करते समय स्थानीयता का ध्यान रखा जाता है परन्तु योग्य व्यक्ति ही सामान्यत चुने जाते हैं। बाहर के व्यक्तिया म स भी प्रबन्धको का चयन किया जाता है। यह प्रणाली करीब 40 वर्षों से प्रचलित है। कनसास नगर एव क्लीवलण्ड के अनुभवो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस प्रणाली म दलीय नताओ का आधिपत्य रहता है।

(3) कमीशन फाम नगर शासन (The Commission Form of City Government)—इस प्रकार क नगर शासन म एक आयोग नगर का शासन चलाता है।

आयोग के द्वारा विधायी एव कायपालक दायित्वा का सम्पादन किया जाता है। मदस्य गणो को दो से चार वप के लिए निर्वाचित किया जाता है। इनमे से एक को मेयर चुना जाता है। प्रति सप्ताह एक या दो अधिवेशन होते है। सभी सदस्यो द्वारा नीति-निर्धारण, करारोपण एव व्यय अथवा ऋण निर्धारित एव प्रस्तावित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बजट पारित करना एव अधिकारियो को नियुक्त एव पदच्युत करना भी आयोग का ही काय है। विभिन्न सदस्य विभिन्न विभागा के अध्यक्ष होते ह।

आयोग प्रणाली के अनेक दोप प्रकाश मे आये है। इनमे काय म एकरूपता नही होती ह। प्रशासकीय अनुभव से वचित होने क कारण सदस्यगण विभिन्न विभागो पर पूण नियन्त्रण रखने म असफल रहते हैं। यह प्रणाली पहले की तरह लोकप्रिय नही है।

स्थानीय शासन की अन्य इकाइया[10]

दक्षिणी पश्चिमी कुछेक राज्यो मे काउण्टियो को मैजिस्टीरियल जिला प्रसिंक्ट्स (Precincts), निर्वाचित जिला एव अन्या म विभाजित किया जाता है। इनका सगठित शासन नही होता अपितु निर्वाचन के लिए केवल काउण्टी के विभाग मात्र होते ह। इसक अतिरिक्त एक अन्य इकाई—विशेष जिले—भी है। इस इकाई का अधिक प्रचलन नही है। सामान्यत विशेप जिले पाच प्रकार के होते ह—शक्षणिक मफाई (Sanitary), जलीय, मावजनिक उपयोगिता सम्बन्धी एव अन्य।

समीक्षा—सयुक्त राज्य अमरिका मे भी स्थानीय शासन की इकाइया जन कल्याण के कार्यो—जस पुलिस आग से रक्षा, स्वास्थ्य एव सफाई, नियोजन, सावजनिक माग एव शिक्षा आदि—स सम्बन्धित होती है। इनकी आय के मुख्य साधन है कर, जुर्माने, फीस एव सावजनिक सेवाओ से होने वाली आय। अन्य सभी देशा की भाँति राज्यो की सरकारो द्वारा इन सस्थाओ का आर्थिक अनुदान भी दिया जाता है। अनुदान के अतिरिक्त राज्य द्वारा एकत्रित करा का एक अश स्थानीय सस्थाओ को प्रदान किया जाता है। अमेरिका की सघीय सरकार भी स्थानीय सस्थाओ को अनुदान एव हवाई अड्डा एव राजमार्गों से प्राप्त होने वाले करो का एक अश प्रदान करती है। फिर भी अमेरिकी स्थानीय शासन की सस्थाएँ अपना व्यय उठाने म असमथ हैं। उन पर ऋण भार अधिक है। 1946 ई म अमरिकी स्थानीय शासन पर केवल 1300 करोड डालर ऋण था। यह 1962 ई म बढकर 5500 करोड डालर हो गया था।[11] अमेरिका म 150000 से भी अधिक स्थानीय शासन की इकाइयाँ हैं। इनके विभिन्न दायित्व हैं। इसके अतिरिक्त इन विभिन्न इकाइया के दायित्वा म अन्तर्विरोध (द्वि-गणन) है और वे अपने दायित्वा का क्षमतापूवक सम्पादित करने म असफल है। इसका

10 Harold Zink and others *op cit* 1967 pp 412-414

11 Ogg and Ray *Essentials of American Government*, 1964, p 669

एक उदाहरण यह है कि 'विशेष जिला को कर, व्यय एवं ऋण सम्बन्धी अधिकार हैं। विशेष जिला के इन अन्य कार्यों को काउण्टियों, नगरों एवं शासन की अन्य इकाइयों को सौंपा जाना चाहिए तभी स्थानीय शासन से मितव्ययता एवं क्षमता की आशा की जा सकती है।[12]

भारत में स्थानीय शासन

भारत में स्थानीय संस्थाएँ नवीन नहीं हैं। प्राचीन काल में ग्राम-पंचायतें थीं और उस समय ग्राम अपने-अपने क्षेत्रों में पर्याप्त स्वायत्त सम्पन्न थे। ग्राम-पंचायती व्यवस्था ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ तक विद्यमान रही थी। लेकिन वर्तमान भारतीय स्थानीय शासन ब्रिटिश शासन की देन है। ब्रिटिश काल में ही 1687 ई. में मद्रास कॉर्पोरेशन की स्थापना की गयी थी। इसी के साथ भारत में स्थानीय स्वशासन का प्रारम्भ हुआ। 1793 ई. के चार्टर अधिनियम द्वारा शान्ति न्यायाधीश (Justice of Peace) की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी थी। इन्हें सड़कों की स्वच्छता एवं मरम्मत के लिए कर लगाने एवं शराब की बिक्री के लिए लाइसेन्स देने वाले इन्सपेक्टरों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया था। 1842 ई. में कलकत्ता के अतिरिक्त बंगाल के अन्य नगरों में भी स्थानीय स्वशासन का प्रारम्भ हुआ था। लेकिन भारत में स्थानीय स्वशासन का वास्तविक प्रारम्भ 1882 ई. में लॉर्ड रिपन के द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव से होता है जिसके अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं को अधिक स्वतन्त्रता देने, ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय शासन की स्थापना, सदस्यों के निर्वाचन तथा इन संस्थाओं पर न्यूनतम शासकीय नियन्त्रण का सुझाव दिया गया था। 1907 ई. में विकेन्द्रीकरण आयोग ने ग्राम पंचायतों की स्थापना का सुझाव दिया। प्राचीन पंचायत व्यवस्था से वर्तमान स्थानीय शासन व्यवस्था का कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्थापित स्थानीय शासन क्रमिक विकास का परिणाम है और स्थानीय शासन की संस्थाओं के कार्यक्षेत्र एवं अधिकारों में धीमी गति से वृद्धि हुई है। यह पूर्णतः लोकतान्त्रिक भी नहीं है। सरकारी पदाधिकारियों (जिलाधीश एवं आयुक्तों) को नियन्त्रण के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। इनके वित्तीय अधिकार भी सीमित हैं। नगरमहापालिकाएँ (Corporations), नगरपालिकाएँ, नोटीफाइड एरिया एवं टाउन एरिया, कन्टूनमेन्ट बोर्ड, पोर्ट ट्रस्ट, इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट (Improvement Trust), स्थानीय शासन की शहरी इकाइयाँ हैं। नगरपालिकाएँ (Municipalities) A, B और C तीन प्रकार की होती हैं। ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित स्थानीय शासन की निम्न इकाइयाँ हैं : जिला परिषद (District Boards), ताल्लुका बोर्ड एवं ग्रामीण पंचायत। स्वतन्त्रता के पूर्व केवल कुछेक प्रान्तों में ही ग्राम पंचायती व्यवस्था थी।

कॉरपोरेशन (Corporation)

महापालिकाएँ केवल बड़े नगरों में ही पायी जाती हैं। बम्बई, कलकत्ता एवं

12 Harold Zink and others *op cit*, p 414

मद्रास की महापालिकाएँ प्राचीन है। उत्तर प्रदेश म लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, कानपुर एव आगरा[13], महाराष्ट्र म बम्बई एव नागपुर, मध्य प्रदेश म जबलपुर, एव बिहार म पटना तथा दिल्ली म महापालिकाएँ है। महापालिका एव नगरपालिका म शक्तियो एव कार्यों तथा दायित्वा के सम्ब ध म अ तर है। महापालिका की स्थापना राज्य विधानमण्डल की विधि द्वारा की जाती है। नगरपालिकाओ की स्थापना सम्बन्धित स्थानीय शासन अधिनियम क अधीन राज्य सरकारो द्वारा की जाती है। महापालिका का अध्यक्ष महापौर (मयर) होता है। इसकी जनसख्या नगरपालिकाओ से अधिक होती है और महापालिकाओ को अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्तता प्राप्त होती है।

महापालिका म दो प्रकार के सदस्य होते हैं समासद एव वृद्धजन (Eldermen)। उत्तर प्रदेश की महापालिकाओ म विशिष्ट सदस्या की सख्या समासदो की 1/9 होती है। समासद जनता द्वारा वार्डों क आधार पर चुने जाते हैं। उत्तर प्रदेश म महापौर को उसी नगर का निवासी एव 30 वप से अधिक आयु का होना चाहिए। इसका कायकाल एक वप होता है अर्थात वह प्रति वष चुना जाता है। एक उपमहापौर (Deputy Mayor) होता है। उपप्रमुख का कायकाल 5 वप होता है। महापालिका म दो प्रमुख समितिया होती है कायकारिणी समिति एव विकास समिति। **कायकारिणी समिति** महापालिका की कार्यपालिका समिति होती है। इसे वित्त, सामान्य प्रशासन के निरीक्षण एव निय त्रण के अधिकार होते है। **विकास समिति** को सामान्य विकास, आवास सडकें एव उनका विकास, सफाई एव पुनर्निर्माण के अधिकार प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त एक मुख्य नगर अधिकारी या म्युनिसिपल कमिश्नर भी होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

महापालिकाओ को विभिन्न प्रकार के कर लगाने का अधिकार होता है, जसे—सम्पत्ति पशु यातायात साधना गाडियो एव अन्य वाहनो एव पशुआ पर कर, व्यापार एव व्यवसाय कर, विज्ञापन, थियेटर एव भूमि की मूल्य वृद्धि पर कर आदि।

उत्तर प्रदेश की महापालिकाओ के 38 प्रकार क अनिवाय एव 43 प्रकार के ऐच्छिक काय हैं। अनिवाय काय निम्नत है सडका का निर्माण एव मरम्मत, बसे चलाना, स्वास्थ्य का प्रबन्ध खाद्य पदार्थों म मिलावट को रोकना, नगरा की सफाई, रोशनी स्वच्छ जल का प्रबन्ध, महामारियो को रोकना, चिकित्सालया एव शिशु विद्यालया का प्रबन्ध आदि।

उत्तर प्रदेश मे राज्य शासन को महापालिकाओ को विघटित करने का भी अधिकार है। यदि राज्य शासन अनुभव करता है कि उनक द्वारा अपन अधिकारा का दुरुपयोग किया जा रहा है और वे अपने कार्यों को करने म असफल है तो महापालिका

---

13 इन नगरा म नगरमहापालिकाओ की स्थापना 1958 ई म राज्य अधिनियम द्वारा की गयी थी।

को विघटित करके उसका नियन्त्रण अपने हाथो मे ले सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति में 6 माह के भीतर पुनः निर्वाचन होना आवश्यक है। राज्य शासन को महापालिका के हर विभाग एव उसके कागजात के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।

नगरपालिकाएँ (Municipalities)

देश भर म करीब एक हजार नगरपालिकाएँ हैं। सर्वप्रथम नगरपालिका की स्थापना 1887 ई म हुई थी। उत्तर प्रदेश मे करीब 137 नगरपालिकाएँ हैं। उत्तर प्रदेश म प्रथम बार 1916 ई मे नगरपालिकाओं की स्थापना की गयी थी और प्रथम नगरपालिका अधिनियम पारित किया गया था। इसकी सदस्य सख्या 15 से 60 तक होती है। इसके सदस्य निर्वाचित होते है। उत्तर प्रदेश के 10 हजार से अधिक जनसख्या वाले नगरो म नगरपालिका स्थापित की जाती है। इसके सदस्यो द्वारा एक अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष निर्वाचित किया जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक पदाधिकारी होते हैं जिनमे प्रमुख कार्यकारी अधिकारी (Executive Officer) होता है। छोटी नगरपालिकाओं म इसे सचिव (Secretary) कहते है। जल विभाग की देखभाल जल कल अभियन्ता करता है। कुशल प्रशासन के लिए समितियो का भी निर्माण किया जाता है। नगरपालिकाएँ सर्वसाधारण की सुविधा, स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा आदि कार्य सम्पादित करती हैं। पानी, बिजली, यातायात के लिए बसो को चलाना एव सिनेमा गहो का प्रबन्ध करना इसके अन्य कार्य हैं। इनकी आय के प्रमुख साधन है, चुगी, सम्पत्ति कर, मकान, जमीन-जायदाद, व्यापार एव पेशा पर कर, सडक वाहन, पशुओ एव यात्रियो पर कर। इसके अतिरिक्त राज्य शासन से अनुदान भी प्राप्त होता है। राज्य शासन को इनके निरीक्षण एव नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त है। अगर नगरपालिका द्वारा अपने दायित्व को भली प्रकार सम्पादित नही किया जाता है तो राज्य शासन को उसे निलम्बित करने के अधिकार हैं।

अन्य शहरी स्थानीय सस्थाएँ

जिन कस्बो की जनसख्या 10 हजार से 20 हजार तक होती है वहाँ की स्थानीय सस्था को टाउन ऐरिया (Town Area) कहते हैं। इसमे एक चेयरमैन, पाँच से सात तक निर्वाचित सदस्य एव दो मनोनीत सदस्य होते हैं। इनका कार्यकाल 4 वर्ष होता है। 5 से 10 हजार तक जनसख्या वाले कस्बो म नोटीफाइड एरिया (Notified Areas) की स्थापना की जाती है। इसमे तीन से पाँच तक सदस्य होते हैं एव एक चेयरमैन होता है। इसके सदस्य या तो मतदाताओ द्वारा निर्वाचित होते हैं अथवा कमिश्नर द्वारा मनोनीत। इन समितियो के अधिकार सीमित होते हैं। सरकारी अधिकारी—मण्डलाधीश (S D O)—इनके कार्य का निरीक्षण करता है।

केन्टूनमेण्ट बोर्ड (छावनी)—बडे नगरो म एसे क्षेत्र होते हैं जहाँ सेना रहती है। वे नगरपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर होते हैं। इन क्षेत्रो म केन्टूनमेण्ट बोर्ड

की स्थापना की जाती है । इसका सभापति कोई फौजी अधिकारी होता है । के ट्रन-
मण्ट वोड के दायित्व व कतव्य सामा यत नगरपालिका के सदस्य होते हैं ।

पोट ट्रस्ट (Port Trust)—समुद्रतटीय नगरा के क्षेत्रा की देखभाल के लिए इनकी स्थापना की जाती है । कलकत्ता, मद्रास आदि नगरा मे पोट ट्रस्ट स्थापित किये गये है ।

वडे वडे नगरा के विकास, उन्नति एव सुधार के लिए नगर सुधार यास (Improvement Trust) की स्थापना की जाती है । इसके सदस्यो को प्रा तीय शासन, नगर-पालिकाओ एव व्यापारिक सस्थाओ द्वारा तीन वष के लिए मनोनीत किया जाता है । इन सदस्यो द्वारा अपने म से ही एक अध्यक्ष चुना जाता है । इनका काय नगर विकास की योजना वनाना एव क्रिया वयन होता है ।

स्वत त्रता के पश्चात भारत के ग्रामीण क्षेत्र मे स्थानीय शासन

भारतीय सविधान निर्माता महात्मा गाधी की पचायती व्यवस्था की धारणा से प्रभावित थे । फलस्वरूप राज्य क नीति निर्देशक तत्वो मे पचायती व्यवस्था की स्थापना पर वल दिया गया है (अनुच्छेद 40) । प्रथम, द्वितीय एव ततीय पचवर्षीय योजनाओ म भी निर तर ग्राम पचायतो की स्थापना पर वल दिया जाता रहा है । द्वितीय पचवर्षीय योजना के अनुसार ग्राम पचायतो का सही दिशा म विकास कई कारणा से महत्वपूण है ।" ततीय पचवर्षीय योजना म क्षेत्रीय एव ग्राम पचायता को योजना क क्रिया वयन के प्रभावकारी उपकरणा के रूप म स्वीकार किया गया । योजना आयोग ने सामुदायिक विकास एव राष्ट्रीय प्रसार परियोजनाओ के सम्व ध म एक अध्ययन समूह की नियुक्ति श्री वलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता म की थी । मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन म यह कहा गया था कि व्यापक क्षेत्र की स्थानीय जनता की आवश्यकताआ एव स्थानीय परिस्थितिया के प्रति लोकत त्रीय शासन के लिए याय करना कठिन है । अत समिति न यह प्रस्तावित किया था कि विकास कार्यों म ग्रामीण जनता की रुचि जागत करने के लिए शासनत त्र को विके द्रित करना आवश्यक है एव ऐसी लोकतान्त्रिक प्रतिनिधि सस्थाआ की स्थापना की जानी चाहिए जि हे पर्याप्त शक्ति एव धन प्राप्त हो और जि हे स्थानीय लक्ष्या क अनुसार धन के व्यय पर आवश्यक निरीक्षण एव निर्देशन भी प्राप्त हो । अत समिति ने राज्य-स्तर स नीचे ग्राम्य-स्तर पर सत्ता के विके द्रीकरण का सुझाव दिया । यही लोकतान्त्रिक विके द्रीकरण है । इसम शासन क निम्न स्तरो एव स्थानीय अभिकरणा को शासन सत्ता के प्रयोग सम्ब धी निणय स्वय करने के अवसर प्राप्त होत हैं । लोकतान्त्रिक विके द्रीकरण म जनता का पहल एव उत्तरदायित्वपूण रूप स काय करने क अवसर प्राप्त होत हैं । लोकतान्त्रिक विके द्रीकरण म निम्न सस्थाआ एव अभिकरणा की आन्तरिक स्वत त्रता पर अधिक वल दिया गया है, कवल सत्ता क विके द्रीकरण या हस्तान्तरण पर नही ।

मेहता समिति ने निम्न बातो पर विशेष बल दिया था

(1) निर्वाचित स्वशासन सस्थाओ—पचायत समितियो—की स्थापना की जाय। साथ ही साथ विकास-खण्ड के स्तर पर क्षेत्रीय समितियाँ होनी चाहिए जो पचायतो द्वारा अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित हो। इन समितियो को ग्राम पचायता के बजट की स्वीकृति एव निरीक्षण के अधिकार होने चाहिए।

(2) अपने क्षेत्र म सभी विकास-कार्यों के निरीक्षण सम्बन्धी कुछ काय एव दायित्व इन निकायो को दिये जाने चाहिए।

(3) ब्लॉक क्षेत्र मे विकास की धन राशि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से केवल पचायत समितियो द्वारा ही व्यय की जानी चाहिए।

(4) विभिन्न पचायत समितिया के कार्यों म समन्वय के लिए जिला परिषद का निर्माण किया जाना चाहिए।

अत मेहता समिति ने जिला म ग्राम, ब्लॉक एव जिला अथात त्रिस्तरीय स्थानीय सस्थाओ की स्थापना का सुझाव दिया था। विकेन्द्रीकरण की वतमान व्यवस्था को समाप्त करके उनके स्थान पर नये निकाया (bodies)—ग्राम पचायत, विकास खण्ड की समिति एव जिला परिषद—का सगठन प्रस्तावित किया था। विकास खण्ड समिति विकास खण्ड (Development Block) से सम्बन्धित हो, प्रत्येक विकास खण्ड के सभी गावो को ग्राम पचायत से तथा छोटे-छोटे गाँवा को एक ही गाव पचायत से सम्बद्ध होना चाहिए। जिला-स्तर पर जिला बोड होने चाहिए। ग्राम पचायत एव विकास खण्ड की पचायतो से सम्बद्ध क्षेत्र की जनता को प्रत्यक्ष रीति से इन निकाया के कार्यों म अधिकतम भाग लेन के अवसर होने चाहिए। जनता को जन-कल्याण से सम्बद्ध योजनाओ को प्रस्तावित एव स्वायत्तता पूवक विकास योजनाओ को सचालित एव क्रियान्वित करने के अधिकार होने चाहिए। मेहता समिति ने विकास कार्यों के लिए लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रस्ताव करते हुए कृषि, पशुपालन, स्वास्थ्य एव सफाई, चिकित्सा, ग्रामीण उद्योग, प्राथमिक शिक्षा, स्थानीय यातायात, लघु सिंचाई एव स्थानीय सुविधाओ आदि कार्यों को इन सस्थाओ के क्षेत्रीय निकायो को देने का प्रस्ताव किया था। अत लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का अथ यह है कि स्थानीय मामलो का प्रबन्ध उस क्षेत्र की जनता द्वारा किया जाना चाहिए। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण निम्नस्तरीय सस्थाओ एव निकायो को सत्ता के साथ उत्तरदायित्व, पहल एव स्वायत्तता के निष्क्रमण का सिद्धान्त है। विकास कार्यों की सफलता स्वेच्छित जन सहयोग पर ही निभर है।

मेहता समिति द्वारा प्रस्तावित लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को सवप्रथम राजस्थान राज्य मे लागू किया गया। 2 अक्टूबर, 1959 ई को राजस्थान म त्रिस्तरीय पचायती व्यवस्था की स्थापना की गयी थी। ग्राम पचायत सबसे छोटी इकाई है। इसका प्रमुख सरपच होता है। इसके अनिवाय काय जल, सफाई, चिकित्सा,

प्रारम्भिक शिक्षा, कृषि म सहायता एव लघु सिंचाई योजनाओ की व्यवस्था करना है। इन्हे भूमि-कर वसूल करने का काय भी सौंपा गया है। ग्राम पचायतो के ऊपर विकास खण्ड की पचायती समिति होती है। इसम उस खण्ड से सम्बन्धित ग्राम पचायतो के सरपच शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जिले की एक परिषद होती है जिसे जिला परिषद कहते हैं। इसका मुख्य काय पचायत समितियो के बजट का परीक्षण, ग्राम पचायतो एव पचायत समितियो के कार्यों का समन्वय तथा पचायती व्यवस्था के सम्बन्ध मे राज्य शासन को परामश देना है। जिला परिषद अपने क्षेत्र म काफी स्वायत्त सम्पन्न है। राज्य सरकार का इन पचायती सस्थाओ के ऊपर काफी नियन्त्रण होता है। राज्य शासन इन्हे विघटित करके उनके कार्य जिलाधीश को सौंप सकता है। इन शक्तियो का उद्देश्य अव्यवस्थित पचायती सस्थाओ के मामले म हस्तक्षेप करना है।

उत्तर प्रदेश म पचायती राज्य का प्रारम्भ 1 जुलाई, 1963 से हुआ है। इस सम्बन्ध मे 1961 ई म उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति एव जिला परिषद अधिनियम पारित किया गया था। मई 1958 ई मे उत्तर प्रदेश शासन ने जिला परिषदो को भग करके अन्तरिम जिला परिषदा का निर्माण किया था। ग्राम पचायती व्यवस्था के तीन अग हैं—ग्राम सभा, ग्राम पचायत एव पचायती अदालत या न्याय पचायत। ग्राम सभा पचायती व्यवस्था का आधार है। राज्य म करीब 72428 ग्राम सभाएँ हैं। ग्राम पचायत गाँव की कायकारिणी होती है। ग्राम सभा गाव की व्यवस्थापिका है। चार या पाँच ग्रामो की एक न्याय पचायत होती है। इसे दीवानी एव फौजदारी दोनो ही मामलो म क्षेत्राधिकार प्राप्त है। 100 रुपये तक दीवानी मामलो म जुर्माना कर सकती है।

ग्राम सभा, ग्राम पचायत एव न्याय पचायत पर राज्य सरकार को नियन्त्रण के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। उसे ग्राम सभा के कार्यों का निरीक्षण करने का अधिकार है। वह इन सस्थाओ की जाच कर सकती है। जिला परिषद के कार्यों का निरीक्षण जिलाधीश करता है एव तत्सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। शक्तिया के दुरुपयोग की अवस्था म शासन जिला परिषद को भग कर सकता है।

ग्रामो म व्याप्त अशिक्षा, जातिवाद, निधनता के कारण पचायती व्यवस्था सफल नही हुई है। पचायती व्यवस्था के बीज जनता म होने चाहिए परन्तु भारत म ऐसा नही है। एक प्राचीन सस्था होत हुए भी वतमान समय म इसको शासन द्वारा आरोपित किया गया है। शासन एव राजनीतिक जीवन का भ्रष्टाचार एव अनुत्तरदायित्व पचायती व्यवस्था की असफलता के प्रधान कारण हैं। पचायती व्यवस्था के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रो म गुटबन्दी, भाई भतीजावाद, झगडे एव वैमनस्य म वृद्धि हुई है।

सोवियत सघ मे स्थानीय शासन

आग एव जिक[16] के अनुसार जारकालीन रूस प्रान्तो, काउण्टियो, कैण्टनो, एव ग्रामीण जिला म विभाजित था। लाल क्रान्ति के पश्चात साम्यवादियो ने जार कालीन शासन का व्यापक पुनगठन किया है। सोवियत रूस म गावो एव शहरो की म्युनिसिपल सोवियत है।[17] इन सोवियतो के ऊपर जिला—रायोन (Raion)—हैं। प्रत्येक रायोन म 20 25 ग्राम्य सोवियतो या 1 से 3 शहरी सोवियतो के क्षेत्र होते हैं। रायोन के ऊपर की इकाई आबलास्ट (Oblast) होती है। ओबलास्ट (Oblast) ने पुरानी रूसी प्रान्तो का स्थान ले लिया है। क्षेत्र (territories)—स्वायत्त गणराज्य एव स्वायत्त क्षेत्र—ओबलास्ट के स्तर के होते है। रायोन सोवियत के सदस्य तीन वष के लिए मतदाताओ द्वारा निर्वाचित होते है। सामान्यत रायोन के सदस्यो की सख्या 25 से 60 तक होती है।

रायोन सोवियत का एक प्रधान या सभापति होता है। इसके अतिरिक्त प्रेसी डियम, कायकारिणी समिति, एक मन्त्री एव कई स्थायी समितिया होती हैं जो विशेष मामलो से सम्बन्धित होती है जैसे—सावजनिक शिक्षा, वित्त, सावजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय उद्योग सामाजिक व्यवस्था व्यापार एव नागरिक व्यवस्था। अन्य समितिया की भी स्थापना की जा सकती है। रायोन के अपने कमचारी होते हैं। अपने क्षेत्र क ग्रामो एव शहरी सोवियतो पर रायोन का काफी नियन्त्रण होता है और इन सस्थाओ के कार्यो एव योजनाओ को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकते ह। अपने क्षेत्र के मामलो म उन्हे पूण अधिकार होता है। लेकिन आग एव जिक के अनुसार रायोन (जिला) सोवियत भी अन्य सोवियतो की भाति उच्चतर सोवियतो के अधीन होती हैं। बजट सम्बन्धी प्रस्तावो पर जिला सोवियतो को भी उच्च अधिकारियो की स्वीकृति लेनी पडती है।[18]

शहरी सोवियत—रूस मे शहरो की सख्या म वद्धि हुई है। इनकी अपनी म्युनिसिपल सोवियते होती है। इनम भी अन्य सोवियतो की भाँति प्रधान प्रेसीडियम कायकारिणी समिति एव अनेक समितिया होती हैं। इनकी सख्या 100 तक होती है। एक लाख या उससे अधिक जनसख्या वाले शहरो को वार्डों मे विभाजित कर दिया जाता है। इनकी भी अपनी सोवियतें होती हैं। वाड सोवियतो का उद्देश्य विकेन्द्रीकरण करना एव जनता का शासन के कार्यों से अपक्षाकृत अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना है। बडे बडे नगरो का आकार एव क्षेत्रफल

---

16 Ogg and Zink *Modern Foreign Governments*, 1956 pp 913 914

17 सोवियत किसी क्षेत्र गाव, शहर, कारखाना, सनिक टुकडियो के प्रतिनिधियो की परिषद को कहते हैं। सोवियत मे श्रमिको एव सनिको का प्रतिनिधित्व होता है। परिषद का रूसी पर्यायवाची सोवियत है।

18 Ogg and Zink *op cit*, p 914

विस्तृत होता है । फलस्वरूप विकेन्द्रीकरण के लाभ उपलब्ध नही होते है । बडे नगरो की विभिन्न वार्डों की सोवियते भी इतनी बडी होती हैं कि वे सक्षमतापूर्वक अपने कार्यों को सम्पादित नही कर पाती हैं ।

ग्रामीण सोवियतें[19]—सोवियत रूस म ग्रामो की अधिकता है और उनकी सख्या लाखो म है । छोटे छोटे ग्रामो म मतदाता वर्ष म 6 माह पश्चात एकत्रित होते हैं । ग्रामीण सोवियतो (Selosomets) के लिए प्रतिनिधि चुनने हेतु वे हर एक वर्ष पश्चात एकत्रित होते है । यह ग्रामीण सभाएँ रूसी समाज की अति पुरानी व्यवस्था है और साम्यवादी शासन की कोई नवीन देन नही है । लेकिन स्वशासन के क्षेत्र म इसका कोई महत्वपूर्ण योगदान नही है । बडे ग्रामो की अपनी सोवियत होती हैं । कई छोटे गावो को मिलाकर सयुक्त सोवियत बनायी जाती है । ग्रामीण सोवियतो को अपने क्षेत्र म असीमित क्षेत्राधिकार प्राप्त होते है । सामूहिक कृषि सम्बन्धी इन्हे व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं । ग्रामो म सहकारिता समितियो का निर्माण किया जाता है । लेकिन उच्च सत्ता को ग्रामीण सोवियतो के कार्यों एव नीतियो को अस्वीकृत करने का अधिकार प्राप्त होता है । प्रत्येक ग्रामीण सोवियत म निर्वाचित प्रधान, सचिव एव अनेक अन्य अधिकारी होते हैं । इसके अतिरिक्त एक कार्यकारिणी समिति भी होती है । विभिन्न समितियो के द्वारा विभिन्न विषयो सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन किया जाता है ।

समीक्षा—पश्चिमी आलोचको के अनुसार सोवियत स्थानीय शासन की सस्थाओ को व्यवहार म स्वायत्तता प्राप्त नही है । उनके द्वारा नीति निर्धारण सम्बन्धी बहुत कम कार्य किया जाता है । उच्च स्तरीय सस्थाओ को निम्नस्तरीय सोवियतो के कार्यों एव नीतियो को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार है । सभी स्तरो पर ससदीय शासन प्रणाली के स्वरूप की स्थापना की गयी है परन्तु उसके सार का पूर्ण अभाव पाया जाता है । सोवियत रूस म एकदलीय व्यवस्था है । सोवियत सघ म नियन्त्रण एव निरीक्षण का आधार लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण है । इसम लोकतन्त्र को कम केन्द्रीकरण को अधिक महत्व दिया जाता है । श्रमिक वर्ग के हित म शासन एव दल द्वारा केन्द्रीकरण का अनुगमन किया जाता है । स्टालिन के अनुसार दल सोवियतो का नेतृत्व करता है । परन्तु वह उनका स्थान नही ले सकता और न उसे ऐसा करना ही चाहिए । स्पष्ट है कि सोवियत स्थानीय शासन के दबाव तथा केन्द्रीय नियन्त्रण दो मुख्य विशेषताएँ हैं ।

साम्यवादी चीन म स्थानीय स्वशासन

साम्यवादी चीन म ग्राम जिला राष्ट्रीय ग्राम जिला कस्बा म्युनिसिपल जिला एव नगरपालिकाएँ मुख्य स्थानीय इकाइयाँ हैं । वर्तमान सविधान (1954 ई)

---

19 *Ibid*, pp 918 920

के क्रियान्वयन के समय से चीन म प्रशासन के तीन स्तर है (1) विशेष नगरपालिकाएँ—3, (2) स्वशासित क्षेत्र—5, एव (3) प्रान्त—11। इन तीनो स्तरो की इकाइयो की प्रशासन व्यवस्था मे पर्याप्त समानता है। इनके शासन का स्वरूप केन्द्रीय शासन का प्रतिरूप है। प्रत्येक स्तर पर शासन के एक से अग—जन कांग्रेस, जन-परिषदे—होती ह। जन-परिषद जन-काग्रेस द्वारा निर्वाचित एव उसी के प्रति उत्तरदायी होती है। निम्न स्तर पर जन काग्रेस राज्यसत्ता का स्थानीय अग होती है। ग्राम जिला, राष्ट्रीय ग्राम जिला, कस्वा म्युनिसिपल जिला एव नगरपालिका की काग्रेस के सदस्या को मतदाताओ द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किया जाता है। प्रत्येक स्तर की कांग्रेस के सदस्यो की सख्या उस क्षेत्र की जनसख्या के अनुसार पृथक पृथक होती है। दो हजार जनसख्या वाले ग्रामीण जिले या कस्वे की काग्रेस मे सदस्य तथा काउण्टी काग्रेस मे 30 से 450 तक सदस्य होते हैं। प्रान्तीय काग्रेस मे 50 से 600 तक सदस्य होते ह। लेकिन शहरी क्षेत्रा को ग्राम्य क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। ग्रामीण जिले मे 2000 जनसख्या के पीछे एक सदस्य निर्वाचित किया जाता है। लेकिन शहरो म 500 व्यक्तियो के लिए एक प्रतिनिधि निर्वाचित किया जाता है।

स्थानीय जन कांग्रेसो का काय स्थानीय आर्थिक एव सास्कृतिक विकास तथा सावजनिक निर्माण की योजनाआ का निर्माण स्थानीय बजट एव वित्तीय प्रतिवेदनो का परीक्षण, सावजनिक सम्पत्ति की रक्षा तथा नागरिक एव अल्पसख्यको के अधिकारा की रक्षा करना है। ये कानूनो को क्रियान्वित करती हैं एव उनका पालन कराती है। स्थानीय कांग्रेसो द्वारा अपने से ऊँची कांग्रेसो के सदस्या को निर्वाचित किया जाता है। उन्ह अपने सदस्यो के प्रत्यावतन की माग करने का अधिकार है। निम्न जन-कांग्रेसो के निणया के परीक्षण एव उन्हे निरस्त करने की उन्हे शक्ति होती है।

जन-परिषद मे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एव सदस्यगण होते है। विभिन्न स्तरो की जन परिषदो म पदाधिकारियो के नामा मे अन्तर होता है, यथा—प्रान्त मे उन्ह गवनर एव डिप्टी गवनर, नगरपालिका मे मेयर एव उप मेयर, काउण्टी मे मजिस्ट्रेट एव उप मजिस्ट्रेट, ग्रामीण जिले मे हैड (Head) एव डिप्टी हैड (Deputy Head) कहते ह। स्थानीय जन परिषद स्थानीय जन कांग्रेस की कायपालिका अग होती ह। जन काग्रेस एव जन-परिषद का प्रत्येक स्तर पर कायकाल एक समान होता है। प्रान्तीय परिषद एव कांग्रेस का कायकाल चार वष एव अन्य सभी कांग्रेसो एव परिषदो का कायकाल दो वष होता है। परिषदा को कांग्रेस एव शासन के निणया एव आदेशो को क्रियान्वित करना, कांग्रेस का निर्वाचन कराना एव अधिवेशन आहूत करना तथा कांग्रेस के समक्ष विधियो को प्रस्तावित करना होता है। कांग्रेस के सत्रावसान-काल म परिषदा के द्वारा ही निणय किये जात हैं एव वे ही आदेश जारी करती हैं। परिषद

की शक्तियों को देखते हुए यह कहना कहीं अधिक ठीक है कि परिषदें न कि स्थानीय कांग्रेस अपने क्षेत्र में शासन के प्रभावकारी अभिकरण हैं। सोवियत रूस की तरह चीन में भी लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त को शासन के हर स्तर पर मान्यता प्राप्त है।

कम्यून व्यवस्था

चीन की कम्यून व्यवस्था स्थानीय शासन की मुख्य विशेषता है। 1958 ई॰ में कम्यून व्यवस्था की स्थापना के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाया गया था। फलस्वरूप सितम्बर 1958 ई॰ में चीन के 90% कृषक परिवारों ने अपने को 23348 जन कांग्रेसों में सगठित कर लिया था। पहले प्रत्येक कम्यून में औसतन 4797 परिवार होते थे लेकिन वर्तमान में औसतन 6 से 7 हजार तक परिवार प्रत्येक कम्यून में होते हैं। एक कम्यून में 2000 से 20,000 तक परिवार सम्मिलित हो सकते हैं। कृषि सहकारिताओं की सम्पत्ति एवं सामग्री कम्यून को हस्तान्तरित कर दी गयी हैं। सहकारिता संघ के प्रत्येक सदस्य द्वारा अपनी भूमि, धन एवं उत्पादन के अन्य साधन पशु पेड़ आदि कम्यून को सौंप दिये गये हैं। विशेष परिस्थितियों में व्यक्तिगत सदस्यों को कुछ पालतू पशु एवं व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार प्राप्त है।

प्रत्येक कम्यून की एक कांग्रेस होती है। कम्यून कांग्रेस के सदस्यों को कम्यून के सदस्यों द्वारा अपने मध्य में से निर्वाचित किया जाता है। दैनिक प्रशासन कांग्रेस द्वारा निर्वाचित परिषद द्वारा सम्पादित किया जाता है। परिषद का एक अध्यक्ष, कई उपाध्यक्ष एवं सदस्यगण होते हैं। कम्यून के सदस्य विभिन्न उत्पादन टुकड़ियों में विभाजित होते हैं जो उत्पादन, श्रम सगठन एवं लेखा की व्यवस्था करते हैं। प्रत्येक हीसिंग (Hsiang)—निम्नतम प्रशासकीय इकाई—की एक कम्यून होती है। कम्यून में सामूहिक भोजनालय होता है एवं स्त्रियों को घरों पर भोजन बनाने के कार्य से मुक्ति प्राप्त हो गयी है।

पाकिस्तान में बुनियादी लोकतन्त्र

8 अक्टूबर, 1958 ई॰ को पाकिस्तान में लोकतन्त्र के असफल होने पर तत्कालीन राष्ट्रपति इस्कन्दर मिर्जा ने संविधान को भंग करते हुए संकट काल की घोषणा की थी एवं सैनिक कानून लागू कर दिया था तथा जनरल अयूबखाँ को मार्शल लॉ प्रशासक नियुक्त किया था। 20 अक्टूबर, 1958 ई॰ को पाकिस्तान में पुनः सैनिक क्रान्ति हुई। अयूबखाँ ने इस्कन्दर मिर्जा को अपदस्थ करके पाकिस्तान के राज्याध्यक्ष का पद ग्रहण किया। इस प्रकार पाकिस्तान में सैनिक तानाशाही स्थापित हो गयी थी। पदारूढ़ होने पर जनरल अयूब ने शीघ्र ही नये ढंग के लोकतन्त्र की स्थापना का वचन दिया था। 1959 ई॰ में अयूब ने बुनियादी लोकतन्त्र की स्थापना की। इस व्यवस्था के अनुसार दिसम्बर 1959 एवं जनवरी 1960 ई॰ में

निर्वाचन हुए। इसके पूव पाकिस्तान म स्थानीय शासन के अ तगत ब्रिटिशकालीन सस्थाएँ—नगरपालिकाएँ एव ग्रामीण क्षेत्र मे जिला बोड—कायम थे।

प्रस्तावित बुनियादी लोकत त्र के अनुसार प्रशासन को पाच स्तरा—प्रान्तीय, क्षेत्रीय, जिला, थाना एव तहसील तथा यूनियन (गाव एव शहर)—मे विभाजित किया गया था तथा इन सभी स्तरो पर बुनियादी लोकत त्रीय सस्थाओ की स्थापना की गयी थी। सबसे नीचे ग्राम एव नगर स्तर पर क्रमश यूनियन काउ सल एव टाउन कमेटियाँ स्थापित की गयी। यह बुनियादी लोकतन्त्र की प्रारम्भिक इकाइया थी। ग्राम, नगर, थाना, तहसील एव जिला स्तरीय सस्थाओ को बुनियादी लोकतान्त्रिक सस्थाओ (Basic Democratic Institution) की सना दी गयी और इन सस्थाओ के सदस्यो का बसिक डेमोक्रेट्स (Basic Democrats) कहा गया।

यूनियन काउन्सल एव टाउन कमेटी

इनका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता था। सरकारी कमचारी इनका सदस्य नही हो सकता। ग्रामीण क्षेत्र की सस्था को यूनियन काउ सल एव शहरी क्षेत्र की सस्था को टाउन कमेटी की सज्ञा दी गयी। अल्पसख्यका एव स्त्रिया को निर्वाचन मे उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न होने पर उस वग के सदस्यो के मनोनीत किये जाने की व्यवस्था थी। दो प्रकार के सदस्य होते थे—निर्वाचित एव नियुक्त या मनोनीत। कृषि, उद्योग, सामुदायिक निर्माण, नलकूप, तालाव, जल व्यवस्था, अन्न का उत्पादन, सावजनिक मार्गों एव सडका का निर्माण एव निरीक्षण, विधवाओ, गरीबो की सहायता, स्वास्थ्य सुरक्षा, शिक्षा, मेले आदि इन सस्थाओ के काय थे।

थाना एव तहसील काउन्सल

क्षेत्र की यूनियन परिषदो एव टाउन कमेटिया के अध्यक्ष इनके पदेन सदस्य होते थ। इसके अतिरिक्त जिलाधीश द्वारा कुछ सदस्य मनोनीत भी किये जाते थे। मनोनीत सदस्यो की सख्या निर्वाचित सदस्या की सख्या के आधे से अधिक नही होती थी। थाना या तहसील की परिषदो का अध्यक्ष परगनाधीश होता था। इसका काय यूनियन परिषदा के कार्यों म समन्वय करना था। शासन एव जिला परिषद द्वारा इन परिषदो को अन्य काय भी सौंपे जा सकत थे। इन प्रदत्त कार्यों के लिए ये परिषदें जिला परिषदा के प्रति उत्तरदायी होती थी।

जिला परिषद

जिला परिषद (District Council) म पदेन एव नियुक्त सदस्य होते थे। थाना एव तहसील परिषदा, नगरपालिकाओ के अध्यक्ष एव केन्टूनमन्ट बोड क उपाध्यक्ष जिला परिषद के पदेन सदस्य होत थे। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार का विभिन्न विभागा क प्रतिनिधिया के नाम सदस्यता के लिए प्रस्तावित करन का अधिकार होता था। य सदस्य कमिश्नर द्वारा नियुक्त किये जात थे। जिलाधीश परिषद का पदन

सदस्य एव अध्यक्ष होता था । जिला परिषदें महत्वपूण विकास याजनाएँ प्रस्तावित करती थी । इसके अतिरिक्त व जिला की स्थानीय समस्याआ एव सामान्य विकास योजनाआ पर विचार करती एव सुझाव दती थी । सावजनिक मार्गों का सरक्षण, वाचनालय, चिकित्सालय सावजनिक बगीचा, मेल व मदानो, सरायो, सफाई एव स्वास्थ्य सहकारिता आन्दोलन का विकास, ग्राम-उद्योग प्राइमरी स्कूल आदि की व्यवस्था जिला परिषद क ही दायित्व थे । शिक्षा, सस्कृति, सामाजिक एव आर्थिक कल्याण परिषदा क वैकल्पिक काय थे ।

इसक अतिरिक्त क्षेत्रीय एव प्रान्तीय विकास परामशदायी परिषद होती थी । क्षेत्रीय परिषदा म भी पदेन एव नियुक्त सदस्य होते थ । कमिश्नर इसका अध्यक्ष होता था । यह महत्वपूण क्षेत्रीय विकास योजनाआ पर विचार करती थी । विकास परामशदायी परिषदा क सदस्या को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता था । इनम पदन सदस्य भी होत थे । यह परिषदें स्थानीय परिषदो एव प्रान्त क अन्य स्थानीय अधिकारिया क कार्यों क सम्बन्ध म परामश देती थी । विभिन्न परिषदा के कार्यों म समन्वय, परिप्रश्न एव अन्य अधिकारिया को अनुदान दने आदि विषयो क सम्बन्ध म विकास परिषदें परामश प्रदान करती थी । इन समस्त परिषदो का कायकाल 5 वष था । बुनियादी लोकतन्त्र का कायकाल बहुत कम रहा था । बुनियादी लोकतन्त्र के समथका न इसे पाकिस्तान क लिए सर्वोत्तम शासन व्यवस्था की सज्ञा दी थी । इसने पाकिस्तान म व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार एव अराजकता से जनता की रक्षा की थी, सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया था एव नागरिको को शासन की विभिन्न सस्थाओ म योग्यतानुसार भाग लेन का अवसर प्रदान किया था । इससे जनता म राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ था तथा जनता क विभिन्न वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ । इसक अतिरिक्त यह व्यवस्था सरल, कम खर्चीली, स्थायी एव दृढ शासन प्रदान करने म सफल हुई थी ।

लकिन इनक आलोचको का मत इसस भिन्न है । उनके अनुसार यह व्यवस्था अलोकतान्त्रिक थी । इसकी आत्मा अधिनायकवादी थी । एक अधिनायक से और आशा भी क्या हो सकती थी । इसक द्वारा लोकतन्त्र का गला घोटा गया था । यह व्यवस्था शासन म जी हजूरो को भर्ती करन का एक साधन थी । निर्वाचित एव प्रत्यक्ष मत दान की उपेक्षा की गयी थी । पाकिस्तान म यह व्यवस्था असफल रही और अस्थायी सिद्ध हुई थी । 24 माच, 1969 ई को अयूब के पतन के साथ इस व्यवस्था का भी अन्त हो गया था ।

36

राजनीतिक दल द्विदलीय एव एकदलीय पद्धति

[POLITICAL PARTIES (I)]

राजनीतिक दल आधुनिक राजनीतिक जीवन की मुख्य विशेषता है। लोक त त्रीय प्रणाली की सफलता के लिए दलो का अस्तित्व अनिवाय एव आवश्यक है। इसके अभाव मे लोकतन्त्र की कल्पना ही नही की जा सकती। अत वतमान युग मे दल एव लोकत त्र एक दूसरे के पूरक बन गये हैं। प्राय सभी लोकतन्त्रीय देशा के सगठना से राजनीतिक दल अभिन्न रूप मे सम्बन्धित हैं। लोकतन्त्रीय देशो म ही नही निरकुशतन्त्री एव अधिनायकत त्री देशो मे भी दलीय प्रणाली अनिवाय हो गयी है। ब्राइस के अनुसार "राजनीतिक दल अनिवाय है। कोई स्वतन्त्र देश ऐसा नही है जिसमे दल न हो और न कोई व्यक्ति यह बता सकता है कि लोकत त्रीय शासन का उनके अभाव मे सचालन किस प्रकार सम्भव है।"[1] मुनरो के अनुसार "लोकतान्त्रिक शासन का दूसरा नाम राजनीतिक दलो द्वारा शासन है। राजनीतिक दलो के अभाव मे कही स्वतन्त्र शासन नही रहा है।"[2] स्टीफेन लीकॉक के अनुसार "राजनीतिक दलो का लोकतन्त्रीय व्यवस्था से कोई विरोध नही है अपितु वे ही उसे व्यावहारिक बनाते है।"[3]

---

1 'Parties are inevitable No free country has been without them No one has shown how representative government could be worked without them '—Bryce *Modern Democracies*, Vol I, 1929, p 134

2 'Government by free political parties is merely another name for democratic government No where has there ever been a free government without political parties '—Munro *The Government of the United States*, 1947, p 113

3 Far from being in conflict with the democratic government, it is the only thing which renders the later feasible '—Stephen Leacock *Elements of Political Science*, 1933, p 313

दलो की परिभाषा

राजनीतिक दलो की विभिन्न विद्वानो ने भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। एडमण्ड बर्क के अनुसार "राजनीतिक दल ऐसे मनुष्यो का समूह है जो उन सिद्धान्तो के आधार पर जिनके सम्बन्ध मे वे सहमत हो अपने सामूहिक प्रयत्नो द्वारा राष्ट्रीय हित के सवर्द्धन हेतु एक सूत्र म आबद्ध होते है।"[4] बर्क ने अपनी परिभाषा म तीन तत्वो—मनुष्यो के समूह, सामान्य स्वीकृत सिद्धान्तो एव राष्ट्रीय हित के सवर्धन—पर बल दिया है। इनमे से किसी एक तत्व के अभाव मे किसी मानव समूह को दल की सज्ञा नही दी जा सकती है। उदाहरण के लिए वर्गीय एव साम्प्रदायिक दल इस परिभाषा के अनुसार दल की श्रेणी म नही आ सकते। भारत का साम्यवादी दल, अकाली दल, मुस्लिम लीग एव हिन्दू महासभा वर्गीय एव साम्प्रदायिक दल हैं। साथ ही साथ वे राजनीतिक दल भी हैं। बर्क की दल की परिभाषा के अनुसार इन दलो को दल नही माना जा सकता। बर्क की परिभाषा का यह दोष है। एक अन्य दोष यह है कि बर्क ने यह स्पष्ट रूप मे उल्लेख नही किया है कि राजनीतिक दल राज्य शक्ति पर अधिकार करके अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। लीकॉक के अनुसार राजनीतिक दल से अभिप्राय नागरिको के उस न्यूनाधिक सगठित समूह से है जो एक "राजनीतिक इकाई के रूप म कार्य करते है। सार्वजनिक प्रश्नो पर वे समान विचारो को मानते एव स्वीकार करते हैं तथा सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान शक्ति द्वारा शासन पर अपना अधिपत्य स्थापित करना चाहते है।"[5] गिलक्राइस्ट के अनुसार राजनीतिक दल "नागरिको के उस सगठित समूह को कहते ह जो राजनीतिक दृष्टि से समान विचारो के हो तथा जो एक राजनीतिक इकाई के रूप म कार्य करके शासन पर अधिकार करने क इच्छुक हो।"[6] मकाइवर के अनुसार राजनीतिक दल 'वह मानव-समुदाय है जो किसी सिद्धान्त या नीति को सगठित होकर सवैधानिक ढग से शासन

---

4 "A political party is a body of men, united for the purpose of promoting by their joint endeavours the public interests upon same political principles on which they are all agreed '—Edmund Burke quoted by M G Gupta *Modern Governments Theory & Practice* 1967, p 126

5 By a political party we mean a more or less organized group of citizens who act together as a political unit They share or profess to share the same opinion on public questions and by exercising their voting power towards a common end, seek to obtain control of the government —Stephen Leacock *Elements of Political Science op cit*, p 311

6 'A political party may thus be defined as one organised group of citizens who profess to share the same political views and who by acting as a political unit try to control the governmer Gilchrist *Principles of Political Science*, 1930, p 327

का आधार बनाने का इच्छुक हो।"[7] गेटिल के अनुसार "राजनीतिक दल नागरिको का वह समूह है जो न्यूनाधिक रूप से सगठित हो एव जो राजनीतिक इकाई के रूप म काय करके मतदान शक्ति द्वारा अपनी सामान्य नीतिया के क्रियान्वयन हेतु शासन पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील हो।"[8]

डॉ आर्शीवादम के अनुसार "राजनीतिक दल से अथ व्यक्तिया के उस सगठित निकाय से है जो देश के राजनीतिक जीवन म कुछ सिद्धान्तो एव नीतिया को मानते हैं तथा उनका पालन करके समग्र रूप मे देश हित के सवर्द्धन के इच्छुक होते हैं।"[9] किसी राजनीतिक दल की नीति या कायक्रम यदि सुस्पष्ट नही हैं तो उसे दल नही माना जाना चाहिए। दल एव समूह (group) या गुट (faction) म अन्तर है। इसी प्रकार दल के नेताओ के मध्य वैचारिक मतभेदो को व्यक्तिगत विवाद की सज्ञा नही दी जानी चाहिए। अत राजनीतिक दल के तीन प्रधान तत्व हैं (1) सगठित मानव समुदाय, (2) नीति एव सिद्धान्त की एकरूपता, तथा (3) देश या वग-समुदाय या वग विशेष के हित का सवद्ध न। यदि दला की कायपद्धति को अनिवायत लोकतान्त्रिक रीति तक सीमित कर दिया जाता है तो क्रान्तिकारी दला को दल नही माना जा सकता। अत ऐसी परिभाषा व्यावहारिक नही है। इसी प्रकार देश हित को ही यदि राजनीतिक दल का उद्देश्य मान लिया जाता है तो वर्गीय एव साम्प्रदायिक दलो को दल की सज्ञा नही दी जा सकती। इस प्रकार के दला को स्थान देने के लिए दल की परिभाषा पर्याप्त व्यापक होनी चाहिए। इस दृष्टि से दल स्वीकृत एव सुस्पष्ट सिद्धान्ता एव विचारा के आधार पर निश्चित राजनीतिक या सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील समान विचारा वाले व्यक्तियो का एक एसा समूह है जिसका अपना सगठन एव निश्चित कायक्रम होता है तथा जो लक्ष्य की पूर्ति हेतु शासन पर नियन्त्रण का इच्छुक होता है। राजनीतिक दलो के हित राष्ट्रीय एव उनके तरीके सवैधानिक हो सकते है। लेकिन ऐसा होना अनिवाय नही है। लोकतान्त्रिक देशो म

---

7 "A political party is an association organised in support of some principle or policy which by constitutional means it endeavours to make the determinent of government —MacIver *Modern State*, p 396

8 "A political party consists of a group of citizens more or less organised who act as a political unit and who by the use of their voting power, aim to control the government and carry out their general policies —Gettell *Political Science* 1956 p 289

9 "By a political party we mean an organised body of people who stand for certain principles and policies in the political life of the country, by whose operation they seek to promote the interests of the country as a whole —Asirvatham *op cit*, 1965, p 422

जनता को वास्तविकता को समझने मे सहायता प्राप्त होती है। लॉवेल के अनुसार दल "विचारो के दलाल हैं।"[12] आशीर्वादम के शब्दो मे दल 'लोकतन्त्र के आधार सामान्य इच्छा' के निर्माण एव विकास को सम्भव बनाते है।[13] राजनीतिक दलो के फलस्वरूप जनता सदैव सजग एव जागरूक रहती है।

(5) दलो के कारण मतदाताओ को मतदान मे बडी सुविधा रहती है। निर्वाचनो मे दलो द्वारा अपने प्रत्याशी खडे किये जाते है। मतदाताओ को प्रत्याशियो के व्यक्तिगत विचारो को जानने की आवश्यकता नही होती। जनता दल को मत देती है। दलो के द्वारा ही सामान्य व्यक्ति की तरफ से सावजनिक प्रश्नो पर विचार विमर्श किया जाता है।

(6) दलीय अनुशासन विधानमण्डल के सदस्यो की स्वार्थी इच्छाओ और भ्रष्टाचार पर प्रतिबन्ध का काय करता है[14] तथा दलीय सदस्यो मे टीम भावना एव सहयोगपूवक काय करने की प्रवृत्ति का सूत्रपात करता है।

(7) दलीय व्यवस्था लोकतान्त्रिक शासनो की निरकुशता पर प्रतिबन्ध है। इसके फलस्वरूप शासन मे सभी क्षेत्रो एव हितो का प्रतिनिधित्व सम्भव हो जाता है। यह शासन को अनुत्तरदायी होने से रोकती है एव उसकी जटिलता को कम करती है। मकाइवर के शब्दो मे दलीय पद्धति के कारण वर्गीय राज्य राष्ट्रीय राज्य मे परिवर्तित हो जाता है। इसका यह अथ है कि दलीय व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप शासन का सचालन किसी वग विशेष के हित की बजाय सम्पूण देश के हित मे होने लगा है तथा हिंसात्मक परिवतनो के स्थान पर सवैधानिक तरीको से शासन मे परिवतन सम्भव हो सके हैं।

बेजहॉट के शब्दो मे दलीय शासन ससदीय शासन का मुख्य सिद्धान्त है।[15] फाइनर के अनुसार 'दल सिंहासन के पीछे की शक्ति है' एव राजनीति का केन्द्र है।[16] दल ही राजा है।[17] राजनीतिक दल गृह युद्ध पर प्रतिबन्ध लगाने वाली सेना है। दलो द्वारा व्यक्ति मे छिपे शेर को पालतू बनाया जाता है वे बन्दूको के सघप के स्थान पर मतो के सघप को जन्म देते है, हिंसात्मक क्रान्ति के स्थान पर वे शासन मे

12 The parties are the brokers of ideas'—Lowell *op cit*, cited by Laski *A Grammer of Politics*, 1941, p 312

13 Asirvatham *op cit*, p 424

14 *Ibid*, p 136

15 'Party government is the vital principle of representative govern ment —Bagehot, cited by Laski *Parliamentary Government in England, op cit*, p 71

16 Political parties are the power behind the throne', 'the center of political gravity —Cited by M G Gupta *op cit*, p 136

17 Party is King' —*Ibid*, p 274

शान्तिपूर्वक परिवतन के लिए माग प्रशस्त करते है।[18] वे बहुमत के अत्याचार के विरुद्ध सघष करते हैं, उसे सयत आचरण के लिए प्रेरित करते है अल्पसख्यको को बहुमत के निणय को इस आशा के साथ स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते है कि समाज म परिवतन होते ही रहते हैं। दल शासन को स्थायित्व एव सुदृढता प्रदान करते है।

दलीय व्यवस्था के दोष

दलीय व्यवस्था की तीव्र आलोचना की गयी है जो निम्नवत है

(1) दलो के फलस्वरूप उनक सदस्यो का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। गिल क्राइस्ट[19] के अनुसार वे देश के राजनीतिक जीवन को य त्रवत एव कृत्रिम बना देते हैं। विरोधी दल द्वारा सदव ही सत्तारूढ दल की आलोचना की जाती है। द्विदलीय पद्धति म यह दोप अत्यधिक मुखर होता है। कठोर दलीय अनुशासन एव सुदृढ सगठन के कारण सदस्यो के व्यक्तित्व का हनन होता है। दलीय शासन के लिए दलीय एकता अनिवाय है अत विधानमण्डलो म स्वत त्र सदस्या के लिए कोई स्थान नही होता। दलीय शासन मे अयोग्य व्यक्तियो का अधिकार हो जाता है।

(2) दलगत स्वाथ और हित प्रमुख होते हैं एव व्यक्ति के द्वारा दलीय दृष्टि-कोण से सोचना प्रारम्भ कर दिया जाता है। क्षेत्रीय एव साम्प्रदायिक हितो के समक्ष राष्ट्रीय हित गौण हो जाते हैं। राष्ट्रीय भक्ति के मूल्य पर दलीय भक्ति विकसित होती है।[20]

(3) राजनीतिक दल हर प्रकार से सत्तारूढ रहने का प्रयत्न करते हैं फल-स्वरूप दलीय नेताओ द्वारा कुत्सित भावनाओ को उभारने का प्रयत्न किया जाता है। ईमानदारी समाप्त हो जाती है तथा साम्प्रदायिक एव वगगत वैमनस्य उभारे जाते हैं।

(4) जन समथन प्राप्त करने के लिए दलो के द्वारा जनता की खुशामद की जाती है और मत प्राप्ति हेतु विभि न लोकप्रिय विधिया का निर्माण किया जाता है। गिलक्राइस्ट के अनुसार इस प्रकार की विधियाँ सामा यत अवैज्ञानिक एव बुरी होती हैं।[21]

(5) जनता के मत प्राप्त करने के लिए दलो द्वारा जनता को हर प्रकार से उकसाया जाता है। मतदाताओ को रिश्वत दी जाती है, उनकी खुशामद की जाती है, उ हे फुसलाया जाता है।[22] जनता मे इससे मतभेद, कटुता, घृणा एव द्वेष फैलता है।

---

18 A political party is an army that prevents civil war political parties tame the tiger in the men they 'replace the battle of bullets by one of ballot —M G Gupta *op cit*, p 136

19 Gilchrist *op cit*, p 330

20 *Ibid*, p 332

21 *Ibid* p 331

22 ' Voters are bribed, flattered and cajoled "—Asirvatham *op cit*, p 425

दलो द्वारा अशोमनीय भाषा म गलत तर्क प्रस्तुत किय जाते हैं। ब्राइस के अनुसार दल राष्ट्र को दो विरोधी पक्षो म विभाजित कर देते हैं जिसस मनुष्यो म पक्षपात घर कर जाता है और एक पक्ष दूसर पक्ष को सन्देह की दृष्टि से देखने लगता है । प्रतिनिधि दलीय अनुशासन के कारण गुलाम बन जाते ह तथा स्वतन्त्र विचार एव उनकी अभि व्यक्ति समाप्त हो जाती है ।[23]

(6) दलीय व्यवस्था राजनीतिक जीवन म भ्रष्टाचार को जन्म देती है । 19वी सदी मे अमरिकी राजनीतिक जीवन म व्याप्त लूट प्रथा इसका प्रमाण है। यद्यपि सयुक्त राज्य अमरिका म इसका प्रभाव कम तो हुआ है परन्तु अमरिका तथा अन्य देशा जसे फ्रान्स, कनाडा एव आस्ट्रेलिया म यह आज भी कायम है ।[24] भारत आदि देशो म दलीय व्यक्तिया को सत्तारूढ दल द्वारा अनेक महत्वपूण पदा पर नियुक्त किया जाता है ।

ब्राइस ने दलीय व्यवस्था के दोषो की समीक्षा करते हुए कहा है कि इसक कारण ससद सग्राम-स्थली वन जाती है। दल आते एव जात रहत हैं, राष्ट्रीय हित उनके द्वारा भुला दिये जाते हैं, निष्क्रियता (hollowness) एव कतव्यहीनता को बढ़ावा दिया जाता है, राष्ट्र एव विधानमण्डलो को दो गुटो मे विभाजित कर देते हैं तथा समस्याओ पर निष्पक्ष दृष्टि स विचार असम्भव हो जाता है। दलीय पद्धति के कारण प्रतिनिधि दास बन गये हैं, स्वतन्त्र चिन्तन को प्रश्रय नही दिया जाता है राष्ट्रीय विभाजन स्थानीय क्षेत्रा तक फैल जाता है, सावजनिक पदो पर दलीय व्यक्तिया की नियुक्तियाँ की जाती हैं समाज का नतिक स्तर गिर जाता है, सभी प्रश्ना पर दलीय दृष्टिकोण स विचार किया जाने लगता है ।[25] केवल विरोध के लिए आलोचना की जाती है। दलीय नताओ का देश के राजनीतिक एव सामाजिक जीवन पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। ब्राइस का कथन है कि "दलीय भावना के कुकृत्या से इतिहास भरा पडा है।" समग्रवादी देशो म दल एव शासन एकाकार हो जाते हैं। उनके क्षेत्र पृथक-पृथक नही हैं। लोकतन्त्रीय देशो मे भी दलीय निरकुशता किसी प्रकार कम नही है। वहा दलीय हितो का राष्ट्रीय हितो के रूप म प्रस्तुत किया जाता है।

लेकिन इन दोषो के होते हुए भी वतमान लोकतन्त्रो मे दल एक अनिवायता है। अनेक बुराइयो को वे दूर भी करते है। उनके अभाव म लोकतन्त्र प्राय असम्भव है। दलो को लोकतन्त्र की आधारशिला कहा जा सकता है। अधिनायकवादी देशो मे भी दलीय व्यवस्था ही शासन का आधार होती है। इटली मे मुसोलिनी ने फासी दल

---

23 Bryce *op cit*, p 131
24 Bryce *Ibid*, p 132
25 Bryce *Ibid*, pp 130 133

हिटलर ने जर्मनी म नाजी दल, का निर्माण किया था। पाकिस्तान म भी जनरल अयूब को अन्ततोगत्वा समथक दल का निर्माण करना पडा था। अत दलीय व्यवस्था आधुनिक शासन-व्यवस्था का एक अनिवाय तत्व है।

दल-विहीन लोकतन्त्रीय व्यवस्था

दल विहीन लोकतन्त्र की आज बहुत चर्चा है। सर्वोदयी विचारक निदलीय लोकतन्त्र के समर्थक हैं। लेकिन यह उनका कोई मौलिक विचार नही है। रूसो का कथन था कि जिस समाज म दलों का अस्तित्व होता है वहाँ सामान्य इच्छा की ठीक अभिव्यक्ति सम्भव नही है। अमरिकी सविधान निर्माता दलीय व्यवस्था के विरुद्ध थे। राष्ट्रपति वाशिंगटन दलीय व्यवस्था का विरोधी था। फलत अमरिकी सविधान म दलीय व्यवस्था को कोई स्थान नही दिया गया था। वाशिंगटन ने अपने विदाई समारोह म अमरिकना को दलीय व्यवस्था के विरुद्ध चेतावनी दी थी। दलीय भावना प्रतिहिंसा उत्पन्न करती है एव भयानक प्रकार की निरकुशता की स्थापना करती है।[26] सर्वोदयी विचारक[27] वतमान लोकतन्त्र की बुराइयों के लिए दलीय व्यवस्था को उत्तरदायी ठहराते हैं। उनके अनुसार जब तक राजनीतिक दलबन्दी कायम हैं, शुद्ध लोकतन्त्र सम्भव ही नहीं हो सकता। विनोबाजी का कथन है कि योग्य एव निष्पक्ष व्यक्तियों को निर्वाचित किया जाय। यदि वे तयार नही हो तो उन्हे तैयार किया जाय। श्री जयप्रकाश नारायण के अनुसार भारतीय लोकतन्त्र को दलो ने दलतन्त्र म परिवर्तित कर दिया है। जयप्रकाशजी दलीय राजनीति के तीव्र आलोचक है।

लेकिन दल विहीन लोकतन्त्र एक कल्पना है और अव्यावहारिक है। दल-विहीन लोकतन्त्र बाहर से कितना ही आकपक क्यो न हो परन्तु इसकी वाछनीयता व्यावहारिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इसके अतिरिक्त सभी देशा म दल स्थायी रूप धारण कर चुके हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि दलो का उन्मूलन कसे हो? क्या दलीय व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कोई नियम बनाना सम्भव है? यदि कोई नियम बना भी दिया गया तो क्या वह क्रियान्वित हो सकेगा? क्या सत्तारूढ दल इस प्रकार की विधि को मान्यता देगा? यदि नही, तो दलीय व्यवस्था की अपनी उपयोगिता स्वय सिद्ध है। ब्राइस के अनुसार दलीय व्यवस्था द्वारा अनेक बुराइयों का दूर किया जाता है। दल विहीन लोकतन्त्र म जन शिक्षा का एकमात्र तरीका स्वतन्त्र सदस्यो के विचार, भाषण या लेख होगा। दलो के अभाव म विधान मण्डल के सदस्यो म मतैक्य की स्थापना नहीं हो सकेगी। शासन के उत्तरदायित्व का निर्धारण सम्भव न हो सकेगा और न शासन के विभिन्न अगो म एकता स्थापित करना

---

26 A Appadorai *The Substance of Politics*, 1961 p 413
27 V P Verma *Modern Indian Political Thought*, 1964, pp 554

ही सम्भव होगा । ब्राइस का कथन है कि अभी तक कोई यह नही बता सका है कि दलो के अभाव म शासन कसे चलेगा । पील, डिजरेली एव ग्लैडस्टेन जैसे राजनीतिज्ञ दलीय व्यवस्था के दोषा से परिचित होते हुए भी उसके महत्व को स्वीकार करते थे ।[28] डॉ आशीर्वादम के अनुसार सभी विधायक विवेक के स्रोत अथवा प्रकाश-स्तम्भ नही होते । दल उनमे से बहुता का मागदशन करता है । विधायक प्रत्येक समस्या पर विचार के झझट से बच जाते है । उनमे इसकी सहज प्रतिभा भी नही होती । भारत जैसे देशो मे यदि दलो को समाप्त कर दिया जाय तो निर्दलीय एव स्वतन्त्र सदस्यो के परिणामस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त हो जायेगी । प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वामी होगा । यदि अत्यधिक शक्ति का केन्द्रीकरण बुरा है तो अनावश्यक व्यक्तिवादी शक्ति का विकेन्द्रीकरण भी बुरा है। इस आरोप के प्रत्युत्तर मे कि दलीय प्रणाली अधिनायकवाद को ज म देती है, हमारा यह कथन है कि अधिनायकवाद सवधानिकतन्त्र के अधीन सक्रिय सुसगठित दलीय प्रणाली का परिणाम नही होता है । दलीय प्रणाली के विघटन एव कमजोर होने पर फासीवादी इटली एव नाजीवादी जमनी की भाति अधिनायकवाद का उदय हो जाता है । यदि दलीय सगठन एव सम्पत्ति को विधि के द्वारा नियन्त्रित एव सीमित तथा समाप्त भी कर दिया जाय तो भी दल किसी न किसी दूसरे अवाछनीय रूप म उभरेंगे । ऐसी स्थिति म अवैध गुटा के रूप म दल अपने को सगठित कर लेंगे और अपने स्वार्थों की प्राप्ति के लिए हर तरीके का प्रयोग करेंगे । स्मरणीय है कि स्विटजरलण्ड म दलीय भावना का बहुत कम विकास हुआ है । वहा भी दलीय व्यवस्था को और अधिक दृढ बनाने की सामाजिक प्रवत्ति सक्रिय है ।[29]

दलीय व्यवस्था चूकि वाछनीय एव अनिवार्य है अत उसको स्वीकारना एव मान्यता देना कही अधिक उचित है । अप्पादोराई का मत है कि दलीय भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए कठोर विधियो का निर्माण किया जाना चाहिए । सक्रिय सावजनिक सेवा भाव से ओतप्रोत व्यक्तियो को राजनीति म अधिक भाग लेने के अवसर दिये जाने चाहिए व्यवस्थापिकाओ मे दलीय अनुशासन को शिथिल किया जाना चाहिए तथा सदस्यो को स्वतन्त्र मतदान का अधिकार दिया जाना चाहिए । देश को व्यवस्थित रखन के लिए जनता को अतिवादी आन्दोलना से बचना चाहिए तथा किसी दल के प्रति स्थायी भक्ति नही रखनी चाहिए । दूसरे शब्दो म, जनमत को सदव गतिशील होना चाहिए ।[30]

दला के सफलतापूवक काय करने के लिए अग्र परिस्थितियाँ आवश्यक हैं [31]

---

28 Bryce *op cit*, p 138
29 Asirvatham *op cit*, pp 425 26
30 Appadorai *op cit* pp 483 484
31 Based on Dr E Asirvatham *op cit*, pp 426-28

(1) बहुदलीय पद्धति की अपेक्षा सुदृढ द्विदलीय पद्धति का विकास किया जाना चाहिए। द्विदलीय पद्धति के अतगत उत्तरदायित्व का निधारण एव स्थायी वकल्पिक सरकार का निर्माण सरलतापूवक सम्भव होता है। एकदलीय व्यवस्था अधिनायक वादी व्यवस्था है।

(2) स्वार्थी एव निश्चित कायक्रम तथा नीतियो के अभाव म दलो के सगठन पर प्रतिबन्ध हाना चाहिए। असहिष्णु तथा अधिनायकवादी दलो के प्रति कोई उदारता नही दिखायी जानी चाहिए।

(3) जाति, वग एव धम पर आधारित दलो का देश की राजनीति मे स्थायी स्थान नही हाना चाहिए। ऐसे दल राष्ट्रीयता के लिए खतरा होते है।

(4) दला की निजी सैनिक टुकडियाँ नही होनी चाहिए क्याकि दलीय सनिक टुकडियाँ अपने प्रदशनो से मतदाताओ को प्रभावित तथा भयभीत करती रहती हैं और अवैधानिक तरीको का इनके द्वारा प्रयोग किया जाता है।

(5) दलीय आधार पर शासन के अधिकारियो की नियुक्ति नही की जानी चाहिए।

(6) योग्य, निष्पक्ष तथा निमल चरित्र के व्यक्तियो को ही दलीय नेतृत्व सौपा जाना चाहिए तथा दल के नेताओ और उनके गुट का तानाशाही नही स्थापित हाने देनी चाहिए।

(7) मतदाताओ को प्रबुद्ध, शिक्षित, विवकी एव निणय बुद्धि से युक्त होना चाहिए। यदि देश को सामाय चरित्र तथा नेताओ का व्यक्तित्व और चरित्र उच्च श्रेणी का तथा निर्दोष नही है, ता दलीय व्यवस्था की असफलता निश्चित है।

(8) देश मे स्वत त्र, निर्भीक एव सुविज्ञ समाचार पत्र (प्रेस) दलीय अधिनायकत्व के विरुद्ध रक्षा-कवच के रूप म काय करते है।

दलो के प्रकार

गिलक्राइस्ट के अनुसार दला के चार सामाय प्रकार होते है (1) उग्रवादी (Radicals) (2) प्रतिक्रियावादी (Reactionaries), (3) उदारवादी (Liberals), एव (4) अनुदारवादी (Conservatives)। उग्रवादी समाज की वतमान स्थिति एव व्यवस्था म आमूलचूल परिवतन के पक्षपाती होते हैं। इसके विपरीत, प्रतिक्रियावादी दल प्राचीन व्यवस्था एव परम्परा के समथक एव पक्षपाती हैं। यह दोनों स्थितियाँ अतिवादी हैं। उदारवादी दल वर्तमान सस्थाओ के परिवतन एव सशोधन के पक्षपाती हैं तथा अनुदारवादी दल वतमान सस्थाओ के अनुरक्षण क समथक होते हैं। लेकिन ये चारो प्रकार के दल एक दूसरे का अतिक्रमण करते हैं और सम्भव है कि एक ही दल म चारो प्रकार के विचार पाये जाते हो। सघीय देशो मे केन्द्रीय एव प्रान्तीय सत्ता के पक्षपाती दल होते हैं।[32] सख्या की दृष्टि मे तीन प्रकार की

32 Gilchrist *op cit*, pp 329 30

दलीय पद्धति होती है एकदलीय, द्विदलीय एव बहुदलीय। एकदलीय पद्धति अधिनायकवादी एव लोकतन्त्र विरोधी है।

द्विदलीय पद्धति
(BI PARTY SYSTEM)

इस पद्धति के अन्तगत देश मे प्रधानत दो दल होते है। ग्रेट ब्रिटेन एव सयुक्त राज्य अमेरिका द्विदलीय देश हैं। द्विदलीय पद्धति के निम्न गुण हैं (1) शासन अधिक स्थिर एव स्थानीय होने के कारण दीघकालीन नीतिया का निर्माण एव अनुगमन सम्भव होता है, (2) जन इच्छा की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति सम्भव होती है। निर्वाचनो मे बहुमत प्राप्त करने वाला दल शासन का निर्माण करता है, (3) उत्तरदायित्व का निर्धारण निश्चित एव सरलतापूवक किया जा सकता है, (4) ससदीय व्यवस्था प्रधान देशो मे द्विदलीय पद्धति के अन्तगत मन्त्रिमण्डल का निर्माण सरल होता है। एकदलीय मन्त्रिमण्डल होने पर वह दृढ एव शक्तिशाली होता है, (5) वैकल्पिक शासन के रूप मे काय करने के लिए विरोधी दल सदैव उपलब्ध रहता है। द्विदलीय पद्धति म विरोधी दल अनुत्तरदायी ढग से काय नही कर सकता। शासन की आलोचना के लिए उसे सतत रूप से जागरूक रहना पडता है और शासन की कमजोरियो का पर्दाफाश करने मे उसके द्वारा कोई कसर उठा नहीं रखी जाती है। सक्षेप मे, द्विदलीय व्यवस्था मे शासन की आलोचना व्यवस्थित, क्रमबद्ध एव सयत होती है। सशक्त विरोधी दल की उपस्थिति के कारण शासन अनुत्तरदायी नही हो पाता और जनता की कठिनाइयो एव आवश्यकताओ के प्रति पूण सजग रहता है।

दोष—लेकिन द्विदलीय पद्धति मे दोष भी हैं (1) व्यवस्थापिका दो भागो म विभाजित हो जाती है। (2) समाज के सभी वर्गों, हितो एव स्वार्थों की अभिव्यक्ति द्विदलीय व्यवस्था म सम्भव नही है। (3) मताधिकार का प्रयोग दो ही दलो के मध्य सम्भव होता है। (4) निर्वाचन मे बहुमत प्राप्त करने वाले दल का व्यवहार म अधिनायकत्व स्थापित हो जाता है तथा शासन के निरकुश होने की हर सम्भावना रहती है। द्विदलीय व्यवस्था म मन्त्रिमण्डल तानाशाही ढग स काय करता है।

प्रमुख द्विदलीय पद्धति वाले देशा—ग्रेट ब्रिटेन और सयुक्त राज्य अमेरिका—की दलीय व्यवस्था का उल्लेख निम्नाकित है

ग्रेट ब्रिटेन की दलीय पद्धति

ग्रेट ब्रिटेन म दलीय व्यवस्था अतीत स क्रमिक विकास का परिणाम है। 15वी सदी म लक्सटेरियन (Lancstarians) एव यार्किस्ट (Yorkists) क समूह थे, 17वी सदी म स्टुअट राजाओ के काल म राजा एव ससद म सम्प्रभुता के लिए लम्बा सघर्ष हुआ था, फलस्वरूप दो समूह बन गये थे। राजा के समथको को 'केवलियर' (Cavaliers) तथा ससद के समथको को 'राउण्डहैड' (Roundheads) क नाम स पुकारा जाता था। परन्तु इन्ह राजनीतिक दलो की सज्ञा नही दी जा सकती। चार्ल्स द्वितीय

के शासन काल (1679 ई.) म जेम्स द्वितीय को उत्तराधिकार से वंचित करने के लिए ससद न निष्कासन विधेयक पारित करने का निश्चय किया था। चार्ल्स द्वितीय ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए ससद को भग कर दिया था। इस पर विधेयक के समर्थकों ने नवीन ससद को आहूत करने की प्रार्थना की। य आवेदक (Petitioners) कहलाये। विरोधियो ने आवेदकों के इस प्रयत्न का घृणा की दृष्टि से देखा, अत वे आवेदकों के विरोधी (Abhorrers) कहलाये। 1688 ई की रक्तहीन क्रान्ति के पश्चात ही इगलैण्ड म पुनरूपेण राजनीतिक दलो की स्थापना हुई है। विलियम तृतीय के शासन काल मे आवेदकों (Petitioners) को ह्विग (Whigs) एव उनके विरोधियो (Abhorrers) को टोरी (Tories) कहा जाने लगा। टोरी राजा के समर्थक थे, ह्विग दल राजा की शक्तियो को सीमित करने का पक्षपाती था। 1832 ई तक दोनो दल इन्ही नामो से विख्यात रहे थे। 1832 ई के सुधार अधिनियम के पश्चात टोरियो को अनुदार दल (Conservative Party) एव ह्विग दल को उदारदल (Liberal Party) के नाम से पुकारा जाने लगा। 19वी सदी म ब्रिटिश राजनीति म इन्ही दो दलो का प्राधान्य रहा था। 1899 ई मे श्रम दल (Labour Party) की स्थापना हुई। धीरे धीरे इसकी शक्ति मे वृद्धि हुई और 1924 ई म प्रथम बार श्रमदलीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। 1929-31 ई म द्वितीय, 1945 ई म तृतीय, 1966 ई म चतुर्थ एव 1974 ई म पचम बार श्रमिकदलीय मन्त्रिमण्डल पदारूढ हुए थे। वर्तमान शताब्दी के तृतीय शतक मे ब्रिटिश द्विदलीय व्यवस्था समाप्त सी होती प्रतीत हुई थी। लेकिन उदार दल धीरे धीरे ब्रिटिश राजनीतिक रगमच स तिरोहित हो गया है, फलस्वरूप ब्रिटिश राजनीति म केवल अनुदार एव श्रम दल ही दो प्रमुख दल हैं। फरवरी 1974 ई के मध्यावधि निर्वाचनो म कोई दल स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाया, फलस्वरूप श्रमिक दल ने अल्पसख्यक मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया है।[33]

ब्रिटिश दलीय पद्धति के उपरोक्त ऐतिहासिक विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ब्रिटेन मे प्रधानत सदैव ही दो दलो की प्रधानता रही है और वे देश की राजनीति म सक्रिय रहे हैं। 1930 ई का दशक केवल इसका अपवाद है। ड्यूवर्जर (Duverger) क अनुसार ब्रिटेन म द्विदलीय पद्धति है। वहा क्षेत्रीय एकसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र है और सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को विजयी घोषित किया जाता है।[34] ब्रिटिश जनता की व्यवहारवादी मनोवृत्ति भी इसका अन्य कारण है। प्राय विभिन्न राजनीतिक दलो को जन्म देने वाली राष्ट्रीयता, धर्म एव भाषायी समस्याएँ भी नही हैं।

---

33 दिनमान, दिल्ली, *10 मार्च, 1974*

34 Duverger *Political Parties*, p 217

ब्रिटिश राजनीतिक दलो का कार्यक्रम एव सगठन

अनुदार दल (The Conservative Party)

यह दल परम्परावादी है। ब्रिटिश सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्तो तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति और उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत नियन्त्रण को उचित एव अनिवार्य मानता है। इस दल द्वारा इन आधारभूत सिद्धान्तो को अपरिवर्तित किये बिना ही आवश्यकतानुसार सुधार करने का प्रयत्न किया गया है। अनुदार दल 19वी सदी के व्यक्तिवादी राजनीतिक एव आर्थिक विचारो म आस्था रखता है। वे समाजवादी व्यवस्था तथा राज्य द्वारा आर्थिक मामलो के नियन्त्रण के विरुद्ध है। यह दल राष्ट्रीयकरण का सामान्यत विरोधी है परन्तु इसने कुछेक उद्योगो का—यथा, 1927 ई मे बी बी सी (British Broadcasting Corporation) एव 1926 ई मे विद्युत बोर्ड का—राष्ट्रीयकरण किया था। अनुदार दल समाज म वर्ग भेद को प्राकृतिक एव अनिवार्य मानता है, लेकिन वर्ग भेद को वे क्षमता पर आधारित मानते हैं। वे वर्ग-समन्वय, न कि वर्ग भेद म विश्वास करते हैं। राष्ट्रीयता एव साम्राज्यवाद इस दल के मूल मन्त्र हैं। यह दल उपनिवेशो की स्वतन्त्रता का विरोधी था। लेकिन इधर कुछ वर्षों से उसने उपनिवेशो को शीघ्रतापूर्वक स्वतन्त्रता प्रदान की है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की स्थापना एव स्थायित्व का वह पक्षपाती है, साथ ही साथ ग्रेट ब्रिटेन को यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता का समर्थक है। इस दल की प्राचीन शासन व्यवस्था म पूर्ण आस्था है अर्थात् राजा, लॉर्ड सभा एव ब्रिटेन के स्थापित चर्च का समर्थक है। फाइनर के अनुसार "अनुदार दल क्राउन, राष्ट्रीय एकता, (ब्रिटिश) चर्च, शक्तिशाली शासकीय वर्ग एव राज्य हस्तक्षेप से स्वतन्त्र 'निजी सम्पत्ति' के सिद्धान्तो का समर्थन करता है।"[35] व्यापारी एव उद्योगपति, बैंको एव शराब उद्योग से सम्बन्धित उद्योगपति, कुलीन-वर्ग, पादरी, साम्राज्यवादी, सैनिकवादी एव व्यवसायी अधिकाशत इस दल के सदस्य हैं। श्रमिको का भी कभी-कभी इस दल को समर्थन प्राप्त होता है। स्त्रियो के मताधिकार के पश्चात दल के समर्थको की सख्या म वृद्धि हुई है। दल का युवक वर्ग प्रगतिशील नीतियो का समर्थक है। 1947 ई मे दल द्वारा औद्योगिक घोषणापत्र प्रकाशित किया गया था। दल ने इसम केन्द्रीय नियोजन (Planning) के सिद्धान्त को स्वीकारा था। 1951 ई मे अनुदार दल का 'चुनाव घोषणा-पत्र निम्न था ब्रिटेन को पुन विश्व-नेता के पद पर प्रतिष्ठित करना तथा आर्थिक पुनरुद्धार करना। दल ने सोवियत रूस के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धो की कल्पना की थी। आन्तरिक क्षेत्र म लोहा एव इस्पात के राष्ट्रीयकरण को निरस्त करने, कोयला राष्ट्रीयकरण को कायम रखने तथा भविष्य मे राज्य-स्वामित्व पर पूर्ण प्रतिबन्ध का वचन दिया था। इसके अतिरिक्त लाभाशो पर वर्तमान कराधान की दरो को सशोधित तथा

---

35 Finer *op cit*, p 312

एकाधिकार को सीमित करने और प्रति वष 3 लाख आवास गृहो के निर्माण का वचन दिया था ।' उपरोक्त विवरण स यह स्पष्ट है कि अनुदार दल ने भी परिवर्तित परिस्थितियो म अपनी नीतिया म परिवतन किये हैं पर तु दल के मूल सिद्धा ता मे सहज ही कोई परिवतन नही हुए है । अत अनुदार दल भी सुधारवादी है पर तु वह सजगता से कदम उठाता है ।

सगठन—अनुदार दल दलीय नेता के चारो तरफ के द्रित होता है । एक बार जो दल का नेता निर्वाचित हो जाता है वह आजीवन इस पद पर बना रहता है । दलीय नेता को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं । सगठन के अध्यक्ष को उसी के द्वारा नियुक्त किया जाता है । अपनी इच्छानुसार वह अपने पद से त्यागपत्र प्रस्तुत कर सकता है तथा अपने उत्तराधिकारी को वह स्वय मनोनीत करता है । दल की नीतियाँ दल के नेता द्वारा ही निर्धारित की जाती है ।

दल का अपना के द्रीय कार्यालय (Central Office) होता है । एक स्थायी दलीय परामशदायी समिति है, जो स्थानीय दलीय सभाओ के निर्वाचन हेतु आर्थिक अनुदान स्वीकृत करती है । अनुदारदल की स्थानीय सभा या निर्वाचन क्षेत्रीय सभा (Constituency Association) म क्षेत्र के सभी अनुदारदलीय सदस्य सम्मिलित होते हैं । स्थानीय सभा का अपना अध्यक्ष, सचिव एव कोषाध्यक्ष होता है । यदि स्थानीय सभाएँ निर्वाचना सम्ब धी सभी आर्थिक भार वहन करने मे समथ होती है तो उ ह अपन प्रत्याशी के चयन की पूण स्वत त्रता होती है । ऐसी अवस्था मे दलीय के द्रीय नेतृत्व प्रत्याशी के चयन मे हस्तक्षेप नही करता ।

दल का सबसे महत्वपूण अग 'वार्षिक दलीय सम्मेलन'[36] है। इसम स्थानीय सभाओ एव कुछ अनुदार दलीय क्लबो[37] के द्वारा प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। वार्षिक सम्मेलन म दलीय कार्यों की समीक्षा की जाती है तथा दल की नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं । अनुदार दल के सगठनात्मक पक्ष (Organisational Wing) का ससदीय पक्ष (Parlimentary Wing) पर कठोर निय त्रण नही होता है। दलीय वार्षिक सम्मेलन द्वारा काम स सभा मे अनुदार दल के नेता का चयन नही किया जाता है अपितु ब्रिटिश ससद के अनुदार दलीय सदस्य स्वय अपने नेता का चयन करते ह । दलीय नेता के अवसान या अ य किसी कारण से उसके स्थान के रिक्त होने पर दल का जो सदस्य प्रधान म त्री बनता है वही दल का नेता भी होता है । उदाहरणाथ, चम्बरलेन के पश्चात चर्चिल के प्रधानम त्री बनने के साथ ही साथ वे दल के नेता भी बने थ । ऐ थोनी ईडन के द्वारा 1956 ई मे राजनीति से अवकाश ग्रहण करने पर बटलर के

36 National Union of Conservative and Unionist Association
37 सम्पूण ब्रिटेन मे लगभग 1500 अनुदार दलीय क्लब (clubs) है। इनका एक एक प्रतिनिधि क्षेत्रीय सगठन का सदस्य होता है । ये क्लब जनता से सम्पक रखते है ।

ब्रिटिश राजनीतिक दलो का कार्यक्रम एव सगठन

अनुदार दल (The Conservative Party)

यह दल परम्परावादी है। ब्रिटिश सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्ता तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति और उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत नियन्त्रण को उचित एव अनिवाय मानता है। इस दल द्वारा इन आधारभूत सिद्धान्ता को अपरिवर्तित किये विना ही आवश्यकतानुसार सुधार करने का प्रयत्न किया गया है। अनुदार दल 19वी सदी के व्यक्तिवादी राजनीतिक एव आर्थिक विचारो म आस्था रखता है। वे समाजवादी व्यवस्था तथा राज्य द्वारा आर्थिक मामलो के नियन्त्रण के विरुद्ध है। यह दल राष्ट्रीयकरण का सामान्यत विरोधी है परन्तु इसने कुछेक उद्योगा का—यथा, 1927 ई म बी बी सी (British Broadcasting Corporation) एव 1926 ई मे विद्युत वोड का—राष्ट्रीयकरण किया था। अनुदार दल समाज मे वग भेद को प्राकृतिक एव अनिवाय मानता है, लेकिन वग भेद को वे क्षमता पर आधारित मानते है। वे वग-समन्वय, न कि वग भेद मे विश्वास करते हैं। राष्ट्रीयता एव साम्राज्यवाद इस दल के मूल मन्त्र हैं। यह दल उपनिवेशो की स्वतन्त्रता का विरोधी था। लेकिन इधर कुछ वर्षों से उसने उपनिवशा को शीघ्रतापूवक स्वतन्त्रता प्रदान की है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की स्थापना एव स्थायित्व का वह पक्षपाती है, साथ ही साथ ग्रेट ब्रिटेन को यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता का समथक है। इस दल की प्राचीन शासन व्यवस्था म पूण आस्था है अर्थात राजा, लॉड सभा एव ब्रिटेन के स्थापित चच का समथक है। फाइनर के अनुसार "अनुदार दल क्राउन, राष्ट्रीय एकता, (ब्रिटिश) चच, शक्तिशाली शासकीय वग एव राज्य-हस्तक्षेप से स्वतन्त्र 'निजी सम्पत्ति' के सिद्धान्तो का समथन करता है।"[35] व्यापारी एव उद्योगपति, बैंको एव शराब उद्योग से सम्बन्धित उद्योगपति, कुलीन-वग, पादरी, साम्राज्यवादी, सैनिकवादी एव व्यवसायी अधिकाशत इस दल के सदस्य हैं। श्रमिको का भी कभी कभी इस दल को समथन प्राप्त होता है। स्त्रियो के मताधिकार के पश्चात दल के समथको की सख्या मे वृद्धि हुई है। दल का युवक वग प्रगतिशील नीतियो का समथक है। 1947 ई म दल द्वारा औद्योगिक घोषणापत्र प्रकाशित किया गया था। दल ने इसम केन्द्रीय नियोजन (Planning) के सिद्धान्त को स्वीकारा था। 1951 इ म अनुदार दल का 'चुनाव घोषणा-पत्र निम्न था ब्रिटेन को पुन विश्व नेता के पद पर प्रतिष्ठित करना तथा आर्थिक पुनरुद्धार करना। दल ने सोवियत रूस के साथ मित्रतापूण सम्बन्धा की कल्पना की थी। आन्तरिक क्षेत्र म लोहा एव इस्पात के राष्ट्रीयकरण को निरस्त करने, कोयला राष्ट्रीयकरण को कायम रखने तथा भविष्य मे राज्य-स्वामित्व पर पूण प्रतिबन्ध का वचन दिया था। इसके अतिरिक्त लाभाश पर वतमान कराधान की दरो को सशोधित तथा

35 Finer *op cit*, p 312

एकाधिकार को सीमित करने और प्रति वप 3 लाख आवास गृहो के निर्माण का वचन दिया था ।[1] उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अनुदार दल ने भी परिवर्तित परि-स्थितिया म अपनी नीतियो मे परिवतन किये है पर तु दल के मूल सिद्धा तो मे सहज ही कोई परिवतन नही हुए है । अत अनुदार दल भी सुधारवादी है पर तु वह सजगता स कदम उठाता है ।

सगठन—अनुदार दल दलीय नेता के चारो तरफ केन्द्रित होता है । एक बार जो दल का नेता निर्वाचित हो जाता है वह आजीवन इस पद पर बना रहता है । दलीय नेता को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं । सगठन के अध्यक्ष को उसी के द्वारा नियुक्त किया जाता है । अपनी इच्छानुसार वह अपने पद से त्यागपत्र प्रस्तुत कर सकता है तथा अपन उत्तराधिकारी को वह स्वय मनोनीत करता है । दल की नीतियाँ दल के नेता द्वारा ही निर्धारित की जाती है ।

दल का अपना केन्द्रीय कार्यालय (Central Office) होता है । एक स्थायी दलीय परामशदायी समिति है, जो स्थानीय दलीय सभाओ के निर्वाचन हेतु आर्थिक अनुदान स्वीकृत करती है । अनुदारदल की स्थानीय सभा या निर्वाचन क्षेत्रीय सभा (Constituency Association) मे क्षेत्र के सभी अनुदारदलीय सदस्य सम्मिलित होते हैं । स्थानीय सभा का अपना अध्यक्ष, सचिव एव कोषाध्यक्ष होता है । यदि स्थानीय सभाएँ निर्वाचना सम्बन्धी सभी आर्थिक भार वहन करने म समथ होती हैं तो उ ह अपने प्रत्याशी के चयन की पूण स्वत त्रता होती है । ऐसी अवस्था म दलीय केन्द्रीय नेतृत्व प्रत्याशी के चयन मे हस्तक्षेप नही करता ।

दल का सबसे महत्वपूण अग 'वार्षिक दलीय सम्मेलन'[36] है । इसम स्थानीय सभाओ एव कुछ अनुदार दलीय क्लबो[37] के द्वारा प्रतिनिधि भेजे जाते हैं । वार्षिक सम्मेलन म दलीय कार्यों की समीक्षा की जाती है तथा दल की नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं । अनुदार दल के सगठनात्मक पक्ष (Organisational Wing) का ससदीय पक्ष (Parlimentary Wing) पर कठोर निय त्रण नही होता है । दलीय वार्षिक सम्मेलन द्वारा कामन्स सभा मे अनुदार दल के नेता का चयन नही किया जाता है अपितु ब्रिटिश ससद के अनुदार दलीय सदस्य स्वय अपन नेता का चयन करते है । दलीय नेता के अवसान या अ य किसी कारण से उसके स्थान के रिक्त होने पर दल का जो सदस्य प्रधान म त्री बनता है वही दल का नेता भी होता है । उदाहरणाथ, चम्बरलेन के पश्चात चर्चिल के प्रधानम त्री बनने के साथ ही साथ वे दल के नेता भी बन थे । ऐ थोनी ईडन के द्वारा 1956 ई म राजनीति से अवकाश ग्रहण करने पर बटलर के

36 National Union of Conservative and Unionist Association

37 सम्पूण ब्रिटेन मे लगभग 1500 अनुदार दलीय क्लब (clubs) है । इनका एक एक प्रतिनिधि क्षेत्रीय सगठन का सदस्य होता है । ये क्लब जनता स सम्पक रखते हैं ।

स्थान पर हैरोल्ड मैकमिलन प्रधानमन्त्री बने थे। बटलर दल के नेता थे परन्तु मैकमिलन के प्रधानमन्त्री बनने पर बटलर दल के नेता पद से स्वत ही हट गये थे और मैकमिलन अनुदार दल के नेता बने थे। यह एक स्वस्थ परम्परा है। इससे दल के सगठनात्मक एव ससदीय पक्षो म गतिरोध उत्पन्न नही होते हैं।

ब्रिटिश श्रम दल (British Labour Party)

ब्रिटेन का श्रम दल समाजवादी दल है। यह ब्रिटिश फेबियनवाद एव समष्टिवादी विचारधाराओ की सन्तान है। इगलैण्ड के विभिन्न श्रमिक एव अन्य समाजवादी सघो एव सगठनो के सम्मेलन म 1899 ई म श्रमिक प्रतिनिधि सम्मेलन की स्थापना की गयी थी। यही सगठन 1906 ई म श्रम दल (Labour Party) कहलाया। श्रम दल समाजवाद एव लोकतन्त्र मे आस्था रखता है, लेकिन लोकतन्त्र को वे समाजवाद से अधिक प्राथमिकता देते हैं। लोकतान्त्रिक ढग से समाजवाद की स्थापना के लिए दल कृतसकल्प है। श्रम दल की नीतिया अनुदार दल के विपरीत हैं। यह दल सम्पत्ति के सामूहिक स्वामित्व एव उत्पादन के साधनो पर सामाजिक नियन्त्रण म विश्वास करता है और राष्ट्रीय सम्पत्ति के व्यापक सामाजिक एव आर्थिक न्याय पर वितरण पर बल देता है। उद्योगो एव सेवाओ के लोकतन्त्रीकरण का पक्षपाती है तथा हर *आर्थिक क्रिया पर लोकतान्त्रिक नियन्त्रण स्थापित करना चाहता है। श्रम दल* पूंजीवाद एव मुनाफाखोरो का विरोधी है। इसके द्वारा एक व्यापक, व्यावहारिक तथा रचनात्मक राजनीतिक एव आर्थिक कायक्रम तैयार किया गया है। राजनीतिक क्षेत्र म वह लॉर्ड सभा का विरोधी है परन्तु विगत 50 वर्षों म कई बार सत्तारूढ होने पर भी श्रम दल इस सस्था का उन्मूलन नही कर सका है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दल लॉर्डसभा की शक्ति को सीमित करके ही सन्तुष्ट हो गया है। सामाजिक सुरक्षा एव विस्तृत सामाजिक जनसेवा म दल का विश्वास है। दल क्रमिक रूप म धीरे-धीरे विकासवादी रीति स समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का समथक है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म शान्ति तथा सयुक्त राष्ट्र सघ का समथक और साम्राज्यवाद का विरोधी है। श्रमदलीय शासन म ही भारत स्वतन्त्र हुआ था। आर्थिक क्षेत्र म बडे उद्योगो के राष्ट्रीयकरण तथा एक सीमा तक भूमि के समाजीकरण का यह दल समथक है। श्रमदलीय मन्त्रिमण्डल के कायकाल म 1946 ई म बक आफ इगलण्ड व 1948 ई म लाहा एव इस्पात तथा कायला खदाना का राष्ट्रीयकरण किया गया था। यह दल औद्योगिक क्षेत्र म लोकतन्त्र का पक्षपाती है। *श्रमिको के लिए काम के निश्चित घण्टो,* पर्याप्त वतन तथा विश्राम और रुग्ण वृद्धावस्था एव बरोजगारी के विरुद्ध बीमा याजना का समथक है। कराधान म क्रमश उच्च आय पर अधिक करारोपण का पक्षपाती है।

श्रम दल को श्रमिको का व्यापक समथन प्राप्त है। कुछ बुद्धिवादी भी इसक

समथक हैं। कृपको एव मध्यवर्गीय सदस्यो की एक बडी सख्या इस दल की नीतियो का समथन करती है।

सगठन—श्रम दल सम्बद्ध निकाया एव सगठनो का समूह है। इसकी सदस्य सख्या करीब 10 लाख है। दलीय सगठन की सबसे छोटी इकाई 'निर्वाचन क्षेत्रीय श्रमदल' है। इनकी सख्या 600 से ऊपर है। इन स्थानीय इकाइया के ऊपर 11 क्षेत्रीय दलीय सगठन हैं। सबसे ऊपर दल का राष्ट्रीय सगठन है। इसमे दल का केन्द्रीय कार्यालय है तथा दल की एक राष्ट्रीय कायकारिणी समिति है[38] जिसम 28 सदस्य होते हैं। इसके 12 सदस्य श्रमिक सघो, 7 निर्वाचन क्षेत्रीय सगठनो, 1 सदस्य सहकारी सभाओ के तथा 5 स्त्री सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त दल का नेता एव उपनेता *समिति के पदेन सदस्य होते हैं। एक सदस्य कोषाध्यक्ष होता है।* राष्ट्रीय कायकारिणी समिति दल का नियन्त्रक एव प्रशासकीय यन्त्र है। इसके द्वारा केन्द्रीय कार्यालय का सचालन तथा दलीय कायक्रम का निर्धारण किया जाता है। यह दल के समस्त कार्यों का सचालन करती है। दल के 90 प्रतिशत सदस्य विभिन्न श्रमिक सघो के सदस्य होते हैं। श्रमिक सघ श्रम दल की आय के मुख्य साधन है। इस समिति के अतिरिक्त दल का वार्षिक दलीय सम्मेलन (Party Conference) भी होता है। दलीय राष्ट्रीय कायकारिणी की अनेक उप समितिया होती हैं। दलीय सम्मेलन दल की नीतियाँ निर्धारित करते हैं तथा दलीय सविधान को सशोधित करते है।

उदार दल[39] **(Liberal Party)**

वतमान समय मे उदार दल का सितारा अवसान पर है लेकिन ग्रेट ब्रिटेन के इतिहास मे इस दल ने महत्वपूण भूमिका निभाई है। उदार दल अनुदार दल से प्रगतिशील एव श्रम दल की तुलना मे अप्रगतिशील है। वह श्रमदलीय नीतिया को अपनाने के लिए तैयार नही है। मुक्त व्यापार, नागरिक स्वतन्त्रता एव पूण मताधिकार का समथक है। उदारवादियो का कथन है कि वे किसी वग का प्रतिनिधित्व नही करते अपितु सम्पूण राष्ट्र के प्रतिनिधि है। वे पूणरूपेण निजी व्यापार और समाजवादी व्यवस्था म आस्था नही रखत हैं अपितु राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुरूप दोना की विशेषताओ के मिश्रण के पक्षपाती हैं।

सगठन—उदारदलीय सगठन[40] की सबस छोटी इकाइ निर्वाचन क्षेत्रीय सभाएँ हैं। दल की नीतियो म विश्वास रखने वाले किसी क्षेत्र के सभी व्यक्ति स्थानीय सभाओ के सदस्य होत है। इनका अपना सगठन होता है तथा इन दलीय इकाइयो द्वारा राष्ट्रीय एव स्थानीय निर्वाचनो म दलीय प्रत्याशिया का चयन किया जाता है। निर्वा

38 The Organisation of Political Parties in Britain, C O I, R 4769, 1960, p 7
39 *Ibid*, p 6
40 *Ibid*, pp 4, 6

चन क्षेत्रीय इकाइयो के ऊपर 12 प्रादेशिक दलीय सगठन हैं तथा राष्ट्रीय सगठन सबसे शीष पर है। दलीय वार्षिक अधिवेशन (Assembly) दलीय नीतियो को निर्धारित करता है, दलीय पदाधिकारियो का निर्वाचन करता है तथा केन्द्रीय समिति के 30 सदस्यो का चयन किया जाता है। इस केन्द्रीय समिति का काय देश के प्रत्येक भाग म उग्र उदारवादी विचारधारा का प्रचार एव प्रसार करना है। इसके अतिरिक्त समकालीन प्रश्नो पर केन्द्रीय समिति उदार दल के पक्ष को प्रस्तुत करती है तथा केन्द्रीय कार्यालय एव वित्त की व्यवस्था करती है। केन्द्रीय समिति द्वारा दल की कायकारिणी समिति का भी निर्माण किया जाता है।

उदारदलीय नेता का चुनाव ससद के सदस्यो द्वारा किया जाता है। वह दलीय सम्मेलन की अध्यक्षता करता है तथा दल के सगठनात्मक एव ससदात्मक पक्षो म समन्वय स्थापित करता है। निम्न आकडो से यह स्पष्ट है कि उदार दल ब्रिटिश राजनीतिक रगमच से तिरोहित होता जा रहा है, कॉमन्स सभा मे उदार दल के 1906 ई म 397, 1911 ई मे 271, 1923 ई म 158, 1929 ई म 59, 1931 ई म 37, 1945ई मे 12, 1964 ई मे 91 और 1966 ई मे 12 सदस्य थे।

इगलण्ड मे साम्यवादी दल भी है परन्तु वह लोकप्रिय नही है। अन्य देशो के साम्यवादियो की भाति यह माक्सवाद लेनिनवाद म विश्वास करता है और सवहारा वग के अधिनायकत्व एव वग सघष का समथक है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की दलीय व्यवस्था

अमेरिकी सविधान निर्माता राजनीतिक दलो के विरुद्ध थ। वे दलो को लोक त त्र के लिए अपरिहाय नही मानते थे। वे दलीय हिंसा एव आतक से मुक्त शासन चाहते थे। वाशिगटन (Washington) एव मेडीसन (Madison) दोनो ही दलो की स्थापना के विरुद्ध थ। प्रथम अमरिकी राष्ट्रपति वाशिगटन का कथन था कि "राजनीतिक दल वैमनस्य, विद्रोह एव दुर्भाव के मूल होते है।' इनसे बचकर रहना चाहिए। अत दलीय व्यवस्था को उ होने अमेरिकी सविधान के प्रारम्भ मे ही अस्वीकार कर दिया था। लेकिन उनकी यह आकाक्षा कवल मग मारीचिका ही सिद्ध हुई। 1796 ई मे राष्ट्रपति के निर्वाचन म दो राजनीतिक दलो के प्रत्याशियो के रूप मे जान आदम (John Adams) एव थामस जैफरसन (Thomas Jefferson) म सघर्ष हुआ था। सविधान के आठवें वष मे ही अमरिकी राजनीतिक रगमच पर दल अवतरित हो चुके थे। दलीय व्यवस्था की भूमिका इससे पूव फिलाडेलफिया सम्मेलन म ही पड चुकी थी। सम्मलन मे प्रतिनिधियो का एक समूह यदि राज्यों को अधिकाधिक स्वायत्तता देने का समयक था तो दूसरा समूह शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के निर्माण का पक्षपाती था। प्रथम समूह सघ विरोधी (Anti Federalist) एव द्वितीय समूह सघवादी (Federalist) के नाम से विख्यात थे। जफरसन 'सघ विरोधी' एव हैमिल्टन 'सघ वादी' समूहो के नेता थे। 'सघ विरोधी' न्यू इगलण्ड एव मध्यवर्ती राज्यो के औद्यो

गिक, व्यापारिक एव आर्थिक हितो के सरक्षक थे, तो 'सघवादी' कृषको, वगीचो के स्वामियो एव उत्तरी ग्रामीण और दक्षिणी कृषक हितो के पक्षधर थे। स्मरणीय है कि राष्ट्रपति जॉज वार्शिगटन अपने द्वितीय राष्ट्रपति काल मे राजनीतिक दलो के प्रभाव को स्वय अनुभव करने लगे थे। सघवादी जान आदम 1796 ई म राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे और आगामी निर्वाचनो (1800 ई) मे सघ विरोधी थॉमस जैफरसन राष्ट्रपति वने थे। थॉमस जैफरसन ने अपने दल का नाम लोकतन्त्र गणतन्त्रीय दल (Democratic Republican Party) रखा। यही दल वाद मे लोक तन्त्रीय या डेमोक्रेटिक दल (Democratic Party) कहलाया। सघवादी दल 1812 ई के निर्वाचनो मे उभरा था और यही दल जकसन के राष्ट्रपति काल मे ह्विग दल (Whig Party) तथा 1854 ई म रिपब्लिकन दल (Republican Party) कहलाया। सघवादियो का प्रभाव धीरे धीरे कम होता गया और 1816 इ मे वे समाप्त हो गये। सन 1816 30 ई तक देश म कोइ स्पष्ट राष्ट्रीय दल नही था, केवल छोटे छोटे दल समूह थे जिनका नेतत्व आदम, क्ले, जकसन एव कोल्हन जैसे राजनीतिज्ञ कर रहे थे। वतमान काल मे राजनीतिक दल अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था के अनिवाय अग है। इन्होने सविधान को गतिशीलता एव शासन के विभिन्न अगो म सामजस्य स्थापित किया है तथा उसे एकरूपता प्रदान की है।

विशेषताएं

अमेरिकी दलीय व्यवस्था की मुरय विशेषताएँ निम्नवत हैं

(1) सयुक्त राज्य मे प्रारम्भ से ही द्विदलीय पद्धति और मुख्य राजनीतिक दल—डेमोक्रेट एव रिपब्लिकन—हैं। लेकिन अनेक छोटे छोट दला का भी सदैव अस्तित्व वना रहा है। उदाहरणाथ, मद्य निषेध दल (Prohibition Party) का उदय 1872 ई म और अन्त 1933 ई मे हुआ था। आज भी अमेरिका मे साम्यवादी दल, समाजवादी श्रमिक दल, समाजवादी लोकतान्त्रिक दल तथा अन्य विभिन्न श्रमिक समूह हैं। द्विदलीय पद्धति के विकास के कई कारण हैं (1) द्विदलीय पद्धति औपनिवेशिक काल की देन है, (ii) आग्ल भाषाभाषी देशो की जनता म समझौतावादी मनावृत्ति अधिक होती है और वे कम कल्पनाशील होत है, (iii) अमरिकी राष्ट्रीय जीवन म धम, राष्ट्रीयता, वश आदि की भावनाए उतनी उग्र नही हैं जितनी यूरोप म हैं, (iv) अमेरिकी विधानमण्डला की निर्वाचन-पद्धति ने भी द्विदलीय पद्धति क विकास म योग दिया है। *विधानमण्डल के सदस्य एकल सदस्यी जिला निर्वाचन याजना क अनुसार* निर्वाचित किये जाते ह, फलस्वरूप छोट छोटे दल निर्वाचन म भाग लेन की स्थिति म नही हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन निवाचक मण्डल द्वारा हाता है। यदि देश म तीसर दल का उदय हो जाता है तो राष्ट्रपति का निवाचन कठिन हो जायगा। किसी प्रत्याशी को स्पष्ट वहुमत प्राप्त न होन की अवस्था म प्रतिनिधि सदन का राष्ट्रपति को निर्वाचित करने का अधिकार होता है। वहुदलीय पद्धति क अन्तगत या द्विदलीय

पद्धति के अभाव मे राष्ट्रपति के निर्वाचन म सौदेबाजी की प्रधानता हो जाने की आशका है। (v) सत्ता के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा के कारण महत्वाकाक्षी राजनीतिक समूहो, वर्गो एव हितो का सहज ही ध्रुवीकरण (centralisation) हो गया है।

(2) अमेरिकी राजनीतिक दलो म सुस्पष्ट अन्तर नही है और न वे स्पष्ट आधारभूत सिद्धान्तो पर ही आधारित हैं। दोनो ही दल लोकतान्त्रिक हैं परन्तु उनकी विचारधाराओ मे कोई निश्चित एव स्पष्ट भेद नही है। अमेरिकी दल सिद्धान्तो की अपेक्षा हितो की समानता एव एकता पर आधारित हैं। प्रो बीयड का कथन है कि दोनो दलो की नीतियो एव कार्यक्रम की अपेक्षा एक ही दल के विभिन्न पक्षो के दृष्टिकोणो म कही अधिक मतभेद है।[41] लॉर्ड ब्राइस ने इसी विचार को व्यक्त करते हुए कहा है कि दोनो अमेरिकी दल "दो खाली बोतलो के समान हैं जिनम प्रत्येक पर दो भिन्न प्रकार की शराब क लेबिल चिपके हुए हैं।"[42] फाइनर के अनुसार "अमेरिका मे तो वास्तव म केवल एक ही दल रिपब्लिकन डेमोक्रेटिक दल (Republican cum Democratic Party) है। वह अपनी आदतो एव सत्ता की प्रतिस्पर्धा के कारण दो समान भागो मे विभाजित हैं, एक का नाम रिपब्लिकन और दूसरे का नाम डेमोक्रेटिक दल है।"[43] इस मत का समर्थन दोनो दलो के अग्राकित कार्यक्रमो एव उनके क्रमिक विकास के विवरण से भी स्पष्ट होता है। लेकिन यह मत पूर्णत स्वीकार्य नही है। दोनो दलो मे तात्कालिक एव विशिष्ट हितो की दृष्टि से अल्पकालिक अन्तर तो होते हैं परन्तु दोनो दल लोकतन्त्रवादी, गणतन्त्रवादी, मौलिक स्वतन्त्रताओ के समर्थक वैयक्तिक पूजी के आधारभूत अधिकार की धारणा मे विश्वास रखने वाले, उदारवादी, सविधानवादी, सयुक्त राष्ट्र सघ और विश्व शान्ति के समर्थक हैं। दोनो ही दल पूजीवादी अर्थ व्यवस्था को स्वीकारते हैं। प्रो बीयड का यह कथन कि दोनो दलो मे नामो के अतिरिक्त अन्य कोई अन्तर नही है सत्य नही है। इसका केवल यह तात्पर्य है कि समय समय पर उनकी नीतियो म अन्तर होते रहे हैं। परन्तु यह भेद व अन्तर लोकतन्त्रीय गणतन्त्रीय विचारधारा के व्यापक वातायन के अन्तर्गत ही हैं।

(3) अमेरिका मे दलो का आधार समूहगत हित अर्थात आर्थिक हित हैं। धार्मिक, राजनीतिक तथा स्वभावगत भेदभाव पर दलीय व्यवस्था आधारित नही है। सामान्यत दल दो हितो पर आधारित हैं—औद्योगिक एव कृषि। दक्षिणी रियासतें अधिकाशत कृषि प्रधान हैं अत यहाँ पर डेमोक्रेटिक दल अधिक सक्रिय है। उत्तरी पूर्वी अमेरिका औद्योगिक क्षेत्र है अत इस क्षेत्र के उत्पादको, साहूकारो एव श्रमिक हितो का सर-

---

41 Prof C A Beard *American Government and Politics* p 67

42 They are like two bottles, each with different lables and both are empty Lord Bryce, cited by H Finer p 353

43 H Finer, cited by V D Mahajan *op cit*, 1966, p 267

क्षण आवश्यक है । फलत इस क्षेत्र एव समस्त उत्तरी क्षेत्र म रिपब्लिकन दल अधिक लोकप्रिय है । बीयड का यह मत है कि शासन का सद्धातिक स्वरूप अमेरिकी दलो का तानाबाना नही हैं अपितु दला के नेताओ का व्यक्तित्व एव दलीय समस्याए दला का तानाबाना है ।[44] दोनो दल सभी क्षेत्रो व प्रदेशो के नागरिका के मतो को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं । फाइनर के अनुसार "सयुक्त राज्य अमेरिका मे दलीय उद्वेग कम है, मतदाता मध्यमवुजुआ वर्गीय है वे उग्र दाशनिक सिद्धान्तो एव विचारो से प्रभावित नही होते है ।"[4]

(4) अमेरिकी राजनीतिक जीवन म व्याप्त लूट प्रणाली (Spoils System) का राजनीतिक दलो से घनिष्ठ सम्ब ध था । 19वी सदी मे इस प्रणाली के फलस्वरूप राजनीतिक जीवन अत्यधिक भ्रष्ट हो गया था । वतमान काल मे तो इस प्रणाली की बुराई बहुत कम है । लूट प्रणाली के अ तगत नव निर्वाचित राष्ट्रपति अपने पूवगामी द्वारा नियुक्त शासकीय अधिकारियो को हटाकर उनके स्थान पर नवीन कमचारियो को नियुक्त करता था और इस प्रकार अपने समथका, सहयोगियो, निर्वाचनो मे समथन एव प्रचार करने वाला को शासकीय पदो पर नियुक्त करके पुरस्कृत करता था । नियुक्तिया का आधार योग्यता न होकर दलब दी हुआ करता था ।

अमेरिकी दलो के कायक्रम तथा नीतियाँ

अमेरिका म दो ही प्रमुख दल हैं । देश की राजनीति म समय-समय पर दोनो म से किसी न किसी दल का प्राबल्य रहा है । प्रारम्भ मे हैमिल्टन सघवादियो एव जैफरसन सघ विरोधी दल (डेमोक्रट रिपब्लिकन) के नेता थे । 1800 स 1824 ई तक रिपब्लिकन दल पदारूढ रहा । 1828 से 1840 ई तक डेमोक्रेट दल का देश की राजनीति म प्राधा य रहा था । 1850 एव 1860 के दशका म दासता का प्रश्न अमेरिकी राजनीति की प्रमुख समस्या थी । रिपब्लिकन दल दासता के उ मूलन का समथक था । लेकिन डेमोक्रेट दासता को कायम रखने के पक्षपाती थे । यदि डेमोक्रेट दल ने कुछ उदार दृष्टिकोण अपनाया होता तो शायद वह सत्ता म बना रहता । रिपब्लिकन दल के श्री लिंकन के राष्ट्रपति चुने जाने पर उ होने दासता को समाप्त घोपित किया । इससे दल को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई । एक बार सत्ता म आने पर दल न अपनी स्थिति को सुदृढ किया और 1885 ई तक पदारूढ रहा । 1889 स 1893, 1899 से 1912 एव 1922 स 1932 ई तक रिपब्लिकन दल सत्ता म रहा । 1952 से 1960 एव 1968 से 1974 ई क कायकाल म यही दल पुन सत्तारूढ रहा है । वतमान म अमेरिका क राष्ट्रपति पद पर रिपब्लिकन दल के राष्ट्रपति फाड पदारूढ हैं । उपरोक्त अवधिया के मध्य के काल म डेमोक्रेट दल सत्ता म

---

44 Beard cited by V D Mahajan *op cit*, p 265
45 Finer *op cit*, p 357

रहा है। दोनों दलों में से अनेक प्रमुख राष्ट्रपति हुए हैं, यथा—जफरसन, लिंकन, आइजनहावर एवं निक्सन रिपब्लिकन दल के और विल्सन, फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट, ट्रूमन एवं केनेडी डेमोक्रेट दल के प्रख्यात राष्ट्रपति थे।

डेमोक्रेटिक दल (Democratic Party)

अपने प्रारम्भिक काल में यह दल संघीय शासन की शक्ति में वृद्धि, साम्राज्यवाद, रक्षित व्यापार एवं जहाजों के लिए आर्थिक अनुदान देने की नीति का विरोधी था। दासता के प्रश्न पर इस दल ने उसके उन्मूलन का विरोध किया था। फलस्वरूप कई दशकों तक अमरिकी राजनीति में इसका प्रभाव अत्यधिक कम हो गया था। इस दल ने उन्नीसवीं सदी में कृषकों के हितों को संरक्षण प्रदान किया था। प्रथम विश्व युद्ध काल में राष्ट्रपति विल्सन ने परम्परागत विदेश-नीति में परिवर्तन किया था। यह अन्तर्राष्ट्रीयता एवं विश्व शान्ति का समर्थक था। डेमोक्रेट राष्ट्रपति एफ डी रूजवेल्ट ने विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी से राष्ट्र के उद्धार हेतु 'नवीन कार्यक्रम' (New Deal Programme) के अधीन आर्थिक मामलों में राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन किया था। रिपब्लिकन दल की अपेक्षा डेमोक्रेट दल ने संघीय शासन समर्थक नीतियों का अधिक निर्माण किया है। 1952 ई में डेमोक्रेट दल ने शक्तिशाली सुरक्षा योजना द्वारा यूरोपीय देशों की सोवियत साम्राज्यवाद से सुरक्षार्थ सामूहिक नीति का अनुगमन किया था। विश्व शान्ति को दल ने अपना प्रमुख लक्ष्य घोषित किया था। आज भी दल इन नीतियों का समर्थक है।

रिपब्लिकन दल (Republican Party)

प्रारम्भ में यह दल शक्तिशाली संघीय सरकार का समर्थक था एवं संविधान की उदार व्याख्या पर बल देता था। लिंकन के राष्ट्रपति बनने पर इस दल का वास्तविक उद्भव एवं विकास हुआ और 1860 ई से 1913 ई तक थोड़े से अन्तराल (केवल आठ वर्ष) से यह दल सत्तारूढ़ रहा है। यह दल रक्षित व्यापार, उपनिवेशों की स्थापना, व्यापारिक जहाजों को उदार आर्थिक अनुदान देने, दासता-उन्मूलन, नीग्रो को मताधिकार देने की नीति का समर्थक है। इसी दल के कार्यकाल मे दासता का उन्मूलन हुआ था और 1860 से 1865 ई तक अमेरिकी गृह-युद्ध लड़ा गया था। इस गृह युद्ध मे उत्तरी राज्यो की सफलता ने अमेरिकी राष्ट्र को विघटित होने से बचा लिया। 19वीं सदी के अपने कार्यकाल में इस दल के समक्ष दो बड़ी कठिनाइयाँ आयी थी (1) राष्ट्रपति ग्राण्ट के शासन काल मे व्याप्त भ्रष्टाचार, एवं (2) आन्तरिक दलीय विभेद। दल में अनेक समूह थे जो परस्पर विरोधी थे अतः उनमें तीव्र मतभेद थे। विगत शताब्दी के अन्तिम काल में विलियम मकिनले के प्रयत्नों से दल विघटित होने से बचा था। 1952 ई मे रिपब्लिकन दल ने डेमोक्रेटिक काल में व्याप्त भ्रष्टाचार, अक्षमता एवं अकर्मण्यता की तीव्र निन्दा की तथा एशिया सम्बन्धी डेमोक्रेटिक दल की विदेश नीति को असफल ठहराया था। राष्ट्रपति निक्सन ने अपने

कायकाल म साम्यवादी चीन स मत्री की तथा रूस एव चीन से सम्बन्धो म सुधार, तथा वियतनाम समस्या के समाधान के सफल प्रयत्न किये थे।

दोना दला की विदेश नीतिया एव कायक्रमा म बहुत अन्तर नही है। उनकी विदेश नीतियाँ तात्कालिक प्रश्नो से अधिक सम्बन्धित होती हैं। राष्ट्रपति विल्सन ने अन्तराष्ट्रीयता एव राष्ट्र सघ की सदस्यता का समथन किया था, लेकिन रिपब्लिकन दल का बहुमत रखने वाली सीनट न उनके द्वारा सम्पादित वार्सायी सन्धि को अस्वीकार करके राष्ट्र सघ की सदस्यता का अस्वीकृत कर दिया था। आन्तरिक नीतियो के सम्बन्ध म दला म अपक्षाकृत अधिक मतभेद हाते हैं। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवल्ट न रिपब्लिकना की अपक्षा सघीय शासन द्वारा सामाजिक कल्याण के हेतु व्यापक भूमिका का प्रतिपादन किया था। रिपब्लिकन दल का इसके विपरीत यह तक था कि इससे निजी व्यापार को हानि होगी। दोना दलो की आन्तरिक नीतियो एव कायक्रमा म अपक्षाकृत अन्तर रहत हुए साम्य भी है। दोनो दल सामाजिक सुरक्षा के समथक हैं परन्तु क्रियान्वयन के सम्बन्ध म दोनो दला म कम-बढ मतभेद हैं। दोना अमेरिकी दल लोकतन्त्र, वैयक्तिक पूजी एव पूजीवादी व्यवस्था के समथक है तथा समाजवाद एव साम्यवाद क विरोधी है।

दलीय सगठन—दोना दला का सगठन पिरामिडाकार है। दलीय सगठन के चार प्रमुख स्तर ह। सबसे निम्न तल पर प्रेसिक्ट समितियाँ (Precinct Committee) ह। प्रेसिक्ट मतदान का सबसे छोटा जिला है। इस समिति के प्रमुख को प्रेसिक्टमेन (Precinctman) कहा जाता है। प्रेसिक्ट समितियो के ऊपर जिला, काउण्टी तथा राज्य की केन्द्रीय समितियाँ होती है। सबसे शीप पर दल की राष्ट्रीय समिति है। इसके अतिरिक्त दल का अध्यक्ष एव कायकारिणी समिति होती है। प्रतिनिधि सदन एव सीनेट के निर्वाचना म प्रचार स सम्बन्धित दलीय समितियाँ भी होती हैं। दोनो दलो के राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) होत ह। वे ही दलीय नीति निर्धारित करत ह। दला की राष्ट्रीय समितिया द्वारा इस दायित्व को सम्पादित नही किया जाता है।

राष्ट्रीय समिति दल का स्थायी सगठन होता है। इसमे प्रत्येक राज्य एक पुरुष एव एक स्त्री को प्रतिनिधि के रूप म भेजत है। राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष का नाम राष्ट्रपति पद के दलीय उम्मीदवार द्वारा चुना जाता है और दल की समिति उसी को अध्यक्ष पद पर चुन लेती है। दलीय अध्यक्ष निर्वाचनो मे दल की व्यूह रचना के लिए उत्तरदायी होता है। राष्ट्रीय समिति का अध्यक्ष दल का प्रमुख नेता नही होता अपितु वह केवल दलीय सगठन का प्रतीक है। राष्ट्रीय समिति का सिद्धान्त मे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है परन्तु व्यवहार म इसका काय केवल राष्ट्रपति पद के लिए नामजदगी का अनुमोदन तथा दलीय राष्ट्रीय सम्मेलन को आयोजित करना मात्र है। निर्वाचन सम्बन्धी मामला मे राष्ट्रीय समिति का क्षेत्र राष्ट्रपति के निर्वाचन तक ही सीमित है।

अमेरिकी दलो म सामा यत सत्ता एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह म केद्रित होती है और दलीय यन्त्र के माध्यम से इसका नियन्त्रण किया जाता है। ऐसे राजनीतिक दलीय अधिनायक को बास (Boss) एव समूह को काकस (Caucus) या रिंग (Ring) कहते हैं। ये दलीय बॉस भ्रष्टाचार, रिश्वत, कठोर दलीय निर्वाचन एव सरक्षण (patronage) प्रदान करके अपनी सत्ता को बनाये रखते ह। प्राय इनके द्वारा विभिन्न निर्वाचनो म दलीय उम्मीदवारो का चयन किया जाता था। विगत शताब्दियो म निर्वाचन के इन दोषो को दूर करन के लिए कई सुधार किये गये हैं, उदाहरणार्थ—दलीय नेता द्वारा दलीय उम्मीदवारो के चयन के स्थान पर प्राइमरी निर्वाचन (primary elections) का सूत्रपात किया गया है। प्राइमरी निर्वाचनो म विभिन्न निर्वाचनो के सम्बन्धो म दलीय उम्मीदवारो के विषय म दलीय सदस्यो द्वारा निणय लिये जाते हैं। राज्यो द्वारा प्राइमरी निर्वाचनो के सम्बन्ध मे विधियो का निर्माण किया गया है। इस प्रकार के निर्वाचन प्राय सामान्य निर्वाचन के दो या तीन माह पूव होते हैं। प्राइमरी निर्वाचनो मे जिस दलीय व्यक्ति को सबसे अधिक मत प्राप्त होते है वही उस क्षेत्र से दलीय उम्मीदवार होता है।

अमेरिकी राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश दलो की भाँति सुसगठित एव अनुशासित नही है। फलस्वरूप दलीय सदस्यो के मध्य महत्वपूण प्रश्नो पर मत भेद होते है। परन्तु काउण्टी एव नगर-स्तर पर दलो के सगठन अपेक्षाकृत सुसगठित हैं।

एकदलीय पद्धति
(ONE PARTY SYSTEM)

एकदलीय पद्धति मे देश मे एक ही दल होता है एव उस राजकीय सरक्षण भी प्राप्त होता है। इस प्रकार की व्यवस्था साम्यवादी देशो एव द्वितीय विश्व युद्ध के पूव जमनी एव इटली तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त एशिया एव अफ्रीका के कुछ नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रो म पायी जाती है। नाजी जमनी तथा फासिस्ट इटली मे एकदलीय व्यवस्था थी। सोवियत रूस, साम्यवादी चीन तथा पूर्वी यूरोप के अनेक देशो म केवल साम्यवादी दल का ही अस्तित्व है। एकदलीय व्यवस्था सवप्रथम सोवियत सघ मे स्थापित हुई थी। इसके पश्चात फासिस्ट इटली (1923 43) एव नाजी जमनी (1933 45) म एकदलीय अधिनायकत्व स्थापित हुआ था। यूरोप मे पुतगाल एव तुर्की मे भी कुछ समय तक एकदलीय व्यवस्था रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात घाना[46], कीनिया[47], बर्मा आदि देशो म एकदलीय पद्धति को स्वीकार किया गया है।

---

46 राष्ट्रपति नक्रूमा के समय मे घाना मे एकदलीय व्यवस्था स्थापित की गयी थी। युगाण्डा मे दलीय अधिनायकत्व तो नही किन्तु व्यक्तिगत अधिनायकत्व है।

47 कीनिया मे भी एकदलीय व्यवस्था है।

एकदलीय पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत है [48]

(1) दलो की स्थापना के पूव ही सामान्यत उनके उद्देश्यो की घोषणा कर दी जाती है परन्तु एकदलीय पद्धति म दलो की स्थापना के पश्चात ही उसके सिद्धान्तो का निरूपण किया जाता है। उदाहरणाथ, मुसोलिनी के सत्तारूढ होने पर ही फासीवाद के सिद्धान्तो को विकसित किया गया।[49] सोवियत रूस म भी 1917 की क्रान्ति के पश्चात साम्यवादी दल का एकाधिकार है तथा 1936 ई के सविधान द्वारा साम्यवादी दल को विधिक मान्यता प्रदान की गयी है।

(2) एकदलीय व्यवस्था मे दल एव शासन मे सीधा एव स्थायी सम्बन्ध होता है। दोनो एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और शासन पर दल का पूण नियन्त्रण होता है।

(3) दलीय अनुशासन कठोर होता है तथा दलीय नेताओ की उपासना की जाती है।

(4) सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है।

(5) विरोधी दलो, विचार-स्वातन्त्र्य एव विचारो की अभिव्यक्ति तथा अन्य व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओ का निममतापूवक दमन किया जाता है।

एकदलीय पद्धति का उदय एव विकास

यूरोपीय महाद्वीप मे ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रान्स को छोडकर किसी भी देश मे शासन का सफल सचालन सम्भव नही हो सका है। द्विदलीय एव बहुदलीय पद्धति की असफलता इसका प्रधान कारण है। दलीय शासन की सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि मतदाताओ मे सामाजिक लक्ष्यो और राजनीतिक आदर्शों के विषय मे मतैक्य हो। यदि मतदाताओ मे इस सम्बन्ध मे मतभेद हो तथा वे सभी एकमत होकर सामान्य लक्ष्यो को स्वीकार करने के लिए तैयार न हो तो दलीय शासन की सफलता सदिग्ध है। द्वितीय विश्वयुद्धके उपरान्त यूरोपीय देशो की जनता मे इन राष्ट्रीय लक्ष्यो के सम्बन्ध म तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गये थे। विभिन्न विचारो एव सिद्धान्तो तथा नेतृत्व के लिए होने वाले सघर्षों म दलो द्वारा एकता एव व्यवस्था की स्थापना की जाती है तथा वे शासन के निर्माण को सम्भव बनाते है। जनता को अपने विचारो के अनुकूल बनाने मे सफल होने वाला दल निर्वाचनो मे बहुमत प्राप्त करन म सफल होता है तथा सत्ता हस्तगत करता है। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त यूरोपीय देशो म वाछित राष्ट्रीय एकता, सास्कृतिक सहयोग तथा जातीय एव धार्मिक सहिष्णुता का अभाव

---

48 Maurice Duverger *Political Parties* Book II

49 नाजीवाद के सिद्धान्तो के बारे म यह मत सत्य नही है। हिटलर ने अपनी आत्मकथा (Mein Kempt) म अपने विचारो एव सिद्धान्तो का सत्तारूढ होने के पूव ही उल्लेख कर दिया था।

था, फलस्वरूप विभिन्न दल परस्पर सहमत न हो सके तथा प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात इटली एव जर्मनी म एक के बाद एक लोकतन्त्रीय शासन क्रमश धराशायी होते गये। 1917 ई मे लाल क्रान्ति के पश्चात रूस मे साम्यवादी दल की सत्ता स्थापित हुई थी।

इटली मे एकदलीय व्यवस्था के उदय के निम्न कारण थे

(1) पोप ने इटली की सरकार द्वारा पोप के प्रदेशा को छीनने के कारण कैथोलिक मतदाताओ का मत देने से वर्जित कर दिया था तथा मुसोलिनी की सरकार को मान्यता प्रदान नही की थी।

(2) इटली के विभिन्न दल राष्ट्रीय सगठन न रहकर जी हुजूरो के समूह बन गये थे। जनता म सामन्ती मनोवृत्ति का प्राधान्य था। प्रतिनिधि सभा के सदस्य मन्त्रियो से अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए ससद म उनका समर्थन करते थे। इटली का ससदीय जीवन भ्रष्ट हा चुका था।

(3) अपने को सत्ता म रखने के लिए मन्त्रीगण ससद मे एक गुट को दूसरे से लडाते रहते थे। फलस्वरूप दला के कार्यक्रम राष्ट्रीय दृष्टि से निर्धारित न किये जाकर दल के प्रमुख नेताओ द्वारा अपने व्यक्तिगत हितो की दृष्टि से निश्चित किये जाते थे। सामान्य जनता मे ससदीय जीवन एव व्यवस्था के प्रति तीव्र असन्तोष था।

1919 ई म इटली मे समाजवादी सबसे बडी सख्या मे थे और समाजवादी दल सबसे बडा दल था। परन्तु उनमे मतैक्य नही था। वे एक दूसरे की आलोचना करते रहते थे। कोई दल सवसम्मत कार्यक्रम स्वीकार करन को तैयार नहीं था। मुसोलिनी ने फासी दल की स्थापना की थी। 1920 ई म इटली म साम्यवादियो के नेतृत्व मे अनेक हडताले आयोजित की गयी। देश मे क्रान्ति की हवा तीव्र गति से चल रही थी। इसी समय हडतालियो एव कारखानेदारो मे समझौते हो गये। शासन की असफलता स्पष्ट हो गयी थी। इन अराजक परिस्थितियो मे मुसोलिनी को अपने दल को सशक्त बनाने का अवसर मिल गया। अपने विरोधियो—समाजवादियो एव साम्यवादियो—के विरुद्ध मुसोलिनी ने सीधी कार्यवाही के अस्त्र को अपनाया। उसका नारा था 'लाल खतरे से सावधान'। उसने हडतालो को दबा दिया तथा सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार करने की माग की। इनसे आकर्षित होकर उसके दल मे अनेक सदस्य शामिल हो गय। 1921 ई के पश्चात फासी दल की प्रगति द्रुत गति से होन लगी। राष्ट्रीय सम्मान तथा प्रतिष्ठा की रक्षा का उसने शखनाद किया और इटली को विश्व का नेता बनाने का आश्वासन दिया। उद्योगपतियो ने फासी दल का समर्थन किया। अनेक श्रमिक सगठना का भी फासी दल ने सगठन किया। 28 अक्टूबर, 1922 ई को फासिस्ट मलेशिया को सगठित करके मुसोलिनी ने रोम को घेर लिया। उसने रलवे स्टेशन, डाकखाने एव नगर पर अधिकार कर लिया। राजा ने प्रधानमन्त्री के परामर्श को स्वीकार करते हुए सनिक कानून की घोषणा न करके मन्त्रिमण्डल को विघटित कर दिया तथा मुसोलिनी को नवीन मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए

आमन्त्रित किया। 29 अक्टूबर, 1922 ई को मुसोलिनी मिश्रित शासन का प्रधान बना। सत्ता म आने पर उसने शीघ्र ही अपना अधिनायकत्व स्थापित कर लिया। 1924 ई म एकरवो निर्वाचन विधि (Acerbo Electoral Law) बनाने मे मुसोलिनी सफल रहा। फलस्वरूप निर्वाचना म बहुमत प्राप्त करने वाले दल को विधान मण्डल मे दो तिहाई स्थान प्रदान किये गये। इस प्रकार किसी समूह की सहायता के बिना ही बहुमत दल को शासन म स्पष्ट बहुमत का अधिकार प्राप्त हो गया। इसके पश्चात मुसोलिनी ने अपने एक के बाद दूसरे विरोधियो का सफाया करना प्रारम्भ कर दिया। इटली मे आतक का राज्य स्थापित कर दिया गया। प्रेस पर निय न्त्रण था। सभी गर-फासीवादी दलो को विघटित कर दिया गया। स्थानीय शासन को भी समाप्त कर दिया गया। सभी सरकारी कमचारियो एव विद्यालयो के प्राचार्यों को फासीवादी दल के प्रति निष्ठा की शपथ लेने के लिए बाध्य किया गया। 1928 ई के पश्चात चेम्बर ऑफ डेपुटीज के सदस्य फासीवादी दल की ग्राण्ड समिति (Grand Committee) द्वारा नियुक्त किय जाने लगे। 1939 ई मे चेम्बर ऑफ डेपुटीज के स्थान पर फासिया एव कॉरपोरेशन सदन की स्थापना की गयी। सक्षेप मे, मुसोलिनी इटली का सर्वेसर्वा बन बैठा और उसने फासी दल के सहयोग से इटली म सर्वाधिकारवादी राज्य की स्थापना की। राज्य का आर्थिक जीवन पर पूण निय त्रण स्थापित किया गया तथा निगम राज्य (Corporate State) की स्थापना की गयी।

जमनी म 1919 मे अनेक दल समूह थे। वे एक दूसरे की तीव्र आलोचना करते थे। वीमर सविधान (Weimer Constitution) के अ तगत राष्ट्रपति एव ससद—रीस्टाग—को चुनने का अधिकार जनता को प्रदान किया गया था। अत सविधान द्वारा राष्ट्र के प्रत्येक समूह को प्रतिनिधित्व देने का आश्वासन दिया गया था। सत्ता का के द्र कायपालिका की अपेक्षा विधानमण्डल को बनाया गया था। चा सलर (प्रधानम त्री) अपने मन्त्रिया सहित रीस्टाग के प्रति उत्तरदायी होता था। लेकिन रीस्टाग मे 12 से भी अधिक राजनीतिक समूह थे और सावजनिक उद्देश्या की दृष्टि से उनमे कोई समानता नही थी। विभिन्न समूहो क परस्पर विरोधी आर्थिक हित थे। इनम सौदेबाजी के पश्चात ही किसी प्रकार की एकता स्थापित हो पाती थी और तत्पश्चात ही कोई राजनीतिक कदम उठाना सम्भव था। मिश्रित म न्त्रिमण्डला का निर्माण बहुदलीय पद्धति की सहज विशेषता होती है। इन मिश्रित म त्रिमण्डला का कायकाल उनका निर्माण करन वाले विभिन्न समूहा के आर्थिक हितो म एकता पर निभर होता है। अत व्यवहार म मिश्रित म न्त्रिमण्डल अल्पकालिक होत थे। जमनी मे मिश्रित म न्त्रिमण्डला के उत्थान एव पतन होते रहत थे। 1919 से 1936 ई के मध्य तक करीब 30 म न्त्रिमण्डल बने और बिगडे थ। कायपालिका की अस्थिरता एव विधानमण्डल की अक्षमता के कारण शासन की सत्ता व्यवहार म नौकरशाही के हाथो म अनजान ही हस्ता तरित हो गयी थी। साम्यवादिया एव समाजवादिया सहित

जनता के एक वर्ग मे इस स्थिति के प्रति अत्यधिक असन्तोष उत्पन्न हो गया था। इस बीच मे 1930 ई की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने जर्मन अर्थ व्यवस्था को पूरी तरह नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। मूल्य वृद्धि, बेरोजगारी तथा आर्थिक सकट मे वस्तुओं के अभाव के कारण जनता मे तीव्र असन्तोष व्याप्त था। देश मे उचित एव सशक्त नेतृत्व की कमी थी। डूबते को तिनके का सहारा होता है। जर्मन जनता राष्ट्रीय समाजवादी श्रमिक दल (नाजी दल) की ओर झुकने लगी। सितम्बर 1930 ई के निर्वाचनो म दल को 65 लाख मत प्राप्त हुए। 1933 ई के निर्वाचनो मे रीस्टाग के 647 स्थानो मे से 288 स्थानो पर नाजी दल का कब्जा हो गया था। सत्तारूढ होने पर इस दल ने साम्यवादियो तथा अन्य समाजवादी लोकतान्त्रिक दलो को पूर्णत दबा दिया। हिटलर ने आक्रामक विदेश नीति का अनुगमन किया। देश से यहूदियो का बहिष्कार किया और लाखो की सख्या मे उनकी हत्या भी की गयी। फलस्वरूप यहूदी जर्मनी को छोडकर भागने लगे थे। नाजी दल ने रक्त की शुद्धता का नारा लगाया। नाजी दल ने आर्य जाति की नोमडिक (Nomadic) शाखा की जर्मन जाति को रक्त की दृष्टि से श्रेष्ठतम जाति तथा उसे शासन का जन्मजात अधिकारी होने की घोषणा की।

जर्मनी मे इस प्रकार नाजी दल के नेता (फ्यूरर) हिटलर का अधिनायकत्व स्थापित हो गया था। सारी सत्ता उसके हाथो म केन्द्रित थी। नाजी दल के सत्ता म आने के पश्चात इटली के फासीवादी दल की भाँति जर्मनी म सर्वाधिकारवादी राज्य की स्थापना की गयी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। नाजियो ने लोकतन्त्र का बहिष्कार कर दिया। जर्मनी मे सभी विरोधी दलो को समाप्त कर दिया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व एकदलीय पद्धति सोवियत रूस मे भी स्थापित हो गयी थी। 1948 ई मे चीन म भी एक दल—साम्यवादी दल—की स्थापना हो चुकी है।

सोवियत रूस का साम्यवादी दल

रूस मे साम्यवादी दल 'सर्वहारा वर्ग के अग्रगामी दस्ते'[50] की भूमिका निभाता है। यह लोकतन्त्रवादी देशो की भाँति केवल राजनीतिक दल नही है, वह नये समाज का निर्माता एव इस हेतु शासन का सूत्रधार है। इसका अनुशासन फौलादी है। सोवियत रूस म शासन एव दल आपस म घुले मिले हैं। यद्यपि शासन एव दल दोनो के पृथक-पृथक सगठन हैं परन्तु शासन की कार्यपद्धति का निर्देशन एव नियन्त्रण दल द्वारा ही किया जाता है। नव समाज के निर्माण मे साम्यवादी दल की भूमिका पर लेनिन ने विस्तार से प्रकाश डाला है। वह मार्क्स की 'स्वत क्रान्ति की धारणा' को नही मानता था, अपितु उसके अनुसार सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व क्रान्तिकारी बुद्धि

50 'Vanguard of the proletariat

जीवी वग द्वारा ही सम्भव है। सामाजिक परिवतन के वज्ञानिक नियमो का इस क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी वग का ही भली प्रकार ज्ञान होता है अत वही क्रान्ति सम्बन्धी अपेक्षित कदम उठा सकता है।

रूस म साम्यवादी दल देश का एकमात्र दल है। सविधान म साम्यवादी दल को ही एकमात्र दल घोषित किया गया है एव सोवियत निर्वाचनो म केवल यही दल भाग ले सकता है।[51] श्रमिक वग और महनतकश लोगा के विभिन्न स्तरा के अत्यधिक सक्रिय एव राजनीतिक रूप स चेतन नागरिक रूस के साम्यवादी दल म सगठित होते हैं। यह (दल) समाजवादी प्रणाली क मेहनतकश लोगो को सगठित करने म अग्रगामी भूमिका निभाने क साथ-साथ सभी प्रकार के सावजनिक एव राज्य के सगठना का प्रमुख केंद्र है।[52] लेनिन न साम्यवादी दल के दायित्वो को स्पष्ट करते हुए कहा था "शासन करने के लिए क्रान्तिकारियो की एक सेना—सघष म दीक्षित साम्यवादियो—की आवश्यकता है। हमार पास साम्यवादी दल ऐसी ही सना है यदि दल को हटा दिया जाय तो यथाथ रूप म रूस म सवहारा वग का अधिनायकत्व स्थापित नही हो सकगा।'

साम्यवादी दल का सगठन

साम्यवादी दल का सगठन पिरामिडाकार है। सबस निम्न तलीय और छोटी इकाई प्रारम्भिक दलीय सगठन[53] है। उसके ऊपर क्रमश जिला एव क्षेत्रीय दलीय सगठन हैं तथा सबस ऊपर राष्ट्रीय सगठन है। इनका विस्तृत विवरण निम्नवत् है

प्रारम्भिक दलीय सगठन (प्रदस)—प्रारम्भ मे इह सल (Cell) कहा जाता था परन्तु अब प्रारम्भिक दलीय सगठन (प्रदस) की सज्ञा दी जाती है। यह साम्यवादी दल की सबस छोटी सगठनात्मक इकाई है। प्रत्यक कारखाने, ग्राम, स्टोर, कार्यालय सामुदायिक कृषि फाम, विद्यालय, चिकित्सालय तथा गर-औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे इस (प्रदस) की स्थापना की जा सकती है। दल के कायक्रम म विश्वास रखने वाले एव उनका अनुगमन करने वाले किसी सस्था और प्रतिष्ठान मे कायरत कम से कम तीन सदस्य इसकी स्थापना कर सकते हैं। दूसरे शब्दो मे, तीन सदस्या से इस प्राथमिक इकाई का गठन किया जा सकता है। लेकिन इस सख्या से कही अधिक सदस्य प्रारम्भिक दलीय सगठन मे शामिल होते हैं। 1965 ई म 3,11,907 प्रारम्भिक सगठन थे। 1946 ई मे इनकी सख्या $2\frac{1}{2}$ लाख थी। जिन प्रारम्भिक सगठना म 15 सदस्य होत हैं उनम सात सदस्यो की एक कायकारिणी समिति होती है। इसे ब्यूरो (Bureau) कहते हैं। प्रारम्भिक सगठन का प्रमुख सदस्य इसका मन्त्री होता

---

51 सोवियत सविधान, अनुच्छेद 141

52 सोवियत सविधान, अनुच्छेद 126

53 Primary Party Organisation

है। इसका कायकाल एक वष होता है। जिन प्रारम्भिक सगठना की सदस्य सख्या 150 होती है उनमे वैतनिक मन्त्री नियुक्त किये जाते हैं जो पूरे समय तक दल का ही काय करते हैं।

प्रारम्भिक सगठनो द्वारा सगठनात्मक एव विरोध तथा प्रदशन सम्बन्धी काय सम्पादित किये जाते है तथा नवीन सदस्यो की भर्ती एव उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। कारखानो एव सहकारी फर्मों के प्रारम्भिक सगठन उत्पादन के निर्धारित लक्ष्या को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तथा श्रमिको मे अनुशासन की स्थापना करते हैं। प्रारम्भिक सगठन के सदस्या का ही यह दायित्व है कि सदस्यो द्वारा दलीय कायक्रम का उल्लघन नही किया जाता तथा दलीय निर्देशानुसार ही काय सम्पादित किये जाते हैं।

जिला, प्रान्तीय या क्षेत्रीय दलीय सगठन—प्रारम्भिक दलीय सगठन के ऊपर शहर, ग्रामीण क्षेत्र एव कृपक तथा औद्योगिक क्षेत्रो के दलीय सगठन होते हैं। इनके ऊपर जिला और उनके ऊपर प्रान्तीय या क्षेत्रीय दलीय सगठन होते हैं। प्रारम्भिक सगठनो के सदस्य अपने से ऊपर के दलीय सगठनो के सदस्यो एव प्रतिनिधियो *को निर्वाचित करते हैं। शहरो और ग्रामीण क्षेत्रो तथा दलीय सगठन और औद्योगिक* क्षेत्रो के सदस्या द्वारा प्रान्तीय दलीय सगठन के सदस्या को निर्वाचित किया जाता है। शहर, ग्राम्य क्षेत्र, कृपक तथा औद्योगिक क्षेत्रा के दलीय सगठन की एक काय समिति होती है, जिसके अधिवेशन प्रति तीसरे माह होते हैं। इसके कई सचिव (Secretary) होते हैं। इनमे से एक 'प्रथम सचिव' कहलाता है। इन सगठनो का काय अपने क्षेत्र के प्रारम्भिक दलीय सगठनो तथा गैर दलीय सगठनो (यथा—श्रमिक सघो, युवक सगठनो एव सहकारी समितियो) के कार्यों का निरीक्षण एव पथ प्रदशन करना होता है।

प्रान्तीय दलीय सगठना के ऊपर विभागीय, क्षेत्रीय या गणतन्त्रीय दलीय सगठन होते हैं। 1966 ई के पूव इनकी बैठके प्रति दूसरे दिन होती थी। परन्तु अब इनकी बठक प्रति चौथे वष होती है। दलीय सम्मेलन द्वारा प्रान्तीय दलीय कायसमिति, चार सचिव एव विभागीय सगठन के लिए सदस्या को निर्वाचित किया जाता है। सभी सगठना के सदस्यो का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होता है। *1962 ई* के पश्चात प्रान्त म दो प्रकार के सगठन हो गय हैं—एक के द्वारा कृपि तथा दूसरे के द्वारा औद्योगिक हितो का निरीक्षण किया जाता है। प्रत्येक गणराज्य की दलीय कांग्रेस होती है जो गणराज्य म दल का सर्वोच्च अग है।

अखिल सघीय साम्यवादी कांग्रेस (All Union Congress)—उपर्युक्त दलीय सगठना के ऊपर अखिल सघीय साम्यवादी कांग्रेस होती है। इसके सदस्यो को गण राज्या की दलीय कांग्रेसा द्वारा चुना जाता है। पुराने दलीय नियमा के अनुसार कांग्रेस का अधिवेशन प्रति तीन वष पश्चात होना चाहिए परन्तु 1952 ई के नवीन नियमानुसार कांग्रेस का अधिवेशन प्रति चौथे वष आयोजित किया जाता है। परन्तु इस

नियम का अनिवार्यत पालन नही किया जाता है। पुराने नियमा के अधीन अखिल सघीय कांग्रेस के सत्रो के अन्तराल मे दलीय सम्मेलन (Party Conference) आयोजित करने की व्यवस्था थी। 1939 ई से आगामी 15 वर्षों तक दल की कांग्रेस का कोई अधिवेशन नही हुआ था। स्मरणीय है कि 1917 (क्रान्ति) के पश्चात 1925 ई तक प्रति वप काग्रेस के अधिवेशन होते रहे थे।[54] दलीय सम्मेलन (Party Conference) के अधिवेशन प्रति वप कांग्रेस के अधिवेशनो मे ही आयोजित किये जाने की व्यवस्था है। लेकिन इस नियम का पूणरूपेण अनुगमन नही किया जाता। 1941 ई से दलीय सम्मेलन के अधिवेशन ही नही हुए हैं। यह दलीय नीति से सम्बन्धित तात्कालिक समस्याओ पर विचार करता है (दलीय नियम सख्या 37)।[55]

अखिल सघीय काग्रेस के अधिवेशन दीघकाल तक आयोजित नही होते हैं। यद्यपि दलीय नियमो के अनुसार कांग्रेस द्वारा ही दल की नीति निर्धारित की जाती है, तात्कालिक महत्व के प्रश्ना के सम्बन्ध मे निणय किये जाते हैं तथा दल की केन्द्रीय समिति का चुनाव किया जाता है लेकिन दलीय सत्ता का केन्द्र कांग्रेस के अन्यत्र कही है। काग्रेस का अधिवेशन सामान्यत 15 दिन से अधिक नही चलता है।

केन्द्रीय समिति—यह दल का सर्वाधिक महत्वपूण अग है। इसके सदस्य अखिल सघीय काग्रेस द्वारा गुप्त मतदान की रीति से चुने जाते हैं। 1918 ई मे इसमे 15 सदस्य तथा 8 प्रत्याशी (Candidates) हुआ करते थे। सन् 1964 ई मे इसकी सदस्य-सख्या 71 थी। अब इसमे 133 पूण एव 122 वैकल्पिक सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त 68 वैकल्पिक सदस्य या प्रत्याशी होते थे। वप म केन्द्रीय समिति के 3 से 12 तक अधिवेशन होते थे। नवीन दलीय नियमा के अनुसार केन्द्रीय समिति के प्रति वप कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। केन्द्रीय समिति दल की नीति निर्धारित करती है। यह दलीय सगठन की धुरी है। केन्द्रीय समिति सस्थान के निर्देशक का काय करती है एव सोवियत गणराज्य के शासनतन्त्र के सभी अग इसके निर्देशन मे ही निणय करते हैं। यह दल एव शासन के मध्य की कडी है एव कांग्रेस के सत्रावसान काल मे दल के सम्पूण काय का निर्देशन करती है। यह समिति दलीय समाचार-पत्रो के सम्पादक मण्डल के सदस्या की नियुक्ति के अलावा दलीय कोप की व्यवस्था और दलीय सस्थाओ के कार्यों, नियुक्तियो एव नीतिया का मागदशन करती है। यह दल के स्रोता एव शक्तियो का विभाजन करती है।[56]

दलीय केन्द्रीय समिति का आकार काफी वडा है। अत उसके द्वारा उप-

54 Carter, Ranney and Hez *The Government of the Soviet Union*, 1954 p 85

55 *Ibid*, p 85

56 Refer to Party Rules (Article 36) quoted by Carter and others, *op cit*, p 85

समितियो एव अधिकारियो को काय सौंप दिय जात हैं। केन्द्रीय समिति का एक अध्यक्ष, एक महासचिव, अनेक सहायक सचिव तथा दो उप-समितियाँ होती हैं। इनम से एक उप समिति राजनीतिक समिति (Politbureau) कहलाती है। यह व्यवहार म केन्द्रीय समिति स अधिक शक्तिशाली है। *'केन्द्रीय समिति सत्ता का अन्तिम अधिष्ठान नही है।'* इसके बहुत कम अधिवेशन होते हैं। यह आकार म पर्याप्त बडी है। अत नीति-निर्धारण एव अपन दायित्वा के सम्पादन की दृष्टि से केन्द्रीय समिति अनुपयुक्त है।[57]

राजनीतिक समिति या दलीय प्रेसीडियम (Politbureau or Presidium of the Party)—दल की वास्तविक सत्ता राजनीतिक समिति म निहित होती है। इसका अध्यक्ष दल का महासचिव होता है। यह दल का सर्वाधिक शक्तिशाली सदस्य होता है। इसकी स्थापना दलीय कांग्रेस द्वारा 1919 ई म की गयी थी। यह समिति नीति सम्बन्धी महत्वपूण विषया का निणय करती है। सभी महत्वपूण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, आन्तरिक एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याआ का निणय समिति द्वारा किया जाता है। शासन के विभिन्न विभागा द्वारा समिति को प्रतिवेदन दिय जात हैं। इसके अधिवेशन गुप्त होत हैं। समिति द्वारा जिस रीति स निणय किय जात हैं उसम मतभेदा का नान होना सरल काय नही है। कुछ आलोचका का कथन है कि *समिति मे पर्याप्त वाद विवाद होता है। सदस्या म परस्पर मतभेद भी होते हैं।*[58] स्टालिन साम्यवादी दल का महामन्त्री था एव बहुत समय तक समिति का अध्यक्ष रहा था। वह राजनीतिक समिति के निणयो को प्रभावित करता था।[59] राजनीतिक समिति के वष मे प्रति सप्ताह अनेक सम्मेलन होते रहते हैं। इस समिति की अनक समितियाँ एव आयोग होत हैं, ये समितियाँ विभिन्न मामला की देखभाल करती हैं। राजनीतिक समिति सोवियत रूस म, ऑग के शब्दा मे, सम्पूर्ण दलीय सगठन की आधारशिला है।[60] यह सामूहिक निर्देशक है। यह केन्द्रीय समिति का केन्द्रीय तत्व है। यह दल म सत्ता का केवल केन्द्र ही नही है, इसके सदस्य भी स्थायी होते हैं। एक लम्बे समय *तक स्टालिन एव उसके सहयोगियो का इस समिति पर अधिकार रहा था।*[61] सिद्धान्त मे राजनीतिक समिति केन्द्रीय समिति की उप समिति है। अखिल सघीय कांग्रेस के अधीन होते हुए भी राजनीतिक समिति वास्तव म दल का सर्वोच्च अग है। राजनीतिक समिति समाजवादी व्यवस्था की समस्त शाखाओ का क्रियात्मक निर्देशक है।

1952 ई मे 19वी दलीय कांग्रेस ने राजनीतिक समिति के स्थान पर प्रेसी

---

57 Carter anu thers *op cit* p 86
58 *Ibid*, pp 86 87
[illegible]
60 Ogg and Zink *Modern Fore gn Governments*, 1965, p 825
61 Carter and others *op cit*, p 87

डियम की स्थापना की है। इसकी कुल सदस्य सख्या 36 है, जिसमे 25 पूण एव 11 वकल्पिक सदस्य होते हैं। साम्यवादी दल के सदस्या के अतिरिक्त केन्द्रीय योजना आयोग क भी कुछ सदस्य प्रेसीडियम के सदस्य होते है लेकिन वास्तविक सत्ता प्रेसीडियम के 4 या 5 प्रमुख सदस्यो के हाथा म ही होती है। स्टालिन की मृत्यु के पश्चात प्रेसीडियम की सदस्य-सख्या को घटाकर 14 कर दिया गया है। इन 14 सदस्यो म 10 पूर्ण एव 4 अन्य सदस्य होते है।[62]

साम्यवादी दल के अन्य अभिकरण एव सस्थाएँ

राजनीतिक समिति के अतिरिक्त दल की केन्द्रीय समिति की एक सगठन समिति (Orgburo) होती थी। इस समिति की स्थापना 1919 ई मे की गयी थी। लेकिन 1952 ई म इस समिति को समाप्त कर दिया गया है। राजनीतिक समिति एव सगठन समिति म कोई स्पष्ट काय विभाजन नही था। साम्यवादी दल के अधिकाश प्रभावशाली नेता इसके सदस्य हुआ करत थे लेकिन यह समिति राजनीतिक समिति से कम महत्वपूर्ण थी। इस समिति के सदस्यो की सख्या 5 से 13 तक रही थी। धीरे धीरे दल का सचिवालय इस समिति के दायित्वो को सम्पादित करने लगा था। यह समिति दलीय सगठन एव कायपालिका सम्बन्धी काय करती थी।[63]

सचिवालय—सचिवालय दल के कार्यों का सचालित करने वाला वास्तविक निर्देशक यन्त्र है। 1952 ई के नवीन दलीय नियमो के अनुसार महासचिव के स्थान पर सचिवालय म 10 सचिवा की नियुक्ति की गयी है। स्टालिन की मृत्यु के पश्चात यह सख्या घटाकर 5 कर दी गयी है। स्मरणीय है कि 1922 ई से लेकर अपनी मृत्यु तक स्टालिन ही महासचिव था और वह सचिवालय के कार्यों का नियन्त्रक एव निर्देशक था। सचिवालय सोवियत रूस म दलीय कार्या के नियन्त्रण एव निरीक्षण के लिए उत्तरदायी है। यह अनेक अनुभागो एव कार्यालयो मे विभाजित है।

दल के क्षेत्रीय, जिलास्तरीय तथा स्थानीय सगठनो के अतिरिक्त सलग्न सगठन भी होते हैं। दल के नवयुवका के सगठन हैं। वे कोमसोमोल (Komsomol), पायनियर (Pioneers) एव आक्टोब्रिस्ट (Octobrists) के नाम से पुकारे जाते है। कोमसो-मोल मे 25 से 26 वप, पायनियर म 10 से 16 वप एव ऑक्टोब्रिस्ट म 8 से 11 वप तक की आयु के युवक एव बालक होते हैं। इन सगठना का काय दल के नव-युवको एव बालक-बालिकाआ को साम्यवादी भावना स दीक्षित करना है। कोमसो मोल साम्यवादी दल का महत्वपूण उपकरण है। इनके सदस्या की सख्या लाखा मे होती है।[64]

---

62 Ogg and Zink *op cit*, p 826

63 Carter and others *op cit*, p 87 and Ogg and Zink *op cit*, pp 825 826

64 Carter and others *op cit*, pp 89 90

साम्यवादी दल की सदस्यता

साम्यवादी दल के सगठन मे विशेष सावधानी वरती जाती है। हर व्यक्ति साम्यवादी दल का सदस्य नही हो सकता, केवल दल म निष्ठा रखने वाले चुने हुए व्यक्तियो को ही सदस्य बनाया जाता है। दल के सक्रिय सदस्या की सख्या बहुत कम होती है। लेनिन का कथन था कि दल की "सदस्यता कम करके दल की शक्ति म वृद्धि कीजिए।' 1922 ई मे लेनिन की यह शिकायत थी कि दल आकार मे वडा है और अवसरवादी तथा लोभी व्यक्ति उसम घुस आये हैं।[65] साम्यवादी दल के नेता ब्रिटेन, फ्रास या भारत के लोकतान्त्रिक दलो के नेताओ की भाति विना किसी भेदभाव के सभी व्यक्तियो को दल का सदस्य बनाने की नीति के विरोधी हैं। स्टालिन के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति दल का सदस्य नही हो सकता। इस दल की सदस्यता से सम्बन्धित कठिनाइयो एव झझावाता को झेलना हर व्यक्ति के लिए सम्भव नही है। इस दल मे तो श्रमिक वग के पुत्रो, अभाव एव सघप मे पली सन्तानो को ही सदस्यता दी जानी चाहिए।"[66] इस दृष्टिकोण के पश्चात भी साम्यवादी दल की सदस्य-सख्या म वद्धि हुई है। माच 1917 ई म इसकी सदस्य सख्या 23 हजार और नवम्वर 1917 मे 2 लाख थी। 1947 ई मे यह सख्या वढकर 6 लाख हो गयी। 1921-22 ई मे करीब एक चौथाई सदस्यो को दल मे से निष्कासित किया गया था। 1928-29 एव 1938-39 ई मे दल से बडे पैमाने पर सामूहिक निष्कासन (purge) हुए थे। इसके अतिरिक्त समय समय पर छोटे निष्कासन तो होते ही रहते हैं। 1939 ई के पूव कुछ विशिष्ट वग के व्यक्तियो पर दल की सदस्यता के सम्बन्ध मे विशेष प्रतिवन्ध थे। वग भेद के आधार पर वर्गीकरण किया गया था। स्मरणीय है कि वुर्जुआ वर्ग एव पूजीपतियो के लिए साम्यवादी दल के दरवाजे वन्द है। 1939 ई मे दलीय सदस्यता सम्बन्धी नियमो को सामान्य बनाया गया था। नवीन सदस्यता के नामो की सिफारिश दल के ऐसे सदस्यो को करने का अधिकार दिया गया है जो स्वय तीन वप से दल के सदस्य हैं तथा एक वप से उस व्यक्ति से भली प्रकार परिचित हैं जिसका नाम वे सदस्यता के लिए प्रस्तावित करते हो। प्रत्येक व्यक्ति को बडे सोच विचार एव दल म वाद विवाद तथा विचार विमर्श के पश्चात उसकी व्यक्तिगत योग्यता एव चाल चलन के आधार पर भर्ती किया जाता है। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इस नियम को शिथिल कर दिया गया था। दल के बहुत से सदस्य युद्ध म मारे गय थे अत इस अभाव की पूर्ति एव दल की स्थिति को सुदृढ करने के लिए यह आवश्यक था।

दल के नवीन सदस्या का दलीय सिद्धान्ता एव कायक्रम मे राजनीतिक शिक्षा दी जाती है। दल मे अधिकाशत नवयुवक एव नवयुवतिया ही होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त दल के 63 6 प्रतिशत सदस्य 35 वप से कम आयु के थे।[67]

65 Lenin as cited by Carter and others *op cit*, p 75
66 Stalin as quoted by Carter and others *Ibid*, p 75
67 Carter and others *op cit*, p 77

सोवियत साम्यवादी दल का अनुशासन

सोवियत साम्यवादी दल का अनुशासन फौलादी है। साम्यवादी दल द्वारा अपने सभी विरोधियो का दमन किया जाता हैं। दल के अन्दर राजनीतिक वाद विवाद और विरोध को सिद्धान्तत स्वीकार किया गया है। दलीय सगठन एव कायपद्धति सम्बन्धी इस सिद्धान्त को लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद (Democratic Centralism) की सज्ञा दी जाती है। दलीय सगठन के सम्बन्ध मे लोकतन्त्र को लेनिन एक निरथक एव हानिकारक खिलौना मानता था। उसने 1906 ई मे लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद के सम्बन्ध मे कहा था कि "इसका अथ यह है कि सदस्यो को आलोचना की स्वतन्त्रता तभी तक प्राप्त होगी जब तक उससे किसी काय की एकता समाप्त नही होती। दल की नीति एव काय को असम्भव बनाने एव उसे समाप्त करने वाली किसी आलोचना को स्वीकार नही किया जा सकता।"[68] साम्यवादी दलीय सगठन मे लोकतन्त्र का तत्व इस अथ मे विद्यमान है कि दल के सभी अधिकारी दलीय सदस्यो द्वारा निर्वाचित होते हैं, उन्हे मत देने का अधिकार होता है, नीति सम्बन्धी प्रश्नो पर दलीय सदस्यो द्वारा वाद विवाद के पश्चात बहुमत के आधार पर निणय लिये जाते हैं। लोकतन्त्र यही तक सीमित है।[69] दलीय अनुशासन सनिक अनुशासन की भाँति कठोर होता है। दल म सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर है। अल्पमत बहुमत के अधीन होता है और निम्न निकायो पर उच्च दलीय निकायो के निर्णय बन्धनकारी होते हैं। निम्न या अधीन दलीय इकाइयो को कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती है। दलीय नाति निर्धारण के समय सदस्यो को वाद विवाद की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होती है परन्तु सभी निणय बहुमत से होते हैं तथा एक बार निणय हो जाने के पश्चात वे सभी सदस्यो पर समान रूप मे बन्धनकारी होते हैं भले ही उनम से कुछ उससे सहमत न हो। लेनिन ने इसी सिद्धान्त के आधार पर रूसी साम्यवादी दल का सगठन किया था और वह अन्य देशो के साम्यवादी दलो के लिए एक उदाहरण बन गया है। स्मरणीय है कि क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों मे दलीय अनुशासन इतना कठोर नही था। उस समय दलीय अधिवेशनो मे सदस्यो को पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती थी। 1918 ई म केन्द्रीय समिति न जमनी से सन्धि सम्बन्धी लेनिन के प्रस्तावो को दो बार अस्वीकार किया था यद्यपि *अन्त मे वे बहुमत से स्वीकार कर लिये गय थे।* नवीन आर्थिक नीति के अनुगमन के पश्चात दलीय अनुशासन के सम्बन्ध मे विवाद उत्पन्न होन लग थे। कार्टर का मत है कि दलीय सदस्यो का प्राप्त विचार-स्वातन्त्र्य का अर्थ यह नही था कि दलीय अनुशासन किसी प्रकार शिथिल हो गया था। 1920 ई म लनिन ने साम्यवादी दल के सनिक अनुशासन पर आधारित लौह-अनुशासन की अनिवार्यता पर चर्चा भी की थी।

68 Cited by Carter and others *op cit*, p 78

69 Refer to Article 19 of the Party Regulations (1939), cited by Carter *Ibid*, p 78

वह इसे क्रान्ति एव गहयुद्ध-काल मे ही नही अपितु वग भेद की अवस्था मे भी अपरिहाय एव आवश्यक मानता था । लेनिन के पश्चात स्टालिन काल मे भी दलीय अनुशासन लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद पर ही आधारित रहा है । लोकतन्त्र का तत्व साम्यवादी दल के सगठन एव कायपद्धति मे गौण है, केन्द्रवाद का तत्व प्रधान एव मुखर है ।[70]

समीक्षा

दल का सगठन स्तूपाकार है । सोवियत साम्यवादी दल एक विश्वास एव यन्त्र रचना दोनो ही है । विश्वास इस अथ म है कि दल आर्थिक एव राजनीतिक सिद्धान्तो का एक व्यापक निकाय है । इन सिद्धान्तो म सभी सदस्य विश्वास करत हैं। साम्यवादी दल की सदस्यता मे वह भावात्मकता निहित है जो धार्मिक सम्बन्धा मे होती है । दल यन्त्र रचना इस अथ म है कि एक व्यवस्थित मानव समूह अर्थात् दल के सभी अगो पर निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए केन्द्रकृत नियन्त्रण रखा जाता है ।[71] दल के सिद्धान्त माक्स एव लेनिन के विचारो पर आधारित हैं । जुलियन टाउस्टर के अनुसार सोवियत रूस म विधियो, आदेशो और सस्थाओ का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर है ।[72] साम्यवादी दल को सोवियत रूस का एकमात्र दल घोषित किया गया है[73] एव श्रमिक वग तथा अन्य सभी क्रियाशील सोवियत नागरिको को साम्यवादी दल मे ही सगठित होने का अधिकार है । 1961 ई से सोवियत साम्यवादी दल को सोवियत जनता के अग्रगामी दस्त (Vanguard of the Soviet People) की सज्ञा दी जाने लगी है । साम्यवादी दल के भीतर दलबन्दी, विभिन्न मतमतान्तरो एव मतभेदो के लिए कोई स्थान नही है । दलबन्दी एव दल के उद्देश्यो के प्रति सहज उदासीनता असह्य है । ऐसे सदस्यो को निष्कासन का दण्ड भोगना पडता है। साम्यवादी दल एकल, एकीकृत एव केन्द्रीभूत सगठन है । यह एक ठोस प्रस्तर शिला (Monolith) की तरह है । अत इस Monolithic दल कह सकते हैं । दल सोवियत रूस मे सत्ता का केन्द्र बिन्दु है । इसे सम्पूण सोवियत समाज व शासन की धुरी कहना

---

70 Merle Fainsod *How Russia is Ruled*, p 181 and Ogg and Zink *Modren Foreign Governments*, p 850

71 The communist party of the Soviet Union is both a creed and a mechanism It is a creed in the sense that it cherishes an elaborate body of economic and political dogmas to which all its members must unswervingly adhere Membership in the party frequently involves an emotional relationship suggestive of a religious affiliation It is a mechanism in the sense that it is geared in all of its parts to highly centralised control by a single compact group driving steadily toward an ultimate goal —Harold Zink *Modern Governments* 1963 p 573

72 Julian Towster *Political Power in the U S S R* p 207

73 Article 141, Constitution of U S S R

अधिक उपयुक्त है। यह शक्ति का केन्द्रीय अधिष्ठान स्थल है। स्टालिन अपनी मृत्यु-पर्यन्त सोवियत रूस का सर्वेसर्वा रहा था। 1956 ई की 20वी काग्रेस म ख्रुश्चेव ने निस्टालिनीकरण (Destalinisation) का सूत्रपात किया था। इसके फल-स्वरूप जो तथ्य प्रकाश मे आये हैं उनके अनुसार नेता ही सब कुछ है। पार्टी स्टालिन के निर्देशो को मौन स्वीकृति दती रही थी। स्टालिन साम्यवादी दल का महामन्त्री था, वह दलीय राजनीतिक समिति का अध्यक्ष एव सोवियत रूस का प्रधानमन्त्री था। 1941 ई तक उसने कोई सरकारी पद स्वीकार नही किया था, फिर भी वह रूस का वास्तविक शासक था। साम्यवादी दल के महामन्त्री के रूप मे वह सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था को नियन्त्रित करता था। उसकी मत्यु के पश्चात ख्रुश्चेव महासचिव बने थे। कुछ वर्षों तक मेलिनकोव एव बुलगानिन भी प्रधानमन्त्री रहे थ परन्तु इनके समय मे भी वास्तविक सत्ता ख्रुश्चेव के हाथो मे ही रही थी। ख्रुश्चेव के अनुसार स्टालिन ने अनेक निर्दोष व्यक्तियो को अपने आदेश पर गोली से उडा दिया था। बेरिया (गुप्त खुफिया पुलिस के अधिकारी) के द्वारा उसने आतक का राज्य स्थापित कर रखा था। स्टालिन एक तानाशाह से कम नही था। लेकिन इस प्रवृत्ति का उसके साथ अन्त नही हुआ है। स्टालिन के पश्चात सोवियत रूस मे सामूहिक नेतृत्व विकसित हुआ है। ख्रुश्चेव भी सत्तारूढ होने पर सर्वेसर्वा बन गये थे। उसने भी सामूहिक नेतृत्व के सिद्धान्त की उपेक्षा की थी। ख्रुश्चेव को उसके विरोधियो ने 1964 ई मे पद स हटा दिया है।

सोवियत साम्यवादी दल एव शासन म क्या सम्बन्ध है ? यह कहना कठिन है कि कहाँ दल समाप्त एव कहाँ शासन का प्रारम्भ होता है।[74] स्टालिन[75] के अनुसार सोवियत सघ मे किसी भी राजनीतिक या सगठन सम्बन्धी प्रश्न को बिना दलीय निर्देश के हल नही किया जा सकता। दल प्रमुख भूमिका निभाता है। दल एव शासन मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। औपचारिक रूप मे शासन ही नियम बनाता है, उन्हे क्रियान्वित करता है, सेना का नियन्त्रण एव उद्योगो का प्रबन्ध करता है परन्तु अनौप-चारिक रूप म दल ही इन सब कार्यों को करता ह। दल शासन के अन्दर शासन है एव सोवियत सघ मे सत्ता का वास्तविक केन्द्र है।[6] राज्य प्रशासन के कार्यों की जाँच दल द्वारा की जाती है। दल राज्य कमचारियो का चयन करता है उनम कार्यों का विभाजन करता है, उनके प्रशिक्षण का निरीक्षण करता है। दलीय निर्देशन एव परामर्श के अभाव म सोवियत शासन द्वारा कोई महत्वपूर्ण निणय नही लिया जाता है। दल ही यह निणय करता है कि क्या किया जाना है, कब किया जाना है।[7] दल सत्ता का स्रोत

---

74 Harold Zink *Mordern Governments* p 567

75 Stalin J *Problems of Leninism*, (1954), p 168

76 Harper and Thompson *Government of the Soviet Union*, (1950), pp 58 59

77 Carter and others *op cit*, p 62

है। उसका सम्पूर्ण देश पर नियन्त्रण है। फाइनर के अनुसार साम्यवादी दल ऐसा सगठन नही है जिसका आधार लोकतन्त्र हो। यह अपने आप मे अधिनायकवादी है एव इसका रूप लोकतान्त्रिक केद्रवाद के नारे मे छिपा हुआ है।[8] पश्चिमी लोकतन्त्रवादियो को साम्यवादी दल एक विचित्र अलोकतन्त्रीय सस्था प्रतीत होगी लेकिन जिनका साम्यवादियो की भाति विश्वास है एव जिनकी दृष्टि मे सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन मुख्य हैं उन्हे आलोचना की स्वतन्त्रता और दल के अन्दर विरोध के अधिकार यदि असगत नही तो दुष्ट अवश्य प्रतीत होगे।[79] सोवियत दल ही सोवियत सघ का वास्तविक शासक है एव फाइनर के शब्दो मे साम्यवादी दल का सविधान ही सोवियत रूस का वास्तविक सविधान है।[80] कार्टर के अनुसार दल न केवल शिखर पर नियन्त्रण करता है अपितु वह प्रत्येक स्तर पर छाया हुआ है। दल क्रान्ति का रक्षक, समाजवादी व्यवस्था का प्रेरक, आदर्श एव शिक्षक है, यह सूचना प्रदान करता है एव दल ही शासक है। स्टालिन के शब्दो मे दल राज्य मे सर्वोच्च निर्देशक शक्ति है।[81]

चीन का साम्यवादी दल

चीन मे साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना तथा जनवादी लोकतन्त्रीय क्रान्ति मे चीनी साम्यवादी दल ने निर्णायक भूमिका निभाई है। चीन का साम्यवादी दल सोवियत साम्यवादी दल का प्रतिरूप है। यह अपने देश के श्रमिको एव मेहनतकश वर्ग का अग्रगामी दस्ता है एव इनके वर्ग सगठन का सर्वोच्च रूप है। स्मरणीय है कि 1949 ई मे चीनी साम्यवादी दल देश से च्याग काई शेक के शासन को उखाड फेंकने मे सफल हुआ था। चीन मे मार्क्सवाद लेनिनवाद के आदर्शों पर आधारित समाजवादी या साम्यवादी समाज की स्थापना करना साम्यवादी दल का प्रमुख उद्देश्य है। मार्क्स एव लेनिन के विचार दल की नीतिया एव कार्यों का आधार हैं। चीन मे भी सोवियत रूस की भाँति साम्यवादी दल एकमात्र दल है। सोवियत साम्यवादी दल की भाति लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद पर इस दल का सगठन एव कार्यपद्धति आधारित है। सोवियत सविधान मे साम्यवादी दल का उल्लेख किया गया है, परन्तु चीन के जनवादी गणतन्त्रीय सविधान म साम्यवादी दल का कही उल्लेख नही किया गया है।

सदस्यता एव सगठन

चीनी साम्यवादी दल की स्थापना सितम्बर 1920 ई मे शघाई म की गयी थी। जुलाई 1921 म इसका पहला सम्मेलन हुआ था। उस समय से निरन्तर इसकी सदस्य सख्या म वृद्धि होती रही है। 1951 ई म 58 लाख एव 1970 ई के दशक

78 Finer *The Governments of Greater European Powers*, p 868
79 Carter and others *op cit*, p 91
80 Finer *op cit*, p 789
81 Refer to Carter and others *op cit*, pp 66 72

मे दल की सदस्यता 170 लाख थी। पर तु यह सख्या कुल देश की जनसख्या की दृष्टि से काफी कम है। प्रत्येक 18 वर्षीय या उससे अधिक आयु के व्यक्ति जो श्रम-जीवी होते हैं तथा दूसरा के श्रम का शोषण नही करते, साम्यवादी दल के सदस्य बन सकते हैं। सदस्यता के नये नामो का प्रस्ताव दल के दो पूण सदस्यो द्वारा किया जा सकता है। प्रारम्भ मे उसे दल की अस्थायी सदस्यता प्रदान की जाती है। एक वष तक दलीय सिद्धा तो मे उसे प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। तत्पश्चात् उसके राजनीतिक गुणा का सयमतापूवक आंकलन किया जाता है और उसके बाद ही वह दल का पूण सदस्य बनाया जाता है।

दल का सगठन स्तूपाकार है। सबसे छोटे दलीय निकाय को सैल (Cell) कहते हैं। इनके द्वारा काउण्टिया एव नगरपालिकाओ की दलीय कॉंग्रेसो के लिए प्रति निधि चुन जात हैं एव काउण्टी तथा नगरपालिकाआ की काग्रसो द्वारा प्रा तीय दलीय कॉंग्रेस के सदस्य निर्वाचित किय जाते है। सबसे शीष पर राष्ट्रीय दलीय सगठन है। दल का एक अध्यक्ष होता है।

राष्ट्रीय दलीय सगठन के निम्न अग होते हैं

(1) राष्ट्रीय दलीय काग्रेस,

(2) के द्रीय समिति।

राष्ट्रीय दलीय काग्रेस—राष्ट्रीय दलीय काग्रेस के सदस्य प्रा तीय दलीय कॉंग्रेसा द्वारा निर्वाचित किये जाते है। इसका कायकाल 5 वष है और इसकी सदस्य-सख्या एक हजार से भी अधिक है। नियमानुसार प्रति वष इसका एक अधिवेशन अपे क्षित है। के द्रीय समिति विशेष परिस्थितियो मे अधिवेशन की अनुमति को अस्वीकार कर सकती है। दलीय काग्रेस के नियमित अधिवेशन नही होते हैं। विगत बीस वर्षों म इसके केवल दो अधिवेशन हुए हैं। काग्रेस द्वारा के द्रीय समिति का निर्वाचन किया जाता है और काग्रेस के सत्रावसान-काल मे समिति द्वारा ही काग्रेस के सभी कतव्या को सम्पादित किया जाता है।

के द्रीय समिति—के द्रीय समिति मे 196 सदस्य होते हैं। सिद्धान्तत राष्ट्रीय दलीय कॉंग्रेस द्वारा इसका निर्वाचन होता है पर तु व्यवहार म दलीय राजनीतिक समिति (Politbureau) की सात सदस्यी स्थायी समिति के द्वारा इसका चयन किया जाता है। इस समिति म दल के प्रमुख नेता होते है। सत्य तो यह है कि सदस्या का चयन चीन के सर्वेसर्वा माओ त्से तुग या दो एक अ य नेताआ जैसे कि चाउ एन लाई आदि की इच्छा पर निभर होता है। इसके वष म दो बार अधिवशन होत हैं। इसकी सदस्य सख्या भी अधिक है। दलीय काग्रस के सत्रावसान-काल म के द्रीय समिति दल का सर्वोच्च निर्देशक निकाय है। अत यह दल के सम्पूण कार्यां का निर्देशन करती है, लेकिन के द्रीय समिति दलीय नीति का निर्धारण नही करती है। वष म इसके एक या दो अधिवेशन होते हैं और वह भी केवल दो या तीन सप्ताह के लिए ही। अनेक

सकटकालीन अवसरो पर केन्द्रीय समिति के अधिवेशनो को आहूत ही नही किया जाता है। 1962 ई म केन्द्रीय समिति का 10वाँ अधिवेशन हुआ था परन्तु इस अधिवेशन म दलीय एव राष्ट्रीय विषयो पर विचार करने के लिए केवल चार दिन निधारित किये गये थे। सत्य तो यह है कि केन्द्रीय समिति नेताओ द्वारा पूव निर्धारित नीति पर प्रमुख दलीय नेताओ की प्रतिक्रिया ज्ञात करने का माध्यम है।

राजनीतिक समिति (Politbureau)—यह दल की प्रमुख समिति है एव केन्द्रीय समिति का निर्देशक एव नियन्त्रण बिन्दु है। इसम 20 पूण एव 6 वकल्पिक सदस्य होते ह। इसके निर्णयो को केन्द्रीय समिति को भेजा जाता है एव वह उन्ह अनुमोदित करती है। इस समिति के द्वारा दलीय नीति निर्धारित की जाती है। लेकिन केन्द्रीय समिति राजनीतिक समिति के निणयो को केवल स्वीकृति देने वाली रबड की मोहर नही है। वास्तव म केन्द्रीय समिति ही दलीय सविधान के अनुसार निणयो को वैधानिक रूप प्रदान करती है। राजनीतिक समिति की एक स्थायी समिति होती है। माओ त्से तुग, चाऊ एन लाई, चेन यान एव लिन पाओ जैसे नेता इसके सदस्य होते हैं। ली शाओ ची भी इसके सदस्य रहे थे। इस स्थायी समिति को राजनीतिक समिति का 'ज्ञानकोष' कह सकते है। यह समिति राष्ट्रीय दलीय नीति के निर्धारण मे प्रमुख एव निर्णायक भूमिका निभाती है।

इसके अतिरिक्त दल का एक सचिवालय होता है। यह दलीय कार्यालय के रूप मे काय करता है। दलीय नियन्त्रण आयोग दल के नियमो के उल्लघन एव अनुशासन सम्बन्धी प्रश्नो से सम्बन्धित होता है।

लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद

सोवियत साम्यवादी दल की भाँति चीन के साम्यवादी दल के सगठन एव अनुशासन का आधार लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद है। चीन मे 'केन्द्रवाद' का तत्व अधिक शक्तिशाली है। साम्यवादी दल देश की सम्पूण सामाजिक एव राजनीतिक व्यवस्था पर कुण्डली मारे बैठा हुआ है। माओ त्से तुग के अनुसार चीनी राजनीतिक प्रणाली एक साथ लोकतान्त्रिक एव केन्द्रकृत है। जनवादी चीन के सविधान के अन्तगत शासकीय सगठन मे लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। सविधान के अनुच्छेद 2 के अनुसार 'राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, स्थानीय जनवादी कांग्रेसो एव राज्य-सगठनो म लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद का अनुगमन किया जाता है। दलीय काय पद्धति के अनुसार निणय लेने के पूव दलीय सदस्यो को विचार विमश एव आलोचना का अधिकार होता है। नीति के निर्धारित हो जाने के पश्चात उसे क्रियान्वित करना प्रत्येक सदस्य का दायित्व है तथा बहुमत के निणय अल्पमत पर बन्धनकारी होते हैं। सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। यही लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद है। माओ त्से तुग चीनी साम्यवादी दल के सर्वेसर्वा हैं। दलीय अनुशासन फौलादी होता है। सम्पूण समाज एव शासन पर साम्यवादी दल का एकाधिकार है। दल एव

शासन म कोई विनाजक रता नही है। दल के सभी महत्वपूर्ण नेता शासन के उच्च पदाधिकारी होते हैं। शासकीय अभिकरणों म साम्यवादी दल की शाखाए स्थापित की जाती हैं तथा समय समय पर शासन को आन्तरिक नीति के सम्बन्ध म दलीय निर्देश दिय जाते हैं। जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति को सविधान द्वारा शासन के कार्यों क निरीक्षण का अधिकार दिया गया है तथा शासन क सभी स्तर के कार्यों एव निर्णयों का रद्द या सशोधित करने का उसे अधिकार है। उस देश मे समस्त विरोधी दलो एव क्रान्ति विरोधी शक्तियो का सफाया करने का अधिकार है (अनुच्छेद 19)। चीनी साम्यवादी दल वास्तव म चीनी जनवादी गणराज्य की राजनीतिक सत्ता का अन्तिम स्रोत है। सेना व शासन पर उसका पूर्ण नियन्त्रण है। सदस्यो की समय समय पर छानबीन होती रहती है।

चीनी साम्यवादी दल म भी गुटबन्दी है। एक गुट का नेतृत्व चाऊ एन लाई, तो दूसरे का ली शाओ ची करते रहे हैं। माओ त्से तुग के नेतृत्व एव उसकी उपस्थिति क कारण य विवाद खुलकर सामने नही आ रहे हैं। साम्यवादी चीन म पश्चिमी प्रेक्षको के अनुसार दलीय अधिनायकवाद है। स्वतन्त्रता अत्यधिक सीमित है। फाइनर के निम्न शब्द जो उन्होने सोवियत साम्यवादी दल के सम्बन्ध मे कहे हैं, चीनी साम्यवादी दल पर भी लागू होते हैं "साम्यवादी दल का सविधान देश (चीन) का वास्तविक सविधान है।" चीनी साम्यवादी दल ही चीनी जनवादी गणराज्य का वास्तविक शासक है। दल म माओ त्से तुग की स्थिति केन्द्रीय है एव स्टालिन की भाँति जनवादी चीन म माओ त्से तुग का निजी अधिनायकत्व है।

यूगोस्लाविया मे दलीय पद्धति

यूगोस्लाविया का एकमात्र दल साम्यवादी दल है। 1952 ई म यूगोस्लाविया क साम्यवादी दल की 6वी काग्रेस ने दल का नाम बदल कर साम्यवादियो की लीग (League of the Communists of Yugoslavia) रख दिया है। इसके अतिरिक्त फरवरी 1953 ई म सोशलिस्ट एलायस (Socialist Alliance) नामक एक अन्य सगठन का निर्माण किया गया है। सोशलिस्ट एलायस तथा साम्यवादी लीग म पारस्परिक घनिष्ट सम्पर्क एव सहयोग है। पृथक एव स्वतन्त्र सगठन होते हुए भी दोनो के उद्देश्य समान है। साम्यवादी लीग का प्रधान लक्ष्य सद्धान्तिक नेतृत्व एव राजनीतिक शिक्षा का कार्य करना है जबकि 'एलायस' समाज के विशिष्ट राजनीतिक एव सामाजिक प्रश्नो से सम्बन्धित है। सामान्य नीतियो का निर्धारण साम्यवादी लीग करती है। विशिष्ट स्थितियो मे इस निर्धारित नीति को क्रियान्वित करना सोशलिस्ट एलायन्स का कार्य है। लीग मे केवल साम्यवादी विचारधारा के ही सदस्य होते हैं जबकि सोशलिस्ट एलायन्स म सक्रिय साम्यवादियो के अतिरिक्त उनके समर्थक एव उनसे मार्गदर्शन ग्रहण करने वाले सभी व्यक्ति एव सगठन शामिल होते हैं।

साम्यवादी लीग

यूगोस्लाविया की साम्यवादी लीग का सगठन रूस आदि अन्य साम्यवादी देशो के साम्यवादी दलो की भांति ही है । लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर लीग का भी सगठन आधारित है । लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के अनुसार दल के सदस्यो को विचार-विमश की स्वतन्त्रता होते हुए भी एक बार दलीय नीति के सम्बन्ध मे निणय हो जाने पर उसको क्रियान्वित करना दल के प्रत्यक सदस्य का कतव्य होता है । सोवियत साम्यवादी दल की भांति दलीय अनुशासन फौलादी होता है । दलीय नेताओ का दल पर पूण नियन्त्रण होता है । लीग की सरचना अन्य साम्यवादी दलो की भाति एक पिरामिड के समान है । सत्ता का स्रोत ऊपर से नीचे की ओर है । दलीय सगठन के शीष पर दल के प्रमुख नेता होते हैं, जिनमे माशल टीटो का नाम प्रमुख है । साम्यवादी दल ने समाजवादी क्रान्ति की सफलता एव फासिस्ट शक्तिया के विरुद्ध सफलतापूवक सघष किया है एव महत्वपूण भूमिका निभाई है । यूगोस्लाविया मे माशल टीटो का एक विशेष स्थान है । उन्हे अधिनायक नही कहा जा सकता और न वे सवैधानिक अध्यक्ष मात्र ही हैं । उनकी स्थिति इन दोनो के मध्य की है । साम्यवादी लीग मे उनका प्रमुख स्थान है, वे दल के प्रमुख नेता हैं, साम्यवादी लीग की कायकारिणी के अध्यक्ष हैं । दल म सुदृढ स्थिति तथा राष्ट्रनायक के रूप म प्राप्त लोकप्रियता के कारण उनकी स्थिति असाधारण रूप से सुदृढ हो गयी है । वे यूगोस्लाविया के सवमान्य नेता हैं ।

साम्यवादी लीग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय सगठन से सम्बन्धित है तथा उसने सभी समाजवादी आन्दोलनो का समथन किया है । देश म सभी साम्राज्य विरोधी, प्रगतिशील एव लोकतान्त्रिक दलो और आन्दोलनो तथा अन्य साम्यवादी समथक सगठनो एव श्रमिक सगठनो स साम्यवादी लीग सहयोग करती है ।

दलीय सगठन के तल पर साम्यवादी दल की छोटी छोटी इकाइया—सैल (Cell)—हैं । प्रत्येक उद्यम, ग्राम एव सेना की टुकडियो म साम्यवादी लीग के ये आधारभूत सगठन—सल—पाये जाते है । इनके ऊपर कम्यून, नगर, जिला, प्रान्त या प्रदेशो एव जनवादी गणतन्त्रो के स्तरो पर साम्यवादी दल के सगठन है । सबसे शीष पर 'दल का राष्ट्रीय सगठन' है । प्रत्येक स्तर पर साम्यवादी लीग की कांग्रेस एव कायकारिणी परिषद या केन्द्रीय समिति होती है । सल से सम्बन्धित सभी सदस्यो की केवल सामान्य सभाएँ होती हैं ।

राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवादी लीग का सर्वोच्च अग 'लीग की कांग्रेस' है । इसका कायकाल चार वष है । इसके द्वारा लीग की नीतिया, विधान, कार्यक्रम निर्धारित एव स्वीकृत किये जाते हैं तथा केन्द्रीय समिति के सदस्यो का निर्वाचन किया जाता है । दल की केन्द्रीय समिति दल की कायपालिका होती है । इसके द्वारा दल की

नीति की रूपरेखा तैयार की जाती है और वह कांग्रेस के समक्ष विचार एव स्वीकृति के लिए प्रस्तुत की जाती है। इसके अतिरिक्त समिति विभिन्न महत्वपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक समस्याओ का अध्ययन करती है। केन्द्रीय समिति दलीय विकास के लिए सदव प्रयत्नशील रहती है। दल की एक प्रेसीडियम होती है। इसके अध्यक्ष को सचिव कहा जाता है। साम्यवादी लीग के अध्यक्ष, प्रेसीडियम व कार्य कारिणी समिति एव उसके अध्यक्ष का केन्द्रीय समिति द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

साम्यवादी लीग के विभिन्न स्तरो के दलीय निकाय सदस्यो द्वारा निर्वाचित होते हैं। सभी निकाया द्वारा निणय बहुमत से लिय जाते हैं। दल के विभिन्न पदो पर कोई सदस्य एक साथ दो बार से अधिक काल के लिए निर्वाचित नही हो सकता है। इसका उल्लघन अपवाद ही है। साम्यवादी लीग के सदस्य शासन के विभिन्न सगठनो एव सामाजिक सस्याओ से सक्रिय रूप से सम्बधित होते हैं, वे शासन के विभागो का मागदशन करते हैं। अत यूगोस्लाविया मे दल एव शासन म कोई विभाजक रेखा नही है।

सोशलिस्ट एलायन्स[82]

समाजवादी एलायन्स एक विशिष्ट प्रकार का ऐसा फारम है जहाँ विरोधी विचारा के व्यक्तिया से विचार विमश सम्भव होता है। यह यूगोस्लाविया की स्वशासन पद्धति का सस्थागत रूप है। प्रत्येक नागरिक को अपने प्रस्ताव रखने एव अपने विचार व्यक्त करन के अवसर होते हैं। यह सगठन देश मे समाजवादी आदश की दृष्टि से प्रगतिशील विचारो का प्रचार एव काय करता है। इसके द्वारा श्रम करने वाले सभी पुरुषो एव स्त्रियो को एकता के सूत्र मे आबद्ध कर दिया गया है। 18 वष स अधिक आयु का यूगोस्लाविया का प्रत्यक निवासी इसका सदस्य होता है। एलाय स की स्थापना का आधार सैद्धान्तिक है अर्थात् देश मे समाजवाद की स्थापनाथ समाज के विभिन्न क्षेत्रो मे स्वशासन एव लोकत त्र की स्थापना आवश्यक है। इसी प्रकार उत्पादन मे श्रमिको का सक्रिय योग वाछनीय है। ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि सहकारी फार्मों की लोकतान्त्रिक आधार पर स्थापना समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय स्तर की अपेक्षा सोशलिस्ट एलायन्स की गणतन्त्र, प्रान्त, जिले, नगर एव कम्यून स्तर पर सगठनात्मक इकाइया पायी जाती हैं। प्रत्येक उद्यम, ग्राम एव सेना की टुकडियो मे भी आधारभूत इकाइयाँ होती हैं। इनका सगठन भी साम्यवादी लीग की भाति ही है। राष्ट्रीय स्तर पर एलायन्स का सर्वोच्च अग 'एलायन्स की कांग्रेस' है।

साम्यवादी लीग एव एलायन्स मे घनिष्ठ सहयोग एव सम्पक है। एलायन्स के कार्यों का निर्देशन व्यवहार म लीग द्वारा ही किया जाता है। एलायन्स सामाजिक

---

82 The Socialist Alliance of Working People of Yugoslavia

एव आर्थिक क्षेत्र मे साम्यवादी लीग का सक्रिय अग है । दोनो ही सगठनो म माशल टीटो का प्रमुख स्थान है । स्पष्ट है कि साम्यवादी लीग यूगोस्लाविया मे सोवियत साम्यवादी दल की प्रतिमूर्ति है । माशल टीटो सम्पूण देश के शासन एव दलीय व्यवस्था की धुरी हैं । किसी स्तर पर कोई भी निणय विना दलीय नेतत्व के नही किया जाता है । परन्तु यूगोस्लाविया म सोवियत रूस अथवा साम्यवादी चीन की सी कटटरता का अभाव है । कॉमिनफाम के प्रश्न को लेकर उत्पन्न विवाद के फलस्वरूप यूगोस्लाविया ने स्टालिनकालीन सोवियत रूस का अन्धानुकरण करने से इन्कार कर दिया था । इस निर्भीक कदम के लिए माशल टीटो का व्यक्तित्व एव दृष्टिकोण उत्तर दायी है । माशल टीटो का समाजवादी आन्दोलन म प्रमुख एव महत्वपूण योगदान यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितिया के अनुरूप समाजवाद की स्थापना का प्रयत्न करना चाहिए । उन्ह प्रमुख साम्यवादी देशो की पूछ से बँधकर उपनिवेशा की भाति उनके इशारो पर नही नाचना चाहिए । कामिनफाम सम्बन्धी विवाद के फलस्वरूप यूगोस्लाविया म नवीन चेतना उत्पन्न हुई थी । वहाँ विकेन्द्री करण एव लोकत न्त्र की दिशा म नवीन एव मौलिक प्रयोग हो रहे हैं ।

37

राजनीतिक दल ' बहुदलीय पद्धति

[POLITICAL PARTIES (II)]

कुछ देशो म दो या एक दल के स्थात पर देश की राजनीति मे अनेक दल या छाटे छोटे राजनीतिक गुट सक्रिय होते हैं। इस दलीय स्थिति को बहुदलीय पद्धति कहते हैं। फ्रास एव भारत इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। बहुदलीय पद्धति प्रधान देशो मे अपेक्षाकृत राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त रहती है। ससदीय व्यवस्था वाले देशो मे किसी दल का स्पष्ट बहुमत न होने पर बहुदलीय व्यवस्था के अधीन मिश्रित मन्त्रि-मण्डलो का निर्माण होता है। विभिन्न दल म त्री पदो के लिए आपस मे सौदेबाजी करते है। दलीय अनुशासन शिथिल या समाप्त हा जाता है तथा सदस्या की व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ पर कोई अकुश नही रहता। मिश्रित मन्त्रिमण्डलो की स्थिति कमजोर होती है। प्रधान म त्री शासन का नेतत्व नही कर पाता। ऐसी स्थिति म बहुधा विभि न दला के नेताओ को मिलाकर सम वय समितियो का निर्माण कर लिया जाता है। यह सम वय समितियाँ शासन की नीतियो पर विचार एव निणय करती हैं और बाद मे म न्त्रिमण्डल इन निणयो का केवल स्वीकृति प्रदान कर देता है। यह मन्त्रि-मण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का निषेध है। बहुदलीय पद्धति म म त्रिमण्डला का अल्प कायकाल होता है। कायपालिका दुबल हो जाती है तथा अल्पसख्यक सदस्या या समूहो को अपन अनुपात से अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है और दूरगामी नीतिया एव योजनाओ का निर्माण सम्भव नही हो पाता है। मिश्रित शासन होने के कारण उत्तरदायित्व को निश्चित एव निर्धारित करना कठिन हो जाता है। बहुदलोल पद्धति मे जनता को प्रत्यक्ष रूप से शासन चुनने के अवसर प्राप्त नही होत हैं, न वकल्पिक शासन के दायित्वो को वहन करने योग्य उत्तरदायी एव शक्तिशाली विरोधी दल का निर्माण ही सम्भव होता है। कुछ विद्वान इन दोपो के होत हुए भी बहुदलीय पद्धति के गुणा का उल्लेख करते हैं। वे निम्नवत हैं

(1) बहुदलीय पद्धति स्वाभाविक है। सम्पूण समाज को हम केवल दो वर्गों या विचारधाराओ मे ही वर्गीकृत नही कर सकते अत विभिन्न विचारा की अभिव्यक्ति

बहुदलीय पद्धति मे ही सम्भव है। इस दलीय व्यवस्था के अधीन ही विधानमण्डल मे सभी विचारो को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकता है।

(2) मतदाताओ द्वारा प्रतिनिधियो का चुनाव करने का क्षेत्र बहुदलीय पद्धति मे अत्यधिक विस्तृत हो जाता है।

(3) बहुदलीय पद्धति मे शासन के निरकुश होने की अपेक्षाकृत कम सम्भावना होती है। शासन के लिए विरोधियो के श्रेष्ठ सुझावा की उपेक्षा करना सरल या सम्भव नही होता है।

लास्की की दृष्टि मे बहुदलीय पद्धति की अपेक्षा द्विदलीय पद्धति की श्रेष्ठता का कारण यह है कि द्विदलीय पद्धति के अन्तगत निर्वाचन के समय जनता प्रत्यक्ष रूप से शासन को चुन सकती है।[1]

फ्रास की दलीय व्यवस्था

फ्रास मे बहुदलीय पद्धति है। स्मरणीय है कि किसी देश की राजनीतिक दलीय व्यवस्था और उसके विधायी तथा कायपालक सगठनो मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। फ्रास की राजनीतिक दलीय व्यवस्था का प्रभाव सम्पूण शासनतन्त्र पर पडा है। फ्रेच दलीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत है

(1) फ्रास मे दल बडी सख्या मे हैं। सामान्यत प्रत्यक निर्वाचन मे विभिन्न स्थानीय समूहो के अतिरिक्त 20 राष्ट्रीय दल भाग लेते हैं। तृतीय गणराज्य-काल मे चेम्बर सदन म प्रमुख दला की सख्या करीब 20 थी, चतुर्थ गणराज्य मे यह सख्या 12 थी। पाँचवे गणतन्त्र के विधानमण्डल म केवल आठ प्रमुख दल हैं।

(2) फ्रेंच दलीय व्यवस्था म स्थिरता का अभाव है। दलो का निर्माण एव विघटन बडी तीव्रता स होता रहता है।

(3) दला का सगठन अपेक्षाकृत शिथिल होता है। वामपक्षीय दल सुसगठित हैं लेकिन दक्षिणपक्षीय दलो—उग्रवादी एव स्वतन्त्र दल—के सगठन शिथिल हैं। साम्यवादी एव समाजवादी दलो के सगठन सुदृढ़ हैं, इनकी नीतियाँ दलीय कांग्रेस द्वारा निश्चित की जाती हैं, इन दलो को जन समथन प्राप्त है, यह दल अपने सिद्धान्तो को अधिक महत्व देते हैं तथा सदस्यो को अनुशासनहीनता के लिए निष्कासन का दण्ड दिया जाता है। दक्षिणपक्षीय दला म अनुशासन का अभाव है, फलस्वरूप ततीय एव चतुथ गणराज्या म मन्त्रिमण्डला के शीघ्रता से उत्थान एव पतन होते रहे हैं।

(4) फ्रेंच दलो म अनुशासित स्थानीय एव राष्ट्रीय सगठनो का अभाव होता है। ब्रिटेन, अमेरिका एव भारत के दला की भाँति उनके निश्चित दलीय कायक्रम नही होते हैं और न दलीय सामान्य सिद्धान्त ही होते हैं जो सदस्यो को एकता के सूत्र मे आबद्ध रखें। फ्रास के दला के ससदीय एव सगठनात्मक पक्षा म भी पूण सहयोग

---

1 Laski *A Grammar of Politics*, p 314

नही पाया जाता है। दल के राष्ट्रीय सगठनो का ससदीय पक्ष पर कोई नियन्त्रण नही होता है, अपितु प्रत्येक दल की ससदीय शाखा का यह दायित्व है कि वह मतदाताओं को दिये गये वचनो के पालन हेतु ससदीय सगठन को व्यवस्थित रखे । केवल वाम-पक्षीय दलो के ही स्थानीय सगठन होते है। शेष दलो का कोई स्थानीय आधार नही है। निर्वाचन-काल मे स्थानीय दलीय इकाइयो द्वारा प्रत्याशियो के चयन को न तो दल की राष्ट्रीय समिति द्वारा नियन्त्रित किया जाता है और न ही राष्ट्रीय सभा मे उनके द्वारा दलीय सदस्यो पर ब्रिटेन आदि देशो की भाति अनुशासन रखा जाता है। यह भी आवश्यक नही है कि जो सदस्य जिस दल की टिकट पर चुना गया है वह उसी दल के सदस्यो का साथ दे। यह भी सम्भव है कि सदस्य नवीन दल का गठन कर ले या किसी अन्य दल मे सम्मिलित हो जायें।

फ्रास मे बहुदलीय व्यवस्था तथा उसकी अस्थिरता के कई कारण है। उनमे प्रमुख निम्नवत हैं

(1) फ्रास मे बहुदलीय व्यवस्था फ्रेंच इतिहास की देन है। प्रत्येक शासन के पश्चात उसके कुछ अनुयायी एव सम्बन्धित परम्पराएँ रह जाती थी। धीरे-धीरे ये दल के रूप मे सगठित होते गये। फ्रेंच क्रान्ति से बहुदलीय पद्धति का प्रारम्भ हुआ है। क्रान्ति-काल मे फ्रास मे गणतन्त्रीय एव राजतन्त्रीय दो वग बन गये थे। गणतन्त्र की स्थापना के बाद राजतन्त्रीय वग तीन समूहो म एव गणतन्त्रीय वग दो समूहा म विभाजित हो गये थे।

(2) औद्योगिक विकास ने उपेक्षित एव शोषित सवहारा वग को जन्म दिया, फलस्वरूप समाजवादी दलो की स्थापना हुई। फ्रास मे 1905 ई म समाजवादी दल तथा 1920 ई म साम्यवादी दल का उदय हुआ था।

(3) धम ने भी फ्रास मे बहुदलीय पद्धति के विकास मे योग दिया है। राज्य एव चच के मध्य सम्बन्धो को लेकर फ्रेंच समाज आपस मे विभाजित हो गया था। कैथोलिक सम्प्रदायवादी उग्र, सामान्य एव पादरी विरोधी समुदाया म बँट गये थे।

(4) फ्रेंच जनता स्वभाव से व्यक्तिवादी एव स्वतन्त्रताप्रिय है। यह भी फ्रास मे बहुदलीय पद्धति के विकास का एक कारण है। फ्रेंच मतदाता जब यह अनुभव करत हैं कि कोई दल उनके विचारो का भली प्रकार प्रतिनिधित्व नही कर रहा है तो नवीन दल का निर्माण करने मे उन्हे कोई विलम्ब नही होता है।

(5) कुछ सवैधानिक व्यवस्थाओ ने भी बहुदलीय पद्धति के विकास म योग दिया है, उदाहरण के लिए—चेम्बर ऑफ डेपुटीज (निम्न सदन) का कायकाल निश्चित होता था और वह अपने चार वर्षीय कायकाल के पूव विघटित नही किया जा सकता था। मन्त्रिमण्डल द्वारा ब्रिटेन की भाति चेम्बर ऑफ डेपुटीज को भग करने की माँग नही की जा सकती थी। इस व्यवस्था का यह दुष्परिणाम हुआ कि मन्त्रिमण्डल शक्ति-हीन हो गया और विभिन्न छोटे-छोटे दलो को शासन को उखाड फेंकने की शक्ति

प्राप्त हो गयी। फलस्वरूप फ्रेंच राजनीति मे दलीय समूहो का शीघ्रतापूर्वक निर्माण हुआ है।

फ्रान्स के प्रमुख राजनीतिक दल

फ्रान्स मे निम्नलिखित राजनीतिक दल हैं

साम्यवादी दल—इसकी स्थापना 1920 ई मे हुई थी। इसकी सदस्य सख्या मे तीव्र गति से वद्धि होती रही है और 1947 ई मे इसके 10 लाख सदस्य थे। श्रमिक-सघो पर इसका एकाधिपत्य है। यह वतमान पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध है और मार्क्सवाद लेनिनवाद के सिद्धान्ता मे विश्वास करता है। उत्पादन के साधनो पर सामूहिक स्वामित्व का पक्षपाती है। विदेश नीति मे यह दल सोवियत सघ से मैत्री का समथक तथा नाटो सगठन की सदस्यता का विरोधी है। दल ने अल्जीरिया के राष्ट्रवादी विरोधियो से वार्ता का समथन किया था।

दल का सगठन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण पर आधारित है। महामन्त्री दल का सबसे महत्वपूण पदाधिकारी है। राजनीतिक समिति दल का सर्वोच्च अग है। दलीय अनुशासन कठोर है। 1924-28 ई मे चेम्बर सदन के निर्वाचनो मे दल को केवल 12 स्थान मिले थे। 1936 ई मे इनकी सख्या 30 हो गयी थी। 1946 ई की सविधान सभा मे 159 तथा 1951 ई की राष्ट्रीय सभा मे 103 सदस्य थे। चतुर्थ गणराज्य-काल म यह सबसे अधिक सगठित और अनुशासित दल था। 1956 ई म डिगाल के उत्थान के कारण इस दल का प्रभाव कम हो गया और राष्ट्रीय सभा म इसके केवल 10 सदस्य रह गये हैं।

समाजवादी दल (The Socialist Party)—फ्रान्स का समाजवादी दल ब्रिटिश श्रम दल की प्रतिमूर्ति है। इसकी स्थापना 1879 ई मे हुई थी। 1905 ई म इसका नाम सयुक्त समाजवादी दल रख दिया गया। इसके पूव तक इसे अन्त र्राष्ट्रीय श्रमिक सघ की फ्रेंच शाखा (S F I O) के नाम से पुकारा जाता था। द्वितीय विश्व युद्ध के पूव फ्रेंच राजनीति मे यह सबसे वडा दल था। लेकिन इस दल को आन्तरिक मतभेदो से सर्वाधिक हानि हुई है। 1920 ई म उग्रवादी सदस्य दल से पृथक हो गये, फलस्वरूप यह दल काफी कमजोर हो गया। द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ के पश्चात दल बुरी तरह विभाजित हो गया था। तत्कालीन सदस्य जून 1940 ई की पराजय, विची (Vichy) शासन आदि प्रश्नो पर विभिन्न मत रखते थे। लेकिन लियोन ब्लूम एव विन्सेट ओरियल जैसे कुछ दलीय नेता सदैव ही राष्ट्र एव गणतन्त्र के भक्त बने रहे तथा नाजियो का विरोध करने के लिए राष्ट्र को प्रेरित करते रहे। उन्होने पेंता को शासन देने का विरोध किया था। इसके विपरीत दल म एक वग ऐसा था जो शान्ति को प्राथमिकता देने का समथक एव युद्ध का विरोधी था।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात भी दला म विभेद बने रहे। समाजवादी दल शान्तिवादी एव श्रमिक सघवादी, विकासवादी एव उग्रवादी, चच एव साम्य-

वादियो के पक्षधरो मे विभाजित है अर्थात् उसम विभिन्न पक्ष एव प्रवृत्तिया पायी जाती हैं। दल की एक बडी कमजोरी यह रही है कि यह दल ब्रिटिश श्रम दल की भाँति सदैव से श्रमिको का पक्षधर नही रहा है। सिद्धान्तत समाजवादी दल मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है, वग सघष तथा क्रान्ति के सिद्धान्ता म विश्वास करता है, परन्तु व्यवहार मे दल की नीतियाँ विकासवादी समाजवादियो के सिद्धान्तो पर आधारित हैं। सिद्धान्त एव व्यवहार म यह भेद उसकी कमजोरी का एक अन्य कारण है, देश मे वामपक्षीय साम्यवादी दल की उपस्थिति से उसकी स्थिति पर विपरीत प्रभाव पडा है। शिक्षको एव श्वेत कालर मध्यमवर्गीय जनता तथा उत्तरी फ्रास म श्रमिक जनता पर समाजवादी दल का व्यापक प्रभाव है। इस दल ने सीनेट के उन्मूलन का समथन किया था। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा, राज्य एकाधिकार की वृद्धि, श्रमिक विधियो, कृषि श्रमिको, कास्तकारो एव छोटे स्वामियो के हितार्थ कृषि-सुधारो का भी दल ने उग्र समथन किया है। उग्र वामपथियो के अलावा दल के शेष सदस्य साम्यवादियो से मिलने के पक्षपाती नही हैं।

कार्टर एव हेज के अनुसार समाजवादी दल का सगठन साम्यवादी दल से अत्यधिक भिन्न है। कायपद्धति की दृष्टि से दोनो मे कोई समता नही है। दलीय सगठन के प्रत्येक स्तर पर मतभेद और गुटबन्दी व्याप्त है।[1] दलीय नेताओ को अपने दल के पूण समथन की कोई आशा नही होती है। दल के सगठन और ससदीय पक्ष के सम्बन्ध विवाद का विषय रहे हैं। मूल रूप से यह दल लोकतान्त्रिक है क्योकि दल के सदस्यो को नेताओ की आलोचना करने तथा उन्हे दल से पृथक करने के अधिकार प्राप्त हैं।

फ्रास की राजनीति मे इस दल का विशेष प्रभाव रहा है। लियोन ब्लूम और राष्ट्रपति विन्सेट ओरियल समाजवादी थे। 1946 ई के पश्चात इस दल का प्रभाव कम होने लगा है। 1958 ई मे फ्रेन्च सभा मे इसके केवल 40 सदस्य रह गय थे।

उग्र समाजवादी दल (The Radical Socialist Party)—उग्र समाजवादी दल की स्थापना 1901 ई मे हुई थी। तृतीय गणतन्त्र-काल इस दल का सबस उज्ज्वल समय था। इसके अधिकाश सदस्य मध्यमवर्गीय व्यक्ति थ। द्वितीय विश्वयुद्ध-काल म इस दल ने जमनी का पक्षपोषण किया था। फलत यह देश म लोकप्रिय नही रहा और चतुथ गणराज्य काल म इसकी शक्ति क्षीण हो गयी। लकिन 1951 ई मे इसे असेम्बली म 75 स्थान प्राप्त हुए थे और इस दल के इस काल मे 8 प्रधानमन्त्री बने।

कायक्रम की दृष्टि से प्रारम्भ म यह दल सविधान के सशोधन, एकसदनीय व्यवस्था तथा रेल, खानें और फ्रान्स की बको के राष्ट्रीयकरण का पक्षपाती था, लेकिन

---

[1] Carter, Ranney and Hez *The Government of France*, pp 82-83

धीरे-धीरे इसके समथको मे ग्रामीणो एव कृपको की सख्या बढने लगी। इसका आर्थिक कार्यक्रम उदारवादी हैं। यह वामपथी दल नही है। अधिक से अधिक इसे दक्षिण-वामपथी कह सकते हैं। दलीय सगठन का स्वरूप विकेन्द्रित है। स्थानीय दलीय निकायो को स्वतन्त्रता प्राप्त है। दल वामपथी और दक्षिणपथियो मे विमाजित है। वामपथियो का नेता मडीज फ्रास थे। दक्षिणपथी उदार अर्थ-व्यवस्था के समथक और नियोजन के विरोधी थे।

लोकप्रिय गणतन्त्रीय आन्दोलन—द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात फ्रेन्च राजनीतिक रगमच पर इस दल (M R P) का उदय हुआ था और यह फ्रास के दो प्रमुख राजनीतिक दलो मे से भी एक था। एम आर पी लोकप्रिय लोकतन्त्रीय दल (Popular Democratic Party) का उत्तराधिकारी है। इस दल के साथ फ्रेन्च राजनीति मे प्रथम बार एक बडे एव सुसगठित दल का उदय हुआ था जो विभिन्न बडे दलो मे सन्तुलन कायम रखने तथा कैथोलिक चच की लोकतन्त्रीय एव अद्ध-समाजवादी नीतियो के समन्वय मे सफल हुआ था। इस दल के नेता जॉज विदोल्त, एन्ड्री कोलिन, शूमान, रोबट शूमा, सभी फासीवाद के विरुद्ध सघष करने वाले लोकप्रिय नेता थे एव उन्हे जनरल डिगाल का आशीर्वाद प्राप्त था। 1945 ई के निर्वाचन म इस दल को 151, 1946 ई मे 166, 1951 ई म 85 एव 1957 ई मे 72 और 1958 ई के निर्वाचनो मे केवल 59 स्थान प्राप्त हुए थे। यह दल धीरे धीरे अपना प्रभाव खोता चला गया। इस दल मे कथोलिका का बहुमत है तथा समाजवादी इस दल को सन्देह की दृष्टि से देखते है।

यह कोई धार्मिक दल नहीं है परन्तु फिर भी ईसाई आदर्शों एव सिद्धान्तो से प्रभावित है। यह दल वग सघर्ष का विरोधी है तथा कमचारियो एव मालिको के सम्बन्धो को न्यायपूवक सुलभाने का समथक है। वे पूजीवाद का अन्त करना पूँजीवाद का समाधान नहीं मानते। वे समाज म सगठन एव सस्थाओ मे परिवतन क साथ साथ वैयक्तिक नैतिकता के सुधार के भी पक्षपाती हैं। दल का आधुनिक उदारवाद के कुछ सिद्धान्तो म विश्वास है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता एव लोकतन्त्र इसके मूल मन्त्र हैं। सामाजिक एव आर्थिक विषयो म यह उग्रवादियो की अपेक्षा वामपक्ष की ओर अधिक भुका हुआ है। इसका कामक्रम समाजवादियो से बहुत अधिक भिन्न नही है अपितु उनके समान ही है। दल राष्ट्रीयकरण एव सामाजिक सुरक्षा की नीति का समथक है। विदेश नीति के क्षेत्र मे दल यूरोपीय एकीकरण एव अविकसित क्षेत्रो की सहायता का समथक है। अलजीरिया के प्रश्न पर यह दल डिगाल की नीति से सहमत था। सिद्धान्तत दल पूजीवाद एव सर्वाधिकारवादी (totalitarian) विचारो को अस्वीकार करता है एव शान्तिपूण लोकतान्त्रिक सुधारो की नीति म आस्था रखता है। काटर एव हेज के अनुसार यह दल चतुथ गणराज्य का मुख्य आधार था। स्वतन्त्रता क पश्चात प्रत्येक फ्रच मन्त्रिमण्डल म यह दल शामिल रहा है और विदेश-

मन्त्रालय पर इस दल का एकाधिकार था। लियोन ब्लूम के समाजवादी मन्त्रिमण्डलो को छोडकर रोबर्ट शूमा एव बिदोल्त के रूप मे यह अनेक फ्रेंच मन्त्रिमण्डलो को प्रधानमन्त्री प्रदान करता रहा है। बिदोल्त का तो यहा तक विश्वास था कि भविष्य म यह दल बहुमत की धुरी प्रमाणित होगा।[3]

दक्षिणपथी या अनुदार दल—दक्षिणपथी दलो म सबसे महत्वपूर्ण दल French People's Rally (R P F) है। इसे फ्रेंच भाषा मे 'Rassemblement du Peuple Francais' कहते हैं। जनरल डिगाल इसके सस्थापक थे। डिगाल चतुर्थ गणतन्त्रीय सविधान से अत्यधिक असन्तुष्ट थे अत उन्होने अप्रैल 1947 ई म इस दल की स्थापना की थी। फ्रेंच राजनीति मे डिगाल का प्रादुर्भाव 1940 ई म हुआ था। फ्रास के जर्मनी द्वारा पराजित होने पर उन्होने यह घोषणा की थी कि 'फ्रास एक लडाई मे हारा है, युद्ध म पराजित नही हुआ है।' 1947 ई तक इस दल की सदस्य-सख्या करीब 10 लाख थी। 1947 ई के स्थानीय शासन के निर्वाचनो मे दल को कुल मतदाताओ के चालीस प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। 1948 ई के गणतन्त्र परिषद के निर्वाचनो मे दल को असाधारण सफलता प्राप्त हुई थी। 1951 ई से दल म मतभेद बढने लगे। डिगाल दल के शासन म शामिल होने के समर्थक नही थे। उनकी इच्छा के विपरीत कुछ सदस्य इस नीति के विरोधी थे। 1952 ई म कुछ सदस्य दल से पृथक हो गये और उन्होंने 'सामाजिक एव गणतन्त्रीय सघ' के नाम से एक नवीन दल का गठन किया। 1953 ई के स्थानीय शासन के निर्वाचनो म दल को बडी असफलता का सामना करना पडा था। 1956 ई तक दल किसी प्रकार चलता रहा। डिगाल दल से पृथक हो गये थे। 1956 ई मे दल ने सामाजिक गणतन्त्रीय दल के रूप म निर्वाचनो मे भाग लिया। फ्रास मे धीरे धीरे डिगालवाद प्रबल होता गया था और 1956 ई तक डिगाल फ्रेंच राजनीति पर पूरी तरह छा चुके थे।

1958 ई के निर्वाचनो के कुछ सप्ताह पूर्व डिगालवाद समर्थक विभिन्न राजनीतिक समूहो को सम्मिलित करके नवीन गणतन्त्रीय सघ (Union of the New Republic—U N R) नामक दल की स्थापना की गयी। सामाजिक गणतन्त्रीय दल इसका ही एक अग बन गया था।

डिगाल के दक्षिणपथी दल आर पी एफ (R P F) म फासीवादी विचार-धारा के कुछ तत्व थे। इसने एक साथ राष्ट्रीय उत्थान एव सामाजिक क्रान्ति, व्यय के

---

3 पहले दक्षिणपथी दलो से तात्पर्य राजतन्त्रीय दलो से था। आज राजतन्त्रीय व्यवस्था का कोई समर्थन नही करता है। अत सर्वाधिकारी निरकुशतन्त्रीय व्यवस्था मे विश्वास करने वाले दल दक्षिणपथी दल कहलाते हैं। एस अनुदारवादी दलो की एक विशेषता यह होती है कि वे परम्परा क समर्थक होते हैं। उग्र दक्षिणपथी दलो म फासीवादी या फासीवाद-समर्थक दलो को शामिल जाता है।

दलीय झगडो को समाप्त करके सबल शासन की स्थापना और दबाव समूहो एव वर्गीय हितो की तुलना म राज्यसत्ता को महत्व देने पर बल दिया था। आर पी एफ मे यह विचार मान्य है कि नेता सदैव ठीक होता है एव दलीय नेताओ को समाज के प्रबन्धकीय या कुलीन वग से चुना जाना चाहिए। साथ ही साथ दल समाज के निधन वग के उत्थान का भी पक्षपाती है।

समीक्षा

विगत 30 वर्षों मे फ्रेन्च राजनीतिक दलो के स्वरूप मे कोई आधारभूत परिवतन नही हुआ है। बहुदलीय पद्धति फ्रेंच राजनीति की मुख्य विशेषता है। प्रधान रूप से फ्रेच दलो को तीन—वामपथी, दक्षिणपथी, एव मध्यममार्गी—वर्गों मे विभाजित किया जाता है। इन दलो मे भी उग्र एव उदार तथा मध्यवर्ती दल हैं। इस आधार पर फ्रेच दलीय व्यवस्था का एक सामान्य वर्गीकरण निम्नत है
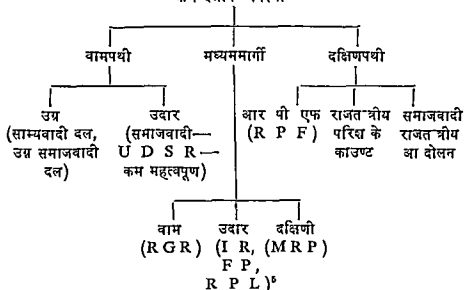
सभी फ्रेंच दलो मे आन्तरिक विरोध एव गुटबन्दी व्याप्त है। दलीय बहुलता एव गुटबन्दी के कारण ही चतुर्थ गणराज्य का अन्त हुआ था। अधिकाश दल सुसगठित नही हैं। दलो के सगठनात्मक एव ससदीय पक्षो मे कोई सावयवी एकता नही पायी जाती है, फलस्वरूप दलीय व्यवस्था का आधार ही धराशायी हो जाता है। विधायका को स्थानीय शासन मे अन्य पदो को ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त है, अत विधायको की दृष्टि मे राष्ट्रीय एव व्यापक समस्याएँ गौण हो जाती हैं तथा

4 केवल मुख्य मुख्य दलो का ही इस वर्गीकरण मे उल्लेख किया गया है।

5 Independent Republicans (I R) The Farmers Party (F P) The Republican Party of Liberty (R P L)

अनेक दलो के सक्रिय रहने के कारण बहुदलीय पद्धति का विकास हुआ है। इसके कई कारण है, यथा—(1) देश की विशालता एव भाषा, धम एव क्षेत्र सम्बन्धी विभिन्नताएँ, (11) वैचारिक विभेद, (111) स्वतन्त्रता के पूव विभिन्न सम्प्रदायो म पारस्परिक अविश्वास एव सन्देह, तथा (1V) पृथक निर्वाचन की पद्धति। स्वतन्त्रता के पूव अखिल भारतीय स्तर पर काग्रेस, मुसलिम लीग, हिन्दू महासभा और उदारवादी प्रमुख दल थे। प्रान्तीय दलो मे पजाब का यूनियनिस्ट दल, मद्रास की जस्टिस पार्टी, खुदाई खिदमतगार, अकाली दल, बगाल का कृषक प्रजा दल एव बम्बई का लोकतान्त्रिक स्वराज्य दल प्रमुख थे। स्वतन्त्रता के बाद अखिल भारतीय और प्रान्तीय दलो मे तीव्रता से वृद्धि हुई।

यद्यपि बहुदलीय पद्धति का भारत मे विकास हुआ है, लेकिन अखिल भारतीय स्तर पर कांग्रेस देश का सबसे शक्तिशाली दल है। विगत 28 वर्षों से देश की राजनीति पर काग्रेस का एकछत्र आधिपत्य है। चतुथ निर्वाचन के पश्चात यद्यपि कुछ राज्यो मे गैर काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो का निर्माण हुआ था लेकिन केन्द्र मे कांग्रेस की ही सत्ता रही थी। अत भारतीय दलीय पद्धति को एकल प्रबल दलीय पद्धति कहते हैं। यह न केवल केन्द्र के सम्बन्ध मे अपितु तमिलनाडु के सम्बन्ध मे भी सत्य है।

2 **दलीय नेतृत्व की प्रधानता**—भारतीय दलो में नेता का प्रमुख स्थान होता है। स्वतन्त्रता के पूव भी यही स्थिति थी। 1947 ई तक काग्रेस दल म महात्मा गाधी की स्थिति प्रमुख थी, चाहे वे दल के सदस्य रहे या नही। स्वतन्त्रता के बाद जवाहरलाल नेहरू और वतमान मे इन्दिरा गाधी का दलीय नेतृत्व मे प्रधान स्थान है। अन्य दलो की भी स्थिति यही थी। उदाहरणाथ, स्वतन्त्रता के पूर्व मुहम्मदअली जिन्ना मुसलिम लीग के सर्वेसर्वा थे। स्वतन्त्र भारत मे जनसघ मे स्वर्गीय श्यामाप्रसाद मुकर्जी और उनके पश्चात स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय की स्थिति केन्द्रीय थी। स्वतन्त्र पार्टी मे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, भारतीय क्रान्ति दल मे चौ चरणसिंह और द्रमुक म स्वर्गीय अन्नादुराई (वतमान म श्री करुणानिधि) की स्थिति केन्द्रीय है। सक्षेप म, सम्पूण दल दलीय नेतृत्व के चारो ओर चक्कर मारता है।

3 **सुदृढ़ एव सशक्त विरोधी दल का अभाव**—बहुदलीय पद्धति एव कांग्रेस के प्रबल बहुमत के कारण सशक्त एव सुसगठित विरोधी दल का निर्माण नही हुआ है। फलस्वरूप व्यवहार मे देश म एकदलीय—कांग्रेस का—शासन सा स्थापित हो गया है।

4 **आन्तरिक गुटबन्दी**—प्राय प्रत्येक भारतीय दल म मतभेद और गुटबन्दी विद्यमान है। उदाहरण के लिए, इसी मतभेद क फलस्वरूप कांग्रेस का विघटन हुआ है। जनसघ स बलराज मधोक पृथक हो गये। साम्यवादी दल भी भारतीय साम्यवादी और साम्यवादी मार्क्सवादी दल म विघटित हो गया है। द्रमुक

भी दो दलो मे विभाजित हो गया था और अन्ना द्रमुक नामक नवीन दल का निर्माण हुआ है। स्वतन्त्र पार्टी से गुजरात मे सी सी देसाई पृथक हो गये थे। इस गुटबन्दी के प्रमुख कारण हैं व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा, प्रतिस्पर्धा, वैचारिक मतभेद और सत्ता-प्राप्ति की होड। यही दल-बदल के कारण हैं। चतुर्थ निर्वाचन के पश्चात देश मे 'आया राम गया राम' का ऐसा युग आ गया था कि अनेक राज्यो म राजनीतिक अस्थिरता एव भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया था।

5 अलोकतन्त्रीय दलीय सगठन—के सथानम[6] का मत है कि दलो का सगठन और कार्य पद्धति देश की वर्तमान सघीय समदीय व्यवस्था के अनुरूप नही है। पुराने दला ने इसके अनुरूप सगठन और काय-पद्धति मे कोई परिवतन नही किया है।

कुछ नवीन दलो—जनसघ एव स्वतन्त्र दल—ने भी अन्य दलो की भाति ही अपन दलीय सगठन स्थापित किय हैं। यह सभी दल 'लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण' की साम्यवादी धारणा पर आधारित है जहा सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की तरफ होता है, यद्यपि इन्हे लोकप्रिय आधार का रूप प्रदान किया गया है। द्रमुक (तमिलनाडु) जैसे दल इसका अपवाद है। 'इन तथाकथित राष्ट्रीय राजनीतिक दलो का प्रधान दोष यह है कि यह न तो लोकतन्त्रीय हैं, न सघीय, न आज्ञाकारी (loyal) और न अनुशासित। शीर्षस्थ दलीय कार्यपालिका का दल पर अधिनायकत्व होता है और इसे हाईकमाण्ड की सज्ञा दी जाती है।' जिस राज्य मे जो दल सत्ता मे होता है वहाँ मुख्य मन्त्री एव अन्य मन्त्रियो को दलीय नेताओ द्वारा ही मनोनीत किया जाता है। दलीय नेतत्व मन्त्रिमण्डल को निम्न एव अधीनस्य अभिकरण मानता है। काग्रेस हाईकमाण्ड द्वारा राज्यो के दलीय सगठनो को भग करके उनके स्थान पर तदर्थ समितियाँ नियुक्त की जाती हैं। इसके अतिरिक्त दल के सगठनात्मक पक्ष एव ससदीय पक्ष के मध्य सम्बन्ध अस्पष्ट हैं। कही कही तो वे ठीक उल्टे या विपरीत हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व दला का सगठनात्मक पक्ष प्रबल एव शक्तिशाली था। उस समय ऐसा होना स्वाभाविक था। दल उस समय लडाकू थे और प्राय सभी दल देश की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध म एकमत थे। लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात स्थिति बदल गयी है। दला क प्रमुख नता ससद या विधानमण्डलो के सदस्य चुने गये हैं। एसी स्थिति म सगठनात्मक पक्ष की प्रधानता अनुचित है। यह वास्तविकता की उपेक्षा है। सत्य तो यह है कि दल का सगठनात्मक पक्ष यदि ससदीय पक्ष से प्रबल रहता है, तो उसके द्वारा ससदीय कार्यों म अनुचित हस्तक्षेप किये जायेंगे एव ससदीय नेता सगठन या दलीय नताओ क निर्देशो का अनुगमन मात्र करते रहेंगे। यह व्यवस्था साम्यवादी दलीय पद्धति का अनुगमन मात्र होगी।

---

6 Santhanam, K "Political Parties and Indian Democracy," *Indian Parties and Politics*, 1972, pp 1 3

भारतीय दलो का वर्गीकरण

मारत के विमिन्न दलो का निम्न वर्गीकरण सम्भव है—(1) अखिल मारतीय दल—काग्रेस शासकीय, काग्रेस सगठन, जनसघ, स्वतन्त्र एव साम्यवादी दल, (2) क्षेत्रीय या राज्य स्तरीय दल—भारतीय क्रान्ति दल, द्रमुक, विशाल हरियाणा पार्टी, केरल काग्रेस, उत्कल कांग्रेस आदि, (3) जातीय, वर्गीय एव धार्मिक दल (मुसलिम लीग, अकाली दल), (4) साम्प्रदायिक दल (हिन्दू महासमा, मुसलिम लीग, राम राज्य परिषद)। इस वर्गीकरण के अतिरिक्त दलो को वामपथी एव दक्षिणपथी वर्गों मे मी विभाजित कर सकते है। साम्यवादी एव समाजवादी दल वामपथी हैं तथा स्वतन्त्र एव जनसघ और अन्य समी साम्प्रदायिक दल दक्षिणपथी दल हैं। इसके अतिरिक्त कुछ एसे दल हैं जो इन दोनो वर्गों मे नही आते है। इन दलो की नीतियो म दोना प्रकार की नीतियो—दक्षिण एव वामपथी—का समन्वय मिलता है। अत इन्हे केन्द्रीय (Centerist) दल कह सकते हैं। काग्रेस (शासकीय) एव सगठन कांग्रेस इसी श्रेणी मे हैं। इन तीनो प्रकार के दलो को भी वाम एव दक्षिण श्रेणियो मे पुन वर्गीकृत करने से स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है। निम्नाकित रेखाचित्र से भारतीय दलो का वर्गीकरण स्पष्ट हो जाता है—
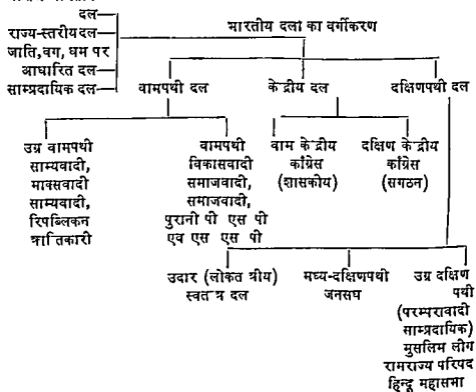
प्रमुख भारतीय दल

अखिल भारतीय कांग्रेस—यह देश का सबसे पुराना और प्रभावशाली दल है। इसकी स्थापना 1885 ई म हुई थी। भारतीय स्वत त्रता के सघष मे इस दल ने प्रधान भूमिका निभाई है। प्रारम्भ म कांग्रेस ब्रिटिश शासन के अ तगत सुधार की पक्षपाती थी। उस समय इसकी नीति ब्रिटिश शासन से प्रशासन म सुधारो की प्राथना करना था। उग्रवाद के उदय के साथ इसने स्वराज्य के आदश को अपनाया। तिलक ने *'स्वत त्रता हमारा ज मसिद्ध अधिकार है'* का शखनाद किया। *1920* ई मे गाधीजी के नेतत्व के प्रारम्भ के साथ काग्रेस जन-सस्था बन गयी और उसने स्वत त्र आ दोलन का नेतत्व किया। यह दल राष्ट्रवाद, लोकत त्र और घम निरपेक्षता का पक्षपाती है। साम्प्रदायिकता का इसने डटकर विरोध किया। 1947 ई तक काग्रेस का मुख्य उद्देश्य स्वत त्रता प्राप्ति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लडना था। अत छोटे छोटे मतभेद सतह पर उभर कर न आ सके। लेकिन स्वत त्रता के बाद इस स्थिति का कायम रहना असम्भव था। फलत समाजवादी कांग्रेस से पृथक हो गये। इसी प्रकार व्यक्तिवादी उदार विचारधारा वाले श्री राजगोपालाचारी और के एम मुशी ने स्वत त्र *दल का निर्माण किया।*

कांग्रेस म सदैव ही आ तरिक मतभेद रहे हैं और वे समय समय पर उभरते रहे हैं। इस प्रकार का पहला विस्फोट 1907 ई मे सूरत कांग्रेस अधिवेशन म हुआ था और उग्रवादी कांग्रेस से पृथक हो गये थे। इसी प्रकार पट्टाभि-सुभाष-सघष काग्रस मे गुटब दी की दूसरी प्रमुख घटना थी। सुभाष और उनके समथक कांग्रेस से पृथक हो *गये। तीसरा अ तिम विघटन 1969* ई मे *हुआ और* काग्रेस *तथा सगठन* काग्रेस का ज म हुआ। यह केवल व्यक्तित्वो का ही सघष न था अपितु एक सैद्धा तिक सघष था। कांग्रेस के सगठन पक्ष पर एक विशिष्ट विचारधारा के समथको का अधिकार था। इस वग के नेता लोकत त्र एव नियोजित विकास मे विश्वास तो करते थे पर तु उग्र समाजवादी नही थे। उन पर दक्षिणपथी दलो से मिल जाने के आरोप लगाये *गये। इसके विपरीत, इ दिरा* गाधी दूसरे पक्ष का नेतत्व कर रही थी। वे प्रधानम त्री और ससदीय पक्ष की प्रधान थी तथा लोकता त्रिक समाजवाद की स्थापना के प्रति कृत सकल्प थी। इस सघष मे इ दिरा गाधी विजयी हुई। कांग्रेस दल दो दलो—काग्रेस शासकीय एव सगठन कांग्रेस—म बँट गया। 1971 ई एव 1972 ई के निर्वाचना मे शासकीय कांग्रेस को भारी जन-समयन प्राप्त *हुआ। शासकीय कांग्रेस का* राष्ट्रवाद, लोकत त्र, धम निरपेक्षता, असाम्प्रदायिकता एव समाजवाद म दृढ विश्वास है। लेकिन वग सघष एव हिंसा म इसका विश्वास नही है। दल सामाजिक परिवतन के लिए *हिंसात्मक क्रा ति का समथक नही* है। स्वत त्रता के पूव कांग्रेस शा तिपूण अर्थात अहिंसात्मक कार्य-पद्धति म विश्वास करती थी। वतमान म 'मत द्वारा परिवतन' मे दल की आस्था है। यह दल श्रमिको, पददलितो

एव शोषित वग तथा अल्पसख्यको के हितो का समथन करता है। आर्थिक विकास क लिए नियोजन मे विश्वास रखते हुए दल मिश्रित अथ-व्यवस्था की नीति को मानता है तथा भारी उद्योगा के औद्योगीकरण का पक्षपाती है। कांग्रेस (शा) ने नरेशो क प्रीवीपस का उन्मूलन किया है। विदेश-नीति म विश्व-शान्ति एव सयुक्त राष्ट्र सघ तथा गुट-निरपेक्षता का समथक है।

कांग्रेस का सगठन—कांग्रेस का सगठन पिरामिडाकार है। इसके शीष पर कांग्रेस अध्यक्ष होता है। स्वतन्त्रता के पूव इसे राष्ट्रपति कहते थे। कांग्रेस अध्यक्ष के अतिरिक्त केन्द्रीय दलीय सगठन के चार अन्य अग हैं—कांग्रेस कायकारिणी, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, कांग्रेस ससदीय बोड एव केन्द्रीय निर्वाचन समिति। कांग्रेस अध्यक्ष नवीनतम दलीय नियमा के अनुसार तीन वष के लिए निर्वाचित होता है। कांग्रेस कायकारिणी मे कांग्रेस अध्यक्ष एव 20 अन्य सदस्य होते हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति दलीय ससद है। सिद्धान्तत कांग्रेस कार्यकारिणी इसी के प्रति उत्तरदायी होती है। कायकारिणी मे दल के मुख्य नेता होते हैं, कई सदस्य तो काफी लम्बे समय तक इसके सदस्य बने रहे हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति म तीन प्रकार के सदस्य होते हैं—निर्वाचित, पदेन एव सम्बद्ध सगठनो के प्रतिनिधि।

केन्द्रीय ससदीय बोड मे कांग्रेस अध्यक्ष एव पांच अन्य सदस्य होते हैं। इसका काय दल की ससदीय क्रियाओ का नियन्त्रण एव समन्वय करना तथा उस व्यवस्थित करना है। केन्द्रीय निर्वाचन समिति निर्वाचन-काल मे सक्रिय रहती है एव दलीय उम्मीदवारो का अन्तिम रूप से चयन करती है।

राज्य-स्तर पर भी दलो का सगठन इसी प्रकार का होता है। सबसे नीचे ग्राम, मुहल्ला, शहर, ताल्लुका एव तहसील-स्तर पर दलीय सगठन होते हैं। इनके ऊपर जिला कांग्रेस समितियाँ होती हैं। प्रदेश कांग्रेस समिति एव जिला समिति के बीच मे क्षेत्रीय समितियाँ होती हैं।

कांग्रेस मे सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर है। सत्ता चोटी के नेताओ के हाथो मे केन्द्रित होती है। सभी निणय शीष स्तर पर किये जाते हैं, छोटे एव निम्न दलीय सगठना का मत प्राय नही लिया जाता है। सथानम का मत है कि साम्यवादी दलीय सगठन एव कांग्रेस के दलीय सगठन मे कोई विशेष अन्तर नही है। एक अन्तर हिंसा का अवश्य है, परन्तु यह अन्तर विशेष महत्व का है। अत कांग्रेस नेतृत्व को जन समथन प्राप्त करने एव विभिन्न मामलो मे जनता की प्रतिक्रिया जानने हेतु अपने दल के ग्राम स्तर से जिला-स्तर तक के सगठना का सहयोग एव विश्वास नीति-निर्माण के पूव प्राप्त करना चाहिए। कांग्रेस कायपद्धति से सम्बन्धित एक प्रश्न और है कि कांग्रेस काय-समितियो एव कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो अर्थात् दल के सगठन एव ससदीय पक्ष म क्या सम्बन्ध होने चाहिए ? स्वतन्त्रता के पूव तो दृढ अनुशासन की दृष्टि से कांग्रेस दल का नियन्त्रण वाछनीय था। परन्तु सविधान के लागू होने पर

ससदीय व्यवस्था की दृष्टि से यह एक महत्वपूण प्रश्न बन गया है। इसी समस्या को लेकर कांग्रेस मे सघष हुए हैं। *1949-50* ई म श्री जे बी कृपलानी कांग्रेस के अध्यक्ष थे। अपने पद से इन्होंने इस कारण त्यागपत्र दिया था कि वे शासन पर नियन्त्रण की दृष्टि से शक्तिहीन थे। श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन के कांग्रेस अध्यक्ष बनने पर *इसी प्रकार की आशका पुन उठ खडी हुई। पण्डित* नेहरू इस समय प्रधान म त्री भी थे नेहरू एव टण्डन मे अनेक बातो मे मतभेद थे। नेहरू जी ने टण्डन जी के पदारूढ होने पर नासिक सम्मेलन म अपने शासन की नीतियो म दल के विश्वास को प्राप्त करने की माँग रखी। दल ने तुर त ही उनकी नीतियो मे विश्वास प्रकट कर दिया। लेकिन फिर भी टण्डन जी को अपने कायकाल के बीच मे ही पद से हटना पडा था। इस समस्या का केवल एक यही समाधान है कि सगठन पक्ष को ससदीय पक्ष के मामलो मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। सगठन पक्ष को दलीय प्रचार एव निर्वाचन तक अपने को सीमित रखना चाहिए।

भारतीय साम्यवादी दल—इसकी *स्थापना 1925 ई मे हुई थी। यह* माक्सवादी लेनिनवाद के सिद्धा तो पर आधारित है। 1926 27 ई के पश्चात दल ने श्रमिको एव कृषक-आ दोलनो का सगठन किया था। 1935 ई मे दल मे केवल एक हजार सदस्य थे। 1943 ई म यह सख्या बढकर 16 हजार तथा 1947 ई मे 90 हजार हो गयी थी। स्थापना के समय से ही दल को अवध घोषित कर दिया गया था, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध काल म पश्चिमी राष्ट्रो से सोवियत रूस की मैत्री हो जाने के कारण साम्यवादी दल पर से सभी प्रतिब ध उठा लिये गये थे और दल शासन के युद्ध सम्ब धी कार्यों का समर्थन करने लगा था। दल ने 1942 ई के 'भारत छोडो' आ दोलन का समथन नही किया। फलस्वरूप उ हे कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया।

स्वत त्रता के पश्चात साम्यवादी दल म दो गुट बन गय थे। एक गुट तो अग्रेजो द्वारा सत्ता के हस्ता तरण को वास्तविक मानता था और नेहरू सरकार का समर्थक था। पी सी जोशी इसी मत के थे। लेकिन बी टी रणदिवे इसके विरुद्ध थे। उनका दल मे बहुमत था। जोशी को दल स निष्कासित कर दिया गया। रणदिवे के नेतत्व मे वामपथी हिंसात्मक नीति का अनुगमन किया गया। तेलगाना हिंसात्मक किसान छापामार युद्ध सगठित किया गया। फलत दल के अनेक नेताओ को ब दी बनाया गया।

1951 ई मे रणदिवे को दल के महासचिव पद से हटा दिया गया और एस के डागे उनके स्थान पर महासचिव बनाये गये। उ होंने हिंसात्मक रणनीति की नि दा की।

1952 ई के प्रथम निर्वाचन मे साम्यवादियो को लोकसभा म 27 स्थान और विभिन्न राज्य विधानमण्डलो मे 181 स्थान प्राप्त हुए थे।

1956 ई के निर्वाचनो मे साम्यवादियो को लोकसभा मे 29 स्थान मिले थे। केरल मे साम्यवादी सरकार का निर्माण हुआ था। पश्चिमी बगाल और आन्ध्र में वह प्रमुख विरोधी दल था।

भारत चीन सीमा विवाद एव भारत पर चीन के आक्रमण के फलस्वरूप दल दो वर्गों मे विभाजित हो गया। श्री डागे ने सीमा विवाद म भारत का समथन किया और चीनी साम्यवादी आक्रमण की निन्दा की। इसके विपरीत, कुछ नेता चीन समथक दृष्टिकोण भी रखते थे। अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे भी साम्यवादी दो गुटो मे बँट गये थे—सोवियत समथक और चीन समथक। भारतीय साम्यवादी दल ने सोवियत रूस का साथ दिया। पश्चिमी बगाल साम्यवादी दल ने चीन के साम्यवादी दल का समथन किया। फलस्वरूप 1964 मे दल विघटित हो गया और ए के गोपालन और नम्बूदरीपाद जैसे उग्र वामपथी नेताओ ने नये दल का निर्माण किया। इसे साम्यवादी मार्क्सवादी दल कहते हैं। दोनो दलो मे अनेक बातो मे मतैक्य है। उदाहरण के लिए, दोनो ही बैंको, विदेशी व्यापार व एकाधिकारी पूजी के राष्ट्रीयकरण एव सार्वजनिक क्षेत्र तथा राज्य व्यापार के समथक हैं। दोनो मे अनेक प्रश्नो पर मतभेद हैं, यथा—साम्यवादी मार्क्सवादी दल श्रमिको को ही क्रान्ति का नेता मानता है, जबकि साम्यवादी दल सामाजिक क्रान्ति के लिए अन्य वर्गों के सहयोग को भी आवश्यक मानता है। मार्क्सवादी वतमान शासन को अपदस्थ करने के लिए 'जनता के लोकतान्त्रिक मोर्चा' के सगठन के पक्षपाती हैं, जबकि साम्यवादी दल ने इस सम्बन्ध मे कोई मत व्यक्त नही किया है। मार्क्सवादी दल भारत-चीन सीमा विवाद को शान्तिपूवक निपटाने पर बल देता है, जबकि साम्यवादी दल सीमा-विवाद के सम्बन्ध मे भारत सरकार का समथन करता है। 1967 68 ई म मार्क्सवादी दल मे मतभेद उत्पन्न हो गये हैं। दल के उग्रवादी सदस्यो ने 'ससदवाद के द्वारा समाजवाद' की स्थापना में सन्देह व्यक्त किया और उन्होने इसके विपरीत कृषक विद्रोह एव सशस्त्र विद्रोहो के सगठन एव इस सम्बन्ध म चीनी साम्यवादी दल का अनुगमन करने पर बल दिया है। फलस्वरूप बगाल मे उग्रवादी मार्क्सवादियो ने एक नये दल का गठन किया था। इस दल का नाम भारतीय साम्यवादी (मार्क्सवादी लेनिनवादी) दल है। ये उग्रवादी नक्सलपथी थे। उग्रपथी माओवादी थे। आन्ध्र के उग्रपथी उपरोक्त दल मे शामिल नही हुए। उन्होने आन्ध्र म श्रीकाकुलम् जिले मे शक्तिशाली आन्दोलन सगठित किया था। केरल मे कोसलाराम ने इसी तरह का एक नया दल सगठित किया। स्वर्गीय चारु मजूमदार मार्क्सवादी-लेनिनवादी दल (नक्सलपथी) के अध्यक्ष थे। वे माओ त्से तुग स प्रभावित थे। मार्क्सवादी-लेनिनवादी दल उग्रपथी है। ससदीय व्यवस्था म उनका विश्वास नही है और न मत द्वारा परिवतन म उनकी कोई आस्था है।

अत देश मे आज तीन मुख्य साम्यवादी दल हैं साम्यवादी दल, साम्यवादी

(माक्सवादी) एव साम्यवादी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी नक्सलपथी)। इनमे प्रथम ससदीय दल हैं। सोवियत एव चीनी साम्यवादी दल की माति भारतीय साम्यवादी द के सगठन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण पर आधारित है। दल मे महामन्त्री की स्थि केन्द्रीय है।

भारतीय जनसघ—स्वर्गीय डा श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने 1951 ई मे भारत जनसघ की स्थापना की थी। यह दल लोकतन्त्र, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, भूमि सुधा जमीदारी उन्मूलन, स्वदेशी एव आत्मनिर्भरता, विना शत विदेशी सहायता, गोव निषेध, आर्थिक एव प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण उद्योगो मे निजी स्वामित्व एव उन प्रोत्साहन, असमानताओ के उ मूलन के लिए कराधान, अल्पसख्यको के प्रति उचि व्यवहार, भारत के साथ कश्मीर के पूण विलय, परिगणित जातियो के उत्थान, हि को राष्ट्रभाषा पदपर प्रतिष्ठित करने एव नि शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा, सुदृढ विदेश-नीी राष्ट्रमण्डल म भारत की स्थिति के सम्बन्ध मे पुनर्विचार का समयक है। अख मारत एव विभाजन को समाप्त करने की माग दल ने अपने द्वितीय निर्वाचन के सम की थी। पाकिस्तान के प्रति दल का दृष्टिकोण उग्र एव कठोर है। जनसघ के 1971 के घोषणा पत्र के अनुसार दल सहिष्णुता का पक्षपाती एव सभी धर्मों के सम्मान क समयक है। इसके अतिरिक्त इस दल ने सामाजिक आर्थिक कायक्रम म मूल्य स्थिरत के लिए आयोग की स्थापना विदेशी सहायता ब द करने, साम्पत्तिक अधिकार व सुरक्षा, 14 वप तक के बालको को नि शुल्क शिक्षा, स्त्रियो को समान अवसर, विदेश बैंको के राष्ट्रीयकरण, आणुविक अस्त्रो के निर्माण, छोटे एव मध्यम उद्योगो को प्रोत्स हन का भी समथन किया था।

प्रथम निर्वाचन म जनसघ को लोकसभा मे केवल तीन स्थान प्राप्त हुए थे 1957 ई म लोकसभा म 4, 1962 ई मे 14, 1967 ई म 31 स्थान तथा राज्य विधानमण्डलो मे 176 स्थान प्राप्त हुए थे। चतुथ निर्वाचन मे भी कुछ राज्या जनसघ को काफी सफलता प्राप्त हुई थी। जनसघ उत्तरी भारत के हिन्दी प्रदेशा ही अधिक लोकप्रिय है। लेकिन 1967 ई के पश्चात दल को आन्ध्र एव मसूर राज्य मे भी विधानमण्डलो के निर्वाचनो मे सफलता मिली थी। 1971 ई मे जनसघ ने सगठन कांग्रेस, ससोपा एव स्वतन्त्र दल से निर्वाचन सम्बन्धी गठबन्धन किये थे लोकसभा मे 1971 ई के निर्वाचनो मे जनसघ की सदस्य सख्या केवल 22 एव राज्य विधानमण्डलो मे 102 रह गयी थी। 1967 ई के निर्वाचना मे दिल्ली के केन्द्र प्रशासित क्षेत्र मे जनसघ सत्तारूढ हुआ था। उत्तर प्रदेश म चरणसिंह मन्त्रिमण्डल म जनसघ एक सहयोगी के रूप मे शामिल हुआ था।

जनसघ मे भी दो गुट बन गये हैं। एक के नेता श्री अटलविहारी वाजपेयी तो दूसरे के श्री बलराज मधोक और एम एल सोधी थे। मधोक सोधी गुट कांग्रेस

प्रकट हुए थे। मधोक और साथी जनसंघ से हट गये। मधोक ने भारतीय राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक दल नामक नवीन दल का निर्माण किया था।

जनसंघ के अधिकांश सदस्य हिन्दू हैं। मुसलमानों की संख्या नगण्य है। कर्मठ कार्यकर्ता एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दल की शक्ति हैं। भारतीय राष्ट्रवाद एवं लोकतन्त्र में इसका विश्वास है। भारतीय राष्ट्रवाद से इसका अभिप्राय हिन्दू राष्ट्रवाद है। यह अखिल भारतीय दक्षिणपंथी दल है। डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने इसका खण्डन किया था कि जनसंघ साम्प्रदायिक है लेकिन दल की विचारधारा निश्चय ही साम्प्रदायिक है। इसके अधिकांश सदस्य हिन्दू सभ्यता और संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

स्वतन्त्र दल—1959 ई. (अगस्त) में श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के प्रयत्नों से इस दल का जन्म हुआ था। प्रो. एन. जी. रंगा, श्री मीनू मसानी, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी इसके संस्थापक सदस्यों में थे। यह दल राज्यवाद एवं निरन्तर बढ़ते हुए कर-भार का विरोधी है। यह वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं लोकतन्त्र, प्रशासनिक ईमानदारी, सार्वजनिक जीवन में नैतिकता तथा वैयक्तिक उद्योग-धन्धों का समर्थक है। देश की सुरक्षा के लिए सुदृढ़ सेना को यह आवश्यक मानता है। केन्द्रित नियोजन का विरोधी है एवं कांग्रेस की समाजवादी नीतियों की अपेक्षा 'प्रगतिशील उदार-वादी' नीति का समर्थक है, सामाजिक न्याय एवं कल्याण का पक्षपाती है एवं राजकीय पूंजीवाद तथा शासन द्वारा शोषण का अन्त चाहता है। यह भारत का अनुदार दल है। इसकी आर्थिक व सामाजिक नीतियाँ प्रतिगामी एवं कार्यक्रम रूढ़िवादी है। इस दल में भूतपूर्व नरेशों, सामन्तों, पूंजीपतियों जिनका कि लोकतन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है, का बाहुल्य रहा है। कांग्रेस राज्य का इस दल के नेता 'परमिट-लाइसेंस-कोटा' राज्य कहते हैं। कृषि क्षेत्र में यह दल सहकारी कृषि एवं चकबन्दी का विरोधी है। गुट निरपेक्ष विदेश-नीति की तीव्र आलोचना करता हुआ पश्चिमी गुट में शामिल होने का हिमायती है। स्वतन्त्र दल को 1962 ई. के निर्वाचनों में लोकसभा में 22 स्थान एवं राज्य विधानमण्डलों में 166 स्थान तथा 1967 ई. में लोकसभा में 44 स्थान एवं राज्य विधानमण्डलों में 255 स्थान प्राप्त हुए थे। 1967 ई. में स्वतन्त्र दल लोकसभा में दूसरा सबसे बड़ा दल था। मध्यावधि निर्वाचनों में स्वतन्त्र दल ने संगठन कांग्रेस, जनसंघ एवं संसोपा के साथ चुनाव गठबन्धन किया था परन्तु उसे असफलता प्राप्त हुई थी। 1972 ई. के राज्य विधानसभा के निर्वाचनों में उसे असफलता का सामना करना पड़ा है। उड़ीसा में स्वतन्त्र दल को [illegible] सफलता प्राप्त होती रही है।

स्वतन्त्र दल के नेताओं में भी मतभेद एवं फूट है। 1969 ई. में कांग्रेस विभाजन के समय गुजरात के स्वतन्त्र [illegible] सदस्य [illegible]। गुजरात में हितेन्द्र देसाई की सरकार को समर्थन करने के लिए सत्ताधारी कांग्रेस ने स्वतन्त्र दल के [illegible] का [illegible] किया था। लेकिन दल के नेताओं का यह मत स्वीकार्य

नही था । श्री देसाई ने इस पर दलीय नेताओ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । फलत उन्हे दल से पृथक कर दिया गया । गुजरात के स्वतन्त्र दल की शाखा ने श्री देसाई का समर्थन किया और केन्द्रीय निर्देश का अनुगमन नही किया । फलस्वरूप गुजरात के स्वतन्त्र दल मे फूट पड गयी । अनेक नेता दल से उदासीन हो गये । दल की आत्मा श्री राजगोपालाचारी एव श्री मुशी का निधन हो चुका है तथा श्री रगा ने दल से पृथक होकर कांग्रेस (शा) की सदस्यता स्वीकार कर ली है । दल के वर्तमान अध्यक्ष श्री पीलू मोदी ने भारतीय लोकदल नामक नवीन दल मे स्वतन्त्र दल के विलय का समर्थन किया । फलस्वरूप स्वतन्त्र दल का भारतीय लोकदल मे विलय हो गया है ।

समाजवादी दल—भारत मे समाजवादी दल की स्थापना स्वतन्त्रता के पूर्व 1933 34 ई मे कांग्रेस के भीतर एक दल के रूप मे हुई थी और इसे कांग्रेस समाजवादी दल के नाम से पुकारा गया था । स्वतन्त्रता के पश्चात 1948 ई मे यह दल कांग्रेस से पृथक हो गया । प्रथम निर्वाचन के पश्चात सितम्बर 1952 ई मे समाजवादी दल एव आचार्य कृपलानी का किसान मजदूर प्रजा दल परस्पर विलय हो गये थे । इस नवीन दल को प्रजा समाजवादी दल (प्रसोपा) की सज्ञा दी गयी । आचार्य कृपलानी इस नवीन दल के अध्यक्ष एव अशोक मेहता महामन्त्री बने थे । लेकिन एक इकाई के रूप मे यह बहुत दिनो तक न चल सका । विलय होने वाले दोनो दलो मे कार्यक्रम, पद्धति, आदि का भेद था । यह मतभेद धीरे धीरे उभर कर सामने आने लगे । राममनोहर लोहिया कांग्रेस एव साम्यवादी दोनो से किसी भी स्थिति मे सम्बन्ध स्थापित करने के विरोधी थे । इसके विपरीत कुछ अन्य नेताओ का मत था कि जिन राज्यो मे साम्यवादी एव साम्प्रदायिक शक्तियाँ अधिक सबल हो उन राज्यो मे दल को कांग्रेस का समर्थन करना चाहिए । केरल के पट्टम थानू पिल्ले के शासन काल मे हुए गोली काण्ड को लेकर दल मे तीव्र विवाद उत्पन्न हो गया और 1954 ई मे श्री लोहिया दल से पृथक हो गये तथा 1955 ई में 'समाजवादी दल' के नाम से नवीन दल का निर्माण किया । उसके पश्चात प्रसोपा एव सोपा पृथक-पृथक रूप में कायम रहे । 1971 ई मे दोनो दल पुन मिल गये और भारतीय समाजवादी दल की स्थापना हुई ।

कई बार दोनो दलो के विलय की चर्चा चली थी । यह दोनो दलो के हित मे भी था परन्तु व्यक्तित्वो का टकराव मूलत इसमे बाधक रहा । श्री राममनोहर लोहिया का कहना था कि प्रसोपा को समाजवादी दल का कार्यक्रम स्वीकार कर लेना चाहिए । प्रसोपा श्री लोहिया के प्रस्ताव को स्वीकारने का अर्थ आत्मसमर्पण मानता था । द्वितीय निर्वाचन के पश्चात एक बार पुन दोनो दलो के विलय के प्रयत्न किये गये थे । उत्तर प्रदेश विधानमण्डल के दोनो दलो के सदस्यो ने मिलकर सयुक्त समाजवादी दल का निर्माण किया और इस नवीन दल ने लोहिया के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया । सोपा के अधिकाश सदस्य एकीकरण के पक्ष में थे परन्तु अशोक मेहता इसके पक्ष में नही थे । 1964 ई में अशोक मेहता कांग्रेस मे शामिल हो गये । इसी वर्ष

नवीन समाजवादी दल—ससोपा—की स्थापना हुई थी। कुछ समय तक दोना दला में काफी मेल-जोल बढा परन्तु 1965 ई में वह पूरी तरह समाप्त हो गया और प्रसोपा की पुन स्थापना हुई। श्री हरिविष्णु कामथ ने इस बार विद्रोह किया था।

ससोपा एव प्रसोपा को देश के निर्वाचनो मे कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नही हुई है। द्वितीय ससदीय निर्वाचनो (1957 ई) मे प्रसोपा को 19 एव समाजवादी दल (लोहिया) को 7 स्थान मिले थे। चतुथ निर्वाचन म प्रसोपा को लोकसभा म 13 एव राज्य विधानमण्डलो म 104 स्थान तथा ससोपा को लोकसभा मे 22 एव राज्य विधानमण्डलो मे 177 स्थान प्राप्त हुए थे। इन चुनावो म ससोपा को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली थी। लेकिन अक्टूबर 1967 ई मे राममनोहर लोहिया की मृत्यु के पश्चात दल की प्रतिष्ठा को चोट पहुची है। 1971 ई के निर्वाचनो मे ससोपा ने दक्षिणपथी दलो—सगठन काग्रेस, स्वतन्त्र एव जनसघ—से चुनाव सम्बन्धी गठबन्धन किये थे। इस निर्वाचन मे प्रसोपा एव ससोपा का सफाया ही हो गया। ससोपा लोकसभा मे कोई स्थान प्राप्त नही कर सका। ससोपा को बिहार मे 2 एव मध्य प्रदेश मे 1 स्थान प्राप्त हुआ था। 93 स्थानो पर ससोपा ने चुनाव लडा था, इनमे 62 स्थानो पर उसकी जमानत जब्त हुई। प्रसोपा को कुल 14,10,598 मत प्राप्त हुए थे। 1967 ई के पश्चात प्रसोपा की कोई स्पष्ट नीति नही रही और न उसका नेतत्व ही प्रभावशाली रहा। 1971 ई के निर्वाचन को प्रसोपा ने अकेले ही लडा था। 1971 ई के निर्वाचनो मे पराजय से दोनो दला मे नराश्य उत्पन्न हो गया। फलत दोनो दला के विलयन का माग प्रशस्त हो गया। जॉज फर्नेन्डीज ने प्रसोपा एव ससोपा के विलय मे अथक योग दिया था।

प्रसोपा (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी) का कायक्रम निम्नत था

भूमि सुधारो का प्रभावपूण नियान्वयन, कृषि-उत्पाद का उचित मूल्य निर्धारण, भ्रष्टाचार-उन्मूलन, प्रतिनिधियो के प्रत्यावतन की व्यवस्था, केन्द्र राज्य विवादो के निवारणार्थ आयोग की स्थापना, ससदीय सर्वोच्चता को मान्यता, शहरी सम्पत्ति का परिसीमन, उचित मूल्या की दुकानो की व्यवस्था, न्यूनतम वेतन, मतदान की आयु 18 वष किया जाना, वेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेन्शन, गुट निरपेक्षता एव उसका सही क्रियान्वयन, चीन से उस समय तक सीमा विवाद के सम्बन्ध म कोई समझौता नही किया जाना चाहिए जब तक कि वह आक्रमण द्वारा हस्तगत की गयी भूमि को खाली नही करता, अरव एव इजराइल दोनो देशो से मत्रीपूण सम्बन्धो की स्थापना तथा सयुक्त राष्ट्र सघ को शक्तिशाली बनाना। प्रसोपा का प्रधान लक्ष्य सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक शोषण स मुक्त वगहीन एव जातिविहीन समाज की स्थापना है। ससोपा एव प्रसोपा दोना ही लोकतान्त्रिक या विकासवादी समाजवाद म

आस्था रखते थे। ये दोनो दल साम्यवादी एव वामवर्गी हैं। ससोपा अधिक उग्रपथी दल था। परन्तु दोनो दला म सद्धान्तिक एव कायक्रम सम्बन्धी गम्भीर मतभेद है।[7]

ससोपा (सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी) का मुख्य कायक्रम निम्नाकित था

ससोपा परम्परागत यूरोपीय समाजवाद से भिन्न *समाजवादी व्यवस्था* की स्थापना के लिए प्रयत्नशील था। यूरोपीय समाजवाद का विकास क्रमिक सवैधानिक एव वितरणात्मक ढग से हुआ है। परन्तु ससोपा के अनुसार भारत म समाजवाद का विकास तीव्रगामी और आवश्यकता पडने पर असवैधानिक ढग से भी हो सकता है। ससोपा के अनुसार उत्पादन पर बल दिया जाना चाहिए। दल को स्वत लोकत त्र के विकास म कोई *आस्था नही थी तथा समाज मे गम्भीर एव उग्र परिवतन* का वह पक्षपाती था। ससोपा उग्र क्रान्तिकारी सघष, सुनिश्चित समाजवादी कायक्रम, उग्र देशभक्ति एव विकेन्द्रित लोकतन्त्र का समथक था। जनचेतना को जागृति करने के लिए अहिसात्मक कायपद्धति एव असहयोग मे दल की पूण आस्था थी। ससोपा का दलीय कायक्रम उग्र था। उदाहरण के लिए, दल नवीन सविधान के निर्माण, निर्वाचित कायपालक अधिकारी, राज्यपाल एव जिलाधीश के पदो की समाप्ति, अग्रेजी के आधिपत्य के अन्त, धम निरपेक्षता एव असाम्प्रदायिकता का समथक था। इसके अतिरिक्त हरिजना के उत्थान के लिए विशेष व्यवस्था, मुख्य उद्योगो एव विदेशी पूजी का समाजीकरण, व्यापक सप्तवर्षीय सिंचाई योजना, बेरोजगारी उन्मूलन के लिए बेरोजगार निधि की स्थापना, गुट निरपेक्षता के रचनात्मक क्रियान्वयन, तिब्बत को स्वाधीन कराने आदि *नीतियो का पक्षपाती था*। ससोपा कांग्रेस शासन को देश की सबसे बडी बुराई मानता था और काग्रेस से सघष को दल प्राथमिकता प्रदान करता था। समाजवादियो एव प्रतिक्रियावादिया का भी ससोपा घोर विरोधी था। नेहरू एव नेहरूवाद के विरुद्ध आवाज सवप्रथम डॉ लोहिया न ही उठाई थी।

ससोपा एव प्रसोपा का विलय हो *गया है तथा एक समाजवदी दल का निर्माण* भी हुआ है। लेकिन प्रश्न है कि क्या वास्तव मे दोना दला का विलय स्थायी सिद्ध होगा ? क्या दोनो दलो ने अपना अस्तित्व पूणरूपेण त्याग दिया है ? इसका कोई निश्चित उत्तर एव पर्याप्त प्रमाण नही ह। अपितु ठीक विपरीत साक्ष्य अवश्य उपलब्ध होने लगे हैं और दल म फूट की बीमारी पुन उभर रही है।

समीक्षा—*भारत मे बहुदलीय पद्धति है*। चतुथ निर्वाचन एव विघटन के फलस्वरूप कांग्रेस की जो क्षति हुई थी वह विगत वर्षों म पूण हो चुकी है। काग्रेस (शासकीय) की स्थिति पुन दृढ हो गयी है। अत व्यवहार म विभिन्न विरोधी दला का प्रभाव नगण्य ही है। देश म कांग्रेस का एकमात्र प्रबल बहुमत है। तमिलनाडु राज्य इसका अपवाद है। द्रमुक को छोडकर शेष *सभी क्षेत्रीय दलो की स्थिति कमजोर* है।

7 Hartmann, H *The Socialist Parties of India* J C P S Vol V, No 4, Oct Dec 1971 p 648

सभी क्षेत्रीय दलो को अपनी स्थिति का ज्ञान है। कुछ अखिल भारतीय दलो की स्थिति भी कमजोर है। ऐसे सात दलो के विलय से 'भारतीय लोकदल' नामक नये दल का उदय 29 अगस्त, 1974 को हुआ है। चौधरी चरणसिंह उसके अध्यक्ष चुने गये हैं। नवीन दल को राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस का विकल्प बनाने का प्रयत्न है। इसमे विलय होने वाले सात दल हैं स्वतन्त्र दल, भारतीय क्रान्ति दल, उत्कल कांग्रेस, ससोपा, लोकतान्त्रिक दल, किसान मजदूर दल, पजाब खेतीबाडी जमीदार सघ। खेतिहर मजदूर सघ भी इसमे शामिल होने वाला था। प्रेक्षको क अनुसार यह दल भी शीघ्र शामिल हो जायेगा। भारतीय लोकदल देश की राजनीति को गाधीवादी दिशा देना चाहता है और इसने नेहरूवादी नीतियो म सशोधन का निश्चय किया है, कृषि को प्राथमिकता दी गयी है तथा लघु एव कुटीर उद्योगो को द्वितीय एव भारी उद्योगो को तृतीय स्थान दिया गया है। दल ने लक्ष्या के अनुरूप साधन की पवित्रता पर बल दिया है। यह दल न तो नियन्त्रण विहीन शोषण युक्त वैयक्तिक स्वतन्त्रता का समर्थक है और न राज्य को इतनी व्यापक शक्तियाँ देने का इच्छुक है जो वैयक्तिक पहल एव आर्थिक स्वतन्त्रता पर अनुचित प्रतिबन्ध बन सकती हो। राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस दल के विकल्प के रूप मे भविष्य मे इस दल की सफलता पूर्ण सदिग्ध है। दल मे बलराज मधोक, पीलू मोदी, बीजू पटनायक एव राजनारायण जैसे विभिन्न राजनीतिक विचारो के व्यक्ति हैं। अत इसकी सफलता की मुख्य शर्त यह है कि दल मे विलय होने वाले सभी दल किस सीमा तक सब स्वीकृत दलीय कार्यक्रम पर निर्णय कर पाते है।

पाकिस्तान की दलीय व्यवस्था

पाकिस्तान मे बहुदलीय पद्धति का विकास हुआ है। पाकिस्तान के जन्म के समय केवल दो दल थे—मुसलिम लीग और पाकिस्तान राष्ट्रीय कांग्रेस। मुसलिम लीग का पाकिस्तान के प्रारम्भिक वर्षों मे देश की राजनीति पर एकाधिकार था। पाकिस्तान राष्ट्रीय कांग्रेस अल्पसख्यक दल था और उसके ऊपर अनेक प्रतिबन्ध थे। यह पूर्वी पाकिस्तान मे अधिक सक्रिय था।

मुसलिम लीग

यह दल 1946 56 ई तक सत्तारूढ रहा। इसकी स्थापना अविभाजित भारत म 1906 ई मे हुई थी। पाक के सस्थापक मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व म इस दल न द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का अनुगमन करते हुए पाकिस्तान के निर्माण मे उग्र एव आक्रामक भूमिका निभाई थी। प्रारम्भ में दल का देश पर एकाधिकार था किन्तु आन्तरिक मतभेदा ने दल की शक्ति को क्षीण कर दिया। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान म भाषा के प्रश्न पर गतिरोध उत्पन्न हो गये तथा अनेक अन्य दलो का उदय हुआ।

मुसलिम लीग का कोई निश्चित कार्यक्रम नही था, न कोई निश्चित आर्थिक नीति ही थी। लियाकतअली की हत्या के पश्चात लीग में गुटबन्दी बढ गयी। नाजि

मुद्दीन के सत्तारूढ होने के पश्चात पाक राजनीति में प्रान्तीयता पूरी तरह उभर कर सामने आयी। मुसलिम लीग ने अपने को सत्ता म बनाय रखने के लिए इस्लाम और पाकिस्तान की रक्षा के नारे का सहारा लिया था। 1954 ई के निर्वाचना म लीग का नारा था कि मुसलिम लीग के विरुद्ध मत पाकिस्तान के विरुद्ध मत है। इस दल ने सदैव पाक जनता को यह समझाने की कोशिश की कि लीग को अनादि काल तक शासन करने का अधिकार है। यह भ्रम था। 1954 ई के निवाचना म हक, सुहरावर्दी और मौलाना भाषानी के नेतृत्व म सगठित सयुक्त मोर्चा ने पूर्वी पाक म सफलता प्राप्त की। पश्चिमी पाकिस्तान मे रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना हुई और मुहम्मद अली के त्यागपत्र के साथ 1956 ई मे लीग का शासन समाप्त हो गया। मुसलिम लीग के पतन का मुख्य कारण पूर्वी पाकिस्तान की जनता म व्याप्त तीव्र असन्तोष की उपेक्षा करना था। पूर्वी पाक की जनता उर्दू को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करने के लिए तयार नही थी। लीग का सगठन भी दोषपूर्ण था। एक व्यक्ति—मुख्य नेता—के चारो ओर वह केंद्रित था और एक बार उस नेता के हटने के बाद दलीय एकता को कायम रखना कठिन हो जाता था। दल पर बडे-बडे जमीदारो एव पूजीपतियो का आधिपत्य था। शासन का दल से एकाकार हो गया था। दलीय नेताओ मे नेतृत्व का अभाव था।

पाकिस्तान म सैनिक शासन की स्थापना के पश्चात राजनीतिक दलो पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। 1962 ई के सविधान के अधीन सगठित नयी व्यवस्थापिका द्वारा लोकतन्त्रीकरण की माँग की गयी, फलस्वरूप राजनीतिक दलीय अधिनियम पारित किया गया और राजनीतिक दलो के निर्माण और निर्वाचना म भाग लेने की अनुमति दी गयी। सितम्बर 1962 ई मे परम्परागत मुसलिम लीग की पुन स्थापना की गयी। यह दल पाक मुसलिम लीग के नाम स विख्यात हुआ। 1963 ई म राष्ट्रपति अयूब भी इसमे शामिल हो गये। 1965 ई के राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय सभी विरोधी दलो ने मिलकर सयुक्त विरोधी दल का निर्माण किया जिसमें अवामी लीग, राष्ट्रीय अवामी लीग, जमायत ए इस्लामी, निजाम ए इस्लामी तथा काउन्सिल मुसलिम लीग शामिल थी।

अवामी लीग

इस दल की स्थापना 1949 50 म मुसलिम लीग म असन्तुष्ट और पृथक हुए सदस्यो ने की थी। हुसन शहीद सुहरावर्दी इस दल के नेता थे। 1953 ई म गठित सयुक्त मोर्चे म यह दल मुख्य हिस्सेदार था। लेकिन यह गठबन्धन अधिक दिना तक न चल सका। सुहरावर्दी अपने दल को अधिक लोकतान्त्रिक मानते थ। अवामी दल ने अपने निर्वाचन घोषणा-पत्र म निम्न कायक्रम की घोषणा की थी

'जूट व्यापार का राष्ट्रीयकरण, जूट का उचित मूल्य देना, भू राजस्व का उन्मूलन करना, भूमिहीनो म भूमि का वितरण, सहकारी खेती एव कुटीर उद्योगो का

विकास, पूर्वी बगाल को पूण स्वायत्तता, बगाली भाषा को पाक की एक राज्यभाषा बनाना तथा यायपालिका और कायपालिका का पृथक्करण।"

1956 ई म सुहरावर्दी रिपब्लिक्न पार्टी के सहयोग स पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री बने। उन्होंने मुसलिम लीग द्वारा समर्थित परम्परागत पाक विदेश-नीति का अनुगमन किया। इससे दल मे मतभेद हो गया। मौलाना भाषानी दल से पृथक हो गये। 1965 ई मे राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय सगठित सयुक्त विरोधी दल मे अवामी लीग भी शामिल थी। अवामी लीग के नेता पूर्वी पाक के सम्बन्ध म स्वायत्तता के पक्षपाती थे। वे एकात्मक शासन के स्थान पर परिसघीय शासन (Confederal Government) के समथक थे। पूर्वी पाक अवामी लीग ने पूर्वी पाक की स्वायत्तता के सम्बन्ध मे छ सूत्री कायक्रम की घोषणा की थी। इसका तीव्र विरोध किया गया। लेकिन दिसम्बर 1970 ई के निर्वाचनो मे शेख मुजीबुरहमान के नेतत्व मे पूर्वी पाक अवामी लीग को असाधारण सफलता प्राप्त हुई। स्मरणीय है कि याहिया खाँ ने निर्वाचन के पूव यह आश्वासन दिया था कि निर्वाचन की घोषणा के 120 दिन के भीतर जन प्रतिनिधियो से मिलकर नवीन सविधान का निर्माण किया जायेगा। पूर्वी पाक अवामी लीग की सफलता से गतिरोध उत्पन्न हो गया। मुजीब की अवामी लीग और भुट्टो की पीपुल्स पार्टी तथा याहिया खाँ के मध्य समझौता न हो सका। पूर्वी पाक मे दमन चक्र का आरम्भ हुआ। मुजीब को बन्दी बना लिया गया। पूर्वी पाक की जनता ने 26 मार्च, 1971 को स्वतन्त्रता की घोषणा की और लम्बे सघष के बाद स्वतन्त्र बगला देश का उदय हुआ।

अन्य दल

रिपब्लिकन दल—इसकी स्थापना डॉ खान साहब ने 23 माच, 1956 ई को की थी। दल ने 14 सूत्री निम्न कायक्रम की घोषणा की 'जीवन-स्तर म वद्धि, कृषि एव उद्योगो का समान विकास, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, भिक्षावृत्ति, बेरोजगारी का उन्मूलन एव भूमि-सुधार आदि।"

दल एकसी नीति का अनुगमन न कर सका। परिस्थितियाँ इसके लिए उत्तरदायी थी। उदाहरण के लिए, प्रारम्भ म दल ने पश्चिमी पाकिस्तान को एक इकाई बनाये रखने का समथन किया था, लेकिन बाद मे उसके विघटन के लिए आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। दल प्रारम्भ मे द्विराष्ट्रवाद के विरुद्ध था, लेकिन बाद मे पृथक निर्वाचन का समथन करने लगा था। बाद म पूर्वी पाकिस्तान के सन्दभ मे एक बार पुन इस नीति म परिवतन हुआ और दल ने सयुक्त निर्वाचन का समथन किया।

दल ने आर्थिक सुधारो की योजना प्रस्तुत नही की। उसकी विदेश-नीति स्पष्ट नही थी। दल म अधिकाशत मुसलिम लीग के भूतपूव सदस्य थे। रिपब्लिकन दल देश म स्थिरता लाने मे सफल नही हुआ। प्रारम्भ से ही दल मुसलिम लीग के विरुद्ध था।

राष्ट्रीय अवामी पार्टी—इसकी स्थापना जुलाई 1957 ई म विभिन्न आठ

समूहों के एकीकरण से हुई थी। आजाद पाकिस्तान दल, जो एम सैयद, खान अब्दुल गफ्फार खाँ के समर्थक, पूर्वी पाक का गणतन्त्रीय दल और मौलाना भाषानी व उनके समर्थक इस दल में शामिल हुए थे। गैर-मुसलमानों को समानता के आधार पर इस दल की सदस्यता प्राप्त थी। यह आज पाकिस्तान का प्रमुख विरोधी दल है। खान अब्दुल वली खाँ इसके प्रमुख नेता हैं। इसका धर्म निरपेक्षता और समाजवादी विचारों में विश्वास है। 1963 ई में इस दल को दबाने का शासन ने भरसक प्रयत्न किया था। इस दल ने अयूबशाही के विरुद्ध दृढतापूर्वक मोर्चा लिया और संसदीय शासन की स्थापना के लिए भरसक प्रयत्न किया है। दल सामाजिक और आर्थिक सुधारों की तरफ विशेष ध्यान नहीं दे सका है।

पीपुल्स पार्टी—श्री भुट्टो ने 30 नवम्बर, 1967 ई को लाहौर में इस दल के निर्माण की घोषणा की थी। दल के तीन आदर्श हैं—इस्लाम, समाजवाद और लोकतन्त्र। वे इस्लाम और समाजवाद में पूर्ण संगति देखते हैं। उनका कथन है कि इस्लाम हमारा धर्म है, लोकतन्त्र हमारी राजनीतिक पद्धति है और समाजवाद हमारी अर्थनीति है। हम जनता की सम्प्रभुता में विश्वास करते हैं। 1970 ई के निर्वाचन में पीपुल्स पार्टी को अवामी लीग के मुकाबले में कम सफलता मिली। बंगला देश की स्वतन्त्रता के पश्चात पीपुल्स पार्टी पाकिस्तान का सत्तारूढ दल है।

इसके अतिरिक्त 1967 ई में विभिन्न विरोधी दल-समूहों ने पाक लोकतान्त्रिक दल की स्थापना की थी। यह दल लोकतन्त्र एवं जनता की सम्प्रभुता में विश्वास करता है। जमायत ए इस्लामी और निजाम ए इस्लामी दो प्रमुख धार्मिक दल हैं। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस्लाम धर्म की प्रमुखता में विश्वास करते हैं।

समीक्षा—पाकिस्तान में बहुदलीय पद्धति का विकास हुआ है तथा दलों का उत्थान एवं पतन बड़ी शीघ्र गति से हुआ है। मुसलिम लीग के पतन के पश्चात देश की राजनीति पर किसी एक दल का नियन्त्रण नहीं रहा है। पाकिस्तान इस्लामी राज्य है अत सभी दलों ने आधुनिक लोकतन्त्र एवं समाजवाद के विचारों और धर्मतन्त्र की मध्ययुगीन विचारधारा के साथ संगति स्थापित करने के असफल प्रयत्न किये हैं। 1956 ई के पश्चात पाक में निर्वाचनों के समय समस्त विरोधी समूहों द्वारा संगठित होकर अल्पकालिक विरोधी दल के निर्माण का प्रयत्न किया जाता रहा है। सभी राजनीतिक दलों ने जन-समर्थन प्राप्त करने के लिए भारत विरोधी नीति का सहारा लिया है। जकारिया[8] के अनुसार 1956 ई के पूर्व पाकिस्तान के राजनीतिक दलों की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् थी

(1) किसी राजनीतिक दल का संगठन लोकतन्त्रात्मक नहीं था और न जनता से किसी दल का सीधा सम्पर्क ही था।

---

8 Zakaria, N *Parliamentary Government in Pakistan*, pp 187 88

(2) मुसलिम लीग को छोडकर शेष सभी दल क्षेत्रीय थे। पूर्वी पाक में मुसलिम लीग भी लोकप्रिय दल नही था।

(3) देश म अनेक दल थे अत दो ही दल देश की राजनीति में प्रमुख नही थे। ससदीय दलीय पद्धति के लिए यह दलीय व्यवस्था उपयुक्त नही थी। दला पर नेताओ का नियन्त्रण था और दलो का अनुशासन ढीला था।

(4) दला के सदस्य आये दिन एक दल छोडकर दूसर दल में शामिल होते रहत थे। देश की राजनीति म दल बदल का सक्रामक रोग फैला हुआ था और दला म गठबन्धन होते रहते थे।

जकारिया का उपयुक्त विश्लेषण 1956 ई के पश्चात भी कुछ परिवतन से लागू होता है। पूर्वी पाक में अवामी दल का जनता से निकट सम्पक था एव उसे जनता का व्यापक समथन प्राप्त था। यह 1970 ई के निर्वाचना से सुस्पष्ट है। पाकिस्तान का राजनीतिक जीवन भ्रष्ट था। रिश्वत एव चोरबाजारी का बाजार गम था। अयूब के सत्तारूढ होने पर उन बातो में कुछ समय के लिए कमी आयी थी परन्तु अयूबशाही के रूप में निरकुशतन्त्र की स्थापना हुई और लोकतन्त्र का गला घोट दिया गया। नौकरशाही भी ससदीय शासन के पतन के साथ शक्तिशाली होती चली गयी। सशक्त विरोधी दल के अभाव ने पाकिस्तान में तानाशाही के लिए माग प्रशस्त कर दिया। मुसलिम लीग ने किसी विरोधी दल को उभरने नही दिया था एव उनका निमम दमन किया जाता रहा।

जापान मे दलीय पद्धति

जापान मे राजनीतिक दलीय व्यवस्था का इतिहास पुराना है। 1890 ई म प्रतिनिधि शासन की स्थापना के पूव ही जापान मे राजनीतिक दलो का विकास प्रारम्भ हो चुका था। उदार दल (Jıryuto) प्रथम और प्रगतिशील दल (Kaıshıuto) द्वितीय दल था। इन दलो ने सवैधानिक शासन के निर्माण के लिए प्रयत्न किया। परन्तु 1884 ई म इन दोनो दला का दमन कर दिया गया। 1898 ई म दोनो दलो ने मिलकर सवैधानिक दल (Constıtutıonal Party) का निर्माण किया। कुछ समय बाद प्रगतिवादी इस दल से पृथक हो गये और एक नवीन दल (True Constıtutıonal Party) का गठन किया। 1918 ई म जापान मे प्रथम दलीय शासन की स्थापना हुई। कुछ समय पश्चात 'लोकप्रिय शासन का दल' (Mınseıto) नामक नवीन दल की स्थापना हुई। स्मरणीय है कि जापान मे प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लोकतन्त्र का तीव्र गति से विकास हुआ था। 1925 ई मे सावभौमिक वयस्क मताधिकार प्रारम्भ हुआ। इसी समय औद्योगिक विकास के कारण श्रमिक दलो की स्थापना हुई। समाजवादी विचारधारा के चारा दलो—श्रमिक कृपक दल, जापान कृपक दल, समाज वादी लोकतान्त्रिक दल और जापान श्रमिक कृपक दल—की एक साथ स्थापना हुई। इन वामपथी दला मे एकता नही थी। यही स्थिति अनुदार दला की थी। 1931 ई

में जापान में सैनिकवाद का उदय हुआ। युवक सैनिक अधिकारियों ने प्रमुख अधिकारियों की हत्या कर दी और शासन में घुस बैठे। 1940 ई. में वामपथी और दक्षिणपथी दल राजनीतिक क्षितिज से तिरोहित हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापान में केवल दो—सियुलकाई (Seiyulkai) एवं मिनसीटो (Minseito)—प्रमुख दल थे।

1945 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात यह दल अनुदार दलों के रूप में उभर कर आये। इसके अतिरिक्त साम्यवादी दल एवं समाजवादी लोकतान्त्रिक दल का भी उदय हुआ। कुछ छोटे दलों का भी विकास हुआ था। लेकिन 1953 ई. में जापान में द्विदलीय पद्धति स्थापित हो गयी थी। दो प्रमुख दल ये हैं (1) उदारवादी लोकतान्त्रिक दल (Ziyuminshuto), एवं (2) जापान समाजवादी दल (Nihon Shakaito)।

(1) उदारवादी लोकतान्त्रिक दल—यह जापान का अनुदार दल है। 1955 ई. में इसकी स्थापना हुई थी। इसे उद्योगपतियों और व्यापारियों का समर्थन प्राप्त है।

(2) जापान समाजवादी दल—समाजवादी दल को 1947 ई. के निर्वाचनों में असाधारण सफलता मिली थी। दल के उग्रवादियों और उदारवादियों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गये थे। 1951 ई. की शान्ति-सन्धि के प्रश्न को लेकर दल विघटित हो गया था। दक्षिणपथी सदस्यों ने सन्धि का समर्थन किया और वामपंथियों ने विरोध। वामपथी साम्यवादियों के सहयोगी थे। 1955 ई. के पश्चात इन दोनों गुटों में एकता स्थापित हुई और जापान समाजवादी दल की स्थापना हुई। एक लम्बे समय तक यह एक विरोधी दल के रूप में कार्य करता रहा। यह दल स्वतन्त्रता, शान्ति और लोकतन्त्र का समर्थक है।

साम्यवादी दल—जापान का यह प्रमुख दल है। यह जापान से अमरिकी सैनिक अड्डों को हटाने का पक्षपाती है। 1951 की शान्ति-सन्धि को समाप्त करने का समर्थक है और साम्यवादी गुट का पक्ष पोषक है। यह जापान में लोकतन्त्रीय संयुक्त मार्च का प्रतिनिधित्व करता है। जापान में साम्यवादियों का प्रभाव घट रहा है। 1949 ई. में प्रतिनिधि सदन में इसके 35 सदस्य थे। 1958 में यह संख्या घटकर केवल 4 रह गयी है।

जापान की दलीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं

(1) जापानी दलीय पद्धति पाश्चात्य सभ्यता और आधुनिकता का परिणाम है।
(2) इनके विकास में भूगोल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।
(3) दलों के विकास और संगठन में धन का प्रमुख हाथ नहीं रहा है।
(4) 1953 ई. में जापान में बहुदलीय व्यवस्था प्रचलित रही है।
(5) जापान के सभी दलों का संगठन एकसा है अर्थात प्रत्येक दल का नि

शालय एव आन्तरिक विभाग होता है। लेकिन दला की वित्तीय व्यवस्था और अनु-शासन एक समान नही है।

सक्षेप में, सही अर्थों म जापान में राजनीतिक दला का अभाव रहा है। वहाँ अधिकतर राजनीतिक समूह रहे हैं। वे अपना नाम बदलते रहे हैं और सदस्यगण एक दल से दूसरे दल में शामिल होते रह हैं। जापान क सविधान म अमेरिकी और ब्रिटिश परम्परा के अनुसार राजनीतिक दलो को मान्यता नही दी गयी है। दलो में गुटबन्दी और सघष सामान्य बात है। द्विदलीय पद्धति का विकास ससदीय प्रणाली के अनुरूप है। जापान के दल अपने नेता के चारो ओर केन्द्रित होते हैं। व्यक्ति-पूजा का वहाँ प्राधान्य है और नतृत्व उच्च वर्गों के हाथ मे है।

परिशिष्ट 1

भारत मे सवैधानिक सशोधन

अक्टूबर 1975 तक भारतीय सविधान मे कुल 39 सशोधन हो चुके हैं। 40वाँ सशोधन प्रस्तावित कर दिया गया है।[1] 12 सवैधानिक सशोधनो म से व्यावहारिक कठिनाइयो के निवारणार्थ छ सशोधन अर्थात तीसरा पाँचवाँ, 35वाँ, 36वा, 39वा एव 40वा पारित किये गये हैं। यथा—तीसरे सवैधानिक सशोधन द्वारा समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 की अस्पष्टता के निवारणार्थ उसे स्पष्ट करते हुए लोक हित म इष्टकर उद्योगो के अतिरिक्त उसने उनके उत्पाद खाद्य-पदार्थों तिलहन तेल, ढोरो के चारे, कच्ची रुई, कच्चे पटसन को और जोड दिया था। ऐसा करना बुद्धिमत्तापूर्ण था। स्मरणीय है उस समय देश खाद्य-सकट से गुजर रहा था। पाँचवें सशोधन द्वारा अनुच्छेद 3 अर्थात नये राज्यो का निर्माण तथा वर्तमान राज्यो के क्षेत्र, सीमाओ या नामो के परिवर्तन के विषय म यह व्यवस्था की गयी थी कि ऐसे विधेयक सम्बन्धित राज्यो के विधानमण्डलो को भेजे जायें और वे राज्य एक निश्चित अवधि मे अपना विचार प्रकट करे। उस अवधि के समाप्त होने पर ही सम्बन्धित विधेयक को ससद के किसी सदन म पुन स्थापित किया जाय। यह व्यावहारिक एव सदा सावधान था। इससे राज्य विधानमण्डलो को एक निश्चित समय मे अपने विचार व्यक्त करना अनिवार्य कर दिया गया था। 32वाँ सशोधन दल-बदल की सामाजिक नैतिकता-विहीन भारतीय राजनीति की अवाछनीय प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए पारित किया गया। यदि कोई सदस्य जिस दल का सदस्य है, उसके निर्देश के विरुद्ध मतदान करता है या दल छोडता है, तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। 33वें सशोधन (मई 1974) द्वारा ससदीय सदस्यो एव राज्य विधायको के सम्बन्ध म स्वैच्छिक त्यागपत्रो को ही स्पीकरो एव सभापतियो द्वारा स्वीकृत करने की व्यवस्था की गयी थी। इसके पीछे गुजरात की घटनाएँ थी जहाँ के अनेक विधायको से बलपूर्वक त्यागपत्र लिए गये थे। 31वें सशोधन (मई 1973) के द्वारा 1971 की जनगणना के आधार पर लो [illegible] को

---

1 27 सशोधनो का उल्लेख पृष्ठ 73-76 पर किया जा चुका है। एव 29वें तथा 32वें से लेकर 40वें तक अर्थात् 12 सशोधनो प्रस्तुत है।

सदस्य सख्या 525 स बढाकर 545 (525 सदस्य विभिन्न राज्या स और 20 केन्द्रीय क्षेत्रो से) कर दी गयी है। 39वें सशोधन (अगस्त 1975) द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्र पति, प्रधानमन्त्री एव स्पीकर के निर्वाचन को न्यायपालिका की जाँच के बाहर रखा गया है। यह भी व्यवस्था की गयी है कि ससद विधि द्वारा उपरोक्त पदो से सम्बन्धित निर्वाचन-विवादो के निणय हेतु नयी व्यवस्था करगी जिस पर अदालतो म कोई कार्यवाही नही हो सकेगी।[2] विधि मन्त्री श्री हरि रामचन्द्र गोखले का कथन है कि इन उच्च पदीय व्यक्तियो को जनता के बहुमत से चुना जाता है अत यह हास्यास्पद होगा कि उनके निर्वाचन की वधता को न्यायपालिका जाँचे।

40वें सशोधन[3] (अगस्त 1975) द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, राज्यपाल अपने पद से सम्बद्ध कर्तव्या के पालन करते हुए *किये गये कार्यों, बातो या चीजो के लिए भी न्यायालय के सम्मुख उत्तरदायी नही* होगे। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 361 (2) एव (3) म सशोधन द्वारा उपरोक्त अधिकारियो को अपने कार्यकाल के पूर्व एव दौरान या पदत्याग के पश्चात किसी मामले के सम्बन्ध मे फौजदारी कार्यवाही एव गिरफ्तारी की छूट दी गयी है। विधि मन्त्री श्री गोखले का कहना है कि हमारी लोकतन्त्रात्मक गणराज्यीय शासन प्रणाली में प्रधानमन्त्री का पद भी राष्ट्रपति एव राज्यपाल की भाँति ही ऊँचा है।

सामाजिक परिस्थितियो के परिणामस्वरूप मौलिक अधिकारो विषयक दो सशोधन पारित किये गय हैं। यथा—29वें सशोधन (जून 1973) के द्वारा नवम् सूची की 64 प्रविष्टियो के पश्चात केरल भूमि-सुधार विधेयक, 1964 एव 1971 को तथा 34वें सशोधन (अगस्त 1974) के द्वारा नवम सूची म 17 अन्य प्रविष्टिया को जोडा गया था। इन सशोधनो के द्वारा इन भूमि-सुधारक विधियो को न्यायिक निरीक्षण से सरक्षण प्रदान किया गया था।

ऐतिहासिक परिस्थितियो के फलस्वरूप 33वाँ, 37वाँ, 38वाँ अर्थात तीन सशोधन पारित किये गये थे। 33वें सशोधन (दिसम्बर 1973) द्वारा तेलगाना एव आन्ध्र प्रदेश के विवाद को समाप्त करने के लिए व्यवस्था की गयी थी और एक छ सूत्री प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था। 37वें सशोधन (मई 1975) के द्वारा अरुणाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। 38वे सशोधन (अप्रैल 1975) के द्वारा सिक्किम को भारत का 22वा राज्य स्वीकृत किया गया एव वहाँ के चोग्याल के सामन्तवादी मध्ययुगीन एकतन्त्रीय व्यवस्था प्रधान पद को समाप्त किया गया था। यह सिक्किम मे लोकतन्त्र की विजय थी एव जन भावना के अनुकूल सशोधन था।

---

2 सर्वोच्च न्यायालय ने इन्दिरा गाधी निर्वाचन-विवाद मे निणय देते हुए 39वें सवधानिक सशोधन की धारा 4 को अवध घोषित करते हुए रद्द कर दिया। —*The Hindustan Times*, New Delhi, Nov 10, 1975

3 यह 41वें सवधानिक सशोधन के रूप मे ससद मे प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट 2

केशवानन्द भारती विवाद

संवैधानिक सशोधन से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण विवाद केशवानन्द भारती विवाद है। केशवानन्द भारती विवाद म दिये गय ऐतिहासिक निणय ने गोलखनाथ विवाद म दिये गये निणय को बदल दिया है। केरल के श्री केशवानन्द भारती एव दो खान मालिका तथा दो भूतपूर्व नरेशो ने सविधान के 24वें, 25वे, 26वें एव 29वे सशोधनो की वैधता को चुनौती दी थी। इनकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय की 13 न्यायाधीशा की पीठ ने की। न्यायालय ने 24वें सशोधन को वैध ठहराया एव मौलिक अधिकारो म ससद के सशोधन के अधिकार को स्वीकार किया। इस निणय से गोलखनाथ विवाद का निणय बदल गया। 25वे सशोधन के अधीन अनुच्छेद 31(ग) के प्रथम भाग को 6 क विरुद्ध 7 के समथन से उचित ठहराया गया लेकिन दूसरे भाग को अवैध घोषित किया गया। 29वे सशोधन को मुख्य न्यायाधीश के अलावा अन्य सभी न्यायाधीशा ने वैध ठहराया। न्यायालय के छ न्यायाधीशो ने यह मत व्यक्त किया कि सशोधन का अधिकार ससद को यह शक्ति नही देता कि वह ऐसे परिवतन कर दे जिससे कि सविधान निष्क्रिय या समाप्त हो जाय। मुख्य न्यायाधीश न्याय मूर्ति सीकरी ने अपने निणय मे कहा था कि 368वे अनुच्छेद के यह शब्द 'इस सविधान मे सशोधन' ससद को मूलाधिकारो को समाप्त करने या सविधान के मूल ढाचे मे परिवतन का अधिकार नही देते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनेक अपीलें एव रिट पिटीशने खदानों, कपडा मिलो एव चीनी मिलो के सम्बन्ध मे विचाराधीन है। कुछ तो 1971 से विचाराधीन हैं। ये अपीलें या रिटे केशवानन्द भारती एव 1970 के बैंक राष्ट्रीयकरण विवादो म दिये गये निणयो पर आधारित हैं। कुछ अपीलो एव रिटो के दौरान सर्वोच्च न्यायालय से बार-बार सरकारी वकीलो की ओर से मौखिक रूप म यह अनुरोध किया गया कि केशवानन्द भारती एव बैंक राष्ट्रीयकरण क विवादो म दिये गय निणया पर
किया जाय। सर्वोच्च न्यायालय ने इन फसलो पर पुन विचार करना

लिया था[1] और सुनवाई भी 10 नवम्बर को प्रारम्भ हुई थी[2] परन्तु दो दिन प
मुख्य न्यायाधीश श्री ए एन रे ने सुनवाई करने वाली 10 न्यायाधीशों की पीठ
भंग कर दिया और कहा कि हम यह देख रहे हैं कि अधिकांश तर्क हवा में कि
रहे हैं ("We find the arguments are in the air")[3]।

1 *The Hindustan Times*, New Delhi, Oct 22 1975

2 *Ibid* Nov 11, 1975

3 *Ibid*, Nov 13, 1975